महाभारत

त

संस्क
मूल

३७

हरिवंशपर्व-टीकासहित

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

महाभारत

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥
व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे । नमो वै ब्रह्महृदये वासिष्ठाय नमो नमः ॥

४ } गोरखपुर, पौष २०१५, जनवरी १९५९ { संख्या १
पूर्ण संख्या ३७

श्रीकृष्ण-वन्दना

श्रीकृष्णं सच्चिदानन्दं ज्ञेयं ध्येयार्च्यविग्रहम् ।
वन्दे वेदान्ततात्पर्यं भक्तवत्सलमद्भुतम् ॥

सत्, चित् और आनन्द जिनका स्वरूप है, जो सब प्रकारसे जानने योग्य हैं, जिनके श्रीअङ्ग ही ध्यान तथा पूजनके योग्य हैं तथा सम्पूर्ण वेदान्त (उपनिषद्) शास्त्र जिनका ही अपने परम तात्पर्यके रूपमें प्रतिपादन करते हैं, उन अद्भुत भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णको मैं वन्दना करता हूँ ।

वार्षिक मूल्य
में १५)
२०)
)

सम्पादक, मुद्रक तथा प्रकाशक
हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर

एक
भारतमें
विदेशमें
(३

श्रीहरिः

खिलभाग हरिवंशकी विषय-सूची

अध्याय विषय पृष्ठ संख्या

(हरिवंशपर्व)

१–मङ्गलाचरण, शौनक-उग्रश्रवा-संवाद, वृष्णि-वंशियोंका विस्तृत चरित्र सुननेके लिये जनमेजयकी प्रार्थना और आदिसृष्टिका वर्णन १
२–स्वायम्भुव मनुके वंश और दक्ष प्रजापतिकी उत्पत्तिका वर्णन ५
३–दक्ष प्रजापतिद्वारा सृष्टि-विस्तार, नारदजीका दक्षके पुत्रोंको विरक्त कर देना, दक्षकी साठ कन्याओं और उनकी संततिका वर्णन ... ९
४–पृथुका उपाख्यान–राज्यवितरण और दिक्पालोंकी प्रतिष्ठा १८
५–पृथुका उपाख्यान–वेनका अत्याचार करके नष्ट होना और पृथुका जन्म तथा चरित्र ... २०
६–पृथुका उपाख्यान–पृथ्वीका पृथुकी पुत्री बनकर अनेक प्रकारके दूध देना तथा अनेक पात्रों एवं दुहनेवालोंका वर्णन २४
७–मन्वन्तर, मनु, देवता और ऋषियोंका पृथक् पृथक् वर्णन २८
८–चारों युगों, मन्वन्तरों और ब्रह्माजीके दिन एवं वर्षका मान ३३
९–वैवस्वत मनु, यम, यमी (यमुना), अश्विनीकुमारों एवं शनैश्चरकी उत्पत्ति ... ३६
१०–वैवस्वत मनुके वंशजोंका वर्णन और पुरूरवाकी उत्पत्ति ४०
११–धुन्धुमारकी कथा ४३
१२–धुन्धुमारके वंशका वर्णन और गालवकी उत्पत्ति ४७
१३–त्रिशङ्कुके चरित्रका वर्णन तथा उनके वंशमें हरिश्चन्द्र आदिका उत्पन्न होना ४८
१४–सगरकी उत्पत्ति और चरित्र तथा सगर-पुत्रोंके उद्योगसे समुद्रका 'सागर' होना ५१
१५–सूर्यवंशका वर्णन ५३
१६–श्राद्धकल्प–जनमेजयद्वारा पिताका श्राद्ध तथा पितृ-स्वरूपनिर्णयसम्बन्धी प्रश्न, शन्तनुका अपने श्राद्धमें स्वयं हाथ बढ़ाकर भीष्मसे पिण्ड माँगना ५५
१७–पितृकल्प–भीष्म-मार्कण्डेय-संवाद और मार्कण्डेयजीके साथ सनत्कुमारजीकी बातचीत ... ५९
१८–पितृकल्प–मार्कण्डेय-सनत्कुमार-संवादमें पितरोंके गण, लोक, शक्ति और कन्याओंका वर्णन तथा पितरोंके प्रभावको देखनेके लिये मार्कण्डेयजीको दिव्य दृष्टिकी प्राप्ति ६१

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

१९–पितृकल्प–भरद्वाजके पुत्रोंकी कथा, योगभ्रष्ट पुरुषोंकी गति, योगसिद्धिके अधिकारी पुरुषोंके लक्षण तथा मार्कण्डेय-सनत्कुमार-संवादकी समाप्ति ६७
२०–पितृकल्प–ब्रह्मदत्त और उग्रायुधके वंश तथा पूजनीया चिड़ियाद्वारा शुक्रनीतिका वर्णन ... ६८
२१–पितृकल्प–मार्कण्डेयजीद्वारा श्राद्धकी महिमाका वर्णन, श्राद्धके फलसे कौशिक-पुत्रोंको उत्तम जन्मकी प्राप्ति ७
२२–पितृकल्प–शुचिवाक् पक्षीका स्वतन्त्र आदि तीन पक्षियोंको शाप देना, सुमना पक्षीका अनुग्रहपूर्वक उन्हें शापसे मुक्त करना ... ८
२३–हंसोंका काम्पिल्यनगरमें ब्रह्मदत्त आदिके रूपमें उत्पन्न होना और चार हंसोंका अपने पितासे आज्ञा लेकर मुक्त हो जाना ...
२४–विभ्राजका ब्रह्मदत्तका पुत्र बनकर उत्पन्न होना, रानी संनतिका ब्रह्मदत्तसे रूठना, एक ब्राह्मणके कहे हुए श्लोकोंसे ब्रह्मदत्त, पाञ्चाल्य और कण्डरीकको अपने पूर्वजन्मका ज्ञान होना तथा ब्रह्मदत्त आदिका तप करके मुक्त हो जाना ... ८३
२५–चन्द्रमाकी उत्पत्ति और राजसूय यज्ञ, देवासुर-संग्राम तथा बुधकी उत्पत्ति ... ८६
२६–महाराज पुरूरवाके चरित्र और वंशका वर्णन, राजा पुरूरवाका त्रेताग्निकी रचना करना और गन्धर्वोंके लोकमें जाना ... ...
२७–पुरूरवाके द्वितीय पुत्र अमावसुके वंशका वर्णन, विश्वामित्र और परशुरामकी उत्पत्ति ... ९
२८–राजा रजि और उनके पुत्रोंका चरित्र, इन्द्रका अपने स्थानसे भ्रष्ट होकर पुनः उसपर प्रतिष्ठित होना ... ...
२९–अनेनाके वंशका वर्णन, धन्वन्तरिका काशिराज धन्वके यहाँ पुत्ररूपमें अवतार, दिवोदासके राज्यकालमें भगवान् शिवकी आज्ञासे गणेश्वर निकुम्भके द्वारा वाराणसीको जनशून्य बनानेका प्रयत्न, वहाँ शिव और पार्वतीका निवास, दिवोदासका वाराणसीपर अधिकार और अलर्ककी प्रशंसा ... ...
३०–नहुष एवं ययातिके वंशका वर्णन तथा ययातिचरित्र ...

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

३१–पूरुकी वंशपरम्पराका वर्णन … … १०८
३२–पूरुके वंशके अन्तर्गत ऋचेयुकी वंशपरम्परा—अजमीढवंश, पाञ्चाल एवं सोमकवंश, कौरववंश तथा तुर्वसु, द्रुह्यु और अनुकी संततिका वर्णन … १११
३३–यदुवंशका वर्णन, कार्तवीर्यकी उत्पत्ति एवं चरित्र तथा पाँचों ययाति-पुत्रोंके वंश-वर्णनके श्रवणकी महिमा … … ११७
३४–वृष्णिवंशका वर्णन—अक्रूर, वसुदेव, कुन्ती, सात्यकि, उद्धव, चारुदेष्ण, एकलव्य आदिका परिचय … … १२१
३५–श्रीकृष्णका अवतार लेना, श्रीकृष्णके अन्य भाई-बहिनों और कुटुम्बियोंका वर्णन तथा कालयवनकी उत्पत्ति … … १२४

अध्याय विषय पृष्ठ-

३६–क्रोष्टाके वंशका वर्णन, पुरोहितके गोत्रसे क्षत्रियोंके गोत्रका बदल जाना … …
३७–बभ्रुवंशका वर्णन … …
३८–भजमानके वंशका वर्णन और स्यमन्तकमणिकी कथा … …
३९–स्यमन्तकमणिके कारण प्रसेन, सत्राजित् और शतधन्वाका मारा जाना, बलदेवजीका दुर्योधनको गदा-विद्या सिखाना, अक्रूरजीका श्रीकृष्णको मणि देना और श्रीकृष्णका पुनः अक्रूरको मणि लौटा देना … …
४०–जनमेजयका भगवान्‌के वराह, नृसिंह, परशुराम, श्रीकृष्ण आदि अवतारोंका रहस्य पूछना …

चित्र-सूची

१–भगवान् शिव (तिरंगा) …
–महाराज पृथुके द्वारा गोरूपिणी पृथ्वीका शासन (एकरंगा) …
–उत्तङ्ककी प्रेरणासे कुवलाश्वद्वारा धुन्धु राक्षसका वध (,,) …
महाराज रजिके नायकत्वमें देवताओंद्वारा दानवोंका संहार (,,) …
–रावणको बन्धनसे मुक्त करनेके लिये सहस्रार्जुनसे पुलस्त्यका अनुरोध (,,) … ११

श्री स्वामी [illegible]

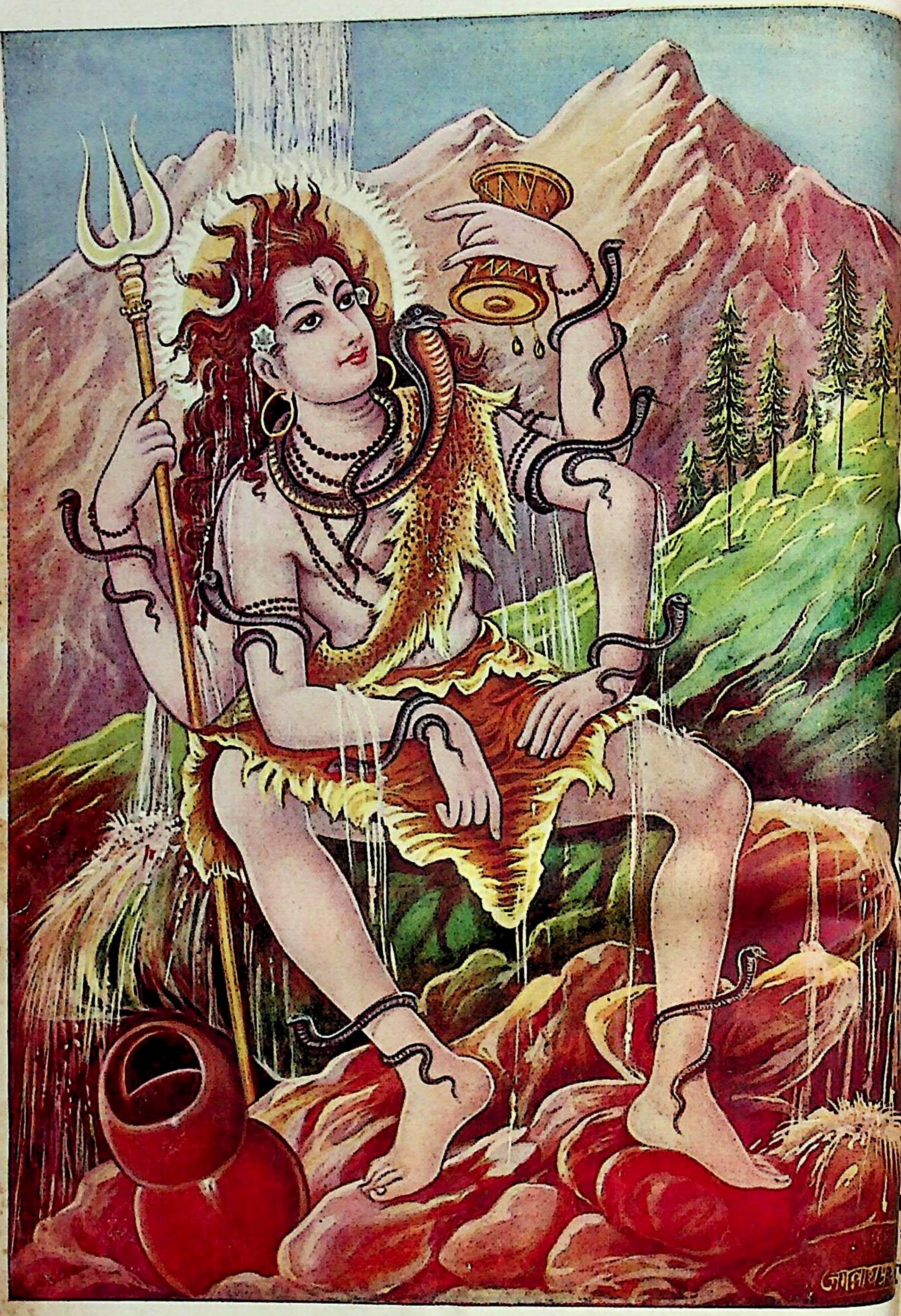

भगवान् शिव

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमहाभारतम्

तस्य खिलभागो हरिवंशः

तत्र हरिवंशपर्व

प्रथमोऽध्यायः

मङ्गलाचरण, शौनक-उग्रश्रवा-संवाद, वृष्णिवंशियोंका विस्तृत चरित्र सुननेके लिये जनमेजयकी प्रार्थना और आदिसृष्टिका वर्णन

यणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥

दरिकाश्रमनिवासी प्रसिद्ध ऋषि श्रीनारायण (अथवा र्यामी नारायण), नर (नारायणसखा अर्जुन अथवा जीव हिरण्यगर्भ) तथा नरोत्तम (इन हिरण्यगर्भ एवं र्यामीसे भी श्रेष्ठ शुद्ध सच्चिदानन्दघन पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण) र (इन नर-नारायण तथा नरोत्तमके तत्त्वको प्रकट करने- देवी सरस्वतीको एवं (देवी सरस्वतीने संसारपर अनुग्रह लिये जिनके शरीरमें प्रवेश किया है, उन) व्यासजीको करके अविद्यारूपी अज्ञानान्धकारको जीतनेवाले स-पुराणादि ग्रन्थोंका पाठ आरम्भ करे ॥ १ ॥

द्वैपायनोष्ठपुटनिःसृतमप्रमेयं
पुण्यं पवित्रमथ पापहरं शिवं च ।
यो भारतं समधिगच्छति वाच्यमानं
किं तस्य पुष्करजलैरभिषेचनेन ॥ २ ॥

सौति कहते हैं—) जो व्यासजीके मुखसे निकले हुए प्रमेय (अतुलनीय), पुण्यदायक, पवित्र, पापहारी कल्याणमय महाभारतको दूसरोंके मुखसे सुनता है, कर तीर्थके जलमें स्नान करनेकी क्या आवश्यकता महाभारत-कथा उससे भी अधिक पावन है) ॥ २ ॥

जयति पराशरसूनुः
सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः ।
यस्यास्यकमलगलितं
वाङ्मयममृतं जगत् पिबति ॥ ३ ॥

माता सत्यवतीके हृदयको आनन्द प्रदान करनेवाले उन पराशर-पुत्र व्यासकी जय हो, जिनके मुखारविन्दसे निकले हुए वाङ्मयरूपी अमृतका सारा संसार पान करता है ॥ ३ ॥

यो गोशतं कनकशृङ्गमयं ददाति
विप्राय वेदविदुषे बहुविश्रुताय ।
पुण्यां च भारतकथां शृणुयाच्च तद्वत्
तुल्यं फलं भवति तस्य च तस्य चैव ॥ ४ ॥

जो गौओंके सींगमें सोना मढ़ाकर वेदवेत्ता एवं बहुज्ञ ब्राह्मणको प्रतिदिन सौ गौएँ दान देता है और जो पुण्यदायिनी महाभारत-कथाका श्रवणमात्र करता है—इन दोनोंमेंसे प्रत्येकको बराबर ही फल मिलता है ॥ ४ ॥

शताश्वमेधस्य यदत्र पुण्यं
चतुःसहस्रस्य शतक्रतोश्च ।
भवेदनन्तं हरिवंशदानात्
प्रकीर्तितं व्यासमहर्षिणा च ॥ ५ ॥

जो चार हजार अक्षय अन्नसत्रोंसे युक्त तथा इन्द्रपदकी प्राप्ति करानेवाले हैं, उन सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करनेसे इस लोकमें जो पुण्य प्राप्त होता है, वही अनन्त पुण्य इस हरिवंश ग्रन्थका दान करनेसे उपलब्ध होता है। यह बात महर्षि व्यासजीने कही है ॥ ५ ॥

यद् वाजपेयेन तु राजसूयाद्
दृष्टं फलं हस्तिरथेन चान्यत् ।
तल्लभ्यते व्यासवचः प्रमाणं
गीतं च वाल्मीकिमहर्षिणा च ॥ ६ ॥

वाजपेय और राजसूय यज्ञोंके अनुष्ठानसे तथा हाथी जुते हुए रथके दानसे जिस फलकी प्राप्ति देखी या बतायी गयी है, वही फल हरिवंश-ग्रन्थका दान करनेसे मिल जाता है। इसमें व्यासजीका वचन प्रमाण है तथा महर्षि वाल्मीकिने भी इसी माहात्म्यका गान किया है ॥ ६ ॥

यो हरिवंशं लेखयति
यथाविधिना महातपाः सपदि ।
स जयति हरिपदकमलं
मधुपो हि यथा रसेन लुब्धः ॥ ७ ॥

जो महातपस्वी पुरुष शास्त्रीय विधिके अनुसार हरिवंशको लिखता या लिखवाता है, वह रसपर लुभाये हुए भँवरेके समान भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंपर पहुँच जाता है ॥ ७ ॥

पितामहाद्यं प्रवदन्ति षष्ठं
महर्षिमक्षय्यविभूतियुक्तम् ।
नारायणस्यांशजमेकपुत्रं
द्वैपायनं वेद महानिधानम् ॥ ८ ॥

ब्रह्माजीके आदि कारण श्रीनारायणको जिनसे ऊपरकी छठी* पीढ़ीका पुरुष बताते हैं, जो अक्षय विभूतियोंसे युक्त तथा नारायणके अंशसे प्रकट हैं, एकमात्र शुकदेव ही जिनके पुत्र हैं (अथवा जो अपने पिता पराशरके एक ही पुत्र हैं), वैदिक ज्ञानकी महानिधिस्वरूप उन महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासकी मैं उपासना करता हूँ ॥ ८ ॥

आद्यं पुरुषमीशानं पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।
ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् ॥ ९ ॥
असच्च सदसच्चैव यद्विश्वं सदसत्परम् ।
परावराणां स्रष्टारं पुराणं परमव्ययम् ॥ १० ॥
मङ्गल्यं मङ्गलं विष्णुं वरेण्यमनघं शुचिम् ।
नमस्कृत्य हृषीकेशं चराचरगुरुं हरिम् ॥ ११ ॥
नैमिषारण्ये कुलपतिः शौनकस्तु महामुनिः ।
सौतिं पप्रच्छ धर्मात्मा सर्वशास्त्रविशारदः ॥ १२ ॥

नैमिषारण्यकी बात है, सम्पूर्ण शास्त्रोंके विशेषज्ञ, धर्मात्मा एवं कुलपति† महामुनि शौनकने सबके आदि कारण, अन्तर्यामी पुरुष, पुरुहूत (बहुत-से यजमानोंद्वारा दी गयी आहुतिको ग्रहण करनेवाले), पुरुष्टुत (बहुसंख्यक उपासकोंद्वारा स्तुत्य), ऋत (सत्यस्वरूप), एकाक्षर (प्रणवमय अथवा एक, अविनाशी), ब्रह्म (परमात्मा), व्यक्ताव्यक्तस्वरूप, सनातन, असत् (कार्यरूप), (कारण और कार्यरूप), अखिल विश्वमय, सत् और दोनोंसे पर (विलक्षण), कारण और कार्य दोनोंके पुरातन, सर्वोत्कृष्ट, अविकारी, मङ्गलकारी, मङ्ग सर्वव्यापी, सबके द्वारा वरणीय, पापरहित, परम इन्द्रियोंके प्रेरक तथा समस्त चराचर जगत्के श्रीहरिको प्रणाम करके लोमहर्षण सूतके पुत्र उग्र इस प्रकार पूछा ॥ ९–१२ ॥

शौनक उवाच

सौते सुमहदाख्यानं भवता परिकीर्तितम् ।
भारतानां च सर्वेषां पार्थिवानां तथैव च ॥
देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
दैत्यानामथ सिद्धानां गुह्यकानां तथैव च ॥

शौनकजीने कहा—सूतनन्दन ! आपने भरत अन्य सब राजाओं, देवताओं, दानवों, गन्धर्वों, नागों, दैत्यों, सिद्धों तथा गुह्यकोंसे सम्बन्ध रखनेवाला यह बड़ा उपाख्यान (महाभारत) कह सुनाया ॥ १३-१४

अत्यद्भुतानि कर्माणि विक्रमा धर्मनिश्चयाः ।
विचित्राश्च कथायोगा जन्म चाग्र्यमनुत्तमम् ॥
कथितं भवता पुण्यं पुराणं श्लक्ष्णया गिरा ।
मनःकर्णसुखं सौते प्रीणात्यमृतसम्मितम् ॥

आपने (ऋषि-महर्षियोंके) अद्भुत कर्म, (शूर बल-विक्रम, धर्मतत्त्वके निर्णय, विचित्र-विचित्र कथ तथा (द्रोण आदिके) श्रेष्ठ एवं परम उत्तम जन्म-वृत्तान्त प्राचीन एवं पुण्यप्रद विषयोंका अपनी मधुर वाणी किया है। उग्रश्रवाजी ! मन और कानोंको सुख देने प्रसङ्ग मुझे अमृतके समान तृप्ति प्रदान करता है ॥

तत्र जन्म कुरूणां वै त्वयोक्तं लौमहर्षणे ।
न तु वृष्ण्यन्धकानां च तद् भवान् वक्तुमर्हति ॥

लोमहर्षणकुमार ! आपने महाभारत सुनाते कुरुवंशियोंके ही जन्मका विशेषरूपसे वर्णन किया है तथा अन्धकवंशके वीरोंके जन्मका नहीं; अतः इन सबके जन्म-कर्मका भी वर्णन कीजिये ॥ १७ ॥

सौतिरुवाच

जनमेजयेन यत् पृष्टः शिष्यो व्यासस्य धर्मवित्
तत् तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि वृष्णीनां वंशमादितः ।

सूत-पुत्र उग्रश्रवाने कहा—शौनकजी ! व्यासजीके धर्मवेत्ता शिष्य वैशम्पायनजीसे जो कुछ उसीके अनुसार मैं आरम्भसे ही वृष्णियोंके वंश वर्णन करता हूँ ॥ १८ ॥

---

* व्यास, पराशर, शक्ति, वसिष्ठ, ब्रह्मा तथा भगवान् नारायण—इस प्रकार गणना करनेपर श्रीनारायणदेव व्यासजीसे छठी पीढ़ी ऊपरके पूर्वज ज्ञात होते हैं।

† जो ग्यारह हजार तपस्वियोंको अन्न आदि देकर पालन करता है, वह वेद-वेदाङ्गका पारगामी ऋषि कुलपति कहलाता है।

श्रुत्वेतिहासं कात्स्न्र्येन भारतानां स भारतः ।
जनमेजयो महाप्राज्ञो वैशम्पायनमब्रवीत् ॥ १९ ॥

भरतवंशी राजाओंके इतिहासको पूर्णरूपसे सुनकर भरतनन्दन महाबुद्धिमान् जनमेजयने वैशम्पायनजीसे कहा ॥

जनमेजय उवाच

महाभारतमाख्यानं बह्वर्थं श्रुतिविस्तरम् ।
कथितं भवता पूर्वं विस्तरेण मया श्रुतम् ॥ २०॥

जनमेजयने कहा—मुने ! आपने पहले वेदके अर्थको स्पष्ट करके विस्तृतरूपमें वर्णन करनेवाली, (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि) अनेक अर्थोंसे भरी हुई जो महाभारतकी कथा विस्तारपूर्वक कही, उसको मैंने सुन लिया ॥ २० ॥

तत्र शूराः समाख्याता बहवः पुरुषर्षभाः ।
नामभिः कर्मभिश्चैव वृष्ण्यन्धकमहारथाः ॥ २१ ॥

उस महाभारत-कथामें आपने बहुत-से पुरुषश्रेष्ठ शूरोंका वर्णन किया तथा बहुत-से वृष्णि और अन्धकवंशी महारथियोंके नाम और कर्म भी बताये ॥ २१ ॥

तेषां कर्मावदातानि त्वयोक्तानि द्विजोत्तम ।
तत्र तत्र समासेन विस्तरेणैव मे प्रभो ॥ २२ ॥

द्विजोत्तम ! उनके उत्तम कर्मोंका भी आपने उन-उन स्थलोंमें संक्षिप्तरूपसे वर्णन किया है । प्रभो ! अब आप उनको विस्तारपूर्वक सुनाइये ॥ २२ ॥

न च मे तृप्तिरस्तीह कथ्यमाने पुरातने ।
एकश्चैव मतो राशिर्वृष्णयः पाण्डवास्तथा ॥ २३ ॥

आपने पहले जो संक्षिप्तरूपसे वर्णन किया, उससे मेरी तृप्ति नहीं हुई है । ये वृष्णि और पाण्डव एक ही राशि (कुटुम्ब) के माने जाते हैं ॥ २३ ॥

भवांश्च वंशकुशलस्तेषां प्रत्यक्षदर्शिवान् ।
कथयस्व कुलं तेषां विस्तरेण तपोधन ॥ २४ ॥

तपोधन ! आप वंशोंकी कथा कहनेमें चतुर हैं और उनकी सब बातोंको आपने प्रत्यक्ष देखा है । अतएव उनके कुलका आप विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ २४ ॥

यस्य यस्यान्वये ये ये तांस्तानिच्छामि वेदितुम् ।
स त्वं सर्वमशेषेण कथयस्व महामुने ।
तेषां पूर्वविसृष्टिं च विचिन्त्येमां प्रजापतेः ॥ २५ ॥

महामुने ! जिस-जिसके कुलमें जो-जो उत्पन्न हुए हों, उन सबको मैं जानना चाहता हूँ; अतएव प्रजापतिसे आरम्भ करके पूर्वकालमें उनकी जिस प्रकार सृष्टि हुई है, उस सबका विचार करके आप मुझे पूर्णरूपसे सब कथा सुनाइये ॥ २५ ॥

सौतिरुवाच

सत्कृत्य परिपृष्टस्तु स महात्मा महातपाः ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च कथयामास तां कथाम् ॥ २६ ॥

उग्रश्रवाने कहा—जब सत्कारपूर्वक उनसे यह बात पूछी गयी, तब वे महातपस्वी महात्मा वैशम्पायन क्रमशः और विस्तारके साथ उस वंशावलिकी कथा कहने लगे ॥

वैशम्पायन उवाच

शृणु राजन् कथां दिव्यां पुण्यां पापप्रमोचनीम् ।
कथ्यमानां मया चित्रां बह्वर्थां श्रुतिसम्मिताम् ॥ २७ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! सुनो, यह (वृष्णिवंशियोंके जन्मकी) कथा अलौकिक, पुण्यमयी और पापोंसे मुक्त करनेवाली है, इसमें (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि) अनेक पुरुषार्थोंका उपदेश है, इस वेदके समान माननीय तथा आश्चर्यमयी कथाका मैं आपसे वर्णन करता हूँ ॥ २७॥

यश्चेमां धारयेद् वापि शृणुयाद् वाऽप्यभीक्ष्णशः ।
स्ववंशधारणं कृत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥ २८ ॥

जो इस कथाको अपने हृदयमें धारण करता है या इसको पुस्तकके रूपमें अपने घरमें स्थापित करता है अथवा बार-बार इसको सुनता है, वह (इस लोकमें) अपने वंशको स्थापित कर अन्तमें स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है ॥ २८ ॥

अव्यक्तं कारणं यत् तन्नित्यं सदसदात्मकम् ।
प्रधानं पुरुषं तस्मान्निर्ममे विश्वमीश्वरम् ॥ २९ ॥

जो नित्य, सदसत्स्वरूप तथा कारणभूत अव्यक्त प्रकृति है, उसीको 'प्रधान' कहते हैं । सर्वशक्तिमान् पुरुषने उसीसे इस विश्वका निर्माण किया है ॥ २९ ॥

तं वै विद्धि महाराज ब्रह्माणममितौजसम् ।
स्रष्टारं सर्वभूतानां नारायणपरायणम् ॥ ३० ॥

महाराज ! तुम अमित तेजस्वी ब्रह्माजीको ही पुरुष समझो । वे समस्त प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले तथा भगवान् नारायणके आश्रित हैं ॥ ३० ॥

अहङ्कारस्तु महतस्तस्माद् भूतानि जज्ञिरे ।
भूतभेदाश्च भूतेभ्य इति सर्गः सनातनः ॥ ३१ ॥

(प्रकृतिसे महत्तत्त्व,) महत्तत्त्वसे अहंकार तथा अहंकारसे सब सूक्ष्म भूत उत्पन्न हुए । भूतोंके जो स्थूल भेद हैं, वे भी उन सूक्ष्म भूतोंसे ही प्रकट हुए हैं । यह (अनादिकालसे प्रवाहरूपसे चला आनेवाला) सनातन सर्ग है ॥ ३१ ॥

विस्तरावयवं चैव यथाप्रश्नं यथाश्रुति ।
कीर्त्यमानं शृणु मया पूर्वेषां कीर्तिवर्धनम् ॥ ३२ ॥

अब जैसी मेरी बुद्धि है और जैसा मैंने गुरुजनोंसे सुन

रखा है, उसके अनुसार मैं भूतसर्गका विस्तारपूर्वक वर्णन आरम्भ करता हूँ, सुनो। यह प्रसंग पूर्वजोंकी कीर्तिका विस्तार करनेवाला है ॥ ३२ ॥

धन्यं यशस्यं शत्रुघ्नं स्वर्ग्यमायुःप्रवर्धनम्।
कीर्तनं स्थिरकीर्तीनां सर्वेषां पुण्यकर्मणाम् ॥ ३३ ॥

स्थिर कीर्तिवाले उन समस्त पुण्यकर्मा पूर्वजोंके यशका कीर्तन धन और यशकी वृद्धि करनेवाला, शत्रुओंका नाशक, स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला तथा आयु बढ़ानेवाला है ॥ ३३ ॥

तस्मात् कल्पाय ते कल्पः समग्रं शुचये शुचिः।
आ वृष्णिवंशाद् वक्ष्यामि भूतसर्गमनुत्तमम् ॥ ३४ ॥

तुम इस विषयको हृदयंगम करनेमें समर्थ और शुद्ध हो और मैं इसका वर्णन करनेमें समर्थ हूँ। अतः पवित्र होकर आरम्भसे वृष्णिवंशपर्यन्त परम उत्तम भूतसर्गका वर्णन करूँगा ॥ ३४ ॥

ततः स्वयम्भूर्भगवान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत् ॥ ३५ ॥

तदनन्तर स्वयम्भू भगवान् नारायणने नाना प्रकारकी प्रजा उत्पन्न करनेकी इच्छासे सबसे पहले जलकी ही सृष्टि की। फिर उस जलमें अपनी शक्तिका आधान किया ॥ ३५ ॥

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ ३६ ॥

जलका दूसरा नाम है नार, क्योंकि उसकी उत्पत्ति भगवान् नरसे हुई है। वह जल पूर्वकालमें भगवान्‌का अयन हुआ, इसलिये वे 'नारायण' कहलाते हैं ॥ ३६ ॥

हिरण्यवर्णमभवत् तदण्डमुदकेशयम्।
तत्र जज्ञे स्वयं ब्रह्मा स्वयम्भूरिति नः श्रुतम् ॥ ३७ ॥

भगवान्‌ने जलमें जो अपनी शक्तिका आधान किया था, उससे एक बहुत विशाल सुवर्णमय अण्ड प्रकट हुआ, वह दीर्घकालतक जलमें ही स्थित था। उसीमें स्वयम्भू ब्रह्माजी उत्पन्न हुए—ऐसा हमने सुना है ॥ ३७ ॥

हिरण्यगर्भो भगवानुषित्वा परिवत्सरम्।
तदण्डमकरोद् द्वैधं दिवं भुवमथापि च ॥ ३८ ॥

भगवान् हिरण्यगर्भने उस अण्डमें एक वर्षतक निवास करके उसके दो टुकड़े कर दिये। फिर एक टुकड़ेसे द्युलोक बनाया और दूसरेसे भूलोक ॥ ३८ ॥

तयोः शकलयोर्मध्ये आकाशमसृजत् प्रभुः।
अप्सु पारिप्लवां पृथ्वीं दिशश्च दशधा दधे ॥ ३९ ॥

उन दोनों टुकड़ोंके बीचमें भगवान् ब्रह्माने आकाश (अवकाश) की सृष्टि की। जलके ऊपर तैरती हुई पृथ्वीको स्थापित किया। फिर दसों दिशाएँ निश्चित कीं ॥ ३९ ॥

तत्र कालं मनो वाचं कामं क्रोधमथो रतिम्।
ससर्ज सृष्टिं तद्रूपां स्रष्टुमिच्छन् प्रजापतीन् ॥ ४

उस ब्रह्माण्डके भीतर ही उन्होंने काल, मन, वाणी, क्रोध तथा रति आदि भावोंकी सृष्टि की। फिर इन अनुरूप सृष्टि करनेकी इच्छावाले ब्रह्माजीने निम्नाङ्कित प्रजापतियोंको उत्पन्न किया ॥ ४० ॥

मरीचिमत्र्यङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
वसिष्ठं च महातेजाः सोऽसृजत् सप्त मानसान् ॥ ४

उनके नाम इस प्रकार हैं—मरीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ। महातेजस्वी ब्रह्माने सातोंकी अपने मन (संकल्प)से सृष्टि की (अतः ये मानस पुत्र हैं) ॥ ४१ ॥

सप्त ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः।
नारायणात्मकानां वै सप्तानां ब्रह्मजन्मनाम् ॥ ४
ततोऽसृजत् पुनर्ब्रह्मा रुद्रं रोषात्मसम्भवम्।
सनत्कुमारं च विभुं पूर्वेषामपि पूर्वजम् ॥ ४३

पुराणोंमें ये सात ब्रह्मा निश्चित किये गये हैं। नारायणमें मन लगाये रहनेवाले इन सात ब्राह्मणोंकी अनन्तर ब्रह्माजीने अपने रोषसे रुद्रको प्रकट फिर पूर्वजोंके भी पूर्वज भगवान् सनत्कुमार उत्पन्न किया ॥ ४२-४३ ॥

सप्तैते जनयन्ति स्म प्रजा रुद्रश्च भारत।
स्कन्दः सनत्कुमारश्च तेजः संक्षिप्य तिष्ठतः ॥ ४४

भरतनन्दन! ये मरीचि आदि सात ऋषि तथा प्रजाकी सृष्टि करने लगे। स्कन्द और सनत्कुमार— अपने तेजका संवरण करके रहते हैं ॥ ४४ ॥

तेषां सप्त महावंशा दिव्या देवगणान्विताः।
क्रियावन्तः प्रजावन्तो महर्षिभिरलंकृताः ॥ ४

उक्त सात महर्षियोंके सात बड़े-बड़े दिव्य वंश देवता भी इन्हीं वंशोंके अन्तर्गत हैं। उन सातों वंशोंके कर्मनिष्ठ एवं संतानवान् हैं। उन वंशोंको बड़े-बड़े सुशोभित किया है ॥ ४५ ॥

विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च।
वयांसि च ससर्जादौ पर्जन्यं च ससर्ज ह ॥ ४

इसके बाद ब्रह्माजीने पहले विद्युत्, वज्र, मेघ, (सीधा) इन्द्र-धनुष, पक्षिसमुदाय तथा पर्जन्यकी सृष्टि की ॥

ऋचो यजूंषि सामानि निर्ममे यज्ञसिद्धये।
मुखाद् देवानजनयत् पितॄंश्चेशोऽपि वक्षसः ॥ ४

फिर ब्रह्माजीने यज्ञकी सिद्धिके लिये (नित्य ऋक्, यजुः और सामका आविष्कार किया।

ऐश्वर्यशील ब्रह्माने अपने मुखसे देवताओंको और वक्षःस्थलसे पितरोंको प्रकट किया ॥ ४७ ॥

प्रजनाच्च मनुष्यान् वै जघनान्निर्ममेऽसुरान् ।
साध्यानजनयद् देवानित्येवमनुशुश्रुम ॥ ४८ ॥

फिर उन्होंने उपस्थेन्द्रियसे मनुष्योंको और जंघाओंसे असुरोंको उत्पन्न किया । तदनन्तर उन्होंने साध्य नामक प्राचीन देवताओंको प्रकट किया, ऐसा हमने सुना है ॥ ४८ ॥

उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ।
आपवस्य प्रजासर्गं सृजतो हि प्रजापतेः ॥ ४९ ॥

इस प्रकार प्रजाकी सृष्टि रचते हुए उन आपव (अर्थात् जलमें प्रकट हुए) प्रजापति ब्रह्माके अङ्गोंमेंसे उच्च तथा साधारण श्रेणीके बहुत-से प्राणी प्रकट हुए ॥ ४९ ॥

सृज्यमानाः प्रजा नैव विवर्धन्ते यदा तदा ।
द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत् ॥ ५० ॥
र्धेन नारी तस्यां स ससृजे विविधाः प्रजाः ।
दिवं च पृथिवीं चैव महिम्ना व्याप्य तिष्ठतः ॥ ५१ ॥

इस प्रकार वे आपव-प्रजापति (मानसिक) प्रजाओंको च रहे थे; परंतु वे प्रजाएँ जब (अधिक) न बढ़ीं, तब अपने शरीरके दो भाग कर, एक भागसे पुरुष र दूसरे भागसे नारी हो गये और (उस नारीने गाय, ड़ी आदि जिस-जिस रूपको धारण किया, पुरुषने उसी तिके बैल, घोड़े आदिका रूप धारण किया,) इस प्रकार न्होंने उस नारीमें अनेक प्रकारकी मैथुनी-प्रजाओंको रचा । इस प्रकार वे पुरुष और नारी अपनी महिमासे स्वर्ग और पृथ्वीपर व्याप्त हो गये ॥ ५०-५१ ॥

विराजमसृजद् विष्णुः सोऽसृजत् पुरुषं विराट् ।
पुरुषं तं मनुं विद्धि तद् वै मन्वन्तरं स्मृतम् ॥ ५२ ॥

भगवान् विष्णुने विराट् पुरुष (आपव प्रजापति या ब्रह्मा) की सृष्टि की थी और विराट्ने पुरुषकी । उस वैराज पुरुषको तुम मनु समझो (और उनकी स्त्रीको शतरूपा) । मनुके समयको ही मन्वन्तरकाल कहा गया है ॥ ५२ ॥

द्वितीयमापवस्यैतन्मनोरन्तरमुच्यते ।
स वैराजः प्रजासर्गं ससर्ज पुरुषः प्रभुः ।
नारायणविसर्गः स प्रजास्तस्याप्ययोनिजाः ॥ ५३ ॥

आपवपुत्र मनुकी जो यह दूसरी योनिज सृष्टि है, यहींसे मन्वन्तरका आरम्भ बताया जाता है । इस प्रकार शक्तिशाली वैराज पुरुष (मनु) ने प्रजासर्गकी सृष्टि की । आपव प्रजापतिको नारायणसर्ग कहा गया है (क्योंकि वे नारायणसे ही प्रकट हुए हैं) । उनकी अयोनिजा प्रजा प्रथम सर्ग है (और मनुकी योनिजा प्रजा द्वितीय सर्ग) ॥ ५३ ॥

आयुष्मान् कीर्तिमान् धन्यः प्रजावाञ्छुतवांस्तथा ।
आदिसर्गं विदित्वेमं यथेष्टां गतिमाप्नुयात् ॥ ५४ ॥

जो इस आदि सृष्टिको इस प्रकार जान लेता है, वह आयुष्मान्, कीर्तिमान्, धन्यवादका पात्र, संतानवान् और विद्वान् होता है, उसे इच्छानुसार उत्तम गति प्राप्त होती है ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि आदिसर्गकथने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें आदिसृष्टिका वर्णनविषयक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

स्वायम्भुव मनुके वंश और दक्ष प्रजापतिकी उत्पत्तिका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

सृष्टासु प्रजास्वेवमापवो वै प्रजापतिः ।
वै पुरुषः पत्नीं शतरूपामयोनिजाम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय ! इस प्रकार योनिज–मानसिक) प्रजाओंकी रचना हो जानेपर वह आपव पति (ब्रह्मा) ही (अपनी देहके दो भाग करके एक भागसे नामक) पुरुष बन गये और उन्होंने देहके दूसरे भागसे हुई अयोनिजा शतरूपाको पत्नीरूपमें स्वीकार किया ॥

वस्य महिम्ना तु दिवमावृत्य तिष्ठतः ।
गैव महाराज शतरूपा व्यजायत ॥ २ ॥

महाराज ! अपनी महिमासे द्युलोकको व्याप्त करके स्थित नुके धर्मसे ही उनकी पत्नी शतरूपाकी उत्पत्ति हुई ॥२॥

सा तु वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ।
भर्तारं दीप्ततपसं पुरुषं प्रत्यपद्यत ॥ ३ ॥

वह शतरूपा दस हजार वर्षोंतक परम दुष्कर तप करके (संतानकी कामनासे) तपसे चमकते हुए अपने स्वामी वैराज पुरुषके पास आयीं ॥ ३ ॥

स वै स्वायम्भुवस्तात पुरुषो मनुरुच्यते ।
तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥ ४ ॥

तात ! वे पुरुष ही स्वायम्भुव मनु कहे जाते हैं । उन (के अधिकार) का (सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुगरूप) इकहत्तर चतुर्युगोंका समय इस संसारमें मन्वन्तर कहलाता है (यह मन्वन्तर संध्या और संध्यांशके कारण इकहत्तर चतुर्युगोंसे भी कुछ अधिक समयका होता है ।) ॥ ४ ॥

वैराजात् पुरुषाद् वीरं शतरूपा व्यजायत ।
प्रियव्रतोत्तानपादौ वीरात् काम्या व्यजायत ॥ ५ ॥

वैराज पुरुष मनुसे उनकी पत्नी शतरूपाने वीर नामक पुत्रको जन्म दिया और वीरसे उनकी पत्नी काम्याने प्रियव्रत तथा उत्तानपादको उत्पन्न किया ॥ ५ ॥

काम्या नाम महाबाहो कर्दमस्य प्रजापतेः ।
काम्यापुत्रास्तु चत्वारः सम्राट् कुक्षिर्विराट् प्रभुः ।
प्रियव्रतं समासाद्य पतिं सा सुषुवे सुतान् ॥ ६ ॥

महाबाहो ! कर्दम प्रजापतिकी एक काम्या नामवाली पुत्री थी, उस काम्याके सम्राट्, कुक्षि, विराट् और प्रभु नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। उस काम्याने प्रियव्रतको पतिरूपमें पाकर इन पुत्रोंको उत्पन्न किया था ॥ ६ ॥

उत्तानपादं जग्राह पुत्रमत्रिः प्रजापतिः ।
उत्तानपादाच्चतुरः सूनृताजनयत् सुतान् ॥ ७ ॥

प्रजापति अत्रिने उत्तानपादको पुत्ररूपमें ग्रहण कर लिया। उत्तानपादसे उनकी पत्नी सूनृताने चार पुत्रोंको उत्पन्न किया॥

धर्मस्य कन्या सुश्रोणी सूनृता नाम विश्रुता ।
उत्पन्ना वाजिमेधेन ध्रुवस्य जननी शुभा ॥ ८ ॥

धर्मकी एक सूनृता नामसे प्रसिद्ध सुन्दर कटिवाली पुत्री थी, वह धर्मके यहाँ अश्वमेध यज्ञसे प्रकट हुई थी, यही कल्याणकारिणी सूनृता ध्रुवकी माता थी ॥ ८ ॥

ध्रुवं च कीर्तिमन्तं च शिवं शान्तमयस्पतिम् ।
उत्तानपादोऽजनयत् सूनृतायां प्रजापतिः ॥ ९ ॥

प्रजापति उत्तानपादने सूनृता नामवाली पत्नीमें ध्रुव, कीर्तिमान्, शान्तस्वरूप शिव और अयस्पति नामक पुत्रको उत्पन्न किया था ॥ ९ ॥

ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि दिव्यानि भारत ।
तपस्तेपे महाराज प्रार्थयन् सुमहद् यशः ॥ १० ॥

भरतवंशी महाराज ! ध्रुवने जिनका नाम महायश* है, उन भगवान् नारायणको पानेकी इच्छासे तीन हजार दिव्य† वर्षोंतक तप किया था ॥ १० ॥

तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतः स्थानमप्रतिमं भुवि ।
अचलं चैव पुरतः सप्तर्षीणां प्रजापतिः ॥ ११ ॥

प्रजापालक भगवान् ब्रह्मा (विष्णु) ने ध्रुवपर प्रसन्न होकर उनको सप्तर्षियोंके सम्मुख एक अलौकिक, अचल स्थान प्रदान किया ॥ ११ ॥

तस्यातिमात्रामृद्धिं च महिमानं निरीक्ष्य च ।
देवासुराणामाचार्यः श्लोकमप्युशना जगौ ॥ १२ ॥

ध्रुवकी बड़ी भारी समृद्धि और महिमाको देखकर दे और असुरोंके आचार्य शुक्राचार्यने इस श्लोकका गान किया

अहोऽस्य तपसो वीर्यमहो श्रुतमहो बलम् ।
यद्देनं पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः ॥

'इन ध्रुवके तपोबलको देखकर आश्चर्य होता है, शास्त्रज्ञान भी विस्मयविमुग्ध कर देता है और इनकी अद्भुत है, तभी तो ये सप्तर्षि भी इनको अपने स्थापित करके स्थित हैं' ॥ १३ ॥

तस्माच्छिलष्टिं च भव्यं च ध्रुवाच्छम्भुर्व्यजायत ।
श्लिष्टेराधत्त सुच्छाया पञ्च पुत्रानकल्मषान् ॥
रिपुं रिपुञ्जयं पुण्यं वृकलं वृकतेजसम् ।
रिपोराधत्त बृहती चाक्षुषं सर्वतेजसम् ॥

उन ध्रुवसे शम्भु नामवाली स्त्रीने श्लिष्टि और भव्य पुत्रोंको उत्पन्न किया। श्लिष्टिसे सुच्छाया (नामकी पत्नी रिपु, रिपुञ्जय, पुण्य, वृकल और वृकतेजा—पाँच पुत्रोंको उत्पन्न किया। रिपुसे उनकी बृहती नामकी सब देवताओंके तेजसे परिपूर्ण चाक्षुष नामक पुत्रको किया ॥ १४-१५ ॥

अजीजनत् पुष्करिण्यां वीरण्यां चाक्षुषो मनुम् ।
प्रजापतेरात्मजायामरण्यस्य महात्मनः ॥
मनोरजायन्त दश नड्वलायां महौजसः ।
कन्यायामभवञ्छ्रेष्ठा वैराजस्य प्रजापतेः ॥

चाक्षुषने वीरणकी पुत्री पुष्करिणीके गर्भसे मनु नाम उत्पन्न किया। वैराज प्रजापतिके वंशमें उत्पन्न हुए तेजस्वी मनुसे महात्मा अरण्यकी पुत्री नड्वला पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १६-१७ ॥

ऊरुः पुरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवान् कविः
अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव
अभिमन्युश्च दशमो नड्वलायाः सुताः स्मृत
ऊरोरजनयत् पुत्रान् षडाग्नेयी महाप्रभान्
अङ्गं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमङ्गिरसं गयम्

ऊरु, पुरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवान्, ष्टुत्, अतिरात्र और सुद्युम्न—ये नौ और दसवाँ ये नड्वलाके पुत्र कहे जाते हैं। ऊरुसे अग्निकी सुमना, ख्याति, क्रतु, अङ्गिरा और गय नामक वाले छः पुत्रोंको उत्पन्न किया था ॥ १८-१९

---

* यस्य नाम महद् यशः । (महानारायणोपनिषद् १ । १०)

† मनुष्योंका एक वर्ष देवताओंका एक दिव्य दिन होता है।

* मैत्रायणीय-उपनिषद्में कहा है कि इन्द्रके लिये और असुरोंका क्षय करनेके लिये बृहस्पति ही शुक्रके रूपमें प्रकट हो गये और उन्होंने अविद्याको को मोहमें डाल रखा है।

अङ्गात् सुनीथापत्यं वै वेनमेकमजायत ।
अपचारात् तु वेनस्य प्रकोपः सुमहानभूत् ॥ २० ॥

अङ्गसे (मृत्युकी पुत्री) सुनीथाने वेन नामक एक पुत्रको उत्पन्न किया था। वेन अत्याचारी था (देवता, धर्म आदिसे द्रोह रखता था), अतएव ऋषियोंको उसपर बड़ा क्रोध आया ॥२०॥

प्रजार्थमृषयो यस्य ममन्थुर्दक्षिणं करम् ।
वेनस्य पाणौ मथिते बभूव मुनिभिः पृथुः ॥ २१ ॥

(ऋषियोंके कोपसे नष्ट हुए) वेनके दाहिने हाथको मुनियोंने संतान उत्पन्न करनेके लिये मथा, तब मुनियोंके मथे हुए वेनके दाहिने हाथसे पृथुकी उत्पत्ति हुई ॥ २१ ॥

तं दृष्ट्वा ऋषयः प्राहुरेष वै मुदिताः प्रजाः ।
करिष्यति महातेजा यशश्च प्राप्स्यते महत् ॥ २२ ॥

ऋषियोंने उसको देखकर कहा—'यह पृथु प्रजाओंको प्रसन्न करेगा और इस महातेजस्वीको उत्तम यशकी प्राप्ति होगी' ॥ २२ ॥

स धन्वी कवची खड्गी तेजसा निर्दहन्निव ।
पृथुर्वैन्यस्तदा चेमां ररक्ष क्षत्रपूर्वजः ॥ २३ ॥

तब वे क्षत्रिय-जातिमें प्रथम उत्पन्न हुए वेनके पुत्र पृथु धनुष, कवच और तलवार धारण कर अपने तेजसे (डाकू, अधर्मी आदि दुष्ट पुरुषोंको) भस्म-सा करते हुए इस पृथ्वीकी रक्षा करने लगे ॥ २३ ॥

राजसूयाभिषिक्तानामाद्यः स वसुधाधिपः ।
तस्माच्चैव समुत्पन्नौ निपुणौ सूतमागधौ ॥ २४ ॥

पृथु राजसूय यज्ञमें अभिषिक्त होनेवाले राजाओंमें प्रथम भूपति हैं। (उन्हींके यज्ञमें अग्निसे राजाओंकी स्तुति करनेमें) चतुर सूत तथा (राजाओंकी वंशावली पढ़नेमें) प्रवीण मागध प्रकट हुए थे ॥ २४ ॥

तेनेयं गौर्महाराज दुग्धा सस्यानि भारत ।
प्रजानां वृत्तिकामेन देवैः सर्षिगणैः सह ॥ २५ ॥

भरतवंशी महाराज ! प्रजाओंको आजीविका देनेकी इच्छावाले पृथुने देवता और ऋषियोंकी मण्डलियोंको साथमें ले गौरूपिणी पृथ्वीसे अन्न (आदि सकल वस्तुओं) को दुहा था ॥

पितृभिर्दानवैश्चैव गन्धर्वैः साप्सरोगणैः ।
सर्पैः पुण्यजनैश्चैव वीरुद्भिः पर्वतैस्तथा ॥ २६ ॥
तेषु तेषु च पात्रेषु दुह्यमाना वसुन्धरा ।
प्रादाद् यथेप्सितं क्षीरं तेन प्राणानधारयन् ॥ २७ ॥

(पृथुके समय) पितर, दानव, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, यक्ष, वृक्ष और पर्वतोंने अपने-अपने पात्रों*में दुहा था। पृथ्वीने उनको इच्छानुसार दूध दिया था और उस दूधसे उन सबने अपने प्राणोंको धारण किया था ॥ २६-२७ ॥

पृथुपुत्रौ तु धर्मज्ञौ जज्ञातेऽन्तर्द्धिपालितौ ।
शिखण्डिनी हविर्धानमन्तर्धानाद् व्यजायत ॥ २८ ॥

पृथुके अन्तर्धान और पालित—ये दो धर्मज्ञ पुत्र हुए और अन्तर्धानसे शिखण्डिनीने हविर्धान नामक पुत्रको उत्पन्न किया ॥ २८ ॥

हविर्धानात् षडाग्नेयी धिषणाजनयत् सुतान् ।
प्राचीनबर्हिषं शुक्लं गयं कृष्णं व्रजाजिनौ ॥ २९ ॥

हविर्धानसे अग्निकी पुत्री धिषणाने प्राचीनबर्हि, शुक्ल, गय, कृष्ण, व्रज और अजिन नामवाले छः पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ २९ ॥

प्राचीनबर्हिर्भगवान् महानासीत् प्रजापतिः ।
हविर्धानान्महाराज येन संवर्द्धिताः प्रजाः ॥ ३० ॥

महाराज ! भगवान्* प्राचीनबर्हि, जिन्होंने प्रजाओंका पालन एवं संवर्धन किया था, अपने पिता हविर्धानसे बढ़कर प्रजापालक हुए ॥ ३० ॥

प्राचीनाग्राः कुशास्तस्य पृथिव्यां जनमेजय ।
प्राचीनबर्हिर्भगवान् पृथिवीतलचारिणः ॥ ३१ ॥

जनमेजय ! उनके यज्ञ करते समय बिछे हुए प्राचीनाग्र कुश समस्त भूमण्डलपर फैलकर उनके महत्त्वको प्रकट कर रहे थे, अतएव उनका नाम भगवान् प्राचीनबर्हि है ॥ ३१ ॥

समुद्रतनयायां तु कृतदारोऽभवत् प्रभुः ।
महतस्तपसः पारे सवर्णायां महीपतिः ॥ ३२ ॥

महीपति प्रभु प्राचीनबर्हिने बड़ा भारी तप करनेके पश्चात् समुद्रकी पुत्री सवर्णाके साथ विवाह किया ॥ ३२ ॥

सवर्णाऽऽधत्त सामुद्री दश प्राचीनबर्हिषः ।
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ॥ ३३ ॥

प्राचीनबर्हिसे समुद्रकी पुत्री सवर्णाने दस पुत्र उत्पन्न किये, उन दसोंका 'प्रचेता' यह एक ही नाम था। वे सब धनुर्वेदके पारगामी थे ॥ ३३ ॥

अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः ।
दशवर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः ॥ ३४ ॥

वे सब प्रचेतागण एक साथ समान धर्म-कर्मका आचरण करते थे और एक-से शीलवाले थे, उन्होंने समुद्रके जलमें प्रवेश करके दस हजार वर्षोंतक बड़ी भारी तपस्या की ॥३४॥

---

* उनके कैसे-कैसे पात्र थे, कैसे-कैसे बछड़े थे और उन्होंने कौन-कौन-सा दूध दुहा था, इसका विस्तृत वर्णन आगे ५ वें अध्यायमें आयेगा।

* ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥

पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्यका नाम भग है। ये छः वस्तुएँ जिनमें पूर्णरूपसे हों ऐसे योगी महात्मा आदिके साथ भी भगवान् शब्दका प्रयोग किया जा सकता है।

तपश्चरत्सु पृथिवीं प्रचेतस्सु महीरुहाः ।
अरक्ष्यमाणामावव्रुर्बभूवाथ प्रजाक्षयः ॥ ३५ ॥

जब प्रचेतागण तप कर रहे थे, तब अरक्षित पड़ी हुई पृथ्वीको वृक्षोंने चारों ओरसे ढक दिया, इससे प्रजाओंका नाश होने लगा ॥ ३५ ॥

नाशकन्मारुतो वातुं वृतं खमभवद् द्रुमैः ।
दशवर्षसहस्राणि न शेकुश्चेष्टितुं प्रजाः ॥ ३६ ॥

दस हजार वर्षोंमें वृक्षोंने आकाशतकको घेर लिया, तब वायुका चलना बंद हो गया और प्रजाओंका चेष्टा करना (हाथ-पैर हिलाना) भी बंद होने लगा ॥ ३६ ॥

तदुपश्रुत्य तपसा युक्ताः सर्वे प्रचेतसः ।
मुखेभ्यो वायुमग्निं च तेऽसृजञ्जातमन्यवः ॥ ३७ ॥

अपनी तपस्या (ज्ञानदृष्टि) से इन सब बातोंको जानकर सब प्रचेता इसका उपाय करनेके लिये उद्यत हो गये और उन्होंने क्रोधमें भरकर अपने मुखोंसे वायु और अग्निको प्रकट किया ॥ ३७ ॥

उन्मूलानथ तान् कृत्वा वृक्षान् वायुरशोषयत् ।
तानग्निरदहद्घोरं एवमासीद् द्रुमक्षयः ॥ ३८ ॥

वायुने वृक्षोंको जड़से उखाड़कर उनको सुखा दिया, तब अग्नि प्रचण्ड होकर उन वृक्षोंको जलाने लगी, इस प्रकार वृक्षोंका नाश होने लगा ॥ ३८ ॥

द्रुमक्षयमथो बुद्ध्वा किंचिच्छिष्टेषु शाखिषु ।
उपगम्याब्रवीदेतान् राजा सोमः प्रजापतीन् ॥ ३९ ॥

इस प्रकार जलते-जलते जब कुछ ही वृक्ष बाकी बचे, तब वृक्षोंके संहारकी बातको जानकर इन वृक्षोंके राजा सोम प्रजापति प्रचेताओंके पास जाकर बोले—॥ ३९ ॥

कोपं यच्छत राजानः सर्वे प्राचीनबर्हिषः ।
वृक्षशून्या कृता पृथ्वी शाम्येतामग्निमारुतौ ॥ ४० ॥

'प्राचीनबर्हिके पुत्र प्रचेताओ ! तुमने तो पृथ्वीको वृक्षोंसे शून्य ही कर डाला । राजाओ ! अब अपने क्रोधको रोको तथा इन अग्नि और पवनको शान्त करो ॥ ४० ॥

रत्नभूता च कन्येयं वृक्षाणां वरवर्णिनी ।
भविष्यं जानता तत्त्वं धृता गर्भेण वै मया ॥ ४१ ॥

'यह वृक्षोंकी रत्नस्वरूपा सुन्दरी कन्या है । मैंने भविष्यके तत्त्वको जानकर इसे अपने गर्भमें स्थापित कर लिया था * ॥ ४१ ॥

मारिषा नाम कन्येयं वृक्षाणामिति निर्मिता ।
भार्या वोऽस्तु महाभागाः सोमवंशविवर्द्धिनी ॥ ४२ ॥

'यह मारिषा नामवाली कन्या वृक्षोंके वीर्य अर्थात् सारांशसे रची गयी है । महाभाग ! इस सोमवंशकी वृद्धि करनेवाली वृक्षोंकी कन्याको तुम भार्यारूपमें ग्रहण करो ॥ ४२ ॥

युष्माकं तेजसोऽर्द्धेन मम चार्द्धेन तेजसः ।
अस्यामुत्पत्स्यते पुत्रो दक्षो नाम प्रजापतिः ॥ ४३ ॥

'तुम्हारे और मेरे दोनोंके तेजके आधे-आधे भागके द्वारा इस कन्याके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न होगा, जिसका नाम होगा—दक्ष प्रजापति ॥ ४३ ॥

य इमां दग्धभूयिष्ठां युष्मत्तेजोमयेन वै ।
अग्निनाग्निसमो भूयः प्रजाः संवर्धयिष्यति ॥ ४४ ॥

'तुम्हारे तपरूपी अग्निसे अग्निके समान ही प्रतापी वह दक्ष अधिकांश जली हुई इस पृथ्वीपर फिर प्रजाओंकी वृद्धि करेगा' ॥ ४४ ॥

ततः सोमस्य वचनाज्जगृहुस्ते प्रचेतसः ।
संहृत्य कोपं वृक्षेभ्यः पत्नीं धर्मेण मारिषाम् ॥ ४५ ॥

चन्द्रमाके इस प्रकार कहनेपर उन प्रचेताओंने वृक्षोंकी ओरसे अपने क्रोधको समेट लिया और मारिषाको विवाहरूपी धर्मके द्वारा पत्नीरूपमें ग्रहण कर लिया ॥ ४५ ॥

मारिषायां ततस्ते वै मनसा गर्भमादधुः ।
दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापतिः ।
दक्षो जज्ञे महातेजाः सोमस्यांशेन भारत ॥ ४६ ॥

तदनन्तर उन प्रचेताओंने अपने मनसे मारिषामें गर्भ स्थापित किया । भरतवंशी राजन् ! इस प्रकार चन्द्रमाके अंशसे दस प्रचेताओंके द्वारा मारिषाके गर्भसे महातेजस्वी दक्ष प्रजापति उत्पन्न हुए ॥ ४६ ॥

पुत्रानुत्पादयामास सोमवंशविवर्धनान् ।
अचरांश्च चरांश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदः ।
स दृष्ट्वा मनसा दक्षः पश्चादप्यसृजत् स्त्रियः ॥ ४७ ॥

तब उन दक्षप्रजापतिने चन्द्रमाके वंशको बढ़ानेवाले पुत्र उत्पन्न किये और स्थावर, जङ्गम, दो पैरवाले, चार पैरवाले रचनेयोग्य प्राणियोंकी सृष्टिके लिये मनमें विचारकर पीछे स्त्रियोंकी भी रचना की ॥ ४७ ॥

---

* वायुने वृक्षोंको सुखाते समय उनका जलीय सारांश जलके कारण सूर्यमें पहुँचा दिया, इसी प्रकार पृथ्वीका सारभूत अंश जलमय चन्द्रमामें पहुँचा दिया । इस प्रकार कन्यारूप वृक्षोंका वीर्य सोमने अपने गर्भमें धारण कर लिया, यह बात ठीक ही है । 'वृष्टिर्वै वृक्षा चन्द्रमसमनु प्रविशति—वृष्टि बरसकर चन्द्रमामें प्रविष्ट हो जाती है' इस श्रुतिसे भी ओषधियोंके साररूपसे वृष्टिका चन्द्रमामें प्रवेश करना सिद्ध होता है । इस प्रकार चन्द्रमाका यह वचन ठीक ही है कि 'मैंने इस वृक्षोंकी कन्याको अपने गर्भमें धारण कर लिया था ।'

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश।
शिष्टाः सोमाय राज्ञेऽथ नक्षत्राख्या ददौ प्रभुः॥४८॥

प्रभु दक्षने उनमेंसे दस कन्याएँ धर्मको, तेरह कन्याएँ कश्यपको और शेष बची हुई नक्षत्रसम्बन्धी नामवाली सत्ताईस कन्याएँ राजा चन्द्रमाको दे दीं ॥ ४८ ॥

तासु देवाः खगा नागा गावो दितिजदानवाः।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव जज्ञिरेऽन्याश्च जातयः ॥ ४९ ॥

उन कन्याओंसे देवता, पक्षी, सर्प, गौएँ, दैत्य-दानव-गन्धर्व, अप्सराएँ तथा अन्य जातियोंके प्राणी उत्पन्न हुए ॥ ४९ ॥

ततः प्रभृति राजेन्द्र प्रजा मैथुनसम्भवाः।
संकल्पाद् दर्शनात् स्पर्शात् पूर्वेषां सृष्टिरुच्यते॥ ५० ॥

राजेन्द्र! तभीसे प्रजाएँ मैथुनद्वारा उत्पन्न होने लगीं। इससे पहले प्राणियोंकी उत्पत्ति संकल्प,* दर्शन और स्पर्शसे होती थी—ऐसा कहा जाता है ॥ ५० ॥

जनमेजय उवाच

देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम्।
सम्भवः कथितः पूर्वं दक्षस्य च महात्मनः ॥ ५१ ॥

जनमेजयने कहा—मुने! आपने पहले भी देवता, दानव, गन्धर्व, सर्प और राक्षस तथा महात्मा दक्षकी उत्पत्तिका वर्णन किया है ॥ ५१ ॥

अङ्गुष्ठाद् ब्रह्मणो जातो दक्षः प्रोक्तस्त्वयानघ।
वामाङ्गुष्ठात् तथा चैव तस्य पत्नी व्यजायत ॥ ५२ ॥

निष्पाप महर्षे! वहाँ आपने कहा है कि ब्रह्माजीके (दाहिने) अंगूठेसे दक्ष प्रजापति उत्पन्न हुए और ब्रह्माजीके बायें अंगूठेसे दक्षकी पत्नी उत्पन्न हुई ॥ ५२ ॥

कथं प्राचेतसत्वं स पुनर्लेभे महातपाः।
एतन्मे संशयं विप्र सम्यगाख्यातुमर्हसि।
दौहित्रश्चैव सोमस्य कथं श्वशुरतां गतः ॥ ५३ ॥

वे महातपस्वी दक्ष फिर प्रचेताओंके पुत्र कैसे हुए? चन्द्रमाके नाती दक्ष फिर उनके श्वशुर कैसे बन गये? विप्रवर! मेरे इन संदेहोंको भली प्रकार व्याख्या करके आप दूर कर दीजिये ॥ ५३ ॥

वैशम्पायन उवाच

उत्पत्तिश्च निरोधश्च नित्यौ भूतेषु पार्थिव।
ऋषयोऽत्र न मुह्यन्ति विद्वांसश्चैव ये जनाः ॥ ५४ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—पृथ्वीनाथ! जन्म और मृत्यु—ये समस्त प्राणियोंके लिये नित्य (स्वाभाविक) हैं। इस विषयमें ऋषियोंको कभी मोह नहीं होता। जो विद्वान् पुरुष हैं, वे भी इस विषयमें मोहित नहीं होते ॥ ५४ ॥

युगे युगे भवन्त्येते सर्वे दक्षादयो नृप।
पुनश्चैव निरुध्यन्ते विद्वांस्तत्र न मुह्यति ॥ ५५ ॥

नरेश्वर! ये दक्ष आदि सब लोग प्रत्येक युगमें उत्पन्न होते और मरते रहते हैं, अतः विद्वान् पुरुष इस विषयमें मोहको नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ५५ ॥

ज्यैष्ठ्यं कानिष्ठ्यमप्येषां पूर्वं नासीज्जनाधिप।
तप एव गरीयोऽभूत् प्रभावश्चैव कारणम् ॥ ५६ ॥

राजन्! पहले इनमें ज्येष्ठता और कनिष्ठताका अर्थात् पहले-पीछे उत्पन्न होनेका कोई विचार नहीं था, तप ही इनकी दृष्टिमें गरिष्ठ था और प्रभाव ही इनमें सम्बन्ध होनेका कारण होता था ॥ ५६ ॥

इमां विसृष्टिं दक्षस्य यो विद्यात् सचराचराम्।
प्रजावानापदुत्तीर्णः स्वर्गलोके महीयते ॥ ५७ ॥

जो मनुष्य चर तथा अचर प्राणियोंसहित इस दक्ष प्रजापतिकी सृष्टिके तत्त्वको जानता है, वह संतानवान् होता है और आपत्तियोंके पार हो स्वर्गमें प्रतिष्ठापूर्वक रहता है ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि प्रजासर्गे दक्षोत्पत्तिकथने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें प्रजासर्गके प्रसंगमें दक्षकी उत्पत्तिका वर्णनविषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

◆

तृतीयोऽध्यायः

दक्ष प्रजापतिद्वारा सृष्टि-विस्तार, नारदजीका दक्षके पुत्रोंको विरक्त कर देना, दक्षकी साठ कन्याओं और उनकी संततिका वर्णन

जनमेजय उवाच

देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम्।
उत्पत्तिं विस्तरेणेमां वैशम्पायन कीर्तय ॥ १ ॥

जनमेजयने कहा—वैशम्पायनजी! आप इस देवता, दानव, गन्धर्व, सर्प और राक्षसोंकी उत्पत्तिको विस्तारपूर्वक कहिये ॥ १ ॥

---

* उन दस प्रचेताओंके एक ही औरस पुत्र कैसे हुआ? इस शङ्काका उत्तर इस श्लोकके संकल्प शब्दसे मिलता है। अर्थात् उन दसोंका संकल्प एक-सा था, अतः उनके एक ही औरस पुत्र हुआ।

वैशम्पायन उवाच

प्रजाः सृजेति व्यादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा।
यथा ससर्ज भूतानि तथा शृणु महीपते ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी बोले--राजन् ! पहले स्वयम्भू ब्रह्माजीने दक्षको आज्ञा दी कि 'तुम प्रजाओंकी सृष्टि करो'। उस समय दक्षने (जरायुज आदि) प्राणियोंकी सृष्टि जिस प्रकार की थी, उसे सुनो ॥ २ ॥

मानसान्येव भूतानि पूर्वमेवासृजत् प्रभुः।
ऋषीन् देवान् सगन्धर्वानसुरानथ राक्षसान्।
यक्षभूतपिशाचांश्च वयःपशुसरीसृपान् ॥ ३ ॥

प्रभु दक्षने पहले ऋषि, देवता, गन्धर्व, असुर, राक्षस, यक्ष, भूत, पिशाच, पशु, पक्षी और सर्पोंकी मानसी सृष्टि रची अर्थात् इनको अपने संकल्पमात्रसे ही उत्पन्न कर दिया ॥

यदास्य तास्तु मानस्यो न व्यवर्द्धन्त वै प्रजाः।
अपध्याता भगवता महादेवेन धीमता ॥ ४ ॥
ततः संचिन्त्य तु पुनः प्रजाहेतोः प्रजापतिः।
स मैथुनेन धर्मेण सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥ ५ ॥
असिक्नीमावहत् पत्नीं वीरणस्य प्रजापतेः।
सुतां सुतपसा युक्तां महतीं लोकधारिणीम् ॥ ६ ॥

परंतु (पूर्वकल्पके वैरको स्मरणकर) बुद्धिमान् भगवान् महादेवने जब यह विचार किया कि दक्षकी मानसी प्रजाएँ न बढ़ें, और तदनुसार जब उनकी मनसे उत्पन्न की हुई प्रजाएँ अधिक उन्नति न कर सकीं, तब दक्ष प्रजापति विचारमें पड़ गये और फिर उन्होंने प्रजाकी वृद्धि करनेके लिये मैथुनधर्मसे अनेक प्रकारकी प्रजाओंको रचनेका विचार किया। इस विचारके अनुसार वे परम तप करनेके कारण संसारको धारण करनेमें समर्थ वीरण प्रजापतिकी महामहिम पुत्री असिक्नीको पत्नीरूपमें विवाह कर लाये ॥ ४-६ ॥

अथ पुत्रसहस्राणि वीरण्यां पञ्च वीर्यवान्।
असिक्न्यां जनयामास दक्ष एव प्रजापतिः ॥ ७ ॥

इसके बाद वीर्यवान् दक्ष प्रजापतिने वीरणकी पुत्री असिक्नीमें पाँच हजार पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ७ ॥

तांस्तु दृष्ट्वा महाभागान् संविवर्धयिषून् प्रजाः।
देवर्षिः प्रियसंवादो नारदः प्राब्रवीदिदम्।
नाशाय वचनं तेषां शापायैवात्मनस्तथा ॥ ८ ॥

परंतु उन महाभाग्यवान् दक्षपुत्रोंको प्रजाकी वृद्धि करनेके लिये उत्सुक देख प्रियवादी देवर्षि नारदजीने उनको (ज्ञानका अधिकारी समझकर आत्मज्ञानका) उपदेश दिया। नारदजीके उस वचनसे दक्षपुत्र नष्ट हो गये (अथवा उनकी संसारमें आसक्ति नष्ट हो गयी), परंतु नारदजीका यह ज्ञानोपदेश देना स्वयं शाप पानेमें ही एक कारण बन गया ॥ ८ ॥

यं कश्यपः सुतवरं परमेष्ठी व्यजीजनत्।
दक्षस्य वै दुहितरि दक्षशापभयान्मुनिः ॥ ९ ॥

ब्रह्माजीने जिन श्रेष्ठ पुत्र नारदको उत्पन्न किया था, उनको ही कश्यप मुनिने दक्षके शापके भयसे (दक्षकी पत्नीकी छोटी बहिन अतएव) उनकी (पुत्रीके समान) कन्यामें उत्पन्न किया था ॥ ९ ॥

पूर्वं स हि समुत्पन्नो नारदः परमेष्ठिना।
असिक्न्यामथ वीरण्यां भूयो देवर्षिसत्तमः।
तं भूयो जनयामास पितेव मुनिपुङ्गवम् ॥ १० ॥

नारदजी पहले ब्रह्माजीसे उत्पन्न हुए थे, फिर वे ही देवर्षिसत्तम नारद वीरणकी पुत्री असिक्नी (की छोटी बहिन) में उत्पन्न हुए थे। उन मुनिपुङ्गव नारदजीको कश्यपने ब्रह्माजीके समान ही फिर प्रकट किया था ॥ १० ॥

तेन दक्षस्य पुत्रा वै हर्यश्वा इति विश्रुताः।
निर्मथ्य नाशिताः सर्वे विधिना च न संशयः ॥ ११ ॥

(इस घटनाको स्पष्ट करते हैं---) दक्षके हर्यश्व नामसे प्रसिद्ध (जो पाँच हजार) पुत्र थे, नारदजीने उनको शास्त्रोक्त रीतिसे देहाभिमानसे मुक्त कर इस संसारसे नष्ट कर दिया था (अर्थात् वे सब नारदजीसे चेतावनी पाकर संसारको त्याग परमात्माकी खोज करनेके लिये वनमें चले गये), इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ ११ ॥

तस्योद्यतस्तदा दक्षो नाशायामितविक्रमः।
महर्षीन् पुरतः कृत्वा याचितः परमेष्ठिना ॥ १२ ॥

तब अनुपम पराक्रमी दक्ष प्रजापति नारदजीको नष्ट करनेके लिये उद्यत हो गये। उस समय ब्रह्माजीने मरीचि आदि महर्षियोंके साथ जाकर दक्षसे ऐसा न करनेके लिये प्रार्थना की ॥

ततोऽभिसंधिं चक्रुस्ते दक्षस्तु परमेष्ठिना।
कन्यायां नारदो मह्यं तव पुत्रो भवेदिति ॥ १३ ॥

तब महर्षियोंने दक्ष और ब्रह्माजीमें संधि करा दी। दक्षने कहा कि 'आपका पुत्र नारद मेरी पुत्री (अर्थात् छोटी साली) का पुत्र बनकर उत्पन्न हो' ॥ १३ ॥

ततो दक्षस्तु तां प्रादात् कन्यां वै परमेष्ठिने।
स तस्यां नारदो जज्ञे दक्षशापभयादृषिः ॥ १४ ॥

तब दक्षने प्रजापति कश्यपको (तेरह कन्याएँ अर्पण करते समय) उस कन्याका दान कर दिया था। इस प्रकार दक्षके शापके भयसे नारद ऋषि उस कन्यासे फिर उत्पन्न हुए थे ॥

जनमेजय उवाच

कथं विनाशिताः पुत्रा नारदेन महर्षिणा।
प्रजापतेर्द्विजश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ १५ ॥

जनमेजयने पूछा—द्विजश्रेष्ठ ! महर्षि नारदने प्रजापति दक्षके पुत्रोंको किस प्रकार नष्ट किया था ? इसको मैं स्पष्टरूपसे सुनना चाहता हूँ ॥ १५ ॥

वैशम्पायन उवाच

दक्षस्य पुत्रा हर्यश्वा विवर्धयिषवः प्रजाः ।
समागता महावीर्या नारदस्तानुवाच ह ॥ १६ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! दक्षके हर्यश्व नामक पुत्र महावीर्यवान् थे, जब वे प्रजाओंकी वृद्धिका विचार करनेके लिये उद्यत हुए, तब नारदजीने उनसे कहा—॥ १६ ॥

बालिशा बत यूयं वै नास्या जानीथ वै भुवः ।
प्रमाणं स्रष्टुकामाः स्थ प्रजाः प्राचेतसात्मजाः ।
अन्तरूर्ध्वमधश्चैव कथं स्रक्ष्यथ वै प्रजाः ॥ १७ ॥

'प्राचेतस (दक्ष) के पुत्रो ! खेदके साथ कहना पड़ता है कि तुम बड़े नादान हो । तुम्हें प्रजाकी सृष्टि करनेकी इच्छा हुई है; किंतु तुम इतना भी नहीं जानते कि जहाँ सृष्टि करनी है, उस पृथ्वीकी लंबाई-चौड़ाई कितनी है ? यह ऊपर-नीचे और भीतरसे कैसी है ? ऐसी दशामें तुमलोग प्रजाओंकी सृष्टि कैसे करोगे ?' ॥ १७ ॥

ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्वतोदिशम् ।
प्रमाणं द्रष्टुकामास्ते गताः प्राचेतसात्मजाः ॥ १८ ॥

नारदजीकी इस बातको सुनकर वे प्राचेतस दक्षके पुत्र (इस पृथ्वीका) प्रमाण अर्थात् माप देखनेके लिये सब दिशाओंकी ओर चल दिये ॥१८॥

वायोरनशनं प्राप्य गतास्ते वै पराभवम् ।
अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ॥ १९ ॥

प्राणवायुके लिये आहार न पाकर वे सबके सब पराभव (विनाश) को प्राप्त हो गये । जैसे नदियाँ समुद्रमें मिल जानेपर फिर वहाँसे पीछे नहीं लौटती हैं, उसी प्रकार वे जाकर अबतक नहीं लौटे ॥ १९ ॥

हर्यश्वेष्वथ नष्टेषु दक्षः प्राचेतसः पुनः ।
वैरण्यामेव पुत्राणां सहस्रमसृजत् प्रभुः ॥ २० ॥

प्रचेताओंके पुत्र प्रभु दक्षने हर्यश्वोंके नष्ट हो जानेपर वीरणकी पुत्रीमें ही फिर सहस्र पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ २० ॥

विवर्धयिषवस्ते तु शबलाश्वाः प्रजास्तदा ।
पूर्वोक्तं वचनं तात नारदेनैव नोदिताः ॥ २१ ॥

तात ! वे दक्षके पुत्र शबलाश्व जब प्रजाकी वृद्धिके लिये इच्छुक हुए, तब नारदजीने पूर्वोक्त वचन कहकर उनको भी पृथ्वीका प्रमाण जाननेके लिये प्रेरित किया ॥ २१ ॥

अन्योन्यमूचुस्ते सर्वे सम्यगाह महामुनिः ।
भ्रातॄणां पदवीं ज्ञातुं गन्तव्यं नात्र संशयः ॥ २२ ॥

तब वे सब आपसमें कहने लगे—'महामुनि नारदजी ठीक कहते हैं; अपने भाइयोंके मार्गको जाननेके लिये निःसंदेह हमें भी अवश्य प्रयत्न करना चाहिये ॥ २२ ॥

ज्ञात्वा प्रमाणं पृथ्व्याश्च सुखं स्रक्ष्यामहे प्रजाः ।
एकाग्राः स्वस्थमनसा यथावदनुपूर्वशः ॥ २३ ॥

'हम पृथ्वीके प्रमाणको जानकर एकाग्र और स्वस्थचित्तसे सुखपूर्वक प्रजाओंकी क्रमानुसार सृष्टि करेंगे ॥ २३ ॥

तेऽपि तेनैव मार्गेण प्रयाताः सर्वतोदिशम् ।
अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ॥ २४ ॥

ऐसा निश्चय करके वे भी उसी मार्गसे चारों दिशाओंकी ओर चल दिये और समुद्रोंसे उनमें मिली हुई नदियोंके समान अभीतक नहीं लौटे ॥ २४ ॥

नष्टेषु शबलाश्वेषु दक्षः क्रुद्धोऽवदद् वचः ।
नारदं नाशमेहीति गर्भवासं वसेति च ॥ २५ ॥

शबलाश्वोंके भी नष्ट हो जानेपर दक्ष प्रजापतिने क्रोधमें भरकर, नारदजीसे यह बात कही कि 'तुम्हारी देह नष्ट हो जाय और तुम फिर गर्भमें निवास करो' ॥ २५ ॥

तदाप्रभृति वै भ्राता भ्रातुरन्वेषणं नृप ।
प्रयातो नश्यति क्षिप्रं तन्न कार्यं विपश्चिता ॥ २६ ॥

राजन् ! उस दिनसे जो भाई भाईको खोजनेके लिये जाता है, वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, अतएव विद्वान्को ऐसा न करना चाहिये अर्थात् भाईको ढूँढ़नेके लिये भाईको नहीं जाना चाहिये ॥ २६ ॥

तांश्चापि नष्टान् विज्ञाय पुत्रान् दक्षः प्रजापतिः ।
षष्टिं भूयोऽसृजत् कन्या वीरण्यामिति नः श्रुतम् ॥

हमने सुना है कि अपने उन पुत्रोंको भी नष्ट हुआ जानकर दक्ष प्रजापतिने वीरणकी पुत्रीमें फिर साठ कन्याओंको उत्पन्न किया (क्योंकि कन्याएँ स्त्री होनेसे नारदजीके आत्मज्ञानके उपदेशकी पात्र नहीं थीं) ॥ २७ ॥

तास्तदा प्रतिजग्राह भार्यार्थे कश्यपः प्रभुः ।
सोमो धर्मश्च कौरव्य तथैवान्ये महर्षयः ॥ २८ ॥

कुरुकुलोत्पन्न जनमेजय ! उन (मेंसे कुछ कन्याओं) को प्रभु कश्यपजीने अपनी पत्नीके रूपमें स्वीकार कर लिया एवं चन्द्रमा, धर्म तथा दूसरे महर्षियोंने भी उन (मेंसे कितनी ही कन्याओं) को अपनी पत्नीके रूपमें स्वीकार कर लिया ॥ २८ ॥

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ॥ २९ ॥
द्वे चैव भृगुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा ।
द्वे कृशाश्वाय विदुषे तासां नामानि मे शृणु ॥ ३० ॥

दक्षने धर्मको दस, कश्यपजीको तेरह, चन्द्रमाको सत्ताईस, अरिष्टनेमिको चार, भृगुपुत्रको दो, अङ्गिराको

और विद्वान् कृशाश्व ऋषिको दो कन्याएँ दीं, उनके नामोंको मुझसे सुनो—॥ २९-३० ॥

अरुन्धती वसुर्यामी लम्बा भानुर्मरुत्वती ।
संकल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च भारत ।
धर्मपत्न्यो दश त्वेतास्तास्वपत्यानि मे शृणु ॥ ३१ ॥

भरतवंशी राजन् ! अरुन्धती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरुत्वती, संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या तथा विश्वा—ये दस धर्मकी पत्नियाँ हैं । इनमें जो संतान उत्पन्न हुईं, उनके नामोंको मुझसे सुनो—॥ ३१ ॥

विश्वेदेवाश्च विश्वायाः साध्यान् साध्या व्यजायत ।
मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवस्तथा ॥ ३२ ॥

विश्वाने विश्वेदेव नामक पुत्रोंको और साध्याने साध्य नामवाले पुत्रोंको उत्पन्न किया, मरुत्वतीसे मरुत्वान् और वसुसे वसु प्रकट हुए ॥ ३२ ॥

भानोस्तु भानवस्तात मुहूर्ताया मुहूर्तजाः ॥ ३३ ॥

और तात ! भानुसे भानुदेवता और मुहूर्तासे (क्षण, लव आदि कालाभिमानी देवता) मुहूर्तज उत्पन्न हुए ॥३३॥

लम्बायाश्चैव घोषोऽथ नागवीथी च यामिजा ।
पृथिवीविषयं सर्वमरुन्धत्यां व्यजायत ॥ ३४ ॥

घोष नामक (मन्त्राभिमानी) देवता लम्बासे उत्पन्न हुआ तथा यामीसे (स्वर्गाभिमानिनी) नागवीथी उत्पन्न हुई तथा अरुन्धतीमें (घृत, पशु, औषध आदि) सब पृथ्वीके विषय उत्पन्न हुए ॥ ३४ ॥

संकल्पायास्तु सर्वात्मा जज्ञे संकल्प एव हि ।
नागवीथ्याश्च यामिन्या वृषलम्बा व्यजायत ॥ ३५ ॥

तथा संकल्पासे सर्वात्मा संकल्प अर्थात् मानसक्रियाभिमानी देवता उत्पन्न हुआ और यामिपुत्री नागवीथीसे वृषलम्बा (कालान्तरमें फलवृष्टि करनेवाले धर्म या ईश्वरका अवलम्बन करनेवाला देवता) उत्पन्न हुआ ॥ ३५ ॥

या राजन् सोमपत्न्यस्तु दक्षः प्राचेतसो ददौ ।
सर्वा नक्षत्रनाम्न्यस्ता ज्यौतिषे परिकीर्तिताः ॥ ३६ ॥

राजन् ! प्राचेतस दक्षने चन्द्रमाको जो कन्याएँ दी थीं, वे सब सोमपत्नियाँ नक्षत्रोंके नामसे ज्यौतिषशास्त्रमें प्रसिद्ध हैं ॥ ३६ ॥

ये त्वन्ये ख्यातिमन्तो वै देवा ज्योतिःपुरोगमाः ।
वसवोऽष्टौ समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि विस्तरम्॥३७॥

अब जो ज्योति आदि दूसरे प्रसिद्ध देवता हैं और जो विख्यात आठ वसु देवता हैं, उनका विस्तृत वर्णन मैं आपसे कहूँगा ॥ ३७ ॥

आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलानलौ ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो नामभिः स्मृताः ॥ ३८ ॥

आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास (—ये आठ) वसु नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ३८ ॥

आपस्य पुत्रो वैतण्ड्यः श्रमः शान्तो मुनिस्तथा ।
ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् कालो लोकप्रकालनः ॥ ३९ ॥

आपके वैतण्ड्य, श्रम, शान्त और मुनिनामक पुत्र उत्पन्न हुए और संसारको अपने अंकुशमें रखनेवाले भगवान् काल ध्रुवके पुत्र हैं ॥ ३९ ॥

सोमस्य भगवान् वर्चा वर्चस्वी येन जायते ।
धरस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा ।
मनोहरायाः शिशिरः प्राणोऽथ रमणस्तथा ॥ ४० ॥

और सोम नामक वसुके पुत्र भगवान् वर्चा हैं, जिन (का पूजन करने) से मनुष्य वर्चस्वी हो जाता है । धर वसुके द्रविण और हुतहव्यवह नामक दो पुत्र हुए तथा (धरकी दूसरी पत्नी) मनोहरासे शिशिर, प्राण और रमण नामक पुत्र हुए ॥ ४० ॥

अनिलस्य शिवा भार्या यस्याः पुत्रो मनोजवः ।
अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य तु ॥ ४१ ॥

अनिलकी पत्नीका नाम शिवा था, उसके पुत्र मनोजव और अविज्ञातगति थे, ये दोनों अनिलके पुत्र थे ॥ ४१ ॥

अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे श्रियान्वितः ।
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजाः ॥ ४२ ॥

अग्निके पुत्र श्रीमान् कुमार सरकंडोंके झुंडमें प्रकट हुए थे । उनके पीछे शाख, विशाख और नैगमेय हुए (इस प्रकार अग्निके चार पुत्र थे) ॥ ४२ ॥

अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्तिकेय इति स्मृतः ।
स्कन्दः सनत्कुमारश्च सृष्टः पादेन तेजसः ॥ ४३ ॥

(ये कुमार ही) कृत्तिकाओंकी संतान कार्तिकेय (और) स्कन्द कहलाते हैं और ये ही सनत्कुमार हैं । अग्निने इन्हें अपने तेजके एक अंशसे प्रकट किया है (और शाख आदि तीनको भी अपने तेजके एक-एक चौथाई अंशसे प्रकट किया है । छान्दोग्य-उपनिषद्में लिखा है कि 'तं स्कन्द इत्याचक्षते' यह सनत्कुमार ही स्कन्द हैं । इससे प्रतीत होता है कि सनत्कुमार इनका उपनाम है) ॥ ४३ ॥

प्रत्यूषस्य विदुः पुत्रमृषिं नाम्ना च देवलम् ।
द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि क्षमावन्तौ तपस्विनौ ॥ ४४ ॥

प्रत्यूषके पुत्रका नाम देवल और (पुत्रीका नाम) ऋष्टि था । देवलके भी दो पुत्र थे, जो क्षमावान् तथा तपस्वी थे ॥ ४४ ॥

बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मचारिणी।
योगसिद्धा जगत् कृत्स्नमसक्ता विचचार ह ॥ ४५ ॥

बृहस्पतिकी बहिनका नाम ब्रह्मचारिणी था, वह योगसिद्ध श्रेष्ठ स्त्री आसक्तिको त्यागकर सारे संसारमें विचरण किया करती थी ॥ ४५ ॥

प्रभासस्य च सा भार्या वसूनामष्टमस्य च।
विश्वकर्मा महाभागस्तस्यां जज्ञे प्रजापतिः ॥ ४६ ॥

वह प्रभास नामवाले आठवें वसुकी भार्या बन गयी। उसके गर्भसे विश्वकर्मा नामवाले महाभाग्यवान् प्रजापति उत्पन्न हुए ॥ ४६ ॥

कर्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानां च वर्धकिः।
भूषणानां च सर्वेषां कर्ता शिल्पवतां वरः ॥ ४७ ॥

उन्होंने हजारों शिल्पों (कलाओं) की रचना की है और वे देवताओंके बढ़ई हैं तथा वे शिल्पियोंमें श्रेष्ठ विश्वकर्मा सब आभूषणोंके बनानेवाले हैं ॥ ४७ ॥

यः सर्वासां विमानानि देवतानां चकार ह।
मनुष्याश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्पं महात्मनः ॥ ४८ ॥

उन्होंने सब देवताओंके विमानोंको बनाया है और उन महात्माके शिल्पसे मनुष्य भी अपनी आजीविका चलाते हैं ॥

सुरभी कश्यपाद् रुद्रानेकादश विनिर्ममे।
महादेवप्रसादेन तपसा भाविता सती ॥ ४९ ॥
अजैकपादहिर्बुध्न्यस्त्वष्टा रुद्राश्च भारत।
त्वष्टुश्चैवात्मजः श्रीमान् विश्वरूपो महायशाः ॥ ५० ॥

(अब दक्षने कश्यप मुनिको जो तेरह कन्याएँ दी थीं, उनमेंसे सुरभिकी संतानका वर्णन करते हैं—) तपमें मग्न हुई सुरभिने महादेवजीसे वर पाकर कश्यपजीके द्वारा ग्यारह रुद्रोंको उत्पन्न किया था। भरतवंशी राजन्! अजैकपाद्, अहिर्बुध्न्य, त्वष्टा तथा रुद्र—ये सब सुरभिकी ही संतानें हैं। त्वष्टाके महायशस्वी और श्रीमान् पुत्रका नाम विश्वरूप था ॥ ४९-५० ॥

हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः।
वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा ॥ ५१ ॥
मृगव्याधश्च सर्पश्च कपाली च विशाम्पते।
एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः ॥ ५२ ॥

राजन्! हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, सर्प और कपाली—ये तीनों भुवनोंके ईश्वर ग्यारह रुद्र कहे गये हैं ॥ ५१-५२ ॥

शतं त्वेवं समाख्यातं रुद्राणाममितौजसाम्।
पुराणे भरतश्रेष्ठ यैर्व्याप्ताः सचराचराः ॥ ५३ ॥
लोका भरतशार्दूल कश्यपस्य निबोध मे।
अदितिर्दितिर्दनुश्चैव अरिष्टा सुरसा खशा ॥ ५४ ॥
सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इरा।
कद्रुर्मुनिश्च राजेन्द्र तास्वपत्यानि मे शृणु ॥ ५५ ॥

भरतश्रेष्ठ! पुराणोंमें इन अमित पराक्रमी रुद्रोंके सैकड़ों रूप बताये गये हैं। इनसे चराचर लोक भरे हुए हैं। भरतशार्दूल! अब तुम मुझसे कश्यपकी (स्त्रियोंके नाम) सुनो। (वे हैं—) अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, खशा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रू और मुनि। राजेन्द्र! अब इनसे जो संतानें उत्पन्न हुईं, उनका वर्णन मुझसे सुनो—॥ ५३–५५ ॥

पूर्वमन्वन्तरे श्रेष्ठा द्वादशासन् सुरोत्तमाः।
तुषिता नाम तेऽन्योन्यमूचुर्वैवस्वतेऽन्तरे ॥ ५६ ॥
उपस्थितेऽतियशसि चाक्षुषस्यान्तरे मनोः।
हितार्थं सर्वसत्त्वानां समागम्य परस्परम् ॥ ५७ ॥

पहले चाक्षुष मन्वन्तरमें तुषित नामवाले बारह श्रेष्ठ देवता थे। वे उस अत्यन्त यशस्वी मन्वन्तरका अन्त आनेपर वैवस्वत मन्वन्तरके आरम्भमें सब प्राणियोंका हित करनेके लिये परस्पर मिलकर कहने लगे—॥ ५६-५७ ॥

आगच्छत द्रुतं देवा अदितिं सम्प्रविश्य वै।
मन्वन्तरे प्रसूयामस्तन्नः श्रेयो भविष्यति ॥ ५८ ॥

'देवताओ! शीघ्र आओ! हम अदितिमें प्रवेश करके अगले (वैवस्वत) मन्वन्तरमें उत्पन्न होंगे, यह कार्य हमारे लिये श्रेयस्कर होगा' ॥ ५८ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा तु ते सर्वे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः।
मारीचात् कश्यपाज्जातास्तेऽदित्या दक्षकन्यया ॥ ५९ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—वे सभी देवता चाक्षुष मन्वन्तरके अन्तमें इस प्रकार वार्तालाप कर मरीचिपुत्र कश्यपसे दक्षकी कन्या अदितिके गर्भसे उत्पन्न हो गये ॥ ५९ ॥

तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञाते पुनरेव हि।
अर्यमा चैव धाता च त्वष्टा पूषा च भारत ॥ ६० ॥
विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च।
अंशो भगश्चातितेजा आदित्या द्वादश स्मृताः ॥ ६१ ॥

भारत! वहाँ विष्णु और इन्द्र फिर उत्पन्न हुए। वे तथा अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, अंश और परम तेजस्वी भग—ये बारह आदित्य कहलाते हैं ॥ ६०-६१ ॥

चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमासन् ये तुषिताः सुराः।
वैवस्वतेऽन्तरे ते वै आदित्या द्वादश स्मृताः ॥ ६२ ॥

पहले चाक्षुष मन्वन्तरमें जो तुषित नामवाले देवता थे, वे अब वैवस्वत मन्वन्तरमें बारह आदित्य कहलाते हैं ॥ ६२ ॥

सप्तविंशतिर्याः प्रोक्ताः सोमपत्न्योऽथ सुव्रताः।
तासामपत्यान्यभवन् दीप्तान्यमिततेजसाम् ॥ ६३ ॥

और जो सुन्दर व्रत धारण करनेवाली चन्द्रमाकी सत्ताईस पत्नियाँ कही गयी हैं, उन अमित तेजस्विनी पत्नियोंकी ज्योतिर्मयी संतानें उत्पन्न हुईं ॥ ६३ ॥

अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश ।
बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः ॥ ६४ ॥

अनेक पुत्रवाले विद्वान् अरिष्टनेमिकी विद्युत् नामवाली चार पत्नियाँ थीं। उनसे सोलह संतानें उत्पन्न हुईं ॥ ६४ ॥

प्रत्यङ्गिरसजाः श्रेष्ठा ऋचो ब्रह्मर्षिसत्कृताः।
कृशाश्वस्य तु राजर्षेर्देवप्रहरणानि च ॥ ६५ ॥

राजर्षि कृशाश्वके ब्रह्मर्षियोंसे सत्कृत श्रेष्ठ प्रत्यङ्गिरसजा ऋचाएँ और देवताओंके आयुध प्रकट हुए ॥ ६५ ॥

एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि ।
सर्वदेवगणास्तात त्रयस्त्रिंशत् तु कामजाः ॥ ६६ ॥

तात ! ईश्वरकी कामनासे उत्पन्न होनेवाले तैंतीस देवता सत्ययुग आदि चारों युगोंके एक हजार बार बीतनेपर (प्रत्येक कल्पमें) पुनः उत्पन्न हुआ करते हैं ॥ ६६ ॥

तेषामपि च राजेन्द्र निरोधोत्पत्तिरुच्यते ॥ ६७ ॥

राजेन्द्र ! उन देवताओंकी भी उत्पत्ति और नाशका वर्णन उपलब्ध होता है ॥ ६७ ॥

यथा सूर्यस्य गगने उदयास्तमने इह ।
एवं देवनिकायास्ते सम्भवन्ति युगे युगे ॥ ६८ ॥

जैसे आकाशमें सूर्यका उदय और अस्त बारंबार होता रहता है, इसी प्रकार ये देवताओंके समूह प्रत्येक युगमें उत्पन्न (तथा नष्ट) होते हैं ॥ ६८ ॥

दित्याः पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम् ।
हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च वीर्यवान् ॥ ६९ ॥

(इस प्रकार आदित्योंका वर्णन करके अब दैत्योंका वर्णन करते हैं—) हमने सुना है, कश्यप ऋषिसे दितिके दो पुत्र उत्पन्न हुए थे, (उनमेंसे एक) हिरण्यकशिपु और (दूसरा) वीर्यवान् हिरण्याक्ष था ॥ ६९ ॥

सिंहिका चाभवत् कन्या विप्रचित्तेः परिग्रहः।
सैंहिकेया इति ख्यातास्तस्याः पुत्रा महाबलाः।
गणैश्च सह राजेन्द्र दशसाहस्रमुच्यते ॥ ७० ॥

(इन कश्यप और दितिकी) एक सिंहिका नामवाली कन्या भी थी, वह विप्रचित्तिको विवाही गयी थी। उसके महाबली पुत्र सैंहिकेय नामसे प्रसिद्ध हैं। राजेन्द्र ! वे अपने गणोंसहित दस हजार हैं ॥ ७० ॥

तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः।
असंख्याता महाबाहो हिरण्यकशिपोः शृणु ॥ ७१ ॥

और उनके सैकड़ों पुत्र और हजारों पौत्र हैं, उनकी गिनती नहीं की जा सकती। महाबाहो ! अब हिरण्यकशिपु की (संतानोंका वर्णन) सुनो ॥ ७१ ॥

हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथितौजसः।
अनुह्लादश्च ह्लादश्च प्रह्लादश्चैव वीर्यवान् ॥ ७२।
संह्लादश्च चतुर्थोऽभूद्ध्रादपुत्रो ह्रदस्तथा।
संह्लादपुत्रः सुन्दश्च निसुन्दस्तावुभौ स्मृतौ ॥ ७३।

हिरण्यकशिपुके अनुह्लाद, ह्लाद, वीर्यवान् प्रह्लाद औ चौथा संह्लाद—ये चार प्रसिद्ध पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुए। ह्लादका पुत्र ह्रद हुआ। सुन्द और निसुन्द—ये दोनों संह्लादके पुत्र कहलाते हैं ॥ ७२-७३ ॥

अनुह्लादसुतौ ह्यायुः शिबिकालस्तथैव ह।
विरोचनश्च प्राह्लादिर्बलिर्जज्ञे विरोचनात् ॥ ७४।

अनुह्लादके आयु और शिबिकाल नामक दो पुत्र थे प्रह्लादके विरोचन नामक पुत्र हुआ और विरोचनसे ब नामवाला पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ७४ ॥

बलेः पुत्रशतं त्वासीद् बाणज्येष्ठं नराधिप।
धृतराष्ट्रश्च सूर्यश्च चन्द्रमाश्चेन्द्रतापनः ॥ ७५।
कुम्भनाभो गर्दभाक्षः कुक्षिरित्येवमादयः।
बाणस्तेषामतिबलो ज्येष्ठः पशुपतेः प्रियः ॥ ७६॥

बलिके सौ पुत्र थे। उनमें बाण (सबसे) बड़ा था। राजन् ! धृतराष्ट्र, सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्रतापन, कुम्भना गर्दभाक्ष और कुक्षि आदि (बलिके सौ पुत्र थे)। इन अतिबली बाण बड़ा था और वह शिवका प्रिय भक्त था ।७५-७

पुराकल्पे हि बाणेन प्रसाद्योमापतिं प्रभुम्।
पार्श्वतो विहरिष्यामि इत्येवं याचितो वरः ॥ ७७।

पहले कल्पमें बाणासुरने उमापति शंकरको प्रसन्न क यह वर माँगा था कि 'मैं आपके पास विहार करूँ' ॥ ७७

बाणस्य चेन्द्रदमनो लोहित्यामुपपद्यत।
गणास्तथासुरा राजञ्छतसाहस्रसम्मिताः ॥ ७८।

बाणके लोहिती नामकी पत्नीमें इन्द्रदमन नामक पु उत्पन्न हुआ। राजन् ! लाखों असुर उसके गण थे ॥ ७८।

हिरण्याक्षसुताः पञ्च विद्वांसः सुमहाबलाः।
झर्झरः शकुनिश्चैव भूतसंतापनस्तथा।
महानाभश्च विक्रान्तः कालनाभस्तथैव च ॥ ७९

हिरण्याक्षके झर्झर, शकुनि, भूतसंतापन, महान और पराक्रमी कालनाभ नामक पाँच पुत्र हुए, वे विद्व और परम पराक्रमी थे ॥ ७९ ॥

अभवन् दनुपुत्राश्च शतं तीव्रपराक्रमाः।
तपस्विनो महावीर्याः प्राधान्येन निबोध तान् ॥ ८०।

(अब दनुके वंशका वर्णन करते हैं—) द सौ पुत्र हुए। वे सब परम पराक्रमी, तपस्वी और महावीर्य थे। उनमेंसे मुख्य-मुख्य असुरोंका वर्णन सुनिये ॥ ८० ॥

द्विमूर्धा शकुनिश्चैव तथा शङ्कुशिरा विभुः ।
शङ्कुकर्णो विराधश्च गवेष्ठी दुन्दुभिस्तथा ।
अयोमुखः शम्बरश्च कपिलो वामनस्तथा ॥ ८१ ॥
मरीचिर्मघवांश्चैव इरा शङ्कुशिरा वृकः ।
विक्षोभणश्च केतुश्च केतुवीर्यशतह्रदौ ॥ ८२ ॥
इन्द्रजित् सत्यजिच्चैव वज्रनाभस्तथैव च ।
महानाभश्च विक्रान्तः कालनाभस्तथैव च ॥ ८३ ॥
एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबलः ।
वैश्वानरः पुलोमा च विद्रावणमहासुरौ ॥ ८४ ॥
स्वर्भानुर्वृषपर्वा च तुहुण्डश्च महासुरः ।
सूक्ष्मश्चैवातिचन्द्रश्च ऊर्णनाभो महागिरिः ॥ ८५ ॥
असिलोमा च केशी च शठश्च बलको मदः ।
तथा गगनमूर्धा च कुम्भनाभो महासुरः ॥ ८६ ॥
प्रमदो मयश्च कुपथो हयग्रीवश्च वीर्यवान् ।
वैसृपः सविरूपाक्षः सुपथोऽथ हराहरौ ॥ ८७ ॥
हिरण्यकशिपुश्चैव शतमायश्च शम्बरः ।
शरभः शलभश्चैव विप्रचित्तिश्च वीर्यवान् ॥ ८८ ॥
एते सर्वे दनोः पुत्राः कश्यपादभिजज्ञिरे ।
विप्रचित्तिप्रधानास्ते दानवाः सुमहाबलाः ॥ ८९ ॥

द्विमूर्धा, शकुनि तथा विभु, शङ्कुशिरा, शङ्कुकर्ण, विराध और गवेष्ठी, दुन्दुभि तथा अयोमुख, शम्बर और कपिल, वामन तथा मरीचि, मघवान् और इरा, शङ्कुशिरा, वृक, विक्षोभण और केतु तथा केतुवीर्य, शतह्रद, इन्द्रजित्, सत्यजित् और वज्रनाभ तथा महानाभ और विक्रान्त, कालनाभ, महाभुज एकचक्र और महाबली तारक, वैश्वानर, पुलोमा, विद्रावण और महासुर, स्वर्भानु, वृषपर्वा और महान् असुर तुहुण्ड, सूक्ष्म और अतिचन्द्र तथा ऊर्णनाभ, महागिरि, असिलोमा और केशी एवं शठ तथा बलक, मद तथा गगनमूर्धा और महान् असुर कुम्भनाभ, प्रमद, मय और कुपथ, हयग्रीव और वीर्यवान् वैसृप, विरूपाक्षसहित सुपथ और हर, अहर, हिरण्यकशिपु तथा सैकड़ों प्रकारकी माया जाननेवाला शम्बर, शरभ, शलभ और वीर्यवान् विप्रचित्ति—ये सब दनुके पुत्र कश्यपजीसे उत्पन्न हुए थे। इनमें विप्रचित्ति प्रधान था। ये सब दानव बड़े बलवान् थे॥८१—८९॥

एतेषां यदपत्यं तु तन्न शक्यं नराधिप ।
प्रसंख्यातुं महीपाल पुत्रपौत्राद्यनन्तकम् ॥ ९० ॥

नराधिप ! इनकी जो संतानें हुईं, उनकी गिनती नहीं की जा सकती । महीपाल ! इनके अनन्त पुत्र-पौत्र उत्पन्न हुए ॥ ९० ॥

स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या पुलोम्नश्च सुतात्रयम् ।
उपदानवी हयशिराः शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥ ९१ ॥

स्वर्भानुके प्रभा नामक पुत्री उत्पन्न हुई और पुलोमाके उपदानवी, हयशिरा (तथा शची) तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं । वृषपर्वाके शर्मिष्ठा नामकी पुत्री उत्पन्न हुई ॥ ९१ ॥

पुलोमा कालिका चैव वैश्वानरसुते उभे ।
बह्वपत्ये महावीर्ये मारीचेस्तु परिग्रहः ॥ ९२ ॥

वैश्वानर दानवकी पुलोमा और कालिका नामकी दो पुत्रियाँ हुईं । ये दोनों मरीचिनन्दन कश्यपको विवाही गयीं, ये बड़ी शक्तिशालिनी थीं । इन कन्याओंके बहुत-सी संतानें उत्पन्न हुईं ॥ ९२ ॥

तयोः पुत्रसहस्राणि षष्टिं दानवनन्दनान् ।
चतुर्दशशतानन्यान् हिरण्यपुरवासिनः ॥ ९३ ॥
मारीचिर्जनयामास महता तपसान्वितः ।
पौलोमाः कालकेयाश्च दानवास्ते महाबलाः ॥ ९४ ॥
अवध्या देवतानां च हिरण्यपुरवासिनः ।
कृताः पितामहेनाजौ निहताः सव्यसाचिना ॥ ९५ ॥

परम तपस्वी मारीचि (कश्यप)ने उन दोनों स्त्रियोंमें दानवोंको आनन्द देनेवाले साठ हजार पुत्रोंको जन्म दिया । फिर चौदह सौ पुत्र और उत्पन्न किये । ये सब हिरण्यपुरमें रहते थे । इन हिरण्यपुरमें रहनेवाले महाबली पौलोम और कालकेय दानवोंको ब्रह्माजीने (वर देकर) देवताओंसे भी अवध्य (न मारे जानेयोग्य) कर दिया था । अर्जुनने इनको रणमें मार डाला था ॥९३—९५॥

प्रभाया नहुषः पुत्रः सृंजयश्च शचीसुतः ।
पूरुं जज्ञेऽथ शर्मिष्ठा दुष्यन्तमुपदानवी ॥ ९६ ॥

प्रभाके नहुष नामक पुत्र हुआ और शचीके सृंजय । शर्मिष्ठाने पूरुको उत्पन्न किया और उपदानवीने दुष्यन्तको ॥

ततोऽपरे महावीर्या दानवास्त्वतिदारुणाः ।
सिंहिकायामथोत्पन्ना विप्रचित्तेः सुतास्तदा॥ ९७ ॥
दैत्यदानवसंयोगाज्जातास्तीव्रपराक्रमाः ।
सैंहिकेया इति ख्यातास्त्रयोदश महाबलाः ॥ ९८ ॥

तदनन्तर और भी बहुत-से महावीर्यवान् अतिदारुण दानव सिंहिकामें विप्रचित्तिसे उत्पन्न हुए, फिर दैत्य-दानवोंके संयोगसे विप्रचित्तिके बहुत-से तीव्र पराक्रमी पुत्र हुए । इनमें तेरह महाबली दानव 'सैंहिकेय' नामसे प्रसिद्ध हैं ॥९७-९८॥

व्यंशः शल्यश्च बलिनौ नभश्चैव महाबलः ।
वातापिर्नमुचिश्चैव इल्वलः खसृमस्तथा ॥ ९९ ॥
आञ्जिको नरकश्चैव कालनाभस्तथैव च ।
शुकः पोतरणश्चैव वज्रनाभश्च वीर्यवान् ॥१००॥

(उनके नाम इस प्रकार हैं—) बलवान् व्यंश और शल्य, महाबली नभ, वातापि और नमुचि, इल्वल तथा खसृम, आञ्जिक और नरक तथा कालनाभ, शुक और पोतरण तथा वीर्यवान् वज्रनाभ ॥ ९९-१०० ॥

राहुर्ज्येष्ठस्तु तेषां वै सूर्यचन्द्रविमर्दनः।
मूकश्चैव तुहुण्डश्च ह्रादपुत्रौ बभूवतुः ॥१०१॥

इनमें राहु सबसे बड़ा है, जो सूर्य तथा चन्द्रमाको पीड़ा देता रहता है। ह्रादके मूक और तुहुण्ड नामवाले दो पुत्र उत्पन्न हुए॥ १०१ ॥

मारीचः सुन्दपुत्रश्च ताडकायां व्यजायत।
शिवमाणस्तथा चैव सुरकल्पश्च वीर्यवान् ॥१०२॥

सुन्दके ताडकामें मारीच नामक पुत्र उत्पन्न हुआ तथा (सुन्द और ताडकाके) शिवमाण और वीर्यवान् सुरकल्प नामक पुत्र भी उत्पन्न हुए॥ १०२ ॥

एते वै दानवाः श्रेष्ठा दनुवंशविवर्द्धनाः।
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥१०३॥

ये सभी दानव श्रेष्ठ और दनुके वंशका विस्तार करनेवाले हैं, इनके सैकड़ों पुत्र और हजारों पौत्र हैं ॥१०३॥

संह्रादस्य तु दैत्यस्य निवातकवचाः कुले।
समुत्पन्नाः सुतपसा महान्तो भावितात्मनः ॥१०४॥

संह्राद दैत्यके कुलमें निवातकवच उत्पन्न हुए, वे सब उदार थे और उन्होंने बड़ा भारी तप करके अपने चित्तको पवित्र कर लिया था॥ १०४ ॥

तिस्रः कोट्यः सुतास्तेषां मणिमत्यां निवासिनाम्।
तेऽप्यवध्यास्तु देवानामर्जुनेन निपातिताः ॥१०५॥

वे मणिमती नगरीमें निवास करते थे। उनके तीन करोड़ पुत्र थे। वे भी देवताओंसे अवध्य थे, उनको भी अर्जुनने मार डाला था॥ १०५ ॥

षट् सुताः सुमहासत्त्वास्ताम्रायाः परिकीर्तिताः।
काकी श्येनी च भासी च सुग्रीवी शुचि गृध्रिका॥१०६॥

ताम्राके काकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, शुचि और गृध्रिका नामकी अत्यन्त बलशालिनी छः पुत्रियाँ कही जाती हैं॥ १०६ ॥

काकी काकानजनयदुलूकी प्रत्युलूककान्।
श्येनी श्येनांस्तथा भासी भासान् गृध्रांश्च गृध्र्यपि॥
शुचिरौदकान् पक्षिगणान् सुग्रीवी तु परंतप।
अश्वानुष्ट्रान् गर्दभांश्च ताम्रावंशः प्रकीर्तितः ॥१०८॥

परंतप ! काकीने कौओंको, उलूकीने उल्लुओंको, श्येनीनें श्येनों (बाजों) को, भासीने भास नामक पक्षियोंको और गृध्रीने गीधोंको उत्पन्न किया। शुचिने जलमें रहनेवाले पक्षियोंको और सुग्रीवीने घोड़े, ऊँट तथा गधोंको जन्म दिया। यह मैंने ताम्राके वंशका वर्णन किया है॥१०७-१०८॥

विनतायास्तु पुत्रौ द्वावरुणो गरुडस्तथा।
सुपर्णः पततां श्रेष्ठो दारुणः स्वेन कर्मणा ॥१०९॥

विनताके अरुण और गरुड नामक दो पुत्र हुए। इनमेंसे पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड अपने कर्मके कारण बड़े दारु माने गये हैं॥ १०९ ॥

सुरसायाः सहस्रं तु सर्पाणाममितौजसाम्।
अनेकशिरसां तात खेचराणां महात्मनाम् ॥११०॥

सुरसाके हजारों सर्प उत्पन्न हुए। तात ! वे सब स अमितपराक्रमी, अनेक फनोंवाले, आकाशमें विचरण करनेवाले तथा विशालकाय हैं॥ ११० ॥

काद्रवेयाश्च बलिनः सहस्रममितौजसः।
सुपर्णवशगा नागा जज्ञिरेऽनेकमस्तकाः ॥१११॥
तेषां प्रधानाः सततं शेषवासुकितक्षकाः।
ऐरावतो महापद्मः कम्बलाश्वतरावुभौ ॥११२॥
एलापत्रस्तथा शंखः कर्कोटकधनंजयौ।
महानीलमहाकर्णौ धृतराष्ट्रबलाहकौ ॥११३॥
कुहरः पुष्पदंष्ट्रश्च दुर्मुखः सुमुखस्तथा।
शङ्खश्च शङ्खपालश्च कपिलो वामनस्तथा ॥११४॥
नहुषः शङ्खरोमा च मणिरित्येवमादयः।
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च गरुडेन निपातिताः ॥११५॥

कद्रूके भी परम पराक्रमी हजारों सर्प उत्पन्न हुए। उन बलवान् सर्पोंके अनेक मस्तक हैं और वे सर्वदा गरुडके अधीन रहते हैं। उनमें शेष, वासुकि, तक्षक, ऐरावत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, एलापत्र, शङ्ख, कर्कोट धनंजय, महानील, महाकर्ण, धृतराष्ट्र, बलाहक, कुहर, पुष्पदंष्ट्र, दुर्मुख, सुमुख, शङ्ख, शङ्खपाल, कपिल, वामन, नहुष, शङ्खरोमा तथा मणि आदि प्रधान हैं। इनके पुत्र और पौत्रोंको गरुडने मार डाला था॥ १११–११५॥

चतुर्दश सहस्राणि क्रूराणां पवनाशिनाम्।
गणं क्रोधवशं विद्धि तस्य सर्वे च दंष्ट्रिणः ॥११६॥

वायु पीकर रहनेवाले चौदह हजार क्रूर सर्पोंक क्रोधवश नामवाला एक गण है। उस गणके समस्त सर्प दाढ़ोंवाले हैं॥ ११६ ॥

स्थलजाः पक्षिणोऽब्जाश्च धरायाः प्रसवाः स्मृताः।
गास्तु वै जनयामास सुरभिर्महिषांस्तथा ॥११७॥

स्थल और जलके पक्षी धराकी संतान कहलाते हैं। सुरभिने गौ, बैल और भैंसोंको उत्पन्न किया॥ ११७ ॥

इरा वृक्षलतावल्लीस्तृणजातीश्च सर्वशः।
खशा तु यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा ॥११८॥

इराने वृक्ष, लता, बेल तथा सब प्रकारकी घासोंको उत्पन्न किया। खशाने यक्षों और राक्षसोंको तथा मुनिने अप्सराओंको जन्म दिया ॥ ११८ ॥

अरिष्टा तु महासत्त्वान् गन्धर्वानमितौजसः।
एते कश्यपदायादाः कीर्तिताः स्थाणुजंगमाः ॥११९॥

अरिष्टाने महासत्त्ववाले अमित पराक्रमी गन्धर्वोंको उत्पन्न किया। यह कश्यप ऋषिकी स्थावर और जंगम संतानोंका वर्णन हुआ ॥ ११९ ॥

तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः।
एष मन्वन्तरे तात सर्गः स्वारोचिषे स्मृतः ॥१२०॥

इनके सैकड़ों पुत्र और हजारों पौत्र हुए। तात! यह स्वारोचिष मन्वन्तरकी सृष्टिका वर्णन है ॥ १२० ॥

वैवस्वते तु महति वारुणे वितते क्रतौ।
जुह्वानस्य ब्रह्मणो वै प्रजासर्ग इहोच्यते ॥१२१॥

जब वैवस्वत मन्वन्तरमें वरुणदेवतासम्बन्धी बड़ा भारी यज्ञ चल रहा था, तब ब्रह्माजीके आहुति देते समय प्रजाओंको रचनेका जो क्रम चला था, उसका यहाँ वर्णन किया जाता है ॥ १२१ ॥

पूर्वं यत्र तु ब्रह्मर्षीनुत्पन्नान् सप्त मानसान्।
पुत्रत्वे कल्पयामास स्वयमेव पितामहः ॥१२२॥

उस समय पितामह ब्रह्माने पहले अपने मनके संकल्पसे उत्पन्न हुए सात ब्रह्मर्षियोंको स्वयं ही अपने औरस पुत्रके रूपमें स्वीकार किया ॥ १२२ ॥

ततो विरोधे देवानां दानवानां च भारत।
दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम् ॥१२३॥

भारत! तदनन्तर जब देवता और दैत्योंमें विरोध होनेपर दितिके पुत्र नष्ट हो गये, तब उसने (महर्षि) कश्यपको (फिर) प्रसन्न किया ॥ १२३ ॥

तां कश्यपः प्रसन्नात्मा सम्यगाराधितस्तया।
वरेण च्छन्दयामास सा च वव्रे वरं ततः ॥१२४॥
पुत्रमिन्द्रवधार्थाय समर्थममितौजसम्।
स च तस्यै वरं प्रादात् प्रार्थितं सुमहातपाः ॥१२५॥

उसके भलीभाँति आराधना करनेपर कश्यपजीका चित्त प्रसन्न हो गया और उन्होंने उससे वर माँगनेके लिये कहा। तब उस देवीने वर माँगा कि 'मुझे इन्द्रका वध करनेके लिये अमितपराक्रमी पुत्र दीजिये।' यह सुनकर उन महातपस्वी कश्यपने उसका माँगा हुआ वर उसको दे दिया ॥ १२४-१२५ ॥

दत्त्वा च वरमव्यग्रो मारीचस्तामभाषत।
भविष्यति सुतस्तेऽयं यद्येवं धारयिष्यसि ॥१२६॥
इन्द्रं सुतो निहन्ता ते गर्भं वै शरदां शतम्।
यदि धारयसे शौचं तत्परा व्रतमास्थिता ॥१२७॥

वह वर देकर कश्यप मुनि उससे शान्तभावसे बोले—'यदि तुम इस (गर्भ) को मेरी बतायी हुई विधिसे धारण कर सकोगी तो तुम्हारा पुत्र इन्द्रको मारनेवाला होगा। तुम्हें पवित्रतापूर्वक रहनेका व्रत लेकर सौ वर्षतक अपने उदरमें इस गर्भको धारण करना पड़ेगा। यदि तुम ऐसा कर सकोगी तो वह पुत्र इन्द्रको मारनेवाला होगा' ॥ १२६-१२७ ॥

तथेत्यभिहितो भर्ता तया देव्या महातपाः।
धारयामास गर्भं तु शुचिः सा वसुधाधिप ॥१२८॥

तब उस देवीने अपने महातपस्वी स्वामीसे कहा कि 'अच्छा, मैं ऐसा ही करूँगी।' राजन्! फिर वह गर्भको धारण कर पवित्रतापूर्वक रहने लगी ॥ १२८ ॥

ततोऽभ्युपागमद् दित्यां गर्भमाधाय कश्यपः।
रोचयन् वै गणश्रेष्ठं देवानाममितौजसाम् ॥१२९॥
तेजः सम्भृत्य दुर्धर्षमवध्यममरैरपि।
जगाम पर्वतायैव तपसे शंसितव्रतः ॥१३०॥

अमितपराक्रमी देवताओंके श्रेष्ठ गणको प्रकाशित करनेवाले कश्यपजी इस प्रकार दितिमें गर्भको स्थापित कर वहाँसे चल दिये। वे प्रशंसित तपवाले (महर्षि दितिमें) देवताओंसे भी अवध्य अपने दुर्धर्ष तेजको स्थापित करके तप करनेके लिये पर्वतपर चले गये ॥ १२९-१३० ॥

तस्याश्चैवान्तरप्रेप्सुरभवत् पाकशासनः।
ऊने वर्षशते चास्या ददर्शान्तरमच्युतः ॥१३१॥

(इधर) इन्द्र उसके छिद्रको ढूँढ़ने लगे और अच्युत इन्द्रने सौ वर्ष पूर्ण होनेसे पहले ही उसका दोष देख लिया ॥ १३१ ॥

अकृत्वा पादयोः शौचं दितिः शयनमाविशत्।
निद्रां च कारयामास तस्याः कुक्षिं प्रविश्य सः ॥१३२॥

(एक बार) दिति बिना पैर धोये ही शयन करनेके लिये चली गयी। इसी समय इन्द्रने उसकी कोखमें घुसकर उसे (अपनी मायासे) निद्राके अधीन कर दिया ॥ १३२ ॥

वज्रपाणिस्ततो गर्भं सप्तधा तं न्यकृन्तत।
स पाट्यमानो वज्रेण गर्भस्तु प्ररुरोद ह ॥१३३॥

फिर वज्रपाणि इन्द्रने उस गर्भके सात टुकड़े कर डाले, वज्रसे काटे जानेपर वह गर्भ जोर-जोरसे रोने लगा ॥ १३३ ॥

मा रोदीरिति तं शक्रः पुनः पुनरथाब्रवीत्।
सोऽभवत् सप्तधा गर्भस्तमिन्द्रो रुषितः पुनः ॥१३४॥
एकैकं सप्तधा चक्रे वज्रेणैवारिकर्शनः।
मरुतो नाम देवास्ते बभूवुर्भरतर्षभ ॥१३५॥

तब उस गर्भसे इन्द्रने बार-बार 'मा रोदीः—मत रो' इस प्रकार कहा और उस गर्भके सात टुकड़े हो गये, तब

शत्रुओंको नष्ट करनेवाले इन्द्र फिर क्रोधमें भरकर वज्रद्वारा उस प्रत्येक टुकड़ेके भी सात-सात टुकड़े कर डाले। भरतर्षभ ! वे मरुत् नामक (उन्चास) देवता हुए ॥

यथैवोक्तं मघवता तथैव मरुतोऽभवन् ।
देवा एकोनपञ्चाशत् सहाया वज्रपाणिनः ॥१३६॥

इन्द्रने चूँकि (मा रोदीः) कहा था, इसलिये वे मरुत् नामक देवता हो गये । वे उन्चास हैं और वज्रपाणि इन्द्रकी सहायता करते हैं ॥ १३६ ॥

तेषामेवं प्रवृद्धानां भूतानां जनमेजय ।
रोचयन् वै गणश्रेष्ठं देवानाममितौजसाम् ॥१३७॥
निकायेषु निकायेषु हरिः प्रादात् प्रजापतीन् ।
क्रमशस्तानि राज्यानि पृथुपूर्वाणि भारत ॥१३८॥

जनमेजय ! जब वे प्राणी इस प्रकार बढ़ गये, तब अमित-पराक्रमी देवताओंकी श्रेष्ठ मण्डलीको प्रकाशित करनेवाले हरिने उनकी टोलियोंमें प्रजापति नियुक्त कर दिये । भारत ! फिर उन्होंने पृथुको पहले राज्य अर्पण किया, तबसे ये राज्य क्रमशः चले आ रहे हैं ॥ १३७-१३८ ॥

स हरिः पुरुषो वीरः कृष्णो जिष्णुः प्रजापतिः ।
पर्जन्यस्तपनोऽव्यक्तस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥१३९॥

वे हरि पुरुष, वीर, कृष्ण, जिष्णु और प्रजापति हैं तथा वे ही मेघ, सूर्य और अव्यक्त हैं एवं यह सब जगत् उन्हींका है ॥ १३९ ॥

भूतसर्गमिमं सम्यग्जानतो भरतर्षभ ।
मरुतां च शुभं जन्म शृण्वतः पठतोऽपि वा ।
नावृत्तिभयमस्तीह परलोकभयं कुतः ॥१४०॥

भरतर्षभ ! इस भूतसृष्टिको पूर्णरूपसे जाननेवाले और मरुतोंके शुभ जन्मको सुनने या पढ़नेवालेको जन्म-मरणका भय नहीं रहता, फिर परलोकका भय तो होगा ही कहाँसे ? ॥ १४० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि मरुदुत्पत्तिकथने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें मरुतोंकी उत्पत्तिका वर्णनविषयक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

पृथुका उपाख्यान, राज्यवितरण और दिक्पालोंकी प्रतिष्ठा

वैशम्पायन उवाच

अभिषिच्याधिराज्ये तु पृथुं वैन्यं पितामहः ।
ततः क्रमेण राज्यानि व्यादेष्टुमुपचक्रमे ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! पितामह (मैं विराजमान हरि) ने राजाओंके ऊपर भी अधिराजारूपसे वेनके पुत्र पृथुका अभिषेक किया, फिर (उन प्रजापतिने) क्रमशः राज्यका वितरण आरम्भ किया ॥ १ ॥

द्विजानां वीरुधां चैव नक्षत्रग्रहयोस्तथा ।
यज्ञानां तपसां चैव सोमं राज्येऽभ्यषेचयत् ॥ २ ॥

(प्रजापतिने) द्विज, लता, नक्षत्र, ग्रह, यज्ञ और तपके राज्यपर चन्द्रमाका अभिषेक किया ॥ २ ॥

अपां तु वरुणं राज्ये राज्ञां वैश्रवणं प्रभुम् ।
बृहस्पतिं तु विश्वेषां ददावाङ्गिरसं पतिम् ॥ ३ ॥

जलके राज्यपर वरुणका तथा राजाओं (और यक्षों)के राज्यपर विश्रवाके पुत्र कुबेरका अभिषेक कर दिया । विश्वेदेवोंपर अङ्गिरसगोत्री बृहस्पतिको राजा बना दिया ॥ ३ ॥

भृगूणामधिपं चैव काव्यं राज्येऽभ्यषेचयत् ।
आदित्यानां तथा विष्णुं वसूनामथ पावकम् ॥ ४ ॥

भृगुवंशियोंके स्वामीरूपसे शुक्राचार्यका राज्याभिषेक कर दिया । आदित्योंके ऊपर विष्णुको और वसुओंके ऊपर अग्निको (राजा बना दिया) ॥ ४ ॥

प्रजापतीनां दक्षं तु मरुतामथ वासवम् ।
दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादममितौजसम् ॥ ५ ।
वैवस्वतं च पितॄणां यमं राज्येऽभ्यषेचयत् ।

दक्षको प्रजापतियोंका, इन्द्रको मरुतोंका तथा अमि पराक्रमी प्रह्लादको दैत्य और दानवोंका राजा बना दिया ए पितरोंके राज्यपर विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र यमक अभिषेक कर दिया ॥ ५½ ॥

मातॄणां च व्रतानां च मन्त्राणां च तथा गवाम्॥ ६ ।
यक्षाणां राक्षसानां च पार्थिवानां तथैव च ।
नारायणं तु साध्यानां रुद्राणां वृषभध्वजम् ॥ ७ ।

षोडशमातृका, व्रत, मन्त्र, गौ, यक्ष, राक्षस, पार्थि पदार्थ और साध्य देवताओंके राज्यपर नारायणका अभिषे कर दिया और रुद्रोंके राज्यपर वृषभध्वज (शंकरजी अभिषिक्त हुए ॥ ६-७ ॥

विप्रचित्तिं तु राजानं दानवानामथादिशत् ।
सर्वभूतपिशाचानां गिरिशं शूलपाणिनम् ॥ ८ ।

विप्रचित्तिको दानवोंका राजा बननेका आदेश

दिया और सकल भूत-पिशाचोंका शूलपाणि महादेवजीको राजा वना दिया ॥ ८ ॥

शैलानां हिमवन्तं च नदीनामथ सागरम् ।
गन्धानां मरुतां चैव भूतानामशरीरिणाम् ।
शब्दाकाशवतां चैव वायुं च बलिनां वरम् ॥ ९ ॥

हिमाचलको पर्वतोंका और समुद्रको नदियोंका राजा बना दिया । गन्धद्रव्यों, मरुद्गणों, अमूर्त भूतों तथा शब्द और आकाशवाली वस्तुओंके राज्यपर भी बलवानोंमें श्रेष्ठ वायुका अभिषेक कर दिया ॥ ९ ॥

गन्धर्वाणामधिपतिं चक्रे चित्ररथं प्रभुम् ।
नागानां वासुकिं चक्रे सर्पाणामथ तक्षकम् ॥ १० ॥

प्रभावशाली चित्ररथको गन्धर्वोंका स्वामी बना दिया, वासुकिको नागोंका और तक्षकको सर्पोंका राजा बनाया ॥

वारणानां च राजानमैरावतमथादिशत् ।
उच्चैःश्रवसमश्वानां गरुडं चैव पक्षिणाम् ॥ ११ ॥

हाथियोंका ऐरावतको, घोड़ोंका उच्चैःश्रवाको और पक्षियोंका गरुड़को राजा बना दिया ॥ ११ ॥

मृगाणामथ शार्दूलं गोवृषं च गवां पतिम् ।
वनस्पतीनां राजानं प्लक्षमेवादिशत् प्रभुम् ॥ १२ ॥

वनचारी पशुओंपर सिंहको तथा गौओंपर साँड़को स्वामी बनाया और पाकड़को वृक्षोंका प्रभावशाली राजा बना दिया ॥ १२ ॥

सागराणां नदीनां च मेघानां वर्षणस्य च ।
आदित्यानामधिपतिं पर्जन्यमभिषिक्तवान् ॥ १३ ॥

सागर, नदी, मेघ, वर्षा और सूर्यकी किरणोंके अधिपति-पदपर पर्जन्यका अभिषेक कर दिया ॥ १३ ॥

सर्वेषां दंष्ट्रिणां शेषं राजानमभ्यषेचयत् ।
सरीसृपाणां सर्पाणां राजानं चैव तक्षकम् ॥ १४ ॥

दाढ़वाले समस्त सर्पोंके ऊपर शेषको, (निर्विष डुण्डुभ आदि) सर्पों और सरीसृपों (पेटके बलपर चलनेवाले जीवों) के ऊपर तक्षकको राजा बना दिया ॥ १४ ॥

गन्धर्वाप्सरसां चैव कामदेवं तथा प्रभुम् ।
ऋतूनामथ मासानां दिवसानां तथैव च ॥ १५ ॥
पक्षाणां च क्षपाणां च मुहूर्ततिथिपर्वणाम् ।
कलाकाष्ठाप्रमाणानां गतेरयनयोस्तथा ॥ १६ ॥
गणितस्याथ योगस्य चक्रे संवत्सरं प्रभुम् ।

गन्धर्व और अप्सराओंके ऊपर ऐश्वर्यशाली कामदेवका अभिषेक कर दिया । ऋतु, मास, दिन, पक्ष, रात्रि, मुहूर्त, तिथि, पर्व, कला-काष्ठाके प्रमाण—उत्तरायण और दक्षिणायनकी गति तथा उपराग अर्थात् ग्रहण (के अभिमानी देवताओं) पर प्रभु संवत्सरका अभिषेक कर दिया ॥ १५-१६½ ॥

एवं विभज्य राज्यानि क्रमेण स पितामहः ॥ १७ ॥
दिशापालानथ ततः स्थापयामास भारत ।

भारत ! पितामहने इस प्रकार क्रमपूर्वक राज्योंका विभाग करके फिर दिक्पालोंकी स्थापना की थी ॥ १७½ ॥

पूर्वस्यां दिशि पुत्रं तु वैराजस्य प्रजापतेः ॥ १८ ॥
दिशापालं सुधन्वानं राजानं चाभ्यषेचयत् ।

उन्होंने वैराज प्रजापतिके पुत्र राजा सुधन्वाको पूर्व दिशाके दिक्पालपदपर अभिषेक कर दिया ॥ १८½ ॥

दक्षिणस्यां महात्मानं कर्दमस्य प्रजापतेः ॥ १९ ॥
पुत्रं शङ्खपदं नाम राजानं सोऽभ्यषेचयत् ।

कर्दम प्रजापतिके पुत्र महात्मा राजा शङ्खपदको दक्षिण दिशाके दिक्पाल-पदपर अभिषिक्त किया ॥ १९½ ॥

पश्चिमायां दिशि तथा रजसः पुत्रमच्युतम् ॥ २० ॥
केतुमन्तं महात्मानं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ।

इसी प्रकार पश्चिम दिशामें रजस्के पुत्र अच्युत महात्मा केतुमान्का राजा (दिक्पाल) के पदपर अभिषेक कर दिया ॥ २०½ ॥

तथा हिरण्यरोमाणं पर्जन्यस्य प्रजापतेः ॥ २१ ॥
उदीच्यां दिशि दुर्धर्षं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ।

इसी प्रकार उत्तर दिशामें पर्जन्य प्रजापतिके पुत्र दुर्धर्ष हिरण्यरोमाका राजपद (दिक्पाल-पद) पर अभिषेक कर दिया ॥ २१½ ॥

तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता ॥ २२ ॥
यथाप्रदेशमद्यापि धर्मेण परिपाल्यते ।

उन पुरुषोंद्वारा सातों द्वीप और पर्वतोंसहित सारी पृथ्वी और उसके वे-वे प्रदेश आज भी धर्मानुसार पालित हो रहे हैं ॥ २२½ ॥

राजसूयाभिषिक्तस्तु पृथुरेभिर्नराधिपैः ।
वेददृष्टेन विधिना राजराज्ये नराधिप ॥ २३ ॥

जनेश्वर ! इन राजाओंने वेदमें वर्णित विधिसे राजसूय यज्ञमें राजाओंके भी राजाके पदपर पृथुका अभिषेक किया था ॥ २३ ॥

ततो मन्वन्तरेऽतीते चाक्षुषेऽमिततेजसि ।
वैवस्वताय मनवे ब्रह्मा राज्यमथादिशत् ।
तस्य विस्तरमाख्यास्ये मनोर्वैवस्वतस्य ह ॥ २४ ॥
तवानुकूल्याद् राजेन्द्र यदि शुश्रूषसेऽनघ ।
महद्ध्येतदधिष्ठानं पुराणं परिकीर्तितम् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्गवासकरं शुभम् ॥ २५ ॥

तदनन्तर अमिततेजस्वी चाक्षुष मनुके मन्वन्तरके बीतनेपर ब्रह्माजीने वैवस्वत मनुको राज्य दे दिया था । निष्पाप राजेन्द्र ! यदि आप अनुकूल रहकर सुनना चाहेंगे

तो मैं आपसे वैवस्वत मनुके विस्तारका वर्णन करूँगा । मैंने आपको यह बड़ा भारी प्राचीन इतिहास कह सुनाया । इसको सुननेसे प्रतिष्ठा बढ़ती है, धन मिलता है, यश मिलता है, आयुकी वृद्धि होती है और इस शुभ आख्यानको सुननेसे (अन्तमें) स्वर्गकी प्राप्ति होती है ॥ २४-२५ ॥

जनमेजय उवाच

विस्तरेण पृथोर्जन्म वैशम्पायन कीर्तय ।
यथा महात्मना तेन दुग्धा चेयं वसुंधरा ॥ २६ ॥

जनमेजयने कहा—वैशम्पायनजी ! आप पृथुके जन्मका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये, उन महात्माने इस पृथ्वीको किस प्रकार दुहा था ? ॥ २६ ॥

यथा च पितृभिर्दुग्धा यथा देवैर्यथर्षिभिः ।
यथा दैत्यैश्च नागैश्च यथा यक्षैर्यथा द्रुमैः ॥ २७ ॥
यथा शैलैः पिशाचैश्च गन्धर्वैश्च द्विजोत्तमैः ।
राक्षसैश्च महासत्त्वैर्यथा दुग्धा वसुंधरा ॥ २८ ॥
तेषां पात्रविशेषांश्च वैशम्पायन कीर्तय ।
वत्सान् क्षीरविशेषांश्च दोग्धारं चानुपूर्वशः ॥ २९ ॥

पितरोंने इस पृथ्वीको जिस प्रकार दुहा था, देवता तथा ऋषियोंने, दैत्यों और नागोंने, यक्षों और वृक्षोंने इस पृथ्वीको जिस प्रकार दुहा था तथा पर्वत, पिशाच, गन्धर्व, द्विजोत्तम और महान् शक्तिशाली राक्षसोंने इस वसुंधरा पृथ्वीको जिस प्रकार दुहा था, वह बताइये । वैशम्पायनजी ! इन सबके पास कैसे-कैसे पात्र थे, कैसे-कैसे बछड़े थे, कैसा-कैसा दूध दुहा गया था और कौन-कौन दुहनेवाले थे ? इन सबका क्रमपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ २७—२९ ॥

यस्माच्च कारणात् पाणिर्वेनस्य मथितः पुरा ।
क्रुद्धैर्महर्षिभिस्तात कारणं तच्च कीर्तय ॥ ३० ॥

तात ! प्राचीनकालमें महर्षियोंने जिस कारणसे वेनके हाथका मन्थन किया था और महर्षियोंने जिस कारण क्रोध किया था, उस कारणका भी आप वर्णन कीजिये ॥ ३० ॥

वैशम्पायन उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि पृथोर्वैन्यस्य विस्तरम् ।
एकाग्रः प्रयतश्चैव शृणुष्व जनमेजय ॥ ३१ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय ! मैं तुमसे वेनके पुत्र पृथुका चरित्र अब विस्तारपूर्वक कहता हूँ, इस चरित्रको एकाग्र और सावधान होकर सुनो ॥ ३१ ॥

नाशुचेः क्षुद्रमनसः कुशिष्यायाव्रताय च ।
कीर्तनीयमिदं राजन् कृतघ्नायाहिताय वा ॥ ३२ ॥

राजन् ! जिसका मन तुच्छ हो, जो अपवित्र हो, जो कुशिष्य हो और जो व्रत न करता हो तथा जो कृतघ्न हो एवं जो संसारका अहित करनेवाला हो, उससे इस चरित्रका वर्णन नहीं करना चाहिये ॥ ३२ ॥

स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं धर्म्यं वेदेन सम्मितम् ।
रहस्यमृषिभिः प्रोक्तं शृणु राजन् यथातथम् ॥ ३३ ॥

राजन् ! यह (इतिहास) स्वर्ग, यश, आयु तथा धर्मकी प्राप्ति करानेवाला और वेदके समान है । ऋषियोंने इस रहस्यका वर्णन किया है, इसे तुम यथार्थ रीतिसे सुनो ॥ ३३ ॥

यश्चैनं कथयेन्नित्यं पृथोर्वैन्यस्य विस्तरम् ।
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य न स शोचेत् कृताकृतैः ॥ ३४ ॥

जो पुरुष ब्राह्मणोंको प्रणाम करके वेनके पुत्र पृथुके इस चरित्रको विस्तारपूर्वक कहता है, उसे कार्याकार्यके (मैंने सदा पाप कर्म किये, धर्म कभी नहीं किया, ऐसे) पश्चात्तापसे शोक नहीं करना पड़ता अर्थात् इस चरित्रको सुननेसे सब प्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं और सब यज्ञोंके फल प्राप्त होते हैं ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पृथूपाख्याने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पृथुका उपाख्यानविषयक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

पृथुका उपाख्यान—वेनका अत्याचार करके नष्ट होना और पृथुका जन्म तथा चरित्र

वैशम्पायन उवाच

आसीद् धर्मस्य गोप्ता वै पूर्वमत्रिसमः प्रभुः ।
अत्रिवंशसमुत्पन्नस्त्वङ्गो नाम प्रजापतिः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! प्राचीन कालकी बात है, धर्मके रक्षक अत्रिके वंशमें एक प्रजापति उत्पन्न हुए, जिनका नाम था अङ्ग । वे अत्रिके ही समान प्रभावशाली थे ॥ १ ॥

तस्य पुत्रोऽभवद् वेनो नात्यर्थं धर्मकोविदः ।
जातो मृत्युसुतायां वै सुनीथायां प्रजापतिः ॥ २ ॥

उनका पुत्र वेन हुआ, परंतु उसे धर्मके रहस्यका पता न था । वह राजा वेन मृत्युकी पुत्री सुनीथाके गर्भसे उत्पन्न हुआ था ॥ २ ॥

स मातामहदोषेण वेनः कालात्मजाऽऽत्मजः ।
स्वधर्मं पृष्ठतः कृत्वा कामाल्लोभेष्ववर्तत ॥ ३

कालकी पुत्री सुनीथाका पुत्र वह वेन नानाके दोष अपने धर्मकी उपेक्षा कर कामके कारण लोभमें फँस गया ॥३

मर्यादां स्थापयामास धर्मापेतां स पार्थिवः ।

वेदधर्मानतिक्रम्य सोऽधर्मनिरतोऽभवत् ॥ ४ ॥

वह राजा धर्मविहीन मर्यादाको स्थापित करने लगा और वेदोक्त धर्मोंका उल्लङ्घन कर अधर्ममें फँस गया ॥ ४ ॥

निःस्वाध्यायवषट्कारास्तस्मिन् राजनि शासति।
प्रवृत्तं न पपुः सोमं हुतं यज्ञेषु देवताः ॥ ५ ॥

उस राजाके शासनकालमें देवतालोग (उनकी तृप्तिके लिये किये जानेवाले) स्वाध्याय और वषट्कारसे वञ्चित हो गये थे; इसलिये अपने उद्देश्यसे अर्पित तथा यज्ञकुण्डोंमें होमे गये सोमका भी वे पान नहीं करते थे ॥ ५ ॥

न यष्टव्यं न होतव्यमिति तस्य प्रजापतेः ।
आसीत् प्रतिज्ञा क्रूरेयं विनाशे प्रत्युपस्थिते ॥ ६ ॥

उसका विनाशकाल समीप आ गया था, अतः उस प्रजापतिने यह क्रूर प्रतिज्ञा घोषित की कि 'मेरे राज्यमें कोई यज्ञ और हवन न करे' ॥ ६ ॥

अहमिज्यश्च यष्टा च यज्ञश्चेति कुरूद्वह।
मयि यज्ञो विधातव्यो मयि होतव्यमित्यपि ॥ ७ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! (वह कहता था कि) 'मैं ही यज्ञोंद्वारा आराध्य और मैं ही यज्ञ करनेवाला हूँ तथा यज्ञ भी मैं ही हूँ । मेरे लिये ही यज्ञ और हवन करना चाहिये' ॥ ७ ॥

तमतिक्रान्तमर्यादमाददानमसाम्प्रतम् ।
ऊचुर्महर्षयः सर्वे मरीचिप्रमुखास्तदा ॥ ८ ॥

जब वह इस प्रकार मर्यादाको तोड़ने लगा और अनुचितरूपसे (कर आदि लगाकर) सब कुछ लूटने लगा, तब जो मरीचि आदि बड़े-बड़े ऋषि थे, उन्होंने उससे कहा—॥८॥

वयं दीक्षां प्रवेक्ष्यामः संवत्सरगणान् बहून्।
अधर्मं कुरु मा वेन नैष धर्मः सनातनः ॥ ९ ॥

'हम बहुत वर्षोंमें पूर्ण होनेवाली दीक्षामें प्रवेश करेंगे । वेन ! अब तुम अधर्म न करो; क्योंकि यह सनातन धर्म नहीं है ॥ ९ ॥

निधनेऽत्र प्रसूतस्त्वं प्रजापतिरसंशयम् ।
प्रजाश्च पालयिष्येऽहमिति ते समयः कृतः ॥ १० ॥

'निःसंदेह तुम इस वंशमें प्रजापतिके रूपमें उत्पन्न हुए हो और तुमने प्रतिज्ञा की थी कि 'मैं प्रजाका पालन करूँगा' ॥१०॥

तांस्तदा ब्रुवतः सर्वान् महर्षीनब्रवीत् तदा ।
वेनः प्रहस्य दुर्बुद्धिरिममर्थमनर्थवित् ॥ ११ ॥

जब महर्षि इस प्रकार कह रहे थे, उस समय अनर्थको अपनानेवाले दुर्बुद्धि वेनने हँसकर उन लोगोंसे ये बातें कहीं ॥

वेन उवाच

स्रष्टा धर्मस्य कश्चान्यः श्रोतव्यं कस्य वै मया।
श्रुतवीर्यतपःसत्यैर्मया वा कः समो भुवि ॥ १२ ॥

वेनने कहा—धर्मका रचनेवाला मेरे सिवा और कौन है ? मैं किसकी बात सुनूँ ? इस पृथ्वीपर वेद, वीर्य, तप और सत्यमें मेरे समान दूसरा कौन है ? ॥ १२ ॥

प्रभवं सर्वभूतानां धर्माणां च विशेषतः ।
सम्मूढा न विदुर्नूनं भवन्तो मामचेतसः ॥ १३ ॥

आपलोग मूर्ख हैं और अचेत हो रहे हैं, अतः सब भूतोंके और विशेषतः धर्मोंके उत्पत्तिस्थान मुझ वेनको नहीं जानते ॥ १३ ॥

इच्छन् दहेयं पृथिवीं प्लावयेयं तथा जलैः ।
खं भुवं चैव रुन्धेयं नात्र कार्या विचारणा ॥ १४ ॥

मैं चाहूँ तो पृथ्वीको भस्म कर दूँ अथवा इसको जलमें डुबो दूँ और पृथ्वी तथा आकाशको भी (अपने तेजसे) ढक दूँ; इसमें विचार करनेकी कोई बात नहीं है ॥ १४ ॥

यदा न शक्यते मोहादवलेपाच्च पार्थिवः ।
अनुनेतुं तदा वेनस्ततः क्रुद्धा महर्षयः ॥ १५ ॥

गर्व और मोहके वशमें पड़े हुए उस राजा वेनको जब वे ऋषि अधर्म करनेसे न रोक सके, तब वे क्रोधमें भर गये ॥

निगृह्य तं महात्मानो विस्फुरन्तं महाबलम् ।
ततोऽस्य सव्यमूरुं ते ममन्थुर्जातमन्यवः ॥ १६ ॥

फिर तो वे महात्मा उस उछल-कूद मचाते हुए महाबली राजाको बलपूर्वक पकड़कर क्रोधमें भर उसकी दाहिनी जाँघको मथने लगे ॥ १६ ॥

तस्मिंस्तु मथ्यमाने वै राज्ञ ऊरौ प्रजज्ञिवान् ।
ह्रस्वाऽतिमात्रः पुरुषः कृष्णश्चाति बभूव ह ॥ १७ ॥

राजाकी उस जङ्घाके मथे जानेपर उसमेंसे बहुत ठिगना और बहुत ही काला एक पुरुष निकला ॥ १७ ॥

स भीतः प्राञ्जलिर्भूत्वा स्थितवाञ्जनमेजय ।
तमत्रिर्विह्वलं दृष्ट्वा निषीदेत्यब्रवीत् तदा ॥ १८ ॥

जनमेजय ! वह डरा हुआ था, अतः हाथ जोड़कर खड़ा हो गया । तब अत्रिने उसे भयसे विह्वल देखकर उससे कहा 'निषीद—बैठ जा' ॥ १८ ॥

निषादवंशकर्तासौ बभूव वदतां वर ।
धीवरानसृजच्चाथ वेनकल्मषसम्भवान् ॥ १९ ॥

वक्ताओंमें श्रेष्ठ जनमेजय ! वह निषादोंके वंशका चलानेवाला हुआ और उसने धीवरोंको जन्म दिया । ये सभी वेनके पापसे उत्पन्न हुए थे ॥ १९ ॥

ये चान्ये विन्ध्यनिलयास्तुषारास्तुम्बरास्तथा ।
अधर्मरुचयो ये च विद्धि तान् वेनसम्भवान् ॥ २० ॥

इन धीवरोंके अतिरिक्त और भी जो विन्ध्यमें रहनेवाले तुषार, तुम्बर तथा अधर्मसे प्रेम करनेवाले वनवासी (गोण्ड-कोल आदि) हैं, इन सबको तुम वेन (के पाप) से उत्पन्न हुआ समझो ॥ २० ॥

ततः पुनर्महात्मानः पाणिं वेनस्य दक्षिणम् ।
अरणीमिव संरब्धा ममन्थुस्ते महर्षयः ॥ २१ ॥

तदनन्तर वे क्रोधमें भरे हुए महात्मा महर्षि वेनके दाहिने हाथको अरणीके समान मथने लगे ॥ २१ ॥

पृथुस्तस्मात् समुत्तस्थौ कराज्ज्वलनसंनिभः ।
दीप्यमानः स्ववपुषा साक्षादग्निरिव ज्वलन् ॥ २२ ॥

तब उस हाथसे अग्निके समान पृथु उत्पन्न हुए, वे अपने शरीरसे साक्षात् प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ २२ ॥

स धन्वी कवची जातः पृथुरेव महायशाः ।
आद्यमाजगवं नाम धनुर्गृह्य महारवम् ।
शरांश्च दिव्यान् रक्षार्थं कवचं च महाप्रभम् ॥ २३ ॥

महायशस्वी पृथु हाथमें धनुष और बाणको धारण किये हुए और रक्षाके लिये महाकान्तिमान् कवच और दिव्य बाणोंको धारण किये हुए ही उत्पन्न हुए। वे हाथमें महान् शब्द करनेवाले प्राचीन आजगव नामक धनुषको धारण किये हुए थे ॥ २३ ॥

तस्मिञ्जातेऽथ भूतानि सम्प्रहृष्टानि सर्वशः ।
समापेतुर्महाराज वेनश्च त्रिदिवं गतः ॥ २४ ॥

महाराज ! उनके उत्पन्न होनेपर सब प्राणी प्रसन्न होकर उनके पास दौड़ आये और वेन स्वर्गको चला गया ॥ २४ ॥

समुत्पन्नेन कौरव्य सत्पुत्रेण महात्मना ।
त्रातः स पुरुषव्याघ्र पुन्नाम्नो नरकात् तदा ॥ २५ ॥

पुरुषव्याघ्र कौरव ! उस महात्मा सत्पुत्रके उत्पन्न होनेपर उस वेनकी 'पुं' नामक नरकसे रक्षा हो गयी ॥ २५ ॥

तं समुद्राश्च नद्यश्च रत्नान्यादाय सर्वशः ।
तोयानि चाभिषेकार्थं सर्व एवोपतस्थिरे ॥ २६ ॥

उन पृथुका अभिषेक करनेके लिये सब समुद्र और नदियाँ चारों ओरसे जल और रत्न लेकर वहाँ उपस्थित हुईं ॥

पितामहश्च भगवान् देवैराङ्गिरसैः सह ।
स्थावराणि च भूतानि जङ्गमानि तथैव च ॥ २७ ॥
समागम्य तदा वैन्यमभ्यषिञ्चन्नराधिपम् ।
महता राजराज्येन प्रजापालं महाद्युतिम् ॥ २८ ॥

भगवान् पितामह भी अङ्गिराके पुत्र, पौत्रों तथा सभी देवताओंके साथ वहाँ आये और स्थावर-जङ्गम प्राणियोंने भी वहाँ आकर महाकान्तिमान् वेनके प्रजापालक पुत्र पृथुका बड़े भारी राजाधिराज-पदपर अभिषेक कर दिया ॥ २७-२८ ॥

सोऽभिषिक्तो महातेजा विधिवद्धर्मकोविदैः ।
आदिराज्ये तदा राज्ञां पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ॥ २९।
पित्रापरञ्जितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिताः ।
अनुरागात् ततस्तस्य नाम राजेत्यजायत ॥ ३०।

जब धर्मके जाननेवालोंने महातेजस्वी और प्रतापी वेन पुत्र पृथुका राजाओंके आदिराज्य (साम्राज्य)-पद विधिवत् अभिषेक कर दिया, तब उन्होंने पिताद्वारा पीड़ित हुई प्रजाको अपनी सेवाओंसे खूब प्रसन्न किया। इस प्रक प्रजासे अनुराग करनेके कारण उनका नाम राजा पड़ गया।

आपस्तस्तम्भिरे चास्य समुद्रमभियास्यतः ।
पर्वताश्च ददुर्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥ ३१।

जब ये समुद्रपर चलते थे, तब जल स्तम्भित हो जा था (अर्थात् समुद्रका जल स्थलकी तरह कड़ा हो जाता था और जब ये आकाशमें चलते थे, तब पर्वत इनके लिये मा छोड़ देते थे। इस कारण इनके रथकी ध्वजा वृक्ष आदि कभी नहीं टूटती थी ॥ ३१ ॥

अकृष्टपच्या पृथिवी सिध्यन्त्यन्नानि चिन्तया ।
सर्वकामदुघा गावः पुटके पुटके मधु ॥ ३२॥

(उनके शासनकालमें) पृथ्वी बिना जोते हुए ही अ देती थी। चिन्तनमात्रसे ही अन्न (भोज्य पदार्थ) तैयार हो जाते थे, गौएँ कामधेनुके समान सब कामनाओंको पूर्ण करती और वृक्षोंके पत्ते-पत्तेमें मधुर रस भरा रहता था ॥ ३२ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु यज्ञे पैतामहे शुभे ।
सूतः सूत्यां समुत्पन्नः सौत्येऽहनि महामतिः॥ ३३।

इन्हींके (राज्यत्व) कालमें पितामहके शुभ यज्ञमें सोम निकालनेके दिन सोमका अभिषव करते समय अर्थात् र निकालनेके लिये सोमलताको कूटते समय महाबुद्धिमा सूतकी उत्पत्ति हुई थी ॥ ३३ ॥

तस्मिन्नेव महायज्ञे जज्ञे प्राज्ञोऽथ मागधः ।
पृथोः स्तवार्थं तौ तत्र समाहूतौ सुरर्षिभिः ॥ ३४।

तदनन्तर उसी महायज्ञमें बुद्धिमान् मागध प्रकट हुआ देवता और ऋषियोंने पृथुकी स्तुति करनेके लिये उन दोनों वहाँ आवाहन किया था ॥ ३४ ॥

तावूचुर्ऋषयः सर्वे स्तूयतामेष पार्थिवः ।
कर्मैतदनुरूपं वां पात्रं चायं नराधिपः ॥ ३५।

सब ऋषियोंने उन दोनोंसे कहा कि तुम दोनों पृथ्वीपतिकी स्तुति करो, यह कर्म तुम्हारे अनुरूप है औ ये राजा भी स्तुतिके पात्र हैं ॥ ३५ ॥

तावूचतुस्तदा सर्वांस्तानृषीन् सूतमागधौ ।
आवां देवानृषींश्चैव प्रीणयावः स्वकर्मभिः ॥ ३६।

उस समय सूत और मागधने उन सब ऋषियोंसे कह

'हम अपने कर्मोंसे देवता और ऋषियोंको प्रसन्न करेंगे ॥ ३६ ॥

न चास्य विद्मो वै कर्म न तथा लक्षणं यशः ।
स्तोत्रं येनास्य कुर्याव राज्ञस्तेजस्विनो द्विजाः॥ ३७ ॥

'परंतु ब्राह्मणो ! इन तेजस्वी राजाके कर्म, लक्षण और यशको तो हम जानते ही नहीं, जिससे इनकी स्तुति करें' ॥ ३७ ॥

ऋषिभिस्तौ नियुक्तौ च भविष्यैः स्तूयतामिति।
यानि कर्माणि कृतवान् पृथुः पश्चान्महाबलः॥ ३८ ॥

तब ऋषियोंने उन्हें यह कहकर स्तुति-कार्यमें नियुक्त किया कि 'तुम दोनों इनके भविष्यमें होनेवाले गुणोंका उल्लेख करते हुए स्तवन करो ।' उन्होंने वैसा ही किया । सूत और मागधने जो-जो कर्म बताये, उन्हींको महाबली पृथुने पीछेसे पूर्ण किया ॥ ३८ ॥

सत्यवाग् दानशीलोऽयं सत्यसंधो नरेश्वरः ।
श्रीमाञ्जैत्रः क्षमाशीलो विक्रान्तो दुष्टशासनः॥ ३९ ॥

(सूत और मागधने राजा पृथुकी स्तुति इस प्रकार आरम्भ की—) 'ये नरेश्वर सच्ची प्रतिज्ञा करनेवाले, सत्यवादी, दान देनेवाले, लक्ष्मीवान् और विजयी हैं । ये क्षमा करनेवाले, पराक्रमी तथा दुष्टोंका शासन करनेवाले हैं ॥ ३९ ॥

धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च दयावान् प्रियभाषणः ।
मान्यो मानयिता यज्वा ब्रह्मण्यः सत्यसंगरः ॥ ४० ॥

'ये धर्मज्ञ, कृतज्ञ, दयावान् और प्रिय भाषण करनेवाले हैं। ये माननीय हैं और (दूसरोंका) मान करनेवाले हैं । यज्ञ करनेवाले, ब्राह्मण-भक्त तथा सत्यप्रतिज्ञ हैं ॥ ४० ॥

शमः शान्तश्च निरतो व्यवहारस्थितो नृपः ।
ततः प्रभृति लोकेषु स्तवेषु जनमेजय ।
आशीर्वादाः प्रयुज्यन्ते सूतमागधवन्दिभिः ॥ ४१ ॥

'ये राजा शमसम्पन्न, शान्त, कार्यतत्पर तथा अपने व्यवहारमें संलग्न रहनेवाले हैं ।' जनमेजय ! उसी समयसे लोगोंमें स्तुतिके अवसरोंपर सूत, मागध और वन्दियोंके द्वारा आशीर्वाद दिलानेकी प्रथा प्रचलित हुई ॥ ४१ ॥

तयोः स्तवैस्तैः सुप्रीतः पृथुः प्रादात् प्रजेश्वरः।
अनूपदेशं सूताय मगधान् मागधाय च ॥ ४२ ॥

प्रजाओंके ईश्वर पृथुने उन दोनोंके इन स्तोत्रोंसे प्रसन्न होकर सूतको अनूपदेश और मागधको मगध देश दे दिया ॥ ४२ ॥

तं दृष्ट्वा परमप्रीताः प्रजाः प्राहुर्महर्षयः ।
वृत्तीनामेष वो दाता भविष्यति जनेश्वरः ॥ ४३ ॥

इस बातको देखकर महर्षि परम प्रसन्न हुए और उन्होंने प्रजाओंसे कहा, 'ये जनेश्वर (राजा) तुम्हें वृत्ति—आजीविका देनेवाले होंगे' ॥ ४३ ॥

ततो वैन्यं महाराज प्रजाः समभिदुद्रुवुः ।
त्वं नो वृत्तिं विधत्स्वेति महर्षिवचनात् तदा ॥ ४४ ॥

महाराज ! महर्षियोंके ऐसा कहनेपर प्रजा वेनपुत्र राजा पृथुके पास दौड़-दौड़कर आने और कहने लगी कि 'आप हमारी वृत्तिका प्रबन्ध कीजिये' ॥ ४४ ॥

सोऽभिद्रुतः प्रजाभिस्तु प्रजाहितचिकीर्षया ।
धनुर्गृह्य पृषत्कांश्च पृथिवीमाद्रवद् बली ॥ ४५ ॥

जब प्रजा उनके पास इस प्रकार दौड़कर आयी, तब वे महाबली नरेश प्रजाका हित करनेकी इच्छासे अपने धनुष और बाण लेकर पृथ्वीको लक्ष्य करके दौड़े॥४५॥

ततो वैन्यभयत्रस्ता गौर्भूत्वा प्राद्रवन्मही ।
तां पृथुर्धनुरादाय द्रवन्तीमन्वधावत ॥ ४६ ॥

तब तो पृथ्वी वेन-कुमार पृथुके भयसे त्रस्त हो गौका रूप धारणकर भागने लगी। पृथु भी धनुष लेकर उस भागती हुई पृथ्वीके पीछे दौड़ने लगे ॥ ४६ ॥

सा लोकान् ब्रह्मलोकादीन् गत्वा वैन्यभयात् तदा।
प्रददर्शाग्रतो वैन्यं प्रगृहीतशरासनम् ॥४७॥

पृथ्वी राजा पृथुके भयसे ब्रह्मलोक आदि लोकोंमें गयी; परंतु (उसने सर्वत्र ही) वेनपुत्र पृथुको हाथमें धनुष-बाण धारण किये अपने सामने खड़ा हुआ देखा ॥ ४७ ॥

ज्वलद्भिर्निशितैर्बाणैर्दीप्ततेजसमच्युतम् ।
महायोगं महात्मानं दुर्धर्षममरैरपि ॥ ४८ ॥
अलभन्ती तु सा त्राणं वैन्यमेवान्वपद्यत ।
कृताञ्जलिपुटा भूत्वा पूज्या लोकैस्त्रिभिः सदा ॥ ४९ ॥
उवाच वैन्यं नाधर्म्यं स्त्रीवधं कर्तुमर्हसि ।
कथं धारयिता चासि प्रजा राजन् विना मया ॥ ५० ॥

अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले पृथु प्रज्वलित तीखे बाणोंद्वारा और भी तेजसे उद्भासित हो रहे थे । वे महान् योगबलसे सम्पन्न महात्मा नरेश देवताओंके लिये भी दुर्धर्ष थे । जब पृथ्वीको कहीं भी शरण न मिली, तब वह पृथुकी ही शरणमें पहुँची और तीनों लोकोंकी सदासे पूजनीया पृथ्वी दोनों हाथ जोड़कर वेनपुत्र पृथुसे कहने लगी—'आपको स्त्रीवधरूप अधर्मका काम करना उचित नहीं है। राजन् ! (पहले आप यह तो सोचिये कि) मेरे बिना इन प्रजाओंको कहाँ स्थापित करेंगे ? ॥ ४८–५० ॥

मयि लोकाः स्थिता राजन् मयेदं धार्यते जगत्।
मद्विनाशे विनश्येयुः प्रजाः पार्थिव विद्धि तत्॥ ५१ ॥

'राजन् ! ये सब लोक मुझपर ही स्थित हैं, मैं ही इस जगत्को धारण कर रही हूँ; (अतः) भूपाल ! आप इस बातको जान रक्खें कि मेरा विनाश होनेपर ये सब प्रजा भी नष्ट हो जायँगी ॥ ५१ ॥

न त्वमर्हसि मां हन्तुं श्रेयश्चेत् त्वं चिकीर्षसि ।
प्रजानां पृथिवीपाल श्रृणु चेदं वचो मम ॥ ५२ ॥

'पृथ्वीपाल ! यदि आप प्रजाका कल्याण करना चाहते हैं तो आपको मेरा वध करना उचित नहीं है। साथ ही आप मेरी इस बातको भी सुनिये ॥ ५२ ॥

उपायतः समारब्धाः सर्वे सिध्यन्त्युपक्रमाः ।
उपायं पश्य येन त्वं धारयेथाः प्रजा नृप ॥ ५३ ॥

'प्रायः सब कार्य ठीक उपायसे आरम्भ किये जानेपर ही सिद्ध होते हैं; अतः राजन् ! उस उपायका विचार कीजिये, जिससे कि आप प्रजाका पालन कर सकें ॥ ५३ ॥

हत्वापि मां न शक्तस्त्वं प्रजा धारयितुं नृप ।
अनुभूता भविष्यामि यच्छ कोपं महाद्युते ॥ ५४ ॥

'राजन् ! आप मेरा वध करके भी प्रजाका पालन धारण न कर सकेंगे । अतः महाद्युते ! आप अपने क्रोध शान्त करें, मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगी ॥ ५४ ॥

अवध्याश्च स्त्रियः प्राहुस्तिर्यग्योनिगतेष्वपि ।
सत्त्वेषु पृथिवीपाल न धर्मं त्यक्तुमर्हसि ॥ ५५।

'भूपाल ! तिर्यक्-योनिके प्राणियोंमें भी स्त्रियों अवध्य कहा है, अतः आप धर्मका परित्याग न करें' ॥ ५५।

एवं बहुविधं वाक्यं श्रुत्वा राजा महामनाः ।
कोपं निगृह्य धर्मात्मा वसुधामिदमब्रवीत् ॥ ५६।

ऐसे ही और बहुत-से (अनुनय-विनयके) वाक्यों सुनकर धर्मात्मा और उदार मनवाले राजा पृथु अ क्रोधको रोककर वसुधासे इस प्रकार बोले ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पृथूपाख्याने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पृथुका उपाख्यानविषयक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

पृथुका उपाख्यान—पृथ्वीका पृथुकी पुत्री बनकर अनेक प्रकारके दूध देना तथा अनेक पात्रों एवं दुहनेवालोंका वर्णन

पृथुरुवाच

एकस्यार्थाय यो हन्यादात्मनो वा परस्य वा ।
बहून् वै प्राणिनो लोके भवेत् तस्येह पातकम् ॥ १ ॥

पृथुने कहा—वसुधे ! जो पुरुष इस संसारमें अपने या पराये किसी भी एक व्यक्तिके लिये बहुत-से जीवोंका वध करता है, उसे ही यहाँ पाप लगता है ॥ १ ॥

सुखमेधन्ति बहवो यस्मिंस्तु निहतेऽशुभे ।
तस्मिन् नास्ति हते भद्रे पातकं चोपपातकम् ॥ २ ॥

भद्रे ! जिस पापी व्यक्तिके मारे जानेसे बहुत-से प्राणियोंको सुख मिलता हो, उसको मारनेसे न तो पाप लगता है और न उपपातक ही ॥ २ ॥

एकस्मिन् यत्र निधनं प्रापिते दुष्टकारिणि ।
बहूनां भवति क्षेमं तत्र पुण्यप्रदो वधः ॥ ३ ॥

जहाँ दुष्टताका व्यवहार करनेवाले एक व्यक्तिका वध करनेसे बहुत-से मनुष्योंका कल्याण होता हो, वहाँ उसका वध करना पुण्यप्रद ही है ॥ ३ ॥

सोऽहं प्रजानिमित्तं त्वां हनिष्यामि वसुंधरे ।
यदि मे वचनं नाद्य करिष्यसि जगद्धितम् ॥ ४ ॥

अतः वसुंधरे ! यदि आज तू जगत्का हित करनेवाले मेरे वचनको नहीं मानती है तो मैं प्रजाके हितके लिये तेरा अवश्य वध कर डालूँगा ॥ ४ ॥

त्वां निहत्याद्य बाणेन मच्छासनपराङ्मुखीम् ।
आत्मानं प्रथयित्वाहं प्रजा धारयिता चिरम् ॥ ५।

तू आज मेरे शासनसे पराङ्मुख हो रही है, आज तुझे बाणसे मारकर अपने देहको ही फैलाकर मैं उ प्रजाको धारण करूँगा ॥ ५ ॥

सा त्वं शासनमास्थाय मम धर्मभृतां वरे ।
संजीवय प्रजाः सर्वाः समर्था ह्यसि धारणे ॥ ६।

अतएव धर्मधारियोंमें श्रेठ देवि ! तू मेरे शास मानकर सारी प्रजाको जीवित रख; क्योंकि तू प्रजा धारण करने—जीवित रखनेमें समर्थ है ॥ ६ ॥

दुहितृत्वं च मे गच्छ तत एनमहं शरम् ।
नियच्छेयं त्वद्वधार्थमुद्यतं घोरदर्शनम् ॥ ७

साथ ही तू मेरी पुत्री बन जा, तब मैं तेरे वधके उठाये हुए इस भयंकर दीखनेवाले बाणको रोक लूँगा ॥ ७

पृथिव्युवाच

सर्वमेतदहं वीर विधास्यामि न संशयः ।
उपायतः समारब्धाः सर्वे सिद्ध्यन्त्युपक्रमाः ॥ ८

पृथ्वीने कहा—वीर ! मैं निस्संदेह यह सब करूँगी, परंतु ठीक उपायसे आरम्भ करनेपर ही सब सिद्ध होते हैं ॥ ८ ॥

उपायं पश्य येन त्वं धारयेथाः प्रजा इमाः ।
वत्सं तु मम सम्पश्य क्षरेयं येन वत्सला ॥ ९

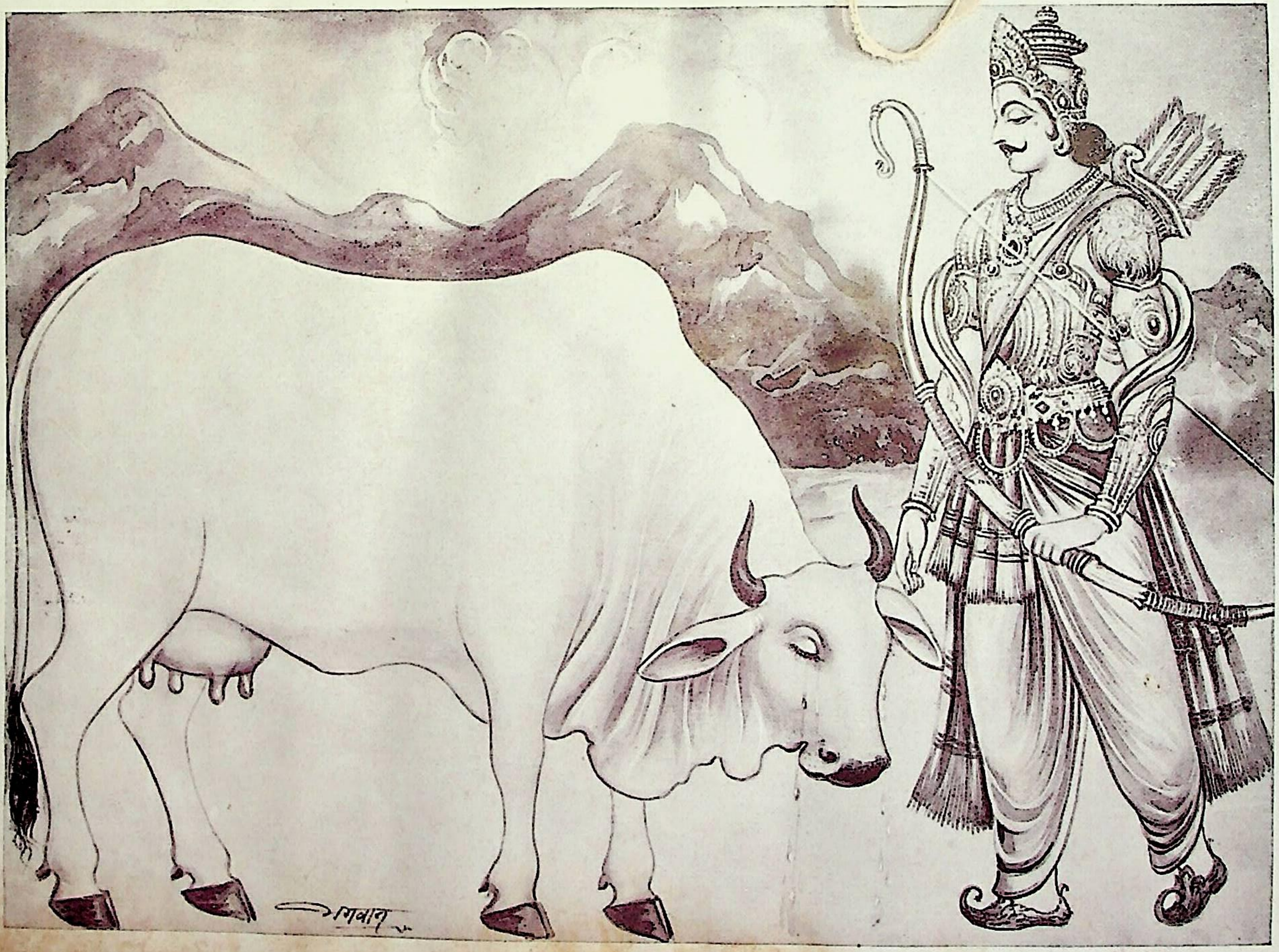

महाराज पृथुके द्वारा गोरूपिणी पृथ्वीका शासन

अतः आप उस उपायको देखिये या ढूँढ़ निकालिये, जिससे आप इन प्रजाओंको पुष्ट करके धारण कर सकें। (इसकी युक्ति मैं बताती हूँ) आप मेरे लिये एक बछड़ेकी खोज कीजिये, जिससे मैं (स्नेहसे) पेन्हाकर दूध दूँ ॥ ९ ॥

समां च कुरु सर्वत्र मां त्वं धर्मभृतां वर।
यथा विस्पन्दमानं मे क्षीरं सर्वत्र भावयेत् ॥ १० ॥

धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ ! आप मुझे सर्वत्र सम (चौरस) कीजिये, जिससे कि मेरा झरता हुआ दूध सर्वत्र (व्याप्त) हो जाय ॥ १० ॥

वैशम्पायन उवाच

तत उत्सारयामास शैलाञ्छतसहस्रशः।
धनुष्कोट्या तदा वैन्यस्तेन शैला विवर्द्धिताः ॥ ११ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय ! तब वेनपुत्र पृथुने धनुषके कोनेसे सैकड़ों और सहस्रों पर्वतोंको उठाकर (ईंटोंकी दीवार-के समान) खड़ा कर दिया, इससे पर्वत बड़े हो गये ॥ ११ ॥

इत्थं वैन्यस्तदा राजा महीं चक्रे समां ततः।
मन्वन्तरेष्वतीतेषु विषमासीद् वसुंधरा ॥ १२ ॥

इस प्रकार वेनपुत्र राजा पृथुने पृथ्वीको सम (चौरस)कर दिया। पिछले मन्वन्तरोंमें यह पृथ्वी ऊँची-नीची थी ॥ १२ ॥

स्वभावेनाभवन् ह्यस्याः समानि विषमाणि च।
चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमासीदेवं तदा किल ॥ १३ ॥

पहले चाक्षुष मन्वन्तरमें इस पृथ्वीके प्रदेश स्वभावतः ऊँचे-नीचे थे ॥ १३ ॥

न हि पूर्वविसर्गे वै विषमे पृथिवीतले।
प्रविभागः पुराणां च ग्रामाणां वा तदाभवत् ॥ १४ ॥

पहले सर्गमें पृथ्वीके विषम होनेके कारण नगर और ग्रामोंका विभाग नहीं हुआ था ॥ १४ ॥

न सस्यानि न गोरक्षा न कृषिर्न वणिक्पथः।
नैव सत्यानृतं तत्र न लोभो न च मत्सरः ॥ १५ ॥

उस समय न किसी प्रकारका धान्य होता था, न गोरक्षा होती थी और न खेती होती थी तथा न सत्य एवं मिथ्यासे मिला हुआ (वाणिज्य) होता था, उस समय न लोभ था न मत्सर ॥ १५ ॥

वैवस्वतेऽन्तरे चास्मिन् साम्प्रतं समुपस्थिते।
वैन्यात् प्रभृति राजेन्द्र सर्वस्यैतस्य सम्भवः ॥ १६ ॥

राजेन्द्र ! इस वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तरके आनेपर वेनपुत्र के समयसे ही इन सभी वस्तुओंकी उत्पत्ति हुई है ॥ १६ ॥

यत्र यत्र समं त्वस्या भूमेरासीदिहानघ।
तत्र तत्र प्रजाः सर्वाः संवासं समरोचयन् ॥ १७ ॥

निष्पाप नरेश ! जहाँ-जहाँ यह भूमि सम हो गयी, वहाँ प्रजाने रहना पसंद किया ॥ १७ ॥

आहारः फलमूलानि प्रजानामभवत् तदा।
कृच्छ्रेण महता युक्त इत्येवमनुशुश्रुम ॥ १८ ॥

हमने ऐसा सुना है कि (वेनपुत्र पृथुद्वारा भूमिका दोहन होनेसे)पहले प्रजाओंका आहार फल और मूल था तथा वह भी उन्हें बड़ी कठिनतासे मिलता था ॥ १८ ॥

संकल्पयित्वा वत्सं तु मनुं स्वायम्भुवं प्रभुम्।
स्वपाणौ पुरुषश्रेष्ठ दुदोह पृथिवीं ततः।
सस्यजातानि सर्वाणि पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ॥ १९ ॥
तेनान्नेन प्रजास्तात वर्तन्तेऽद्यापि नित्यशः।

पुरुषश्रेष्ठ ! वेन-पुत्र प्रतापी पृथुने प्रभु स्वायम्भुव मनुको बछड़ा बनाकर पृथ्वीसे सब प्रकारके धान्योंको अपने हाथमें ही दुहा। तात ! उस दिनसे सब प्रजा उसी अन्नसे आजतक बढ़ रही है ॥ १९½ ॥

ऋषिभिः श्रूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुंधरा ॥ २० ॥
वत्सः सोमोऽभवत् तेषां दोग्धा चाङ्गिरसःसुतः।
बृहस्पतिर्महातेजाः पात्रं छन्दांसि भारत।
क्षीरमासीदनुपमं तपो ब्रह्म च शाश्वतम् ॥ २१ ॥

भारत ! सुना है, फिर ऋषियोंने भी भूमिको दुहा था, उस समय सोम उनका बछड़ा हुआ, अङ्गिराके पुत्र महातेजस्वी बृहस्पति दुहनेवाले बने और छन्द (वेद) पात्र बने थे। तपोमय शाश्वत ब्रह्म अनुपम दुग्धके रूपमें प्रकट हुआ था ॥ २०-२१ ॥

पुनर्देवगणैः सर्वैः पुरंदरपुरोगमैः।
काञ्चनं पात्रमादाय दुग्धेयं श्रूयते मही ॥ २२ ॥

(यह भी) सुना जाता है कि फिर इन्द्र आदि सब देवताओंने भी सुवर्णका पात्र लेकर इस पृथ्वीको दुहा था ॥२२॥

वत्सस्तु मघवानासीद् दोग्धा च सविता प्रभुः।
क्षीरमूर्जस्करं चैव वर्तन्ते येन देवताः ॥ २३ ॥

(उस समय) इन्द्र बछड़ा और भगवान् सूर्य दुहनेवाले बने तथा पुष्टिकारक अमृतरूपी क्षीर प्रकट हुआ, जिससे देवता सदा जीवित रहते हैं ॥ २३ ॥

पितृभिः श्रूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुंधरा।
राजतं पात्रमादाय स्वधाममितविक्रमैः ॥ २४ ॥

सुना है कि फिर अतुल पराक्रमी पितरोंने भी पृथ्वीको दुहा था, उन्होंने चाँदीका पात्र लेकर स्वधा (रूपी दूध) का दोहन किया था ॥ २४ ॥

यमो वैवस्वतस्तेषामासीद् वत्सः प्रतापवान्।
अन्तकश्चाभवद् दोग्धा कालो लोकप्रकालनः ॥ २५ ॥

प्रतापी विवस्वान्-पुत्र यम उनका बछड़ा बने और लोकोंका अन्त करनेवाला काल—अन्तक उनका दुहनेवाला बना था ॥ २५ ॥

नागैश्च श्रूयते दुग्धा वत्सं कृत्वा तु तक्षकम् ।
अलाबुं पात्रमादाय विषं क्षीरं नरोत्तम ॥ २६ ॥

नरोत्तम ! (फिर यह भी) सुना जाता है कि नागोंने तक्षकको वत्स बनाकर अलाबु (तूम्बी) के पात्रको लेकर विषरूपी दूध दुहा था ॥ २६ ॥

तेषामैरावतो दोग्धा धृतराष्ट्रः प्रतापवान् ।
नागानां भरतश्रेष्ठ सर्पाणां च महीपते ॥ २७ ॥

भरतश्रेष्ठ भूपाल ! उस समय दुहनेवाला नाग ऐरावत था और सर्पोंने प्रतापी धृतराष्ट्रको दुहनेवाला बनाया था ॥

तेनैव वर्तयन्त्युग्रा महाकाया विषोल्बणाः ।
तदाहारास्तदाचारास्तद्वीर्यास्तदुपाश्रयाः ॥ २८ ॥

जिनमें स्पष्टरूपसे विष झलकता है, ऐसे ये विशाल शरीरवाले सर्प उस विषसे अपनी आजीविका चलाते हैं। ये इस विषको खाते हैं और इस विषका प्रयोग कर दूसरा आहार प्राप्त करते हैं तथा ये इस विषरूपी बलका सहारा लेकर इस संसारमें अपनी प्रतिष्ठा बनाये हुए हैं ॥ २८ ॥

असुरैः श्रूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुंधरा ।
आयसं पात्रमादाय मायां शत्रुनिबर्हिणीम् ॥ २९ ॥

सुना जाता है कि असुरोंने भी लोहेका पात्र लेकर शत्रुओंको नष्ट करनेवाली माया (रूपी दूध) को इस पृथ्वीसे दुहा था ॥ २९ ॥

विरोचनस्तु प्राह्लादिर्वत्सस्तेषामभूत् तदा ।
ऋत्विग्द्विमूर्द्धा दैत्यानां मधुर्दोग्धा महाबलः ॥ ३० ॥

उस समय प्रह्लादका पुत्र विरोचन उनका बछड़ा बना था और दैत्योंका ऋत्विक् दो सिरोंवाला महाबली मधु उनका दुहनेवाला था ॥ ३० ॥

तयैते मायया द्यापि सर्वे मायाविनोऽसुराः ।
वर्तयन्त्यमितप्रज्ञास्तदेषाममितं बलम् ॥ ३१ ॥

अमित बुद्धिवाले मायावी असुर आजकल भी उसी मायासे काम लेते हैं, यह माया ही उनका अपार बल है ॥ ३१ ॥

यक्षैश्च श्रूयते तात पुनर्दुग्धा वसुंधरा ।
आमपात्रे महाराज पुरान्तर्द्धानमक्षयम् ॥ ३२ ॥

तात ! यह भी सुना जाता है कि इसके बाद उस प्राचीन कालमें यक्षोंने भी पृथ्वीको दुहा था । महाराज ! उन्होंने कच्चे पात्रमें अन्तर्धान (गुप्त) होनेकी अक्षय विद्याको दुहा था ॥ ३२ ॥

वत्सं वैश्रवणं कृत्वा यक्षैः पुण्यजनैस्तदा ।
दोग्धा रजतनाभस्तु पिता मणिवरस्य यः ॥ ३३ ॥

उस समय यक्ष और राक्षसोंने विश्रवाके पुत्र कुबेर बछड़ा तथा मणिवरके पिता रजतनाभको दुहने बनाया था ॥ ३३ ॥

यक्षानुजो महातेजास्त्रिशीर्षः सुमहातपाः ।
तेन ते वर्तयन्तीति परमर्षिरुवाच ह ॥ ३

उन यक्षोंके छोटे भाई महातेजस्वी और महात रजतनाभके तीन सिर हैं। इस अन्तर्धान-विद्यासे वे यक्ष जीवि चलाते हैं, इस प्रकार परमर्षि (व्यासदेव) ने कहा था ॥

राक्षसैश्च पिशाचैश्च पुनर्दुग्धा वसुंधरा ।
शावं कपालमादाय प्रजा भोक्तुं नरर्षभ ॥ ३

नरश्रेष्ठ ! फिर राक्षसों और पिशाचोंने मुर्देकी खो लेकर अपनी संतानको तृप्त करनेके लिये इस वसुन्ध दुहा था ॥ ३५ ॥

दोग्धा रजतनाभस्तु तेषामासीत् कुरूद्वह ।
वत्सः सुमाली कौरव्य क्षीरं रुधिरमेव च ॥ ३६

कुरुवंशधर ! उस समय रजतनाभ उनका दुहनेवाल था और सुमाली उनका बछड़ा था । कौरव्य ! उस स उन्होंने रक्तरूपी दूध दुहा था ॥ ३६ ॥

तेन क्षीरेण यक्षाश्च राक्षसाश्चामरोपमाः ।
वर्तयन्ति पिशाचाश्च भूतसंघास्तथैव च ॥ ३७

देवताओंकी ही भाँति यक्ष, राक्षस, पिशाच और भू की भी मण्डलियाँ उस दूधसे अपनी-अपनी आजीवि चलाती हैं ॥ ३७ ॥

पद्मपत्रे पुनर्दुग्धा गन्धर्वैः साप्सरोगणैः ।
वत्सं चित्ररथं कृत्वा शुचीन् गन्धान् नरर्षभ ॥ ३

नरर्षभ ! फिर अप्सराओं और गन्धर्वोंने भी चित्रर बछड़ा बनाकर पद्मपत्रमें वसुधासे पवित्र गन्धोंको दुहा

तेषां च सुरुचिस्त्वासीद् दोग्धा भरतसत्तम ।
गन्धर्वराजोऽतिबलो महात्मा सूर्यसंनिभः ॥ ३

भरतसत्तम ! उस समय सूर्यके तुल्य तेजस्वी और अ बलवान् महात्मा गन्धर्वराज सुरुचि उनका दुहनेवाला था ॥

शैलैश्च श्रूयते राजन् पुनर्दुग्धा वसुंधरा ।
औषधीर्वै मूर्तिमती रत्नानि विविधानि च ॥ ४

राजन् ! सुना जाता है कि पर्वतोंने भी पृथ्वीसे मूर्ति ओषधियों और नाना प्रकारके रत्नोंको दुहा था ॥ ४

वत्सस्तु हिमवानासीन्मेरुर्दोग्धा महागिरिः ।
पात्रं तु शैलमेवासीत् तेन शैला विवर्धिताः ॥ ४

उस समय हिमाचल बछड़ा बना था, महागिरि दुहनेवाला था तथा पत्थरके पात्रकी दोहनी बनी थी। दूधसे पर्वतोंकी वृद्धि हुई ॥ ४१ ॥

वीरुद्भिः श्रूयते राजन् पुनर्दुग्धा वसुंधरा ।
पालाशं पात्रमादाय दग्धच्छिन्नप्ररोहणम् ॥ ४२ ॥

राजन् ! सुना जाता है कि इसके बाद पलाशके पत्तेका पात्र (दोना) लेकर वृक्षोंने भी पृथ्वीका दोहन किया । जल जाने या कट जानेपर जो पुनः अंकुरित होनेकी शक्ति है, वही उन्हें दूधके रूपमें प्राप्त हुई थी ॥ ४२ ॥

दुदोह पुष्पितः सालो वत्सः प्लक्षोऽभवत् तदा ।
सेयं धात्री विधात्री च पावनी च वसुंधरा ॥ ४३ ॥

उस समय खिले हुए साल वृक्षने इस पृथ्वीको दुहा था और पाकड़का वृक्ष बछड़ा बना था । इस प्रकार यह पृथ्वी धात्री-विधात्री (माताके समान सबका धारण-पोषण करनेवाली) तथा पवित्र है ॥ ४३ ॥

चराचरस्य सर्वस्य प्रतिष्ठा योनिरेव च ।
सर्वकामदुघा दोग्ध्री सर्वसस्यप्ररोहिणी ॥ ४४ ॥

यह पृथ्वी समस्त चराचर प्राणियोंका आश्रय-स्थान और उत्पत्ति-स्थान है । यह समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली कामधेनु है तथा यही सब प्रकारके सस्यों (अन्नके पौदों) को अंकुरित करनेवाली है ॥ ४४ ॥

आसीदियं समुद्रान्ता मेदिनीति परिश्रुता ।
मधुकैटभयोः कृत्स्ना मेदसाभिपरिप्लुता ।
तेनेयं मेदिनी देवी प्रोच्यते ब्रह्मवादिभिः ॥ ४५ ॥

पहले यह समुद्रतककी सारी पृथ्वी मधु और कैटभके मेद (चरबी) से भर गयी थी, इसलिये 'मेदिनी' नामसे विख्यात हुई; अतएव यह देवी ब्रह्मवादियोंद्वारा मेदिनी कही जाती है ॥ ४५ ॥

ततोऽभ्युपगमाद् राज्ञः पृथोर्वैन्यस्य भारत ।
दुहितृत्वमनुप्राप्ता देवी पृथ्वीति चोच्यते ।
पृथुना प्रविभक्ता च शोधिता च वसुंधरा ॥ ४६ ॥
सस्याकरवती स्फीता पुरपत्तनमालिनी ।
एवंप्रभावो वैन्यः स राजासीद् राजसत्तमः ॥ ४७ ॥

भरतवंशी राजन् ! फिर वेनपुत्र राजा पृथुके पुत्रीरूपमें अङ्गीकार करनेपर यह देवी उनकी पुत्री बन गयी, इससे यह पृथ्वी कहलाती है । इस पृथ्वीको पृथुने अनेक भागोंमें विभक्त एवं शुद्ध किया, इसको अन्न आदिकी खान बना दिया और समृद्धिशालिनी बनाकर इसे ग्रामों और नगरोंकी श्रेणियोंसे सुशोभित कर दिया । नृपश्रेष्ठ ! महाराज पृथु ऐसे प्रभावशाली थे ॥ ४६-४७ ॥

नमस्यश्चैव पूज्यश्च भूतग्रामैर्न संशयः ।
ब्राह्मणैश्च महाभागैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ ४८ ॥
पृथुरेव नमस्कार्यो ब्रह्मयोनिः सनातनः ।

अतएव सभी प्राणियोंको निःसंदेह उनकी पूजा तथा वन्दना करनी चाहिये । वेद-वेदाङ्गके पारगामी महात्मा ब्राह्मणोंको भी (अत्रिकुलमें उत्पन्न होनेके कारण) ब्रह्मयोनि एवं सनातन पुरुष (विष्णुरूप) पृथुके प्रति निश्चय ही नमस्कार करना चाहिये ॥ ४८½ ॥

पार्थिवैश्च महाभागैः पार्थिवत्वमभीप्सुभिः ॥ ४९ ॥
आदिराजो नमस्कार्यः पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ।

पृथ्वीके स्वामित्वको चाहनेवाले महाभाग्यवान् राजाओंको भी आदि राजा वेनपुत्र प्रतापी पृथुको प्रणाम करना चाहिये ॥ ४९½ ॥

योधैरपि च विक्रान्तैः प्राप्तुकामैर्जयं युधि ।
पृथुरेव नमस्कार्यो योधानां प्रथमो नृपः ॥ ५० ॥

जो पराक्रमी राजा युद्धमें विजय चाहते हों उनको भी योद्धाओंमें अग्रणी राजा पृथुको अवश्य प्रणाम करना चाहिये ॥

यो हि योद्धा रणं याति कीर्तयित्वा पृथुं नृपम् ।
स घोररूपान् संग्रामान् क्षेमी तरति कीर्तिमान् ॥ ५१ ॥

जो योद्धा राजा पृथुका कीर्तन करके युद्धमें जाता है, वह भयङ्कर संग्रामको कुशलपूर्वक तर जाता (उसमें विजय प्राप्त करता) और यशस्वी होता है ॥ ५१ ॥

वैश्यैरपि च वित्ताढ्यैः पण्यवृत्तिमनुष्ठितैः ।
पृथुरेव नमस्कार्यो वृत्तिदाता महायशाः ॥ ५२ ॥

वाणिज्य आदिसे आजीविका चलानेवाले धनवान् वैश्योंको भी चाहिये कि वे वृत्ति (आजीविका) प्रदान करनेवाले महायशस्वी पृथुको अवश्य प्रणाम करें ॥ ५२ ॥

तथैव शूद्रैः शुचिभिस्त्रिवर्णपरिचारिभिः ।
आदिराजो नमस्कार्यः श्रेयः परमभीप्सुभिः ॥ ५३ ॥

इसी प्रकार परम कल्याण चाहनेवाले एवं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—इन तीनों वर्णोंकी सेवामें परायण रहनेवाले पवित्र शूद्रोंको भी आदि राजा पृथुको प्रणाम करना चाहिये ॥ ५३ ॥

एते वत्सविशेषाश्च दोग्धारः क्षीरमेव च ।
पात्राणि च मयोक्तानि किं भूयो वर्णयामि ते ॥ ५४ ॥

मैंने तुमसे इन बछड़ोंका, पात्रोंका, दुहनेवालोंका और दुग्धोंका वर्णन कर दिया । अब मैं तुमसे और क्या कहूँ ॥ ५४ ॥

य इदं शृणुयान्नित्यं पृथोश्चरितमादितः ।
पुत्रपौत्रसमायुक्तो मोदते सुचिरं भुवि ॥ ५५ ॥

जो पुरुष (प्रत्येक कल्पमें होनेवाले अतएव) नित्य इस पृथु-चरित्रको आदिसे (अन्ततक) सुनता है, वह पुरुष पुत्र-पौत्रोंके साथ इस पृथ्वीपर चिर-कालतक आनन्द करता है ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पृथूपाख्याने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पृथुके उपाख्यानकी समाप्तिविषयक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

मन्वन्तर, मनु, देवता और ऋषियोंका पृथक्-पृथक् वर्णन

जनमेजय उवाच

मन्वन्तराणि सर्वाणि विस्तरेण तपोधन।
तेषां सृष्टिं विसृष्टिं च वैशम्पायन कीर्तय ॥ १ ॥

जनमेजयने कहा—तपोधन वैशम्पायनजी ! सभी मन्वन्तरों तथा उनकी सृष्टि और विलीन होनेका वृत्तान्त अब आप विस्तारपूर्वक कहिये ॥ १ ॥

यावन्तो मनवश्चैव यावन्तं कालमेव च।
मन्वन्तरं तथा ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ २ ॥

ब्रह्मन् ! जितने मनु होते हैं और जितने समयतक एक मन्वन्तर रहता है, उसको मैं ठीक-ठीक सुनना चाहता हूँ ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच

न शक्यो विस्तरस्तात वक्तुं वर्षशतैरपि।
मन्वन्तराणां कौरव्य संक्षेपं त्वेव मे शृणु ॥ ३ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—तात ! कौरव्य ! मन्वन्तरोंके विस्तारका तो सौ वर्षोंमें भी वर्णन नहीं किया जा सकता, अतः उसे संक्षेपमें ही मुझसे सुनो ॥ ३ ॥

स्वायम्भुवो मनुस्तात मनुः स्वारोचिषस्तथा।
उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा ॥ ४ ॥
वैवस्वतश्च कौरव्य साम्प्रतो मनुरुच्यते।
सावर्णिश्च मनुस्तात भौत्यो रौच्यस्तथैव च ॥ ५ ॥
तथैव मेरुसावर्णाश्चत्वारो मनवः स्मृताः।
अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ॥ ६ ॥
कीर्तिता मनवस्तात मयैते तु यथाश्रुतम्।
ऋषींस्तेषां प्रवक्ष्यामि पुत्रान् देवगणांस्तथा ॥ ७ ॥

तात ! कौरव्य ! स्वायम्भुव मनु, स्वारोचिष मनु, उत्तम मनु, तामस मनु, रैवत मनु एवं चाक्षुष मनु (बीत गये हैं) और वर्तमान (सातवें) मनुका नाम वैवस्वत मनु है। (अब भविष्यके मन्वन्तरोंका वर्णन करते हैं—) तात ! सावर्णि मनु, भौत्य मनु और रौच्य मनु एवं चार मेरुसावर्ण (ब्रह्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, मेरुसावर्णि, दक्षसावर्णि—ये चारों मेरु पर्वतपर तप करके सिद्ध हो गये हैं, अतएव ये चारों मेरुसावर्णि कहलाते हैं,) कहे गये हैं। तात ! मैंने भूत, भविष्यत् और वर्तमान (चौदह) मनुओंका गुरुओंसे जिस प्रकार सुना था वैसा वर्णन किया; अब मैं उनके ऋषि, पुत्र और देवताओंका वर्णन करता हूँ ॥ ४–७ ॥

मरीचिरत्रिर्भगवानङ्गिराः पुलहः क्रतुः।
पुलस्त्यश्च वसिष्ठश्च सप्तैते ब्रह्मणः सुताः ॥ ८ ॥
उत्तरस्यां दिशि तथा राजन् सप्तर्षयोऽपरे।
देवाश्च शान्तरजसस्तथा प्रकृतयः परे।
यामा नाम तथा देवा आसन् स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ ९
आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च मेधा मेधातिथिर्वसुः।
ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्यः सवनः पुत्र एव च ॥ १०
मनोः स्वायम्भुवस्यैते दश पुत्रा महौजसः।
एतत् ते प्रथमं राजन् मन्वन्तरमुदाहृतम् ॥ ११

राजन् ! स्वायम्भुव मन्वन्तरमें वर्तमान मन्वन्तरसे भि मरीचि, भगवान् अत्रि, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य औ वसिष्ठ—ये ब्रह्माजीके सात पुत्र सप्तर्षि होकर उत्तर दिशा रहते थे। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें शान्तरजा, प्रकृति तथा या नामक देवता पूजित होते थे। स्वायम्भुव मनुके आग्नीध्र अग्निबाहु, मेधा, मेधातिथि, वसु, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान् हव्य, सवन और पुत्र—ये दस महाबली पुत्र थे। राजन् मैंने तुमसे यह पहले मन्वन्तरका वर्णन किया ॥ ८–११ ॥

और्वो वसिष्ठपुत्रश्च स्तम्बः काश्यप एव च।
प्राणा बृहस्पतिश्चैव दत्तो निश्च्यवनस्तथा ॥ १२
एते महर्षयस्तात वायुप्रोक्ता महाव्रताः।
देवाश्च तुषिता नाम स्मृताः स्वारोचिषेऽन्तरे ॥ १३

तात ! वायुने स्वारोचिष मन्वन्तरमें वसिष्ठके पुत्र औ स्तम्ब, काश्यप, प्राण, बृहस्पति, दत्त और निश्च्यवन— सात महाव्रतधारी ऋषि बताये हैं और देवताओंका ना तुषित कहा है ॥ १२-१३ ॥

हविर्ध्रः सुकृतिर्ज्योतिरापोमूर्तिरयस्मयः।
प्रथितश्च नभस्यश्च नभ ऊर्जस्तथैव च ॥ १४
स्वारोचिषस्य पुत्रास्ते मनोस्तात महात्मनः।
कीर्तिताः पृथिवीपाल महावीर्यपराक्रमाः ॥ १५
द्वितीयमेतत् कथितं तव मन्वन्तरं मया।

तात ! महात्मा स्वारोचिष मनुके महावीर्यवान् औ पराक्रमी हविर्ध्र, सुकृति, ज्योति, आप, मूर्ति, अयस्म प्रथित, नभस्य, ऊर्ज और नभ—ये (दस) पुत्र उनका वर्णन कर दिया। पृथ्वीपाल ! यह मैंने तु दूसरे मन्वन्तरका वर्णन कर दिया ॥ १४-१५½ ॥

इदं तृतीयं वक्ष्यामि तन्निबोध नराधिप ॥ १६
वसिष्ठपुत्राः सप्तासन् वासिष्ठा इति विश्रुताः।
हिरण्यगर्भस्य सुता ऊर्ज्जा नाम सुतेजसः ॥ १७
ऋषयोऽत्र मया प्रोक्ताः कीर्त्यमानान् निबोध मे।
औत्तमेयान् महाराज दश पुत्रान् मनोरमान् ॥ १८
इष ऊर्जस्तनूजश्च मधुर्माधव एव च।

शुचिः शुक्रः सहश्चैव नभस्यो नभ एव च ॥ १९ ॥
भानवस्तत्र देवाश्च मन्वन्तरमुदाहृतम् ।

राजन् ! अब मैं तीसरे मन्वन्तरका वर्णन करता हूँ, सुनो । उत्तम नामक मन्वन्तरमें वासिष्ठ नामसे प्रसिद्ध वसिष्ठजीके सात पुत्र (सप्तर्षि) थे । वे पहले हिरण्यगर्भके पुत्र थे । उनके नाम ऊर्ज थे तथा वे बड़े तेजस्वी थे । इस प्रकार मैंने ऋषियोंका वर्णन कर दिया । महाराज ! अब मैं उत्तम मनुके दस मनोहर पुत्रोंका वर्णन करता हूँ; सुनो—इष, ऊर्ज, तनूज, मधु, माधव, शुचि, शुक्र, सह, नभस्य और नभ (ये दस उत्तम मनुके पुत्र थे) और उस मन्वन्तरमें भानु नामक देवता थे । (इस प्रकार यह तीसरा) मन्वन्तर बताया गया ॥ १६–१९½ ॥

मन्वन्तरं चतुर्थं ते कथयिष्यामि तच्छृणु ॥ २० ॥
काव्यः पृथुस्तथैवाग्निर्जन्युर्धाता च भारत ।
कपीवानकपीवांश्च तत्र सप्तर्षयोऽपरे ॥ २१ ॥
पुराणे कथितास्तात पुत्राः पौत्राश्च भारत ।
सत्या देवगणाश्चैव तामसस्यान्तरे मनोः ॥ २२ ॥
पुत्रांश्चैव प्रवक्ष्यामि तामसस्य मनोर्नृप ।
द्युतिस्तपस्यः सुतपास्तपोमूलस्तपोधनः ॥ २३ ॥
तपोरतिरकल्माषस्तन्वी धन्वी परंतपः ।
तामसस्य मनोरेते दश पुत्रा महाबलाः ॥ २४ ॥

भारत ! अब मैं चौथे मन्वन्तरका वर्णन करता हूँ, सुनो । तामस नामक मन्वन्तरमें काव्य, पृथु, अग्नि, जन्यु, धाता, कपीवान् और अकपीवान्—ये सात सप्तर्षि थे । तात ! पुराणोंमें इनके बहुत-से पुत्र-पौत्रोंका वर्णन है । तामस मन्वन्तरमें सत्य नामक देवता थे । भारत ! अब मैं तामस मनुके पुत्रोंका वर्णन करता हूँ । राजन् ! तामस मनुके द्युति, तपस्य, सुतपा, तपोमूल, तपोधन, तपोरति, कल्माष, तन्वी, धन्वी और परंतप—ये दस महाबली पुत्र थे ॥ २०–२४ ॥

वायुप्रोक्ता महाराज पञ्चमं तदनन्तरम् ।
वेदबाहुर्यदुध्रश्च मुनिर्वेदशिरास्तथा ॥ २५ ॥
हिरण्यरोमा पर्जन्य ऊर्ध्वबाहुश्च सोमजः ।
सत्यनेत्रस्तथाऽऽत्रेय एते सप्तर्षयोऽपरे ॥ २६ ॥
देवाश्चाभूतरजसस्तथा प्रकृतयोऽपरे ।
पारिप्लवश्च रैभ्यश्च मनोरन्तरमुच्यते ॥ २७ ॥
अथ पुत्रानिमांस्तस्य निबोध गदतो मम ।
धृतिमानव्ययो युक्तस्तत्त्वदर्शी निरुत्सुकः ॥ २८ ॥
अरण्यश्च प्रकाशश्च निर्मोहः सत्यवाक् कविः ।
रैवतस्य मनोः पुत्राः पञ्चमं चैतदन्तरम् ॥ २९ ॥

इन सबका वायुने वर्णन किया है । महाराज ! अब पाँचवें (रैवत मन्वन्तरका वर्णन करता हूँ ।) उस मन्वन्तरमें वेदबाहु, यदुध्र, वेदशिरा मुनि, हिरण्यरोमा, पर्जन्य, सोमपुत्र ऊर्ध्वबाहु और अत्रिपुत्र सत्यनेत्र—ये सात ऋषि थे । उस मन्वन्तरमें अभूतरजा, प्रकृति, पारिप्लव और रैभ्य नामक देवगण थे । यह सब (पञ्चम) मन्वन्तरका वर्णन है । अब मैं रैवत मनुके पुत्रोंका वर्णन करता हूँ, सुनो । धृतिमान्, अव्यय, युक्त, तत्त्वदर्शी, निरुत्सुक, अरण्य, प्रकाश, निर्मोह, सत्यवाक् और कवि—ये रैवत मनुके पुत्र हैं । यह पञ्चम मन्वन्तरका वर्णन हुआ ॥ २५–२९ ॥

षष्ठं ते सम्प्रवक्ष्यामि तन्निबोध नराधिप ।
भृगुर्नभो विवस्वांश्च सुधामा विरजास्तथा ॥ ३० ॥
अतिनामा सहिष्णुश्च सप्तैते वै महर्षयः ।
चाक्षुषस्यान्तरे तात मनोर्देवानिमाञ्छृणु ॥ ३१ ॥
आद्याः प्रभूता ऋभवः पृथग्भावा दिवौकसः ।
लेखाश्च नाम राजेन्द्र पञ्च देवगणाः स्मृताः ।
ऋषेरङ्गिरसः पुत्रा महात्मानो महौजसः ॥ ३२ ॥
नाड्वलेया महाराज दश पुत्राश्च विश्रुताः ।
ऊरुप्रभृतयो राजन् षष्ठं मन्वन्तरं स्मृतम् ॥ ३३ ॥

नराधिप ! अब मैं छठे (चाक्षुष मन्वन्तर) का वर्णन करता हूँ, सुनो । तात ! चाक्षुष मन्वन्तरमें भृगु, नभ, विवस्वान्, सुधामा, विरजा, अतिनामा और सहिष्णु—ये सात महर्षि थे । राजेन्द्र ! अब (इस मन्वन्तरके) देवताओंका परिचय सुनो । आद्य, प्रभूत, ऋभु, पृथग्भाव और लेखा नामवाले देवताओंके पाँच गण थे, ये स्वर्गमें रहते थे । ये सब अङ्गिरा ऋषिके पुत्र थे और सभी परम तेजस्वी महात्मा थे । इनकी माताका नाम नड्वला था । महाराज ! (चाक्षुष मनुके) ऊरु आदि दस प्रसिद्ध पुत्र थे । राजन् ! यह छठे मन्वन्तरका वर्णन किया गया ॥ ३०–३३ ॥

अत्रिर्वसिष्ठो भगवान् कश्यपश्च महानृषिः ।
गौतमोऽथ भरद्वाजो विश्वामित्रस्तथैव च ॥ ३४ ॥
तथैव पुत्रो भगवानृचीकस्य महात्मनः ।
सप्तमो जमदग्निश्च ऋषयः साम्प्रतं दिवि ॥ ३५ ॥

(अब सप्तम मन्वन्तरका वर्णन करते हैं—) इस वर्तमान समयमें स्वर्गमें स्थित अत्रि, भगवान् वसिष्ठ, महर्षि कश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र और सातवें महात्मा ऋचीकके पुत्र भगवान् जमदग्नि—ये सप्तर्षि हैं ॥ ३४-३५ ॥

साध्या रुद्राश्च विश्वे च मरुतो वसवस्तथा ।
आदित्याश्चाश्विनौ चैव देवौ वैवस्वतौ स्मृतौ ॥ ३६ ॥
मनोर्वैवस्वतस्यैते वर्तन्ते साम्प्रतेऽन्तरे ।
इक्ष्वाकुप्रमुखाश्चैव दश पुत्रा महात्मनः ॥ ३७ ॥

साध्य, रुद्र, विश्वेदेव, मरुत्, वसु, आदित्य और दोनों अश्विनीकुमार, जो कि सूर्यके पुत्र कहलाते हैं,

ये सब इस वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तरके देवता हैं और इस महात्मा वैवस्वत मनुके इक्ष्वाकु आदि दस पुत्र हैं ॥ ३६-३७ ॥

एतेषां कीर्तितानां तु महर्षीणां महौजसाम् ।
राजन् पुत्राश्च पौत्राश्च दिक्षु सर्वासु भारत ॥ ३८ ॥

भरतवंशी राजन्! जिनकी चर्चा हुई है, इन परम तेजस्वी महर्षियोंके पुत्र और पौत्र सब दिशाओंमें (व्याप्त हैं) ॥ ३८ ॥

मन्वन्तरेषु सर्वेषु प्राग्दिशः सप्तसप्तकाः ।
स्थिता लोकव्यवस्थार्थं लोकसंरक्षणाय च ॥ ३९ ॥

सब मन्वन्तरोंमें पूर्व कथित उन्चास पवन लोकोंकी व्यवस्था और रक्षा करनेके लिये स्थित रहते हैं ॥ ३९ ॥

मन्वन्तरे व्यतिक्रान्ते चत्वारः सप्तका गणाः ।
कृत्वा कर्म दिवं यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम् ॥ ४० ॥

प्रत्येक मन्वन्तरके बीतनेपर उनमेंसे अट्ठाईस पवन अपने कर्मको (पूर्ण) करके स्वर्गमें जाकर अनामय (व्याधिरहित) ब्रह्मलोकको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४० ॥

ततोऽन्ये तपसा युक्ताः स्थानमापूरयन्त्युत ।
अतीता वर्तमानाश्च क्रमेणैतेन भारत ॥ ४१ ॥
एतान्युक्तानि कौरव्य सप्तातीतानि भारत ।
मन्वन्तराणि षट् चापि निबोधानागतानि मे ॥ ४२ ॥

भारत ! तब मन्वन्तरके अन्तमें दूसरे वायु तपोबलसे उनके पदपर आरूढ़ होकर उनके स्थानको पूर्ण कर देते हैं। कौरव्य ! बीते हुए और वर्तमान सात मन्वन्तरोंका वर्णन कर दिया। भरतनन्दन ! अब भविष्यके छः (सात) मन्वन्तरोंका वर्णन मुझसे सुनो ॥ ४१-४२ ॥

सावर्णा मनवस्तात पञ्च तांश्च निबोध मे ।
एको वैवस्वतस्तेषां चत्वारस्तु प्रजापतेः ॥ ४३ ॥
परमेष्ठिसुतास्तात मेरुसावर्णतां गतः ।
दक्षस्यैते हि दौहित्राः प्रियायास्तनया नृप ।
महान्तस्तपसा युक्ता मेरुपृष्ठे महौजसः ॥ ४४ ॥

तात ! सावर्णि मनु पाँच हैं, उनको मुझसे सुनो। उनमेंसे एक तो सूर्यके पुत्र हैं और चार प्रजापति परमेष्ठीके, ये सब दक्षके नाती हैं तथा (दक्षकन्या) प्रियाके पुत्र हैं। राजन् ! मेरु पर्वतपर बड़ा भारी तप करके ये महातपस्वी मनु मेरुसावर्ण नामको प्राप्त हुए ॥ ४३-४४ ॥

रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नाम मनुः स्मृतः ।
भूत्यां चोत्पादितो देव्यां भौत्यो नाम रुचेः सुतः ॥ ४५ ॥

प्रजापति रुचिके पुत्र रौच्य मनु कहलाते हैं और भूति देवीके गर्भसे उत्पन्न रुचिके पुत्र भौत्य कहलाते हैं ॥ ४५ ॥

अनागताश्च सप्तैते स्मृता दिवि महर्षयः ।
मनोरन्तरमासाद्य सावर्णस्य ह ताञ्छृणु ॥ ४६ ॥

अब भविष्यत्-कालमें होनेवाले सावर्णि मन्वन्तरके सात महर्षि स्वर्गमें विराजमान हैं, उन (अष्टम मन्वन्तरके ऋषियोंको सुनो ॥ ४६ ॥

रामो व्यासस्तथाऽऽत्रेयो दीप्तिमानिति विश्रुतः ।
भारद्वाजस्तथा द्रौणिरश्वत्थामा महाद्युतिः ॥ ४७
गौतमस्यात्मजश्चैव शरद्वान् गौतमः कृपः ।
कौशिको गालवश्चैव रुरुः काश्यप एव च ॥ ४८

(परशु-) राम, व्यास, अत्रिपुत्र दीप्तिम भरद्वाजगोत्री द्रोणपुत्र महातेजस्वी अश्वत्थामा, गौतमके एवं गौतम-गोत्री शरद्वान् (के पुत्र) कृपाचार्य, कौशिको गालव और काश्यपगोत्री रुरु ॥ ४७-४८ ॥

एते सप्त महात्मानो भविष्या मुनिसत्तमाः ।
ब्रह्मणः सदृशाश्चैते धन्याः सप्तर्षयः स्मृताः ॥ ४९

ये ब्रह्माजीके समान धन्यवादके पात्र भविष्यके मुनिश्रेष्ठ महात्मा सप्तर्षि कहे गये हैं ॥ ४९ ॥

अभिजात्याथ तपसा मन्त्रव्याकरणैस्तथा ।
ब्रह्मलोकप्रतिष्ठास्तु स्मृताः सप्तर्षयोऽमलाः ॥ ५०

ये जन्म, तप, मन्त्र और व्याकरणके प्रभावसे पवित्र ऋषि ब्रह्मलोकमें रहते हैं ॥ ५० ॥

भूतभव्यभवज्ज्ञानं बुद्ध्वा चैव तु ये स्वयम् ।
तपसा वै प्रसिद्धा ये संगताः प्रविचिन्तकाः ॥ ५१

ये ऋषि स्वयं अपने तपसे भूत, भविष्य और वर्त कालके सब वृत्तान्तको जानकर प्रसिद्ध हो गये हैं परस्पर मिलकर परमात्मतत्त्वका विचार करते रहते हैं ॥ ५

मन्त्रव्याकरणाद्यैश्च ऐश्वर्यात् सर्वशश्च ये ।
एतान् भार्यान् द्विजो ज्ञात्वा नैष्ठिकानि च नाम च ॥ ५

ये मन्त्र, व्याकरण आदिसे तथा ऐश्वर्यके कारण भी (प्रसिद्ध हैं)। ब्राह्मण इन भरण करनेयोग्य ऋषियोंको इनके नैष्ठिक कर्मों और नामोंको जानकर (कल्या भागी होता है) ॥ ५२ ॥

सप्तैते सप्तभिश्चैव गुणैः सप्तर्षयः स्मृताः ।
दीर्घायुषो मन्त्रकृत ईश्वरा दीर्घचक्षुषः ॥ ५३

ये सातों अपने सात गुणोंके कारण सप्तर्षि कहलाते हैं दीर्घायु, मन्त्रद्रष्टा, सर्वसमर्थ तथा दीर्घदर्शी हैं ॥ ५३ ॥

बुद्ध्या प्रत्यक्षधर्माणो गोत्रप्रावर्तकास्तथा ।
कृतादिषु युगाख्येषु सर्वेष्वेव पुनः पुनः ॥ ५४
प्रावर्तयन्ति ते वर्णानाश्रमांश्चैव सर्वशः ।
सप्तर्षयो महाभागाः सत्यधर्मपरायणाः ॥ ५५

इन्हें अपनी बुद्धिसे धर्मके महत्त्वका प्रत्यक्ष अ होना है तथा ये गोत्रप्रवर्तक (गोत्र चलानेवाले) सत्यधर्ममें परायण रहनेवाले ये महाभाग सप्तर्षि सत्

आदि सभी युगोंमें सर्वत्र (ब्राह्मण आदि चारों) वर्णों और (ब्रह्मचर्य आदि चारों) आश्रमोंको बारंबार स्वधर्ममें प्रवृत्त करते रहते हैं ॥ ५४-५५ ॥

तेषां चैवान्वयोत्पन्ना जायन्तीह पुनः पुनः ।
मन्त्रब्राह्मणकर्तारो धर्मे प्रशिथिले तथा ॥ ५६ ॥

धर्मके शिथिल होनेपर इन्हीं ऋषियोंके वंशज विद्वान् पुरुष मन्त्र और ब्राह्मण भागके प्रणेता होकर बारंबार यहाँ धर्मोद्धारके लिये जन्म धारण करते हैं ॥ ५६ ॥

यस्माच्च वरदाः सप्त परेभ्य एव याचिताः ।
तस्मान्न कालो न वयः प्रमाणमृषिभावने ॥ ५७ ॥

ये सातों वर देनेवाले हैं और दूसरे पुरुष इनसे याचना करते हैं, अतएव इन ऋषियोंके सम्बन्धमें विचार करनेपर न तो इनकी उत्पत्तिका समय बताया जा सकता है और न इनकी अवस्थाका परिमाण ही ॥ ५७ ॥

एष सप्तर्षिकोद्देशो व्याख्यातस्ते मया नृप ।
सावर्णस्य मनोः पुत्रान् भविष्याञ्छृणु सत्तम ॥ ५८ ॥

राजन् ! मैंने तुमसे यह सप्तर्षियोंकी बात संक्षेपसे कह दी । सत्तम ! अब सावर्णि मनुके भविष्यमें होनेवाले पुत्रोंका वर्णन सुनो ॥ ५८ ॥

वरीयांश्चावरीयांश्च सम्मतो धृतिमान् वसुः ।
चरिष्णुरप्यधृष्णुश्च वाजः सुमतिरेव च ।
सावर्णस्य मनोः पुत्रा भविष्या दश भारत ॥ ५९ ॥

भरतवंशी राजन् ! वरीयान्, अवरीयान्, सम्मत, धृतिमान्, वसु, चरिष्णु, अधृष्णु, वाज, सुमति (तथा एक और)—ये सावर्णि मनुके भविष्यमें होनेवाले दस पुत्र हैं ॥ ५९ ॥

प्रथमे मेरुसावर्णे प्रवक्ष्यामि मुनीञ्छृणु ।
मेधातिथिस्तु पौलस्त्यो वसुः काश्यप एव च ॥ ६० ॥
ज्योतिष्मान् भार्गवश्चैव द्युतिमानङ्गिरास्तथा ।
सावनश्चैव वासिष्ठ आत्रेयो हव्यवाहनः ॥ ६१ ॥
पौलहः सप्त इत्येते मुनयो रोहितेऽन्तरे ।
देवतानां गणास्तत्र त्रय एव नराधिप ॥ ६२ ॥

अब मैं प्रथम मेरुसावर्ण अर्थात् नवम मनुके समकालीन ऋषियोंका वर्णन करता हूँ, सुनिये ! पुलस्त्यगोत्री मेधातिथि, कश्यपगोत्री वसु, भृगुवंशी ज्योतिष्मान् अङ्गिरागोत्री द्युतिमान्, वसिष्ठगोत्री सावन, अत्रिपुत्र हव्यवाहन और पुलह-गोत्री सप्त—रोहित* मन्वन्तरके ये सात ऋषि हैं और राजन् ! उस मन्वन्तरमें देवताओंके तीन ही गण होंगे ॥ ६०–६२ ॥

दक्षपुत्रस्य पुत्रास्ते रोहितस्य प्रजापतेः ।
मनोः पुत्रो धृष्टकेतुः पञ्चहोत्रो निराकृतिः ॥ ६३ ॥
पृथुः श्रवा भूरिधामा ऋचीकोऽष्टहतो गयः ।
प्रथमस्य तु सावर्णेर्नव पुत्रा महौजसः ॥ ६४ ॥

ये दक्षके पुत्र रोहित प्रजापतिके पुत्र हैं और इन प्रथम सावर्णि मनुके धृष्टकेतु, पञ्चहोत्र, निराकृति, पृथु, श्रवा, भूरिधामा, ऋचीक, अष्टहत और गय—ये नौ महाबली पुत्र होंगे ॥ ६३-६४ ॥

दशमे त्वथ पर्याये द्वितीयस्यान्तरे मनोः ।
हविष्मान् पौलहश्चैव सुकृतिश्चैव भार्गवः ॥ ६५ ॥
आपोमूर्तिस्तथाऽऽत्रेयो वासिष्ठश्चाष्टमः स्मृतः ।
पौलस्त्यः प्रमितिश्चैव नभोगश्चैव काश्यपः ।
अङ्गिरा नभसः सत्यः सप्तैते परमर्षयः ॥ ६६ ॥

दसवें और दूसरे सावर्णि मनु (दक्ष सावर्णि)के मन्वन्तरमें पुलहगोत्री हविष्मान्, भृगुवंशी सुकृति, अत्रिवंशी आपोमूर्ति, वसिष्ठपुत्र अष्टम, पुलस्त्यगोत्री प्रमिति, कश्यपगोत्री नभोग और अङ्गिरावंशी नभसके पुत्र सत्य—ये सात परम ऋषि होंगे ॥

देवतानां गणौ द्वौ तौ ऋषिमन्त्राश्च ये स्मृताः ।
मनोः सुतोत्तमौजाश्च निकुषञ्जश्च वीर्यवान् ॥ ६७ ॥
शतानीको निरामित्रो वृषसेनो जयद्रथः ।
भूरिद्युम्नः सुवर्चाश्च दश त्वेते मनोः सुताः ॥ ६८ ॥

उस समय (दक्षिण-मार्गके अभिमानी धूम आदि और उत्तरमार्गके अभिमानी अग्नि आदि ये) दो देवताओंके गण होंगे तथा ऋषियुक्त मन्त्रोंद्वारा जिन देवताओंका प्रतिपादन होता है, वे भी उस समयके देवता होंगे तथा मनुसुत, उत्तमौजा, निकुपञ्ज, वीर्यवान्, शतानीक, निरामित्र, वृषसेन, जयद्रथ, भूरिद्युम्न और सुवर्चा—ये मनुके दस पुत्र होंगे ॥ ६७-६८ ॥

एकादशेऽथ पर्याये तृतीयस्यान्तरे मनोः ।
तस्य सप्त ऋषींश्चापि कीर्त्यमानान् निबोध मे ॥ ६९ ॥

अब ग्यारहवें मनु—एवं तीसरे सावर्णि मनु (रुद्र-सावर्णि)के मन्वन्तरमें जो सात ऋषि और देवता होंगे, उनका वर्णन करता हूँ, सुनो ॥ ६९ ॥

हविष्मान् काश्यपश्चापि हविष्मान् यश्च भार्गवः ।
तरुणश्च तथाऽऽत्रेयो वासिष्ठस्त्वनघस्तथा ॥ ७० ॥
अङ्गिराश्चोदधिष्ण्यश्च पौलस्त्यो निश्चरस्तथा ।
पुलहश्चाग्नितेजाश्च भाव्याः सप्त महर्षयः ॥ ७१ ॥
ब्रह्मणस्तु सुता देवा गणास्तेषां त्रयः स्मृताः ।
संवर्तकः सुशर्मा च देवानीकः पुरूद्वहः ॥ ७२ ॥
क्षेमधन्वा दृढायुश्च आदर्शः पण्डको मनुः ।
सावर्णस्य तु पुत्रा वै तृतीयस्य नव स्मृताः ॥ ७३ ॥

कश्यपगोत्री हविष्मान्, भृगुवंशी हविष्मान्, अत्रिगोत्रोत्पन्न तरुण, वसिष्ठगोत्री अनघ, अङ्गिरागोत्री उदधिष्ण्य,

---

* मेरुसावर्णिका ही दूसरा नाम रोहित है ।

पुलस्त्यगोत्री निश्चर एवं पुलहगोत्री अग्नितेजा—ये सात महर्षि होंगे। ये सब-के-सब ब्रह्माजीके (मानस) पुत्र हैं। उस मन्वन्तर-में देवताओंके तीन गण होंगे तथा इन तीसरे सावर्णि मनुके संवर्तक, सुशर्मा, देवानीक, पुरूद्वह, क्षेमधन्वा, दृढायु, आदर्श, पण्डक और मनु—ये नौ पुत्र माने गये हैं ॥

चतुर्थस्य तु सावर्णेर्ऋषीन् सप्त निबोध मे।
द्युतिर्वसिष्ठपुत्रश्च आत्रेयः सुतपास्तथा ॥ ७४ ॥
अङ्गिरास्तपसो मूर्तिस्तपस्वी काश्यपस्तथा।
तपोऽशनश्च पौलस्त्यः पौलहश्च तपो रविः ॥ ७५ ॥
भार्गवः सप्तमस्तेषां विज्ञेयस्तु तपोधृतिः।
पञ्च देवगणाः प्रोक्ता मानसा ब्रह्मणश्च ते ॥ ७६ ॥

अब मैं चतुर्थ सावर्णिके (अर्थात् बारहवें मन्वन्तरके) ऋषियोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। वसिष्ठजीके पुत्र द्युति, अत्रिगोत्रमें उत्पन्न सुतपा, अङ्गिरागोत्री तपोमूर्ति, कश्यप-गोत्री तपस्वी, पुलस्त्यवंशमें उत्पन्न तपोऽशन, पुलहगोत्री तपोरवि और सातवाँ भृगुवंशी तपोधृति (को) समझना चाहिये। (इस मन्वन्तरमें) देवताओंके पाँच गण होंगे। वे सब ब्रह्माजीके संकल्पसे उत्पन्न होंगे ॥ ७४–७६ ॥

देववायुरदूरश्च देवश्रेष्ठो विदूरथः।
मित्रवान् मित्रदेवश्च मित्रसेनश्च मित्रकृत्।
मित्रबाहुः सुवर्चाश्च द्वादशस्य मनोः सुताः ॥ ७७ ॥

इन बारहवें मनुके देववायु, अदूर, देवश्रेष्ठ, विदूरथ, मित्रवान्, मित्रदेव, मित्रसेन, मित्रकृत्, मित्रबाहु और सुवर्चा (—ये दस) पुत्र होंगे ॥ ७७ ॥

त्रयोदशेऽथ पर्याये भाव्ये मन्वन्तरे मनोः।
अङ्गिराश्चैव धृतिमान् पौलस्त्यो हव्यपस्तु यः॥ ७८ ॥
पौलहस्तत्त्वदर्शी च भार्गवश्च निरुत्सुकः।
निष्प्रकम्पस्तथाऽऽत्रेयो निर्मोहः काश्यपस्तथा॥ ७९ ॥
सुतपाश्चैव वासिष्ठः सप्तैते तु महर्षयः।
त्रय एव गणाः प्रोक्ता देवतानां स्वयम्भुवा ॥ ८० ॥

फिर भविष्यके तेरहवें मनुके मन्वन्तरमें अङ्गिरागोत्री धृतिमान्, पुलस्त्यवंशी हव्यप, पुलहवंशोत्पन्न तत्त्वदर्शी, भृगुगोत्री निरुत्सुक, अत्रिगोत्री निष्प्रकम्प, कश्यपगोत्री निर्मोह और वसिष्ठगोत्री सुतपा—ये सात महर्षि होंगे और देवताओंके तीन गण होंगे, ऐसा स्वयं ब्रह्माजीने कहा है ॥

त्रयोदशस्य पुत्रास्ते विज्ञेयास्तु रुचेः सुताः।
चित्रसेनो विचित्रश्च नयो धर्मभृतो धृतः ॥ ८१ ॥
सुनेत्रः क्षत्रवृद्धिश्च सुतपा निर्भयो दृढः।
रौच्यस्यैते मनोः पुत्रा अन्तरे तु त्रयोदशे ॥ ८२ ॥

अब तेरहवें मनु रुचिके पुत्रोंको इस प्रकार जानो— चित्रसेन, विचित्र, नय, धर्मभृत, धृत, सुनेत्र, क्षत्रवृ सुतपा, निर्भय और दृढ—ये तेरहवें मन्वन्तरमें रौच्य ना मनुके पुत्र होंगे ॥ ८१-८२ ॥

चतुर्दशेऽथ पर्याये भौत्यस्यैवान्तरे मनोः।
भार्गवो ह्यतिबाहुश्च शुचिराङ्गिरसस्तथा ॥ ८
युक्तश्चैव तथाऽऽत्रेयः शुक्रो वासिष्ठ एव च।
अजितः पौलहश्चैव अन्त्याः सप्तर्षयश्च ते ॥ ८

चौदहवें भौत्य नामक मनुके मन्वन्तरमें भृगुगोत्री अतिबाहु, अङ्गिरागोत्री शुचि, अङ्गिरागोत्री अत्रिगोत्रोत्पन्न युक्त, अत्रिगोत्री शुक्र, वसिष्ठगोत्री शुक्र पुलहगोत्री अजित—ये अन्तिम सप्तर्षि होंगे ॥ ८३-८४

एतेषां कल्य उत्थाय कीर्तनात् सुखमेधते।
यशश्चाप्नोति सुमहदायुष्मांश्च भवेन्नरः ॥ ८५
अतीतानागतानां वै महर्षीणां सदा नरः।
देवतानां गणाः प्रोक्ताः पञ्च वै भरतर्षभ ॥ ८६ ।

मनुष्य प्रातःकाल उठकर इन भूत-भविष्यत्-काल महर्षियोंका कीर्तन करनेसे सदा सुख पाता है, साथ ही बड़ा भारी यश पाता है और दीर्घायु होता है। भरतर्षभ उस समय देवताओंके पाँच गण होंगे ॥८५-८६॥

तरङ्गभीरुर्वप्रश्च तरस्वानुग्र एव च।
अभिमानी प्रवीणश्च जिष्णुः संक्रन्दनस्तथा ॥ ८७
तेजस्वी सबलश्चैव भौत्यस्यैते मनोः सुताः।
भौत्यस्यैवाधिकारे तु पूर्णे कल्पस्तु पूर्यते ॥ ८८

भौत्य मनुके तरङ्गभीरु, वप्र, तरस्वान्, उग्र, अभिमान प्रवीण, जिष्णु, संक्रन्दन, तेजस्वी और सबल—ये (द पुत्र होंगे तथा भौत्य मनुका अधिकारकाल पूर्ण होनेपर क (अर्थात् ब्रह्माजीकी आयुका एक दिन) पूरा हो जाता है

इत्येते नामतोऽतीता मनवः कीर्तिता मया।
तैरियं पृथिवी तात समुद्रान्ता सपत्तना ॥ ८९
पूर्णं युगसहस्रं तु परिपाल्या नराधिप।
प्रजाभिश्चैव तपसा संहारस्तेषु भागशः ॥ ९०

यह मैंने नाम लेकर बीते हुए (वर्तमान और होनेवा मनुओंका वर्णन किया। नराधिप! ये (मनु) तप के प्रभावसे हजार चतुर्युगी पूर्ण होनेतक नगरोंसे ले समुद्रतककी पृथ्वीका तथा प्रजाका सर्वदा पालन करते उक्त सभी मन्वन्तरोंमें अलग-अलग प्रजाका संहार हो है ॥ ८९-९० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि मन्वन्तरवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें मन्वन्तर-वर्णनविषयक
सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

चारों युगों, मन्वन्तरों और ब्रह्माजीके दिन एवं वर्षका मान

जनमेजय उवाच

मन्वन्तरस्य संख्यानं युगानां च महामते।
ब्रह्मणोऽह्नः प्रमाणं च वक्तुमर्हसि मे द्विज ॥ १ ॥

जनमेजयने कहा—परम बुद्धिमान् द्विजवर ! आप मुझसे मन्वन्तरोंके युगोंकी संख्याका वर्णन कीजिये तथा ब्रह्माजीके दिनका प्रमाण भी बताइये ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच

अहोरात्रं भजेत् सूर्यो मानवं लौकिकं परम्।
तामुपादाय गणनां शृणु संख्यामरिंदम ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी बोले—शत्रुदमन ! सूर्य मनुष्योंके दिन और रात्रिका विभाग करते हैं। इस लौकिक गणनासे आरम्भ करके मनुसे भी परे द्विपरार्धनामक ब्राह्म-गणनातकका वर्णन सुनो ॥ २ ॥

निमेषैः पञ्चदशभिः काष्ठा त्रिंशत् तु ताः कलाः।
त्रिंशत्कलो मुहूर्तस्तु त्रिंशता तैर्मनीषिणः ॥ ३ ॥
अहोरात्रमिति प्राहुश्चन्द्रसूर्यगतिं नृप।
विशेषेण तु सर्वेषु अहोरात्रे च नित्यशः ॥ ४ ॥

राजन् ! पंद्रह निमेषोंकी एक काष्ठा होती है और तीस काष्ठाओंकी एक कला होती है। तीस कलाओंका एक मुहूर्त होता है और बुद्धिमान् पुरुष तीस मुहूर्तोंको एक दिन-रात कहते हैं, जिसका निर्माण चन्द्रमा तथा सूर्यकी गतिद्वारा होता है। विशेषकर सूर्य-चन्द्रमाके उदय-अस्तसे मेरुके परिवर्ती भू-प्रदेशमें रात-दिन होता है ॥ ३-४ ॥

अहोरात्राः पञ्चदश पक्ष इत्यभिशब्दितः।
द्वौ पक्षौ तु स्मृतो मासो मासौ द्वावृतुरुच्यते ॥ ५ ॥

पंद्रह अहोरात्र (दिन-रात) का नाम पक्ष है और दो पक्षों—पखवाड़ोंका एक महीना माना जाता है तथा दो महीनोंकी एक ऋतु कहलाती है ॥ ५ ॥

अब्दं द्व्ययनमुक्तं च अयनं त्वृतुभिस्त्रिभिः।
दक्षिणं चोत्तरं चैव संख्यातत्त्वविशारदैः ॥ ६ ॥

तीन ऋतुओंका एक अयन होता है और दो अयनोंका एक वर्ष होता है। संख्याके तत्त्वको जाननेमें चतुर पुरुषोंने उन दोनों अयनोंका नाम दक्षिणायन और उत्तरायण बताया है ॥ ६ ॥

मानेनानेन यो मासः पक्षद्वयसमन्वितः।
पितॄणां तदहोरात्रमिति कालविदो विदुः ॥ ७ ॥

इस मानसे जो दो पक्षोंका (एक) मास होता है, उसे समयको जाननेवाले (चतुर पुरुष) पितरोंका (एक) दिन-रात कहते हैं ॥ ७ ॥

कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लपक्षस्तु शर्वरी।
कृष्णपक्षं त्वहः श्राद्धं पितॄणां वर्तते नृप ॥ ८ ॥

कृष्ण-पक्ष उन पितरोंका दिन होता है और शुक्ल पक्ष उनकी रात्रि होती है, इसलिये राजन् ! कृष्णपक्षरूप दिनमें पितरोंका श्राद्ध होता है* ॥ ८ ॥

मानुषेण तु मानेन यो वै संवत्सरः स्मृतः।
देवानां तदहोरात्रं दिवा चैवोत्तरायणम्।
दक्षिणायनं स्मृता रात्रिः प्राज्ञैस्तत्त्वार्थकोविदैः ॥ ९ ॥

मनुष्योंके मानसे जो एक वर्ष कहा गया है, वह देवताओंका एक दिन-रात होता है। तत्त्वको जाननेमें चतुर बुद्धिमान् पुरुषोंने उत्तरायणको देवताओंका दिन और दक्षिणायनको देवताओंकी रात्रि बताया है† ॥ ९ ॥

दिव्यमब्दं दशगुणमहोरात्रं मनोः स्मृतम्।
अहोरात्रं दशगुणं मानवः पक्ष उच्यते ॥ १० ॥

देवताओंके दस वर्षोंका मनुका एक दिन-रात कहा है और इस दिन-रातका दसगुना मनुका एक पक्ष कहलाता है ॥ १० ॥

पक्षो दशगुणो मासो मासैर्द्वादशभिर्गुणैः।
ऋतुर्मनूनां संप्रोक्तः प्राज्ञैस्तत्त्वार्थदर्शिभिः।
ऋतुत्रयेण त्वयनं तद्द्वयेनैव वत्सरः ॥ ११ ॥

दस पक्षोंका मनुका एक मास होता है, बारह महीनोंकी एक ऋतु होती है। तत्त्वार्थदर्शी बुद्धिमानोंने

---

* चन्द्रलोकमें रहनेवाले पितर शुक्ल-पक्षमें चन्द्रमासे ढके हुए सूर्यको नहीं देखते। कृष्ण-पक्षमें सूर्य और चन्द्रमा एक-दूसरेके सम्मुख होनेके कारण उन्हें सूर्यका दर्शन होता है, इसलिये शुक्ल-पक्षको पितरोंकी रात्रि और कृष्ण-पक्षको पितरोंका दिन कहा है। इसीलिये सम्पूर्ण कृष्णपक्षको अथवा अत्यन्त आवश्यकता होनेपर दिनका अन्त होनेके कारण अमावास्याको श्राद्ध-काल बताया है।

† तात्पर्य यह है कि मकर-संक्रान्तिसे मिथुन-संक्रान्तिके अन्ततक सूर्यके रथकी किरणोंके और अक्षांशकी किरणोंके प्रतिदिन ध्रुवकी ओर खिंचते रहनेसे उत्तरकी ओर चलनेवाला सूर्य मेरु पर्वतके शिखरपर रहनेवाले देवताओंको दीखता रहता है, अतः उत्तरायण देवताओंका दिन होता है तथा कर्क-संक्रान्तिसे लेकर धनुः-संक्रान्तिके अन्ततक उन दोनों प्रकारकी किरणोंके ध्रुवको प्रतिदिन क्रमशः छोड़ते रहनेसे दक्षिणकी ओर चलता हुआ सूर्य देवताओंको नहीं दीखता। अतएव दक्षिणायन देवताओंकी रात है।

तीन ऋतुओंका एक अयन माना है और दो अयनोंका एक वर्ष कहा है * ॥ ११ ॥

चत्वार्येव सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम् ।
तावच्छती भवेत् संध्या संध्यांशश्च तथा नृप ॥ १२॥

राजन् ! देवताओंके चार हजार वर्षोंका एक सत्ययुग होता है, चार सौ वर्षोंकी उसकी संध्या होती है और इतना ही उसका संध्यांश होता है † ॥ १२ ॥

त्रीणि वर्षसहस्राणि त्रेता स्यात् परिमाणतः ।
तस्याश्च त्रिशती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः॥ १३ ॥

तीन हजार वर्षोंके परिमाणका त्रेतायुग होता है और तीन सौ वर्षोंकी उसकी संध्या होती है तथा इतना ही उसका संध्यांश होता है ॥ १३ ॥

तथा वर्षसहस्रे द्वे द्वापरं परिकीर्तितम् ।
तस्यापि द्विशती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः ॥ १४ ॥

इसी प्रकार दो हजार वर्षोंका द्वापरयुग कहा गया है, दो सौ वर्षोंकी उसकी संध्या होती है और इतना ही उसका संध्यांश होता है ॥ १४ ॥

कलिर्वर्षसहस्रं च संख्यातोऽत्र मनीषिभिः ।
तस्यापि शतिका संध्या संध्यांशश्चैव तद्विधः ॥ १५ ॥

इसी गणनाके अनुसार बुद्धिमान् पुरुषोंने कलियुगको एक हजार वर्षोंवाला बताया है । सौ वर्षोंकी उसकी संध्या होती है और इतना ही संध्यांश होता है ॥ १५॥

एषा द्वादशसाहस्री युगसंख्या प्रकीर्तिता ।
दिव्येनानेन मानेन युगसंख्यां निबोध मे ॥ १६ ॥

यह बारह हजार वर्षोंकी एक चतुर्युगकी संख्या कही गयी । राजन् ! इस दिव्यमानसे तुम युगोंके वर्षोंकी गिनती समझ लो‡ ॥ १६ ॥

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चैव चतुर्युगी ।
युगं तदेकसप्तत्या गणितं नृपसत्तम ॥ १७ ॥
मन्वन्तरमिति प्रोक्तं संख्यानार्थविशारदैः ।
अयनं चापि तत्प्रोक्तं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे ॥ १८ ॥

सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—इन चारों चतुर्युगी कहते हैं । नृपश्रेष्ठ ! संख्या करनेमें चतुर पुरुषों इकहत्तर चौकड़ी युगों (से कुछ अधिक काल) का ना मन्वन्तर कहा है (क्योंकि हजारका चौदहवाँ भा इतना ही होता है) । इसके भी दक्षिणायन और उत्तरायण- ये दो अयन कहे गये हैं * ॥ १७-१८ ॥

मनुः प्रलीयते यत्र समाप्ते चायने प्रभोः ।
ततोऽपरो मनुः कालमेतावन्तं भवत्युत ॥ १९ ॥

उत्तरायणके पूर्ण होनेपर मनु ब्रह्ममें लीन हो जा हैं । फिर इतने ही समयतक दूसरे मनु रहते हैं ॥ १९ ॥

समतीतेषु राजेन्द्र प्रोक्तः संवत्सरः स वै ।
तदेव चायुतं प्रोक्तं मुनिना तत्त्वदर्शिना ॥ २० ॥

राजेन्द्र ! तत्त्वदर्शी मुनिने दस हजार (असी मनुओंका ब्रह्माजीका एक वर्ष कहा है † ॥ २० ॥

ब्रह्मणस्तदहः प्रोक्तं कल्पश्चेति स कथ्यते ।
सहस्रयुगपर्यन्ता या निशा प्रोच्यते बुधैः ॥ २१ ॥
निमज्जत्यप्सु यत्रोर्वी सशैलवनकानना ।
तस्मिन् युगसहस्रे तु पूर्णे भरतसत्तम ॥ २२ ॥
ब्राह्मे दिवसपर्यन्ते कल्पो निःशेष उच्यते ।
युगानि सप्ततिस्तानि साग्राणि कथितानि ते ॥ २३ ॥
कृतत्रेतानिबद्धानि मनोरन्तरमुच्यते ।
चतुर्दशैते मनवः कीर्तिताः कीर्तिवर्द्धनाः ॥ २४ ॥
वेदेषु सपुराणेषु सर्वेषु प्रभविष्णवः ।
प्रजानां पतयो राजन् धन्यमेषां प्रकीर्तनम् ॥ २५

भरतसत्तम ! ब्रह्माजीका जो दिन कहा है, उसी नाम कल्प है और विद्वान् पुरुषोंने हजार युगोंकी ब्रह्म जीकी जो रात्रि कही है, उसमें वन और पर्वतोंसहित पृथ् जलमें डूब जाती है और उन हजार चतुर्युगियोंके पूर्ण होने जो ब्रह्माजीका दिन आरम्भ होता है, उसकी समाि तकका समय एक कल्प कहलाता है । राजन् ! सत्ययु त्रेतायुगादिसहित इकहत्तर चतुर्युगीसे कुछ अधि कालका एक मन्वन्तर कहलाता है ।† यह की

---

[*] अर्थात् देवताओंके बहत्तर हजार वर्षोंका मनुका एक दिन होता है ।

[†] युगके पहले भागका नाम संध्या और युगके अन्तिम भागका नाम संध्यांश है ।

[‡] सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुगकी एक चतुर्युगी देवताओंके बारह हजार वर्षोंकी होती है अर्थात् दिव्य दस हजार वर्षोंके ये चारों युग होते हैं । इन चारों युगोंकी संध्याएँ एक हजार दिव्य वर्षोंकी होती हैं और इनके संध्यांश भी एक हजार दिव्य वर्षोंके होते हैं ।

[*] अर्थात् वे पहले धूमादिमार्गसे देवलोकमें पहुँचकर अ अधिकारको भोगनेके अनन्तर उत्तरायणके मार्गसे ब्रह्मलोकमें पहुँ जाते हैं ।

[†] इकहत्तर चतुर्युगके हिसाबसे चौदह मन्वन्तरोंमें ९९ चतुर्युग होते हैं । तथा ब्रह्माके एक दिनमें एक हजार चतुर्युग हो हैं, अतः छः चतुर्युग और बचे । छः चतुर्युगका चौदहवाँ भ कुछ कम पाँच हजार एक सौ तीन दिव्य वर्ष होता है । इस प्र एक मन्वन्तरमें इकहत्तर चतुर्युगके अतिरिक्त इतने दिव्य वर्ष अधिक होते हैं ।

बढ़ानेवाले चौदह मनुओंका वर्णन कर दिया । सभी पुराणों और वेदोंमें इन प्रभावशाली प्रजापति मनुओंका वर्णन आता है । राजन् ! इनका कीर्तन करनेसे धनकी प्राप्ति होती है ॥ २१–२५ ॥

मन्वन्तरेषु संहाराः संहारान्तेषु सम्भवाः ।
न शक्यमन्तरं तेषां वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ २६ ॥

मन्वन्तरोंमें कितने ही संहार होते हैं और संहारके बाद कितनी ही सृष्टियाँ होती रहती हैं । इनके अन्तरको सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं बताया जा सकता ॥ २६ ॥

विसर्गस्य प्रजानां वै संहारस्य च भारत ।
मन्वन्तरेषु संहाराः श्रूयन्ते भरतर्षभ ॥ २७ ॥

भारत ! भरतश्रेष्ठ ! प्रायः सभी मन्वन्तरोंमें यदा-कदा प्रजाकी सृष्टि और संहारकी परम्पराका उपसंहार हो जाता है—यह बात सुननेमें आती है ॥ २७ ॥

सशेषास्तत्र तिष्ठन्ति देवाः सप्तर्षिभिः सह ।
तपसा ब्रह्मचर्येण श्रुतेन च समाहिताः ॥ २८ ॥

मन्वन्तरोंके बाद जो संहार होता है, उसमें तपस्या, ब्रह्मचर्य और शास्त्र-ज्ञानसे सम्पन्न कुछ देवता और सप्तर्षि शेष रह जाते हैं ॥ २८ ॥

पूर्णे युगसहस्रे तु कल्पो निःशेष उच्यते ।
तत्र सर्वाणि भूतानि दग्धान्यादित्यतेजसा ॥ २९ ॥

सहस्र चतुर्युगियोंके पूर्ण होनेपर कल्प पूरा हो जाता है । उस समय सब भूत द्वादश आदित्योंकी किरणोंसे भस्म हो जाते हैं ॥ २९ ॥

ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा सहादित्यगणैर्विभुम् ।
योगं योगीश्वरं देवमजं क्षेत्रज्ञमच्युतम् ।
प्रविशन्ति सुरश्रेष्ठं हरिं नारायणं प्रभुम् ॥ ३० ॥

और वे (द्वादश सूर्य) भी (जिसका ईंधन जल गया है, ऐसे अग्निकी भाँति अपनी आत्माका उपसंहार करके) देवताओंसहित ब्रह्माजीको आगे करके योगीश्वर योगस्वरूप, देव, अज, क्षेत्रज्ञ, अच्युत, सुरश्रेष्ठ, सर्वव्यापी, प्रभु श्रीहरि नारायणमें प्रवेश कर जाते हैं ॥ ३० ॥

यः स्रष्टा सर्वभूतानां कल्पान्तेषु पुनः पुनः ।
अव्यक्तः शाश्वतो देवस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥ ३१ ॥

जो प्रत्येक कल्पका अन्त होनेपर (दूसरे कल्पका आरम्भ होनेके समय) बारंबार सब भूतोंको रचते हैं, जो अप्रकट, शाश्वत देव हैं, उन्हींका यह सम्पूर्ण जगत् है ॥ ३१ ॥

तत्र संवर्तते रात्रिः सकलैकार्णवे तदा ।
नारायणो दधे निद्रां ब्राह्मं वर्षसहस्रकम् ॥ ३२ ॥

(यह प्रलय सुषुप्तिके समय होता है, अतएव) जब सम्पूर्ण विश्व एकार्णवके जलमें निमग्न हो जाता है, तब रात्रि होती है और ब्रह्माजीके हजार वर्षोंतक नारायण निद्रा लेते हैं ॥ ३२ ॥

तावन्तमिति कालस्य रात्रिरित्यभिशब्दिता ।
निद्रायोगमनुप्राप्तो यस्यां शेते पितामहः ॥ ३३ ॥

जितने समयतक ब्रह्माजी योगनिद्राका आश्रय लेकर शयन करते हैं, उतना समय उनकी रात्रि कहलाती है ॥ ३३ ॥

सा च रात्रिरपक्रान्ता सहस्रयुगपर्यया ।
तदा प्रबुद्धो भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ३४ ॥
पुनः सिसृक्षया युक्तः सर्गाय विदधे मनः ।
सैव स्मृतिः पुराणेयं तद्वृत्तं तद्विचेष्टितम् ॥ ३५ ॥

जब वह रात्रि सहस्र चतुर्युगी बीतनेपर समाप्त होती है, तब लोकोंके पितामह भगवान् ब्रह्माजी जागते हैं । फिर रचनेकी इच्छासे युक्त होकर मनमें सृष्टि करनेका विचार करते हैं । उस समय उनकी चेष्टा और स्मृति पहले कल्पकी तरह ही होती है ॥ ३४-३५ ॥

देवस्थानानि तान्येव केवलं च विपर्ययः ।
ततो दग्धानि भूतानि सर्वाण्यादित्यरश्मिभिः ॥ ३६ ॥
देवर्षियक्षगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ।
जायन्ते च पुनस्तात युगे भरतसत्तम ॥ ३७ ॥

तात ! उस समय (ब्रह्माण्डमें सूर्य आदि) देवताओंके (और पिण्डमें चक्षु आदिके) स्थान भी वे ही होते हैं । परंतु (जीवोंका) विपर्यय (उलट-फेर) होता रहता है । भरतसत्तम ! सूर्यकी किरणोंसे भस्म होकर (भगवान् विष्णुमें लीन हुए) सब भूत तथा देवता, ऋषि, गन्धर्व, यक्ष, पिशाच, सर्प और राक्षस भी फिर उस युगमें उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ३६-३७ ॥

यथर्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये ।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा ब्राह्मीषु रात्रिषु ॥ ३८ ॥

जैसे (ग्रीष्म-शीत आदि) ऋतुओंके चिह्न उन ऋतुओंके आनेपर प्रकट होने लगते हैं, इसी प्रकार ब्रह्माजीकी रात्रियोंके बीतनेपर (पूर्व कल्पके समान) अनेक रूपोंवाले प्राणी (फिर) दीखने लगते हैं ॥ ३८ ॥

निष्क्रमित्वा प्रजाकारः प्रजापतिरसंशयम् ।
ये च वै मानवा देवाः सर्वे चैव महर्षयः ॥ ३९ ॥
ते सङ्गताः शुद्धसङ्गाः शश्वद्धर्मविसर्गतः ।
न भवन्ति पुनस्तात युगे भरतसत्तम ॥ ४० ॥

तात ! प्रजाओंको रचनेवाले प्रजापति (उस समय नारायणमेंसे) निकलकर (फिर भूतोंको रचने लगते हैं ।) जो-जो मनुष्य, देवता और महर्षिगण शाश्वतधर्म अर्थात् देहादिमें

आत्मबुद्धिरूप स्वाभाविक दोषोंको त्यागकर शुद्ध ब्रह्ममें पहुँचकर उसमें लीन हो जाते हैं, भरतसत्तम ! वे फिर (दूसरे) कल्पमें उत्पन्न नहीं होते ॥ ३९-४० ॥

तत्सर्वं क्रमयोगेन कालसंख्याविभागवित् ।
सहस्रयुगसंख्यानं कृत्वा दिवसमीश्वरः ॥ ४१ ॥
रात्रिं युगसहस्रान्तां कृत्वा च भगवान् विभुः ।
संहरत्यथ भूतानि सृजते च पुनः पुनः ॥ ४२ ॥

कालकी संख्याका विभाग करनेमें चतुर वे सर्वसमर्थ भगवान् परमात्मा क्रमानुसार सहस्र युगोंकी संख्यावाले दिन और (इसी प्रकार) सहस्र चतुर्युगियोंकी रात्रिको बनाकर प्राणियोंकी बारंबार रचना और संहार करते रहते हैं ॥ ४१-४२ ॥

व्यक्ताव्यक्तो महादेवो हरिर्नारायणः प्रभुः ।
तस्य ते कीर्तयिष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य ह ॥ ४३
विसर्गं भरतश्रेष्ठ साम्प्रतस्य महाद्युते ।
वृष्णिवंशप्रसङ्गेन कथ्यमानं पुरातनम् ॥ ४४
यत्रोत्पन्नो महात्मा स हरिर्वृष्णिकुले प्रभुः ।
सर्वासुरविनाशाय सर्वलोकहिताय च ॥ ४५

महादेव श्रीहरिनारायण प्रभु ही स्थूल-सूक्ष्म-रूप (सर्वत्र विराजमान) हैं। महाद्युते! वर्तमान वैवस्वत भी उनके ही अंश हैं। वृष्णिवंशके प्रसङ्गसे मैं पुरातन सृष्टिका वर्णन करूँगा। भरतश्रेष्ठ ! वे परमा और प्रभु श्रीहरि सारे असुरोंका विनाश तथा स लोकोंका कल्याण करनेके लिये इसी वृष्णिवं उत्पन्न हुए थे ॥ ४३–४५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि मन्वन्तरगणनायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें मन्वन्तर-
गणनाविषयक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

* * *

नवमोऽध्यायः

वैवस्वत मनु, यम, यमी (यमुना), अश्विनीकुमारों एवं शनैश्चरकी उत्पत्ति

वैशम्पायन उवाच

विवस्वान् कश्यपाज्जज्ञे दाक्षायण्यामरिंदम ।
तस्य भार्याभवत् संज्ञा त्वाष्ट्री देवी विवस्वतः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—शत्रुदमन ! कश्यपजीसे दक्षकी पुत्रीमें विवस्वान् उत्पन्न हुए और त्वष्टाकी पुत्री संज्ञादेवी उन विवस्वान् (सूर्य) की भार्या हुई ॥ १ ॥

सुरेणुरिति विख्याता त्रिषु लोकेषु भाविनी ।
सा वै भार्या भगवती मार्तण्डस्य महात्मनः ॥ २ ॥

महात्मा मार्तण्डकी वह पवित्र अन्तःकरणवाली भार्या भगवती संज्ञा तीनों लोकोंमें सुरेणुके नामसे (भी) प्रसिद्ध है ॥ २ ॥

भर्तृरूपेण नातुष्यद् रूपयौवनशालिनी ।
संज्ञा नाम सुतपसा दीप्तेनेह समन्विता ॥ ३ ॥

वह रूपयौवनशालिनी संज्ञा अपने पति सूर्यदेवके मण्डलके तीव्र तप, तेज एवं दीप्तिके कारण प्रसन्न नहीं रहती थी ॥ ३ ॥

आदित्यस्य हि तद्रूपं मण्डलस्य सुतेजसा ।
गात्रेषु परिदग्धं वै नातिकान्तमिवाभवत् ॥ ४ ॥

उस संज्ञाका रूप सूर्यमण्डलके तेजसे अङ्गोंके संतप्त होनेके कारण (झुलस-सा गया । अतएव सूर्य उसको) बहुत अच्छे नहीं लगते थे ॥ ४ ॥

न खल्वयं मृतोऽण्डस्थ इति स्नेहादभाषत ।
अज्ञानात् कश्यपस्तस्मान्मार्तण्ड इति चोच्यते॥ ५

(अदितिके) अज्ञानमें पड़नेपर कश्यपजीने स्नेहपू कहा था कि यह मरा नहीं है, किंतु अण्ड (गर्भ)में स्थित इसलिये तबसे सूर्य 'मार्तण्ड' कहे जाते हैं* ॥ ५ ॥

तेजस्त्वभ्यधिकं तात नित्यमेव विवस्वतः ।
येनातितापयामास त्रीँल्लोकान् कश्यपात्मजः॥ ६

तात ! (कश्यपके माहात्म्यके कारण जीवित हुए विवस्वान्में सर्वदा अधिक तेज रहता है । उसी तेजसे कश्य जीके पुत्र सूर्य तीनों लोकोंको तपाते रहते हैं ॥ ६ ॥

त्रीण्यपत्यानि कौरव्य संज्ञायां तपतां वरः ।
आदित्यो जनयामास कन्यां द्वौ च प्रजापती ॥ ७

---

* जब सूर्य अदितिके गर्भमें थे, उस समय बुध उनके भिक्षा माँगनेके लिये आये; परंतु अदिति गर्भके बोझके शीघ्रतासे चलकर भिक्षा न दे सकी, तब बुधने अदितिको दिया कि तेरा गर्भ मृत हो जाय। यह सुनकर अदिति व्याकु गयी, तब कश्यपजीने अपनी शक्तिसे बुधके शापको दूर कर दिया कहा कि यह वास्तवमें मृत नहीं हुआ, अण्ड (गर्भ) भीतर वर्तमान है । अदितिके (मेरा गर्भ मृत हो गया) विपरीत ज्ञानके कारण ही सूर्य मार्तण्ड कहलाते हैं।

कुरुवंशी राजन् ! तपानेवालोंमें श्रेष्ठ आदित्यने संज्ञाके गर्भसे दो प्रजापति और एक कन्या—इन तीन संतानोंको उत्पन्न किया ॥ ७ ॥

मनुर्वैवस्वतः पूर्वं श्राद्धदेवः प्रजापतिः ।
यमश्च यमुना चैव यमजौ सम्बभूवतुः ॥ ८ ॥

उनमें एक प्रजापति तो विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र वैवस्वत मनु थे और दूसरे प्रजापति श्राद्धदेव यम थे । इस तरह यम तथा यमुना नामक दो जुड़वीं संतान उत्पन्न हुई थी ॥

सा विवर्णं तु तद्रूपं दृष्ट्वा संज्ञा विवस्वतः ।
असहन्ती च स्वां छायां सवर्णां निर्ममे ततः ॥ ९ ॥

तदनन्तर संज्ञाने सूर्यके कठिनतासे सहने योग्य तेजस्वी रूपको देखकर उनके तेजको न सह सकनेके कारण अपनी छायाको ही अपने समान नाम और रूपवाली बनाकर तैयार कर दिया* ॥ ९ ॥

मायामयी तु सा संज्ञा तस्याश्छाया समुत्थिता ।
प्राञ्जलिः प्रणता भूत्वा छाया संज्ञां नरेश्वर ॥ १० ॥
उवाच किं मया कार्यं कथयस्व शुचिस्मिते ।
स्थितास्मि तव निर्देशे शाधि मां वरवर्णिनि॥ ११ ॥

वह मायामयी संज्ञा संज्ञाकी छायासे उत्पन्न हुई थी । नरेश्वर ! वह छाया संज्ञाको प्रणामकर हाथ जोड़कर बोली—'शुचिस्मिते ! बताओ, मुझे क्या करना चाहिये ? श्रेष्ठ अङ्गोंवाली ! मैं तुम्हारी आज्ञाका पालन करूँगी, तुम मुझे आज्ञा दो' ॥

संज्ञोवाच

अहं यास्यामि भद्रं ते स्वमेव भवनं पितुः ।
त्वयेह भवने मह्यं वस्तव्यं निर्विकारया ॥ १२ ॥
इमौ च बालकौ मह्यं कन्या चेयं सुमध्यमा ।
सम्भाव्यास्ते न चाख्येयमिदं भगवते क्वचित्॥ १३ ॥

संज्ञाने कहा—तुम्हारा कल्याण हो ! मैं अब अपने पिताके घर जा रही हूँ, तुम मेरे इस घरमें शान्त होकर रहो । ये मेरे दोनों पुत्र हैं और यह एक सुमध्यमा (सुन्दर कटिवाली) कन्या है । इनका तू ध्यान रखना और इस रहस्यको भगवान् सूर्यसे कभी न बतलाना ॥ १२-१३ ॥

छायोवाच

आ कचग्रहणाद् देवि आ शापान्नैव कर्हिचित्।
आख्यास्यामि मतं तुभ्यं गच्छ देवि यथासुखम्॥ १४ ॥

छायाने कहा—देवि ! मेरे बाल पकड़े जाने तथा शाप देनेकी नौबत आनेके पूर्व मैं यह बात किसी प्रकार भी न कहूँगी । आप सुखपूर्वक (अपने पिताके यहाँ) जायँ ॥

वैशम्पायन उवाच

समादिश्य सवर्णां तां तथेत्युक्ता च सा तया ।
त्वष्टुः समीपमगमद् व्रीडितेव तपस्विनी ॥ १५ ॥
पितुः समीपगा सा तु पित्रा निर्भर्त्सिता तदा।
भर्तुः समीपं गच्छेति नियुक्ता च पुनः पुनः ॥ १६ ॥
अगच्छद् वडवा भूत्वाऽऽच्छाद्य रूपमनिन्दिता।
कुरूनथोत्तरान् गत्वा तृणान्येव चचार ह ॥ १७ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—अपने समान नाम-रूपवाली छायाको आज्ञा देकर और उससे 'तथास्तु' कहे जानेपर वह तपस्विनी लज्जित-सी होती हुई अपने पिता त्वष्टाके यहाँ चली गयी । पिताके पास पहुँचनेपर उसके पिताने उसे बड़े जोरोंसे डाँटा तथा उससे बार-बार पतिके पास ही जानेके लिये कहा । तब निन्दित कर्मोंसे सदा दूर रहनेवाली वह संज्ञा अपने रूपको बदलकर घोड़ीका रूप धारण करके उत्तरकुरुके देशोंमें जाकर घास चरने लगी ॥ १५–१७ ॥

द्वितीयायां तु संज्ञायां संज्ञेयमिति चिन्तयन् ।
आदित्यो जनयामास पुत्रमात्मसमं तदा ॥ १८ ॥

उस दूसरी संज्ञाको भी संज्ञा ही समझते हुए सूर्य देवताने उसके गर्भसे अपने ही समान पुत्र उत्पन्न किया ॥ १८ ॥

पूर्वजस्य मनोस्तात सदृशोऽयमिति प्रभुः ।
सवर्णत्वान्मनोर्भूयः सावर्ण इति चोक्तवान्॥ १९ ॥

तात ! ये अपने बड़े भाई मनुके समान वर्ण तथा शक्तिवाले थे, अतएव सावर्ण कहलाये ॥ १९ ॥

मनुरेवाभवन्नाम्ना सावर्ण इति चोच्यते ।
द्वितीयो यः सुतस्तस्याः स विज्ञेयः शनैश्चरः ॥ २० ॥

वे ही मनु हुए, जिनका नाम सावर्ण मनु है । उस (छाया) से जो दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ, उनको तुम शनैश्चर समझो ॥ २० ॥

संज्ञा तु पार्थिवी तात स्वस्य पुत्रस्य वै तदा ।
चकाराभ्यधिकं स्नेहं न तथा पूर्वजेषु वै ॥ २१ ॥
मनुस्तस्याक्षमत्तत्तु यमस्तस्या न चक्षमे।

वह पार्थिवी* संज्ञा अपने पुत्रसे तो अधिक स्नेह करती थी, परंतु वैसा स्नेह उनसे पहलेकी संतानोंसे नहीं करती थी । मनुने तो इस बातको सह लिया, परंतु यम इसे न सह सके ॥ २१½ ॥

तां स रोषाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात् ।

---

* संज्ञाके समान नाम और वर्णवाली होनेसे छायाका नाम सवर्णा भी है । इसीके पुत्र सावर्णि मनु हैं ।

* संज्ञाकी छायाके पृथ्वीमें पड़नेके कारण वह पृथ्वीसे उत्पन्न हुई, अतएव 'पार्थिवी' कहलाती थी ।

पदा संतर्जयामास संज्ञां वैवस्वतो यमः ॥ २२ ॥

वे वैवस्वत यम बालस्वभाव एवं रोषके कारण तथा होनहार (भावी) के वशीभूत हो संज्ञाको पैर दिखाकर डाँटने लगे ॥ २२ ॥

तं शशाप ततः क्रोधात् सावर्णजननी नृप ।
चरणः पततामेष तवेति भृशदुःखिता ॥ २३ ॥

राजन् ! इसपर सावर्णकी माताने अति दुःखित हो कोपमें भरकर उन्हें शाप दिया कि 'तुम्हारा यह चरण गिर जाय' ॥ २३ ॥

यमस्तु तत् पितुः सर्वं प्राञ्जलिः प्रत्यवेदयत् ।
भृशं शापभयोद्विग्नः संज्ञावाक्यप्रतोदितः ॥ २४ ॥

छाया-संज्ञाके उस वाक्यसे पीड़ित और शापके भयसे अत्यन्त व्याकुल होकर यमने हाथ जोड़कर पितासे वह सब बात कह दी ॥

शापोऽयं विनिवर्तेत प्रोवाच पितरं तदा ।
मात्रा स्नेहेन सर्वेषु वर्तितव्यं सुतेषु वै ॥ २५ ॥

वे पितासे बोले—'मुझे यह शाप न लगे । (देखिये) माताको तो सब पुत्रोंके प्रति समानरूपसे स्नेहपूर्वक व्यवहार करना चाहिये ॥ २५ ॥

सेयमस्मानपाहाय यवीयांसं बुभूषति ।
तस्यां मयोद्यतः पादो न तु देहे निपातितः ॥ २६ ॥
बाल्याद्वा यदि वा मोहात् तद्भवान् क्षन्तुमर्हति ।

'पर यह हम सबको छोड़कर सबसे छोटेसे ही स्नेहका व्यवहार करती है । सो मैंने उसके ऊपर पैर उठाया ही था, शरीरपर मारा नहीं था । मैंने यह काम लड़कपनसे किया हो अथवा मोहवश, परंतु आप मुझे क्षमा कर दें ॥२६½॥

यस्मात् ते पूजनीयाहं लङ्घितास्मि त्वया सुत ॥ २७ ॥
तस्मात् तवैष चरणः पतिष्यति न संशयः ।
अपत्यं दुरपत्यं स्यान्नाम्बा कुजननी भवेत् ॥ २८ ॥

'(संज्ञाने कहा—) बेटा ! मैं तुम्हारी पूजनीया हूँ, तो भी तुमने मेरा तिरस्कार किया है; अतः तुम्हारा यह पैर निस्संदेह गिर जायगा ।' संतान तो कुसंतान हो सकती है, परंतु माता कुमाता नहीं हो सकती ॥ २७-२८ ॥

शप्तोऽहमस्मि लोकेश जनन्या तपतां वर ।
तव प्रसादाच्चरणो न पतेन्मम गोपते ॥ २९ ॥

'लोकेश्वर ! माताने मुझे शाप दे दिया है, परंतु तपनेवालोंमें श्रेष्ठ गोपते ! आपकी कृपासे मेरा पैर न गिरे (ऐसी कृपा कीजिये)' ॥ २९ ॥

विवस्वानुवाच

असंशयं पुत्र महद् भविष्यत्यत्र कारणम् ।
येन त्वामाविशत् क्रोधो धर्मज्ञं सत्यवादिनम् ॥ ३० ॥

सूर्यने कहा—पुत्र ! तुम धर्मज्ञ और सत्यवादी तुमको जो क्रोध चढ़ आया इसमें निस्संदेह कोई बड़ा कारण होगा ॥ ३० ॥

न शक्यमन्यथा कर्तुं मया मातुर्वचस्तव ।
कृमयो मांसमादाय यास्यन्ति धरणीतलम् ॥ ३
तव पादान्महाप्राज्ञ ततस्त्वं प्राप्स्यसे सुखम् ।
कृतमेवं वचस्तथ्यं मातुस्तव भविष्यति ॥ ३
शापस्य परिहारेण त्वं च त्रातो भविष्यसि ।

मैं तुम्हारी माताके वचनको (सर्वथा तो) लौटा सकता । (पर) महाप्राज्ञ ! कीड़े तुम्हारे चरणमेंसे मांस पृथ्वीतलपर चले जायँगे, तब तुम्हें सुख मिलेगा । इस तुम्हारी माताका कहा हुआ वचन (भी) सत्य जायगा और शापका परिहार होनेसे तुम्हारी भी रक्षा जायगी ॥ ३१-३२½ ॥

आदित्योऽथाब्रवीत् संज्ञां किमर्थं तनयेषु वै ॥ ३३
तुल्येष्वभ्यधिकः स्नेहः क्रियतेऽति पुनः पुनः ।
सा तत्परिहसन्ती तु नाचचक्षे विवस्वते ॥ ३४

फिर सूर्यने संज्ञासे कहा—'सभी पुत्र बराबर हैं भी तू (किसीसे कम और किसीसे) अधिक स्नेह क्यों है ।' सूर्यने यह बात बार-बार कही, परंतु वह हँसती ही गयी और उसने सूर्यसे कुछ भी न कहा ॥ ३३-३४ ॥

आत्मानं सुसमाधाय योगात् तथ्यमपश्यत ।
तां शप्तुकामो भगवान् नाशाय कुरुनन्दन ॥ ३
मूर्धजेषु च जग्राह समयेऽतिगतेऽपि च ।
सा तत् सर्वं यथावृत्तमाचचक्षे विवस्वते ॥ ३

कुरुनन्दन ! भगवान् सूर्यने अपने चित्तको एकाग्र योगके द्वारा सत्य बात जान ली और शापद्वारा उसका वि करनेके लिये उसके केश पकड़ लिये । तब अपनी उतर जानेपर छायाने सूर्यनारायणसे सारी बात ज्यों बतला दी ॥ ३५-३६ ॥

विवस्वानथ तच्छ्रुत्वा क्रुद्धस्त्वष्टारमभ्यगात् ।
त्वष्टा तु तं यथा न्यायमर्चयित्वा विभावसुम् ।
निर्दग्धुकामं रोषेण सान्त्वयामास वै तदा ॥ ३

सूर्यनारायण इस बातको सुनते ही क्रोधमें भरकर पास पहुँचे । त्वष्टाने विधिपूर्वक उनकी पूजा करके जब कि ये तो रोषसे मुझे भस्म ही करना चाहते हैं, तब उ सूर्यनारायणको इस प्रकार शान्त करना-समझाना किया ॥ ३७ ॥

त्वष्टोवाच

तवातितेजसाविष्टमिदं रूपं न शोभते ।
असहन्ती च तत् संज्ञा वने चरति शाद्वले ॥

त्वष्टाने कहा—आदित्य! आपका यह अतितेजस्वी रूप अच्छा नहीं लगता। इसको न सह सकनेके कारण ही संज्ञा हरी घासवाले वनमें (हरी घासोंको) चर रही है ॥ ३८ ॥

द्रष्टा हि तां भवानद्य स्वां भार्यां शुभचारिणीम्।
नित्यं तपस्यभिरतां वडवारूपधारिणीम् ॥ ३९ ॥
पर्णाहारां कृशां दीनां जटिलां ब्रह्मचारिणीम्।
हस्तिहस्तपरिक्लिष्टां व्याकुलां पद्मिनीमिव।
श्लाघ्यां योगबलोपेतां योगमास्थाय गोपते ॥ ४० ॥

किरणोंके स्वामी! आज आप हाथीके सूँडसे खींचे जानेके कारण पद्मिनीके समान व्याकुल हुई, शुद्ध आचरणवाली और योगके बलसे सम्पन्न अतएव योगसे घोड़ीका रूप धारण करके सदा तप करती हुई, पत्तोंका आहार करनेवाली, दुबली, दीन, जटाधारिणी और ब्रह्मचारिणी अपनी उस प्रशंसनीया भार्याको देखेंगे ॥ ३९-४० ॥

अनुकूलं तु देवेश यदि स्यान्मम तन्मतम्।
रूपं निर्वर्तयाम्यद्य तव कान्तमरिंदम ॥ ४१ ॥

देवेश! यदि आपको मेरी बात ठीक लगे तो शत्रुदमन! मैं आज आपके रूपको मनोहर बना दूँ ॥ ४१ ॥

रूपं विवस्वतश्चासीत् तिर्यगूर्ध्वसमं तु वै।
तेनासौ सम्भृतो देवरूपेण तु विभावसुः ॥ ४२ ॥

पहले सूर्यका रूप तिरछा, ऊँचा और सब ओरसे एक-सा था। उस रूपसे सम्पन्न होनेके कारण ही वे विभावसु कहे जाते हैं ॥ ४२ ॥

तस्मात् त्वष्टुः स वै वाक्यं बहु मेने प्रजापतिः।
समनुज्ञातवांश्चैव त्वष्टारं रूपसिद्धये ॥ ४३ ॥

इसलिये उन प्रजापति सूर्यनारायणने त्वष्टाकी बातको बहुत अच्छा समझा और उन्होंने अपना रूप ठीक करनेके लिये त्वष्टाको अनुमति दे दी ॥ ४३ ॥

ततोऽभ्युपगमात् त्वष्टा मार्तण्डस्य विवस्वतः।
भ्रमिमारोप्य तत् तेजः शातयामास भारत ॥ ४४ ॥

भारत! तब त्वष्टाने मार्तण्ड (सूर्य) के समीप जाकर उनको सानपर चढ़ाकर उनके तेजको खरादना आरम्भ कर दिया ॥ ४४ ॥

ततो निर्भासितं रूपं तेजसा संहृतेन वै।
कान्तात् कान्ततरं द्रष्टुमधिकं शुशुभे तदा ॥ ४५ ॥

इस प्रकार तेजके छिल जानेसे उनका रूप खिल उठा और उनका रूप रम्यातिरम्य होकर अधिक सुशोभित होने लगा ॥ ४५ ॥

मुखे निर्वर्तितं रूपं तस्य देवस्य गोपतेः।
ततः प्रभृति देवस्य मुखमासीत् तु लोहितम्।
मुखरागं तु यत्पूर्वं मार्तण्डस्य मुखच्युतम् ॥ ४६ ॥
आदित्या द्वादशैवेह सम्भूता मुखसम्भवाः।
धातार्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशो भगस्तथा ॥ ४७ ॥
इन्द्रो विवस्वान् पूषा च पर्जन्यो दशमस्तथा।
ततस्त्वष्टा ततो विष्णुरजघन्यो जघन्यजः ॥ ४८ ॥

तबसे किरणोंके स्वामी भगवान् सूर्यके मुखका रूप बदल गया। उस समयसे उनका मुख रक्तवर्णका हो गया। उन मार्तण्डके मुखसे जो मुखराग छूटा था, उससे बारह आदित्य उत्पन्न हुए। उनके मुखसे धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, दसवें पर्जन्य, त्वष्टा, बारहवें विष्णु उत्पन्न हुए, जो अन्तमें प्रकट होनेके कारण सबसे छोटे होकर भी गुणोंमें सर्वश्रेष्ठ थे ॥ ४६—४८ ॥

हर्षं लेभे ततो देवो दृष्ट्वाऽऽदित्यान् स्वदेहजान्।
गन्धैः पुष्पैरलंकारैर्भास्वता मुकुटेन च ॥ ४९ ॥

गन्ध, पुष्प, अलंकार और प्रकाशमान मुकुटोंसे सुशोभित अपने शरीरसे उत्पन्न हुए उन आदित्योंको देखकर भगवान् सूर्य बड़े प्रसन्न हुए ॥ ४९ ॥

एवं सम्पूजयामास त्वष्टा वाक्यमुवाच ह।
गच्छ देव निजां भार्यां कुरूंश्चरति सोत्तरान् ॥ ५० ॥
वडवारूपमास्थाय वने चरति शाद्वले।

इस प्रकार सूर्यनारायणका पूजन कर त्वष्टाने उनसे कहा—'देव! अब आप अपनी पत्नीके पास जाइये। वह उत्तर कुरु (देशों) में भ्रमण कर रही है और हरी घाससे भरे हुए वनमें घोड़ीका रूप धारण करके विचर रही है' ॥

स तथा रूपमास्थाय स्वभार्यारूपलीलया ॥ ५१ ॥
ददर्श योगमास्थाय स्वां भार्यां वडवां ततः।
अधृष्यां सर्वभूतानां तेजसा नियमेन च ॥ ५२ ॥
वडवावपुषा राजंश्चरन्तीमकुतोभयाम्।
सोऽश्वरूपेण भगवांस्तां मुखे समभावयत् ॥ ५३ ॥
मैथुनाय विचेष्टन्ती परपुंसोपशङ्कया।
सा तन्निरवमच्छुक्रं नासिकायां विवस्वतः ॥ ५४ ॥

तब सूर्यनारायणने भी अपनी पत्नीके रूपके अनुसार घोड़ेके समान विचरण करनेके लिये घोड़ेका ही रूप धारण कर लिया। उस समय सूर्यने ध्यानसे देखा तो उन्हें तेज और नियमके कारण सब भूतोंसे अधृष्य घोड़ीका रूप धारण करके किसी ओरसे भी भयकी आशंका न कर निर्भय हो विचरती हुई अपनी भार्या (संज्ञा) दीख पड़ी। राजन्! फिर तो घोड़ेके रूपमें भगवान् सूर्य उसके मुखके समीप पहुँचे। पर वह पर-पुरुषकी आशंकासे मैथुनके प्रतिकूल चेष्टा करने लगी और सूर्यके वीर्यको उसने अपनी नाकपरसे गिरा दिया ॥ ५१—५४ ॥

देवौ तस्यामजायेतामश्विनौ भिषजां वरौ।
नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनाविति ॥ ५५ ॥

उससे वैद्योंमें श्रेष्ठ अश्विनीकुमार नामक देवता उत्पन्न हुए। वे दोनों अश्विनीकुमार नासत्य और दस्र नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ५५॥

मार्तण्डस्यात्मजावेतावष्टमस्य प्रजापतेः।
संज्ञायां जनयामास वडवायां स भारत।
तां तु रूपेण कान्तेन दर्शयामास भास्करः ॥ ५६ ॥

भारत ! ये दोनों आठवें प्रजापति मार्तण्डके पुत्र हैं। इन्हें सूर्य भगवान्ने अश्वारूपा संज्ञाके गर्भसे उत्पन्न किया था। तदनन्तर सूर्यने उसे अपने मनोहर रूपमें दर्शन दिया ॥ ५६ ॥

सा च दृष्ट्वैव भर्तारं तुतोष जनमेजय।
यमस्तु कर्मणा तेन भृशं पीडितमानसः ॥ ५७ ॥

जनमेजय ! तब वह स्वामीको देखकर बड़ी संतुष्ट हुई। इधर यम अपने उस कर्मसे मन-ही-मन बड़े दुःखित रहते थे ॥ ५७ ॥

धर्मेण रञ्जयामास धर्मराज इव प्रजाः।
स लेभे कर्मणा तेन परमेण महाद्युतिः ॥ ५८ ॥
पितॄणामाधिपत्यं च लोकपालत्वमेव च।
मनुः प्रजापतिस्त्वासीत् सावर्णः स तपोधनः ॥ ५९ ॥

अतएव वे अपने धर्मराजत्वके अनुरूप ही धर्मयुक्त आचरणसे प्रजाओंको प्रसन्न रखने लगे। उस श्रेष्ठ कर्मके कारण उन महाकान्तिमान् धर्मराजको पितरोंका आधिपत्य और लोकपालका पद मिला तथा वे तपस्याके धनी प्रजापति सावर्ण मनु हुए ॥ ५८-५९ ॥

भाव्यः सोऽनागते काले मनुः सावर्णिकेऽन्तरे।
मेरुपृष्ठे तपो घोरमद्यापि चरति प्रभुः ॥ ६० ॥

वे सर्वसमर्थ सावर्ण भविष्यके (आठवें) मन्वन्तरके मनु होंगे। वे आज भी सुमेरुपर्वतके शिखरपर घोर तप कर रहे हैं ॥ ६० ॥

भ्राता शनैश्चरश्चास्य ग्रहत्वमुपलब्धवान्।
नासत्यौ यौ समाख्यातौ स्ववैद्यौ तौ बभूवतुः ॥ ६

इनके भाई शनैश्चर ग्रह बन गये और जिन नासत्य वर्णन किया है, वे स्वर्गके वैद्य बन गये ॥ ६१ ॥

सेवतोऽपि तथा राजन्नश्वानां शान्तिदोऽभवत्।
त्वष्टा तु तेजसा तेन विष्णोश्चक्रमकल्पयत् ॥ ६
तदप्रतिहतं युद्धे दानवान्तचिकीर्षया।

वे उपासना करनेवालेके घोड़ोंको शान्ति देते हैं। तेज (की छीलन) से त्वष्टाने विष्णु भगवान्का (सुदर्श चक्र बनाया। वह दानवोंके अन्त करनेकी इच्छासे बनाया चक्र युद्धमें किसी प्रकार भी व्यर्थ नहीं जाता ॥ ६

यवीयसी तयोर्या तु यमी कन्या यशस्विनी ॥ ६
अभवत् सा सरिच्छ्रेष्ठा यमुना लोकभाविनी।
मनुरित्युच्यते लोके सावर्ण इति चोच्यते ॥ ६४

उन दोनोंमें छोटी जो यमी नामकी यशस्विनी कन्या वह नदियोंमें श्रेष्ठ, लोकोंको पवित्र करनेवाली यमु हुई। मनु संसारमें मनु कहलाते हैं और सावर्ण कहलाते हैं ॥ ६३-६४ ॥

द्वितीयो यः सुतस्तस्य मनोर्भ्राता शनैश्चरः।
ग्रहत्वं स च लेभे वै सर्वलोकाभिपूजितम् ॥ ६

उनके दूसरे पुत्र और मनुके भ्राता जो शनै हैं, उन्होंने सब लोकोंसे पूजित ग्रहका पद किया ॥ ६५ ॥

य इदं जन्म देवानां शृणुयाद् वापि धारयेत्।
आपद्भ्यः स विमुच्येत प्राप्नुयाच्च महद् यशः ॥ ६

जो मनुष्य देवताओंके जन्म (की इस कथा) सुनता है अथवा मनमें धारण करता है, वह आपत्ति छूट जाता और बड़ा भारी यश पाता है ॥ ६६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि वैवस्वतोत्पत्तौ नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें वैवस्वत मनु (आदि) की उत्पत्तिविषयक नवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

वैवस्वत मनुके वंशजोंका वर्णन और पुरूरवाकी उत्पत्ति

वैशम्पायन उवाच

मनोर्वैवस्वतस्यासन् पुत्रा वै नव तत्समाः।
इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो धृष्णुः शर्यातिरेव च ॥ १ ॥
नरिष्यंश्च तथा प्रांशुर्नाभागारिष्टसप्तमाः।
करूषश्च पृषध्रश्च नवैते भरतर्षभ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—भरतर्षभ ! वैवस्वत मनुके उनके ही समान इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्णु, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, सातवें नाभागारिष्ट, करूष और पृषध्र—ये नौ पुत्र हुए ॥ १-२ ॥

अकरोत् पुत्रकामस्तु मनुरिष्टिं प्रजापतिः ।
मित्रावरुणयोस्तात पूर्वमेव विशाम्पते ॥ ३ ॥
अनुत्पन्नेषु नवसु पुत्रेष्वेतेषु भारत ।
तस्यां तु वर्तमानायामिष्ट्यां भरतसत्तम ॥ ४ ॥
मित्रावरुणयोरंशे मुनिराहुतिमाजुहोत् ।
आहुत्यां हूयमानायां देवगन्धर्वमानुषाः ॥ ५ ॥
तुष्टिं तु परमां जग्मुर्मुनयश्च तपोधनाः ।
अहोऽस्य तपसो वीर्यमहोऽस्य श्रुतमद्भुतम् ॥ ६ ॥

प्रजापालक तात ! इन नौ पुत्रोंके उत्पन्न होनेसे पहिले जापति मनुने पुत्रकी कामनासे मित्रावरुणकी इष्टि (यज्ञ) की थी । भारत ! जब यह इष्टि हो रही थी, उस समय मुनिने मित्रावरुणके लिये आहुति दी । भरतश्रेष्ठ ! आहुतिके सम्पन्न होनेपर देवता, गन्धर्व, मनुष्य और तपोधन मुनि परम प्रसन्न हुए (और कहने लगे—) 'अहो ! इसका तपोबल आश्चर्यजनक है और इसका शास्त्रीय ज्ञान भी अद्भुत है !' ॥३—६॥

तत्र दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता ।
दिव्यसंहनना चैव इला जज्ञे इति श्रुतिः ॥ ७ ॥

उस यज्ञमें दिव्य वस्त्रोंको धारण किये हुए, दिव्य आभूषणोंसे विभूषित और दिव्य शरीरवाली इला नामक कन्या उत्पन्न हुई थी, ऐसी ख्याति है ॥ ७ ॥

तामिलेत्येव होवाच मनुर्दण्डधरस्तदा ।
अनुगच्छस्व मां भद्रे तमिला प्रत्युवाच ह ।
धर्मयुक्तमिदं वाक्यं पुत्रकामं प्रजापतिम् ॥ ८ ॥

राजा मनुने उस कन्याको 'इला' कहकर पुकारा और कहा—'भद्रे ! तू मेरे पीछे-पीछे आ ।' तब पुत्रकी कामनावाले प्रजापतिको इलाने यह धर्ममय उत्तर दिया ॥ ८ ॥

इलोवाच

मित्रावरुणयोरंशे जातास्मि वदतां वर ।
तयोः सकाशं यास्यामि न मां धर्मो हतोऽवधीत् ॥ ९ ॥

इलाने कहा—वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! मैं धर्मकी हत्या नहीं कर सकती, अन्यथा धर्म मुझे भी मार डालेगा । मैं मित्रावरुणके अंशसे उत्पन्न हुई हूँ, अतः उनके ही पास जाऊँगी ॥९॥

सैवमुक्त्वा मनुं देवं मित्रावरुणयोरिला ।
गत्वान्तिकं वरारोहा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ १० ॥

श्रेष्ठ नितम्बोंवाली इला राजा मनुसे इस प्रकार कहकर मित्रावरुणके पास गयी और दोनों हाथ जोड़कर उनसे इस प्रकार कहने लगी—॥ १० ॥

अंशेऽस्मि युवयोर्जाता देवौ किं करवाणि वाम् ।
मनुना चाहमुक्ता वै अनुगच्छस्व मामिति ॥ ११ ॥

'देवताओ ! मैं आप दोनोंके अंशसे उत्पन्न हुई हूँ; अतः आपलोग बताइये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? मनुजीने मुझसे कहा है कि तू मेरे पीछे-पीछे आ' ॥ ११ ॥

तां तथावादिनीं साध्वीमिलां धर्मपरायणाम् ।
मित्रश्च वरुणश्चोभावूचतुर्यन्निबोध तत् ॥ १२ ॥

राजन् ! धर्मपरायणा साध्वी इलाके इस प्रकार कहनेपर मित्र और वरुणने उससे जो कुछ कहा था, उसे सुनो ॥ १२ ॥

अनेन तव धर्मेण प्रश्रयेण दमेन च ।
सत्येन चैव सुश्रोणि प्रीतौ स्वो वरवर्णिनि ॥ १३ ॥

'सुन्दर कटिभागवाली सुन्दरी ! तेरे इस धर्म, विनय, इन्द्रियसंयम और सत्यसे हम दोनों तुमपर बहुत प्रसन्न हैं ॥ १३ ॥

आवयोस्त्वं महाभागे ख्यातिं कन्येति यास्यसि ।
मनोर्वंशधरः पुत्रस्त्वमेव च भविष्यसि ॥ १४ ॥

'महाभागे ! तू हमारी पुत्रीरूपसे प्रसिद्ध होगी और मनुका वंशधर पुत्र भी तू ही होगी ॥ १४ ॥

सुद्युम्न इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु शोभने ।
जगत्प्रियो धर्मशीलो मनोर्वंशविवर्धनः ॥ १५ ॥

'शोभने ! (उस समय) तू मनुके वंशको बढ़ानेवाले, जगत्‌में प्रिय, धर्मशील सुद्युम्नके नामसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध होगी' ॥ १५ ॥

निवृत्ता सा तु तच्छ्रुत्वा गच्छन्ती पितुरन्तिकम् ।
बुधेनान्तरमासाद्य मैथुनायोपमन्त्रिता ॥ १६ ॥

इस बातको सुनकर वह अपने पिता मनुके पास वापस जा रही थी, इसी बीचमें अवसर देखकर बुधने उसे सहवासके लिये आमन्त्रित किया ॥ १६ ॥

सोमपुत्राद् बुधाद् राजंस्तस्यां जज्ञे पुरूरवाः ।
जनयित्वा सुतं सा तमिला सुद्युम्नतां गता ॥ १७ ॥

राजन् ! चन्द्रमाके पुत्र बुधद्वारा उस इलाके गर्भसे पुरूरवा उत्पन्न हुए और उस पुत्रको उत्पन्न करके वह इला सुद्युम्न हो गयी ॥ १७ ॥

सुद्युम्नस्य तु दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः ।
उत्कलश्च गयश्चैव विनताश्वश्च भारत ॥ १८ ॥

भारत ! सुद्युम्नके उत्कल, गय और विनताश्व नामक तीन परम धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १८ ॥

उत्कलस्योत्कला राजन् विनताश्वस्य पश्चिमा ।
दिक् पूर्वा भरतश्रेष्ठ गयस्य तु गया पुरी ॥ १९ ॥

राजन् ! उत्कलकी राजधानी उत्कला (उड़ीसा) हुई ।

विनताश्वको पश्चिम दिशाका राज्य मिला और भरतश्रेष्ठ ! गयकी राजधानी पूर्व दिशामें गया नामकी पुरी हुई ॥ १९ ॥

प्रविष्टे तु मनौ तात दिवाकरमरिंदम ।
दशधा तद्‌धत्क्षत्रमकरोत् पृथिवीमिमाम् ॥ २० ॥

तात ! शत्रुसूदन ! मनुके सूर्यमें प्रवेश कर जानेपर उनके इक्ष्वाकु आदि दस पुत्रोंने पृथ्वीको दस भागोंमें बाँट लिया ॥ २० ॥

यूपाङ्किता वसुमती यस्येयं सवनाकरा ।
इक्ष्वाकुर्ज्येष्ठदायादो मध्यदेशमवाप्तवान् ॥ २१ ॥

मनुके बड़े पुत्र इक्ष्वाकुको मध्यदेशका राज्य मिला । यज्ञस्तम्भोंसे अलंकृत एवं वन और खानोंसहित यह सारी पृथ्वी इक्ष्वाकुकी ही है ॥ २१ ॥

कन्याभावाच्च सुद्युम्नो नैनं गुणमवाप्तवान् ।
वसिष्ठवचनाच्चासीत् प्रतिष्ठाने महात्मनः ॥ २२ ॥
प्रतिष्ठा धर्मराजस्य सुद्युम्नस्य कुरूद्वह ।

सुद्युम्न कन्याभावके कारण इस सौभाग्यपूर्ण पदको न पा सके । परंतु कुरूद्वह ! वसिष्ठजीके वचनसे महात्मा धर्मराज सुद्युम्नको भी प्रतिष्ठानपुर (झूँसी—प्रयाग) का राज्य मिल गया था ॥ २२½ ॥

तत्पुरूरवसे प्रादाद् राज्यं प्राप्य महायशाः ॥ २३ ॥
सुद्युम्नः कारयामास प्रतिष्ठाने नृपक्रियाम् ।

महायशस्वी सुद्युम्नने राज्य पानेके बाद प्रतिष्ठानमें (कुछ दिनतक) राज्य किया, फिर उन्होंने अपना राज्य पुरूरवाको दे दिया ॥ २३½ ॥

उत्कलस्य त्रयः पुत्रास्त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ।
धृष्टकश्चाम्बरीषश्च दण्डश्चेति सुतास्त्रयः ॥ २४ ॥

उत्कलके तीन पुत्र थे, जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध थे । उनके नाम थे—धृष्टक, अम्बरीष और दण्ड ॥ २४ ॥

यश्चकार महात्मा वै दण्डकारण्यमुत्तमम् ।
वनं तल्लोकविख्यातं तापसानामनुत्तमम् ॥ २५ ॥
तत्र प्रविष्टमात्रस्तु नरः पापात् प्रमुच्यते ।

महात्मा दण्डने दण्डकारण्य नामक वनका निर्माण किया, जो तपस्वियोंके लिये परमोत्तम (आश्रम) तथा लोकमें अत्यन्त विख्यात है । उसमें प्रवेश करते ही मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ २५½ ॥

सुद्युम्नश्च दिवं यात ऐलमुत्पाद्य भारत ॥ २६ ॥
मानवेयो महाराज स्त्रीपुंसोर्लक्षणैर्युतः ।
धृतवान् य इलेत्येव सुद्युम्नश्चातिविश्रुतः ॥ २७ ॥

भरतवंशी महाराज ! सुद्युम्न कन्यावस्थामें ऐल (पुरूरवा) को (और पुरुषावस्थामें उत्कल आदि अन्य तीन पुत्रोंको) उत्पन्न करके स्वर्ग चले गये । ये सुद्युम्न स्त्री तथा पुरुष दोनों लक्षणोंसे संयुक्त हुए थे । इन्होंने इलाके रूपमें गर्भ धारण किया था, फिर ये ही (पुरुषत्व प्राप्त होने सुद्युम्न नामसे प्रसिद्ध हो गये थे ॥ २६-२७ ॥

नरिष्यतः शकाः पुत्रा नाभागस्य तु भारत ।
अम्बरीषोऽभवत् पुत्रः पार्थिवर्षभसत्तमः ॥

भारत ! (मनुके पञ्चम पुत्र) नरिष्यन्तके पुत्र हुए और (मनुके द्वितीय पुत्र) नाभागके पुत्र राजर अम्बरीष हुए ॥ २८ ॥

धृष्णोस्तु धार्ष्टकं क्षत्रं रणधृष्टं बभूव ह ।
करूषस्य तु कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ॥
सहस्रं क्षत्रियगणो विक्रान्तः सम्बभूव ह ।
नाभागारिष्टपुत्राश्च क्षत्रिया वैश्यतां गताः ॥

(मनुके तृतीय पुत्र) धृष्णुके धार्ष्टक नामक हुए । वे रणमें ढीठ थे । (मनुके आठवें पुत्र) करूषसे नामवाले युद्धदुर्मद क्षत्रिय हुए । यह हजारों क्षत्रि मण्डल परम पराक्रमी था । (मनुके सप्तम पुत्र) नाभागा के क्षत्रिय पुत्र वैश्य हो गये थे* ॥ २९-३० ॥

प्रांशोरेकोऽभवत् पुत्रः शर्यातिरिति विश्रुतः ।
नरिष्यतस्य दायादो राजा दण्डधरो दमः ।
शर्यातेर्मिथुनं चासीदानर्तो नाम विश्रुतः ॥
पुत्रः कन्या सुकन्याख्या या पत्नी च्यवनस्य ह ।
आनर्तस्य तु दायादो रेवो नाम महाद्युतिः ॥

(मनुके छठे पुत्र) प्रांशुके एक पुत्र हुआ, वह नामसे प्रसिद्ध था । (मनुके पञ्चम पुत्र) नरिष्यन्तका दण्डधारी राजा दम हुआ । (मनुके चौथे पुत्र) शर्या दो संतान उत्पन्न हुईं; उनमें एक तो पुत्र था, जो नामसे प्रसिद्ध हुआ और एक कन्या थी, जिसका नाम सु था । वह च्यवन ऋषिकी पत्नी हुई । आनर्तके रेव महाकान्तिमान् पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३१-३२ ॥

आनर्तविषयश्चासीत् पुरी चास्य कुशस्थली ।
रेवस्य रैवतः पुत्रः ककुद्मी नाम धार्मिकः ॥

उसका राज्य आनर्त (जहाँ आज द्वारका है) था और उसकी पुरी (राजधानी) का नाम कुशस्थली (द्वारकापुरी) था । रेवके पुत्र रैवत हुए, इन्हींका नाम ककुद्मी था । ये धार्मिक थे ॥ ३३ ॥

ज्येष्ठः पुत्रशतस्यासीद् राज्यं प्राप्य कुशस्थलीम् ।
स कन्यासहितः श्रुत्वा गान्धर्वं ब्रह्मणोऽन्तिके ॥

---

* युद्धमें हार जानेके कारण क्षत्रिय होनेपर भी इनक अपनेको वैश्य कहता था; अतः ऐसी वैश्यपुत्रीके पुत्र होनेसे कहलाये । इस ग्रन्थके ग्यारहवें अध्यायके नवें श्लोककी टिप्पणीमें पूर्ण समाधान है ।

मुहूर्तभूतं देवस्य गतं बहुयुगं प्रभो ।
आजगाम युवैवाथ स्वां पुरीं यादवैर्वृताम् ॥ ३५ ॥

(रेवके) सौ पुत्रोंमें ये सबसे ज्येष्ठ थे। कुशस्थलीका राज्य पानेके अनन्तर एक दिन ये अपनी कन्याके साथ (ब्रह्मलोकमें) गये, वहाँ ब्रह्माजीके समीप गन्धर्वोंका गीत सुनने लगे। राजन्! संगीत सुनते-सुनते ये दो घड़ी वहाँ ठहरे रहे। इतने ही समयमें मानवलोकमें अनेक युग बीत गये। तत्पश्चात् ये यादवोंसे घिरी हुई अपनी पुरीमें आये। उस समयतक इनकी युवावस्था ज्यों-की-त्यों बनी हुई थी ॥ ३४-३५ ॥

कृतां द्वारवतीं नाम्ना बहुद्वारां मनोरमाम् ।
भोजवृष्ण्यन्धकैर्गुप्तां वासुदेवपुरोगमैः ॥ ३६ ॥

(उस समय उस पुरीमें) बहुत-से दरवाजे बन गये थे और वासुदेव आदि भोज, वृष्णि और अन्धकवंशी उस रमणीय पुरीकी रक्षा कर रहे थे। यादवोंने उसका नाम बदलकर द्वारवती रख दिया था ॥ ३६ ॥

ततः स रैवतो ज्ञात्वा यथातत्त्वमरिंदम ।
कन्यां तां बलदेवाय सुव्रतां नाम रेवतीम् ॥ ३७ ॥
दत्त्वा जगाम शिखरं मेरोस्तपसि संस्थितः ।
रेमे रामोऽपि धर्मात्मा रेवत्या सहितः सुखी ॥ ३८ ॥

शत्रुमर्दन! इन सब बातोंको यथार्थ रीतिसे जानकर राजा रैवत अपनी रेवती नामकी सुव्रता कन्याको बलदेवजीके हाथमें देकर स्वयं मेरुपर्वतके शिखरपर चले गये और वहाँ तपस्यामें लग गये। (इधर) धर्मात्मा बलरामजी भी रेवतीके साथ सुखपूर्वक विहार करने लगे ॥ ३७-३८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि ऐलोत्पत्तिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पुरूरवाकी उत्पत्तिका
वर्णनविषयक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

* * *

एकादशोऽध्यायः

धुन्धुमारकी कथा

जनमेजय उवाच

कथं बहुयुगे काले समतीते द्विजोत्तम ।
न जरा रेवतीं प्राप्ता रैवतं च ककुद्मिनम् ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—द्विजोत्तम! बहुत-से युगोंका समय बीत जानेपर भी रेवती और ककुद्मी रैवतको बुढ़ापा क्यों नहीं व्याप्त हुआ? ॥ १ ॥

मेरुं गतस्य वा तस्य शार्यातेः संततिः कथम् ।
स्थिता पृथिव्यामद्यापि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ २ ॥

शार्यातिके प्रपौत्र रैवत मेरुपर्वतपर चले गये, तब भी उनकी संतान आजतक पृथिवीपर कैसे वर्तमान है? इस बातको मैं यथार्थ रीतिसे सुनना चाहता हूँ ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच

न जरा क्षुत्पिपासे वा न मृत्युर्भरतर्षभ ।
ऋतुचक्रं न भवति ब्रह्मलोके सदानघ ॥ ३ ॥

वैशम्पायनजीने उत्तर दिया—निष्पाप भरतश्रेष्ठ! ब्रह्मलोकमें मृत्यु, भूख-प्यास और बुढ़ापा नहीं होते और वहाँ ऋतुचक्र भी अपना प्रभाव नहीं दिखाता (वहाँ तो सदा एक-सी दशा रहती है)। ॥ ३ ॥

ककुद्मिनस्तु तं लोकं रैवतस्य गतस्य ह ।
हता पुण्यजनैस्तात राक्षसैः सा कुशस्थली ॥ ४ ॥

तात! जब रैवत ककुद्मी ब्रह्मलोकको चले गये, तब यक्षों और राक्षसोंने कुशस्थलीको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया ॥ ४ ॥

तस्य भ्रातृशतं चासीद् धार्मिकस्य महात्मनः ।
तद् वध्यमानं रक्षोभिर्दिशः प्राद्रवदच्युतम् ॥ ५ ॥

धर्मात्मा एवं महात्मा रैवतके सौ भाई थे। वे राक्षसोंसे हारे नहीं, परंतु राक्षसोंके बार-बार आक्रमण करनेके कारण (अनेक) दिशाओंमें भाग गये ॥ ५ ॥

विद्रुतस्य तु राजेन्द्र तस्य भ्रातृशतस्य वै ।
तेषां तु ते भयाक्रान्ताः क्षत्रियास्तत्र तत्र ह ॥ ६ ॥

राजेन्द्र! जब उनके सौ भाई भाग गये, तब उस कुलके अन्य क्षत्रिय भी राक्षसोंके भयसे भागकर जहाँ-तहाँ बस गये ॥ ६ ॥

अन्ववायस्तु सुमहांस्तत्र तत्र विशाम्पते ।
येषामेते महाराज शार्याता इति विश्रुताः ॥ ७ ॥
क्षत्रिया भरतश्रेष्ठ दिक्षु सर्वासु धार्मिकाः ।
सर्वशः पर्वतगणान् प्रविष्टाः कुरुनन्दन ॥ ८ ॥

प्रजानाथ! उनका बड़ा भारी वंश जहाँ-तहाँ फैल गया। महाराज! उनके वंशके ही ये धार्मिक क्षत्रिय सब दिशाओंमें शार्यात नामसे प्रसिद्ध हैं। भरतश्रेष्ठ कुरुनन्दन! वे सब क्षत्रिय चारों ओरके पर्वतोंकी कन्दराओंमें प्रविष्ट हो गये थे ॥ ७-८ ॥

नाभागारिष्टपुत्रौ द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणतां गतौ।
करूषस्य च कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ॥ ९ ॥

नाभाग और अरिष्टके पुत्र ये दोनों वैश्य होकर पुनः)* ब्राह्मणत्वको प्राप्त हो गये। करूषके कारूषनामक युद्धदुर्मद क्षत्रिय उत्पन्न हुए ॥ ९ ॥

प्रांशोरेकोऽभवत् पुत्रः प्रजातिरिति नः श्रुतम्।
पृषध्रो हिंसयित्वा तु गुरोर्गां जनमेजय ॥ १० ॥
शापाच्छूद्रत्वमापन्नो नवैते परिकीर्तिताः।
वैवस्वतस्य तनया मनोर्वै भरतर्षभ ॥ ११ ॥

हमने सुना है कि (मनुके छठे पुत्र) प्रांशुके प्रजाति नामका एक ही पुत्र उत्पन्न हुआ था। जनमेजय ! गुरुकी गौको मारनेपर (गुरुके) शापसे पृषध्र शूद्रत्वको प्राप्त हो गया था। भरतर्षभ ! यहाँ तक वैवस्वत मनुके नौ पुत्रोंका मैंने वर्णन किया ॥ १०-११ ॥

क्षुवतश्च मनोस्तात इक्ष्वाकुरभवत् सुतः।
तस्य पुत्रशतं त्वासीदिक्ष्वाकोर्भूरिदक्षिणम् ॥ १२ ॥

तात ! मनुके छींकनेसे इक्ष्वाकु नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई थी। उन इक्ष्वाकुके भी सौ पुत्र उत्पन्न हुए। ये सब-के-सब बड़ी-बड़ी दक्षिणा देनेवाले थे ॥ १२ ॥

तेषां विकुक्षिर्ज्येष्ठस्तु विकुक्षित्वादयोधताम्।
प्राप्तः परमधर्मज्ञः सोऽयोध्याधिपतिः प्रभुः ॥ १३ ॥

उनमें सबसे बड़ा पुत्र विकुक्षि था। यह विकुक्षि—विशाल कोख (वक्षःस्थल) वाला होनेसे सर्वथा अयोध्य था; अर्थात् उसके सामने कोई योद्धा ठहर नहीं सकता था। वही परम धार्मिक राजा विकुक्षि अयोध्याका स्वामी हुआ ॥ १३ ॥

शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्राः पञ्चाशदुत्तमाः।
उत्तरापथदेशस्था रक्षितारो महीपते ॥ १४ ॥

राजन् ! उसके शकुनि आदि पचास उत्तम पुत्र थे, वे उत्तरापथ देशमें रहकर उस देशकी रक्षा करते थे ॥ १४ ॥

चत्वारिंशदथाष्टौ च दक्षिणस्यां तथा दिशि।
शशादप्रमुखाश्चान्ये रक्षितारो विशाम्पते ॥ १५ ॥

जनेश्वर ! उसके शशाद आदि अड़तालीस पुत्र दक्षिण दिशामें रहकर दक्षिण दिशाकी रक्षा करते थे ॥ १५ ॥

इक्ष्वाकुस्तु विकुक्षिं वै अष्टकायामथादिशत्।
मांसमानय श्राद्धार्थं मृगान् हत्वा महाबलः ॥ १

महाबली इक्ष्वाकुने अष्टका श्राद्धके लिये (अपने विकुक्षिको आज्ञा दी कि तू मृग नामक कन्दवि काटकर श्राद्धके लिये उसका गूदा ला ॥ १६ ॥

श्राद्धकर्मणि चोद्दिष्टमकृते श्राद्धकर्मणि।
भक्षयित्वा शशं तात शशादो मृगयागतः ॥ १

परंतु तात ! विकुक्षिने श्राद्धकर्मके लिये नियत कि शश (कन्दविशेष)को श्राद्ध पूर्ण होनेसे पहले ही खाकर उ कर दिया और शिकार करके वापस लौट आया ॥ १७

इक्ष्वाकुणा परित्यक्तो वसिष्ठवचनात् प्रभुः।
इक्ष्वाकौ संस्थिते तात शशादः पुरमावसत् ॥ १

उस समय इक्ष्वाकुने वसिष्ठजीके कहनेसे शशा त्याग दिया। तात ! फिर इक्ष्वाकुके मरनेपर शशाद न आया (और राज्यका स्वामी बनकर राज्य करने लगा)॥ १

शशादस्य तु दायादः ककुत्स्थो नाम वीर्यवान्।
इन्द्रस्य वृषभूतस्य ककुत्स्थोऽजयतासुरान् ॥ १
पूर्वं देवासुरे युद्धे ककुत्स्थस्तेन हि स्मृतः।
अनेनास्तु ककुत्स्थस्य पृथुरानेनसः स्मृतः ॥ २

शशादके ककुत्स्थ नामवाला वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न हु उसे पहले देवासुर-संग्राममें इन्द्रने स्मरण किया था। समय उसने इन्द्रको बैल बनाकर उनके ककुद् (पीठ) पर कर असुरोंको जीता था; इसलिये इसका नाम ककुत्स्थ हु ककुत्स्थके अनेना नामक पुत्र हुआ और अनेनाका पुत्र हुआ ॥ १९–२० ॥

विष्टराश्वः पृथोः पुत्रस्तस्मादार्द्रस्त्वजायत।
आर्द्रस्य युवनाश्वस्तु श्रावस्तस्य तु चात्मजः ॥ २

पृथुके विष्टराश्व और विष्टराश्वके आर्द्र नामक उत्पन्न हुआ, आर्द्रके युवनाश्व और युवनाश्वका पुत्र हुआ ॥ २१ ॥

जज्ञे श्रावस्तको राजा श्रावस्ती येन निर्मिता।
श्रावस्तस्य तु दायादो बृहदश्वो महायशाः ॥ २

वह श्रावस्तक नाम धारण करके राजसिंहासनपर उसीने श्रावस्तीपुरी बसायी। श्रावस्तका पुत्र महाय बृहदश्व हुआ ॥ २२ ॥

कुवलाश्वः सुतस्तस्य राजा परमधार्मिकः।
यः स धुन्धुवधाद् राजा धुन्धुमारत्वमागतः ॥ २

उसका पुत्र परमधार्मिक राजा कुवलाश्व हुआ, नामक दैत्यको मारनेके कारण वह राजा 'धुन्धुमार' नाम प्रसिद्ध हुआ ॥ २३ ॥

---

* मातृजातयः पुत्राः स्युः—'पुत्र माताकी जातिके होते हैं' इस शास्त्रीय वचनसे वैश्य-स्त्रीमें उत्पन्न होनेके कारण ये पुत्र वैश्य कहलाते थे और इस वैश्य-स्त्रीका पिता भी क्षत्रिय था, परंतु संग्राममें शत्रुओंसे हार जानेके कारण अपनेको वैश्य कहने लगा था। इस कथाका विस्तृत वर्णन मार्कण्डेयपुराणके ११३ वें अध्यायमें है।

जनमेजय उवाच

धुन्धोर्वधमहं ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।
यदर्थं कुवलाश्वः सन् धुन्धुमारत्वमागतः ॥ २४ ॥

जनमेजयने कहा—ब्रह्मन् ! मैं धुन्धुके वधकी उस कथाको यथार्थ रीतिसे सुनना चाहता हूँ, जिससे कुवलाश्वका नाम धुन्धुमार पड़ गया था ॥ २४ ॥

वैशम्पायन उवाच

कुवलाश्वस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ।
सर्वे विद्यासु निष्णाता बलवन्तो दुरासदाः ॥ २५ ॥

वैशम्पायनजी बोले—कुवलाश्वके धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ सौ पुत्र थे । वे सभी समस्त विद्याओंमें निपुण, बलवान् तथा दुर्दम्य थे ॥ २५ ॥

बभूवुर्धार्मिकाः सर्वे यज्वानो भूरिदक्षिणाः ।
कुवलाश्वं सुतं राज्ये बृहदश्वो न्ययोजयत् ॥ २६ ॥

वे सभी धार्मिक पुत्र यज्ञ करके बहुत-सी दक्षिणा दिया करते थे । बृहदश्वने अपने ज्येष्ठ पुत्र कुवलाश्वको राजसिंहासनपर बैठाया ॥ २६ ॥

पुत्रसंक्रामितश्रीस्तु वनं राजा समाविशत् ।
तमुत्तङ्कोऽथ विप्रर्षिः प्रयान्तं प्रत्यवारयत् ॥ २७ ॥

अपनी राज्यलक्ष्मीको पुत्रके अधीन करके राजा बृहदश्व स्वयं वनको चले । उस समय ब्रह्मर्षि उत्तङ्कने उन्हें वनमें जानेसे रोका ॥ २७ ॥

उत्तङ्क उवाच

भवता रक्षणं कार्यं तत् तावत् कर्तुमर्हसि ।
निरुद्विग्नस्तपश्चर्तुं न हि शक्नोषि पार्थिव ॥ २८ ॥

उत्तङ्क ऋषिने कहा—राजन् ! हमारी रक्षा करना आपका कर्तव्य है; अतः पहले वही कीजिये । अन्यथा आप निश्चिन्त होकर तप नहीं कर सकते ॥ २८ ॥

त्वया हि पृथिवी राजन् रक्ष्यमाणा महात्मना ।
भविष्यति निरुद्विग्ना नारण्यं गन्तुमर्हसि ॥ २९ ॥

राजन् ! जब आप-जैसे महात्मा इस पृथ्वीकी रक्षा करेंगे, तभी इस पृथ्वीपर शान्ति होगी; अतः आपका वनमें जाना उचित नहीं है ॥ २९ ॥

पालने हि महान् धर्मः प्रजानामिह दृश्यते ।
न तथा दृश्यतेऽरण्ये मा ते भूद् बुद्धिरीदृशी ॥ ३० ॥

हम देखते हैं कि यहाँ रहकर प्रजाका पालन करनेसे आपको महान् पुण्य होगा । वनमें रहनेपर ऐसे पुण्यकी प्राप्ति आपको हो, यह हमें नहीं दीखता । इसलिये आप ऐसा विचार न करें ॥ ३० ॥

ईदृशो न हि राजेन्द्र धर्मः क्वचन दृश्यते ।
प्रजानां पालने यो वै पुरा राजर्षिभिः कृतः ।
रक्षितव्याः प्रजा राज्ञा तास्त्वं रक्षितुमर्हसि ॥ ३१ ॥

राजेन्द्र ! प्राचीन कालमें राजर्षियोंने प्रजाओंका पालन करके जैसा पुण्य-संचय किया है, वैसा पुण्य और कहीं नहीं दिखायी देता । राजाको प्रजाओंकी रक्षा करनी चाहिये; अतः आप प्रजाकी रक्षा करें ॥ ३१ ॥

ममाश्रमसमीपे हि समेषु मरुधन्वसु ।
समुद्रो वालुकापूर्ण उज्जानक इति श्रुतः ।
देवतानामवध्यश्च महाकायो महाबलः ॥ ३२ ॥
अन्तर्भूमिगतस्तत्र वालुकान्तर्हितो महान् ।
राक्षसस्य मधोः पुत्रो धुन्धुनामा महासुरः ।
शेते लोकविनाशाय तप आस्थाय दारुणम् ॥ ३३ ॥

मेरे आश्रमके समीप मरुप्रदेशकी समतल भूमिमें बालूसे भरा हुआ उज्जानक नामवाला समुद्र है । वहीं एक विशालकाय महाबली राक्षस रहता है, जो देवताओंके लिये भी अवध्य है । वह महान् असुर मधु नामक राक्षसका पुत्र है । उसका नाम धुन्धु है । वह वहाँ पृथ्वीके भीतर बालूमें छिपकर सोता है और सम्पूर्ण लोकोंका संहार करनेके लिये कठोर तपस्या कर रहा है ॥ ३२-३३ ॥

संवत्सरस्य पर्यन्ते स निःश्वासं प्रमुञ्चति ।
यदा तदा भूश्चलति सशैलवनकानना ॥ ३४ ॥

वह एक वर्ष बीतनेपर जब बड़े जोरसे साँस छोड़ता है, उस समय पर्वत और वनोंसहित सारी पृथ्वी डोलने लगती है ॥ ३४ ॥

तस्य निःश्वासवातेन रज उद्धूयते महत् ।
आदित्यपथमावृत्य सप्ताहं भूमिकम्पनम् ॥ ३५ ॥

उसके श्वासकी वायुसे बड़ी भारी धूलि उड़ती है, जो सूर्यके मार्गको भी ढँक लेती है; साथ ही एक सप्ताहतक भूकम्प होता रहता है ॥ ३५ ॥

सविस्फुलिङ्गं साङ्गारं सधूममतिदारुणम् ।
तेन तात न शक्नोमि तस्मिन् स्थातुं स्वकाश्रमे ॥ ३६ ॥

तात ! (उस समय पृथिवीमेंसे) चिनगारियाँ, अंगारे और अत्यन्त दारुण धुएँ निकलने लगते हैं । इसलिये तात ! मैं अपने आश्रममें (सुखपूर्वक) नहीं रह पाता ॥ ३६ ॥

तं मारय महाकायं लोकानां हितकाम्यया ।
लोकाः स्वस्था भवन्त्वद्य तस्मिन् विनिहतेऽसुरे ॥ ३७ ॥

आप लोकोंका हित करनेकी इच्छासे उस विशाल शरीरवाले दैत्यका संहार करें, आज उस असुरके मारे जानेपर सब लोग सुखी हो जायँ ॥ ३७ ॥

त्वं हि तस्य वधायैकः समर्थः पृथिवीपते ।
विष्णुना च वरो दत्तो मह्यं पूर्वयुगेऽनघ ॥ ३८ ॥

पृथिवीपते ! एक आप ही उसका वध कर सकते हैं, क्योंकि निष्पाप नरेश ! भगवान् विष्णुने पहले युगमें मुझे एक वर दिया था ॥ ३८ ॥

यस्त्वं महासुरं रौद्रं हनिष्यसि महाबलम्।
तस्य त्वं वरदानेन तेज आप्याययिष्यसि ॥ ३९ ॥

भगवान्‌के उस वरदानके अनुसार जब कि (अयोध्याके राजा) आप इस महाबली भयंकर दानवका संहार करेंगे, अपने तेजको (वैष्णव तेजसे) परिपुष्ट कर लोगे ॥ ३९ ॥

न हि धुन्धुर्महातेजास्तेजसाल्पेन शक्यते।
निर्दग्धुं पृथिवीपाल स हि वर्षशतैरपि।
वीर्यं हि सुमहत्तस्य देवैरपि दुरासदम् ॥ ४० ॥

पृथिवीपाल ! महातेजस्वी धुन्धुको अल्प तेजवाला पुरुष सौ वर्षमें भी नहीं मार सकता। उसमें इतना अधिक बल है कि देवताओंके लिये भी उसे दबाना कठिन है ॥ ४० ॥

स एवमुक्तो राजर्षिरुत्तङ्केन महात्मना।
कुवलाश्वं सुतं प्रादात् तस्मै धुन्धुनिवारणे ॥ ४१ ॥

महात्मा उत्तङ्कने जब उन राजर्षिसे इस प्रकार कहा, तब उन्होंने धुन्धु दैत्यको नष्ट करनेके लिये अपने पुत्र कुवलाश्वको उनकी सेवामें दे दिया ॥ ४१ ॥

बृहदश्व उवाच

भगवन् न्यस्तशस्त्रोऽहमयं तु तनयो मम।
भविष्यति द्विजश्रेष्ठ धुन्धुमारो न संशयः ॥ ४२ ॥

बृहदश्वने कहा—भगवन् ! मैंने तो शस्त्र त्याग दिये हैं, किंतु द्विजश्रेष्ठ ! यह मेरा पुत्र (आपको समर्पित) है, यह अवश्य धुन्धुमार होगा ॥ ४२ ॥

स तं व्यादिश्य तनयं राजर्षिर्धुन्धुमारणे।
जगाम पर्वतायैव तपसे संशितव्रतः ॥ ४३ ॥

(यह कहकर) प्रशंसनीय व्रतवाले वे राजर्षि अपने पुत्रको धुन्धुका वध करनेकी आज्ञा देकर स्वयं तप करनेके लिये पर्वतपर चले गये ॥ ४३ ॥

कुवलाश्वस्तु पुत्राणां शतेन सह पार्थिवः।
प्रायादुत्तङ्कसहितो धुन्धोस्तस्य विनिग्रहे ॥ ४४ ॥

तब राजा कुवलाश्व अपने सौ पुत्रों और उत्तङ्कको साथमें लेकर धुन्धुको दण्ड देनेके लिये चल दिये ॥ ४४ ॥

तमाविशत् तदा विष्णुर्भगवांस्तेजसा प्रभुः।
उत्तङ्कस्य नियोगाद् वै लोकस्य हितकाम्यया ॥ ४५ ॥

उस समय भगवान् विष्णु उत्तङ्क ऋषिकी प्रेरणासे लोकोंका हित करनेके लिये अपने तेजःस्वरूपसे उस राजाके शरीरमें प्रविष्ट हो गये ॥ ४५ ॥

तस्मिन् प्रयाते दुर्धर्षे दिवि शब्दो महानभूत्।
एष श्रीमानवध्योऽद्य धुन्धुमारो भविष्यति ॥ ४६ ॥

तब उस दुर्धर्ष राजाके प्रस्थान करनेपर आकाशसे गम्भीर वाणी सुनायी दी कि 'ये श्रीमान् राजा अवध्य हैं, आज इनके हाथसे धुन्धु अवश्य मारा जायगा' ॥ ४६ ॥

दिव्यैर्माल्यैश्च तं देवाः समन्तात् समवाकिरन्।
देवदुन्दुभयश्चापि प्रणेदुर्भरतर्षभ ॥ ४

भरतर्षभ ! तदनन्तर देवताओंने अपनी दुन्दुभियाँ कर उनके ऊपर चारों ओरसे दिव्य पुष्पोंकी वर्षा की ॥

स गत्वा जयतां श्रेष्ठस्तनयैः सह वीर्यवान्।
समुद्रं खानयामास वालुकार्णवमव्ययम् ॥ ४

विजय पानेवालोंमें श्रेष्ठ वह वीर्यवान् राजा पुत्रोंके साथ वहाँ पहुँचकर अपार रेतेसे भरे हुए खुदवाने लगे ॥ ४८ ॥

नारायणेन कौरव्य तेजसाऽऽप्यायितः स वै।
बभूव स महातेजा भूयो बलसमन्वितः ॥ ४

कौरव्य ! वे महाबली राजा भगवान् नारायणके होनेके कारण और भी अधिक तेजस्वी हो गये ॥ ४९ ॥

तस्य पुत्रैः खनद्भिस्तु वालुकान्तर्हितस्तदा।
धुन्धुरासादितो राजन् दिशमावृत्य पश्चिमाम् ॥ ५

राजन् ! धरती खोदते हुए कुवलाश्वपुत्रोंने छिपे हुए धुन्धुका पता लगा लिया। वह पश्चिम घेरकर पड़ा था ॥ ५० ॥

मुखजेनाग्निना क्रोधाल्लोकानुद्वर्तयन्निव।
वारि सुस्राव वेगेन महोदधिरिवोदये ॥ ५
सोमस्य भरतश्रेष्ठ धारोर्मिकलिलं महत्।
तस्य पुत्रशतं दग्धं त्रिभिरूनं तु रक्षसा ॥ ५

धुन्धु अपने मुखकी आगसे सम्पूर्ण लोकोंका करता हुआ जलका स्रोत बहाने लगा। भरतश्रेष्ठ ! चन्द्रमाके उदयकालमें समुद्रमें ज्वार आता है, उत्ताल तरङ्गें बढ़ने लगती हैं, उसी प्रकार वहाँ धारा, और कीचड़से युक्त महान् जलस्रोत वेगपूर्वक बढ़ने लगा राक्षसने कुवलाश्वके सौ पुत्रोंमेंसे तीनको छोड़कर शेष अपनी मुखाग्निसे जलाकर भस्म कर दिया ॥ ५१-५२ ॥

ततः स राजा कौरव्य राक्षसं तं महाबलम्।
आससाद महातेजा धुन्धुं धुन्धुनिबर्हणः ॥

कुरुनन्दन ! तब धुन्धुका संहार करनेके लिये आये महातेजस्वी राजा उस महाबली राक्षसके सामने पहुँचे ।

तस्य वारिमयं वेगमापीय स नराधिपः।
योगी योगेन वह्निं च शमयामास वारिणा ॥

फिर उन योगी नरेशने योगके प्रभावसे उसके वेगको पी लिया तथा जलसे अग्निको शान्त कर दिया ॥

निहत्य तं महाकायं बलेनोदकराक्षसम्।
उत्तङ्कं दर्शयामास कृतकर्मा नराधिपः ॥

इस प्रकार उस विशाल शरीरवाले जल-राक्षस

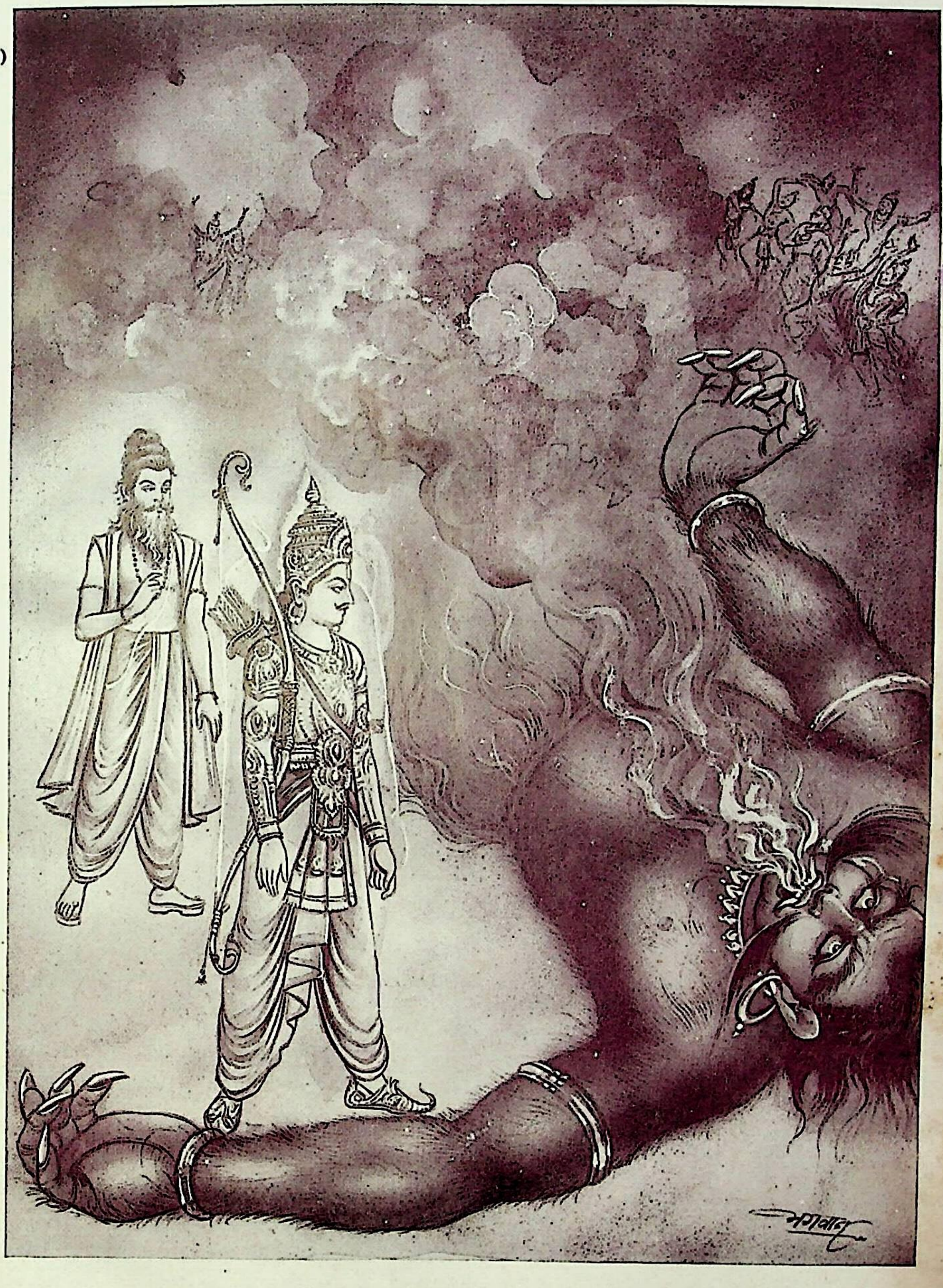

उत्तङ्ककी प्रेरणासे कुवलाश्वद्वारा धुन्धु राक्षसका वध

ूर्वक मारकर राजाने अपना काम पूर्ण करके उस मारे हुए राक्षसको उत्तङ्क ऋषिको दिखाया ॥ ५५ ॥

उत्तङ्कस्तु वरं प्रादात् तस्मै राज्ञे महात्मने ।
ददौ तस्याक्षयं वित्तं शत्रुभिश्चापराजयम् ॥ ५६ ॥

उस समय उत्तङ्कने उन महात्मा राजाको वरदान दिया कि 'आपके पास अक्षय धन रहेगा तथा शत्रुओंसे आप कभी पराजित नहीं होंगे ॥ ५६ ॥

धर्मे रतिं च सततं स्वर्गवासं तथाक्षयम् ।
पुत्राणां चाक्षयाँल्लोकान् स्वर्गे ये रक्षसा हताः ॥ ५७ ॥

'धर्मपर आपकी श्रद्धा सर्वदा बनी रहेगी तथा आप अनन्त कालतक स्वर्गमें रहेंगे । साथ ही राक्षसने आपके जिन पुत्रोंको मार डाला है, उन्हें भी स्वर्गमें अक्षय लोक मिलेंगे' ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि धुन्धुवधे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें धुन्धुवधविषयक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

धुन्धुमारके वंशका वर्णन और गालवकी उत्पत्ति

वैशम्पायन उवाच

तस्य पुत्रास्त्रयः शिष्टा दृढाश्वो ज्येष्ठ उच्यते ।
चन्द्राश्वकपिलाश्वौ तु कुमारौ द्वौ कनीयसौ ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! उन (धुन्धुमार) के तीन पुत्र बच गये थे, जिनमें दृढाश्व सबसे बड़ा था तथा चन्द्राश्व और कपिलाश्व दो छोटे थे ॥ १ ॥

धौन्धुमारिर्दृढाश्वस्तु हर्यश्वस्तस्य चात्मजः ।
हर्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत् क्षत्रधर्मरतः सदा ॥ २ ॥

धुन्धुमारके दृढाश्व, दृढाश्वके हर्यश्व और हर्यश्वके निकुम्भ नामक पुत्र हुआ, जो सदा क्षत्रियधर्ममें तत्पर रहता था ॥ २ ॥

संहताश्वो निकुम्भस्य पुत्रो रणविशारदः ।
अकृशाश्वः कृशाश्वश्च संहताश्वसुतौ नृप ॥ ३ ॥

निकुम्भके संहताश्व नामक पुत्र हुआ, जो युद्धकी कलामें निपुण था । राजन् ! संहताश्वके अकृशाश्व और कृशाश्व नामक दो पुत्र हुए ॥ ३ ॥

तस्य हैमवती कन्या सतां माता दृषद्वती ।
विख्याता त्रिषु लोकेषु पुत्रश्चास्याः प्रसेनजित् ॥ ४ ॥

उस (संहताश्व) की भार्या हिमवान्‌की पुत्री थी, जो तीनों लोकोंमें दृषद्वतीके नामसे प्रसिद्ध है । उससे प्रसेनजित् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था । वह श्रेष्ठ पुत्रोंकी जननी थी ॥ ४ ॥

लेभे प्रसेनजिद् भार्यां गौरीं नाम पतिव्रताम् ।
अभिशप्ता तु सा भर्त्रा नदी वै बाहुदाभवत् ॥ ५ ॥

प्रसेनजित्‌की गौरी नामवाली भार्या थी । वह पतिव्रता थी । वह पतिके शाप देनेपर बाहुदा नदी हो गयी ॥ ५ ॥

तस्याः पुत्रो महानासीद् युवनाश्वो महीपतिः ।
मान्धाता युवनाश्वस्य त्रिलोकविजयी सुतः ॥ ६ ॥

उसके पुत्र महाराज युवनाश्व थे, युवनाश्वके त्रिलोकविजयी मान्धाता नामक पुत्र हुआ ॥ ६ ॥

तस्य चैत्ररथी भार्या शशबिन्दोः सुताभवत् ।
साध्वी बिन्दुमती नाम रूपेणासदृशी भुवि ॥ ७ ॥

शशबिन्दुकी पुत्री बिन्दुमती, जिसका दूसरा नाम चैत्ररथी था, मान्धाताकी भार्या थी । वह साध्वी पृथ्वीमें अनुपम रूपवती थी ॥ ७ ॥

पतिव्रता च ज्येष्ठा च भ्रातॄणामयुतस्य सा ।
तस्यामुत्पादयामास मान्धाता द्वौ सुतौ नृप ॥ ८ ॥
पुरुकुत्सं च धर्मज्ञं मुचुकुन्दं च धार्मिकम् ।
पुरुकुत्ससुतस्त्वासीत् त्रसदस्युर्महीपतिः ॥ ९ ॥

उसके दस हजार भाई थे और वह पतिव्रता उनमें सबसे बड़ी थी । राजन् ! मान्धाताने उसके गर्भसे धर्मज्ञ पुरुकुत्स और धार्मिक मुचुकुन्द—इन दो पुत्रोंको उत्पन्न किया । पुरुकुत्सका पुत्र राजा त्रसदस्यु हुआ ॥ ८-९ ॥

नर्मदायामथोत्पन्नः सम्भूतस्तस्य चात्मजः ।
सम्भूतस्य तु दायादः सुधन्वा नाम पार्थिवः ॥ १० ॥

त्रसदस्युके नर्मदा नामवाली स्त्रीके गर्भसे सम्भूत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । सम्भूतका पुत्र सुधन्वा नामक राजा था ॥

सुधन्वनः सु[illegible]श्चासीत् त्रिधन्वा रिपुमर्दनः ।
राज्ञस्त्रिधन्वनस्त्वासीद् विद्वांस्त्रय्यारुणः सुतः॥ ११ ॥

सुधन्वाके त्रिधन्वा नामक पुत्र हुआ, जो शत्रुओंका मर्दन करनेवाला था । राजा त्रिधन्वाके त्रय्यारुण नामक विद्वान् पुत्र हुआ ॥ ११ ॥

तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः ।
पाणिग्रहणमन्त्राणां विघ्नं चक्रे सुदुर्मतिः ॥ १२ ॥

त्रय्यारुणके सत्यव्रत नामवाला महाबली कुमार हुआ । उसकी

बुद्धि बड़ी खोटी थी। वह (परस्त्रीहरणद्वारा) विवाहके मन्त्रोंमें विघ्न डालने लगा ॥ १२ ॥

येन भार्या हृता पूर्वं कृतोद्वाहा परस्य वै ।
बाल्यात् कामाच्च मोहाच्च संहर्षाच्चापलेन च॥ १३ ॥

उसने बालकपन, काम, मोह, हर्ष और चपलताके कारण किसी दूसरे (नागरिक) की विवाहिता स्त्रीको छीन लिया था ॥१३॥

जहार कन्यां कामात् स कस्यचित् पुरवासिनः।
अधर्मशङ्कुना तेन राजा त्रय्यारुणोऽत्यजत्॥ १४ ॥
अपध्वंसेति बहुशो वदन् क्रोधसमन्वितः ।
पितरं सोऽब्रवीत् त्यक्तः क्व गच्छामीति वै मुहुः॥ १५ ॥

इसी प्रकार उसने कामके वशमें होकर एक पुरवासीकी कन्याको हर लिया था। इस पापरूपी कीलसे विद्ध होनेके कारण राजा त्रय्यारुणने क्रोधमें उसे बार-बार कहा—‘ओ नीच ! भाग जा यहाँसे ।’ पिताके त्याग देनेपर उसने बार-बार उनसे पूछा—‘मैं कहाँ जाऊँ ?’ ॥ १४-१५ ॥

पिता त्वेनमथोवाच श्वपाकैः सह वर्तय ।
नाहं पुत्रेण पुत्रार्थी त्वयाद्य कुलपांसन ॥ १६ ॥

तब उसके पिताने कहा—‘ओ कुलकलंक ! जा तू श्वपाकों* के साथ रह, मैं तुझ-जैसे पुत्रसे पुत्रवान् बनना नहीं चाहता’॥

इत्युक्तः स निराक्रामन्नगराद् वचनात् पितुः ।
न च तं वारयामास वसिष्ठो भगवानृषिः ॥ १७ ॥

पिताके इस प्रकार कहनेपर वह उनके कथनानुसार नगरसे बाहर निकल गया। उस समय भगवान् वसिष्ठ ऋषिने भी उसके पिताको इस प्रकार कहनेसे नहीं रोका ॥ १७ ॥

स तु सत्यव्रतस्तात श्वपाकावसथान्तिके ।
पित्रा त्यक्तोऽवसद् धीरः पिता तस्य वनं ययौ ॥ १८ ॥

तात ! धीर सत्यव्रत पिताके त्याग देनेपर चाण्डालोंकी बस्तीमें रहने लगा और उसके पिता त्रय्यारुण (विरक्त होकर) वनको चले गये ॥ १८ ॥

ततस्तस्मिंस्तु विषये नावर्षत् पाकशासनः ।
समा द्वादश राजेन्द्र तेनाधर्मेण वै तदा ॥ १

राजेन्द्र ! उस समय उस देशमें (उस कन्याहरण अधर्मके कारण इन्द्रने बारह वर्षोंतक वर्षा नहीं की ॥ १

दारांस्तु तस्य विषये विश्वामित्रो महातपाः ।
संन्यस्य सागरानूपे चचार विपुलं तपः ॥ २

उस समय महातपस्वी विश्वामित्र भी सत्यव्रतके देशमें अपनी स्त्रीको न्यास (धरोहर) के रूपमें समुद्रके तटपर भयंकर तप कर रहे थे ॥ २० ॥

तस्य पत्नी गले बद्ध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम् ।
शेषस्य भरणार्थाय व्यक्रीणाद् गोशतेन वै ॥ २

विश्वामित्रकी स्त्री अपने शेष कुटुम्बके पालनके अपने मध्यम पुत्रके गलेमें रस्सी बाँधकर उसको सौ गौ मूल्यपर बेचनेके लिये लेकर घूमने लगी ॥ २१ ॥

तं तु बद्धं गले दृष्ट्वा विक्रीयन्तं नृपात्मजः ।
महर्षिपुत्रं धर्मात्मा मोक्षयामास भारत ॥ २

भारत ! धर्मात्मा राजकुमार (सत्यव्रत) ने महर्षिपुत्रको गलेमें बँधा तथा बिकता देखकर लिया ॥ २२ ॥

सत्यव्रतो महाबाहुर्भरणं तस्य चाकरोत् ।
विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुकम्पार्थमेव च ॥ २

फिर महाबाहु सत्यव्रतने विश्वामित्रको संतुष्ट करने उनकी कृपा प्राप्त करनेके लिये उस पुत्रका भरण-पोषण किय

सोऽभवद् गालवो नाम गलबन्धान्महातपाः ।
महर्षिः कौशिकस्तात तेन वीरेण मोक्षितः ॥ २

वह महातपस्वी गलेमें बन्धन पड़नेके कारण नामसे प्रसिद्ध हुआ। तात ! (इस प्रकार) उस कुशिकवंशी महर्षि (गालव) को (इस आपत्तिसे) किया था ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि गालवोत्पत्तौ द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें गालवकी उत्पत्तिविषयक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२॥

त्रयोदशोऽध्यायः

त्रिशङ्कुके चरित्रका वर्णन तथा उनके वंशमें हरिश्चन्द्र आदिका उत्पन्न होना

वैशम्पायन उवाच

सत्यव्रतस्तु भक्त्या च कृपया च प्रतिज्ञया ।
विश्वामित्रकलत्रं तद् बभार विनये स्थितः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! विश्वामित्र प्रति श्रद्धा-भक्ति, उनके असहाय कुटुम्बके प्रति दया तथा अपनी की हुई प्रतिज्ञासे प्रेरित हो सत्यव्रत वि

---

* श्वपाक चाण्डालोंकी एक जातिका नाम है।

पूर्वक विश्वामित्रजीकी स्त्रीका पालन करने लगा ॥ १ ॥

हत्वा मृगान् वराहांश्च महिषांश्च वनेचरान् ।
विश्वामित्राश्रमाभ्याशे मांसं वृक्षे बबन्ध सः ॥ २ ॥

वह ढूँढ़नेसे मिलनेवाले कंदविशेष, बराही कंद तथा महिष कंद आदि जंगली कंद-मूलोंको काटकर उनका गूदा विश्वामित्रके आश्रमके पासके वृक्षोंमें बाँध देता था ॥ २ ॥

उपांशुव्रतमास्थाय दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् ।
पितुर्नियोगादवसत् तस्मिन् वनगते नृपे ॥ ३ ॥

पिता (राजा) के वन चले जानेपर बारह वर्षोंके लिये वह चुपचाप (किसीको विदित न हो इस प्रकार) व्रत करने लगा ॥ ३ ॥

अयोध्यां चैव राष्ट्रं च तथैवान्तःपुरं मुनिः ।
याज्योपाध्यायसम्बन्धाद् वसिष्ठः पर्यरक्षत ॥ ४ ॥

इधर पुरोहिताई और यजमानीके सम्बन्धके कारण मुनि वसिष्ठ अयोध्याकी, राज्यकी और रनिवासकी रक्षा करने लगे ॥ ४ ॥

सत्यव्रतस्तु बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वा बलात् ।
वसिष्ठेऽभ्यधिकं मन्युं धारयामास वै तदा ॥ ५ ॥

इधर सत्यव्रत अपनी मूर्खता या होनहारके कारण वसिष्ठजीके ऊपर अधिक कुपित रहने लगा ॥ ५ ॥

पित्रा तु तं तदा राष्ट्रात् त्यज्यमानं स्वमात्मजम् ।
न वारयामास मुनिर्वसिष्ठः कारणेन ह ॥ ६ ॥

परंतु मुनि वसिष्ठने तो उसके पिताको, उनके द्वारा अपने पुत्रके राज्यसे निकाले जाते समय विशेष कारणवश ही नहीं रोका था ॥ ६ ॥

पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात् सप्तमे पदे ।
न च सत्यव्रतस्तस्य तमुपांशुमबुध्यत ॥ ७ ॥

पाणिग्रहण अर्थात् विवाहके मन्त्र सप्तपदीके पूर्ण होनेपर पूर्ण हुए माने जाते हैं । (इसके पहले स्त्रीमें कन्यात्व ही रहता है; अतः वसिष्ठजी सत्यव्रतसे बारह वर्षोंतक कन्याहरणका प्रायश्चित्त कराना चाहते थे) । परंतु वसिष्ठजीके इस गूढ़ आशयको सत्यव्रत समझ न सका ॥ ७ ॥

जानन् धर्मं वसिष्ठस्तु न मां त्रातीति भारत ।
सत्यव्रतस्तदा रोषं वसिष्ठे मनसाकरोत् ॥ ८ ॥

'वसिष्ठजी धर्मको जानते हैं, तब भी मेरी रक्षा नहीं करते हैं ।' भारत ! यह विचारकर सत्यव्रत अपने मनमें उनपर कुपित रहने लगा ॥ ८ ॥

गुणबुद्ध्या तु भगवान् वसिष्ठः कृतवांस्तथा ।
न च सत्यव्रतस्तस्य तमुपांशुमबुध्यत ॥ ९ ॥

भगवान् वसिष्ठजीने तो गुणबुद्धिसे ऐसा किया था, परंतु सत्यव्रत उनके इस गुप्त अभिप्रायको समझ न सका ॥ ९ ॥

तस्मिन्नपरितोषो यः पितुरासीन्महात्मनः ।
तेन द्वादश वर्षाणि नावर्षत् पाकशासनः ॥ १० ॥

उसके महात्मा पिताको सत्यव्रतके ऊपर जो असंतोष उत्पन्न हो गया, इस कारण इन्द्रने उसके राज्यमें बारह वर्षोंतक वर्षा नहीं की ॥ १० ॥

तेन त्विदानीं वहता दीक्षां तां दुर्वहां भुवि ।
कुलस्य निष्कृतिस्तात कृता सा वै भवेदिति ॥ ११ ॥
न तं वसिष्ठो भगवान् पित्रा त्यक्तं न्यवारयत् ।
अभिषेक्ष्याम्यहं पुत्रमस्येत्येवं मतिर्मुनेः ॥ १२ ॥

तात ! 'यदि (सत्यव्रत) भूतलपर कठिनतासे पूर्ण होनेवाली इस दीक्षाको पूर्ण कर लेगा तो इसके कुलका उद्धार हो जायगा' । यह विचारकर भगवान् वसिष्ठनें उसके पिताद्वारा त्यागे गये सत्यव्रतको नहीं रोका था, उनका विचार था कि '(प्रायश्चित्तके अनन्तर) इसके पुत्रको ही मैं राज्यपर अभिषिक्त कर दूँगा' ॥ ११-१२ ॥

स तु द्वादशवर्षाणि दीक्षां तामुद्वहद् बली ।
उपांशुव्रतमास्थाय महत् सत्यव्रतो नृप ॥ १३ ॥

राजन् ! बलवान् सत्यव्रतने भी चुपचाप दीक्षा लेकर बारह वर्षतक इस महाव्रतको धारण किया ॥ १३ ॥

अविद्यमाने मांसे तु वसिष्ठस्य महात्मनः ।
सर्वकामदुघां दोग्ध्रीं ददर्श स नृपात्मजः ॥ १४ ॥

एक समय कंद-मूलके गूदेके न रहनेपर उस राजकुमारकी दृष्टि सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाली महात्मा वसिष्ठकी दुधार गौके ऊपर पड़ी ॥ १४ ॥

तां वै क्रोधाच्च मोहाच्च श्रमाच्चैव क्षुधार्दितः ।
दशधर्मान् गतो राजा जघान जनमेजय ॥ १५ ॥

जनमेजय ! राजकुमार सत्यव्रतने उस गौको क्रोध, मोह और कामके कारण तथा भूखसे पीड़ा पानेके कारण दश अनिष्ट धर्मों (अवस्थाओं)* को प्राप्त होनेकी दशामें मार डाला ॥ १५ ॥

---

* वे दस धर्म या अवस्थाएँ इस प्रकार हैं—

मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः ।
त्वरमाणश्च भीरुश्च लुब्धः कामी च ते दश ॥

अर्थात् मद, प्रमाद, उन्माद, श्रम, क्रोध, भूख, उतावली, भय, लोभ और काम—इन दस दशाओंमें पड़े हुए मनुष्य पाप कर बैठते हैं ।

तच्च मांसं स्वयं चैव विश्वामित्रस्य चात्मजान्।
भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठोऽप्यस्य चुक्रुधे।
क्रुद्धस्तु भगवान् वाक्यमिदमाह नृपात्मजम् ॥ १६ ॥

उस मांसको उसने विश्वामित्रके पुत्रोंको खिलाया और अपने आप भी खाया। यह सुनकर वसिष्ठजी भी क्रोधमें भर गये और क्रोधमें भरे हुए वसिष्ठजीने राजाके पुत्रसे यह बात कही ॥ १६ ॥

वसिष्ठ उवाच

पातयेयमहं क्रूर तव शङ्कुमसंशयम्।
यदि ते द्वाविमौ शङ्कू न स्यातां वै कृतौ पुनः॥ १७ ॥

वसिष्ठजीने कहा—क्रूर! यदि तुझमें फिर किये हुए ये दो शङ्कु (पाप) न होते तो मैं तेरे प्रथम शङ्कु (पाप) को अवश्य नष्ट कर देता ॥ १७ ॥

पितुश्चापरितोषेण गुरोर्दोग्ध्रीवधेन च।
अप्रोक्षितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रमः ॥ १८ ॥

पिताको संतुष्ट न रखने, गुरुकी दूध देनेवाली गौकी हत्या कर डालने और अप्रोक्षित मांस खानेसे तुम्हारे द्वारा तीन प्रकारके पाप बन गये ॥ १८ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं त्रीण्यस्य शङ्कूनि तानि दृष्ट्वा महातपाः।
त्रिशङ्कुरिति होवाच त्रिशङ्कुरिति स स्मृतः॥ १९ ॥

वैशम्पायनजी बोले—इस प्रकार उसके तीन शङ्कुओंको देखकर महातपस्वी वसिष्ठजीने जो उसे त्रिशङ्कु कहा, इसके कारण वह त्रिशङ्कु ही कहलाने लगा ॥ १९ ॥

विश्वामित्रस्तु दाराणामागतो भरणे कृते।
स तु तस्मै वरं प्रादान्मुनिः प्रीतस्त्रिशङ्कवे ॥ २० ॥

जब विश्वामित्रजी लौटे, तब अपनी स्त्री आदिका भरण-पोषण करनेके कारण प्रसन्न होकर त्रिशङ्कुको वर देने लगे ॥

छन्द्यमानो वरेणाथ वरं वव्रे नृपात्मजः।
सशरीरो व्रजे स्वर्गमित्येवं याचितो मुनिः ॥ २१ ॥

जब विश्वामित्रजीने राजकुमारसे इच्छानुसार वर माँगनेके लिये कहा तब उसने मुनिसे वर माँगा कि 'मैं सदेह स्वर्गमें जाऊँ' ॥ २१ ॥

अनावृष्टिभये तस्मिन् गते द्वादशवार्षिके।
राज्येऽभिषिच्य पित्र्ये तु याजयामास तं मुनिः॥ २२ ॥

(विश्वामित्रके प्रसादमात्रसे) बारह वर्षोंकी अनावृष्टिका भय दूर हो जानेपर विश्वामित्र (मुनि अपने तपसे उसके पापोंको भस्म करके) उसका पिताके राज्यपर अभिषेक कर उसका यज्ञ कराने लगे ॥ २२ ॥

मिषतां देवतानां च वसिष्ठस्य च कौशिकः।
सशरीरं तदा तं तु दिवमारोपयत् प्रभुः ॥ २३

तदनन्तर तपकी शक्तिसे सम्पन्न कौशिकगोत्री विश्वामि ने वसिष्ठ और देवताओंके देखते-देखते ही त्रिशङ्कु सशरीर स्वर्गमें भेज दिया ॥ २३ ॥

तस्य सत्यरथा नाम भार्या कैकयवंशजा।
कुमारं जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम् ॥ २४

त्रिशङ्कुके कैकयवंशमें उत्पन्न हुई एक सत्या नामकी भार्या थी। उसमें उसने हरिश्चन्द्र नाम निष्पाप पुत्रको उत्पन्न किया ॥ २४ ॥

स वै राजा हरिश्चन्द्रस्त्रैशङ्कव इति स्मृतः।
आहर्ता राजसूयस्य स सम्राडिति विश्रुतः ॥ २५

वे राजा हरिश्चन्द्र त्रैशङ्कवनामसे प्रसिद्ध थे, उन्होंने राज यज्ञ किया था, अतएव वे सम्राट् कहलाते थे ॥ २५ ॥

हरिश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूद्रोहितो नाम वीर्यवान्।
येनेदं रोहितपुरं कारितं राज्यसिद्धये ॥ २६

हरिश्चन्द्रके रोहित नामवाला वीर्यवान् पुत्र उत्प हुआ, जिसने अपने राज्य-कार्यकी सिद्धिके लिये रोहित बसाया था ॥ २६ ॥

कृत्वा राज्यं स राजर्षिः पालयित्वा त्वथ प्रजाः।
संसारासारतां ज्ञात्वा द्विजेभ्यस्तत्पुरं ददौ ॥ २७

उस राजर्षिने राज्य तथा प्रजाका पालन करके अनन्तर संसारकी असारताको जानकर अपना नगर ब्राह्म को दे दिया था ॥ २७ ॥

हरितो रोहितस्याथ चञ्चुर्हारीत उच्यते।
विजयश्च सुदेवश्च चञ्चुपुत्रौ बभूवतुः ॥ २८

रोहितका पुत्र हरित और हरितका पुत्र चञ्चु हुआ यह प्रसिद्ध है। चञ्चुके विजय और सुदेव नामवाले पुत्र हुए ॥ २८ ॥

जेता क्षत्रस्य सर्वस्य विजयस्तेन संस्मृतः।
रुरुकस्तनयस्तस्य राजधर्मार्थकोविदः ॥ २९

उस (विजय) ने सम्पूर्ण क्षत्रियोंको जीत लिया थ इसलिये वह विजय कहलाता था। उसके राजकार्य, धर्म कार्य और आर्थिक विषयोंमें चतुर रुरुक नामवाला पु हुआ ॥ २९ ॥

रुरुकस्य वृकः पुत्रो वृकाद् बाहुस्तु जज्ञिवान्।
शकैर्यवनकाम्बोजैः पारदैः पह्लवैः सह ॥ ३०
हैहयास्तालजङ्घाश्च निरस्यन्ति स्म तं नृपम्।
नात्यर्थं धार्मिकस्तात स हि धर्मयुगेऽभवत् ॥ ३१

रुरुकका पुत्र वृक हुआ और वृकके बाहु नामवा पुत्र उत्पन्न हुआ। वह राजा उस (राज) धर्मके युग

अतिधार्मिक नहीं था, इसलिये हैहय और तालजङ्घ वंशके राजाओंने शक, यवन, काम्बोज, पारद और पह्लव (आदि) राजाओंका साथ देकर बाहुकको उसके राज्यसे भ्रष्ट कर दिया ॥ ३०-३१ ॥

सगरस्तु सुतो बाहोर्जज्ञे सह गरेण च।
और्वस्याश्रममागम्य भार्गवेणाभिरक्षितः ॥ ३२ ॥

बाहुकका जो पुत्र उत्पन्न हुआ वह गर अर्थात् विष-के साथ ही उत्पन्न हुआ था। इससे वह सगर कहलाने लगा। (उसकी माताके) और्वके आश्रममें आनेपर भृगुवंशी और्वने उसकी रक्षा की थी॥ ३२॥

आग्नेयमस्त्रं लब्ध्वा च भार्गवात् सगरो नृपः।
जिगाय पृथिवीं हत्वा तालजङ्घान् सहैहयान्॥ ३३ ॥

सगरने भृगुवंशी और्वसे आग्नेय अस्त्रको सीखकर तालजंघ और हैहय राजाओंको मारकर पृथिवीको जीत लिया ॥ ३३ ॥

शकानां पह्लवानां च धर्मं निरसदच्युतः।
क्षत्रियाणां कुरुश्रेष्ठ पारदानां स धर्मवित् ॥ ३४ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! धर्मको जाननेवाले पूर्णशक्ति-सम्पन्न सगरने शक, पह्लव और पारद क्षत्रियोंको धर्मभ्रष्ट कर दिया था॥ ३४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि त्रिशङ्कुचरितकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें त्रिशङ्कुके चरित्रका वर्णनविषयक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

सगरकी उत्पत्ति और चरित्र तथा सगर-पुत्रोंके उद्योगसे समुद्रका 'सागर' होना

जनमेजय उवाच

कथं स सगरो जातो गरेणैव सहाच्युतः।
किमर्थं च शकादीनां क्षत्रियाणां महौजसाम् ॥ १ ॥
धर्मं कुलोचितं क्रुद्धो राजा निरसदच्युतः।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व विस्तरेण तपोधन ॥ २ ॥

जनमेजयने कहा—तपोधन ! वे राजा सगर विषके साथ क्यों उत्पन्न हुए थे ? विषके साथ रहते हुए भी मरे क्यों नहीं ? और मर्यादासे च्युत न होनेवाले उन नरेशने क्रोधमें भरकर महाबली शक आदि क्षत्रियोंके कुलोचित धर्मको क्यों नष्ट कर दिया था ? इसका आप मुझसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १-२ ॥

वैशम्पायन उवाच

बाहोर्व्यसनिनस्तात हृतं राज्यमभूत् किल।
हैहयैस्तालजङ्घैश्च शकैः सार्द्धं विशाम्पते ॥ ३ ॥

वैशम्पायनजी बोले—राजन् ! राजा बाहु शिकार और जुए आदि व्यसनोंमें ही पड़ा रहता था। तात ! (इस अवसरसे लाभ उठाकर) बाहुके राज्यको हैहय, तालजङ्घ तथा शकोंने छीन लिया ॥ ३ ॥

यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पह्लवाः खसाः।
एते ह्यपि गणाः पञ्च हैहयार्थे पराक्रमन् ॥ ४ ॥

यवन, पारद, काम्बोज, खस और पह्लव—इन पाँच गणोंने भी हैहय राजाओंके लिये पराक्रम किया था॥ ४ ॥

हृतराज्यस्तदा राजा स वै बाहुर्वनं ययौ।
पत्न्या चानुगतो दुःखी वने प्राणानवासृजत्॥ ५ ॥

राज्यके छिन जानेपर राजा बाहु वनको चला गया और उसकी पत्नी भी उसके पीछे-पीछे गयी । इसके बाद उस राजाने दुखी होकर वनमें ही अपने प्राणोंको त्याग दिया ॥५॥

पत्नी तु यादवी तस्य सगर्भा पृष्ठतोऽन्वगात्।
सपत्न्या च गरस्तस्यै दत्तः पूर्वमभूत् किल ॥ ६ ॥

उसकी पत्नी यदुवंशकी कन्या थी। वह गर्भवती थी, तब भी बाहुके पीछे-पीछे वनमें गयी थी। उसकी सौतने उसे पहले ही विष दे दिया था ॥ ६ ॥

सा तु भर्तुश्चितां कृत्वा वने तामध्यरोहत।
और्वस्तां भार्गवस्तात कारुण्यात् समवारयत् ॥ ७ ॥

तात ! जब वह स्वामीकी चिता बनाकर उसपर चढ़ने लगी, उसी समय वनमें विराजमान भृगुवंशी और्व ऋषिने दयाके कारण उसे रोका ॥ ७ ॥

तस्याश्रमे च तं गर्भं गरेणैव सहाच्युतम्।
व्यजायत महाबाहुं सगरं नाम पार्थिवम् ॥ ८ ॥

तब उसने उनके आश्रममें ही विष (गर) सहित गर्भ-को, जो आगे चलकर सगर नामक महाबाहु राजाके रूपमें प्रसिद्ध हुआ, उत्पन्न किया। राजा सगर कभी धर्मसे च्युत नहीं हुए थे ॥ ८ ॥

और्वस्तु जातकर्मादि तस्य कृत्वा महात्मनः।
अध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽस्त्रं प्रत्यपादयत् ॥ ९ ॥

और्वने महामना सगरके जातकर्म आदि संस्कार कराकर उन्हें वेद और शास्त्र पढ़ाये, फिर अस्त्रविद्या सिखायी ॥९॥

आग्नेयं तु महाघोरममरैरपि दुःसहम्।
स तेनास्त्रबलेनाजौ बलेन च समन्वितः ॥ १० ॥
हैहयान्निजघानाशु क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव।
आजहार च लोकेषु कीर्तिं कीर्तिमतां वरः ॥ ११ ॥

उन्होंने सगरको देवताओंके लिये भी असह्य महाघोर आग्नेय अस्त्र दिया था। जब वे अस्त्र-बल और शारीरिक बलसे सम्पन्न हो गये, तब क्रोधमें भरकर रुद्र जैसे शीघ्रतासे पशुओं-का संहार करते हैं, उसी प्रकार उन्होंने हैहयोंका संहार कर डाला। इस प्रकार कीर्तिमानोंमें श्रेष्ठ उन वीर पुरुषने संसारमें (अद्भुत) कीर्ति पायी थी ॥ १०-११ ॥

ततः शकान् सयवनान् काम्बोजान् पारदांस्तथा।
पह्लवांश्चैव निःशेषान् कर्तुं व्यवसितस्तदा ॥ १२ ॥

इसके अनन्तर उन्होंने शक, यवन, काम्बोज, पारद और पह्लवोंको भी निःशेष (सर्वथा नष्ट) करनेका निश्चय किया॥ १२॥

ते वध्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना।
वसिष्ठं शरणं गत्वा प्रणिपेतुर्मनीषिणम् ॥ १३ ॥

जब वीर और महात्मा सगर उनका सर्वनाश करने लगे, तब वे (शक, यवनादि) बुद्धिमान् वसिष्ठजीकी शरणमें गये और उनके पैरोंमें गिर पड़े ॥ १३ ॥

वसिष्ठस्त्वथ तान् दृष्ट्वा समयेन महाद्युतिः।
सगरं वारयामास तेषां दत्त्वाभयं तदा ॥ १४ ॥

परम यशस्वी वसिष्ठजीने कुछ विशेष शर्तोंपर उनको अभयदान दिया और सगरको (उन्हें मारनेसे) रोका ॥ १४ ॥

सगरः स्वां प्रतिज्ञां च गुरोर्वाक्यं निशम्य च।
धर्मं जघान तेषां वै वेषान्यत्वं चकार ह ॥ १५ ॥

सगरने अपनी प्रतिज्ञा और गुरुके वाक्यकी ओर ध्यान देकर (उनके प्राण नहीं लिये) उनके धर्मको नष्ट कर दिया; और उनका वेष बदल दिया ॥ १५ ॥

अर्द्धं शकानां शिरसो मुण्डं कृत्वा व्यसर्जयत्।
यवनानां शिरः सर्वं काम्बोजानां तथैव च ॥ १६ ॥

उन्होंने शकोंके आधे शिरको मूँड़कर छोड़ दिया, यवनोंके सारे शिरको मूँड़ दिया, और पह्लवोंके भी शिरको मुँड़वा दिया ॥ १६ ॥

पारदा मुक्तकेशाश्च पह्लवाः श्मश्रुधारिणः।
निःस्वाध्यायवषट्काराः कृतास्तेन महात्मना ॥ १७ ॥

उन महात्मा नरेशने पारदोंके शिरको मुक्तकेश (खुले हुए केशोंवाला) कर दिया और पह्लवोंको श्मश्रुधारी (केवल दाढ़ीवाला) बना दिया और सबको स्वाध्याय तथा वषट्कारसे रहित कर दिया ॥ १७ ॥

शका यवनकाम्बोजाः पारदाश्च विशाम्पते।
कोलिसर्पाः समहिषा दार्वाश्चोलाः सकेरलाः ॥ १८ ॥

सर्वे ते क्षत्रियास्तात धर्मस्तेषां निराकृतः।
वसिष्ठवचनाद् राजन् सगरेण महात्मना ॥ १

तात ! जनेश्वर ! शक, यवन, काम्बोज, पारद, सर्प, महिष, दर्द, चोल और केरल—ये सब क्षत्रिय ही वसिष्ठजीके वचनसे महात्मा सगरने (इन सबका संहा करके केवल) इनके धर्मको ही नष्ट कर दिया था ॥१८

खसांस्तुषारांश्चोलांश्च मद्रान् किष्किन्धकांस्तथा।
कौन्तलांश्च तथा वङ्गान् साल्वान् कौङ्कणकांस्तथा॥
स धर्मविजयी राजा विजित्येमां वसुंधराम्।
अश्वं वै प्रेरयामास वाजिमेधाय दीक्षितः ॥ २

उन धर्मविजयी राजाने अश्वमेधकी दीक्षा लेकर तुषार, चोल, मद्र, किष्किन्धक, कौन्तल, वङ्ग, साल्व कोङ्कण देशके राजाओंको जीता। इस प्रकार पृथ्वीका करते हुए उन्होंने अश्वमेध यज्ञके लिये अपना घोड़ा छो

तस्य चारयतः सोऽश्वः समुद्रे पूर्वदक्षिणे।
वेलासमीपेऽपहृतो भूमिं चैव प्रवेशितः ॥ २

जब उनका घोड़ा घुमाया जा रहा था, उस पूर्व-दक्षिणमें समुद्रके किनारे किसीने उस घोड़ेको लिया और उसे भूमिमें छिपा दिया ॥ २२ ॥

स तं देशं तदा पुत्रैः खानयामास पार्थिवः।
आसेदुस्ते ततस्तत्र खन्यमाने महार्णवे ॥ २
तमादिपुरुषं देवं हरिं कृष्णं प्रजापतिम्।
विष्णुं कपिलरूपेण स्वपन्तं पुरुषोत्तमम् ॥ २

उस समय राजा (सगर) ने अपने पुत्रोंसे उस को खुदवाया। समुद्रके खोदनेपर उनके पुत्रोंने आदि हरि (अविद्याको हरनेवाले), कृष्ण (सच्चिदानन्दस्व प्रजापति पुरुषोत्तम, (कपिलरूपी विष्णुको वहाँ सोते समाधिमें स्थित) देखा ॥ २३-२४ ॥

तस्य चक्षुःसमुत्थेन तेजसा प्रतिबुध्यतः।
दग्धास्ते वै महाराज चत्वारस्त्ववशेषिताः ॥ २
बर्हकेतुः सुकेतुश्च तथा धर्मरथो नृपः।
शूरः पञ्चजनश्चैव तस्य वंशकरो नृपः ॥ २

उनके योगनिद्राको त्यागनेपर उनके नेत्रमेंसे निकले तेजसे वे सब (राजकुमार) भस्म हो गये। महा केवल बर्हकेतु, सुकेतु, राजा धर्मरथ और चलानेवाला शूर पञ्चजन—ये चार राजकुमार ही बच सके थे ॥ २५-२६ ॥

प्रादाच्च तस्मै भगवान् हरिर्नारायणो वरान्।
अक्षयं वंशमिक्ष्वाकोः कीर्तिं चाप्यनिवर्तनीम्॥
पुत्रं समुद्रं च विभुः स्वर्गवासं तथाक्षयम्।
पुत्राणां चाक्षयाँल्लोकांस्तस्य ये चक्षुषा हताः॥

उन्हें (कपिलरूपी) विभु हरिनारायण भगवान्‌ने यह वरदान दिया था कि इक्ष्वाकुका वंश अक्षय रहेगा और राजा सगरकी कीर्ति कभी नष्ट नहीं होगी। समुद्र उनका पुत्र कहा जायगा (अर्थात् भविष्यमें यह सागर नामसे प्रसिद्ध होगा) और उन्हें अक्षय स्वर्गवास मिलेगा। कपिलजीने अपने नेत्रके तेजसे भस्म हुए सगर-पुत्रोंको भी अक्षयलोकोंकी प्राप्ति होनेका वर दिया ॥ २७-२८ ॥

समुद्रश्चार्घ्यमादाय ववन्दे तं महीपतिम् ।
सागरत्वं च लेभे स कर्मणा तेन तस्य वै ॥ २९ ॥

(उस समय) समुद्रने अर्घ्य लेकर उन राजा (सगर) को प्रणाम किया और सगरके इस कर्मके कारण समुद्रका सागर नाम पड़ गया ॥ २९ ॥

तं चाश्वमेधिकं सोऽश्वं समुद्रादुपलब्धवान् ।
आजहाराश्वमेधानां शतं स सुमहायशाः ।
पुत्राणां च सहस्राणि षष्टिस्तस्येति नः श्रुतम् ॥ ३० ॥

उन्होंने अश्वमेधयज्ञके घोड़ेको भी समुद्रसे प्राप्त किया। इस तरह उन महायशस्वी राजाने सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे—ऐसा सुना जाता है। इन महाराजके पुत्रोंकी संख्या साठ हजार थी ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि सगरोत्पत्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें सगरकी उत्पत्तिका वर्णनविषयक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४ ॥

* * *

पञ्चदशोऽध्यायः

सूर्यवंशका वर्णन

जनमेजय उवाच

सगरस्यात्मजा वीराः कथं जाता महात्मनः ।
विक्रान्ताः षष्टिसाहस्रा विधिना केन वा द्विज ॥ १ ॥

जनमेजयने कहा—द्विज! महात्मा सगरके साठ हजार वीर और पराक्रमी पुत्र किस प्रकार उत्पन्न हुए थे? ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच

द्वे भार्ये सगरस्यास्तां तपसा दग्धकिल्बिषे ।
ज्येष्ठा विदर्भदुहिता केशिनी नाम विश्रुता ॥ २ ॥

वैशम्पायनजीने उत्तर दिया—सगरकी दो रानियाँ थीं। तपसे उनके पाप नष्ट हो गये थे। उनमें बड़ी रानी विदर्भ-नरेशकी पुत्री थीं और केशिनी नामसे प्रसिद्ध थीं ॥ २ ॥

कनीयसी तु या तस्य पत्नी परमधर्मिणी ।
अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ ३ ॥

उन राजाकी जो छोटी पत्नी थी, वह बड़ी ही धर्मात्मा थी। वह अरिष्टनेमि (कश्यप)की पुत्री थी। उसके समान पृथिवीपर कोई भी दूसरी रूपवती स्त्री नहीं थी। ॥ ३ ॥

और्वस्ताभ्यां वरं प्रादात् तं निबोध जनाधिप ।
षष्टिं पुत्रसहस्राणि गृह्णात्वेका तपस्विनी ॥ ४ ॥
एकं वंशधरं त्वेका यथेष्टं वरयत्विति ।

जनाधिप! और्वने उन दोनोंको जो वर दिया था, उसे सुनो। (और्वने कहा था) दोनोंमेंसे कोई एक तपस्विनी रानी तो साठ हजार पुत्र माँग ले और एक वंश चलानेवाले एक ही पुत्रको माँगे। अब जिसे जो वर अच्छा लगता हो वह उस वरको माँग ले ॥ ४½ ॥

तत्रैका जगृहे पुत्राँल्लुब्धा शूरान् बहूंस्तथा ॥ ५ ॥
एकं वंशधरं त्वेका तथेत्याह च तां मुनिः ।
केशिन्यसूत सगरादसमञ्जसमात्मजम् ॥ ६ ॥

उनमेंसे एक पुत्रलोभिनी स्त्रीने तो बहुतसे शूरवीर पुत्रोंको माँग लिया तथा एकने एक ही वंशधर पुत्रको माँगा। तब मुनिने तथास्तु—ऐसा ही होगा, कहकर वरदान दे दिया। केशिनीके सगरसे असमञ्जस नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ५-६ ॥

राजा पञ्चजनो नाम बभूव सुमहाबलः ।
इतरा सुषुवे तुम्बीं बीजपूर्णामिति श्रुतिः ॥ ७ ॥

वह पञ्चजन नामसे प्रसिद्ध महाबलवान् राजा था। दूसरीने बीजोंसे भरी हुई एक तूँबी उत्पन्न की, यह बात प्रसिद्ध है ॥ ७ ॥

तत्र षष्टिसहस्राणि गर्भास्ते तिलसम्मिताः ।
सम्बभूवुर्यथाकालं ववृधुश्च यथाक्रमम् ॥ ८ ॥

उस तूँबीमें तिलके समान साठ हजार गर्भ थे, जो समय आनेपर उत्पन्न हुए और क्रमशः बढ़ने लगे ॥ ८ ॥

घृतपूर्णेषु कुम्भेषु तान् गर्भान् निदधे पिता ।
धात्रीश्चैकैकशः प्रादात् तावतीरेव पोषणे ॥ ९ ॥

पिताने उन गर्भोंको घृतसे भरे हुए घड़ोंमें डाल दिया और उनका पोषण करनेके लिये एक-एक घड़ेपर एक-एक करके उतनी ही धाइयोंको नियुक्त कर दिया ॥ ९ ॥

ततो दशसु मासेषु समुत्तस्थुर्यथासुखम् ।
कुमारास्ते यथाकालं सगरप्रीतिवर्धनाः ॥ १० ॥

दस महीने बीतनेपर सगरकी प्रीतिको बढ़ानेवाले बहुत-से बच्चे सुखपूर्वक समयानुसार उत्पन्न होने लगे ॥ १० ॥

षष्टिः पुत्रसहस्राणि तस्यैवमभवन् नृप ।
गर्भादलाबुमध्याद् वै जातानि पृथिवीपते ॥ ११ ॥

राजन्! इस प्रकार सगरके साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए थे और पृथिवीपते ! वे तूँबीके बीजोंकी तरह तूँबी (लौकी) के मध्यमें रखे हुए गर्भोंसे उत्पन्न हुए थे ॥ ११ ॥

तेषां नारायणं तेजः प्रविष्टानां महात्मनाम् ।
एकः पञ्चजनो नाम पुत्रो राजा बभूव ह ॥ १२ ॥

भगवान् नारायण (कपिलदेव) के तेजमें प्रविष्ट हुए राजकुमारोंमेंसे एक पञ्चजन (असमंजस) नामक राजपुत्र ही राजा हो पाया ॥ १२ ॥

सुतः पञ्चजनस्यासीदंशुमान् नाम वीर्यवान् ।
दिलीपस्तनयस्तस्य खट्वाङ्ग इति विश्रुतः ॥ १३ ॥

पञ्चजन (असमंजस) का पुत्र वीर्यवान् अंशुमान् हुआ। उसका पुत्र दिलीप हुआ, जो खट्वाङ्ग नामसे भी प्रसिद्ध है ॥ १३ ॥

येन स्वर्गादिहागत्य मुहूर्तं प्राप्य जीवितम् ।
त्रयोऽनुसंधिता लोका बुद्ध्या सत्येन चानघ ॥ १४ ॥

अनघ ! उसने मुहूर्त भरका (४८ मिनटका) जीवन पाकर स्वर्गसे इस मृत्युलोकमें आकर सूक्ष्म बुद्धिसे तथा सत्य (ब्रह्मभाव) के द्वारा तीनों लोकोंको तत्त्वतः जान लिया था ॥ १४ ॥

दिलीपस्य तु दायादो महाराजो भगीरथः ।
यः स गङ्गां सरिच्छ्रेष्ठामवातारयत प्रभुः ॥ १५ ॥

दिलीपके पुत्र महाराज भगीरथ हुए । उन प्रभुने नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गाजीको (स्वर्गसे भूमिपर) उतारा था ॥१५॥

कीर्तिमान् स महाभागः शक्रतुल्यपराक्रमः ।
समुद्रमानयच्चैनां दुहितृत्वेन कल्पयत् ।
तस्माद् भागीरथी गङ्गा कथ्यते वंशचिन्तकैः ॥ १६ ॥

इन्द्रके तुल्य पराक्रमी उन यशस्वी महापुरुषने गङ्गाजीको समुद्रतक पहुँचा दिया और उन्होंने गङ्गाजीको अपनी पुत्री बनाया; इसीलिये वंशका कीर्तन करनेवाले विद्वान् गङ्गाजीको भागीरथी (भगीरथकी पुत्री) कहते हैं ॥ १६ ॥

भगीरथसुतो राजा श्रुत इत्यभिविश्रुतः ।
नाभागस्तु श्रुतस्यासीत् पुत्रः परमधार्मिकः ॥ १७ ॥

भगीरथका पुत्र श्रुत नामसे प्रसिद्ध है । श्रुतका नाभाग नामक परमधार्मिक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १७ ॥

अम्बरीषस्तु नाभागिः सिन्धुद्वीपपिताभवत् ।
अयुताजित् तु दायादः सिन्धुद्वीपस्य वीर्यवान् ॥ १८ ॥

नाभागका पुत्र अम्बरीष हुआ । वह सिन्धुद्वीपका था । सिन्धुद्वीपके अयुताजित् नामक वीर्यवान् हुआ ॥ १८ ॥

अयुताजित्सुतस्त्वासीदृतुपर्णो महायशाः ।
दिव्याक्षहृदयज्ञो वै राजा नलसखो बली ॥

अयुताजित्के ऋतपर्णनामवाला महायशस्वी पुत्र हुआ । वह दिव्य अक्ष (द्यूत) विद्याका रहस्यवेत्ता, राजा सखा तथा बड़ा बली था ॥ १९ ॥

ऋतुपर्णसुतस्त्वासीदार्तुपर्णिर्महीपतिः ।
सुदासस्तस्य तनयो राजा त्विन्द्रसखोऽभवत् ॥

ऋतुपर्णका पुत्र राजा आर्तुपर्णि हुआ । उसका राजा सुदास हुआ, जो इन्द्रका मित्र था ॥ २० ॥

सुदासस्य सुतस्त्वासीत् सौदासो नाम पार्थिवः।
ख्यातः कल्माषपादो वै नाम्ना मित्रसहस्तथा ॥

सुदासके सौदास नामका पुत्र हुआ, जो राजा क पाद और मित्रसह नामसे भी प्रसिद्ध था ॥ २१ ॥

कल्माषपादस्य सुतः सर्वकर्मेति विश्रुतः ।
अनरण्यस्तु पुत्रोऽभूद् विश्रुतः सर्वकर्मणः ॥

कल्माषपादके सर्वकर्मा नामसे प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न और सर्वकर्माका पुत्र अनरण्य नामसे विख्यात हुआ ॥

अनरण्यसुतो निघ्नो निघ्नपुत्रौ बभूवतुः ।
अनमित्रो रघुश्चैव पार्थिवर्षभ सत्तमौ ॥

नृपश्रेष्ठ ! अनरण्यका पुत्र निघ्न हुआ, निघ्नके मित्र और रघु नामक दो श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २३ ॥

अनमित्रस्य धर्मात्मा विद्वान् दुलिदुहोऽभवत् ।
दिलीपस्तनयस्तस्य रामप्रप्रपितामहः ॥

अनमित्रके दुलिदुह नामवाला धर्मात्मा और विद्वा उत्पन्न हुआ । दुलिदुहके पुत्र दिलीप हुए, जो श्रीरामच के वृद्ध प्रपितामह थे ॥ २४ ॥

दीर्घबाहुर्दिलीपस्य रघुर्नाम्नाभवत् सुतः ।
अयोध्यायां महाराजो रघुश्चासीन्महाबलः ॥

दिलीपके रघुनामक महाबाहु पुत्र उत्पन्न हुए । अयोध्यामें महाबली सम्राट् हुए ॥ २५ ॥

अजस्तु रघुतो जज्ञे अजाद् दशरथोऽभवत् ।
रामो दशरथाज्जज्ञे धर्मात्मा सुमहायशाः ॥

रघुसे अज उत्पन्न हुए । अजसे दशरथ हुए दशरथसे धर्मात्मा एवं महायशस्वी श्रीरामचन्द्र हुए ॥ २६ ॥

ामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुतः ।
तिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चात्मजः ॥ २७ ॥

श्रीरामके कुश नामसे प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ। कुशके तिथि नामक पुत्र हुआ और अतिथिके पुत्रका नाम निषध ा ॥ २७ ॥

ैषधस्य नलः पुत्रो नभः पुत्रो नलस्य तु ।
भस्य पुण्डरीकस्तु क्षेमधन्वा ततः स्मृतः ॥ २८ ॥

निषधका पुत्र नल; नलका पुत्र नभ, नभका पुत्र ण्डरीक और पुण्डरीकका पुत्र क्षेमधन्वा हुआ ॥ २८ ॥

ेमधन्वसुतस्त्वासीद् देवानीकः प्रतापवान् ।
ासीदहीनगुर्नाम देवानीकसुतः प्रभुः ॥ २९ ॥

क्षेमधन्वाका पुत्र प्रतापी देवानीक हुआ, देवानीकके हीनगु नामक प्रभावशाली पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २९ ॥

हीनगोस्तु दायादः सुधन्वा नाम पार्थिवः ।
धन्वनः सुतश्चैव ततो जज्ञेऽनलो नृपः ॥ ३० ॥

अहीनगुका पुत्र राजा सुधन्वा हुआ और सुधन्वाका त्र अनल नामक राजा हुआ ॥ ३० ॥

क्थो नाम स धर्मात्मानलपुत्रो बभूव ह ।
ज्रनाभः सुतस्तस्य उक्थस्य च महात्मनः ॥ ३१ ॥

अनलके उक्थ नामक धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुआ और महात्मा उक्थके पुत्रका नाम वज्रनाभ हुआ ॥ ३१ ॥

ङ्खस्तस्य सुतो विद्वान् व्युषिताश्व इति श्रुतः ।
पस्तस्य सुतो विद्वानर्थसिद्धिस्तु तत्सुतः ॥ ३२ ॥

वज्रनाभके शंख नामक विद्वान् पुत्र उत्पन्न हुआ, जो षिताश्वके नामसे भी प्रसिद्ध है। शंखका पुत्र पुष्प और का पुत्र विद्वान् अर्थसिद्धि था ॥ ३२ ॥

सुदर्शनः सुतस्तस्य अग्निवर्णः सुदर्शनात् ।
अग्निवर्णस्य शीघ्रस्तु शीघ्रस्य तु मरुः सुतः ॥ ३३ ॥

अर्थसिद्धिका पुत्र सुदर्शन, सुदर्शनसे अग्निवर्ण, अग्निवर्णका पुत्र शीघ्र और शीघ्रके मरु नामका पुत्र हुआ ॥

मरुस्तु योगमास्थाय कलापद्वीपमास्थितः ।
तस्यासीद् विश्रुतवतः पुत्रो राजा बृहद्बलः ॥ ३४ ॥

मरु योगका आश्रय लेकर कलापद्वीपमें रहने लगे। परम प्रसिद्ध मरुके पुत्र राजा बृहद्बल हुए ॥ ३४ ॥

नलौ द्वावेव विख्यातौ पुराणे भरतर्षभ ।
वीरसेनात्मजश्चैव यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्वहः ॥ ३५ ॥

भरतर्षभ ! पुराणमें नल नामसे दो ही राजा प्रसिद्ध हैं— एक वीरसेन-पुत्र नल और दूसरा इक्ष्वाकु-कुलोत्पन्न (निषध-पुत्र) नल ॥ ३५ ॥

इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः प्राधान्येनेह कीर्तिताः ।
एते विवस्वतो वंशे राजानो भूरितेजसः ॥ ३६ ॥

विवस्वान् (सूर्य) के वंशमें ये परम तेजस्वी राजा उत्पन्न हुए हैं। यहाँ इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए मुख्य-मुख्य राजाओंका वर्णन किया गया है ॥ ३६ ॥

पठन् सम्यगिमां सृष्टिमादित्यस्य विवस्वतः ।
श्राद्धदेवस्य देवस्य प्रजानां पुष्टिदस्य च ॥ ३७ ॥
प्रजावानेति सायुज्यमादित्यस्य विवस्वतः ।
विपाप्मा विरजाश्चैव आयुष्मांश्च भवत्युत ॥ ३८ ॥

जो मनुष्य अदितिनन्दन भगवान् सूर्यकी तथा प्रजाओंके पोषक देवता श्राद्धदेवकी इस सृष्टि-परम्पराका भलीभाँति पाठ करता है, वह संतानवान् होता और निष्पाप, रजोगुण-रहित एवं दीर्घायु हो अन्तमें भगवान् सूर्यका सायुज्य प्राप्त कर लेता है ॥ ३७-३८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि आदित्यस्य वंशानुकीर्तनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें सूर्यवंशका वर्णनविषयक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५ ॥

* * *

षोडशोऽध्यायः

श्राद्धकल्प—जनमेजयद्वारा पिताका श्राद्ध तथा पितृस्वरूपनिर्णयसम्बन्धी प्रश्न, शन्तनुका अपने श्राद्धमें स्वयं हाथ बढ़ाकर भीष्मसे पिण्ड माँगना

जनमेजय उवाच

वै श्राद्धदेवत्वमादित्यस्य विवस्वतः ।
ुमिच्छामि विप्राग्र्य श्राद्धस्य च परं विधिम् ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—द्विजश्रेष्ठ ! अदितिनन्दन भगवान् सूर्यके पुत्र यम श्राद्धदेव क्यों कहलाते हैं ? और श्राद्धकी उत्तम विधि क्या है ? इसे मैं सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥

पितॄणामादिसर्गं च क एते पितरः स्मृताः ।
एवं च श्रुतमस्माभिः कथ्यमानं द्विजातिभिः ॥ २ ॥

स्वर्गस्थाः पितरो ये च देवानामपि देवताः ।
इति वेदविदः प्राहुरेतदिच्छामि वेदितुम् ॥ ३ ॥

पितरोंकी आदि सृष्टि कैसे हुई ? ये पितर कौन हैं ? हमने ब्राह्मणोंके मुखसे यह बात सुनी है कि जो पितर स्वर्गमें स्थित हैं, वे देवताओंके भी देवता हैं । वेदके जाननेवाले भी ऐसा ही कहते हैं । अतः मैं इस बातको भलीभाँति जानना चाहता हूँ ॥ २-३ ॥

ये च तेषां गणाः प्रोक्ता यच्च तेषां बलं परम् ।
यथा च कृतमस्माभिः श्राद्धं प्रीणाति वै पितॄन् ॥ ४ ॥
प्रीताश्च पितरो ये स्म श्रेयसा योजयन्ति हि ।
एवं वेदितुमिच्छामि पितॄणां सर्गमुत्तमम् ॥ ५ ॥

उनके जो गण कहे गये हैं, उनका जो परम बल है और हमारा किया हुआ श्राद्ध जिस प्रकार उन्हें तृप्त करता है तथा जो पितर प्रसन्न होकर मनुष्योंका कल्याण करते हैं उन सबको एवं उत्तम पितृसर्गको मैं जानना चाहता हूँ ॥ ४-५ ॥

वैशम्पायन उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि पितॄणां सर्गमुत्तमम् ।
यथा च कृतमस्माभिः श्राद्धं प्रीणाति वै पितॄन् ।
प्रीताश्च पितरो ये स्म श्रेयसा योजयन्ति हि ॥ ६ ॥
मार्कण्डेयेन कथितं भीष्माय परिपृच्छते ।
अपृच्छद् धर्मराजो हि शरतल्पगतं पुरा ।
एवमेव पुरा प्रश्नं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ७ ॥
तत् तेऽनुपूर्व्या वक्ष्यामि भीष्मेणोदाहृतं यथा ।
गीतं सनत्कुमारेण मार्कण्डेयाय पृच्छते ॥ ८ ॥

वैशम्पायनजी बोले—बहुत अच्छा, मैं तुमसे पितरोंके उत्तम सर्गका वर्णन करूँगा, हमारा किया हुआ श्राद्ध जिस प्रकार पितरोंको तृप्त करता है तथा जो पितर श्राद्धसे संतुष्ट होकर हमें कल्याणके भागी बनाते हैं, उनका परिचय दूँगा । पूर्वकालमें भीष्मके पूछनेपर मार्कण्डेयजीने उनसे इस विषयका वर्णन किया था । फिर महाभारतकालमें शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीसे धर्मराज युधिष्ठिरने भी पहले ऐसा ही प्रश्न किया था, जैसा इस समय तुम मुझसे पूछ रहे हो । भीष्मजीने युधिष्ठिरको जिस प्रकार उत्तर दिया था, वह सब मैं तुम्हें क्रमशः बताऊँगा । पहले मार्कण्डेयजीके पूछनेपर सनत्कुमारजीने जो उपदेश दिया था, वही युधिष्ठिर और भीष्मके संवादमें कहा गया है ॥ ६–८ ॥

युधिष्ठिर उवाच

पुष्टिकामेन धर्मज्ञ कथं पुष्टिरवाप्यते ।
एतद् वै श्रोतुमिच्छामि किं कुर्वाणो न शोचति ॥ ९ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—धर्मज्ञ ! पुष्टि चाहने पुरुष किस प्रकार पुष्टि पा सकता है और कैसा कर्म से मनुष्यको शोक नहीं करना पड़ता ? इसे मैं चाहता हूँ ॥ ९ ॥

भीष्म उवाच

श्राद्धैः प्रीणाति हि पितॄन् सर्वकामफलैस्तु यः ।
तत्परः प्रयतः श्राद्धी प्रेत्य चेह च मोदते ॥

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! जो समस्त कामना पूर्ण करनेवाले श्राद्धोंद्वारा तत्पर होकर पितरोंको तृप्त है, वह पितरोंकी प्रीतिमें लीन रहनेवाला श्राद्धकर्ता संसारमें आनन्दभागी होता है और मरनेके बाद पर सुख भोगता है ॥ १० ॥

पितरो धर्मकामस्य प्रजाकामस्य च प्रजाम् ।
पुष्टिकामस्य पुष्टिं च प्रयच्छन्ति युधिष्ठिर ॥

युधिष्ठिर ! पितर धर्म चाहनेवालेको धर्म, संतान वालेको संतान और पुष्टि चाहनेवालेको पुष्टि भी करते हैं ॥ ११ ॥

युधिष्ठिर उवाच

वर्तन्ते पितरः स्वर्गे केषांचिन्नरके पुनः ।
प्राणिनां नियतं वापि कर्मजं फलमुच्यते ॥

युधिष्ठिरने पूछा—किन्हींके पितर स्वर्गमें और किन्हींके नरकमें; क्योंकि यह बात प्रसिद्ध प्राणियोंको (अपने) कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाला फल भोगना पड़ता है ॥ १२ ॥

श्राद्धानि चैव कुर्वन्ति फलकामाः सदा नराः ।
अभिसंधाय पितरं पितुश्च पितरं तथा ॥
पितुः पितामहं चैव त्रिषु पिण्डेषु नित्यशः ।
तानि श्राद्धानि दत्तानि कथं गच्छन्ति वै पितॄन् ॥

फल चाहनेवाले पुरुष सदा पिता, पितामह प्रपितामहको लक्ष्य करके श्राद्ध करते हैं । सर्वदा तीन पिण्डोंमें ही दिये गये श्राद्ध पितरोंको कैसे होते हैं ? ॥ १३-१४ ॥

कथं च शक्तास्ते दातुं नरकस्थाः फलं पुनः ।
के वा ते पितरोऽन्ये स्म कान् यजामो वयं पुनः ॥

और वे पितर (जब स्वयं) नरकमें निवास कर तब वे फल भी कैसे दे सकते हैं ? अथवा यदि वे पितर भिन्न हैं तो कौन हैं—उनका क्या परिचय है ? हम पितरोंकी पूजा करें ? ॥ १५ ॥

देवा अपि पितॄन् स्वर्गे यजन्तीति च नः श्रुतम् ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण महाद्युते ॥

हमने सुना है कि स्वर्गमें (रहनेवाले) देवता भी पितरोंका पूजन करते हैं। महाद्युते! इन सब बातोंको मैं विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥ १६ ॥

स भवान् कथयत्वेतां कथाममितबुद्धिमान् ।
यथा दत्तं पितॄणां वै तारणायेह कल्पते ॥ १७ ॥

पितरोंके निमित्त किया हुआ श्राद्ध किस प्रकार प्राणियोंका उद्धार करता है ? इस कथाका आप वर्णन कीजिये, क्योंकि आपकी बुद्धि अथाह है ॥ १७ ॥

भीष्म उवाच

अत्र ते कीर्तयिष्यामि यथाश्रुतमरिंदम ।
ये च ते पितरोऽन्ये स्म यान् यजामो वयं पुनः ।
पित्रा मम पुरा गीतं लोकान्तरगतेन वै ॥ १८ ॥

भीष्मजीने कहा—शत्रुमर्दन ! हमलोग जिनकी पूजा करते हैं, इस विषयको जैसा मैंने सुना है, वह सब तुमसे कहूँगा । जो अन्य (पिता-पितामह आदिसे भिन्न) पितर हैं, इस विषयमें मेरे परलोकवासी पिताने भी गाथा गायी है ॥

श्राद्धकाले मम पितुर्मया पिण्डः समुद्यतः ।
तं पिता मम हस्तेन भित्त्वा भूमिमयाचत ॥ १९ ॥

श्राद्धके समय जब मैं अपने पिताको पिण्ड देने लगा, तब उनका हाथ भूमिको फाड़कर निकल आया और वे उस हाथमें ही मुझसे पिण्ड माँगने लगे ॥ १९ ॥

हस्ताभरणपूर्णेन केयूराभरणेन च ।
रक्ताङ्गुलितलेनाथ यथा दृष्टः पुरा मया ॥ २० ॥

उनका बाजूबंद आदि हाथके आभूषणोंसे विभूषित और लाल-लाल अङ्गुलियोंवाला वह हाथ वैसा ही था जैसा मैंने पहले (जीवित अवस्थामें) देखा था ॥ २० ॥

नैष कल्पे विधिर्दृष्ट इति संचिन्त्य चाप्यहम् ।
कुशेष्वेव ततः पिण्डं दत्तवानविचारयन् ॥ २१ ॥

उस समय मैंने विचारा कि कल्पसूत्रोंमें तो मैंने ऐसी विधि कहीं नहीं देखी है, यह विचारकर मैंने बिना कुछ परवा किये ही पिण्डको कुशाओंपर ही रख दिया ॥ २१ ॥

ततः पिता मे सुप्रीतो वाचा मधुरया तदा ।
उवाच भरतश्रेष्ठ प्रीयमाणो मयानघ ॥ २२ ॥

निष्पाप भरतश्रेष्ठ ! उस समय मेरे द्वारा संतुष्ट किये गये पिता परम प्रसन्न हुए और मधुर वाणीमें मुझसे कहने लगे ॥ २२ ॥'

त्वया दायादवानस्मि कृतार्थोऽमुत्र चेह च ।
सत्पुत्रेण त्वया पुत्र धर्मज्ञेन विपश्चिता ॥ २३ ॥

'पुत्र ! तू धर्मज्ञ और विद्वान् है। तुझ-सरीखा सुपुत्र होनेसे मुझे पुत्रवान् होनेका फल मिल गया तथा मैं इस लोक और परलोक—दोनोंमें कृतार्थ हो गया ॥ २३ ॥

मया तु तव जिज्ञासा प्रयुक्तैषा दृढव्रत ।
व्यवस्थानं तु धर्मेषु कर्तुं लोकस्य चानघ ॥ २४ ॥

'दृढ़तापूर्वक ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करनेवाले निष्पाप भीष्म ! धर्ममें लोगोंकी आस्था दृढ़ करनेके लिये ही मैंने यह तेरी परीक्षा ली है ॥ २४ ॥

यथा चतुर्थं धर्मस्य रक्षिता लभते फलम् ।
पापस्य हि तथा मूढः फलं प्राप्नोत्यरक्षिता ॥ २५ ॥

'धर्मकी रक्षा करनेवालेको जैसे धर्मका चौथाई फल मिलता है, इसी प्रकार धर्मकी रक्षा न करनेवाला मूढ़ मनुष्य पापके चौथाई फलको पाता है ॥ २५ ॥

प्रमाणं यद्धि कुरुते धर्माचारेषु पार्थिवः ।
प्रजास्तदनुवर्तन्ते प्रमाणाचरितं सदा ॥ २६ ॥

'धर्मविषयक आचारमें राजा जिस बातको प्रामाणिक बता देता है, प्रजा उस प्रमाणभूत राजाके आचरणका अनुकरण करती है ॥ २६ ॥

त्वया च भरतश्रेष्ठ वेदधर्माश्च शाश्वताः ।
कृताः प्रमाणं प्रीतिश्च मम निर्वर्तितातुला ॥ २७ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! तूने सनातन वैदिक धर्मको ही प्रमाण माना है, इसलिये मैं तुमपर बहुत ही प्रसन्न हुआ हूँ ॥ २७ ॥

तस्मात् तवाहं सुप्रीतः प्रीत्या च वरमुत्तमम् ।
ददामि तं प्रतीच्छ त्वं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥ २८ ॥

'अब इस प्रसन्नताके कारण मैं तुम्हें श्रेष्ठ वर देना चाहता हूँ । तू तीनों लोकोंमें दुर्लभ वरको ग्रहण कर ॥ २८ ॥

न ते प्रभविता मृत्युर्यावज्जीवितुमिच्छसि ।
त्वत्तोऽभ्यनुज्ञां सम्प्राप्य मृत्युः प्रभविता तव ॥ २९ ॥

'तू जबतक जीवित रहना चाहेगा, तबतक तुझपर मृत्युका प्रभाव न होगा । तेरी आज्ञा पानेपर ही तुझपर मृत्यु प्रभाव डाल सकेगी ॥ २९ ॥

किं वा ते प्रार्थितं भूयो ददामि वरमुत्तमम् ।
तद् ब्रूहि भरतश्रेष्ठ यत् ते मनसि वर्तते ॥ ३० ॥

'भरतश्रेष्ठ ! और जो बात तेरे मनमें हो उसे बता, मैं तुझे तेरी प्रार्थनाके अनुसार और कौन-सा उत्तम वर दूँ ?' ॥ ३० ॥

इत्युक्तवन्तं तमहमभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
अब्रवं कृतकृत्योऽहं प्रसन्ने त्वयि सत्तम ॥ ३१ ॥

पिताजीके इस प्रकार कहनेपर मैंने उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा—'श्रेष्ठतम पुरुष ! मैं आपकी प्रसन्नतासे ही कृतकृत्य हो गया ॥ ३१ ॥

यदि त्वनुग्रहं भूयस्त्वत्तोऽर्हामि महाद्युते ।
प्रश्नमिच्छामि वै किंचिद् व्याहृतं भवता स्वयम् ॥ ३२ ॥

'महाद्युते ! यदि मैं इससे भी अधिक आपके अनुग्रहका पात्र होऊँ, तो मैं आपके मुखसे एक प्रश्नका उत्तर सुनना चाहता हूँ' ॥ ३२ ॥

स मामुवाच धर्मात्मा ब्रूहि भीष्म यदिच्छसि ।
छेत्तास्मि संशयं सर्वं यन्मां पृच्छसि भारत ॥ ३३ ॥

तब उन धर्मात्माने मुझसे कहा—'भीष्म ! बता, तू मुझसे क्या पूछना चाहता है ? भारत ! तू मुझसे जो कुछ पूछेगा, तेरे उस संदेहको मैं दूर करूँगा' ॥ ३३ ॥

अपृच्छं तमहं तातं तत्रान्तर्हितमेव च ।
गतं सुकृतिनां लोकं कौतूहलसमन्वितः ॥ ३४ ॥

तब मैंने वहाँ अदृश्य होकर खड़े और पुण्यात्माओंके लोकोंमें पहुँचे हुए अपने पितासे कौतूहलमें भरकर पूछा ॥ ३४ ॥

भीष्म उवाच

श्रूयन्ते पितरो देवा देवानामपि देवताः ।
देवाश्च पितरोऽन्ये वा कान् यजामो वयं पुनः ॥ ३५ ॥

भीष्मजीने पूछा—पिताजी ! पितृगण देवताओंके भी देवता सुने जाते हैं । देवता ही पितर हैं या दोनों भिन्न-भिन्न हैं ? हम किनकी पूजा करें ? * ॥ ३५ ॥

कथं च दत्तमस्माभिः श्राद्धं प्रीणात्यथो पितॄन् ।
लोकान्तरगतांस्तात किन्नु श्राद्धस्य वा फलम् ॥ ३६ ॥

तात ! दूसरे लोकोंमें गये हुए पितरोंको हमारा दिया हुआ श्राद्ध कैसे तृप्त करता है ? और श्राद्धका क्या फल है ? ॥ ३६ ॥

कान् यजन्ति स्म लोका वै सदेवनरदानवाः ।
सयक्षोरगगन्धर्वाः सकिन्नरमहोरगाः ॥ ३७ ॥

देवता, दानव और मनुष्य तथा यक्ष, नाग, गन्धर्व, किन्नर और महासर्प आदि किसकी पूजा करते हैं ? ॥ ३७ ॥

अत्र मे संशयस्तीव्रः कौतूहलमतीव च ।
तद् ब्रूहि मम धर्मज्ञ सर्वज्ञो ह्यसि मे मतः ।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य भीष्मस्योवाच वै पिता ॥ ३८ ॥

धर्मज्ञ ! इस विषयमें मुझे बड़ा कौतूहल और संदेह है; अतः आप इसका मुझसे वर्णन कीजिये, क्योंकि मेरे विचारसे आप सर्वज्ञ हैं । भीष्मके इस वचनको सुनकर पिता (शन्तनु) बोले ॥ ३८ ॥

शन्तनुरुवाच

संक्षेपेणैव ते वक्ष्ये यन्मां पृच्छसि भारत ।
पितरश्च यथोद्भूताः फलं दत्तस्य चानघ ॥ ३९ ॥
पितॄणां कारणं श्राद्धे शृणु सर्वं समाहितः ।
आदिदेवसुतास्तात पितरो दिवि देवताः ॥ ४

शन्तनुजीने कहा—भारत ! जो बात तू मुझसे पू है, उसे मैं संक्षेपसे कहता हूँ । निष्पाप ! पितर जिस प्र उत्पन्न हुए हैं और उनको (अन्न आदि) देनेसे जो मिलता है, श्राद्धमें पितरोंके कारणको अर्थात् जिनके ये हैं, उनको तू सावधान होकर सुन । तात ! स्वर्गमें स्थित देवता आदिदेव ब्रह्माजीके पुत्र हैं ॥ ३९-४० ॥

तान् यजन्ति स्म वै लोकाः सदेवासुरमानुषाः ।
सयक्षोरगगन्धर्वाः सकिन्नरमहोरगाः ॥ ४

देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष, नाग, गन्धर्व, कि और महासर्प आदि उनकी ही पूजा करते हैं ॥ ४१ ॥

आप्यायिताश्च ते श्राद्धे पुनराप्याययन्ति च ।
जगत् सदेवगन्धर्वमिति ब्रह्मानुशासनम् ॥ ४

वे श्राद्धोंमें तृप्त किये जानेपर देवताओं और गन्ध सहित जगत्को तृप्त करते हैं—यह वेद (अथवा ब्रह्मा का अनुशासन है ॥ ४२ ॥

तान् यजस्व महाभाग श्राद्धैरग्र्यैरतन्द्रितः ।
ते ते श्रेयो विधास्यन्ति सर्वकामफलप्रदाः ॥ ४

महाभाग ! तू आलस्यरहित होकर श्रेष्ठ श्राद्धोंद्वारा पितरोंका यजन कर, तब वे सब कामनाओंका फल देने पितर तेरा कल्याण करेंगे ॥ ४३ ॥

त्वया चाराध्यमानास्ते नामगोत्रादिकीर्तनैः ।
अस्मानाप्याययिष्यन्ति स्वर्गस्थानपि भारत ॥ ४

भारत ! यदि तू नाम-गोत्र आदिका उच्चारण उनकी आराधना करेगा तो वे पितर हमें और हमारे स्व पितरोंको भी तृप्त करेंगे ॥ ४४ ॥

मार्कण्डेयस्तु ते शेषमेतत् सर्वं प्रवक्ष्यति ।
एष वै पितृभक्तश्च विदितात्मा च भारत ॥ ४

और बाकी सब बातोंको मार्कण्डेयजी तुझसे कहें भारत ! वे पितृ-भक्त और आत्मज्ञानसे परिपूर्ण हैं ॥ ४५

उपस्थितश्च श्राद्धेऽद्य ममैवानुग्रहाय वै ।
एनं पृच्छ महाभागमित्युक्त्वान्तरधीयत ॥ ४

आज ये मेरे ऊपर अनुग्रह करनेके लिये ही आ आये हैं, अतः इन महाभाग्यवान् मार्कण्डेयजीसे ही तू प्रश्नोंको पूछ । इतना कहकर शन्तनुजी अन्तर्धान हो गये

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि श्राद्धकल्पप्रसङ्गो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें श्राद्धकल्प-विषयक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥

◆

---

* अर्थात् 'कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोकः' इस श्रुतिमें कहा है कि कर्मसे पितृलोक मिलता है और विद्यासे देवलोक। ब्रह्म नीचेके लोक पितृलोक कहलाते हैं और देवलोक पदसे ब्रह्मलोक समझा जाता है । क्रमशः पितृयान और देवयान दोनोंमें ले जानेवाले हैं । स्वर्गलोकमें रहनेवाले देवताओंके लोकसे ऊपरके तीन लोकोंमें पितर रहते हैं । इससे उनकी भिन्नता सिद्ध होती है । साथ ही पितरः पितरो देवताः' इस प्रकार देवता और पितरोंका अभेद भी सुननेमें आता है । फिर मरे हुए पिता-पितामहादि भी पितर हैं। तरह तीन प्रकारके पितर होनेपर हम किनका पूजन करें ?

सप्तदशोऽध्यायः

पितृकल्प—भीष्म-मार्कण्डेय-संवाद और मार्कण्डेयजीके साथ सनत्कुमारजीकी बातचीत

भीष्म उवाच

ततोऽहं तस्य वचनान्मार्कण्डेयं समाहितः ।
प्रश्नं तमेवान्वपृच्छं यन्मे पृष्टः पुरा पिता ॥ १ ॥

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! तब मैंने पिताजीके कथनानुसार एकाग्रचित्त हो मार्कण्डेयजीसे फिर वही प्रश्न पूछा, जिसके विषयमें पहले पिताजीसे जिज्ञासा की थी ॥ १ ॥

स मामुवाच धर्मात्मा मार्कण्डेयो महातपाः ।
भीष्म वक्ष्यामि कार्त्स्न्येन शृणुष्व प्रयतोऽनघ ॥ २ ॥

तब महातपस्वी धर्मात्मा मार्कण्डेयजी मुझसे कहने लगे—'निष्पाप भीष्म ! मैं तुझसे सब बात कहता हूँ, तू सावधान होकर सुन ॥ २ ॥

अहं पितृप्रसादाद् वै दीर्घायुष्ट्वमवाप्तवान् ।
पितृभक्त्यैव लब्धं च प्राग्लोके परमं यशः ॥ ३ ॥

'प्राचीन कालमें मैंने पितृ-प्रसादसे ही दीर्घायु प्राप्त की थी और पितृ-भक्तिसे ही इस संसारमें बड़ा भारी यश पाया है ॥ ३ ॥

सोऽहं युगस्य पर्यन्ते बहुवर्षसहस्रिके ।
अधिरुह्य गिरिं मेरुं तपोऽतप्यं सुदुश्चरम् ॥ ४ ॥

'एक समय मैं मेरुपर्वतके ऊपर जाकर अनेक सहस्र वर्षोंमें पूर्ण होनेवाले युगान्त कालतक घोर तप करता रहा ॥ ४ ॥

ततः कदाचित् पश्यामि दिव्यं प्रज्वाल्य तेजसा ।
विमानं महदायान्तमुत्तरेण गिरेस्तदा ॥ ५ ॥

'इसी बीच मैंने एक समय पर्वतके उत्तरकी ओरसे एक बड़े भारी विमानको आते हुए देखा, वह अपने तेजसे (सम्पूर्ण) आकाशको प्रकाशित कर रहा था ॥ ५ ॥

तस्मिन् विमाने पर्यङ्के ज्वलितादित्यसंनिभम् ।
अपश्यं तत्र चैवाहं शयानं दीप्ततेजसम् ॥ ६ ॥
अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषमग्नावग्निमिवाहितम् ।
सोऽहं तस्मै नमस्कृत्य प्रणम्य शिरसा विभुम् ॥ ७ ॥
संनिविष्टं विमानस्थं पाद्यार्घ्याभ्यामपूजयम् ।
अपृच्छं चैव दुर्धर्षं विद्याम त्वां कथं विभो ॥ ८ ॥

'उस विमानके सिंहासनपर मैंने चमकते हुए सूर्यके समान दीप्त तेजवाले तथा अग्निमें स्थापित किये हुए अग्निके समान अङ्गुष्ठमात्र पुरुषको लेटे हुए देखा। मैंने उन विभुको सिर झुकाकर प्रणाम किया और विमानमें विराजमान उन दुर्धर्ष पुरुषकी पाद्य और अर्घ्यसे पूजाकर उनसे पूछा—'विभो ! हम आपको कैसे जानें कि आप कौन हैं ? ॥ ६—८ ॥

तपोवीर्यात् समुत्पन्नं नारायण गुणात्मकम् ।
दैवतं ह्यसि देवानामिति मे वर्तते मतिः ॥ ९ ॥

'नारायण ! यद्यपि आपका यह स्वरूप नारायणके गुण शुद्ध सत्त्वसे निर्मित तथा तपके प्रभावसे प्रकट हुआ है, मेरा विचार है कि आप देवताओंके भी देवता हैं' ॥ ९ ॥

स मामुवाच धर्मात्मा स्मयमान इवानघ ।
न ते तपः सुचरितं येन मां नावबुध्यसे ॥ १० ॥

'तब वे धर्मात्मा मुसकराकर कहने लगे—'निष्पाप ! तुमने (अभी) भली प्रकार तप नहीं किया है, इस कारण तुम मुझे पहचान न सके' ॥ १० ॥

क्षणेनैव प्रमाणं स बिभ्रदन्यदनुत्तमम् ।
रूपेण न मया कश्चिद् दृष्टपूर्वः पुमान् क्वचित् ॥ ११ ॥

'क्षणभरमें ही उन्होंने दूसरे उत्तम स्वरूपको धारण कर लिया। ऐसे रूपवाला दूसरा कोई पुरुष मैंने पहले कभी नहीं देखा था' ॥ ११ ॥

सनत्कुमार उवाच

विद्धि मां ब्रह्मणः पुत्रं मानसं पूर्वजं विभोः ।
तपोवीर्यसमुत्पन्नं नारायणगुणात्मकम् ॥ १२ ॥

सनत्कुमारजी बोले—मुने ! तुम मुझे विभु ब्रह्माजीका ज्येष्ठ मानस पुत्र जानो। मैं उनके तपके प्रभावसे उत्पन्न हुआ हूँ और मेरा शरीर नारायणके गुण—शुद्ध सत्त्वसे भरा हुआ है ॥ १२ ॥

सनत्कुमार इति यः श्रुतो देवेषु वै पुरा ।
सोऽस्मि भार्गव भद्रं ते कं कामं करवाणि ते ॥ १३ ॥

प्राचीन कालसे ही देवताओंमें जो सनत्कुमार प्रसिद्ध हैं, मैं वही हूँ। भार्गव ! तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुम्हारी किस कामनाको पूर्ण करूँ ? ॥ १३ ॥

ये त्वन्ये ब्रह्मणः पुत्रा यवीयांसस्तु ते मम ।
भ्रातरः सप्त दुर्धर्षास्तेषां वंशाः प्रतिष्ठिताः ॥ १४ ॥

ब्रह्माजीके जो दूसरे पुत्र हैं, वे मेरे छोटे भाई हैं। वे मेरे सात भाई परम दुर्धर्ष हैं, उनके वंश प्रतिष्ठित हैं ॥ १४ ॥

क्रतुर्वसिष्ठः पुलहः पुलस्त्योऽत्रिस्तथाङ्गिराः ।
मरीचिस्तु तथा धीमान् देवगन्धर्वसेविताः ।
त्रीँल्लोकान् धारयन्तीमान् देवगन्धर्वपूजिताः ॥ १५ ॥

(उनके नाम इस प्रकार हैं—) क्रतु, वसिष्ठ, पुलह, पुलस्त्य, अत्रि, अङ्गिरा और बुद्धिमान् मरीचि—इन सबकी देवता और गन्धर्व सेवा करते हैं। ये देवता और गन्धर्वोंसे पूजित ऋषि तीनों लोकोंको (अपने तपसे) धारण किये हुए हैं ॥ १५ ॥

वयं तु यतिधर्माणः संयोज्यात्मानमात्मनि ।
प्रजाधर्मं च कामं च व्यपहाय महामुने ॥ १६ ॥

महामुने ! हम (सनत्कुमार, सनक आदि) तो अपने आत्माको आत्मामें लीनकर प्रजा (उत्पन्न करने) के धर्म और कामको दूर करके यतिधर्मका पालन करनेवाले हैं॥ १६ ॥

यथोत्पन्नस्तथैवाहं कुमार इति विद्धि माम्।
तस्मात् सनत्कुमारेति नामैतन्मे प्रतिष्ठितम् ॥ १७ ॥

मैं जैसे उत्पन्न हुआ हूँ, वैसा ही कुमार हूँ। अर्थात् बालकके समान राग-द्वेष आदिसे शून्य हूँ; अतः तुम मुझे कुमार जानो । इसीलिये मेरा नाम सनत्कुमार* प्रसिद्ध है॥ १७॥

मद्भक्त्या ते तपश्चीर्णं मम दर्शनकाङ्क्षया।
एष दृष्टोऽस्मि भवता कं कामं करवाणि ते ॥ १८ ॥

तुमने मेरा दर्शन करनेकी अभिलाषासे भक्ति (श्रद्धा) पूर्वक तपस्या की है, अतः मैं तुम्हारे सामने प्रकट हुआ हूँ। बताओ ! अब मैं तुम्हारी किस इच्छाको पूर्ण करूँ ? ॥ १८॥

इत्युक्तवन्तं तमहं प्रत्यवोचं सनातनम्।
अनुज्ञातो भगवता प्रीयमाणेन भारत ॥ १९ ॥

भारत ! वह सनातन कुमार सनत्कुमार जब इस प्रकार कह चुके और जब प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे प्रश्न करनेकी आज्ञा दे दी, तब मैंने उनसे वार्तालाप किया था ॥ १९ ॥

ततोऽहमेनमर्थं वै तमपृच्छं सनातनम्।
पृष्टः पितॄणां सर्गं च फलं श्राद्धस्य चानघ ॥ २० ॥
चिच्छेद संशयं भीष्म स तु देवेश्वरो मम।
स मामुवाच धर्मात्मा कथान्ते बहुवार्षिके।
रमे त्वयाहं विप्रर्षे शृणु सर्वं यथातथम् ॥ २१ ॥

निष्पाप भीष्म ! तब मैंने उन सनातन ऋषिसे पितरोंकी उत्पत्ति और श्राद्धके फल-सम्बन्धी विषयको लेकर ही प्रश्न किया। मेरे पूछनेपर उन देवेश्वरने मेरे संदेहको दूर कर दिया । बहुत कालसे आरम्भ की हुई कथाके अन्तमें उन धर्मात्माने मुझसे कहा—‘विप्रर्षे ! मैं तुम्हारे प्रश्नसे संतुष्ट हूँ । तुम इन सब प्रश्नोंका उत्तर यथार्थ रीतिसे सुनो ॥ २०-२१ ॥

देवानसृजत ब्रह्मा मां यक्ष्यन्तीति भार्गव।
तमुत्सृज्य तथात्मानमयजंस्ते फलार्थिनः ॥ २२ ॥

‘भार्गव ! देवतालोग मेरी पूजा करेंगे—इस विचारसे ब्रह्माजीने उनकी रचना की, किंतु वे फलके लोभमें पड़कर ब्रह्माजीको छोड़ अपनी ही पूजामें लग गये—इन्द्रिय-तृप्तिके चक्करमें ही पड़ गये ॥ २२ ॥

ते शप्ता ब्रह्मणा मूढा नष्टसंज्ञा दिवौकसः।
न स्म किंचिद् विजानन्ति ततो लोकोऽप्यमुह्यत॥ २३ ॥

‘इसपर ब्रह्माजीने उन्हें शाप दे दिया, जिससे मोहग्रस्त देवताओंकी चेतना नष्ट हो गयी और उन्हें भी ज्ञान न रह गया। फिर तो उनका अनुसरण करने संसार भी मोहमें पड़ गया॥ २३ ॥

ते भूयः प्रणताः शप्ताः प्रायाचन्त पितामहम्।
अनुग्रहाय लोकानां ततस्तानब्रवीदिदम् ॥ २

‘इस प्रकार शाप हो जानेपर वे फिर ब्रह्माजीके च जाकर गिरे और उनसे क्षमा-याचना की । तब ब्रह्मा लोककल्याणकी दृष्टिसे उन देवताओंसे इस प्रकार कहा

प्रायश्चित्तं चरध्वं वै व्यभिचारो हि वः कृतः।
पुत्रांश्च परिपृच्छध्वं ततो ज्ञानमवाप्स्यथ ॥ २

‘अब तुम प्रायश्चित्त करो; क्योंकि तुमने व्यभिचार(पूजाका व्यतिक्रम) किया है; इसलिये तुम अपने पु पूछो, तब तुमलोगोंको ज्ञान प्राप्त होगा ॥ २५ ॥

प्रायश्चित्तक्रियार्थं ते पुत्रान् पप्रच्छुरार्तवत्।
तेभ्यस्ते प्रयतात्मानः शशंसुस्तनयास्तदा ॥ २

तब देवताओंने दुखी होकर अपने पुत्रोंसे प्रायश्चि कर्मके विषयमें पूछा । फिर तो वे जितात्मा पुत्र बहुत विचारकर उनसे बोले ॥ २६ ॥

प्रायश्चित्तानि धर्मज्ञा वाङ्मनःकर्मजानि वै।
शंसन्ति कुशला नित्यं चक्षुर्भ्यामपि नित्यशः ॥ २

धर्म-ज्ञानमें निपुण पुरुषोंका कहना है कि वाणी, मन कर्मसे तथा नेत्रोंसे भी सदा प्रायश्चित्त होता है ॥ २७ ॥

प्रायश्चित्तार्थतत्त्वज्ञा लब्धसंज्ञा दिवौकसः।
गम्यन्तां पुत्रकाश्चेति पुत्रैरुक्ताश्च ते तदा ॥ २

‘अतः देवताओ ! तुम प्रायश्चित्तके तत्त्वको जानकर हो जाओ !’ फिर पुत्रोंने उनसे कहा कि ‘पुत्रो ! तुम जाओ’ ॥ २८ ॥

अभिशप्तास्तु ते देवाः पुत्रवाक्येन निन्दिताः।
पितामहमुपागच्छन् संशयच्छेदनाय वै॥ २

‘तब वे देवता पुत्रोंद्वारा पुत्र कहे जानेपर अपनी समझते हुए तथा पुत्रोंसे भी अभिशप्त होकर संशय दूर करनेके लिये ब्रह्माजीके पास पहुँचे ॥ २९ ॥

ततस्तानब्रवीद् देवो यूयं वै ब्रह्मवादिनः।
तस्माद् यदुक्तं युष्माकं तत् तथा न तदन्यथा ॥ ३

‘तब ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा—‘तुमलोग ब्रह्म हो। इसलिये उन्होंने तुमसे जो कुछ कहा है, वह ठीक है। इसमें कुछ भी अनुचित नहीं है ॥ ३० ॥

यूयं शरीरकर्तारस्तेषां देवा भविष्यथ।
ते तु ज्ञानप्रदातारः पितरो वो न संशयः ॥ ३

---

* सनत् अर्थात् निरन्तर कुमारके समान राग-द्वेष आदिसे शून्य—यह सनत्कुमार शब्दका अर्थ है।

'तुम तो उनके शरीरकी रचना करनेवाले देवता होगे और वे ज्ञान प्रदान करनेवाले तुम्हारे पितर होंगे—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ॥ ३१ ॥

अन्योन्यं पितरो यूयं ते चैवेति न संशयः ।
देवाश्च पितरश्चैव तद् बुध्यध्वं दिवौकसः ॥ ३२ ॥

'देवताओ और पितरो ! तुम दोनों आपसमें एक दूसरेके पितर हो, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। स्वर्गबासियो ! इस बातको तुम भलीभाँति जान लो' ॥ ३२ ॥

ततस्ते पुनरागम्य पुत्रानूचुर्दिवौकसः ।
ब्रह्मणा च्छिन्नसंदेहाः प्रीतिमन्तः परस्परम् ॥ ३३ ॥

'तब वे देवता, जिनका सारा संशय ब्रह्माजीद्वारा नष्ट हो ाया था और जो परस्पर प्रीतियुक्त थे, पुनः पुत्रोंके पास आये और उनसे बोले—॥ ३३ ॥

यूयं वै पितरोऽस्माकं यैर्वयं प्रतिबोधिताः ।
र्मज्ञाः कश्च वः कामः को वरो वः प्रदीयताम् ॥ ३४ ॥

तुम हमारे पितर हो, क्योंकि तुमने हमको ज्ञान प्रदान किया है, तुम धर्मज्ञ हो, तुम्हारी क्या इच्छा है ? तुम्हें क्या र दिया जाय ? ॥ ३४ ॥

ादुक्तं चैव युष्माभिस्तत् तथा न तदन्यथा ।
क्ताश्च यस्माद् युष्माभिः पुत्रका इति वै वयम् ।
ास्माद् भवन्तः पितरो भविष्यन्ति न संशयः ॥ ३५ ॥

'तुमने जो बात कही है, वह ठीक है, इसमें कुछ नुचित नहीं है। परंतु तुमने जो हमें 'पुत्रकाः' कहकर म्बोधित किया है इस कारण तुम पितर होओगे, इसमें कुछ ंदेह नहीं है ॥ ३५ ॥

ोऽनिष्ट्वा तु पितॄञ्छ्राद्धैः क्रियाः काश्चित् करिष्यति ।
ाक्षसा दानवा नागाः फलं प्राप्स्यन्ति तस्य तत् ॥३६॥

जो प्राणी श्राद्धोंद्वारा (पहले) पितरोंका पूजन किये ना ही जो कुछ क्रियाएँ करेगा, उन क्रियाओंका फल ाक्षस, दानव और सर्पोंको प्राप्त होगा ॥ ३६ ॥

ाद्धैराप्यायिताश्चैव पितरः सोममव्ययम् ।
आप्याय्यमाना युष्माभिर्वर्द्धयिष्यन्ति नित्यदा ॥ ३७ ॥

तुम दिव्य पितर हो, तुम्हारे द्वारा श्राद्धोंसे परिपुष्ट किये गये लौकिक पितर स्वयं तृप्त हो अपने अभिदेवता सोमकी वृद्धि करेंगे ॥ ३७ ॥

श्राद्धैराप्यायितः सोमो लोकानाप्याययिष्यति ।
समुद्रपर्वतवनं जङ्गमाजङ्गमैर्वृतम् ॥ ३८ ॥

'श्राद्धोंसे आप्यायित होता हुआ चन्द्रमा समुद्र, पर्वत, वन और चर-अचर प्राणियोंसे भरे हुए लोकोंको आप्यायित (तृप्त) करेगा ॥ ३८ ॥

श्राद्धानि पुष्टिकामाश्च ये करिष्यन्ति मानवाः ।
तेभ्यः पुष्टिं प्रजाश्चैव दास्यन्ति पितरः सदा ॥ ३९ ॥

'जो मनुष्य पुष्टि पानेकी इच्छासे श्राद्ध करेंगे, पितर उनको सदा पुष्टि और संतान देंगे ॥ ३९ ॥

श्राद्धे ये च प्रदास्यन्ति त्रीन् पिण्डान् नामगोत्रतः ।
सर्वत्र वर्तमानांस्तान् पितरः सपितामहान् ।
भावयिष्यन्ति सततं श्राद्धदानेन तर्पिताः ॥४०॥

'जो पुरुष सर्वत्र विद्यमान पिता, पितामह और प्रपितामहको उनके नाम और गोत्रका उच्चारण कर तीन पिण्ड देंगे, श्राद्ध-दानसे तृप्त हुए वे पितर उनकी सदा वृद्धि करेंगे ॥४०॥

एवमाज्ञापितं पूर्वं ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
इति तद्वचनं सत्यं भवत्वद्य दिवौकसः ।
पुत्राश्च पितरश्चैव वयं सर्वे परस्परम् ॥ ४१ ॥

'परमेष्ठी ब्रह्माजीने पहले ही ऐसी आज्ञा दी है । स्वर्गवासियो ! उनका वचन अब सत्य हो, हम सब परस्पर पुत्र और पितर हैं' ॥ ४१ ॥

सनत्कुमार उवाच

त एते पितरो देवा देवाश्च पितरस्तथा ।
अन्योन्यं पितरो ह्येते देवाश्च पितरश्च ह ॥ ४२ ॥

सनत्कुमारजीने कहा—मुने ! जो देवता हैं, वे ही पितर हैं और जो पितर हैं, वे ही देवता हैं । इस प्रकार ये देवता और पितर आपसमें एक दूसरेके पिता और पूज्य हैं ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पितृकल्पे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पितरोंकी उत्पत्तिविषयक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

पितृकल्प—मार्कण्डेय-सनत्कुमार-संवादमें पितरोंके गण, लोक, शक्ति और कन्याओंका वर्णन तथा पितरोंके प्रभावको देखनेके लिये मार्कण्डेयजीको दिव्य दृष्टिकी प्राप्ति

मार्कण्डेय उवाच

त्युक्तोऽहं भगवता देवदेवेन भास्वता ।
नत्कुमारेण पुनः पृष्टवान् देवमव्ययम् ॥ १ ॥
संदेहममरश्रेष्ठं भगवन्तमरिंदमम् ।
निबोध तन्मे गाङ्गेय निखिलं सर्वमादितः ॥ २ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—गङ्गानन्दन भीष्म ! तेजस्वी

देवदेव भगवान् सनत्कुमारके इस प्रकार कहनेपर मैंने काम-क्रोधादि शत्रुओंका दमन करनेवाले उन देवश्रेष्ठ अव्यय भगवान् सनत्कुमारसे अपने जिन सारे संदेहोंको आरम्भसे पूछा था, उन्हें मुझसे सुनो ॥ १-२ ॥

कियन्तो वै पितृगणाः कस्मिँल्लोके प्रतिष्ठिताः ।
वर्तन्ते देवप्रवरा देवानां सोमवर्द्धनाः ॥ ३ ॥

(श्राद्धके द्वारा) चन्द्रमाको पुष्ट करनेवाले तथा देवताओंके भी श्रेष्ठ देवता पितरोंके कितने गण हैं और वे किस लोकमें प्रतिष्ठित रहते हैं ? ॥ ३ ॥

सनत्कुमार उवाच

सप्तैते यजतां श्रेष्ठ स्वर्गे पितृगणाः स्मृताः ।
चत्वारो मूर्तिमन्तश्च त्रयस्तेषाममूर्तयः ॥ ४ ॥

सनत्कुमारजीने कहा—याजकोंमें श्रेष्ठ मार्कण्डेय ! स्वर्गमें रहनेवाले सात पितर माने गये हैं, उनमें चार तो मूर्तिमान् हैं और तीन मूर्तिरहित * ॥ ४ ॥

तेषां लोकं विसर्गं च कीर्तयिष्यामि तच्छृणु ।
प्रभावं च महत्त्वं च विस्तरेण तपोधन ॥ ५ ॥

तपोधन ! मैं उनके लोक, सृष्टि, प्रभाव और महत्त्वका विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूँ, उसे सुनिये ॥ ५ ॥

धर्ममूर्तिधरास्तेषां त्रयो ये परमा गणाः ।
तेषां नामानि लोकांश्च कथयिष्यामि तच्छृणु ॥ ६ ॥

(साथ ही) धर्ममय शरीर धारण करनेवाले पितरोंके जो तीन परम गण हैं, उनके नाम और लोकोंका भी मैं वर्णन करता हूँ, उसे भी सुनिये ॥ ६ ॥

लोकाः सनातना नाम यत्र तिष्ठन्ति भास्वराः ।
अमूर्तयः पितृगणास्ते वै पुत्राः प्रजापतेः ॥ ७ ॥

उन पितरोंके 'सनातन' नामवाले लोक हैं, जहाँ वे तेजस्वी, भौतिक शरीरसे रहित—दिव्य रूपवाले पितृगण, जो प्रजापतिके पुत्र हैं, निवास करते हैं ॥ ७ ॥

विराजस्य द्विजश्रेष्ठ वैराजा इति विश्रुताः ।
यजन्ति तान् देवगणा विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ८ ॥

द्विजश्रेष्ठ ! विराज प्रजापतिके पुत्र होनेके कारण वे वैराज नामसे प्रसिद्ध हैं । देवगण शास्त्रोक्त विधिसे इन वैराज पितरोंका पूजन करते हैं ॥ ८ ॥

एते वै योगविभ्रष्टा लोकान् प्राप्य सनातनान् ।
पुनर्युगसहस्रान्ते जायन्ते ब्रह्मवादिनः ॥ ९ ॥

ये योगभ्रष्ट होनेके कारण सनातन ब्रह्मलोकमें पहुँचनेपर भी सहस्र युगोंके अन्तमें ब्रह्माजीके साथ मुक्त नहीं होते, दूसरे कल्पमें (प्रजापतिसे ही) ब्रह्मवादी मुनिके रू प्रकट हो जाते हैं ॥ ९ ॥

ते तु प्राप्य स्मृतिं भूयः साङ्ख्यं योगमनुत्तमम् ।
यान्ति योगगतिं सिद्धाः पुनरावृत्तिदुर्लभाम् ॥

वे फिर पूर्व-कल्पकी स्मृति होनेसे परम उत्तम सांख्य अनुष्ठान करके सिद्ध हो जाते हैं और पुनरावृत्ति (जन्म से रहित योग-गतिको प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

एते स्युः पितरस्तात योगिनां योगवर्द्धनाः ।
आप्याययन्ति ये पूर्वं सोमं योगबलेन च ॥

तात ! जो पहले योगबलसे सोमको पुष्ट करते ये पितर योगियोंके योगको बढ़ानेवाले हैं ॥ ११ ॥

तस्माच्छ्राद्धानि देयानि योगिनां तु विशेषतः ।
एष वै प्रथमः सर्गः सोमपानां महात्मनाम् ॥

इसलिये इन योगियोंके लिये विशेषरूपसे श्राद्ध चाहिये । यही सोमकी वृद्धि करनेवाले 'सोमपा' नामक प्रथम सर्ग है ॥ १२ ॥

एतेषां मानसी कन्या मेना नाम महागिरेः ।
पत्नी हिमवतः श्रेष्ठा यस्या मैनाक उच्यते ॥

इन (वैराज पितरों) की मानसी कन्याका नाम मे वह महागिरि हिमाचलकी श्रेष्ठ पत्नी है । उसका पु कहा जाता है ॥ १३ ॥

मैनाकस्य सुतः श्रीमान् क्रौञ्चो नाम महागिरिः ।
पर्वतप्रवरः पुत्रो नानारत्नसमन्वितः ।

मैनाकका पुत्र महागिरि श्रीमान् क्रौञ्च (पं जो पर्वतोंमें श्रेष्ठ और नाना प्रकारके रत्नोंसे भरा-पूरा है

तिस्रः कन्यास्तु मेनायां जनयामास शैलराट् ।
अपर्णामेकपर्णां च तृतीयामेकपाटलाम् ।

पर्वतराज हिमालयने मेनाके गर्भसे तीन कन्याएँ कीं, जिनके नाम थे—अपर्णा, एकपर्णा तथा एकपाटला ॥ १५ ॥

तपश्चरन्त्यः सुमहद् दुश्चरं देवदानवैः ।
लोकान् संतापयामासुस्तास्तिस्रः स्थाणुजङ्गमान्

इन तीनों कन्याओंने ऐसी घोर तपस्याका अनुष्ठान किया, जो देवताओं और दानवोंके लिये भी दु इससे उन तीनोंने स्थावर-जङ्गमसहित समस्त लोकों कर दिया ॥ १६ ॥

आहारमेकपर्णेन एकपर्णा समाचरत् ।
पाटलापुष्पमेकं च आदधावेकपाटला ।

(उन दिनों) एकपर्णा एक ही पत्ता खाकर

---

* अर्थात् सुकाल, आङ्गिरस, सुस्वधा और सोमपा—ये चार मूर्तिमान् हैं । इन्हें दिव्य शरीर प्राप्त हुआ है । वैराज, अग्निष्वात्त और बर्हिषद्—ये तीन अमूर्त हैं । (नीलकण्ठीसे)

ी और एकपाटला पाटला (ताम्रपुष्पी) के एक ही पुष्पको ाहाररूपमें ग्रहण करती थी ॥ १७ ॥

का तत्र निराहारा तां माता प्रत्यषेधयत्।
उ' 'मा' इति निषेधन्ती मातृस्नेहेन दुःखिता ॥ १८ ॥

उनमेंसे एक (अपर्णा सर्वथा) निराहार रहने लगी । ब मातृस्नेहके कारण दुःखित हो उसकी माताने उससे 'उ ा' (अरी ! ऐसा मत कर) कहकर (निराहार रहनेका) ़षेध किया ॥ १८ ॥

ा तथोक्ता तया मात्रा देवी दुश्चरचारिणी।
मेत्येवाभवत् ख्याता त्रिषु लोकेषु सुन्दरी ॥ १९ ॥

वह दुश्चर तप करनेवाली सुन्दरी देवी इस प्रकार माता- रा कहे जानेपर इस 'उमा' नामसे ही तीनों लोकों- विख्यात हो गयी ॥ १९ ॥

थैव नाम्ना तेनेह विश्रुता योगधर्मिणी।
तत् तु त्रिकुमारीकं जगत् स्थास्यति भार्गव ॥ २० ॥

उसी प्रकार वह योगधर्मका पालन करनेवाली उसी मसे विख्यात हुई । भार्गव ! इन तीन कुमारियों (की ःशक्ति) से युक्त होकर ही यह जगत् स्थिर रहेगा ॥२०॥

पःशरीरास्ताः सर्वास्तिस्रो योगबलान्विताः।
र्वाश्च ब्रह्मवादिन्यः सर्वाश्चैवोर्ध्वरेतसः ॥ २१ ॥

इन तीनोंका शरीर तपोमय है, ये सब योगबलसे सम्पन्न तथा ये सभी ब्रह्मवादिनी और ऊर्ध्वरेता हैं ॥ २१ ॥

मा तासां वरिष्ठा च ज्येष्ठा च वरवर्णिनी।
हायोगबलोपेता महादेवमुपस्थिता ॥ २२ ॥

उमा उन सबमें ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, सुन्दरी तथा महान् योग- लसे सम्पन्न थीं । उनका विवाह महादेवजीसे हुआ ॥ २२ ॥

सितस्यैकपर्णा तु देवलस्य महात्मनः।
त्नी दत्ता महाब्रह्मन् योगाचार्याय धीमते ॥ २३ ॥

महाब्रह्मन् ! एकपर्णा बुद्धिमान् महात्मा योगाचार्य सित-देवलको पत्नीरूपमें दी गयी ॥ २३ ॥

गीषव्याय तु तथा विद्धि तामेकपाटलाम्।
ते चापि महाभागे योगाचार्यावुपस्थिते ॥ २४ ॥

इसी प्रकार एकपाटला जैगीषव्यको ब्याही गयी थी, ये नों महाभाग्यवती कन्याएँ योगाचार्योंकी सेवामें उपस्थित ई हैं ॥ २४ ॥

ोकाः सोमपदा नाम मरीचेर्यत्र वै सुताः।
तरो यत्र वर्तन्ते देवास्तान् भावयन्त्युत ॥ २५ ॥

(अब दूसरे गण अग्निष्वात्त पितरोंका वर्णन करते हैं—) तरोंके लिये दूसरे सोमपद नामवाले लोक हैं, जहाँ मरीचि जापतिके पुत्र 'पितर' होकर रहते हैं । वहाँ देवता इनकी जा करते हैं ॥ २५ ॥

अग्निष्वात्ता इति ख्याताः सर्व एवामितौजसः।
एतेषां मानसी कन्या अच्छोदा नाम निम्नगा ॥ २६ ॥

ये सब अमिततेजस्वी पितर अग्निष्वात्त नामसे प्रसिद्ध हैं । अच्छोदा नामकी नदी इनकी मानसी कन्या है ॥ २६ ॥

अच्छोदं नाम विख्यातं सरो यस्याः समुत्थितम्।
तया न दृष्टपूर्वास्ते पितरस्तु कदाचन ॥ २७ ॥

उसीसे अच्छोदनामक प्रसिद्ध सरोवर प्रकट हुआ है । उस (नदीरूपी मानसी कन्या) ने इन पितरोंको पहले कभी नहीं देखा था ॥ २७ ॥

अप्यमूर्तानथ पितॄन् सा ददर्श शुचिस्मिता।
सम्भूता मनसा तेषां पितॄन् स्वान् नाभिजानती॥ २८ ॥

उस पवित्र मुसकानवालीने अमूर्त पितरोंको भी दिव्य-दृष्टिसे देखा । पर उन्हें देखकर भी वह यह न जान सकी कि ये मेरे पिता हैं और मैं इनके मनसे उत्पन्न हुई हूँ ॥ २८ ॥

व्रीडिता तेन दुःखेन बभूव वरवर्णिनी।
सा दृष्ट्वा पितरं वव्रे वसुं नामान्तरिक्षगम् ॥ २९ ॥
अमावसुरिति ख्यातमायोः पुत्रं यशस्विनम्।
अद्रिकाप्सरसायुक्तं विमानेऽधिष्ठितं दिवि ॥ ३० ॥

तब वह सुन्दरी अच्छोदा उस दुःखके कारण लज्जित हो गयी । फिर उसने वसुको, जो आयुके यशस्वी पुत्र, अमावसु नामसे विख्यात, अन्तरिक्षचारी और स्वर्गमें अद्रिका अप्सराके साथ विमानमें बैठे थे, देखा और उन्हींको अपना पिता मान लिया ॥ २९-३० ॥

सा तेन व्यभिचारेण मनसः कामरूपिणी।
पितरं प्रार्थयित्वान्यं योगभ्रष्टा पपात ह ॥ ३१ ॥

वह इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली स्त्री दूसरेको पिता बनाकर मानसिक व्यभिचारके कारण योगभ्रष्ट होकर गिरने लगी ॥ ३१ ॥

त्रीण्यपश्यद् विमानानि पतमाना दिवश्च्युता।
त्रसरेणुप्रमाणानि सापश्यत् तेषु तान् पितॄन् ॥ ३२ ॥
सुसूक्ष्मानपरिव्यक्तानग्नीनग्निष्विवाहितान् ।
त्रायध्वमित्युवाचार्ता पतन्ती तानवाक्शिराः ॥ ३३ ॥

स्वर्गसे भ्रष्ट होकर नीचेको गिरती हुई अच्छोदाने त्रसरेणुके आकारके तीन विमानोंको देखा । तदनन्तर उसने उनमें (बैठे हुए) उन पितरोंको देखा, जो अत्यन्त सूक्ष्म, स्पष्ट न दीख पड़नेवाले और अग्नियोंमें स्थापित अग्निके समान उद्दीप्त हो रहे थे । नीचे सिर करके गिरती हुई अच्छोदाने उनसे आर्त स्वरमें कहा—'मेरी रक्षा कीजिये' ॥ ३२-३३ ॥

तैरुक्ता सा तु मा भैषीरिति व्योम्नि व्यवस्थिता।
ततः प्रसादयामास तान् पितॄन् दीनया गिरा ॥ ३४ ॥

उन पितरोंने कहा—'डरो मत' उनके ऐसा कहते ही अच्छोदा आकाशमें रुक गयी और फिर दीन वाणीसे उन पितरोंको प्रसन्न करने लगी ॥ ३४ ॥

ऊचुस्ते पितरः कन्यां भ्रष्टैश्वर्यां व्यतिक्रमात् ।
भ्रष्टैश्वर्या स्वदोषेण पतसि त्वं शुचिस्मिते ॥ ३५ ॥

व्यतिक्रमके कारण पुत्रीको ऐश्वर्यसे भ्रष्ट हुई देख वे पितर कहने लगे—'शुचिस्मिते ! तू अपने ही दोषसे ऐश्वर्यसे भ्रष्ट होकर गिर रही है ॥ ३५ ॥

यैः क्रियन्ते हि कर्माणि शरीरैर्दिवि दैवतैः ।
तैरेव तत्कर्मफलं प्राप्नुवन्तीह देवताः ॥ ३६ ॥

'स्वर्गस्थ देवता जिन शरीरोंके द्वारा जैसा कर्म करते हैं, उन कर्मोंका फल वे उन शरीरोंको ही धारण करके भोगते हैं ॥३६॥

सद्यः फलन्ति कर्माणि देवत्वे प्रेत्य मानुषे ।
तस्मात् त्वं तपसः पुत्रि प्रेत्येदं प्राप्स्यसे फलम् ॥ ३७ ॥

'देवयोनिमें दैवयोगवश बने हुए कर्म तत्काल ही फल देते हैं और मनुष्ययोनिमें किये हुए कर्मोंका फल मरनेके बाद मिला करता है, अतः पुत्रि ! तू मरनेके बाद तपस्याका फल प्राप्त करेगी ॥ ३७ ॥

इत्युक्ता पितृभिः सा तु पितॄन् प्रासादयत् स्वकान् ।
ध्यात्वा प्रसादं ते चक्रुस्तस्याः सर्वेऽनुकम्पया ॥ ३८ ॥

पितरोंके इस प्रकार कहनेपर उसने अपने पितरोंको प्रसन्न किया । तब उन लोगोंने दयापूर्वक उसके कल्याणके विषयमें विचार किया ॥ ३८ ॥

अवश्यं भाविनं ज्ञात्वा तेऽर्थमूचुस्ततस्तु ताम् ।
अस्य राज्ञो वसोः कन्या त्वमपत्यं भविष्यसि ॥ ३९ ॥
उत्पन्नस्य पृथिव्यां तु मानुषेषु महात्मनः ।
कन्या च भूत्वा लोकान् स्वान् पुनः प्राप्स्यसि दुर्लभान्४०

वे अवश्य होनेवाली घटनाको जानकर उससे कहने लगे—'जब यह महात्मा वसु मृत्युलोकमें मनुष्य-योनिमें उत्पन्न होगा, तब तू इस राजाकी कन्या होगी । इस प्रकार इसकी कन्या बनकर तू फिर अपने दुर्लभ लोकोंको प्राप्त करेगी ॥ ३९-४० ॥

पराशरस्य दायादं त्वं पुत्रं जनयिष्यसि ।
स वेदमेकं ब्रह्मर्षिश्चतुर्धा विभजिष्यति ॥ ४१ ॥
महाभिषस्य पुत्रौ द्वौ शन्तनोः कीर्तिवर्द्धनौ ।
विचित्रवीर्यं धर्मज्ञं तथा चित्राङ्गदं शुभम् ॥ ४२ ॥

'तू पराशर ऋषिका वंशधर पुत्र उत्पन्न करेगी । वह ब्रह्मर्षि एक वेदको चार भागोंमें विभक्त करेगा । फिर तू (जो) महाभिष* शन्तनु नामवाले राजाकी कीर्तिको बढ़ानेवाले दो पुत्रोंको उत्पन्न करेगी, एक धर्मज्ञ पुत्रका नाम विचित्रवीर्य होगा और दूसरे मय पुत्रका नाम चित्राङ्गद ॥ ४१-४२ ॥

एतानुत्पाद्य पुत्रांस्त्वं पुनर्लोकानवाप्स्यसि ।
व्यतिक्रमात् पितॄणां च जन्म प्राप्स्यसि कुत्सितम् ॥

'इन पुत्रोंको उत्पन्न करके तू अपने लोकोंमें फि जायगी । पितरोंका व्यतिक्रम करनेके कारण तुझे जन्म मिलेगा ॥ ४३ ॥

अस्यैव राज्ञः कन्या त्वमद्रिकाया भविष्यसि ।
अष्टाविंशे भवित्री त्वं द्वापरे मत्स्ययोनिजा ॥

'तू इसी राजाके द्वारा अद्रिकाके गर्भसे कन्यारूपमें होगी । और अट्ठाईसवें द्वापरमें मछलीकी संतानके प्रकट होगी' ॥ ४४ ॥

एवमुक्ता तु दाशेयी जाता सत्यवती तदा ।
मत्स्ययोनौ समुत्पन्ना राज्ञस्तस्य वसोः सुता ॥

पितरोंके इस प्रकार कहनेपर वह राजा वसुकी (बनकर) मत्स्ययोनिमें उत्पन्न हुई । वही दाशेयी (राजकी पुत्री) तथा सत्यवती कहलाती है ॥ ४५ ॥

वैभ्राजा नाम ते लोका दिवि सन्ति सुदर्शनाः ।
यत्र बर्हिषदो नाम पितरो दिवि विश्रुताः ॥

(अब पितरोंके तीसरे गण बर्हिषदोंका वर्णन करते स्वर्गमें वैभ्राज * नामके दर्शनीय लोक हैं । जहाँ नामवाले द्युलोक-विख्यात पितृगण निवास करते हैं ॥

तान् वै देवगणाः सर्वे यक्षगन्धर्वराक्षसाः ।
नागाः सर्पाः सुपर्णाश्च भावयन्त्यमितौजसः ॥

समस्त देवगण, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, नाग तथा अमिततेजस्वी गरुड आदि उन (बर्हिषद् ना पितरों) की उपासना करते हैं ॥ ४७ ॥

एते पुत्रा महात्मानः पुलस्त्यस्य प्रजापतेः ।
महात्मनो महाभागास्तेजोयुक्तास्तपस्विनः ॥

ये बर्हिषद् नामक पितर महाभाग्यवान्, तेजस्वी, और महात्मा हैं तथा महान् आत्मबलसे युक्त प्र पुलस्त्यके पुत्र हैं ॥ ४८ ॥

एतेषां मानसी कन्या पीवरी नाम विश्रुता ।
योगा च योगिपत्नी च योगिमाता तथैव च ॥
भवित्री द्वापरं प्राप्य युगं धर्मभृतां वरा ।
पराशरकुलोद्भूतः शुको नाम महातपाः ॥
भविष्यति युगे तस्मिन् महायोगी द्विजर्षभः ।
व्यासादरण्यां सम्भूतो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥

---

* शन्तनु ही पूर्वजन्ममें महाभिष थे ।

* विभ्राट् सूर्यनारायणका एक नाम है । उन विभ्राट् लोक वैभ्राज कहलाते हैं ।

इन (बर्हिषद् पितरों) की मानसी कन्या पीवरी नामसे विख्यात है। पीवरी स्वयं योगिनी, योगीकी पत्नी तथा योगियोंकी माता है। धर्मधारिणी स्त्रियोंमें श्रेष्ठ यह पीवरी द्वापरमें उत्पन्न होनेवाली है। उसी युगमें पराशरके कुलमें व्यासजीके द्वारा अरणीसे आविर्भूत धूमरहित अग्निके समान प्रकाशमान्, महातपस्वी, महायोगी, द्विजश्रेष्ठ शुक उत्पन्न होंगे ॥४९–५१॥

स तस्यां पितृकन्यायां पीवर्यां जनयिष्यति।
कन्यां पुत्रांश्च चतुरो योगाचार्यान् महाबलान् ॥ ५२ ॥
कृष्णं गौरं प्रभुं शम्भुं कृत्वीं कन्यां तथैव च।
ब्रह्मदत्तस्य जननीं महिषीं त्वणुहस्य च ॥ ५३ ॥

वे ही शुकदेव पितरोंकी इस कन्या पीवरीमें कृष्ण, गौर, प्रभु और शम्भु—इन चार महाबली योगाचार्य पुत्रों तथा ब्रह्मदत्तकी जननी और अणुहकी पत्नी कृत्वी नामवाली कन्याको उत्पन्न करेंगे ॥ ५२-५३ ॥

एतानुत्पाद्य धर्मात्मा योगाचार्यान् महाव्रतान्।
श्रुत्वा स्वजनकाद् धर्मान् व्यासादमितबुद्धिमान् ॥ ५४ ॥
महायोगी ततो गन्तापुनरावर्तिनीं गतिम्।
यत्तत्पदमनुद्विग्नमव्ययं ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ५५ ॥

वे धर्मात्मा इन महाव्रतधारी योगाचार्योंको उत्पन्न कर अपने पिता व्यासजीसे धर्मोंका रहस्य सुनेंगे। तदनन्तर अपार बुद्धिवाले महायोगी शुक अपुनरावर्तिनी गतिको प्राप्त होंगे। वह परमगति उद्वेगरहित, कभी नष्ट न होनेवाला तथा सनातन ब्रह्मपदरूप है ॥ ५४-५५ ॥

अमूर्तिमन्तः पितरो धर्ममूर्तिधरा मुने।
कथा यत्रेयमुत्पन्ना वृष्ण्यन्धककुलान्वया ॥ ५६ ॥

मुने ! अमूर्तिमान् पितर धर्ममय शरीर धारण करनेवाले हैं। इन्हींसे वृष्णि और अन्धक कुलोंसे सम्बन्ध रखनेवाली यह कथा आरम्भ होती है ॥ ५६ ॥

सुकाला नाम पितरो वसिष्ठस्य प्रजापतेः।
निरता दिवि लोकेषु ज्योतिर्भासिषु भासुराः।
सर्वकामसमृद्धेषु द्विजास्तान् भावयन्त्युत ॥ ५७ ॥

सुकाल नामक पितर प्रजापति वसिष्ठके पुत्र हैं। वे दीप्तिमान् पितर स्वर्गमें सभी कामोपभोगोंसे परिपूर्ण तथा ज्योतिर्मय लोकोंमें निवास करते हैं। ब्राह्मणलोग उनकी आराधना करते हैं ॥ ५७ ॥

तेषां वै मानसी कन्या गौर्नाम्ना दिवि विश्रुता।
तवैव वंशे या दत्ता शुकस्य महिषी प्रिया।
एकश्रृङ्गेति विख्याता साध्यानां कीर्तिवर्द्धिनी ॥ ५८ ॥

(मार्कण्डेयजी कहते हैं—भीष्म !) इन (सुकाल नामक पितरों) की मानसी कन्या स्वर्गमें गौ नामसे विख्यात है। वह तुम्हारे ही वंशमें दी गयी है। वह शुककी प्रिया भार्या है। साध्योंकी कीर्ति बढ़ानेवाली वह गौ (यहाँ) एकश्रृङ्गा नामसे प्रसिद्ध है ॥ ५८ ॥

मरीचिगर्भास्ताँल्लोकान् समाश्रित्य व्यवस्थिताः।
ये त्वथाङ्गिरसः पुत्राः साध्यैः संवर्द्धिताः पुरा ॥ ५९ ॥

(अब क्षत्रियोंद्वारा पूज्य आङ्गिरस पितरोंका वर्णन करते हैं—) पहले जिनका साध्योंने पोषण किया था, वे अङ्गिरा ऋषिके पुत्र आङ्गिरस पितर सूर्यकी किरणोंसे प्रकाशित होनेवाले लोकोंका आश्रय लेकर रहते हैं ॥ ५९ ॥

तान् क्षत्रियगणास्तात भावयन्ति फलार्थिनः।
तेषां तु मानसी कन्या यशोदा नाम विश्रुता ॥ ६० ॥

तात ! फल चाहनेवाले क्षत्रिय लोग उन (आङ्गिरस पितरों)का पूजन करते हैं। इन (आङ्गिरस पितरों) की मानसी कन्या यशोदा नामसे प्रसिद्ध है ॥ ६० ॥

पत्नी सा विश्वमहतः स्नुषा वै वृद्धशर्मणः।
राजर्षेर्जननी चापि दिलीपस्य महात्मनः ॥ ६१ ॥

वह विश्वमहान्‌की पत्नी, वृद्धशर्माकी पुत्रवधू एवं राजर्षि महात्मा दिलीपकी माता है ॥ ६१ ॥

तस्य यज्ञे पुरा गीता गाथाः प्रीतैर्महर्षिभिः।
तदा देवयुगे तात वाजिमेधे महामखे ॥ ६२ ॥

तात ! उस समय देवयुगमें उस (दिलीप) के अश्वमेध नामक महायज्ञमें महर्षियोंने प्रसन्न होकर यह गाथा गायी थी—॥

अग्नेर्जन्म तथा श्रुत्वा शाण्डिल्यस्य महात्मनः।
दिलीपं यजमानं ये पश्यन्ति सुसमाहिताः।
सत्यवन्तं महात्मानं तेऽपि स्वर्गजितो नराः ॥ ६३ ॥

'जो मनुष्य चित्तको एकाग्र करके शाण्डिल्यगोत्रमें उत्पन्न महात्मा अग्निके जन्मको सुनकर सत्यवादी महात्मा दिलीपको यज्ञ करते देखते हैं, वे भी स्वर्गको जीत लेंगे' ॥ ६३ ॥

सुस्वधा नाम पितरः कर्दमस्य प्रजापतेः।
समुत्पन्नास्तु पुलहान्महात्मानो द्विजर्षभाः ॥ ६४ ॥

कर्दम प्रजापतिके सुस्वधा नामवाले पितर हैं, जो ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ और महान् आत्मबलसे सम्पन्न हैं तथा महर्षि पुलहसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ६४ ॥

लोकेषु दिवि वर्तन्ते कामगेषु विहङ्गमाः।
तांश्च वैश्यगणास्तात भावयन्ति फलार्थिनः ॥ ६५ ॥

तात ! ये आकाशमें विचरण करनेवाले (सुस्वधा संज्ञक पितर) स्वर्गमें इच्छानुसार सब कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले लोकोंमें रहते हैं। फल-कामुक वैश्यगण इनकी उपासना करते हैं ॥ ६५ ॥

तेषां वै मानसी कन्या विरजा नाम विश्रुता।
ययातेर्जननी ब्रह्मन् महिषी नहुषस्य च ॥ ६६ ॥

(सनत्कुमारजी कहते हैं—) ब्रह्मन् ! इनकी मानसी कन्या विरजा नामसे प्रसिद्ध है। वह ययातिकी माता और नहुषकी पत्नी है ॥ ६६ ॥

त्रय एते गणाः प्रोक्ताश्चतुर्थं तु निबोध मे।
उत्पन्ना ये स्वधायां ते सोमपा वै कवेः सुताः।
हिरण्यगर्भस्य सुताः शूद्रास्तान् भावयन्त्युत ॥ ६७ ॥

यह मैंने मनुष्यपूज्य पितरोंके तीन गणोंका वर्णन कर दिया। अब चौथे गणका वर्णन सुनो। ये पितृगण कविकी पुत्री स्वधाके गर्भसे उत्पन्न हुए पुत्र हैं और सोमपा कहलाते हैं। ये अग्निके आत्मज हैं। शूद्र इनकी उपासना करते हैं ॥ ६७ ॥

मानसा नाम ते लोका यत्र तिष्ठन्ति ते दिवि।
तेषां वै मानसी कन्या नर्मदा सरितां वरा ॥ ६८ ॥

ये स्वर्गमें जिन लोकोंमें निवास करते हैं, वे मानस-लोक कहलाते हैं। इनकी मानसी कन्या नर्मदा कहलाती है, जो नदियोंमें श्रेष्ठ है ॥ ६८ ॥

या भावयति भूतानि दक्षिणापथगामिनी।
पुरुकुत्सस्य या पत्नी त्रसदस्योर्जनन्यपि ॥ ६९ ॥

वह दक्षिणापथकी ओर बहकर प्राणियोंको पवित्र करती है। वह पुरुकुत्सकी पत्नी और त्रसदस्युकी माता है ॥ ६९ ॥

तेषामथाभ्युपगमान्मनुस्तात युगे युगे।
प्रवर्तयति श्राद्धानि नष्टे धर्मे प्रजापतिः ॥ ७० ॥

तात! प्रजापति मनु प्रत्येक युगके आरम्भमें इन पितरोंको पूज्य समझकर लुप्त हुए श्राद्ध-धर्मका उद्धार करनेके लिये श्राद्धोंको फिर प्रचलित किया करते हैं ॥ ७० ॥

पितॄणामादिसर्गेण सर्वेषां द्विजसत्तम।
तस्मादेनं स्वधर्मेण श्राद्धदेवं वदन्ति वै ॥ ७१ ॥

'द्विजसत्तम ! (यम) इन सब सात प्रकारके पितरोंके आदिमें उत्पन्न होते हैं और ये अपने धर्मके प्रवर्तक हैं। इस कारण इनको श्राद्धदेव कहते हैं ॥ ७१ ॥

सर्वेषां राजतं पात्रमथ वा रजतान्वितम्।
दत्तं स्वधां पुरोधाय श्राद्धं प्रीणाति वै पितॄन् ॥ ७२ ॥

इन सब पितरोंको चाँदीका या चाँदी मिला हुआ पात्र तथा 'स्वधा पितृभ्यः' कहकर दिया हुआ श्राद्ध तृप्ति एवं प्रसन्नता प्रदान करता है ॥ ७२ ॥

सोमस्याप्यायनं कृत्वा अग्नेर्वैवस्वतस्य च।
उदगायनमप्यग्नावग्न्यभावेऽप्सु वा पुनः ॥ ७३ ॥
पितॄन् प्रीणाति यो भक्त्या पितरः प्रीणयन्ति तम्।
यच्छन्ति पितरः पुष्टिं प्रजाश्च विपुलास्तथा ॥ ७४ ॥
स्वर्गमारोग्यमेवाथ यदन्यदपि चेप्सितम्।
देवकार्यादपि मुने पितृकार्यं विशिष्यते ॥ ७५ ॥

जो मनुष्य सोम, अग्नि और वैवस्वत यमका आ करके फिर अग्निमें उदगायन करता है अथवा अग्निके अ जलमें उदगायन करके पितरोंको भक्तिपूर्वक तृप्त क उसे पितर तृप्त करते हैं। तथा बहुत-सी संतान, पुष्टि, एवं आरोग्य और समस्त अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान करते हैं। पितृकार्य देवकार्यसे भी श्रेष्ठ है ॥ ७३–७५ ॥

देवतानां हि पितरः पूर्वमाप्यायनं स्मृतम्।
शीघ्रप्रसादा ह्यक्रोधा लोकस्याप्यायनं परम् ॥ ७

पितर आप्यायन (तृप्त) करनेपर देवताओं पहले प्रसन्न हो जाते हैं। ये पितर शीघ्र प्रसन्न होनेवाले क्रोधरहित हैं और लोकोंको प्रसन्न रखनेवाले हैं ॥ ७

स्थिरप्रसादाश्च सदा तान् नमस्यस्व भार्गव।
पितृभक्तोऽसि विप्रर्षे मद्भक्तश्च विशेषतः ॥ ७

(सनत्कुमारजी मार्कण्डेय ऋषिसे कहते हैं) भा पितरोंका प्रसाद सदा स्थिर रहनेवाला होता है, इसलिये तुम प्रणाम किया करो। विप्रर्षे ! तुम पितरोंके भक्त हो और बहुत बड़े भक्त हो ॥ ७७ ॥

श्रेयस्तेऽद्य विधास्यामि प्रत्यक्षं कुरु तत् स्वयम्।
दिव्यं चक्षुः सविज्ञानं प्रदिशामि च तेऽनघ ॥ ७

निष्पाप महर्षे ! इसलिये मैं आज तुम्हारा कल्याण क उसे तुम स्वयं प्रत्यक्ष देख लो। मैं तुम्हें विज्ञानसहित नेत्र प्रदान करता हूँ ॥ ७८ ॥

गतिमेतामप्रमत्तो मार्कण्डेय निशामय।
न हि योगगतिर्दिव्या पितॄणां च परा गतिः ॥ ७
त्वद्विधेनापि सिद्धेन दृश्यते मांसचक्षुषा।
स एवमुक्त्वा देवेशो मामुपस्थितमग्रतः ॥ ८
चक्षुर्दत्त्वा सविज्ञानं देवानामपि दुर्लभम्।
जगाम गतिमिष्टां वै द्वितीयोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ ८

मार्कण्डेय ! अब तुम (श्राद्धके फलरूपमें मिलने इस गतिको सावधान होकर देखो। तुम-जैसा सिद्ध पु इस मांसमय चक्षुसे योगियोंकी दिव्य गतिको और पि परा गतिको नहीं देख सकता। यों कहकर वे देवेश खड़े हुए मुझको देवताओंके लिये भी दुर्लभ विज्ञान दिव्य नेत्र देकर द्वितीय अग्निके समान प्रकाशित हो अपने इष्ट-स्थानको चले गये ॥ ७९–८१ ॥

तन्निबोध कुरुश्रेष्ठ यन्मयासीन्निशामितम्।
प्रसादात् तस्य देवस्य दुर्ज्ञेयं भुवि मानुषैः ॥ ८

कुरुश्रेष्ठ भीष्म ! उन देवताकी कृपासे मैंने जो देखी थी, उसे तुम सुनो। पृथिवीमें उस घटनाका मनुष्योंके लिये महाकठिन है ॥ ८२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पितृकल्पे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पितृकल्पविषयक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

पितृकल्प— भरद्वाजके पुत्रोंकी कथा, योगभ्रष्ट पुरुषोंकी गति, योगसिद्धिके अधिकारी पुरुषोंके लक्षण तथा मार्कण्डेय-सनत्कुमार-संवादकी समाप्ति

मार्कण्डेय उवाच

आसन् पूर्वयुगे तात भरद्वाजात्मजा द्विजाः।
योगधर्ममनुप्राप्य भ्रष्टा दुश्चरितेन वै ॥ १ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—(सनत्कुमारजीने अन्तर्धान होनेसे पहले मुझसे इस प्रकार कहा—) तात ! पूर्वयुगमें कुछ ब्राह्मण रहते थे, जो भरद्वाजके पुत्र थे। वे योगधर्मका सेवन करते-करते दुराचारमें फँस जानेके कारण (स्वर्गसे) भ्रष्ट हो गये थे॥ १ ॥

अपभ्रंशमनुप्राप्ता योगधर्मापचारिणः।
महतः सरसः पारे मानसस्य विसंज्ञिताः ॥ २ ॥

वे योगधर्मका उल्लङ्घन करनेवाले ब्राह्मण अचेतन-से होकर महान् मानसरोवरके तटपर आकर गिरे॥ २ ॥

तमेवार्थमनुध्यायन्तो नष्टमप्स्विव मोहिताः।
अप्राप्य योगं ते सर्वे संयुक्ताः कालधर्मणा ॥ ३ ॥

वे सभी जलमें डूबते हुए पुरुषके समान मोहमें पड़ गये और उसी योगविषयका विचार करते-करते योगके तत्त्वको बिना पाये ही मर गये॥ ३ ॥

ततस्ते योगविभ्रष्टा देवेषु सुचिरोषिताः।
जाताः कौशिकदायादाः कुरुक्षेत्रे नरर्षभाः ॥ ४ ॥

अब वे योगभ्रष्ट नरश्रेष्ठ भरद्वाज-पुत्र, जो दीर्घकालतक देवताओंमें रह चुके हैं, कुरुक्षेत्रमें कौशिकके पुत्र बनकर उत्पन्न होंगे॥ ४ ॥

हिंसया विहरिष्यन्तो धर्मं पितृकृतेन वै।
ततस्ते पुनराजातिं भ्रष्टाः प्राप्स्यन्ति कुत्सिताम्॥ ५ ॥

वे (ब्राह्मण होनेपर भी) पितरोंके लिये धर्म (श्राद्ध) के बहाने हिंसा करेंगे फिर वह हिंसारूपी पाप करनेके कारण भ्रष्ट होकर कुत्सित योनिमें उत्पन्न होंगे॥ ५ ॥

तेषां पितृप्रसादेन पूर्वजातिकृतेन वै।
स्मृतिरुत्पत्स्यते प्राप्य तां तां जातिं जुगुप्सिताम्॥ ६ ॥

परंतु पूर्वजन्मके पितरोंकी कृपाके कारण उस-उस निन्दित योनिमें उत्पन्न होनेपर भी उनको पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रहेगी॥ ६ ॥

ते धर्मचारिणो नित्यं भविष्यन्ति समाहिताः।
ब्राह्मण्यं प्रतिलप्स्यन्ति ततो भूयः स्वकर्मणा ॥ ७ ॥

वे प्रत्येक जन्ममें धर्मात्मा रहकर अपने चित्तको सावधान रखेंगे और (अन्तमें) अपने कर्मवश फिर ब्राह्मणत्वको प्राप्त कर लेंगे॥ ७ ॥

ततश्च योगं प्राप्स्यन्ति पूर्वजातिकृतं पुनः।
भूयः सिद्धिमनुप्राप्ताः स्थानं प्राप्स्यन्ति शाश्वतम्॥ ८ ॥

उस जन्ममें वे पुनः अपने पूर्वजन्मके योगको पायेंगे और फिर सिद्धिको पाकर शाश्वत स्थानको प्राप्त करेंगे॥ ८ ॥

एवं धर्मे च ते बुद्धिर्भविष्यति पुनः पुनः।
योगधर्मे च नितरां प्राप्स्यसे बुद्धिमुत्तमाम् ॥ ९ ॥

इसी प्रकार तुम्हारी बुद्धि भी बारंबार धर्ममें ही लगी रहेगी और तुम्हें योगधर्मके विषयमें सब प्रकारसे उत्तम बुद्धि प्राप्त होगी॥ ९ ॥

योगो हि दुर्लभो नित्यमल्पप्रज्ञैः कदाचन।
लब्ध्वापि नाशयन्त्येनं व्यसनैः कटुतामिताः।
अधर्मेष्वेव वर्तन्ते प्रार्दयन्ते गुरूनपि ॥ १० ॥

अल्पबुद्धि मनुष्योंको योगसिद्धि मिलना सदा दुर्लभ है। उन्हें कदाचित् योगसिद्धि मिल भी जाय तो वे (मृगया आदि) व्यसनोंसे क्रूर होकर उसे नष्ट कर डालते हैं। वे अधर्मके कामोंमें ही लगे रहते हैं तथा अपने गुरुजनोंको भी कष्टमें डालते रहते हैं॥ १० ॥

याचन्ते न त्वयाच्यानि रक्षन्ति शरणागतान्।
नावजानन्ति कृपणान् माद्यन्ते न धनोष्मणा ॥ ११ ॥
युक्ताहारविहाराश्च युक्तचेष्टाः स्वकर्मसु।
ध्यानाध्ययनयुक्ताश्च न नष्टानुगवेषिणः ॥ १२ ॥
नोपभोगरता नित्यं न मांसमधुभक्षणाः।
न च कामपरा नित्यं न विप्रासेविनस्तथा ॥ १३ ॥
नानार्यसंकथासक्ता नालस्योपहतास्तथा।
नात्यन्तमानसंसक्ता गोष्ठीषु निरतास्तथा ॥ १४ ॥
प्राप्नुवन्ति नरा योगं योगो वै दुर्लभो भुवि।
प्रशान्ताश्च जितक्रोधा मानाहंकारवर्जिताः ॥ १५ ॥

जो अयाच्यसे याचना नहीं करते, शरणागतोंकी रक्षा करते हैं, कृपण (दीन) पुरुषोंका अपमान नहीं करते तथा जो धनकी गर्मीसे मदमत्त नहीं होते, जिनका आहार-विहार शास्त्रानुकूल होता है, जो अपने कर्मोंमें शास्त्रानुसार चेष्टा करते हैं, ईश्वरके ध्यान तथा स्वाध्यायमें परायण रहते हैं, नष्ट हुई वस्तुको पानेके लिये चोर आदिको नहीं ढूँढ़ते, सर्वदा भोगमें ही लीन नहीं रहते, सर्वदा मधु-मांसका भक्षण नहीं करते और सर्वदा काम-परायण भी नहीं रहते तथा जो सर्वदा ब्राह्मणोंकी सेवा करते हैं, अनार्य पुरुषोंकी बातोंमें आसक्त नहीं होते, जिनको कभी आलस्य नहीं सताता, जो अत्यन्त अभिमानमें आसक्त नहीं रहते,

सदा आत्ममीमांसा करनेमें लगे रहते हैं, ऐसे शान्त चित्तवाले, क्रोधको जीतनेवाले, मान तथा अहंकाररहित मनुष्योंको योग-सिद्धि मिलती है; क्योंकि पृथ्वीमें योगकी प्राप्ति अति दुर्लभ है ॥

कल्याणभाजनं ये तु ते भवन्ति यतव्रताः।
एवंविधास्तु ते तात ब्राह्मणा ह्यभवंस्तदा ॥ १६ ॥

ऐसे व्रतोंका पालन करनेवाले मनुष्य ही कल्याणके पात्र होते हैं। तात ! वे (भरद्वाजपुत्र) ऐसे ही ब्राह्मण बनकर उत्पन्न हुए हैं ॥ १६ ॥

स्मरन्ति ह्यात्मनो दोषं प्रमादकृतमेव तु।
ध्यानाध्ययनयुक्ताश्च शान्ते वर्त्मनि संस्थिताः ॥ १७ ॥

वे अपने प्रमादवश हुए दोषका स्मरण करते रहते हैं और ध्यान तथा स्वाध्यायमें लगे रहकर शान्त मार्गमें स्थित रहते थे ॥

योगधर्माद्धि धर्मज्ञ न धर्मोऽस्ति विशेषवान्।
वरिष्ठः सर्वधर्माणां तमेवाचर भार्गव ॥ १८ ॥

धर्मज्ञ भार्गव ! योगधर्मसे श्रेष्ठ और कोई धर्म नहीं है। वह सभी धर्मोंसे श्रेष्ठ है, अतः तुम उसीका आचरण करो ॥१८॥

कालस्य परिणामेन लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
तत्परः प्रयतः श्राद्धी योगधर्ममवाप्स्यसि ॥ १९ ॥

यदि तुम श्रद्धापूर्वक प्रयत्नशील एवं योगधर्ममें रहकर हलका भोजन करते हुए जितेन्द्रिय रहोगे कालक्रमसे तुम्हें योगसिद्धि प्राप्त हो जायगी ॥ १९ ॥

इत्युक्त्वा भगवान् देवस्तत्रैवान्तरधीयत।
अष्टादशैव वर्षाणि त्वेकाहमिव मेऽभवत् ॥

(मार्कण्डेयजी कहते हैं कि) इतनी बातें भगवान् सनत्कुमार वहीं अन्तर्धान हो गये। ये (सनत्कु की सेवामें बीते हुए) अठारह वर्ष मुझे एक दिनके प्रतीत हुए ॥ २० ॥

उपासतस्तं देवेशं वर्षाण्यष्टादशैव मे।
प्रसादात् तस्य देवस्य न ग्लानिरभवत् तदा ॥

अठारह वर्षतक उन देवेशकी उपासना करते भी उनकी कृपाके कारण उस समय मुझे कुछ भी नहीं हुई ॥ २१ ॥

न क्षुत्पिपासे कालं वा जानामि स्म तदानघ।
पश्चाच्छिष्यसकाशात् तु कालः संविदितो मया ॥

निष्पाप ! मुझे भूख, प्यास और समय आदि मालूम हुआ। बादमें शिष्यके द्वारा मुझे समयका पता

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पितृकल्पे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पितृकल्पविषयक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

◆

विंशोऽध्यायः

पितृकल्प—ब्रह्मदत्त और उग्रायुधके वंश तथा पूजनीया चिड़ियाद्वारा शुक्रनीतिका वर्णन

मार्कण्डेय उवाच

तस्मिन्नन्तर्हिते देवे वचनात् तस्य वै प्रभोः।
चक्षुर्दिव्यं सविज्ञानं प्रादुरासीत् तदा मम ॥ १ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—उन सनत्कुमारदेवके अन्तर्धान होनेपर उन्हीं प्रभुके वरदानसे मुझे दिव्य विज्ञानमय नेत्र प्राप्त हो गया ॥ १ ॥

ततोऽहं तानपश्यं वै ब्राह्मणान् कौशिकात्मजान्।
आपगेय कुरुक्षेत्रे यानुवाच विभुर्मम ॥ २ ॥

गङ्गानन्दन भीष्म ! तब मैंने उन कौशिकपुत्र ब्राह्मणोंको कुरुक्षेत्रमें देखा, जिनका विभु सनत्कुमारजीने मुझसे वर्णन किया था ॥ २ ॥

ब्रह्मदत्तोऽभवद् राजा यस्तेषां सप्तमो द्विजः।
पितृवर्तीति विख्यातो नाम्ना शीलेन कर्मणा ॥ ३ ॥

उन कुशिकपुत्रोंमें जो सातवाँ पितृवर्ती नामसे विख्यात ब्राह्मण था, वह अपने शील और कर्मसे (सातवें जन्ममें) ब्रह्मदत्त नामक राजा हुआ ॥ ३ ॥

शुकस्य कन्या कृत्वी तं जनयामास पार्थिवम्।
अणुहात् पार्थिवश्रेष्ठात् काम्पिल्ये नगरोत्तमे ॥

काम्पिल्यनामक श्रेष्ठ नगरमें पार्थिवश्रेष्ठ अणुहके शुककी कन्या कृत्वीके उदरसे राजा ब्रह्मदत्त उत्पन्न

भीष्म उवाच

यथोवाच महाभागो मार्कण्डेयो महातपाः।
तस्य वंशमहं राजन् कीर्तयिष्यामि तच्छृणु ॥

भीष्मजी बोले—राजन् ! महाभाग्यवान् एवं मार्कण्डेयजीने जिस प्रकार मुझसे कहा था, (उसी मैं उस राजाके वंशका वर्णन करूँगा, तुम सुनो— ॥

युधिष्ठिर उवाच

अणुहः कस्य वै पुत्रः कस्मिन् काले बभूव ह।
राजा धर्मभृतां श्रेष्ठो यस्य पुत्रो महायशाः ॥

युधिष्ठिरने पूछा—(पितामह !) जिनके पुत्र (ब्रह्मदत्त) थे, धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ वे राजा अणुह किनके थे और किस समय उत्पन्न हुए थे ? ॥ ६ ॥

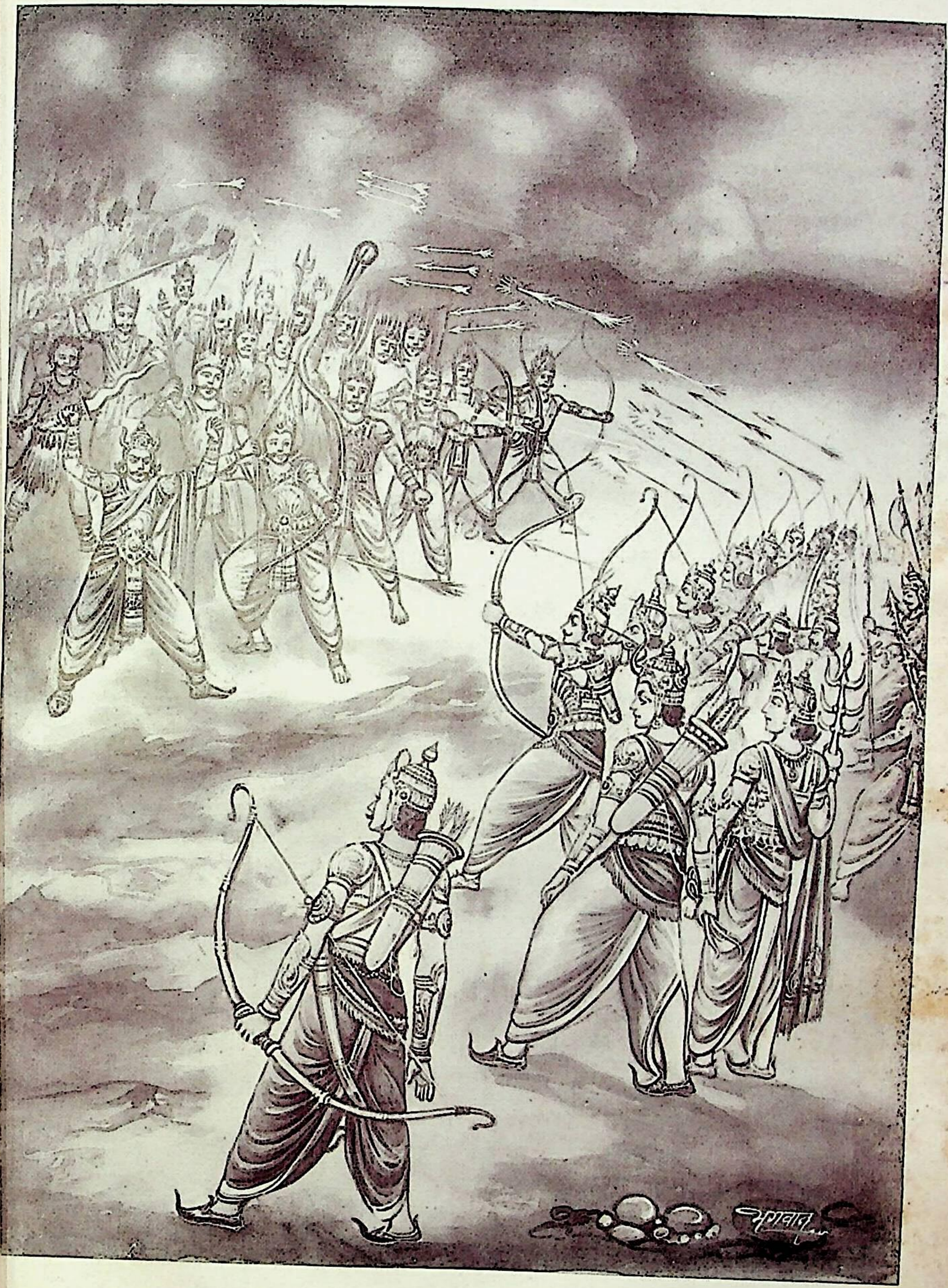

महाराज रजिके नायकत्वमें देवताओंद्वारा दानवोंका संहार

ह्मदत्तो नरपतिः किंवीर्यः स बभूव ह।
थं च सप्तमस्तेषां स बभूव नराधिपः ॥ ७ ॥

राजा ब्रह्मदत्तका पराक्रम कैसा था ? और वे उन भरद्वाजपुत्रों) में सातवें कैसे थे ? ॥ ७ ॥

ह्यल्पवीर्याय शुको भगवाँल्लोकपूजितः।
न्यां प्रदद्याद् योगात्मा कृत्वीं कीर्तिमतीं प्रभुः॥ ८ ॥

लोकोंमें पूजनीय योगकी मूर्ति सर्वशक्तिसम्पन्न भगवान् कदेवजीने अपनी कीर्तिमती कन्या कृत्वीको किसी धारण शक्तिवाले पुरुषके हाथमें नहीं दिया होगा ॥ ८ ॥

तदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण महाद्युते।
ह्मदत्तस्य चरितं तद् भवान् वक्तुमर्हति ॥ ९ ॥

महाद्युते ! मैं ब्रह्मदत्तके इस चरित्रको विस्तारपूर्वक नना चाहता हूँ, अतः आप उसका वर्णन कीजिये ॥ ९ ॥

था च वर्तमानास्ते संसारे च द्विजातयः।
र्कण्डेयेन कथितास्तद् भवान् प्रब्रवीतु मे ॥ १० ॥

मार्कण्डेयजीने उन द्विजोंके संसारमें विचरण करनेका तान्त जिस प्रकार कहा हो, उसे आप उसी भाँति मुझसे हिये ॥ १० ॥

भीष्म उवाच

तीपस्य तु राजर्षेस्तुल्यकालो नराधिपः।
तामहस्य मे राजन् बभूवेति मया श्रुतम् ॥ ११ ॥

भीष्मजीने कहा—राजन् ! मैंने सुना है कि राजा ह्मदत्त मेरे पितामह राजर्षि प्रतीपके समयमें ही हुए थे ॥

ह्मदत्तो महाभागो योगी राजर्षिसत्तमः।
तज्ञः सर्वभूतानां सर्वभूतहिते रतः ॥ १२ ॥

ब्रह्मदत्त सब प्राणियोंके हितमें लगे रहनेवाले, राजर्षियोंमें ष्ठ, महाभाग्यवान् और योगी थे। वे सभी प्राणियोंकी बोली मझ लेते थे ॥ १२ ॥

खाऽऽस गालवो यस्य योगाचार्यो महायशाः।
क्षामुत्पाद्य तपसा क्रमो येन प्रवर्तितः।
ण्डरीकश्च योगात्मा तस्यैव सचिवो महान् ॥ १३ ॥

जिन्होंने तपोबलसे वेदाङ्गभूत शिक्षाका आविर्भाव करके दिक संहिताके मन्त्रोंका क्रमपाठ प्रचलित किया था, वे हायशस्वी योगाचार्य गालव ब्रह्मदत्तके सखा थे। तथा गात्मा कण्डरीक इन्हीं राजाके प्रधान मन्त्री थे ॥ १३ ॥

त्यन्तरेषु सर्वेषु सखायः सर्व एव ते।
सजातिषु सप्तैव बभूवुरमितौजसः।
योवाच महाभागो मार्कण्डेयो महातपाः ॥ १४ ॥
स्य वंशमहं राजन् कीर्तयिष्यामि तच्छृणु।
ह्मदत्तस्य पौराणां पौरवस्य महात्मनः ॥ १५ ॥

इन सात भरद्वाजपुत्रोंके सात जातियोंमें सात बार जन्म हुए और ये सभी अमिततेजस्वी द्विज उन सम्पूर्ण जन्मान्तरोंमें एक दूसरेके मित्र बने रहते थे। राजन् ! महाभाग्यवान् एवं महातपस्वी मार्कण्डेयजीने जिस प्रकार मुझसे कहा था, उसी प्रकार मैं पुरुवंशियों एवं पुरुवंशी महात्मा ब्रह्मदत्तके वंशका वर्णन करता हूँ, उसे सुनो ॥ १४-१५ ॥

बृहत्क्षत्रस्य दायादः सुहोत्रो नाम धार्मिकः।
सुहोत्रस्यापि दायादो हस्ती नाम बभूव ह ॥ १६ ॥

बृहत्क्षत्रके पुत्र धार्मिक सुहोत्र हुए और सुहोत्रके भी पुत्र हस्ती हुए ॥ १६ ॥

तेनेदं निर्मितं पूर्वं हस्तिनापुरमुत्तमम्।
हस्तिनश्चापि दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः ॥ १७ ॥
अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढस्तथैव च।
अजमीढस्य धूमिन्यां जज्ञे बृहदिषुर्नृप।
बृहद्धनुर्बृहदिषोः पुत्रस्तस्य महायशाः ॥ १८ ॥

राजन् ! उन्होंने ही इस उत्तम हस्तिनापुरको बसाया था। हस्तीके भी अजमीढ, द्विमीढ और पुरुमीढ नामवाले परम धार्मिक तीन पुत्र हुए । अजमीढके धूमिनी नामकी पत्नीके गर्भसे बृहदिषु उत्पन्न हुए और बृहदिषुके पुत्र महायशस्वी बृहद्धनु हुए ॥ १७-१८ ॥

बृहद्धर्मेति विख्यातो राजा परमधार्मिकः।
सत्यजित् तनयस्तस्य विश्वजित् तस्य चात्मजः ॥ १९ ॥

वे परम धर्मात्मा राजा बृहद्धर्मा नामसे भी प्रसिद्ध थे। उनके पुत्र सत्यजित् हुए और सत्यजित्के पुत्र विश्वजित् हुए ॥

पुत्रो विश्वजितश्चापि सेनजित् पृथिवीपतिः।
पुत्राः सेनजितश्चासंश्चत्वारो लोकविश्रुताः ॥ २० ॥

विश्वजित्के भी पुत्र राजा सेनजित् हुए और सेनजित्के चार पुत्र हुए, जो समस्त विश्वमें विख्यात थे ॥ २० ॥

रुचिरः श्वेतकेतुश्च महिम्नारस्तथैव च।
वत्सश्चावन्तको राजा यस्यैते परिवत्सकाः ॥ २१ ॥

राजा (सेनजित्) अवन्तीमें रहते थे। उनके रुचिर, श्वेतकेतु, महिम्नार और वत्स नामक (चार) पुत्र थे ॥ २१ ॥

रुचिरस्य तु दायादः पृथुसेनो महायशाः।
पृथुसेनस्य पारस्तु पारान्नीपस्तु जज्ञिवान् ॥ २२ ॥

रुचिरके पुत्र महायशस्वी पृथुसेन हुए। पृथुसेनके पार और पारके पुत्र नीप हुए ॥ २२ ॥

नीपस्यैकशतं तात पुत्राणाममितौजसाम्।
महारथानां राजेन्द्र शूराणां बाहुशालिनाम्।
नीपा इति समाख्याता राजानः सर्व एव ते ॥ २३ ॥

तात ! नीपके परम पराक्रमी, बाहुशाली एवं महारथी सौ वीर पुत्र उत्पन्न हुए। राजेन्द्र ! वे सब नीपवंशी राजा कहलाते थे ॥ २३ ॥

तेषां वंशकरो राजा नीपानां कीर्तिवर्द्धनः।
काम्पिल्ये समरो नाम सचेष्टसंमरोऽभवत् ॥ २४ ॥

काम्पिल्य नगरमें उन नीपोंके वंशप्रवर्तक एवं कीर्तिवर्धक राजा समर हुए। उनको संग्राम बहुत प्रिय था ॥ २४ ॥

समरस्य परः पारः सदश्व इति ते त्रयः।
पुत्राः परमधर्मज्ञाः परपुत्रः पृथुर्बभौ ॥ २५ ॥

समरके पर, पार और सदश्व—ये तीन परम धर्मज्ञ पुत्र हुए। परके पुत्र पृथु हुए ॥ २५ ॥

पृथोस्तु सुकृतो नाम सुकृतेनेह कर्मणा।
जज्ञे सर्वगुणोपेतो विभ्राजस्तस्य चात्मजः ॥ २६ ॥

संसारमें पुण्यकर्म (सुकृत) करनेके कारण पृथुके सर्वगुणसम्पन्न सुकृत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और सुकृतके पुत्र विभ्राज हुए ॥ २६ ॥

विभ्राजस्य तु पुत्रोऽभूदणुहो नाम पार्थिवः।
बभौ शुकस्य जामाता कृत्वीभर्ता महायशाः ॥ २७ ॥

विभ्राजके पुत्र अणुह हुए। वे महायशस्वी राजा शुकके जामाता और कृत्वीके भर्ताके रूपमें वे सुशोभित हुए ॥

पुत्रोऽणुहस्य राजर्षिर्ब्रह्मदत्तोऽभवत् प्रभुः।
योगात्मा तस्य तनयो विष्वक्सेनः परंतपः ॥ २८ ॥
विभ्राजः पुनरायातः स्वकृतेनेह कर्मणा।

अणुहके पुत्र राजर्षि ब्रह्मदत्त हुए। उनके पुत्र योगात्मा विष्वक्सेन हुए, जो बड़े प्रभावशाली और शत्रुओंको संतप्त करनेवाले थे। विभ्राज अपने कर्मके कारण ब्रह्मदत्तके पुत्र (विष्वक्सेन) बनकर फिर उत्पन्न हुए थे ॥ २८½ ॥

ब्रह्मदत्तस्य पुत्रोऽन्यः सर्वसेन इति श्रुतः ॥ २९ ॥
चक्षुषी तस्य निर्भिन्ने पक्षिण्या पूजनीयया।
सुचिरोषितया राजन् ब्रह्मदत्तस्य वेश्मनि ॥ ३० ॥

ब्रह्मदत्तके दूसरे पुत्र सर्वसेन नामसे प्रसिद्ध थे। राजन्! उनके दोनों नेत्रोंको बहुत समयसे ब्रह्मदत्तके महलमें रहनेवाली पूजनीया नामकी पक्षिणी (चिड़िया) ने फोड़ दिया था ॥ २९-३० ॥

अथास्य पुत्रस्त्वपरो ब्रह्मदत्तस्य जज्ञिवान्।
विष्वक्सेन इति ख्यातो महाबलपराक्रमः ॥ ३१ ॥

तदनन्तर ब्रह्मदत्तके दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ। यह महाबली एवं पराक्रमी (विभ्राजावतार) विष्वक्सेनके नामसे प्रसिद्ध था ॥ ३१ ॥

विष्वक्सेनस्य पुत्रोऽभूद् दण्डसेनो महीपतिः।
भल्लाटोऽस्य कुमारोऽभूद् राधेयेन हतः पुरा ॥ ३२ ॥

विष्वक्सेनके पुत्र राजा दण्डसेन हुए। इनका पुत्र भल्लाट हुआ, जिसे राधापुत्र कर्णने मार डाला था ॥ ३२ ॥

दण्डसेनात्मजः शूरो महात्मा कुलवर्द्धनः।
भल्लाटपुत्रो दुर्बुद्धिरभवच्च युधिष्ठिर ॥ ३३ ॥

युधिष्ठिर! दण्डसेनका पुत्र भल्लाट शूरवीर, और कुलको बढ़ानेवाला था; परंतु भल्लाटका पुत्र दुर्बुद्धि निकला ॥ ३३ ॥

स तेषामभवद् राजा नीपानामन्तकृन्नृप।
तेन उग्रायुधस्यार्थे सर्वे नीपा विनाशिताः ॥

राजन्! वह उन नीपोंका अन्त करनेवाला राजा उसने उग्रायुधके लिये समस्त नीपोंका विनाश करवा दि

उग्रायुधो मदोत्सिक्तो मया विनिहतो युधि।
दर्पान्वितो दर्परुचिः सततं चानये रतः ॥

निरन्तर अनीतिमें लगे रहनेवाले और दर्प रखनेवाले उस अभिमानी मदोन्मत्त उग्रायुधको मैंने मार डाला था ॥

युधिष्ठिर उवाच

उग्रायुधः कस्य सुतः कस्मिन् वंशेऽथ जज्ञिवान्।
किमर्थं चैव भवता निहतस्तद् ब्रवीहि मे ॥

युधिष्ठिरने पूछा—(दादाजी!) उग्रायुध कि था, किस वंशमें उत्पन्न हुआ था और आपने उसे डाला? यह मुझे बताइये ॥ ३६ ॥

भीष्म उवाच

अजमीढस्य दायादो विद्वान् राजा यवीनरः।
धृतिमांस्तस्य पुत्रस्तु तस्य सत्यधृतिः सुतः ॥

भीष्मजीने कहा—अजमीढके पुत्र विद्वान् यवीनर थे। उनके पुत्र धृतिमान् हुए और धृ पुत्र सत्यधृति थे ॥ ३७ ॥

जज्ञे सत्यधृतेः पुत्रो दृढनेमिः प्रतापवान्।
दृढनेमिसुतश्चापि सुधर्मा नाम पार्थिवः ॥

सत्यधृतिके प्रतापी पुत्र दृढनेमि हुए। दृढनेमि राजा सुधर्मा थे ॥ ३८ ॥

आसीत् सुधर्मणः पुत्रः सार्वभौमः प्रजेश्वरः।
सार्वभौम इति ख्यातः पृथिव्यामेकराड् विभुः ॥

सुधर्माके पुत्र प्रजापालक सार्वभौम हुए, जो पृथ्वीके एकच्छत्र सम्राट् थे। इसीलिये सार्वभौम प्रसिद्ध हुए थे ॥ ३९ ॥

तस्यान्ववाये महति महान् पौरवनन्दनः।
महतश्चापि पुत्रस्तु राजा रुक्मरथः स्मृतः ॥

उनके महनीय वंशमें पौरवोंको प्रसन्न करनेवाले नामक राजा हुए। महान्के पुत्र राजा रुक्मरथ हुए ॥

पुत्रो रुक्मरथस्यापि सुपार्श्वो नाम पार्थिवः।
सुपार्श्वतनयश्चापि सुमतिर्नाम धार्मिकः ॥

रुक्मरथके पुत्र राजा सुपार्श्व हुए। सुपार्श्वके पुत्र हुए, जो बड़े धार्मिक थे ॥ ४१ ॥

सुमतेरपि धर्मात्मा संनतिर्नाम वीर्यवान्।
तस्य वै संनतेः पुत्रः कृतो नाम महाबलः ॥ ४२ ॥

सुमतिके पुत्र संनति हुए, जो वीर्यवान् और धर्मात्मा थे। उन संनतिके पुत्र महाबली कृत हुए ॥ ४२ ॥

शिष्यो हिरण्यनाभस्य कौशलस्य महात्मनः।
चतुर्विंशतिधा तेन सप्राच्याः सामसंहिताः ॥ ४३ ॥
स्मृतास्ते प्राच्यसामानः कार्तयो नाम सामगाः।

वे कोशलदेशीय महात्मा हिरण्यनाभके शिष्य थे। उन्होंने ाचीन साम-संहिताके चौबीस विभाग किये थे, जो प्राच्यसाम कहलाते हैं और उन सामोंका गान करनेवाले कीर्ति-सामग कहे जाते हैं ॥ ४३½ ॥

कार्तिरुग्रायुधः सोऽथ वीरः पौरवनन्दनः ॥ ४४ ॥
भूव येन विक्रम्य पृषतस्य पितामहः।
ीपो नाम महातेजाः पञ्चालाधिपतिर्हतः ॥ ४५ ॥

इन्हीं कृतके पुत्र पौरवनन्दन वीर उग्रायुध थे, जिन्होंने अपने पराक्रमसे पाञ्चालोंके स्वामी पृषतके पितामह महा-जस्वी नीपको मार डाला था ॥ ४४-४५ ॥

ग्रायुधस्य दायादः क्षेम्यो नाम महायशाः।
म्यात् सुवीरो नृपतिः सुवीरात् तु नृपंजयः ॥ ४६ ॥
पंजयाद् बहुरथ इत्येते पौरवाः स्मृताः।

उग्रायुधके पुत्र महायशस्वी क्षेम्य हुए। क्षेम्यके पुत्र जा सुवीर हुए और सुवीरके पुत्र नृपंजय हुए। नृपंजयके त्र बहुरथ हुए वे ही पौरव कहलाते हैं ॥ ४६½ ॥

चाप्युग्रायुधस्तात दुर्बुद्धिरभवत् तदा ॥ ४७ ॥
वृद्धचक्रो बलवान् नीपान्तकरणो महान्।
दर्पपूर्णौ हत्वाऽऽजौ नीपानन्यांश्च पार्थिवान् ॥ ४८ ॥

तात ! वे उग्रायुध बड़े दुष्ट स्वभाववाले और बलवान् थे। नका महान् चक्र चलता था। उन्होंने नीपोंका घोर संहार रा डाला। वे नीपों तथा दूसरे राजाओंका युद्धमें वध करके मंडसे भर गये ॥ ४७-४८ ॥

तर्युपरते मह्यं श्रावयामास किल्बिषम्।
ममात्यैः परिवृतं शयानं धरणीतले ॥ ४९ ॥

जिस समय मेरे पिता मर गये थे और मैं मन्त्रियोंसे घिरा आ पृथ्वीपर शयन करता था, उसी समय उन्होंने मुझसे ड़ी कुत्सित (पापपूर्ण) बात कहलायी ॥ ४९ ॥

ग्रायुधस्य राजेन्द्र दूतोऽभ्येत्य वचोऽब्रवीत्।
द्य त्वं जननीं भीष्म गन्धकालीं यशस्विनीम्।
ीरत्नं मम भार्यार्थे प्रयच्छ कुरुपुङ्गव ॥ ५० ॥

राजेन्द्र ! उग्रायुधका दूत मेरे पास आकर कहने लगा—ुरुपुङ्गव भीष्म ! आज तुम स्त्रियोंमें रत्नस्वरूप अपनी ता यशस्विनी गन्धकालीको मेरी भार्या बननेके लिये दो ॥ ५० ॥

एवं राज्यं च ते स्फीतं धनानि च न संशयः।
प्रदास्यामि यथाकाममहं वै रत्नभाग् भुवि ॥ ५१ ॥

'यदि तुम ऐसा करोगे तो निस्संदेह मैं तुम्हें इच्छानुसार विशाल राज्य तथा धन दूँगा और मैं (गन्धकालीको पाकर) इस भूतलपर रत्नका भागी हो जाऊँगा ॥ ५१ ॥

मम प्रज्वलितं चक्रं निशाम्येदं सुदुर्जयम्।
शत्रवो विद्रवन्त्याजौ दर्शनादेव भारत ॥ ५२ ॥

'भारत ! मेरे इस परम दुर्जय एवं जाज्वल्यमान चक्रका दर्शन करके शत्रुगण युद्धमें मुझे देखते ही भाग खड़े होते हैं ५२॥

राष्ट्रस्येच्छसि चेत् स्वस्ति प्राणानां वा कुलस्य वा।
शासने मम तिष्ठस्व न हि ते शान्तिरन्यथा ॥ ५३ ॥

'तुम यदि राज्य, कुल एवं अपने प्राणोंका कल्याण चाहते हो तो मेरी आज्ञा मान लो, नहीं तो चैनसे न रह सकोगे' ॥ ५३ ॥

अधः प्रस्तारशयने शयानस्तेन चोदितः।
दूतान्तर्हितमेतद् वै वाक्यमग्निशिखोपमम् ॥ ५४ ॥

जब मैं भूमिपर कुशाओंकी शय्यापर सो रहा था, उस समय उसने दूतके द्वारा यह अग्निकी ज्वालाके समान (जलानेवाली) बात कहलायी थी ॥ ५४ ॥

ततोऽहं तस्य दुर्बुद्धेर्विज्ञाय मतमच्युत।
आज्ञापयं वै संग्रामे सेनाध्यक्षांश्च सर्वशः ॥ ५५ ॥

अच्युत ! तब मैंने उस दुर्बुद्धिके अभिप्रायको जानकर अपने सेनापतियोंको सब प्रकारसे संग्राम करनेकी आज्ञा दे दी ॥ ५५ ॥

विचित्रवीर्यं बालं च मदुपाश्रयमेव च।
दृष्ट्वा क्रोधपरीतात्मा युद्धायैव मनो दधे ॥ ५६ ॥

विचित्रवीर्य मेरे आश्रयमें रहता है तथा यह बालक होनेके कारण युद्ध भी नहीं कर सकता, इस बातको देखकर क्रोधमें भरकर मैंने स्वयं ही युद्ध करनेका विचार किया ॥ ५६ ॥

निगृहीतस्तदाहं तैः सचिवैर्मन्त्रकोविदैः।
ऋत्विग्भिर्वेदकल्पैश्च सुहृद्भिश्चार्थदर्शिभिः ॥ ५७ ॥
स्निग्धैश्च शास्त्रविद्भिश्च संयुगस्य निवर्तने।
कारणं श्रावितश्चास्मि युक्तरूपं तदानघ ॥ ५८ ॥

निष्पाप ! उस समय मन्त्रज्ञ मन्त्रियों, वेदज्ञ ऋत्विजों, तत्त्वदर्शी मित्रों और शास्त्रवेत्ता स्नेही पुरुषोंने मुझे युद्ध करनेसे रोक दिया और इसका उचित कारण भी बताया ॥

मन्त्रिण ऊचुः

प्रवृत्तचक्रः पापोऽसौ त्वं चाशौचगतः प्रभो।
न चैष प्रथमः कल्पो युद्धं नाम कदाचन ॥ ५९ ॥

मन्त्रियोंने कहा—प्रभो ! उस पापीका चक्र चल रहा है और आपको अशौच लगा हुआ है, अतः यह युद्ध प्रथम कल्प कभी नहीं माना जा सकता ॥ ५९ ॥

ते वयं सामपूर्वं वै दानं भेदं तथैव च ।
प्रयोक्ष्यामस्ततः शुद्धो दैवतान्यभिवाद्य च ॥ ६० ॥
कृतस्वस्त्ययनो विप्रैर्वह्नीन् सम्पूज्य च द्विजान् ।
ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः प्रयास्यसि जयाय वै ॥ ६१ ॥

हम पहले उसपर साम, दान और भेद नीतियोंका प्रयोग करेंगे। तबतक आप शुद्ध भी हो जायँगे, फिर आप देवताओंको प्रणाम करके ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर अग्नि और ब्राह्मणोंकी पूजा करनेके बाद ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर विजयके लिये प्रस्थान कीजियेगा ॥ ६०-६१ ॥

अस्त्राणि न प्रयोज्यानि न प्रवेश्यश्च संगरः ।
अशौचे वर्तमाने तु वृद्धानामिति शासनम् ॥ ६२ ॥

वृद्धोंका कथन है कि जब अशौच चल रहा हो, उस समय अस्त्रोंका प्रयोग और युद्धमें प्रवेश नहीं करना चाहिये ॥ ६२ ॥

सामदानादिभिः पूर्वमपि भेदेन वा ततः ।
तं हनिष्यसि विक्रम्य शम्बरं मघवानिव ॥ ६३ ॥

अतः पहले साम, दान, भेदसे इसको वशमें करनेका यत्न किया जाय (तब भी न माने तो) फिर जैसे इन्द्रने शम्बरासुरको मार डाला था, उसी प्रकार पराक्रम करके आप इसको मार डालियेगा ॥ ६३ ॥

प्राज्ञानां वचनं काले वृद्धानां च विशेषतः ।
श्रोतव्यमिति तच्छ्रुत्वा निवृत्तोऽस्मि नराधिप ॥ ६४ ॥

समय पड़नेपर बुद्धिमानों और वृद्धोंकी बात विशेषरूपसे सुननी चाहिये। राजन्! यह सुनकर मैं युद्धसे रुक गया ॥६४॥

ततस्तैः संक्रमः सर्वैः प्रयुक्तः शास्त्रकोविदैः ।
तस्मिन् काले कुरुश्रेष्ठ कर्म चारब्धमुत्तमम् ॥ ६५ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! तब उन शास्त्रज्ञानमें चतुर सम्पूर्ण मन्त्रियोंने साम, दान, भेद आदि दूसरे उपायोंद्वारा शान्ति-स्थापनका प्रयोग किया और इसके लिये उत्तम कार्य आरम्भ कर दिया ॥ ६५॥

स सामादिभिरेवादावुपायैः प्राज्ञचिन्तितैः ।
अनुनीयमानो दुर्बुद्धिरनुनेतुं न शक्यते ॥ ६६ ॥

परंतु वे बुद्धिमानोंके विचारे हुए साम, दान आदि उपायोंका प्रयोग करके भी उस दुर्बुद्धिको न समझा सके ॥ ६६ ॥

प्रवृत्तं तस्य तच्चक्रमधर्मनिरतस्य वै ।
परदाराभिलाषेण सद्यस्तात निवर्तितम् ॥ ६७ ॥

तात ! इतने समयमें अधर्ममें मग्न रहनेवाले उग्रायुधका प्रतापचक्र भी पर-स्त्रीकी कामना करनेसे तत्क्षण ही रुक गया ॥ ६७ ॥

न त्वहं तस्य जाने तन्निवृत्तं चक्रमुत्तमम् ।
हतं स्वकर्मणा तं तु पूर्वं सद्भिश्च निन्दितम् ॥ ६८ ॥

उसका उत्तम चक्र निवृत्त हो गया है औ सत्पुरुषोंसे निन्दित होकर वह अपने कर्मोंद्वारा ही है; इस बातको मैं नहीं जानता था ॥ ६८ ॥

कृतशौचः शरी चापी रथी निष्क्रम्य वै पुरात् ।
कृतस्वस्त्ययनो विप्रैः प्रायोधयमहं रिपुम् ॥

जब मैं अशौच-निवृत्तिके पश्चात् शुद्ध हु ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर धनुष-बाण ले र नगरसे बाहर निकला और शत्रुसे युद्ध करने लगा ॥

ततः संसर्गमागम्य बलेनास्त्रबलेन च ।
त्र्यहमुन्मत्तवद् युद्धं देवासुरमिवाभवत् ॥

तदनन्तर उसके निकट पहुँचकर शरीर-बल औ बलके द्वारा देवासुर-संग्रामकी तरह तीन दिनोंतक का उन्मत्त-सा युद्ध चलता रहा ॥ ७० ॥

स मयास्त्रप्रतापेन निर्दग्धो रणमूर्धनि ।
पपाताभिमुखः शूरस्त्यक्त्वा प्राणानरिंदम ।

शत्रुदमन ! तत्पश्चात् मेरे अस्त्रके प्रतापसे भ वह वीर रणके मुहानेपर अपने प्राणोंको त्यागक पड़ा ॥ ७१ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तात काम्पिल्ये पृषतोऽभ्ययात् ।
हते नीपेश्वरे चैव हते चोग्रायुधे नृपे ।
आहिच्छत्रं स्वकं राज्यं पित्र्यं प्राप महाद्युतिः ।
द्रुपदस्य पिता राजन् ममैवानुमते तदा ।

तात ! इसी बीचमें (उग्रायुधद्वारा) नीपेश्व (मेरे द्वारा) राजा उग्रायुधके मारे जानेपर पृ काम्पिल्य नगरपर आक्रमण कर दिया । राजन् ! अनुमतिसे महाकान्तिमान् द्रुपदके पिताने अपने पैतृ अहिच्छत्रपर (पुनः) अधिकार कर लिया ॥ ७२

ततोऽर्जुनेन तरसा निर्जित्य द्रुपदं रणे ।
आहिच्छत्रं सकाम्पिल्यं द्रोणायाथापवर्जितम् ।

तदनन्तर अर्जुनने युद्धमें द्रुपदको बलपूर्वक काम्पिल्य और अहिच्छत्रको द्रोणाचार्यके (चरणोंमें कर दिया था ॥ ७४ ॥

प्रतिगृह्य ततो द्रोण उभयं जयतां वरः ।
काम्पिल्यं द्रुपदायैव प्रायच्छद् विदितं तव ।

तब विजय पानेवालोंमें श्रेष्ठ द्रोणने दोनों देश काम्पिल्यनगर तो द्रुपदको ही वापस कर दिया तुम जानते ही हो ॥ ७५ ॥

एष ते द्रुपदस्यादौ ब्रह्मदत्तस्य चैव ह ।
वंशः कार्त्स्न्येन वै प्रोक्तो नीपस्योग्रायुधस्य च ।

इस प्रकार मैंने तुमसे द्रुपद, ब्रह्मदत्त, उग्रयुधके वंशका पूर्णरूपसे वर्णन कर दिया ॥ ७६

युधिष्ठिर उवाच

किमर्थं ब्रह्मदत्तस्य पूजनीया शकुन्तिका ।
अन्धं चकार गाङ्गेय ज्येष्ठं पुत्रं पुरा विभो ॥ ७७ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—समर्थ गङ्गानन्दन ! पहले पूजनीया चिड़ियाने ब्रह्मदत्तके ज्येष्ठ पुत्रको अंधा क्यों कर दिया था ? ॥ ७७ ॥

चिरोषिता गृहे चापि किमर्थं चैव यस्य सा ।
चकार विप्रियमिदं तस्य राज्ञो महात्मनः ॥ ७८ ॥

वह जिसके महलमें बहुत समयसे रहती थी, उसी महात्मा राजाका उसने ऐसा अनिष्ट क्यों किया ?॥ ७८ ॥

पूजनीया चकारासौ किं सख्यं तेन चैव ह ।
एतन्मे संशयं छिन्धि सर्वमुक्त्वा यथातथम् ॥ ७९ ॥

उस पूजनीयाने उनके साथ मित्रता क्यों की थी ? आप इन सब बातोंको यथार्थ रीतिसे बताकर मेरे सारे संदेहोंको दूर कर दें ॥ ७९ ॥

भीष्म उवाच

शृणु सर्वं महाराज यथावृत्तमभूत् पुरा ।
ब्रह्मदत्तस्य भवने तन्निबोध युधिष्ठिर ॥ ८० ॥

भीष्मजीने कहा—महाराज युधिष्ठिर ! प्राचीन कालमें ब्रह्मदत्तके महलमें जो घटना घटी थी, उसे तुम पूर्णरूपसे सुनो ॥ ८० ॥

काचिच्छकुन्तिका राजन् ब्रह्मदत्तस्य वै सखी ।
शितिपक्षा शोणशिराः शितिपृष्ठा शितोदरी ॥ ८१ ॥

राजन् ! एक चिड़िया थी, जिसका राजा ब्रह्मदत्तसे स्नेह हो जानेके कारण वह उनकी सहचरी बन गयी थी । उसके दोनों पंख, पीठ और उदरका भाग तो काला था; परंतु मस्तकका रंग लाल था ॥ ८१ ॥

सखी सा ब्रह्मदत्तस्य सुदृढं बद्धसौहृदा ।
तस्याः कुलायमभवद् गेहे तस्य नरोत्तम ॥ ८२ ॥

नरोत्तम ! राजा ब्रह्मदत्तकी वह सहचरी उनके सुदृढ़ स्नेहपाशमें बँध गयी थी; अतः उन्हींके महलमें उसका घोंसला था ॥ ८२ ॥

सा सदाहनि निर्गत्य तस्य राज्ञो गृहोत्तमात् ।
वचाराम्भोधितीरेषु पल्वलेषु सरस्सु च ॥ ८३ ॥

वह दिनमें निरन्तर उस राजाके उत्तम महलसे निकलकर समुद्रके किनारे तथा तालाबों और तलैयोंपर विचरती थी ॥ ८३ ॥

नदीपर्वतकुञ्जेषु वनेषूपवनेषु च ।
फुल्लेषु तडागेषु कह्लारेषु सुगन्धिषु ॥ ८४ ॥
कुमुदोत्पलकिञ्जल्कसुरभीकृतवायुषु ।
हंससारसघुष्टेषु कारण्डवरुतेषु च ॥ ८५ ॥
चरित्वा तेषु सा राजन् निशि काम्पिल्यमागमत् ।

राजन् ! वह नदी, पर्वत, कुञ्ज, वन और उपवनोंमें तथा जिनमें सुगन्धित कमल खिले हुए थे, जहाँकी वायु कुमुद, उत्पल और किञ्जल्ककी सुगन्धसे वासित थी एवं जो हंस, सारस और कारण्डवके कलरवोंसे गुंजायमान थे—ऐसे तड़ागोंपर घूम-घामकर वह रात्रिके समय काम्पिल्य-नगरमें लौट आती थी ॥ ८४-८५½ ॥

नृपतेर्भवनं प्राप्य ब्रह्मदत्तस्य धीमतः ॥ ८६ ॥
राज्ञा तेन सदा राजन् कथायोगं चकार सा ।

राजन् ! वह बुद्धिमान् राजा ब्रह्मदत्तके महलमें पहुँचकर उस राजासे प्रतिदिन बातें किया करती थी ॥ ८६½ ॥

आश्चर्याणि च दृष्टानि यानि वृत्तानि कानिचित् ॥ ८७ ॥
चरित्वा विविधान् देशान् कथयामास सा निशि ।

वह बहुत-से देशोंमें घूमकर जो कुछ आश्चर्यजनक घटनाएँ देखती थी, रात्रिके समय उन्हें (राजासे) कहा करती थी ॥ ८७½ ॥

कदाचित् तस्य नृपतेर्ब्रह्मदत्तस्य कौरव ॥ ८८ ॥
पुत्रोऽभूद् राजशार्दूल सर्वसेनेति विश्रुतः ।
पूजनीयाथ सा तस्मिन् प्रासूताण्डमथापि च ॥ ८९ ॥

कुरुवंशी राजशार्दूल ! एक समय राजा ब्रह्मदत्तके पुत्र हुआ, जिसका नाम सर्वसेन रखा गया । उसी समय उस पूजनीयाने भी वहाँ एक अंडा दिया ॥ ८८-८९ ॥

तस्मिन् नीडे पुरा ह्येकं तत्किल प्रास्फुटत् तदा ।
स्फुटितो मांसपिण्डस्तु बाहुपादास्यसंयुतः ॥ ९० ॥
बभ्रुवक्त्रश्चक्षुर्हीनो बभूव पृथिवीपते ।
चक्षुष्मानप्यभूत् पश्चादीषत्पक्षोत्थितश्च ह ॥ ९१ ॥

पृथ्वीपते ! एक दिन उस घोंसलेमें उसका वह एक अण्डा फूटा और उसमेंसे एक मांस-पिण्ड निकला, जो हाथ-पैर और मुखसे युक्त था । उसका मुँह भूरे रंगका था; परंतु नेत्र नहीं प्रकट हुए थे । कुछ समय बाद उसके नेत्र खुल गये और उसमें छोटे-छोटे पंख भी निकल आये ॥ ९०-९१ ॥

अथ सा पूजनीया वै राजपुत्रस्वपुत्रयोः ।
तुल्यस्नेहात् प्रीतिमती दिवसे दिवसेऽभवत् ॥ ९२ ॥

तदनन्तर वह पूजनीया अपने बच्चे और राजकुमारपर समान स्नेह होनेके कारण प्रतिदिन एक-सी प्रीति रखने लगी ॥ ९२ ॥

आजहार सदा सायं चञ्च्वामृतफलद्वयम् ।
अमृतास्वादसदृशं सर्वसेनतनूजयोः ॥ ९३ ॥

वह सदा सायंकालमें अमृतके समान स्वादिष्ठ रससे भरे हुए दो फल सर्वसेन और अपने बच्चेके लिये अपनी चोंचमें लाया करती थी ॥ ९३ ॥

स बालो ब्रह्मदत्तस्य पूजनीयासुतश्च ह।
ते फले भक्षयित्वा च पृथुकौ प्रीतमानसौ ॥ ९४ ॥
अभूतां नित्यमेवेह खादेतां तौ च ते फले।

ब्रह्मदत्तका बालक और पूजनीयाका बच्चा—ये दोनों उन फलोंको खाकर बड़े प्रसन्न होते थे। इस प्रकार वे दोनों नित्य ऐसे फलोंको खाया करते थे ॥ ९४½ ॥

तस्यां गतायामथ च पूजन्यां वै सदाहनि ॥ ९५ ॥
शिशुना चटकेनाथ धात्री तं तु शिशुं नृप।
तेन प्रक्रीडयामास ब्रह्मदत्तात्मजं सदा ॥ ९६ ॥
नीडात् तमाकृष्य तदा पूजनीयाकृतात् ततः।

राजन्! प्रतिदिन उस पूजनीके चले जानेपर राजकुमारकी धाय उस चिड़ियाके बनाये हुए घोंसलेसे उसके बच्चेको खींचकर उसके द्वारा ब्रह्मदत्तके शिशु पुत्रको खेलाया करती थी ॥ ९५-९६½ ॥

क्रीडता राजपुत्रेण कदाचिच्चटकः स तु ॥ ९७ ॥
निगृहीतः कन्धरायां शिशुना दृढमुष्टिना।
दुर्भङ्गमुष्टिना राजन्नसून् सद्यस्त्वजीजहत् ॥ ९८ ॥

एक समय उस शिशु राजकुमारने खेलते-खेलते अपनी सुदृढ़ मुट्ठीमें उस बच्चेका गला पकड़ लिया। राजन्! राजकुमारकी मुट्ठी बड़ी कठिनतासे खुल सकती थी। (अतएव दबाव पड़नेके कारण) उस चिड़ियाके बच्चेने तत्काल ही अपने प्राण त्याग दिये ॥ ९७-९८ ॥

तं तु पञ्चत्वमापन्नं व्यात्तास्यं बालघातितम्।
कथंचिन्मोचितं दृष्ट्वा नृपतिर्दुःखितोऽभवत् ॥ ९९ ॥

राजा ब्रह्मदत्तने उसको किसी प्रकार अपने पुत्रके हाथसे छुड़ाया; परंतु उसे मरा, मुख फैलाकर पड़ा हुआ तथा अपने बालकके द्वारा मारा गया देखकर वे दुखी हो गये ॥ ९९ ॥

धात्रीं तस्य जगर्हे तां तदाश्रुपरमो नृपः।
तस्थौ शोकान्वितो राजञ्छोचंस्तं चटकं तदा ॥ १०० ॥

राजन्! तब ब्रह्मदत्तने शोकाकुल हो नेत्रोंमें आँसू भरकर उस धायकी निन्दा की। फिर वे खड़े-खड़े उस बच्चेके लिये शोक करने लगे ॥ १०० ॥

पूजनीयापि तत्काले गृहीत्वा तु फलद्वयम्।
ब्रह्मदत्तस्य भवनमाजगाम वनेचरी ॥ १०१ ॥

उसी समय वनमें विचरण करनेवाली पूजनीया भी दो फलोंको लेकर ब्रह्मदत्तके भवनमें आ पहुँची ॥ १०१ ॥

अथापश्यत् तमागम्य गृहे तस्मिन् नराधिप।
पञ्चभूतपरित्यक्तं शवं तं स्वतनूद्भवम् ॥ १०२ ॥

राजन्! उस भवनमें आकर उसने अपने शरीरसे उत्पन्न हुए बच्चेको पञ्चभूतोंसे रहित मुर्देके रूपमें देखा ॥ १०२ ॥

मुमोह दृष्ट्वा तं पुत्रं पुनः संज्ञामथालभत्।
लब्धसंज्ञा च सा राजन् विललाप तपस्विनी ॥

राजन्! पुत्रकी ऐसी दशा देखकर वह मूर्छि गयी। कुछ देर बाद उसे फिर चेतना आयी, तब वह विलाप करने लगी ॥ १०३ ॥

पूजनीयोवाच

न तु त्वमागतां पुत्र वाशन्तीं परिसर्पसि।
कुर्वंश्चाटुसहस्राणि अव्यक्तकलया गिरा ॥

पूजनीया बोली—पुत्र! मैं आकर कूँ-कूँ रही हूँ, तब भी तू अस्फुट (तोतली) होनेसे मनोहर वाली वाणीमें हजारों बातें करता हुआ मेरे सा नहीं आता? ॥ १०४ ॥

व्यादितास्यः क्षुधार्तश्च पीतेनास्येन पुत्रक।
शोणेन तालुना पुत्र कथमद्य न सर्पसि ॥

पुत्र! क्षुधासे पीड़ित होकर अपने लाल-लाल ता पीली चोंचवाले मुखको खोलकर तू मेरे पास क्यों नहीं आता? ॥ १०५ ॥

पक्षाभ्यां त्वां परिष्वज्य ननु वाशामि चाप्यहम्।
चीचीकूचीति वाशन्तं त्वामद्य न शृणोमि किम् ॥

मैं तुझे अपने पंखोंसे लपेटकर रो रही हूँ, तब तुझे चीं-चीं, कूँ-कूँ शब्द करता हुआ क्यों नहीं सुन

मनोरथो यस्तु मम पश्येयं पुत्रकं कदा।
व्यात्तास्यं वारि याचन्तं स्फुरत्पक्षं ममाग्रतः ॥
स मे मनोरथो भग्नस्त्वयि पञ्चत्वमागते।
विलप्यैवं बहुविधं राजानमथ साब्रवीत् ॥

मेरे मनमें जो यह अभिलाषा थी कि मैं अपने अपने पुत्रको परोंको फटफटाकर चोंच फैलाकर जल हुआ कब देखूँगी, सो मेरा वह मनोरथ तेरे मरनेसे गया—यों अनेक तरहसे विलाप करके वह बोली ॥ १०७-१०८ ॥

ननु मूर्धाभिषिक्तस्त्वं धर्मं वेत्सि सनातनम्।
अथ कस्मान्मम सुतं धात्र्या घातितवानसि ॥
तव पुत्रेण चाकृष्य क्षत्रियाधम शंस मे।

'रे क्षत्रियाधम! तू तो मूर्धाभिषिक्त (सम्राट् है और सनातनधर्मको जाननेवाला है, तो भी तूने मेरे धायसे और अपने पुत्रसे खिंचवाकर क्यों मरवा डाल बातका तू उत्तर दे ॥ १०९½ ॥

न च नूनं श्रुता तेऽभूदियमाङ्गिरसी श्रुतिः ॥
शरणागतः क्षुधार्तश्च शत्रुभिश्चाप्युपद्रुतः।
चिरोषितश्च स्वगृहे पातव्यः सर्वदा भवेत् ॥

'क्या तूने यह आङ्गिरसी श्रुति नहीं सुनी 'शरणमें आये हुए, भूखसे व्याकुल, शत्रुओंद्वारा पी

ाते हुए और चिरकालसे अपने घरमें रहनेवालेकी रक्षा सदा करनी चाहिये ॥ ११०-१११ ॥

अपालयन्नरो याति कुम्भीपाकमसंशयम् ।
कथमस्य हविर्देवा गृह्णन्ति पितरः स्वधाम् ॥११२॥

'यदि मनुष्य इनकी रक्षा नहीं करता है तो वह नेस्संदेह कुम्भीपाक नरकमें पड़ता है। देवता ऐसे पुरुषकी विको और पितर स्वधाको भला कैसे ग्रहण कर सकते हैं' ॥

एवमुक्त्वा महाराज दशाधर्मगता सती ।
शोकार्ता तस्य बालस्य चक्षुषी निर्बिभेद सा ॥११३॥
कराभ्यां राजपुत्रस्य ततस्तच्चक्षुरस्फुटत् ।
कृत्वा चान्धं नृपसुतमुत्पपात ततोऽम्बरम् ॥११४॥

महाराज ! राजासे यों कहकर शोकसे आतुर होनेके कारण दशधर्म* को प्राप्त हुई उस पूजनीयाने अपने दोनों पञ्जोंसे उस राजकुमारके दोनों नेत्रोंको विदीर्ण कर दिया, जिससे उसकी आँखें फूट गयीं । इस प्रकार राजकुमारको अन्धा कर नेके पश्चात् पूजनीया आकाशमें उड़ गयी ॥ ११३-११४ ॥

अथ राजा सुतं दृष्ट्वा पूजनीयामुवाच ह ।
विशोका भव कल्याणि कृतं ते भीरु शोभनम् ॥११५॥

तब राजाने पुत्रकी ओर देखकर पूजनीयासे कहा—कल्याणि ! अब तू शोकरहित हो जा । भीरु ! तूने बहुत अच्छा किया ॥ ११५ ॥

ातशोका निवर्तस्व अजर्यं सख्यमस्तु ते ।
ुरेव वस भद्रं ते निवर्तस्व रमस्व च ॥११६॥

'अब तू शोकरहित होकर लौट आ । तेरी मैत्री सुदृढ़ नी रहे । तेरा कल्याण हो, तू लौट आ और आनन्दपूर्वक हलेकी भाँति यहीं रह ॥ ११६ ॥

ुत्रपीडोद्भवश्चापि न कोपः परमस्त्वयि ।
ममास्ति सखि भद्रं ते कर्तव्यं च कृतं त्वया ॥११७॥

'सखि ! तेरा कल्याण हो । पुत्रको पीड़ा देनेपर भी मैं रे ऊपर कुपित नहीं हुआ हूँ । तूने वही किया, जो करना चाहिये था' ॥ ११७ ॥

पूजनीयोवाच

आत्मौपम्येन जानामि पुत्रस्नेहं तवाप्यहम् ।
न चाहं वस्तुमिच्छामि तव पुत्रमचक्षुषम् ।
कृत्वा वै राजशार्दूल त्वद् गृहे कृतकिल्बिषा ॥११८॥

नृपश्रेष्ठ ! मैं अपने ही समान तुम्हारे पुत्र-प्रेमको भी जानती हूँ, अतः तुम्हारे पुत्रको नेत्रहीन करनेके कारण अपराधिनी होकर तुम्हारे घरमें रहना नहीं चाहती ॥ ११८ ॥

गाथाश्चाप्युशनोगीता इमाः शृणु मयेरिताः ।
कुमित्रं च कुदेशं च कुराजानं कुसौहृदम् ।
कुपुत्रं च कुभार्यां च दूरतः परिवर्जयेत् ॥११९॥

आप मुझसे शुक्राचार्यकी गायी हुई इन गाथाओंको सुनें, 'खोटे मित्र, खोटे देश, खोटे राजा, खोटे सुहृद्-बन्धु, खोटे पुत्र तथा खोटी भार्याको दूरसे ही त्याग देना चाहिये' ॥११९॥

कुमित्रे सौहृदं नास्ति कुभार्यायां कुतो रतिः ।
कुतः पिण्डः कुपुत्रे वै नास्ति सत्यं कुराजनि ॥१२०॥

खोटे मित्रमें प्रेम नहीं होता, कुभार्यासे सुख नहीं मिल सकता, कुपुत्रसे पिण्ड मिलना कठिन है और कुराजासे सत्य (न्याय) की आशा नहीं की जा सकती है ॥ १२० ॥

कुसौहृदे क्व विश्वासः कुदेशे न तु जीव्यते ।
कुराजनि भयं नित्यं कुपुत्रे सर्वतोऽसुखम् ॥१२१॥

कुमित्रपर भला विश्वास कैसे हो सकता है और कुदेशमें जीना भी सम्भव नहीं है । खोटे राजासे सर्वदा भय बना रहता है और कुपुत्रसे तो सब प्रकारसे दुःख ही मिलता है ॥ १२१ ॥

अपकारिणि विस्रम्भं यः करोति नराधमः ।
अनाथो दुर्बलो यद्वच्च चिरं स तु जीवति ॥१२२॥

जो अधम मनुष्य अपराधीपर विश्वास करता है, वह अनाथ और दुर्बल मनुष्यकी भाँति चिरकालतक जीवित नहीं रह सकता ॥ १२२ ॥

न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत् ।
विश्वासाद् भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ॥१२३॥

अविश्वासीका विश्वास न करे और विश्वासीपर भी अधिक विश्वास न करे; क्योंकि ऐसे लोगोंपर विश्वास करनेसे जो भय उत्पन्न होता है, वह जड़को भी काट डालता है ॥ १२३ ॥

राजसेविषु विश्वासं गर्भसंकरितेषु च ।
यः करोति नरो मूढो न चिरं स तु जीवति ॥१२४॥

जो मनुष्य राजसेवकों तथा संकर जातियोंपर विश्वास करता है, वह मूढ चिरकालतक जीवित नहीं रह सकता ॥ १२४ ॥

अप्युन्नतिं प्राप्य नरः प्रावारः कीटको यथा ।
स विनश्यत्यसंदेहमाहैवमुशना नृप ॥१२५॥

राजन् ! जैसे पंख निकलनेपर ऊपरको उड़ा हुआ चींटा मौतके मुखमें चला जाता है, उसी प्रकार ऐसे पुरुषोंपर विश्वाम रखनेवाला पुरुष भी मारा जाता है, इसमें कुछ संदेह नहीं है—ऐसा शुक्राचार्यका कथन है ॥ १२५ ॥

---

* मनुष्यको व्याकुल और विवेकहीन बना देनेवाली जो क्रोध आदिकी दश दशाएँ हैं, उनको दशधर्म कहते हैं। देखिये पृ० ४९ की टिप्पणी।

अपि मार्दवभावेन गात्रं संलीय बुद्धिमान्।
अरिं नाशयते नित्यं यथा वल्लिर्महाद्रुमम् ॥१२६॥

जैसे लता अपने शरीरको बचाये रखकर कोमलतासे महावृक्षका आलिङ्गन करके उसे सुखा देती है, उसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुष भी अपने शरीरकी सदा रक्षा करते हुए नम्रतापूर्वक शत्रुका नाश कर देते हैं ॥ १२६ ॥

मृदुरार्द्रः कृशो भूत्वा शनैः संलीयते रिपुः।
वल्मीक इव वृक्षस्य पश्चान्मूलानि कृन्तति ॥१२७॥

जैसे दीमक कृश होनेपर भी आर्द्र (स्निग्ध) हो वृक्षमें लगकर शनैः-शनैः उसकी जड़को काट डालता है, इसी प्रकार शत्रु दुर्बल होनेपर भी स्निग्ध बनकर (स्नेह दिखाकर) शरीरमें घुस आता (और अवसर पानेपर) जड़से उखाड़ फेंकता है ॥ १२७ ॥

अद्रोहसमयं कृत्वा मुनीनामग्रतो हरिः।
जघान नमुचिं पश्चादपां फेनेन पार्थिव ॥१२८॥

राजन् ! इन्द्रने मुनियोंके सामने द्रोह न करनेकी प्रतिज्ञा करके भी पीछे जलके फेनसे नमुचिको मार डाला था ॥ १२८ ॥

सुप्तं मत्तं प्रमत्तं वा घातयन्ति रिपुं नराः।
विषेण वह्निना वापि शस्त्रेणाप्यथ मायया ॥१२९॥

मनुष्य सोये हुए, मतवाले तथा उन्मत्त शत्रुको विष, अग्नि, शस्त्र अथवा छल-कपटसे भी मार डालते हैं ॥१२९॥

न च शेषं प्रकुर्वन्ति पुनर्वैरभयान्नराः।
घातयन्ति समूलं हि श्रुत्वेमामुपमां नृप ॥१३०॥

राजन् ! मनुष्य बार-बारके वैर होनेके भयसे शत्रुको शेष नहीं रखते, वे तो इस निम्नाङ्कित उपमाको सुनकर शत्रुको जड़से ही नष्ट कर डालते हैं॥ १३० ॥

शत्रुशेषमृणाच्छेषं शेषमग्नेश्च भूमिप।
पुनर्वर्धेत सम्भूय तस्माच्छेषं न शेषयेत् ॥१३१॥

भूपाल ! यदि शत्रुको, ऋणको अथवा अग्निको (थोड़ा-सा भी) बाकी रहने दिया जाय तो ये फिर इकट्ठा होकर बढ़ने लगते हैं, अतः इनके शेषको भी शेष न रहने दे ॥ १३१ ॥

हसते जल्पते वैरी एकपात्रे भुनक्ति च।
एकासनं चारोहति स्मरते तच्च किल्बिषम् ॥१३२॥

शत्रु यद्यपि एक साथ हँसता है, बोलता है, एक ही पात्रमें साथ-साथ भोजन भी करता है और एक ही आसनपर साथ-साथ बैठता है, तथापि पूर्व वैरका स्मरण तो करता ही रहता है ॥ १३२ ॥

कृत्वा सम्बन्धकं चापि विश्वसेच्छत्रुणा न हि।
पुलोमानं जघानाजौ जामाता सञ्शतक्रतुः ॥१३३॥

शत्रुसे सम्बन्ध करके भी उसके ऊपर विश्वास क्योंकि इन्द्रने जामाता (दामाद) होकर भी पुलोमा में मार डाला था ॥ १३३ ॥

निधाय मनसा वैरं प्रियं वक्तीह यो नरः।
उपसर्पेन्न तं प्राज्ञः कुरङ्ग इव लुब्धकम् ॥

जो मनुष्य मनमें वैरको छिपाये हुए प्रिय बातें बुद्धिमान् पुरुष (उसपर विश्वास करके) उसके जाय; ठीक उसी तरह, जैसे मृग बहेलियेके नि जाता ॥ १३४ ॥

न चासन्ने निवस्तव्यं सवैरे वर्धिते रिपौ।
पातयेत् तं समूलं हि नदीरय इव द्रुमम् ॥

यदि वैर रखनेवाला शत्रु बढ़ रहा हो तो उ निवास नहीं करना चाहिये; क्योंकि जैसे बढ़ती हुई वेग वृक्षको गिरा देता है, इसी प्रकार वह उसको उखाड़ डालता है ॥ १३५ ॥

अमित्रादुन्नतिं प्राप्य नोन्नतोऽस्मीति विश्वसेत्।
तस्मात् प्राप्योन्नतिं नश्येत् प्रावार इव कीटकः ॥

शत्रुसे उन्नति पानेपर 'मैं भी उन्नत हो गया हूँ विश्वास न करे। उससे उन्नति पानेपर भी मनुष्य प्रा (पाँखवाले चींटे) की तरह नष्ट हो जाता है ॥ १३६

इत्येता ह्युशनोगीता गाथा धार्या विपश्चिता।
कुर्वता चात्मरक्षां वै नरेण पृथिवीपते ॥

पृथ्वीनाथ ! विद्वान् पुरुष आत्मरक्षा करता हुआ चार्यकी गायी हुई इन गाथाओंको अपने मनमें स्मरण

मया सकिल्बिषं तुभ्यं प्रयुक्तमतिदारुणम्।
पुत्रमन्धं प्रकुर्वन्त्या तस्मान्नो विश्वसे त्वयि ॥

मैंने आपके पुत्रको अंधा बनाकर अति दारुण अपरा है, अतः अब मैं आपका विश्वास नहीं करूँगी ॥ १३८

एवमुक्त्वा प्रदुद्राव तदाऽऽकाशं पतङ्गिनी।
इत्येतत् ते मयाख्यातं पुराभूतमिदं नृप ॥
ब्रह्मदत्तस्य राजेन्द्र यद् वृत्तं पूजनीयया।

राजन् ! इस प्रकार कहकर वह चिड़िया आका गयी। राजेन्द्र ! प्राचीन कालमें ब्रह्मदत्तका पूजनीयाके संवाद हुआ था, वह मैंने तुमसे कह दिया ॥१३९½

श्राद्धं च पृच्छसे यन्मां युधिष्ठिर महामते ॥
अतस्ते वर्तयिष्येऽहमितिहासं पुरातनम्।
गीतं सनत्कुमारेण मार्कण्डेयाय पृच्छते ॥

महामति युधिष्ठिर! अब तुम जिस श्राद्ध-विषयको पूछ रहे थे, उसे सुनाता हूँ। मार्कण्डेयजीके सनत्कुमारजीने जो कुछ कहा था, उसी प्राचीन

के शेष भाग) को मैं तुमसे कहूँगा ॥ १४०–१४१ ॥

ाद्धस्य फलमुद्दिश्य नियतं सुकृतस्य च।
न्निबोध महाराज सप्तजातिषु भारत ॥१४२॥
गालवस्य चरितं कण्डरीकस्य चैव हि।
ह्मदत्ततृतीयानां योगिनां ब्रह्मचारिणाम् ॥१४३॥

महाराज ! भरतनन्दन ! भलीभाँति किये गये श्राद्धके नियत पुण्यफलको लक्ष्यमें रखकर कहे गये, गालव, कण्डरीक और तीसरे ब्रह्मदत्त—इन ब्रह्मचारी योगियोंके सातों जन्मोंके चरित्रको तुम सावधान होकर सुनो ॥ १४२-१४३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पूजनीयोपाख्याने चटकाख्यानं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पूजनीयोपाख्यानमें चटक (चिड़िये) की कथा नामक वीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥

* * *

एकविंशोऽध्यायः

पितृकल्प—मार्कण्डेयजीद्वारा श्राद्धकी महिमाका वर्णन, श्राद्धके फलसे कौशिक-पुत्रोंको उत्तम जन्मकी प्राप्ति

मार्कण्डेय उवाच

ाद्धे प्रतिष्ठितो लोकः श्राद्धे योगः प्रवर्तते।
न्त ते वर्तयिष्यामि श्राद्धस्य फलमुत्तमम् ॥ १ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—यह सारा संसार श्राद्धमें ही तिष्ठित है और श्राद्धसे ही योग सम्पन्न होता है। अतः मैं ुमसे श्राद्धके उत्तम फलका वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥

ब्रह्मदत्तेन यत् प्राप्तं सप्तजातिषु भारत।
तत एव हि धर्मस्य बुद्धिर्निर्वर्तते शनैः ॥ २ ॥

भारत ! ब्रह्मदत्तने (भारद्वाज, कौशिक, व्याध, मृग, वक्रवाक, हंस और श्रोत्रिय—इन) सात जन्मोंमें जो (श्राद्ध) र्मका फल पाया था, उसको सुननेसे शनैः-शनैः र्म-बुद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ २ ॥

पीडयाप्यथ धर्मस्य कृते श्राद्धे परानघ।
यत् प्राप्तं ब्राह्मणैः पूर्वं तन्निबोध महामते ॥ ३ ॥

निष्पाप महामते ! प्राचीन कालमें कुछ ब्राह्मणोंने (हिंसारूपी अधर्मके द्वारा) धर्मको पीड़ित करनेपर भी श्राद्ध करके जो फल पाया था, उसे तुम सुनो ॥ ३ ॥

ततोऽहं तानधर्मिष्ठान् कुरुक्षेत्रे पितृव्रतान्।
सनत्कुमारनिर्दिष्टानपश्यं सप्त वै द्विजान् ॥ ४ ॥
दिव्येन चक्षुषा तेन यानुवाच पुरा विभुः।

विभु सनत्कुमारजीने जिनका वर्णन किया था, मैंने अपने दिव्य नेत्रसे सनत्कुमारजीके बताये हुए उन सात ब्राह्मणोंको अधर्ममें परायण होनेपर भी कुरुक्षेत्रमें श्राद्ध करते देखा ॥ ४½ ॥

वाग्दुष्टः क्रोधनो हिंस्रः पिशुनः कविरेव च।
खसृमः पितृवर्ती च नामभिः कर्मभिस्तथा ॥ ५ ॥

उनके नाम इस प्रकार थे—वाग्दुष्ट, क्रोधन, हिंस्र, पिशुन, कवि, खसृम (ख अर्थात् आकाशमें सरण करने—विचरनेके स्वभाववाला परलोकार्थी) और पितृवर्ती। जैसे उनके नाम थे, वैसे ही उनके कर्म थे ॥ ५ ॥

कौशिकस्य सुतास्तात शिष्या गार्ग्यस्य भारत।
पितर्युपरते सर्वे व्रतवन्तस्तदाभवन् ॥ ६ ॥

तात ! भारत ! वे कौशिक (विश्वामित्र) के पुत्र थे और जब इनके पिता विश्वामित्र* शाप देकर उदासीन हो गये, तब वे सभी गार्ग्यके शिष्य बनकर (ब्रह्मचर्य) व्रतका पालन करनेके लिये उनके यहाँ रहने लगे ॥ ६ ॥

विनियोगाद् गुरोस्तस्य गां दोग्ध्रीं समकालयन्।
समानवत्सां कपिलां सर्वे न्यायागतां तदा ॥ ७ ॥
तेषां पथि क्षुधार्तानां बाल्यान्मोहाच्च भारत।
क्रूरा बुद्धिः समभवत् तां गां वै हिंसितुं तदा ॥ ८ ॥

भारत ! एक समय वे सब गुरुके आज्ञा देनेपर उनकी दुधार कपिला गौ और उसके कपिल वर्णके बछड़ेको वनमें चरानेके लिये ले गये। वह गौ गुरु गार्ग्यको न्यायतः प्राप्त हुई थी। मार्गमें क्षुधासे पीड़ित होनेके कारण उन्होंने मोह और मूर्खताके कारण गौको मारनेका क्रूर विचार किया ॥ ७-८ ॥

तान् कविः खसृमश्चैव याचेते नेति वै तदा।
न चाशक्यन्त ते ताभ्यां तदा वारयितुं द्विजाः ॥ ९ ॥

---

* विश्वामित्रने अपने पचास पुत्रोंको शाप देते हुए कहा था—तुम्हारे वंशका अन्त हो जाय, तुम अपनी प्रजाका भक्षण करो अर्थात् अब तुम्हारे पुत्र आदि ब्राह्मण नहीं कहलायेंगे। इस प्रकार तुम अपनी प्रजा (के ब्राह्मणत्व) का भक्षण करोगे। उन पचास पुत्रोंमेंसे ये वाग्दुष्ट आदि भी हैं। सुना जाता है कि अन्ध्र, पुण्ड्र आदि भी इनकी ही संतानें हैं। (नीलकण्ठी)

उस समय कवि और खसृमने उनसे ऐसा न करनेकी प्रार्थना की; परंतु वे ब्राह्मण इनके द्वारा किसी प्रकार भी रोके न जा सके ॥ ९ ॥

पितृवर्ती तु यस्तेषां नित्यं श्राद्धाह्निको द्विजः।
स सर्वानब्रवीद् भ्रातॄन् कोपाद्धर्मे समाहितः ॥ १० ॥

तब उनमें जो प्रतिदिन श्राद्ध करनेवाला धर्मात्मा पितृवर्ती नामक द्विज था, वह उन सब भाइयोंसे बिगड़कर बोला ॥ १० ॥

यद्यवश्यं प्रहन्तव्या पितॄनुद्दिश्य साध्विमाम्।
प्रकुर्वीमहि गां सम्यक् सर्व एव समाहिताः ॥ ११ ॥

'यदि इसे अवश्य ही मारना है तो हमें चित्तको सावधानकर इसे पितरोंके निमित्त ही मारना चाहिये ॥ ११ ॥

एवमेषापि गौर्धर्मं प्राप्स्यते नात्र संशयः।
पितॄनभ्यर्च्य धर्मेण नाधर्मोऽस्मान् भविष्यति ॥ १२ ॥

'ऐसा करनेसे इस गौको भी निस्संदेह धर्मकी प्राप्ति होगी और धर्मपूर्वक पितरोंका पूजन कर देनेसे हमें भी अधर्म न लगेगा' ॥ १२ ॥

तथेत्युक्त्वा च ते सर्वे प्रोक्षयित्वा च गां ततः।
पितृभ्यः कल्पयित्वैनामुपायुञ्जन्त भारत ॥ १३ ॥

भारत ! तब उन सबने 'तथास्तु' कहकर गौका प्रोक्षण किया और उसको पितरोंके निमित्त अर्पित करके उसका मनमाना उपयोग किया ॥ १३ ॥

उपयुज्य च गां सर्वे गुरोस्तस्य न्यवेदयन्।
शार्दूलेन हता धेनुर्वत्सोऽयं गृह्यतामिति ॥ १४ ॥

गौको उपयोगमें लाकर उन सबोंने गुरुजीसे निवेदन किया कि 'गायको तो सिंहने मार डाला, यह उसका बछड़ा है, इसे आप ग्रहण कीजिये' ॥ १४ ॥

आर्जवात् स तु तं वत्सं प्रतिजग्राह वै द्विजः।
मिथ्योपचर्य ते तं तु गुरुमन्यायतो द्विजाः।
कालेन समयुज्यन्त सर्वे एवायुषः क्षये ॥ १५ ॥

सरलस्वभाव होनेके कारण उन ब्राह्मणने भी उस बछड़ेको ग्रहण कर लिया। इस प्रकार वे ब्राह्मण अन्यायद्वारा अपने गुरुको धोखा देकर आयु समाप्त होनेपर मृत्युको प्राप्त हुए ॥ १५ ॥

ते वै क्रूरतया हिंस्रा अनार्यत्वाद् गुरौ तथा।
उग्रा हिंसाविहाराश्च सप्ताजायन्त सोदराः ॥ १६ ॥

तत्पश्चात् अपनी क्रूरता और गुरुसे अनार्यताका व्यवहार करनेके कारण वे सात भाई उग्र स्वभाववाले, हिंसाविहारी व्याध बनकर उत्पन्न हुए ॥ १६ ॥

लुब्धकस्यात्मजास्तात बलवन्तो मनस्विनः।
पितॄनभ्यर्च्य धर्मेण प्रोक्षयित्वा च गां तदा ॥ १७ ॥

स्मृतिः प्रत्यवमर्शश्च तेषां जात्यन्तरेऽभवत्।
जाता व्याधा दशार्णेषु सप्त धर्मविचक्षणाः ॥

तात ! उस समय वे एक बहेलियेके बलवान् एवं पुत्र हुए। उन्होंने धर्मतः पितरोंका पूजनकर गौका किया था; इसलिये दूसरा जन्म पानेपर भी उनको पूर्वजन्म और पूर्वजन्ममें किये हुए कर्मोंका स्मरण बना वे सातों दशार्ण देशमें धर्मकुशल व्याध बनकर हुए थे ॥ १७-१८ ॥

स्वकर्मनिरताः सर्वे लोभानृतविवर्जिताः।
तावन्मात्रं प्रकुर्वन्ति यावता प्राणधारणम् ॥

वे सब लोभ और असत्यसे दूर रहते हुए अपने तत्पर रहते थे और उतना ही भोजन करते थे, प्राण टिके रहें ॥ १९ ॥

शेषं ध्यानपराः कालमनुध्यायन्ति कर्म तत्।
नामधेयानि चाप्येषामिमान्यासन्नराधिप ॥

राजन् ! उनके पास जो समय बचता था, उसमें हो वे अपने (पूर्वजन्मके) कर्मका चिन्तन करते रहते जन्ममें उनके नाम इस प्रकार थे—॥ २० ॥

निर्वैरो निर्वृतिः शान्तो निर्मन्युः कृतिरेव च।
वैधसो मातृवर्ती च व्याधाः परमधार्मिकाः ॥

निर्वैर, निर्वृति, शान्त, निर्मन्यु, कृति, वैधस मातृवर्ती। ये सभी व्याध परम धार्मिक थे ॥ २१ ॥

तैरवमुषितैस्तात हिंसाधर्मरतैः सदा।
माता च पूजिता वृद्धा पिता च परितोषितः ॥

तात ! इस प्रकार वे दशार्णदेशमें रहकर हिंसा धर्मका पालन करते रहते थे। वे अपनी वृद्धा माताका करते थे और पिताको भी संतुष्ट रखते थे ॥ २२ ॥

यदा माता पिता चैव संयुक्तौ कालधर्मणा।
तदा धनूंषि ते त्यक्त्वा वने प्राणानवासृजन् ॥

जब उनके माता-पिता मर गये, तब उन्होंने अपने धनुषका परित्याग कर वनमें (अनशन आदिके अपने प्राण त्याग दिये ॥ २३ ॥

शुभेन कर्मणा तेन जाता जातिस्मरा मृगाः।
त्रासानुत्पाद्य संविग्ना रम्ये कालञ्जरे गिरौ ॥

(माता-पिताकी सेवारूप) शुभ कर्मके कारण वे जन्मका स्मरण रखनेवाले मृग बनकर उत्पन्न हुए। (हिंसाके द्वारा दूसरोंको) त्रास देनेके कारण वे कालञ्जर पर्वतपर सदा उद्विग्न रहते थे ॥ २४ ॥

उन्मुखो नित्यवित्रस्तः स्तब्धकर्णो विलोचनः।
पण्डितो घस्मरो नादी नामतस्तेऽभवन् मृगाः ॥

उन मृगोंके नाम उन्मुख, नित्यवित्रस्त, स्तब्धकर्ण, लोचन, पण्डित, घस्मर और नादी थे ॥ २५ ॥

मेवार्थमनुध्यान्तो जातिस्मरणसम्भवम् ।
ासन् वनचराः क्षान्ता निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः॥ २६ ॥

(उस जन्ममें भी) पूर्व जन्मकी स्मृति होनेसे याद ाये हुए उन्हीं कर्मों और उनके फलोंका स्मरण करते हुए मृग धैर्यपूर्वक कष्ट सहन करते, शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वोंकी रवा नहीं करते और परिग्रह (हिरनियोंके संग) से दूर हकर वनमें घूमते रहते थे ॥ २६ ॥

सर्वे शुभकर्माणः सधर्माणो वनेचराः ।
ोगधर्ममनुप्राप्ता विहरन्ति स्म तत्र ह ॥ २७ ॥

वे सब समानरूपसे धर्मका पालन करते और शुभकर्मोंमें त्पर रहते थे एवं योगधर्मका आश्रय लेकर (आत्मविचार रते हुए) वनमें इधर-उधर घूमते रहते थे ॥ २७ ॥

हुः प्राणान्मरुं साध्य लघ्वाहारास्तपस्विनः ।
षां मरुं साधयतां पदस्थानानि भारत ।
थैवाद्यापि दृश्यन्ते गिरौ कालञ्जरे नृप ॥ २८ ॥

भारत ! उन मृगोंने हल्का आहार तथा मरु (निर्जल रहने) ी साधना करके तपस्यामें तत्पर हो वहाँ अपने प्राण त्याग ये । राजन् ! जल न पीनेकी साधना करनेवाले उन ृगोंके पैरोंके चिह्न कालञ्जर पर्वतपर अब भी पूर्ववत् खायी देते हैं ॥ २८ ॥

र्मणा तेन ते तात शुभेनाशुभवर्जिताः ।
ुभाच्छुभतरां योनिं चक्रवाकत्वमागताः ॥ २९ ॥

तात ! इस शुभ कर्मके कारण वे अशुभ योनिसे छूटकर तिशुभ चक्रवाककी योनिमें उत्पन्न हुए ॥ २९ ॥

ुभे देशे शरद्वीपे सप्तैवासञ्जलौकसः ।
यक्त्वा सहचरीधर्मं मुनयो ब्रह्मचारिणः ॥ ३० ॥

वे सातों कल्याणमय शरद्वीप (जलद्वीप) में जलचर क्षी बनकर उत्पन्न हुए । वहाँ भी वे सहचरीधर्म अर्थात् हवासका त्यागकर ब्रह्मचारी मुनि बनकर रहने लगे ॥ ३० ॥

ेःस्पृहो निर्ममः क्षान्तो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ।
ेर्वृत्तिर्निभृतश्चैव शकुना नामतः स्मृताः ॥ ३१ ॥

(इस चक्रवाक-जन्ममें) उनके नाम निःस्पृह, निर्मम, ान्त, निर्द्वन्द्व, निष्परिग्रह, निर्वृत्ति और निभृत थे ॥ ३१ ॥

े तत्र पक्षिणः सर्वे शकुना धर्मचारिणः ।
ेराहारा जहुः प्राणांस्तपोयुक्ताः सरित्तटे ॥ ३२ ॥

उन सब धर्माचारी पक्षियोंने नदीके किनारेपर निराहार हकर तप करते-करते अपने प्राणोंको त्याग दिया ॥ ३२ ॥

थ ते सोदरा जाता हंसा मानसचारिणः ।
ातिस्मराः सुसंयुक्ताः सप्तैव ब्रह्मचारिणः ॥ ३३ ॥

तदनन्तर वे सातों सहोदर भाई मानसरोवरपर विचरनेवाले हंसके रूपमें उत्पन्न हुए । इस जन्ममें भी उनको अपने (पूर्व) जन्मोंका स्मरण बना रहता था । अतः वे सातों ही सदा साथ रहकर पूर्णरूपसे ब्रह्मचर्यका पालन करते थे ॥ ३३ ॥

विप्रयोनौ यतो मोहान्मिथ्योपचरितो गुरुः ।
तिर्यग्योनौ ततो जाताः संसारे परिबभ्रमुः ॥ ३४ ॥

उन्होंने ब्राह्मणयोनिमें मोहवश अपने गुरुसे मिथ्या-भाषण किया था, इसलिये वे तिर्यक्योनिमें उत्पन्न होकर संसारमें भटक रहे थे ॥ ३४ ॥

यतश्च पितृवाक्यार्थः कृतः स्वार्थे व्यवस्थितैः ।
ततो ज्ञानं च जातिं च ते हि प्रापुर्गुणोत्तराम् ॥ ३५ ॥

स्वार्थमें तत्पर रहनेपर भी उन्होंने पितरोंके श्राद्धनिमित्त संकल्प बोलकर कार्य किया था, इसलिये उन्हें उत्तरोत्तर उत्कृष्ट गुणसे युक्त ज्ञान और जन्म मिलता गया ॥ ३५ ॥

सुमनाः शुचिवाक्छुद्धः पञ्चमश्छिद्रदर्शनः ।
सुनेत्रश्च स्वतन्त्रश्च शकुना नामतः स्मृताः ॥ ३६ ॥

(इस जन्ममें) उन हंसोंके नाम थे—सुमना, शुचिवाक्, शुद्ध, पञ्चम, छिद्रदर्शन, सुनेत्र और स्वतन्त्र ॥ ३६ ॥

पञ्चमः पाञ्चिकस्तत्र सप्तजातिष्वजायत ।
षष्ठस्तु कण्डरीकोऽभूद् ब्रह्मदत्तस्तु सप्तमः ॥ ३७ ॥

उन (वाग्दुष्ट आदि कौशिक-पुत्रों) में जो पाँचवाँ (कवि) था, वह भावी सातवें जन्ममें पाञ्चिक (नामक राजमन्त्री) हुआ । छठा (खसृम भावी मनुष्य-जन्ममें) कण्डरीक हुआ और सातवाँ (पितृवर्ती भावी सातवें जन्ममें) ब्रह्मदत्त हुआ ॥ ३७ ॥

तेषां तु तपसा तेन सप्तजातिकृतेन वै ।
योगस्य चापि निर्वृत्त्या प्रतिभानाच्च शोभनात् ॥ ३८ ॥
पूर्वजातिषु यद् ब्रह्म श्रुतं गुरुकुलेषु वै ।
तथैवावस्थिता बुद्धिः संसारेष्वपि वर्तताम् ॥ ३९ ॥

उन्होंने सातों जन्मोंमें जो तप किया, उससे, योगसिद्धिसे, पूर्वजन्मके कर्मोंकी स्मृति होनेसे तथा पूर्वजन्ममें गुरुकुलमें रहकर जो वेदाध्ययन किया गया था, उसके प्रभावसे संसारमें भ्रमण करनेपर भी उनकी बुद्धि वैसी ही बनी रही, बदली नहीं ॥ ३८-३९ ॥

ते ब्रह्मचारिणः सर्वे विहङ्गा ब्रह्मवादिनः ।
योगधर्ममनुध्यान्तो विहरन्ति स्म तत्र ह ॥ ४० ॥

वे सभी आकाशचारी हंस ब्रह्मचारी तथा ब्रह्मवादी होकर योगधर्मका पालन करते हुए विचरते रहे ॥ ४० ॥

तेषां तत्र विहङ्गानां चरतां सहचारिणाम् ।
नीपानामीश्वरो राजा विभ्राजः पौरवान्वयः ॥ ४१ ॥

विभ्राजमानो वपुषा प्रभावेन समन्वितः।
श्रीमानन्तःपुरवृतो वनं तत्प्रविवेश ह ॥ ४२ ॥

इस प्रकार वे सब पक्षी वहाँ साथ-साथ विचर रहे थे, इतनेहीमें नीपोंका स्वामी पौरववंशी श्रीमान् विभ्राज अपने शरीरकी कान्तिसे प्रकाशित होता और अपना प्रभाव दिखाता हुआ अपने अन्तःपुरको लेकर उस वनमें आया ॥ ४१-४२ ॥

स्वतन्त्रश्च विहङ्गोऽसौ स्पृहयामास तं नृपम्।
दृष्ट्वाऽऽयान्तं श्रियोपेतं भवेयमहमीदृशः ॥ ४३ ॥
यद्यस्ति सुकृतं किञ्चित्तपो वा नियमोऽपि वा।
खिन्नोऽऽस्मि ह्युपवासेन तपसा निष्फलेन च ॥

तब स्वतन्त्र नामवाले हंसने वहाँ आये हुए उ वान् राजाको देखकर उसके समान बननेकी की। (वह विचारने लगा कि) यदि मेरे पास पुण्य, तप या नियम हो, तो मैं इस राजाके समान अब मैं इस उपवास और निष्फल तपसे रहा हूँ ॥ ४३-४४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पितृकल्पे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पितृकल्पविषयक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

पितृकल्प, शुचिवाक् पक्षीका स्वतन्त्र आदि तीन पक्षियोंको शाप देना, सुमना पक्षीका अनुग्रहपूर्वक उन्हें शापसे मुक्त करना

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तं चक्रवाकौ द्वावूचतुः सहचारिणौ।
आवां ते सचिवौ स्यावस्तव प्रियहितैषिणौ ॥ १ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—उस समय उस स्वतन्त्र पक्षीके साथमें रहनेवाले दो चक्रवाकोंने उससे कहा,—हम आपका प्रिय एवं हित चाहनेवाले आपके मन्त्री बनेंगे ॥ १ ॥

तथेत्युक्त्वा च तस्यासीत् तदा योगात्मिका मतिः।
एवं ते समयं चक्रुः शुचिवाक् तमुवाच ह ॥ २ ॥

तब स्वतन्त्रने कहा, 'बहुत अच्छा'। यों कहकर वह पुनः अपने योगधर्मका विचार करने लगा। जब इस प्रकार उन तीनोंने प्रतिज्ञा कर ली, तब शुचिवाक्ने उस (स्वतन्त्र) से कहा ॥ २ ॥

यस्मात् कामप्रधानस्त्वं योगधर्ममपास्य वै।
एवं वरं प्रार्थयसे तस्माद् वाक्यं निबोध मे ॥ ३ ॥

तू योगधर्मको छोड़कर कामप्रधान धर्मकी कामनासे ऐसा वर माँग रहा है, इसलिये तू मेरा यह शाप सुन ले ॥ ३ ॥

राजा त्वं भविता तात काम्पिल्ये नात्र संशयः।
भविष्यतः सखायौ च द्वाविमौ सचिवौ तव ॥ ४ ॥

तात! तू काम्पिल्य नगरका राजा बनकर उत्पन्न होगा, इसमें संदेह नहीं। तेरे ये दोनों मित्र भी तेरे मन्त्री बनकर उत्पन्न होंगे ॥ ४ ॥

शप्त्वा चानभिभाष्यांस्तांश्चत्वारश्चक्रुरण्डजाः।
तांस्त्रीनभीप्सतो राज्यं व्यभिचारप्रदर्शितान् ॥ ५ ॥

(इस प्रकार) शेष चार पक्षियोंने राज्यकी इच्छा करके योगधर्मसे भ्रष्ट होनेवाले उन तीन पक्षियोंको शाप देके बोलना भी छोड़ दिया ॥ ५ ॥

शप्ताः खगास्त्रयस्ते तु योगभ्रष्टा विचेतसः।
तानयाचन्त चतुरस्त्रयस्ते सहचारिणः।

इस प्रकार योगभ्रष्ट होनेके कारण शापसे ग्रस्त तीनों पक्षी डरके मारे अचेत हो गये। उन तीनों साथि पक्षियोंसे (शापका अनुग्रह करनेकी) प्रार्थना की।

तेषां प्रसादं ते चक्रुरथैतान् सुमनाऽब्रवीत्।
सर्वेषामेव वचनात्प्रसादानुगतं वचः।

तब उन्होंने उनके ऊपर कृपा की और सबकी सुमनाने अनुग्रहपूर्वक यह बात कही— ॥ ७ ॥

अन्तवान् भविता शापो युष्माकं नात्र संशयः।
इतश्च्युताश्च मानुष्यं प्राप्य योगमवाप्स्यथ।

'इसमें संदेह नहीं कि तुम्हारे इस शापका शीघ्र होगा। यहाँ योगसे भ्रष्ट होकर तुम मनुष्ययोनिमें उ और अन्तमें फिर तुम्हें योगज्ञान प्राप्त होगा ॥ ८ ॥

सर्वसत्त्वरुतज्ञश्च स्वतन्त्रोऽयं भविष्यति।
पितृप्रसादो ह्यस्माभिरस्य प्राप्तः कृतेन वै।
गां प्रोक्षयित्वा धर्मेण पितृभ्य उपकल्प्यताम्।
अस्माकं ज्ञानसंयोगः सर्वेषां योगसाधनः।

'यह स्वतन्त्र नामक हंस सब जीवोंकी बोली सम होगा। पूर्वजन्ममें इसीके कथनानुसार कार्य क पितरोंकी कृपा प्राप्त हुई। इसने कहा था कि 'गौका करके इसे पितरोंको अर्पित किया जाय।' इसीके पाल सबको योगसाधक ज्ञानकी प्राप्ति हुई है ॥ ९-१० ॥

मं च वाक्यसंदर्भश्लोकमेकमुदाहृतम् ।
रुषान्तरितं श्रुत्वा ततो योगमवाप्स्यथ ॥ ११ ॥

उस मनुष्य-जन्ममें जब कोई पुरुष तुम्हें यह आगे बताया जानेवाला वाक्य संदर्भरूप ('सप्तव्याधा दशार्णेषु' आदि)* श्लोक सुनावेगा, तब तुम्हें यह मोक्ष देनेवाला ज्ञानमय योग-धर्म फिर प्राप्त हो जायगा ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पितृकल्पे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पितृकल्पविषयक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

त्रयोविंशतितमोऽध्यायः

हंसोंका काम्पिल्यनगरमें ब्रह्मदत्त आदिके रूपमें उत्पन्न होना और चार हंसोंका अपने पितासे आज्ञा लेकर मुक्त हो जाना

मार्कण्डेय उवाच

योगधर्मनिरताः सप्त मानसचारिणः ।
द्मगर्भोऽरविन्दाक्षः क्षीरगर्भः सुलोचनः ॥ १ ॥
रुबिन्दुः सुबिन्दुश्च हैमगर्भस्तु सप्तमः ।
य्वम्बुभक्षाः सततं शरीराण्युपशोषयन् ॥ २ ॥

मार्कण्डेयजीने कहा—तदनन्तर, योगधर्ममें निरत नेवाले उन सात मानसचारी हंसोंने, जो पद्मगर्भ, अरविन्दाक्ष, रगर्भ, सुलोचन, उरुबिन्दु, सुबिन्दु और हैमगर्भ नाम रण करते थे, केवल जल और वायुका ही भक्षण करके पने शरीरको सुखाना आरम्भ कर दिया ॥ १-२ ॥

जा विभ्राजमानस्तु वपुषा तद् वनं तदा ।
चारान्तःपुरवृतो नन्दनं मघवानिव ॥ ३ ॥

इधर वह राजा अपने शरीरसे प्रकाश फैलाता हुआ पनी स्त्रियोंको साथ ले उस वनमें इस प्रकार घूमने लगा, ने नन्दनवनमें इन्द्र घूमते हों ॥ ३ ॥

तानपश्यत्खचरान् योगधर्मात्मकान् नृप ।
वैंदाच्च तमेवार्थमनुध्यायन् पुरं ययौ ॥ ४ ॥

राजन् ! उस राजाने उन पक्षियोंको (एकाग्रता आदि य लक्षणोंसे) योगधर्ममें परायण देखा । इससे वह (पक्षी योगसाधन करते हैं । हाय ! मैं मनुष्य होकर भी योग-धन न कर सका । इस प्रकार) कुछ निर्विण्ण होकर, उसी तको सोचता हुआ अपने नगरको चला गया ॥ ४ ॥

णुहो नाम तस्याऽऽसीत्पुत्रः परमधार्मिकः ।
णुधर्मरतिर्नित्यमणुं सोऽध्यगमत्पदम् ॥ ५ ॥

उसके अणुह† नामक परम धार्मिक पुत्र था । वह अणुह र्मके सूक्ष्म तत्त्वके चिन्तनमें अनुरक्त था । इसलिये उसे णुपद (ब्रह्मके सूक्ष्म स्वरूपका बोध) प्राप्त हुआ था ॥ ५ ॥

प्रादात्कन्यां शुकस्तस्मै कृत्वीं पूजितलक्षणाम् ।
सत्यशीलगुणोपेतां योगधर्मरतां सदा ॥ ६ ॥

उसको शुकने श्रेष्ठ लक्षणोंवाली सत्यशील एवं अन्यान्य गुणोंसे सम्पन्न और सदा योगधर्मका पालन करनेवाली अपनी कन्या कृत्वी अर्पित की थी ॥ ६ ॥

सा ह्युद्दिष्टा पुरा भीष्म पितृकन्या मनीषिणी ।
सनत्कुमारेण तदा संनिधौ मम शोभना ॥ ७ ॥

भीष्म ! जैसा कि सनत्कुमारजीने पहले मुझे बताया था, वह सुन्दरी कन्या कृत्वी पितरोंकी ही बुद्धिमती कन्या (पीवरी) थी ॥ ७ ॥

सत्यधर्मभृतां श्रेष्ठा दुर्विज्ञेया कृतात्मभिः ।
योगा च योगपत्नी च योगमाता तथैव च ॥ ८ ॥

वह सत्यधर्मका पालन करनेवाली नारियोंमें श्रेष्ठ थी । पुण्यात्मा पुरुष भी उसके स्वरूपको बड़ी कठिनतासे समझ सकते थे । वह स्वयं तो योगिनी थी ही, योगीकी ही पत्नी और योगीकी ही माता भी थी ॥ ८ ॥

यथा ते कथितं पूर्वं पितृकल्पेषु वै मया ।
विभ्राजस्त्वणुहं राज्ये स्थापयित्वा नरेश्वरः ॥ ९ ॥
आमन्त्र्य पौरान् प्रीतात्मा ब्राह्मणान् स्वस्ति वाच्य च ।
प्रायात् सरस्तपश्चर्तुं यत्र ते सहचारिणः ॥ १० ॥

मैंने पहले पितृ-कल्पके समय ये सब बातें तुम्हें बतायी थीं । राजा विभ्राज अणुहको राज्यसिंहासनपर बैठाकर प्रसन्न-चित्त हो पुरवासियोंसे विदा ले ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर जहाँ वे सहचारी हंस रहते थे, उस सरोवरपर तप करनेके लिये चले गये ॥ ९-१० ॥

स वै तत्र निराहारो वायुभक्षो महातपाः ।
त्यक्त्वा कामांस्तपस्तेपे सरसस्तस्य पार्श्वतः ॥ ११ ॥

वे उस सरोवरके तटपर सब कामनाओंको त्याग निराहार रह वायुको ही पीकर तपस्या करने लगे ॥ ११ ॥

---

* 'सप्तव्याधा दशार्णेषु' आदि वाक्य चौबीसवें अध्यायका बीसवाँ और इक्कीसवाँ श्लोक है ।

† अणुह शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—(अणून्—सूक्ष्मान् अर्थात् हन्ति प्राप्नोतीति अणुहः—सूक्ष्म तत्त्वोंको समझनेकी शक्तिवाला)

तस्य संकल्प आसीच्च तेषामेकतरस्य वै ।
पुत्रत्वं प्राप्य योगेन युज्येयमिति भारत ॥ १२ ॥

भारत ! उनका यह संकल्प था कि मैं इन (योगी हंसोंमेंसे) किसी एकका पुत्र बनकर उत्पन्न होऊँ तो मैं भी योगधर्मका पालन कर सकूँगा ॥ १२ ॥

कृत्वाभिसन्धिं तपसा महता स समन्वितः ।
महातपाः स विभ्राजो विरराजांशुमानिव ॥ १३ ॥

इस प्रकार विचार करके वे महातपस्वी विभ्राज बड़ा भारी तप करके सूर्यके समान सुशोभित होने लगे ॥ १३ ॥

ततो विभ्राजितं तेन वैभ्राजं नाम तद्वनम् ।
सरस्तच्च कुरुश्रेष्ठ वैभ्राजमिति संज्ञितम् ॥ १४ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! उन्होंने (अपने तपसे) उस वनको विभ्राजित (प्रकाशित) कर दिया । इसलिये वह सरोवर और वह वन भी वैभ्राज सरोवर और वैभ्राज वनके नामसे प्रसिद्ध हो गये ॥ १४ ॥

तत्र ते शकुना राजंश्चत्वारो योगधर्मिणः ।
योगभ्रष्टास्त्रयश्चैव देहन्यासकृतोऽभवन् ॥ १५ ॥

राजन् ! (इसी समय) उस सरोवरपर उन योगधर्मका पालन करनेवाले चार हंसोंने तथा योगभ्रष्ट तीन हंसोंने भी अपने शरीरको त्याग दिया ॥ १५ ॥

काम्पिल्ये नगरे ते तु ब्रह्मदत्तपुरोगमाः ।
जाताः सप्त महात्मानः सर्वे विगतकल्मषाः ॥ १६ ॥

वे सातों निष्पाप महात्मा काम्पिल्य नगरमें ब्रह्मदत्त आदि (नामोंसे) उत्पन्न हुए ॥ १६ ॥

ज्ञानध्यानतपःपूजावेदवेदाङ्गपारगाः ।
स्मृतिमन्तोऽत्र चत्वारस्त्रयस्तु परिमोहिताः ॥ १७ ॥

ये सब ज्ञान, ध्यान, तप और पूजामें लगे रहते थे और वेद-वेदाङ्गके पारगामी विद्वान् थे । इनमें चारको तो अपने पूर्व-जन्मोंका स्मरण था और तीन शापसे मोहित होनेके कारण अपने पूर्वजन्मकी स्मृतिसे वञ्चित थे ॥ १७ ॥

स्वतन्त्रस्त्वणुहाज्जज्ञे ब्रह्मदत्तो महायशाः ।
यथा ह्यासीत्पक्षिभावे संकल्पः पूर्वचिन्तितः ।
ज्ञानध्यानतपःपूतो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ १८ ॥

स्वतन्त्रने अपने पक्षी-शरीरमें जैसा संकल्प किया था, उसीके अनुसार वह अणुहके महायशस्वी पुत्र ब्रह्मदत्तके रूपमें उत्पन्न हुआ । वह ज्ञान, ध्यान और तप करके पवित्र हो गया था तथा वेद और वेदाङ्गका पारगामी विद्वान् था ॥ १८ ॥

छिद्रदर्शी सुनेत्रश्च तथा बाभ्रव्यवत्सयोः ।
जातौ श्रोत्रियदायादौ वेदवेदाङ्गपारगौ ॥ १९ ॥

बाभ्रव्य और वत्स—(ये दोनों वहाँ राजा अणुहके मन्त्री तथा श्रोत्रिय ब्राह्मण थे ।) छिद्रदर्शन और सुनेत्र नामक हंस उन्हीं श्रोत्रिय राजमन्त्रियोंके कुलमें वेद-वेदाङ्गके श्रोत्रिय पुत्र बनकर उत्पन्न हुए ॥ १९ ॥

सहायौ ब्रह्मदत्तस्य पूर्वजातिसहोषितौ ।
पाञ्चालः पाञ्चिकश्चैव कण्डरीकस्तथापरः ।

ये दोनों पहले जन्ममें ब्रह्मदत्तके साथ रहे थे औ सहायता करनेके लिये उत्पन्न हुए थे । (इनमें जो पू जन्मोंमें अपने सात भाइयोंमेंसे) पाँचवाँ (होकर उ था, वह कवि सातवें जन्ममें) पाञ्चाल नामक श्रो और छठा (खसृम) कण्डरीक नामसे प्रसिद्ध हुआ

पाञ्चालो बह्वृचस्त्वासीदाचार्यत्वं चकार ह ।
द्विवेदः कण्डरीकस्तु छन्दोगोऽध्वर्युरेव च ।

इनमें पाञ्चाल बह्वृच अर्थात् ऋग्वेदी था । व (पुरोहित) का काम करने लगा और कण्डरीक गान करनेवाला सामवेदी तथा अध्वर्यु (यजुर्वेदी इस प्रकार वह दो वेदोंका ज्ञाता था ॥ २१ ॥

सर्वसत्त्वरुतज्ञस्तु राजाऽऽसीदणुहात्मजः ।
पाञ्चालकण्डरीकाभ्यां तस्य सख्यमभूत् तदा ।

अणुहका पुत्र राजा ब्रह्मदत्त सब प्राणियोंकी समझ लेता था । उसकी पाञ्चाल और कण्डरीकसे हो गयी ॥ २२ ॥

ते ग्राम्यधर्माभिरताः कामस्य वशवर्तिनः ।
पूर्वजातिकृतेनासन् धर्मकामार्थकोविदाः ।

ये तीनों ग्राम्यधर्म (संसारी पुरुषोंके धर्म) में थे और काम (इच्छा) के वशमें होकर चलते थे पूर्वजन्ममें जो सत्कर्म किया था, उसके फलसे ये और कामके तत्त्वज्ञ हुए ॥ २३ ॥

अणुहस्तु नृपश्रेष्ठो ब्रह्मदत्तमकल्मषम् ।
राज्येऽभिषिच्य योगात्मा परां गतिमवाप्तवान् ।

राजाओंमें श्रेष्ठ अणुह निष्पाप ब्रह्मदत्तका अभिषेक करके स्वयं योग-साधन कर परम गति हो गये ॥ २४ ॥

ब्रह्मदत्तस्य भार्या तु देवलस्यात्मजाभवत् ।
असितस्य हि दुर्धर्षा संनतिर्नाम नामतः ।

असित देवलकी पुत्री, जिसका नाम संनति जिसका तिरस्कार करना किसीके लिये भी बहुत क राजा ब्रह्मदत्तकी धर्मपत्नी हुई ॥ २५ ॥

तामेकभावसम्पन्नां लेभे कन्यामनुत्तमाम् ।
संनतिं संनतिमतीं देवलाद् योगधर्मिणीम् ॥

उस एक-भाव (ब्रह्मभाव) से सम्पन्न, नम्रता योग-धर्मका पालन करनेवाली संनति नामकी श्रेष्ठ ब्रह्मदत्तने देवल ऋषिसे पत्नीके रूपमें प्राप्त किया थ

श्चमः पाञ्चिकस्तत्र सप्तजातिषु भारत ।
ष्ठस्तु कण्डरीकोऽभूद् ब्रह्मदत्तस्तु सप्तमः ॥ २७ ॥

भारत ! जन्मोंमें पाँचवाँ होकर उत्पन्न होनेवाला ञ्चिक (कवि) पाञ्चाल हुआ, छठा कण्डरीक हुआ और तवाँ ब्रह्मदत्त हुआ ॥ २७ ॥

षा विहङ्गमा ये वै काम्पिल्ये सहचारिणः ।
जाताः श्रोत्रियकुले सुदरिद्रे सहोदराः ॥ २८ ॥

जो शेष सहचारी पक्षी थे, वे काम्पिल्य नगरमें अत्यन्त दरिद्र ोत्रियकुलमें सगे भाई बनकर उत्पन्न हुए ॥ २८ ॥

तिमान् सुमना विद्वांस्तत्त्वदर्शी च नामतः ।
दाध्ययनसम्पन्नाश्चत्वारश्छिद्रदर्शिनः ॥ २९ ॥

वे चारों धृतिमान्, सुमना, विद्वान् और तत्त्वदर्शीके मसे प्रसिद्ध थे और वेदोंके अध्ययन करनेमें लगे रहते । साथ ही योगसाधनके लिये गृह-त्यागका अवसर ढूँढ़ते अथवा अपने सहचारियोंके भोगासक्ति रूप दूषणपर भी ष्टि रखते थे ॥ २९ ॥

षां संवित्तथोत्पन्ना पूर्वजातिकृता तदा ।
योगनिरताः सिद्धाः प्रस्थिताः सर्व एव हि ॥ ३० ॥

इनकी पूर्व जन्मोंमें जैसी वैराग्यपूर्ण बुद्धि थी, वैसी ही जन्ममें प्रकट हुई । अतः वे सब सिद्ध पुरुष योगपरायण हो से चलनेके लिये उद्यत हुए ॥ ३० ॥

मन्त्र्य पितरं तात पिता तानब्रवीत् तदा ।
धर्म एष युष्माकं यन्मां त्यक्त्वा गमिष्यथ ॥ ३१ ॥

तात ! जब उन्होंने अपने पितासे पूछकर जानेका विचार या, तब पिताने उनसे यह बात कही—'तुमलोग यदि मुझको ड़कर वनमें जाओगे तो यह तुम्हारे लिये अधर्म ही होगा ॥

दारिद्र्यमनपाकृत्य पुत्रार्थांश्चैव पुष्कलान् ।
शुश्रूषामप्रयुज्यैव कथं वै गन्तुमर्हथ ॥ ३२ ॥

तुमलोग मेरी दरिद्रता दूर न करके तथा पुत्रद्वारा सिद्ध होनेवाले प्रचुर प्रयोजनोंकी भी सिद्धि एवं मेरी सेवा भी न करके कैसे चले जाना चाहते हो ? क्या यही उचित है ?॥३२॥

ते तमूचुर्द्विजाः सर्वे पितरं पुनरेव च ।
करिष्यामो विधानं ते येन त्वं वर्तयिष्यसि ॥ ३३ ॥

तब उन सब द्विजोंने अपने पितासे कहा—'हमलोग ऐसा उपाय करेंगे जिससे आप जीवन-निर्वाह कर सकेंगे (तथा हम-जैसे पुत्रोंको पाकर आपको अपने उद्धारके लिये भी चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है) ॥ ३३ ॥

इमं श्लोकं महार्थं त्वं राजानं सहमन्त्रिणम् ।
श्रावयेथाः समागम्य ब्रह्मदत्तमकल्मषम् ॥ ३४ ॥

'आप निष्पाप राजा ब्रह्मदत्तसे मिलकर यह महत्त्वपूर्ण ('सप्तव्याधा दशार्णेषु' इत्यादि) श्लोक उनको और उनके मन्त्रियोंको सुनाइयेगा ॥ ३४ ॥

प्रीतात्मा दास्यति स ते ग्रामान् भोगांश्च पुष्कलान् ।
यथेप्सितांश्च सर्वार्थान् गच्छ तात यथेप्सितम् ॥ ३५ ॥

'तात ! इससे प्रसन्न होकर वे आपको बहुतसे ग्राम, प्रचुर भोग और आपकी इच्छानुसार सब पदार्थ देंगे । आपकी जब इच्छा हो तब (ब्रह्मदत्तके पास) चले जायँ' ॥

एतावदुक्त्वा ते सर्वे पूजयित्वा च तं गुरुम् ।
योगधर्ममनुप्राप्य परां निर्वृतिमाययुः ॥ ३६ ॥

इतनी बातें कहकर उन सबोंने अपने पिताकी पूजा की और योगधर्मका साधन कर वे परमानन्दमय मोक्षको प्राप्त हो गये ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पितृकल्पे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पितृकल्पविषयक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३ ॥

* * *

चतुर्विंशतितमोऽध्यायः

विभ्राजका ब्रह्मदत्तका पुत्र बनकर उत्पन्न होना, रानी संनतिका ब्रह्मदत्तसे रूठना, एक ब्राह्मणके कहे हुए श्लोकोंसे ब्रह्मदत्त, पाञ्चाल्य और कण्डरीकको अपने पूर्वजन्मका ज्ञान होना तथा ब्रह्मदत्त आदिका तप करके मुक्त हो जाना

मार्कण्डेय उवाच

दत्तस्य तनयः स विभ्राजस्त्वजायत ।
ात्मा तपसा युक्तो विष्वक्सेन इति श्रुतः ॥ १ ॥

मार्कण्डेयजीने कहा—जिसके मनमें योग-साधनयक संकल्प हुआ था, वह तपस्वी राजा विभ्राज ब्रह्मदत्तका पुत्र होकर उत्पन्न हुआ और (उस जन्ममें) वह विष्वक्सेन नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ १ ॥

कदाचिद् ब्रह्मदत्तस्तु भार्यया सहितो वने ।
विजहार प्रहृष्टात्मा यथा शच्या शचीपतिः ॥ २ ॥

एक समयकी बात है, राजा ब्रह्मदत्त प्रसन्नचित्तसे अपनी

भार्याको साथमें लिये उपवनमें इस प्रकार विहार कर रहे थे, जैसे इन्द्र इन्द्राणीके साथ विहार कर रहे हों ॥ २ ॥

ततः पिपीलिकरुतं स शुश्राव नराधिपः।
कामिनीं कामिनस्तस्य याचतः क्रोशतो भृशम् ॥ ३ ॥

उसी समय राजाने एक चींटिका स्वर सुना, जो कामके वशमें होकर अपनी कामिनी चींटीसे बहुत गिड़गिड़ाकर प्रार्थना कर रहा था ॥ ३ ॥

श्रुत्वा तु याच्यमानां तां क्रुद्धां सूक्ष्मां पिपीलिकाम्।
ब्रह्मदत्तो महाहासमकस्मादेव चाहसत् ॥ ४ ॥

छोटी-सी चींटी कुपित हो मान किये बैठी है और चींटा उससे याचना कर रहा है, यह देख-सुनकर ब्रह्मदत्त अचानक ही बड़े जोरसे हँस पड़े ॥ ४ ॥

ततः सा संनतिर्दीना व्रीडितेवाभवत् तदा।
निराहारा बहुतिथं बभूव वरवर्णिनी ॥ ५ ॥

उस समय सुन्दरी रानी संनति लज्जित-सी हो गयी और दीन होकर बहुत दिनोंतक उसने खाना-पीनातक छोड़ दिया ॥

प्रसाद्यमाना भर्त्रा सा तमुवाच शुचिस्मिता।
त्वया च हसिता राजन् नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ ६ ॥

जब पतिदेव उसे मनाने लगे, तब पवित्र मुसकानवाली संनतिने उनसे कहा—'राजन्! आपने मेरी हँसी उड़ायी है, अतः मैं जीवित रहना नहीं चाहती' ॥ ६ ॥

स तत्कारणमाचख्यौ न च सा श्रद्दधाति तत्।
उवाच चैनं कुपिता नैष भावोऽस्ति मानुषे ॥ ७ ॥

तब राजाने हँसनेका कारण बताया, परंतु संनतिने उस बातपर विश्वास नहीं किया और कोपमें भरकर कहा—'मनुष्यमें ऐसी शक्ति (सब प्राणियोंकी बोलीको समझनेकी शक्ति) नहीं हो सकती ॥ ७ ॥

को वै पिपीलिकरुतं मानुषो वेत्तुमर्हति।
ऋते देवप्रसादाद् वा पूर्वजातिकृतेन वा ॥ ८ ॥
तपोबलेन वा राजन् विद्यया वा नराधिप।

'राजन्! देवताओंकी कृपा, पूर्वजन्ममें किये हुए तप अथवा विद्या (योगशक्ति) के बिना ऐसा कौन मनुष्य है, जो चींटिकी बोलीको समझ सके ॥ ८½ ॥

यद्येष वै प्रभावस्ते सर्वसत्त्वरुतज्ञता ॥ ९ ॥
यथाहमेतज्जानीयां तथा प्रत्याययस्व माम्।

'यदि आपमें सब प्राणियोंकी भाषाको समझनेकी शक्ति है, तो मैं जिस प्रकार इस बातको समझ सकूँ, उस प्रकार मुझे विश्वास दिलाइये ॥ ९½ ॥

प्राणान् वापि परित्यक्ष्ये राजन् सत्येन ते शपे ॥ १० ॥

'राजन्! यदि आप ऐसा न करेंगे तो मैं आपसे सत्यकी शपथ खाकर कहती हूँ, अपने प्राण त्याग दूँगी' ॥

तत् तस्या वचनं श्रुत्वा महिष्याः परुषाक्षरम्।
स राजा परमापन्नो देवश्रेष्ठमगात् ततः ॥
शरण्यं सर्वभूतेशं भक्त्या नारायणं हरिम्।
समाहितो निराहारः षड्रात्रेण महायशाः ॥

रानीके इन कठोर शब्दोंको सुनकर राजा बड़ी पड़ गये। तब उन्होंने शरणागत-रक्षक, समस्त प्राणियों देवश्रेष्ठ भगवान् नारायण हरिकी शरण ली। उन मह महात्मा राजाको निराहार रह भक्तिपूर्वक समाहि उपासना करते हुए छः रातें बीत गयीं ॥ ११-१२ ॥

ददर्श दर्शने राजा देवं नारायणं प्रभुम्।
उवाच चैनं भगवान् सर्वभूतानुकम्पकः ॥

छठी रातमें राजाने प्रभु नारायणदेवका दर्शन समस्त प्राणियोंपर अकारण दया करनेवाले राजासे कहा—॥ १३ ॥

ब्रह्मदत्त प्रभाते त्वं कल्याणं समवाप्स्यसि।
इत्युक्त्वा भगवान् देवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥

'ब्रह्मदत्त! प्रातःकाल होनेपर तुझे कल्याण होगी।' इतनी बात कहकर भगवान् वहीं अन्तर्धान हो

चतुर्णां तु पिता योऽसौ ब्राह्मणानां महात्मनाम्।
श्लोकं सोऽधीत्य पुत्रेभ्यः कृतकृत्य इवाभवत् ॥

इधर जो चारों महात्मा ब्राह्मणोंके पिता थे, श्लोक सीखकर कृतकृत्य-से हो गये ॥ १५ ॥

स राजानमथान्विच्छन्सहमन्त्रिणमच्युतम्।
न ददर्शान्तरं किंचिच्छ्लोकं श्रावयितुं तदा ॥

वे धर्मसे कभी च्युत न होनेवाले राजा ब्रह्म उसके मन्त्रियोंको खोजने लगे, परंतु उन्हें श्लोक कोई अवसर न मिला ॥ १६ ॥

अथ राजा सरःस्नातो लब्ध्वा नरायणाद् वरम्।
प्रविवेश पुरीं प्रीतो रथमारुह्य काञ्चनम् ॥

इतनेमें भगवान् नारायणसे वर पाकर राजा स्नान करके सुवर्णजटित रथमें बैठे और प्रस अपनी नगरीमें प्रवेश करने लगे ॥ १७ ॥

तस्य रश्मीन् प्रत्यगृह्णात् कण्डरीको द्विजर्षभः।
चामरं व्यजनं चापि बाभ्रव्यः समवाक्षिपत् ॥

उस समय ब्राह्मणश्रेष्ठ कण्डरीकने अपने हाथमें घोड़ोंकी बागडोर ले रखी थी और बाभ्रव्य-पुत्र पाञ्चा ऊपर चँवर और व्यजन (पंखा) डुला रहे थे ॥

इदमन्तरमित्येव ततः स ब्राह्मणस्तदा।
श्रावयामास राजानं श्लोकं तं सचिवौ च तौ ॥

CC-0. In Public Domain. Digitized by ... Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'यही अवसर है' यह समझकर वे ब्राह्मण राजाको और उनके दोनों मन्त्रियोंको उसी समय श्लोक सुनाने लगे ॥१९॥

सप्त व्याधा दशार्णेषु मृगाः कालञ्जरे गिरौ ।
चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे ॥ २० ॥
तेऽभिजाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
प्रस्थिता दीर्घमध्वानं यूयं किमवसीदथ ॥ २१ ॥

'जो दशार्ण देशमें व्याध, कालञ्जर पर्वतपर मृग, शरद्वीपमें चक्रवाक तथा मानस-सरोवरमें हंस हुए थे, उनमेंसे हम चार तो कुरुक्षेत्रमें वेद-पारगामी कुलीन ब्राह्मण होकर दीर्घमार्गपर चले आये हैं, (अर्थात् योगसाधना करके मुक्त हो गये। अब शेष बचे हुए) तुम (तीन व्यक्ति योगमार्गसे भ्रष्ट होकर) क्यों कष्ट पा रहे हो ?' ॥ २०-२१ ॥

तच्छ्रुत्वा मोहमगमद् ब्रह्मदत्तो नराधिपः ।
सचिवश्चास्य पाञ्चाल्यः कण्डरीकश्च भारत ॥ २२ ॥

भारत ! राजा ब्रह्मदत्त वह श्लोक सुनकर मूर्च्छित हो गये और उनके मन्त्री पाञ्चाल तथा कण्डरीककी भी वही दशा हुई ॥ २२ ॥

स्रस्तरश्मिप्रतोदौ तौ पतितव्यजनावुभौ ।
दृष्ट्वा बभूवुरस्वस्थाः पौराश्च सुहृदस्तथा ॥ २३ ॥

कण्डरीकके हाथमेंसे चाबुक और बागडोर छूट गयीं तथा पाञ्चालके हाथमेंसे भी चँवर और पंखा छूटकर नीचे गिर पड़े। नगरनिवासी और मित्रवर्ग राजा तथा दोनों मन्त्रियोंकी इस दशाको देखकर खिन्न हो गये ॥ २३ ॥

मुहूर्तमेव राजा स सह ताभ्यां रथे स्थितः ।
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां प्रत्यागच्छदरिंदमः ॥ २४ ॥

दोनों मन्त्रियोंसहित-शत्रुदमन राजा ब्रह्मदत्त रथमें दो घड़ीतक मूर्च्छित पड़े रहे । तत्पश्चात् उन्हें होश आया और ये अपने नगरमें लौट आये ॥ २४ ॥

ततस्ते तत्सरः स्मृत्वा योगं तमुपलभ्य च ।
ब्राह्मणं विपुलैरर्थैर्भोगैश्च समयोजयन् ॥ २५ ॥

तदनन्तर उन तीनोंको उस सरोवरका ध्यान आ गया और अपने पूर्व-जन्मके योगका भी स्मरण होने लगा । तब उन्होंने उस ब्राह्मणको बहुत-सा धन और भोग-पदार्थ दिये ॥ २५ ॥

अभिषिच्य स्वराज्ये तु विष्वक्सेनमरिंदमम् ।
जगाम ब्रह्मदत्तोऽथ सदारो वनमेव ह ॥ २६ ॥

फिर ब्रह्मदत्तने अपने राज्यपर शत्रुदमन विष्वक्सेनका अभिषेक किया और अपनी स्त्रीको साथमें लेकर वनको चल दिये ॥ २६ ॥

अथैनं संनतिर्धीरा देवलस्य सुता तदा ।
उवाच परमप्रीता योगाद् वनगतं नृपम् ॥ २७ ॥

तदनन्तर योग-साधन करनेके लिये वनमें आये हुए राजा ब्रह्मदत्तसे देवलकी पुत्री धीरस्वभावासंनतिने परम प्रसन्न होकर कहा—॥ २७ ॥

जानन्त्या ते महाराज पिपीलिकरुतज्ञताम् ।
चोदितः क्रोधमुद्दिश्य सक्तः कामेषु वै मया ॥ २८ ॥

महाराज ! मैं यह बात जानती थी कि आप चींटीकी बोलीको समझ सकते हैं, तब भी मैंने आपको संसारके भोगोंमें आसक्त देख यह क्रोधका नाटक रचकर आपको योगकी ओर प्रेरित किया है ॥ २८॥

इतो वयं गमिष्यामो गतिमिष्टामनुत्तमाम् ।
तव चान्तर्हितो योगस्ततः संस्मारितो मया ॥ २९ ॥

अब हम परम उत्तम अभीष्ट गतिको प्राप्त करेंगे, इसी उद्देश्यसे मैंने आपको भूले हुए योगका स्मरण दिलाया है ॥ २९ ॥

स राजा परमप्रीतः पत्न्याः श्रुत्वा वचस्तदा ।
प्राप्य योगं बलादेव गतिं प्राप सुदुर्लभाम् ॥ ३० ॥

तब अपनी पत्नीकी यह बात सुनकर राजा बड़े प्रसन्न हुए और योग-साधना करके उन्होंने उसके बलसे ही परम दुर्लभ गति पायी ॥ ३० ॥

कण्डरीकोऽपि धर्मात्मा सांख्ययोगमनुत्तमम् ।
प्राप्य योगगतिः सिद्धो विशुद्धस्तेन कर्मणा ॥ ३१ ॥

धर्मात्मा कण्डरीक भी परमश्रेष्ठ सांख्ययोगका ज्ञान पाकर योगका आश्रय ले उसके साधनसे शुद्ध एवं सिद्ध (मुक्त) हो गये ॥ ३१ ॥

क्रमं प्रणीय पाञ्चाल्यः शिक्षां चोत्पाद्य केवलाम् ।
योगाचार्यगतिं प्राप यशश्चाग्र्यं महातपाः ॥ ३२ ॥

महातपस्वी पाञ्चालने भी वैदिकोंमें प्रसिद्ध क्रमपाठकी विधि एवं विशुद्ध 'शिक्षा' (नामक वेदाङ्ग अथवा योगविषयक शिक्षा) की रचना करके योगाचार्यकी गति (मोक्ष) तथा उत्तम यश प्राप्त किया ॥ ३२ ॥

एवमेतत् पुरावृत्तं मम प्रत्यक्षमच्युत ।
तद् धारयस्व गाङ्गेय श्रेयसा योक्ष्यसे ततः ॥ ३३ ॥

(मार्कण्डेयजी कहते हैं—) अच्युत भीष्म ! प्राचीन कालमें घटित हुआ यह श्राद्ध-माहात्म्य-सूचक वृत्तान्त मैंने प्रत्यक्ष देखा है। तुम भी इसे धारण करो तो तुम्हारा कल्याण होगा ॥ ३३ ॥

ये चान्ये धारयिष्यन्ति तेषां चरितमुत्तमम् ।
तिर्यग्योनिषु ते जातु न गमिष्यन्ति कर्हिचित् ॥ ३४ ॥

जो दूसरे सज्जन भी इन वाग् दुष्ट आदिके उत्तम चरित्रको सुनेंगे, वे भी कभी तिर्यग्-योनिमें उत्पन्न न होंगे ॥ ३४ ॥

श्रुत्वा चेदमुपाख्यानं महार्थं महतां गतिम् ।
योगधर्मो हृदि सदा परिवर्तति भारत ॥ ३५ ॥

भारत ! महात्माओंकी सद्गति देनेवाले इस महत्त्वमय उपाख्यानको सुननेसे हृदयमें योग-धर्म पूर्णरूपसे प्रकाशित होने लगता है ॥ ३५ ॥

स तेनैवानुबन्धेन कदाचिल्लभते शमम् ।
ततो योगगतिं याति शुद्धां तां भुवि दुर्लभाम् ॥ ३६ ॥

हृदयमें उस योगधर्मको धारण करनेसे ही मनुष्य कभी शान्ति-लाभ करता है; फिर उसे पृथ्वीमें दुर्लभ योगियोंकी शुद्ध-गति प्राप्त होती है ॥ ३६ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमेतत् पुरा गीतं मार्कण्डेयेन धीमता ।
श्राद्धस्य फलमुद्दिश्य सोमस्याप्यायनाय वै ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—प्राचीन कालमें मार्कण्डेयजीने श्राद्धके फलको लक्ष्यमें रखकर सोम (का आप्यायन (पोषण) करनेके लिये यह कही थी ॥ ३७ ॥

सोमो हि भगवान् देवो लोकस्याप्यायनं परम् ।
वृष्णिवंशप्रसङ्गेन तस्य वंशं निबोध मे ॥

भगवान् सोम ही लोकोंको परम तृप्ति देनेवाले वृष्णिवंशके प्रसङ्गमें तुम चन्द्रवंशका वर्णन सुनो—॥

इति श्रीमहाभारते खिलेषु हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पितृकल्पसमाप्तिर्नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पितृकल्पका उपसंहारनामक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥

पञ्चविंशतितमोऽध्यायः

चन्द्रमाकी उत्पत्ति और राजसूय यज्ञ, देवासुरसंग्राम तथा बुधकी उत्पत्ति

वैशम्पायन उवाच

पिता सोमस्य वै राजन् जज्ञेऽत्रिर्भगवानृषिः ।
ब्रह्मणो मानसात् पूर्वं प्रजासर्गं विधित्सतः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! प्राचीन कालमें ब्रह्माजीने प्रजाकी सृष्टि करनेका विचार किया । उस समय उनके मानसिक संकल्पसे सोम (चन्द्रमा) के पिता भगवान् अत्रि ऋषि उत्पन्न हुए ॥ १ ॥

तत्रात्रिः सर्वभूतानां तस्थौ स्वतनयैर्युतः ।
कर्मणा मनसा वाचा शुभान्येव चचार सः ॥ २ ॥

अत्रि ऋषि भी प्रजाकी सृष्टिमें ही संलग्न हुए । वे तथा उनके पुत्र मन, वाणी और कर्मसे सब प्राणियोंका कल्याण करनेवाले कार्य ही करते थे ॥ २ ॥

अहिंस्रः सर्वभूतेषु धर्मात्मा संशितव्रतः ।
काष्ठकुड्यशिलाभूत ऊर्ध्वबाहुर्महाद्युतिः ॥ ३ ॥
अनुत्तरं[1] नाम तपो येन तप्तं महत् पुरा ।
त्रीणि वर्षसहस्राणि दिव्यानीति हि नः श्रुतम् ॥ ४ ॥

हमने सुना है कि प्राचीन कालमें प्रशंसनीय व्रतका पालन करनेवाले, महातेजस्वी, धर्मात्मा अत्रि ऋषिने तीन हजार दिव्य वर्षोंतक अपनी भुजाएँ ऊपर उठाकर काष्ठ, दीवार और पत्थरके समान निश्चल रहकर किसी प्राणीको तनिक भी कष्ट पहुँचाये बिना ही अनुत्तर नामक महान् तप किया था ॥ ३-४ ॥

तत्रोर्ध्वरेतसस्तस्य स्थितस्यानिमिषस्य ह ।
सोमत्वं तनुरापेदे महासत्त्वस्य भारत ॥

भारत ! अत्रि ऋषि महान् सत्त्वगुणसे सम्पन्न थे । टक देखते हुए ऊर्ध्वरेता (ब्रह्मचारी) रहकर सोमकी खड़े-खड़े तपस्या करते थे, अतः उनका शरीर परिणत हो गया ॥ ५ ॥

ऊर्ध्वमाचक्रमे तस्य सोमत्वं भावितात्मनः ।
नेत्राभ्यां वारि सुस्राव दशधा द्योतयद् दिशः ॥

शुद्ध अन्तःकरणवाले मुनिके नेत्रोंसे वह सोमरू जलरूपमें बह निकला और दसों दिशाओंको प्रकाशित हुआ आकाशमें चढ़ने लगा ॥ ६ ॥

तं गर्भं विधिना हृष्टा दश देव्यो दधुस्तदा ।
समेत्य धारयामासुर्न च ताः समशक्नुवन् ॥

तब प्रसन्नतामें भरी हुई दस दिशारूपी सम्मिलित हो उस तेजको अपने गर्भमें विधिपूर्वक किया, परंतु वे उस तेजको धारण करनेमें समर्थ न हो

स ताभ्यः सहसैवाथ दिग्भ्यो गर्भः प्रभान्वितः ।
पपात भासयँल्लोकाञ्छीतांशुः सर्वभावनः ॥

तब (औषध आदिके द्वारा) सब लोकोंको पुष्ट शीतल किरणोंसे सुशोभित वह प्रकाशमान गर्भ

---

[1] १. जिससे उत्कृष्ट दूसरा कोई तप नहीं है, उसे 'अनुत्तर' कहते हैं ।

प्रकाशित करता हुआ दिग्देवियोंके उदरसे सहसा गिर पड़ा ॥ ८ ॥

यदा न धारणे शक्तास्तस्य गर्भस्य ता दिशः ।
ततस्ताभिः सहैवाशु निपपात वसुंधराम् ॥ ९ ॥

जब दिशाएँ उस गर्भके तेजको न रोक सकीं, तो वह गर्भ उनके साथ ही पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ९ ॥

पतितं सोममालोक्य ब्रह्मा लोकपितामहः ।
रथमारोपयामास लोकानां हितकाम्यया ॥ १० ॥

सोमको गिरा हुआ देख लोकपितामह ब्रह्माजीने संसारका हित करनेकी भावनासे उसे रथपर रख लिया ॥१०॥

स हि वेदमयस्तात धर्मात्मा सत्यसंग्रहः ।
युक्तो वाजिसहस्रेण सितेनेति हि नः श्रुतम् ॥ ११ ॥

तात ! हमने सुना है कि वह रथ वेदमय, धर्मस्वरूप तथा सत्यसे नियन्त्रित था। उसमें एक हजार श्वेत घोड़े जुते हुए थे ॥ ११ ॥

तस्मिन् निपतिते देवाः पुत्रेऽत्रेः परमात्मनि ।
तुष्टुवुर्ब्रह्मणः पुत्रा मानसाः सप्त ये श्रुताः ॥ १२ ॥

अत्रिपुत्र भगवान् सोमके गिरनेपर ब्रह्माजीके सुप्रसिद्ध सात मानस पुत्र उनकी स्तुति करने लगे ॥ १२ ॥

तथैवाङ्गिरसस्तत्र भृगुरेवात्मजैः सह ।
ऋग्भिर्यजुर्भिर्बहुलैरथर्वाङ्गिरसैरपि ॥ १३ ॥

अङ्गिरा-गोत्री भृगु ऋषि और उनके पुत्र ऋग्वेद, यजुर्वेद (सामवेद) और अथर्ववेदकी अनेक श्रुतियोंसे सोमकी स्तुति करने लगे ॥ १३ ॥

तस्य संस्तूयमानस्य तेजः सोमस्य भास्वतः ।
आप्यायमानं लोकांस्त्रीन् भासयामास सर्वशः ॥ १४ ॥

(‘अंशुरंशुष्टे देव सोमाप्यायताम्’[1] इत्यादि मन्त्रोंके द्वारा) स्तुति करनेपर पुष्ट हुआ प्रकाशमान सोमका तेज तीनों लोकोंको सर्वथा प्रकाशित करने लगा ॥ १४ ॥

स तेन रथमुख्येन सागरान्तां वसुंधराम् ।
त्रिःसप्तकृत्वोऽतियशाश्चकाराभिप्रदक्षिणम् ॥ १५ ॥

तब उन परम यशस्वी (ब्रह्माजी) ने उस (सोमवान्) श्रेष्ठ रथमें बैठकर समुद्रतककी पृथ्वीकी इक्कीस बार प्रदक्षिणा की ॥ १५ ॥

तस्य यच्च्यावितं तेजः पृथिवीमन्वपद्यत ।
ओषध्यस्ताः समुद्भूतास्तेजसा प्रज्वलन्त्युत ॥ १६ ॥

उस समय (रथके वेगसे छलककर) सोमका जो तेज पृथ्वीपर टपकने लगा, उस तेजसे प्रकाशपूर्ण ओषधियाँ उत्पन्न हुईं ॥ १६ ॥

ताभिर्धार्यास्त्रयो लोकाः प्रजाश्चैव चतुर्विधाः ।
पोष्टा हि भगवान् सोमो जगतो जगतीपते ॥ १७ ॥

उन ओषधियोंसे भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोक—इन तीनों लोकोंका और जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज—इन चार प्रकारकी प्रजाओंका पालन होता रहता है। राजन् ! इस प्रकार भगवान् सोम सम्पूर्ण जगत्का पोषण करते हैं ॥ १७ ॥

स लब्धतेजा भगवान् संस्तवैस्तैश्च कर्मभिः ।
तपस्तेपे महाभाग पद्मानां दशतीर्दश ॥ १८ ॥

महाभाग ! उन स्तुतिरूप कर्मोंसे तेजस्वी होकर भगवान् सोमने एक हजार पद्म वर्षोंतक तप किया ॥ १८ ॥

हिरण्यवर्णा या देव्यो धारयन्त्यात्मना जगत् ।
निधिस्तासामभूद्देवः प्रख्यातः स्वेन कर्मणा ॥ १९ ॥

चाँदीके समान शुक्ल वर्णवाली जो जलकी अधिष्ठात्री देवियाँ अपने स्वरूपभूत जलसे जगत्का पालन करती हैं, चन्द्रदेव उनकी निधि हुए। वे अपने कर्मोंसे विख्यात हैं ॥१९॥

ततस्तस्मै ददौ राज्यं ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ।
बीजौषधीनां विप्राणामपां च जनमेजय ॥ २० ॥

जनमेजय ! तदनन्तर ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीने चन्द्रमाको बीज, ओषधि, ब्राह्मण और जलका राजा बना दिया ॥

सोऽभिषिक्तो महाराज राजराज्येन राजराट् ।
लोकांस्त्रीन् भासयामास स्वभासा भास्वतां वरः ॥ २१ ॥

महाराज ! जब प्रकाशवानोंमें श्रेष्ठ चन्द्रमाका इन चारोंके राज्यपर सम्राट्के रूपमें अभिषेक हो गया, तब (सम्राट्) चन्द्रमा अपनी कान्तिसे तीनों लोकोंको प्रकाशित करने लगे ॥

सप्तविंशतिमिन्दोस्तु दाक्षायण्यो महाव्रताः ।
ददौ प्राचेतसो दक्षो नक्षत्राणीति या विदुः ॥ २२ ॥

उस समय प्रचेताओंके पुत्र दक्षने अपनी महाव्रतधारिणी सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमाको ब्याह दीं, जिन्हें विद्वान् पुरुष सत्ताईस नक्षत्रोंके रूपमें जानते हैं ॥ २२ ॥

स तत् प्राप्य महद्राज्यं सोमः सोमवतां वरः ।
समाजह्रे राजसूयं सहस्रशतदक्षिणम् ॥ २३ ॥

इस बड़े भारी राज्यको पाकर पितृदेवताओंमें श्रेष्ठ सोमने राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया, जिसमें उन्होंने एक लाख गौएँ दक्षिणामें दी थीं ॥ २३ ॥

होतास्य भगवानत्रिरध्वर्युर्भगवान् भृगुः ।
हिरण्यगर्भश्चोद्गाता ब्रह्मा ब्रह्मत्वमेयिवान् ॥ २४ ॥

सोमके (उस यज्ञमें) भगवान् अत्रि होता बने । भगवान् भृगु अध्वर्यु, हिरण्यगर्भ उद्गाता तथा वसिष्ठजी ब्रह्मा बने ॥ २४ ॥

---

[1] अर्थात् हे चन्द्रदेव ! आपकी प्रत्येक किरण परिपुष्ट हो ।

सदस्यस्तत्र भगवान् हरिर्नारायणः स्वयम्।
सनत्कुमारप्रमुखैराद्यैर्ब्रह्मर्षिभिर्वृतः ॥ २५ ॥

उस यज्ञमें सनत्कुमार आदि प्राचीन ब्रह्मर्षियोंने स्वयं भगवान् नारायण हरिको ही सदस्य बनाया था ॥ २५ ॥

दक्षिणामददात् सोमस्त्रील्लोकानिति नः श्रुतम्।
तेभ्यो ब्रह्मर्षिमुख्येभ्यः सदस्येभ्यश्च भारत ॥ २६ ॥

भारत ! हमने सुना है कि उन ब्रह्मर्षियोंमें श्रेष्ठ सदस्योंको सोमने तीनों लोक दक्षिणामें दे दिये थे ॥ २६ ॥

तं सिनिश्च कुहूश्चैव द्युतिः पुष्टिः प्रभा वसुः।
कीर्तिर्धृतिश्च लक्ष्मीश्च नव देव्यः सिषेविरे ॥ २७ ॥

उस समय सिनीवाली, कुहू, द्युति, पुष्टि, प्रभा, वसु, कीर्ति, धृति और लक्ष्मी (शोभा)—ये नौ देवियाँ नित्यप्रति चन्द्रमाकी सेवामें लगी रहती थीं ॥ २७ ॥

प्राप्यावभृथमव्यग्रः सर्वदेवर्षिपूजितः।
विरराजाधिराजेन्द्रो दशधा भासयन् दिशः ॥ २८ ॥

इस प्रकार सभी ऋषि और देवताओंसे सत्कार पाकर द्विजराज चन्द्रमाने अवभृथ स्नान किया, फिर वे दसों दिशाओंको प्रकाशित करने लगे ॥ २८ ॥

तस्य तत् प्राप्य दुष्प्राप्यमैश्वर्यं मुनिसत्कृतम्।
विबभ्राम मतिस्तात विनयादनयाऽऽहता ॥ २९ ॥

तात ! मुनियोंद्वारा सम्मानित उस दुर्लभ ऐश्वर्यको पाकर चन्द्रमाकी बुद्धि विनयसे भ्रष्ट हो गयी और उसे अनीतिने धर दबाया ॥ २९ ॥

बृहस्पतेः स वै भार्यां तारां नाम यशस्विनीम्।
जहार तरसा सर्वानवमत्याङ्गिरःसुतान् ॥ ३० ॥

तब उन्होंने अङ्गिराके सब पुत्रोंका तिरस्कार करके बृहस्पतिकी यशस्विनी भार्या ताराका बलपूर्वक अपहरण कर लिया ॥ ३० ॥

स याच्यमानो देवैश्च तथा देवर्षिभिः सह।
नैव व्यसर्जयत् तारां तस्मा आङ्गिरसे तदा।
स संरब्धस्ततस्तस्मिन् देवाचार्यो बृहस्पतिः ॥ ३१ ॥

देवताओं तथा देवर्षियोंके याचना करनेपर भी उन्होंने बृहस्पतिकी स्त्री उनको नहीं लौटायी। तब तो देवताओंके आचार्य बृहस्पतिजी उनके ऊपर अत्यन्त कुपित हो उठे ॥

उशना तस्य जग्राह पार्ष्णिमाङ्गिरसस्तदा।
स हि शिष्यो महातेजाः पितुः पूर्वो बृहस्पतेः ॥ ३२ ॥

उस समय शुक्राचार्यने चन्द्रमाका पक्ष लिया और रुद्रने बृहस्पतिका; क्योंकि महातेजस्वी रुद्र बृहस्पतिके पिता अङ्गिराके शिष्य थे ॥ ३२ ॥

तेन स्नेहेन भगवान् रुद्रस्तस्य बृहस्पतेः।
पार्ष्णिग्राहोऽभवद् देवः प्रगृह्याजगवं धनुः ॥ ३३ ॥

उसी गुरुभाईके स्नेहसे भगवान् शिव अपना आजग धनुष लेकर बृहस्पतिजीके पार्ष्णिग्राह (सहायक) बने थे।

तेन ब्रह्मशिरो नाम परमास्त्रं महात्मना।
उद्दिश्य दैत्यानुत्सृष्टं येनैषां नाशितं यशः ॥

महात्मा रुद्रने दैत्योंको लक्ष्य करके ब्रह्मशिर श्रेष्ठ अस्त्र छोड़ा, जिसने उन (दैत्यों) के सारे ही पानी फेर दिया ॥ ३४ ॥

तत्र तद् युद्धमभवत् प्रख्यातं तारकामयम्।
देवानां दानवानां च लोकक्षयकरं महत् ॥

वहाँ ताराके लिये देवताओं और दानवोंमें ब युद्ध हुआ, जो तारकामय महासंग्रामके नामसे प्र इसमें संसारका बड़ा भारी संहार हुआ ॥ ३५ ॥

तत्र शिष्टास्तु ये देवास्तुषिताश्चैव भारत।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुरादिदेवं सनातनम् ॥

भारत ! इस युद्धमें मरनेसे बचे हुए देवता और गण आदिदेव सनातन ब्रह्माजीकी शरणमें गये ॥ ३६

ततो निवार्योशनसं रुद्रं ज्येष्ठं च शङ्करम्।
ददावङ्गिरसे तारां स्वयमेव पितामहः ॥

तब ब्रह्माजीने शुक्राचार्य तथा रुद्रोंमें ज्येष्ठ को भी समझा-बुझाकर युद्ध करनेसे रोका; फिर उन्होंने ही ताराको लाकर बृहस्पतिजीको दिया ॥ ३७ ॥

तामन्तःप्रसवां दृष्ट्वा तारां प्राह बृहस्पतिः।
मदीयायां न ते योनौ गर्भो धार्यः कथंचन ॥

उस समय ताराको गर्भवती देख बृहस्पतिजीने 'तुझे मेरे क्षेत्रमें किसी तरह पराया गर्भ नहीं धार चाहिये' ॥ ३८ ॥

अयोनावुत्सृजत् तं सा कुमारं दस्युहन्तमम्।
इषीकास्तम्बमासाद्य ज्वलन्तमिव पावकम् ॥

तब ताराने अयोग्य स्थान—सींकोंके झुरमुटमें प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी उस भारी द कुमारको उत्पन्न किया ॥ ३९ ॥

जातमात्रः स भगवान् देवानामक्षिपद् वपुः।
ततः संशयमापन्ना इमामकथयन् सुराः ॥

उस ऐश्वर्यवान् कुमारने उत्पन्न होते ही अपने कान्तिसे देवताओंका तेज फीका कर दिया। तब तो संदेहमें पड़कर तारासे कहने लगे—॥ ४० ॥

सत्यं ब्रूहि सुतः कस्य सोमस्याथ बृहस्पतेः।
पृच्छ्यमाना यदा देवैर्नाह सा साध्वसाधु वा ॥
तदा तां शप्तुमारब्धः कुमारो दस्युहन्तमः।
तं निवार्य ततो ब्रह्मा तारां पप्रच्छ संशयम् ॥

'अरी ! सच बता, यह पुत्र चन्द्रमाका है अथवा हस्पतिका ?' परंतु देवताओंके पूछनेपर भी जब उसने भला-रा कुछ उत्तर न दिया, तब वह दस्युहन्ता कुमार उसे शाप नेके लिये तैयार हो गया। उस समय ब्रह्माजीने उसे कर तारासे इस संदेहको पूछा—॥४१-४२॥

दत्र तथ्यं तद् ब्रूहि तारे कस्य सुतस्त्वयम्।
ा प्राञ्जलिरुवाचेदं ब्रह्माणं वरदं प्रभुम्॥ ४३ ॥

'तारे ! यह किसका पुत्र है—इस बातको तू ठीक-ठीक ता।' तब उसने दोनों हाथ जोड़कर वर देनेवाले प्रभु ब्रह्मा-सि कहा—॥ ४३ ॥

ोमस्येति महात्मानं कुमारं दस्युहन्तमम्।
तस्तं मूर्ध्न्युपाघ्राय सोमो धाता प्रजापतिः॥ ४४ ॥
ुध इत्यकरोन्नाम तस्य पुत्रस्य धीमतः।
तिकूलं च गगने समभ्युत्तिष्ठते बुधः॥ ४५ ॥

'प्रभो ! यह सोमका ही पुत्र है।' तब उस गर्भको धारण रानेवाले प्रजापति चन्द्रमाने उस महामना दस्युहन्ता कुमार-ा मस्तक सूँघकर उस बुद्धिमान् पुत्रका नाम 'बुध' रखा। ह बुध जब आकाशमें उदय होता है, तब प्रतिकूल चेष्टा उत्पात) किया करता है ॥ ४४-४५ ॥

त्पादयामास ततः पुत्रं वै राजपुत्रिका।
स्यापत्यं महाराजो बभूवैलः पुरूरवाः॥ ४६ ॥

तदनन्तर वैराज मनुकी पुत्री इलाने बुधसे एक त्र उत्पन्न किया। उनके वे पुत्र महाराज पुरूरवा ए ॥ ४६ ॥

उर्वश्यां जज्ञिरे यस्य पुत्राः सप्त महात्मनः।
प्रसह्य धर्षितस्तत्र सोमो वै राजयक्ष्मणा॥ ४७ ॥

महात्मा पुरूरवाके उर्वशीके गर्भसे सात पुत्र उत्पन्न हुए। इधर सोमको हठात् राजयक्ष्माने धर दबाया ॥ ४७ ॥

ततो यक्ष्माभिभूतस्तु सोमः प्रक्षीणमण्डलः।
जगाम शरणार्थाय पितरं सोऽत्रिमेव तु॥ ४८ ॥

यक्ष्मासे ग्रस्त होनेपर चन्द्रमाका मण्डल क्षीण होने लगा, तब वे अपने पिता अत्रिकी शरणमें पहुँचे ॥४८॥

तस्य तत्तापशमनं चकारात्रिर्महातपाः।
स राजयक्ष्मणा मुक्तः श्रिया जज्वाल सर्वतः॥ ४९ ॥

महातपस्वी अत्रिने उनके तापको दूर कर दिया। वे (चन्द्रमा) राजयक्ष्मा रोगसे मुक्त होकर सब ओरसे प्रकाशित हो उठे ॥ ४९ ॥

एवं सोमस्य वै जन्म कीर्तितं कीर्तिवर्धनम्।
वंशमस्य महाराज कीर्त्यमानं च मे शृणु॥ ५० ॥

महाराज ! इस प्रकार मैंने तुमसे चन्द्रमाके जन्मका वर्णन किया, जो कीर्तिको बढ़ानेवाला है। अब मेरे द्वारा चन्द्रमाके वंशका वर्णन सुनो ॥ ५० ॥

धन्यमारोग्यमायुष्यं पुण्यं संकल्पसाधनम्।
सोमस्य जन्म श्रुत्वैव पापेभ्यो विप्रमुच्यते॥ ५१ ॥

मनुष्य चन्द्रमाके जन्मको सुनते ही सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। यह चन्द्रमाके जन्मकी कथा धन, आयु, आरोग्य और पुण्य देनेवाली है। इसे सुननेसे मनुष्यके सारे संकल्प—मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि सोमोत्पत्तिकथने पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें चन्द्रमाकी उत्पत्तिका वर्णनविषयक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५ ॥

* * *

षड्विंशोऽध्यायः

महाराज पुरूरवाके चरित्र और वंशका वर्णन, राजा पुरूरवाका त्रेताग्निकी रचना करना और गन्धर्वोंके लोकमें जाना

वैशम्पायन उवाच

ुधस्य तु महाराज विद्वान् पुत्रः पुरूरवाः।
ाजस्वी दानशीलश्च यज्वा विपुलदक्षिणः॥ १ ॥
ह्मवादी पराक्रान्तः शत्रुभिर्युधि दुर्जयः।
ाहर्ता चाग्निहोत्रस्य यज्ञानां च महीपतिः॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज ! बुधके विद्वान् त्र पुरूरवा हुए, जो तेजस्वी, दानशील, यज्ञकर्त्ता, बहुत-सी क्षिणा देनेवाले, ब्रह्मवादी, युद्धमें पराक्रम दिखानेवाले और शत्रुओंसे दुर्जय थे। वे राजा अग्निहोत्र और यज्ञोंके अनुष्ठान करनेवाले थे ॥ १-२ ॥

सत्यवादी पुण्यमतिः काम्यः संवृतमैथुनः।
अतीव त्रिषु लोकेषु यशसाप्रतिमस्तदा॥ ३ ॥

राजा पुरूरवा सत्यभाषी और पवित्र विचारवाले थे। उनका रूप बड़ा सुन्दर था और वे गुप्तरूपसे सहवास करनेवाले थे। वे अपने समयमें तीनों लोकोंमें अनुपम यशस्वी थे ॥ ३ ॥

तं ब्रह्मवादिनं क्षान्तं धर्मज्ञं सत्यवादिनम्।
उर्वशी वरयामास हित्वा मानं यशस्विनी॥ ४ ॥

उन ब्रह्मवादी, क्षमापरायण, धर्मज्ञ तथा सत्यभाषी राजाको यशस्विनी उर्वशी अप्सराने गर्वका परित्याग करके पतिरूपमें वरण कर लिया था ॥ ४ ॥

तया सहावसद् राजा वर्षाणि दश पञ्च च।
पञ्च षट् सप्त चाष्टौ च दश चाष्टौ च भारत ॥ ५ ॥
वने चैत्ररथे रम्ये तथा मन्दाकिनीतटे।
अलकायां विशालायां नन्दने च वनोत्तमे ॥ ६ ॥
उत्तरान् स कुरून् प्राप्य मनोरथफलद्रुमान्।
गन्धमादनपादेषु मेरुपृष्ठे तथोत्तरे ॥ ७ ॥

भारत ! राजा पुरूरवा उस अप्सराके साथ दस वर्षतक रमणीय चैत्ररथ वनमें, पाँच वर्षतक मन्दाकिनीके तटपर बसी हुई अलकापुरीमें, पाँच वर्षतक बदरीनारायणके वनोंमें, छः वर्षतक उत्तम उपवन नन्दनवनमें, सात वर्षतक मनोरथरूप फलको देनेवाले वृक्षोंसे परिपूर्ण उत्तरकुरुदेशोंमें, आठ वर्षतक गन्धमादन पर्वतके शिखरोंपर, दस वर्षतक मेरुपर्वतपर तथा आठ वर्षतक उत्तराचलपर विहार करते रहे ॥ ५–७ ॥

एतेषु वनमुख्येषु सुरैराचरितेषु च।
उर्वश्या सहितो राजा रेमे परमया मुदा ॥ ८ ॥

राजा पुरूरवा उर्वशीको साथमें लेकर देवताओंसे सेवित इन मुख्य-मुख्य वनोंमें बड़े आनन्दके साथ विहार किया करते थे ॥ ८ ॥

देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरभिष्टुते।
राज्यं च कारयामास प्रयागं पृथिवीपतिः ॥ ९ ॥

पृथ्वीपति पुरूरवा (उर्वशीके साथ) महर्षियोंसे प्रशंसित परम पवित्र देश प्रयागमें राज्य करते थे ॥ ९ ॥

तस्य पुत्रा बभूवुस्ते सप्त देवसुतोपमाः।
दिवि जाता महात्मान आयुर्धीमानमावसुः ॥ १० ॥
विश्वायुश्चैव धर्मात्मा श्रुतायुश्च तथापरः।
दृढायुश्च वनायुश्च शतायुश्चोर्वशीसुताः ॥ ११ ॥

राजाके द्वारा उर्वशीके गर्भसे स्वर्गमें देव-पुत्रोंके तुल्य आयु, बुद्धिमान् अमावसु, धर्मात्मा विश्वायु, श्रुतायु, दृढायु, वनायु और शतायु नामक सात पुत्र उत्पन्न हुए, जो सभी महान् आत्मबलसे सम्पन्न थे ॥ १०-११ ॥

जनमेजय उवाच

गान्धर्वी चोर्वशी देवी राजानं मानुषं कथम्।
देवानुत्सृज्य सम्प्राप्ता तन्नो ब्रूहि बहुश्रुत ॥ १२ ॥

जनमेजयने पूछा—बहुश्रुत वैशम्पायनजी ! उर्वशीदेवी तो अप्सरा थी, फिर देवताओंका परित्याग कर वह मनुष्य राजाके पास क्योंकर आयी ? यह मुझे बताइये ॥ १२ ॥

वैशम्पायन उवाच

ब्रह्मशापाभिभूता सा मानुषं समपद्यत।
ऐलं तु सा वरारोहा समयात् समुपस्थिता ॥ १३ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! ब्रह्मशापके उर्वशीको मनुष्यलोकमें आना पड़ा था। वह सुन्दर वाली उर्वशी कुछ शर्तोंके साथ इला-नन्दन पुरूरवा रही थी ॥ १३ ॥

आत्मनः शापमोक्षार्थं समयं सा चकार ह।
अनग्नदर्शनं चैव सकामायां च मैथुनम्॥
द्वौ मेषौ शयनाभ्याशे सदा बद्धौ च तिष्ठतः।
घृतमात्रो तथाऽऽहारः कालमेकं तु पार्थिव॥

भूपाल ! उसने अपने शापसे छूटनेके लिये यह ली थी कि 'मैं आपको नंगा न देखूँ, मेरे सकाम हो आप सहवास करें, मेरे पलंगके पास सदा दो भेंड़ बँधे र मैं दिनमें एक बार थोड़ा-सा घृतमात्र भोजन करूँगी॥१

यद्येष समयो राजन् यावत्कालं च ते दृढः।
तावत्कालं तु वत्स्यामि त्वत्तः समय एष नः॥

'राजन् ! जबतक इन प्रतिज्ञाओंका आप दृढ़ता पालन करते रहेंगे, तबतक मैं आपके पास रहूँगी— आपसे प्रतिज्ञा करती हूँ' ॥ १६ ॥

तस्यास्तं समयं सर्वं स राजा समपालयत्।
एवं सा वसते तत्र पुरूरवसि भामिनी॥

राजा उसकी सब शर्तोंका पालन करने ल प्रकार वह श्रेष्ठ अप्सरा पुरूरवाके यहाँ रहने लगी॥

वर्षाण्येकोनषष्टिस्तु तत्सक्ता शापमोहिता।
उर्वश्यां मानुषस्थायां गन्धर्वाश्चिन्तयान्विताः॥

शापके कारण उर्वशीको जब राजामें आसक्त हो हुए उनसठ वर्ष बीत गये, तब गन्धर्वोंको मनुष्यों बसनेवाली उर्वशीकी चिन्ता हुई ॥ १८ ॥

गन्धर्वा ऊचुः

चिन्तयध्वं महाभागा यथा सा तु वराङ्गना।
समागच्छेत् पुनर्देवानुर्वशी स्वर्गभूषणम्॥

गन्धर्वोंने कहा—महाभागो ! वराङ्गना देवताओंमें फिर किस प्रकार आवे ? इसका उपाय क्योंकि वह स्वर्गका भूषण है ॥ १९ ॥

ततो विश्वावसुर्नाम तत्राह वदतां वरः।
मया तु समयस्ताभ्यां क्रियमाणः श्रुतः पुरा॥

तब वक्ताओंमें श्रेष्ठ विश्वावसु नामक गन्धर्वने 'उन दोनोंने पहले जो प्रतिज्ञाएँ की थीं, उन्हें मैंने सु

व्युत्क्रान्तसमयं सा वै राजानं त्यक्ष्यते यथा।
तदहं वेद्म्यशेषेण यथा भेत्स्यत्यसौ नृपः॥

'राजाके प्रतिज्ञा भङ्ग करनेपर वह उसे छोड़ दे राजाकी प्रतिज्ञा जिस प्रकार टूटेगी, मैं उसे भी जानता हूँ ॥ २१ ॥

ससहायो गमिष्यामि युष्माकं कार्यसिद्धये ।
एवमुक्त्वा गतस्तत्र प्रतिष्ठानं महायशाः ॥ २२ ॥

'तुम्हारे कामको सिद्ध करनेके लिये अपने सहायकोंको साथ लेकर मैं वहाँ जाऊँगा ।' यों कहकर वह महायशस्वी गन्धर्व प्रतिष्ठानपुर (झूँसी-प्रयाग) में गये ॥ २२ ॥

निशायामथ चागम्य मेषमेकं जहार सः ।
मातृवद् वर्तते सा तु मेषयोश्चारुहासिनी ॥ २३ ॥

वहाँ आकर उन्होंने रातमें एक भेंड़ चुरा ली । मनोहर हासवाली वह उर्वशी उन भेड़ोंपर माताके समान स्नेह करती थी ॥ २३ ॥

गन्धर्वागमनं श्रुत्वा शापान्तं च यशस्विनी ।
राजानमब्रवीत् तत्र पुत्रो मेऽह्रियतेति सा ॥ २४ ॥

यशस्विनी उर्वशीने गन्धर्वोंके आगमनको सुनकर विचारा कि अब मेरे शापके अन्त होनेका समय आ गया, तब उसने राजासे कहा--'राजन् ! मेरे एक बच्चेको चोर चुरा ले गये' ॥

एवमुक्तो विनिश्चित्य नग्नो नैवोदतिष्ठत ।
नग्नं मां द्रक्ष्यते देवी समयो वितथो भवेत् ॥ २५ ॥

यह कहनेपर भी वह यह विचारकर नंगा नहीं उठा कि यदि यह देवी मुझे नंगा देख लेगी तो मेरी प्रतिज्ञा झूठी हो जायगी ॥ २५ ॥

ततो भूयस्तु गन्धर्वा द्वितीयं मेषमाददुः ।
द्वितीये तु हृते मेषे ऐलं देव्यब्रवीदिदम् ॥ २६ ॥

इतनेहीमें गन्धर्व पुनः दूसरे भेंड़को भी उठा ले गये । दूसरे भेंड़के चुराये जानेपर देवी उर्वशीने पुरूरवासे यह कहा--॥२६॥

पुत्रो मेऽपहृतो राजन्ननाथाया इव प्रभो ।
एवमुक्तस्तथोत्थाय नग्नो राजा प्रधावितः ॥ २७ ॥
मेषयोः पदमन्विच्छन् गन्धर्वैर्विद्युदप्यथ ।
उत्पादिता सुमहती ययौ तद्भवनं महत् ॥ २८ ॥
प्रकाशितं वै सहसा ततो नग्नमवैक्षत ।
नग्नं दृष्ट्वा तिरोभूता साप्सरा कामरूपिणी ॥ २९ ॥

'सामर्थ्यशाली राजन् ! अनाथ स्त्रीके समान मेरे पुत्रोंको छीन लिया गया ।' यों उर्वशीके कहनेपर राजा नंगे ही उठकर भेड़ोंके पैरके चिह्नका अनुसरण करते हुए दौड़े । इसी समय गन्धर्वोंने बड़ी भारी बिजली चमकायी । उस समय वह विशाल भवन एक साथ प्रकाशित हो गया । तब तो उर्वशीने राजाको नंगा देख लिया । वह कामरूपिणी अप्सरा राजाको नंगा देखते ही अन्तर्धान हो गयी ॥ २७--२९ ॥

उत्सृष्टावुरणौ दृष्ट्वा राजा गृह्यागतो गृहे ।
अपश्यन्नुर्वशीं तत्र विललाप सुदुःखितः ॥ ३० ॥

उधर राजा भी (गन्धर्वोंके) छोड़े हुए भेड़ोंको देख उन्हें साथ लेकर घरमें घुसे, पर वहाँ उन्हें उर्वशी नहीं दिखायी दी । तब वे परम दुःखित हो विलाप करने लगे ॥ ३० ॥

चचार पृथिवीं सर्वां मार्गमाण इतस्ततः ।
अथापश्यत् स तां राजा कुरुक्षेत्रे महाबलः ॥ ३१ ॥
प्लक्षतीर्थे पुष्करिण्यां हैमवत्यां समाप्लुताम् ।
क्रीडन्तीमप्सरोभिश्च पञ्चभिः सह शोभनाम् ॥ ३२ ॥

फिर वे उर्वशीको खोजते हुए पृथ्वीपर सर्वत्र घूमने लगे । कुछ समयके अनन्तर उन महाबली नरेशने उस शोभामयी अप्सराको कुरुक्षेत्रके प्लक्षतीर्थकी हैमवती नामवाली पुष्करिणीमें स्नानकर अपनी पाँच सखियोंके साथ क्रीड़ा करते देखा ॥ ३१-३२ ॥

तां क्रीडन्तीं ततो दृष्ट्वा विललाप सुदुःखितः ।
सा चापि तत्र तं दृष्ट्वा राजानमविदूरतः ॥ ३३ ॥
उर्वशी ताः सखीः प्राह स एष पुरुषोत्तमः ।
यस्मिन्नहमवात्सं वै दर्शयामास तं नृपम् ॥ ३४ ॥

क्रीड़ा करती हुई उर्वशीको देखकर राजा दुःखित होकर विलाप करने लगे । इधर उर्वशीने भी उस राजाको समीप ही देखकर अपनी सखियोंसे राजाको दिखाया और कहा--'ये वे ही पुरुषोत्तम हैं, जिनके पास मैं रही थी' ॥ ३३-३४ ॥

समाविग्नास्तु ताः सर्वाः पुनरेव नराधिपः ।
जाये ह तिष्ठ मनसा घोरे वचसि तिष्ठ ह ॥ ३५ ॥
एवमादीनि सूक्तानि परस्परमभाषत ।
उर्वशी चाब्रवीदैलं सगर्भाहं त्वया प्रभो ॥ ३६ ॥

उस समय वे सभी अप्सराएँ (उर्वशीके पुनर्गमनकी आशङ्कासे) घबरा गयीं । इधर राजा उससे फिर कहने लगे--'प्रिये ! तू थोड़ा ठहर, ओ कठोर हृदयवाली ! ठहर जा और अपने वचनोंपर दृढ़ रह !' इस प्रकार वैदिक सूक्तोंको वे दोनों एक दूसरेके प्रति उत्तर-प्रत्युत्तरके रूपमें कहने लगे । उस समय उर्वशीने इला-पुत्र पुरूरवासे कहा--'प्रभो ! मैं आपके द्वारा गर्भवती हूँ ॥ ३५-३६ ॥

संवत्सरात् कुमारास्ते भविष्यन्ति न संशयः ।
निशामेकां च नृपते निवत्स्यसि मया सह ॥ ३७ ॥

'राजन् ! निस्संदेह एक-एक वर्षपर मेरे गर्भसे आपके कुमार उत्पन्न होंगे तथा प्रतिवर्ष एक रात्रि आप मेरे साथ रह सकेंगे' ॥ ३७ ॥

हृष्टो जगाम राजाथ स्वपुरं तु महायशाः ।
गते संवत्सरे भूय उर्वशी पुनरागमत् ॥ ३८ ॥

तब वे महायशस्वी राजा प्रसन्न हो गये और अपने

उन ब्रह्मवादी, क्षमापरायण, धर्मज्ञ तथा सत्यभाषी राजाको यशस्विनी उर्वशी अप्सराने गर्वका परित्याग करके पतिरूपमें वरण कर लिया था ॥ ४ ॥

तया सहावसद् राजा वर्षाणि दश पञ्च च ।
पञ्च षट् सप्त चाष्टौ च दश चाष्टौ च भारत ॥ ५ ॥
वने चैत्ररथे रम्ये तथा मन्दाकिनीतटे ।
अलकायां विशालायां नन्दने च वनोत्तमे ॥ ६ ॥
उत्तरान् स कुरून् प्राप्य मनोरथफलद्रुमान् ।
गन्धमादनपादेषु मेरुपृष्ठे तथोत्तरे ॥ ७ ॥

भारत ! राजा पुरूरवा उस अप्सराके साथ दस वर्षतक रमणीय चैत्ररथ वनमें, पाँच वर्षतक मन्दाकिनीके तटपर बसी हुई अलकापुरीमें, पाँच वर्षतक बदरीनारायणके वनोंमें, छः वर्षतक उत्तम उपवन नन्दनवनमें, सात वर्षतक मनोरथरूप फलको देनेवाले वृक्षोंसे परिपूर्ण उत्तरकुरुदेशोंमें, आठ वर्षतक गन्धमादन पर्वतके शिखरोंपर, दस वर्षतक मेरुपर्वतपर तथा आठ वर्षतक उत्तराचलपर विहार करते रहे ॥ ५–७ ॥

एतेषु वनमुख्येषु सुरैराचरितेषु च ।
उर्वश्या सहितो राजा रेमे परमया मुदा ॥ ८ ॥

राजा पुरूरवा उर्वशीको साथमें लेकर देवताओंसे सेवित इन मुख्य-मुख्य वनोंमें बड़े आनन्दके साथ विहार किया करते थे ॥ ८ ॥

देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरभिष्टुते ।
राज्यं च कारयामास प्रयागं पृथिवीपतिः ॥ ९ ॥

पृथ्वीपति पुरूरवा (उर्वशीके साथ) महर्षियोंसे प्रशंसित परम पवित्र देश प्रयागमें राज्य करते थे ॥ ९ ॥

तस्य पुत्रा बभूवुस्ते सप्त देवसुतोपमाः ।
दिवि जाता महात्मान आयुर्धीमानमावसुः ॥ १० ॥
विश्वायुश्चैव धर्मात्मा श्रुतायुश्च तथापरः ।
दृढायुश्च वनायुश्च शतायुश्चोर्वशीसुताः ॥ ११ ॥

राजाके द्वारा उर्वशीके गर्भसे स्वर्गमें देव-पुत्रोंके तुल्य आयु, बुद्धिमान् अमावसु, धर्मात्मा विश्वायु, श्रुतायु, दृढायु, वनायु और शतायु नामक सात पुत्र उत्पन्न हुए, जो सभी महान् आत्मबलसे सम्पन्न थे ॥ १०-११ ॥

जनमेजय उवाच

गान्धर्वी चोर्वशी देवी राजानं मानुषं कथम् ।
देवानुत्सृज्य सम्प्राप्ता तन्नो ब्रूहि बहुश्रुत ॥ १२ ॥

जनमेजयने पूछा—बहुश्रुत वैशम्पायनजी ! उर्वशीदेवी तो अप्सरा थी, फिर देवताओंका परित्याग कर वह मनुष्य राजाके पास क्योंकर आयी ? यह मुझे बताइये ॥ १२ ॥

वैशम्पायन उवाच

ब्रह्मशापाभिभूता सा मानुषं समपद्यत ।
ऐलं तु सा वरारोहा समयात् समुपस्थिता ॥ १३ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! ब्रह्मशापके कार उर्वशीको मनुष्यलोकमें आना पड़ा था । वह सुन्दर अङ्गों वाली उर्वशी कुछ शर्तोंके साथ इला-नन्दन पुरूरवाके पा रही थी ॥ १३ ॥

आत्मनः शापमोक्षार्थं समयं सा चकार ह ।
अनग्नदर्शनं चैव सकामायां च मैथुनम् ॥ १४
द्वौ मेषौ शयनाभ्याशे सदा बद्धौ च तिष्ठतः ।
घृतमात्रो तथाऽऽहारः कालमेकं तु पार्थिव ॥ १५

भूपाल ! उसने अपने शापसे छूटनेके लिये यह शर्त क ली थी कि 'मैं आपको नंगा न देखूँ, मेरे सकाम होनेपर ह आप सहवास करें, मेरे पलंगके पास सदा दो भेंड़ बँधे रहेंगे औ मैं दिनमें एक बार थोड़ा-सा घृतमात्र भोजन करूँगी ॥१४-१५

यद्येष समयो राजन् यावत्कालं च ते दृढः ।
तावत्कालं तु वत्स्यामि त्वत्तः समय एष नः ॥ १६

'राजन् ! जबतक इन प्रतिज्ञाओंका आप दृढ़ताके सा पालन करते रहेंगे, तबतक मैं आपके पास रहूँगी—यह आपसे प्रतिज्ञा करती हूँ' ॥ १६ ॥

तस्यास्तं समयं सर्वं स राजा समपालयत् ।
एवं सा वसते तत्र पुरूरवसि भामिनी ॥ १७

राजा उसकी सब शर्तोंका पालन करने लगे । इ प्रकार वह श्रेष्ठ अप्सरा पुरूरवाके यहाँ रहने लगी ॥ १७

वर्षाण्येकोनषष्टिस्तु तत्सक्ता शापमोहिता ।
उर्वश्यां मानुषस्थायां गन्धर्वाश्चिन्तयान्विताः ॥ १८

शापके कारण उर्वशीको जब राजामें आसक्त होकर र हुए उनसठ वर्ष बीत गये, तब गन्धर्वोंको मनुष्योंके बी बसनेवाली उर्वशीकी चिन्ता हुई ॥ १८ ॥

गन्धर्वा ऊचुः

चिन्तयध्वं महाभागा यथा सा तु वराङ्गना ।
समागच्छेत् पुनर्देवानुर्वशी स्वर्गभूषणम् ॥ १९

गन्धर्वोंने कहा—महाभागो ! वराङ्गना उर्व देवताओंमें फिर किस प्रकार आवे ? इसका उपाय सोचें क्योंकि वह स्वर्गका भूषण है ॥ १९ ॥

ततो विश्वावसुर्नाम तत्राह वदतां वरः ।
मया तु समयस्ताभ्यां क्रियमाणः श्रुतः पुरा ॥ २०

तब वक्ताओंमें श्रेष्ठ विश्वावसु नामक गन्धर्वने कहा— 'उन दोनोंने पहले जो प्रतिज्ञाएँ की थीं, उन्हें मैंने सुना है

व्युत्क्रान्तसमयं सा वै राजानं त्यक्ष्यते यथा ।
तदहं वेद्म्यशेषेण यथा भेत्स्यत्यसौ नृपः ॥ २१

'राजाके प्रतिज्ञा भङ्ग करनेपर वह उसे छोड़ देगी । उ राजाकी प्रतिज्ञा जिस प्रकार टूटेगी, मैं उसे भी भलीभाँ जानता हूँ ॥ २१ ॥

ससहायो गमिष्यामि युष्माकं कार्यसिद्धये।
एवमुक्त्वा गतस्तत्र प्रतिष्ठानं महायशाः ॥ २२ ॥

'तुम्हारे कामको सिद्ध करनेके लिये अपने सहायकोंको साथ लेकर मैं वहाँ जाऊँगा।' यों कहकर वह महायशस्वी गन्धर्व प्रतिष्ठानपुर (झूँसी-प्रयाग) में गये ॥ २२ ॥

निशायामथ चागम्य मेषमेकं जहार सः।
मातृवद् वर्तते सा तु मेषयोश्चारुहासिनी ॥ २३ ॥

वहाँ आकर उन्होंने रातमें एक भेंड़ चुरा ली। मनोहर हासवाली वह उर्वशी उन भेड़ोंपर माताके समान स्नेह करती थी ॥ २३ ॥

गन्धर्वागमनं श्रुत्वा शापान्तं च यशस्विनी।
राजानमब्रवीत् तत्र पुत्रो मेऽह्रियतेति सा ॥ २४ ॥

यशस्विनी उर्वशीने गन्धर्वोंके आगमनको सुनकर विचारा कि अब मेरे शापके अन्त होनेका समय आ गया, तब उसने राजासे कहा—'राजन्! मेरे एक बच्चेको चोर चुरा ले गये' ॥

एवमुक्तो विनिश्चित्य नग्नो नैवोदतिष्ठत।
नग्नं मां द्रक्ष्यते देवी समयो वितथो भवेत् ॥ २५ ॥

यह कहनेपर भी वह यह विचारकर नंगा नहीं उठा कि यदि यह देवी मुझे नंगा देख लेगी तो मेरी प्रतिज्ञा झूठी हो जायगी ॥ २५ ॥

ततो भूयस्तु गन्धर्वा द्वितीयं मेषमाददुः।
द्वितीये तु हृते मेषे ऐलं देव्यब्रवीदिदम् ॥ २६ ॥

इतनेहीमें गन्धर्व पुनः दूसरे भेंड़को भी उठा ले गये। दूसरे भेंड़के चुराये जानेपर देवी उर्वशीने पुरूरवासे यह कहा—॥२६॥

पुत्रो मेऽपहृतो राजन्ननाथाया इव प्रभो।
एवमुक्तस्तथोत्थाय नग्नो राजा प्रधावितः ॥ २७ ॥
मेषयोः पदमन्विच्छन् गन्धर्वैर्विद्युदप्यथ।
उत्पादिता सुमहती ययौ तद्भवनं महत् ॥ २८ ॥
प्रकाशितं वै सहसा ततो नग्नमवैक्षत।
नग्नं दृष्ट्वा तिरोभूता साप्सरा कामरूपिणी ॥ २९ ॥

'सामर्थ्यशाली राजन्! अनाथ स्त्रीके समान मेरे पुत्रोंको छीन लिया गया।' यों उर्वशीके कहनेपर राजा नंगे ही उठकर भेड़ोंके पैरके चिह्नका अनुसरण करते हुए दौड़े। इसी समय गन्धर्वोंने बड़ी भारी बिजली चमकायी। उस समय वह विशाल भवन एक साथ प्रकाशित हो गया। तब तो उर्वशीने राजाको नंगा देख लिया। वह कामरूपिणी अप्सरा राजाको नंगा देखते ही अन्तर्धान हो गयी ॥ २७–२९ ॥

उत्सृष्टावुरणौ दृष्ट्वा राजा गृह्यागतो गृहे।
अपश्यन्नुर्वशीं तत्र विललाप सुदुःखितः ॥ ३० ॥

उधर राजा भी (गन्धर्वोंके) छोड़े हुए भेड़ोंको देख उन्हें साथ लेकर घरमें घुसे, पर वहाँ उन्हें उर्वशी नहीं दिखायी दी। तब वे परम दुःखित हो विलाप करने लगे ॥ ३० ॥

चचार पृथिवीं सर्वां मार्गमाण इतस्ततः।
अथापश्यत् स तां राजा कुरुक्षेत्रे महाबलः ॥ ३१ ॥
प्लक्षतीर्थे पुष्करिण्यां हैमवत्यां समाप्लुताम्।
क्रीडन्तीमप्सरोभिश्च पञ्चभिः सह शोभनाम् ॥ ३२ ॥

फिर वे उर्वशीको खोजते हुए पृथ्वीपर सर्वत्र घूमने लगे। कुछ समयके अनन्तर उन महाबली नरेशने उस शोभामयी अप्सराको कुरुक्षेत्रके प्लक्षतीर्थकी हैमवती नामवाली पुष्करिणीमें स्नानकर अपनी पाँच सखियोंके साथ क्रीड़ा करते देखा ॥ ३१-३२ ॥

तां क्रीडन्तीं ततो दृष्ट्वा विललाप सुदुःखितः।
सा चापि तत्र तं दृष्ट्वा राजानमविदूरतः ॥ ३३ ॥
उर्वशी ताः सखीः प्राह स एष पुरुषोत्तमः।
यस्मिन्नहमवात्सं वै दर्शयामास तं नृपम् ॥ ३४ ॥

क्रीड़ा करती हुई उर्वशीको देखकर राजा दुःखित होकर विलाप करने लगे। इधर उर्वशीने भी उस राजाको समीप ही देखकर अपनी सखियोंसे राजाको दिखाया और कहा—'ये वे ही पुरुषोत्तम हैं, जिनके पास मैं रही थी' ॥ ३३-३४ ॥

समाविग्नास्तु ताः सर्वाः पुनरेव नराधिपः।
जाये ह तिष्ठ मनसा घोरे वचसि तिष्ठ ह ॥ ३५ ॥
एवमादीनि सूक्तानि परस्परमभाषत।
उर्वशी चाब्रवीदैलं सगर्भाहं त्वया प्रभो ॥ ३६ ॥

उस समय वे सभी अप्सराएँ (उर्वशीके पुनर्गमनकी आशङ्कासे) घबरा गयीं। इधर राजा उससे फिर कहने लगे—'प्रिये! तू थोड़ा ठहर, ओ कठोर हृदयवाली! ठहर जा और अपने वचनोंपर दृढ़ रह!' इस प्रकार वैदिक सूक्तोंको वे दोनों एक दूसरेके प्रति उत्तर-प्रत्युत्तरके रूपमें कहने लगे। उस समय उर्वशीने इला-पुत्र पुरूरवासे कहा—'प्रभो! मैं आपके द्वारा गर्भवती हूँ ॥ ३५-३६ ॥

संवत्सरात् कुमारास्ते भविष्यन्ति न संशयः।
निशामेकां च नृपते निवत्स्यसि मया सह ॥ ३७ ॥

'राजन्! निस्संदेह एक-एक वर्षपर मेरे गर्भसे आपके कुमार उत्पन्न होंगे तथा प्रतिवर्ष एक रात्रि आप मेरे साथ रह सकेंगे' ॥ ३७ ॥

हृष्टो जगाम राजाथ स्वपुरं तु महायशाः।
गते संवत्सरे भूय उर्वशी पुनरागमत् ॥ ३८ ॥

तब वे महायशस्वी राजा प्रसन्न हो गये और अपने

नगरमें आ गये। वर्ष समाप्त होनेपर उर्वशी उनके पास फिर आयी ॥ ३८ ॥

उषितश्च तया सार्द्धमेकरात्रं महायशाः।
उर्वश्यथाब्रवीदैलं गन्धर्वा वरदास्तव ॥ ३९ ॥

महायशस्वी पुरूरवा उसके साथ एक रात्रि रहे। तदनन्तर उर्वशीने पुरूरवासे कहा—'गन्धर्व आपको वर देना चाहते हैं ॥ ३९ ॥

तान् वृणीष्व महाराज ब्रूहि चैनांस्त्वमेव हि।
वृणीष्व समतां राजन् गन्धर्वाणां महात्मनाम् ॥ ४० ॥

'महाराज ! अब आप वर माँग लीजिये। आप इनसे इन महात्मा गन्धर्वोंकी समता माँग लीजिये' ॥ ४० ॥

तथेत्युक्त्वा वरं वव्रे गन्धर्वाश्च तथास्त्विति।
पूरयित्वाग्निना स्थालीं गन्धर्वाश्च तमब्रुवन् ॥ ४१ ॥

तब पुरूरवाने 'बहुत अच्छा' कहकर गन्धर्वोंसे वर माँग लिया। तब गन्धर्वोंने 'बहुत अच्छा, 'ऐसा ही होगा,' कहकर एक थालीमें अग्नि भरकर पुरूरवासे कहा—॥ ४१ ॥

अनेनेष्ट्वा च लोकान्नः प्राप्स्यसि त्वं नराधिप।
तानादाय कुमारांस्तु नगरायोपचक्रमे ॥ ४२ ॥

'राजन् ! इस अग्निसे यज्ञ करके तुम हमारे लोकोंमें आ जाओगे।' तब वे राजा (अग्नि और) अपने पुत्रोंको लेकर नगरकी ओर चले ॥ ४२ ॥

निक्षिप्याग्निमरण्ये तु सपुत्रस्तु गृहं ययौ।
स त्रेताग्निं तु नापश्यदश्वत्थं तत्र दृष्टवान् ॥ ४३ ॥

(मार्गमें) उन्होंने वनमें अग्निको रख दिया और अपने पुत्रोंको लेकर घरमें प्रवेश किया। फिर वनमें जानेपर वहाँ उन्होंने अग्निको नहीं देखा; किंतु उसकी जगह एक पीपलके वृक्षको खड़ा देखा ॥ ४३ ॥

शमीजातं तु तं दृष्ट्वा अश्वत्थं विस्मितस्तदा।
गन्धर्वेभ्यस्तदाशंसदग्निनाशं ततस्तु सः ॥ ४४ ॥

तब वे राजा (अग्निको अपने गर्भमें छिपानेवाले शमी (जंड) के वृक्षमेंसे उत्पन्न हुए पीपलको देख विस्मयमें पड़ गये और उन्होंने गन्धर्वोंसे अग्निके न दीखने वृत्तान्त कहा ॥ ४४ ॥

श्रुत्वा तमर्थमखिलमरणीं तु समादिशन्।
अश्वत्थादरणीं कृत्वा मथित्वाग्निं यथाविधि ॥ ४५।
मथित्वाग्निं त्रिधा कृत्वा अयजत् स नराधिपः।
इष्ट्वा यज्ञैर्बहुविधैर्गतस्तेषां सलोकताम् ॥ ४६।

गन्धर्वोंने सब बातको सुनकर कहा, 'तुम पीपलकी अर बना लो' तब उन्होंने पीपलकी अरणी बनाकर शास्त्रीय विधि अनुसार उन अरणियोंको मथकर अग्निको उत्पन्न किया। उस अग्निके तीन विभाग किये। तदनन्तर उस अ उन्होंने यजन किया था। वे उस त्रेताग्निसे अनेक प्रका यज्ञ कर गन्धर्वोंकी समानता पाकर गन्धर्वोंके लोकमें प गये ॥ ४५-४६ ॥

गन्धर्वेभ्यो वरं लब्ध्वा त्रेताग्निं समकारयत्।
एकोऽग्निः पूर्वमेवासीदैलस्त्रेतामकारयत् ॥ ४७।

राजा पुरूरवाने गन्धर्वोंसे वर पाकर त्रेताग्निकी रच की थी। पहले अग्नि एक ही था, पुरूरवाने उसको ती बनाया था ॥ ४७ ॥

एवंप्रभावो राजासीदैलस्तु नरसत्तम।
देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरभिष्टुते ॥ ४८।
राज्यं स कारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः।
उत्तरे जाह्नवीतीरे प्रतिष्ठाने महायशाः ॥ ४९।

नरश्रेष्ठ ! राजा पुरूरवा ऐसे प्रतापी थे। उन महायश पृथ्वीपतिने गङ्गाके उत्तर तटपर बसे हुए महर्षियोंसे प्रशं परम पवित्र प्रतिष्ठान (झूँसी—प्रयाग) में रा किया था ॥ ४८-४९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि ऐलोत्पत्तिर्नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पुरूरवाकी उत्पत्तिविषयक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः

पुरूरवाके द्वितीय पुत्र अमावसुके वंशका वर्णन, विश्वामित्र और परशुरामकी उत्पत्ति

वैशम्पायन उवाच

ऐलपुत्रा बभूवुस्ते सर्वे देवसुतोपमाः।
दिवि जाता महात्मान आयुर्धीमानमावसुः ॥ १ ॥
विश्वायुश्चैव धर्मात्मा श्रुतायुश्च तथापरः।
दृढायुश्च वनायुश्च शतायुश्चोर्वशीसुताः ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! पुरूरवाके सभी पुत्र देवकुमारोंके तुल्य थे। वे सब महात्मा उर्व गर्भसे स्वर्गमें उत्पन्न हुए थे। (उनके नाम इस प्र हैं—) आयु, बुद्धिमान् अमावसु, धर्मात्मा विश्वायु, श्रुत दृढायु, वनायु और शतायु ॥ १-२ ॥

अमावसोश्च दायादो भीमो राजाथ नग्नजित्।
श्रीमान् भीमस्य दायादो राजासीत् काञ्चनप्रभः।

विद्वांस्तु काञ्चनस्यापि सुहोत्रोऽभून्महाबलः ॥ ३ ॥

अमावसुके राजा भीम और नग्नजित् नामक पुत्र हुए थे। भीमके पुत्र श्रीमान् राजा काञ्चनप्रभ हुए। काञ्चनके महाबली पुत्र सुहोत्र हुए, जो बड़े विद्वान् थे ॥ ३ ॥

सौहोत्रिरभवज्जह्नुः केशिन्या गर्भसम्भवः।
आजह्रे यो महत्सत्रं सर्वमेधमहामखम् ॥ ४ ॥

सुहोत्रके केशिनीके गर्भसे जह्नु नामक पुत्र हुए। उन्होंने सर्वमेध नामक महायज्ञका अनुष्ठान किया था (जिसमें बहुत बड़ा 'अन्नसत्र' होता है) ॥ ४ ॥

पतिलोभेन यं गङ्गा पतित्वेऽभिससार ह।
नेच्छतः प्लावयामास तस्य गङ्गां च तत्सदः।
स तया प्लावितं दृष्ट्वा यज्ञवाटं समन्ततः ॥ ५ ॥
सौहोत्रिरब्रवीद् गङ्गां क्रुद्धो भरतसत्तम ॥ ६ ॥

गङ्गाजी उनको पति बनानेके लोभसे उनके समीप गयी थीं; परंतु जब उन्होंने इस बातकी इच्छा न की, तब गङ्गाजीने उनकी सभाको जलसे भर दिया था। भरतसत्तम ! सुहोत्र-पुत्र जह्नुने अपने यज्ञवाटको गङ्गाजीके द्वारा डूबता हुआ देख क्रोधमें भरकर गङ्गाजीसे कहा—॥ ५-६ ॥

एष ते विफलं यत्नं पिबन्नम्भः करोम्यहम्।
अस्य गङ्गेऽवलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि ॥ ७ ॥

'गङ्गे ! मैं तेरे इस जलको पीकर तेरे यत्नको व्यर्थ किये देता हूँ। तू अपने अभिमानका फल शीघ्र ही पा ले' ॥ ७ ॥

राजर्षिणा ततः पीतां गङ्गां दृष्ट्वा महर्षयः।
उपनिन्युर्महाभागां दुहितृत्वेन जाह्नवीम् ॥ ८ ॥

तदनन्तर उन राजर्षिने गङ्गाजीको पी लिया। यह देखकर महर्षियोंने महाभागा गङ्गाजीको उनकी पुत्री मानकर (उनका नाम) जाह्नवी रख दिया ॥ ८ ॥

युवनाश्वस्य पुत्रीं तु कावेरीं जह्नुरावहत्।
युवनाश्वस्य शापेन गङ्गार्धेन विनिर्ममे।
कावेरीं सरितां श्रेष्ठां जह्नोर्भार्यामनिन्दिताम् ॥ ९ ॥

जह्नुने युवनाश्वकी पुत्री कावेरीसे विवाह किया था, जिसे युवनाश्वके शापसे गङ्गाने अपने ही आधे भागद्वारा प्रकट किया था; इस प्रकार सरिताओंमें श्रेष्ठ साध्वी कावेरी जह्नुकी भार्या हुई ॥ ९ ॥

जह्नुस्तु दयितं पुत्रं सुनहं नाम धार्मिकम्।
कावेर्यां जनयामास अजकस्तस्य चात्मजः ॥ १० ॥

जह्नुने कावेरीके गर्भसे सुनह नामक धार्मिक पुत्रको उत्पन्न किया। सुनहके पुत्र अजक हुए ॥ १० ॥

अजकस्य तु दायादो बलाकाश्वो महीपतिः।
बभूव मृगयाशीलः कुशस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥ ११ ॥

अजकके पुत्र राजा बलाकाश्व हुए। उनको मृगयाका व्यसन था। उनके पुत्र कुश हुए ॥ ११ ॥

कुशपुत्रा बभूवुर्हि चत्वारो देववर्चसः।
कुशिकः कुशनाभश्च कुशाम्बो मूर्तिमांस्तथा ॥ १२ ॥

कुशके देवताओंके समान कान्तिमान् कुशिक, कुशनाभ, कुशाम्ब और मूर्तिमान् नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १२ ॥

पह्लवैः सह संवृद्धि राजा वनचरैस्तदा।
कुशिकस्तु तपस्तेपे पुत्रमिन्द्रसमप्रभम्।
लभेयमिति तं शक्रस्त्रासादभ्येत्य जज्ञिवान् ॥ १३ ॥

राजा कुशिक वनवासी पह्लवोंके साथ पलकर बड़े हुए थे। उन्होंने इन्द्रके समान प्रभाववाले पुत्रको पानेकी इच्छासे तप करना आरम्भ कर दिया। तब इन्द्र उनके भयसे स्वयं ही उनके यहाँ पुत्र बनकर उत्पन्न हो गये ॥ १३ ॥

पूर्णे वर्षसहस्रे वै तं तु शक्रो ह्यपश्यत।
अत्युग्रतपसं दृष्ट्वा सहस्राक्षः पुरंदरः ॥ १४ ॥
समर्थः पुत्रजनने स्वमेवांशमवासयत्।
पुत्रत्वे कल्पयामास स देवेन्द्रः सुरोत्तमः ॥ १५ ॥

राजा कुशिकको जब (तप करते) एक हजार वर्ष पूरे हो गये, तब इन्द्रका ध्यान कुशिककी ओर गया, हजार नेत्रोंवाले पुरन्दर इन्द्रने राजाको अति उग्र तप करके पुत्र उत्पन्न करनेमें समर्थ देख उन (के वीर्य) में अपने अंशको स्थापित कर दिया। इस प्रकार देवेन्द्र सुरोत्तम कुशिकके पुत्र बने थे ॥ १४-१५ ॥

स गाधिरभवद् राजा मघवान् कौशिकः स्वयम्।
पौरुकुत्स्यभवद् भार्या गाधिस्तस्यामजायत ॥ १६ ॥

इस प्रकार इन्द्र स्वयं (कुशिकके पुत्र) कौशिक गाधि बनकर उत्पन्न हुए थे। राजा कुशिककी पत्नी पुरुकुत्सकी पुत्री थी, उसके गर्भसे ही गाधि उत्पन्न हुए थे ॥ १६ ॥

गाधेः कन्या महाभागा नाम्ना सत्यवती शुभा।
तां गाधिर्भृगुपुत्राय ऋचीकाय ददौ प्रभुः ॥ १७ ॥

गाधिकी महाभाग्यवती शुभ कन्याका नाम सत्यवती था, राजा गाधिने सत्यवतीका विवाह भृगुपुत्र ऋचीकके साथ कर दिया था ॥ १७ ॥

तस्याः प्रीतोऽभवद् भर्ता भार्गवो भृगुनन्दनः।
पुत्रार्थं कारयामास चरुं गाधेस्तथैव च ॥ १८ ॥

सत्यवतीके स्वामी भृगुवंशी ऋचीकने अपनी पत्नीके ऊपर प्रसन्न होकर उसके और गाधिके लिये पुत्र देनेवाला चरु बनाया ॥ १८ ॥

उवाचाहूय तां भर्ता ऋचीको भार्गवस्तदा।
उपयोज्यश्चरुरयं त्वया मात्रा त्वयं तव ॥ १९ ॥

तदनन्तर सत्यवतीके स्वामी भृगुवंशी ऋचीकने सत्यवतीको

बुलाकर कहा—'तू इस चरुका उपयोग करना और इस (दूसरे) चरुका उपयोग करनेके लिये अपनी मातासे कहना ॥ १९ ॥

तस्यां जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमान् क्षत्रियर्षभः ।
अजेयः क्षत्रियैर्लोके क्षत्रियर्षभसूदनः ॥ २० ॥

'तुम्हारी माताके जो पुत्र होगा, वह क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ, दीप्तिमान्, संसारमें क्षत्रियोंसे अजेय और बड़े-बड़े क्षत्रियोंको दबानेवाला होगा ॥ २० ॥

तवापि पुत्रं कल्याणि धृतिमन्तं तपोनिधिम् ।
शमात्मकं द्विजश्रेष्ठं चरुरेष विधास्यति ॥ २१ ॥

'कल्याणि ! यह चरु तुम्हें भी धैर्यधारी तपोनिधि शान्तस्वरूप द्विजश्रेष्ठ पुत्र देगा' ॥ २१ ॥

एवमुक्त्वा तु तां भार्यामृचीको भृगुनन्दनः ।
तपस्यभिरतो नित्यमरण्यं प्रविवेश ह ॥ २२ ॥

सदा तपस्यामें ही तत्पर रहनेवाले भृगुनन्दन ऋचीक अपनी पत्नीसे इस प्रकार कहकर (तप करनेके लिये) वनमें चले गये ॥ २२ ॥

गाधिः सदारस्तु तदा ऋचीकावासमभ्यगात् ।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन सुतां द्रष्टुं जनेश्वरः ॥ २३ ॥

उसी समय राजा गाधि अपनी भार्याके साथ तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे अपनी पुत्रीको देखनेके लिये ऋचीक ऋषिके आश्रमपर आये ॥ २३ ॥

चरुद्वयं गृहीत्वा तदृषेः सत्यवती तदा ।
चरुमादाय यत्नेन सा तु मात्रे न्यवेदयत् ॥ २४ ॥

तब सत्यवतीने ऋषिके दिये हुए दोनों चरुओंको ग्रहण करके उन्हें यत्नपूर्वक अपनी माताके सामने लाकर रख दिये ॥ २४ ॥

माता व्यत्यस्य दैवेन दुहित्रे स्वं चरुं ददौ ।
तस्याश्चरुमथाज्ञानादात्मसंस्थं चकार ह ॥ २५ ॥

तब दैववश माताने चरु बदलकर पुत्रीको अपना चरु दे दिया और उसने अज्ञानवश पुत्रीके चरुको स्वयं खा लिया ॥ २५ ॥

अथ सत्यवती गर्भं क्षत्रियान्तकरं तदा ।
धारयामास दीप्तेन वपुषा घोरदर्शनम् ॥ २६ ॥

तदनन्तर सत्यवतीने क्षत्रियोंका संहार करनेवाले गर्भको धारण कर लिया, जो अपने शरीरकी कान्तिके कारण घोर (क्रूर) दीखने लगा ॥ २६ ॥

तामृचीकस्ततो दृष्ट्वा योगेनाभ्यनुसृत्य च ।
तामब्रवीद् द्विजश्रेष्ठः स्वां भार्यां वरवर्णिनीम् ॥ २७ ॥

उसको देखकर ऋषिने ध्यानके द्वारा सारी बातोंको जान लिया । फिर द्विजश्रेष्ठ ऋचीक ऋषि अपनी श्रेष्ठ अङ्गोंवाली भार्यासे कहने लगे—॥ २७ ॥

मात्रासि वञ्चिता भद्रे चरुव्यत्यासहेतुना ।
जनिष्यति हि पुत्रस्ते क्रूरकर्मातिदारुणः ॥
भ्राता जनिष्यते चापि ब्रह्मभूतस्तपोधनः ।
विश्वं हि ब्रह्म तपसा मया तस्मिन् समर्पितम् ॥

'भद्रे ! माताने तुझे ठग लिया है, चरुमें उलट-फेर तेरा पुत्र अत्यन्त दारुण क्रूर कार्य करनेवाला होगा तेरा भाई तपस्याका धनी एवं ब्रह्मस्वरूप होगा, मैंने द्वारा उस (चरु) में सारा वेद भर दिया था' ॥ २८-२

एवमुक्ता महाभागा भर्त्रा सत्यवती तदा ।
प्रसादयामास पतिं पुत्रो मे नेदृशो भवेत् ।
ब्राह्मणापसदस्तत्र इत्युक्तो मुनिरब्रवीत् ॥

पतिके इस प्रकार कहनेपर महाभाग्यवती सत्यवती को प्रसन्न करके बोली—'मेरा पुत्र ऐसा ब्राह्मणाधम न तब मुनिने उससे कहा—॥ ३० ॥

नैष संकल्पितः कामो मया भद्रे तथास्त्विति ।
उग्रकर्मा भवेत् पुत्रः पितुर्मातुश्च कारणात् ।
पुनः सत्यवती वाक्यमेवमुक्ताब्रवीदिदम् ॥ ३

'भद्रे ! पिता अथवा माताके कारण ही पुत्र क्रू करनेवाला हो जाता है, मैंने तो उग्र कर्म करनेवाले पु कामना नहीं की थी (परंतु तेरी ही असावधानीसे उलट-फेर हो गया है अतएव ऐसा ही पुत्र होगा)।' इस कहनेपर सत्यवतीने फिर कहा—॥ ३१ ॥

इच्छँल्लोकानपि मुने सृजेथाः किं पुनः सुतम् ।
शमात्मकमृजुं त्वं मे पुत्रं दातुमिहार्हसि ॥ ३

'मुने ! आप चाहें तो तीनों लोकोंका निर्माण कर हैं, फिर पुत्रकी तो बात ही क्या ? आप तो मुझे शमप सरल पुत्र ही प्रदान करें' ॥ ३२ ॥

काममेवंविधः पौत्रो मम स्यात्तव च प्रभो ।
यद्यन्यथा न शक्यं वै कर्तुमेतद् द्विजोत्तम ॥ ३

'प्रभो ! द्विजश्रेष्ठ ! यदि इस बातको पलटा न जा तो भले ही आपका और मेरा पौत्र ऐसा हो जाय' ॥ ३३

ततः प्रसादमकरोत्स तस्यास्तपसो बलात् ।
भद्रे नास्ति विशेषो मे पौत्रे च वरवर्णिनि ।
त्वया यथोक्तं वचनं तथा भद्रं भविष्यति ॥ ३

तब उन्होंने अपने तपोबलसे उसके ऊपर अ किया और कहा—'भद्रे ! वरवर्णिनि ! मैं (पुत्रमें अ पौत्रमें कुछ भेद नहीं समझता, अतः तूने जो वह वैसा ही होगा' ॥ ३४ ॥

ततः सत्यवती पुत्रं जनयामास भार्गवम् ।
तपस्यभिरतं दान्तं जमदग्निं शमात्मकम् ॥ ३

तदनन्तर सत्यवतीने भृगुवंशी जमदग्निको जन्म दिया, जो तपस्यापरायण, जितेन्द्रिय तथा शम (मनोनिग्रह) से सम्पन्न थे ॥ ३५ ॥

भृगोश्चरुविपर्यासे रौद्रवैष्णवयोः पुरा ।
यजनाद् वैष्णवेऽथांशे जमदग्निरजायत ॥ ३६ ॥

भृगुवंशी ऋचीक मुनिने पूर्वकालमें जो देवताओंकी आराधना की थी, उसीके प्रभावसे रुद्र और विष्णुके अंशभूत उन दोनों चरुओंमें उलट-फेर हो जानेपर भी वैष्णव चरुके अंशसे शान्तस्वभाव जमदग्नि मुनिका जन्म हुआ ॥ ३६ ॥

सा हि सत्यवती पुण्या सत्यधर्मपरायणा ।
कौशिकीति समाख्याता प्रवृत्तेयं महानदी ॥ ३७ ॥

सत्यवती सत्य-धर्ममें तत्पर रहनेवाली पुण्यात्मा स्त्री थी। वही कौशिकी नामसे विख्यात महानदी हुई ॥ ३७ ॥

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रेणुर्नाम नराधिपः ।
तस्य कन्या महाभागा कामली नाम रेणुका ॥ ३८ ॥

इक्ष्वाकुवंशमें रेणु नामवाले एक नरेश थे। उनकी कन्या महाभागा रेणुका थी, जिसका दूसरा नाम कामली भी था ॥

रेणुकायां तु कामल्यां तपोविद्यासमन्वितः ।
आर्चीको जनयामास जामदग्न्यं सुदारुणम् ॥ ३९ ॥
सर्वविद्यानुगं श्रेष्ठं धनुर्वेदस्य पारगम् ।
रामं क्षत्रियहन्तारं प्रदीप्तमिव पावकम् ॥ ४० ॥

उस रेणुका या कामलीके गर्भसे तपस्वी एवं विद्वान् ऋचीकपुत्र जमदग्निने अत्यन्त कठोर स्वभाववाले परशुरामजीको प्रकट किया, जो समस्त विद्याओंमें पारङ्गत, धनुर्वेदमें प्रवीण, क्षत्रियकुलका संहार करनेवाले तथा प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी थे ॥ ३९-४० ॥

और्वस्यैवमृचीकस्य सत्यवत्यां महायशाः ।
जमदग्निस्तपोवीर्याज्जज्ञे ब्रह्मविदां वरः ॥ ४१ ॥

इस प्रकार और्व नामसे प्रसिद्ध ऋचीक मुनिके तपोबलसे उनकी पत्नी सत्यवतीके गर्भसे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महायशस्वी जमदग्निका प्रादुर्भाव हुआ ॥ ४१ ॥

मध्यमश्च शुनःशेपः शुनःपुच्छः कनिष्ठकः ।
विश्वामित्रं तु दायादं गाधिः कुशिकनन्दनः ॥ ४२ ॥
जनयामास पुत्रं तु तपोविद्याशमात्मकम् ।
प्राप्य ब्रह्मर्षिसमतां योऽयं सप्तर्षितां गतः ॥ ४३ ॥

ऋचीकके मझले पुत्र शुनःशेप और छोटे पुत्र शुनःपुच्छ थे। इधर कुशिकनन्दन महाराज गाधिने विश्वामित्रको पुत्ररूपमें प्रकट किया, जो तपस्वी, विद्वान् और शान्त थे। वे ब्रह्मर्षिकी समता पाकर सप्तर्षियोंमें प्रतिष्ठित हुए हैं ॥ ४२-४३ ॥

विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा नाम्ना विश्वरथः स्मृतः ।
जज्ञे भृगुप्रसादेन कौशिकाद् वंशवर्धनः ॥ ४४ ॥

धर्मात्मा विश्वामित्रका दूसरा नाम विश्वरथ था। वे कुशिकवंशी राजा गाधिके यहाँ भृगुवंशी ऋचीक मुनिकी कृपासे उत्पन्न हुए थे और अपने वंशका विस्तार करनेवाले थे ॥

विश्वामित्रस्य च सुता देवरातादयः स्मृताः ।
प्रख्यातास्त्रिषु लोकेषु तेषां नामानि मे शृणु ॥ ४५ ॥

विश्वामित्रके देवरात आदि बहुत-से पुत्र कहे गये हैं, जो तीनों लोकोंमें विख्यात थे। उनके नाम मुझसे सुनो ॥

देवश्रवाः कतिश्चैव यस्मात्कात्यायनाः स्मृताः ।
शालावत्यां हिरण्याक्षो रेणोर्जज्ञेऽथ रेणुमान् ॥ ४६ ॥
सांकृतिर्गालवश्चैव मुद्गलश्चेति विश्रुताः ।
मधुच्छन्दो जयश्चैव देवलश्च तथाष्टकः ॥ ४७ ॥
कच्छपो हारितश्चैव विश्वामित्रस्य वै सुताः ।
तेषां ख्यातानि गोत्राणि कौशिकानां महात्मनाम् ॥ ४८ ॥

देवश्रवा, कात्यायन गोत्रके प्रवर्तक कति और हिरण्याक्ष—ये तीनों शालावतीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। उनकी दूसरी स्त्रीका नाम रेणु था, जिससे रेणुमान्, साङ्कृति, गालव, मुद्गल, मधुच्छन्द, जय तथा देवल उत्पन्न हुए थे। अष्टक (दृषद्वती या माधवीका पुत्र था), कच्छप और हारित भी विश्वामित्रके ही पुत्र थे। इन कौशिकवंशी महात्माओंके प्रसिद्ध गोत्र इस प्रकार हैं ॥ ४६—४८ ॥

पाणिनो बभ्रवश्चैव ध्यानजप्यास्तथैव च ।
पार्थिवा देवराताश्च शालङ्कायनबाष्कलाः ॥ ४९ ॥
लोहिता यामदूताश्च तथा कारीषवः स्मृताः ।
सौश्रुताः कौशिका राजंस्तथान्ये सैन्धवायनाः ॥ ५० ॥
देवला रेणवश्चैव याज्ञवल्क्याघमर्षणाः ।
औदुम्बरा ह्यभिष्णातास्तारकायनचुञ्चुलाः ॥ ५१ ॥
शालावत्या हिरण्याक्षाः सांकृत्या गालवास्तथा ।
बादरायणिनश्चान्ये विश्वामित्रस्य धीमतः ॥ ५२ ॥

राजन् ! पाणिन, बभ्रु, ध्यानजप्य, पार्थिव, देवरात, शालङ्कायन, बाष्कल, लोहित, यामदूत, कारीषु, सौश्रुत, कौशिक, सैन्धवायन, देवल, रेणु, याज्ञवल्क्य, अघमर्षण, औदुम्बर, अभिष्णात, तारकायन, चुञ्चुल, शालावत्य, हिरण्याक्ष, साङ्कृत्य, गालव तथा बादरायणि—ये तथा और भी बहुत-से बुद्धिमान् विश्वामित्रके पुत्र थे ॥ ४९—५२ ॥

ऋष्यन्तरविवाह्याश्च कौशिका बहवः स्मृताः ।
पौरवस्य महाराज ब्रह्मर्षेः कौशिकस्य च ।
सम्बन्धोऽप्यस्य वंशेऽस्मिन्ब्रह्मक्षत्रस्य विश्रुतः ॥ ५३ ॥

कौशिकगोत्री ब्राह्मणोंकी संख्या बहुत है। वे अन्य ऋषियोंके कुलमें विवाह-सम्बन्ध स्थापित करनेके योग्य हैं। महाराज! राजर्षि पौरव तथा ब्रह्मर्षि कौशिकके कुलमें सम्बन्ध हुआ है। इस प्रकार इस वंशमें ब्राह्मणों तथा क्षत्रियोंका परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध विख्यात है ॥ ५३ ॥

विश्वामित्रात्मजानां तु शुनःशेपोऽग्रजः स्मृतः।
भार्गवः कौशिकत्वं हि प्राप्तः स मुनिसत्तमः ॥ ५४ ॥

विश्वामित्रके पुत्रोंमें शुनःशेप सबसे बड़े माने गये हैं। मुनिश्रेष्ठ शुनःशेपका जन्म यद्यपि भृगुकुलमें हुआ था तथापि वे कौशिकगोत्री हो गये ॥ ५४ ॥

विश्वामित्रस्य पुत्रस्तु शुनःशेपोऽभवत् किल।
हरिदश्वस्य यज्ञे तु पशुत्वे विनियोजितः ॥ ५५ ॥
देवैर्दत्तः शुनःशेपो विश्वामित्राय वै पुनः।
देवैर्दत्तः स वै यस्माद् देवरातस्ततोऽभवत् ॥ ५६ ॥

कहते हैं, राजा हरिदश्व (हरिश्चन्द्र) के यज्ञमें शुनःशेप पशु बनाकर लाये गये थे। उसी समय वे विश्वामित्रके पुत्र हुए। देवताओंने विश्वामित्रके हाथमें पुनः शुनःशेपको दे दिया था। देवताओंद्वारा प्रदत्त होनेके कारण वे ('देवैः इस व्युत्पत्तिके अनुसार) देवरात नामसे विख्यात

देवरातादयः सप्त विश्वामित्रस्य वै सुताः।
दृषद्वतीसुतश्चापि विश्वामित्रात् तथाष्टकः ॥

विश्वामित्रके देवरात आदि सात प्रमुख पुत्र थे। से अष्टकका भी जन्म हुआ था, जो दृषद्वतीका पुत्र

अष्टकस्य सुतो लौहिः प्रोक्तो जह्नुगणो मया।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वंशमायोर्महात्मनः ॥

अष्टकका पुत्र लौहि बताया गया है। इस प्रकार जह्नुकुलका वर्णन किया। इसके बाद महात्मा आयुके वर्णन करूँगा ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वण्यमावसुवंशकीर्तनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें अमावसुके
वंशका वर्णनविषयक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २७ ॥

* * *

अष्टाविंशोऽध्यायः

राजा रजि और उनके पुत्रोंका चरित्र, इन्द्रका अपने स्थानसे भ्रष्ट होकर पुनः उसपर प्रतिष्ठित हो

वैशम्पायन उवाच

आयोः पुत्रास्तथा पञ्च सर्वे वीरा महारथाः।
स्वर्भानुतनयायां च प्रभायां जज्ञिरे नृप ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—नरेश्वर! स्वर्भानुकुमारी प्रभा आयुकी पत्नी थी। उसके गर्भसे आयुके पाँच पुत्र उत्पन्न हुए, जो सब-के-सब वीर और महारथी थे ॥ १ ॥

नहुषः प्रथमं जज्ञे वृद्धशर्मा ततः परम्।
रम्भो रजिरनेनाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥ २ ॥

उनमें सबसे पहले नहुषका जन्म हुआ। तत्पश्चात् वृद्धशर्मा उत्पन्न हुए। तदनन्तर क्रमशः रम्भ, रजि और अनेना प्रकट हुए। ये तीनों लोकोंमें विख्यात थे ॥ २ ॥

रजिः पुत्रशतानीह जनयामास पञ्च वै।
राजेयमिति विख्यातं क्षत्रमिन्द्रभयावहम् ॥ ३ ॥

रजिने पाँच सौ पुत्रोंको जन्म दिया। वे सभी क्षत्रिय राजेय नामसे विख्यात हुए। उनसे इन्द्र भी डरते थे ॥ ३ ॥

यत्र देवासुरे युद्धे समुत्पन्ने सुदारुणे।
देवाश्चैवासुराश्चैव पितामहमथाब्रुवन् ॥ ४ ॥
आवयोर्भगवन् युद्धे को विजेता भविष्यति।
ब्रूहि नः सर्वभूतेश श्रोतुमिच्छामि ते वचः ॥ ५ ॥

पूर्वकालमें देवताओं तथा असुरोंमें अत्यन्त भयंकर युद्ध आरम्भ होनेपर उन दोनों पक्षोंके लोगोंने पितामह ब्रह्माजीसे पूछा—'भगवन्! सर्वभूतेश्वर! बताइये, हम दोनोंके युद्धमें कौन विजयी होगा? हम इस विषयमें आपकी यथार्थ सुनना चाहते हैं' ॥ ४-५ ॥

ब्रह्मोवाच

येषामर्थाय संग्रामे रजिरात्तायुधः प्रभुः।
योत्स्यते ते जयिष्यन्ति त्रींल्लोकान्नात्र संशयः ॥

ब्रह्माजीने कहा—शक्तिशाली राजा रजि हाथमें लेकर जिनके लिये संग्रामभूमिमें खड़े हो युद्ध करेंगे, वे लोकोंपर विजय प्राप्त कर लेंगे। इसमें संशय नहीं है ॥

यतो रजिर्धृतिस्तत्र श्रीश्च तत्र यतो धृतिः।
यतो धृतिश्च श्रीश्चैव धर्मस्तत्र जयस्तथा ॥

जिस पक्षमें रजि हैं, उधर ही धृति है जहाँ धृति है वहीं है तथा जहाँ धृति और लक्ष्मी हैं वहीं धर्म एवं विजय है ॥

ते देवदानवाः प्रीता देवेनोक्ता रजेर्जये।
अभ्ययुर्जयमिच्छन्तो वृण्वाना भरतर्षभ ॥

भरतकुलभूषण जनमेजय! रजिकी विजयके ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर देवता और दानव प्रसन्न हो अपनी विजय चाहते हुए रजिका वरण करनेके लिये पास गये ॥ ८ ॥

स हि स्वर्भानुदौहित्रः प्रभायां समपद्यत।
राजा परमतेजस्वी सोमवंशप्रवर्धनः ॥

वे राहुके दौहित्र थे। राहुकी पुत्री प्रभाके गर्भसे जन्म हुआ था। सोमवंशकी वृद्धि करनेवाले वे राजा तेजस्वी थे ॥ ९ ॥

ते हृष्टमनसः सर्वे रजिं देवाश्च दानवाः।
ऊचुरस्मज्जयाय त्वं गृहाण वरकार्मुकम् ॥ १० ॥

समस्त देवता और दानव दोनों प्रसन्नचित्त हो रजिके पास जाकर बोले—'राजन्! आप हमारी विजयके लिये अपना श्रेष्ठ धनुष धारण कीजिये' ॥ १० ॥

अथोवाच रजिस्तत्र तयोर्वै देवदैत्ययोः।
स्वार्थज्ञः स्वार्थमुद्दिश्य यशः स्वं च प्रकाशयन् ॥ ११ ॥

तब स्वार्थको समझनेवाले रजिने वहाँ स्वार्थको सामने रखकर अपने यशको प्रकाशमें लाते हुए देवता और दानव दोनों पक्षके लोगोंसे कहा ॥ ११ ॥

रजिरुवाच

यदि दैत्यगणान् सर्वाञ्जित्वा शक्रपुरोगमाः।
इन्द्रो भवामि धर्मेण ततो योत्स्यामि संयुगे ॥ १२ ॥

रजि बोले—इन्द्रादि देवताओ! यदि मैं समस्त दैत्योंको जीतकर धर्मतः इन्द्र हो सकूँ तो तुम्हारी ओरसे रणभूमिमें युद्ध करूँगा ॥ १२ ॥

देवाः प्रथमतो भूयः प्रत्यूचुर्हृष्टमानसाः।
एवं यथेष्टं नृपते कामः सम्पद्यतां तव ॥ १३ ॥

यह सुनकर देवताओंने फिर प्रसन्नचित्त हो पहले ही उत्तर दिया—'नरेश्वर! ऐसा ही होगा। तुम्हारी अभीष्ट कामना पूर्ण हो' ॥ १३ ॥

श्रुत्वा सुरगणानां तु वाक्यं राजा रजिस्तदा।
पप्रच्छासुरमुख्यांस्तु यथा देवानपृच्छत ॥ १४ ॥

देवताओंकी यह बात सुनकर उस समय राजा रजिने मुख्य-मुख्य असुरोंसे भी वैसी ही बात पूछी जैसी देवताओंसे पूछी थी ॥ १४ ॥

दानवा दर्पपूर्णास्तु स्वार्थमेवानुगम्य ह।
प्रत्यूचुस्ते नृपवरं साभिमानमिदं वचः ॥ १५ ॥

तब अहंकारी दानवोंने स्वार्थको ही सामने रखकर अनुसरण करते हुए उन नृपश्रेष्ठको अभिमानपूर्वक यों उत्तर दिया— ॥ १५ ॥

अस्माकमिन्द्रः प्रह्लादो यस्यार्थे विजयामहे।
अस्मिंस्तु समये राजंस्तिष्ठेथा राजसत्तम ॥ १६ ॥

'राजशिरोमणे! हमारे इन्द्र तो प्रह्लाद ही हैं, जिनके लिये हम विजय प्राप्त करना चाहते हैं। राजन्! आपको इसी शर्तपर हमारे पक्षमें खड़ा होना चाहिये' ॥ १६ ॥

स तथेति ब्रुवन्नेव देवैरप्यभिचोदितः।
भविष्यसीन्द्रो जित्वैवं देवैरुक्तस्तु पार्थिवः।
जघान दानवान् सर्वान् ये वध्या वज्रपाणिनः ॥ १७ ॥

वे 'बहुत अच्छा' कहकर असुरोंकी बात मानना ही चाहते थे कि देवताओंने फिर उन्हें अपने पक्षमें आनेके लिये प्रेरणा देते हुए कहा—'राजन्! तुम इस प्रकार विजय पाकर हमारे इन्द्र हो जाओगे।' देवताओंके ऐसा कहनेपर राजा रजिने उन समस्त दानवोंका संहार कर डाला, जो वज्रपाणि इन्द्रके द्वारा मारे जाने योग्य थे ॥ १७ ॥

स विप्रणष्टां देवानां परमश्रीः श्रियं वशी।
निहत्य दानवान् सर्वानाजहार रजिः प्रभुः ॥ १८ ॥

मनको वशमें रखनेवाले परमकान्तिमान् एवं शक्तिशाली राजा रजिने समस्त दानवोंका संहार करके देवताओंकी खोयी हुई सम्पत्तिको फिर वापस ला दिया ॥ १८ ॥

ततो रजिं महावीर्यं देवैः सह शतक्रतुः।
रजेः पुत्रोऽहमित्युक्त्वा पुनरेवाब्रवीद् वचः ॥ १९ ॥

तब देवताओंसहित इन्द्रने अपनेको रजिका पुत्र बताकर उन महापराक्रमी रजिसे पुनः इस प्रकार कहा— ॥ १९ ॥

इन्द्रोऽसि तात देवानां सर्वेषां नात्र संशयः।
यस्याहमिन्द्रः पुत्रस्ते ख्यातिं यास्यामि कर्मभिः ॥ २० ॥

'तात! आप हम सब देवताओंके इन्द्र हैं, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि मैं इन्द्र आजसे आपके इन वीरोचित कर्मोंद्वारा अनुगृहीत हो आपका पुत्र कहलाऊँगा। आपके पुत्ररूपमें ही मेरी ख्याति होगी' ॥ २० ॥

स तु शक्रवचः श्रुत्वा वञ्चितस्तेन मायया।
तथेत्येवाब्रवीद् राजा प्रीयमाणः शतक्रतुम् ॥ २१ ॥

इन्द्रकी यह बात सुनकर उनकी मायासे वञ्चित हो महाराज रजिने 'तथास्तु' कह दिया। वे इन्द्रपर बहुत प्रसन्न थे ॥ २१ ॥

तस्मिंस्तु देवसदृशे दिवं प्राप्ते महीपतौ।
दायाद्यमिन्द्रादाजह्रुराचारात् तनया रजेः ॥ २२ ॥

उन देवोपम भूपाल रजिके ब्रह्मलोकवासी हो जानेपर उनके पुत्रोंने लोकव्यवहारके अनुसार इन्द्रसे अपना दायभाग माँगा और बलपूर्वक ले लिया ॥ २२ ॥

पञ्चपुत्रशतान्यस्य तद्वै स्थानं शतक्रतोः।
समाक्रमन्त बहुधा स्वर्गलोकं त्रिविष्टपम् ॥ २३ ॥

रजिके पाँच सौ पुत्र थे। उन्होंने इन्द्रके त्रिविष्टप नामसे प्रसिद्ध स्वर्गलोकपर बारंबार आक्रमण करके उसे ले लिया ॥ २३ ॥

ततो बहुतिथे काले समतीते महाबलः।
हृतराज्योऽब्रवीच्छक्रो हृतभागो बृहस्पतिम् ॥ २४ ॥

तदनन्तर बहुत समय बीत जानेपर राज्य और यज्ञभागसे वञ्चित हो अत्यन्त दुर्बल हुए इन्द्रने एक दिन एकान्तमें बृहस्पतिजीसे कहा ॥ २४ ॥

इन्द्र उवाच

बदरीफलमात्रं वै पुरोडाशं विधत्स्व मे।
ब्रह्मर्षे येन तिष्ठेयं तेजसाऽऽप्यायितः सदा ॥ २५ ॥

इन्द्र बोले—ब्रह्मर्षे ! आप एक बेरके बराबर भी पुरोडाशखण्डकी व्यवस्था मेरे लिये कर दें, जिससे मैं भी सदा तेजसे परिपुष्ट होता रहूँ ॥ २५ ॥

ब्रह्मन् कृशोऽहं विमना हृतराज्यो हृताशनः।
हतौजा दुर्बलो मूढो रजिपुत्रैः कृतः प्रभो ॥ २६ ॥

ब्रह्मन् ! प्रभो ! रजिके पुत्रोंने मेरा राज्य और भोजन छीनकर मुझे अत्यन्त कृश, खिन्नचित्त, हतोत्साह, दुर्बल एवं मूढ़ बना दिया है ॥ २६ ॥

बृहस्पतिरुवाच

यद्येवं चोदितः शक्र त्वयास्यां पूर्वमेव हि।
नाभविष्यत्त्वत्प्रियार्थमकर्तव्यं ममानघ ॥ २७ ॥

बृहस्पतिजीने कहा—निष्पाप इन्द्र ! यदि ऐसी बात है तो तुम्हें मुझसे पहले ही यह कहना चाहिये था। तुम्हारा प्रिय करनेके लिये ऐसा कोई कार्य नहीं है, जो मैं न कर सकूँ ॥ २७ ॥

प्रयतिष्यामि देवेन्द्र त्वत्प्रियार्थं न संशयः।
यथा भागं च राज्यं च नचिरात् प्रतिलप्स्यसे ॥ २८ ॥

देवेन्द्र ! मैं तुम्हारे प्रिय मनोरथकी सिद्धिके लिये निःसंदेह ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे तुम अपना राज्य और यज्ञभाग शीघ्र प्राप्त कर लोगे ॥ २८ ॥

तथा तात करिष्यामि मा भूत् ते विक्लवं मनः।
ततः कर्म चकारास्य तेजसो वर्धनं तदा ॥ २९ ॥

तात ! तुम जैसा चाहते हो वैसा ही करूँगा। तुम्हारा मन व्याकुल न हो। ऐसा कहकर बृहस्पतिजीने उस समय इन्द्रके तेजको बढ़ानेवाले कर्मका अनुष्ठान किया ॥ २९ ॥

तेषां च बुद्धिसम्मोहमकरोद् द्विजसत्तमः।
नास्तिवादार्थशास्त्रं हि धर्मविद्वेषणं परम् ॥ ३० ॥

द्विजश्रेष्ठ बृहस्पतिने रजिके पुत्रोंकी बुद्धिमें मोह उत्पन्न करनेके लिये ऐसे शास्त्रका निर्माण किया, जो नास्तिकवादसे परिपूर्ण तथा धर्मके प्रति अत्यन्त द्वेष उत्पन्न करनेवाला था ॥ ३० ॥

परमं तर्कशास्त्राणामसतां तन्मनोऽनुगम्।
न हि धर्मप्रधानानां रोचते तत्कथान्तरे ॥ ३

केवल तर्कके आधारपर अपने सिद्धान्तका प्रतिश करनेवाले शास्त्रोंमें वह उत्कृष्ट माना गया है। बृहस्पि वह नास्तिक दर्शन दुष्ट पुरुषोंके ही मनको अधिक भात धर्मप्रधान पुरुषोंको बातचीतके प्रसंगमें भी उसकी चर्चा सुहाती है ॥ ३१ ॥

ते तद् बृहस्पतिकृतं शास्त्रं श्रुत्वाल्पचेतसः।
पूर्वोक्तधर्मशास्त्राणामभवन् द्वेषिणः सदा ॥ ३

बृहस्पतिके उस शास्त्रको सुनकर वे मन्दबुद्धि रजि पहलेके धर्मशास्त्रोंसे सदा द्वेष रखने लगे ॥ ३२ ॥

प्रवक्तुर्न्यायरहितं तन्मतं बहु मेनिरे।
तेनाधर्मेण ते पापाः सर्व एव क्षयं गताः ॥ ३

वक्ताका वह न्यायरहित मत उन्हें बहुत उत्तम पड़ने लगा। उसी अधर्मसे वे सब पापी नष्ट हो गये ॥

त्रैलोक्यराज्यं शक्रस्तु प्राप्य दुष्प्रापमेव च।
बृहस्पतिप्रसादाद्धि परां निर्वृतिमभ्ययात् ॥ ३

इस तरह बृहस्पतिकी कृपासे त्रिलोकीका वह दुर्लभ पाकर इन्द्र बड़े प्रसन्न हुए ॥ ३४ ॥

ते यदा तु सुसम्मूढा रागोन्मत्ता विधर्मिणः।
ब्रह्मद्विषश्च संवृत्ता हतवीर्यपराक्रमाः ॥ ३
ततो लेभे सुरैश्वर्यमिन्द्रः स्थानं तथोत्तमम्।
हत्वा रजिसुतान् सर्वान् कामक्रोधपरायणान् ॥ ३

वे रजिके पुत्र जब नास्तिकवादका आश्रय ले विवेक रागोन्मत्त, धर्मके विपरीत चलनेवाले, ब्रह्मद्रोही, शकि और पराक्रमशून्य हो गये, तब काम-क्रोधमें तत्पर रहने उन समस्त रजिपुत्रोंको मारकर इन्द्रने देवताओंका और उत्तम स्थान प्राप्त कर लिया ॥ ३५-३६ ॥

य इदं च्यावनं स्थानात् प्रतिष्ठां च शतक्रतोः।
शृणुयाद् धारयेद्वापि न स दौरात्म्यमाप्नुयात्॥ ३

जो इन्द्रके अपने स्थानसे भ्रष्ट होने और पुनः प्रतिष्ठित होनेके इस प्रसङ्गको सुनता और अपने धारण करता है, उसके मनमें कभी दुर्भावना आती ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि आयोर्वंशकीर्तनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें आयुके वंशका वर्णनविषयक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

अनेनाके वंशका वर्णन, धन्वन्तरिका काशिराज धन्वके यहाँ पुत्ररूपमें अवतार, दिवोदासके राज्यकालमें भगवान् शिवकी आज्ञासे गणेश्वर निकुम्भके द्वारा वाराणसीको जनशून्य बनानेका प्रयत्न, वहाँ शिव और पार्वतीका निवास, दिवोदासका वाराणसीपर अधिकार और अलर्ककी प्रशंसा

वैशम्पायन उवाच

रम्भोऽनपत्यस्तत्रासीद् वंशं वक्ष्याम्यनेनसः।
अनेनसः सुतो राजा प्रतिक्षत्रो महायशाः॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! आयुपुत्र रम्भके कोई संतान नहीं हुई। अब मैं अनेनाके वंशका वर्णन करूँगा। अनेनाके पुत्र महायशस्वी राजा प्रतिक्षत्र हुए॥ १॥

प्रतिक्षत्रसुतश्चापि सृञ्जयो नाम विश्रुतः।
सृञ्जयस्य जयः पुत्रो विजयस्तस्य चात्मजः॥ २ ॥

प्रतिक्षत्रके पुत्र सृञ्जय नामसे विख्यात हुए। सृञ्जयके पुत्र जय और जयके पुत्र विजय हुए॥ २॥

विजयस्य कृतिः पुत्रस्तस्य हर्यश्वतः सुतः।
हर्यश्वतसुतो राजा सहदेवः प्रतापवान्॥ ३ ॥

विजयके पुत्र कृति, कृतिके हर्यश्व और हर्यश्वके पुत्र प्रतापी राजा सहदेव हुए॥ ३॥

सहदेवस्य धर्मात्मा नदीन इति विश्रुतः।
नदीनस्य जयत्सेनो जयत्सेनस्य संकृतिः॥ ४ ॥

सहदेवका धर्मात्मा पुत्र नदीन नामसे विख्यात हुआ। नदीनका पुत्र जयत्सेन और जयत्सेनका सङ्कृति था॥ ४॥

संकृतेरपि धर्मात्मा क्षत्रधर्मा महायशाः।
अनेनसः समाख्याताः क्षत्रवृद्धस्य मे शृणु॥ ५ ॥

सङ्कृतिके पुत्र महायशस्वी धर्मात्मा क्षत्रधर्मा हुए। यहाँतक अनेनाके पुत्रोंका वर्णन हुआ। अब मुझसे क्षत्रवृद्धकी संततिका वर्णन सुनो॥ ५॥

क्षत्रवृद्धात्मजस्तत्र सुनहोत्रो महायशाः।
सुनहोत्रस्य दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः॥ ६ ॥
काशः शलश्च द्वावेतौ तथा गृत्समदः प्रभुः।
पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकाः॥ ७ ॥

क्षत्रवृद्धके पुत्र महायशस्वी सुनहोत्र हुए। सुनहोत्रके परम धार्मिक तीन पुत्र थे—काश, शल और प्रभावशाली गृत्समद। गृत्समदके पुत्र शुनक हुए, जिससे शौनक-वंशका विस्तार हुआ॥ ६-७॥

ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च।
शलात्मजश्चार्ष्टिषेणस्तनयस्तस्य काशकः॥ ८ ॥

शौनक-वंशमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी वर्णोंके लोग हुए। शलके पुत्रका नाम आर्ष्टिषेण था। उनके पुत्र काशक हुए॥ ८॥

काशस्य काशयो राजन् पुत्रो दीर्घतपास्तथा।
धन्वस्तु दीर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरिस्ततः॥ ९ ॥

राजन्! काशके वंशज (पुत्र) काशि कहलाये। इनमें दीर्घतपा सबसे प्रथम पुत्र थे। दीर्घतपाके धन्व और धन्वसे विद्वान् धन्वन्तरिका प्रादुर्भाव हुआ॥ ९॥

तपसोऽन्ते सुमहतो जातो वृद्धस्य धीमतः।
पुनर्धन्वन्तरिर्देवो मानुषेष्विह जज्ञिवान्॥ १० ॥

अपनी महान् तपस्या पूरी करके अन्तमें धन्वन्तरि देवने बुद्धिमान् एवं वृद्ध राजा धन्वके यहाँ इस मनुष्यरूपमें पुनः जन्म ग्रहण किया॥ १०॥

जनमेजय उवाच

कथं धन्वन्तरिर्देवो मानुषेष्विह जज्ञिवान्।
एतद् वेदितुमिच्छामि तन्मे ब्रूहि यथातथम्॥ ११ ॥

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! धन्वन्तरि देव इस मनुष्यलोकमें किस प्रकार उत्पन्न हुए? यह मैं जानना चाहता हूँ। अतः यह प्रसङ्ग मुझे ठीक-ठीक बताइये॥ ११॥

वैशम्पायन उवाच

धन्वन्तरेः सम्भवोऽयं श्रूयतां भरतर्षभ।
जातः स हि समुद्रात्तु मथ्यमाने पुरामृते॥ १२ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—भरतश्रेष्ठ! धन्वन्तरिके जन्मका यह प्रसङ्ग सुनो। वे पूर्वकालमें अमृतमन्थनके समय समुद्रसे प्रकट हुए थे॥ १२॥

उत्पन्नः कलशात् पूर्वं सर्वतश्च श्रिया वृतः।
अभ्यसन् सिद्धिकार्यं हि विष्णुं दृष्ट्वा हि तस्थिवान्॥ १३॥

पहले जब वे समुद्रसे प्रकट हुए, उस समय भगवान् विष्णुके नामोंका जप और आरोग्य-साधक कार्यका चिन्तन करते हुए सब ओरसे दिव्य कान्तिसे प्रकाशित हो रहे थे। वे अपने सामने भगवान् विष्णुको देखकर खड़े हो गये॥

अब्जस्त्वमिति होवाच तस्मादब्जस्तु स स्मृतः।
अब्जः प्रोवाच विष्णुं वै तव पुत्रोऽस्मि वै प्रभो॥ १४॥
विधत्स्व भागं स्थानं च मम लोके सुरेश्वर।
एवमुक्तः स दृष्ट्वा वै तथ्यं प्रोवाच तं प्रभुः॥ १५॥

भगवान् विष्णुने उनसे कहा—'तुम अप् अर्थात् जलसे प्रकट हुए हो, इसलिये अब्ज हो।' उनके ऐसा कहनेसे वे अब्ज कहलाने लगे। उस समय अब्जने भगवान् विष्णुसे कहा—'प्रभो! मैं आपका पुत्र हूँ। सुरेश्वर! मेरे लिये यज्ञभागकी व्यवस्था कीजिये और लोकमें मेरे लिये कोई स्थान दीजिये।' उनके ऐसा कहनेपर भगवान् विष्णुने उनकी ओर देखकर यह यथार्थ बात कही—॥ १४-१५ ॥

कृतो यज्ञविभागो हि यज्ञियैर्हि सुरैः पुरा।
देवेषु विनियुक्तं हि विद्धि होत्रं महर्षिभिः ॥ १६ ॥

'पूर्वकालमें यज्ञसम्बन्धी देवताओंने यज्ञका विभाग कर लिया है। महर्षियोंने हवनीय पदार्थोंका देवताओंके लिये ही विनियोग किया है। इस बातको तुम अच्छी तरह समझ लो ॥

न शक्यमुपहोमा वै तुभ्यं कर्तुं कदाचन।
अर्वाग्भूतोऽसि देवानां पुत्र त्वं तु नहीश्वरः ॥ १७ ॥

'बेटा! तुम्हें छोटे-मोटे उपहोम कभी नहीं अर्पित किये जा सकते (क्योंकि वे तुम्हारे योग्य नहीं हैं)। तुम देवताओंसे पीछे उत्पन्न हुए हो। अतः तुम्हारे लिये वेद-विरुद्ध यज्ञभागकी कल्पना नहीं की जा सकती और वैदिक यज्ञभाग पानेके तुम अधिकारी नहीं हो ॥ १७ ॥

द्वितीयायां तु सम्भूत्यां लोके ख्यातिं गमिष्यसि।
अणिमादिश्च ते सिद्धिर्गर्भस्थस्य भविष्यति ॥ १८ ॥

'दूसरे जन्ममें तुम संसारमें विख्यात होओगे। वहाँ गर्भावस्थामें ही तुम्हें अणिमा आदि सिद्धि प्राप्त हो जायगी ॥ १८ ॥

तेनैव त्वं शरीरेण देवत्वं प्राप्स्यसे प्रभो।
चरुमन्त्रैर्व्रतैर्जाप्यैर्यक्ष्यन्ति त्वां द्विजातयः ॥ १९ ॥

'प्रभो! तुम उसी शरीरसे देवत्व प्राप्त कर लोगे और ब्राह्मणलोग चरु, मन्त्र, व्रत एवं जपनीय मन्त्रोंद्वारा तुम्हारा यजन करेंगे ॥ १९ ॥

अष्टधा त्वं पुनश्चैवमायुर्वेदं विधास्यसि।
अवश्यभावी ह्यर्थोऽयं प्राग्दृष्टस्त्वब्जयोनिना ॥ २० ॥

'फिर तुम उस जन्ममें आयुर्वेदको आठ भागोंमें विभक्त करके उसे आठ अङ्गोंसे युक्त * बना दोगे, यह बात अवश्य होनेवाली है। कमलयोनि ब्रह्माजीने इसे पहलेसे ही लिया है ॥ २० ॥

द्वितीयं द्वापरं प्राप्य भविता त्वं न संशयः।
इमं तस्मै वरं दत्त्वा विष्णुरन्तर्दधे पुनः ॥ २

'दूसरा द्वापर आनेपर तुम संसारमें प्रकट होओगे, संशय नहीं है।' धन्वन्तरिको यह वर देकर भगवान् फिर अन्तर्धान हो गये ॥ २१ ॥

द्वितीये द्वापरं प्राप्ते सौनहोत्रिः स काशिराट्।
पुत्रकामस्तपस्तेपे धन्वो दीर्घं तपस्तदा ॥ २

जब दूसरा द्वापर आया, तब सुनहोत्रके पुत्र काशि धन्व पुत्रकी कामनासे दीर्घकालीन तपस्या करने लगे ॥ २

प्रपद्ये देवतां तां तु या मे पुत्रं प्रदास्यति।
अब्जं देवं सुतार्थाय तदाऽऽराधितवान् नृपः ॥ २

उन्होंने मन-ही-मन सोचा कि 'मैं उस देवताकी लूँ, जो मुझे पुत्र प्रदान करेगा।' ऐसा विचारकर पुत्रके लिये अब्जदेव (भगवान् धन्वन्तरि) की धना की ॥ २३ ॥

ततस्तुष्टः स भगवानब्जः प्रोवाच तं नृपम्।
यदिच्छसि वरं ब्रूहि तत् ते दास्यामि सुव्रत ॥ २

उस आराधनासे संतुष्ट होकर भगवान् अब्ज धन्वसे बोले—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले नरेश! तुम बर प्राप्त करना चाहते हो, उसे बताओ। वह मैं तुम्हें दूँगा'

नृप उवाच

भगवन् यदि तुष्टस्त्वं पुत्रो मे ख्यातिमान् भव।
तथेति समनुज्ञाय तत्रैवान्तरधीयत ॥ २

राजा बोले—भगवन्! यदि आप मुझसे संतुष्ट हैं मेरे पुत्र हो जायँ और इसी रूपमें आपकी ख्याति हो। 'तथास्तु' कहकर भगवान् धन्वन्तरि वहीं अन्तर्धान हो ग

तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा।
काशिराजो महाराज सर्वरोगप्रणाशनः ॥ २

महाराज! तदनन्तर धन्वन्तरिदेव धन्वके घरमें अव हुए। काशिराज धन्वन्तरि समस्त रोगोंका नाश कर समर्थ थे ॥ २६ ॥

---

*—वैद्यकमें आयुर्वेदके आठ अङ्ग इस प्रकार बताये गये हैं—

कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्राजरावृषान् ।
अष्टावङ्गानि तस्याहुश्चिकित्सा येषु संश्रिता ॥

१—कायचिकित्सा, २—बालचिकित्सा, ३—ग्रहचिकित्सा, ४—ऊर्ध्वाङ्गचिकित्सा, ५—शल्यचिकित्सा, ६—दंष्ट्राचिकित्सा, ७—जराचिकित्सा और ८—वृषचिकित्सा—ये आठ प्रकारकी चिकित्साएँ हैं। पूर्वोक्त काय, बाल आदि जो आठ अङ्ग हैं, उनपर ही चिकित्सा अवलम्बित होती है। शारीरिक रोगोंके निदान और उपचारको कायचिकित्सा कहते हैं। बालकोंके रोगोंका विचार और उन्हें दूर करनेके उपाय आदि बालचिकित्साके अन्तर्गत हैं। भूत, प्रेत, पिशाच आदिके आवेशसे होनेवाली पीड़ाको समझना विभिन्न प्रकारके उपचारोंद्वारा उसे दूर करना ग्रहचिकित्सा सिर, नेत्र आदि ऊपरके अङ्गोंकी बीमारीको दूर करनेकी चेष्ट विधि ऊर्ध्वाङ्गचिकित्सा कहलाती है। अस्त्र-शस्त्रोंके आघात होनेवाले घावको चीर-फाड़कर ठीक करनेकी जो क्रिया है, शल्य-चिकित्सा कहते हैं। सर्पदंशन आदि जङ्गम तथा अफीम स्थावर विषको दूर करनेका उपचार दंष्ट्राचिकित्सा है। रस आदिके द्वारा बुढ़ापाको रोकना या उसे दूर करना जराचिकि है। वाजीकरण तन्त्रको ही वृषचिकित्सा कहते हैं।

आयुर्वेदं भरद्वाजात् प्राप्येह भिषजां क्रियाम् ।
तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत् ॥ २७ ॥

उन्होंने मुनिवर भरद्वाजसे आयुर्वेद तथा चिकित्साकर्मका ज्ञान प्राप्त करके उसे आठ भागोंमें विभक्त किया और उन सबकी विस्तृत विवेचना की । फिर बहुतसे शिष्योंको उस अष्टाङ्गयुक्त आयुर्वेदकी शिक्षा दी ॥ २७ ॥

धन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विश्रुतः ।
अथ केतुमतः पुत्रो वीरो भीमरथः स्मृतः ॥ २८ ॥

धन्वन्तरिके पुत्र केतुमान् नामसे विख्यात हुए । केतुमान्के वीर पुत्रका नाम भीमरथ था ॥ २८ ॥

सुतो भीमरथस्यापि दिवोदासः प्रजेश्वरः ।
दिवोदासस्तु धर्मात्मा वाराणस्यधिपोऽभवत् ॥ २९ ॥

भीमरथके पुत्र धर्मात्मा राजा दिवोदास हुए, जो वाराणसीपुरीके स्वामी थे ॥ २९ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु पुरीं वाराणसीं नृप ।
शून्यां निवासयामास क्षेमको नाम राक्षसः ॥ ३० ॥

नरेश्वर ! राजा दिवोदासके राज्यकालमें ही शापवश वाराणसीपुरी जनशून्य हो गयी थी, जिसे पीछे भगवान् रुद्रके अनुचर क्षेमक नामक राक्षसने बसाया था ॥ ३० ॥

शप्ता हि सा मतिमता निकुम्भेन महात्मना ।
शून्या वर्षसहस्रं वै भवित्री नात्र संशयः ॥ ३१ ॥

भगवान् रुद्रके पार्षद बुद्धिमान् महात्मा निकुम्भने यह शाप दे दिया था कि 'वाराणसीपुरी एक हजार वर्षोंतक जनशून्य बनी रहेगी । इसमें संशय नहीं है' ॥ ३१ ॥

तस्यां तु शप्तमात्रायां दिवोदासः प्रजेश्वरः ।
विषयान्ते पुरीं रम्यां गोमत्यां संन्यवेशयत् ॥ ३२ ॥

उस पुरीके शापग्रस्त हो जानेपर राजा दिवोदासने अपने राज्यकी सीमापर गोमती नदीके किनारे एक रमणीय नगरी बसायी ॥ ३२ ॥

भद्रश्रेण्यस्य पूर्वं तु पुरी वाराणसीत्यभूत् ।
भद्रश्रेण्यस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम् ॥ ३३ ॥
हत्वा निवेशयामास दिवोदासो नरर्षभः ।
भद्रश्रेण्यस्य तद् राज्यं हृतं तेन बलीयसा ॥ ३४ ॥

पहले वाराणसीपुरी (यदुवंशी महिष्मान्के पुत्र) भद्रश्रेण्यके अधिकारमें थी । भद्रश्रेण्यके सौ पुत्र थे, जो श्रेष्ठ धनुर्धर माने जाते थे नरश्रेष्ठ दिवोदासने उन सबको मारकर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया । उन महाबली नरेशने भद्रश्रेण्यके उस राज्यका बलपूर्वक अपहरण कर लिया ॥ ३३-३४ ॥

जनमेजय उवाच

वाराणसीं निकुम्भस्तु किमर्थं शप्तवान् प्रभुः ।
निकुम्भकश्च धर्मात्मा सिद्धिक्षेत्रं शशाप यः ॥ ३५ ॥

जनमेजयने पूछा—मुने ! वाराणसी तो सिद्धिक्षेत्र (मोक्षधाम) है और प्रभावशाली निकुम्भ बड़े धर्मात्मा हैं । फिर उन्होंने उस पुरीको शाप किस लिये दिया ? ॥ ३५ ॥

वैशम्पायन उवाच

दिवोदासस्तु राजर्षिर्नगरीं प्राप्य पार्थिवः ।
वसति स्म महातेजाः स्फीतायां तु नराधिपः ॥ ३६ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! महातेजस्वी नरेश्वर राजर्षि दिवोदास वाराणसी नगरीको पाकर वहाँके राजा हो गये । वे उस समृद्धिशालिनी नगरीमें सदा ही निवास करते थे ॥ ३६ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु कृतदारो महेश्वरः ।
देव्याः स प्रियकामस्तु न्यवसच्छ्वशुरान्तिके ॥ ३७ ॥

इन्हीं दिनों भगवान् शङ्कर विवाह करके देवी पार्वतीका प्रिय करनेकी इच्छासे अपने श्वशुरके पास ही निवास करते थे ॥ ३७ ॥

देवाज्ञया पार्षदा ये त्वधिरूपास्तपोधनाः ।
पूर्वोक्तैरुपदेशैश्च तोषयन्ति स्म पार्वतीम् ॥ ३८ ॥

उस समय महादेवजीकी आज्ञासे उनके सुयोग्य पार्षद, जो तपस्याके धनी थे, उनके पहले दिये हुए उपदेशके अनुसार पार्वतीदेवीको संतुष्ट करते रहते थे ॥ ३८ ॥

हृष्यते वै महादेवी मेना नैव प्रहृष्यति ।
जुगुप्सत्यसकृत् तां वै देवीं देवं तथैव सा ॥ ३९ ॥

इससे महादेवी पार्वती तो प्रसन्न रहती थीं, परंतु उनकी माता मेनाको संतोष नहीं होता था । वे महादेवी पार्वती तथा भगवान् शङ्करकी बारंबार निन्दा ही करती थीं ॥ ३९ ॥

सपार्षदस्त्वनाचारस्तव भर्ता महेश्वरः ।
दरिद्रः सर्वदैवासौ शीलं तस्य न वर्तते ॥ ४० ॥

उन्होंने एक दिन कहा—'उमे ! तेरे पति महादेव और उनके पार्षद सभी अनाचारी हैं । साथ ही वे भोलेनाथ सदाके दरिद्र हैं । शील तो उनमें नाममात्रको भी नहीं है' ॥ ४० ॥

मात्रा तथोक्ता वरदा स्त्रीस्वभावाच्च चुक्रुधे ।
स्मितं कृत्वा च वरदा भवपार्श्वमथागमत् ॥ ४१ ॥

वरदायिनी उमा माताके ऐसा कहनेपर स्त्रीस्वभाववश कुपित हो उठीं और किंचित् मुसकराकर महादेवजीके पास आयीं ॥ ४१ ॥

विवर्णवदना देवी महादेवमभाषत ।
नेह वत्स्याम्यहं देव नय मां स्वं निकेतनम् ॥ ४२ ॥

उस समय उनका मुख मलिन हो रहा था। निकट आकर देवीने महादेवजीसे कहा—'देव ! अब मैं यहाँ (नैहरमें) नहीं रहूँगी। आप मुझे अपने घर ले चलें' ॥ ४२ ॥

तथा कर्तुं महादेवः सर्वलोकानवैक्षत।
वासार्थं रोचयामास पृथिव्यां कुरुनन्दन ॥ ४३ ॥
वाराणसीं महातेजाः सिद्धिक्षेत्रं महेश्वरः।

कुरुनन्दन ! पार्वतीजीके कथनानुसार कार्य करनेके लिये महादेवजीने सम्पूर्ण लोकोंपर दृष्टिपात किया। उन महातेजस्वी महेश्वरने पृथ्वीपर अपने रहनेके लिये सिद्धिक्षेत्र वाराणसीपुरीको पसंद किया ॥ ४३½ ॥

दिवोदासेन तां ज्ञात्वा निविष्टां नगरीं भवः ॥ ४४ ॥
पार्श्वे तिष्ठन्तमाहूय निकुम्भमिदमब्रवीत्।

परंतु उस नगरीमें राजा दिवोदास निवास करते हैं, यह जानकर महादेवजीने अपने पास खड़े हुए निकुम्भसे इस प्रकार कहा—॥ ४४½ ॥

गणेश्वर पुरीं गत्वा शून्यां वाराणसीं कुरु ॥ ४५ ॥
मृदुनैवाभ्युपायेन ह्यतिवीर्यः स पार्थिवः।

'गणेश्वर ! तुम जाकर वाराणसीपुरीको मनुष्योंसे सूनी कर दो; परंतु इसके लिये कोमल उपायसे ही काम लेना, क्योंकि वे राजा दिवोदास बड़े बलवान् हैं' ॥ ४५½ ॥

ततो गत्वा निकुम्भस्तु पुरीं वाराणसीं तदा ॥ ४६ ॥
स्वप्ने निदर्शयामास कण्डुकं नाम नापितम्।
श्रेयस्तेऽहं करिष्यामि स्थानं मे रोचयानघ ॥ ४७ ॥
मद्रूपां प्रतिमां कृत्वा नगर्यन्ते तथैव च।
ततः स्वप्ने यथोद्दिष्टं सर्वं कारितवान् नृप ॥ ४८ ॥

तब निकुम्भने वाराणसीपुरीमें जाकर कण्डुक नाईको स्वप्नमें दर्शन दिया और कहा—'अनघ ! तू नगरकी सीमापर मेरी प्रतिमा बनाकर मेरे लिये निवासस्थानकी व्यवस्था कर। ऐसा करनेसे मैं तेरा कल्याण करूँगा।' नरेश्वर ! तब उस नाईने स्वप्नमें जैसा कहा गया था उसके अनुसार सब कुछ किया और कराया ॥ ४६–४८ ॥

पुरीद्वारे तु विज्ञाप्य राजानं च यथाविधि।
पूजां तु महतीं तस्य नित्यमेव प्रयोजयत् ॥ ४९ ॥

राजाको सूचना देकर उसने नगरके द्वारपर विधिपूर्वक निकुम्भ-प्रतिमाकी स्थापना की। फिर वह प्रतिदिन बड़े समारोहके साथ उस प्रतिमाकी पूजा करने लगा ॥ ४९ ॥

गन्धैश्च धूपमाल्यैश्च प्रोक्षणीयैस्तथैव च।
अन्नपानप्रयोगैश्च अत्यद्भुतमिवाभवत् ॥ ५० ॥

गन्ध, पुष्प, माला, धूप, प्रोक्षणीय जल तथा अन्न-पान आदि अर्पण करके वह नाई निकुम्भकी पूजा करता था। यह वहाँ अत्यन्त अद्भुत-सी बात हुई ॥ ५० ॥

एवं सम्पूज्यते तत्र नित्यमेव गणेश्वरः।
ततो वरसहस्रं तु नागराणां प्रयच्छति।
पुत्रान् हिरण्यमायुश्च सर्वान् कामांस्तथैव च ॥ ५

इस प्रकार वहाँ नित्य ही निकुम्भनामक गणेशकी होती और वे नागरिकोंको सहस्रों वर प्रदान करते थे। सुवर्ण, आयु तथा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तुएँ देते थे ॥ ५१ ॥

राज्ञस्तु महिषी श्रेष्ठा सुयशा नाम विश्रुता।
पुत्रार्थमागता देवी साध्वी राज्ञा प्रचोदिता ॥ ५२

राजा दिवोदासकी श्रेष्ठ महारानी सुयशा नामसे वि थीं। राजाकी आज्ञा लेकर वे साध्वी महारानी पुत्रकी काम से वहाँ आयीं ॥ ५२ ॥

पूजां तु विपुलां कृत्वा देवी पुत्रमयाचत।
पुनः पुनरथागत्य बहुशः पुत्रकारणात् ॥ ५३

वहाँ जाकर बड़े विस्तारके साथ पूजा करके देवी सु ने निकुम्भसे पुत्रके लिये याचना की। उन्होंने बारं आकर पूजन किया और अनेक बार पुत्रके लिये प्रा की ॥ ५३ ॥

न प्रयच्छति पुत्रं हि निकुम्भः कारणेन हि।
राजा तु यदि नः कुप्येत् कार्यसिद्धिस्ततो भवेत् ॥ ५४

परंतु निकुम्भ कारणवश उन्हें पुत्र नहीं देते थे। अ ने सोचा—'यदि राजा किसी तरह हमपर कुपित हो जाय हमारा काम बन जाय' ॥ ५४ ॥

अथ दीर्घेण कालेन क्रोधो राजानमाविशत्।
भूत एष महान् द्वारि नागराणां प्रयच्छति ॥ ५५
प्रीतो वरान् वै शतशो मम किं न प्रयच्छति।
मामकैः पूज्यते नित्यं नगर्यां मे सदैव हि ॥ ५६
विज्ञापितो मयात्यर्थं देव्या मे पुत्रकारणात्।
न ददाति च पुत्रं मे कृतघ्नः केन हेतुना ॥ ५७
ततो नार्हति सत्कारं मत्सकाशाद् विशेषतः।
तस्मात् तु नाशयिष्यामि स्थानमस्य दुरात्मनः ॥ ५८

तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् राजाके मनमें क्रोध हु वे सोचने लगे—'मेरे नगरके द्वारपर बैठा हुआ यह मह भूत प्रसन्न होकर नागरिकोंको सैकड़ों प्रकारके वर देता परंतु मुझे क्यों नहीं देता ? सदा मेरी ही नगरीमें, मेरे लोग इसकी नित्य पूजा करते हैं। मैंने भी देवीको पुत्र प्र करनेके लिये बार-बार निवेदन किया; परंतु यह कृतघ्न जाने किस कारणसे मुझे पुत्र नहीं दे रहा है। अतः अब विशेषतः मुझसे सत्कार पानेके योग्य नहीं रहा। इसलिये दुरात्माके स्थानका मैं नाश कर दूँगा' ॥ ५५–५८ ॥

एवं स तु विनिश्चित्य दुरात्मा राजकिल्बिषी।
स्थानं गणपतेस्तस्य नाशयामास दुर्मतिः ॥ ५९

ऐसा निश्चय करके दुरात्मा, दुर्बुद्धि एवं पापी राजाने गणपति निकुम्भके उस स्थानको नष्ट करा दिया ॥ ५९ ॥

भग्नमायतनं दृष्ट्वा राजानमशपत् प्रभुः ।
यस्मादनपराधस्य त्वया स्थानं विनाशितम् ।
पुर्यकस्मादियं शून्या तव नूनं भविष्यति ॥ ६० ॥

अपने वासस्थानको भग्न हुआ देख भगवान् निकुम्भने राजाको शाप देते हुए कहा—'राजन् ! तुमने बिना किसी अपराधके मेरे स्थानको नष्ट कराया है, इसलिये निश्चय ही तुम्हारी यह नगरी अकस्मात् जनशून्य हो जायगी' ॥ ६० ॥

ततस्तेन तु शापेन शून्या वाराणसी तदा ।
शप्त्वा पुरीं निकुम्भस्तु महादेवमथागमत् ॥ ६१ ॥

तदनन्तर उस शापसे उस समय वाराणसीपुरी सूनी हो गयी । उस पुरीको शाप देकर निकुम्भ महादेवजीके पास चले गये ॥ ६१ ॥

अकस्मात् तु पुरी सा तु विद्रुता सर्वतोदिशम् ।
तस्यां पुर्यां ततो देवो निर्ममे पदमात्मनः ॥ ६२ ॥

वाराणसीमें रहनेवाले सब लोग अकस्मात् सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये । तब महादेवजीने उस पुरीमें अपना निवासस्थान बनाया ॥ ६२ ॥

रमते तत्र वै देवो रममाणो गिरेः सुताम् ।
न रतिं तत्र वै देवी लभते गृहविस्मयात् ।
वसाम्यत्र न पुर्यां तु देवी देवमथाब्रवीत् ॥ ६३ ॥

फिर वे भगवान् शिव गिरिराजनन्दिनी उमाका मनोरञ्जन करते हुए वहाँ आनन्दपूर्वक रहने लगे । परंतु देवी पार्वतीका मन वहाँ नहीं लगता था, क्योंकि वहाँ कोई निश्चित गृह न होनेसे वे विस्मयमें पड़ी रहती थीं । (अथवा पिताके घरके लिये उत्कण्ठित होनेके कारण देवीको वहाँ प्रसन्नता नहीं प्राप्त होती थी ।) उन्होंने महादेवजीसे कहा—'भगवन् ! मैं इस पुरीमें नहीं रहूँगी (आप मेरे घरको चलिये) ' ॥ ६३ ॥

देव उवाच

नाहं वेश्मनि वत्स्यामि अविमुक्तं हि मे गृहम् ।
नाहं तत्र गमिष्यामि गच्छ देवि गृहं प्रति ॥ ६४ ॥

महादेवजी बोले—देवि ! मैं और किसी घरमें नहीं रहूँगा । यह अविमुक्त क्षेत्र ही मेरा घर है । अतः मैं वहाँ नहीं चलूँगा । तुम जाना चाहो तो अपने उस घरको जाओ ॥ ६४ ॥

हसन्नुवाच भगवांस्त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः ।
तस्मात् तदविमुक्तं हि प्रोक्तं देवेन वै स्वयम् ॥ ६५ ॥
एवं वाराणसी शप्ता अविमुक्तं च कीर्तितम् ॥ ६६ ॥

त्रिपुरोंका विनाश करनेवाले त्रिनेत्रधारी भगवान् शिवने हँसते हुए पूर्वोक्त बात कही थी । महादेवजीने स्वयं ही उस क्षेत्रको अविमुक्त कहा था, इसलिये वह अविमुक्त नामसे प्रसिद्ध हो गया । इस तरह वाराणसीपुरीको शाप प्राप्त हुआ और उसे अविमुक्त क्षेत्र कहा गया ॥ ६५-६६ ॥

यस्मिन् वसति वै देवः सर्वदेवनमस्कृतः ।
युगेषु त्रिषु धर्मात्मा सह देव्या महेश्वरः ॥ ६७ ॥

सर्वदेववन्दित धर्मात्मा देव महेश्वर सत्ययुग आदि तीन युगोंमें देवी पार्वतीके साथ उस अविमुक्त क्षेत्रमें प्रत्यक्ष निवास करते हैं ॥ ६७ ॥

अन्तर्धानं कलौ याति तत्पुरं हि महात्मनः ।
अन्तर्हिते पुरे तस्मिन् पुरी सा वसते पुनः ।
एवं वाराणसी शप्ता निवेशं पुनरागता ॥ ६८ ॥

कलियुग आनेपर महात्मा महादेवजीका वह नगर अदृश्य हो जाता है । उसके अदृश्य हो जानेपर वाराणसीपुरी फिरसे बसती है । इस प्रकार वाराणसी नगरी शापग्रस्त होकर उजड़ी और पुनः बसी थी ॥ ६८ ॥

भद्रश्रेण्यस्य पुत्रो वै दुर्दमो नाम विश्रुतः ।
दिवोदासेन बालेति घृणया स विवर्जितः ॥ ६९ ॥

भद्रश्रेण्यका एक पुत्र दुर्दम नामसे विख्यात था । दिवोदासने उसे बालक समझकर दयावश जीवित छोड़ दिया था ॥ ६९ ॥

हैहयस्य तु दायाद्यं कृतवान् वै महीपतिः ।
आजह्रे पितृदायाद्यं दिवोदासहृतं बलात् ॥ ७० ॥

उस राजाने हैहयका पुत्र होना स्वीकार किया और उन्हींकी सहायतासे उसने दिवोदासद्वारा बलपूर्वक अपहृत हुई अपनी पैतृक सम्पत्तिको फिर वापस लौटाया ॥ ७० ॥

भद्रश्रेण्यस्य पुत्रेण दुर्दमेन महात्मना ।
वैरस्यान्तं महाराज क्षत्रियेण विधित्सता ॥ ७१ ॥

महाराज ! भद्रश्रेण्यका महामनस्वी पुत्र दुर्दम एक वीर क्षत्रिय था । उसने वैरका बदला लेनेके लिये ही वैसा किया था ॥ ७१ ॥

दिवोदासाद् दृषद्वत्यां वीरो जज्ञे प्रतर्दनः ।
तेन पुत्रेण बालेन प्रहृतं तस्य वै पुनः ॥ ७२ ॥

दिवोदास के द्वारा उनकी पत्नी दृषद्वतीके गर्भसे वीर प्रतर्दनका जन्म हुआ । उस राजकुमारने बालक होनेपर भी दुर्दमसे पुनः राज्य छीन लिया ॥ ७२ ॥

प्रतर्दनस्य पुत्रौ द्वौ वत्सभार्गौ बभूवतुः ।
वत्सपुत्रो ह्यलर्कस्तु संनतिस्तस्य चात्मजः ॥ ७३ ॥

प्रतर्दनके दो पुत्र थे—वत्स और भार्ग । वत्सके पुत्र अलर्क और अलर्कके संनति हुए ॥ ७३ ॥

अलर्कः काशिराजस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः ।
अलर्कं प्रति राजर्षिं श्लोको गीतः पुरातनैः ॥ ७४ ॥

काशिराज अलर्क बड़े ब्राह्मणभक्त और सत्यप्रतिज्ञ थे। राजर्षि अलर्कके विषयमें प्राचीन पुरुषोंने निम्नाङ्कित श्लोकका गान किया है ॥ ७४ ॥

षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिं वर्षशतानि च ।
युवा रूपेण सम्पन्न आसीत् काशिकुलोद्वहः ॥ ७५ ॥

'काशिवंशावतंस अलर्क छाछठ हजार छः सौ वर्षोंतक युवावस्था तथा सुन्दर रूप-वैभवसे सम्पन्न रहे' ॥ ७५ ॥

लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप सः ।
तस्यासीत् सुमहद्राज्यं रूपयौवनशालिनः ॥ ७६ ॥

उन्होंने लोपामुद्राकी कृपासे उत्तम आयु प्राप्त की थी । रूप और युवावस्थासे सुशोभित होनेवाले अलर्कका राज्य बहुत विशाल था ॥ ७६ ॥

शापस्यान्ते महाबाहुर्हत्वा क्षेमकराक्षसम् ।
रम्यां निवेशयामास पुरीं वाराणसीं पुनः ॥ ७७ ॥

महाबाहु अलर्कने निकुम्भके शापका अन्त होनेपर क्षेमक नामक राक्षसको मारकर पुनः रमणीय वाराणसीपुरी बसायी थी ॥ ७७ ॥

संनतेरपि दायादः सुनीथो नाम धार्मिकः ।
सुनीथस्य तु दायादः क्षेम्यो नाम महायशाः ॥ ७८ ॥

संनतिके पुत्र धर्मात्मा सुनीथ हुए और सुनीथका महायशस्वी पुत्र क्षेम्य नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ७८ ॥

क्षेम्यस्य केतुमान् पुत्रः सुकेतुस्तस्य चात्मजः ।
सुकेतोस्तनयश्चापि धर्मकेतुरिति स्मृतः ॥ ७९ ॥

क्षेम्यके पुत्र केतुमान्, केतुमान्के पुत्र सुकेतु और सुके के भी पुत्र धर्मकेतु हुए ॥ ७९ ॥

धर्मकेतोस्तु दायादः सत्यकेतुर्महारथः ।
सत्यकेतुसुतश्चापि विभुर्नाम प्रजेश्वरः ॥ ८

धर्मकेतुके पुत्र महारथी सत्यकेतु हुए और सत्यके पुत्र प्रजापालक विभु हुए ॥ ८० ॥

आनर्तस्तु विभोः पुत्रः सुकुमारस्तु तत्सुतः ।
सुकुमारस्य पुत्रस्तु धृष्टकेतुः सुधार्मिकः ।
धृष्टकेतोस्तु दायादो वेणुहोत्रः प्रजेश्वरः ॥ ८

विभुके पुत्रका नाम आनर्त था । आनर्तका पुत्र सुकु हुआ । सुकुमारके पुत्र परम धर्मात्मा धृष्टकेतु हुए । धृष्टकेतुके पुत्र राजा वेणुहोत्र थे ॥ ८१ ॥

वेणुहोत्रसुतश्चापि भर्गो नाम प्रजेश्वरः ।
वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भृगुभूमिस्तु भार्गवात् ॥ ८

वेणुहोत्रका पुत्र राजा भर्गके नामसे विख्यात हुआ। प्रतर्दनके जो वत्स और भार्ग नामक दो पुत्र बतलाये गये उनमेंसे वत्सके वत्सभूमि तथा भार्गके भृगुभूमि नामक पुत्र हुए

एते त्वङ्गिरसः पुत्रा जाता वंशेऽथ भार्गवे ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्तयोः पुत्राः सहस्रशः ।
इत्येते काशयः प्रोक्ता नहुषस्य निबोध मे ॥ ८

ये अङ्गिरागोत्री गालवके वंशज हैं, जो भार्गवके उत्पन्न हुए । इनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों व लोग हैं। वत्सभूमि और भृगुभूमिके सहस्रों पुत्र कहे गये। इस प्रकार ये राजा काशिके कुलमें उत्पन्न हुए क्षत्रिय गये हैं । अब तुम मुझसे नहुषकी संतानोंका वर्णन सुनो ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें उनतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः

नहुष एवं ययातिके वंशका वर्णन तथा ययातिका चरित्र

वैशम्पायन उवाच

उत्पन्नाः पितृकन्यायां विरजायां महौजसः ।
नहुषस्य तु दायादाः षडिन्द्रोपमतेजसः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! नहुषके उनकी पत्नी पितृकन्या विरजाके गर्भसे छः महाबली पुत्र उत्पन्न हुए, जो इन्द्रके समान तेजस्वी थे ॥ १ ॥

यतिर्ययातिः संयातिरायातिः पाञ्चिको भवः ।
सुयातिः षष्ठस्तेषां वै ययातिः पार्थिवोऽभवत् ।
यतिर्ज्येष्ठस्तु तेषां वै ययातिस्तु ततः परम् ॥ २ ॥

उनके नाम इस प्रकार हैं—यति, ययाति, संयाति, आय पाँचवाँ भव और छठा सुयाति । इनमेंसे ययाति ही हुए । इन छः भाइयोंमें सबसे बड़े थे यति और उनके ययाति उत्पन्न हुए थे ॥ २ ॥

ककुत्स्थकन्यां गां नाम लेभे परमधार्मिकः ।
यतिस्तु मोक्षमास्थाय ब्रह्मभूतोऽभवन्मुनिः ॥ ३

परम धर्मात्मा यतिने ककुत्स्थकी कन्या गौको पत्नी प्राप्त किया था । वे मोक्षधर्मका आश्रय ले ब्रह्मस्वरूप हो गये ॥ ३ ॥

तेषां ययातिः पञ्चानां विजित्य वसुधामिमाम् ।
देवयानीमुशनसः सुतां भार्यामवाप सः ।
शर्मिष्ठामासुरीं चैव तनयां वृषपर्वणः ॥ ४ ॥

शेष पाँच भाइयोंमें ययातिने इस पृथ्वीको जीतकर शुक्राचार्यकी पुत्री देवयानी तथा असुरराज वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठाको भी पत्नीके रूपमें प्राप्त किया ॥ ४ ॥

यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत ।
द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥ ५ ॥

देवयानीने यदु और तुर्वसुको जन्म दिया तथा वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाने द्रुह्यु, अनु तथा पूरु—ये तीन पुत्र उत्पन्न किये ॥ ५ ॥

तस्मै शक्रो ददौ प्रीतो रथं परमभास्वरम् ।
असङ्गं काञ्चनं दिव्यं दिव्यैः परमवाजिभिः ॥ ६ ॥
युक्तं मनोजवैः शुभ्रैर्येन भार्यामुवाह सः ।

ययातिपर प्रसन्न होकर इन्द्रने उन्हें एक अत्यन्त प्रकाशमान रथ प्रदान किया, जिसमें मनके समान वेगशाली, दिव्य, उत्तम एवं श्वेतवर्णके अश्व जुते हुए थे । वह दिव्य रथ सोनेका बना हुआ था । उसकी गति कहीं भी अवरुद्ध नहीं होती थी । उसी रथके द्वारा वे अपनी भार्याको ब्याहकर लाये थे ॥ ६½ ॥

स तेन रथमुख्येन षड्रात्रेनाजयन्महीम् ।
ययातिर्युधि दुर्धर्षस्तथा देवान् सदानवान् ॥ ७ ॥

उस श्रेष्ठ रथके द्वारा दुर्धर्ष राजा ययातिने छः रातोंमें ही सम्पूर्ण पृथ्वी तथा देवताओं और दानवोंको भी जीत लिया था ॥

स रथः पौरवाणां तु सर्वेषामभवत् तदा ।
यावत्तु वसुनाम्नो वै कौरवाज्जनमेजय ॥ ८ ॥

जनमेजय ! कुरुवंशी राजा वसुतक सभी पौरव नरेशोंके पास वह रथ परम्परया प्राप्त होकर विद्यमान था ॥ ८ ॥

कुरोः पुत्रस्य राजेन्द्र राज्ञः पारीक्षितस्य ह ।
जगाम स रथो नाशं शापाद् गार्ग्यस्य धीमतः ॥ ९ ॥

राजेन्द्र ! कुरुवंशी परीक्षित्-कुमार इन्द्रोत जनमेजयको बुद्धिमान् गार्ग्यका शाप प्राप्त होनेके कारण वह रथ उनके यहाँसे अदृश्य हो गया ॥ ९ ॥

गार्ग्यस्य हि सुतं बालं स राजा जनमेजयः ।
वाक्क्रूरं हिंसयामास ब्रह्महत्यामवाप सः ॥ १० ॥

बात यह थी कि गार्ग्यके एक बालक पुत्र था, जो बड़ा ही वाचाल था । उसे इन्द्रोत नामवाले राजा जनमेजयने मार डाला । इससे उन्हें ब्रह्महत्या प्राप्त हुई ॥ १० ॥

स लोहगन्धी राजर्षिः परिधावन्नितस्ततः ।
पौरजानपदैस्त्यक्तो न लेभे शर्म कर्हिचित् ॥ ११ ॥

पुरवासियों तथा जनपदके लोगोंने उन्हें त्याग दिया । उनके शरीरसे लोहेकी-सी गन्ध आती थी (अथवा वे पतितके समान जान पड़ते थे) । राजर्षि इन्द्रोत इधर-उधर भागते-फिरते थे, किंतु कहीं भी उन्हें शान्ति नहीं मिलती थी ॥

ततः स दुःखसंतप्तो नालभत् संविदं क्वचित् ।
इन्द्रोतः शौनकं राजा शरणं प्रत्यपद्यत ॥ १२ ॥

जब कहीं भी स्वस्थ होनेका उपाय नहीं सूझा, तब दुःखसे संतप्त हुए राजा इन्द्रोत शौनक मुनिकी शरणमें गये ॥ १२ ॥

याजयामास चेन्द्रोतं शौनको जनमेजयम् ।
अश्वमेधेन राजानं पावनार्थं द्विजोत्तमः ॥ १३ ॥

द्विजश्रेष्ठ शौनकने राजा इन्द्रोत जनमेजयको शुद्ध करनेके लिये उनसे अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करवाया ॥ १३ ॥

स लोहगन्धो व्यनशत् तस्यावभृथमेत्य ह ।
स च दिव्यो रथो राजन् वसोश्चेदिपतेस्तदा ।
दत्तः शक्रेण तुष्टेन लेभे तस्माद् बृहद्रथः ॥ १४ ॥

उस यज्ञके अन्तमें अवभृथ स्नान कर लेनेपर इन्द्रोतका पाप दूर हो गया और उनके शरीरसे जो लोहेकी-सी गन्ध आती थी, वह मिट गयी । राजन् ! तत्पश्चात् इन्द्रने संतुष्ट होकर वह दिव्य रथ चेदिराज उपरिचर वसुको दे दिया । फिर वसुसे वह रथ मगधराज बृहद्रथको मिला ॥ १४ ॥

बृहद्रथात् क्रमेणैव गतो बार्हद्रथं नृपम् ।
ततो हत्वा जरासंधं भीमस्तं रथमुत्तमम् ॥ १५ ॥
प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनन्दनः ।

बृहद्रथसे क्रमशः वह रथ उनके पुत्र राजा जरासंधको प्राप्त हुआ । तत्पश्चात् कौरवकुलको आनन्दित करनेवाले भीमसेनने जरासंधको मारकर वह उत्तम रथ प्रसन्नतापूर्वक भगवान् श्रीकृष्णको दे दिया ॥ १५½ ॥

सप्तद्वीपां ययातिस्तु जित्वा पृथ्वीं ससागराम् ॥ १६ ॥
व्यभजत् पञ्चधा राजन् पुत्राणां नाहुषस्तदा ।

राजन् ! नहुषनन्दन राजा ययातिने समुद्र और सातों द्वीपोंसहित सारी पृथ्वीको जीतकर उसके पाँच भाग किये और उन्हें अपने पाँचों पुत्रोंमें बाँट दिया ॥ १६½ ॥

दिशि दक्षिणपूर्वस्यां तुर्वसुं मतिमान् नृपः ॥ १७ ॥
प्रतीच्यामुत्तरस्यां च द्रुह्युं चानुं च नाहुषः ।
दिशि पूर्वोत्तरस्यां वै यदुं ज्येष्ठं न्ययोजयत् ॥ १८ ॥

उन बुद्धिमान् नरेशने दक्षिण-पूर्व दिशा तुर्वसुको, पश्चिममें द्रुह्युको और उत्तर दिशामें अनुको अभिषिक्त करके पूर्वोत्तर दिशाके (ईशान कोण) राज्यपर ज्येष्ठ पुत्र यदुको नियुक्त कर दिया ॥ १७-१८ ॥

मध्ये पूरुं च राजानमभ्यषिञ्चत नाहुषः ।
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ॥ १९ ॥

यथाप्रदेशमद्यापि धर्मेण प्रतिपाल्यते।
प्रजास्तेषां पुरस्तात् तु वक्ष्यामि नृपसत्तम ॥ २० ॥

इसके बाद नहुषनन्दन ययातिने मध्यदेशके राज्य-सिंहासनपर पूरुका अभिषेक किया । नृपश्रेष्ठ ! वे तथा उनके वंशज आज भी सातों द्वीपों और नगरोंसहित इस सारी पृथ्वीका अपने-अपने प्रदेशके अनुसार धर्मपूर्वक पालन करते हैं। अब आगे मैं उनकी संतानोंका वर्णन करूँगा ॥१९-२०॥

धनुर्न्यस्य पृषत्कांश्च पञ्चभिः पुरुषर्षभैः।
जरावानभवद् राजा भारमावेश्य बन्धुषु ॥ २१ ॥

पाँच पुरुषप्रवर पुत्रोंसे कृतकृत्य हो राजा ययातिने राज्यका भार अपने उन बन्धु-बान्धवोंपर रखकर धनुष और बाणोंका भी त्याग कर दिया । तत्पश्चात् उन्हें जरावस्थाने काबूमें कर लिया ॥ २१ ॥

निःक्षिप्तशस्त्रः पृथिवीं निरीक्ष्य पृथिवीपतिः।
प्रीतिमानभवद् राजा ययातिरपराजितः।
एवं विभज्य पृथिवीं ययातिर्यदुमब्रवीत् ॥ २२ ॥

किसीसे परास्त न होनेवाले पृथ्वीपति राजा ययाति अस्त्र-शस्त्रोंका त्याग करके पृथ्वीको सुव्यवस्थित देख बड़े प्रसन्न हुए । इस तरह भूमण्डलका विभाग करके ययातिने यदुसे कहा—॥ २२ ॥

जरां मे प्रतिगृह्णीष्व पुत्र कृत्यान्तरेण वै।
तरुणस्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम्।
जरां त्वयि समाधाय तं यदुः प्रत्युवाच ह ॥ २३ ॥

'बेटा ! एक दूसरा कार्य उपस्थित हुआ है, जिसके लिये मुझे तुम्हारी युवावस्था चाहिये । तुम मेरा बुढ़ापा ग्रहण करो और मैं तुममें अपनी वृद्धावस्था स्थापित करके तुम्हारे रूपसे तरुण होकर इस पृथ्वीपर विचरण करूँ ।' तब यदुने उन्हें यों उत्तर दिया—॥ २३ ॥

अनिर्दिष्टा मया भिक्षा ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुता।
अनपाकृत्य तां राजन् न ग्रहीष्यामि ते जराम् ॥ २४ ॥

'महाराज ! मैंने एक ब्राह्मणको मुँहमाँगी भिक्षा देनेकी प्रतिज्ञा कर ली है, अभीतक उसने यह स्पष्टरूपसे बताया नहीं है कि 'मुझे अमुक वस्तु चाहिये ।' मैं जबतक उसकी भिक्षाका ऋण उतार न दूँ, तबतक आपका बुढ़ापा नहीं ले सकूँगा ॥

जरायां बहवो दोषाः पानभोजनकारिताः।
तस्माज्जरां न ते राजन् ग्रहीतुमहमुत्सहे ॥ २५ ॥

'राजन् ! बुढ़ापेमें खान-पानसम्बन्धी बहुत-से दोष हैं, अतः मैं आपका बुढ़ापा नहीं ग्रहण करूँगा ॥ २५ ॥

सन्ति ते बहवः पुत्रा मत्तः प्रियतरा नृप।
प्रतिग्रहीतुं धर्मज्ञ पुत्रमन्यं वृणीष्व वै ॥ २६ ॥

'नरेश्वर ! आपके तो बहुत-से पुत्र हैं, जो मुझसे भी बढ़कर प्रिय हैं; अतः धर्मज्ञ महाराज ! जरावस्था ग्रहण के लिये किसी दूसरे पुत्रका वरण कीजिये' ॥ २६ ॥

स एवमुक्तो यदुना राजा कोपसमन्वितः।
उवाच वदतां श्रेष्ठो ययातिर्गर्हयन् सुतम् ॥ २

यदुके ऐसा कहनेपर वक्ताओंमें श्रेष्ठ राजा ययाति हो उठे और अपने उस पुत्रकी निन्दा करते हुए बोले—॥

क आश्रयस्तवान्योऽस्ति को वा धर्मो विधीयते।
मामनादृत्य दुर्बुद्धे यदहं तव देशिकः ॥ २

'दुर्बुद्धे ! मेरा अनादर करके तेरा दूसरा कौन-सा है ? अथवा तू किस धर्मका पालन कर रहा है ? मैं तो गुरु हूँ (फिर मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन कैसे कर रहा है !)

एवमुक्त्वा यदुं तात शशापैनं स मन्युमान्।
अराज्या ते प्रजा मूढ भवित्रीति नराधम ॥ २

तात ! अपने पुत्र यदुसे ऐसा कहकर कुपित हुए ययातिने उन्हें शाप दिया—'मूढ ! नराधम ! तेरी संतान राज्यसे वञ्चित रहेगी' ॥ २९ ॥

स तुर्वसुं च द्रुह्युं चाप्यनुं च भरतर्षभ।
एवमेवाब्रवीद् राजा प्रत्याख्यातश्च तैरपि ॥ ३

भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर राजा ययातिने क्रमशः द्रुह्यु और अनुको भी बुलाकर उनसे ऐसी ही बात परंतु उन्होंने भी उनकी बात माननेसे इन्कार कर दिया॥

शशाप तानतिक्रुद्धो ययातिरपराजितः।
यथा ते कथितं पूर्वं मया राजर्षिसत्तमः ॥ ३

तब किसीसे भी पराजित न होनेवाले राजर्षिशि ययातिने अत्यन्त कुपित हो उनको भी वैसा ही शाप जैसा यदुके प्रसङ्गमें पहले तुम्हें बताया गया है ॥ ३१ ॥

एवं शप्त्वा सुतान् सर्वांश्चतुरः पूरुपूर्वजान्।
तदेव वचनं राजा पूरुमप्याह भारत ॥ ३

भारत ! इस प्रकार पूरुसे पहले उत्पन्न हुए अपने पुत्रोंको शाप देकर राजा ययातिने पूरुके सामने भी प्रस्ताव रक्खा ॥ ३२ ॥

तरुणस्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम्।
जरां त्वयि समाधाय त्वं पूरो यदि मन्यसे ॥ ३

'पूरो ! यदि तुम स्वीकार करो तो मैं अपने बु भार तुमपर रखकर तुम्हारे रूपसे तरुण होकर इस पृ विचरूँ' ॥ ३३ ॥

स जरां प्रतिजग्राह पितुः पूरुः प्रतापवान्।
ययातिरपि रूपेण पूरोः पर्यचरन्महीम् ॥ ३

यह सुनकर प्रतापी पूरुने पिताका बुढ़ापा ले लिया ययाति भी पूरुके रूपसे तरुण हो इस पृथ्वीपर विचरने

स मार्गमाणः कामानामन्तं भरतसत्तम ।
विश्वाच्या सहितो रेमे वने चैत्ररथे प्रभुः ॥ ३५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! प्रभावशाली ययाति कामनाओंका अन्त ढूँढ़ते हुए चैत्ररथ नामक वनमें गये और वहाँ विश्वाची नामक अप्सराके साथ रमण करने लगे ॥ ३५ ॥

यदावितृष्णः कामानां भोगेषु स नराधिपः ।
तदा पूरोः सकाशाद् वै स्वां जरां प्रत्यपद्यत ॥ ३६ ॥

इतनेपर भी जब उन्हें कामोपभोगसे तृप्ति नहीं हुई, तब उन नरेशने घर आकर पूरुसे अपना बुढ़ापा ले लिया ॥३६॥

तत्र गाथा महाराज शृणु गीता ययातिना ।
याभिः प्रत्याहरेत् कामान् सर्वतोऽङ्गानि कूर्मवत् ॥३७॥

महाराज ! वहाँ ययातिने जो गाथाएँ गायीं (उद्गार प्रकट किये), उन्हें सुनो । उनपर ध्यान देनेसे मनुष्य सब भोगोंकी ओरसे अपने मनको उसी प्रकार हटा सकता है जैसे कछुआ अपने अङ्गोंको सब ओरसे समेट लेता है ॥ ३७ ॥

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ ३८ ॥

ययातिने कहा—'भोगोंकी इच्छा उन्हें भोगनेसे कभी शान्त नहीं होती; अपितु घीसे आगकी भाँति और भी बढ़ती ही जाती है ॥ ३८ ॥

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
नालमेकस्य तत् सर्वमिति पश्यन्न मुह्यति ॥ ३९ ॥

'इस पृथ्वीपर जितने भी धान, जौ, सुवर्ण, पशु तथा स्त्रियाँ हैं, वे सब एक पुरुषके लिये भी पर्याप्त नहीं हैं । ऐसा समझकर विद्वान् पुरुष मोहमें नहीं पड़ता ॥ ३९ ॥

यदा भावं न कुरुते सर्वभूतेषु पापकम् ।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥ ४० ॥

'जब जीव मन, वाणी और क्रियाद्वारा किसी भी प्राणीके प्रति पापबुद्धि नहीं करता, तब वह ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है ॥ ४० ॥

यदान्येभ्यो न बिभ्येत यदा चास्मान्न बिभ्यति ।
यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥ ४१ ॥

'जब वह दूसरे प्राणियोंसे नहीं डरता, जब उससे भी दूसरे प्राणी नहीं डरते तथा जब वह इच्छा-द्वेषसे परे हो जाता है, उस समय ब्रह्मभावको प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः ।
योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ॥४२॥

'खोटी बुद्धिवाले पुरुषोंद्वारा जिसका त्याग होना कठिन है, जो मनुष्यके बूढ़े होनेपर भी स्वयं बूढ़ी नहीं होती तथा जो प्राण-नाशक रोगके समान है, उस तृष्णाका त्याग करनेवालेको ही सुख मिलता है ॥ ४२ ॥

जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ।
जीविताशा धनाशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यति ॥ ४३ ॥

'बूढ़े होनेवाले मनुष्यके बाल पक जाते हैं, उसके दाँत भी टूटने लगते हैं, परंतु धन और जीवनकी आशा उस मनुष्यके जीर्ण होनेपर भी जीर्ण (शिथिल) नहीं होती ॥ ४३ ॥

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् ।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥ ४४ ॥

'संसारमें जो कामजनित सुख है तथा जो दिव्य महान् सुख हैं, वे सब मिलकर तृष्णा-क्षयसे होनेवाले सुखके सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकते' ॥ ४४ ॥

एवमुक्त्वा स राजर्षिः सदारः प्राविशद् वनम् ।
कालेन महता चापि चचार विपुलं तपः ॥ ४५ ॥

ऐसा कहकर राजर्षि ययाति स्त्रीसहित वनमें चले गये । वहाँ बहुत समयतक उन्होंने भारी तपस्या की ॥ ४५ ॥

भृगुतुङ्गे तपस्तप्त्वा तपसोऽन्ते महातपाः ।
अनश्नन् देहमुत्सृज्य सदारः स्वर्गमाप्तवान् ॥ ४६ ॥

उन महातपस्वी नरेशने भृगुतुङ्ग नामक शिखरपर तपस्या करके स्त्रीसहित उपवासके द्वारा देहको त्याग दिया और स्वर्गलोक प्राप्त किया ॥ ४६ ॥

तस्य वंशे महाराज पञ्च राजर्षिसत्तमाः ।
यैर्व्याप्ता पृथिवी सर्वा सूर्यस्येव गभस्तिभिः ॥ ४७ ॥

महाराज ! उनके वंशमें यदु आदि पाँच राजर्षिशिरोमणि हुए, जिनके वंशजोंसे यह सारी पृथ्वी उसी प्रकार व्याप्त है, जैसे सूर्यकी किरणोंसे वह व्याप्त होती है ॥ ४७ ॥

यदोस्तु शृणु राजर्षेर्वंशं राजर्षिसत्कृतम् ।
यत्र नारायणो जज्ञे हरिर्वृष्णिकुलोद्वहः ॥ ४८ ॥

राजर्षि यदुका वंश समस्त राजर्षियोंद्वारा सम्मानित है । तुम उसका वर्णन सुनो । उसी वंशमें वृष्णिकुलभूषण श्रीकृष्णके रूपमें श्रीनारायण हरिका अवतार (प्रादुर्भाव) हुआ था ॥

धन्यः प्रजावानायुष्मान् कीर्तिमांश्च भवेन्नरः ।
ययातेश्चरितं पुण्यं पठञ्छृण्वन् नराधिप ॥ ४९ ॥

नरेश्वर ! जो मनुष्य ययातिके इस पुण्यमय चरित्रको पढ़ता और सुनता है, वह धनसम्पन्न, संतानवान्, दीर्घायु तथा यशस्वी होता है ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि ययातिचरिते त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें ययातिका चरित्रविषयक तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३० ॥

* * *

एकत्रिंशोऽध्यायः

पूरुकी वंशपरम्पराका वर्णन

जनमेजय उवाच

पूरोर्वंशमहं ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः।
द्रुह्योश्चानोर्यदोश्चैव तुर्वसोश्च पृथक् पृथक्॥ १ ॥

जनमेजयने कहा—ब्रह्मन्! मैं पूरु, द्रुह्यु, अनु, यदु और तुर्वसुके वंशका पृथक्-पृथक् यथार्थ वर्णन सुनना चाहता हूँ ॥

वृष्णिवंशप्रसङ्गेन स्वं वंशं पूर्वमेव तु।
विस्तरेणानुपूर्व्या च तद् भवान् वक्तुमर्हति ॥ २ ॥

वृष्णिवंशके प्रसंगसे इन सबका वर्णन मुझे सुनना है; परंतु सबसे पहले मैं अपने ही वंश (पूरु-कुल) का क्रमशः विस्तारपूर्वक वर्णन सुनना चाहता हूँ। अतः आप पहले उसीका वर्णन करें ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच

शृणु पूरोर्महाराज वंशमुत्तमपौरुषम्।
विस्तरेणानुपूर्व्या च यत्र जातोऽसि पार्थिव ॥ ३ ॥

वैशम्पायनजी बोले—महाराज! उत्तम पराक्रमसे सम्पन्न पूरुवंशका, जिसमें तुम्हारा जन्म हुआ है, मैं क्रमानुसार विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूँ। पृथ्वीनाथ! तुम इसे सुनो ॥

हन्त ते कीर्तयिष्यामि पूरोर्वंशमनुत्तमम्।
द्रुह्योश्चानोर्यदोश्चैव तुर्वसोश्च नराधिप ॥ ४ ॥

नरेश्वर! मैं बड़े हर्षके साथ तुमसे परम उत्तम पूरुवंशका वर्णन करूँगा। फिर द्रुह्यु, अनु, यदु तथा तुर्वसुके वंशका कीर्तन किया जायगा ॥ ४ ॥

पूरोः पुत्रो महावीर्यो राजाऽऽसीज्जनमेजयः।
प्रचिन्वांस्तु सुतस्तस्य यःप्राचीमजयद् दिशम् ॥ ५ ॥

पूरुके महापराक्रमी पुत्र राजा जनमेजय हुए। उनके पुत्रका नाम प्रचिन्वान् था, जिन्होंने पूर्वदिशाको जीता था ॥

प्रचिन्वतः प्रवीरोऽभून्मनस्युस्तस्य चात्मजः।
राजा चाभयदो नाम मनस्योरभवत् सुतः ॥ ६ ॥

प्रचिन्वान्के पुत्र प्रवीर और प्रवीरके मनस्यु हुए, मनस्युके पुत्र राजा अभयद थे ॥ ६ ॥

तथैवाभयदस्यासीत् सुधन्वा तु महीपतिः।
सुधन्वनो बहुगवः शम्यातिस्तस्य चात्मजः ॥ ७ ॥

अभयदके पुत्रका नाम सुधन्वा था, जो इस पृथ्वीका अधिपति हुआ। सुधन्वाके बहुगव और बहुगवके पुत्र शम्याति हुए ॥ ७ ॥

शम्यातेस्तु रहस्याती रौद्राश्वस्तस्य चात्मजः।
रौद्राश्वस्य घृताच्यां वै दशाप्सरसि सूनवः ॥ ८ ॥

शम्यातिके रहस्याति और रहस्यातिके पुत्र रौद्राश्व हुए। रौद्राश्वके घृताची अप्सराके गर्भसे दस पुत्र हुए ॥ ८ ॥

ऋचेयुः प्रथमस्तेषां कृकणेयुस्तथैव च।
कक्षेयुः स्थण्डिलेयुश्च सन्नतेयुस्तथैव च ॥ ९
दशार्णेयुर्जलेयुश्च स्थलेयुश्च महायशाः।
धनेयुश्च वनेयुश्च पुत्रिकाश्च दश स्त्रियः ॥ १०

उनके नाम इस प्रकार हैं—ऋचेयु अपने सभी भाइ ज्येष्ठ थे। उनके बाद कृकणेयु, कक्षेयु, स्थण्डिलेयु, सन्नते दशार्णेयु, जलेयु, महायशस्वी स्थलेयु, धनेयु और वनेयु थे इनके सिवा रौद्राश्वके दस कन्याएँ भी थीं, जो पुत्रिका-ध अनुसार ब्याही जानेवाली थीं ॥ ९-१० ॥

रुद्रा शूद्रा च भद्रा च मलदा मलहा तथा।
खलदा चैव राजेन्द्र नलदा सुरसापि च।
तथा गोचपला तु स्त्रीरत्नकूटा च ता दश ॥ ११

राजेन्द्र! उन कन्याओंके नाम इस प्रकार हैं—रुद्रा, शू भद्रा, मलदा, मलहा, खलदा, नलदा, सुरसा, गोचपला त स्त्रीरत्नकूटा—वे कुल मिलाकर दस थीं ॥ ११ ॥

ऋषिर्जातोऽत्रिवंशे तु तासां भर्ता प्रभाकरः।
रुद्रायां जनयामास सुतं सोमं यशस्विनम् ॥ १२

अत्रिकुलमें उत्पन्न महर्षि प्रभाकर उन सबके पति हु उन्होंने रुद्राके गर्भसे यशस्वी सोमको पुत्ररूपमें उत्पन्न कि

स्वर्भानुना हते सूर्ये पतमाने दिवो महीम्।
तमोऽभिभूते लोके च प्रभा येन प्रवर्तिता ॥ १३

राहुसे आहत होकर जब सूर्य आकाशसे पृथ्वीपर गि लगे और समस्त संसारमें अन्धकार छा गया, उस समय प्र करने ही अपनी प्रभा फैलायी ॥ १३ ॥

स्वस्ति तेऽस्त्विति चोक्तो वै पतमानो दिवाकरः।
वचनात् तस्य विप्रर्षेर्न पपात दिवो महीम् ॥ १४

महर्षिने गिरते हुए सूर्यको 'तुम्हारा कल्याण हो' कहकर आशीर्वाद दिया। उन ब्रह्मर्षिके इस वचनसे सूर्य पृथ्वीपर नहीं गिरे ॥ १४ ॥

अत्रिश्रेष्ठानि गोत्राणि यश्चकार महातपाः।
यज्ञेष्वत्रेर्धनं चैव सुरैर्यस्य प्रवर्तितम् ॥ १५

महातपस्वी प्रभाकरने सब गोत्रोंमें अत्रिगोत्रकी ही श्रे स्थापित की। अत्रिके यज्ञोंमें उन्हींके प्रभावसे देवता धन प्रस्तुत किया था ॥ १५ ॥

स तासु जनयामास पुत्रिकासु सनामकान्।
दश पुत्रान् महात्मा स तपस्युग्रे रतान् सदा ॥ १६

महात्मा प्रभाकरने रौद्राश्वकी पुत्रिका-धर्मके अनुसार प्राप्त हुई कन्याओंके गर्भसे एक-से ही नामवाले दस पुत्रोंको जन्म दिया, जो सदा उग्र तपस्यामें तत्पर रहनेवाले थे ॥१६॥

ते तु गोत्रकरा राजन्नृषयो वेदपारगाः ।
स्वस्त्यात्रेया इति ख्याताः किं त्वत्रिधनवर्जिताः ॥ १७॥

राजन् ! वे सब-के-सब वेदोंके पारङ्गत विद्वान् तथा गोत्र-प्रवर्तक ऋषि हुए । स्वस्त्यात्रेय नामसे उनकी ख्याति हुई, परंतु वे अत्रिगोत्री पिताके धनसे वञ्चित रहे (क्योंकि पुत्रिका-धर्मके अनुसार वे अपने नानाके पुत्र थे) ॥ १७ ॥

कक्षेयोस्तनयाश्चासंस्त्रय एव महारथाः ।
सभानरश्चाक्षुषश्च परमन्युस्तथैव च ॥ १८ ॥

कक्षेयुके सभानर, चाक्षुष और परमन्यु—ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए । तीनों ही महारथी थे ॥ १८ ॥

सभानरस्य पुत्रस्तु विद्वान् कालानलो नृपः ।
कालानलस्य धर्मज्ञः सृञ्जयो नाम वै सुतः ॥ १९ ॥

सभानरका पुत्र विद्वान् राजा कालानल हुआ । कालानलका धर्मज्ञ पुत्र सृञ्जय नामसे विख्यात हुआ ॥ १९ ॥

सृञ्जयस्याभवत् पुत्रो वीरो राजा पुरञ्जयः ।
जनमेजयो महाराज पुरञ्जयसुतोऽभवत् ॥ २० ॥

सृञ्जयके पुत्र वीर राजा पुरञ्जय हुए । महाराज ! पुरञ्जयका पुत्र जनमेजय हुआ ॥ २० ॥

जनमेजयस्य राजर्षेर्महाशालोऽभवत् सुतः ।
देवेषु स परिज्ञातः प्रतिष्ठितयशा भुवि ॥ २१ ॥

राजर्षि जनमेजयके पुत्र महाशाल हुए, जो देवताओंमें भी विख्यात थे और इस पृथ्वीपर भी उनका यश फैला हुआ था ॥ २१ ॥

महामना नाम सुतो महाशालस्य धार्मिकः ।
जज्ञे वीरः सुरगणैः पूजितः सुमहायशाः ॥ २२ ॥

महाशालके धार्मिक पुत्रका नाम महामना था । वे एक वीर पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुए थे । महायशस्वी महामनाका देवता भी सम्मान करते थे ॥ २२ ॥

महामनास्तु पुत्रौ द्वौ जनयामास भारत ।
उशीनरं च धर्मज्ञं तितिक्षुं च महाबलम् ॥ २३ ॥

भरतनन्दन ! महामनाने दो पुत्रोंको जन्म दिया—धर्मज्ञ उशीनर और महाबली तितिक्षु ॥ २३ ॥

उशीनरस्य पत्न्यस्तु पञ्च राजर्षिवंशजाः ।
नृगा कृमी नवा दर्वा पञ्चमी च दृषद्वती ॥ २४ ॥

उशीनरकी पाँच पत्नियाँ थीं, जो राजर्षियोंके कुलमें उत्पन्न हुई थीं । उनके नाम इस प्रकार हैं—नृगा, कृमी, नवा, दर्वा और पाँचवीं दृषद्वती ॥ २४ ॥

उशीनरस्य पुत्रास्तु पञ्च तासु कुलोद्वहाः ।
तपसा वै सुमहता जाता वृद्धस्य भारत ॥ २५ ॥

उनके गर्भसे उशीनरके पाँच पुत्र हुए, जो अपने वंशकी मर्यादाको ऊँचे उठानेवाले थे । भारत ! वे अपने वृद्ध पिताके महान् तपसे उत्पन्न हुए थे ॥ २५ ॥

नृगायास्तु नृगः पुत्रः कृम्यां कृमिरजायत ।
नवायास्तु नवः पुत्रो दर्वायाः सुव्रतोऽभवत् ॥ २६ ॥

नृगाके पुत्र नृग थे, कृमीके गर्भसे कृमिका जन्म हुआ था, नवाके पुत्र नव तथा दर्वाके सुव्रत हुए ॥ २६ ॥

दृषद्वत्यास्तु संजज्ञे शिबिरौशीनरो नृपः ।
शिबेस्तु शिबयस्तात यौधेयास्तु नृगस्य ह ॥ २७ ॥

तात ! दृषद्वतीके गर्भसे उशीनरकुमार राजा शिबिका जन्म हुआ । शिबिको शिबिदेशका राज्य मिला और नृगको यौधेय प्रदेशका ॥ २७ ॥

नवस्य नवराष्ट्रं तु कृमेस्तु कृमिला पुरी ।
सुव्रतस्य तथाम्बष्ठा शिबिपुत्रान्निबोध मे ॥ २८ ॥

नवको नवराष्ट्र तथा कृमिको कृमिलापुरीका राज्य प्राप्त हुआ । सुव्रतके अधिकारमें अम्बष्ठ देश आया । अब शिबिके पुत्रोंका वर्णन सुनो ॥ २८ ॥

शिबेश्च पुत्राश्चत्वारो वीरास्त्रैलोक्यविश्रुताः ।
वृषदर्भः सुवीरश्च मद्रकः कैकयस्तथा ॥ २९ ॥

शिबिके चार वीर पुत्र हुए—वृषदर्भ, सुवीर, मद्रक तथा कैकय । ये चारों राजकुमार तीनों लोकोंमें विख्यात थे ॥

तेषां जनपदाः स्फीताः केकया मद्रकास्तथा ।
वृषदर्भाः सुवीराश्च तितिक्षोस्तु प्रजाः शृणु ॥ ३० ॥

इनके समृद्धिशाली जनपद भी इन्हींके नामसे प्रसिद्ध होकर वृषदर्भ, सुवीर, मद्रक तथा केकय कहलाये । अब तितिक्षुकी संततिका वर्णन सुनो ॥ ३० ॥

तैतिक्षवोऽभवद् राजा पूर्वस्यां दिशि भारत ।
उषद्रथो महाबाहुस्तस्य फेनः सुतोऽभवत् ॥ ३१ ॥

भारत ! तितिक्षुके पुत्र महाबाहु राजा उषद्रथ हुए, जो पूर्व दिशाके अधिपति थे । इनके पुत्रका नाम फेन था ॥३१॥

फेनात् तु सुतपा जज्ञे सुतः सुतपसो बलिः ।
जातो मानुषयोनौ तु स राजा काञ्चनेषुधिः ॥ ३२ ॥

फेनसे सुतपाका जन्म हुआ । सुतपाके पुत्र बलि थे । दानवराज बलि ही मनुष्ययोनिमें जन्म लेकर राजा बलिके नामसे विख्यात हुए । वे सोनेका तरकस रखते थे ॥ ३२ ॥

महायोगी स तु बलिर्बभूव नृपतिः पुरा ।
पुत्रानुत्पादयामास पञ्च वंशकरान् भुवि ॥ ३३ ॥

पूर्वकालमें राजा बलि महान् योगी थे । उन्होंने इस

भूतलपर वंशकी वृद्धि करनेवाले पाँच पुत्र उत्पन्न किये ॥ ३३ ॥

अङ्गः प्रथमतो जज्ञे वङ्गः सुह्मस्तथैव च ।
पुण्ड्रः कलिङ्गश्च तथा बालेयं क्षत्रमुच्यते ॥ ३४ ॥

उनमें सबसे पहले अङ्गकी उत्पत्ति हुई । तत्पश्चात् क्रमशः वङ्ग, सुह्म, पुण्ड्र तथा कलिङ्ग उत्पन्न हुए । ये सब लोग बालेय क्षत्रिय कहलाते हैं ॥ ३४ ॥

बालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकरा भुवि ।
बलेस्तु ब्रह्मणा दत्ता वराः प्रीतेन भारत ॥ ३५ ॥
महायोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणतः ।
संग्रामे वाप्यजेयत्वं धर्मे चैव प्रधानता ॥ ३६ ॥
त्रैलोक्यदर्शनं चैव प्राधान्यं प्रसवे तथा ।
बले चाप्रतिमत्वं वै धर्मतत्त्वार्थदर्शनम् ॥ ३७ ॥
चतुरो नियतान् वर्णांस्त्वं च स्थापयिता भुवि ।
इत्युक्तो विभुना राजा बलिः शान्तिं परां ययौ ॥ ३८ ॥

बलिके कुलमें बालेय ब्राह्मण भी हुए, जो इस भूतलपर उनके वंशकी वृद्धि करनेवाले थे । भरतनन्दन ! ब्रह्माजीने बलिपर प्रसन्न होकर उन्हें निम्नाङ्कित वर दिये थे—'तुम महायोगी होओगे, तुम्हारी आयु एक कल्पकी होगी, तुम युद्धमें अजेय होओगे, धर्ममें तुम्हारी प्रधानता होगी, तुम तीनों लोकोंकी देखभाल करोगे (अथवा तुम तीनों लोकोंकी सभी बातें प्रत्यक्षकी भाँति देखोगे) तुम्हारी संतति श्रेष्ठ समझी जायगी, बलमें तुम्हारी समानता करनेवाला कोई न होगा, तुम धर्मतत्त्वके ज्ञाता होओगे तथा भूतलपर चारों वर्णोंको नियन्त्रणमें रखकर उन्हें मर्यादाके भीतर स्थापित करोगे ।' भगवान् ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर राजा बलिको बड़ी शान्ति मिली ॥ ३५–३८ ॥

तस्य ते तनयाः सर्वे क्षेत्रजा मुनिपुङ्गवात् ।
सम्भूता दीर्घतपसो सुदेष्णायां महौजसः ॥ ३९ ॥

उनके वे सभी पुत्र क्षेत्रज थे । मुनिवर दीर्घतपाद्वारा रानी सुदेष्णाके गर्भसे प्रकट हुए थे । उनका बल महान् था ॥

बलिस्तानभिषिच्येह पञ्च पुत्रानकल्मषान् ।
कृतार्थः सोऽपि योगात्मा योगमाश्रित्य स प्रभुः ॥ ४० ॥
अधृष्यः सर्वभूतानां कालापेक्षी चरन्नपि ।
कालेन महता राजन् स्वं च स्थानमुपागमत् ॥ ४१ ॥

राजा बलिने उन पाँचों निष्पाप पुत्रोंको विभिन्न राज्योंपर अभिषिक्त करके अपनेको कृतार्थ माना । उनका मन सदा योगमें लगा रहता था । वे योगका आश्रय ले समस्त प्राणियोंके लिये अजेय हो गये थे । कालकी प्रतीक्षा करते हुए सर्वत्र विचरते थे । राजन् ! दीर्घकालके पश्चात् उन्हें अपना स्थान (सुतललोक) उपलब्ध हुआ ॥ ४०-४१ ॥

तेषां जनपदाः पञ्च अङ्गा वङ्गाः ससुह्मकाः ।
कलिङ्गाः पुण्ड्रकाश्चैव प्रजास्त्वङ्गस्य मे शृणु ॥ ४२ ॥

उनके पाँच पुत्रोंके अधिकारमें जो जनपद थे, नाम इस प्रकार हैं—अङ्ग, वङ्ग, सुह्म, कलिङ्ग और पुण् अब तुम मुझसे अङ्गकी संतानोंका वर्णन सुनो ॥ ४२ ॥

अङ्गपुत्रो महानासीद् राजेन्द्रो दधिवाहनः ।
दधिवाहनपुत्रस्तु राजा दिविरथोऽभवत् ॥ ४

अङ्गके पुत्र महान् राजाधिराज दधिवाहन थे और वाहनके पुत्र राजा दिविरथ हुए ॥ ४३ ॥

पुत्रो दिविरथस्यासीच्छक्रतुल्यपराक्रमः ।
विद्वान् धर्मरथो नाम तस्य चित्ररथः सुतः ॥ ४

दिविरथके पुत्र इन्द्रतुल्य पराक्रमी और विद्वान् उनका नाम धर्मरथ था । धर्मरथके पुत्र चित्ररथ हुए ॥

तेन चित्ररथेनाथ तदा विष्णुपदे गिरौ ।
यजता सह शक्रेण सोमः पीतो महात्मना ॥ ४

राजा चित्ररथ जब विष्णुपद पर्वतपर यज्ञ करते थे, समय उन महामना नरेशने इन्द्रके साथ बैठकर सो किया था ॥ ४५ ॥

अथ चित्ररथस्यापि पुत्रो दशरथोऽभवत् ।
लोमपाद इति ख्यातो यस्य शान्ता सुताभवत् ॥ ४

चित्ररथके पुत्र दशरथ हुए, जिनका दूसरा नाम पाद था तथा शान्ता जिनकी पुत्री थी ॥ ४६ ॥

तस्य दाशरथिर्वीरश्चतुरङ्गो महायशाः ।
ऋष्यशृङ्गप्रसादेन जज्ञे कुलविवर्धनः ॥ ४

उन लोमपाद या दशरथके पुत्र महायशस्वी वीर रङ्ग हुए, जो ऋष्यशृङ्ग मुनिकी कृपासे उत्पन्न हुए चतुरङ्ग अपने कुलकी वृद्धि करनेवाले थे ॥ ४७ ॥

चतुरङ्गस्य पुत्रस्तु पृथुलाक्ष इति स्मृतः ।
पृथुलाक्षसुतो राजा चम्पो नाम महायशाः ॥ ४

चतुरङ्गके पुत्र पृथुलाक्ष कहे गये हैं । पृथुलाक्षके महायशस्वी राजा चम्प हुए ॥ ४८ ॥

चम्पस्य तु पुरी चम्पा या मालिन्यभवत् पुरा ।
पूर्णभद्रप्रसादेन हर्यङ्गोऽस्य सुतोऽभवत् ॥ ४

चम्पकी राजधानी चम्पा थी, जो पहले मालिनीके प्रसिद्ध थी । चम्पके पुत्र हर्यङ्ग हुए, जो पूर्णभद्र मुनिकी कृपासे उत्पन्न हुए थे ॥ ४९ ॥

ततो वैभाण्डकिस्तस्य वारणं शक्रवारणम् ।
अवतारयामास महीं मन्त्रैर्वाहनमुत्तमम् ॥ ५

विभाण्डकपुत्र ऋष्यशृङ्गने हर्यङ्गकी सवारीके लिये के उत्तम वाहन गजराज ऐरावतको मन्त्रोंद्वारा स्वर्गसे पर उतारा था ॥ ५० ॥

हर्यङ्गस्य तु दायादो राजा भद्ररथः स्मृतः।
पुत्रो भद्ररथस्यासीद् बृहत्कर्मा प्रजेश्वरः॥ ५१॥

हर्यङ्गके पुत्र राजा भद्ररथ कहे गये हैं। भद्ररथके पुत्र राजा बृहत्कर्मा थे॥ ५१॥

बृहद्दर्भः सुतस्तस्य तस्माज्जज्ञे बृहन्मनाः।
बृहन्मनास्तु राजेन्द्र जनयामास वै सुतम्॥ ५२॥
नाम्ना जयद्रथं नाम यस्माद् दृढरथो नृपः।
आसीद् दृढरथस्यापि विश्वजिज्जनमेजय॥ ५३॥

बृहत्कर्माके पुत्र बृहद्दर्भ थे, उनसे बृहन्मनाका जन्म हुआ। राजेन्द्र! बृहन्मनाने जयद्रथ नामक पुत्रको जन्म दिया, जिससे राजा दृढरथकी उत्पत्ति हुई। जनमेजय! दृढरथके पुत्र विश्वजित् हुए॥ ५२-५३॥

दायादस्तस्य कर्णस्तु विकर्णस्तस्य चात्मजः।
तस्य पुत्रशतं त्वासीदङ्गानां कुलवर्धनम्॥ ५४॥

विश्वजित्के पुत्र कर्ण तथा कर्णके पुत्र विकर्ण हुए। विकर्णके सौ पुत्र थे, जो अङ्गवंशकी वृद्धि करनेवाले थे॥

बृहद्दर्भसुतो यस्तु राजा नाम्ना बृहन्मनाः।
तस्य पत्नीद्वयं चासीच्चैद्यस्यैते सुते शुभे।
यशोदेवी च सत्या च ताभ्यां वंशस्तु भिद्यते॥५५॥

बृहद्दर्भका जो बृहन्मना नामसे प्रसिद्ध पुत्र था, उसकी दो पत्नियाँ थीं। ये दोनों ही चेदिराजकी सुन्दरी कन्याएँ थीं। एकका नाम यशोदेवी था और दूसरीका सत्या। उन दोनोंके द्वारा उस वंशमें भेद हो गया अर्थात् दोनोंकी पृथक-पृथक् वंश-परम्परा चली॥ ५५॥

जयद्रथस्तु राजेन्द्र यशोदेव्यां व्यजायत।
ब्रह्मक्षत्रोत्तरः सत्यां विजयो नाम विश्रुतः॥ ५६॥

राजेन्द्र! बृहन्मनाका जो जयद्रथ नामक पुत्र था, वह यशोदेवीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था तथा उनका दूसरा पुत्र, जो विजय नामसे विख्यात था, सत्याके पेटसे पैदा हुआ था। वह शान्ति आदि गुणोंमें ब्राह्मणोंसे और शौर्य आदि गुणोंमें क्षत्रियोंसे भी उत्कृष्ट था॥ ५६॥

विजयस्य धृतिः पुत्रस्तस्य पुत्रो धृतव्रतः।
धृतव्रतस्य पुत्रस्तु सत्यकर्मा महायशाः॥ ५७॥

विजयका पुत्र धृति और धृतिका पुत्र धृतव्रत था। धृतव्रतके पुत्र महायशस्वी सत्यकर्मा हुए॥ ५७॥

सत्यकर्मसुतश्चापि सूतस्त्वधिरथस्तु वै।
यः कर्णं प्रतिजग्राह ततः कर्णस्तु सूतजः॥ ५८॥

सत्यकर्माका पुत्र अधिरथ नामक सूत हुआ, जिसने कर्णको गोद लिया था। इसीलिये कर्णको सूतपुत्र कहा जाता है॥

एतत् ते कथितं सर्वं कर्णं प्रति महाबलम्।
कर्णस्य वृषसेनस्तु वृषस्तस्यात्मजः स्मृतः॥ ५९॥

राजन्! यह सब मैंने तुम्हें महाबली कर्णके विषयमें बताया है। कर्णका पुत्र वृषसेन हुआ और वृषसेनका पुत्र वृष कहा गया है॥ ५९॥

एतेऽङ्गवंशजाः सर्वे राजानः कीर्तिता मया।
सत्यव्रता महात्मानः प्रजावन्तो महारथाः॥ ६०॥

ये सब अङ्गवंशी राजा मेरे द्वारा बताये गये हैं, जो सत्यव्रती, महात्मा, पुत्रवान् तथा महारथी थे॥ ६०॥

ऋचेयोस्तु महाराज रौद्राश्वतनयस्य ह।
शृणु वंशमनुप्रोक्तं यत्र जातोऽसि पार्थिव॥ ६१॥

महाराज! पृथ्वीनाथ! अब मैं रौद्राश्वकुमार ऋचेयुके वंशका वर्णन करूँगा, जिसमें तुम्हारा जन्म हुआ है। तुम इसे सुनो॥ ६१॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि कुक्षेयुवंशानुकीर्तनं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें कुक्षेयुवंशका वर्णनविषयक इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३१॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

पूरुके वंशके अन्तर्गत ऋचेयुकी वंश-परम्परा—अजमीढवंश, पाञ्चाल एवं सोमकवंश, कौरव-वंश तथा तुर्वसु, द्रुह्य और अनुकी संततिका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

अनाधृष्यस्तु राजर्षिर्ऋचेयुश्चैकराट् स्मृतः।
ऋचेयोर्ज्वलना नाम भार्या वै तक्षकात्मजा॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! राजर्षि ऋचेयु एकच्छत्र सम्राट् माने गये हैं। वे दूसरोंके लिये अजेय थे। ऋचेयुकी पत्नीका नाम ज्वलना था, जो तक्षक नागकी पुत्री थी॥ १॥

तस्यां स देव्यां राजर्षिर्मतिनारो महीपतिः।
मतिनारसुताश्चासंस्त्रयः परमधार्मिकाः॥ २॥
तंसुराद्यः प्रतिरथः सुबाहुश्चैव धार्मिकः।
गौरी कन्या च विख्याता मान्धातृजननी शुभा॥ ३॥

महारानी ज्वलनाके गर्भसे पृथ्वीपति राजर्षि मतिनारका जन्म हुआ। मतिनारके तीन परम धर्मात्मा पुत्र हुए—प्रथम तंसु, दूसरे प्रतिरथ और तीसरे धर्मात्मा सुबाहु। मतिनारके

एक कन्या भी हुई थी, जो गौरी नामसे विख्यात थी । शुभ-लक्षणा गौरी ही राजा मान्धाताकी जननी हुई ॥ २-३ ॥

सर्वे वेदविदस्तत्र ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः ।
सर्वे कृतास्त्रा बलिनः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ४ ॥

मतिनारके सभी पुत्र वेदवेत्ता, ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी, अस्त्रविद्याके विद्वान्, बलवान् तथा युद्धकुशल थे ॥ ४ ॥

पुत्रः प्रतिरथस्यासीत् कण्वः समभवन्नृपः ।
मेधातिथिः सुतस्तस्य यस्मात्काण्वायना द्विजाः॥ ५ ॥

मतिनारके दूसरे पुत्र प्रतिरथके बेटेका नाम कण्व था । कण्व राजा थे । कण्वके पुत्र मेधातिथि हुए, जिनसे काण्वायन ब्राह्मणोंकी परम्परा प्रचलित हुई ॥ ५ ॥

ईलिनी भूप यस्यासीत् कन्या वै जनमेजय ।
ब्रह्मवादिन्यधि स्त्रीं च तंसुस्तामभ्यगच्छत ॥ ६ ॥

राजा जनमेजय ! जिनकी कन्या ईलिनी नामसे प्रसिद्ध हुई थी, वे ईलिन नामक नरेश ब्रह्मवादी ब्राह्मणसमुदायमें उत्कृष्ट माने जाते थे । उनकी उस ईलिनी नामक कन्याको तंसुने पत्नीरूपमें प्राप्त किया ॥ ६ ॥

तंसोः सुरोधो राजर्षिर्धर्मनेत्रो महायशाः ।
ब्रह्मवादी पराक्रान्तस्तस्य भार्योपदानवी ॥ ७ ॥
उपदानवी सुताँल्लेभे चतुरस्त्वैलिकात्मजान् ।
दुष्यन्तमथ सुष्मन्तं प्रवीरमनघं तथा ॥ ८ ॥

तंसुके महायशस्वी राजर्षि सुरोध हुए, जो धर्मके प्रवर्तक होनेसे धर्मनेत्र कहलाते थे । वे ब्रह्मवादी और पराक्रमी थे । उनकी पत्नी उपदानवी थी । उपदानवीने चार पुत्र प्राप्त किये, जो दुष्यन्त, सुष्मन्त, प्रवीर और अनघके नामसे विख्यात थे । ये चारों ईलिनीकुमार सुरोध या धर्मनेत्रके पुत्र थे ॥ ७-८ ॥

दुष्यन्तस्य तु दायादो भरतो नाम वीर्यवान् ।
स सर्वदमनो नाम नागायुतबलो महान् ॥ ९ ॥

दुष्यन्तके पुत्रका नाम भरत था । वे बड़े पराक्रमी थे। सबका दमन करनेके कारण उनका दूसरा नाम सर्वदमन भी था । महान् वीर भरतमें दस हजार हाथियोंका बल था ॥

चक्रवर्ती सुतो जज्ञे दुष्यन्तस्य महात्मनः ।
शकुन्तलायां भरतो यस्य नाम्ना स्थ भारताः ॥ १० ॥

महात्मा दुष्यन्तके वीर्य और शकुन्तलाके गर्भसे चक्रवर्ती भरत पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए थे, जिनके नामपर तुमलोग भारत कहलाते हो ॥ १० ॥

दुष्यन्तं प्रति राजानं वागुवाचाशरीरिणी ।
माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः ॥ ११ ॥
भरस्व पुत्रं दुष्यन्त मावमंस्थाः शकुन्तलाम् ।
रेतोधाः पुत्र उन्नयति नरदेव यमक्षयात् ॥
त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ।

(कहते हैं—दुष्यन्तने तपोवनमें जाकर शकुन्तला गान्धर्व-विवाह किया था और अपनी राजधानीको उसके विषयमें कुछ बताया नहीं था । जब शकुन्तला लेकर दुष्यन्तके यहाँ गयी, तब वे उसे पहचाननेमें भूल लगे । उस समय) आकाशवाणीने राजा दुष्यन्तको करके कहा—'दुष्यन्त ! माता तो केवल चमड़ेकी समान है, पुत्रपर अधिकार तो पिताका ही है । पुत्र द्वारा जन्म ग्रहण करता है, उसीका स्वरूप होता है । पुत्रका पालन-पोषण करो, शकुन्तलाका अपमान मत नरदेव ! अपने ही वीर्यसे उत्पन्न हुआ पुत्र अपने यमलोकसे (निकालकर स्वर्गलोकको) ले जाता है। पुत्रके आधान करनेवाले तुम्हीं हो'—शकुन्तलाने यह बात ही कही है' ॥ ११-१२½ ॥

भरतस्य विनष्टेषु तनयेषु महीपतेः ॥
मातॄणां तात कोपेन मया ते कथितं पुरा ।

राजा भरतके कई पुत्र होकर मर गये । तात ! मा के क्रोधसे ऐसा हुआ था । यह बात मैं तुम्हें पहले (पर्वमें) बता चुका हूँ ॥ १३½ ॥

बृहस्पतेराङ्गिरसः पुत्रो राजन् महामुनिः ।
संक्रामितो भरद्वाजो मरुद्भिः क्रतुभिर्विभुः ॥

राजन् ! भरतके यज्ञमें आये हुए देवताओंने लिये अङ्गिरानन्दन बृहस्पतिजीके पुत्र महामुनि भरद्वाज पुत्र बनाकर दे दिया ॥ १४ ॥

अत्रैवोदाहरन्तीमं भरद्वाजस्य धीमतः ।
धर्मसंक्रमणं चापि मरुद्भिर्भरताय वै ॥
अयाजयद् भरद्वाजो मरुद्भिः क्रतुभिर्हि तम् ।
पूर्वं तु वितथे तस्य कृते वै पुत्रजन्मनि ॥
ततोऽथ वितथो नाम भरद्वाजसुतोऽभवत् ।

इसी प्रसङ्गमें बुद्धिमान् भरद्वाजके धर्मसंक्रमणकी कही जाती है । मरुद्गणोंने भरतको पुत्ररूपमें जब भर ही अर्पित कर दिया, तब भरद्वाजने भरतसे देवताओं यज्ञका अनुष्ठान करवाया । इसके पहले भरतके पुत्र सारा प्रयास वितथ (व्यर्थ) हो चुका था । भरद्वाजके जो पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम वितथ हुआ ॥ १५-

ततोऽथ वितथे जाते भरतस्तु दिवं ययौ ॥
वितथं चाभिषिच्याथ भरद्वाजो वनं ययौ ।

वितथका जन्म हो जानेपर भरत स्वर्गवासी हो तत्पश्चात् वितथका राज्याभिषेक करके भरद्वाजजी भी चले गये ॥ १७½ ॥

स राजा वितथः पुत्राञ्जनयामास पञ्च वै ॥ १८ ॥
सुहोत्रं च सुहोतारं गयं गर्गं तथैव च ।
कपिलं च महात्मानं सुहोत्रस्य सुतद्वयम् ॥ १९ ॥
काशिकश्च महासत्त्वस्तथा गृत्समतिर्नृपः ।
तथा गृत्समतेः पुत्रा ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः ॥ २० ॥
काशिकस्य तु काशेयः पुत्रो दीर्घतपास्तथा ।

राजा वितथने पाँच पुत्र उत्पन्न किये—सुहोत्र, सुहोता, गय, गर्ग तथा महात्मा कपिल । सुहोत्रके भी दो पुत्र हुए—महान् शक्तिशाली काशिक तथा राजा गृत्समति । गृत्समतिके पुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्णोंके लोग हुए । काशिकके दो पुत्र थे—काशेय और दीर्घतपा ॥ १८—२०½ ॥

आजमीढोऽपरो वंशः श्रूयतां पुरुषर्षभ ॥ २१ ॥
सुहोत्रस्य बृहत् पुत्रो बृहतस्तनयास्त्रयः ।
अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च वीर्यवान् ॥ २२ ॥

पुरुषप्रवर ! अब आजमीढ नामक दूसरे वंशका वर्णन सुनो—पूर्वोक्त राजा सुहोत्रके एक तीसरा पुत्र और था बृहत् । बृहत्के तीन पुत्र हुए—अजमीढ, द्विमीढ और पराक्रमी पुरुमीढ ॥ २१-२२ ॥

अजमीढस्य पत्न्यस्तु तिस्रो वै यशसान्विताः ।
नीलिनी केशिनी चैव धूमिनी च वराङ्गना ॥ २३ ॥

अजमीढकी तीन स्त्रियाँ थीं । तीनों ही बड़ी यशस्विनी थीं । उनके नाम थे—नीलिनी, केशिनी और स्त्रियोंमें श्रेष्ठ धूमिनी ॥ २३ ॥

अजमीढस्य नीलिन्यां सुशान्तिरुदपद्यत ।
पुरुजातिः सुशान्तेस्तु वाह्याश्वः पुरुजातितः ॥ २४ ॥
वाह्याश्वतनयाः पञ्च बभूवुरमरोपमाः ॥ २५ ॥

अजमीढके नीलिनीके गर्भसे सुशान्ति नामक पुत्र हुआ । सुशान्तिसे पुरुजाति और पुरुजातिसे वाह्याश्वका जन्म हुआ । वाह्याश्वके पाँच देवोपम पुत्र हुए ॥ २४-२५ ॥

मुद्गलः सृञ्जयश्चैव राजा बृहदिषुः स्मृतः ।
यवीनरश्च विक्रान्तः कृमिलाश्वश्च पञ्चमः ॥ २६ ॥

उनके नाम इस प्रकार हैं—मुद्गल, सृञ्जय, राजा बृहदिषु, पराक्रमी यवीनर तथा पाँचवें कृमिलाश्व ॥ २६ ॥

पञ्चैते रक्षणायालं देशानामिति विश्रुताः ।
पञ्चानां विद्धि पञ्चालान् स्फीतैर्जनपदैर्वृतान् ॥ २७ ॥

ये पाँचों अपने अधिकारमें आये हुए देशोंकी रक्षाके लिये अलं (समर्थ) थे, इसलिये समृद्धिशाली जनपदोंसे युक्त उन देशोंको पञ्चाल समझो ॥ २७ ॥

अलं संरक्षणे तेषां पञ्चाला इति विश्रुताः ।
मुद्गलस्य तु दायादो मौद्गल्यः सुमहायशाः ॥ २८ ॥
सर्वे एते महात्मानः क्षत्रोपेता द्विजातयः ।
एते ह्यङ्गिरसः पक्षं संश्रिताः कण्वमौद्गलाः ॥ २९ ॥

उन देशोंकी रक्षाके लिये अलं होनेसे ये पाँचों वीर पञ्चाल नामसे विख्यात हुए । मुद्गलके पुत्र महायशस्वी मौद्गल्य थे । ये सब-के-सब महात्मा क्षात्रधर्मसे युक्त ब्राह्मण थे । ये अङ्गिराके पक्षका आश्रय लेकर कण्वमौद्गल कहलाये ॥ २८-२९ ॥

मौद्गलस्य सुतो ज्येष्ठो ब्रह्मर्षिः सुमहायशाः ।
इन्द्रसेनो यतो गर्भं वध्र्यश्वं प्रत्यपद्यत ॥ ३० ॥

मौद्गलके ज्येष्ठ पुत्र महायशस्वी ब्रह्मर्षि इन्द्रसेन हुए, जिनसे वध्र्यश्वका जन्म हुआ ॥ ३० ॥

वध्र्यश्वान्मिथुनं जज्ञे मेनकायामिति श्रुतिः ।
दिवोदासश्च राजर्षिरहल्या च यशस्विनी ॥ ३१ ॥

वध्र्यश्वसे मेनकाके गर्भसे एक पुत्र और एक कन्याका जन्म हुआ, ऐसी प्रसिद्धि है । पुत्रका नाम दिवोदास था, जो राजर्षि एवं ब्रह्मर्षि थे । कन्या यशस्विनी अहल्या थी ॥

शरद्वतस्तु दायादमहल्या समसूयत ।
शतानन्दमृषिश्रेष्ठं तस्यापि सुमहायशाः ॥ ३२ ॥
पुत्रः सत्यधृतिर्नाम धनुर्वेदस्य पारगः ।

अहल्या महर्षि शरद्वान् (गौतम) की पत्नी थी । उसने गौतमके पुत्र मुनिश्रेष्ठ शतानन्दको जन्म दिया । शतानन्दके भी एक महायशस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम सत्यधृति था । (ये सत्यधृति भी अपने पितामहके समान शरद्वान् कहलाते थे ।) सत्यधृति धनुर्वेदके पारङ्गत विद्वान् थे ॥ ३२½ ॥

तस्य सत्यधृते रेतो दृष्ट्वाप्सरसमग्रतः ॥ ३३ ॥
अवस्कन्नं शरस्तम्बे मिथुनं समपद्यत ।
कृपया तच्च जग्राह शन्तनुर्मृगयां गतः ॥ ३४ ॥

एक दिन अपने सामने एक अप्सराको उपस्थित देख सत्यधृति (शरद्वान्) का वीर्य स्खलित होकर सरकंडोंके समूहपर गिर पड़ा । उससे एक बालक और बालिका जुड़वीं संतानें उत्पन्न हुईं । उस समय राजा शन्तनु शिकार खेलनेके लिये वनमें गये हुए थे । उन्होंने कृपापूर्वक उन दोनों बालकोंको ले लिया ॥ ३३-३४ ॥

कृपः स्मृतः स वै तस्माद् गौतमी च कृपी तथा ।
एते शारद्वताः प्रोक्ता एते ते गौतमाः स्मृताः ॥ ३५ ॥

कृपापूर्वक ग्रहण करनेके कारण बालकका नाम कृप और उस गौतम-बालिकाका नाम कृपी हुआ । ये शतानन्द, सत्यधृति और कृप शारद्वत कहे गये हैं तथा ये गौतम भी कहलाते हैं ॥ ३५ ॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दिवोदासस्य संततिम् ।
दिवोदासस्य दायादो ब्रह्मर्षिर्मित्रयुर्नृप ॥ ३६ ॥
मैत्रायणस्ततः सोमो मैत्रेयास्तु ततः स्मृताः ।
एते हि संश्रिताः पक्षं क्षत्रोपेतास्तु भार्गवाः ॥ ३७ ॥

नरेश्वर ! अब मैं दिवोदासकी संततिका वर्णन करूँगा। दिवोदासके पुत्र ब्रह्मर्षि मित्रयु हुए। मित्रयुसे मैत्रायणका जन्म हुआ। मैत्रायणसे सोम हुए। सोमके वंशज मैत्रेय कहे गये हैं। ये भार्गव-पक्षका आश्रय लेकर क्षत्रोपेत भार्गव कहलाये॥ ३६-३७॥

आसीत् पञ्चजनः पुत्रः सृञ्जयस्य महात्मनः।
सुतः पञ्चजनस्यापि सोमदत्तो महीपतिः॥ ३८॥

महात्मा सृञ्जयके पञ्चजन नामक पुत्र हुआ और पञ्चजनके पुत्र पृथ्वीपति सोमदत्त हुए॥ ३८॥

सोमदत्तस्य दायादः सहदेवो महायशाः।
सहदेवसुतश्चापि सोमको नाम पार्थिवः॥ ३९॥

सोमदत्तके पुत्र महायशस्वी सहदेव थे और सहदेवके पुत्र राजा सोमक हुए॥ ३९॥

अजमीढात् पुनर्जातः क्षीणवंशे तु सोमकः।
सोमकस्य सुतो जन्तुर्यस्य पुत्रशतं बभौ॥ ४०॥

अजमीढवंशी सहदेवसे सोमकका जन्म उस अवस्थामें हुआ जब कि उनकी वंश-परम्परा क्षीण हो चली थी। सोमकके पुत्रका नाम जन्तु था। जिसके स्थानपर सोमकके सौ पुत्र हो गये* ॥ ४०॥

तेषां यवीयान् पृषतो द्रुपदस्य पिता प्रभुः।
धृष्टद्युम्नस्तु द्रुपदाद् धृष्टकेतुश्च तत्सुतः॥ ४१॥
अजमीढाः स्मृता ह्येते महात्मानस्तु सोमकाः।
पुत्राणामजमीढस्य सोमकत्वं महात्मनः॥ ४२॥

उनमें सबसे छोटे थे पृषत, जो राजा द्रुपदके प्रभावशाली पिता थे। द्रुपदसे धृष्टद्युम्न और धृष्टद्युम्नसे धृष्टकेतुका जन्म हुआ। ये महामनस्वी क्षत्रिय अजमीढ और सोमक कहे गये हैं। महामना अजमीढके संतानोंकी ही सोमक संज्ञा हुई॥ ४१-४२॥

महिषी त्वजमीढस्य धूमिनी पुत्रगृद्धिनी।
तृतीया तव पूर्वेषां जननी पृथिवीपते॥ ४३॥

राजा अजमीढकी जो धूमिनी नामवाली तीसरी रानी थीं, उनके मनमें पुत्रकी बड़ी लालसा थी। पृथ्वीनाथ ! वे ही तुम्हारे पूर्वजोंकी जननी हुईं॥ ४३॥

सा तु पुत्रार्थिनी देवी व्रतचर्यासमन्विता।
ततो वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम्॥ ४४॥
हुत्वाग्निं विधिवत् सा तु पवित्रमितभोजना।
अग्निहोत्रकुशेष्वेव सुष्वाप जनमेजय॥ ४५॥

जनमेजय ! पुत्रकी अभिलाषा रखनेवाली धूमि व्रतका पालन करने लगीं। वे दस हजार वर्षोंतक दुष्कर तपस्या करती हुई विधिपूर्वक अग्निमें आहु पवित्रतापूर्वक परिमित भोजन करतीं और अग्निहोत्रके पर ही सोतीं॥ ४४-४५॥

धूमिन्या स तया देव्या त्वजमीढः समेयिवान्।
ऋक्षं संजनयामास धूमवर्णं सुदर्शनम्॥ ४

तदनन्तर राजा अजमीढने देवी धूमिनीके साथ स किया। इससे उन्होंने ऋक्ष नामक पुत्रको जन्म ऋक्ष धूम्रके समान वर्णवाले एवं सुन्दर दर्शनीय पुरुष थे।

ऋक्षात् संवरणो जज्ञे कुरुः संवरणात् तथा।
यः प्रयागादतिक्रम्य कुरुक्षेत्रं चकार ह॥ ४

ऋक्षसे संवरण और संवरणसे कुरु उत्पन्न हुए, जि प्रयागसे जाकर कुरुक्षेत्रकी स्थापना की॥ ४७॥

तद्वै तत्स महाभागो वर्षाणि सुबहून्यथ।
तप्यमाने तदा शक्रो यत्रास्य वरदो बभौ॥ ४

महाभाग कुरुने उस क्षेत्रमें बहुत वर्षोंतक तप कि उनके तप करते समय वरदायक भगवान् इन्द्रने वहाँ उन्हें वर प्रदान किया॥ ४८॥

पुण्यं च रमणीयं च पुण्यकृद्भिर्निषेवितम्।
तस्यान्ववायः सुमहांस्तस्य नाम्ना स्थ कौरवाः॥

वह पवित्र एवं रमणीय क्षेत्र पुण्यात्माओंद्वारा है। कुरुका वंश बहुत बड़ा है। तुमलोग कुरुके ही कौरव कहलाते हो॥ ४९॥

कुरोश्च पुत्राश्चत्वारः सुधन्वा सुधनुस्तथा।
परीक्षिच्च महाबाहुः प्रवरश्चारिमेजयः॥ ५

कुरुके चार पुत्र हुए—सुधन्वा, सुधनु, महाबाहु क्षित् और श्रेष्ठ वीर अरिमेजय॥ ५०॥

सुधन्वनस्तु दायादः सुहोत्रो मतिमांस्ततः।
च्यवनस्तस्य पुत्रस्तु राजा धर्मार्थकोविदः॥ ५

सुधन्वाके पुत्र सुहोत्र हुए। सुहोत्रके मतिमान् तथा मान्के पुत्र राजा च्यवन हुए, जो धर्म और अर्थके ज्ञाता

च्यवनात् कृतयज्ञस्तु इष्ट्वा यज्ञैः स धर्मवित्।
विश्रुतं जनयामास पुत्रमिन्द्रसमं नृपः॥ ५

च्यवनसे कृतयज्ञ हुए। उन धर्मज्ञ नरेशने यज्ञ इन्द्रके समान सुविख्यात पराक्रमी पुत्रको जन्म दिया॥ ५

चैद्योपरिचरं वीरं वसुं नामान्तरिक्षगम्।
चैद्योपरिचराज्जज्ञे गिरिका सप्त मानवान्॥ ५

उसका नाम था उपरिचर वसु। वे वसु चेदि देशके वासी थे और आकाशमार्गसे चलते थे। चेदिदेशीय

---

* सोमकने जन्तुको यज्ञ-पशु बनाकर एक यज्ञ किया, जिससे उनकी सौ स्त्रियोंके गर्भसे एक-एक करके सौ पुत्र उत्पन्न हुए। (देखिये महाभारत, वनपर्व, १२७-१२८ अध्याय)

रिचर वसुसे उनकी पत्नी गिरिकाने सात मनुष्योंको उत्पन्न किया ॥

महारथो मगधराड् विश्रुतो यो बृहद्रथः ।
प्रत्यग्रहः कुशश्चैव यमाहुर्मणिवाहनम् ॥ ५४ ॥
मारुतश्च यदुश्चैव मत्स्यः काली च सत्तमः ।

उनमें प्रथम संतान थे सुविख्यात महारथी राजा बृहद्रथ, जो मगध देशके अधिपति थे । दूसरे पुत्रका नाम प्रत्यग्रह था । तीसरे राजा कुश थे, जिन्हें मणिवाहन भी कहते हैं । चौथे मारुत, पाँचवें यदु और छठे श्रेष्ठतम पुरुष मत्स्य थे । सातवीं संतान कन्या थी, जो काली (या सत्यवती) कहलायी ॥

बृहद्रथस्य दायादः कुशाग्रो नाम विश्रुतः ॥ ५५ ॥
कुशाग्रस्यात्मजो विद्वान् वृषभो नाम वीर्यवान् ।

बृहद्रथका पुत्र कुशाग्र नामसे विख्यात हुआ । कुशाग्रके पुत्र वृषभ थे, जो विद्वान् और बलवान् थे ॥ ५५½ ॥

वृषभस्य तु दायादः पुष्पवान्नाम धार्मिकः ॥ ५६ ॥
ायादस्तस्य विक्रान्तो राजा सत्यहितः स्मृतः ॥ ५७ ॥

वृषभका पुत्र धर्मात्मा पुष्यवान् था । उसके पुत्र पराक्रमी राजा सत्यहित हुए ॥ ५६-५७ ॥

स्य पुत्रोऽथ धर्मात्मा नाम्ना ऊर्जस्तु जज्ञिवान् ।
र्जस्य सम्भवः पुत्रो यस्य जज्ञे स वीर्यवान् ॥ ५८ ॥

सत्यहितके धर्मात्मा ऊर्ज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । ऊर्जके पुत्रका नाम सम्भव था (जिसे बृहद्रथ भी कहते हैं) । इसीसे पराक्रमी राजा जरासंधकी उत्पत्ति हुई थी ॥

ाकले द्वे स वै जातो जरया संधितः स तु ।
रया संधितो यस्माज्जरासंधस्ततः स्मृतः ॥ ५९ ॥

वह आधे-आधे शरीरके दो टुकड़ोंके रूपमें (दो माताओंके गर्भसे) उत्पन्न हुआ था । इन दोनों टुकड़ोंको जरा नामवाली राक्षसीने जोड़ दिया । जरासे संधित (जोड़ा गया) होनेसे उसका नाम जरासंध हुआ ॥ ५९ ॥

सर्वक्षत्रस्य जेतासौ जरासंधो महाबलः ।
जरासंधस्य पुत्रो वै सहदेवः प्रतापवान् ॥ ६० ॥

महाबली जरासंधने सम्पूर्ण क्षत्रिय-समुदायको जीत लिया था । उसका पुत्र प्रतापी सहदेव था ॥ ६० ॥

सहदेवात्मजः श्रीमानुदायुः स महायशाः ।
उदायुर्जनयामास पुत्रं परमधार्मिकम् ॥ ६१ ॥
श्रुतधर्मेति नामानं मगधान् योऽवसद् विभुः ।

सहदेवके कान्तिमान् पुत्र महायशस्वी उदायु हुए । उदायुने श्रुतधर्मा नामक परम धर्मात्मा पुत्रको जन्म दिया, जो वैभवसम्पन्न होकर मगध देशमें निवास करता था ॥

परीक्षितस्तु दायादो धार्मिको जनमेजयः ॥ ६२ ॥
जनमेजयस्य दायादास्त्रय एव महारथाः ।
श्रुतसेनोग्रसेनौ च भीमसेनश्च नामतः ॥ ६३ ॥
एते सर्वे महाभागा विक्रान्ता बलशालिनः ।
जनमेजयस्य पुत्रौ तु सुरथो मतिमांस्तथा ॥ ६४ ॥

कुरुके दूसरे पुत्र परीक्षित्के आत्मज धर्मात्मा जनमेजय हुए । जनमेजयके श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन—ये तीन महारथी पुत्र थे । ये सभी महाभाग राजकुमार पराक्रमी तथा बलशाली थे । जनमेजयके दो पुत्र हुए सुरथ और मतिमान् ॥

सुरथस्य तु विक्रान्तः पुत्रो जज्ञे विदूरथः ।
विदूरथस्य दायाद ऋक्ष एव महारथः ॥ ६५ ॥
द्वितीयः स बभौ राजा नाम्ना तेनैव संज्ञितः ।

सुरथके एक पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम था विदूरथ । विदूरथके महारथी पुत्रका नाम भी ऋक्ष ही था । ये दूसरे राजा थे, जो उसी (ऋक्ष) नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ ६५½ ॥

द्वावृक्षौ तव वंशेऽस्मिन् द्वावेव तु परीक्षितौ ॥ ६६ ॥
भीमसेनास्त्रयो राजन् द्वावेव जनमेजयौ ।

राजन् ! तुम्हारे इस वंशमें दो 'ऋक्ष' और दो ही 'परीक्षित्' नामके राजा हो गये हैं । तीन 'भीमसेन' और दो 'जनमेजय' हुए हैं ॥ ६६½ ॥

ऋक्षस्य तु द्वितीयस्य भीमसेनोऽभवत् सुतः ॥ ६७ ॥
प्रतीपो भीमसेनस्य प्रतीपस्य तु शन्तनुः ।
देवापिर्बाह्लिकश्चैव त्रय एव महारथाः ॥ ६८ ॥

द्वितीय ऋक्षके पुत्र भीमसेन हुए । भीमसेनके प्रतीप और प्रतीपके पुत्र शन्तनु, देवापि तथा बाह्लिक थे । ये तीनों ही महारथी वीर थे ॥ ६७-६८ ॥

शन्तनोः प्रसवस्त्वेष यत्र जातोऽसि पार्थिव ।
बाह्लिकस्य तु राज्यं वै सप्तबाह्यं नरेश्वर ॥ ६९ ॥

पृथ्वीनाथ ! यह शन्तनुका कुल है, जिसमें तुम्हारा जन्म हुआ है । नरेश्वर ! बाह्लिकका राज्य सप्तबाह्य (मन्त्री आदि सात अङ्गोंद्वारा संचालित होने योग्य) था ॥ ६९ ॥

बाह्लिकस्य सुतश्चैव सोमदत्तो महायशाः ।
जज्ञिरे सोमदत्तात्तु भूरिर्भूरिश्रवाः शलः ॥ ७० ॥

बाह्लिकके पुत्र महायशस्वी सोमदत्त हुए । सोमदत्तसे भूरि, भूरिश्रवा और शल—ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ७० ॥

उपाध्यायस्तु देवानां देवापिरभवन्मुनिः ।
च्यवनस्य कृतः पुत्र इष्टश्चासीन्महात्मनः ॥ ७१ ॥

देवापि देवताओंके उपाध्याय और मुनि हुए । महात्मा च्यवनने उन्हें अपना प्रिय पुत्र बना लिया था ॥ ७१ ॥

शन्तनुस्त्वभवद् राजा कौरवाणां धुरन्धरः ।
शन्तनोः सम्प्रवक्ष्यामि यत्र जातोऽसि पार्थिव ॥ ७२ ॥

राजा शन्तनु कौरवकुलका भार वहन करनेवाले हुए। पृथ्वीनाथ ! अब मैं शन्तनुके वंशका वर्णन करता हूँ, जिसमें तुम्हारा जन्म हुआ है ॥ ७२ ॥

गाङ्गं देवव्रतं नाम पुत्रं सोऽजनयत् प्रभुः।
स तु भीष्म इति ख्यातः पाण्डवानां पितामहः॥ ७३ ॥

प्रभावशाली शन्तनुने गङ्गाजीके गर्भसे देवव्रत नामक पुत्रको जन्म दिया। वे ही भीष्म नामसे विख्यात हुए, जो पाण्डवोंके पितामह थे ॥ ७३ ॥

काली विचित्रवीर्यं तु जनयामास भारत।
शन्तनोर्दयितं पुत्रं धर्मात्मानमकल्मषम् ॥ ७४ ॥

भारत ! उनकी दूसरी पत्नी काली (सत्यवती) ने शन्तनुके प्रिय पुत्र विचित्रवीर्यको उत्पन्न किया, जो पापशून्य तथा धर्मात्मा थे ॥ ७४ ॥

कृष्णद्वैपायनश्चैव क्षेत्रे वैचित्रवीर्यके।
धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत् ॥ ७५ ॥

विचित्रवीर्यके क्षेत्र (अर्थात् उनकी पत्नियोंके गर्भ) से श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजीने धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुरको उत्पन्न किया था ॥ ७५ ॥

धृतराष्ट्रश्च गान्धार्यां पुत्रानुत्पादयच्छतम्।
तेषां दुर्योधनः श्रेष्ठः सर्वेषामेव स प्रभुः ॥ ७६ ॥

धृतराष्ट्रने गान्धारीके गर्भसे सौ पुत्र उत्पन्न किये। उन सबमें दुर्योधन ही श्रेष्ठ और प्रभावशाली था ॥ ७६ ॥

पाण्डोर्धनंजयः पुत्रः सौभद्रस्तस्य चात्मजः।
अभिमन्योः परीक्षित् तु पिता तव जनेश्वर ॥ ७७ ॥

पाण्डुके पुत्र धनंजय (अर्जुन) हुए। धनंजयसे सुभद्राकुमार अभिमन्युका जन्म हुआ। जनेश्वर ! अभिमन्युके पुत्र तुम्हारे पिता परीक्षित् थे ॥ ७७ ॥

एष ते पौरवो वंशो यत्र जातोऽसि पार्थिव।
तुर्वसोस्तु प्रवक्ष्यामि द्रुह्योश्चानोर्यदोस्तथा ॥ ७८ ॥

जनमेजय ! यह तुमसे पौरववंशका वर्णन किया गया, जिसमें तुम्हारा जन्म हुआ है। अब तुर्वसु, द्रुह्यु, यदु और अनुकी संततिका वर्णन करूँगा ॥ ७८ ॥

सुतस्तु तुर्वसोर्वह्निर्वह्नेर्गोभानुरात्मजः।
गोभानोस्तु सुतो राजा त्रैसानुरपराजितः ॥ ७९ ॥

तुर्वसुके पुत्र वह्नि और वह्निके गोभानु हुए। गोभानुके पुत्र राजा त्रैसानु थे, जो कभी परास्त नहीं होते थे ॥ ७९ ॥

करन्धमस्तु त्रैसानोर्मरुत्तस्तस्य चात्मजः।
अन्यस्त्वावीक्षितो राजा मरुत्तः कथितस्तव ॥ ८०॥

त्रैसानुके करन्धम और करन्धमके पुत्र मरुत्त हुए। अविक्षित्के पुत्र राजा मरुत्त दूसरे हैं। उनका परिचय दिया जा चुका है* ॥ ८० ॥

अनपत्योऽभवद् राजा यज्वा विपुलदक्षिणः।
दुहिता सम्मता नाम तस्यासीत् पृथिवीपते ॥ ८

ये करन्धम-पुत्र राजा मरुत्त पुत्रहीन थे। ये यज्ञ करते और उनमें प्रचुर दक्षिणाएँ देते थे। पृथ्वीन उनके एक पुत्री थी, जिसका नाम सम्मता था ॥ ८१॥

दक्षिणार्थं स्म वै दत्ता संवर्ताय महात्मने।
दुष्यन्तं पौरवं चापि लेभे पुत्रमकल्मषम् ॥ ८

उन्होंने महात्मा संवर्तको अपनी वह कन्या ही द रूपमें दे दी थी। (फिर संवर्तने दुष्यन्तके पिताको वह अर्पित कर दी। उनके संयोगसे) सम्मताने पुरुवंशी दु को पुत्ररूपमें प्राप्त किया। दुष्यन्त निष्पाप राजा थे ॥ ८

एवं ययातेः शापेन जरासंक्रमणे तदा।
पौरवं तुर्वसोर्वंशः प्रविवेश नृपोत्तम ॥ ८

नृपश्रेष्ठ ! इस प्रकार पुत्रोंको अपना बुढ़ापा लेनेके कहते समय ययातिने जो शाप दिया था, उसके अ तुर्वसुका वंश समाप्त होकर पौरववंशमें विलीन हो

दुष्यन्तस्य तु दायादः करुत्थामः प्रजेश्वरः।
करुत्थामात् तथाऽऽक्रीडश्चत्वारस्तस्य चात्मजाः।
पाण्ड्यश्च केरलश्चैव कोलश्चोलश्च पार्थिवः।
तेषां जनपदाः स्फीताः पाण्ड्याश्चोलाः सकेरलाः

दुष्यन्तके (शकुन्तलासे भिन्न दूसरी रानीके गर्भसे) करुत्थाम हुए। करुत्थामसे आक्रीडका जन्म हुआ। चार पुत्र थे—पाण्ड्य, केरल, कोल तथा राजा चोल। समृद्धिशाली प्रदेश भी उन्हींके नामपर पाण्ड्य, चोल केरल कहलाये ॥ ८४-८५ ॥

द्रुह्योश्च तनयो राजन् बभ्रुः सेतुश्च पार्थिवः।
अङ्गारसेतुस्तत्पुत्रो मरुतां पतिरुच्यते ॥ ८

राजन् ! ययातिकुमार द्रुह्युके पुत्र राजा बभ्रु और हुए। सेतुके पुत्र अङ्गारसेतु हुए। इन्हें मरुत्पति भी जाता है ॥ ८६ ॥

यौवनाश्वेन समरे कृच्छ्रेण निहतो बली।
युद्धं सुमहदस्यासीन्मासान्परि चतुर्दश ॥ ८

युवनाश्वके पुत्र मान्धाताके साथ इनका चौदह म तक बड़ा भारी युद्ध हुआ। उस समराङ्गणमें बलवान् सेतु शत्रुद्वारा बड़ी कठिनाईसे मारे गये ॥ ८७ ॥

अङ्गारस्य तु दायादो गान्धारो नाम भारत।
ख्यायते तस्य नाम्ना वै गान्धारविषयो महान् ॥ ८

---

* देखिये महाभारत, द्रोणपर्व (५५ । ३७—४२ आश्वमेधिकपर्व (अध्याय ६ से १० तक)।

गान्धारदेशजाश्चैव तुरगा वाजिनां वराः ।

भरतनन्दन ! अङ्गारके पुत्र गान्धार हुए । उन्हींके नामसे महान् गान्धारदेशकी ख्याति हुई । गान्धारदेशके घोड़े सब घोड़ोंसे श्रेष्ठ माने गये हैं ॥ ८८½ ॥

अनोस्तु पुत्रो धर्मोऽभूद् धृतस्तस्यात्मजोऽभवत् ८९
धृतात् तु दुदुहो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मजः ।
प्रचेतसः सुचेतास्तु कीर्तितो ह्यानवो मया ॥ ९० ॥

ययातिपुत्र अनुके पुत्र धर्म हुए और धर्मके पुत्र धृत, धृतसे दुदुहका जन्म हुआ । दुदुहके पुत्र प्रचेता और प्रचेताके पुत्र सुचेता हुए । इस प्रकार मैंने (संक्षेपसे) अनुवंशका वर्णन किया है ॥ ८९-९० ॥

यदोर्वंशं प्रवक्ष्यामि ज्येष्ठस्योत्तमतेजसः ।
विस्तरेणानुपूर्व्यात्तु गदतो मे निशामय ॥ ९१ ॥

अब मैं ययातिके ज्येष्ठ पुत्र उत्तम तेजस्वी यदुके वंशका क्रमशः विस्तारपूर्वक वर्णन करूँगा । तुम मेरे मुखसे इसको सुनो ॥ ९१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पूरुवंशानुकीर्तने द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पूरुवंशका वर्णनविषयक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

यदुवंशका वर्णन, कार्तवीर्यकी उत्पत्ति एवं चरित्र तथा पाँचों ययाति-पुत्रोंके वंश-वर्णनके श्रवणकी महिमा

वैशम्पायन उवाच

बभूवुस्तु यदोः पुत्राः पञ्च देवसुतोपमाः ।
सहस्रदः पयोदश्च क्रोष्टा नीलोऽञ्जिकस्तथा ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! यदुके पाँच देवोपम पुत्र हुए—सहस्रद, पयोद, क्रोष्टु, नील और अञ्जिक ॥ १ ॥

सहस्रदस्य दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः ।
हैहयश्च हयश्चैव राजन् वेणुहयस्तथा ॥ २ ॥

राजन् ! सहस्रदके तीन परम धर्मात्मा पुत्र हुए—हैहय, हय और वेणुहय ॥ २ ॥

हैहयस्याभवत् पुत्रो धर्मनेत्र इति स्मृतः ।
धर्मनेत्रस्य कार्तस्तु साहञ्जस्तस्य चात्मजः ॥ ३ ॥

हैहयका पुत्र धर्मनेत्र हुआ । धर्मनेत्रके कार्त और कार्तके साहञ्ज नामक पुत्र हुए ॥ ३ ॥

साहञ्जनी नाम पुरी येन राज्ञा निवेशिता ।
साहञ्जस्य तु दायादो महिष्मान् नाम पार्थिवः ॥ ४ ॥
माहिष्मती नाम पुरी येन राज्ञा निवेशिता ।

राजा साहञ्जने साहञ्जनी नामक पुरी बसायी । साहञ्जके पुत्र राजा महिष्मान् हुए, जिन्होंने माहिष्मती नामक नगरी बसायी थी ॥ ४½ ॥

आसीन्महिष्मतः पुत्रो भद्रश्रेण्यः प्रतापवान् ॥ ५ ॥
वाराणस्यधिपो राजा कथितः पूर्वमेव तु ।

महिष्मान्के पुत्र प्रतापी भद्रश्रेण्य थे, जो वाराणसीपुरीके अधिपति कहे गये हैं । राजा भद्रश्रेण्यका परिचय तुम्हें पहले ही दे दिया गया है ॥ ५½ ॥

भद्रश्रेण्यस्य पुत्रस्तु दुर्दमो नाम विश्रुतः ॥ ६ ॥
दुर्दमस्य सुतो धीमान् कनको नाम वीर्यवान् ।

भद्रश्रेण्यके पुत्रका नाम दुर्दम था, जो भूमण्डलके विख्यात राजा थे । दुर्दमके पुत्र कनक हुए, जो बुद्धिमान् और बलवान् थे ॥ ६½ ॥

कनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकविश्रुताः ॥ ७ ॥
कृतवीर्यः कृतौजाश्च कृतवर्मा तथैव च ।
कृताग्निस्तु चतुर्थोऽभूत् कृतवीर्यात् तथार्जुनः ॥ ८ ॥

कनकके चार पुत्र हुए, जो सम्पूर्ण विश्वमें विख्यात थे । उनके नाम इस प्रकार हैं—कृतवीर्य, कृतौजा, कृतवर्मा और कृताग्नि । कृताग्नि कनकके चौथे पुत्र थे । कृतवीर्यसे अर्जुनकी उत्पत्ति हुई ॥ ७-८ ॥

यस्तु बाहुसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत् ।
जिगाय पृथिवीमेको रथेनादित्यवर्चसा ॥ ९ ॥

अर्जुन सहस्र भुजाओंसे युक्त हो सातों द्वीपोंका राजा हुआ । उसने अकेले ही सूर्यके समान तेजस्वी रथद्वारा सम्पूर्ण पृथ्वीको जीत लिया था ॥ ९ ॥

स हि वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ।
दत्तमाराधयामास कार्तवीर्योऽत्रिसम्भवम् ॥ १० ॥

कृतवीर्यकुमार अर्जुनने दस हजार वर्षोंतक अत्यन्त दुष्कर तपस्या करके अत्रिपुत्र दत्त (दत्तात्रेय) की आराधना की ॥ १० ॥

तस्मै दत्तो वरान् प्रादाच्चतुरो भूरितेजसः ।
पूर्वं बाहुसहस्रं तु प्रार्थितं सुमहद्वरम् ॥ ११ ॥

दत्तात्रेयजीने उसे परम तेजस्वी चार वर प्रदान किये ।

पहले तो उसने बहुत बड़ा वर यह माँगा था कि 'युद्धमें मेरी सहस्र भुजाएँ हो जायँ' ॥ ११ ॥

अधर्मे वर्तमानस्य सद्भिस्तत्र निवारणम्।
उग्रेण पृथिवीं जित्वा स्वधर्मेणानुरञ्जनम् ॥ १२ ॥

दूसरा वर यह था कि 'यदि कभी मैं अधर्म-कार्यमें प्रवृत्त होऊँ तो वहाँ साधु पुरुष आकर मुझे रोक दें।' तीसरे वरके रूपमें उसने यह प्रार्थना की कि 'मैं युद्धके द्वारा पृथ्वीको जीतकर स्वधर्म-पालनके द्वारा प्रजाको प्रसन्न रक्खूँ' ॥१२॥

संग्रामान् सुबहून् कृत्वा हत्वा चारीन् सहस्रशः।
संग्रामे वर्तमानस्य वधं चाप्यधिकाद् रणे ॥ १३ ॥

चौथा वर इस प्रकार है—'मैं बहुत-से संग्राम करके सहस्रों शत्रुओंको मौतके घाट उतारकर संग्राममें ही रहते समय जो युद्धमें मुझसे अधिक शक्तिशाली हो, उसके द्वारा वधको प्राप्त होऊँ' ॥ १३ ॥

तस्य बाहुसहस्रं तु युध्यतः किल भारत।
योगाद् योगेश्वरस्येव प्रादुर्भवति मायया ॥ १४ ॥

भरतनन्दन ! युद्ध करते समय किसी योगेश्वरकी भाँति योगबल और संकेतमात्रसे उसके एक सहस्र भुजाएँ प्रकट हो जाती थीं ॥ १४ ॥

तेनेयं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना।
ससमुद्रा सनगरा उग्रेण विधिना जिता ॥ १५ ॥

राजा अर्जुनने द्वीप, समुद्र, पत्तन और नगरोंसहित सारी पृथ्वीको उग्रकर्म (युद्ध) के द्वारा जीता था ॥ १५ ॥

तेन सप्तसु द्वीपेषु सप्त यज्ञशतानि वै।
प्राप्तानि विधिना राज्ञा श्रूयन्ते जनमेजय ॥ १६ ॥

जनमेजय ! उस राजाने सातों द्वीपोंमें विधिपूर्वक सात सौ यज्ञ किये थे, ऐसा सुना जाता है ॥ १६ ॥

सर्वे यज्ञा महाबाहोस्तस्यासन् भूरिदक्षिणाः।
सर्वे काञ्चनयूपाश्च सर्वे काञ्चनवेदयः ॥ १७ ॥

महाबाहु अर्जुनके वे समस्त यज्ञ प्रचुर दक्षिणा देकर सम्पन्न किये गये थे। सबमें सोनेके यूप गड़े थे और सोनेकी ही वेदियाँ बनायी गयी थीं ॥ १७ ॥

सर्वैर्देवैर्महाराज विमानस्थैरलंकृताः।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिताः ॥ १८ ॥

महाराज ! विमानोंपर बैठे हुए सम्पूर्ण देवता, गन्धर्व और अप्सराएँ सदा ही उन यज्ञोंको अलंकृत एवं सुशोभित करती थीं ॥ १८ ॥

यस्य यज्ञे जगौ गाथां गन्धर्वो नारदस्तथा।
वरीदासात्मजो विद्वान् महिम्ना तस्य विस्मितः ॥ १९ ॥

कार्तवीर्यके यज्ञमें उसकी महिमासे चकित होकर वरीदासके विद्वान् पुत्र नारद नामक गन्धर्वने इस गाथाका गा क्रिया था ॥ १९ ॥

नारद उवाच

न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः।
यज्ञैर्दानैस्तपोभिर्वा विक्रमेण श्रुतेन च ॥ २०।

नारद बोले—अन्य राजालोग यज्ञ, दान, तपस् पराक्रम और शास्त्रज्ञानमें कार्तवीर्य अर्जुनकी स्थितिको न पहुँच सकते ॥ २० ॥

स हि सप्तसु द्वीपेषु खड्गी चर्मी शरासनी।
रथी द्वीपाननुचरन् योगी संदृश्यते नृभिः ॥ २१।

वह योगी था। इसलिये मनुष्योंको सातों द्वीपोंमें ढा तलवार, धनुष-बाण और रथ लिये सदा सब ओर विचर दिखायी देता था ॥ २१ ॥

अनष्टद्रव्यता चैव न शोको न च विभ्रमः।
प्रभावेण महाराज्ञः प्रजा धर्मेण रक्षतः ॥ २२।

धर्मपूर्वक प्रजाकी रक्षा करनेवाले महाराज कार्तवीर्य प्रभावसे किसीका धन नष्ट नहीं होता था। न तो किसी शोक होता और न कोई भ्रममें ही पड़ता था ॥ २२ ॥

पञ्चाशीतिसहस्राणि वर्षाणां वै नराधिपः।
स सर्वरत्नभाक् सम्राट् चक्रवर्ती बभूव ह ॥ २३।

वह पचासी हजार वर्षोंतक सब प्रकारके रत्नोंसे सम्प चक्रवर्ती सम्राट् रहा ॥ २३ ॥

स एव यज्ञपालोऽभूत् क्षेत्रपालः स एव च।
स एव वृष्ट्यां पर्जन्यो योगित्वादर्जुनोऽभवत्॥ २४।

योगी होनेके कारण राजा अर्जुन ही यज्ञों और खेतों रक्षा करता था और वही वर्षाकालमें मेघ बन जा था ॥ २४॥

स वै बाहुसहस्रेण ज्याघातकठिनत्वचा।
भाति रश्मिसहस्रेण शरदीव दिवाकरः ॥ २५।

जैसे शरद्-ऋतुमें भगवान् भास्कर अपनी सहस्रों किरणों शोभा पाते हैं, उसी प्रकार राजा कार्तवीर्य अर्जुन प्रत्यञ्चा रगणसे जिनकी त्वचा कठोर हो गयी थी, उन सहस्र भुजाओंसे सुशोभित होता था ॥ २५ ॥

स हि नागान् मनुष्येषु माहिष्मत्यां महाद्युतिः।
कर्कोटकसुताञ्जित्वा पुर्यां तस्यां न्यवेशयत् ॥ २६।

महातेजस्वी अर्जुनने कर्कोटकनागके पुत्रोंको जीतक उन्हें अपनी नगरी माहिष्मती पुरीमें मनुष्योंके बीच बसा था ॥ २६ ॥

स वै वेगं समुद्रस्य प्रावृट्कालेऽम्बुजेक्षणः।
क्रीडन्निव भुजोद्भिन्नं प्रतिस्रोतश्चकार ह ॥ २७।

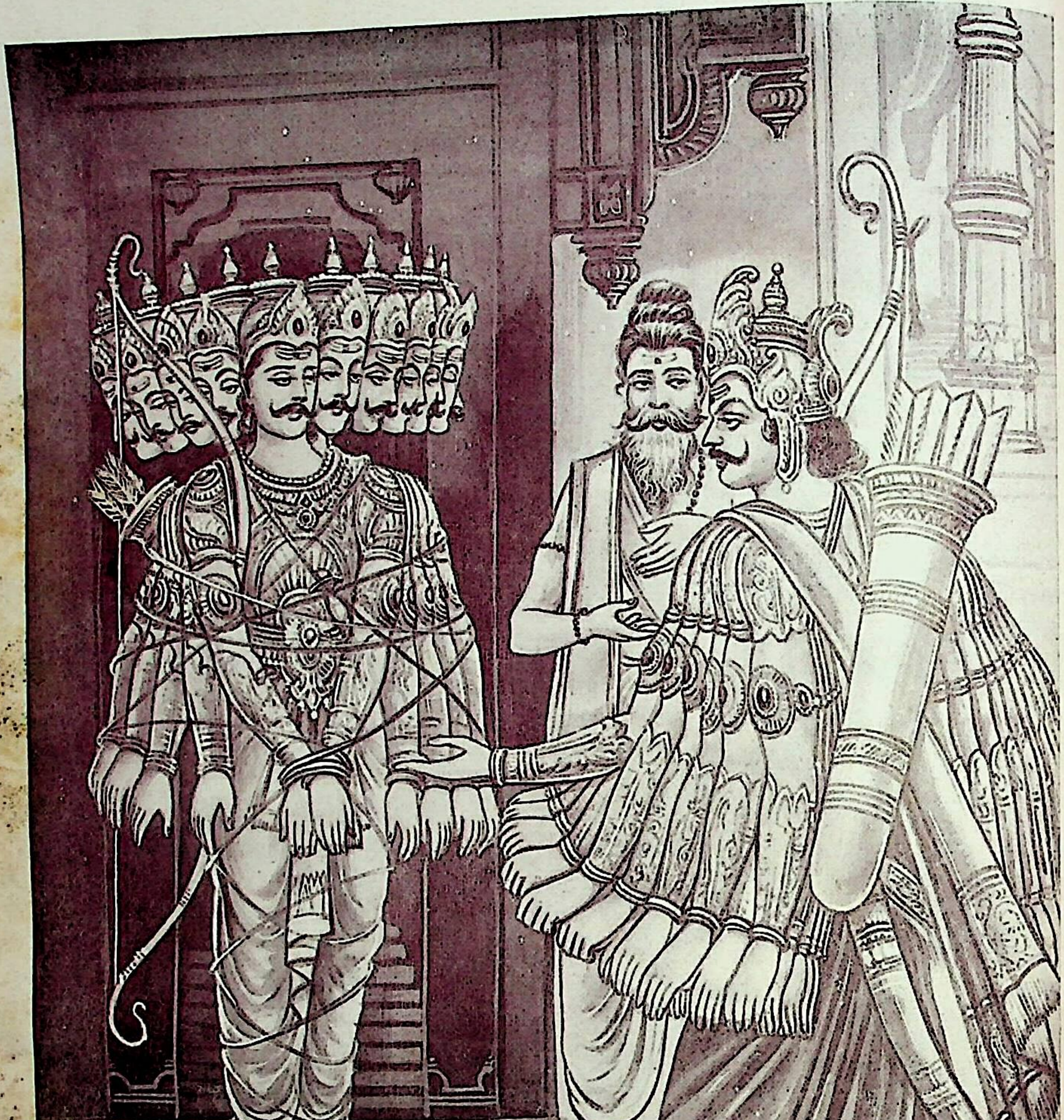

रावणको वन्धनसे मुक्त करनेके लिये सहस्राजुनसे पुलस्त्यका अनुरोध

कमलनयन कार्तवीर्य वर्षाकालमें जल-क्रीडा करते समय समुद्रकी जलराशिके वेगोंको अपनी भुजाओंके आघातसे रोककर पीछेकी ओर लौटा देता था ॥ २७ ॥

लुण्ठिता क्रीडिता तेन फेनस्रग्दाममालिनी ।
चलदूर्मिसहस्रेण शङ्कितास्येति नर्मदा ॥ २८ ॥

फेनरूपी पुष्पहारोंसे अलंकृत नर्मदाकी जलराशिमें जब वह लोटता और क्रीड़ा करता था, तब वह परपुरुषके उपभोगमें आयी हुई नारीके समान शङ्कित-सी होकर अपनी सहस्रों चञ्चल लहरोंके साथ अपने पति समुद्रके निकट जाती थी ॥ २८ ॥

तस्य बाहुसहस्रेण क्षुभ्यमाणे महोदधौ ।
भयान्निलीना निश्चेष्टाः पातालस्था महासुराः ॥ २९ ॥

महासागरमें घुसकर जब वह अपनी सहस्रों भुजाएँ पटकता, उस समय समुद्र विक्षुब्ध हो उठता था और पातालनिवासी महादैत्य निश्चेष्ट होकर भयसे छिप जाते थे ॥ २९ ॥

चूर्णीकृतमहावीचिं चलन्मीनमहातिमिम् ।
मारुताविद्धफेनौघमावर्तक्षोभदुःसहम् ॥ ३० ॥
प्रावर्तयत् तदा राजा सहस्रेण च बाहुना ।
देवासुरसमाक्षिप्तः क्षीरोदमिव मन्दरः ॥ ३१ ॥

जब राजा अर्जुन अपनी सहस्र भुजाओंसे समुद्रको मथने लगता, उस समय उसकी उठती हुई उत्ताल तरंगें चूर-चूर हो जाती थीं । बड़े-बड़े तिमि और मीन आदि जल-जन्तु छटपटाने लगते थे । भुजाओंके वेगसे उठी हुई वायुसे टकराकर उसकी फेनराशि छिन्न-भिन्न हो जाती थी और समुद्र बड़ी-बड़ी भँवरोंके कारण क्षुब्ध एवं दुःसह दिखायी देता था । देवताओं और असुरोंके द्वारा डाले हुए मन्दराचलने क्षीर-समुद्रकी जो दशा कर दी थी, वैसी ही दशा उसकी भुजाओंसे मथित हुए महासागरकी हो रही थी ॥ ३०-३१ ॥

मन्दरक्षोभचकिता अमृतोद्भवशङ्किताः ।
सहसोत्पतिता भीता भीमं दृष्ट्वा नृपोत्तमम् ॥ ३२ ॥
नता निश्चलमूर्धानो बभूवुस्ते महोरगाः ।
सायाह्ने कदलीखण्डाः कम्पितास्तस्य वायुना ॥ ३३ ॥

उस समय मन्दराचलके द्वारा समुद्रमन्थनकी आशङ्कासे चकित और अमृतकी उत्पत्तिसे भयभीत हुए बड़े-बड़े नाग सहसा उछलकर देखते और भयंकर नृपश्रेष्ठ कार्तवीर्यपर दृष्टि पड़ते ही मस्तक झुकाकर पत्थरके समान निश्चेष्ट हो जाते थे । जैसे संध्याके समय वायुके झोंकेसे कदलीखण्ड (केलोंके बगीचे) काँपने लगते हैं, उसी प्रकार उसके शरीरसे उठी हुई वायुके द्वारा वे नाग भी हिलने लगते थे ॥ ३२-३३ ॥

स वै बद्ध्वा धनुर्ज्याभिरुत्सिक्तं पञ्चभिः शरैः ।
लङ्केशं मोहयित्वा तु सबलं रावणं बलात् ।
निर्जित्यैव समानीय माहिष्मत्यां बबन्ध तम् ॥ ३४ ॥

राजा कार्तवीर्यने अभिमानसे भरे हुए लङ्कापति रावणको अपने पाँच ही बाणोंद्वारा सेनासहित मूर्च्छित एवं पराजित करके धनुषकी प्रत्यञ्चासे बाँध लिया और माहिष्मतीपुरीमें लाकर बंदी बना लिया ॥ ३४ ॥

श्रुत्वा तु बद्धं पौलस्त्यं रावणं त्वर्जुनेन तु ।
ततो गत्वा पुलस्त्यस्तमर्जुनं ददृशे स्वयम् ।
मुमोच रक्षः पौलस्त्यं पुलस्त्येनानुयाचितः ॥ ३५ ॥

अर्जुनने मेरे वंशज रावणको कैद कर लिया है, यह सुनकर महर्षि पुलस्त्य स्वयं वहाँ गये और अर्जुनसे मिले । पुलस्त्यके प्रार्थना करनेपर उसने उनके पौत्र राक्षस रावणको मुक्त कर दिया ॥ ३५ ॥

यस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलस्वनः ।
युगान्ते त्वम्बुदस्येव स्फुटतो ह्यशनेरिव ॥ ३६ ॥

अर्जुनकी हजार भुजाओंमें धारण किये गये धनुषोंकी प्रत्यञ्चाका ऐसा घोर शब्द होता था, मानो प्रलयकालके मेघ गरजते हों, अथवा वज्र फट पड़ा हो ॥ ३६ ॥

अहो बत मृधे वीर्यं भार्गवस्य यदच्छिनत् ।
राज्ञो बाहुसहस्रं तु हैमं तालवनं यथा ॥ ३७ ॥

अहो ! भृगुवंशी परशुरामजीका पराक्रम धन्य है, जिसने उन्होंने युद्धमें सुवर्णमय तालवनके समान राजा कार्तवीर्यकी सहस्रों भुजाओंको काट डाला था ॥ ३७ ॥

तृषितेन कदाचित् स भिक्षितश्चित्रभानुना ।
स भिक्षामददाद् वीरः सप्तद्वीपान् विभावसोः ॥ ३८ ॥
पुराणि ग्रामघोषांश्च विषयांश्चैव सर्वशः ।
जज्वाल तस्य सर्वाणि चित्रभानुर्दिधक्षया ॥ ३९ ॥
स तस्य पुरुषेन्द्रस्य प्रभावेण महात्मनः ।
ददाह कार्तवीर्यस्य शैलांश्चैव वनानि च ॥ ४० ॥

एक दिनकी बात है—भूखे-प्यासे अग्निदेवने राजा कार्तवीर्यसे भिक्षा माँगी । तब उस वीर राजाने सातों द्वीप, नगर, गाँव, गोष्ठ तथा सारा राज्य अग्निदेवको भिक्षामें दे दिये. । अग्निदेव सर्वत्र प्रज्वलित हो उठे और पुरुषप्रवर महात्मा कार्तवीर्यके प्रभावसे समस्त पर्वतों एवं वनोंको जलाने लगे ॥ ३८—४० ॥

स शून्यमाश्रमं रम्यं वरुणस्यात्मजस्य वै ।
ददाह वनवद् भीतश्चित्रभानुः सहैहयः ॥ ४१ ॥

कार्यवीर्यकी सहायतासे अग्निने दूसरे साधारण वनोंकी भाँति वरुणपुत्रके रमणीय आश्रमको भी सूना पाकर डरते-डरते जला दिया ॥ ४१ ॥

यं लेभे वरुणः पुत्रं पुरा भास्वन्तमुत्तमम् ।
वसिष्ठं नाम स मुनिः ख्यात आपव इत्युत ॥ ४२ ॥

पूर्वकालमें वरुणने जिन तेजस्वी एवं श्रेष्ठ महर्षिको पुत्ररूपमें प्राप्त किया था, उनका नाम वसिष्ठ है । वे ही मुनि आपव नामसे भी विख्यात हैं ॥ ४२ ॥

यत्रापवस्तु तं क्रोधाच्छप्तवानर्जुनं विभुः ।
यस्मान्न वर्जितमिदं वनं ते मम हैहय ॥ ४३ ॥
तस्मात् ते दुष्करं कर्म कृतमन्यो हनिष्यति ।

महर्षि वसिष्ठका सूना आश्रम जलाया गया था, इसलिये उन ऐश्वर्यशाली आपवने अर्जुनको क्रोधपूर्वक शाप दिया—'हैहय ! तूने मेरे इस वनको भी जलाये बिना न छोड़ा, इसलिये तेरे द्वारा जो विश्वविजय आदि यशोवर्द्धक दुष्कर कर्म किया गया है, उसे दूसरा वीर (तुझे पराजित करके) नष्ट कर डालेगा ॥ ४३½ ॥

रामो नाम महाबाहुर्जामदग्न्यः प्रतापवान् ॥ ४४ ॥
छित्त्वा बाहुसहस्रं ते प्रमथ्य तरसा बली ।
तपस्वी ब्राह्मणश्च त्वां वधिष्यति स भार्गवः ॥ ४५ ॥

'जमदग्निके प्रतापी पुत्र महाबाहु परशुराम बलवान् और तपस्वी ब्राह्मण हैं । वे भृगुवंशी वीर तुझे बलपूर्वक मथ डालेंगे और तेरी इन सहस्र भुजाओंको काटकर तुझे भी मौतके घाट उतार देंगे' ॥ ४४-४५ ॥

वैशम्पायन उवाच

अनष्टद्रव्यता यस्य बभूवामित्रकर्शन ।
प्रभावेण नरेन्द्रस्य प्रजा धर्मेण रक्षतः ॥ ४६ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—शत्रुसूदन जनमेजय ! धर्मपूर्वक प्रजाकी रक्षा करनेवाले राजा कार्तवीर्यके प्रभावसे उसके राज्यमें किसीकी धन-सम्पत्ति या दूसरी कोई वस्तु नष्ट नहीं होती थी ॥ ४६ ॥

रामात् ततोऽस्य मृत्युर्वै तस्य शापान्मुनेर्नृप ।
वरश्चैष हि कौरव्य स्वयमेव वृतः पुरा ॥ ४७ ॥

कुरुवंशी नरेश ! वसिष्ठ मुनिके शापसे ही परशुरामके हाथसे उसकी मृत्यु हुई थी । उसने स्वयं ही पहले इसी तरहका वर माँगा था ॥ ४७ ॥

तस्य पुत्रशतस्यासन् पञ्च शेषा महात्मनः ।
कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो यशस्विनः ॥ ४८ ॥

महामना कार्तवीर्यके सौ पुत्र थे, किंतु उनमें पाँच ही शेष बचे । वे सभी अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता, बलवान्, शूर, धर्मात्मा और यशस्वी थे ॥ ४८ ॥

शूरसेनश्च शूरश्च धृष्टोक्तः कृष्ण एव च ।
जयध्वजश्च नाम्नाऽऽसीदावन्त्यो नृपतिर्महान् ॥ ४९ ॥

उनके नाम ये हैं—शूरसेन, शूर, धृष्ट, कृष्ण और जयध्वज । इनमें जयध्वज अवन्तीदेशके महाराज थे ॥ ४९ ॥

कार्तवीर्यस्य तनया वीर्यवन्तो महारथाः ।
जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः ॥ ५

कार्तवीर्यके ये सभी पुत्र बलवान् और महारथी जयध्वजके पुत्र महाबली तालजङ्घ हुए ॥ ५० ॥

तस्य पुत्राः शतं ख्यातास्तालजङ्घा इति श्रुताः ।
तेषां कुले महाराज हैहयानां महात्मनाम् ॥ ५
वीतिहोत्राः सुजाताश्च भोजाश्चावन्तयः स्मृताः ।
तौण्डिकेरा इति ख्यातास्तालजङ्घास्तथैव च ॥ ५
भरताश्च सुता जाता बहुत्वान्नानुकीर्तिताः ।
वृषप्रभृतयो राजन् यादवाः पूर्णकर्मिणः ॥ ५

तालजङ्घके सौ पुत्र थे, जो तालजङ्घ नामसे ही वि थे । महाराज ! महामनस्वी हैहयोंके कुलमें वीतिहोत्र, सु भोज, अवन्ति, तौण्डिकेर, तालजङ्घ तथा भरत आदि क्ष के समुदाय उत्पन्न हुए । इनकी संख्या बहुत होनेके इनके पृथक्-पृथक् नाम नहीं बताये गये । राजन् ! वृष बहुत-से पुण्यात्मा यादव इस पृथ्वीपर उत्पन्न हुए थे ॥५१-

वृषो वंशधरस्तत्र तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः ।
मधोः पुत्रशतं त्वासीद् वृषणस्तस्य वंशभाक् ॥ ५

उनमें वृष वंशप्रवर्तक हुए । वृषके पुत्र मधु थे । म पुत्र हुए, जिनमें वृषण वंश चलानेवाले हुए ॥ ५४ ॥

वृषणाद् वृष्णयः सर्वे मधोस्तु माधवाः स्मृताः ।
यादवा यदुना चाग्रे निरुच्यन्ते च हैहयाः ॥ ५

वृषणसे जो संतान-परम्परा चली, उसके अन्तर्गत क्षत्रिय वृष्णि कहलाये और मधुके वंशज माधव नामसे हुए । इसी प्रकार यदुके नामपर उस वंशके लोग कहलाते हैं तथा आगे होनेवाले हैहयके वंशज है जाते हैं ॥ ५५ ॥

न तस्य वित्तनाशोऽस्ति नष्टं प्रतिलभेच्च सः ।
कार्तवीर्यस्य यो जन्म कीर्तयेदिह नित्यशः ॥

जो यहाँ प्रतिदिन कार्तवीर्य अर्जुनके जन्मका कहता या सुनता है, उसके धनका नाश नहीं होता उसकी खोयी हुई वस्तु भी उसे मिल जाती है ॥ ५६

एते ययातिपुत्राणां पञ्च वंशा विशाम्पते ।
कीर्तिता लोकवीराणां ये लोकान् धारयन्ति वै ॥
भूतानीव महाराज पञ्च स्थावरजङ्गमान् ।

प्रजानाथ ! इस प्रकार ये विश्वविख्यात वीर पुत्रोंके पाँच वंश यहाँ बतलाये गये हैं । महाराज ! जै भूत स्थावर, जङ्गम प्राणियोंके शरीरोंको धारण करते हैं प्रकार ये पाँचों वंश समस्त लोकोंको धारण करते हैं ॥

श्रुत्वा पञ्चविसर्गं तु राजा धर्मार्थकोविदः ।
वशी भवति पञ्चानामात्मजानां तथेश्वरः ।

इन पाँचों वंशोंकी सृष्टिका वर्णन सुनकर राजा

अर्थके तत्त्वका ज्ञाता होता है, अपनी पाँचों इन्द्रियोंको वशमें खता है तथा अपने पुत्रोंपर प्रभुत्व स्थापित कर लेता है ॥

भेत् पञ्च वरांश्चैव दुर्लभानिह लौकिकान् ॥ ५९ ॥
आयुः कीर्तिं तथा पुत्रानैश्वर्यं भूमिमेव च ।
ारणाच्छ्रवणाच्चैव पञ्चवर्गस्य भारत ॥ ६० ॥

भरतनन्दन ! इन पाँचों वंशोंके श्रवण और धारणसे नुष्य इस जगत्में आयु, कीर्ति, पुत्र, ऐश्वर्य तथा भूमि—न पाँच लोकोपयोगी दुर्लभ वरोंको प्राप्त कर लेता है ॥

ोष्टोस्तु शृणु राजेन्द्र वंशमुत्तमपौरुषम् ।
यदोर्वंशधरस्याथ यज्वनः पुण्यकर्मणः ॥ ६१ ॥
क्रोष्टुर्हि वंशं श्रुत्वेमं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
यस्यान्ववायजो विष्णुर्हरिर्वृष्णिकुलोद्वहः ॥ ६२ ॥

राजेन्द्र ! अब तुम उत्तम पुरुषार्थसे युक्त क्रोष्टुवंशका वर्णन सुनो । राजा क्रोष्टु यदुके वंशधर, यज्ञ करनेवाले तथा पुण्यकर्मा थे । उनके इस वंशका वर्णन सुनकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । राजा क्रोष्टु वे ही हैं, जिनके कुलमें सर्वव्यापी भगवान् श्रीहरिने वृष्णिवंशावतंस श्रीकृष्णके रूपमें अवतार लिया था ॥ ६१-६२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

वृष्णिवंशका वर्णन—अक्रूर, वसुदेव, कुन्ती, सात्यकि, उद्धव, चारुदेष्ण, एकलव्य आदिका परिचय

वैशम्पायन उवाच

न्धारी चैव माद्री च क्रोष्टोर्भार्ये बभूवतुः ।
न्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! क्रोष्टाकी गान्धारी ोर माद्री नामकी दो भार्याएँ थीं । गान्धारीके गर्भसे महाबली नमित्र उत्पन्न हुए ॥ १ ॥

ाद्री युधाजितं पुत्रं ततोऽन्यं देवमीढुषम् ।
षां वंशस्त्रिधा भूतो वृष्णीनां कुलवर्धनः ॥ २ ॥

माद्रीके पुत्र युधाजित् और दूसरे पुत्र देवमीढुष हुए, ष्णियोंके कुलको बढ़ानेवाला उनका वंश तीन शाखाओंमें ट गया ॥ २ ॥

ाद्र्याः पुत्रस्य जज्ञाते सुतौ वृष्ण्यन्धकावुभौ ।
ज्ञाते तनयौ वृष्णेः श्वफल्कश्चित्रकस्तथा ॥ ३ ॥

माद्रीके पुत्र (युधाजित्) के वृष्णि और अन्धक नाम- दो पुत्र हुए और वृष्णिके पुत्र श्वफल्क तथा चित्रक ए ॥ ३ ॥

वफल्कस्तु महाराज धर्मात्मा यत्र वर्तते ।
ास्ति व्याधिभयं तत्र नावर्षभयमप्युत ॥ ४ ॥

महाराज ! धर्मात्मा श्वफल्क जहाँ रहते थे, वहाँ व्याधि ौर अनावृष्टिका भय नहीं होता था ॥ ४ ॥

कदाचित् काशिराजस्य विभोर्भरतसत्तम ।
त्रीणि वर्षाणि विषये नावर्षत् पाकशासनः ॥ ५ ॥

भरतसत्तम ! एक समय शक्तिशाली काशिराजके देशमें इन्द्रने तीन वर्षतक पानी नहीं बरसाया ॥ ५ ॥

स तत्र वासयामास श्वफल्कं परमार्चितम् ।
श्वफल्कपरिवर्ते च ववर्ष हरिवाहनः ॥ ६ ॥

तब उन्होंने परम पूज्य श्वफल्कको बुलाकर अपने यहाँ ठहराया और श्वफल्कके पधारते ही इन्द्रने जल बरसाना आरम्भ कर दिया ॥ ६ ॥

श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामविन्दत ।
गान्दिनीं नाम सा गां तु ददौ विप्रेषु नित्यशः ॥ ७ ॥

श्वफल्कका काशिराजकी गान्दिनी नामवाली पुत्रीसे विवाह हो गया । वह ब्राह्मणोंको नित्यप्रति गौओंका दान देती रहती थी (इसीलिये उसका नाम गान्दिनी पड़ा था) ॥ ७ ॥

सा मातुरुदरस्था तु बहून् वर्षगणान् किल ।
निवसन्ती न वै जज्ञे गर्भस्थां तां पिताब्रवीत् ॥ ८ ॥

वह अपनी माताके उदरमें बहुत वर्षोंतक रही थी और उत्पन्न नहीं होती थी, तब गर्भमें स्थित कन्यासे उसके पिताने कहा—॥ ८ ॥

जायस्व शीघ्रं भद्रं ते किमर्थमिह तिष्ठसि।
प्रोवाच चैनं गर्भस्था कन्या गां च दिने दिने ॥ ९ ॥
यदि दद्यां ततोऽद्याहं जाययिष्यामि तां पिता।
तथेत्युवाच तं चास्याः पिता काममपूरयत् ॥ १० ॥

'(भद्रे !) तेरा कल्याण हो, तू शीघ्र ही उत्पन्न हो, तू (इतने वर्षोंसे) किस लिये गर्भमें पड़ी हुई है।' तब उस गर्भमें स्थित कन्याने कहा—'यदि आप प्रतिदिन मुझसे गो-दान करानेका संकल्प करें तो मैं आज ही उत्पन्न हो जाऊँ।' तब पिताने उससे 'तथास्तु' कहकर उसकी कामनाको पूर्ण किया ॥ ९-१० ॥

दाता यज्वा च धीरश्च श्रुतवानतिथिप्रियः।
अक्रूरः सुषुवे तस्माच्छ्वफल्काद् भूरिदक्षिणः ॥ ११ ॥

इन श्वफल्क (और गान्दिनी) के यहाँ दान देनेवाले, यज्ञ करनेवाले, धैर्यवान्, शास्त्रोंके ज्ञाता, अतिथियोंसे प्रेम करनेवाले तथा प्रचुर दक्षिणाएँ देनेवाले अक्रूर उत्पन्न हुए ॥ ११ ॥

उपासङ्गस्तथा मद्गुर्मृदुरश्चारिमेजयः।
अविक्षिपस्तथोपेक्षः शत्रुघ्नोऽथारिमर्दनः ॥ १२ ॥
धर्मधृग् यतिधर्मा च गृध्रो भोजोऽन्धकस्तथा।
आवाहप्रतिवाहौ च सुन्दरी च वराङ्गना ॥ १३ ॥

तथा उपासङ्ग, मद्गु, मृदुर, अरिमेजय, अविक्षिप, उपेक्ष, शत्रुघ्न, अरिमर्दन, धर्मधृक्, यतिधर्मा, गृध्र, भोज, अन्धक, आवाह और प्रतिवाह (नामक अक्रूरजीके भाई) तथा वराङ्गना नामकी सुन्दरी कन्या (भी) उत्पन्न हुई ॥ १२-१३ ॥

अक्रूरेणोग्रसेनायां सुगात्र्यां कुरुनन्दन।
प्रसेनश्चोपदेवश्च जज्ञाते देववर्चसौ ॥ १४ ॥

कुरुनन्दन ! इन अक्रूरजीसे सुन्दराङ्गी उग्रसेनाके द्वारा देवताओंके समान कान्तिवाले प्रसेन तथा उपदेव नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १४ ॥

चित्रकस्याभवन् पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च।
अश्वग्रीवोऽश्वबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ ॥ १५ ॥
अरिष्टनेमिरश्वश्च सुधर्मा धर्मभृत् तथा।
सुबाहुर्बहुबाहुश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ ॥ १६ ॥

(अक्रूरजीके भाई) चित्रकके श्रविष्ठा और श्रवणा नामकी दो धर्मपत्नियाँ थीं, जिनसे पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, अश्वबाहु, सुपार्श्वक, गवेषण, अरिष्टनेमि, अश्व, सुधर्मा, धर्मभृत्, सुबाहु तथा बहुबाहु नामक पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १५-१६

अश्मक्यां जनयामास शूरं वै देवमीढुषः।
महिष्यां जज्ञिरे शूराद् भोज्यायां पुरुषा दश ॥ १

(क्रोष्टाके तृतीय पुत्र) देवमीढुषके अश्मकी ना पत्नीसे शूर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। शूरके भोजराजकु से दस पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १७ ॥

वसुदेवो महाबाहुः पूर्वमानकदुन्दुभिः।
जज्ञे यस्य प्रसूतस्य दुन्दुभ्यः प्राणदन् दिवि ॥ १

पहले महाबाहु वसुदेवजी उपनाम आनकदुन्दुभि हुए, इनके उत्पन्न होनेपर स्वर्गमें—आकाशमें दुन्दु बजी थीं ॥ १८ ॥

आनकानां च संह्रादः सुमहानभवद् दिवि।
पपात पुष्पवर्षं च शूरस्य भवने महत् ॥

तथा स्वर्गमें—आकाशमें नगारोंका बड़ा भारी शब्द था। (इसीसे वसुदेवजीका नाम आनकदुन्दुभि प साथ ही इनके उत्पन्न होनेपर शूरके घरमें पुष्पों भारी वर्षा हुई थी ॥ १९ ॥

मनुष्यलोके कृत्स्नेऽपि रूपे नास्ति समो भुवि।
यस्यासीत् पुरुषाग्र्यस्य कान्तिश्चन्द्रमसो यथा ॥

पुरुषोंमें अग्रगण्य वसुदेवजीकी कान्ति चन्द्रमाके थी, इनके समान रूपवान् सम्पूर्ण मनुष्यलोकमें और नहीं था ॥ २० ॥

देवभागस्ततो जज्ञे तथा देवश्रवाः पुनः।
अनाधृष्टिः कनवको वत्सावानथ गृञ्जिमः ॥
श्यामः शमीको गण्डूषः पञ्च चास्य वराङ्गनाः।
पृथुकीर्तिः पृथा चैव श्रुतदेवा श्रुतश्रवाः ॥
राजाधिदेवी च तथा पञ्चैता वीरमातरः।
पृथां दुहितरं वव्रे कुन्तिस्तां कुरुनन्दन ॥
शूरः पूज्याय वृद्धाय कुन्तिभोजाय तां ददौ।
तस्मात् कुन्तीति विख्याता कुन्तिभोजात्मजा पृथा।

कुरुनन्दन ! वसुदेवजीके बाद (शूरके यहाँ) दे देवश्रवा, अनाधृष्टि, कनवक, वत्सावान्, गृञ्जिम, शमीक और गण्डूष नामक पुत्र तथा पृथुकीर्ति, पृथा, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी नामकी पाँच कन्याएँ उत्प थीं, जो रमणियोंमें रत्नके समान थीं। ये पाँचों वीर पुत्रोंकी माता थीं। राजा कुन्तिने पृथाको अप

बनानेके लिये माँग लिया। (इसपर) शूरसेनने पृथाको पूज्य तथा वृद्ध राजा कुन्तिभोजको दे दिया। इस कारण पृथा कुन्तिभोजकी पुत्री और कुन्ती नामसे विख्यात हुई २१–२४

अन्त्यस्य श्रुतदेवायां जगृहुः सुषुवे सुतः।
श्रुतश्रवायां चैद्यस्य शिशुपालो महाबलः॥ २५॥
हिरण्यकशिपुर्योऽसौ दैत्यराजोऽभवत् पुरा।

अन्त्यके श्रुतदेवासे जगृहु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ तथा चेदिवंशी दमघोषके श्रुतश्रवासे महाबली शिशुपाल उत्पन्न हुआ, यह पहले जन्ममें दैत्यराज हिरण्यकशिपु था॥ २५½॥

पृथुकीर्त्यां तु तनयः संजज्ञे वृद्धशर्मणः॥ २६॥
करूषाधिपतिर्वीरो दन्तवक्रो महाबलः।

वृद्धशर्मासे पृथुकीर्तिके करूष देशका स्वामी महाबली वीर दन्तवक्र उत्पन्न हुआ॥ २६½॥

पृथां दुहितरं चक्रे कुन्तिस्तां पाण्डुरावहत्॥ २७॥
यस्यां स धर्मविद् राजा धर्माज्जज्ञे युधिष्ठिरः।
भीमसेनस्तथा वातादिन्द्राच्चैव धनंजयः॥ २८॥
लोकेऽप्रतिरथो वीरः शक्रतुल्यपराक्रमः।

कुन्तिभोजने जिन पृथाको अपनी पुत्री बना लिया था, उनका विवाह पाण्डुके साथ हुआ। उन पृथाके धर्मके जाननेवाले राजा युधिष्ठिर धर्मसे उत्पन्न हुए और वायुसे भीमसेन तथा इन्द्रसे संसारके अनुपम वीर, इन्द्रके समान पराक्रमी धनंजय (अर्जुन) उत्पन्न हुए॥ २७-२८½॥

अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठाद् वृष्णिनन्दनात्॥ २९॥
शैनेयः सत्यकस्तस्माद् युयुधानश्च सात्यकिः।
असङ्गो युयुधानस्य भूमिस्तस्याभवत् सुतः॥ ३०॥
भूमेर्युगधरः पुत्र इति वंशः समाप्यते।

क्रोष्टाके सबसे छोटे पुत्र, सकल वृष्णिवंशियोंको प्रसन्न करनेवाले अनमित्रसे शिनि उत्पन्न हुए, उनसे शैनेय उपनाम सत्यक हुए और उनसे युयुधान उपनामवाले सात्यकि हुए। युयुधानके पुत्र असङ्ग हुए और असङ्गके पुत्र भूमि हुए। भूमिके पुत्र युगधर हुए। यहाँपर क्रोष्टाका वंश समाप्त होता है॥ २९-३०½॥

उद्धवो देवभागस्य महाभागः सुतोऽभवत्।
पण्डितानां परं प्राहुर्देवश्रवसमुद्भवम्॥ ३१॥

(वसुदेवजीके भ्राता) देवभागके उद्धव नामक महाभाग्यवान् पुत्र उत्पन्न हुए। ये उद्धव देवताओंके समान कीर्तिवाले एवं परम पण्डितके रूपमें प्रसिद्ध हुए॥ ३१॥

अश्मक्यां प्राप्तवान् पुत्रमनाधृष्टिर्यशस्विनम्।
निवृत्तशत्रुं शत्रुघ्नं देवश्रवा व्यजायत॥ ३२॥

(वसुदेवजीके तीसरे भाई)अनाधृष्टिने अश्मकीसे यशस्वी नामक पुत्रको उत्पन्न किया तथा दूसरे भाई देवश्रवाने शत्रुओंको हटानेवाले शत्रुघ्न नामक पुत्रको उत्पन्न किया॥३२॥

देवश्रवाः प्रजातस्तु नैषादिर्यः प्रतिश्रुतः।
एकलव्यो महाराज निषादैः परिवर्धितः॥ ३३॥

महाराज ! (किसी कारणवश बालकपनमें ही त्याग दिये जानेके कारण) इस देवश्रवाके पुत्रको निषादोंने पालकर बड़ा किया था, इसलिये यह निषादवंशी एकलव्यके नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ ३३॥

वत्सावते त्वपुत्राय वसुदेवः प्रतापवान्।
अद्भिर्ददौ सुतं वीरं शौरिः कौशिकमौरसम्॥ ३४॥

शूरनन्दन प्रतापी वसुदेवजीने (अपने छोटे भाई) पुत्रहीन वत्सावान्‌को अपना औरस पुत्र कौशिक जलसे संकल्प करके दे दिया॥ ३४॥

गण्डूषाय त्वपुत्राय विष्वक्सेनो ददौ सुतान्।
चारुदेष्णं सुचारुं च पञ्चालं कृतलक्षणम्॥ ३५॥

(इसी प्रकार) श्रीकृष्णने (वसुदेवजीके दूसरे छोटे भाई) अपुत्र गण्डूषको चारुदेष्ण, सुचारु, पञ्चाल और कृतलक्षण नामके अपने चार पुत्र दे दिये॥ ३५॥

असंग्रामेण यो वीरो नावर्तत कदाचन।
रौक्मिणेयो महाबाहुः कनीयान् पुरुषर्षभ॥ ३६॥

पुरुषर्षभ ! रुक्मिणीके छोटे पुत्र महाभुज चारुदेष्ण युद्ध किये बिना (रणभूमिसे) कभी नहीं लौटते थे॥ ३६॥

वायसानां सहस्राणि यं यान्तं पृष्ठतोऽन्वयुः।
चारुमांसानि भोक्ष्यामश्चारुदेष्णहतानि तु॥ ३७॥

उनके पीछे हजारों कौए इस इच्छासे जाते थे कि इनके द्वारा मारे गये शत्रुओंका चारु (स्वादिष्ट) मांस हम खायेंगे, (इस प्रकार कौओंको) चारु (स्वादिष्ट) भोजन देनेवाले होनेसे ये चारुदेष्ण कहलाये॥ ३७॥

तन्द्रिजस्तन्द्रिपालश्च सुतौ कनवकस्य तु।
वीरश्चाश्वहनश्चैव वीरौ तावथ गृञ्जिमौ॥ ३८॥

(वसुदेवजीके भाई) कनवकके तन्द्रिज और तन्द्रिपाल नामक दो पुत्र हुए तथा गृञ्जिमके वीर और अश्वहन नामक दो वीर पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३८ ॥

श्यामपुत्रः शमीकस्तु शमीको राज्यमावहत् ।
जुगुप्समानो भोजत्वाद् राजसूयमवाप सः ।
अजातशत्रुः शत्रूणां जज्ञे तस्य विनाशनः ॥ ३९ ॥

(वसुदेवजीके भाई श्याम अपने छोटे भाई शमीकको अपने पुत्रके समान मानते थे । इस कारण) श्यामके पुत्र शमीक हुए । इन शमीकने राज्य किया था, उन्होंने भोज होनेके कारण (अर्थात् भोजवंशी एक वंशके और एक देशके ही राजा हैं-यह) निन्दा मानकर उन्होंने राजसूय (साम्राज्य) पाया था । शमीकके शत्रुनाशक अ नामक पुत्र हुआ ॥ ३९ ॥

वसुदेवसुतान् वीरान् कीर्तयिष्यामि ताञ्छृणु ॥

अब मैं वसुदेवजीके वीर पुत्रोंका वर्णन करता हूँ, आप सुनिये ॥ ४० ॥

वृष्णेस्त्रिविधमेतत् तु बहुशाखं महौजसम् ।
धारयन् विपुलं वंशं नानर्थैरिह युज्यते ॥

जो मनुष्य वृष्णिके बहुत-सी शाखाओंवाले, महा पुरुषोंसे सुशोभित इस तीन प्रकारके बड़े विशाल वृत्तान्तको मनमें धारण करता है, वह इस अनर्थोंसे मुक्त रहता है ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि वृष्णिवंशकीर्तनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें वृष्णिवंशका कीर्तनविषयक चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णका अवतार लेना, श्रीकृष्णके अन्य भाई-बहिनों और कुटुम्बियोंका वर्णन तथा कालयवनकी

वैशम्पायन उवाच

याः पत्न्यो वसुदेवस्य चतुर्दश वराङ्गनाः ।
पौरवी रोहिणी नाम इन्दिरा च तथा वरा ॥ १ ॥
वैशाखी च तथा भद्रा सुनाम्नी चैव पञ्चमी ।
सहदेवा शान्तिदेवा श्रीदेवा देवरक्षिता ॥ २ ॥
वृकदेव्युपदेवी च देवकी चैव सप्तमी ।
सुतनुर्वडवा चैव द्वे एते परिचारिके ॥ ३ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! वसुदेवजीकी जो चौदह सुन्दराङ्गी पत्नियाँ थीं, उनमें रोहिणी और रोहिणीसे छोटी इन्दिरा, वैशाखी, भद्रा तथा पाँचवीं सुनाम्नी—ये पाँच पौरव-वंशकी थीं तथा सहदेवा, शान्तिदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी और सातवीं देवकी—ये सात देवलकी पुत्रियाँ थीं तथा सुतनु और वडवा—ये दो उनकी परिचर्या करनेवाली स्त्रियाँ थीं ॥ १—३ ॥

पौरवी रोहिणी नाम बाह्लिकस्यात्मजाभवत् ।
ज्येष्ठा पत्नी महाराज दयिताऽऽनकदुन्दुभेः ॥ ४ ॥

महाराज ! पौरव-वंशकी कुमारी रोहिणी (महाराज शन्तनुके बड़े भाई) बाह्लिककी पुत्री थीं, वे वसुदेवजीकी प्रियतमा बड़ी पत्नी थीं ॥ ४ ॥

लेभे ज्येष्ठं सुतं रामं सारणं शठमेव च ।
दुर्दमं दमनं श्वभ्रं पिण्डारकमुशीनरम् ॥
चित्रां नाम कुमारीं च रोहिणीतनया दश ।
चित्रा सुभद्रेति पुनर्विख्याता कुरुनन्दन ॥

कुरुनन्दन ! रोहिणीके ज्येष्ठ पुत्र बलराम और (छोटे) सारण, शठ, दुर्दम, दमन, श्वभ्र, पिण्डारक उशीनर हुए तथा चित्रा नामकी पुत्री उत्पन्न हुई। चित्रा एक अप्सरा थी, जो रोहिणीके गर्भसे उत्पन्न मर गयी थी । इसने मरते समय अपनेको धिक्कारा था यादवकुलमें जन्म धारण करके भी यदुवंशमें उत्पन्न भगवान्‌की लीलाको न देख सकी । इस वासनाके यह चित्रा ही दूसरी बार सुभद्रा बनकर उत्पन्न हुई थी प्रकार रोहिणीके दस संतानें उत्पन्न हुईं ॥ ५-६ ॥

वसुदेवाच्च देवक्यां जज्ञे शौरिर्महायशाः ।
रामाच्च निशठो जज्ञे रेवत्यां दयितः सुतः ॥

वसुदेवसे देवकीमें महायशस्वी श्रीकृष्ण उत्पन्न हु बलरामजीसे रेवतीके द्वारा उनके प्रिय पुत्र निशठ उत्पन्न

सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत ।
अक्रूरात् काशिकन्यायां सत्यकेतुरजायत ॥

अर्जुनसे सुभद्रामें रथी अभिमन्यु उत्पन्न हुए और अक्रूरसे काशिराजकुमारीमें सत्यकेतु उत्पन्न हुए ॥ ८ ॥

वसुदेवस्य भार्यासु महाभागासु सप्तसु।
ये पुत्रा जज्ञिरे शूरा नामतस्तान् निबोध मे ॥ ९ ॥

वसुदेवजीकी सात महाभाग्यवती पत्नियोंमें जो शूरवीर पुत्र उत्पन्न हुए, उनके नाम मैं आपसे कहता हूँ, सुनिये ॥ ९ ॥

भोजश्च विजयश्चैव शान्तिदेवासुतावुभौ।
वृकदेवः सुनामायां गदश्चास्तां सुतावुभौ ॥ १० ॥

भोज और विजय—ये दो शान्तिदेवाके पुत्र थे तथा वृकदेव और गद—ये दो सुनाम्नीके पुत्र थे ॥ १० ॥

उपासङ्गवरं लेभे तनयं देवरक्षिता।
अगावहं महात्मानं वृकदेवी व्यजायत ॥ ११ ॥

देवरक्षिताके पुत्र उपासङ्गवर हुए और वृकदेवीके पुत्र महात्मा अगावह हुए ॥ ११ ॥

कन्या त्रिगर्तराजस्य भर्ता वै शैशिरायणः।
जिज्ञासां पौरुषे चक्रे न चस्कन्देऽथ पौरुषम् ॥ १२ ॥

वृकदेवी त्रिगर्तराजकी कन्या थीं । त्रिगर्तराजका भर्ता (पुरोहित) गर्गगोत्री शैशिरायण था । उसके सालेने, जो यादवोंका पुरोहित था, यह जानना चाहा कि इसमें पुंस्त्व है अथवा नहीं, परंतु (व्रतधारी होनेसे) उसका वीर्य स्खलित नहीं हुआ (इसपर उसके सालेने हास्यवश उसको मिथ्या ही नपुंसक घोषित कर दिया) ॥ १२ ॥

कृष्णायससमप्रख्यो वर्षे द्वादशमे तथा।
मिथ्याभिशप्तो गार्ग्यस्तु मन्युनाभिसमीरितः ॥ १३ ॥

बारह वर्षका नियम पूर्ण होनेपर मिथ्या ही नपुंसकताका दोष लगाये जानेके कारण गर्गगोत्री शैशिरायण क्रोधमें भर गये, इससे उनके शरीरका वर्ण लोहेके समान काला दीखने लगा ॥ १३ ॥

गोपकन्यामुपादाय मैथुनायोपचक्रमे।
गोपाली त्वप्सरास्तस्य गोपस्त्रीवेषधारिणी ॥ १४ ॥

उन्होंने एक गोपकन्याके साथ सहवास किया । वह स्त्री गोप-स्त्रीका वेश धारण करनेवाली गोपाली नामकी अप्सरा थी॥

धारयामास गार्ग्यस्य गर्भं दुर्धरमच्युतम्।
मानुष्यां गार्ग्यभार्यायां नियोगाच्छूलपाणिनः ॥ १५ ॥
स कालयवनो नाम जज्ञे राजा महाबलः।
वृषपूर्वार्धकायास्तमवहन् वाजिनो रणे ॥ १६ ॥

उसने गार्ग्य शैशिरायणके अच्युत और दुर्धर वीर्यको धारण कर लिया । उस मनुष्यका वेश धारण करनेवाली गार्ग्यकी भार्यासे शिवजीकी आज्ञासे कालयवन नामक प्रसिद्ध महाबली राजा उत्पन्न हुआ था, बैलोंके समान आधे शरीरवाले घोड़े युद्धमें उसके वाहन बनते थे ॥ १५-१६ ॥

अपुत्रस्य स राज्ञस्तु ववृधेऽन्तःपुरे शिशुः।
यवनस्य महाराज स कालयवनोऽभवत् ॥ १७ ॥

महाराज ! एक यवन राजा संतानहीन था, उसके अन्तःपुरमें वह बालक पलने लगा । इस प्रकार वह कालयवनके नामसे प्रसिद्ध* हुआ ॥ १७ ॥

स युद्धकामी नृपतिः पर्यपृच्छद् द्विजोत्तमान्।
वृष्ण्यन्धककुलं तस्य नारदोऽकथयद् विभुः ॥ १८ ॥

वह राजा युद्ध करनेकी इच्छासे प्रेरित हो ब्राह्मणोंसे (अपने समान योद्धाओंको) पूछने लगा । सब जगह पहुँचनेवाले नारदजीने उसे वृष्णि और अन्धककुलके वीरोंको उसके समान योद्धा बताया ॥ १८ ॥

अक्षौहिण्या तु सैन्यस्य मथुरामभ्ययात् तदा।
दूतं सम्प्रेषयामास वृष्ण्यन्धकनिवेशनम् ॥ १९ ॥

तब वह एक अक्षौहिणी सेना लेकर मथुरापुरीपर चढ़ आया । उसने वृष्णि और अन्धकोंके भवनमें दूतको भेजा ॥

ततो वृष्ण्यन्धकाः कृष्णं पुरस्कृत्य महामतिम्।
समेता मन्त्रयामासुर्यवनस्य भयात् तदा ॥ २० ॥

तब कालयवनके डरसे वृष्णि और अन्धकोंने महामति श्रीकृष्णके सभापतित्वमें इकट्ठे होकर मन्त्रणा की ॥ २० ॥

कृत्वा च निश्चयं सर्वे पलायनपरायणाः।
विहाय मथुरां रम्यां मानयन्तः पिनाकिनम् ॥ २१ ॥
कुशस्थलीं द्वारवतीं निवेशयितुमीप्सवः।

तब वे सब निश्चय करके शिवजीकी मनौती मानते हुए कुशस्थली द्वारकाको बसानेकी इच्छासे रमणीय मथुरापुरीको त्यागकर भाग खड़े हुए ॥ २१½ ॥

---

* इससे सिद्ध होता है कि गोपाली अप्सरा शकुन्तलाकी भाँति कालयवनको उत्पन्न कर छोड़ गयी थी।

इति कृष्णस्य जन्मेदं यः शुचिर्नियतेन्द्रियः।
पर्वसु श्रावयेद् विद्वाननृणः स सुखी भवेत् ॥ २२ ॥

जो विद्वान् पुरुष इन्द्रियोंको वशमें करके पवित्र होकर श्रीकृष्णके जन्मकी इस कथाको पर्वके समय सुनाता है, ऋण चुक जाता है और उसको परम सुखकी होती है ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि श्रीकृष्णजन्मानुकीर्तनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें श्रीकृष्णजन्मकीर्तनविषयक पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३५ ॥

* * *

षट्त्रिंशोऽध्यायः

क्रोष्टाके वंशका वर्णन, पुरोहितके गोत्रसे क्षत्रियोंके गोत्रका बदल जाना

वैशम्पायन उवाच

क्रोष्टोरेवाभवत् पुत्रो वृजिनीवान् महायशाः।
वृजिनीवत्सुतश्चापि स्वाहिः स्वाहाकृतां वरः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! (यदुके पुत्र) क्रोष्टाके ही एक वृजिनीवान् नामक महायशस्वी पुत्र हुए; वृजिनीवान्‌के पुत्र स्वाहि हुए, वे स्वाहा अर्थात् होम करनेवालोंमें श्रेष्ठ थे (जिस प्रकार क्रोष्टाके वंशमें श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए, उसी प्रकार क्रोष्टाके वंशमें सत्यभामा आदि भी हुईं; क्षत्रियोंमें एक कुलके होनेपर भी सात पीढ़ियाँ बीत जानेके बाद पुरोहितके गोत्रसे यजमान क्षत्रियका भी गोत्र बदल जाता है और इस प्रकार गोत्रभेदसे उनमें विवाह हो जाते हैं। इस अध्यायमें क्रोष्टाके वंशकी उस शाखाका वर्णन किया जायगा, जिसमें महालक्ष्मीकी अवतार ईश्वरी शक्ति श्रीरुक्मिणीजी उत्पन्न हुई थीं) ॥

स्वाहिपुत्रोऽभवद् राजा रुषद्गुर्वदतां वरः।
महाक्रतुभिरीजे यो विविधैर्भूरिदक्षिणैः ॥ २ ॥
सुतप्रसूतिमन्विच्छन् रुषद्गुः सोऽग्र्यमात्मजम्।
जज्ञे चित्ररथस्तस्य पुत्रः कर्मभिरन्वितः ॥ ३ ॥

स्वाहिके पुत्र रुषद्गु हुए, वे अच्छे बोलनेवाले थे और बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले अनेक प्रकारके महायज्ञ करते रहते थे। उनकी यह इच्छा थी कि मेरे यहाँ पुत्र-पौत्रोंवाला श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हो; इस प्रकार पुत्रेष्टि आदि यज्ञकर्म करते-करते उनके यहाँ चित्ररथ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २-३ ॥

आसीच्चैत्ररथिर्वीरो यज्वा विपुलदक्षिणः।
शशबिन्दुः परं वृत्तं राजर्षीणामनुष्ठितः ॥ ४ ॥

चित्ररथके पुत्र वीर शशबिन्दु हुए, वे बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञ करके राजर्षियोंके श्रेष्ठ आचरणका पालन करते रहते थे ॥ ४ ॥

पृथुश्रवाः पृथुयशा राजाऽऽसीच्छशबिन्दुजः।
शंसन्ति च पुराणज्ञाः पार्थश्रवसमुत्तरम् ॥

शशबिन्दुके पुत्र महायशस्वी राजा पृथुश्रवा हुए, के जाननेवाले कहते हैं कि पृथुश्रवाके पुत्र उत्तर हुए

अनन्तरं सुयज्ञस्तु सुयज्ञतनयोऽभवत्।
उशतो यज्ञमखिलं स्वधर्ममुशतां वरः ॥

उत्तरके पुत्र सुयज्ञ हुए, सुयज्ञके पुत्र उशत हुए; करनेवालोंमें श्रेष्ठ उशत अपने सम्पूर्ण धर्मों और अनुष्ठान सदा करना चाहते थे ॥ ६ ॥

शिनेयुरभवत् सूनुरुशतः शत्रुतापनः।
मरुत्तस्तस्य तनयो राजर्षिरभवन्नृप ॥

राजन् ! उशतके पुत्र शत्रुओंको संतप्त करनेवाले हुए, उनके पुत्र राजर्षि मरुत्त हुए ॥ ७ ॥

मरुत्तोऽलभत ज्येष्ठं सुतं कम्बलबर्हिषम्।
चचार विपुलं धर्मममर्षात् प्रेत्यभागपि ॥

मरुत्तके ज्येष्ठ पुत्र कम्बलबर्हिष हुए। जो धर्म अनन्तर फल देता है, अपने जीवनमें ही वह उस धर्मका आचरण करने लगे ॥ ८ ॥

सुतप्रसूतिमिच्छन् वै सुतं कम्बलबर्हिषः।
बभूव रुक्मकवचः शतप्रसवतः सुतः ॥

कम्बलबर्हिष बेटों-पोतोंसे समृद्ध पुत्र पाना उस धर्मानुष्ठानके फलरूप उनके रुक्मकवच नाम उत्पन्न हुआ, जो सौ बालकोंमें अकेला बचा था ॥

निहत्य रुक्मकवचः शतं कवचिनां रणे।
धन्विनां निशितैर्बाणैरवाप श्रियमुत्तमाम् ।

रुक्मकवचने युद्धमें धनुष और कवचको धारण करनेवाले सौ योद्धाओंको मारकर बड़ी भारी कीर्ति पायी थी ॥

जज्ञेऽथ रुक्मकवचात् पराजित् परवीरहा ।
जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महावीर्याः पराजितः ॥ ११ ॥

रुक्मकवचके पुत्र शत्रुवीरनाशक पराजित् हुए, पराजित्के महावीर्यवान् पाँच पुत्र हुए ॥ ११ ॥

रुक्मेषुः पृथुरुक्मश्च ज्यामघः पालितो हरिः ।
पालितं च हरिं चैव विदेहेभ्यः पिता ददौ ॥ १२ ॥

(उनके नाम इस प्रकार हैं—) रुक्मेषु, पृथुरुक्म, ज्यामघ, पालित और हरि । उनके पिता पराजित्ने पालित और हरिको विदेह देशका पालन करनेके लिये वहाँके राजाको दे दिया था ॥ १२ ॥

रुक्मेषुरभवद् राजा पृथुरुक्मस्य संश्रितः ।
ताभ्यां प्रव्राजितो राज्याज्ज्यामघोऽवसदाश्रमे ॥ १३ ॥

रुक्मेषु पृथुरुक्मका आश्रय लेकर राजा बन गया था, उन दोनोंने ज्यामघको राज्यसे निकाल दिया, तब ज्यामघ आश्रममें रहने लगा ॥ १३ ॥

प्रशान्तः स वनस्थस्तु ब्राह्मणैश्चावबोधितः ।
जिगाय रथमास्थाय देशमन्यं ध्वजी रथी ॥ १४ ॥

वह (वृद्ध होनेसे) शान्त होकर वनमें पड़ा रहता था, परंतु ब्राह्मणोंने तप आदिके द्वारा उसको बलवान् बना दिया; तब रथी ज्यामघने एक ध्वजावाले रथमें बैठकर एक दूसरे देशको जीत लिया ॥ १४ ॥

नर्मदाकूलमेकाकी नगरीं मृत्तिकावतीम् ।
ऋक्षवन्तं गिरिं जित्वा शुक्तिमत्यामुवास सः ॥ १५ ॥

उसने अकेले ही नर्मदाके किनारेकी मृत्तिकावती नगरी और ऋक्षवान् पर्वतको जीतकर शुक्तिमतीपुरीमें अपना निवास-स्थान बनाया ॥ १५ ॥

ज्यामघस्याभवद् भार्या शैब्या बलवती सती ।
अपुत्रोऽपि च राजा स नान्यां भार्यामविन्दत ॥ १६ ॥

ज्यामघकी भार्या सती शैब्या बड़ी बलवती थी, इसलिये ज्यामघने पुत्रहीन होनेपर भी दूसरा विवाह नहीं किया ॥ १६ ॥

तस्यासीद् विजयो युद्धे तत्र कन्यामवाप सः ।
भार्यामुवाच संत्रस्तः स्नुषेति स नरेश्वरः ॥ १७ ॥

उसने एक युद्धमें विजय होनेपर एक कन्या प्राप्त की, उस नरेश्वरने डरकर अपनी भार्यासे उस कन्याको स्नुषा (पुत्रवधू) कह दिया ॥ १७ ॥

एतच्छ्रुत्वाब्रवीद् देवी कस्य चेयं स्नुषेति वै ।
अब्रवीत् तदुपश्रुत्य ज्यामघो राजसत्तमः ॥ १८ ॥

यह सुनकर पत्नीने पूछा—'यह किसकी पुत्रवधू है ?' तब राजसत्तम ज्यामघने प्रतिज्ञा करके कहा— ॥ १८ ॥

यस्ते जनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्योपदानवी ।
उग्रेण तपसा तस्याः कन्यायाः सा व्यजायत ।
पुत्रं विदर्भं सुभगा शैब्या परिणता सती ॥ १९ ॥

तेरे जो पुत्र उत्पन्न होगा, यह उपदानवी कन्या उसकी भार्या होगी । उस उपदानवी कन्याकी उग्र तपस्याके प्रभावसे सौभाग्यवती शैब्याके बूढ़ी होनेपर भी उसके विदर्भ नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १९ ॥

राजपुत्र्यां तु विद्वांसौ स्नुषायां क्रथकौशिकौ ।
पश्चाद् विदर्भोऽजनयच्छूरौ रणविशारदौ ॥ २० ॥

तदनन्तर विदर्भने उस राजकुमारीसे शूरवीर एवं रणविशारद क्रथ और कौशिक नामके दो विद्वान् पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ २० ॥

लोमपादं तृतीयं तु पुत्रं परमधार्मिकम् ।
लोमपादात्मजो बभ्रुराह्वतिस्तस्य चात्मजः ॥ २१ ॥

तथा लोमपाद नामक एक तीसरे परम धार्मिक पुत्रको भी उत्पन्न किया। लोमपादके पुत्र बभ्रु हुए और उनके पुत्र हुए आह्वति ॥ २१ ॥

आह्वतेः कौशिकश्चैव विद्वान् परमधार्मिकः ।
चेदिः पुत्रः कौशिकस्य तस्माच्चैद्या नृपाः स्मृताः ॥ २२ ॥

आह्वतिके पुत्र कौशिक हुए, वे विद्वान् और परम धार्मिक थे । कौशिकके पुत्र चेदि हुए, इस कारण उनके वंशके राजा चैद्य कहलाते हैं ॥ २२ ॥

भीमो विदर्भस्य सुतः कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत् ।
कुन्तेर्धृष्टसुतो जज्ञे रणधृष्टः प्रतापवान् ।
धृष्टस्य जज्ञिरे शूरास्त्रयः परमधार्मिकाः ॥ २३ ॥
आवन्तश्च दशार्हश्च बली विषहरश्च यः ।
दशार्हस्य सुतो व्योमा व्योम्नो जीमूत उच्यते ॥ २४ ॥

विदर्भका (चौथा) पुत्र भीम हुआ, भीमके पुत्र कुन्ति

हुए, कुन्तिके रणमें ढीठ एवं प्रतापवान् धृष्ट नामक पुत्र हुए। धृष्टके शूरवीर एवं परम धार्मिक आवन्त, दशार्ह और बलवान् विषहर नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। दशार्हके पुत्र व्योम हुए और व्योमके पुत्र जीमूत हुए ॥ २३-२४ ॥

जीमूतपुत्रो बृहतिस्तस्य भीमरथः सुतः।
अथ भीमरथस्यासीत् पुत्रो नवरथस्तथा ॥ २५ ॥

जीमूतके पुत्र बृहति और उनके पुत्र भीमरथ हुए; भीमरथके पुत्र नवरथ हुए ॥ २५ ॥

तस्य चासीद् दशरथः शकुनिस्तस्य चात्मजः।
तस्मात् करम्भः कारम्भिर्दैवरातोऽभवन्नृपः॥ २६ ॥

नवरथके पुत्र दशरथ हुए और दशरथके पुत्र शकुनि हुए। शकुनिके पुत्र करम्भ हुए और करम्भके पुत्र राजा देवरात हुए ॥ २६ ॥

देवक्षत्रोऽभवत् तस्य दैवक्षत्रिर्महायशाः।
देवगर्भसमो जज्ञे देवक्षत्रस्य नन्दनः ॥ २७ ॥
मधूनां वंशकृद् राजा मधुर्मधुरवागपि।
मधोर्जज्ञेऽथ वैदर्भ्यां पुत्रो मरुवसास्तथा ॥ २८ ॥

देवरातके पुत्र देवक्षत्र हुए। देवक्षत्रको आनन्द दे महायशस्वी दैवक्षत्रि हुए, वे देवताओंके बालकोंके स तेजस्वी थे। उनका नाम मधु था, उनकी वाणी मी थी, वह मधुवंशके प्रवर्तक राजा थे। मधुके वैदर्भीसे म नामक पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २७-२८ ॥

आसीन्मरुवसः पुत्रः पुरुद्वान् पुरुषोत्तमः।
मधुर्जज्ञेऽथ वैदर्भ्यां भद्रवत्यां कुरूद्वहः ॥ २
ऐक्ष्वाकीचाभवद् भार्या सत्त्वांस्तस्यामजायत।
सत्त्वान् सर्वगुणोपेतः सात्त्वतां कीर्तिवर्धनः ॥ ३

मरुवसके पुत्र पुरुषोत्तम पुरुद्वान् हुए। उन् विदर्भ-राजकुमारी भद्रवतीसे कुरुवंशकी वृद्धि करने मधु नामक पुत्र हुआ और इक्ष्वाकुवंशकी भार्यासे स नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सत्त्वान् सर्वगुणसम्पन्न थे अपने वंशमें सात्त्वतोंकी कीर्तिको बढ़ानेवाले थे ॥ २९-३

इमां विसृष्टिं विज्ञाय ज्यामघस्य महात्मनः।
युज्यते परया कीर्त्या प्रजावांश्च भवेन्नरः ॥ ३

मनुष्य महात्मा ज्यामघके इस वंशका परिचय प्राप्त परम कीर्ति पाता है और संतानवान् हो जाता है ॥ ३१

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंश पर्वमें (ज्यामघके वंशका वर्णनविषयक)
छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३६ ॥

◆

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

बभ्रुवंशका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

सत्त्वतात्सत्त्वसम्पन्नान् कौशल्या सुषुवे सुतान्।
भजिनं भजमानं च दिव्यं देवावृधं नृपम् ॥ १ ॥
अन्धकं च महाबाहुं वृष्णिं च यदुनन्दनम्।
तेषां विसर्गाश्चत्वारो विस्तरेणेह ताञ्छृणु ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! सत्त्वान् उपनामवाले सत्त्वतसे कौशल्याने भजिन, भजमान, दिव्य राजा देवावृध, महाभुज अन्धक और यदुनन्दन वृष्णि नामक सत्त्वसम्पन्न पुत्रोंको उत्पन्न किया! उनके चार वंश चले, उनको आप विस्तारपूर्वक सुनिये ॥ १-२ ॥

भजमानस्य सृंजय्यौ बाह्यकाथोपबाह्यका।
आस्तां भार्ये तयोस्तस्माज्जज्ञिरे बहवः सुताः ॥ ३

भजमानके सृञ्जयकी पुत्री बाह्यका और उपबाह नामवाली दो स्त्रियाँ थीं। उनसे उसके बहुतसे पुत्र उ हुए ॥ ३ ॥

क्रुमिश्च क्रमणश्चैव धृष्टः शूरः पुरंजयः।
एते बाह्यकसृञ्जय्यां भजमानाद् विजज्ञिरे ॥ ४

भजमानके सृञ्जयकी पुत्री बाह्यकासे क्रुमि, क्र धृष्ट, शूर और पुरंजय नामक पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४ ॥

अयुताजित्सहस्राजिच्छताजिच्चाथ दाशकः।

उपबाह्यकसृञ्ज्यां भजमानाद् विजज्ञिरे ॥ ५ ॥

उन्हीं भजमानके सृञ्जयकी दूसरी पुत्री उपबाह्यकासे अयुताजित्, सहस्राजित्, शताजित् और दाशक नामक पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥

यज्वा देवावृधो राजा चचार विपुलं तपः ।
पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम स्यादिति निश्चितः ॥ ६ ॥

यज्ञ करनेवाले राजा देवावृधने 'मेरे सर्वगुणसम्पन्न पुत्र हो' इस निश्चयके साथ बड़ा भारी तप किया ॥ ६ ॥

संयुज्यात्मानमेवं तु पर्णाशाया जलं स्पृशन् ।
सदोपस्पृशतस्तस्य चकार प्रियमापगा ॥ ७ ॥

वे राजा अपने चित्तमें ऐसा निश्चय करके पर्णाशा नदीके जलमें खड़े होकर तप करते थे। अपने जलमें सदा खड़े रहनेवाले राजाका नदीने प्रिय करना चाहा ॥ ७ ॥

चिन्तयाभिपरीता सा जगामैकाभिनिश्चयम् ।
कल्याणत्वान्नरपतेस्तस्य सा निम्नगोत्तमा ॥ ८ ॥
नाध्यगच्छत तां नारीं यस्यामेवंविधः सुतः ।
जायेत् तस्मात् स्वयं हन्त भवाम्यस्य सहव्रता॥ ९ ॥

उसको ऐसी कोई स्त्री नहीं दीखी, जिसके द्वारा ऐसा पुत्र उत्पन्न हो सके। तब चिन्तासे व्याप्त होकर नदियोंमें श्रेष्ठ पर्णाशाने उस राजाका कल्याण करनेके लिये एकान्तमें यह विचार किया कि 'मैं ही इनकी सहचारिणी बन जाऊँ' ८-९

अथ भूत्वा कुमारी सा बिभ्रती परमं वपुः ।
वरयामास नृपतिं तामियेष च स प्रभुः ॥ १० ॥

तदनन्तर उसने कुमारी बनकर श्रेष्ठ रूप धारण करके राजाको वरना चाहा और राजाने भी उसको पत्नी बनाना चाहा ॥ १० ॥

तस्यामाधत्त गर्भं च तेजस्विनमुदारधीः ।
अथ सा दशमे मासि सुषुवे सरितां वरा ॥ ११ ॥
पुत्रं सर्वगुणोपेतं बभ्रुं देवावृधान्नृपात् ।

तदनन्तर उन महाबुद्धिमान् राजाने उसमें तेजस्वी गर्भको स्थापित किया, तब उस नदियोंमें श्रेष्ठ पर्णाशाने राजा देवावृधके वीर्यसे दसवें महीनेमें सर्वगुणसम्पन्न बभ्रु नामक पुत्र उत्पन्न किया ॥ ११½ ॥

अत्र वंशे पुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम् ॥ १२ ॥
गुणान् देवावृधस्याथ कीर्तयन्तो महात्मनः ।
यथैवाग्रे समं दूरात् पश्याम च तथान्तिके ॥ १३ ॥

सुना है कि इस वंशके प्राचीन इतिहासको जाननेवाले लोग महात्मा देवावृधके गुणोंका इस प्रकार कीर्तन करते थे, 'महात्मा देवावृधको हम जैसे दूर देशमें देखते थे, वैसे ही उनको समीपमें देखते थे अर्थात् उनको योगबलसे अनेक रूप धारण कर सर्वत्र एक रूपमें विराजमान देखते थे' ॥ १२-१३ ॥

बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ।
षष्टिश्च षट् च पुरुषाः सहस्राणि च सप्त च ॥ १४ ॥
एतेऽमृतत्वं सम्प्राप्ता बभ्रुर्देवावृधावपि ।

बभ्रु मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं और देवावृध देवताके समान हैं, सात हजार छाछठ पुरुषोंसहित बभ्रु और देवावृध अमृतत्वको प्राप्त हो गये अर्थात् संग्रामभूमिमें अपने प्राणोंको त्यागकर ब्रह्मलोकमें पहुँच गये ॥ १४½ ॥

यज्वा दानपतिर्विद्वान् ब्रह्मण्यः सुदृढायुधः ॥ १५ ॥
कीर्तिमांश्च महातेजाः सात्त्वतानां महारथः ।
तस्यान्ववायः सुमहान् भोजा ये मार्तिकावताः ॥ १६ ॥

राजा बभ्रु दानियोंमें श्रेष्ठ, यज्ञ करनेवाले, विद्वान् और ब्राह्मणभक्त थे। उनके आयुध बड़े दृढ़ थे। वे कीर्तिमान्, महातेजस्वी तथा सात्त्वतवंशियोंमें परम श्रेष्ठ थे। उन बभ्रुका वंश बहुत बड़ा है, मार्तिकावतभोज उनकी ही संतानोंमें हैं ॥ १५-१६ ॥

अन्धकात् काश्यदुहिता चतुरोऽलभतात्मजान् ।
कुकुरं भजमानं च शमिं कम्बलबर्हिषम् ॥ १७ ॥

अन्धकसे काशिराज (दृढाश्व) की पुत्रीके द्वारा कुकुर, भजमान, शमि और कम्बलबर्हिष नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १७ ॥

कुकुरस्य सुतो धृष्णुर्धृष्णोस्तु तनयस्तथा ।
कपोतरोमा तस्याथ तैत्तिरिस्तनयोऽभवत् ॥ १८ ॥

कुकुरके पुत्र धृष्णु और धृष्णुके पुत्र कपोतरोमा हुए तथा उनके पुत्र तैत्तिरि हुए ॥ १८ ॥

जज्ञे पुनर्वसुस्तस्मादभिजित् तु पुनर्वसोः ।
तस्य वै पुत्रमिथुनं बभूवाभिजितः किल ॥ १९ ॥

तैत्तिरिके पुत्र पुनर्वसु हुए, पुनर्वसुके पुत्र अभिजित् हुए; उन अभिजित्के एक पुत्र और एक पुत्री—ये दो जुड़वाँ संतानें हुईं, ऐसी बात सुनी जाती है ॥ १९ ॥

आहुकश्चाहुकी चैव ख्यातौ ख्यातिमतां वरौ ।
इमां चोदाहरन्त्यत्र गाथां प्रति तमाहुकम् ॥ २० ॥

ख्यातिप्राप्त लोगोंमें श्रेष्ठ वे दोनों आहुक और आहुकीके नामसे प्रसिद्ध हुए । इन आहुकके सम्बन्धमें (मनुष्य) इस गाथाको गाया करते हैं ॥ २० ॥

श्वेतेन परिवारेण किशोरप्रतिमो महान् ।
अशीतिचर्मणा युक्तः स नृपः प्रथमं व्रजेत् ॥ २१ ॥

वह तरुण घोड़ेके समान उत्साही राजा जब अपने विशुद्ध परिवारके साथ चलते थे, तब उनके (काठके बने) राज-सिंहासनको अस्सी मनुष्य उठाया करते थे ॥ २१ ॥

नापुत्रवान् नाशतदो नासहस्रशतायुषः ।
नाशुद्धकर्मा नायज्वा यो भोजमभितो व्रजेत् ॥ २२ ॥

उन भोजके साथ उन्हें घेरकर चलनेवाले लोगोंमें ऐसा कोई नहीं था, जो पुत्रहीन हो अथवा सैकड़ोंकी दक्षिणा देनेवाला न हो अथवा सैकड़ों-सहस्रों वर्षोंकी आयुवाला न हो अथवा अशुद्ध कर्म करनेवाला हो तथा यज्ञ करनेवाला न हो ॥ २२ ॥

पूर्वस्यां दिशि नागानां भोजस्येत्यनुमोदनम् ।
सोपासङ्गानुकर्षाणां ध्वजिनां सवरूथिनाम् ॥ २३ ॥
रथानां मेघघोषाणां सहस्राणि दशैव तु ।
रूप्यकाञ्चनकक्षाणां सहस्राणि दशापि च ॥ २४ ॥

पूर्व-दिशामें राजा भोज (आहुक) का अभिनन्दन करनेके लिये चाँदी और सोनेकी साँकलोंसे बाँधे जानेवाले दस हजार हाथी आते थे तथा उपासङ्ग (जुआ), अनुकर्ष (रथके नीचेका काष्ठ) और वरूथ (रथत्राण कवच) वाले एवं मेघोंकी भाँति घोष करनेवाले ध्वजाधारी दस हजार रथ उनका स्वागत करनेके लिये आते थे ॥ २३-२४ ॥

तावन्त्येव सहस्राणि उत्तरस्यां तथा दिशि ।
आ भूमिपालान् भोजाः स्वानुपतिष्ठन्किङ्किणीकिणः॥ २५॥

उतने ही हजार रथ और हाथी उत्तर तथा अन्य दिशाओंमें भी राजा आहुकका अभिनन्दन करनेके लिये आते थे । भोजवंशी यादव सब सामन्तोंको वशमें करके आहुककी उपासना करते थे । राजा आहुकने उन सबके रथ सोनेकी घंटियों—घूँघुरुओंवाले बनवा दिये थे ॥ २५ ॥

आहुकीं चाप्यवन्तिभ्यः स्वसारं ददुरन्धकाः ।
आहुकस्य तु काश्यायां द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतुः ॥ २
देवकश्चोग्रसेनश्च देवपुत्रसमावुभौ ।

अन्धकवंशियोंने आहुककी बहिन आहुकीको अ राजवंशमें ब्याह दी । आहुकके काशिराजकी पुत्रीसे देवकु के समान सुन्दर देवक और उग्रसेन नामके दो उत्पन्न हुए ॥ २६½ ॥

देवकस्याभवन्पुत्राश्चत्वारस्त्रिदशोपमाः ॥ २
देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षितः ।

देवकके देवकुमारों-जैसे देववान्, उपदेव, सुदेव देवरक्षित नामके चार पुत्र थे ॥ २७½ ॥

कुमार्यः सप्त चाप्यासन् वसुदेवाय ता ददौ ॥ २
देवकी शान्तिदेवा च सुदेवा देवरक्षिता ।
वृकदेव्युपदेवी च सुनासी चैव सप्तमी ॥ २

उन्हींके देवकी, शान्तिदेवा, सुदेवा, देवरक्षिता, वृक उपदेवी और सातवीं सुनासी—इस प्रकार सात पुत्रियाँ देवकने उन सबका विवाह वसुदेवजीके साथ कर दिया

नवोग्रसेनस्य सुतास्तेषां कंसस्तु पूर्वजः ।
न्यग्रोधश्च सुनामा च कङ्कः शङ्कुः सुभूमिपः ॥ २
राष्ट्रपालोऽथ सुतनुरनाधृष्टिश्च पुष्टिमान् ।
तेषां स्वसारः पञ्चाऽऽसन् कंसा कंसवती तथा॥ २
सुतनू राष्ट्रपाली च कङ्का चैव वराङ्गना ।
उग्रसेनः सहापत्यो व्याख्यातः कुकुरोद्भवः ॥ २

उग्रसेनके नौ पुत्र थे, उनमें कंस सबसे बड़ा शेषके नाम इस प्रकार हैं—न्यग्रोध, सुनामा, कङ्क, सु शङ्कु, राष्ट्रपाल, सुतनु, अनाधृष्टि और पुष्टिमान् । कंसा, कंसवती, सुतनू, राष्ट्रपाली और कङ्का नामकी सुन्दराङ्गी बहिनें थीं । इस प्रकार कुकुरवंशमें उत्पन्न उग्रसेन और उनकी संतानका वर्णन किया गया ॥ ३०

कुकुराणामिमं वंशं धारयन्नमितौजसाम् ।
आत्मनो विपुलं वंशं प्रजावानाप्नुयान्नरः ॥ ३

जो मनुष्य इन अमिततेजस्वी कुकुरोंके वंशका सुनता है, वह संतान पाता है तथा उसके वंशकी बड़ी होती है ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें (बभ्रुवंश-वर्णन-विषयक) सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

भजमानके वंशका वर्णन और स्यमन्तकमणिकी कथा

वैशम्पायन उवाच

भजमानस्य पुत्रोऽथ रथमुख्यो विदूरथः।
राजाधिदेवः शूरस्तु विदूरथसुतोऽभवत्॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! अन्धकपुत्र भजमानके रथियोंमें मुख्य विदूरथ नामक पुत्र हुआ। विदूरथके पुत्र शूरवीर राजाधिदेव हुए॥ १॥

राजाधिदेवस्य सुता जज्ञिरे वीर्यवत्तराः।
दत्तातिदत्तबलिनौ शोणाश्वः श्वेतवाहनः॥ २॥
शमी च दण्डशर्मा च दण्डशत्रुश्च शत्रुजित्।
श्रवणा च श्रविष्ठा च स्वसारौ सम्बभूवतुः॥ ३॥

राजाधिदेवके बलवान् दत्त और अतिदत्त, शोणाश्व, श्वेतवाहन, शमी, दण्डशर्मा, दण्डशत्रु और शत्रुजित् नामक परम बलवान् पुत्र उत्पन्न हुए और श्रवणा तथा श्रविष्ठा नामकी दो कन्याएँ हुई थीं॥ २-३॥

शमीपुत्रः प्रतिक्षत्रः प्रतिक्षत्रस्य चात्मजः।
स्वयंभोजः स्वयंभोजाद्धृदीकः सम्बभूव ह॥ ४॥

शमीके पुत्र प्रतिक्षत्र हुए, प्रतिक्षत्रके पुत्र स्वयंभोज और स्वयंभोजके पुत्र हृदीक हुए॥ ४॥

तस्य पुत्रा बभूवुर्हि सर्वे भीमपराक्रमाः।
कृतवर्माग्रजस्तेषां शतधन्वाथ मध्यमः॥ ५॥

हृदीकके सभी पुत्र भयंकर पराक्रमी थे, उनमें कृतवर्मा सबसे पहले उत्पन्न हुए और शतधन्वा उनके मझले पुत्र थे॥

देवर्षेर्वचनात् तस्य भिषग् वैतरणश्च यः।
सुदान्तश्च विदान्तश्च कामदा कामदन्तिका॥ ६॥

देवर्षि च्यवनके वचनसे शतधन्वाके भिषक्, वैतरण, सुदान्त एवं विदान्त नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए तथा कामदा और कामदन्तिका नामकी दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं॥

देववांश्चाभवत् पुत्रो विद्वान् कम्बलबर्हिषः।
असमौजास्तथा वीरो नासमौजाश्च तावुभौ॥ ७॥

(अन्धकपुत्र) कम्बलबर्हिषके पुत्र विद्वान् देववान् हुए तथा वीर असमौजा तथा नासमौजा नामक दो पुत्र और हुए॥ ७॥

अजातपुत्राय सुतान् प्रददावसमौजसे।
सुदंष्ट्रं चारुरूपं च कृष्णमित्यन्धकास्त्रयः॥ ८॥

अन्धकके (कुकुर आदिके अतिरिक्त) सुदंष्ट्र, चारुरूप और कृष्ण नामके तीन पुत्र (और) थे। अन्धकने उन तीनों पुत्रोंको पुत्रहीन असमौजाको दे दिया॥ ८॥

एते चान्ये च बहवो अन्धकाः कथितास्तव।
अन्धकानामिमं वंशं धारयेद् यस्तु नित्यशः॥ ९॥
आत्मनो विपुलं वंशं लभते नात्र संशयः।

इनका तथा और भी बहुत-से अन्धकवंशी राजाओंका आपसे वर्णन कर दिया। जो पुरुष नित्यप्रति अन्धकोंके इस वंशका वर्णन सुनता है, उसका वंश अति विस्तृत हो जाता है, इसमें कुछ संदेह नहीं है॥ ९½॥

गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टुर्भार्ये बभूवतुः॥ १०॥
गान्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम्।
माद्री युधाजितं पुत्रं ततो वै देवमीढुषम्॥ ११॥

यदुपुत्र क्रोष्टाके गान्धारी और माद्री नामकी दो भार्याएँ थीं। गान्धारीके पुत्र महाबली अनमित्र हुए तथा माद्रीके पुत्र युधाजित् और देवमीढ्वान् हुए॥ १०-११॥

अनमित्रममित्राणां जेतारमपराजितम्।
अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नतो द्वौ बभूवतुः॥ १२॥
प्रसेनश्चाथ सत्राजिच्छत्रुसेनाजितावुभौ।

अपराजित अनमित्र शत्रुओंको जीतनेवाले थे। अनमित्रके पुत्र निघ्न हुए, निघ्नके प्रसेन और सत्राजित् नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए, वे दोनों शत्रुओंकी सेनाओंको जीतनेवाले थे॥ १२½॥

प्रसेनो द्वारवत्यां तु निवसन्त्यां महामणिम्॥ १३॥
दिव्यं स्यमन्तकं नाम समुद्रादुपलब्धवान्।
तस्य सत्राजितः सूर्यः सखा प्राणसमोऽभवत्॥ १४॥

द्वारकापुरीमें बसते समय प्रसेनको स्यमन्तक नामकी दिव्य मणि समुद्रके तटपर परम्परासे प्राप्त हुई थी। प्रसेनके भाई सत्राजित्के सूर्यनारायण प्राणके समान प्रिय मित्र थे॥

स कदाचिन्निशापाये रथेन रथिनां वरः।
अब्धिकूलमुपस्प्रष्टुमुपस्थातुं ययौ रविम् ॥ १५ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ सत्राजित् एक समय रात्रि बीतनेपर स्नान एवं सूर्योपस्थान करनेके लिये समुद्र-तटपर गये थे ॥ १५ ॥

तस्योपतिष्ठतः सूर्यं विवस्वानग्रतः स्थितः।
अस्पष्टमूर्तिर्भगवांस्तेजोमण्डलवान् प्रभुः ॥ १६ ॥
अथ राजा विवस्वन्तमुवाच स्थितमग्रतः।

वे सूर्योपस्थान कर रहे थे कि इतनेमें सूर्यनारायण उनके सामने आकर खड़े हो गये। उस समय सर्वशक्तिसम्पन्न भगवान् सूर्यदेव अपने तेजस्वी मण्डलके मध्यमें विराजमान थे, इस कारण उनका रूप स्पष्ट नहीं दीख रहा था। उस समय राजाने अपने सामने खड़े हुए भगवान् सूर्यसे कहा—॥१६½॥

यथैवं व्योम्नि पश्यामि सदा त्वां ज्योतिषाम्पते ॥ १७ ॥
तेजोमण्डलिनं देवं तथैव पुरतः स्थितम्।
को विशेषोऽस्ति मे त्वत्तः सख्येनोपागतस्य वै ॥१८॥

'ज्योतिर्मय ग्रह आदिके स्वामिन्! मैं आपको जैसे नित्यप्रति आकाशमें देखता हूँ, वैसे ही मैं आपको तेजका मण्डल धारणकर अपने सामने खड़ा हुआ देख रहा हूँ तो फिर आप जो मेरे पास मित्रतावश पधारे, इसमें विशेषता क्या हुई?' ॥ १७-१८ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु भगवान् मणिरत्नं स्यमन्तकम्।
स्वकण्ठादवमुच्यैव एकान्ते न्यस्तवान् विभुः ॥ १९ ॥

इतना सुनते ही प्रभु सूर्यनारायणने अपने कण्ठसे मणिरत्न स्यमन्तकको उतारकर एकान्तमें अलग रख दिया ॥ १९ ॥

ततो विग्रहवन्तं तं ददर्श नृपतिस्तदा।
प्रीतिमानथ तं दृष्ट्वा मुहूर्तं कृतवान् कथाम् ॥ २० ॥

तब राजा स्पष्ट अवयवोंवाले सूर्यनारायणके शरीरको देखकर प्रसन्न हुए और उन्होंने सूर्यनारायणके साथ मुहूर्त-भर (दो घड़ी) तक वार्तालाप किया ॥ २० ॥

तमपि प्रस्थितं भूयो विवस्वन्तं स सत्रजित्।
लोकानुद्भासयस्येतान् येन त्वं सततं प्रभो।
तदेतन्मणिरत्नं मे भगवन् दातुमर्हसि ॥ २१ ॥

बातचीत करनेके अनन्तर जब सूर्यनारायण फिर चलने लगे, तब सत्राजित्ने उनसे कहा—'भगवन्! आप जिससे सदा इन तीनों लोकोंको प्रकाशित करते रहते हैं, उस स्यम मणिको मुझे दे दीजिये' ॥ २१ ॥

ततः स्यमन्तकमणिं दत्तवांस्तस्य भास्करः।
स तमाबद्ध्य नगरीं प्रविवेश महीपतिः ॥

तब सूर्यनारायणने वह स्यमन्तक-मणि उन्हें दे दी राजाने उसे बाँधकर नगरमें प्रवेश किया ॥ २२ ॥

तं जनाः पर्यधावन्त सूर्योऽयं गच्छतीति ह।
पुरीं विस्मापयित्वा च राजा त्वन्तःपुरं ययौ ॥

तब तो मनुष्य 'ये सूर्य जा रहे हैं' कहते हुए पीछे दौड़े। इस प्रकार नगरीको विस्मित करते हुए वे अपने रनवासमें चले गये ॥ २३ ॥

तत् प्रसेनजितं दिव्यं मणिरत्नं स्यमन्तकम्।
ददौ भ्रात्रे नरपतिः प्रेम्णा सत्राजिदुत्तमम् ॥

तदनन्तर राजा सत्राजित्ने मणियोंमें रत्नरूप वह स्यमन्तक-मणि प्रेमके कारण अपने भाई प्रसेनजित्को दे

स मणिः स्यन्दते रुक्मं वृष्ण्यन्धकनिवेशने।
कालवर्षी च पर्जन्यो न च व्याधिभयं ह्यभूत् ॥

वह मणि जिस वृष्णि और अन्धककुलवालेके घरमें थी, उसके यहाँ वह सुवर्णकी वर्षा करती रहती थी। देशमें मेघ समयपर वर्षा करते थे और वहाँ व्याधिका भी नहीं होता था ॥ २५ ॥

लिप्सां चक्रे प्रसेनात्तु मणिरत्ने स्यमन्तके।
गोविन्दो न च तल्लेभे शक्तोऽपि न जहार सः ॥

श्रीकृष्णने प्रसेनजित्से मणियोंमें रत्नके समान दिव्य मणि स्यमन्तक लेनी चाही, परंतु उसने नहीं श्रीकृष्ण यद्यपि समर्थ थे, तथापि वह मणि उन्होंने नहीं छीनी ॥ २६ ॥

कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूषितः।
स्यमन्तककृते सिंहाद् वधं प्राप वनेचरात् ॥

प्रसेन एक समय उस मणिसे विभूषित होकर खेलने गये और मणिके कारण ही वनमें विचरण सिंहके द्वारा मारे गये ॥ २७ ॥

अथ सिंहं प्रधावन्तमृक्षराजो महाबलः।
निहत्य मणिरत्नं तदादाय बिलमाविशत् ॥

तदनन्तर महाबली ऋक्षराज जाम्बवान्ने उस

हुए सिंहको मार डाला और उस मणिरत्नको लेकर वे अपने बिल (गुफा) में घुस गये ॥ २८ ॥

ततो वृष्ण्यन्धकाः कृष्णं प्रसेनवधकारणात् ।
प्रार्थनां तां मणेर्बुद्ध्वा सर्व एव शशङ्किरे ॥ २९ ॥

इस समय प्रसेनके मारे जानेसे सभी वृष्णि और अन्धकोंने यह समझा कि श्रीकृष्णने सत्राजित्से मणि मांगी थी, अतएव उन्होंने ही उसको मार डाला होगा ॥

स शङ्क्यमानो धर्मात्मा नकारी तस्य कर्मणः ।
आहरिष्ये मणिमिति प्रतिज्ञाय वनं ययौ ॥ ३० ॥

यद्यपि उन्होंने यह कार्य नहीं किया था, फिर भी उन धर्मात्मापर ऐसी शंका की जा रही थी; अतएव मैं मणिको लाऊँगा' यह प्रतिज्ञा करके वे वनको चले ॥ ३० ॥

त्र प्रसेनो मृगयामाचरत् तत्र चाप्यथ ।
प्रसेनस्य पदं गृह्य पुरुषैराप्तकारिभिः ॥ ३१ ॥

उन्होंने विश्वासी मनुष्योंसे जहाँ प्रसेनने शिकार खेला था, वहाँ उनके पैरोंके चिह्नोंका पता लगाया ॥ ३१ ॥

ऋक्षवन्तं गिरिवरं विन्ध्यं च गिरिमुत्तमम् ।
अन्वेषयन् परिश्रान्तः स ददर्श महामनाः ॥ ३२ ॥

उन चिह्नोंके सहारे खोज लगाते-लगाते जब महामना श्रीकृष्ण थक गये, तब उन्होंने ऋक्षवान् और विन्ध्य-नामक श्रेष्ठ पर्वतोंको देखा ॥ ३२ ॥

साश्वं हतं प्रसेनं वै नाविन्दच्चेच्छितं मणिम् ।
अथ सिंहः प्रसेनस्य शरीरस्याविदूरतः ॥ ३३ ॥
ऋक्षेण निहतो दृष्टः पादैर्ऋक्षश्च सूचितः ।
पादैरन्वेषयामास गुहामृक्षस्य माधवः ॥ ३४ ॥

श्रीकृष्णने वहाँ प्रसेनको और उसके घोड़ेको मरा हुआ पाया; परंतु जिसकी उनको इच्छा थी, वह मणि उन्हें वहाँ नहीं मिली । तदनन्तर प्रसेनकी लाशसे थोड़ी दूरपर ही रीछके द्वारा मारा हुआ सिंह उन्हें पड़ा हुआ दीखा, मारनेवालेके पैरोंसे यह पता चलता था कि यह रीछ था । तदनन्तर माधवने रीछके पदचिह्नोंसे रीछकी गुफाको ढूँढ़ना आरम्भ किया ॥ ३३-३४ ॥

महत्यृक्षबिले वाणीं शुश्राव प्रमदेरिताम् ।
धात्र्या कुमारमादाय सुतं जाम्बवतो नृप ।
क्रीडापयन्त्या मणिना मा रोदीरित्यथेरिताम् ॥ ३५ ॥

राजन् ! उस समय श्रीकृष्णने (रीछके बिलके पास पहुँचनेपर) एक स्त्रीकी वाणी सुनी । उन्हें ऐसा लगा कि धाय जाम्बवान्के बालक पुत्रको लेकर मणिसे खिलाती हुई उससे कह रही थी, तू रो मत ॥ ३५ ॥

धात्र्युवाच

सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः ।
सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ॥ ३६ ॥

धाय कह रही थी—मेरे मुन्ना ! सिंहने प्रसेनको मार डाला और सिंहको जाम्बवान्ने मार डाला; अब तू रो मत, यह स्यमन्तक मणि अब तेरी ही है ॥ ३६ ॥

सुव्यक्तीकृतशब्दस्तु तूष्णीं बिलमथाविशत् ।
प्रविश्य चापि भगवांस्तमृक्षबिलमञ्जसा ॥ ३७ ॥
स्थापयित्वा बिलद्वारि यदूल्लाँङ्गलिना सह ।
शार्ङ्गधन्वा बिलस्थं तु जाम्बवन्तं ददर्श ह ॥ ३८ ॥

जब धायकी बात उन्होंने स्पष्ट सुन ली, तब भगवान्ने बलरामको तथा यादवोंको तो गुफाके द्वारपर खड़ा कर दिया और स्वयं मौन होकर सीधे बिलमें जा घुसे । इस प्रकार शार्ङ्गधनुषधारी भगवान्ने गुफामें आगे बढ़कर जाम्बवान्को देखा ॥ ३७-३८ ॥

युयुधे वासुदेवस्तु बिले जाम्बवता सह ।
बाहुभ्यामेव गोविन्दो दिवसानेकविंशतिम् ॥ ३९ ॥

वसुदेवनन्दन गोविन्द जाम्बवान्के साथ अपनी भुजाओंसे ही इक्कीस दिनतक बिलमें युद्ध करते रहे ॥ ३९ ॥

प्रविष्टे तु बिलं कृष्णे बलदेवपुरःसराः ।
पुरीं द्वारवतीमेत्य हतं कृष्णं न्यवेदयन् ॥ ४० ॥

श्रीकृष्णके बिलमें प्रवेश करनेके बाद बहुत दिनोंतक न लौटनेपर बलदेव आदिने द्वारकामें जाकर कहा कि श्रीकृष्ण मारे गये ॥ ४० ॥

वासुदेवस्तु निर्जित्य जाम्बवन्तं महाबलम् ।
भेजे जाम्बवतीं कन्यामृक्षराजस्य सम्मताम् ।
मणिं स्यमन्तकं चैव जग्राहात्मविशुद्धये ॥ ४१ ॥

(उधर) श्रीकृष्णने महाबली जाम्बवान्को जीतकर ऋक्षराजकी प्यारी पुत्री जाम्बवतीसे विवाह किया और अपनी निर्दोषता सिद्ध करनेके लिये स्यमन्तकमणिको भी ले लिया ॥ ४१ ॥

अनुनीयर्क्षराजानं निर्ययौ च तदा बिलात् ।
द्वारकामगमत् कृष्णः श्रिया परमया युतः ॥ ४२ ॥

तदनन्तर श्रीकृष्ण जाम्बवान्से अनुनय-विनय करके बिलसे निकल आये और परम शोभा पाते हुए द्वारकाको चल दिये ॥ ४२ ॥

एवं स मणिमाहृत्य विशोध्यात्मानमच्युतः ।
ददौ सत्राजिते तं वै सर्वसात्त्वतसंसदि ॥ ४३ ॥

भगवान् अच्युतने इस प्रकार मणिको लाकर सब सात्वतोंकी सभामें अपनी विशुद्धताको प्रमाणित कर वह मणि सत्राजित्को दे दी ॥ ४३ ॥

एवं मिथ्याभिशप्तेन कृष्णेनामित्रघातिना ।
आत्मा विशोधितः पापाद् विनिर्जित्य स्यमन्तकम् ॥

शत्रुनाशक श्रीकृष्णने इस प्रकार मिथ्या दोष लगनेके कारण स्यमन्तकमणिको जीतकर लानेके बाद अपने आपको निर्दोष सिद्ध कर दिया ॥ ४४ ॥

सत्राजितो दश त्वासन् भार्यास्तासां शतं सुताः ।
ख्यातिमन्तस्त्रयस्तेषां भङ्गकारस्तु पूर्वजः ॥४५॥
वीरो वातपतिश्चैव उपस्वावांश्च ते त्रयः ।

सत्राजित्के दस भार्याएँ थीं और उनसे सौ पुत्र हुए थे; उनमें तीन प्रसिद्ध थे, जिनमें सबसे बड़ा भङ्गकार था । (दूसरा) वीर वातपति था और तीसरेका नाम उपस्वावान् था ॥ ४५½ ॥

कुमार्यश्चापि तिस्रो वै दिक्षु ख्याता नराधिप ॥ ४६ ॥
सत्यभामोत्तमा स्त्रीणां व्रतिनी च दृढव्रता ।
तथा प्रस्वापिनी चैव भार्यां कृष्णाय तां ददौ ॥ ४७ ॥

राजन् ! इसी प्रकार स्त्रियोंमें रत्नस्वरूपा सत्यभामा, दृढ़व्रतधारिणी व्रतिनी और प्रस्वापिनी—ये उनकी तीन पुत्रियाँ थीं, जो दिशा-विदिशाओंमें प्रसिद्ध थीं । इनमेंसे उसने सत्यभामाका विवाह श्रीकृष्णके साथ कर दिया ॥ ४६-४७ ॥

समाक्षो भङ्गकारस्य नारेयश्च नरोत्तमौ ।
जज्ञाते गुणसम्पन्नौ विश्रुतौ रूपसम्पदा ॥ ४८ ॥

भङ्गकारके पुत्र समाक्ष और नारेय हुए, ये दोनों अपने रूप और गुणोंके कारण मनुष्योंमें उत्तम माने जाते थे ॥ ४८ ॥

माद्रीपुत्रस्य जज्ञेऽथ पृश्निः पुत्रो युधाजितः ।
जज्ञाते तनयौ पृश्नेः श्वफल्कश्चित्रकस्तथा ॥४९॥

(अब क्रोष्टाकी छोटी रानी माद्रीके पुत्र यु वंशका वर्णन किया जाता है—)माद्रीकुमार यु पुत्र पृश्नि हुए तथा पृश्निके पुत्र श्वफल्क और हुए ॥ ४९ ॥

श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामविन्दत ।
गान्दिनीं नाम तस्याश्च सदा गाः प्रददौ पिता॥

श्वफल्कका विवाह काशिराजकी पुत्री गान्दिनीसे हु इन गान्दिनीके पिता अपनी पुत्रीसे प्रतिदिन गोदान करते थे ॥ ५० ॥

तस्यां जज्ञे महाबाहुः श्रुतवानिति विश्रुतः ।
अक्रूरोऽथ महाभागो यज्वा विपुलदक्षिणः ॥

उन गान्दिनीसे महाभाग्यवान् अक्रूरजी उत्पन्न महाबाहु अक्रूर शास्त्रके रूपमें प्रसिद्ध थे, इन्होंने य बड़ी-बड़ी दक्षिणाएँ दी थीं ॥ ५१ ॥

उपासङ्गस्तथा मद्गुर्मृदुरश्चारिमेजयः ।
अविक्षिपस्तथोपेक्षः शत्रुहा चारिमर्दनः ॥
धर्मधृग् यतिधर्मा च गृध्रो भोजोऽन्धकस्तथा ।
आवाहप्रतिवाहौ च सुन्दरी च वराङ्गना ॥

गान्दिनीके अक्रूरजीके अतिरिक्त उपासङ्ग मृदुर, अरिमेजय, अविक्षिप, उपेक्ष, शत्रुघ्न, अ धर्मधृक्, यतिधर्मा, गृध्र, भोज, अन्धक, आवाह औ वाह नामक पुत्र तथा वराङ्गना नामकी सुन्दरी क उत्पन्न हुई थी ॥ ५२-५३ ॥

विश्रुता साम्बमहिषी कन्या चास्य वसुंधरा ।
रूपयौवनसम्पन्ना सर्वसत्त्वमनोहरा ।

वे साम्बदेशकी रानी प्रसिद्ध हैं, इनकी रू सम्पन्न एवं सब प्राणियोंके मनको मोहित करनेवाली इ नाम वसुन्धरा था ॥ ५४ ॥

अक्रूरेणोग्रसेन्यां तु सुतौ द्वौ कुरुनन्दन ।
प्रसेनश्चोपदेवश्च जज्ञाते देववर्चसौ ॥

कुरुनन्दन ! अक्रूरसे उग्रसेनीके द्वारा देवताके कान्तिवाले प्रसेन और उपदेव नामके दो पुत्र उत्प थे ॥ ५५ ॥

चित्रकस्याभवन् पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च ।
अश्वग्रीवोऽश्वबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ ।

अरिष्टनेमिरश्वश्च सुधर्मा धर्मभृत् तथा ।
सुबाहुर्बहुबाहुश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ ॥ ५७ ॥

(अक्रूरजीके चाचा) चित्रकके श्रवणा और श्रविष्ठा नामकी दो धर्मपत्नियाँ थीं, उनसे पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, अश्वबाहु, सुपार्श्वक, गवेषण, अरिष्टनेमि, अश्व, सुधर्मा, धर्मभृत्, सुबाहु और बहुबाहु नामक पुत्र हुए ॥ ५६-५७ ॥

इमां मिथ्याभिशस्तिं यः कृष्णस्य समुदाहृताम् ।
वेद मिथ्याभिशापास्तं न स्पृशन्ति कदाचन ॥ ५८ ॥

जो पुरुष श्रीकृष्णके इस मिथ्या कलंककी कथाको पढ़ता है, उसको झूठे दोष कभी नहीं लगते ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वण्यष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें (स्यमन्तकमणिकी कथाविषयक) अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

स्यमन्तकमणिके कारण प्रसेन, सत्राजित् और शतधन्वाका मारा जाना, बलदेवजीका दुर्योधनको गदा-विद्या सिखाना, अक्रूरजीका श्रीकृष्णको मणि देना और श्रीकृष्णका पुनः अक्रूरको मणि लौटा देना

वैशम्पायन उवाच

यत् तत् सत्राजिते कृष्णो मणिरत्नं स्यमन्तकम् ।
अदात् तद्धारयामास बभ्रुर्वै शतधन्वना ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! श्रीकृष्णने सत्राजित्‌को जो मणियोंमें रत्नस्वरूप स्यमन्तकमणि लौटाकर दी, बभ्रु (अक्रूर) उसको शतधन्वाके द्वारा चुरवाना चाहने लगे ॥ १ ॥

सदा हि प्रार्थयामास सत्यभामामनिन्दिताम् ।
अक्रूरोऽन्तरमन्विच्छन् मणिं चैव स्यमन्तकम् ॥ २ ॥

मणि सुवर्ण देती थी, इस कारण उसको चाहते हुए अक्रूर अनिन्द्य सुन्दरी सत्यभामाको भी सदा चाहते थे ॥ २ ॥

सत्राजितं ततो हत्वा शतधन्वा महाबलः ।
रात्रौ तं मणिमादाय ततोऽक्रूराय दत्तवान् ॥ ३ ॥

एक दिन मौका पाकर महाबली शतधन्वाने रात्रिमें सत्राजित्‌को मारकर वह मणि लाकर अक्रूरजीको दे दी ॥ ३ ॥

अक्रूरस्तु ततो रत्नमादाय भरतर्षभ ।
समयं कारयांचक्रे नावेद्योऽहं त्वयेत्युत ॥ ४ ॥

भरतर्षभ ! उस समय अक्रूरने रत्न लेकर शतधन्वासे प्रतिज्ञा करा ली कि आप किसीको यह न बतायें कि मणि मेरे पास है ॥ ४ ॥

वयमभ्युपयास्यामः कृष्णेन त्वामभिद्रुतम् ।
ममाद्य द्वारका सर्वा वशे तिष्ठत्यसंशयम् ॥ ५ ॥

जब श्रीकृष्ण (श्वशुरके वधसे क्रोधमें भरकर) आपके पीछे पड़ेंगे, तब हम भी आपके साथमें खड़े होकर लड़ेंगे। आजकल सारी द्वारका मेरे वशमें है, इसमें आप कुछ संदेह न समझें ॥ ५ ॥

हते पितरि दुःखार्ता सत्यभामा यशस्विनी ।
प्रययौ रथमारुह्य नगरं वारणावतम् ॥ ६ ॥

यशस्विनी सत्यभामा पिताके मारे जानेपर बड़ी दुखी हुई और रथपर चढ़कर हस्तिनापुरको चली गयीं ॥ ६ ॥

सत्यभामा तु तद्वृत्तं भोजस्य शतधन्वनः ।
भर्तुर्निवेद्य दुःखार्ता पार्श्वस्थाश्रूण्यवर्तयत् ॥ ७ ॥

वहाँ दुखिया सत्यभामाने अपने पतिसे भोजवंशी शतधन्वाकी करतूत कह सुनायी और वे उनके पास खड़ी होकर नेत्रोंसे आँसू बहाने लगीं ॥ ७ ॥

पाण्डवानां तु दग्धानां हरिः कृत्वोदकक्रियाम् ।
कुल्यार्थे चापि पाण्डूनां न्ययोजयत् सात्यकिम् ॥ ८ ॥

उस समय श्रीकृष्ण (हस्तिनापुरमें थे और लाक्षागृहमें) भस्म हुए पाण्डवोंकी उदक-क्रिया कर चुके थे, इसके उपरान्त उन्होंने पाण्डवोंका अस्थि-संचयन करनेका कार्य सात्यकिको सौंप दिया ॥ ८ ॥

ततस्त्वरितमागत्य द्वारकां मधुसूदनः।
पूर्वजं हलिनं श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥

तदनन्तर श्रीमान् कृष्णचन्द्रने तुरंत ही द्वारकापुरीमें आकर अपने बड़े भाई हलधरसे यह बात कही—॥ ९ ॥

हतः प्रसेनः सिंहेन सत्राजिच्छतधन्वना।
स्यमन्तकः स मद्गामी तस्य प्रभुरहं विभो ॥ १० ॥

'प्रभो ! प्रसेनको सिंहने मार डाला था, शतधन्वाने सत्राजित्को मार डाला। अब इस मणिका उत्तराधिकार मुझे प्राप्त होता है; अब मैं उसका स्वामी हूँ ॥ १० ॥

तदारोह रथं शीघ्रं भोजं हत्वा महाबलम्।
स्यमन्तको महाबाहो ह्यस्माकं स भविष्यति ॥ ११ ॥

'महाबाहो ! इसलिये अब आप शीघ्र ही रथपर चढ़िये; महाबली भोज (वंशी शतधन्वा) को मारनेके बाद वह स्यमन्तकमणि निस्संदेह हमारी होगी' ॥ ११ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं भोजकृष्णयोः।
शतधन्वा ततोऽक्रूरमवैक्षत् सर्वतो दिशम् ॥ १२ ॥

तदनन्तर भोजवंशी शतधन्वा और श्रीकृष्णमें घमासान युद्ध प्रारम्भ हुआ। उस समय शतधन्वा सब दिशाओंमें अक्रूरको देखने लगा ॥ १२ ॥

संरब्धौ तावुभौ दृष्ट्वा तत्र भोजजनार्दनौ।
शक्तोऽपि शाठ्याद्धार्दिक्यमक्रूरो नाभ्यपद्यत ॥ १३ ॥

शतधन्वा और श्रीकृष्णको क्रोधमें भरा हुआ देखकर अक्रूर समर्थ होनेपर भी शठताके कारण हृदीकके पुत्र शतधन्वाकी सहायता करने नहीं गये ॥ १३ ॥

अपयाने ततो बुद्धिं भोजश्चक्रे भयार्दितः।
योजनानां शतं साग्रं हयया प्रत्यपद्यत ॥ १४ ॥

तब तो भयसे घबराया हुआ शतधन्वा भागनेका विचार करने लगा और वह घोड़ीपर चढ़कर चार सौ कोससे अधिक दूर निकल गया ॥ १४ ॥

विख्याता हृदया नाम शतयोजनगामिनी।
भोजस्य वडवा राजन् यया कृष्णमयोधयत् ॥ १५ ॥

राजन् ! शतधन्वाने जिस घोड़ीपर चढ़कर श्रीकृष्णके साथ युद्ध किया था, उस घोड़ीका नाम हृदया था और वह चार सौ कोसका धावा मारनेवालीके रूपमें प्रसिद्ध थी ॥ १५ ॥

क्षीणां जवेन च हयामध्वनः शतयोजने।
दृष्ट्वा रथस्य तां वृद्धिं शतधन्वा समत्यजत् ॥

घोड़ी वेगसे चलनेके कारण चार सौ कोसका भा करनेके बाद थकने लगी। इधर शतधन्वाने श्रीकृष्णके बढ़ते देखकर घोड़ीको छोड़ दिया (और वह भागने लगा) ॥ १६ ॥

ततस्तस्या हयायास्तु श्रमात् खेदाच्च भारत।
खमुत्पेतुरथ प्राणाः कृष्णो राममथाब्रवीत् ॥

भारत ! तदनन्तर उस घोड़ीने श्रम और खेदके अपने प्राणोंको छोड़ दिया। उस समय श्रीकृष्णने ब से कहा—॥ १७ ॥

तिष्ठस्वेह महाबाहो दृष्टदोषा हया मया।
पद्भ्यां गत्वा हरिष्यामि मणिरत्नं स्यमन्तकम् ॥

'महाबाहो ! घोड़े थक गये हैं, उनका यह दो देख लिया है; अतः आप यहीं ठहरिये, मैं पैदल ही मणियोंमें रत्नस्वरूप स्यमन्तक-मणिको छीन लाऊँ

पद्भ्यामेव ततो गत्वा शतधन्वानमच्युतः।
मिथिलामभितो राजन् जघान परमास्त्रवित् ॥

राजन् ! तदनन्तर अस्त्रविद्याके पारगामी श्रीकृष्ण ही जाकर शतधन्वाको मिथिलानगरीके समीप मार

स्यमन्तकं च नापश्यद्धत्वा भोजं महाबलम्।
निवृत्तं चाब्रवीत् कृष्णं रत्नं देहीति लाङ्गली ॥

महाबली भोजवंशी शतधन्वाको मारनेपर भी श्री स्यमन्तक-मणि न मिली। श्रीकृष्णके वापस आनेपर ब ने उनसे कहा कि 'वह मणि-रत्न दीजिये' ॥ २० ॥

नास्तीति कृष्णश्चोवाच ततो रामो रुषान्वितः।
धिक्छब्दमसकृत् कृत्वा प्रत्युवाच जनार्दनम् ॥

तब श्रीकृष्णने कहा—'मणि तो वहाँ नहीं मि तो बलदेवजीने क्रोधमें भरकर बारंबार 'धिक्कार है ! है !!' कहकर श्रीकृष्णसे कहा—॥ २१ ॥

भ्रातृत्वान्मर्षयाम्येष स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम्।
कृत्यं न मे द्वारकया न त्वया न च वृष्णिभिः ॥

'भाई होनेके कारण आपकी इस करतूतको मैं

हूँ, आपका कल्याण हो ! मैं चलता हूँ । अब मुझे द्वारकासे, आपसे और वृष्णिवंशियोंसे भी कोई काम नहीं है' ॥ २२॥

प्रविवेश ततो रामो मिथिलामरिमर्दनः ।
सर्वकामैरुपहृतैर्मैथिलेनाभिपूजितः ॥ २३ ॥

तदनन्तर शत्रुमर्दन बलदेवजी मिथिलापुरीमें चले गये। वहाँ मिथिलानरेशने बहुत-से श्रेष्ठ पदार्थोंकी भेंट देकर बलदेवजीका स्वागत किया ॥ २३ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु बभ्रुर्मतिमतां वरः ।
नानारूपान् क्रतून् सर्वानाजहार निरर्गलान् ॥ २४ ॥

इसी समय बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ बभ्रु (वंशी अक्रूरजी भी) अनेक प्रकारके बहुत-से यज्ञोंको धड़ल्लेके साथ करने लगे ॥

दीक्षामयं स कवचं रक्षार्थं प्रविवेश ह ।
स्यमन्तककृते प्राज्ञो गान्दीपुत्रो महायशाः ॥ २५ ॥

महायशस्वी बुद्धिमान् गान्दीपुत्रने स्यमन्तकके लिये दीक्षारूपी कवचको अपनी रक्षाके लिये पहिन लिया (अर्थात् यज्ञमें दीक्षा लेनेवालेको युद्ध करनेका अधिकार नहीं होता, इसलिये उन्होंने युद्धसे बचनेका यह मार्ग निकाल लिया)॥

अथ रत्नानि चाग्र्याणि द्रव्याणि विविधानि च ।
षष्टिं वर्षाणि धर्मात्मा यज्ञेषु विनियोजयत् ॥ २६ ॥

उसके बाद धर्मात्मा अक्रूरने साठ वर्षोंतक यज्ञोंमें अनेक प्रकारके द्रव्य और उत्तम रत्न दक्षिणारूपमें दिये ॥

अक्रूरयज्ञा इति ते ख्यातास्तस्य महात्मनः ।
बह्वन्नदक्षिणाः सर्वे सर्वकामप्रदायिनः ॥ २७ ॥

उन महात्माके किये हुए वे सब यज्ञ अक्रूर-यज्ञोंके नामसे प्रसिद्ध हैं, उनमें बहुत-सा अन्न और बहुत-सी दक्षिणाएँ दी गयीं तथा उन सभी यज्ञोंमें ऋत्विजोंकी सब प्रकारकी कामनाएँ पूर्ण की गयीं ॥ २७ ॥

अथ दुर्योधनो राजा गत्वा तु मिथिलां प्रभुः ।
गदाशिक्षां ततो दिव्यां बलभद्रादवाप्तवान् ॥ २८ ॥

इसी समय शक्तिशाली राजा दुर्योधनने मिथिलापुरीमें जाकर बलदेवजीसे दिव्य गदा-विद्याकी शिक्षा ग्रहण की ॥२८॥

प्रसाद्य तु ततो रामो वृष्ण्यन्धकमहारथैः ।
आनीतो द्वारकामेव कृष्णेन च महात्मना ॥ २९ ॥

तदनन्तर वृष्णि और अन्धकवंशी महारथी तथा महात्मा श्रीकृष्ण बलरामजीको प्रसन्न करके द्वारकामें ही बुला लाये ॥

अक्रूरस्त्वन्धकैः सार्धमपायाद् भरतर्षभ ।
हत्वा सत्राजितं सुप्तं सहबन्धुं महाबलम् ॥ ३० ॥
ज्ञातिभेदभयात् कृष्णस्तमुपेक्षितवानथ ।
अपयाते तथाक्रूरे नावर्षत् पाकशासनः ॥ ३१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! रात्रिमें सोये हुए महाबली सत्राजित् और उनके भाइयोंको शतधन्वाके द्वारा मरवाकर अक्रूर (अपने कुटुम्बी कतिपय) अन्धकवंशियोंको साथ लेकर भाग गये थे, किंतु श्रीकृष्णने जातिमें फूट पड़नेके भयसे उनकी उपेक्षा कर दी, परंतु अक्रूरके चले जानेपर इन्द्रदेवने वर्षा करना बंद कर दिया ॥ ३०-३१ ॥

अनावृष्ट्या यदा राज्यमभवद् बहुधा कृशम् ।
ततः प्रसादयामासुरक्रूरं कुकुरान्धकाः ॥ ३२ ॥

जब अनावृष्टि होनेसे राज्यके मनुष्य प्रायः दुर्बल होने लगे, तब कुकुर और अन्धकवंशियोंने अक्रूरको अनुनय-विनय करके (द्वारका लौटनेके लिये) राजी कर लिया ॥ ३२ ॥

पुनर्द्वारवतीं प्राप्ते तस्मिन् दानपतौ ततः ।
प्रववर्ष सहस्राक्षः कच्छे जलनिधेस्तदा ॥ ३३ ॥

फिर क्या था, उन दानपति अक्रूरके द्वारकापुरीमें वापस आते ही सहस्राक्ष इन्द्रने समुद्रके तटवर्ती प्रदेशपर जोरोंसे वर्षा करनी आरम्भ कर दी ॥ ३३ ॥

कन्यां च वासुदेवाय स्वसारं शीलसम्मताम् ।
अक्रूरः प्रददौ धीमान् प्रीत्यर्थं कुरुनन्दन ॥ ३४ ॥

कुरुनन्दन ! बुद्धिमान् अक्रूरजीने अपनी शीलवती बहिनका, जो कुमारी थी, श्रीकृष्णके साथ उनको प्रसन्न करनेके लिये विवाह कर दिया ॥ ३४ ॥

अथ विज्ञाय योगेन कृष्णो बभ्रुगतं मणिम् ।
सभामध्ये गतं प्राह तमक्रूरं जनार्दनः ॥ ३५ ॥

तदनन्तर जनार्दन श्रीकृष्णने योगके द्वारा यह जानकर कि मणि अक्रूरके पास है, सभामें बैठे हुए अक्रूरसे (एक दिन) कहा—॥ ३५ ॥

यत् तद् रत्नं मणिवरं तव हस्तगतं विभो ।
तत् प्रयच्छस्व मानार्ह मयि मानार्यकं कृथाः ॥ ३६ ॥

'माननीय विभो ! जो मणिरत्न स्यमन्तक आपके पास है, आप उसे दे दीजिये, अनार्यताका व्यवहार न कीजिये ॥

षष्टिवर्षे गते काले यद्रोषोऽभून्ममानघ ।
स संरूढोऽसकृत्प्राप्तस्ततः कालात्ययो महान् ॥ ३७ ॥

'निष्पाप अक्रूरजी ! साठ वर्ष पहले (मणिके कारणसे) जो रोष मुझे चढ़ा था, वही रोष बहुत समय बीतनेपर भी मुझे फिर बार-बार आ रहा है (अतः उस मणिको मुझे दे दीजिये), ॥ ३७ ॥

ततः कृष्णस्य वचनात् सर्वसात्त्वतसंसदि ।
प्रददौ तं मणिं बभ्रुरक्लेशेन महामतिः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार श्रीकृष्णके कहनेपर महाबुद्धिमान् अक्रूरजीने सम्पूर्ण सात्त्वतोंकी सभामें वह मणि बिना कष्ट पाये ही श्रीकृष्णको अर्पण कर दी ॥ ३८ ॥

ततस्तमार्जवप्राप्तं बभ्रोर्हस्तादरिंदमः ।
ददौ हृष्टमनाः कृष्णस्तं मणिं बभ्रवे पुनः ॥ ३९ ॥

तदनन्तर अक्रूरजीके हाथसे सरलतापूर्वक मणि पा जानेपर अरिंदमन श्रीकृष्णने मनमें प्रसन्न होकर वह मणि अक्रूरजीको दे दी ॥ ३९ ॥

स कृष्णहस्तात् सम्प्राप्तं मणिरत्नं स्यमन्तकम् ।
आबद्ध्य गान्दिनीपुत्रो विरराजांशुमानिव ॥

तब श्रीकृष्णके हाथसे मिली हुई मणिरत्न स्य मणिको गलेमें बाँधकर गान्दिनीपुत्र अक्रूर सूर्यके सुशोभित हुए ॥ ४० ॥

यस्त्वेवं शृणुयान्नित्यं शुचिर्भूत्वा समाहितः ।
सुखानां सकलानां च फलभागीह जायते ॥

इस प्रकार जो मनुष्य पवित्र होकर सावधानतापूर्व कथाको नित्यप्रति सुनता है, उसको फलरूपमें सम्पू प्राप्त होते हैं ॥ ४१ ॥

आ ब्रह्मभुवनाच्चापि यशःख्यातिर्न संशयः ।
भविष्यति नृपश्रेष्ठ सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥

नृपश्रेष्ठ ! उसकी कीर्ति ब्रह्मलोकतक पहुँचती है कुछ संदेह नहीं है, यह मैं आपसे सत्य कह रहा हूँ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वण्ये-
कोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें (बलदेवजीके द्वारा दुर्योधनको गदा-विद्याकी शिक्षाविषयक) उन्तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३९ ॥

◆

चत्वारिंशोऽध्यायः

जनमेजयका भगवान्‌के वराह, नृसिंह, परशुराम, श्रीकृष्ण आदि अवतारोंका रहस्य पूछना

जनमेजय उवाच

प्रादुर्भावान् पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः ।
सतां कथयतामेव वाराह इति नः श्रुतम् ॥ १ ॥

जनमेजयने कहा—ब्रह्मन् ! मैंने कथा कहनेवाले सज्जनोंके मुखसे अमिततेजस्वी विष्णुके अवतारोंमें वराह अवतारकी भी बात पुराणोंमें सुनी है (वराह शब्दका आध्यात्मिक अर्थ वर और अह अर्थात् श्रेष्ठ यज्ञ है) ॥ १ ॥

न जाने तस्य चरितं न विधिं नैव विस्तरम् ।
न कर्मगुणसंतानं न हेतुं न मनीषितम् ॥

परंतु मैं उन वराह भगवान्‌के (सर्वकार्य जनकत्व चरित्रको, (अपूर्वस्वरूपका आविष्कार करनेकी) विधि (अनुष्ठानकी आवश्यकता रूप) विस्तारको तथा कर्म (अर्थात् उसके कर्मसे तृप्त होनेवाले देवता तथा गुण-देश-द्रव्य-काल आदि एवं संतान (प्रयोग को, हेतु अर्थात् अधिकारको और वे किस अभि त्यागात्मक स्वरूपको ग्रहण करते हैं, उसे मैं कुछ समझता (अतः आप मुझे ये सब बातें समझाइये) ॥

किमात्मको वराहः स का मूर्तिः का च देवता ।
किमाचारः प्रभावो वा किं वा तेन पुरा कृतम् ॥ ३ ॥

(इस प्रकार वराहावतारके अधियज्ञस्वरूपकी बात पूछनेके अनन्तर अब राजा जनमेजय उनके आधिदैविक रूपके विषयमें पूछते हैं—) उन वराहका वास्तविक स्वरूप क्या है ? उनकी मूर्ति (बाहरी आकृति) कैसी है ? उनका (अधिष्ठातृ) देवता कौन है ? उनके कर्म क्या हैं ? उनका प्रभाव कैसा है और उन्होंने उस अवतारमें क्या किया था ? ॥ ३ ॥

यज्ञार्थं समवेतानां मिषतां च द्विजन्मनाम् ।
महावराहचरितं कृष्णद्वैपायनेरितम् ॥ ४ ॥

मैंने कृष्णद्वैपायनजीका कहा हुआ महावराहका चरित्र यज्ञमें एकत्रित हुए ब्राह्मणोंके वाद-विवादमें सुना है (परंतु उसका तत्त्व मेरी समझमें नहीं आया) ॥ ४ ॥

यथा नारायणो ब्रह्मन् वाराहं रूपमास्थितः ।
दंष्ट्रया गां समुद्रस्थामुज्जहारारिसूदनः ॥ ५ ॥

ब्रह्मन् ! भगवान् नारायणने जिस प्रकार वराहरूप धारण किया और उन अरिसूदन भगवान्ने जिस प्रकार अपनी दाढ़से समुद्रके गर्भमें पड़ी हुई पृथ्वीका उद्धार किया, यह अब मुझे आप बतानेकी कृपा करें ॥ ५ ॥

विस्तरेणैव कर्माणि सर्वाणि रिपुघातिनः ।
श्रोतुमिच्छाम्यशेषेण हरेः कृष्णस्य धीमतः ॥ ६ ॥

मैं शत्रुसंहारक परम ज्ञानी हरिरूप भगवान् श्रीकृष्णके (वराह आदि सब अवतारोंमें किये हुए) सभी चरित्रोंको विस्तारपूर्वक पूर्णरीतिसे सुनना चाहता हूँ ॥ ६ ॥

कर्मणामानुपूर्व्याच्च प्रादुर्भावाश्च ये विभोः ।
या चास्य प्रकृतिर्ब्रह्मंस्तां मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ७ ॥

ब्रह्मन् ! लीलाओंके क्रमसे इन सर्वव्यापी भगवान्के जितने भी हुए हैं अवतार उन सबकी और (उन अवतारोंके समय उनकी) जो प्रकृति थी उसकी आप कृपा करके व्याख्या कीजिये ॥ ७ ॥

कथं च भगवान् विष्णुः सुरशत्रुनिषूदनः ।
वसुदेवकुले धीमान् वासुदेवत्वमागतः ॥ ८ ॥

फिर देवताओंके शत्रुओंका नाश करनेवाले परम चतुर भगवान् विष्णु वसुदेवके कुलमें उत्पन्न होकर वासुदेव क्यों कहलाये (अर्थात् वे कर्मबन्धनसे रहित होनेपर भी उत्तम स्थानसे नीचे स्थानमें क्यों आये) ? ॥ ८ ॥

अमरैरावृतं पुण्यं पुण्यकृद्भिर्निषेवितम् ।
देवलोकं समुत्सृज्य मर्त्यलोकमिहागतः ॥ ९ ॥

वे देवताओंसे घिरे हुए एवं पुण्यात्माओंद्वारा सेवित पवित्र देवलोकको छोड़कर इस मृत्युलोकमें क्यों आये ? ॥ ९ ॥

देवमानुषयोर्नेता यो भुवः प्रभवो विभुः ।
किमर्थं दिव्यमात्मानं मानुष्ये संन्ययोजयत् ॥ १० ॥

जो देवता और मनुष्योंके नेता हैं और जो विभु पृथ्वीके भी उत्पत्तिस्थान हैं, उन्होंने अपने दिव्य आत्माको मनुष्यशरीरमें क्यों स्थापित किया ? ॥ १० ॥

यच्चक्रं वर्तयत्येको मानुषाणामनामयम् ।
मानुष्ये स कथं बुद्धिं चक्रे चक्रभृतां वरः ॥ ११ ॥

जो अकेले ही सब मनुष्योंके (कर्मसे जन्म और जन्मसे पुनः कर्मरूप) चक्रको निर्विघ्नतापूर्वक चलाते हैं, उन चक्रधारियोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णने मनुष्य बननेका विचार क्यों किया ? ॥ ११ ॥

गोपायनं यः कुरुते जगतः सार्वलौकिकम् ।
स कथं गां गतो देवो विष्णुर्गोपत्वमागतः ॥ १२ ॥

जो जगत्के सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा करते हैं, वे भगवान् विष्णु पृथ्वीपर आकर गोप कैसे बन गये ? ॥ १२ ॥

महाभूतानि भूतात्मा यो दधार चकार च ।
श्रीगर्भः स कथं गर्भे स्त्रिया भूचरया धृतः ॥ १३ ॥

जो समस्त भूतोंके अन्तरात्मा प्रभु स्वयं महाभूतोंको रचते और धारण करते हैं, उन श्रीगर्भको पृथ्वीपर विचरण करनेवाली स्त्रीने अपने गर्भमें किस प्रकार धारण किया ? ॥ १३ ॥

येन लोकान् क्रमैर्जित्वा त्रिभिस्त्रींस्त्रिदशेप्सया ।
स्थापिता जगतो मार्गास्त्रिवर्गप्रभवास्त्रयः ॥ १४ ॥

जिन्होंने देवताओंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये तीन पैंड़ोंसे तीनों लोकोंको जीतकर जगत्में धर्म, अर्थ और कामसे प्राप्त होनेवाले तीन मार्ग—तीन गतियाँ स्थापित कर दीं (धर्मसे स्वर्ग अर्थात् ऊर्ध्वगति, अर्थसे मर्त्यलोक अर्थात् मध्यमगति और कामसे नरकादि अधोलोक अर्थात् अधोगति मिलती है), ॥ १४ ॥

योऽन्तकाले जगत् पीत्वा कृत्वा तोयमयं वपुः ।
लोकमेकार्णवं चक्रे दृश्यादृश्येन वर्त्मना ॥ १५ ॥

जो भगवान् प्रलयकालमें दृश्य एवं अदृश्य रीतिसे (कारणसहित) सम्पूर्ण जगत्का पान (ग्रास) करके अपने शरीरको जलमय बनाकर सम्पूर्ण जगत्को एक जलमय ही कर देते हैं, ॥ १५ ॥

यः पुराणे पुराणात्मा वाराहं रूपमास्थितः ।
विषाणाग्रेण वसुधामुज्जहारारिसूदनः ॥ १६ ॥

प्राचीन समयमें जिन पुराणात्मा अरिसूदन भगवान्ने वराहके रूपमें अपने दाँतोंके अग्रभागसे पृथ्वीका उद्धार किया, ॥ १६ ॥

यः पुरा पुरुहूतार्थे त्रैलोक्यमिदमव्ययः ।
ददौ जित्वासुरगणान् सुराणां सुरसत्तमः ॥ १७ ॥

पहले जिन अविनाशी सुरश्रेष्ठने इन्द्रके लिये असुरोंकी सेनाको जीतकर देवताओंको तीनों लोक (वापस) दिला दिये, ॥ १७ ॥

येन सैंहं वपुः कृत्वा द्विधा कृत्वा च तत् पुनः ।
पूर्वं दैत्यो महावीर्यो हिरण्यकशिपुर्हतः ॥ १८ ॥

जिन्होंने पूर्वकालमें सिंहका रूप धारणकर और फिर उसको दो प्रकारका अर्थात् नरसिंहरूप बनाकर महान् पराक्रमी दैत्य हिरण्यकशिपुको मार डाला, ॥ १८ ॥

यः पुरा ह्यनलो भूत्वा और्वः संवर्तको विभुः ।
पातालस्थोऽर्णवगतं पपौ तोयमयं हविः ॥ १९ ॥

जिन विभुने पहले (प्रलयकालमें) पातालमें जाकर और्ववंशी संवर्तक अग्निका स्वरूप धारण कर समुद्रके जलरूप हवि (घी) का पान कर लिया, ॥ १९ ॥

सहस्रशिरसं ब्रह्मन् सहस्राक्षं सहस्रदम् ।
सहस्रचरणं देवं यमाहुर्वै युगे युगे ॥ २० ॥

ब्रह्मन् ! प्रत्येक युगमें जिन भगवान्को सहस्र
अनन्त सिरवाला, अनन्त आँखोंवाला, अनन्त दान
वाला और अनन्त चरणोंवाला कहा जाता है, ॥ २० ॥

नाभ्यारण्यां समुत्पन्नं यस्य पैतामहं गृहम् ।
एकार्णवजलस्थस्य नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥

स्थावर-जङ्गमात्मक जगत्के लीन होनेपर
समुद्रमय जलमें स्थित पुरुषकी नाभिसे प्रकट होनेवाले
नालरूप अरणि (मन्थनदण्ड) से पितामहका भवन
कमल) उत्पन्न हुआ, ॥ २१ ॥

येन ते निहता दैत्याः संग्रामे तारकामये ।
सर्वदेवमयं कृत्वा सर्वायुधधरं वपुः ॥

जिन्होंने तारकामय संग्राममें अपने शरीरको
और सर्वायुधधारी बनाकर दैत्योंको मार डाला, ॥ २२

गरुडस्थेन चोत्सिक्तः कालनेमिर्निपातितः ।
निर्जितश्च मयो दैत्यस्तारकश्च महासुरः ॥

जिन्होंने गरुड़पर बैठकर उद्दण्ड कालनेमिको
दिया तथा मय दैत्य और महान् असुर
मार डाला, ॥ २३ ॥

उत्तरान्ते समुद्रस्य क्षीरोदस्यामृतोदधेः ।
यः शेते शाश्वतं योगमास्थाय तिमिरं महत् ॥

जो क्षीरसमुद्रके उत्तर तटपर स्थित अमृत-समुद्रमें
मायारूप शाश्वत योगका आश्रय लेकर शयन करते हैं।

सुरारणिर्गर्भमधत्त दिव्यं
तपःप्रकर्षाददितिः पुराणम् ।
शक्रं च यो दैत्यगणावरुद्धं
गर्भावसाने निभृतं चकार ॥

देवताओंको उत्पन्न करनेवाली अरणिरूपा अदिति
तप करके जिन पुराणपुरुष (वामन) रूपी गर्भको
किया और जिन्होंने गर्भसे निकलनेके बाद दैत्योंके
फँसे हुए इन्द्रको दैत्योंके चक्रसे मुक्त करके पूर्णकाम
दिया, ॥ २५ ॥

पदानि यो लोकमयानि कृत्वा
चकार दैत्यान् सलिलेशयांस्तान् ।

कृत्वा च देवांस्त्रिदिवस्य देवां-
श्चक्रे सुरेशं त्रिदशाधिपत्ये ॥ २६ ॥

जिन्होंने अपने डगोंको लोकमय करके अर्थात् एक-एक डगसे एक-एक लोकको नापकर दैत्योंको पातालमें भेज दिया, देवताओंको स्वर्गका विहार करनेवाला बना दिया और देवराज इन्द्रको देवताओंके सम्राट्-पदपर स्थापित कर दिया, ॥ २६ ॥

पात्राणि दक्षिणा दीक्षा चमसोलूखलानि च ।
गार्हपत्येन विधिना अन्वाहार्येण कर्मणा ॥ २७ ॥

जिन्होंने गृह्यसूत्रोंमें कही हुई विधि तथा अन्वाहार्य-कर्म * के साथ (यज्ञोपयोगी) चमस, उलूखल आदि पात्र, दक्षिणा और दीक्षा आदिकी रचना की, ॥ २७ ॥

अग्निमाहवनीयं च वेदीं चैव कुशां स्रुवम् ।
प्रोक्षणीयं ध्रुवां चैव आवभृथ्यं तथैव च ॥ २८ ॥

जिन्होंने आहवनीय अग्नि, वेदी, स्रुवा, कुशाएँ, प्रोक्षणीपात्र, ध्रुवा और अवभृथ स्नानोपयोगी सामग्रीकी कल्पना की, ॥ २८ ॥

सुधात्रीणि च यश्चक्रे हव्यकव्यप्रदान् द्विजान् ।
हव्यादांश्च सुरान् यज्ञे क्रव्यादांस्तु पितॄनपि ॥ २९ ॥

जिन्होंने (ऊर्ध्व, मध्य और अधोगतिरूप) सुधा आदि तीन भोग्य पदार्थ बनाकर ब्राह्मणोंको हव्य-कव्य प्रदान करनेवाला, देवताओंको यज्ञमें हवि भक्षण करनेवाला और पितरोंको (श्राद्धादिमें अर्पण किये जानेवाले पिण्ड आदि) कव्य भक्षण करनेवाला बनाया, ॥ २९ ॥

भागार्थं मन्त्रविधिना यश्चक्रे यज्ञकर्मणि ।
यूपान् समित् स्रुचं सोमं पवित्रान् परिधीनपि ॥ ३० ॥

जिन्होंने (देवताओंका) भाग निकालनेके लिये मन्त्रके प्रयोगकी विधिके साथ-साथ यज्ञकर्ममें यूप, समिधा, स्रुवा, सोम, पवित्र (पैंती) एवं परिधियोंकी कल्पना की, ॥ ३० ॥

यज्ञियानि च द्रव्याणि यज्ञांश्च सचयानलान् ।
सदस्यान् यजमानांश्च मेध्यादींश्च क्रतूत्तमान् ॥ ३१ ॥
विबभाज पुरा सर्वं पारमेष्ठ्येन कर्मणा ।
युगानुरूपान् यः कृत्वा लोकाननुपराक्रमत् ॥ ३२ ॥

जिन्होंने यज्ञोपयोगी द्रव्य, यज्ञ, ईंटोंके बने अग्नि-स्थापनके स्थान तथा आहवनीय आदि तीन प्रकारकी अग्नियाँ, सदस्य (यज्ञकर्मका निरीक्षण करनेवाले ब्राह्मण), यजमान, उत्तम यज्ञ एवं मेध्य आदि पदार्थोंका ब्रह्माजीकी प्रचलित की हुई विधिसे विभाग किया और जिन्होंने लोकोंको युगोंके अनुरूप बनाकर फिर अपना हाथ हटा लिया, ॥ ३१-३२ ॥

क्षणा लवाश्च काष्ठाश्च कलास्त्रैकाल्यमेव च ।
मुहूर्तास्तिथयो मासाः पक्षाः संवत्सरास्तथा ॥ ३३ ॥
ऋतवः कालयोगाश्च प्रमाणं त्रिविधं त्रिषु ।
आयुः क्षेत्राण्युपचयो लक्षणं रूपसौष्ठवम् ॥ ३४ ॥

जिन्होंने क्षण, लव, काष्ठा, कला, (प्रातः, मध्याह्न और सायंकालरूप) तीन काल, मुहूर्त, तिथि, मास, पक्ष, वर्ष, ऋतु, कालके विविध योग, (नित्य, नैमित्तिक और काम्य इन) तीन प्रकारके (प्रमेय) कर्मोंमें (श्रुति, स्मृति, शिष्टाचाररूप) तीन प्रकारका प्रमाण, आयु, क्षेत्र (स्थावर-जङ्गम शरीर), वृद्धि, (दो पैर, चार पैर आदि) लक्षण और आकृतिकी सुन्दरता रची, ॥ ३३-३४ ॥

त्रयो वर्णास्त्रयो लोकास्त्रैविद्यं पावकास्त्रयः ।
त्रैकाल्यं त्रीणि कर्माणि त्रयोऽपायास्त्रयो गुणाः ॥ ३५ ॥

जिन्होंने तीन वर्ण (शूद्रको यज्ञ करनेका अधिकार नहीं है, अतः उसका ग्रहण नहीं किया), (भू आदि) तीन लोक, (ऋक्, यजुः, सामरूप) तीन विद्याएँ, (गार्हपत्य, आहवनीय एवं दक्षिण नामकी) तीन अग्नियाँ, (भूत, भविष्यत्, वर्तमानरूप) तीन काल, (सात्त्विक, राजस और तामसरूप) तीन कर्म, (पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणारूप) तीन अपाय और (सत्त्व, रज, तमरूप) तीन गुण रचे, ॥ ३५ ॥

त्रयो लोकाः पुरा सृष्टा येनानन्त्येन कर्मणा ।
सर्वभूतगणस्रष्टा सर्वभूतगुणात्मकः ॥ ३६ ॥

जिन्होंने (जीवोंके) अनन्त कर्मोंके कारण तीन लोकोंकी रचना की, (साथ ही) जो सब प्राणियोंको रचनेवाले हैं और जिनमें सब भूतोंके गुण रहते हैं, ॥ ३६ ॥

नृणामिन्द्रियपूर्वेण योगेन रमते च यः ।
गतागताभ्यां यो नेता सर्वत्र जगदीश्वरः ॥ ३७ ॥

जो जगदीश्वर समस्त ब्रह्माण्डमें जीवात्माको जन्म-मृत्यु देनेके कारण सबके नेता हैं और जो (जीवरूपसे) इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संयोग करके सर्वत्र रमण करते हैं, ॥ ३७ ॥

---

* पितरोंके निमित्तसे प्रति अमावस्याको किया जानेवाला मासिक श्राद्ध ।

यो गतिर्धर्मयुक्तानामगतिः पापकर्मणाम्।
चातुर्वर्ण्यस्य प्रभवश्चातुर्होत्रस्य रक्षिता ॥ ३८ ॥

जो धर्म करनेवालोंकी गति (गन्तव्य स्थान) हैं और पापकर्म करनेवालोंकी अगति हैं अर्थात् पापकर्म करनेवाले जिनको नहीं पा सकते, जो चारों वर्णोंके उत्पत्तिस्थान हैं (यह बात 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्' आदि श्रुतिको लक्ष्य करके कही गयी है) और जो (जिसमें चार ऋत्विज हवन करते हैं ऐसे) चातुर्होत्र (यज्ञ) के रक्षक हैं, ॥ ३८ ॥

चातुर्विद्यस्य यो वेत्ता चातुराश्रम्यसंश्रयः।
दिगन्तरो नभोभूतो वायुरापो विभावसुः ॥ ३९ ॥

जो (आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीतिरूप) चार विद्याओंके ज्ञाता हैं, जो (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यासरूप) चारों आश्रमोंके आश्रय हैं (अर्थात् जिनकी प्राप्तिके लिये चारों आश्रमोंके धर्मोंका पालन किया जाता है) औरदिशाएँ जिनके गर्भमें रहती हैं (अर्थात् जो दिशाओंको भी अवकाश देते हैं) तथा जो वायु, आकाश, जल, अग्नि और पृथ्वीरूप हैं, ॥ ३९ ॥

यश्चन्द्रसूर्ययोर्ज्योतिर्योगीशः क्षणदान्तकः।
यत् परं श्रूयते ज्योतिर्यत् परं श्रूयते तपः ॥ ४० ॥

जो चन्द्रमा और सूर्यको भी ज्योति देनेवाले हैं, योगीश्वर हैं, (मोहरूपी) रात्रिका अन्त करनेवाले हैं, जो परम ज्योतिःस्वरूप सुने जाते हैं अर्थात् जिनका ज्योतिःस्वरूप नेत्र सर्वत्र सब कुछ देखता है और जो परम तपःस्वरूप सुने जाते हैं अर्थात् जो परम तपस्याके द्वारा प्राप्त होते हैं, ॥ ४० ॥

यं परं प्राहुरपरं यः परः परमात्मवान्।
नारायणपरा वेदा नारायणपराः क्रियाः ॥ ४१ ॥

जिनको पर (सूत्रात्मा) और अपर (विराट्) भी कहते हैं और जो परात्पर हैं अर्थात् सूत्रात्मासे भी पर मायासम्पन्न महेश्वर सगुण ब्रह्म हैं, आत्मवान् हैं अर्थात् आत्माके समान ही मायारूपी शरीरवाले हैं। वेद नारायणका ही निरूपणकरते हैं। सभी क्रियाओंका पर्यवसान भी नारायणमें ही होता है ॥ ४१ ॥

नारायणपरो धर्मो नारायणपरा गतिः।
नारायणपरं सत्यं नारायणपरं तपः ॥ ४२ ॥

धर्मका लक्ष्य भी नारायण हैं, सम्पूर्ण गतियोंकी परम गति नारायण हैं, नारायण ही सत्यके आधार हैं और ना ही तपके द्वारा प्राप्य हैं ॥ ४२ ॥

नारायणपरो मोक्षो नारायणपरायणम्।
आदित्यादिस्तु यो दिव्यो यश्च दैत्यान्तको विभुः॥

नारायण ही मोक्षके आधार हैं। नारायण ही परम रूप हैं । जो प्रभु आकाशमें विचरण करनेवाले आदि ग्रहोंके स्वरूपमें स्थित हैं और दैत्योंका संहार वाले हैं ॥ ४३ ॥

युगान्तेष्वन्तको यश्च यश्च लोकान्तकान्तकः।
सेतुर्यो लोकसेतूनां मेध्यो यो मेध्यकर्मणाम् ॥

जो प्रलयके समय कालका रूप धारण कर लेते हैं, का अन्त करनेवाले यमके भी यम हैं, मृत्युकी भी लोकोंकी मर्यादा बाँधनेवाले (मनु आदिके भी) अर्थात् मनु आदिको भी मर्यादामें रखनेवाले हैं और करनेवाले (गङ्गा आदि तीर्थों) को भी पवित्र करनेवा

वेद्यो यो वेदविदुषां प्रभुर्यः प्रभवात्मनाम्।
सोमभूतस्तु सौम्यानामग्निभूतोऽग्निवर्चसाम् ॥

जो वेदके ज्ञाताओंद्वारा जानने योग्य हैं, प्रभुत्व वाले (मरीचि आदि) के भी प्रभु हैं और जो सौम्य में चन्द्रमाकी भाँति प्रियदर्शन हैं, जो अग्निके समान पुरुषोंमें अग्निस्वरूप हैं ॥ ४५ ॥

मनुष्याणां मनोभूतस्तपोभूतस्तपस्विनाम्।
विनयो नयवृत्तीनां तेजस्तेजस्विनामपि।
सर्गाणां सर्गकारश्च लोकहेतुरनुत्तमः ॥

जो मनुष्योंके मनरूप हैं, तपस्वियोंके तपरूप हैं नीतिमान् पुरुषोंमें नम्रतारूपसे विराजमान रहते हैं और स्वियोंमें तेजःस्वरूप हैं और जो सृष्टियोंके रचनेवाले संसारके सर्वश्रेष्ठ कारण हैं ॥ ४६ ॥

विग्रहो विग्रहार्हाणां गतिर्गतिमतामपि।
आकाशप्रभवो वायुर्वायुप्राणो हुताशनः ॥

जो शरीर धारण करके अवतार लेनेवाले देव विग्रहरूप हैं, गतिमानोंकी गति हैं, आकाशमें उत्पन्न वाले वायु हैं तथा वायुसे जीनेवाले अग्निस्वरूप हैं ॥

देवा हुताशनप्राणाः प्राणोऽग्नेर्मधुसूदनः।
रसाद् वै शोणितं जातं शोणितान्मांसमुच्यते॥

अग्नि देवताओंके प्राण हैं और मधुसूदन अग्निके भी प्राण हैं। (वे अग्निके प्राण बनकर अग्निके द्वारा क्या करते हैं, इसको स्पष्ट करते हुए कहते हैं, अग्निके द्वारा पृथक् किये हुए अन्नके साररूप) रससे रक्त बनता है (और उससे क्रमशः वीर्य बनकर गर्भ रहता है, इस प्रकार वह अग्निके प्राण बनकर अग्निके द्वारा सारा सृष्टि-कार्य चलाते हैं) और रक्तसे मांस बनता है ॥ ४८ ॥

मांसात्तु मेदसो जन्म मेदसोऽस्थीनि चैव हि।
अस्थ्नो मज्जा समभवन्मज्जातः शुक्रमेव च ॥ ४९ ॥

मांससे मेद (चर्बी) की उत्पत्ति होती है और मेदसे अस्थियोंकी उत्पत्ति होती है, हड्डियोंसे मज्जा बनती है और मज्जासे वीर्यकी उत्पत्ति होती है ॥ ४९ ॥

शुक्राद् गर्भः समभवद् रसमूलेन कर्मणा।
त्रापां प्रथमो भागः स सौम्यो राशिरुच्यते ॥ ५० ॥
गर्भोष्मसम्भवोऽग्निर्यो द्वितीयो राशिरुच्यते।
शुक्रं सोमात्मकं विद्यादार्तवं विद्धि पावकम् ॥ ५१ ॥

रसमूल कर्मके द्वारा वीर्यसे गर्भ रहता है, उसमें प्रथम भाग जलका अंश (वीर्य होता है, वह श्वेत होनेसे) सौम्य होता है, जलप्रधान सोमका अंश होता है और गर्भकी गरमी-से अर्थात् जठराग्निसे उत्पन्न हुआ (रक्तरूप) जो दूसरा भाग उसमें रहता है, वह (रक्त-राशि) अग्निका अंश कहलाता है। (इस प्रकार) वीर्यको सोमका अंश और रजको अग्निका अंश समझना चाहिये ॥ ५०-५१ ॥

भागौ रसात्मकौ ह्येषां वीर्यं च शशिपावकौ।
कफवर्गे भवेच्छुक्रं पित्तवर्गे च शोणितम् ॥ ५२ ॥
कफस्य हृदयं स्थानं नाभ्यां पित्तं प्रतिष्ठितम्।

(पूर्वोक्त रीतिसे) ये दोनों रसके ही भाग हैं, क्योंकि राशि और पावक अर्थात् शुक्र और शोणित इन रस आदिके ही सार हैं। (अब जगत्के अग्निषोमात्मकस्वरूपको सिद्ध करते हैं) शुक्र ('वीर्य) कफवर्गमें है और रक्त पित्तवर्गमें है। (वीर्यके आश्रयसे रहनेवाले और जिसका देवता सोम है, ऐसे) कफका स्थान हृदय है। (रक्तके आश्रयसे रहनेवाले और जिसका देवता अग्नि है, ऐसे) पित्तका स्थान नाभि है ॥ ५२½ ॥

देहस्य मध्ये हृदयं स्थानं तन्मनसः स्मृतम्।
नाभिकोष्ठान्तरं यत् तु तत्र देवो हुताशनः ॥ ५३ ॥

देहके मध्यमें जो हृदय है, वही मनका स्थान कहलाता है और नाभिकोष्ठके भीतर (वाणीका अधिष्ठातृ-देवता) अग्नि रहता है ॥ ५३ ॥

मनः प्रजापतिर्ज्ञेयः कफः सोमो विभाव्यते।
पित्तमग्निः स्मृतं ह्येतदग्नीषोमात्मकं जगत् ॥ ५४ ॥

(मनका अधिष्ठातृ-देवता प्रजापति होनेके कारण) मनको प्रजापति समझना चाहिये, कफको सोम समझना चाहिये और पित्तको अग्नि कहा गया है। इस प्रकार सम्पूर्ण जगत् अग्नीषोमात्मक है ॥ ५४ ॥

एवं प्रवर्तिते गर्भे वर्द्धितेऽम्बुदसंनिभे।
वायुः प्रवेशं संचक्रे सङ्गतः परमात्मना ॥ ५५ ॥

जैसे धुएँ, ज्योति, जल और पवनसे मेघ बढ़ता है, उसी प्रकार गर्भ भी अन्न, अग्नि, जल और प्राणसे बढ़ता है, अतएव अचेतन है, उसके बढ़नेपर (प्राणवायुका सहचर होनेसे जीवरूप) वायु ईश्वरके साथ उसमें प्रवेश करता है (और उसीके साथ उत्क्रमण करता है) ॥ ५५ ॥

ततोऽङ्गानि विसृजति बिभर्ति परिवर्द्धयन्।
स पञ्चधा शरीरस्थो भिद्यते वर्द्धते पुनः ॥ ५६ ॥

देहमें प्रवेश करनेके अनन्तर वह (प्राणोपाधिक) जीव (सिर आदि) अङ्गोंको रचता है और उनको बढ़ाता हुआ उनको पुष्ट भी करता रहता है। वह (प्राणके पाँच प्रकारका होनेसे स्वयं भी) पाँच भागोंमें बँटकर बढ़ता रहता है ॥५६॥

प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च।
प्राणः स प्रथमं स्थानं वर्द्धयन् परिवर्तते ॥ ५७ ॥

वे पाँच भेद इस प्रकार हैं—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान। इनमें प्राण प्रथम-स्थान (हृत्-पिण्ड-हृदय) को पुष्ट करता हुआ चलता रहता है ॥ ५७ ॥

अपानः पश्चिमं कायमुदानोर्ध्वं शरीरिणः।
व्यानो व्यायच्छते येन समानः संनिवर्तयेत्।
भूतावाप्तिस्ततस्तस्य जायतेन्द्रियगोचरात् ॥ ५८ ॥

अपान प्राणीके (जङ्घासे लेकर चरणतक) अधः-शरीरको और उदान प्राणीके (जङ्घाओंसे ऊपरके) ऊर्ध्व-शरीरको बढ़ाता है और व्यान व्यायाम अर्थात् बल-साध्य कर्म करता है (अतएव वह शरीरकी सब संधियोंमें वर्तमान रहता है) और समान (नाभिमें रहकर) खायी और पीयी हुई वस्तुओंको

समान करता है (यथास्थान पहुँचा देता है)। इस प्रकार प्राणके कर्मोंका विभाग होनेके अनन्तर जीवको इन्द्रियोंके विषय (रूप आदि) के द्वारा उनके आश्रय (अग्नि आदि) भूतोंका साक्षात्कार होता है ॥ ५८ ॥

पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ।
तस्येन्द्रियाणि विष्टानि स्वं स्वं योगं प्रचक्रिरे ॥५९॥

(इसका कारण यह है कि) पृथ्वी, जल, तेज, वायु और पाँचवाँ आकाश—ये सब इन्द्रियोंके रूपमें परिणत होकर शरीरके अन्तर्गत अपने-अपने नेत्र-गोलक आदि स्थानोंमें प्रविष्ट हो जाते हैं, इस प्रकार वे अपने-अपने सजातीयको ग्रहण करते हैं (अर्थात् पार्थिव घ्राणेन्द्रिय पृथ्वीके गुण गन्धको ग्रहण करती है, जलीय रसनेन्द्रिय जलके गुण रसको ग्रहण करती है, तैजस चक्षु तेजके गुण रूपको ग्रहण करती है, वायवीय त्वगिन्द्रिय वायुके गुण स्पर्शको ग्रहण करती है और आकाशीय श्रोत्रेन्द्रिय आकाशके गुण शब्दको ग्रहण करती है)॥ ५९ ॥

पार्थिवं देहमाहुस्तं प्राणात्मानं च मारुतम् ।
छिद्राण्याकाशयोनीनि जलात् स्रावः प्रवर्तते ॥ ६० ॥

देहको अर्थात् इकट्ठे हुए कठिनांशको पृथ्वीका विकार कहते हैं, प्राणको वायुका, शरीरमें स्थित नौ छिद्रोंको आकाशका विकार कहते हैं और शरीरसे निकलनेवाले (मूत्र, पसीना वीर्य, आदि) सभी स्राव जलके विकार हैं॥ ६० ॥

ज्योतिश्चक्षुश्च तेजात्मा तेषां यन्ता मनः स्मृतः ।
[illegible]श्च विषयाश्चैव यस्य वीर्यात् प्रवर्तिताः ॥ ६१ ॥

चक्षुरिन्द्रिय तेजःस्वरूप है, इन सब पृथ्वी आदिके (सम्मिलित) तेजका अंश मन है, यह सभी इन्द्रियोंका नियामक है—इन सबको वशमें रखता है (मनके संयोगसे ही ये सब कार्यक्षम होती हैं)। इस मनके वीर्य-शक्तिसे ही (रूप आदिके आश्रय) पृथ्वी आदिका समूह और गन्ध आदि विषय प्रत्यक्ष होते हैं अथवा ग्राम-नगर आदि सब मनके लगनेपर जाते हैं ॥ ६१ ॥

इत्येवं पुरुषः सर्वान् सृजँल्लोकान् सनातनान् ।
कथं लोके नैधनेऽस्मिन् नरत्वं विष्णुरागतः ॥

पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु इस प्रकार लोकोंको रचते रहते हैं। ऐसे विष्णु भगवान् इस संसारमें मनुष्य क्यों बने ? ॥ ६२ ॥

एष मे संशयो ब्रह्मन्नेवं मे विस्मयो महान् ।
कथं गतिर्गतिमतामापन्नो मानुषीं तनुम् ॥

ब्रह्मन् ! मुझे यही संदेह और बड़ा भारी विस्मय है कि गतिमानोंको भी गति देनेवाले भगवान्ने किसलिये धारण किया ? ॥ ६३ ॥

श्रुतो मे स्वस्य वंशस्य पूर्वेषां चैव सम्भवः ।
श्रोतुमिच्छामि विष्णोस्तु वृष्णीनां च यथाक्रमम्

मैंने अपने वंशकी और अपने पूर्वजोंकी उत्पत्ति अब मैं विष्णुकी और वृष्णिवंशियोंकी उत्पत्तिको सुनना चाहता हूँ ॥ ६४ ॥

आश्चर्यं परमं विष्णुर्देवैर्दैत्यैश्च कथ्यते ।
विष्णोरुत्पत्तिमाश्चर्यं ममाचक्ष्व महामुने ॥

महामुने ! देवता और दैत्य विष्णुको परम बताते हैं, अतः आप विष्णुकी अचरजसे भरी हुई मुझसे वर्णन कीजिये ॥ ६५ ॥

एतदाश्चर्यमाख्यानं कथयस्व सुखावहम् ।
प्रख्यातबलवीर्यस्य विष्णोरमिततेजसः ।
कर्म चाश्चर्यभूतस्य विष्णोस्तत्त्वमिहोच्यताम् ।

आप बल और वीर्यके लिये प्रसिद्ध भगवान् विष्णुके इस सुख देनेवाले आश्चर्यजनक सुनाइये और आश्चर्यस्वरूप विष्णुके कर्मोंको भी मुझे सुनाइये ॥ ६६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि वराहोत्पत्तिवर्णने चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें वराहोत्पत्तिवर्णनविषयक चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४० ॥

* * *

महाभारत

संस्कृत
मूल

संस्कृत
मूल

हिन्दी
अनुवाद

हिन्दी
अनुवाद

वर्ष ४

हरिवंश-टीकासहित

संख्या २

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

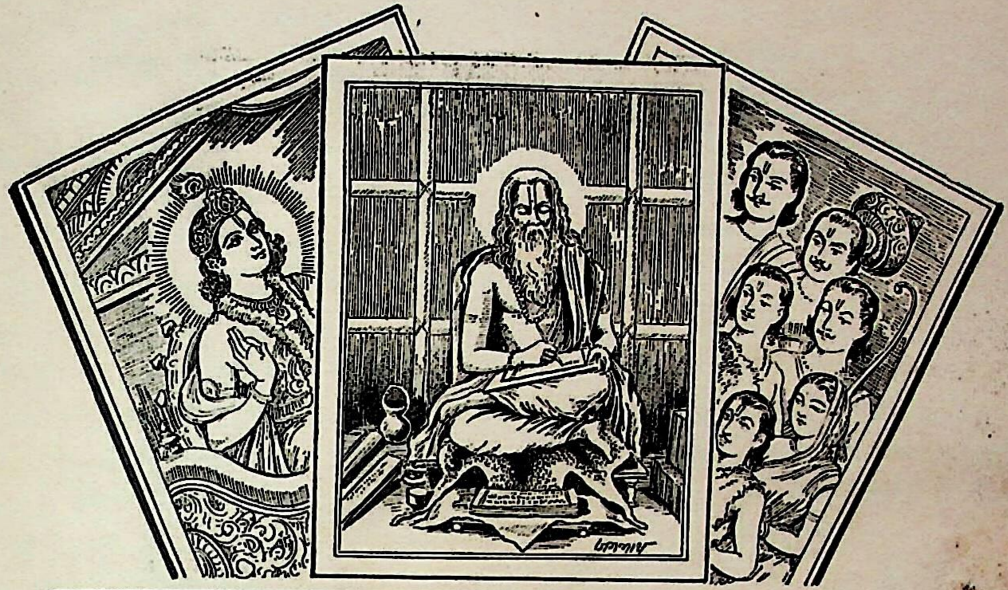

महाभारत

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥
व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे । नमो वै ब्रह्मनिधये वासिष्ठाय नमो नमः ॥

वर्ष ४ } गोरखपुर, माघ २०१५, फरवरी १९५९ { संख्या २
पूर्ण संख्या ३८

गोविन्दकी हास्यच्छटा

जयन्ति गोविन्दमुखारविन्दे
मरन्दसान्द्राधरमन्दहासाः ।
चित्ते चिदानन्दमयं तमोघ्न-
ममन्दमिन्दुद्रवमुद्गिरन्तः ॥

भगवान् श्रीकृष्णके मुखारविन्दमें उनके रसस्निग्ध अधरोंपर जो मन्द हास बिखरे हुए हैं, उनकी जय हो। वे हास मेरे हृदयमें उस चिदानन्दमय चन्द्रद्रवको प्रकट कर रहे हैं, जो अज्ञानान्धकारका नाश करनेवाला है।

वार्षिक मूल्य
भारतमें १५)
विदेशमें २०)
(३० शिलिंग)

सम्पादक, मुद्रक तथा प्रकाशक
हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर
टीकाकार—पण्डित रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम'

एक
भारतमें
विदेशमें
(३

श्रीहरिः

खिलभाग हरिवंशकी विषय-सूची

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

४१–भगवान् विष्णुके वाराह, नृसिंह, वामन, दत्तात्रेय, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण, व्यास तथा कल्कि-अवतारोंकी संक्षिप्त कथा ··· ··· १४५

४२–भगवान् विष्णुके ईश्वरत्वका वर्णन एवं अद्भुत तारकामय संग्रामकी कथा ··· ··· १५६

४३–देवताओंके साथ युद्धके लिये उद्यत हुई दैत्य-सेनाका वर्णन ··· ··· १५९

४४–आश्चर्यतारकामय संग्राममें देवसेनाकी युद्धके लिये तैयारी ··· ··· १६१

४५–देवासुर-संग्राम एवं और्व अग्निकी उत्पत्ति १६५

४६–इन्द्रद्वारा चन्द्रमाकी स्तुति, चन्द्रदेव और वरुण-देवके द्वारा दैत्य-सेनाका संहार, मयदानवद्वारा मायाका प्रयोग, पवन और अग्निदेवका दैत्य-सेना-के साथ संग्राम और कालनेमिका रणमें आगमन १७०

४७–कालनेमिका युद्ध और प्रभाव ··· १७५

४८–कालनेमि और भगवान् विष्णुका संवाद, श्री-विष्णुद्वारा कालनेमिका वध तथा देवताओंको आश्वासन देकर ब्रह्मलोकको प्रस्थान ··· १७९

४९–ब्रह्मलोकमें भगवान् विष्णुका सत्कार ··· १८५

५०–नारायणाश्रममें भगवान् विष्णुका शयन और उत्थान तथा पास आये हुए ब्रह्मा आदि देवताओंसे उनके आगमनका प्रयोजन पूछना १८७

५१–ब्रह्माजीका भगवान् विष्णुसे जगत्की वर्तमान अवस्थाका वर्णन करते हुए पृथ्वीका भार उतारनेके लिये मन्त्रणा करनेका अनुरोध ··· १९१

५२–भगवान् विष्णु तथा सब देवताओंका मेरुपर्वतकी दिव्य सभामें उपस्थित होना और वहाँ पृथ्वीका भगवान्से भार उतारनेके लिये प्रार्थना करना ··· १९४

५३–ब्रह्माजीकी आज्ञासे देवताओंका अंशावतरण ··· १९८

५४–भगवान् विष्णुके प्रति देवर्षि नारदका वचन—भूलोककी वर्तमान अवस्थाका परिचय देकर भगवान्‌को अवतार ग्रहण करनेके लिये प्रेरित करना २०३

५५–भगवान् विष्णुके द्वारा नारदजीके कथनका उत्तर तथा ब्रह्माजीका भगवान्से उनके अवतार लेने-योग्य स्थान और पिता-माता आदिका परिचय देना २०९

(विष्णुपर्व)

१–मङ्गलाचरण, नारदजीका मथुरामें आकर कंसको आनेवाले भयकी सूचना देना और कंसका अपने सेवकोंके सामने बढ़-बढ़कर बातें बनाना ··· २१३

२–कंसद्वारा देवकीके गर्भके विनाशका प्रयत्न, भगवान् विष्णुका पाताललोकमें स्थित 'षड्गर्भ' नामक दैत्योंके जीवोंका आकर्षण करके उन्हें निद्रा-देवीके हाथमें देना और देवकीके गर्भमें क्रमशः स्थापित करनेका आदेश देकर अन्य कर्तव्य बताना तथा कार्यसाधनके अनन्तर बढ़नेवाली उस देवीकी महिमाका उल्लेख ··· २१५

३–आर्याकी स्तुति ··· ··· २१९

४–कंसद्वारा देवकीके नवजात शिशुओंकी हत्या, योगमायाद्वारा सातवें गर्भका संकर्षण, श्रीकृष्णका प्राकट्य और नन्दभवनमें प्रवेश, कंसद्वारा नन्द-कन्याको मारनेका प्रयत्न और उसका दिव्य रूपमें दर्शन देना, कंसद्वारा क्षमाप्रार्थना और देवकी-द्वारा उसे क्षमा-दान ··· ··· २२२

५–वसुदेवजीका नन्दको व्रजमें लौटनेकी सम्मति देना और नन्दजीका गोव्रजकी शोभा निहारते हुए वहाँ पधारना ··· ··· २२६

६–शकट-भञ्जन और पूतना-वध ··· २२९

७–श्रीकृष्ण और बलरामका व्रजमें घुटनोंके बल चलना तथा श्रीकृष्णका उलूखलमें बँधकर यमलार्जुन-भञ्जनकी लीला करना २३१

८–श्रीकृष्ण-बलरामकी बालचर्या, श्रीकृष्णके द्वारा व्रजको अन्यत्र ले जानेकी चेष्टा और अपने शरीरसे भेड़ियोंको उत्पन्न करके उनका समूचे व्रजको डराना ··· ··· ··· २३४

९–भेड़ियोंके उत्पातसे व्रजवासियोंका उस स्थानको छोड़कर श्रीवृन्दावनमें जाना ··· २३७

१०–वर्षा ऋतुका वर्णन ··· ··· २३९

११–श्रीकृष्णकी अङ्गच्छटा, भाण्डीर वट, यमुना और कालियदहका वर्णन तथा श्रीकृष्णद्वारा कालियनागके निग्रहका विचार ··· २४२

१२–श्रीकृष्णद्वारा कालियनागका दमन, उसका समुद्रको प्रस्थान तथा गोपोंको श्रीकृष्णकी महत्ताका अनुभव ··· २४३

१३–बलरामद्वारा धेनुकासुरका वध और भयरहित तालवनमें गौओं तथा गोपोंका विचरण ··· २५०

१४–बलरामद्वारा प्रलम्बासुरका वध ··· २५२

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या
१५–इन्द्रोत्सवके विषयमें श्रीकृष्णकी जिज्ञासा तथा एक वृद्ध गोपके द्वारा उसकी आवश्यकताका प्रतिपादन २५६
१६–श्रीकृष्णके द्वारा गिरियज्ञ एवं गोपूजनका प्रस्ताव करते हुए शरद् ऋतुका वर्णन ... २५७
१७–गोपोंद्वारा श्रीकृष्णकी बातको स्वीकार करके गिरियज्ञका अनुष्ठान तथा भगवान्‌का दिव्य रूप धारण करके उनकी पूजा ग्रहण करनेके पश्चात् उन्हें वर देना २६१
१८–इन्द्रका संवर्तक मेघोंद्वारा वर्षा कराकर गौओं और गोपोंको कष्टमें डालना, श्रीकृष्णद्वारा गोवर्धनधारण तथा उसके नीचे गौओं और गोपोंसहित व्रजवासियोंका जाना ... २६३
अध्याय विषय
१९–देवराज इन्द्रका आगमन, श्रीकृष्णका गोविन्द-पदपर अभिषेक तथा इन्द्रका श्रीकृष्णको भावी कार्य बताकर अर्जुनकी देख-भालके लिये कहना और श्रीकृष्णका उसे स्वीकार करना ...
२०–श्रीकृष्णका अलौकिक चरित्र देखकर आशङ्कित हुए गोपोंका उनसे प्रश्न और श्रीकृष्णद्वारा उत्तर तथा उनकी रासलीलाका संक्षेपसे वर्णन ...
२१–अरिष्टासुरका वध ... ...
२२–कंसकी आशङ्का, उसका रात्रिके समय यदुवंशियोंको बुलाकर भरी सभामें श्रीकृष्ण और विष्णुके प्रभावको बताना, वसुदेवपर कठोर आक्षेप करना तथा अक्रूरको श्रीकृष्ण आदिको बुला लानेके लिये व्रजमें जानेकी आज्ञा देना ...
२३–अन्धकका कंसको मुँहतोड़ उत्तर ...

चित्र-सूची

१–महाभारत लेखन (तिरंगा)
२–क्रीडाके आवेशमें बालकृष्ण (,,) ...
३–गरुडासनपर भगवान् विष्णु (एकरंगा) ...
४–लवणासुरकी श्रीरामको चुनौती (,,) ...
५–कालिय-ह्रदमें श्रीकृष्ण (,,) ...

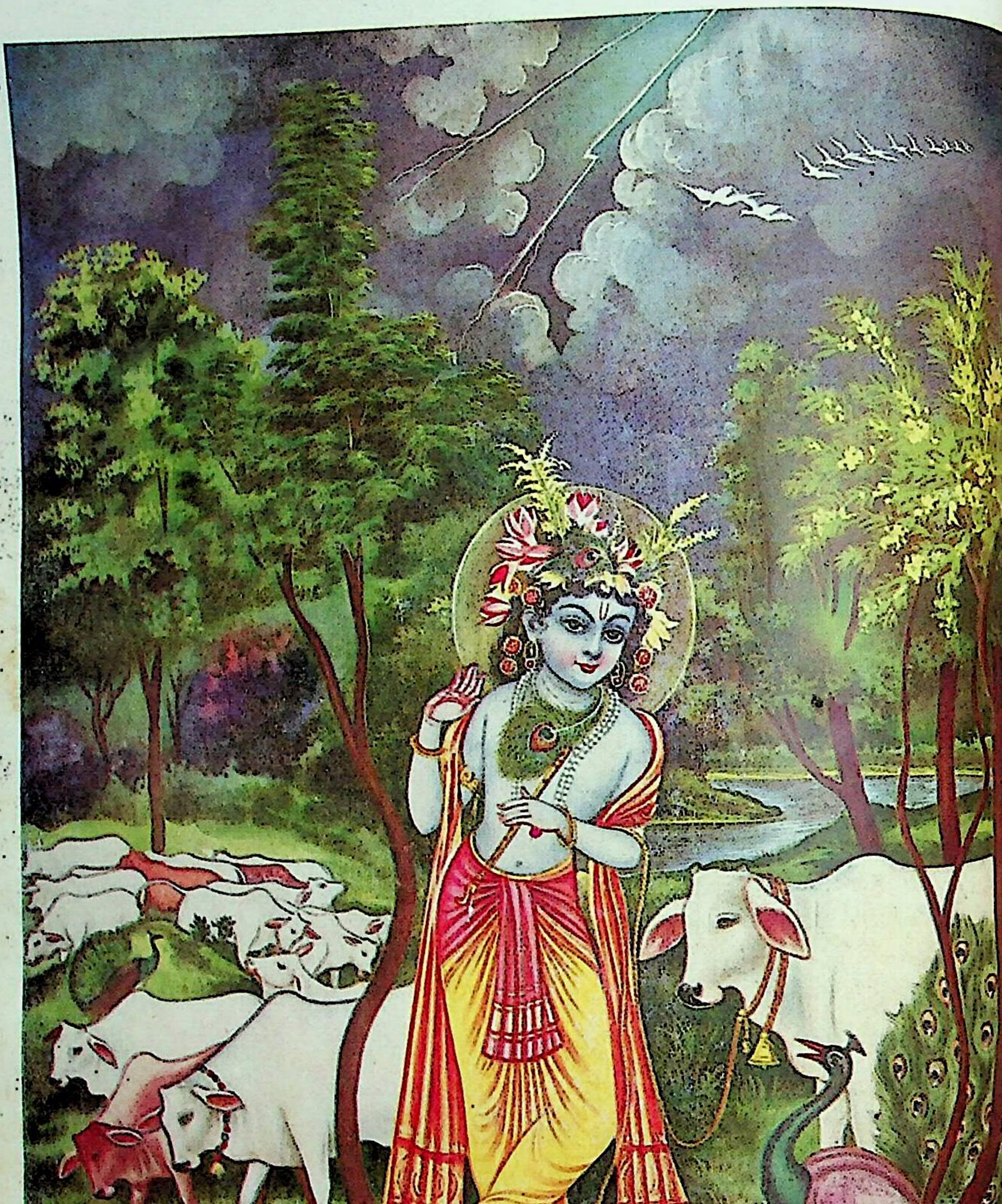

क्रीडाके आवेशमें बालकृष्ण

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवान् विष्णुके वाराह, नृसिंह, वामन, दत्तात्रेय, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण, व्यास तथा कल्कि-अवतारोंकी संक्षिप्त कथा

वैशम्पायन उवाच

प्रश्नभारो महांस्तात त्वयोक्तः शार्ङ्गधन्वनि ।
यथाशक्ति तु वक्ष्यामि श्रूयतां वैष्णवं यशः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—तात ! तुमने शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले भगवान् विष्णुके विषयमें यह प्रश्नका महान् भार मेरे ऊपर रख दिया । तथापि मैं यथाशक्ति तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर दूँगा । तुम श्रीहरिकी यशोगाथा—लीलाकथाका श्रवण करो ॥ १ ॥

विष्णोः प्रभावश्रवणे दिष्ट्या ते मतिरुत्थिता ।
हन्त विष्णोः प्रवृत्तिं च शृणु दिव्यां मयेरिताम् ॥२॥

भगवान् विष्णुके प्रभावको सुननेमें जो तुम्हारे मनकी प्रवृत्ति हुई है, यह बड़े सौभाग्यकी बात है । अतः मैं हर्षपूर्वक श्रीहरिकी दिव्य लीला-कथाका वर्णन करता हूँ । तुम ध्यान देकर उसे सुनो ॥ २ ॥

सहस्राक्षं सहस्रास्यं सहस्रचरणं च यम् ।
सहस्रशिरसं देवं सहस्रकरमव्ययम् ॥ ३ ॥
सहस्रजिह्वं भास्वन्तं सहस्रमुकुटं प्रभुम् ।
सहस्रदं सहस्रादिं सहस्रभुजमव्ययम् ॥ ४ ॥
सवनं हवनं चैव हव्यं होतारमेव च ।
पात्राणि च पवित्राणि वेदिं दीक्षां चरुं स्रुवम् ॥ ५ ॥
स्रुक्सोमं शूर्पमुसलं प्रोक्षणं दक्षिणायनम् ।
अध्वर्युं सामगं विप्रं सदस्यं सदनं सदः ॥ ६ ॥
यूपं समित्कुशं दर्वीं चमसोलूखलानि च ।
प्राग्वंशं यज्ञभूमिं च होतारं चयनं च यत् ॥ ७ ॥
ह्रस्वान्यतिप्रमाणानि चराणि स्थावराणि च ।
प्रायश्चित्तानि चार्थं च स्थण्डिलानि कुशांस्तथा ॥८॥
मन्त्रं यज्ञवहं वह्निं भागं भागवहं च यत् ।
अग्रेभुजं सोमभुजं घृतार्चिषमुदायुधम् ॥ ९ ॥
आहुर्वेदविदो विप्रा यं यज्ञे शाश्वतं विभुम् ।
तस्य विष्णोः सुरेशस्य श्रीवत्साङ्कस्य धीमतः ॥ १० ॥
प्रादुर्भावसहस्राणि अतीतानि न संशयः ।
भूयश्चैव भविष्यन्तीत्येवमाह प्रजापतिः ॥ ११ ॥

वेदवेत्ता ब्राह्मण जिन्हें सहस्रमुख, सहस्रनेत्र, सहस्रचरण, सहस्र-शिर, सहस्र-कर, अविनाशी देव, सहस्रों जिह्वाओंसे युक्त, प्रकाशमान, सहस्रों मुकुटोंसे सुशोभित, प्रभु, सहस्रोंका दान करनेवाले, सहस्रों प्राणियोंके आदिस्रष्टा, सहस्रबाहु, अविकारी, सवन (यज्ञोपयोगी काल), हवनरूप कर्म, हव्य (हवनीय पदार्थ), होता (यजमान), यज्ञपात्र, पवित्रक, वेदी, दीक्षा, चरु, स्रुवा, स्रुक्, सोम, सूप, मूसल, प्रोक्षणी (पात्र), दक्षिणायन, अध्वर्यु (यजुर्वेदी), साम गान करनेवाला ब्राह्मण, सदस्य, पत्नीशाला, सभा, यूप, समिधा, कुशा, दर्वी, चमस, ऊखल, प्राग्वंश (यज्ञमण्डपमें स्थित यजमान-गृह), यज्ञभूमि, होता (ऋत्विज), चयन (ईंटोंकी बनी हुई वेदी), छोटे-बड़े चराचर जीव, प्रायश्चित्त, प्रयोजन या फल, स्थण्डिल (वेदी), कुश, मन्त्र, यज्ञवाहक अग्नि, देवताओंका भाग, भागवाहक, अग्रासनभोजी, सोमभोक्ता, घीकी आहुतिसे उठनेवाली ज्वाला, उदायुध (यज्ञ-समाप्तिके समय की जानेवाली उदयनीय नामक इष्टि) तथा यज्ञमें विद्यमान सनातन प्रभु कहते हैं, उन श्रीवत्सचिह्नविभूषित देवेश्वर बुद्धिमान् भगवान् विष्णुके सहस्रों अवतार हो चुके हैं और भविष्यमें भी समय-समयपर बारंबार होते रहेंगे—इसमें संशय नहीं है । ऐसा प्रजापति ब्रह्माजीका कथन है ॥ ३—११ ॥

यत् पृच्छसि महाराज पुण्यां दिव्यां कथां शुभाम् ।
यदर्थं भगवान् विष्णुः सुरेशो रिपुसूदनः ।
देवलोकं समुत्सृज्य वसुदेवकुलेऽभवत् ॥ १२ ॥
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि शृणु सर्वमशेषतः ।
वासुदेवस्य माहात्म्यं चरितं च महाद्युतेः ॥ १३ ॥

महाराज ! तुम जिस पवित्र, दिव्य एवं मङ्गलमयी कथाको पूछ रहे हो, उसका तथा जिस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये देवताओंके स्वामी शत्रुनाशक भगवान् विष्णु देवलोकको त्यागकर वसुदेवके कुलमें अवतीर्ण हुए थे, उसका भी मैं तुमसे भलीभाँति वर्णन करूँगा, तुम वह सब प्रसङ्ग पूर्णरूपसे सुनो । साथ ही महातेजस्वी वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णका माहात्म्य एवं चरित्र भी श्रवण करो ॥ १२-१३ ॥

हितार्थं सुरमर्त्यानां लोकानां प्रभवाय च ।
बहुशः सर्वभूतात्मा प्रादुर्भवति कार्यतः ॥ १४ ॥

समस्त भूतोंके आत्मा भगवान् श्रीहरि देवता और मनुष्योंका कल्याण तथा लोकोंका अभ्युदय करनेके लिये आवश्यकतावश बारंबार अवतीर्ण होते हैं ॥ १४ ॥

प्रादुर्भावांश्च वक्ष्यामि पुण्यान् दिव्यगुणैर्युतान् ।
छान्दसीभिरुदाराभिः श्रुतिभिः समलंकृतान् ॥१५॥

मैं भगवान्के उदार वैदिक श्रुतियोंद्वारा वर्णित दिव्य गुणवाले पवित्र अवतारोंका वर्णन करूँगा ॥ १५ ॥

शुचिः प्रयतवाग् भूत्वा निबोध जनमेजय ।

इदं पुराणं परमं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम् ॥ १६ ॥
हन्त ते कथयिष्यामि विष्णोर्दिव्यां कथां शृणु ।

जनमेजय ! यह पवित्र एवं श्रेष्ठ पुराण वेदोंके समान सम्मानित है। तुम पवित्र एवं मौन होकर इसे सुनो। मैं बड़े हर्षके साथ तुमसे भगवान् विष्णुकी यह दिव्य कथा कहता हूँ। इसे श्रवण करो ॥ १६½ ॥

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
धर्मसंस्थापनार्थाय तदा सम्भवति प्रभुः ॥ १७ ॥

भारत ! जब-जब धर्मका ह्रास होता है, तब-तब प्रभु धर्मको दृढ़ रूपमें स्थापित करनेके लिये अवतार ग्रहण करते हैं ॥ १७ ॥

तस्य ह्येका महाराज मूर्तिर्भवति सत्तमा ।
नित्यं दिविष्ठा या राजंस्तपश्चरति दुश्चरम् ॥ १८ ॥

राजन् ! महाराज ! उनकी एक श्रेष्ठतम सात्त्विकी मूर्ति है, जो दिव्यलोकमें रहकर सदा दुष्कर तप करती है ॥ १८ ॥

द्वितीया चास्य शयने निद्रायोगमुपाययौ ।
प्रजासंहारसर्गार्थं किमध्यात्मविचिन्तकम् ॥ १९ ॥

उनकी दूसरी मूर्ति प्रजाके संहार और सृष्टिके लिये योगनिद्राका आश्रय ले शेषशय्यापर शयन करती है। वह योगनिद्रा अध्यात्मचिन्तकोंकी समाधिसे भी उत्कृष्ट है ॥ १९ ॥

सुप्त्वा युगसहस्रं स प्रादुर्भवति कार्यवान् ।
पूर्णे युगसहस्रे तु देवदेवो जगत्पतिः ॥ २० ॥
पितामहो लोकपालाश्चन्द्रादित्यौ हुताशनः ।
ब्रह्मा च कपिलश्चैव परमेष्ठी तथैव च ॥ २१ ॥
देवाः सप्तर्षयश्चैव त्र्यम्बकश्च महायशाः ।
वायुः समुद्राः शैलाश्च तस्य देहं समाश्रिताः ॥ २२ ॥

एक सहस्र चतुर्युगोंतक शयन करके वे सृष्टि-संचालनके कार्यसे पुनः विभिन्न (दैवता आदिके) रूपोंमें प्रकट होते हैं। सहस्र युग पूर्ण हो जानेपर वे देवाधिदेव जगदीश्वर विष्णु ही पितामह ब्रह्मा, इन्द्रादि लोकपाल, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, कपिल, परमेष्ठी (दक्ष), देवता, सप्तर्षि और महायशस्वी त्रिनेत्रधारी शिव आदिके रूपमें प्रादुर्भूत होते हैं। वायु, समुद्र और पर्वत—ये सब-के-सब उन्हींके विराट् रूपका आश्रय लेकर स्थित हैं ॥ २०—२२ ॥

सनत्कुमारश्च महानुभावो
मनुर्महात्मा भगवान् प्रजाकरः ।
पुराणदेवोऽथ पुराणि चक्रे
प्रदीप्तवैश्वानरतुल्यतेजाः ॥ २३ ॥

महान् प्रभावशाली सनत्कुमार और प्रजाकी सृष्टि करनेवाले ऐश्वर्यशाली महात्मा मनु भी उन्हींके स्वरूप हैं। प्रदीप्त अग्निके समान तेजस्वी उन पुराणदेव श्रीहरिने ही समस्त देहधारियोंके शरीरोंकी रचना की है ॥ २३ ॥

येन चार्णवमध्यस्थौ नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
नष्टे देवासुरगणे प्रणष्टोरगराक्षसे ॥
योद्धुकामौ सुदुर्धर्षौ दानवौ मधुकैटभौ ।
हतौ प्रभवता तेन तयोर्दत्त्वामितं वरम् ॥

महाप्रलयके समय जब कि देवता, असुरगण, नाग राक्षस आदि समस्त चराचर प्राणी नष्ट हो गये थे, एका जलमें दो अत्यन्त दुर्धर्ष दानव प्रकट हुए। उनके मधु और कैटभ। वे दोनों युद्ध चाहते थे। सर्वश भगवान् विष्णुने ही उन दोनोंको मोक्षका अनुपम वर मार डाला था ॥ २४-२५ ॥

पुरा कमलनाभस्य स्वपतः सागराम्भसि ।
पुष्करे यत्र सम्भूता देवाः सर्षिगणाः पुरा ॥

पूर्वकालमें जब कमलनाभ भगवान् विष्णु समुद्रके शयन कर रहे थे, उनकी नाभिसे एक कमल प्रकट हुआ, पहले ऋषियोंसहित सम्पूर्ण देवताओंका प्रादुर्भाव हुआ ॥

एष पौष्करको नाम प्रादुर्भावो महात्मनः ।
पुराणे कथ्यते यत्र वेदः श्रुतिसमाहितः ॥

पुराणमें यह परमात्मा विष्णुका पौष्कर नामका अव सर्ग कहा जाता है। पुराण वह विद्या है, जिसमें मन्त्र ब्राह्मण-भागकी श्रुतियोंसे सम्पन्न सम्पूर्ण वेद ही प्रति (पुराणोंमें वेदार्थका ही विस्तार किया गया है) ॥

वाराहस्तु श्रुतिमुखः प्रादुर्भावो महात्मनः ।
यत्र विष्णुः सुरश्रेष्ठो वाराहं रूपमास्थितः ।
महीं सागरपर्यन्तां सशैलवनकाननाम् ॥

उन परमात्माका जो वाराह नामक अवतार है, वह वर्णित है। उस अवतारके समय सुरश्रेष्ठ भगवान् वाराहरूप धारणकर पर्वत और वनसहित समुद्रतक पृथ्वीका जलसे उद्धार किया था ॥ २८ ॥

वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तश्चितीमुखः ।
अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः ॥

चारों वेद उनके चार चरण और यूप उनकी दाढ़ यज्ञ दाँत और श्येनचित् आदि चिति (इष्टिका-चयन) है। साक्षात् अग्नि ही उनकी जिह्वा, कुशा रोमावलि ब्रह्म मस्तक है। उनका तप महान् है ॥ २९ ॥

अहोरात्रेक्षणो दिव्यो वेदाङ्गः श्रुतिभूषणः ।
आज्यनासः स्रुवातुण्डः सामघोषस्वनो महान् ॥

दिन और रात्रि उनके नेत्र हैं, वे दिव्यस्वरू वेद उनका अङ्ग और श्रुतियाँ आभूषण हैं। हविष्य (नासिका, स्रुवा थूथन और सामवेदका गम्भीर घोष ही स्वर है। वे महान् हैं ॥ ३० ॥

धर्मसत्यमयः श्रीमान् क्रमविक्रमसत्कृतः ।
प्रायश्चित्तनखो धीरः पशुजानुर्महाभुजः ॥ ३१ ॥

धर्म और सत्य उनका स्वरूप है। वे श्रीसम्पन्न तथा क्रम (गति) और विक्रम (पराक्रम) के द्वारा सम्मानित हैं। प्रायश्चित्त उनके नख और पशु उनके घुटने हैं। वे धीर तथा विशाल भुजाओंसे युक्त हैं ॥ ३१ ॥

उद्गात्रन्त्रो होमलिङ्गः फलबीजमहौषधिः ।
वाय्वन्तरात्मा मन्त्रस्फिग्विकृतः सोमशोणितः ॥३२॥

उद्गाता अन्त्र (आँत), होम लिङ्ग तथा बड़ी-बड़ी ओषधियाँ उनके अण्डकोश और वीर्य हैं। वायु अन्तरात्मा, मन्त्र नितम्ब और निचोड़कर निकाला हुआ सोमरस ही उनका रक्त है ॥ ३२ ॥

वेदिस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यातिवेगवान् ।
प्राग्वंशकायो द्युतिमान् नानादीक्षाभिरार्चितः ॥ ३३ ॥

वेदी ही कंधा, हविष्य गन्ध तथा हव्य और कव्य उनका प्रचण्ड वेग है। प्राग्वंश (यजमान-गृह) उनका शरीर है। वे परम कान्तिमान् और नाना प्रकारकी दीक्षाओंसे सम्पन्न हैं ॥ ३३ ॥

दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो महान् ।
उपाकर्मोष्ठरुचकः प्रवर्ग्यावर्तभूषणः ॥ ३४ ॥

दक्षिणा ही उनका हृदय है। महान् सत्र (लंबे काल-तक चलनेवाले यज्ञ) उन महान् योगीका स्वरूप है। वेदोंका स्वाध्याय उनके ओठोंका आभूषण है और प्रवर्ग्य नामक कर्मकी आवृत्ति ही उनका भूषण है ॥ ३४ ॥

नानाछन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः ।
छायापत्नीसहायो वै मेरुशृङ्ग इवोच्छ्रितः ॥ ३५ ॥

अनेक प्रकारके छन्दोंकी गति उनका मार्ग है और वे गोपनीय उपनिषद्रूपी आसनपर विराजमान रहते हैं। जलमें पड़नेवाली छाया (परछाईं) ही पत्नीकी भाँति उस समय उनकी सहायिका थी और वे मेरुपर्वतके शिखरके समान ऊँचे जान पड़ते थे ॥ ३५ ॥

महीं सागरपर्यन्तां सशैलवनकाननाम् ।
एकार्णवजले भ्रष्टामेकार्णवगतः प्रभुः ॥ ३६ ॥
दंष्ट्रया यः समुद्धृत्य लोकानां हितकाम्यया ।
सहस्रशीर्षो देवादिश्चकार पृथिवीं पुनः ॥ ३७ ॥

उन सहस्रों सिरवाले भगवान् वाराहने, जो देवताओंके आदिकारण हैं, एकार्णवके जलमें प्रवेश करके उसमें डूबी हुई पर्वत, वन और काननोंसहित समुद्रतककी सारी पृथ्वीको अपनी दाढ़से ऊपर उठाकर सम्पूर्ण लोकोंके हितकी कामनासे पुनः उसे जलके ऊपर स्थिरतापूर्वक स्थापित कर दिया ॥

एवं यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना ।
उद्धृता पृथिवी सर्वा सागराम्बुधरा पुरा ॥ ३८ ॥

इस प्रकार प्रकट होकर समस्त प्राणियोंका हित चाहनेवाले यज्ञात्मा भगवान् वाराहने समुद्र-जलको धारण करनेवाली समूची पृथ्वीका पूर्वकालमें उद्धार किया था ॥ ३८ ॥

वाराह एष कथितो नारसिंहमतः शृणु ।
यत्र भूत्वा मृगेन्द्रेण हिरण्यकशिपुर्हतः ॥ ३९ ॥

यह वाराह-अवतारकी कथा कही गयी। इसके बाद नरसिंह-अवतार हुआ, उसका वर्णन सुनो। उस अवतारमें भगवान्‌ने नरसिंहरूप धारण करके हिरण्यकशिपु नामक दैत्य-का वध किया था ॥ ३९ ॥

पुरा कृतयुगे राजन् सुरारिर्बलदर्पितः ।
दैत्यानामादिपुरुषश्चचार तप उत्तमम् ॥ ४० ॥
दश वर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च ।
जपोपवासनिरतः स्थानमौनदृढव्रतः ॥ ४१ ॥

राजन्! पहले सत्ययुगमें देवताओंका शत्रु हिरण्यकशिपु समस्त दैत्योंका आदि पुरुष था। उसे अपने बलका बड़ा घमंड था। उसने साढ़े ग्यारह हजार वर्षोंतक बड़ी भारी तपस्या की। वह सदा जप और उपवासमें संलग्न रहता था। दृढ़ आसन लगाकर मौनावलम्बनपूर्वक दृढ़ताके साथ उत्तम व्रतका पालन करता था ॥ ४०-४१ ॥

ततः शमदमाभ्यां च ब्रह्मचर्येण चानघ ।
ब्रह्मा प्रीतोऽभवत् तस्य तपसा नियमेन च ॥ ४२ ॥

निष्पाप नरेश! तदनन्तर उसके इन्द्रिय-संयम, मनो-निग्रह, ब्रह्मचर्य, तपस्या और शौच-संतोषादि नियमोंके पालनसे ब्रह्माजी उसके ऊपर बहुत प्रसन्न हुए ॥ ४२ ॥

तं वै स्वयम्भूर्भगवान् स्वयमागत्य भूपते ।
विमानेनार्कवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता ॥ ४३ ॥

भूपाल! स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजी हंससे युक्त सूर्यके समान तेजस्वी विमानद्वारा स्वयं वहाँ पधारे ॥ ४३ ॥

आदित्यैर्वसुभिः साध्यैर्मरुद्भिर्दैवतैः सह ।
रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसकिंनरैः ॥ ४४ ॥
दिशाभिर्विदिशाभिश्च नदीभिः सागरैस्तथा ।
नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खेचरैश्च महाग्रहैः ॥ ४५ ॥
देवर्षिभिस्तपोवृद्धैः सिद्धैः सप्तर्षिभिस्तथा ।
राजर्षिभिः पुण्यतमैर्गन्धर्वैश्चाप्सरोगणैः ॥ ४६ ॥

उनके साथ आदित्य, वसु, साध्य, मरुद्गण, अन्य देवगण, रुद्रगण, विश्वेदेव, यक्ष, राक्षस, किंनर, दिशाएँ, विदिशाएँ, नदियाँ, समुद्र, नक्षत्र, मुहूर्त, आकाशचारी महान् ग्रह, तपस्यामें बढ़े-चढ़े देवर्षि, सिद्ध, सप्तर्षि, परम पुण्यात्मा राजर्षि, गन्धर्व तथा अप्सराएँ भी थीं ॥ ४४–४६ ॥

चराचरगुरुः श्रीमान् वृतः सर्वैः सुरैस्तथा ।
ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत् ॥ ४७ ॥

सम्पूर्ण देवताओंसे घिरे हुए ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ चराचर-गुरु श्रीमान् ब्रह्मा उस दैत्यसे इस प्रकार बोले—॥ ४७ ॥

प्रीतोऽस्मि तव भक्तस्य तपसानेन सुव्रत ।
वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि ॥ ४८ ॥

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले दैत्यराज ! तुम मेरे भक्त हो । तुम्हारी इस तपस्यासे मैं बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारा भला हो । तुम कोई वर माँगो और मनोवाञ्छित भोग प्राप्त करो' ॥ ४८ ॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ।
न मानुषाः पिशाचाश्च निहन्युर्मां कथंचन ॥ ४९ ॥
ऋषयो वा न मां शापैः क्रुद्धा लोकपितामह ।
शपेयुस्तपसा युक्ता वरमेतं वृणोम्यहम् ॥ ५० ॥

हिरण्यकशिपु बोला—लोकपितामह ! मुझे देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, नाग, राक्षस, मनुष्य और पिशाच किसी तरह मार न सकें । तपस्वी ऋषि-महर्षि कुपित होकर मुझे शाप न दें, मैं आपसे यही वर माँगता हूँ ॥ ४९-५० ॥

न शस्त्रेण न चास्त्रेण गिरिणा पादपेन वा ।
न शुष्केण न चार्द्रेण स्यान्न चान्येन मे वधः ॥ ५१ ॥

न शस्त्रसे, न अस्त्रसे, न पर्वत अथवा वृक्षसे, न सूखेसे, न गीलेसे और न दूसरे ही किसी आयुधसे मेरा वध हो ॥ ५१ ॥

पाणिप्रहारेणैकेन सभृत्यबलवाहनम् ।
यो मां नाशयितुं शक्तः स मे मृत्युर्भविष्यति ॥ ५२ ॥

जो मेरे सेवक, सेना और वाहनोंसहित मुझे एक ही थप्पड़से मार डालनेमें समर्थ हो, उसीके हाथसे मेरी मृत्यु हो ॥ ५२ ॥

भवेयमहमेवार्कः सोमो वायुर्हुताशनः ।
सलिलं चान्तरिक्षं च नक्षत्राणि दिशो दश ॥ ५३ ॥

मैं ही सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, जल, आकाश, नक्षत्र और दसों दिशाओंके रूपमें स्थित रहूँ ॥ ५३ ॥

अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो वासवो यमः ।
धनदश्च धनाध्यक्षो यक्षः किंपुरुषाधिपः ॥ ५४ ॥

मैं ही काम और क्रोधका अधिष्ठाता होऊँ । मैं ही वरुण, इन्द्र, यम, धनाध्यक्ष कुबेर, यक्ष एवं किम्पुरुषोंका स्वामी होऊँ ॥ ५४ ॥

एवमुक्तस्तु दैत्येन स्वयम्भूर्भगवांस्तदा ।
उवाच दैत्यराजं तं प्रहसन् नृपसत्तम ॥ ५५ ॥

नृपश्रेष्ठ ! उस दैत्यके यों कहनेपर स्वयम्भू भग ब्रह्मा ठठाकर हँस पड़े और उस समय उस दैत्यराजसे प्रकार बोले ॥ ५५ ॥

ब्रह्मोवाच

एते दिव्या वरास्तात मया दत्तास्तवाद्भुताः ।
सर्वान् कामानिमांस्तात प्राप्स्यसि त्वं न संशयः ॥५

ब्रह्माजीने कहा—तात ! ये दिव्य और अद्भुत मैंने तुम्हें दे दिये । तुम इन सम्पूर्ण अभीष्टोंको प्राप्त लोगे, इसमें संशय नहीं है ॥ ५६ ॥

एवमुक्त्वा तु भगवाञ्जगामाकाशमेव हि ।
वैराजं ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥ ५७

यों कहकर भगवान् ब्रह्मा आकाशमें स्थित, ब्रह्मर्षिगणोंसे सेवित वैराजपद नामक ब्रह्मधामको चले गये ॥ ५७ ॥

ततो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा मुनयस्तथा ।
वरप्रदानं श्रुत्वा ते पितामहमुपस्थिताः ॥ ५८

तदनन्तर देवता, नाग, गन्धर्व और मुनि वह वरदान सुनकर पितामह ब्रह्माजीके पास गये ॥ ५८ ॥

विभुं विज्ञापयामासुर्देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥ ५९

वहाँ पहुँचकर इन्द्र आदि देवताओंने भगवान् ब्रह्मा अपने मानसिक भयको इस प्रकार सूचित किया ॥ ५९ ॥

देवा ऊचुः

वरेणानेन भगवन् बाधयिष्यति नोऽसुरः ।
ततः प्रसीद भगवन् वधोऽप्यस्य विचिन्त्यताम् ॥ ६०
भवान् हि सर्वभूतानां स्वयम्भूरादिकृद् विभुः ।
स्रष्टा च हव्यकव्यानामव्यक्तप्रकृतिर्ध्रुवः ॥ ६१

देवता बोले—भगवन् ! इस वरके प्रभावसे तो असुर हमलोगोंको सदा ही महान् कष्ट पहुँचाता रहे अतः आप प्रसन्न होइये और उसके वधका भी कोई उ सोचिये; क्योंकि आप ही सम्पूर्ण भूतोंके आदिस्रष्टा, स्वयम् सर्वव्यापी, हव्य-कव्यके निर्माता, अव्यक्तप्रकृति ध्रुवस्वरूप हैं ॥ ६०-६१ ॥

ततो लोकहितं वाक्यं श्रुत्वा देवः प्रजापतिः ।
प्रोवाच भगवान् वाक्यं सर्वान् देवगणांस्तदा ॥ ६२

उस समय देवताओंका यह लोकहितकारी वचन कर उन प्रजापतिदेव भगवान् ब्रह्माने समस्त देवताओंसे प्रकारकी बात कही—॥ ६२ ॥

अवश्यं त्रिदशास्तेन प्राप्तव्यं तपसः फलम् ।
तपसोऽन्तेऽस्य भगवान् वधं विष्णुः करिष्यति॥ ६

'देवताओ ! उस असुरको अपनी तपस्याका फल अ

प्राप्त होगा । (फल-भोगके द्वारा) जब तपस्याकी समाप्ति हो जायगी, तब भगवान् विष्णु स्वयं ही उसका वध करेंगे'॥ ६३॥

एतच्छ्रुत्वा सुराः सर्वे वाक्यं पङ्कजसम्भवात्।
स्वानि स्थानानि दिव्यानि जग्मुस्ते वै मुदान्विताः॥ ६४॥

कमलयोनि ब्रह्माजीके मुखसे यह बात सुनकर समस्त देवता प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने दिव्य स्थानोंको चले आये ॥ ६४ ॥

लब्धमात्रे वरे चापि सर्वाः सोऽबाधत प्रजाः।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वरदानेन दर्पितः॥ ६५॥

वह वर पाते ही दैत्य हिरण्यकशिपु समस्त प्रजाको कष्ट देने लगा; क्योंकि ब्रह्माजीके उस वरदानसे उसका घमंड बहुत बढ़ गया था ॥ ६५ ॥

आश्रमेषु महाभागान् मुनीन् वै शंसितव्रतान्।
सत्यधर्मरतान् दान्तान् पुरा धर्षितवांस्तु सः॥ ६६॥

सबसे पहले आश्रमोंमें रहनेवाले उत्तम व्रतके पालक, सत्यधर्मपरायण तथा जितेन्द्रिय महाभाग मुनियोंको उसने पीड़ा देना आरम्भ किया ॥ ६६ ॥

देवांस्त्रिभुवनस्थांस्तु पराजित्य महासुरः।
त्रैलोक्यं वशमानीय स्वर्गे वसति दानवः॥ ६७॥

तीनों लोकोंमें रहनेवाले देवताओंको हराकर त्रिलोकीके राज्यको अपने वशमें करके वह महान् असुर दानव स्वर्गमें रहने लगा ॥ ६७ ॥

यदा वरमदोन्मत्तो न्यवसद् दानवो दिवि।
यज्ञियान् कृतवान् दैत्यान् देवांश्चैवाप्ययज्ञियान्॥ ६८॥

वरदानके मदसे उन्मत्त हुआ वह दानव जब देवलोकमें निवास करता था, उन दिनों उसने दैत्योंको तो यज्ञका भागी बनाया और देवताओंको उससे वञ्चित कर दिया ॥

आदित्याश्च ततो रुद्रा विश्वे च मरुतस्तथा।
शरण्यं शरणं विष्णुमुपाजग्मुर्महाबलम्॥ ६९॥
वेदयज्ञमयं ब्रह्म ब्रह्मदेवं सनातनम्।
भूतं भव्यं भविष्यं च प्रभुं लोकनमस्कृतम्।
नारायणं विभुं देवाः शरणं शरणागताः॥ ७०॥

तब आदित्य, रुद्र, विश्वेदेव और मरुद्गण आदि मिलकर शरणागतवत्सल, वेद एवं यज्ञस्वरूप, ब्रह्माजीके भी आराध्यदेव, सनातन ब्रह्मरूप महाबली भगवान् विष्णुकी शरणमें गये। भूत, वर्तमान और भविष्य जिनका स्वरूप है, जो सब कुछ करनेमें समर्थ तथा समस्त लोकोंद्वारा वन्दित हैं, उन्हीं सर्वव्यापी नारायणकी उन शरणागत देवताओंने शरण ली॥ ६९-७०॥

देवा ऊचुः

त्रायस्व नोऽद्य देवेश हिरण्यकशिपोर्भयात्।
त्वं हि नः परमो धाता ब्रह्मादीनां सुरोत्तम॥ ७१॥

देवता बोले—देवेश्वर! आप हिरण्यकशिपुके भयसे अब हमारी रक्षा करें। सुरश्रेष्ठ! आप हम ब्रह्मा आदि देवताओंके भी परम पालक हैं ॥ ७१ ॥

त्वं हि नः परमो देवस्त्वं हि नः परमो गुरुः।
उत्फुल्लाम्बुजपत्राक्षः शत्रुपक्षभयंकरः।
क्षयाय दितिवंशस्य शरण्यस्त्वं भवस्व नः॥ ७२॥

आप ही हमारे परम देवता और आप ही हमारे परम गुरु हैं। आपके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान शोभा पाते हैं। आप शत्रुपक्षको भय देनेवाले हैं। प्रभो! आप दैत्योंके विनाशके लिये हमारे शरणदाता हों ॥ ७२ ॥

विष्णुरुवाच

भयं त्यजध्वममरा ह्यभयं वो ददाम्यहम्।
तथैवं त्रिदिवं देवाः प्रतिपत्स्यथ माचिरम्॥ ७३॥

भगवान् विष्णुने कहा—देवताओ! भय छोड़ दो। मैं तुम्हें अभय देता हूँ। तुम शीघ्र ही पहलेकी भाँति स्वर्गलोक प्राप्त कर लोगे ॥ ७३ ॥

एष तं सगणं दैत्यं वरदानेन दर्पितम्।
अवध्यममरेन्द्राणां दानवेन्द्रं निहन्म्यहम्॥ ७४॥

जो वरदान पाकर घमंडमें भर गया है तथा जो देवेश्वरोंके लिये अवध्य हो गया है, उस दितिपुत्र दानवराज हिरण्यकशिपुको उसके सेवकोंसहित मार डालता हूँ ॥ ७४ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा स भगवान् विसृज्य त्रिदशेश्वरान्।
हिरण्यकशिपो राजन्नाजगाम हरिः सभाम्॥ ७५॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर भगवान् विष्णुने उन देवेश्वरोंको तो विदा कर दिया और स्वयं हिरण्यकशिपुके सभाभवनमें पधारे ॥ ७५ ॥

नरस्य कृत्वार्धतनुं सिंहस्यार्धतनुं प्रभुः।
नारसिंहेन वपुषा पाणिं निष्पिष्य पाणिना॥ ७६॥

उस समय उन प्रभुने अपना आधा शरीर मनुष्यका-सा बना लिया था और आधा सिंहका-सा। इस प्रकार नृसिंहरूप धारण करके वे एक हाथसे दूसरे हाथको रगड़ते हुए वहाँ आये ॥ ७६ ॥

जीमूतघनसंकाशो जीमूतघननिःस्वनः।
जीमूतघनदीप्तौजा जीमूत इव वेगवान्॥ ७७॥

उनके शरीरका वर्ण सजल मेघके समान श्याम था। उनका शब्द भी जलपूर्ण मेघकी गर्जनाके समान ही गम्भीर था। उनके उद्दीप्त तेज और वेग भी बरसनेवाले बादलके ही तुल्य थे ॥ ७७ ॥

दैत्यं सोऽतिबलं दीप्तं दृप्तशार्दूलविक्रमम्।
दृप्तैर्दैत्यगणैर्गुप्तं हतवानेकपाणिना॥ ७८॥

यद्यपि दैत्य हिरण्यकशिपु अत्यन्त बलवान्, तेजस्वी, दर्पमें भरे हुए सिंहके समान पराक्रमी तथा बलाभिमानी दैत्यों-द्वारा सुरक्षित था, तो भी भगवान् नृसिंहने उसे एक ही थप्पड़से मारकर यमलोक पहुँचा दिया ॥ ७८ ॥

नृसिंह एष कथितो भूयोऽयं वामनोऽपरः ।
यत्र वामनमाश्रित्य रूपं दैत्यविनाशकृत् ॥ ७९ ॥

यह नृसिंहावतारकी कथा कही गयी। अब दूसरे वामन-अवतारका वर्णन सुनो, जिसमें वामनरूप धारण करके भगवान्ने दैत्योंका विनाश किया था ॥ ७९ ॥

बलेर्बलवतो यज्ञे बलिना विष्णुना पुरा ।
विक्रमैस्त्रिभिरक्षोभ्याः क्षोभितास्ते महासुराः ॥ ८० ॥

पूर्वकालमें सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णु (वामनरूप धारण-कर) बलवान् बलिके यज्ञमें गये और वहाँ उन्होंने अपने तीन ही पगोंसे (त्रिलोकीको नापकर) किसीसे क्षुब्ध न होनेवाले बड़े-बड़े असुरोंको क्षुब्ध कर डाला ॥ ८० ॥

विप्रचित्तिः शिविः शङ्कुरयःशङ्कुस्तथैव च ।
अयःशिराः शङ्कुशिरा हयग्रीवश्च वीर्यवान् ॥ ८१ ॥
वेगवान् केतुमानुग्रः सोमव्यग्रो महासुरः ।
पुष्करः पुष्कलश्चैव वेपनश्च महारथः ॥ ८२ ॥
बृहत्कीर्तिर्महाजिह्वः साश्वोऽश्वपतिरेव च ।
प्रह्लादोऽश्वशिराः कुम्भः संह्लादो गगनप्रियः ।
अनुह्लादो हरिहरौ वराहः शंकरो रुजः ॥ ८३ ॥
शरभः शलभश्चैव कुपनः कोपनः क्रथः ।
बृहत्कीर्तिर्महाजिह्वः शङ्कुकर्णो महास्वनः ॥ ८४ ॥
दीर्घजिह्वोऽर्कनयनो मृदुचापो मृदुप्रियः ।
वायुर्यविष्ठो नमुचिः शम्बरो विज्वरो महान् ॥ ८५ ॥
चन्द्रहन्ता क्रोधहन्ता क्रोधवर्धन एव च ।
कालकः कालकेयश्च वृत्रः क्रोधो विरोचनः ॥ ८६ ॥
गरिष्ठश्च वरिष्ठश्च प्रलम्बनरकावुभौ ।
इन्द्रतापनवातापी केतुमान् बलदर्पितः ॥ ८७ ॥
असिलोमा पुलोमा च वाक्कलः प्रमदो मदः ।
खसृमः कालवदनः करालः कैशिकः शरः ॥ ८८ ॥
एकाक्षश्चन्द्रहा राहुः संह्लादः सृमरः खनः ।
शतघ्नीचक्रहस्ताश्च तथा परिघपाणयः ॥ ८९ ॥
महाशिलाप्रहरणाः शूलहस्ताश्च दानवाः ।
अश्मयन्त्रायुधोपेता भिन्दिपालायुधास्तथा ॥ ९० ॥
शूलोलूखलहस्ताश्च परश्वधधरास्तथा ।
पाशमुद्गरहस्ता वै तथा मुसलपाणयः ॥ ९१ ॥
नानाप्रहरणा घोरा नानावेषा महाजवाः ।
कूर्मकुक्कुटवक्त्राश्च शशोलूकमुखास्तथा ॥ ९२ ॥
खरोष्ट्रवदनाश्चैव वराहवदनास्तथा ।
भीमा मकरवक्त्राश्च क्रोष्टुवक्त्राश्च दानवाः ।
आखुदर्दुरवक्त्राश्च घोरा वृकमुखास्तथा ॥
मार्जारगजवक्त्राश्च महावक्त्रास्तथापरे ।
नक्रमेषाननाः शूरा गोऽजाविमहिषाननाः ॥
गोधाशल्यकवक्त्राश्च क्रौञ्चवक्त्राश्च दानवाः ।
गरुडाननाः खड्गमुखा मयूरवदनास्तथा ॥
गजेन्द्रचर्मवसनास्तथा कृष्णाजिनाम्बराः ।
चीरसंवृतदेहाश्च तथा वल्कलवाससः ॥
उष्णीषिणो मुकुटिनस्तथा कुण्डलिनोऽसुराः ।
किरीटिनो लम्बशिखाः कम्बुग्रीवाः सुवर्चसः ।
नानावेषधरा दैत्या नानामाल्यानुलेपनाः ॥
स्वान्यायुधानि संगृह्य प्रदीप्तान्यतितेजसा ।
क्रममाणं हृषीकेशमुपावर्तन्त सर्वशः ॥

जिस समय भगवान् हृषीकेश अपने डग बढ़ा रहे
समय विप्रचित्ति, शिवि, शङ्कुरय और शङ्कु, अयःशिरा तथ
शिरा, पराक्रमी हयग्रीव, वेगवान्, केतुमान्, उग्र, महान्
सोमव्यग्र, पुष्कर और पुष्कल तथा महारथी वेपन, बृह
महाजिह्व तथा अश्वसहित अश्वपति, प्रह्लाद, अश्वशिरा,
संह्लाद, गगनप्रिय, अनुह्लाद, हरि और हर, वराह, शंक
शरभ तथा शलभ, कुपन, कोपन, क्रथ, बृहत्कीर्ति, म
शङ्कुकर्ण, महास्वन, दीर्घजिह्व, अर्कनयन, मृदुचाप, मृ
वायु, यविष्ठ, नमुचि, शम्बर, महाकाय विज्वर, च
क्रोधहन्ता एवं क्रोधवर्धन, कालक तथा कालकेय, वृत्र,
विरोचन, गरिष्ठ और वरिष्ठ, प्रलम्ब और नरक नामक दो
इन्द्रतापन और वातापि, बलाभिमानी केतुमान्, असिलो
पुलोमा, वाक्कल, प्रमद, मद, खसृम, कालवदन
कैशिक, शर, एकाक्ष, चन्द्रहा, राहु, संह्लाद, सृमर औ
आदि दैत्य चारों ओरसे भगवान्को घेरकर खड़े हो
उनमेंसे किसीके हाथमें शतघ्नी (बंदूक) थी और
के हाथमें चक्र। बहुतेरे अपने हाथोंमें परिघ लिये खड़े
कुछ दानव बड़ी-बड़ी शिलाओंसे प्रहार करते थे। कि
हाथोंमें शूल थे। कितने ही पत्थरके गोले फेंकनेवाले
रूपी आयुधसे सम्पन्न थे। बहुतेरे भिन्दिपाल नामक
प्रयोग करते थे। कितने ही दैत्योंने अपने हाथोंमें शूल,
फरसे, पाश, मुद्गर और मुसल ले रखे थे। इस
वे भाँति-भाँतिके आयुध धारण किये हुए थे। उनके
कई तरहके थे। वे सब-के-सब महान् वेगशाली और भयं
किन्हींके मुख कछुओं और मुर्गोंके समान थे तो
खरहे और घूघुओंके सदृश। कितने ही दानवों
गदहे, ऊँट, सूअर, मगर और सियारोंके समान थे।
बड़े भयानक जान पड़ते थे। कुछ घोर रूपधारी दैत्यों
चूहों और मेढकोंके समान थे। कितनोंके मुख
मिलते-जुलते थे। किन्हींके मुख बिलाव-जैसे थे तो
हाथियोंके समान। कोई-कोई इससे भी बड़े मुख

बहुतोंके मुख नक्र (नाके), मेढ़े, बैल, बकरे, भेड़, भैंसे, गोह, साही, क्रौञ्च (कुरर), गरुड़, गैंडे और मोरोंसे मिलते-जुलते थे। कुछ दैत्योंने गजराजके चमड़े ओढ़ रखे थे और कितनोंने वस्त्रकी जगह काले मृगचर्मको ही लपेट रखा था। बहुतोंके शरीर चीरसे ढके थे, और कितने ही वल्कल वस्त्र पहने थे; किन्हींके मस्तकपर पगड़ी शोभा पाती थी और किन्हींके मुकुट। कितने ही असुर किरीट और कुण्डलोंसे सुशोभित थे, किन्हींके सिरपर लंबी शिखाएँ शोभा पाती थीं। बहुत-से दैत्योंकी गर्दनें शङ्खके समान थीं। वे अत्यन्त तेजस्वी दैत्य नाना प्रकारके वेष धारण किये भाँति-भाँतिकी मालाओं और चन्दनोंसे अलंकृत थे। वे अत्यन्त तेजसे चमकते हुए अपने-अपने आयुध लिये खड़े थे ॥ ८१--९८॥

प्रमथ्य सर्वान् दैतेयान् पादहस्ततलैः प्रभुः।
रूपं कृत्वा महाभीमं जहाराशु स मेदिनीम् ॥ ९९ ॥

उन सर्वशक्तिमान् भगवान्‌ने महाभयानक रूप धारण करके समस्त दैत्योंको लातों और थप्पड़ोंसे मथ डाला और शीघ्र ही इस पृथ्वीको उनसे छीन लिया ॥ ९९ ॥

तस्य विक्रमतो भूमिं चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे।
नभः प्रक्रममाणस्य नाभ्यां किल समास्थितौ ॥१००॥

कहते हैं—जब वे भूमिको नाप रहे थे, उस समय चन्द्रमा और सूर्य उन विराट्‌रूपधारी भगवान्‌के स्तनोंके बीचमें आ गये थे और जब वे आकाश (स्वर्गलोक) को नापने लगे, तब चन्द्रमा और सूर्य उनकी नाभिमें आ गये ॥ १०० ॥

परं प्रक्रममाणस्य जानुदेशे स्थितावुभौ।
विष्णोरतुलवीर्यस्य वदन्त्येवं द्विजातयः ॥१०१॥

वे अतुलपराक्रमी भगवान् विष्णु जब स्वर्गसे भी ऊपरके (मह, जन, तप और सत्य नामक) लोकोंको नाप रहे थे, उस समय सूर्य और चन्द्रमा उनके दोनों घुटनोंमें स्थित दिखायी दिये--इस प्रकार ब्राह्मणलोग कहते हैं ॥ १०१ ॥

हत्वा स पृथिवीं कृत्स्नां जित्वा चासुरपुंगवान्।
ददौ शक्राय त्रिदिवं विष्णुर्बलवतां वरः ॥१०२॥

इस प्रकार बलवानोंमें श्रेष्ठ श्रीविष्णुने सारी पृथ्वीका अपहरण करके बड़े-बड़े असुरोंको हराकर स्वर्गलोकका राज्य इन्द्रको दे दिया ॥ १०२ ॥

एष ते वामनो नाम प्रादुर्भावो महात्मनः।
वेदविद्भिर्द्विजैरेवं कथ्यते वैष्णवं यशः ॥१०३॥

जनमेजय ! इस प्रकार मैंने तुम्हें परमात्मा श्रीहरिके वामन नामक अवतारकी कथा सुनायी। वेदवेत्ता ब्राह्मण इसी तरह भगवान् विष्णुके यश (लीला-चरित्र) का वर्णन करते हैं ॥ १०३ ॥

भूयो भूतात्मनो विष्णोः प्रादुर्भावो महात्मनः।
दत्तात्रेय इति ख्यातः क्षमया परया युतः ॥१०४॥

इसके बाद भूतात्मा परमात्मा विष्णुका फिर जो अवतार हुआ, वह दत्तात्रेयके नामसे विख्यात है। भगवान् दत्तात्रेय बड़े ही क्षमाशील थे ॥ १०४ ॥

तेन नष्टेषु वेदेषु प्रक्रियासु मखेषु च।
चातुर्वर्ण्ये तु संकीर्णे धर्मे शिथिलतां गते ॥१०५॥
अभिवर्धति चाधर्मे सत्ये नष्टेऽनृते स्थिते।
प्रजासु शीर्यमाणासु धर्मे चाकुलतां गते ॥१०६॥

उस समय वेद लुप्त हो गये थे, वैदिकी प्रक्रिया और यज्ञ भी नष्टप्राय हो गये थे, चारों वर्णोंमें संकरता आ गयी थी, धर्म शिथिल हो चला था, अधर्म बड़े जोरोंके साथ बढ़ रहा था। सत्य मिटता जा रहा था और सब ओर असत्यका बोलबाला था। प्रजा क्षीण हो रही थी और धर्म पाखण्डसे मिश्रित हो गया था ॥ १०५-१०६ ॥

सहयज्ञक्रिया वेदाः प्रत्यानीता हि तेन वै।
चातुर्वर्ण्यमसंकीर्णं कृतं तेन महात्मना ॥१०७॥

ऐसे समयमें भगवान् दत्तात्रेयने यज्ञों और क्रियाओंसहित वेदोंका पुनरुद्धार किया और चारों वर्णोंको पृथक्-पृथक् करके उन्हें व्यवस्थित रूप दिया ॥ १०७ ॥

तेन हैहयराजस्य कार्तवीर्यस्य धीमतः।
वरदेन वरो दत्तो दत्तात्रेयेण धीमता ॥१०८॥

वरदायक एवं ज्ञाननिष्ठ भगवान् दत्तात्रेयने हैहयवंशी बुद्धिमान् राजा कार्तवीर्यको यह वर दिया था—॥ १०८ ॥

एतद् बाहुद्वयं यत्ते मृधे मम कृतेऽनघ।
शतानि दश बाहूनां भविष्यन्ति न संशयः ॥१०९॥

'निष्पाप नरेश ! ये जो तुम्हारी दो भुजाएँ हैं, मेरे वरदानके प्रभावसे युद्धके समय निस्संदेह एक हजार भुजाओंके रूपमें परिणत हो जायँगी ॥ १०९ ॥

पालयिष्यसि कृत्स्नां च वसुधां वसुधाधिप।
दुर्निरीक्ष्योऽरिवृन्दानां धर्मज्ञश्च भविष्यसि ॥११०॥

'पृथ्वीनाथ ! तुम सारी पृथ्वीका पालन करोगे, शत्रुओंके समुदाय तुम्हारी ओर बड़ी कठिनतासे देख सकेंगे तथा तुम धर्मके ज्ञाता होओगे' ॥ ११० ॥

एष ते वैष्णवः श्रीमान् प्रादुर्भावोऽद्भुतः शुभः।
कथितो वै महाराज यथाश्रुतमरिंदम ॥१११॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले महाराज ! मैंने जैसा सुना था, उसके अनुसार तुमसे भगवान् विष्णुके इस अद्भुत, शुभ एवं तेजस्वी अवतारका वर्णन किया है ॥ १११ ॥

भूयश्च जामदग्न्योऽयं प्रादुर्भावो महात्मनः।

यद्यपि दैत्य हिरण्यकशिपु अत्यन्त बलवान्, तेजस्वी, दर्पमें भरे हुए सिंहके समान पराक्रमी तथा बलाभिमानी दैत्योंद्वारा सुरक्षित था, तो भी भगवान् नृसिंहने उसे एक ही थप्पड़से मारकर यमलोक पहुँचा दिया ॥ ७८ ॥

नृसिंह एष कथितो भूयोऽयं वामनोऽपरः ।
यत्र वामनमाश्रित्य रूपं दैत्यविनाशकृत् ॥ ७९ ॥

यह नृसिंहावतारकी कथा कही गयी। अब दूसरे वामन-अवतारका वर्णन सुनो, जिसमें वामनरूप धारण करके भगवान्ने दैत्योंका विनाश किया था ॥ ७९ ॥

बलेर्बलवतो यज्ञे बलिना विष्णुना पुरा ।
विक्रमैस्त्रिभिरक्षोभ्याः क्षोभितास्ते महासुराः ॥ ८० ॥

पूर्वकालमें सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णु (वामनरूप धारण कर) बलवान् बलिके यज्ञमें गये और वहाँ उन्होंने अपने तीन ही पगोंसे (त्रिलोकीको नापकर) किसीसे क्षुब्ध न होनेवाले बड़े-बड़े असुरोंको क्षुब्ध कर डाला ॥ ८० ॥

विप्रचित्तिः शिविः शङ्कुरयःशङ्कुस्तथैव च ।
अयःशिराः शङ्कुशिरा हयग्रीवश्च वीर्यवान् ॥ ८१ ॥
वेगवान् केतुमानुग्रः सोमव्यग्रो महासुरः ।
पुष्करः पुष्कलश्चैव वेपनश्च महारथः ॥ ८२ ॥
बृहत्कीर्तिर्महाजिह्वः साश्वोऽश्वपतिरेव च ।
प्रह्लादोऽश्वशिराः कुम्भः संह्लादो गगनप्रियः ।
अनुह्लादो हरिहरौ वराहः शंकरो रुजः ॥ ८३ ॥
शरभः शलभश्चैव कुपनः कोपनः क्रथः ।
बृहत्कीर्तिर्महाजिह्वः शङ्कुकर्णो महास्वनः ॥ ८४ ॥
दीर्घजिह्वोऽर्कनयनो मृदुचापो मृदुप्रियः ।
वायुर्यविष्ठो नमुचिः शम्बरो विज्वरो महान् ॥ ८५ ॥
चन्द्रहन्ता क्रोधहन्ता क्रोधवर्धन एव च ।
कालकः कालकेयश्च वृत्रः क्रोधो विरोचनः ॥ ८६ ॥
गरिष्ठश्च वरिष्ठश्च प्रलम्बनरकावुभौ ।
इन्द्रतापनवातापी केतुमान् बलदर्पितः ॥ ८७ ॥
असिलोमा पुलोमा च वाक्कलः प्रमदो मदः ।
खसृमः कालवदनः करालः कैशिकः शरः ॥ ८८ ॥
एकाक्षश्चन्द्रहा राहुः संह्लादः सृमरः स्वनः ।
शतघ्नीचक्रहस्ताश्च तथा परिघपाणयः ॥ ८९ ॥
महाशिलाप्रहरणाः शूलहस्ताश्च दानवाः ।
अश्मयन्त्रायुधोपेता भिन्दिपालायुधास्तथा ॥ ९० ॥
शूलोलूखलहस्ताश्च परश्वधधरास्तथा ।
पाशमुद्गरहस्ता वै तथा मुसलपाणयः ॥ ९१ ॥
नानाप्रहरणा घोरा नानावेषा महाजवाः ।
कूर्मकुक्कुटवक्त्राश्च शशोलूकमुखास्तथा ॥ ९२ ॥
खरोष्ट्रवदनाश्चैव वराहवदनास्तथा ।
भीमा मकरवक्त्राश्च क्रोष्टुवक्त्राश्च दानवाः ।
आखुदर्दुरवक्त्राश्च घोरा वृकमुखास्तथा ॥ ९
मार्जारगजवक्त्राश्च महावक्त्रास्तथापरे ।
नक्रमेषाननाः शूरा गोऽजाविमहिषाननाः ॥ ९
गोधाशल्यकवक्त्राश्च क्रौञ्चवक्त्राश्च दानवाः ।
गरुडाननाः खड्गमुखा मयूरवदनास्तथा ॥ ९
गजेन्द्रचर्मवसनास्तथा कृष्णाजिनाम्बराः ।
चीरसंवृतदेहाश्च तथा वल्कलवाससः ॥ ९
उष्णीषिणो मुकुटिनस्तथा कुण्डलिनोऽसुराः ।
किरीटिनो लम्बशिखाः कम्बुग्रीवाः सुवर्चसः ।
नानावेषधरा दैत्या नानामाल्यानुलेपनाः ॥ ९
स्वान्यायुधानि संगृह्य प्रदीप्तान्यतितेजसा ।
क्रममाणं हृषीकेशमुपावर्तन्त सर्वशः ॥ ९

जिस समय भगवान् हृषीकेश अपने डग बढ़ा रहे थे, समय विप्रचित्ति, शिबि, शङ्कुरय और शङ्कु, अयःशिरा तथा शिरा, पराक्रमी हयग्रीव, वेगवान्, केतुमान्, उग्र, महान् सोमव्यग्र, पुष्कर और पुष्कल तथा महारथी वेपन, बृहत् महाजिह्व तथा अश्वसहित अश्वपति, प्रह्लाद, अश्वशिरा, संह्लाद, गगनप्रिय, अनुह्लाद, हरि और हर, वराह, शंकर, शरभ तथा शलभ, कुपन, कोपन, क्रथ, बृहत्कीर्ति, महा शङ्कुकर्ण, महास्वन, दीर्घजिह्व, अर्कनयन, मृदुचाप, मृदु वायु, यविष्ठ, नमुचि, शम्बर, महाकाय विज्वर, चन्द्र क्रोधहन्ता एवं क्रोधवर्धन, कालक तथा कालकेय, वृत्र, विरोचन, गरिष्ठ और वरिष्ठ, प्रलम्ब और नरक नामक दो इन्द्रतापन और वातापि, बलाभिमानी केतुमान्, असिलोमा पुलोमा, वाक्कल, प्रमद, मद, खसृम, कालवदन कैशिक, शर, एकाक्ष, चन्द्रहा, राहु, संह्लाद, सृमर और आदि दैत्य चारों ओरसे भगवान्को घेरकर खड़े हो उनमेंसे किसीके हाथमें शतघ्नी (बंदूक) थी और के हाथमें चक्र। बहुतेरे अपने हाथोंमें परिघ लिये खड़े कुछ दानव बड़ी-बड़ी शिलाओंसे प्रहार करते थे। कि हाथोंमें शूल थे। कितने ही पत्थरके गोले फेंकनेवाले रूपी आयुधसे सम्पन्न थे। बहुतेरे भिन्दिपाल नामक प्रयोग करते थे। कितने ही दैत्योंने अपने हाथोंमें शूल, फरसे, पाश, मुद्गर और मुसल ले रखे थे। इस वे भाँति-भाँतिके आयुध धारण किये हुए थे। उनके वे कई तरहके थे। वे सब-के-सब महान् वेगशाली और भयंकर किन्हींके मुख कछुओं और मुर्गोंके समान थे तो कि खरहे और घूघुओंके सदृश। कितने ही दानवोंके गदहे, ऊँट, सूअर, मगर और सियारोंके समान थे। वे बड़े भयानक जान पड़ते थे। कुछ घोर रूपधारी दैत्योंके चूहों और मेढकोंके समान थे। कितनोंके मुख भें मिलते-जुलते थे। किन्हींके मुख बिलाव-जैसे थे तो कि हाथियोंके समान। कोई-कोई इससे भी बड़े मुखवाले

बहुतोंके मुख नक्र (नाके), मेढ़े, बैल, बकरे, भेड़, भैंसे, गोह, साही, क्रौंच (कुरर), गरुड़, गैंडे और मोरोंसे मिलते-जुलते थे। कुछ दैत्योंने गजराजके चमड़े ओढ़ रखे थे और कितनोंने वस्त्रकी जगह काले मृगचर्मको ही लपेट रखा था। बहुतोंके शरीर चीरसे ढके थे, और कितने ही वल्कल वस्त्र पहने थे; किन्हींके मस्तकपर पगड़ी शोभा पाती थी और किन्हींके मुकुट। कितने ही असुर किरीट और कुण्डलोंसे सुशोभित थे, किन्हींके सिरपर लंबी शिखाएँ शोभा पाती थीं, बहुत-से दैत्योंकी गर्दनें शङ्खके समान थीं। वे अत्यन्त तेजस्वी दैत्य नाना प्रकारके वेष धारण किये भाँति-भाँतिकी मालाओं और चन्दनोंसे अलंकृत थे। वे अत्यन्त तेजसे चमकते हुए अपने-अपने आयुध लिये खड़े थे ॥ ८१--९८॥

प्रमथ्य सर्वान् दैतेयान् पादहस्ततलैः प्रभुः।
रूपं कृत्वा महाभीमं जहाराशु स मेदिनीम् ॥ ९९ ॥

उन सर्वशक्तिमान् भगवान्‌ने महाभयानक रूप धारण करके समस्त दैत्योंको लातों और थप्पड़ोंसे मथ डाला और शीघ्र ही इस पृथ्वीको उनसे छीन लिया ॥ ९९ ॥

तस्य विक्रमतो भूमिं चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे।
नभः प्रक्रममाणस्य नाभ्यां किल समास्थितौ ॥१००॥

कहते हैं—जब वे भूमिको नाप रहे थे, उस समय चन्द्रमा और सूर्य उन विराट्‌रूपधारी भगवान्‌के स्तनोंके बीचमें आ गये थे और जब वे आकाश (स्वर्गलोक) को नापने लगे, तब चन्द्रमा और सूर्य उनकी नाभिमें आ गये ॥ १००॥

परं प्रक्रममाणस्य जानुदेशे स्थितावुभौ।
विष्णोरतुलवीर्यस्य वदन्त्येवं द्विजातयः ॥१०१॥

वे अतुलपराक्रमी भगवान् विष्णु जब स्वर्गसे भी ऊपरके (मह, जन, तप और सत्य नामक) लोकोंको नाप रहे थे, उस समय सूर्य और चन्द्रमा उनके दोनों घुटनोंमें स्थित दिखायी दिये--इस प्रकार ब्राह्मणलोग कहते हैं ॥ १०१ ॥

हत्वा स पृथिवीं कृत्स्नां जित्वा चासुरपुंगवान्।
ददौ शक्राय त्रिदिवं विष्णुर्बलवतां वरः ॥१०२॥

इस प्रकार बलवानोंमें श्रेष्ठ श्रीविष्णुने सारी पृथ्वीका अपहरण करके बड़े-बड़े असुरोंको हराकर स्वर्गलोकका राज्य इन्द्रको दे दिया ॥ १०२ ॥

एष ते वामनो नाम प्रादुर्भावो महात्मनः।
वेदविद्भिर्द्विजैरेवं कथ्यते वैष्णवं यशः ॥१०३॥

जनमेजय ! इस प्रकार मैंने तुम्हें परमात्मा श्रीहरिके वामन नामक अवतारकी कथा सुनायी। वेदवेत्ता ब्राह्मण इसी तरह भगवान् विष्णुके यश (लीला-चरित्र) का वर्णन करते हैं ॥ १०३ ॥

भूयो भूतात्मनो विष्णोः प्रादुर्भावो महात्मनः।
दत्तात्रेय इति ख्यातः क्षमया परया युतः ॥१०४॥

इसके बाद भूतात्मा परमात्मा विष्णुका फिर जो अवतार हुआ, वह दत्तात्रेयके नामसे विख्यात है। भगवान् दत्तात्रेय बड़े ही क्षमाशील थे ॥ १०४ ॥

तेन नष्टेषु वेदेषु प्रक्रियासु मखेषु च।
चातुर्वर्ण्ये तु संकीर्णे धर्मे शिथिलतां गते ॥१०५॥
अभिवर्धति चाधर्मे सत्ये नष्टेऽनृते स्थिते।
प्रजासु शीर्यमाणासु धर्मे चाकुलतां गते ॥१०६॥

उस समय वेद लुप्त हो गये थे, वैदिकी प्रक्रिया और यज्ञ भी नष्टप्राय हो गये थे, चारों वर्णोंमें संकरता आ गयी थी, धर्म शिथिल हो चला था, अधर्म बड़े जोरोंके साथ बढ़ रहा था। सत्य मिटता जा रहा था और सब ओर असत्यका बोलबाला था। प्रजा क्षीण हो रही थी और धर्म पाखण्डसे मिश्रित हो गया था ॥ १०५-१०६ ॥

सहयज्ञक्रिया वेदाः प्रत्यानीता हि तेन वै।
चातुर्वर्ण्यमसंकीर्णं कृतं तेन महात्मना ॥१०७॥

ऐसे समयमें भगवान् दत्तात्रेयने यज्ञों और क्रियाओंसहित वेदोंका पुनरुद्धार किया और चारों वर्णोंको पृथक्-पृथक् करके उन्हें व्यवस्थित रूप दिया ॥ १०७ ॥

तेन हैहयराजस्य कार्तवीर्यस्य धीमतः।
वरदेन वरो दत्तो दत्तात्रेयेण धीमता ॥१०८॥

वरदायक एवं ज्ञाननिष्ठ भगवान् दत्तात्रेयने हैहयवंशी बुद्धिमान् राजा कार्तवीर्यको यह वर दिया था—॥ १०८ ॥

एतद् बाहुद्वयं यत्ते मृधे मम कृतेऽनघ।
शतानि दश बाहूनां भविष्यन्ति न संशयः ॥१०९॥

'निष्पाप नरेश ! ये जो तुम्हारी दो भुजाएँ हैं, मेरे वरदानके प्रभावसे युद्धके समय निस्संदेह एक हजार भुजाओंके रूपमें परिणत हो जायँगी ॥ १०९ ॥

पालयिष्यसि कृत्स्नां च वसुधां वसुधाधिप।
दुर्निरीक्ष्योऽरिवृन्दानां धर्मज्ञश्च भविष्यसि ॥११०॥

'पृथ्वीनाथ ! तुम सारी पृथ्वीका पालन करोगे, शत्रुओंके समुदाय तुम्हारी ओर बड़ी कठिनतासे देख सकेंगे तथा तुम धर्मके ज्ञाता होओगे' ॥ ११० ॥

एष ते वैष्णवः श्रीमान् प्रादुर्भावोऽद्भुतः शुभः।
कथितो वै महाराज यथाश्रुतमरिंदम ॥१११॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले महाराज ! मैंने जैसा सुना था, उसके अनुसार तुमसे भगवान् विष्णुके इस अद्भुत, शुभ एवं तेजस्वी अवतारका वर्णन किया है ॥ १११ ॥

भूयश्च जामदग्न्योऽयं प्रादुर्भावो महात्मनः।

यत्र बाहुसहस्रेण विस्मितं दुर्जयं रणे।
रामोऽर्जुनमनीकस्थं जघान नृपतिं प्रभुः ॥११२॥

फिर परमात्मा श्रीहरिका जमदग्निनन्दन परशुरामके रूपमें अवतार हुआ। उस अवतारमें भगवान् परशुरामने सेनाके बीचमें खड़े हुए उस राजा अर्जुनका वध किया था, जो अपनी सहस्र भुजाओंके कारण घमंडमें भरा रहता था और समराङ्गणमें शत्रुओंके लिये दुर्जय बना हुआ था ॥

रथस्थं पार्थिवं रामः पातयित्वार्जुनं भुवि।
धर्षयित्वा यथाकामं क्रोशमानं च मेघवत् ॥११३॥
कृत्स्नं बाहुसहस्रं च चिच्छेद भृगुनन्दनः।
परश्वधेन दीप्तेन ज्ञातिभिः सहितस्य वै ॥११४॥

राजा अर्जुन रथपर बैठा था, परंतु भृगुनन्दन परशुरामजीने उसे धरतीपर गिरा दिया और इच्छानुसार छातीपर चढ़कर चमकते हुए फरसेसे उसकी सम्पूर्ण सहस्रों भुजाएँ काट डालीं। यद्यपि वह जाति-भाइयों एवं कुटुम्बीजनोंके साथ था, तो भी उसकी यह दशा हो गयी। उस समय कार्तवीर्य मेघके समान गम्भीर स्वरमें जोर-जोरसे चीखता-चिल्लाता रहा ॥ ११३-११४ ॥

कीर्णा क्षत्रियकोटीभिर्मेरुमन्दरभूषणा।
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी तेन निःक्षत्रिया कृता ॥११५॥

उन्होंने मेरु और मन्दराचलसे विभूषित समस्त पृथ्वीपर करोड़ों क्षत्रियोंकी लाशें बिछा दीं तथा इक्कीस बार भूतलको क्षत्रियोंसे शून्य कर दिया ॥ ११५ ॥

कृत्वा निःक्षत्रियां चैव भार्गवः सुमहातपाः।
सर्वपापविनाशाय वाजिमेधेन चेष्टवान् ॥११६॥

पृथ्वीको क्षत्रियहीन करके महातपस्वी भृगुनन्दन परशुरामने अपने सम्पूर्ण पापोंका नाश (प्रायश्चित्त) करनेके लिये अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान किया ॥ ११६ ॥

तस्मिन् यज्ञे महादाने दक्षिणां भृगुनन्दनः।
मारीचाय ददौ प्रीतः कश्यपाय वसुंधराम् ॥११७॥

जिसमें बड़ा भारी दान दिया जाता है, उस अश्वमेध यज्ञमें भृगुनन्दन परशुरामने प्रसन्न होकर मरीचिकुमार कश्यपको दक्षिणारूपसे यह सारी पृथ्वी दे दी थी ॥ ११७ ॥

वारुणांस्तुरगाञ्छीघ्रान् रथं च रथिनां वरः।
हिरण्यमक्षयं , धेनूर्गजेन्द्रांश्च महामनाः।
ददौ तस्मिन् महायज्ञे वाजिमेधे महायशाः ॥११८॥

महायशस्वी, महामनस्वी, रथियोंमें श्रेष्ठ परशुरामने उस अश्वमेध नामक महायज्ञमें वरुणके यहाँसे प्राप्त हुए शीघ्रगामी घोड़े, रथ, अक्षय सुवर्णराशि, धेनु और गजराज भी दानमें दिये थे ॥ ११८ ॥

अद्यापि च हितार्थाय लोकानां भृगुनन्दनः।
चरमाणस्तपो दीप्तं जामदग्न्यः पुनः पुनः।
तिष्ठते देववद् धीमान् महेन्द्रे पर्वतोत्तमे ॥१

आज भी समस्त लोकोंके हितके लिये बारंबार तपस्या करते हुए भृगुकुलनन्दन जमदग्निकुमार बुद्धि परशुराम उत्तम महेन्द्रपर्वतपर देवताओंके समान करते हैं ॥ ११९ ॥

एष विष्णोः सुरेशस्य शाश्वतस्याव्ययस्य च।
जामदग्न्य इति ख्यातः प्रादुर्भावो महात्मनः ॥१

जनमेजय ! समस्त देवताओंके स्वामी सनातन अविनाशी पुरुष परमात्मा विष्णुके इस परशुराम नामक तारका वर्णन किया गया ॥ १२० ॥

चतुर्विंशे युगे चापि विश्वामित्रपुरस्सरः।
राज्ञो दशरथस्याथ पुत्रः पद्मायतेक्षणः ॥१

चौबीसवें त्रेतायुगमें भगवान् विष्णु राजा दशरथके कमलनयन श्रीरामके रूपमें प्रकट हुए और कुछ का विश्वामित्रके अनुयायी रहे ॥ १२१ ॥

कृत्वाऽऽत्मानं महाबाहुश्चतुर्धा प्रभुरीश्वरः।
लोके राम इति ख्यातस्तेजसा भास्करोपमः ॥१

उस समय सर्वसमर्थ महाबाहु भगवान् अ चार रूपोंमें प्रकट करके स्वयं श्रीराम नामसे विख्यात वे श्रीराम सूर्यके समान तेजस्वी थे ॥ १२२ ॥

प्रसादनार्थं लोकस्य रक्षसां निधनाय च।
धर्मस्य च विवृद्ध्यर्थं जज्ञे तत्र महायशाः ॥१

महायशस्वी श्रीराम सब लोगोंको प्रसन्न रखने, रा को मारने और धर्मकी वृद्धि करनेके लिये उस समय अ हुए थे ॥ १२३ ॥

तमप्याहुर्मनुष्येन्द्रं सर्वभूतपतेस्तनुम्।
यस्मै दत्तानि चास्त्राणि विश्वामित्रेण धीमता ॥१
वधार्थं देयशत्रूणां दुर्धराणि सुरैरपि।

ज्ञानी पुरुष उन नरेन्द्र श्रीरामको समस्त भूतोंके भगवान् विष्णुका अवतार-विग्रह बताते हैं, जिन्हें बुद्धिमान् विश्वामित्रजीने देव-द्रोही असुरोंका वध करनेके ऐसे दिव्यास्त्र प्रदान किये थे, जिन्हें धारण करना दे के लिये भी कठिन था ॥ १२४½ ॥

यज्ञविघ्नकरो येन मुनीनां भावितात्मनाम् ॥१
मारीचश्च सुबाहुश्च बलेन बलिनां वरौ।
निहतौ च निराशौ च कृतौ तेन महात्मना ॥१

महात्मा श्रीरामने पवित्र अन्तःकरणवाले मुनियोंके विघ्न डालनेवाले बलवानोंमें श्रेष्ठ मारीच और सुबाहुको

बाणोंका निशाना बनाया और उनकी आशा पूर्ण होने नहीं दी ॥ १२५-१२६ ॥

वर्तमाने मखे येन जनकस्य महात्मनः।
भग्नं माहेश्वरं चापं क्रीडता लीलया पुरा ॥१२७॥

पूर्वकालमें जब महात्मा राजा जनकके यहाँ यज्ञ हो रहा था, उस समय उन्हीं श्रीरामने खेल-सा करते हुए महादेवजीके धनुषको अनायास ही तोड़ डाला था ॥ १२७ ॥

यः समाः सर्वधर्मज्ञश्चतुर्दश वनेऽवसत्।
लक्ष्मणानुचरो रामः सर्वभूतहिते रतः ॥१२८॥

वे सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता तथा समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले थे। उन्होंने लक्ष्मणको साथ ले चौदह वर्षोंतक वनमें निवास किया ॥ १२८ ॥

रूपिणी यस्य पार्श्वस्था सीतेति प्रथिता जनैः।
पूर्वोचिता तस्य लक्ष्मीर्भर्तारमनुगच्छति ॥१२९॥

उस समय उनके साथ मूर्तिमती लक्ष्मी भी थीं, जो लोगोंमें 'सीता' के नामसे प्रसिद्ध थीं। वे उनकी पूर्वोचित पत्नी थीं और पतिके पीछे-पीछे वनमें गयी थीं ॥ १२९ ॥

चतुर्दश तपस्तप्त्वा वने वर्षाणि राघवः।
जनस्थाने वसन् कार्यं त्रिदशानां चकार ह ॥१३०॥

चौदह वर्षोंतक वनमें तपस्या करके जनस्थानमें निवास करते हुए रघुनन्दन श्रीरामने देवताओंका अभीष्ट कार्य सिद्ध किया ॥ १३० ॥

सीतायाः पदमन्विच्छल्लँक्ष्मणानुचरो विभुः।
विराधं च कबन्धं च राक्षसौ भीमविक्रमौ।
जघान पुरुषव्याघ्रौ गन्धर्वौ शापवीक्षितौ ॥१३१॥

उन भगवान् श्रीरामने (रावणके द्वारा अपहृत) सीताका पता लगाते हुए लक्ष्मणके साथ जाकर भयानक-पराक्रमी राक्षस विराध और कबन्धको मार डाला। वे दोनों वास्तवमें पुरुषसिंह गन्धर्व थे, किंतु शाप-ग्रस्त होकर राक्षस हो गये थे ॥ १३१ ॥

हुताशनार्केन्दुतडिद्घनाभैः
प्रतप्तजाम्बूनदचित्रपुङ्खैः।
महेन्द्रवज्राशनितुल्यसारैः
शरैः शरीरेण वियोजितौ बलात् ॥१३२॥

इन राक्षसोंपर श्रीरामचन्द्रजीने ऐसे बाणोंद्वारा प्रहार किया, जो अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, बिजली और मेघके समान प्रकाशित होते थे, जिनके विचित्र पङ्ख तपाये हुए जाम्बूनद नामक सुवर्णके बने हुए थे और जो इन्द्रके वज्र तथा विद्युत्‌के समान शक्तिशाली थे। उन बाणोंद्वारा उन्होंने बलपूर्वक उन दोनों राक्षसोंको शरीरसे विलग कर दिया ॥ १३२ ॥

सुग्रीवस्य कृते येन वानरेन्द्रो महाबलः।
वाली विनिहतो युद्धे सुग्रीवश्चाभिषेचितः ॥१३३॥

श्रीरामने अपने मित्र सुग्रीव (की भलाई) के लिये युद्धमें महाबली वानरराज वालीको मार डाला और उसके राज्यपर सुग्रीवका अभिषेक कर दिया ॥ १३३ ॥

देवासुरगणानां हि यक्षगन्धर्वभोगिनाम्।
अवध्यं राक्षसेन्द्रं तं रावणं युद्धदुर्मदम् ॥१३४॥
युक्तं राक्षसकोटीभिर्नीलाञ्जनचयोपमम्।
त्रैलोक्यरावणं घोरं रावणं राक्षसेश्वरम् ॥१३५॥
दुर्जयं दुर्धरं दृप्तं शार्दूलसमविक्रमम्।
दुर्निरीक्ष्यं सुरगणैर्वरदानेन दर्पितम् ॥१३६॥
जघान सचिवैः सार्द्धं ससैन्यं रावणं युधि।
महाभ्रघनसंकाशं महाकायं महाबलम् ॥१३७॥

उन दिनों राक्षसराज रावण देवता, असुर, यक्ष, गन्धर्व और नागोंके लिये अवध्य हो रहा था। युद्धमें वह उन्मत्त होकर लड़ता था। करोड़ों राक्षस उसके सहायक थे। उसका शरीर काले अञ्जनके ढेरके समान था। त्रिलोकीको रुलानेवाला वह भयंकर राक्षसराज रावण दुर्जय और दुर्द्धर्ष था। उसका पराक्रम सिंहके समान था। उसका घमंड बहुत बढ़ा हुआ था। वरदानके कारण वह और भी घमंडी हो गया था। देवताओंके लिये उसकी ओर देखना भी कठिन था। उसका शरीर मेघोंकी घटाके समान काला था। भगवान् श्रीरामने उस महाकाय महाबली रावणका युद्धमें मन्त्रियों तथा सेनाओंसहित संहार कर डाला ॥ १३४–१३७ ॥

तमागस्कारिणं घोरं पौलस्त्यं युधि दुर्जयम्।
सभ्रातृपुत्रसचिवं ससैन्यं क्रूरनिश्चयम् ॥१३८॥
रावणं निजघानाशु रामो भूतपतिः पुरा।

पुलस्त्य-पौत्र रावण भयानक अपराधी था, उसका प्रत्येक निश्चय क्रूरतासे पूर्ण होता था; युद्धमें उसपर विजय पाना कठिन था। तो भी सम्पूर्ण भूतोंके पालक भगवान् श्रीरामने पूर्वकालमें उसे भाई, पुत्र, मन्त्री और सेनाओंसहित शीघ्रतापूर्वक मार डाला ॥ १३८½ ॥

मधोश्च तनयो दृप्तो लवणो नाम दानवः ॥१३९॥
हतो मधुवने वीरो वरदृप्तो महासुरः।
समरे युद्धशौण्डेन तथा चान्येऽपि राक्षसाः ॥१४०॥

उन्हीं दिनों मधुवन (मथुरा) में लवण नामक दानव रहता था, जो मधुका पुत्र था। वह महान् असुर वीर तो था ही, मनोवाञ्छित वर पा जानेके कारण और भी घमंडमें भर गया था। वह श्रीरामके ही स्वरूपभूत शत्रुघ्नके हाथसे मारा गया। युद्धकुशल श्रीराम (तथा उनके भाइयों) ने समराङ्गणमें और भी बहुत-से राक्षसोंका संहार किया ॥ १३९-१४० ॥

एतानि कृत्वा कर्माणि रामो धर्मभृतां वरः ।
दशाश्वमेधाञ्जारूथ्यानाजहार निरर्गलान् ॥१४१॥

इन सब (पराक्रमपूर्ण) कर्मोंका सम्पादन करके धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीरामने तीनगुनी दक्षिणासे युक्त दस अश्वमेध यज्ञ किये, जो बिना किसी विघ्न बाधाके पूर्ण हो गये ॥ १४१ ॥

नाश्रूयन्ताशुभा वाचो नाकुलं मारुतो ववौ ।
न वित्तहरणं त्वासीद् रामे राज्यं प्रशासति ॥१४२॥

श्रीरामचन्द्रजी जब राज्यका शासन करते थे, उन दिनों कहीं अशुभ बातें नहीं सुनी जाती थीं, वायु प्रचण्ड वेगसे नहीं चलती थी तथा कोई किसीके धनका अपहरण नहीं करता था ॥ १४२ ॥

पर्यदेवन्न विधवा नानर्थाश्चाभवंस्तदा ।
सर्वमासीज्जगद् दान्तं रामे राज्यं प्रशासति ॥१४३॥

श्रीरामके राज्य-शासनकालमें कभी विधवाओंका करुण क्रन्दन नहीं सुना गया। कहीं भी अनर्थपूर्ण घटनाएँ नहीं घटित हुईं। सारे जगत्के लोग (मन और इन्द्रियोंका संयम रखकर) विनीत एवं अनुशासित रहते थे ॥ १४३ ॥

न प्राणिनां भयं चापि जलानलनिघातजम् ।
न च स्म वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते ॥१४४॥

श्रीरामके राज्यकालमें प्राणियोंको जल और अग्निसे मृत्युका भय कभी नहीं होता था और बूढ़ोंको बालकोंकी प्रेतक्रिया नहीं करनी पड़ती थी ॥ १४४ ॥

ब्रह्म पर्यचरत् क्षत्रं विशः क्षत्रमनुव्रताः ।
शूद्राश्चैव हि वर्णांस्त्रीञ्छुश्रूषन्त्यनहंकृताः ।
नार्यो नात्यचरन् भर्तॄन् भार्यां नात्यचरत् पतिः ॥१४५॥

क्षत्रिय ब्राह्मणोंकी परिचर्या करते थे, वैश्य क्षत्रियोंके प्रति श्रद्धा रखते थे और शूद्र अहंकार छोड़कर ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंकी सेवा करते थे। श्रीरामके राज्यमें स्त्रियाँ अपने पतिको छोड़कर दूसरे किसी पुरुषमें आसक्त नहीं होती थीं और पुरुष भी अपनी पत्नीके सिवा दूसरी किसी स्त्रीपर आसक्तिपूर्ण दृष्टि नहीं डालते थे ॥ १४५ ॥

सर्वमासीज्जगद् दान्तं निर्दस्युरभवन्मही ।
राम एकोऽभवद् भर्त्ता रामः पालयिताभवत् ॥१४६॥

उस समय सारा जगत् जितेन्द्रिय था। पृथ्वीपर डाकुओंका कहीं नाम भी नहीं था। एकमात्र श्रीराम ही सबके स्वामी और संरक्षक थे ॥ १४६ ॥

आयुर्वर्षसहस्राणि तथा पुत्रसहस्रिणः ।
अरोगाः प्राणिनश्चासन् रामे राज्यं प्रशासति ॥१४७॥

श्रीरामके शासनकालमें मनुष्योंकी आयु हजारों वर्षकी होती थी। वे सहस्रों पुत्रोंके पिता होते थे और किसी भी प्राणीको रोग नहीं सताता था ॥ १४७ ॥

देवतानामृषीणां च मनुष्याणां च सर्वशः ।
पृथिव्यां समवायोऽभूद् रामे राज्यं प्रशासति ॥१

भगवान् श्रीराम जब यहाँ राज्यशासन करते थे, दिनों इस भूतलपर देवता, ऋषि और मनुष्योंका सब समागम होता रहता था ॥ १४८ ॥

गाथा अप्यत्र गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ।
रामे निबद्धतत्त्वार्था माहात्म्यं तस्य धीमतः ॥१

श्रीरामके विषयमें 'वे ही परम तत्त्व हैं' ऐसी दृढ़ आ रखनेवाले पुराणवेत्ता पुरुष इस प्रसङ्गमें निम्नाङ्कित गा गाया करते हैं, जो उन बुद्धिमान् श्रीरघुनाथजीके माहात्म्य सूचित करती हैं—॥ १४९ ॥

श्यामो युवा लोहिताक्षो दीप्तास्यो मितभाषिता ।
आजानुबाहुः सुमुखः सिंहस्कन्धो महाभुजः ॥१
दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च ।
अयोध्याधिपतिर्भूत्वा रामो राज्यमकारयत् ॥१

'श्रीरामचन्द्रजीका वर्ण श्याम था, वे सदा तरुण दिख देते थे, उनके नेत्र (कुछ-कुछ) लालिमा लिये हुए थे, मुख तेज बरसता रहता था, वे बहुत कम बोलते थे, उनकी भुजाएँ घुटनोंतक पहुँचती थीं, उनका मुख बड़ा सुन्दर कंधे सिंहके-से जान पड़ते थे, महाबाहु श्रीरामने अयो अधिपति होकर ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य कि था ॥ १५०-१५१ ॥

ऋक्सामयजुषां घोषो ज्याघोषश्च महात्मनः ।
अव्युच्छिन्नोऽभवद्राज्ये दीयतां भुज्यतामिति ॥१

'उनके राज्यमें सदा ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद घोष सुनायी देता था। धनुषकी प्रत्यञ्चा खींचनेसे उ टंकार-ध्वनि भी सदा श्रवणगोचर होती रहती थी तथा द देने और भोजन करानेका उपदेश कभी बंद न होता था ॥ १५२ ॥

सत्त्ववान् गुणसम्पन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा ।
अति चन्द्रं च सूर्यं च रामो दाशरथिर्बभौ ॥१

'दशरथनन्दन श्रीराम सत्त्ववान् और गुणवान् होते साथ ही सदा अपने तेजसे देदीप्यमान रहते थे। उनकी और चन्द्रमासे भी अधिक शोभा होती थी ॥ १५३ ॥

ईजे क्रतुशतैः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः ।
हित्वायोध्यां दिवं यातो राघवः समहाबलः ॥१

'श्रीरघुनाथजीने पर्याप्त एवं उत्तम दक्षिणाओंसे यु सैकड़ों पवित्र यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। अन्तमें वे अयो महान् जन-समुदायको साथ ले अपनी उस पुरीको छोड़ साकेत धामको पधारे' ॥ १५४ ॥

एवमेष महाबाहुरिक्ष्वाकुकुलनन्दनः ।
रावणं सगणं हत्वा दिवमाचक्रमे प्रभुः ॥१५५॥

इस प्रकार इक्ष्वाकुकुलका आनन्द बढ़ानेवाले ये महाबाहु भगवान् श्रीराम दलबलसहित रावणका संहार करके अपने परमधामको चले गये ॥ १५५ ॥

वैशम्पायन उवाच

अपरः केशवस्यायं प्रादुर्भावो महात्मनः ।
विख्यातो माथुरे कल्पे सर्वलोकहिताय वै ॥१५६॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—(जनमेजय !) इसके बाद परमात्मा भगवान् केशवका 'श्रीकृष्ण' नामक अवतार माथुर कल्प (मथुरामण्डल) में हुआ, जो सर्वत्र विख्यात है। भगवान्‌का यह अवतार सम्पूर्ण जगत्‌के हितके लिये हुआ था॥

यत्र शाल्वं च मैन्दं च द्विविदं कंसमेव च ।
अरिष्टमृषभं केशिं पूतनां दैत्यदारिकाम् ॥१५७॥
नागं कुवलयापीडं चाणूरं मुष्टिकं तथा ।
दैत्यान् मानुषदेहस्थान् सूदयामास वीर्यवान् ॥१५८॥

इस अवतारमें परम पराक्रमी हरिने शाल्व, मैन्द, द्विविद, कंस, अरिष्ट, ऋषभ, केशी, दैत्य-कन्या पूतना, कुवलयापीड़ हाथी, चाणूर तथा मुष्टिक आदि मनुष्य-शरीरधारी दैत्योंका संहार किया था ॥ १५७-१५८ ॥

छिन्नं बाहुसहस्रं च बाणस्याद्भुतकर्मणः ।
नरकश्च हतः संख्ये यवनश्च महाबलः ॥१५९॥

इसके अतिरिक्त उन्होंने अद्भुत कर्म करनेवाले बाणासुरकी सहस्र भुजाएँ काट डालीं, युद्धमें नरकासुरका नाश किया और महाबली कालयवनको भस्म करा दिया ॥ १५९॥

हृतानि च महीपानां सर्वरत्नानि तेजसा ।
दुराचाराश्च निहताः पार्थिवाश्च महीतले ॥१६०॥

इतना ही नहीं, उन्होंने अपने तेजसे भूमिपालोंके सभी रत्न छीन लिये और भूतलके दुराचारी राजाओंको मौतके घाट उतार दिया ॥ १६० ॥

नवमे द्वापरे विष्णुरष्टाविंशे पुराभवत् ।
वेदव्यासस्तथा जज्ञे जातूकर्ण्यपुरस्सरः ॥१६१॥

(यहाँतक जो सात अवतार बताये गये, उनमें मत्स्य-कच्छप अवतारोंका भी अन्तर्भाव करके उन्हें नौ समझना चाहिये।) अट्ठाईसवें द्वापरमें भगवान् विष्णुका यह (श्रीकृष्ण नामक) नवम अवतार हुआ था। इससे कुछ पहले ही उनका दसवाँ अवतार भी हो गया था, जो जातूकर्ण्यके साथ प्रकट हुआ था। वह वेदव्यासके नामसे प्रसिद्ध है॥

एको वेदश्चतुर्धा तु कृतस्तेन महात्मना ।
जनितो भारतो वंशः सत्यवत्याः सुतेन च ॥१६२॥

उन सत्यवतीपुत्र महात्मा व्यासने एक वेदके चार विभाग किये और उन्होंने ही भरतवंशकी लुप्त हुई परम्पराको पुनः प्रचलित किया ॥ १६२ ॥

एते लोकहितार्थाय प्रादुर्भावा महात्मनः ।
अतीताः कथिता राजन् कथ्यन्ते चाप्यनागताः ॥१६३॥

राजन् ! समस्त जगत्‌का कल्याण करनेके लिये प्रकट हुए परमात्मा श्रीहरिके जो उक्त (दस) अवतार बीत गये हैं, उनकी चर्चा यहाँ की गयी। अब उनके भविष्यमें होनेवाले अवतार बताये जाते हैं ॥ १६३ ॥

कल्किर्विष्णुयशा नाम शम्भले ग्रामके द्विजः ।
सर्वलोकहितार्थाय भूयश्चोत्पत्स्यते प्रभुः ॥१६४॥

(भावी अवतारोंमें पहले 'बुद्ध'का प्राकट्य होगा।) इसके बाद विष्णुयशा नामसे प्रसिद्ध कल्कि अवतार होनेवाला है। भगवान् विष्णु शम्भल नामक ग्राममें सम्पूर्ण जगत्‌के हितके लिये पुनः एक ब्राह्मणके रूपमें प्रकट होंगे ॥ १६४ ॥

दशमे भाव्यसम्पन्नो याज्ञवल्क्यपुरस्सरः ।
क्षपयित्वा च तान् सर्वान् भाविनार्थेन चोदितान् १६५
गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठां प्राप्स्यति सानुगः ।

पूर्वोक्त दशम अवतारका समय बीत जानेपर याज्ञवल्क्य ऋषिको साथ लेकर प्रकट होनेवाला यह अवतार भावी प्रयोजन (दुष्टोंके संहार और धर्मकी संस्थापना) को सिद्ध करनेकी शक्तिसे सम्पन्न होगा। भगवान् कल्कि भवितव्यतासे प्रेरित होकर अधर्मके पथपर चलनेवाले उन समस्त पापाचारियोंका संहार करके अपने अनुयायियोंसहित गङ्गा और यमुनाके मध्यवर्ती देशमें अपने अवतारकार्यको समाप्त करेंगे॥

ततः कुले व्यतीते तु सामात्ये सहसैनिके ॥१६६॥
नृपेष्वथ प्रणष्टेषु तदा त्वप्रग्रहाः प्रजाः ।

तदनन्तर मन्त्री और सैनिकोंसहित राजवंशके विनष्ट हो जानेपर जब कोई शासक नरेश नहीं रह जायगा, तब सारी प्रजा बेलगाम होकर स्वेच्छाचारमें प्रवृत्त हो जायगी॥१६६½॥

रक्षणे विनिवृत्ते च हत्वा चान्योन्यमाहवे ॥१६७॥
परस्परहृतस्वाश्च निराक्रन्दाः सुदुःखिताः ।

रक्षाकी राजकीय व्यवस्था समाप्त हो जानेपर लोग (आपसमें लड़ेंगे और) उस युद्धमें एक दूसरेको मारकर नष्ट हो जायँगे। आपसमें एक-दूसरेका धन लूटकर असहाय एवं अत्यन्त दुखी हो जायँगे ॥ १६७½ ॥

एवं कष्टमनुप्राप्ताः कलिसंध्यांशके तदा ।
प्रजाः क्षयं प्रयास्यन्ति सार्द्धं कलियुगेन ह ॥१६८॥

उस समय कलियुगका संध्यांश बीत रहा होगा, उन दिनों इस प्रकार कष्टमें पड़ी हुई सारी प्रजा कलियुगके साथ ही नष्ट हो जायगी—ऐसी बात कही जाती है ॥ १६८ ॥

क्षीणे कलियुगे तस्मिंस्ततः कृतयुगं पुनः ।
प्रपत्स्यते यथान्यायं स्वभावादेव नान्यथा ॥१६९॥

कलियुगके समाप्त हो जानेपर फिर स्वभावसे ही सत्ययुगकी यथोचितरूपसे प्रवृत्ति होगी, दूसरे किसी प्रकारसे नहीं ॥

एते चान्ये च बहवो दिव्या देवगुणैर्युताः ।
प्रादुर्भावाः पुराणेषु गीयन्ते ब्रह्मवादिभिः ॥१७०॥

राजन् ! ये तथा और भी भगवान्‌के बहुत-से दिव्य अवतार हुए हैं, जो देवोचित गुणोंसे सम्पन्न थे । ब्रह्मवादी मुनियोंने पुराणोंमें उनका गान किया है ॥ १७० ॥

यत्र देवाश्च मुह्यन्ति प्रादुर्भावानुकीर्तने ।
पुराणं वर्तते यत्र वेदश्रुतिसमाहितम् ॥१७१॥

भगवान्‌के इन अवतारोंका वर्णन करनेमें देवता भी चकरा जाते हैं—इस विषयमें पुराण ही प्रमाण है, जिसका वैदिक श्रुतियोंद्वारा समर्थन होता है ॥ १७१ ॥

एतदुद्देशमात्रेण प्रादुर्भावानुकीर्तनम् ।
कीर्तितं कीर्तनीयस्य सर्वलोकगुरोः प्रभोः ॥१७२॥

सम्पूर्ण जगत्‌के गुरु तथा कीर्तन करनेयोग्य सर्वशक्तिमान् भगवान्‌के अवतारोंका यह वर्णन संक्षेपसे ही किया है ॥ १७२ ॥

प्रीयन्ते पितरस्तस्य प्रादुर्भावानुकीर्तनात् ।
विष्णोरतुलवीर्यस्य यः शृणोति कृताञ्जलिः ॥१७

अनुपम-शक्तिशाली भगवान् विष्णुके अवतारोंकी चर्चा करनेसे पितरोंको प्रसन्नता होती है । जो हाथ जोड़ आदरपूर्वक इस अवतार-कथाको सुनता है, उसके पित भी अक्षय तृप्ति प्राप्त होती है ॥ १७३ ॥

एतास्तु योगेश्वरयोगमायाः
श्रुत्वा नरो मुच्यति सर्वपापैः ।
ऋद्धिं समृद्धिं विपुलांश्च भोगान्
प्राप्नोति सर्वं भगवत्प्रसादात् ॥१७

जो मनुष्य योगेश्वर भगवान् श्रीहरिकी योगम द्वारा प्रकट हुए अवतारोंकी इन लीला-कथाओंको सुनता वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा भगवान्‌की शीघ्र ही उसे ऋद्धि, समृद्धि एवं प्रचुर भोग—सबकी हो जाती है ॥ १७४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि प्रादुर्भावानुसंग्रहो नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें अवतारोंका संग्रहनामक इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवान् विष्णुके ईश्वरत्वका वर्णन एवं अद्भुततारकामय संग्रामकी कथा

वैशम्पायन उवाच

विश्वत्वं शृणु मे विष्णोर्हरित्वं च कृते युगे ।
वैकुण्ठत्वं च देवेषु कृष्णत्वं मानुषेषु च ॥ १ ॥
ईश्वरत्वं च तस्येदं गहनां कर्मणां गतिम् ।
सम्प्रत्यतीतां भाव्यां च शृणु राजन् यथातथम् ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! अब तुम मुझसे सत्ययुगमें विष्णुके विश्वत्वको (उनके अभयदायक आश्वासक रूपको), हरित्वको (पापहारी रूपको), देवताओंमें भगवान्‌के वैकुण्ठत्वको (सर्वसमर्थताको) और पुरुषोंमें उनके श्रीकृष्णत्वको (सच्चिदानन्दताको) तथा उनके ईश्वरत्वको (दण्ड देने और कृपा करनेकी सामर्थ्यको) और उनके भूत, भविष्य एवं वर्तमान कर्मों (लीलाओं)की गहन गति (दुर्बोध स्वरूप) को यथार्थरूपसे सुनो ॥ १-२ ॥

अव्यक्तो व्यक्तलिङ्गस्थो यत्रैव भगवान् प्रभुः ।
नारायणो ह्यनन्तात्मा प्रभवोऽव्यय एव च ॥ ३ ॥

वे सर्वशक्तिमान् प्रभु अव्यक्त होनेपर भी (अवतार-विग्रह धारण करते समय) अपनी मूर्तिको प्रकट किये रहते हैं, वे नारायण, अनन्तस्वरूप, सबके उत्पत्तिस्थान और (अविनाशी) हैं ॥ ३ ॥

एष नारायणो भूत्वा हरिरासीत् कृते युगे ।
ब्रह्मा शक्रश्च सोमश्च धर्मः शुक्रो बृहस्पतिः ॥ ४

कृतयुगमें ये नारायणरूप होकर हरि—मोक्षदायक और ये ही ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्रमा, धर्म, शुक्र और बृह के रूपोंमें प्रकट हुए ॥ ४ ॥

अदितेरपि पुत्रत्वमेत्य यादवनन्दनः ।
एष विष्णुरिति ख्यात इन्द्रादवरजोऽभवत् ॥ ५

इसके अनन्तर ये यादवनन्दन (श्रीकृष्णरूपसे अव लेनेवाले भगवान्) ही विष्णुके नामसे अदितिके पुत्र उत्पन्न हुए । उस जन्ममें ये इन्द्रके छोटे भाई बने थे ॥

प्रसादजं ह्यस्य विभोरदित्याः पुत्रजन्म तत् ।
वधार्थं सुरशत्रूणां दैत्यदानवरक्षसाम् ॥ ६

देवताओंके शत्रु दैत्य, दानव और राक्षसोंका करनेके लिये भगवान् विष्णु अदितिके यहाँ पुत्र बनकर हुए । यह उन विभुका प्रसाद (वरदान) रूप जन्म था ॥

प्रधानात्मा पुरा ह्येष ब्रह्माणमसृजत् प्रभुः ।
सोऽसृजत् पूर्वपुरुषः पुरा कल्पे प्रजापतीन् ॥ ७ ॥

सृष्टिके आदिमें इन प्रधानात्मा—प्रकृतिके संचालक प्रभुने ही ब्रह्माको उत्पन्न किया और इन्हीं पुराणपुरुषने पूर्वकल्पमें (मरीचि आदि) प्रजापतियोंकी सृष्टि की ॥ ७ ॥

ते तन्वानास्तनूस्तत्र ब्रह्मवंशाननुत्तमान् ।
तेभ्योऽभवन्महात्मभ्यो बहुधा ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ८ ॥

उन प्रजापतियोंने (कश्यप आदिके रूपसे) अपने स्वरूपका विस्तार करके श्रेष्ठ ब्रह्मवंशों (गोत्रों) को उत्पन्न किया और उन महात्माओंसे सनातन वेद अनेक शाखाओंमें विभक्त हो गया ॥ ८ ॥

एतदाश्चर्यभूतस्य विष्णोर्नामानुकीर्तनम् ।
कीर्तनीयस्य लोकेषु कीर्त्यमानं निबोध मे ॥ ९ ॥

लोकोंमें कीर्तनीय आश्चर्यमय विष्णुके इस (वेदरूप) नामकीर्तनका उल्लेख मेरे द्वारा किया जा रहा है, तुम इसे सुनो ॥

वृत्ते वृत्रवधे तात वर्तमाने कृते युगे ।
आसीत् त्रैलोक्यविख्यातः संग्रामस्तारकामयः ॥ १० ॥

तात ! वर्तमान सत्ययुगमें वृत्रासुरका वध हो चुकनेपर त्रिलोकीमें प्रसिद्ध तारकामय संग्राम हुआ ॥ १० ॥

तत्रासन् दानवा घोराः सर्वे संग्रामदर्पिताः ।
घ्नन्ति देवगणान् सर्वान् सयक्षोरगराक्षसान् ॥ ११ ॥

उस समय सब-के-सब दानव संग्राममें दर्प भरे एवं भयंकर दिखायी देते थे । उन्होंने यक्ष, राक्षस और सर्पोंसहित समस्त देवताओंको मारना आरम्भ कर दिया था ॥ ११ ॥

ते वध्यमाना विमुखाः क्षीणप्रहरणा रणे ।
त्रातारं मनसा जग्मुर्देवं नारायणं हरिम् ॥ १२ ॥

मार खाते-खाते जब उनके आयुध क्षीण हो गये, तब वे रणसे विमुख हो गये और सबकी रक्षा करनेवाले नारायणदेव श्रीहरिके ही मनसे शरण हो गये ॥ १२ ॥

एतस्मिन्नन्तरे मेघा निर्वाणाङ्गारवर्षिणः ।
सार्कचन्द्रग्रहगणं छादयन्तो नभस्तलम् ॥ १३ ॥

इसी बीचमें मेघ तपे हुए लोहेके समान ज्वालारहित अँगारे बरसाने लगे । वे सूर्य, चन्द्रमा आदि ग्रहोंसहित आकाशको ढकते हुए दिखायी देते थे ॥ १३ ॥

चञ्चद्विद्युद्गणाविद्धा घोरा निर्ह्रादकारिणः ।
अन्योन्यवेगाभिहताः प्रववुः सप्त मारुताः ॥ १४ ॥

कौंधती हुई बिजलियोंसे व्याप्त हो वे भयंकर बादल बड़े जोरसे गर्जने और परस्पर वेगसे टकराने लगे; क्योंकि उस समय प्रवह आदि सात प्रकारकी हवाएँ चल रही थीं ॥ १४ ॥

दीप्ततोयाशनीपातैर्वज्रवेगानिलाकुलैः ।
ररास घोरैरुत्पातैर्दह्यमानमिवाम्बरम् ॥ १५ ॥

बिजली और तपे हुए जलके गिरने तथा वज्रके समान वेगवाली वायुके चलने आदि भयंकर उत्पातोंसे जलता हुआ-सा आकाश मानो कराहने लगा ॥ १५ ॥

पेतुरुल्कासहस्राणि मुहुराकाशगान्यपि ।
न्युब्जानि च विमानानि प्रपतन्त्युत्पतन्ति च ॥ १६ ॥

उस समय हजारों उल्काएँ गिरती और फिर आकाशमें पहुँच जाती थीं तथा विमान नीचेको मुख करके गिरते और फिर उलटे ही उड़ जाते थे ॥ १६ ॥

चतुर्युगान्तपर्याये लोकानां यद् भयं भवेत् ।
तादृशान्येव रूपाणि तस्मिन्नुत्पातलक्षणे ॥ १७ ॥

हजार चतुर्युगोंके अन्तमें होनेवाले प्रलयके समय लोकोंको जो भय प्राप्त होता है, इस उत्पातके समय भी वैसे ही चिह्न दीखने लगे ॥ १७ ॥

तमसा निष्प्रभं सर्वं न प्राज्ञायत किंचन ।
तिमिरौघपरिक्षिप्ता न रेजुश्च दिशो दश ॥ १८ ॥

सारा संसार अन्धकारसे व्याप्त हो जानेके कारण प्रभाहीन प्रतीत होने लगा; कुछ भी सूझता न था । अन्धकारसमूहसे आच्छादित हुई दसों दिशाएँ ज्ञात ही नहीं होती थीं ॥ १८ ॥

निशेव रूपिणी काली कालमेघावगुण्ठिता ।
द्यौर्न भात्यभिभूतार्का घोरेण तमसा वृता ॥ १९ ॥

जैसे काले मेघोंके घिर आनेपर अमावास्याकी रात्रि मूर्तिमती-सी दीख पड़ती है, वैसे ही अन्धकारसे सूर्यके तिरोहित होनेपर घोर अन्धकारसे भरा हुआ आकाश शोभायमान नहीं लगता था ॥ १९ ॥

तान् घनौघान् सतिमिरान् दोर्भ्यामुत्क्षिप्य स प्रभुः ।
वपुः संदर्शयामास दिव्यं कृष्णवपुर्हरिः ॥ २० ॥

उस समय श्यामवर्ण भगवान् श्रीहरिने अपनी दोनों भुजाओंद्वारा अन्धकारसे व्याप्त उन मेघसमूहोंको ऊपरकी ओर ठेलकर अपने दिव्य स्वरूपका साक्षात्कार कराया ॥ २० ॥

बलाहकाञ्जननिभं बलाहकतनूरुहम् ।
तेजसा वपुषा चैव कृष्णं कृष्णमिवाचलम् ॥ २१ ॥
दीप्तपीताम्बरधरं तप्तकाञ्चनभूषणम् ।
धूमान्धकारवपुषा युगान्ताग्निमिवोत्थितम् ॥ २२ ॥
चतुर्द्विगुणपीनांसं बलाकापङ्क्तिभूषणम् ।
चामीकरकराकारैरायुधैरुपशोभितम् ॥ २३ ॥
चन्द्रार्ककिरणोद्द्योतं गिरिकूटं शिलोच्चयम् ।
नन्दकानन्दितकरं शराशीविषधारिणम् ॥ २४ ॥
शक्तिचित्रं हलोदग्रं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
विष्णुशैलं क्षमामूलं श्रीवृक्षं शार्ङ्गधन्विनम् ॥ २५ ॥
हर्यश्वरथसंयुक्ते सुपर्णध्वजशोभिते ।
चन्द्रार्कचक्ररुचिरे मन्दराक्षधृतान्तरे ॥ २६ ॥

अनन्तरश्मिसंयुक्ते ददृशे मेरुकूबरे।
तारकाचित्रकुसुमे ग्रहनक्षत्रबन्धुरे ॥ २७ ॥
भयेष्वभयदं व्योम्नि देवा दैत्यपराजिताः।
ददृशुस्ते स्थितं देवं दिव्यलोकमये रथे ॥ २८ ॥

भगवान्के श्रीविग्रहका वर्ण मेघ और अञ्जनके समान था। उनके केश भी मेघके समान (काले) थे। उनका शरीर तो काले पर्वतके समान कृष्णवर्ण था ही, उससे तेज भी कृष्णवर्ण निकल रहा था। वे चमकता हुआ पीताम्बर धारण किये हुए थे और तपे हुए सुवर्णके आभूषण पहने थे। उस समय वे ऐसे लगते थे, जैसे धूमके समान अन्धकारमय शरीरसे आवेष्टित होकर प्रलयकालकी अग्नि प्रकट हुई हो। वे (अष्टभुज होनेके कारण) आठ मांसल बाहुमूलोंसे सुशोभित थे। चमकते हुए आभूषणोंसे युक्त उनका श्रीविग्रह ऐसी शोभा देता था, जैसे बगुलोंकी पंक्तिसे विभूषित मेघ हो। वे सुवर्णकी बनी मूठवाले आयुधोंसे सुशोभित तथा चन्द्रमा और सूर्यकी किरणोंसे दमकते हुए पर्वतके समान अचल थे। कटिप्रदेशमें मैनसिलके समान पीले रंगका नारा बाँधे हुए थे।* उनका एक हाथ नन्दक नामके खड्गसे सुशोभित था, वे दूसरे हाथमें सर्पाकार (लहरदार) बाण धारण किये हुए थे। शक्तिसे उनकी विचित्र शोभा हो रही थी। तीसरे हाथमें हल लिये रहनेके कारण वे बहुत ऊँचे दिखायी दे रहे थे। अन्य तीन हाथोंमें उन्होंने शङ्ख, चक्र और गदा धारण कर रखी थी। एक हाथमें उनके शार्ङ्ग (सींगका बना) धनुष था। भगवान् विष्णु एक पर्वतके समान दीख रहे थे। उनके अङ्गोंमें जो श्री है, वे ही वृक्ष स्थानीय थीं। जैसे पर्वतका मूलभाग क्षमा (पृथ्वी) पर प्रतिष्ठित है, उसी तरह श्रीहरिकी प्राप्तिका मूल क्षमाभाव है। भयके अवसरोंपर अभयदान देनेवाले पर्वतके समान अटल भगवान् विष्णुको दैत्योंसे हारे हुए देवताओंने आकाशके बीच दिव्यलोकमय रथमें बैठे देखा। उस रथमें हरे रंगके घोड़े जुते हुए थे। वह गरुड़की ध्वजासे शोभित था। सूर्य और चन्द्रमारूपी पहियोंसे वह सुन्दर दिखायी देता था। उसके भीतरी भागको मन्दराचलरूपी धुरेने धारण कर रखा था। भगवान् शेष ही उसमें रश्मि (लगाम) बने हुए थे। मेरु पर्वत उसका कूबर (आगेका भाग) था। तारे ही उसमें रंग-बिरंगे फूलोंके रूपमें सजे थे तथा ग्रह-नक्षत्र उसमें डोरीके रूपमें लगे थे ॥ २१–२८ ॥

ते कृताञ्जलयः सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः।
जयशब्दं पुरस्कृत्य शरण्यं शरणं गताः ॥ २९ ॥

उस समय इन्द्र आदि समस्त देवताओंने जय-जय शब्दका उच्चारण किया और हाथ जोड़कर शरण ले विष्णु-भगवान्की शरण ग्रहण की ॥ २९ ॥

स तेषां ता गिरः श्रुत्वा विष्णुर्दयितदेवतः।
मनश्चक्रे विनाशाय दानवानां महामृधे ॥ ३

विष्णुको देवता प्रिय हैं, अतएव उन्होंने देवताओं उस वाणीको सुनकर महायुद्धमें दानवोंके नाश क अपने मनमें विचार किया ॥ ३० ॥

आकाशे तु स्थितो विष्णुः सोत्तमे पुरुषोत्तमः।
उवाच देवताः सर्वाः सप्रतिज्ञमिदं वचः ॥ ३

उत्तम आकाशमें विराजमान उन पुरुषोत्तम भग विष्णुने सब देवताओंसे प्रतिज्ञापूर्वक यह बात कही—॥ ३

शान्तिं भजत भद्रं वो मा भैष्ट मरुतां गणाः।
जिता मे दानवाः सर्वे त्रैलोक्यं प्रतिगृह्यताम् ॥ ३

‘देवताओ ! तुम्हारा कल्याण हो ! अब तुम शान्त जाओ, डरो मत। मेरे द्वारा सारे दानव जीत लिये गये- यों समझना चाहिये। (अब) तुम त्रिलोकीका राज्य अपना मानो और उसपर अधिकार करो’ ॥ ३२ ॥

ते तस्य सत्यसंधस्य विष्णोर्वाक्ये न तोषिताः।
देवाः प्रीतिं परां जग्मुः प्राप्येवामृतमुत्थितम् ॥ ३३

सत्यप्रतिज्ञ भगवान् विष्णुके वाक्यसे आश्वासित देवता अत्यधिक प्रसन्न हुए, मानो उनको क्षीरसागरसे प्रक हुआ अमृत मिल गया ॥ ३३ ॥

ततस्तमः संह्रियते विनेशुश्च बलाहकाः।
प्रववुश्च शिवा वाताः प्रसन्नाश्च दिशो दश ॥ ३४

उस समय अन्धकार दूर हो गया, मेघ विलीन गये, सुखदायक वायु चलने लगी और दसों दिशाएँ निर्म हो गयीं ॥ ३४ ॥

सुप्रभाणि च ज्योतींषि चन्द्रं चक्रुः प्रदक्षिणम्।
दीप्तिमन्ति च तेजांसि चक्रुरर्कं प्रदक्षिणम् ॥ ३५

सुन्दर प्रभावाले नक्षत्र चन्द्रमाकी और प्रकाशमान सूर्यकी प्रदक्षिणा करने लगे ॥ ३५ ॥

न विग्रहं ग्रहाश्चक्रुः प्रसन्नाश्चापि सिन्धवः।
नीरजस्का बभुर्मार्गा नाकमार्गादयस्त्रयः ॥ ३६

ग्रहोंने आपसमें टकराना छोड़ दिया, नदियोंका निर्मल हो गया तथा देवयान, पितृयान और मोक्ष नामक तीनों मार्ग भी रज (धूल या रजोगुण) से रहित गये ॥ ३६ ॥

यथार्थमूहुः सरितो नापि चुक्षुभिरेऽर्णवाः।
आसञ्छुभानीन्द्रियाणि नराणामन्तरात्मसु ॥ ३७

---

* यहाँ नीलकंठजीने शिलाका अर्थ मैनसिल और उच्चयका अर्थ नीवीबन्ध या नारा किया है।

नदियाँ ठीक ढंगसे बहने लगीं, समुद्रोंका क्षुब्ध होना बंद हो गया, मनुष्योंके मनोंमें इन्द्रियोंको शुभ कामोंमें लगानेकी इच्छा होने लगी ॥ ३७ ॥

महर्षयो वीतशोका वेदानुच्चैरधीयते ।
यज्ञेषु च हविः स्वादु शिवमश्नाति पावकः ॥ ३८ ॥

महर्षि शोकरहित होकर उच्चस्वरसे वेदध्वनि करने लगे, अग्निदेव भी यज्ञोंमें पवित्र और स्वादु हविका भक्षण करने लगे ॥ ३८ ॥

प्रवृत्तधर्माः संवृत्ता लोका मुदितमानसाः ।
प्रीत्या परमया युक्ता देवदेवस्य भूपते ।
विष्णोः सत्यप्रतिज्ञस्य श्रुत्वारिनिधने गिरम् ॥ ३९ ॥

पृथ्वीनाथ ! सच्ची प्रतिज्ञा करनेवाले देवपूज्य भगवान् विष्णुके द्वारा की गयी शत्रुनाशकी प्रतिज्ञा सुनकर प्राणी अपने मनमें प्रसन्न होकर परम प्रीतिसे यज्ञ आदि धर्मानुष्ठानमें प्रवृत्त हो गये ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि आश्चर्यतारकामये द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें आश्चर्यतारकामय संग्रामविषयक बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४२ ॥

* * *

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

देवताओंके साथ युद्धके लिये उद्यत हुई दैत्यसेनाका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

ततो भयं विष्णुमयं श्रुत्वा दैतेयदानवाः ।
उद्योगं विपुलं चक्रुर्युद्धाय युधि दुर्जयाः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर मुख्यतः भगवान् विष्णुकी ओरसे भय प्राप्त हुआ है, यह सुनकर रण-दुर्जय दैत्यों और दानवोंने युद्धके लिये बड़ा भारी उद्योग किया ॥ १ ॥

मयस्तु काञ्चनमयं त्रिनल्वान्तरमव्ययम् ।
चतुश्चक्रं विक्रमन्तं सुकल्पितमहायुधम् ॥ २ ॥
किङ्किणीजालनिर्घोषं द्वीपिचर्मपरिष्कृतम् ।
खचितं रत्नजालैश्च हेमजालैश्च भूषितम् ॥ ३ ॥
स्वक्षं रथवरोदग्रं सूपस्थानमगोपमम् ।
ईहामृगगणाकीर्णं पक्षिभिश्च विराजितम् ।
दिव्यास्त्रतूणीरधरं पयोधरनिनादितम् ॥ ४ ॥
गदापरिघसम्पूर्णं मूर्तिमन्तमिवार्णवम् ।
हेमकेयूरवलयं स्वर्णमण्डलकूबरम् ॥ ५ ॥
सपताकध्वजोदग्रं सादित्यमिव मन्दरम् ।
गजेन्द्राम्भोदसदृशं लम्बकेसरवर्चसम् ॥ ६ ॥
युक्तमृक्षसहस्रेण सहस्राम्बुदनादितम् ।
दीप्तमाकाशगं दिव्यं रथं पररथारुजम् ॥ ७ ॥
अध्यतिष्ठद्रणाकाङ्क्षी मेरुं दीप्तमिवांशुमान् ।

मयासुर एक सुवर्णमय रथपर आरूढ़ हुआ, जिसका विस्तार बारह सौ हाथका था। उसमें चार पहियें लगे थे। वह रथ टूटने या बिगड़नेवाला नहीं था। कैसी ही विषम भूमि क्यों न हो, उसमें वह आगे बढ़ जाता था। उस रथमें बड़े-बड़े आयुध सुन्दर ढंगसे सजाकर रखे गये थे। उसमें छोटी-छोटी घंटियोंसे युक्त झालरें लगी थीं, जिनसे मधुर ध्वनिका विस्तार होता रहता था। रथके ऊपरी भागमें उसकी रक्षाके लिये चीतेकी खाल मढ़ी गयी थी। उस रथमें भाँति-भाँतिके रत्न जड़े गये थे तथा सोनेकी जालियाँ उसकी शोभा बढ़ा रही थीं। उसका धुरा बहुत अच्छा था। वह रथ अच्छी श्रेणीके रथोंमें भी सबसे अच्छा था। उसकी बैठक बड़ी सुन्दर थी। वह देखनेमें पर्वत-जैसा जान पड़ता था। उसमें जीव-जन्तुओंके चित्र अङ्कित थे। भाँति-भाँतिके पक्षियोंके चित्र भी उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। उसके भीतर दिव्यास्त्र और तरकस रखे गये थे। उस रथसे मेघगर्जनाके समान गम्भीर घर्घर-शब्द होता रहता था। गदाओं और परिघोंसे परिपूर्ण वह विशाल रथ मूर्तिमान् समुद्र-सा जान पड़ता था। उस रथमें जहाँ-जहाँ संधिस्थलोंको बाँधे रखनेके लिये पट्टियाँ लगी थीं, वहाँ-वहाँ वे पट्टिकाएँ सुवर्ण निर्मित केयूर और वलयके सदृश शोभा पाती थीं। उसका कूबर सोनेका मण्डल-सा जान पड़ता था। ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित वह ऊँचा रथ सूर्यमण्डलसे विभासित मन्दराचल-सा जान पड़ता था। दूरसे देखनेपर उसका रंग बड़े-बड़े गजराजों, मेघोंकी घटाओं तथा भालुओंके समान जान पड़ता था। उसमें एक हजार रीछ जुते हुए थे। उसकी घरघराहट सहस्रों मेघोंकी गर्जनाको तिरस्कृत किये देती थी। वह दीप्तिमान् दिव्य रथ आकाशमें भी चल सकता था और शत्रु-पक्षके रथोंको तोड़-फोड़ डालनेमें समर्थ था। युद्धकी आकांक्षा रखनेवाला मयासुर उस रथपर सवार हुआ मानो अंशुमाली सूर्य दीप्तिमान् मेरु पर्वतपर आरूढ़ हुए हों॥

तारस्तु क्रोशविस्तारमायसं वायसध्वजम् ॥ ८ ॥
शैलोत्करसमाकीर्णं नीलाञ्जनचयोपमम् ।
काललोहाष्टचरणं लोहेषायुगकूबरम् ।
तिमिराङ्गारकिरणं गर्जन्तमिव तोयदम् ॥ ९ ॥
लोहजालेन महता सगवाक्षेण दंशितम् ।

आयसैः परिघैः कीर्णं क्षेपणीयैस्तथाश्मभिः ॥ १० ॥
प्रासैः पाशैश्च विततैरवसक्तैश्च मुद्गरैः।
शोभितं त्रासनीयैश्च तोमरैः सपरश्वधैः ॥ ११ ॥
उद्यन्तं द्विषतां हेतोर्द्वितीयमिव मन्दरम्।
युक्तं खरसहस्रेण सोऽध्यारोहद्रथोत्तमम् ॥ १२ ॥

तारनामक दैत्य लोहेके बने हुए उत्तम रथपर आरूढ़ हुआ, जिसका विस्तार एक कोसका था; उसके ऊपर कौएके चिह्नसे सुशोभित ध्वजा फहरा रही थी। उसके भीतर शिलाखण्डोंके समूह भरे हुए थे। वह नीली कज्जलराशिके समान प्रतीत होता था। उसमें काले लोहेके आठ पहिये लगे थे। उसके ईषादण्ड (हरसे या बम), जुआ और कूबर भी लोहेके ही बने हुए थे। उसकी कान्ति काले कोयलेके समान काली थी, वह अपनी घरघराहटसे गरजता हुआ मेघ-सा जान पड़ता था। उसके ऊपर लोहेकी बहुत बड़ी जाली लगी हुई थी, जिसमें झरोखे शोभा पाते थे। वह रथ लोहेके परिघों तथा फेंकने योग्य पत्थरोंके गोलोंसे भरा था। बहुत-से भाले, विस्तृत पाश, बहुसंख्यक लटकते हुए मुद्गर, डरावने तोमर और फरसे उसकी शोभा बढ़ाते थे। वह शत्रुओंके लिये दूसरे मन्दराचलकी भाँति उदित हुआ था, उस श्रेष्ठ रथमें एक हजार गधे जुते हुए थे ॥ ८—१२ ॥

विरोचनस्तु संक्रुद्धो गदापाणिरवस्थितः।
प्रमुखे तस्य सैन्यस्य दीप्तश्रृङ्ग इवाचलः ॥ १३ ॥

क्रोधमें भरा हुआ विरोचन नामक दैत्य हाथमें गदा लिये उस सेनाके मुहानेपर खड़ा हो गया। वह देखनेमें ऐसा जान पड़ता था, मानो कान्तिमान् शिखरसे युक्त कोई पर्वत खड़ा हो ॥ १३ ॥

युक्तं हयसहस्रेण हयग्रीवस्तु दानवः।
स्यन्दनं वाहयामास सपत्नानीकमर्दनः ॥ १४ ॥

दानव हयग्रीव शत्रुओंकी सेनाको कुचल डालनेमें समर्थ था। उसने एक हजार घोड़ोंसे जुते हुए रथको अपना वाहन बनाया ॥ १४ ॥

व्यायतं बहुसाहस्रं धनुर्विस्फारयन् महत्।
वराहः प्रमुखे तस्थौ सावरोह इवाचलः ॥ १५ ॥

वराह नामक दानव कई हजार हाथ लंबा विशाल धनुष टंकारता हुआ दैत्य-सेनाके अग्रभागमें खड़ा हो गया, उस समय वह बरोहों (जटाओं) से युक्त बरगदके समान प्रतीत होता था ॥ १५ ॥

खरस्तु विक्षरन् दर्पान्नेत्राभ्यां रोषजं जलम्।
स्फुरद्दन्तौष्ठवदनः संग्राममं सोऽभ्यकाङ्क्षत ॥ १६ ॥

खर नामक दैत्य अपने नेत्रोंसे रोषजनित आँसू बहाता हुआ बड़े दर्पके साथ आया और युद्धकी इच्छासे डट गया, उस समय उसके दाँत, ओठ और मुख क्रोधसे रहे थे ॥ १६ ॥

त्वष्टा त्वष्टादशहयं यानमास्थाय दानवः।
व्यूहितो दानवैर्व्यूहैः परिचक्राम वीर्यवान् ॥

त्वष्टा नामक बलशाली दानव अठारह घोड़ोंसे रथपर सवार होकर आया और व्यूहमें खड़े हुए साथ स्वयं भी व्यूहका एक अङ्ग बनकर सब ओर घूमने

विप्रचित्तिसुतः श्वेतः श्वेतकुण्डलभूषणः।
श्वेतशैलप्रतीकाशो युद्धायाभिमुखः स्थितः ॥

विप्रचित्तिका पुत्र श्वेत सफेद कुण्डलोंसे युद्धके लिये सामने आकर डट गया, वह श्वेत-पर्वतके दिखायी देता था ॥ १८ ॥

अरिष्टो बलिपुत्रस्तु वरिष्ठोऽद्रिशिलायुधैः।
युद्धायातिष्ठदायस्तो धराधर इवापरः ॥

बलिका ज्येष्ठ पुत्र अरिष्ट पर्वतीय शिलाखण्डोंको रूपमें धारण किये शत्रुओंका सामना करनेके लिये खड़ा उसने युद्धकी कलामें विशेष परिश्रम किया था। वह पर्वतके समान प्रतीत होता था ॥ १९ ॥

किशोरस्त्वतिसंहर्षात् किशोर इव चोदितः।
अभवद् दैत्यसैन्यस्य मध्ये रविरिवोदितः ॥

किशोर नामक दैत्य चाबुकसे हाँके गये बछेड़ेके बड़े हर्ष और उत्साहके साथ आकर दैत्यसेनाके खड़ा हो गया। वह नवोदित सूर्यके समान शोभा पा रहा

लम्बस्तु लम्बमेघाभः प्रलम्बाम्बरभूषणः।
दैत्यव्यूहगतो भाति सनीहार इवांशुमान् ॥

लम्ब नामक दानव बरसनेके लिये झुके हुए काली घटाके समान काला दिखायी देता था, उसके और आभूषण बड़े-बड़े थे। दैत्य-सेनाके व्यूहमें खड़ा वह कुहासेसे ढँके हुए सूर्यके समान सुशोभित होता

स्वर्भानुर्वक्रयोधी तु दशनौष्ठेक्षणायुधः।
हसंस्तिष्ठति दैत्यानां प्रमुखे स महाग्रहः ॥

वक्र रीतिसे युद्ध करनेवाला राहु नामक ग्रह हँसता हुआ आकर दैत्य-सेनाके मुहानेपर डट वह अपने दाँतों, नेत्रों और ओठोंसे भी आयुधका लेता था ॥ २२ ॥

अन्ये हयगता भान्ति नागस्कन्धगताः परे।
सिंहव्याघ्रगताश्चान्ये वराहर्क्षगताः परे ॥

कुछ दानव घोड़ोंपर सवार दिखायी देते थे और गजराजोंकी पीठपर। दूसरे बहुत-से दैत्य सिंह, व्याघ्र और रीछोंपर चढ़े हुए थे ॥ २३ ॥

केचित् खरोष्ट्रयातारः केचित् तोयदवाहनाः ।
नानापक्षिगताश्चान्ये केचित् पवनवाहनाः ॥ २४ ॥

कोई गधों और ऊँटोंपर चढ़कर जा रहे थे, तो कोई बादलोंको ही अपना वाहन बनाये हुए थे । दूसरे दैत्य नाना प्रकारके पक्षियोंपर बैठे थे और कितने ही दानव वायुके सहारे ही उड़ रहे थे ॥ २४ ॥

पत्तयश्चापरे दैत्या भीषणा विकृताननाः ।
एकपादा द्विपादाश्च नर्दन्तो युद्धकाङ्क्षिणः ॥ २५ ॥

दूसरे विकराल मुखवाले भीषण दैत्य पैदल ही चल रहे थे। किन्हींके एक पैर थे तो किन्हींके दो पैर, वे सभी युद्धकी अभिलाषासे गरज रहे थे ॥ २५ ॥

प्रक्ष्वेडमाना बहवः स्फोटयन्तश्च ते भुजान् ।
दृप्तशार्दूलनिर्घोषा नेदुर्दानवपुङ्गवाः ॥ २६ ॥

बहुत-से दानवराज उछलते-कूदते और ताल ठोंकते हुए बलोन्मत्त सिंहोंके समान दहाड़ रहे थे ॥ २६ ॥

ते गदापरिघैरुग्रैर्धनुर्व्यायामशालिनः ।
बाहुभिः परिघाकारैस्तर्जयन्ति स्म देवताः ॥ २७ ॥

धनुष खींचनेके परिश्रमसे सुशोभित होनेवाले वे दैत्य अपनी गदाओं, भयंकर परिघों तथा परिघ-जैसी मोटी एवं बलिष्ठ भुजाओंद्वारा देवताओंको डाँट बता रहे थे ॥ २७ ॥

प्रासैः पाशैश्च खड्गैश्च तोमराङ्कुशपट्टिशैः ।
चिक्रीडुस्ते शतघ्नीभिः शतधारैश्च मुद्गरैः ॥ २८ ॥

वे भालों, पाशों, खड्गों, तोमरों, अंकुशों, पट्टिशों, शतघ्नियों और सौ धारवाले मुद्गरोंसे खेल रहे थे ॥ २८ ॥

गण्डशैलैश्च शैलैश्च परिघैश्चोत्तमायुधैः ।
चक्रैश्च दैत्यप्रवराश्चक्रुरानन्दितं बलम् ॥ २९ ॥

वे श्रेष्ठ दैत्यवीर पहाड़ोंसे टूटकर गिरी हुई बड़ी-बड़ी चट्टानों, शैल-शिखरों, परिघों, चक्रों तथा अन्य उत्तमोत्तम आयुधोंसे अपनी सेनाको आनन्दित कर रहे थे ॥ २९ ॥

एवं तद् दानवं सैन्यं सर्वं युद्धबलोत्कटम् ।
देवताभिमुखं तस्थौ मेघानीकमिवोत्थितम् ॥ ३० ॥

इस प्रकार युद्धके लिये बलाभिमानसे उन्मत्त हुई वह दानवोंकी सम्पूर्ण सेना मेघोंकी घिरी हुई घटाके समान देवताओंके सम्मुख डटकर खड़ी थी ॥ ३० ॥

तदद्भुतं दैत्यसहस्रगाढं
वाय्वग्नितोयाम्बुदशैलकल्पम् ।
बलं रणौघाभ्युदयावकीर्णं
युयुत्सयोन्मत्तमिवावभासे ॥ ३१ ॥

वह अद्भुत दैत्य-सेना सहस्रों दैत्यवीरोंसे ठसाठस भरी थी। वायु, अग्नि, जल, मेघ एवं पर्वतमालाओंके समान दिखायी देती थी। युद्धके प्रवाहको बढ़ानेके लिये सब ओर फैली हुई थी और लड़नेकी इच्छासे उन्मत्त हुई-सी प्रतीत होती थी ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४३ ॥

* * *

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

आश्चर्यतारकामय संग्राममें देवसेनाकी युद्धके लिये तैयारी

वैशम्पायन उवाच

श्रुतस्ते दैत्यसैन्यस्य विस्तरस्तात विग्रहे ।
सुराणां सर्वसैन्यस्य विस्तरं वैष्णवं शृणु ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—तात ! उस युद्धके समय दैत्य-सेनाका जो विस्तार था, वह तुमने सुन लिया । अब देवताओंकी सम्पूर्ण सेनाका विस्तार, जो भगवान् विष्णुके आश्रित है, सुनो ॥ १ ॥

आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च महाबलौ ।
सबलाः सानुगाश्चैव संनह्यन्त यथाबलम् ॥ २ ॥

आदित्य, वसु, रुद्र और महाबली अश्विनीकुमार—ये अपने दल-बल और अनुयायियोंको साथ ले यथाशक्ति युद्ध करनेके लिये कवच आदिसे सुसज्जित हो गये ॥ २ ॥

पुरुहूतस्तु पुरतो लोकपालः सहस्रदृक् ।
ग्रामणीः सर्वदेवानामारुरोह सुरद्विपम् ॥ ३ ॥

सबसे पहले समस्त देवताओंके नेता सहस्र नेत्रधारी इन्द्र देवताओंके हाथी ऐरावतपर आरूढ़ हुए ॥ ३ ॥

सव्ये चास्य रथः पार्श्वे पक्षिप्रवरवेगवान् ।
सुचारुचक्रचरणो हेमवज्रपरिष्कृतः ॥ ४ ॥

उनकी बायीं ओर बहुत ही सुन्दर चक्ररूपी चरणोंसे गरुड़के समान वेगपूर्वक चलनेवाला सुवर्ण और हीरोंसे जड़ा हुआ उनका रथ चल रहा था ॥ ४ ॥

देवगन्धर्वयक्षौघैरनुयातः सहस्रशः ।
दीप्तिमद्भिः सदस्यैश्च ब्रह्मर्षिभिरभिष्टुतः ॥ ५ ॥

उनके पीछे देवता, गन्धर्व और यक्षोंकी मण्डलियाँ चल

रही थीं तथा यज्ञमें सहायता करनेवाले सहस्रों दीप्तिमान् ब्रह्मर्षि स्तुति करते हुए चल रहे थे ॥ ५ ॥

वज्रविस्फूर्जितोद्धूतैर्विद्युदिन्द्रायुधान्वितैः ।
गुप्तो बलाहकगणैः कामगैरिव पर्वतैः ॥ ६ ॥

वज्र (गाज) की गड़गड़ाहटसे फटते हुए तथा बिजली एवं इन्द्रधनुषसे युक्त मेघसमूह देवराजके साथ चल रहे थे। वे ऐसे लगते थे मानो इच्छानुसार चलनेवाले पर्वत हों। इन्द्रका वह रथ उन मेघोंद्वारा सुरक्षित था ॥ ६ ॥

समारूढः स भगवान् पर्येति मघवा गजम् ।
हविर्धानेषु गायन्ति विप्राः सोममखे स्थिताः ॥ ७ ॥
स्वर्गे शक्रानुयानेषु देवतूर्यनिनादिषु ।
इन्द्रं समुपनृत्यन्ति शतशो ह्यप्सरोगणाः ॥ ८ ॥

सोमयागमें भाग लेनेवाले ब्राह्मण हविष्य रखनेके स्थानोंमें हविष्य रखते समय जिनकी स्तुति करते हैं, स्वर्गमें जिनकी सवारियोंके अवसरपर देवताओंकी तुरहियाँ बजती हैं और जिनके साथ अप्सराओंकी सैकड़ों मण्डलियाँ नाचती हुई चलती हैं, वे ही भगवान् इन्द्र हाथीपर सवार होकर चल रहे थे ॥७-८॥

केतुना वंशजातेन राजमानो यथा रविः ।
युक्तो हरिसहस्रेण मनोमारुतरंहसा ॥ ९ ॥

बाँसकी ध्वजासे सुशोभित तथा मन और वायुके समान वेगवाले हजार घोड़ोंसे खींचा जानेवाला इन्द्रका रथ सूर्यकी तरह दमक रहा था ॥ ९ ॥

स स्यन्दनवरो भाति युक्तो मातलिना तदा ।
कृत्स्नः परिवृतो मेरुर्भास्करस्येव तेजसा ॥ १० ॥

(इन्द्रके सारथि) मातलिसे युक्त वह रथ सूर्यके तेजसे घिरा हुआ सम्पूर्ण मेरुपर्वत-सा दीखता था ॥ १० ॥

यमस्तु दण्डमुद्यम्य कालयुक्तं च मुद्गरम् ।
तस्थौ सुरगणानीके दैत्यान् नादेन भीषयन् ॥ ११ ॥

यमराज मृत्यु-देवताके द्वारा अधिष्ठित दण्ड तथा मुद्गरको धारण कर अपने सिंहनादसे दैत्योंको भयभीत करते हुए देवताओंकी सेनाके मुहानेपर डट गये ॥ ११ ॥

चतुर्भिः सागरैर्गुप्तो लेलिहानैश्च पन्नगैः ।
शङ्खमुक्ताङ्गदधरो बिभ्रत्तोयमयं वपुः ॥ १२ ॥
कालपाशं समाविध्य हयैः शशिकरोपमैः ।
वाय्वीरितजलोद्गारैः कुर्वँल्लीलाः सहस्रशः ॥ १३ ॥
पाण्डुरोद्धूतवसनः प्रवालरुचिराधरः ।
मणिश्यामोत्तमवपुर्हारभारार्पितोदरः ॥ १४ ॥
वरुणः पाशभृन्मध्ये देवानीकस्य तस्थिवान् ।
युद्धवेलामभिलषन् भिन्नवेल इवार्णवः ॥ १५ ॥

युद्धका अवसर चाहते हुए पाशधारी वरुण किनारेको तोड़कर आगे बढ़नेवाले समुद्रकी भाँति देवताओंकी बीचमें आकर डट गये। वे चारों समुद्रों और जीभ हुए सर्पोंसे सुरक्षित थे। उन्होंने शङ्ख और मोतियोंके बन्द धारण कर रखे थे। उनका शरीर जलमय था। वे पाशको घुमाते हुए चन्द्रमाकी किरणोंके समान श्वेत घोड़ोंसे और वायुके द्वारा उछाले जानेवाले जलके सहस्रों प्रकारकी क्रीडाएँ कर रहे थे। उनका श्वेत वस्त्र रहा था। उनके सुन्दर ओठ मूँगे एवं नूतन पल्लवोंके लाल-लाल थे। मणिमय आभूषणोंसे विभूषित हुए उनके अङ्गोंकी बड़ी उत्तम शोभा हो रही थी तथा हारोंका उनके उदरपर पड़ रहा था ॥ १२—१५ ॥

यक्षराक्षससैन्येन गुह्यकानां गणैरपि ।
मणिश्यामोत्तमवपुः कुबेरो नरवाहनः ॥ १६
युक्तश्च शङ्खपद्माभ्यां निधीनामधिपः प्रभुः ।
राजराजेश्वरः श्रीमान् गदापाणिरदृश्यत ॥ १७

नवों निधियोंके स्वामी, महान् शक्तिशाली, राजरा श्रीमान् कुबेर, जिनका उत्तम शरीर नीलमणिके समान कान्तिसे सुशोभित था और जो मनुष्योंके द्वारा ढोयी जाने पालकीमें सवार होते हैं, मूर्तिमान् शङ्ख और पद्म ना निधियोंको साथ लेकर हाथमें गदा धारण किये दिखायी उनके साथ यक्ष और राक्षसोंकी सेना तथा गुह्यकोंके विद्यमान थे ॥ १६-१७ ॥

विमानयोधी धनदो विमाने पुष्पके स्थितः ।
स राजराजः शुशुभे युद्धार्थी नरवाहनः ।
प्रेक्ष्यमाणः शिवसखः साक्षादिव शिवः स्वयम् ॥ १८

विमानमें बैठकर युद्ध करनेवाले, शिवजीके मि राजाधिराज नरवाहन कुबेर युद्धके लिये पुष्पक विमा स्थित हो बड़ी शोभा पा रहे थे। उस समय वे साक्षात् भग शिवके समान दृष्टिगोचर होते थे ॥ १८ ॥

पूर्वं पक्षं सहस्राक्षः पितृराजस्तु दक्षिणम् ।
वरुणः पश्चिमं पक्षमुत्तरं नरवाहनः ॥ १९
चतुर्षु युक्ताश्चत्वारो लोकपाला बलोत्कटाः ।
स्वासु दिक्ष्वभ्यरक्षन् वै तस्य देवबलस्य ह ॥ २०

उस देवसेनाके पूर्वपक्षकी देखभाल सहस्रलोचन देव इन्द्र कर रहे थे। दक्षिण-पक्षकी देखभालका भार पितृ यमने सम्हाला। पश्चिम-पक्षकी देख-रेख वरुणदेवने की उत्तर-पक्षका निरीक्षण नरवाहन कुबेरने किया। इस प्र चारों दिशाओंमें सावधानीके साथ खड़े हुए चारों उत् बलशाली लोकपाल अपनी-अपनी दिशाकी ओरसे उस सेना रक्षा कर रहे थे ॥ १९-२० ॥

सूर्यः सप्ताश्वयुक्तेन रथेनाम्बरगामिना ।
श्रिया-जाज्वल्यमानेन दीप्यमानैश्च रश्मिभिः ॥ २१

उदयास्तमयं चक्रे मेरुपर्यन्तगामिना ।
त्रिदिवद्वारचक्रेण तपता लोकमव्ययम् ॥ २२ ॥

सूर्यदेव सात घोड़ोंसे युक्त आकाशगामी रथके द्वारा युद्धभूमिमें आये थे। उनका वह रथ उत्तम शोभा तथा दीप्तिमान् किरणोंसे जगमगा रहा था। वह मेरु पर्वतके चारों ओर चक्कर लगानेवाला, स्वर्गके द्वारपर चक्रकी भाँति घूमनेवाला और जो प्रवाहरूपसे अक्षय बने रहते हैं, उन समस्त लोकोंको प्रकाशित करनेवाला था। उसीके द्वारा सूर्यदेव संसारमें उदय और अस्तकी झाँकी कराते हैं ॥ २१-२२ ॥

सहस्ररश्मियुक्तेन भ्राजमानः स्वतेजसा ।
चचार मध्ये देवानां द्वादशात्मा दिनेश्वरः ॥ २३ ॥

सहस्रों किरणोंसे सम्पन्न अपने ही तेजसे प्रकाशित होनेवाले, द्वादश रूपधारी भगवान् दिनेश (सूर्य) पूर्वोक्त रथके द्वारा आकर देव-सेनाके बीचमें विचरने लगे ॥ २३ ॥

सोमः श्वेतहयैर्भाति स्यन्दने शीतरश्मिवान् ।
हिमतोयप्रपूर्णाभिर्भाभिराह्लादयञ्जगत् ॥ २४ ॥

शीतल किरणोंवाले चन्द्रमा श्वेत घोड़ोंसे युक्त रथमें बैठे हुए बड़ी शोभा पा रहे थे। वे हिम और जलसे भरी हुई अपनी प्रभाओंद्वारा सम्पूर्ण जगत्को आह्लाद प्रदान करते थे ॥ २४ ॥

तमृक्षयोगानुगतं शिशिरांशुं द्विजेश्वरम् ।
जगच्छायाङ्किततनुं नैशस्य तमसः क्षयम् ॥ २५ ॥
ज्योतिषामीश्वरं व्योम्नि रसानां रसनं प्रभुम् ।
ओषधीनां परित्राणं निधानममृतस्य च ॥ २६ ॥
जगतः प्रथमं भागं सौम्यं शीतमयं रसम् ।
दद्दृशुर्दानवाः सोमं हिमप्रहरणस्थितम् ॥ २७ ॥

नक्षत्र और योग जिनका अनुसरण करते हैं, जो शीतल किरणोंसे सुशोभित हैं, ब्राह्मणोंके राजा हैं, जिनका शरीर नीले धब्बेके रूपमें पृथ्वीकी छायासे अङ्कित रहता है, जो रात्रिके अन्धकारका नाश करनेवाले हैं, आकाशमें स्थित ज्योतिर्मयी तारिकाओंके अधीश्वर हैं, रसोंके आश्रय एवं प्रभु हैं, ओषधियोंके रक्षक तथा अमृतकी निधि हैं, (अग्नीषोमात्मक) जगत्के प्रथम (मुख्य) भाग हैं और सौम्य तथा शीतल रस हैं, उन्हीं चन्द्रमाको दैत्योंने हिमका आयुध ग्रहण करके खड़ा हुआ देखा ॥ २५–२७ ॥

यः प्राणः सर्वभूतानां पञ्चधा भिद्यते नृषु ।
सप्तस्कन्धगतो लोकांस्त्रीन् दधार चराचरान् ॥ २८ ॥
यमाहुरग्नेर्यन्तारं सर्वप्रभवमीश्वरम् ।
सप्तस्वरगता यस्य योनिर्गीतिरुदीर्यते ॥ २९ ॥
यं वदन्त्युत्तमं भूतं यं वदन्त्यशरीरिणम् ।
यमाहुराकाशगमं शीघ्रगं शब्दयोनिजम् ॥ ३० ॥
स वायुः सर्वभूतायुरुद्धूतः स्वेन तेजसा ।
ववौ प्रव्यथयन् दैत्यान् प्रतिलोमः सतोयदः ॥ ३१ ॥

जो समस्त भूतोंके प्राण हैं, मनुष्य आदि जीवोंके भीतर प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान——इन पाँच रूपोंमें विभक्त होकर निवास करते हैं, आवह, प्रवह आदि सात स्कन्धोंमें स्थित हो त्रिलोकीके चराचर जीवोंको धारण करते हैं, जिन्हें अग्निका सारथि कहा जाता है, जो सबके उत्पत्ति-स्थान और ईश्वर हैं, जिनके कारणभूत आकाशकी शब्द-तन्मात्रा निषाद ऋषभ आदि स्वरोंमें उतर आनेपर गीति कहलाती है, जिन्हें पाँच महाभूतोंमें उत्तम तथा शरीररहित बताते हैं, जिनको आकाशचारी और शीघ्रगामी भी कहते हैं तथा शब्दयोनि (आकाश) से जिनकी उत्पत्ति बतायी गयी है, वे समस्त प्राणियोंके जीवनरूप वायुदेव अपने तेजसे दैत्योंको व्यथित करते हुए वहाँ मेघोंके साथ प्रतिकूल एवं प्रचण्ड गतिसे प्रवाहित होने लगे ॥ २८–३१ ॥

मरुतो देवगन्धर्वा विद्याधरगणैः सह ।
चिक्रीडुरसिभिः शुभ्रैर्निर्मुक्तैरिव पन्नगैः ॥ ३२ ॥

उनचास मरुत, देवता और गन्धर्व, विद्याधरगणोंके साथ आकर केंचुलसे निकले हुए सर्पोंके समान, म्यानसे बाहर निकाली हुई चमचमाती तलवारोंसे खेलने लगे ॥ ३२ ॥

सृजन्तः सर्पपतयस्तीव्रं रोषमयं विषम् ।
शरभूताः सुरेन्द्राणां चेरुर्व्यात्तमुखा दिवि ॥ ३३ ॥

देवेश्वरोंके बाण बने हुए बहुसंख्यक नागराज अपने मुखको फैलाकर तीव्र रोषमय विष उगलते हुए आकाशमें घूमने लगे ॥ ३३ ॥

पर्वतास्तु शिलाशृङ्गैः शतशाखैश्च पादपैः ।
उपतस्थुः सुरगणान् प्रहर्तुं दानवं बलम् ॥ ३४ ॥

पर्वतोंके अधिष्ठाता देवता भी बहुत-सी चट्टानों,, शिखरों तथा सौ-सौ डालियोंवाले वृक्षोंद्वारा दानवदलपर प्रहार करनेके लिये देवगणोंकी सेवामें उपस्थित थे ॥ ३४ ॥

यः स देवो हृषीकेशः पद्मनाभस्त्रिविक्रमः ।
कृष्णवर्त्मा युगान्ताभो विश्वस्य जगतः प्रभुः ॥ ३५ ॥
समुद्रयोनिर्मधुहा हव्यभुक्क्रतुसत्कृतः ।
भूरापोव्योमभूतात्मा समः शान्तिकरोऽरिहा ॥ ३६ ॥
जगद्योनिर्जगद्बीजो जगद्गुरुरुदारधीः ।
सोऽर्कमग्निमिवोद्यन्तमुद्यम्योत्तमतेजसम् ॥ ३७ ॥
अरिघ्नममरानीके चक्रं चक्रगदाधरः ।
सपरीवेषमुद्यन्तं सवितुर्मण्डलं यथा ॥ ३८ ॥

जो हृषीकेशके नामसे प्रसिद्ध हैं, सबके आराध्यदेव हैं, सृष्टिके आरम्भमें जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ था, जो अपने तीन डगोंसे सम्पूर्ण त्रिलोकीको नाप चुके हैं, प्रलयकाल-

में प्रकाशित होनेवाले अग्निदेवके समान जिनका सहज तेज है, जो सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं, नारायणरूपसे समुद्रमें शयन करते हैं, इसलिये समुद्र जिनकी शयनस्थली है, जिन्होंने मधु नामक दैत्यका नाश किया है, जो हविष्यके भोक्ता और यज्ञोंमें पूजित एवं सम्मानित होनेवाले हैं, पृथ्वी, जल, आकाश तथा अन्यान्य भूत जिन विराट्रूपधारी प्रभुके अङ्ग हैं, जो सर्वत्र समभावसे रहते और समता रखते हैं, जो शान्तिका विस्तार करनेवाले और शत्रुनाशक हैं, जगत्की योनि (उत्पत्तिस्थान), जगत्के बीज (आदि कारण) तथा जगत्के गुरु हैं, जिनकी बुद्धिमें सदा उदारता भरी रहती है, वे चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् विष्णु अग्नि तथा उगते हुए सूर्यके समान उत्तम तेजसे सम्पन्न शत्रुनाशक चक्र उठाये हुए देवसेनाके मध्यभागमें विराजमान थे। उन्हें देखकर ऐसा लगता था, मानो वे परिधिसहित उगते हुए सूर्यमण्डलको ही पकड़कर ले आये हों॥ ३५—३८॥

सव्येनालम्ब्य महतीं सर्वासुरविनाशिनीम्।
करेण कालीं वपुषा शत्रुकालप्रदां गदाम्॥ ३९॥
शेषैर्भुजैः प्रदीप्तानि भुजगारिध्वजः प्रभुः।
दधारायुधजालानि शार्ङ्गादीनि महायशाः॥ ४०॥

सर्पोंके शत्रु गरुड़ जिनके ध्वज हैं, उन महायशस्वी भगवान् श्रीहरिने अपने बायें हाथमें समस्त असुरोंका विनाश करनेवाली तथा शत्रुओंको कालके गालमें भेजनेवाली काले रंगकी विशाल गदा ले रखी थी और शेष भुजाओंमें वे अत्यन्त दीप्तिमान् शार्ङ्ग आदि आयुध धारण किये हुए थे॥ ३९-४०॥

स कश्यपस्यात्मभवं द्विजं भुजगभोजनम्।
पवनाधिकसम्पातं गगनक्षोभणं खगम्।
भुजगेन्द्रेण वदने निविष्टेन विराजितम्॥ ४१॥
अमृतारम्भनिर्मुक्तं मन्दराद्रिमिवोच्छ्रितम्।
देवासुरविमर्देषु शतशो दृष्टविक्रमम्॥ ४२॥
महेन्द्रेणामृतस्यार्थे वज्रेण कृतलक्षणम्।
शिखिनं चूडिनं चैव तप्तकुण्डलभूषणम्।
विचित्रपक्षवसनं धातुमन्तमिवाचलम्॥ ४३॥
स्फीतक्रोडावलम्बेन शीतांशुसमतेजसा।
भोगिभोगावसक्तेन मणिरत्नेन भास्वता॥ ४४॥
पक्षाभ्यां चारुचित्राभ्यामावृत्य दिवि लीलया।
युगान्ते सेन्द्रचापाभ्यां तोयदाभ्यामिवाम्बरम्॥ ४५॥
नीललोहितपीताभिः पताकाभिरलंकृतम्।
केतुवेषप्रतिच्छन्नं महाकायनिकेतनम्॥ ४६॥
अरुणावरजं श्रीमानारुह्य समरे हरिः।
सुवर्णं स्वेन वपुषा सुपर्णं खेचरोत्तमम्॥ ४७॥

सबके पाप और दुःखका अपहरण करनेवाले श्रीमान् भगवान् नारायण सर्पोंका भक्षण करनेवाले, कश्यपकुमार एवं अरुणके छोटे भाई पक्षिश्रेष्ठ गरुड़पर सवार होकर वहाँ थे। गरुड़जीके पंख बड़े सुन्दर थे तथा वे अपने शरीरसे सुवर्णके समान मनोरम कान्ति फैला रहे थे। में विचरनेवाले पक्षिप्रवर गरुड़ वायुकी अपेक्षा भी वेगसे उड़ते थे, उनके वेगपूर्वक चलते समय खलबली मच जाती थी। वे अपने मुखमें एक दबाये हुए थे, इससे उनकी बड़ी शोभा हो अमृत निकालनेके लिये प्रारम्भमें ही क्षीरसागरमें मन्दराचलके समान वे ऊँचे दिखायी देते थे। संग्रामके अवसरोंपर सैकड़ों बार उनका पराक्रम चुका था। जब वे स्वर्गमें अमृत लेने गये थे, उस इन्द्रने उस अमृतकी रक्षाके लिये उनपर वज्रसे किया था। जिसकी चोटका चिह्न उस समय भी रहा था, उनके सिरपर मोरकी-सी कलँगी और तथा वे तपे हुए सुवर्णके कुण्डलोंसे विभूषित थे। पंख ही उन्होंने वस्त्ररूपमें धारण कर रखे थे, कारण वे विविध धातुओंसे मण्डित पर्वतके समान होते थे। उनका वक्षःस्थल चौड़ा था, उसपर (मुखमें निगले हुए) सर्पके मस्तकमें चिपकी हुई श्रेष्ठमणि कती थी, जो अपने तेजसे शीतल किरणवाले चन्द्र भाँति उद्भासित हो रही थी। वे अपने मनोहर एवं पंखोंसे लीलापूर्वक आकाशको घेरकर इस तरह मानो प्रलयकालमें इन्द्रधनुषसे युक्त हुए दो आकाश घिर गया हो। श्रीहरिकी ध्वजामें चिह्नके छिपे हुए पक्षिराज गरुड नीली, पीली और लाल पताकाओंसे अलंकृत थे। उनका आधारभूत बहुत विशाल था॥ ४१—४७॥

तमन्वयुर्देवगणा मुनयश्च तपोधनाः।
गीर्भिः परममन्त्राभिस्तुष्टुवुश्च गदाधरम्॥

उस समय समस्त देवता और तपोधन मुनि गदाधरके पीछे-पीछे चलने और श्रेष्ठ मन्त्रमयी द्वारा उनका स्तवन करने लगे॥ ४८॥

तद्वैश्रवणसंश्लिष्टं वैवस्वतपुरस्सरम्।
वारिराजपरिक्षिप्तं देवराजविराजितम्॥
चन्द्रप्रभाभिर्विमलं युद्धाय समुपस्थितम्।
पवनाबद्धनिर्घोषं सम्प्रदीप्तहुताशनम्॥

देवताओंकी वह सेना कुबेरके द्वारा गयी थी। यमराज उसके आगे-आगे चलनेवाले थे। जलके स्वामी वरुणने समुद्ररूपसे उसको सब घेर रखा था तथा देवराज इन्द्र स्वयं उपस्थित उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। चन्द्रमाकी प्रभाओंसे सैन्यसमूह उज्ज्वल एवं निर्मल दिखायी देता था।

वेगपूर्वक चलनेसे उसमें बड़ा गम्भीर शब्द होता था और उस सेनामें खड़े हुए अग्निदेव बड़े वेगसे प्रज्वलित हो रहे थे। ऐसी देवसेना वहाँ दैत्योंके साथ युद्ध करनेके लिये उपस्थित हुई ॥ ४९-५० ॥

विष्णोर्जिष्णोः सहिष्णोश्च भ्राजिष्णोस्तेजसा वृतम् ।
बलं बलवदुद्भूतं युद्धाय समवर्तत ॥ ५१ ॥

जो नित्य विजयशील, सब कुछ सहन करनेमें समर्थ और नित्य प्रकाशमान हैं, उन भगवान् विष्णुके तेजसे व्याप्त हुई देवताओंकी वह बलवती सेना उत्साहसम्पन्न हो युद्धके लिये तैयार हो गयी ॥ ५१ ॥

स्वस्त्यस्तु देवेभ्य इति स्तुत्वा तत्राङ्गिराऽब्रवीत् ।
स्वस्त्यस्तु दैत्येभ्य इति उशना वाक्यमाददे ॥ ५२ ॥

उस समय अङ्गिराके पुत्र देवगुरु बृहस्पतिने स्तुति करके कहा—'देवताओंका कल्याण हो।' फिर दैत्योंके गुरु शुक्राचार्य भी बोल उठे—'दैत्योंका मङ्गल हो' ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि आश्चर्यतारकामये चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें आश्चर्यतारकामय संग्रामविषयक चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

देवासुर-संग्राम एवं और्व अग्निकी उत्पत्ति

वैशम्पायन उवाच

ताभ्यां बलाभ्यां संजज्ञे तुमुलो विग्रहस्तदा ।
सुराणामसुराणां च परस्परजयैषिणाम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! एक दूसरेपर विजय पानेकी इच्छावाले देवताओं और असुरोंकी उन सेनाओंमें उस समय घोर युद्ध आरम्भ हो गया ॥ १ ॥

दानवा दैवतैः सार्द्धं नानाप्रहरणोद्यताः ।
समीयुर्युध्यमाना वै पर्वताः पर्वतैरिव ॥ २ ॥

दानव-सैनिक नाना प्रकारके हथियार उठाये देवताओंके साथ युद्ध करते हुए उनसे भिड़ गये, मानो एक श्रेणीके पर्वत दूसरी श्रेणीके पर्वतोंसे टकरा रहे हैं ॥ २ ॥

तत् सुरासुरसंयुक्तं युद्धमत्यद्भुतं बभौ ।
धर्माधर्मसमायुक्तं दर्पेण विनयेन च ॥ ३ ॥

देवताओं और असुरोंका वह तुमुल युद्ध अत्यन्त अद्भुत प्रतीत होता था, मानो धर्म और अधर्म परस्पर जूझ रहे हों, दर्प और विनय एक दूसरेसे लड़ रहे हों ॥ ३ ॥

ततो रथैः प्रजविभिर्वाहनैश्च प्रचोदितैः ।
उत्पतद्भिश्च गगनं सासिहस्तैः समन्ततः ॥ ४ ॥
विक्षिप्यमाणैर्मुसलैः सम्प्रेष्यद्भिश्च सायकैः ।
चापैर्विस्फार्यमाणैश्च पात्यमानैश्च मुद्गरैः ॥ ५ ॥
तद् युद्धमभवद् घोरं देवदानवसंकुलम् ।
जगतस्त्रासजननं युगसंवर्तकोपमम् ॥ ६ ॥

तदनन्तर रथोंके वेगपूर्वक दौड़ने, घोड़ोंके एँड लगाकर भगाये जाने, चारों ओर तलवार हाथमें लिये योद्धाओंके आकाशमें उछलने, मूसलोंके फेंके जाने, बाणोंके चलाने, धनुषोंके खींचे जाने और मुद्गरोंके गिराये जानेसे देवताओं और दानवोंसे भरा हुआ वह घोर युद्ध प्रलयकालकी अग्निके समान सम्पूर्ण जगत्को त्रास देने लगा ॥ ४—६ ॥

स्वहस्तमुक्तैः परिघैः क्षिप्यमाणैश्च पर्वतैः ।
दानवाः समरे जघ्नुर्देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥ ७ ॥

उस समराङ्गणमें समस्त दानव अपने हाथोंसे छोड़े गये परिघों और फेंके जाते हुए पर्वतशिखरोंकी चोटसे इन्द्र आदि देवताओंको घायल करने लगे ॥ ७ ॥

ते वध्यमाना बलिभिर्दानवैर्जितकाशिभिः ।
विषण्णमनसो देवा जग्मुरार्तिं परां मृधे ॥ ८ ॥

युद्धस्थलमें अपनी विजयसे उल्लसित एवं सुशोभित होनेवाले महाबली दानवोंकी मार खाकर समस्त देवता मन-ही-मन खिन्न हो उठे, उन्हें बड़ी पीड़ा हुई ॥ ८ ॥

तेऽस्त्रजालैः प्रमथिताः परिघैर्भिन्नमस्तकाः ।
भिन्नोरस्का दितिसुतैर्वेमू रक्तं व्रणैर्बहु ॥ ९ ॥

दैत्योंने अपने अस्त्रसमूहोंसे देवताओंको मथ डाला, परिघोंकी मारसे उनके मस्तक फोड़ डाले और वक्षःस्थल विदीर्ण कर दिये। उस समय देवता अपने घावोंसे बहुत रक्त बहा रहे थे ॥ ९ ॥

स्पन्दिताः पाशजालैश्च निर्यत्नाश्च शरैः कृताः ।
प्रविष्टा दानवीं मायां न शेकुस्ते विचेष्टितुम् ॥ १० ॥

दैत्योंने फन्दोंके जाल बिछाकर देवताओंको निरुपाय कर दिया और बाणोंके प्रहारसे उन्हें इतना घायल कर दिया कि वे अपने अङ्गोंसे रक्तकी धारा बहाने लगे। दानवोंकी

मायाके वशीभूत होकर वे हिलने-डुलनेकी भी शक्ति खो बैठे ॥ १० ॥

संस्तम्भितमिवाभाति निष्प्राणसदृशाकृति ।
बलं सुराणामसुरैर्निष्प्रयत्नायुधं कृतम् ॥ ११ ॥

असुरोंने देवताओंकी सेनाके सारे प्रयत्न और आयुध निष्फल कर दिये । उस समय वह सेना मन्त्रशक्तिसे स्तम्भित की हुई-सी प्रतीत होती थी, प्राणशून्य मुर्दे-जैसे दिखायी देती थी ॥ ११ ॥

मायापाशान् विकर्षंश्च भिन्दन् वज्रेण ताञ्शरान् ।
शक्रो दैत्यबलं घोरं विवेश बहुलोचनः ॥ १२ ॥

तब बहुसंख्यक नेत्रोंसे सुशोभित होनेवाले देवराज इन्द्रने अपने वज्रसे दैत्योंके माया-पाशोंको हटाते और उनके चलाये हुए बाणोंको काटते हुए उनकी घोर सेनामें प्रवेश किया ॥ १२ ॥

स दैत्यान् प्रमुखे हत्वा तद् दानवबलं महत् ।
तामसेनास्त्रजालेन तमोभूतमथाकरोत् ॥ १३ ॥

उन्होंने सामने खड़े हुए दैत्योंको मारकर दानवोंकी उस विशाल वाहिनीपर तामसास्त्रका जाल-सा बिछा दिया और उसे अन्धकारसे अभिभूत कर डाला ॥ १३ ॥

तेऽन्योन्यं नावबुध्यन्त देवान् वा दानवानपि ।
घोरेण तमसाऽऽविष्टाः पुरुहूतस्य तेजसा ॥ १४ ॥

इन्द्रके प्रभावसे घोर अन्धकारमें डूबे हुए दैत्य न तो आपसमें ही किसीको जान पाते थे और न देवताओं अथवा दानवोंको ही पहचान पाते थे ॥ १४ ॥

मायापाशैर्विमुक्ताश्च यत्नवन्तः सुरोत्तमाः ।
वपूंषि दैत्यसंघानां तमोभूतान्यपातयन् ॥ १५ ॥

दैत्योंके मायापाशसे मुक्त हुए श्रेष्ठ देवताओंने प्रयत्नशील होकर उन दैत्यसमूहोंके अन्धकारसे आच्छन्न हुए शरीरोंको धरतीपर गिराना आरम्भ किया ॥ १५ ॥

अपध्वस्ता विसंज्ञाश्च तमसा नीलवर्चसः ।
पेतुस्ते दानवगणाश्छिन्नपक्षा इवाचलाः ॥ १६ ॥

अन्धकारसे नीली कान्ति धारण करनेवाले वे दानव देवताओंकी मार खाकर मूर्छित हो पंख कटे हुए पर्वतोंके समान धराशायी होने लगे ॥ १६ ॥

दैत्यानां तद्घनीभूतमन्धकारमहार्णवम् ।
प्रविष्टं बलमुत्त्रस्तं तमोभूतमिवाबभौ ॥ १७ ॥

अन्धकारके महासागरमें डूबी हुई दैत्योंकी वह घनीभूत सेना अत्यन्त भयभीत हो गयी और स्वयं तमोमयी-सी प्रतीत होने लगी ॥ १७ ॥

तदासृजन्महामायां मयस्तां तामसीं दहन् ।
युगान्ताग्निमिवात्युग्रां सृष्टामौर्वेण वह्निना ॥ १८ ॥

तब मय नामक दानवने इन्द्रके द्वारा फैलायी हुई तामसी मायाको नष्ट करते हुए एक महामायाकी सृ जो और्व नामक अग्नि (बड़वानल) के द्वारा गयी थी और प्रलयकालकी अग्निके समान भयंकर थी ॥ १८ ॥

सा ददाह तमः सर्वं माया मयविकल्पिता ।
दैत्याश्च दीप्तवपुषः सद्य उत्तस्थुराहवे ॥ १९

मयके द्वारा फैलायी हुई उस मायाने सारे अन्ध को जलाकर भस्म कर दिया; फिर तो दैत्योंके शरीर उठे और वे तत्काल युद्धके लिये खड़े हो गये ॥ १९

मायामौर्वीं समासाद्य दह्यमाना दिवौकसः ।
भेजिरे चन्द्रविषयं शीतांशुसलिले शयात् ॥ २

अब तो देवतालोग और्वी मायाके सम्पर्कमें दग्ध होने लगे और ठंढे जलमें शयन करनेके लिये चन्द्र के समीप गये ॥ २० ॥

ते दह्यमाना ह्यौर्वेण तेजसा भ्रष्टतेजसः ।
शशंसुर्वज्रिणे देवाः संतप्ताः शरणैषिणः ॥ २१

वे सब देवता और्वके तेजसे झुलसकर अपना तेज खो उन्होंने अत्यन्त संतप्त होकर शरण पानेकी इच्छासे इन्द्र पास जाकर पुकार की ॥ २१ ॥

संतप्ते मायया सैन्ये दह्यमाने च दानवैः ।
चोदितो देवराजेन वरुणो वाक्यमब्रवीत् ॥ २२

जब मयासुरकी मायासे सारी सेना संतप्त हो उठी दानव भी उसे जलाने लगे, तब देवराजके द्वारा शान्तिके लिये प्रेरित होनेपर वरुणने इस प्रकार कहा ॥ २

वरुण उवाच

पुरा ब्रह्मर्षिजः शक्र तपस्तेपेऽतिदारुणम् ।
ऊर्वो मुनिः स तेजस्वी सदृशो ब्रह्मणो गुणैः ॥ २३

वरुण बोले—देवेन्द्र ! पूर्वकालमें ऊर्व नामसे प्र एक तेजस्वी मुनि थे, जो ब्रह्मर्षि भृगुके पुत्र थे । गुणोंमें ब्रह्माजीके समान थे । उन्होंने अत्यन्त दारुण करना आरम्भ किया ॥ २३ ॥

तं तपन्तमिवादित्यं तपसा जगदव्ययम् ।
उपतस्थुर्मुनिगणा देवा ब्रह्मर्षिभिः सह ॥ २४

जैसे सूर्य इस अव्यय (प्रवाहरूपसे सदा रहनेवाले जगत्‌को सदा तपाते रहते हैं, उसी प्रकार वे भी अ तपस्यासे सबको ताप देने लगे । तब ब्रह्मर्षियोंसहित दे और मुनिगण उनके पास आये ॥ २४ ॥

हिरण्यकशिपुश्चैव दानवो दानवेश्वरः ।
ऋषिं विज्ञापयामास पुरा परमतेजसम् ॥ २५

दानव हिरण्यकशिपु भी, जो समस्त दानवोंका स्वामी था, किसी समय उन परम तेजस्वी महर्षिके पास आया और उनसे शान्तिके लिये प्रार्थना करता रहा; यह प्राचीन कालकी बात है ॥ २५ ॥

तमूचुर्ब्रह्मऋषयो वचनं ब्रह्मसम्मितम् ।
ऋषिवंशेषु भगवञ्छिन्नमूलमिदं कुलम् ॥ २६ ॥

ब्रह्मर्षियोंने उनसे यह वेदतुल्य बात कही—'भगवन् ! ऋषियोंके वंशोंमें आपके इस कुलकी जड़ कट-सी गयी है ॥ २६ ॥

एकस्त्वमनपत्यश्च गोत्रं यन्नानुवर्तसे ।
कौमारं व्रतमास्थाय क्लेशमेवानुवर्तसे ॥ २७ ॥

'एकमात्र आप ही अपने कुलमें बचे हैं और आपके कोई संतान नहीं है, तो भी आप गोत्रका अनुसरण नहीं करते हैं—उसकी परम्पराको बनाये रखनेके लिये कोई प्रयत्न नहीं करते हैं। केवल नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका व्रत धारण करके तपस्याजनित क्लेशका ही अनुगमन कर रहे हैं ॥ २७ ॥

बहूनि विप्र गोत्राणि मुनीनां भावितात्मनाम् ।
एकदेहानि तिष्ठन्ति विभक्तानि विना प्रजाः ॥ २८ ॥

'विप्रवर ! विशुद्ध अन्तःकरणवाले मुनियोंके बहुत-से ऐसे गोत्र या कुल हैं, जो एक शरीर (एक व्यक्ति) पर ही अवलम्बित रहे हैं और संतान न होनेके कारण जड़से अलग होकर नष्ट हो गये हैं ॥ २८ ॥

कुलेषूच्छिन्नमूलेषु तेषु नो नास्ति कारणम् ।
भवांस्तु तपसा श्रेष्ठः प्रजापतिसमद्युतिः ॥ २९ ॥

'मूलके ही नष्ट हो जानेसे उन कुलोंकी वृद्धिका हमारे रखनेमें कोई कारण नहीं रह गया है, परंतु आप तो (अपनी भावी वंशपरम्पराके मूलरूपमें विद्यमान ही हैं। आपके रहते इस कुलका उच्छेद नहीं होना चाहिये। आप) तपकी दृष्टिसे श्रेष्ठ हैं और तेज एवं कान्तिमें भी प्रजापतियोंके तुल्य हैं ॥

तत् प्रवर्तस्व वंशाय वर्द्धयात्मानमात्मना ।
समाधत्स्वोर्जितं तेजो द्वितीयां वै तनुं कुरु ॥ ३० ॥

'अतः आप अपने वंशको चलानेका उद्योग कीजिये और अपने द्वारा अपने आपको बढ़ाइये। अपने ओजस्वी तेज (वीर्य) का (योग्य पत्नीमें) आधान कीजिये और ऐसा करके पुत्ररूपमें अपने दूसरे शरीरको प्रकट कीजिये' ॥

स एवमुक्तो मुनिभिर्मुनिर्मनसि ताडितः ।
जगर्हे तानृषिगणान् वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ३१ ॥

उन महर्षियोंके ऐसा कहनेपर ऊर्व मुनिके हृदयमें गहरा धक्का लगा । वे उन ऋषियोंकी निन्दा करने लगे और इस प्रकार बोले-- ॥ ३१ ॥

यथायं शाश्वतो धर्मो मुनीनां विहितः पुरा ।
सदाऽऽर्षं सेवतां कर्म वन्यमूलफलाशिनाम् ॥ ३२ ॥

'महात्माओ ! जो वनके फल-मूल खाकर रहते हैं और सदा आर्षशास्त्रोंमें बताये हुए सत्कर्मका सेवन करते हैं, उन हम-जैसे ऋषि-मुनियोंके लिये तो प्राचीन कालसे इस तप एवं ब्रह्मचर्यरूप सनातन धर्मका ही विधान किया गया है ॥ ३२ ॥

ब्रह्मयोनौ प्रसूतस्य ब्राह्मणस्यानुवर्तिनः ।
ब्रह्मचर्यं सुचरितं ब्रह्माणमपि चालयेत् ॥ ३३ ॥

'ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न होकर ब्राह्मण-धर्मका अनुसरण करनेवाले द्विजके द्वारा इस ब्रह्मचर्य-व्रतका यदि भलीभाँति आचरण किया जाय तो यह ब्रह्माजीको भी विचलित कर सकता है ॥ ३३ ॥

द्विजानां वृत्तयस्तिस्रो ये गृहाश्रमवासिनः ।
अस्माकं तु वनं वृत्तिर्वनाश्रमनिवासिनाम् ॥ ३४ ॥

'जो गृहस्थ-आश्रममें निवास करते हैं, उन ब्राह्मणोंके लिये ही शास्त्रमें यज्ञ कराना, वेद पढ़ाना और दान ग्रहण करना—ये तीन वृत्तियाँ बतायी गयी हैं। हम-जैसे ऊर्ध्वरेता वनवासियोंके लिये तो वनके फल-मूल ही जीविकाके साधन हैं ॥

अम्बुभक्षा वायुभक्षा दन्तोलूखलिकास्तथा ।
अश्मकुट्टा दशनपाः पञ्चातपतपाश्च ये ॥ ३५ ॥

'कुछ लोग केवल जल या वायु पीकर ही रहते हैं, कुछ दाँतोंसे ही ओखली और मूसलका काम लेते हैं—अर्थात् दाँत रहनेपर भूसीसहित नीवार आदिको चबा लेते हैं। ये ही 'दशनप' कहलाते हैं। परंतु जिनके दाँत नहीं हैं, वे पत्थरोंसे ही कूट-पीसकर वन्य वस्तुओंको खाते हैं। कुछ पञ्चाग्निके तापका सेवन करते हैं ॥ ३५ ॥

एते तपसि तिष्ठन्तो व्रतैरपि सुदुष्करैः ।
ब्रह्मचर्यं पुरस्कृत्य प्रार्थयन्ते परां गतिम् ॥ ३६ ॥

'ये अत्यन्त दुष्कर व्रतोंका आचरण करते हुए भी तपस्यामें लगे रहते और मुख्यतः ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करके उत्कृष्ट गतिको पाना चाहते हैं ॥ ३६ ॥

ब्रह्मचर्याद् ब्राह्मणस्य ब्राह्मणत्वं विधीयते ।
एवमाहुः परे लोके ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥ ३७ ॥

'ब्रह्मचर्यके पालनसे ही ब्राह्मणको ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति होती है। इसी तरह ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंका कहना है कि ब्रह्मचर्यका पालन ही परलोकमें ब्रह्मकी प्राप्तिका मुख्य साधन है ॥

ब्रह्मचर्ये स्थितं धैर्यं ब्रह्मचर्ये स्थितं तपः ।
ये स्थिता ब्रह्मचर्येषु ब्राह्मणास्ते दिवि स्थिताः ॥ ३८ ॥

'ब्रह्मचर्यमें धैर्यकी स्थिति है और ब्रह्मचर्यमें ही तप प्रतिष्ठित है। जो ब्राह्मण ब्रह्मचर्यमें दृढ़तापूर्वक स्थित हैं, वे ब्रह्मलोकमें ही विराजमान हैं ॥ ३८ ॥

नास्ति योगं विना सिद्धिर्नास्ति सिद्धिं विना यशः ।
नास्ति लोके यशोमूलंब्रह्मचर्यात् परं तपः ॥ ३९ ॥

'योगके बिना सिद्धि नहीं मिलती और सिद्धिके बिना यश नहीं प्राप्त होता है । यशका मूल कारण है तप; परंतु इस जगत्‌में ब्रह्मचर्यसे बढ़कर दूसरा कोई तप नहीं है ॥ ३९ ॥

तन्निगृह्येन्द्रियग्रामं भूतग्रामं च पञ्चमम् ।
ब्रह्मचर्येण वर्तेत किमतः परमं तपः ॥ ४० ॥

'अतः इन्द्रिय-समुदायको तथा शब्द आदि सूक्ष्म भूत-रूप उसके विषयसमूहको वशमें करके ब्रह्मचर्य-पालनपूर्वक रहे । इससे बढ़कर और कौन-सा तप हो सकता है ? ॥४०॥

अयोगे केशहरणमसंकल्पे व्रतक्रिया ।
अब्रह्मचर्ये चर्या च त्रयं स्याद् दम्भसंज्ञितम् ॥ ४१ ॥

'अवश्यकर्तव्य ध्यानरूप योगके अभावमें भी सिर मुड़ा लेना, परलोक सुधारनेका संकल्प न रहनेपर भी केवल लोक-रंजनके लिये कृच्छ्र आदि व्रतोंका आचरण करना तथा ब्रह्मकी प्राप्तिको लक्ष्य बनाकर नियमित वेदाध्ययनके बिना ही ब्रह्मचर्यके नियमोंका आश्रय लेना—ये तीनों दम्भ कहलाते हैं ॥ ४१ ॥

क्व दाराः क्व च संयोगः क्व च भावविपर्ययः ।
यदेयं ब्रह्मणा सृष्टा मनसा मानसी प्रजा ॥ ४२ ॥

'जब ब्रह्माजीने मनके द्वारा मानसी प्रजा (सनत्कुमार आदि) की सृष्टि की थी, उस समय स्त्री कहाँ थी ? स्त्री-पुरुषका संयोग कहाँ था ? और चित्तकी विकृति (कामातुरता) भी कहाँ थी ? ॥ ४२ ॥

यद्यस्ति तपसो वीर्यं युष्माकममितात्मनाम् ।
सृजध्वं मानसान् पुत्रान् प्राजापत्येन कर्मणा ॥ ४३ ॥

'महर्षियो ! आपलोग अमेय आत्मबलसे सम्पन्न हैं, यदि आपमें तपस्याकी शक्ति हो तो आप प्रजापतिके समान कर्म करके मानसिक पुत्र उत्पन्न करें ॥ ४३ ॥

मनसा निर्मिता योनिराधातव्या तपस्विना ।
न दारयोगं बीजं वा व्रतमुक्तं तपस्विनाम् ॥ ४४ ॥

'तपस्वीको तो अपने मनसे कल्पित योनिमें ही मानसिक संकल्पसे गर्भाधान करना चाहिये । स्त्रीके साथ संयोग अथवा वीर्यका आधान—यह तपस्वी पुरुषोंका नियम नहीं बताया गया है ॥ ४४ ॥

यदिदं लुप्तधर्मार्थं युष्माभिरिह निर्भयैः ।
व्याहृतं सद्भिरत्यर्थमसद्भिरिव मे मतिः ॥ ४५ ॥

'आपलोग सज्जन हैं तो भी निरे असज्जनोंके समान आपने निःशङ्क होकर यहाँ यह धर्म और अर्थसे शून्य बात कह डाली है, ऐसा मेरा विचार है ॥ ४५ ॥

वपुर्दीप्तान्तरात्मानमेष कृत्वा मनोमयम् ।
दारयोगं विना स्रक्ष्ये पुत्रमात्मतनूरुहम् ॥

'अच्छा ! देखिये, मैं अभी मनोमय वपु (योनि) निर्माण करके स्त्रीसहवासके बिना ही अपने शरीरसे होनेवाले ऐसे पुत्रकी सृष्टि कर रहा हूँ, जिसकी अन्त अत्यन्त उद्दीप्त होगी ॥ ४६ ॥

एवमात्मानमात्मा मे द्वितीयं जनयिष्यति ।
वन्येनानेन विधिना दिधक्षन्तमिव प्रजाः ॥

'इस प्रकार मेरा यह शरीर वनवासीके लिये उचि विधानके द्वारा ही मेरे दूसरे स्वरूप (पुत्र) को जन्म जो समस्त प्रजाको जलाकर भस्म कर देनेकी इच्छा होगा' ॥ ४७ ॥

ऊर्वस्तु तपसाऽऽविष्टो निवेश्योरुं हुताशने ।
ममन्थैकेन दर्भेण पुत्रस्य प्रभवारणिम् ॥

ऐसा कहकर तपके आवेशमें भरे हुए ऊर्व मुनिने जाँघको अग्निमें डाल दिया और पुत्रकी उत्पत्तिके लिये रूप उस जाँघको एक कुशसे मथने लगे ॥ ४८ ॥

तस्योरुं सहसा भित्त्वा ज्वालामाली निरिन्धनः ।
जगतो निधनाकाङ्क्षी पुत्रोऽग्निः समपद्यत ॥

उस समय सहसा उनके ऊरु (जाँघ) का भेदन एक अग्निस्वरूप पुत्र उत्पन्न हुआ, जो बिना ईंध ज्वालामालाओंसे अलंकृत था । वह समस्त संसारके वि इच्छा रखता था ॥ ४९ ॥

ऊर्वस्योरुं विनिर्भिद्य और्वो नामान्तकोऽनलः ।
दिधक्षन्निव लोकांस्त्रीअश्ने परमकोपनः ॥

ऊर्वकी जाँघको चीरकर जो वह लोक-विनाशक क्रोधी अनल प्रकट हुआ था, वह और्वके नामसे हुआ । उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो वह लोकोंको दग्ध कर डालना चाहता हो ॥ ५० ॥

उत्पन्नमात्रश्चोवाच पितरं दीप्तया गिरा ।
क्षुधा मे बाधते तात जगद् भक्ष्ये त्यजस्व माम् ॥

उसने उत्पन्न होते ही प्रदीप्त वाणीमें अपने पितासे 'तात ! मुझे भूख सता रही है, मेरे आहारके लिये जगत् मुझे अर्पित कर दीजिये' ॥ ५१ ॥

त्रिदिवारोहिभिर्ज्वालैर्जृम्भमाणो दिशो दश ।
निर्दहन्निव भूतानि ववृधे सोऽन्तकोऽनलः ॥

वह कालरूप अग्नि समस्त प्राणियोंको दग्ध हुआ बढ़ने लगा । अपनी स्वर्गतक पहुँचनेवाली द्वारा वह दसों दिशाओंमें फैलता जा रहा था ॥ ५

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा सर्वलोकपतिः प्रभुः ।
आजगाम मुनिर्यत्र व्यसृजत् पुत्रमुत्तमम् ॥ ५३ ॥

इसी बीचमें सब लोकोंके स्वामी भगवान् ब्रह्मा उस स्थानपर आ पहुँचे, जहाँ ऊर्व मुनिने अपने श्रेष्ठ पुत्रको उत्पन्न किया था ॥ ५३ ॥

स ददर्शोरुमूर्वस्य दीप्यमानं सुताग्निना ।
और्वकोपाग्निसंतप्ताँल्लोकांश्च ऋषिभिः सह ॥ ५४ ॥

उन्होंने देखा कि ऊर्वकी जाँघ पुत्ररूप अग्निसे देदीप्यमान हो रही है और और्वकी क्रोधाग्निसे ऋषियोंसहित तीनों लोक संतप्त हो उठे हैं ॥ ५४ ॥

तमुवाच ततो ब्रह्मा मुनिमूर्वं सभाजयन् ।
धार्यतां पुत्रजं तेजो लोकानां हितकाम्यया ।
अस्यापत्यस्य ते विप्र करिष्ये साह्यमुत्तमम् ॥ ५५ ॥

तब ब्रह्मा ऊर्व मुनिका सत्कार करते हुए उनसे कहने लगे—'विप्रवर ! तुम लोकोंका हित करनेकी इच्छासे अपने पुत्रके तेजको रोके रहो । मैं तुम्हारे इस पुत्रकी उत्तम सहायता करूँगा ॥ ५५ ॥

वासं चास्य प्रदास्यामि प्राशनं चामृतोपमम् ।
तथ्यमेतन्मम वचः शृणु त्वं वदतां वर ॥ ५६ ॥

'वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! तुम मेरे इस तथ्य वचनको भी सुनो । मैं इसे अमृतके समान भोजन और रहनेके लिये स्थान भी दूँगा' ॥ ५६ ॥

ऊर्व उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यन्ममाद्य भवाञ्छिशोः ।
मतिमेतां ददातीह परमानुग्रहाय वै ॥ ५७ ॥

ऊर्वने कहा—'आज मैं धन्य हूँ । मेरे ऊपर आपका बड़ा अनुग्रह है, जो आप यहाँ पधारकर मेरे पुत्रपर परम अनुग्रह करनेके लिये ऐसी सलाह दे रहे हैं ॥ ५७ ॥

प्रभावकाले सम्प्राप्ते काङ्क्षितव्ये समागमे ।
भगवंस्तर्पितः पुत्रः कैर्हव्यैः प्राप्स्यते सुखम् ॥ ५८ ॥
कुत्र चास्य निवासो वै भोजनं च किमात्मकम् ।
विधास्यति भवानस्य वीर्यतुल्यं महौजसः ॥ ५९ ॥

भगवन् ! जब इसका यौवनकाल उपस्थित होगा और इसके लिये भोजनकी व्यवस्था वाञ्छनीय होगी, तब यह किस हविसे तृप्त होकर सुख पायेगा ? इसका निवासस्थान कहाँ होगा ? इस महान् शक्तिशाली पुत्रकी शक्तिके अनुरूप आप किस भोजनकी व्यवस्था करेंगे ? ॥ ५८-५९ ॥

ब्रह्मोवाच

वडवामुखेऽस्य वसतिः समुद्रास्ये भविष्यति ।
मम योनिर्जलं विप्र तच्च तोयमयं वपुः ॥ ६० ॥

ब्रह्माजीने कहा—विप्रवर ! जिसकी आकृति घोड़ीके मुखके समान है, समुद्रके उस मुखमें इसका निवास होगा । जल मेरी योनि (उत्पत्तिका स्थान) है और उस (समुद्र एवं उसके मुख) का स्वरूप भी जलमय ही है ॥ ६० ॥

तद्धविस्तव पुत्रस्य विसृजाम्यालयं तु तत् ।
तत्रायमास्तां नियतः पिबन् वारिमयं हविः ॥ ६१ ॥

उसी जलको मैं तुम्हारे पुत्रके लिये हविष्यरूपमें अर्पित करता हूँ और उसके लिये रहनेका स्थान भी वही होगा । यह जलमय हविष्यका पान करता हुआ सदा वहीं रहे ॥ ६१ ॥

ततो युगान्ते भूतानामेष चाहं च सुव्रत ।
सहितौ विचरिष्यावो लोकानिति पुनः पुनः ॥ ६२ ॥

सुव्रत ! तदनन्तर प्राणियोंका प्रलयकाल आनेपर यह और मैं दोनों साथ-साथ सम्पूर्ण लोकोंमें बारंबार विचरेंगे ॥ ६२ ॥

एषोऽग्निरन्तकाले तु सलिलाशी मया कृतः ।
दहनः सर्वभूतानां सदेवासुररक्षसाम् ॥ ६३ ॥

इस अग्निको मैंने जलाहारी बना दिया । यह प्रलयके समय देवता, राक्षस और असुर आदि समस्त प्राणियोंको भस्म करनेवाला होगा ॥ ६३ ॥

एवमस्त्विति सोऽप्यग्निः संवृतज्वालमण्डलः ।
प्रविवेशार्णवमुखं निक्षिप्य पितरि प्रभाम् ॥ ६४ ॥

तब 'एवमस्तु' कहकर उस और्व नामक अग्निने अपनी ज्वालाओंको समेट लिया और पिताके शरीरमें यशरूपी तेजको स्थापित करके उसी क्षण समुद्रके मुखमें प्रवेश किया ॥

प्रतियातस्ततो ब्रह्मा ते च सर्वे महर्षयः ।
और्वस्याग्नेः प्रभावज्ञाः स्वां स्वां गतिमुपाश्रिताः ॥ ६५ ॥

तब ब्रह्माजी लौट गये तथा और्व अग्निके प्रभावको जाननेवाले वे सब महर्षि भी अपने-अपने स्थानको चले गये ॥ ६५ ॥

हिरण्यकशिपुर्दृष्ट्वा तदद्भुतमपूजयत् ।
ऊर्वं प्रणतसर्वाङ्गो वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ ६६ ॥

इस अद्भुत घटनाको देखकर हिरण्यकशिपुने ऊर्वको साष्टाङ्ग प्रणाम करके उनका पूजन किया और यह बात कही—॥ ६६ ॥

भगवन्नद्भुतमिदं निर्वृत्तं लोकसाक्षिकम् ।
तपसा ते मुनिश्रेष्ठ परितुष्टः पितामहः ॥ ६७ ॥

'भगवन् ! आपने समस्त लोकोंके सामने यह अद्भुत बात कर दिखायी । मुनिश्रेष्ठ ! आपकी तपस्यासे पितामह ब्रह्मा भी बहुत संतुष्ट हैं ॥ ६७ ॥

अहं तु तव पुत्रस्य तव चैव महाव्रत ।
भृत्य इत्यवगन्तव्यः श्लाघ्योऽस्मि यदि कर्मणा ॥ ६८ ॥

'महाव्रत ! यदि आप मेरे कर्मोंको देखकर मुझे प्रशंसाके योग्य समझते हों तो मुझे अपने पुत्रका और अपना किङ्कर समझें ॥ ६८ ॥

तन्मां पश्य समापन्नं तवैवाराधने रतम् ।
यदि सीदे मुनिश्रेष्ठ तवैव स्यात् पराजयः ॥ ६९ ॥

'अतः मुनिश्रेष्ठ ! मैं शरणमें आकर आपकी ही आराधनामें तत्पर हूँ । आप मुझपर कृपादृष्टि कीजिये । यदि मैं कष्टमें पड़ा तो यह आपकी ही पराजय होगी' ॥ ६९ ॥

ऊर्व उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य तेऽहं गुरुर्मतः ।
नास्ति ते तपसानेन भयमद्येह सुव्रत ॥ ७० ॥

ऊर्व मुनिने कहा--सुव्रत ! तुम मुझे अपना गुरु या पिता मान रहे हो, अतः मैं धन्य हूँ, यह तुम्हारा मुझपर महान् अनुग्रह है । मेरी इस तपस्याके प्रभावसे अब तुम्हें यहाँ कोई भय नहीं होगा ॥ ७० ॥

इमां च मायां गृह्णीष्व मम पुत्रेण निर्मिताम् ।
निरिन्धनामग्निमयीं दुःस्पर्शां पावकैरपि ॥ ७१ ॥

साथ ही तुम मेरे पुत्रके द्वारा रची हुई इस मायाको ग्रहण करो । इस ईंधनरहित अग्निमयी मायाका स्पर्श करना साक्षात् अग्निके लिये भी कठिन होगा ॥ ७१ ॥

एषा ते स्वस्य वंशस्य वशगारिविनिग्रहे ।
रक्षिष्यत्यात्मपक्षं सा परांश्च प्रहरिष्यति ॥ ७२ ॥

यह (माया) तुम्हारे जीवनकाल तक सदा तुम्हारे वंशजोंके वशमें होकर रहेगी और शत्रुओंका दमन करते समय यह अपने पक्षवालोंकी रक्षा तथा शत्रुओंका संहार करेगी ॥ ७२ ॥

एवमस्त्विति तां गृह्य प्रणम्य मुनिपुंगवम् ।
जगाम त्रिदिवं हृष्टः कृतार्थो दानवेश्वरः ॥ ७

तब 'एवमस्तु' कहकर दानवराजने उस मायाको कर लिया और प्रसन्न हो कृतार्थताका अनुभव करता हु उन मुनिवरको प्रणाम करके स्वर्गको चला गया ॥ ७३ ॥

वरुण उवाच

सैषा दुर्विषहा माया देवैरपि दुरासदा ।
और्वेण निर्मिता पूर्वं पावकेनोर्वसूनुना ॥ ७

वरुण कहते हैं--इस प्रकार प्राचीन कालमें ऊर्वभृ के पुत्र और्वनामक अग्निने इस मायाको रचा था, जो दे ओंके लिये भी दुःसह एवं दुर्जय है ॥ ७४ ॥

तस्मिंस्तु व्युत्थिते दैत्ये निर्वीर्यैषा न संशयः ।
शापो ह्यस्याः पुरा दत्तः स्रष्टा येनैव तेजसा ॥ ७

यह दैत्य अब संसारसे उठ गया है । अतः यह मा निर्बल हो गयी है, इसमें कोई संदेह नहीं है; क्यों जिन्होंने अपने तेजसे इसको रचा था, उन्होंने ही इ शाप भी दिया था (कि यह माया हिरण्यकशिपुके जीव ही बलवती रहेगी) ॥ ७५ ॥

यद्येषा प्रतिहन्तव्या कर्तव्यो भगवान् सुखी ।
दीयतां मे सखा शक्र तोययोनिर्निशाकरः ॥ ७

इन्द्रदेव ! यदि आपको इस मायाका संहार कर और अपनेको प्रसन्न करना है तो आप मुझे जलके उत् स्थान चन्द्रमाको मेरी सहायताके लिये दीजिये ॥ ७६ ॥

तेनाहं सह संगम्य यादोभिश्च समावृतः ।
मायामेतां हनिष्यामि त्वत्प्रसादान्न संशयः ॥ ७

मैं चन्द्रमाके सहयोगसे और (अपने अधीनस्थ) ज जीवोंसे घिरा रहकर आपकी कृपासे इस मायाका अव नाश कर डालूँगा ॥ ७७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि और्वाग्निसम्भवो नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें और्व अग्निके उत्पत्तिविषयक पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

इन्द्रद्वारा चन्द्रमाकी स्तुति, चन्द्रदेव और वरुणदेवके द्वारा दैत्यसेनाका संहार, मयदानवद्वारा मायाका प्रयोग, पवन और अग्निदेवका दैत्यसेनाके साथ संग्राम और कालनेमिका रणमें आगमन

वैशम्पायन उवाच

एवमस्त्विति संहृष्टः शक्रस्त्रिदशवर्द्धनः ।
संदिदेशाग्रतः सोमं युद्धाय शिशिरायुधम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तब देवताओंकी उन्नति करनेवाले इन्द्र अति प्रसन्न होकर बोल उठे—'अच्छा, ऐसा ही होगा ।' तदनन्तर वे अपने सामने ही स्थित, शि आयुधका काम लेनेवाले चन्द्रमाको समझाने लगे ॥ १ ॥

शक्र उवाच

गच्छ सोम सहायत्वं कुरु पाशधरस्य वै ।
असुराणां विनाशाय जयाय च दिवौकसाम् ।

इन्द्रने कहा--सोम ! आप जाइये और पाशधारी वरुणकी सहायता कीजिये। ऐसा करनेसे असुरोंका संहार और देवताओंकी विजय होगी ॥ २ ॥

त्वमप्रतिमवीर्यश्च ज्योतिषां चेश्वरेश्वरः।
त्वन्मयं सर्वलोकानां रसं रसविदो विदुः ॥ ३ ॥

आपका पराक्रम अनुपम है। आप ग्रह-नक्षत्रोंके अधिपतियोंके भी अधिपति हैं। रस (के तत्त्व) को जाननेवाले विद्वानोंका यह अनुभव है कि सब प्राणियोंमें जो रस है, वह आपका ही है ॥ ३ ॥

क्षयवृद्धी तवाव्यक्ते सागरस्येव मण्डले।
परिवर्तस्यहोरात्रं कालं जगति योजयन् ॥ ४ ॥

समुद्रके समान आपके मण्डलकी क्षय-वृद्धि सदा अव्यक्त रहती है। आप संसारमें कालको प्रवर्तित करते हुए दिन और रात्रिका परिवर्तन करते रहते हैं ॥ ४ ॥

लोकच्छायामयं लक्ष्म तवाङ्के शशसंज्ञितम्।
न विदुः सोमदेवाऽपि ये च नक्षत्रयोगिनः ॥ ५ ॥

सोम ! आपके अङ्क (मण्डलके मध्य) में पृथ्वीलोककी छाया (प्रतिविम्ब) ही शश नामक चिह्न है। नक्षत्रोंका विचार करनेवाले विद्वान् और चन्द्रोपासक भी आपको (वास्तविक रूपमें) नहीं जान सकते ॥ ५ ॥

त्वमादित्यपथादूर्ध्वं ज्योतिषां चोपरि स्थितः।
तमश्चोत्सार्य वपुषा भासयस्यखिलं जगत् ॥ ६ ॥

आप आदित्यपथसे भी ऊर्ध्वदेशमें और सम्पूर्ण ज्योतिर्मण्डलोंके भी ऊपर स्थित रहते हैं। आप अपने (तेजोमय) शरीरके द्वारा अन्धकारको दूर कर समस्त संसारको प्रकाशित करते हैं ॥ ६ ॥

श्वेतभानुर्हिमतनुर्ज्योतिषामधिपः शशी।
अब्दकृत् कालयोगात्मा ईज्यो यज्ञरसोऽव्ययः ॥ ७ ॥

आपकी किरणें श्वेतवर्णकी हैं। आपका शरीर हिममय है। आप नक्षत्रोंके स्वामी, शशके चिह्नसे युक्त, संवत्सररूप (काल) के रचयिता, कालयोगस्वरूप, पूजनीय,(वर्षा आदिके रूपमें) यज्ञके रस और अव्यय (प्रवाहरूपसे नित्य) हैं ॥ ७ ॥

ओषधीशः क्रियायोनिरम्भोयोनिरनुष्णभाक्।
शीतांशुरमृताधारश्चपलः श्वेतवाहनः ॥ ८ ॥

आप (अन्नादि) ओषधियोंके स्वामी, क्रियाओं और जलके उत्पत्तिस्थान तथा स्वभावसे ही शीतलता धारण करनेवाले हैं। आपकी किरणें शीतल हैं। आप अमृतके आधार हैं, चपल हैं। आपका वाहन श्वेतवर्णका है ॥ ८ ॥

त्वं कान्तिः कान्तवपुषां त्वं सोमः सोमवृत्तिनाम्।
सौम्यस्त्वं सर्वभूतानां तिमिरघ्नस्त्वमृक्षराट् ॥ ९ ॥

आप ही कान्तिमान् शरीरवाले नर-नारियों और देवताओंकी कान्ति हैं और सोमसे जीविका चलानेवाले देवसमूहके लिये आप ही सोम हैं। आप सभी प्राणियोंके लिये सौम्य हैं, अन्धकारका नाश करनेवाले हैं तथा नक्षत्रोंके राजा हैं ॥

तद् गच्छ त्वं सहानेन वरुणेन वरूथिना।
शमयस्वासुरीं मायां यया दह्याम संगरे ॥ १० ॥

अतः आप सेना लेकर (युद्धके लिये) तैयार खड़े हुए इन वरुणदेवके साथ जाइये और समराङ्गणमें जिससे हम जल रहे हैं, उस आसुरी मायाको शान्त कीजिये ॥ १० ॥

सोम उवाच

यन्मां वदसि युद्धार्थे देवराज जगत्पते।
एष वर्षामि शिशिरं दैत्यमायापकर्षणम् ॥ ११ ॥

सोमने कहा--देवराज ! जगत्पते ! आप युद्धके लिये मुझसे जो कुछ कह रहे हैं, उसके अनुसार मैं अभी दैत्योंकी मायाको नष्ट करनेके लिये हिमकी वर्षा करता हूँ ॥ ११ ॥

एतान् मच्छीतनिर्दग्धान् पश्य त्वं हिमवेष्टितान्।
विमायान् विमदांश्चैव दानवांस्त्वं महामृधे ॥ १२ ॥

देखिये, इस महासमरमें ये दानव किस प्रकार मेरे बरसाये हुए ओलोंसे दग्ध होते हैं। हिमसे आवेष्टित होनेपर कैसे इनकी माया नष्ट होती है और किस तरह इनका सारा मद उतर जाता है ॥ १२ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततो हिमकरोत्सृष्टाः सबाष्पा हिमवृष्टयः।
वेष्टयन्ति स्म तान् घोरान् दैत्यान् मेघगणा इव ॥ १३ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं--राजन् ! तदनन्तर चन्द्रमाकी छोड़ी हुई सुन्दर भापसहित ओलोंकी वर्षाने मेघोंकी भाँति उन भयंकर दैत्योंको जकड़ना आरम्भ कर दिया ॥ १३ ॥

तौ पाशशुक्लांशुधरौ वरुणेन्दू महारणे।
जघ्नतुर्हिमपातैश्च पाशघातैश्च दानवान् ॥ १४ ॥

उस महायुद्धमें पाशधारी वरुण और श्वेत किरणोंवाले चन्द्रमा पाशसे मारकर और ओले गिराकर दानवोंका संहार करने लगे ॥ १४ ॥

द्वावम्बुनाथौ समरे तौ पाशहिमयोधिनौ।
मृधे चेरतुरम्भोभिः क्षुब्धाविव महार्णवौ ॥ १५ ॥

पाश और हिमका प्रहार करनेवाले वे दोनों जलके स्वामी वरुण और सोम जलकी वर्षा करते हुए क्षोभमें भरे हुए दो समुद्रोंके समान संग्राममें विचरने लगे ॥ १५ ॥

ताभ्यामाप्लावितं सैन्यं तद् दानवमदृश्यत।
जगत् संवर्तकाम्भोदैः प्रवृष्टैरिव संवृतम् ॥ १६ ॥

उन दोनोंके द्वारा की गयी जलवर्षासे आप्लावित हुई वह दानवोंकी सेना प्रलयकालमें प्रबल वर्षा करनेवाले संवर्तक मेघोंके द्वारा अनन्त जलराशिमें डुबाये गये जगत्के समान दीखने लगी ॥ १६ ॥

तावुद्यतांशुपाशौ द्वौ शशाङ्कवरुणौ रणे ।
शमयामासतुर्मायां देवौ दैतेयनिर्मिताम् ॥ १७ ॥

(इस प्रकार) चन्द्रदेव और वरुणदेव दोनों उस युद्धमें अपनी किरणों और पाशोंका प्रयोग करके दैत्योंकी रची हुई मायाका शमन करने लगे ॥ १७ ॥

शीतांशुजलनिर्दग्धाः पाशैश्च प्रसिता रणे ।
न शेकुश्चलितुं दैत्या विशिरस्का इवाद्रयः ॥ १८ ॥

शीतल किरणोंवाले चन्द्रमाके (हिम)जलसे अकड़े हुए और (वरुणके) पाशोंसे जकड़े हुए दैत्य रणमें शिखरहीन पर्वतोंकी भाँति हिल-डुल भी न सके ॥ १८ ॥

शीतांशुनिहतास्ते तु पेतुर्दैत्या हिमार्दिताः ।
हिमप्रावृतसर्वाङ्गा निरूष्माण इवाग्नयः ॥ १९ ॥

शीतरश्मि चन्द्रमाकी मार खाकर हिमसे पीड़ित हुए दैत्य पृथ्वीपर गिरने लगे । उनके सारे अङ्ग बर्फसे ढक गये थे । उस समय वे उष्णतारहित अग्निके समान जान पड़ते थे ॥ १९ ॥

तेषां तु दिवि दैत्यानां विपरीतप्रभाणि च ।
विमानानि विचित्राणि निपतन्त्युत्पतन्ति च ॥ २० ॥

फिर तो स्वर्गमें दैत्योंके विचित्र विमान प्रभाहीन होकर गिरने और गिरकर उछलने लगे ॥ २० ॥

तान् पाशहस्तग्रथिताञ्छादितान् हिमरश्मिना ।
मयो ददर्श मायावी दानवान् दिवि दानवः ॥ २१ ॥

मायावी दानव मयने देखा कि स्वर्गमें बहुत-से दानवोंको पाशधारी वरुणने जकड़ लिया है और बहुतोंको शीतल किरणोंवाले चन्द्रमाने बर्फसे ढक दिया है ॥ २१ ॥

स शिलाजालविततां गण्डशैलाट्टहासिनीम् ।
पादपोत्कटकूटाग्रां कन्दराकीर्णकाननाम् ॥ २२ ॥
सिंहव्याघ्रगजाकीर्णां नदन्तीमिव यूथपैः ।
ईहामृगगणाकीर्णां पवनाघूर्णितद्रुमाम् ॥ २३ ॥
निर्मितां स्वेन पुत्रेण क्रौञ्चेन दिवि कामगाम् ।
प्रथितां पार्वतीं मायां ससृजे दानवोत्तमः ॥ २४ ॥

तब उस दानव-शिरोमणिने स्वर्गमें अपने पुत्र क्रौञ्चके द्वारा निर्मित सुप्रसिद्ध पार्वती मायाको प्रकट किया, जो इच्छानुसार सर्वत्र पहुँच जानेवाली थी । वह शिलाओंका विशाल जाल-सा बिछा देती थी, भारी-भारी चट्टानोंको गिराकर उनके धमाकेकी आवाजके रूपमें मानो अट्टहास करती थी । उन शिलाओंके शिरोभाग वृक्षोंके कारण खुरदरे हो रहे थे । उस पार्वती मायाके कानन-प्रान्त गुफाओंसे व्याप्त वहाँ सिंह, व्याघ्र और बड़े-बड़े गजराज भरे हुए थे । पतियोंके चिग्घाड़ने या दहाड़नेके शब्दसे मानो वह सिंहनाद-सा करती प्रतीत होती थी । उस मायामयी मालामें सब ओर भेड़िये भरे थे । वहाँके वृक्ष प्रचण्ड झोंके खाकर झूम रहे थे ॥ २२—२४ ॥

साश्मशब्दैः शिलावर्षैः सम्पतद्भिश्च पादपैः ।
निजघ्ने देवसंघांस्तान् दानवांश्चाप्यजीवयत् ॥२

उस पार्वती मायाने चट्टानोंके टकरानेकी आवा पत्थरोंकी वर्षासे और गिरते हुए वृक्षसमूहोंसे देवसमुदा मारना आरम्भ किया । इससे दैत्योंके जीमें-जी आया ॥

नैशाकरी वारुणी च मायेऽन्तर्दधतस्ततः ।
अश्मभिश्चायसघनैः कीर्णा देवगणा रणे ॥ २६

उस दैत्यकी मायाके प्रभावसे वरुण और चन्द्रमा—दो की मायाएँ अदृश्य हो गयीं । रणभूमिमें देवताओंपर प्र और लोहेके घन बरसने लगे ॥ २६ ॥

साश्मसंघातविषमा द्रुमपर्वतसंकटा ।
अभवद् घोरसंचारा पृथिवी पर्वतैरिव ॥ २७

जैसे पर्वतोंके कारण वहाँकी भूमिपर चलना कठिन जाता है, उसी प्रकार वहाँ गिरे हुए शिलाखण्डोंके समू विषम और वृक्ष एवं पर्वतोंके बिछ जानेसे संकीर्ण हुई रणभूमिमें चलना-फिरना दूभर हो गया था ॥ २७ ॥

नानाहतोऽश्मभिः कश्चिच्छिलाभिश्चाप्यताडितः ।
नानिरुद्धो द्रुमगणैर्देवोऽदृश्यत संयुगे ॥ २८ ॥

उस युद्धमें ऐसा कोई देवता नहीं दिखायी देता जिसके शरीरपर पत्थरोंसे चोट न आयी हो, जिसपर शिला की मार न पड़ी हो तथा जो सब ओर गिरे हुए समूहोंसे अवरुद्ध न हो गया हो ॥ २८ ॥

तदपभ्रष्टधनुषं भग्नप्रहरणाविलम् ।
निष्प्रयत्नं सुरानीकं वर्जयित्वा गदाधरम् ॥ २९

उस समय भगवान् गदाधरको छोड़कर शेष देवता वह सारी सेना निरुपाय एवं निश्चेष्ट हो गयी थी । हाथसे धनुष नीचे गिर गये थे और आयुधोंके टूट सबके मुखपर मलिनता छा गयी थी ॥ २९ ॥

स हि युद्धगतः श्रीमानीशो न स्म व्यकम्पत ।
सहिष्णुत्वाज्जगत्स्वामी न चुक्रोध गदाधरः ॥ ३०

अवश्य ही युद्धमें विराजमान श्रीमान् भगवान् उस समय भी कम्पित नहीं हुए और सहनशील होनेके

उन जगत्पति भगवान् गदाधरको क्रोध भी नहीं आया ॥ ३० ॥

कालज्ञः कालमेघाभः समैक्षत् कालमाहवे ।
देवासुरविमर्दं स द्रष्टुकामो जनार्दनः ॥ ३१ ॥

श्याम मेघकी-सी कान्तिवाले और समयको पहचाननेवाले भगवान् जनार्दन युद्धमें समयकी बाट देखने लगे । वे देवता और असुरोंकी मुठभेड़ देखना चाहते थे ॥ ३१ ॥

ततो भगवताऽऽदिष्टौ रणे पावकमारुतौ ।
शमनार्थं प्रवृद्धाया मायाया मयसृष्टया ॥ ३२ ॥

उधर मयदानवकी रची हुई माया रणभूमिमें उत्तरोत्तर बढ़ रही थी । उसे शान्त करनेके लिये भगवान्ने अग्नि और वायुको आज्ञा दी (कि तुम दोनों इस मायाको नष्ट करो) ॥ ३२ ॥

ततः प्रवृद्धावन्योन्यं प्रबुद्धौ ज्वालवाहिनौ ।
चोदितौ विष्णुवाक्येन तां मायां व्यपकर्षताम् ॥ ३३ ॥

तब एक दूसरेके सहयोगसे बढ़े हुए तथा प्रबुद्ध होकर ज्वालाओंका भार वहन करनेवाले वे दोनों देवता भगवान् विष्णुकी आज्ञासे प्रेरित होकर उस मायाको दूर करने लगे ३३

ताभ्यामुद्भ्रान्तवेगाभ्यां प्रवृद्धाभ्यां महाहवे ।
दग्धा सा पार्वती माया भस्मीभूता ननाश ह ॥ ३४ ॥

प्रवृद्ध होकर महायुद्धमें बवंडरकी तरह वेगसे घूमते हुए पावक और पवनदेवने उस पार्वती मायाको भस्म कर डाला । अतः वह नष्ट हो गयी ॥ ३४ ॥

सोऽनिलोऽनलसंयुक्तः सोऽनलश्चानिलाकुलः ।
दैत्यसेनां ददहतुर्युगान्तेष्विव मूर्च्छितौ ॥ ३५ ॥

प्रलयकालकी भाँति वायुका संयोग पाकर प्रबल हुए अग्निदेवने और अग्निका संयोग पाकर बढ़े हुए वायुदेवने दानवसेनाको भस्म करना आरम्भ किया ॥ ३५ ॥

वायुः प्रधावितस्तत्र पश्चादग्निश्च मारुतात् ।
चेरतुर्दानवानीके क्रीडन्तावनलानिलौ ॥ ३६ ॥

रणभूमिमें पहले तो वेगसे आँधी चली और फिर वायुसे प्रज्वलित होकर अग्नि वेगपूर्वक फैलने लगी । (इस प्रकार) अग्निदेव और पवनदेव दोनों दानवोंकी सेनामें क्रीड़ा करते हुए विचरने लगे ॥ ३६ ॥

भस्मावयवभूतेषु प्रपतत्सूत्पतत्सु च ।
दानवेषु विनष्टेषु कृतकर्मणि पावके ॥ ३७ ॥

(फिर क्या था ?) दानवलोग भस्म हो-होकर गिरने लगे और (वायुके वेगसे) उनकी राख उड़ने लगी । इस प्रकार अग्निका काम पूरा हुआ ॥ ३७ ॥

वातस्कन्धापविद्धेषु विमानेषु समन्ततः ।
मायाबन्धे विनिर्वृत्ते स्तूयमाने गदाधरे ॥ ३८ ॥

(इधर) वायुके प्रचण्ड वेगसे आहत हो विमान सब ओर टूट-टूटकर गिरने लगे । मायाका बन्धन नष्ट हो गया तथा भगवान् विष्णुकी स्तुति होने लगी ॥ ३८ ॥

निष्प्रयत्नेषु दैत्येषु त्रैलोक्ये मुक्तबन्धने ।
सम्प्रहृष्टेषु देवेषु साधु साध्विति सर्वशः ॥ ३९ ॥

दानवोंके प्रयत्न निष्फल हो गये, त्रिलोकीका बन्धन जाता रहा और देवता सब ओर अत्यन्त हर्षमें भरकर 'साधु-साधु' कहने लगे ॥ ३९ ॥

जये दशशताक्षस्य मयस्य च पराजये ।
दिक्षु सर्वासु शुद्धासु प्रवृत्ते धर्मसंस्तरे ॥ ४० ॥

सहस्रनेत्रधारी इन्द्रकी विजय हुई और मय दानवकी पराजय । सम्पूर्ण दिशाएँ शुद्ध हो गयीं और सब ओर धर्मका विस्तार होने लगा ॥ ४० ॥

अपावृत्ते चन्द्रपथे अयनस्थे दिवाकरे ।
प्रकृतिस्थेषु लोकेषु नृषु चारित्रबन्धुषु ॥ ४१ ॥

चन्द्रमाका मार्ग प्रशस्त हो गया । सूर्य अपने मार्गमें स्थित हुए । तीनों लोक अपनी स्वाभाविक स्थितिमें स्थित हो गये और मनुष्य सदाचारको ही अपना बन्धु (सहायक) मानने लगे ॥ ४१ ॥

अभिन्नबन्धने मृत्यौ हूयमाने हुताशने ।
यज्ञभागिषु देवेषु स्वर्गार्थं दर्शयत्सु च ॥ ४२ ॥

मृत्युकी मर्यादा नियत हो गयी । अग्निहोत्रका कार्य ठीक ढंगसे चलने लगा । देवता यज्ञोंमें भाग पाने तथा स्वर्गका मार्ग दिखाने लगे ॥ ४२ ॥

लोकपालेषु सर्वेषु दिक्षु संयानवर्तिषु ।
भावे तपसि शुद्धानामभावे दुष्टकर्मिणाम् ॥ ४३ ॥

समस्त लोकपाल अपनी-अपनी दिशामें निर्भय होकर विचरने लगे । शुद्धात्मा पुरुष तपस्यामें प्रवृत्त हो अभ्युदयके भागी होने लगे तथा दुराचारी मनुष्योंका विनाश होने लगा ॥ ४३ ॥

देवपक्षे प्रमुदिते दैत्यपक्षे विषीदति ।
त्रिपादविग्रहे धर्मे अधर्मे पादविग्रहे ॥ ४४ ॥

देवताओंका दल प्रसन्न रहने लगा । दैत्योंके समुदायपर विषाद छा गया । धर्मके तीन पैर जम गये और अधर्मका एक ही पैर शेष रह गया ॥ ४४ ॥

अपावृतमहाद्वारे वर्तमाने च सत्पथे ।
स्वधर्मस्थेषु वर्णेषु लोकेऽस्मिन्नाश्रमेषु च ॥ ४५ ॥

जिसपर चलनेवाले पुरुषोंके लिये मोक्षका महान् द्वार खुल जाता है, वह सत्पुरुषोंका मार्ग पुनः चालू हो गया । इस जगत्में चारों वर्णों और चारों आश्रमोंके लोग अपने-अपने धर्मका पालन करने लगे ॥ ४५ ॥

प्रजारक्षणयुक्तेषु भ्राजमानेषु राजसु ।
गीयमानासु गाथासु देवसंस्तवनादिषु ॥ ४६ ॥

सभी नरेश प्रजापालनमें तत्पर रहकर विशेष शोभा पाने लगे । देवताओंकी स्तुतिसे युक्त गाथाओंका सब ओर गान होने लगा ॥ ४६ ॥

प्रशान्तकलुषे लोके शान्ते तपसि दारुणे ।
अग्निमारुतयोस्तस्मिन् वृत्ते संग्रामकर्मणि ।
तन्मया विमला लोकास्ताभ्यां जयकृतप्रियाः ॥ ४७ ॥

सब लोगोंका कलुष शान्त हो गया । दारुण या कठोर तपस्या शान्त एवं मृदुल तपके रूपमें परिणत हो गयी । अग्नि और वायुदेवका वह युद्धविषयक महान् पराक्रम जब पूर्ण हो गया, तब निर्मल (प्रसन्न) हुए जगत्में उन्हींकी प्रधानता हो गयी; क्योंकि उनकी विजयने लोगोंका प्रिय कार्य किया था ॥ ४७ ॥

पूर्वदेवभयं श्रुत्वा मारुताग्निकृतं महत् ।
कालनेमिरिति ख्यातो दानवः प्रत्यदृश्यत ॥ ४८ ॥

अग्नि और वायुने दैत्योंपर महान् भय उपस्थित कर दिया है—यह सुनकर 'कालनेमि' नामसे विख्यात दानव उनके सामने आया ॥ ४८ ॥

भास्कराकारमुकुटः शिञ्जिताभरणाङ्गदः ।
मन्दराचलसंकाशो महारजतसंवृतः ॥ ४९ ॥

उसके मस्तकपर सूर्यके समान तेजस्वी मुकुट शोभा दे रहा था । उसने पैर आदिमें खन-खन शब्द करनेवाले नूपुर आदि आभूषण तथा भुजाओंमें बाजूबन्द धारण कर रखे थे। बहुमूल्य चाँदीके कवचसे आवृत होनेके कारण वह मन्दराचल-सा प्रतीत हो रहा था ॥ ४९ ॥

शतप्रहरणोदग्रः शतबाहुः शताननः ।
शतशीर्षा स्थितः श्रीमाञ्छतशृङ्ग इवाचलः ॥ ५० ॥

उसने अपनी सौ भुजाओंमें उतने ही आयुध धारण किये थे, इसलिये वह अत्यन्त भयंकर जान पड़ता था । उसके मुख भी सौ ही थे । सौ मस्तकोंसे युक्त वह तेजस्वी दानव जब खड़ा होता था, उस समय सौ शिखरोंसे सुशोभित पर्वतके समान जान पड़ता था ॥ ५० ॥

कक्षे महति संवृद्धो हिमान्त इव पावकः ॥ ५१ ॥

इतना ही नहीं, वह ग्रीष्म ऋतुमें सूखे वृक्षोंसे भरे हुए विशाल वनके भीतर प्रज्वलित हुए दावानलके समान देदीप्यमान हो रहा था ॥ ५१ ॥

धूम्रकेशो हरिच्छ्मश्रुर्दंष्ट्रालोष्ठपुटाननः ।
त्रैलोक्यान्तरविस्तारो धारयन् विपुलं वपुः ॥ ५२ ॥

उसके केश धूम्रवर्णके थे; किंतु मूँछें हरे रंगकी दिखायी देती थीं । उसकी दाढ़ें ओठोंसे बाहर निक थीं, जिससे उसके मुखकी अद्भुत शोभा होती थी। ऐसा विशाल शरीर धारण कर रखा था, जो तीनों फैला हुआ-सा प्रतीत होता था ॥ ५२ ॥

बाहुभिस्तुलयन् व्योम क्षिपन् पद्भ्यां महीधरान्
ईरयन् मुखनिःश्वासैर्वृष्टिमन्तो बलाहकान् ॥

वह अपनी भुजाओंसे आकाशको तौल रहा था, ठोकरोंसे कितने ही पर्वतोंको दूर फेंक देता था और निःश्वासोंसे वर्षा करनेवाले बादलोंको उड़ा देता था ॥

तिर्यगायतरक्ताक्षं मन्दरोदग्रवर्चसम् ।
दिधक्षन्तमिवायान्तं सर्वान् देवगणान् मृधे ॥

उसके नेत्र विशाल और लाल थे । वह तिरछी देखा करता था । मन्दर अर्थात् स्वर्गलोकके सर्वश्रेष्ठ देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी जान पड़ता था । उसे दे ऐसा लगता था, मानो वह युद्धमें सम्पूर्ण देवताओंको कर डालनेकी इच्छासे आ रहा हो ॥ ५४ ॥

तर्जयन्तं सुरगणांश्छादयन्तं दिशो दश ।
संवर्तकाले क्षुधितं दृप्तं मृत्युमिवोत्थितम् ॥

वह देवताओंको डाँट बताता और दसों दिशा आच्छादित करता आ रहा था । ऐसा जान पड़ता था प्रलयकालमें दर्पसे भरा हुआ भूखा काल उठ हुआ हो ॥ ५५ ॥

सुतलेनोच्छ्रितवता विपुलाङ्गुलिपर्वणा ।
माल्याभरणपूर्णेन किञ्चिच्चलितवर्मणा ॥
उच्छ्रितेनाग्रहस्तेन दक्षिणेन वपुष्मता ।
दानवान् देवनिहतानुत्तिष्ठध्वमिति ब्रुवन् ॥

जिसकी हथेली बहुत सुन्दर थी, अँगुलियोंके पर्व पु जो मालाकार आभूषण (वलय) से सुशोभित था जिसका कवच कुछ खिसक गया था, ऐसे ऊँचे उठाये मोटे-ताजे दाहिने हाथके अग्रभागसे वह देवताओंकी खाकर गिरे हुए दानवोंको उठनेका संकेत करके क था, कि (वीरो !) उठकर खड़े हो जाओ ॥ ५६-

तं कालनेमिं समरे द्विषतां कालसंनिभम् ।
वीक्षन्ति स्म सुराः सर्वे भयविक्लवमानसाः ॥

शत्रुओंके लिये कालके समान भयंकर वह का नामक दानव जब समरभूमिमें आया, उस समय वहाँ हुए समस्त देवता भयभीत चित्तसे उसकी ओर दे लगे ॥ ५८ ॥

तं स्म वीक्षन्ति भूतानि क्रमन्तं कालनेमिनम् ।
त्रिविक्रमं विक्रमन्तं नारायणमिवापरम् ॥

ऊँचे-ऊँचे पग उठाकर आक्रमण करते हुए उन

नेमिको समस्त प्राणियोंने त्रिविक्रमरूपसे तीनों लोकोंको नापनेके लिये पैर बढ़ाते हुए दूसरे नारायणके समान देखा ॥ ५९ ॥

सोच्छ्रयन् प्रथमं पादं मारुताघूर्णिताम्बरः।
प्राक्रामदसुरो युद्धे त्रासयन् सर्वदेवताः ॥ ६० ॥

सम्पूर्ण देवताओंको त्रास देते हुए उस असुरने जब युद्धमें अपना पहला कदम उठाकर रखा, उस समय हवाके झोंकेसे उसके वस्त्र फहराने लगे ॥ ६० ॥

स मयेनासुरेन्द्रेण परिष्वक्तः क्रमन् रणे।
कालनेमिर्बभौ दैत्यः विष्णुनेव पुरंदरः ॥ ६१ ॥

रणभूमिमें विचरते हुए उस दानवराजको असुरराज मयने आगे बढ़कर हृदयसे लगा लिया। उस समय मयके साथ कालनेमि दैत्यकी वैसे ही शोभा हुई, जैसे भगवान् विष्णुसे देवराज इन्द्र सुशोभित होते हैं ॥ ६१ ॥

अथ विव्यथिरे देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः।
दृष्ट्वा कालमिवायान्तं कालनेमिं भयावहम् ॥ ६२ ॥

कालके समान भयंकर कालनेमिको आते देख इन्द्र आदि सब देवता भयसे व्यथित हो उठे ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि कालनेमिप्रक्रमणे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें कालनेमिका
आक्रमणविषयक छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

कालनेमिका युद्ध और प्रभाव

वैशम्पायन उवाच

दानवांश्चापि पिप्रीषुः कालनेमिर्महासुरः।
व्यवर्धत महातेजास्तपान्ते जलदो यथा ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जैसे गर्मीके अन्तमें वर्षाकाल आनेपर मेघ बढ़ता है, उसी प्रकार महातेजस्वी महान् असुर कालनेमि दानवोंको पुष्ट करनेकी इच्छासे बढ़ने लगा ॥ १ ॥

त्रैलोक्यान्तर्गतं तं तु दृष्ट्वा ते दानवेश्वराः।
उत्तस्थुरपरिश्रान्ताः प्राप्येवामृतमुत्तमम् ॥ २ ॥

उसे तीनों लोकोंमें फैला हुआ देखकर वे सभी दानवराज इस प्रकार सहसा उठ खड़े हुए मानो उन्हें उत्तम अमृत मिल गया हो। उस समय उनकी सारी थकावट दूर हो गयी थी ॥ २ ॥

ते वीतभयसंत्रासा मयतारपुरोगमाः।
तारकामयसंग्रामे सततं जयकाङ्क्षिणः।
रेजुरायोधनगता दानवा युद्धकाङ्क्षिणः ॥ ३ ॥

वे मय और तार आदि सभी दानव कालनेमिके आ जानेसे भय और त्राससे रहित हो गये, अतः उस तारकामय संग्राममें निरन्तर विजयकी अभिलाषा रखते हुए युद्धकी आकाङ्क्षासे रणभूमिमें खड़े हो शोभा पाने लगे ॥ ३ ॥

अस्त्रमभ्यस्यतां तेषां व्यूहं च परिधावताम्।
प्रेक्षतां चाभवत् प्रीतिर्दानवं कालनेमिनम् ॥ ४ ॥

उस समय अस्त्रोंका अभ्यास करते और व्यूहमें सब ओर दौड़ लगाते हुए उन दैत्योंको कालनेमि दानवके दर्शनसे बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ४ ॥

ये तु तत्र मयस्यासन् मुख्या युद्धपुरस्सराः।
तेऽपि सर्वे भयं त्यक्त्वा हृष्टा योद्धुमुपस्थिताः ॥ ५ ॥

वहाँ जो भी मयके मुख्य-मुख्य सेनापति उपस्थित थे, वे सभी भय छोड़कर हर्ष और उत्साहके साथ युद्धके लिये डट गये ॥ ५ ॥

मयस्तारो वराहश्च हयग्रीवश्च वीर्यवान्।
विप्रचित्तिसुतः श्वेतः खरलम्बावुभावपि ॥ ६ ॥
अरिष्टो बलिपुत्रस्तु किशोरोष्ट्रौ तथैव च।
स्वर्भानुश्चामरप्रख्यो वक्रयोधी महासुरः ॥ ७ ॥
एतेऽस्त्रविदुषः सर्वे सर्वे तपसि सुव्रताः।
दानवाः कृतिनो जग्मुः कालनेमिनमुत्तमम् ॥ ८ ॥

मय, तार, वराह, पराक्रमी हयग्रीव, विप्रचित्तिकुमार श्वेत तथा खर और लम्ब—ये दो दानव एवं बलिपुत्र अरिष्ट, किशोर, उष्ट्र तथा देवताके समान तेजस्वी एवं कुटिलतापूर्वक युद्ध करनेवाला महान् असुर स्वर्भानु—ये सभी अस्त्रवेत्ता और तपस्यामें नियमपूर्वक स्थित रहनेवाले विद्वान् और कुशल दानव उस उत्तम असुर कालनेमिके पास जा पहुँचे ॥ ६–८ ॥

ते गदाभिश्च गुर्वीभिश्चक्रैश्च सपरश्वधैः।
अश्मभिश्चाद्रिसदृशैर्गण्डशैलैश्च दंशितैः ॥ ९ ॥
पट्टिशैर्भिन्दिपालैश्च परिघैश्चोत्तमायुधैः।
घातनीभिश्च गुर्वीभिः शतघ्नीभिस्तथैव च ॥ १० ॥
कालकल्पैश्च मुसलैः क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः।
युगैर्यन्त्रैश्च निर्मुक्तैरर्गलैश्चाग्रताडितैः ॥ ११ ॥
दोर्भिश्चायतपीनांसैः पाशैः प्रासैश्च मूर्च्छितैः।
सर्पैर्लेलिह्यमानैश्च विसर्पद्भिश्च सायकैः ॥ १२ ॥

वज्रैः प्रहरणीयैश्च दीप्यमानैश्च तोमरैः।
विकोशैश्चासिभिस्तीक्ष्णैः शूलैश्च शितनिर्मलैः ॥ १३ ॥
ते वै संदीप्तमनसः प्रगृहीतोत्तमायुधाः।
कालनेमिं पुरस्कृत्य तस्थुः संग्राममूर्धनि ॥ १४ ॥

वे सब हर्षसे उत्फुल्ल हृदयवाले दानव हाथोंमें उत्तम आयुध धारण किये, कालनेमिको आगे रखकर उसके सेनापतित्वमें युद्ध करनेके लिये संग्रामके मुहानेपर डट गये। कितने ही दानव अपने चौड़े और पुष्ट कंधोंसे युक्त हाथोंसे ही आयुधोंका काम लेते थे तथा बहुतेरे दैत्य भारी गदा, चक्र, फरसा, पर्वतोंके समान शिलाओंकी बड़ी-बड़ी चट्टान, वज्र आदिके आघातसे टूटकर गिरे हुए शिलाखण्ड, पट्टिश, भिन्दिपाल, परिघ, अन्यान्य उत्तम आयुध, संहार करनेमें समर्थ और सैकड़ोंके प्राण लेनेवाली बड़ी भारी तोपें, कालके समान भयंकर मूसल, क्षेपणीय (गुलेल आदि), मुद्गर, युग (जुआ), खुले हुए यन्त्र, जिसके सिरेको हथौड़ेसे पीटकर तेज किया गया हो ऐसी अर्गला (डंडेला), फैले हुए पाश, प्रास (भाला), जीभ लपलपाते हुए सर्प, तीव्रगतिसे लक्ष्यकी ओर बढ़नेवाले बाण, प्रहार करने योग्य वज्र, दीप्तिमान् तोमर, नंगी तीखी तलवार और तेज किये हुए चमकीले शूल आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न हो युद्धके लिये डट गये ॥ ९–१४ ॥

सा दीप्तशस्त्रप्रवरा दैत्यानां शुशुभे चमूः।
द्यौर्निमीलितनक्षत्रा सघनेवाम्बुदागमे ॥ १५ ॥

जहाँ चमकते हुए श्रेष्ठ अस्त्र-शस्त्र विद्युत्की भाँति प्रकाशित हो रहे थे, वह दानवसेना वर्षाकालमें छिपे हुए नक्षत्रवाले मेघ और बिजलीसे युक्त आकाशके समान शोभा पा रही थी ॥ १५ ॥

देवतानामपि चमू रुरुचे शक्रपालिता।
दीप्ता शीतोष्णतेजोभ्यां चन्द्रभास्करवर्चसा ॥ १६ ॥

इधर चन्द्रमा और सूर्यकी प्रभासे उद्भासित तथा उनके शीतल और उष्ण तेजके द्वारा देदीप्यमान हुई वह इन्द्रपालित देवसेना भी अनुपम शोभासे सम्पन्न हो रही थी ॥ १६ ॥

वायुवेगवती सौम्या तारागणपताकिनी।
तोयदाविद्धवसना ग्रहनक्षत्रहासिनी ॥ १७ ॥
यमेन्द्रधनदैर्गुप्ता वरुणेन च धीमता।
सम्प्रदीप्ताग्निपवना नारायणपरायणा ॥ १८ ॥
सा समुद्रौघसदृशी दिव्या देवमहाचमूः।
रराजास्त्रवती भीमा यक्षगन्धर्वशालिनी ॥ १९ ॥

वायुके समान वेगवती तथा सौम्य भावसे सम्पन्न देवताओंकी वह दिव्य एवं विशाल सेना तारागणोंको पताकारूपमें धारण करती थी, मेघमय वस्त्रोंसे आच्छन्न थी तथा ग्रह और नक्षत्र मानो उसके शुभ्र हास थे। इन्द्र, कुबेर और बुद्धिमान् वरुणके द्वारा उसकी जा रही थी। उसमें प्रकाशमान अग्नि और वायुदे विद्यमान थे। वह भगवान् नारायणके आश्रित थी। उमड़े हुए समुद्रकी अगाध जलराशिके समान जान थी। विविध प्रकारके अस्त्रोंसे सम्पन्न होनेके भयंकर प्रतीत होती थी तथा यक्ष और गन्धर्व उसकी बढ़ा रहे थे ॥ १७–१९ ॥

तयोश्चम्वोस्तदा तत्र बभूव स समागमः।
द्यावापृथिव्योः संयोगो यथा स्याद् युगपर्यये ॥

जैसे प्रलयकालमें द्युलोक और पृथ्वी—दोनों एक टकराते हैं, उसी प्रकार उन दोनों सेनाओंमें उस समय गहरी भिड़ंत हुई ॥ २० ॥

तद् युद्धमभवद् घोरं देवदानवसंकुलम्।
क्षमापराक्रममयं दर्पस्य विनयस्य च ॥

देवताओं और दानवोंसे भरा हुआ वह युद्ध भयंकर हो चला। एक ओर उदारतापूर्ण क्षमा थी दूसरी ओर क्रूरतापूर्ण पराक्रम। यह दर्प और विनयका था ॥ २१ ॥

निश्चक्रमुर्बलाभ्यां तु ताभ्यां भीमाः सुरासुराः।
पूर्वापराभ्यां संरब्धाः सागराभ्यामिवाम्बुदाः ॥

उन दोनों सेनाओंसे रोषमें भरे हुए भयंकर देवता असुर निकले (तथा युद्धके लिये आगे बढ़े); ठीक तरह जैसे पूर्व और पश्चिमके समुद्रोंसे क्षुब्ध मेघ हुए हों ॥ २२ ॥

ताभ्यां बलाभ्यां संहृष्टाश्चेरुस्ते देवदानवाः।
वनाभ्यां पर्वतीयाभ्यां पुष्पिताभ्यां यथा गजाः ॥

उन दोनों सेनाओंसे हर्ष और उत्साहमें भरे हुए और दानव युद्धके लिये निकले, मानो फूलोंसे दो पर्वतीय वनोंसे बहुसंख्यक हाथी निकल आये हों ॥

समाजघ्नुस्ततो भेरीः शङ्खान् दध्मुश्च नैकशः।
स शब्दो द्यां भुवं चैव दिशश्च समपूरयत् ॥

उस समय दोनों दलोंके सैनिक बारंबार नगाड़े पीटने शङ्ख बजाने लगे। वाद्योंका वह तुमुल नाद पृथ्वी, तथा सम्पूर्ण दिशाओंमें भर गया ॥ २४ ॥

ज्याघाततलनिर्घोषो धनुषां कूजितानि च।
दुन्दुभीनां निनदतां दैत्यानां निर्दधुः स्वनान् ॥

प्रत्यञ्चा खींचनेसे जो शब्द होता था, धनुषोंकी टंकार-ध्वनि होती थी तथा बजती हुई दुन्दुभियोंका गम्भीर नाद होता था, उन सबने मिलकर दैत्योंके तर्जनकी आवाजको छिपा दिया ॥ २५ ॥

तेऽन्योन्यमभिसम्पेतुः पातयन्तः परस्परम् ।
बभञ्जुर्बाहुभिर्बाहून् द्वन्द्वमन्ये युयुत्सवः ॥ २६ ॥

वे देवता और दानव एक दूसरेपर टूट पड़े और अपने-अपने प्रतिद्वन्द्वीको धराशायी करने लगे । द्वन्द्वयुद्धकी इच्छा रखनेवाले अन्यान्य योद्धाओंने अपनी भुजाओंद्वारा शत्रुओंकी भुजाएँ तोड़ डालीं ॥ २६ ॥

देवतास्त्वशनीर्घोराः परिघांश्चोत्तमायसान् ।
ससर्जुराजौ निस्त्रिंशान् गदा गुर्वीश्च दानवाः ॥ २७ ॥

देवतालोग युद्धमें भयंकर वज्र तथा अच्छे लोहेके बने हुए परिघका प्रयोग करने लगे और दानव उनके ऊपर तलवारें और भारी गदाएँ चलाने लगे ॥ २७ ॥

गदानिपातैर्भग्नाङ्गा बाणैश्च शकलीकृताः ।
परिपेतुर्भृशं केचिन्न्युब्जाः केचित् ससर्जिरे ॥ २८ ॥

गदाओंके आघातसे कितने ही योद्धाओंके अङ्ग चूर-चूर हो गये, कितनोंके शरीर बाणोंकी चोट खाकर टुकड़े-टुकड़े हो गये, कितने ही गहरी चोटसे पछाड़ खाकर पृथ्वीपर गिर पड़े और कितने ही पीठ ऊपर किये औंधे मुँह लुढ़क गये ॥ २८ ॥

ततो रथैः सतुरगैर्विमानैश्चाशुगामिभिः ।
समीयुस्ते तु संरब्धा रोषादन्योन्यमाहवे ॥ २९ ॥

तदनन्तर उस समराङ्गणमें रोषावेशसे भरे हुए उभयपक्षके सैनिक घोड़े जुते हुए रथों और शीघ्रगामी विमानोंद्वारा आगे बढ़कर एक दूसरेसे भिड़ गये ॥ २९ ॥

संवर्तमानाः समरे विवर्तन्तस्तथापरे ।
रथा रथैर्निरुध्यन्ते पदाताश्च पदातिभिः ॥ ३० ॥

रणभूमिमें कितने ही रथी और पैदल योद्धा शत्रुके सामने आते और कितने ही पीठ दिखाकर भागने लगते थे । उस समय उन रथियोंको रथी और पैदलोंको पैदल योद्धा सामने आकर रोक लेते थे ॥ ३० ॥

तेषां रथानां तुमुलः स शब्दः शब्दवाहिनाम् ।
बभूवाथ प्रसक्तानां नभसीव पयोमुचाम् ॥ ३१ ॥

घरघराहटकी आवाजके साथ आगे बढ़नेवाले उन रथियोंके रथोंका तुमुल नाद आकाशमें परस्पर टकरानेवाले बादलोंकी गड़गड़ाहटके समान जान पड़ता था ॥ ३१ ॥

बभञ्जिरे रथान् केचित् केचित् सम्मृदिता रथैः ।
सम्बाधमेके सम्प्राप्य न शेकुश्चलितुं रथाः ॥ ३२ ॥

कितने ही रथोंने विपक्षियोंके रथोंको तोड़ डाला और कितने ही शत्रुपक्षके रथोंसे रौंदे जाकर धूलमें मिल गये । दूसरे बहुत-से रथ अन्यान्य रथोंद्वारा मार्ग अवरुद्ध हो जानेके कारण आगे बढ़नेमें असमर्थ हो गये ॥ ३२ ॥

अन्योन्यस्याभिसमरे दोर्भ्यामुत्क्षिप्य दर्पिताः ।
संह्लादमानाभरणा जघ्नुस्तत्रासिचर्मिणः ॥ ३३ ॥

कितने ही दर्पमें भरे हुए योद्धा समराङ्गणमें एक दूसरेके शरीरको अपनी दोनों भुजाओंसे दूर हटाकर आगे बढ़ जाते थे । वहाँ ढाल और तलवार लिये हुए सैनिक जब शत्रुपर प्रहार करते थे, उस समय उनके आभूषण झंकृत हो उठते थे ॥ ३३ ॥

अस्त्रैरन्ये विनिर्भिन्ना रक्तं वेमुर्हता युधि ।
क्षरज्जलानां सदृशा जलदानां समागमे ॥ ३४ ॥

दूसरे बहुत-से सिपाही, जो युद्धस्थलमें मारे जाकर अस्त्रोंसे विदीर्ण हो गये थे, उसी प्रकार रक्त वमन करते थे, जैसे वर्षाकालमें मेघोंकी घटाएँ घिर आनेपर वर्षा करनेवाले बादल जलकी धारा गिराते हैं ॥ ३४ ॥

तदस्त्रशस्त्रग्रथितं क्षिप्तोत्क्षिप्तगदाविलम् ।
देवदानवसंक्षुब्धं संकुलं युद्धमाबभौ ॥ ३५ ॥

वह संग्राम अस्त्र-शस्त्रोंसे गुँथ गया था, दोनों ओरसे फेंकी और उछाली जानेवाली गदाओंसे मलिन हो रहा था तथा देवता और दानवोंके क्षोभसे व्याप्त होकर अत्यन्त भयानक प्रतीत होता था ॥ ३५ ॥

तद् दानवमहामेघं देवायुधतडित्प्रभम् ।
अन्योन्यबाणवर्षं तद् युद्धं दुर्दिनमाबभौ ॥ ३६ ॥

वह युद्ध एक दुर्दिनके समान जान पड़ता था । उसमें दानव ही महान् मेघोंकी घटाके समान घिर आये थे, देवताओंके चमकीले अस्त्र-शस्त्र विद्युत्की-सी प्रभा बिखेर रहे थे तथा दोनों दलोंकी ओरसे एक दूसरेपर जो बाणोंकी बौछार हो रही थी, वही मानो वर्षा थी ॥ ३६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धः कालनेमिर्महासुरः ।
व्यवर्द्धत समुद्रौघैः पूर्यमाण इवाम्बुदः ॥ ३७ ॥

इसी बीचमें कुपित हुआ महान् असुर कालनेमि समुद्रकी जलराशिसे परिपूर्ण होकर बढ़नेवाले मेघके समान अपना विशाल रूप प्रकट करने लगा ॥ ३७ ॥

तस्य विद्युच्चलापीडाः प्रदीप्ताशनिवर्षिणः ।
गात्रे नगशिरःप्रख्या विनिष्पेपुर्बलाहकाः ॥ ३८ ॥

मस्तकपर बिजलीके चञ्चल आभूषण धारण किये, प्रज्वलित वज्रकी वर्षा करनेवाले, पर्वतशिखरोंके समान विशालकाय बादल उसके शरीरसे टकराकर चूर-चूर हो जाते थे ॥ ३८ ॥

क्रोधान्निःश्वसतस्तस्य भ्रूभेदस्वेदवर्षिणः ।
साग्निनिष्पेषपवना मुखान्निश्चेरुरर्चिषः ॥ ३९ ॥

जब वह क्रोधपूर्वक लंबी साँस खींचता था, उस समय उसकी भौंहोंमें बल पड़नेसे पसीनेकी बूँदें टपकने लगती थीं

और मुखसे वज्र तथा प्रचण्ड वायुसे युक्त आगकी लपटें निकलती रहती थीं ॥ ३९॥

तिर्यगूर्ध्वं च गगने ववृधुस्तस्य बाहवः ।
पञ्चास्याः कृष्णवपुषो लेलिहाना इवोरगाः ॥ ४० ॥

उसकी भुजाएँ आकाशमें तिरछी और ऊपरकी दिशामें बढ़ने लगीं। वे ऐसी जान पड़ती थीं, मानो पाँच मुखवाले काले सर्प अपनी जीभ लपलपा रहे हों ॥ ४० ॥

सोऽस्त्रजालैर्बहुविधैर्धनुर्भिः परिघैरपि ।
दिव्यैराकाशमावव्रे पर्वतैरुच्छ्रितैरिव ॥ ४१ ॥

जैसे ऊँचे पर्वत आकाशको घेर लेते हैं, उसी प्रकार उसके चलाये हुए नाना प्रकारके दिव्य अस्त्र-शस्त्र, धनुष और परिघोंने व्योम-मार्गको ढक दिया ॥ ४१ ॥

सोऽनिलोद्‌धूतवसनस्तस्थौ संग्राममूर्धनि ।
संध्यातपग्रस्तशिखः सार्चिर्मेरुरिवापरः ॥ ४२ ॥

वह युद्धके मुहानेपर खड़ा था और वायुके वेगसे उसके वस्त्र ऊपरकी ओर फहरा रहे थे। उस समय वह संध्याकालकी धूपसे व्याप्त शिखरवाले प्रकाशयुक्त दूसरे मेरुके समान शोभा पाता था ॥ ४२ ॥

ऊरुवेगप्रतिक्षिप्तैः शैलशृङ्गाग्रपादपैः ।
अपातयद् देवगणान् वज्रेणेव महागिरीन् ॥ ४३ ॥

अपनी जाँघोंके वेगसे फेंके गये शैल-शिखरों और बड़े-बड़े वृक्षोंद्वारा वह देवताओंको उसी तरह धराशायी करने लगा, जैसे इन्द्रने वज्रसे महान् पर्वतोंको पृथ्वीपर गिरा दिया था ॥ ४३ ॥

बाहुभिः शस्त्रनिस्त्रिंशैश्छिन्नभिन्नशिरोरसः ।
न शेकुश्चलितुं देवाः कालनेमिहता युधि ॥ ४४ ॥

उस युद्धमें कालनेमिकी मार खाकर घायल हुए देवता चलने-फिरनेकी भी शक्ति खो बैठे। उसकी भुजाओंके आघातसे तथा शस्त्रों एवं खड्गोंकी चोटसे उनके मस्तक और वक्षःस्थल छिन्न-भिन्न हो गये थे ॥ ४४ ॥

मुष्टिभिर्निहताः केचित् केचिच्च विदलीकृताः ।
यक्षगन्धर्वपतयः पेतुः सह महोरगैः ॥ ४५ ॥

कितने ही यक्ष, गन्धर्वराज और बड़े-बड़े नाग उसके मुक्कोंकी मारसे मर गये और कितने ही विदीर्ण होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ४५ ॥

तेन वित्रासिता देवाः समरे कालनेमिना ।
न शेकुर्यत्नवन्तोऽपि प्रतिकर्तुं विचेतसः ॥ ४६ ॥

उस युद्धमें कालनेमिने देवताओंको इतना भयभीत कर दिया कि वे अपनी सुध-बुध खो बैठे और बहुत यत्न करके भी उसका कोई प्रतीकार न कर सके ॥ ४६ ॥

तेन शक्रः सहस्राक्षः स्तम्भितः शरबन्धनैः ।
ऐरावतगतः संख्ये चलितुं न शशाक ह ॥ ४

उसने रणभूमिमें ऐरावतपर बैठे हुए सहस्रने इन्द्रको बाणोंके बन्धनमें बाँधकर स्तब्ध कर दिया। वे चलनेमें भी असमर्थ हो गये ॥ ४७ ॥

निर्जलाम्भोदसदृशो निर्जलार्णवसप्रभः ।
निर्व्यापारः कृतस्तेन विपाशो वरुणो मृधे ॥ ४

समराङ्गणमें कालनेमिने वरुणका पाश छीनकर उससे वञ्चित कर दिया; अतः उनका युद्धविषयक व्यापार ठप हो गया। वे निर्जल बादल और बिना समुद्रकी भाँति श्रीहीन हो गये ॥ ४८ ॥

रणे वैश्रवणस्तेन परिघैः कालरूपिभिः ।
व्यलपल्लोकपालेशस्त्याजितो धनदक्रियाम् ॥ ४

उस रणक्षेत्रमें उसके कालरूपी परिघोंकी मार लोकपालेश्वर कुबेर विलाप करने लगे। उसने उनसे धना कुबेरके कार्यका बलपूर्वक त्याग करा दिया ॥ ४९ ॥

यमः सर्वहरस्तेन दण्डप्रहरणो रणे ।
याम्यामवस्थां समरे नीतः स्वां दिशमाविशत्॥ ५

सबके प्राण लेनेवाले दण्डधारी यमको भी उसने रण में याम्यदशा (अचेतनावस्था) को पहुँचा दिया, वे भयभीत होकर अपनी दक्षिण दिशामें घुस गये ॥ ५०

स लोकपालानुत्साद्य कृत्वा तेषां च कर्म तत् ।
दिक्षु सर्वासु देहं स्वं चतुर्धा विदधे तदा ॥ ५

इस प्रकार समस्त लोकपालोंको दूर भगाकर उसने सबके कार्यका सम्पादन अपने हाथमें ले लिया और दिशाओंमें स्थापित करनेके लिये अपने शरीरको चार का बना लिया ॥५१ ॥

स नक्षत्रपथं गत्वा दिव्यं स्वर्भानुदर्शितम् ।
जहार लक्ष्मीं सोमस्य तं चास्य विषयं महत् ॥ ५

उसने राहुके दिखाये हुए दिव्य नक्षत्रपथमें जाकर सोमकी राजलक्ष्मी तथा उनके विशाल राज्यका भी कर लिया ॥ ५२ ॥

चालयामास दीप्तांशुं स्वर्गद्वारात् स भास्करम् ।
सायनं चास्य विषयं जहार दिनकर्म च ॥ ५

उसने उद्दीप्त किरणोंवाले सूर्यको स्वर्गद्वारसे हटा तथा अयनसहित उनके सारे राज्य और दिन-सम्बन्धी भी उनसे छीनकर अपने अधिकारमें कर लिया ॥ ५३ ॥

सोऽग्निं देवमुखे दृष्ट्वा चकारात्ममुखे स्वयम् ।
वायुं च तरसा जित्वा चकारात्मवशानुगम् ॥ ५

कालनेमिने अग्निको देवताओंके मुखमें स्थित

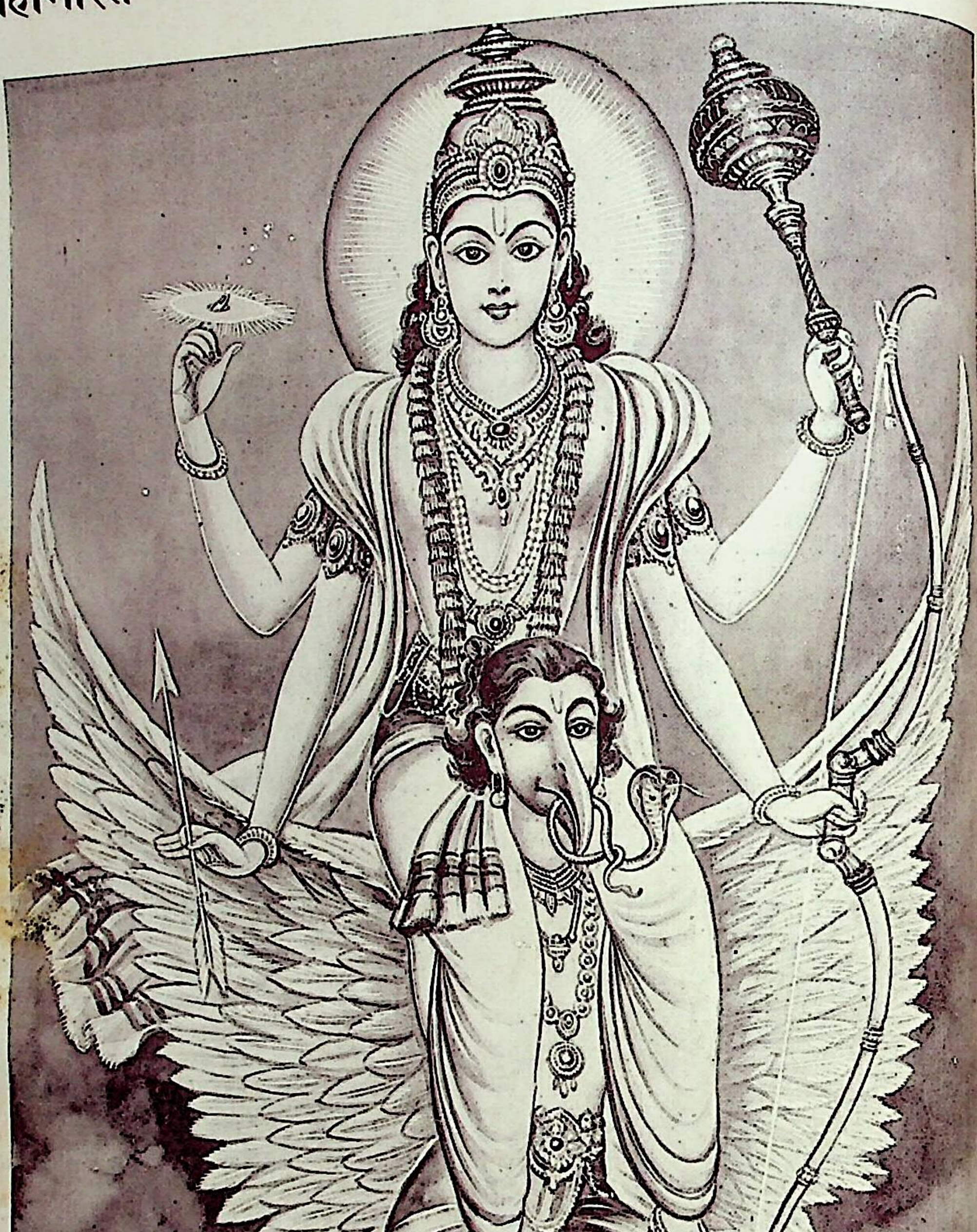

गरुडासनपर भगवान् विष्णु

स्वयं बलपूर्वक उन्हें अपने मुखमें स्थापित किया और वायुको भी वेगसे पराजित करके अपनी आज्ञाके अधीन कर लिया ॥ ५४ ॥

ससमुद्राः समानीय सर्वाश्च सरितो बलात् ।
चकारात्मवशे वीर्याद् देहभूताश्च सिन्धवः ॥ ५५ ॥

समुद्रोंसहित सम्पूर्ण सरिताओंको बलपूर्वक ले आकर कालनेमिने अपने पराक्रमसे उन सबको वशमें कर लिया । समस्त सागर उसके शरीररूप हो गये थे ॥ ५५ ॥

अपः स्ववशगाः कृत्वा दिविजा याश्च भूमिजाः ।
स्थापयामास जगतीं सुगुप्तां धरणीधरैः ॥ ५६ ॥

उसने आकाश और पृथ्वीके जलको अपने वशमें करके उसके ऊपर पर्वतोंद्वारा सुरक्षित पृथ्वीको स्थापित किया ॥ ५६ ॥

स स्वयम्भूरिवाभाति महाभूतपतिर्महान् ।
सर्वलोकमयो दैत्यः सर्वलोकभयावहः ॥ ५७ ॥

समस्त लोकोंको भय देनेवाला वह महान् दैत्य पञ्चमहाभूतोंका अधिपति एवं सर्वलोकमय होकर स्वयम्भू ब्रह्माके समान शोभा पाने लगा ॥ ५७ ॥

स लोकपालैकवपुश्चन्द्रसूर्यग्रहात्मवान् ।
पावकानिलसंघातो रराज युधि दानवः ॥ ५८ ॥

उस युद्धस्थलमें दानव कालनेमि एकमात्र स्वयं ही समस्त लोकपालोंके रूपमें प्रतिष्ठित हुआ था । चन्द्रमा, सूर्य और अन्य ग्रह सबके रूपमें उसका शरीर ही काम कर रहा था । अग्नि और वायु भी उसके शरीर बन गये थे, इस प्रकार उसकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ५८ ॥

पारमेष्ठ्ये स्थितः स्थाने लोकानां प्रभवाप्यये ।
तुष्टुवुस्तं दैत्यगणा देवा इव पितामहम् ॥ ५९ ॥

समस्त लोकोंकी उत्पत्ति और प्रलयके कारणभूत ब्रह्मलोकमें स्थित होकर वह ब्रह्मा बन बैठा था । उस समय दैत्यगण उसकी उसी तरह स्तुति करते थे, जैसे देवता ब्रह्माकी करते हैं ॥ ५९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि आश्चर्यतारकामये सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें आश्चर्यतारकामय
संग्रामविषयक सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

कालनेमि और भगवान् विष्णुका संवाद, श्रीविष्णुद्वारा कालनेमिका वध तथा देवताओंको आश्वासन देकर ब्रह्मलोकको प्रस्थान

वैशम्पायन उवाच

पञ्च तं नाभ्यवर्तन्त विपरीतेन कर्मणा ।
वेदो धर्मः क्षमा सत्यं श्रीश्च नारायणाश्रया ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! कालनेमिके द्वारा शास्त्रविपरीत कर्म किये जानेके कारण वेद, धर्म, क्षमा, सत्य और भगवान् नारायणके आश्रयमें रहनेवाली लक्ष्मी—ये पाँचों उसके पास नहीं आये ॥ १ ॥

स तेषामनुपस्थानात् सक्रोधो दानवेश्वरः ।
वैष्णवं पदमन्विच्छन् ययौ नारायणान्तिकम् ॥ २ ॥

उनके उपस्थित न होनेसे दानवराज कालनेमिको बड़ा क्रोध हुआ । वह भगवान् विष्णुके पद एवं वैकुण्ठधामको अपने अधीन कर लेनेकी इच्छासे उन श्रीनारायणदेवके निकट गया ॥ २ ॥

स ददर्श सुपर्णस्थं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
दानवानां विनाशाय भ्रामयन्तं गदां शुभाम् ॥ ३ ॥

उसने देखा—शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् नारायण गरुड़की पीठपर विराजमान हैं और दानवोंका विनाश करनेके लिये अपनी कल्याणमयी कौमोदकी गदाको घुमा रहे हैं ॥ ३ ॥

सजलाम्भोदसदृशं विद्युत्सदृशवाससम् ।
स्वारूढं स्वर्णपत्राढ्यं शिखिनं काश्यपं खगम् ॥ ४ ॥

उनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति सजल जलधरके समान श्याम है । उनपर विद्युत्की-सी दीप्तिसे दमकता हुआ रेशमी पीताम्बर शोभा पा रहा है । वे भगवान् विष्णु जिन कश्यपकुमार आकाशचारी गरुड़पर आरूढ़ हैं, उनके दोनों पंख सुवर्णके समान सुशोभित हैं और मस्तकपर शिखा शोभा दे रही है ॥ ४ ॥

दृष्ट्वा दैत्यविनाशाय रणे स्वस्थमवस्थितम् ।
दानवो विष्णुमक्षोभ्यं बभाषे क्षुब्धमानसः ॥ ५ ॥

जिन्हें कोई भी क्षोभमें नहीं डाल सकता, उन भगवान् विष्णुको दैत्योंके विनाशके लिये रणक्षेत्रमें स्वस्थभावसे खड़ा देख दानव कालनेमिका हृदय क्षोभसे भर गया और वह इस प्रकार कहने लगा—॥ ५ ॥

अयं स रिपुरस्माकं पूर्वेषां दानवर्षिणाम्।
अर्णवावासिनश्चैव मधोर्वै कैटभस्य च ॥ ६ ॥

'यही हमारे पूर्ववर्ती दानवर्षियोंका तथा एकार्णववासी मधु एवं कैटभका सुप्रसिद्ध शत्रु है ॥ ६ ॥

अयं स विग्रहोऽस्माकमशाम्यः किल कथ्यते।
येन नः संयुगेष्वाद्या बहवो दानवा हताः ॥ ७ ॥

'कहते हैं, यही हमलोगोंका वह मूर्तिमान् विग्रह (युद्ध) है, जिसे शान्त करना सर्वथा असम्भव है। इसने अनेक संग्रामोंमें हमारे बहुत-से पूर्वज दानवोंका वध किया है॥ ७ ॥

अयं स निर्घृणो युद्धेऽस्त्री बालनिरपत्रपः।
येन दानवनारीणां सीमन्तोद्धरणं कृतम् ॥ ८ ॥

'यह वही निर्दयी है, जो युद्धमें अस्त्र धारण करके बालकोंके समान निर्लज्ज होता है। इसीने दानवनारियोंके सीमन्तका सौभाग्यचिह्न सदाके लिये उतार दिया है ॥ ८ ॥

अयं स विष्णुर्देवानां वैकुण्ठश्च दिवौकसाम्।
अनन्तो भोगिनामप्सु स्वयम्भूश्च स्वयम्भुवः ॥ ९ ॥

'यही वह देवताओंका पक्षपाती विष्णु और स्वर्गवासियोंका वैकुण्ठ है। यही जलमें रहनेवाले सर्पोंका अनन्त और स्वयम्भू ब्रह्माका भी ब्रह्मा है ॥ ९ ॥

अयं स नाथो देवानामस्माकं विप्रिये स्थितः।
अस्य क्रोधेन महता हिरण्यकशिपुर्हतः ॥ १० ॥

'यही वह देवताओंका रक्षक है, जो सदा हमारा अप्रिय करनेमें ही लगा रहता है। इसीके महान् क्रोधसे दैत्यराज हिरण्यकशिपु मारे गये थे ॥ १० ॥

अस्यच्छायां समासाद्य देवा मखमुखे स्थिताः।
आज्यं महर्षिभिर्दत्तमश्नुवन्ति त्रिधा हुतम् ॥ ११ ॥

'इसीकी छायामें रहकर देवता यज्ञके मुखभागमें स्थित हो महर्षियोंद्वारा तीन[1] प्रकारसे हवन करके अर्पित किये गये हविष्यका उपभोग करते हैं ॥ ११ ॥

अयं स निधने हेतुः सर्वेषां देवविद्विषाम्।
यस्य तेजःप्रविष्टानि कुलान्यस्माकमाहवे ॥ १२ ॥

'यही समस्त देवद्रोही दैत्योंकी मृत्युमें प्रधान कारण है। समराङ्गणमें हमारे कितने ही कुल इसके तेजमें प्रविष्ट होकर भस्म हो गये ॥ १२ ॥

अयं स किल युद्धेषु सुरार्थे त्यक्तजीवितः।
सवितुस्तेजसा तुल्यं चक्रं क्षिपति शत्रुषु ॥ १३ ॥

'कहते हैं, यह वही सुविख्यात विष्णु है, जो युद्धमें देवताओंके लिये अपना जीवन निछावर किये रहता है। यह शत्रुओंपर सूर्यके समान तेजस्वी चक्र चलाया करता है ॥ १३ ॥

अयं स कालो दैत्यानां कालभूते मयि स्थिते।
अतिक्रान्तस्य कालस्य फलं प्राप्स्यति दुर्मतिः ॥ १४ ॥

'यही वह दैत्योंका काल है, परंतु आज इसका भी काल होकर मैं खड़ा हूँ। मेरे रहते हुए ही यह दुर्बुद्धि अपने पूर्व कालकी करतूतोंका फल पायेगा ॥ १४ ॥

दिष्ट्येदानीं समक्षं मे विष्णुरेष समागतः।
अद्य मद्बाणनिष्पिष्टो मामेव प्रणमिष्यति ॥ १५ ॥

'सौभाग्यकी बात है कि इस समय यह विष्णु मेरे सामने आ गया। आज यह मेरे बाणोंसे पिस जायगा और धरतीपर गिरकर मुझे ही प्रणाम करेगा ॥ १५ ॥

यास्याम्यपचितिं दिष्ट्या पूर्वेषामद्य संयुगे।
इमं नारायणं हत्वा दानवानां भयावहम् ॥ १६ ॥
क्षिप्रमेव वधिष्यामि रणे नारायणाश्रितान्।

'आज समराङ्गणमें दानवोंको भय देनेवाले इस नारायणका वध करके मैं शीघ्र ही इसके आश्रित रहनेवाले देवताओंका भी संहार कर डालूँगा। ऐसा करके अपने पूर्वजोंके ऋणसे उऋण हो सकूँगा, यह मेरे लिये बड़े सौभाग्यकी बात होगी ॥ १६½ ॥

जात्यन्तरगतोऽप्येष मृधे बाधति दानवान् ॥ १७ ॥
एषोऽनन्तः पुरा भूत्वा पद्मनाभ इति स्मृतः।
जघानैकार्णवे घोरे तावुभौ मधुकैटभौ।
विनिवेश्य स्वके ऊरौ निहतौ दानवेश्वरौ ॥ १८ ॥

'(मत्स्य, वराह आदि) दूसरी-दूसरी योनियोंमें जन्म धारण करके भी यह युद्धमें दानवोंको ही सताया करता है। यद्यपि यह अनन्त (आकाशकी भाँति असीम एवं व्यापक) है तो भी पूर्वकालमें मूर्तिमान् होकर प्रकट हुआ। उस समय इसकी पद्मनाभ नामसे प्रसिद्धि हुई। इसने भयंकर एकार्णवमें विचरनेवाले दोनों भाई दानवराज मधु और कैटभको अपनी जाँघपर सुलाकर मार डाला था ॥ १७-१८ ॥

द्विधाभूतं वपुः कृत्वा सिंहार्धं नरसंस्थितम्।
पितरं मे जघानैको हिरण्यकशिपुं पुरा ॥ १९ ॥

'इसीने पूर्वकालमें आधे नर और आधे सिंहके रूपमें दो प्रकारका शरीर धारण करके अकेले ही मेरे पिता हिरण्यकशिपुका वध किया था ॥ १९ ॥

शुभं गर्भमधत्तेममदितिर्देवतारणिः।
यज्ञकाले बलेर्यो वै कृत्वा वामनरूपताम्।
त्रीँल्लोकानाजहारैकः क्रममाणस्त्रिभिः क्रमैः ॥ २० ॥

'जो देवतारूपी अग्निको प्रकट करनेके लिये अरणिके

---

[1] १. अङ्ग होम, प्रधान होम और प्रायश्चित्त होम—ये होमके तीन प्रकार हैं। कुछ लोग निन्य, नैमित्तिक और काम्य भेदसे उसे तीन प्रकारका बताते हैं। कुछ दूसरे विद्वान् आहवनीय, गार्हपत्य तथा दक्षिणाग्नि रूप उपाधिके भेदसे उसकी त्रिविधताका प्रतिपादन करते हैं।

समान हैं, उन अदिति देवीने शुभ गर्भके रूपमें इसे धारण किया था। वही गर्भ बलिके यज्ञके समय अपनेको वामनरूपमें प्रकट करके आया। उस समय इसने अकेले ही तीन पगोंसे तीनों लोकोंको नापकर उन्हें बलिके अधिकारसे छीन लिया ॥ २० ॥

भूयस्त्विदानीं समरे सम्प्राप्ते तारकामये ।
मया सह समागम्य सह देवैर्विनङ्क्ष्यति ॥ २१ ॥

'अब पुनः इस समय इस तारकामय संग्रामका अवसर प्राप्त होनेपर इसने पदार्पण किया है, किंतु अब मेरे साथ भिड़कर यह देवताओंसहित नष्ट हो जायगा' ॥ २१ ॥

स एवमुक्त्वा बहुधा क्षिपन्नारायणं रणे ।
वाग्भिरप्रतिरूपाभिर्युद्धमेवाभ्यरोचयत् ॥ २२ ॥

ऐसा कहकर रणभूमिमें भगवान् नारायणपर अयोग्य वचनोंद्वारा नाना प्रकारके आक्षेप करते हुए कालनेमिने उनके साथ युद्ध करना ही पसंद किया ॥ २२ ॥

क्षिप्यमाणोऽसुरेन्द्रेण न चुकोप गदाधरः ।
क्षमाबलेन महता सस्मितं वाक्यमब्रवीत् ॥ २३ ॥

असुरराज कालनेमिके इस प्रकार आक्षेप करनेपर भी भगवान् गदाधरने उसपर क्रोध नहीं किया; क्योंकि वे महान् क्षमाबलसे सम्पन्न थे। उन्होंने मुसकराते हुए कहा—॥ २३ ॥

अल्पदर्पबलो दैत्य स्थितः क्रोधादसद्वदन् ।
हतस्त्वमात्मनो दोषैः क्षमां योऽतीत्य भाषसे ॥ २४ ॥

'दैत्य ! तुझमें दर्प और बल तो बहुत थोड़ा है, किंतु तू क्रोधके कारण ओछी बातें बकता हुआ यहाँ खड़ा है। अरे ! तू क्षमा अथवा सहनशीलताका उल्लङ्घन करके बढ़-बढ़कर बातें बना रहा है, इसलिये अपने ही दोषोंसे मारा जा चुका है ॥ २४ ॥

अधमस्त्वं मम मतो धिगेतत् तव वाग्बलम् ।
न तत्र पुरुषाः सन्ति यत्र गर्जन्ति योषितः ॥ २५ ॥

'मेरे विचारसे तो तू अधम है ! तेरे इस वाग्बलको धिक्कार है। अरे ! जहाँ पुरुष न हों, केवल स्त्रियाँ ही हों, वहाँ लोग इस तरहकी गर्जना करते हैं, जहाँ वीर पुरुष हों वहाँ नहीं (क्योंकि वहाँ गर्जना करनेसे वे उन वीर पुरुषोंद्वारा मार डाले जाते हैं) ॥ २५ ॥

अहं त्वां दैत्य पश्यामि पूर्वेषां मार्गगामिनम् ।
प्रजापतिकृतं सेतुं को भित्त्वा स्वस्तिमान् भवेत् ॥ २६ ॥

'दैत्य ! मैं तो देखता हूँ, तू अपने पूर्वजोंके ही मार्गपर जानेवाला है। भला ! प्रजापतिद्वारा नियत की हुई मर्यादाको भङ्ग करके कौन सकुशल रह सकता है ॥ २६ ॥

अद्य त्वां नाशयिष्यामि देवव्यापारकारकम् ।
स्वेषु स्वेषु च स्थानेषु स्थापयिष्यामि देवताः ॥ २७ ॥

'तू दानव होकर देवताओंका कार्य स्वयं कर रहा है—तूने उनका अधिकार उनसे छीन लिया है, इसलिये आज मैं तेरा विनाश कर डालूँगा और देवताओंको पुनः अपने-अपने स्थानों (पदों) पर स्थापित कर दूँगा' ॥ २७ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं ब्रुवति तद् वाक्यं मृधे श्रीवत्सधारिणि ।
जहास दानवः क्रोधाद्धस्तांश्चक्रे च सायुधान् ॥ २८ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! वक्षःस्थलमें श्रीवत्सचिह्न धारण करनेवाले भगवान् नारायण जब उस रणभूमिमें ऐसी बातें कह रहे थे, उस समय वह दानव वहाँ क्रोधपूर्वक हँसने लगा। उसने तुरंत ही अपने हाथोंमें हथियार ले लिये ॥ २८ ॥

स बाहुशतमुद्यम्य सर्वास्त्रग्रहणं रणे ।
क्रोधाद् द्विगुणरक्ताक्षो विष्णुं वक्षस्यताडयत् ॥ २९ ॥

उसने समरभूमिमें सब प्रकारके अस्त्रोंको ग्रहण करनेवाली अपनी सौ भुजाओंको ऊपर उठाकर भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें प्रहार किया। उस समय उसकी आँखें क्रोधके कारण दुगुनी लाल हो रही थीं ॥ २९ ॥

दानवाश्चापि समरे मयतारपुरोगमाः ।
उद्यतायुधनिस्त्रिंशा दृष्ट्वा विष्णुमथाद्रवन् ॥ ३० ॥

मय और तार आदि दानव भी रणभूमिमें भगवान् विष्णुको उपस्थित देख हाथोंमें भाँति-भाँतिके आयुध और तलवार लिये उनकी ओर दौड़े ॥ ३० ॥

स ताड्यमानोऽतिबलैर्दैत्यैः सर्वायुधोद्यतैः ।
न चचाल हरिर्युद्धेऽकम्प्यमान इवाचलः ॥ ३१ ॥

सब प्रकारके आयुध लेकर उद्यत हुए अत्यन्त बलशाली दैत्योंके प्रहार करनेपर भी भगवान् श्रीहरि युद्धभूमिमें कभी कम्पित न होनेवाले पर्वतके समान विचलित नहीं हुए (अविचल भावसे खड़े रहे) ॥ ३१ ॥

संसक्तश्च सुपर्णेन कालनेमी महासुरः ।
सर्वप्राणेन महतीं गदामुद्यम्य बाहुभिः ॥ ३२ ॥
मुमोच ज्वलितां घोरां संरब्धो गरुडोपरि ।
कर्मणा तेन दैत्यस्य विष्णुर्विस्मयमागतः ॥ ३३ ॥

इतनेहीमें महान् असुर कालनेमि गरुड़के साथ उलझ गया। उसने अपनी भुजाओंद्वारा सारी शक्ति लगाकर एक विशाल गदा उठायी, जो तेजसे प्रज्वलित हो रही थी। उस भयंकर गदाको उसने रोषमें भरकर गरुड़पर छोड़ दिया। उस दैत्यके इस कर्मसे भगवान् विष्णुको भी बड़ा विस्मय हुआ ॥ ३२-३३ ॥

यदा तस्य सुपर्णस्य पतिता मूर्ध्नि सा गदा ।
तदाऽऽगमत् पदा भूमिं पक्षी व्यथितविग्रहः ॥ ३४ ॥

जिस समय गरुड़के मस्तकपर वह गदा गिरी, उस समय वह पंजोंके बलसे पृथ्वीपर आकर टिक गये। उनका सारा शरीर व्यथित हो गया था ॥ ३४ ॥

सुपर्णं व्यथितं दृष्ट्वा क्षतं च वपुरात्मनः ।
क्रोधात् संरक्तनयनो वैकुण्ठश्चक्रमाददे ॥ ३५ ॥

गरुड़को गदाके आघातसे पीड़ित और अपने शरीरको भी क्षत-विक्षत देखकर भगवान् विष्णुके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। उन्होंने चक्र हाथमें ले लिया ॥ ३५ ॥

व्यवर्धत च वेगेन सुपर्णेन समं प्रभुः ।
भुजाश्चास्य व्यवर्धन्त व्याप्नुवन्तो दिशो दश ॥ ३६ ॥

तदनन्तर भगवान् नारायणका वेग गरुड़के समान ही बढ़ने लगा। उनकी चारों भुजाएँ दसों दिशाओंको व्याप्त करती हुई बढ़ने लगीं ॥ ३६ ॥

स दिशः प्रदिशश्चैव खं च गां चैव पूरयन् ।
ववृधे स पुनर्लोकान् क्रान्तुकाम इवौजसा ॥ ३७ ॥

वे दिशाओं, अवान्तर दिशाओं, आकाश और पृथ्वीको परिपूर्ण करते हुए इस प्रकार बढ़ने लगे, मानो पुनः बलपूर्वक तीनों लोकोंको आक्रान्त करना चाहते हों ॥ ३७ ॥

तं जयाय सुरेन्द्राणां वर्धमानं नभस्तले ।
ऋषयः सह गन्धर्वैस्तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ॥ ३८ ॥

देवेश्वरोंकी विजयके लिये आकाशमें बढ़ते हुए उन भगवान् मधुसूदनकी गन्धर्वोंसहित ऋषि स्तुति करने लगे ॥ ३८ ॥

स द्यां किरीटेन लिखन् साभ्रमम्बरमम्बरैः ।
पद्भ्यामाक्रम्य वसुधां दिशः प्रच्छाद्य बाहुभिः ॥ ३९ ॥

वे अपने मस्तकके किरीटसे स्वर्गलोककी भूमिपर रेखा-सी खींचते, फहराते हुए वस्त्रोंद्वारा बादलोंसहित आकाशको ढकते और चारों बाहोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित करते हुए अपने दोनों पैरोंसे पृथ्वीको दबाकर खड़े हो गये ॥ ३९ ॥

सूर्यस्य रश्मितुल्याभं सहस्रारमरिक्षयम् ।
दीप्ताग्निसदृशं घोरं दर्शनीयं सुदर्शनम् ॥ ४० ॥
सुवर्णनेमिपर्यन्तं वज्रनाभं भयावहम् ।
मेदोमज्जास्थिरुधिरैर्दिग्धं दानवसम्भवैः ॥ ४१ ॥
अद्वितीयं प्रहारेषु क्षुरपर्यन्तमण्डलम् ।
स्रग्दाममालाविततं कामगं कामरूपिणम् ॥ ४२ ॥
स्वयं स्वयम्भुवा सृष्टं भयदं सर्वविद्विषाम् ।
महर्षिरोषैराविष्टं नित्यमाहवदर्पितम् ॥ ४३ ॥
क्षेपणाद् यस्य मुह्यन्ति लोकाः सस्थाणुजङ्गमाः ।
क्रव्यादानि च भूतानि तृप्तिं यान्ति महाहवे ॥ ४४ ॥
तमप्रतिमकर्माणं समानं सूर्यवर्चसा ।
चक्रमुद्यम्य समरे क्रोधदीप्तो गदाधरः ॥ ४५ ॥

जिसकी प्रभा सूर्यकी किरणोंके समान उद्भासित होती है, जिसमें एक सहस्र अरे लगे हुए हैं, जो शत्रुओंका विनाश करनेमें समर्थ है, जिसे प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी बताया गया है, जो भयंकर होनेपर भी दर्शनीय है, इसीलिये जिसे सुदर्शन कहते हैं, जिसके किनारेपर सुवर्णमयी नेमि (हाल) लगी हुई है, जिसकी नाभि वज्रके समान सुदृढ़ है, जो शत्रुओंको भय देनेवाला है, दानवोंके मेद, मज्जा, अस्थि तथा रुधिरसे जिसकी पुष्टि हुई है, जो प्रहारके साधनोंमें अद्वितीय (अनुपम) है, उसके प्रान्तभागमें मण्डलाकार छुरे लगे हुए हैं, जो फूल-मालाकी लड़ियोंके समान विस्तृत है, इच्छानुसार चलने और मनमाना रूप धारण करनेमें समर्थ है, समस्त शत्रुओंको भय देनेवाले जिस दिव्य अस्त्रकी साक्षात् ब्रह्माजीने सृष्टि की है, अत्याचारी असुरोंके प्रति महर्षियोंके मनमें जो रोष होते हैं, उनसे जो सदा आविष्ट रहता है, युद्धके अवसरोंपर जो दर्पसे भरा होता है, जिसके प्रहारसे चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोक मोहमें पड़ जाते हैं और महासमरमें जिसके प्रभावसे मांसभक्षी प्राणियोंको तृप्ति प्राप्त होती है, उस अनुपम कर्म करनेवाले सूर्यतुल्य तेजस्वी चक्रको हाथमें उठाकर भगवान् गदाधर समराङ्गणमें क्रोधसे उद्दीप्त हो उठे ॥ ४०—४५ ॥

सम्मुष्णन् दानवं तेजः समरे स्वेन तेजसा ।
चिच्छेद बाहुं चक्रेण श्रीधरः कालनेमिनः ॥ ४६ ॥

लक्ष्मीको वक्षःस्थलमें धारण करनेवाले श्रीहरिने समरभूमिमें अपने तेजसे दानवोंके तेजका अपहरण करके उस चक्रसे कालनेमिकी भुजाओंको काट डाला ॥ ४६ ॥

तच्च वक्त्रशतं घोरं साग्निचूर्णाट्टहासिनम् ।
तस्य दैत्यस्य चक्रेण प्रममाथ बलाद्धरिः ॥ ४७ ॥

साथ ही जिनके अट्टहास करनेपर अग्निचूर्ण प्रकट होते थे, उस दैत्यके उन सौ भयंकर मुखोंको भी भगवान् विष्णुने उस चक्रके द्वारा बलपूर्वक मथ डाला ॥ ४७ ॥

स च्छिन्नबाहुर्विशिरा न प्राकम्पत दानवः ।
कबन्धोऽवस्थितः संख्ये विशाख इव पादपः ॥ ४८ ॥

भुजाओं और मस्तकोंके कट जानेपर भी वह दानव कम्पित नहीं हुआ। उसका धड़ युद्धस्थलमें शाखारहित वृक्षके समान खड़ा रहा ॥ ४८ ॥

तं वितत्य महापक्षौ वायोः कृत्वा समं जवम् ।
उरसा पातयामास गरुडः कालनेमिनम् ॥ ४९ ॥

तब महापक्षी गरुड़ने अपने पंख फैलाकर वायुके समान

वेग प्रकट करके कालनेमिको अपनी छातीके धक्केसे गिरा दिया ॥ ४९ ॥

स तस्य देहो विमुखो विशाखः खात् परिभ्रमन् ।
निपपात दिवं त्यक्त्वा क्षोभयन् धरणीतलम् ॥ ५० ॥

उसका वह मस्तक और भुजाओंसे रहित शरीर स्वर्गलोकको त्यागकर आकाशसे चक्कर काटता और भूतलको क्षुब्ध करता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ५० ॥

तस्मिन्निपतिते दैत्ये देवाः सर्षिगणास्तदा ।
साधु साध्विति वैकुण्ठं समेताः प्रत्यपूजयन् ॥ ५१ ॥

उस दैत्यके धराशायी होनेपर ऋषियोंसहित सम्पूर्ण देवता साधु-साधु कहते हुए वहाँ आये और भगवान् विष्णुकी पूजा एवं प्रशंसा करने लगे ॥ ५१ ॥

अपरे ये तु दैत्या वै युद्धे दुष्टपराक्रमाः ।
ते सर्वे बाहुभिर्व्याप्ता न शेकुश्चलितुं रणे ॥ ५२ ॥

उसके सिवा जो दूसरे दुष्ट पराक्रमी दैत्य थे, वे सब भगवान् विष्णुकी भुजाओंसे अवरुद्ध होकर रणभूमिमें हिल-डुल भी न सके ॥ ५२ ॥

कांश्चित्केशेषु जग्राह कांश्चित्कण्ठेऽभ्यपीडयत् ।
पाटयत्कस्यचिद् वक्त्रं मध्ये कांश्चिदथाग्रहीत् ॥ ५३ ॥

भगवान्‌ने किन्हींके केश पकड़कर उन्हें टाँग लिया, किन्हींके गले दबा दिये, किन्हींके मुख फाड़ दिये और कुछ दैत्योंकी कमर पकड़कर तोड़ डाली ॥ ५३ ॥

ते गदाचक्रनिर्दग्धा गतसत्त्वा गतासवः ।
गगनाद् भ्रष्टसर्वाङ्गा निपेतुर्धरणीतले ॥ ५४ ॥

वे दैत्य गदा और चक्रके तेजसे दग्ध हो अपने धैर्य और प्राण खो बैठे । उनके सारे अङ्ग आकाशसे भ्रष्ट होकर भूतलपर गिर पड़े ॥ ५४ ॥

तेषु सर्वेषु दैत्येषु हतेषु पुरुषोत्तमः ।
तस्थौ शक्रप्रियं कृत्वा कृतकर्मा गदाधरः ॥ ५५ ॥

उन सब दैत्योंके मारे जानेपर इन्द्रका प्रिय करके कृतकृत्य हुए गदाधारी भगवान् पुरुषोत्तम वहाँ चुपचाप खड़े हो गये ॥ ५५ ॥

तस्मिन् विमर्दे निर्वृत्ते संग्रामे तारकामये ।
तं देशमाजगामाशु ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ५६ ॥
सर्वैर्ब्रह्मर्षिभिः सार्धं गन्धर्वैः साप्सरोगणैः ।
देवदेवो हरिं देवं पूजयन् वाक्यमब्रवीत् ॥ ५७ ॥

तारकामय संग्रामकी वह मार-काट समाप्त होनेपर देवाधिदेव लोकपितामह ब्रह्मा समस्त ब्रह्मर्षियों, गन्धर्वों और अप्सराओंके साथ शीघ्र ही उस प्रदेशमें आ पहुँचे और श्रीनारायणदेवकी पूजा करते हुए बोले ॥ ५६-५७ ॥

ब्रह्मोवाच

कृतं देव महत्कर्म सुराणां शल्यमुद्धृतम् ।
वधेनानेन दैत्यानां वयं हि परितोषिताः ॥ ५८ ॥

ब्रह्माजीने कहा—देव ! आपने यह बहुत बड़ा कार्य किया । देवताओंका काँटा निकाल दिया । दैत्योंके इस वधसे हमें बड़ा संतोष हुआ है ॥ ५८ ॥

योऽयं हतस्त्वया विष्णो कालनेमी महासुरः ।
त्वमेकोऽस्य मृधे हन्ता नान्यः कश्चन विद्यते ॥ ५९ ॥

विष्णो ! आपके द्वारा जो यह कालनेमि नामक महान् असुर मारा गया है, इसे एकमात्र आप ही युद्धमें मार सकते थे; दूसरा कोई ऐसा नहीं है ॥ ५९ ॥

एष देवान् परिभवँल्लोकांश्च सचराचरान् ।
ऋषीणां कदनं कृत्वा मामपि प्रतिगर्जति ॥ ६० ॥

यह देवताओं तथा चराचर प्राणियोंसहित समस्त लोकोंका तिरस्कार करता था और ऋषियोंका संहार करके मेरे सामने भी गर्जना किया करता था ॥ ६० ॥

तदनेन तवोग्रेण परितुष्टोऽस्मि कर्मणा ।
यदयं कालतुल्याभः कालनेमी निपातितः ॥ ६१ ॥

अतः आपने जो कालके समान प्रतीत होनेवाले इस कालनेमि नामक दैत्यको मार गिराया है, आपके इस उग्र पराक्रमसे मैं बहुत संतुष्ट हूँ ॥ ६१ ॥

तदागच्छस्व भद्रं ते गच्छाम दिवमुत्तमम् ।
ब्रह्मर्षयस्त्वां तत्रस्थाः प्रतीक्षन्ते सदोगताः ॥ ६२ ॥

इसलिये आइये, आपका कल्याण हो । अब हमलोग उत्तम दिव्य लोकको चलें । वहाँ दिव्य सभामें बैठे हुए वहाँके निवासी ब्रह्मर्षि आपकी प्रतीक्षा करते हैं ॥ ६२ ॥

अहं महर्षयश्चैव तत्र त्वां वदतां वर ।
विधिवच्चार्चयिष्यामो गीर्भिर्दिव्याभिरच्युत ॥ ६३ ॥

वक्ताओंमें श्रेष्ठ अच्युत ! वहाँ मैं तथा महर्षिगण दिव्य वाणीद्वारा आपकी विधिवत् अर्चना करेंगे ॥ ६३ ॥

किं चाहं तव दास्यामि वरं वरभृतां वर ।
सुरेष्वपि सदैत्येषु वराणां वरदो भवान् ॥ ६४ ॥

वर धारण करनेवालोंमें श्रेष्ठ नारायण ! मैं आपको क्या वर दूँगा । दैत्यों और देवताओंमें जितने भी वर (श्रेष्ठ मनोरथ) हैं, उन सबके दाता तो आप ही हैं ॥ ६४ ॥

निर्यातयैतत् त्रैलोक्यं स्फीतं निहतकण्टकम् ।
अस्मिन्नेव मृधे विष्णो शक्राय सुमहात्मने ॥ ६५ ॥

विष्णो ! इस युद्धस्थलमें ही आप महात्मा इन्द्रको त्रिलोकीका यह समृद्धिशाली और अकण्टक राज्य लौटा दीजिये ॥ ६५ ॥

एवमुक्तो भगवता ब्रह्मणा हरिरव्ययः ।
देवाञ्छक्रमुखान् सर्वानुवाच शुभया गिरा ॥ ६६ ॥

भगवान् ब्रह्माके ऐसा कहनेपर अविनाशी श्रीहरिने अपनी कल्याणमयी वाणीद्वारा इन्द्र आदि समस्त देवताओंसे इस प्रकार कहा ॥ ६६ ॥

विष्णुरुवाच

श्रूयतां त्रिदशाः सर्वे यावन्तोऽत्र समागताः ।
श्रवणावहितैर्देहैः पुरस्कृत्य पुरंदरम् ॥ ६७ ॥

भगवान् विष्णु बोले—जितने देवता यहाँ आये हैं, वे सब लोग अपने शरीर और इन्द्रियोंको मेरी बात सुननेके लिये सावधान रखते हुए इन्द्रको आगे करके मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे सुनें ॥ ६७ ॥

अस्मिन्नः समरे सर्वे कालनेमिमुखा हताः ।
दानवा विक्रमोपेताः शक्रादपि महत्तराः ॥ ६८ ॥

इस युद्धमें हमने इन्द्रसे भी बहुत बढ़े-चढ़े पराक्रमशाली कालनेमि आदि समस्त दानवोंको मार डाला है ॥६८॥

तस्मिन् महति संक्रन्दे द्वावेव तु विनिस्सृतौ ।
वैरोचनश्च दैत्येन्द्रः स्वर्भानुश्च महाग्रहः ॥ ६९ ॥

इस महासंग्रामसे दो ही दैत्य बचकर निकले हैं—विरोचनकुमार दैत्यराज बलि और महान् ग्रह राहु ॥ ६९ ॥

तदिष्टां भजतां शक्रो दिशं वरुण एव च ।
याम्यां यमः पालयतामुत्तरां च धनाधिपः ॥ ७० ॥

अतः इन्द्र और वरुण अब अपनी-अपनी अभीष्ट दिशाको पुनः ग्रहण करें । यम दक्षिण दिशाका और धनाध्यक्ष कुबेर उत्तर दिशाका पालन करें ॥ ७० ॥

ऋक्षैः सह यथायोगं काले चरतु चन्द्रमाः ।
अब्दं चतुर्मुखं सूर्यो भजतामयनैः सह ॥ ७१ ॥

चन्द्रमा समयानुसार नक्षत्रोंके साथ यथायोग्य विचरें और सूर्य अयनोंसहित ऋतुप्रधान वर्षका आश्रय लें ॥ ७१॥

आज्यभागाः प्रवर्तन्तां सदस्यैरभिपूजिताः ।
हूयन्तामग्नयो विप्रैर्वेददृष्टेन कर्मणा ॥ ७२ ॥

(यज्ञमें) सदस्योंद्वारा सब ओरसे पूजित आज्यभाग देवताओंको अर्पित किये जायँ और ब्राह्मणलोग वेदोक्त विधिसे अग्नियोंमें आहुति दें ॥ ७२ ॥

देवाश्च बलिहोमेन स्वाध्यायेन महर्षयः ।
श्राद्धेन पितरश्चैव तृप्तिं यान्तु यथा पुरा ॥ ७३ ॥

अब पुनः पहलेकी ही भाँति बलि और होमकर्मके द्वारा देवताओंको, स्वाध्यायके द्वारा महर्षियोंको तथा श्राद्धकर्मके सम्पादनसे पितरोंको संतुष्ट किया जाय और वे पूर्णतः तृप्त हों ॥ ७३ ॥

वायुश्चरतु मार्गस्थस्त्रिधा दीप्यतु पावकः ।
त्रयो वर्णाश्च लोकांस्त्रीन् वर्द्धयन्त्वात्मजैर्गुणैः ॥ ७४ ॥

वायुदेव अपने मार्गपर रहकर विचरण करें, अग्निदेव (गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि तथा आहवनीय—इन) तीन-तीन रूपोंमें सदा प्रकाशित होते रहें तथा तीनों वर्णोंके लोग अपने (शम, दम, तप एवं शौच आदि) सहज गुणोंसे तीनों लोकोंकी वृद्धि करें ॥ ७४ ॥

क्रतवः सम्प्रवर्तन्तां दीक्षणीयैर्द्विजातिभिः ।
दक्षिणाश्चोपवर्तन्तां यथार्हं सर्वसत्रिणाम् ॥ ७५ ॥

यज्ञदीक्षाके अधिकारी द्विजातियोंद्वारा यज्ञोंका अनुष्ठान होता रहे और समस्त यजमानोंके यज्ञोंमें यथायोग्य दक्षिणाएँ दी जायँ ॥ ७५ ॥

गाश्च सूर्यो रसान् सोमो वायुः प्राणांश्च प्राणिषु ।
तर्पयन्तः प्रवर्तन्तां शिवैः सौम्यैश्च कर्मभिः ॥ ७६ ॥

सूर्यदेव सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी, चन्द्रदेव रसोंकी तथा वायुदेव प्राणियोंके प्राणोंकी तृप्ति एवं पुष्टि करते हुए अपने कल्याणकारी एवं सौम्य कर्मोंद्वारा लोकहितमें प्रवृत्त हों ॥

यथावदानुपूर्व्येण महेन्द्रसलिलोद्भवाः ।
त्रैलोक्यमातरः सर्वाः सागरं यान्तु निम्नगाः ॥ ७७ ॥

देवराज इन्द्रद्वारा पर्वतोंपर बरसाये हुए जलसे प्रकट होनेवाली सम्पूर्ण सरितायें, जो सबको जलरूपी दुग्ध पिलानेके कारण तीनों लोकोंके प्राणियोंके लिये माताके समान हैं, यथोचित गतिसे बहती हुई क्रमशः समुद्रमें मिल जायँ ॥७७॥

दैत्येभ्यस्त्यज्यतां भीश्च शान्तिं व्रजत देवताः ।
स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ ७८ ॥

देवताओ ! अब तुम दैत्योंसे होनेवाले भयको त्याग दो और मनमें शान्ति धारण करो । तुम सब लोगोंका कल्याण हो । अब मैं सनातन ब्रह्मलोकको जाऊँगा ॥ ७८ ॥

स्वगृहे सर्वलोके वा संग्रामे वा विशेषतः ।
विश्रम्भो वो न मन्तव्यो नित्यं क्षुद्रा हि दानवाः ॥ ७९ ॥

अपने घरमें अथवा समस्त जगत्‌में या विशेषतः संग्राममें तुम्हें दानवोंका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि वे सदा ही नीचतापूर्ण बर्ताव करनेवाले होते हैं ॥ ७९ ॥

छिद्रेषु प्रहरन्त्येते न चैषां संस्थितिर्ध्रुवा ।
सौम्यानामृजुभावानां भवतां चार्जवे मतिः ॥ ८० ॥

ये मौका पाते ही प्रहार कर बैठते हैं । इनकी मर्यादा सदा स्थिर रहनेवाली नहीं होती । तुमलोग सौम्य और सरल स्वभावके हो, अतः तुम्हारी बुद्धि सरलतापूर्ण बर्तावमें लगती है ॥ ८० ॥

अहं तु दुष्टभावानां युष्मासु सुदुरात्मनाम् ।
असम्यग्वर्तमानानां मोहं दास्यामि देवताः ॥ ८१ ॥

देवताओ ! तुम्हारे प्रति दुर्भाव रखकर अनुचित बर्ताव करनेवाले दुरात्मा दैत्योंको मैं अवश्य ही मोहमें डाल दूँगा ॥ ८१ ॥

यदा च सुदुराधर्षं दानवेभ्यो भयं भवेत् ।
तदा समुपगम्याशु विधास्ये वस्ततोऽभयम् ॥ ८२ ॥

जब दानवोंकी ओरसे तुमलोगोंको दुर्निवार्य भय प्राप्त होगा, तब शीघ्र ही आकर मैं तुम्हें उनकी ओरसे निर्भय कर दूँगा ॥ ८२ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा सुरगणान् विष्णुः सत्यपराक्रमः ।
जगाम ब्रह्मणा सार्धं ब्रह्मलोकं महायशाः ॥ ८३ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! देवताओंसे ऐसा कहकर महायशस्वी तथा सत्यपराक्रमी भगवान् विष्णु ब्रह्माजीके साथ ब्रह्मलोकको चले गये ॥ ८३ ॥

एतदाश्चर्यमभवत् संग्रामे तारकामये ।
दानवानां च विष्णोश्च यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥ ८४ ॥

राजन्! तुमने मुझसे जो बात पूछी थी, उसका उत्तर मैंने दे दिया । तारकामय संग्रामके अवसरपर दानवों और भगवान् विष्णुके बीचमें यही आश्चर्यजनक घटना घटित हुई थी ॥ ८४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि कालनेमिवधेऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें कालनेमिका वधविषयक
अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्मलोकमें भगवान् विष्णुका सत्कार

जनमेजय उवाच

ब्रह्मणा देवदेवेन सार्धं सलिलयोनिना ।
ब्रह्मलोकगतो ब्रह्मन् वैकुण्ठः किं चकार ह ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन् ! देवाधिदेव कमलयोनि ब्रह्माजीके साथ ब्रह्मलोकमें जाकर भगवान् विष्णुने क्या किया ? ॥ १ ॥

किमर्थं चादिदेवेन नीतः कमलयोनिना ।
विष्णुर्दैत्यवधे वृत्ते देवैश्च कृतसत्क्रियः ॥ २ ॥

दैत्योंके संहारका कार्य पूर्ण हो जानेपर देवताओंद्वारा जिनका भलीभाँति सत्कार किया गया था, उन भगवान् विष्णुको आदिदेव ब्रह्माजी ब्रह्मलोकमें किसलिये ले गये ? ॥२॥

ब्रह्मलोके च किं स्थानं कं वा योगमुपास्त सः ।
कं वा दधार नियमं स विभुर्भूतभावनः ॥ ३ ॥

ब्रह्मलोकमें उनका कौन-सा स्थान है ? वहाँ उन्होंने किस योगका आश्रय लिया अथवा उन भूतभावन सर्वव्यापी श्रीहरिने किस नियमको धारण किया ? ॥ ३ ॥

कथं तस्याऽऽसतस्तत्र विश्वं जगदिदं महत् ।
श्रियमाप्नोति विपुलां सुरासुरनरार्चिताम् ॥ ४ ॥

वहाँ रहते हुए भगवान् विष्णुकी विपुल सम्पत्तिको, जिसकी देवता, असुर और मनुष्य सभी पूजा करते हैं, यह सारा विशाल जगत् कैसे पाता है ? ॥ ४ ॥

कथं स्वपिति घर्मान्ते बुध्यते चाम्बुदप्लवे ।
कथं च ब्रह्मलोकस्थो धुरं वहति लौकिकीम् ॥ ५ ॥

ग्रीष्म ऋतुके अन्तमें (आषाढ़ मासकी शुक्ला एकादशीको) भगवान् कैसे शयन करते हैं ? वर्षाकाल बीतनेपर (कार्तिककी शुक्ला एकादशीको) किस प्रकार जागते हैं ? तथा ब्रह्मलोक (नारायणाश्रम) में रहकर वे सम्पूर्ण जगत्की रक्षाका भार कैसे वहन करते हैं ? ॥ ५ ॥

चरितं तस्य विप्रेन्द्र दिव्यं भगवतो दिवि ।
विस्तरेण यथातत्त्वं सर्वमिच्छामि वेदितुम् ॥ ६ ॥

विप्रवर ! दिव्य धाममें स्थित भगवान् विष्णुका जो दिव्य चरित्र है, वह सब यथार्थरूपसे विस्तारपूर्वक मैं सुनना चाहता हूँ* ॥ ६ ॥

---

* यहाँ कुल आठ प्रश्न हैं । पहले श्लोकमें जो प्रथम प्रश्न है, उसका उत्तर इसी अध्यायके श्लोक १२ से लेकर १७ तक देखना चाहिये । दूसरे श्लोकमें दूसरा प्रश्न अङ्कित है । इसका उत्तर इसी अध्यायके २५ से २८ तकके श्लोकोंमें गूढ़ भावसे दिया गया है । तीसरे श्लोकमें तीन प्रश्न हैं—तीसरा, चौथा और पाँचवाँ । उनमेंसे तीसरे प्रश्नका उत्तर अध्याय ५० के १ से ६ तकके श्लोकोंमें उपलब्ध होता है । चौथे और पाँचवें प्रश्नोंका उत्तर उसी अध्यायके ७ से ९ तकके श्लोकोंमें देखें । चौथे श्लोकमें जो छठा प्रश्न अङ्कित है, उसका उत्तर गूढ़ भावसे अध्याय ५० के श्लोक १२ से २२ तकमें है । सातवाँ और आठवाँ प्रश्न पाँचवें, छठे श्लोकोंमें अङ्कित हैं । इनमें सातवेंका उत्तर अध्याय ५० के २२ से ४३ तकके श्लोकोंमें वर्णित है और चरित्र-विषयक आठवें प्रश्नका उत्तर अध्याय ५० के ४४ वें श्लोकसे आरम्भ होकर आगेके सभी अध्यायोंमें है ।

वैशम्पायन उवाच

शृणु नारायणस्यादौ विस्तरेण प्रवृत्तयः ।
ब्रह्मलोकं यथारूढो ब्रह्मणा सह मोदते ॥ ७ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय ! भगवान् नारायणके जो कर्म हैं और जिस प्रकार वे ब्रह्मलोकमें स्थित होकर ब्रह्माजीके साथ आनन्दका अनुभव करते हैं, वह सब पहले मुझसे सुनो ॥ ७ ॥

कामं तस्य गतिः सूक्ष्मा देवैरपि दुरासदा ।
यत् तु वक्ष्याम्यहं राजंस्तन्मे निगदतः शृणु ॥ ८ ॥

राजन् ! उनकी गति (लीला या चरित्र) उन्हींकी इच्छाके अनुरूप होती है, वह सूक्ष्म है, उसके तत्त्वको ठीक-ठीक समझ पाना देवताओंके लिये भी अत्यन्त कठिन है । इस समय मैं भगवान्‌के जिस चरित्रका वर्णन करने जा रहा हूँ, उसे तुम मेरे कथनानुसार सुनो ॥ ८ ॥

एष लोकमयो देवो लोकाश्चैतन्मयास्त्रयः ।
एष देवमयश्चैव देवाश्चैतन्मया दिवि ॥ ९ ॥

ये श्रीनारायणदेव सर्वलोकमय हैं और ये तीनों लोक भी इन्हींके स्वरूप (विष्णुमय) हैं । ये ही सर्वदेवमय हैं और स्वर्गके सम्पूर्ण देवता एतन्मय (इन्हींके स्वरूप अर्थात् विष्णुमय) हैं ॥ ९ ॥

तस्य पारं न पश्यन्ति बहवः पारचिन्तकाः ।
एष पारं परं चैव लोकानां वेद माधवः ॥ १० ॥

प्रत्येक वस्तुके पार तत्त्व (अन्त, इयत्ता या चरम सीमा) का चिन्तन करनेवाले बहुत-से विचारक उन भगवान्‌का पार नहीं देख पाते हैं, परंतु ये भगवान् माधव सम्पूर्ण जगत्‌के परम पार (अपने आप) को भलीभाँति जानते हैं ॥१० ॥

अस्य देवान्धकारस्य मार्गितव्यस्य दैवतैः ।
शृणु वै यत् तदा वृत्तं ब्रह्मलोके पुरातनम् ॥ ११ ॥

ये इन्द्रियोंके अविषय हैं और सम्पूर्ण देवता इन्हींका अनुसंधान करते रहते हैं । इन्हीं भगवान् विष्णुका उस समय ब्रह्मलोकमें घटित हुआ जो प्राचीन वृत्तान्त है, उसे सुनो ॥ ११ ॥

स गत्वा ब्रह्मणो लोकं दृष्ट्वा पैतामहं पदम् ।
ववन्दे तानृषीन् सर्वान् विष्णुरार्षेण कर्मणा ॥ १२ ॥

उन भगवान् विष्णुने ब्रह्मलोकमें जाकर पितामहके निवासस्थानका दर्शन करके वेदोक्त विधिसे वहाँके समस्त ऋषियोंको प्रणाम किया ॥ १२ ॥

सोऽग्निं प्राक्सवने दृष्ट्वा हूयमानं महर्षिभिः ।
अवन्दत महातेजाः कृत्वा पौर्वाह्णिकीं क्रियाम् ॥ १३ ॥

उन महातेजस्वी श्रीहरिने पूर्वाह्णकालकी क्रिया पूर्ण करके प्रातःसवनके समय महर्षियोंकी दी हुई आहुति ग्रहण करनेवाले अग्निदेवका दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया ॥१३॥

स ददर्श मखेष्वाज्यैरिज्यमानं महर्षिभिः ।
भागं यज्ञियमश्नानं स्वदेहमपरं स्थितम् ॥ १४ ॥

उन्होंने वहाँ अपने ही दूसरे विग्रहको विराजमान देखा, जिसका यज्ञोंमें महर्षिगण घीकी आहुतियोंद्वारा यजन (पूजन) कर रहे थे और जो प्राप्त हुए यज्ञभागको स्वयं ही ग्रहण कर रहा था ॥ १४ ॥

अभिवाद्याभिवाद्यानामृषीणां ब्रह्मवर्चसाम् ।
परिचक्राम सोऽचिन्त्यो ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ १५ ॥

उन अचिन्त्यस्वरूप भगवान्‌ने ब्रह्मतेजसे सम्पन्न एवं वन्दनीय ऋषियोंको प्रणाम करके उस सनातन ब्रह्मलोकमें घूमना आरम्भ किया ॥ १५ ॥

स ददर्शोच्छ्रितान् यूपांश्चषालाग्रविभूषितान् ।
मखेषु च ब्रह्मर्षिभिः शतशः कृतलक्षणान् ॥ १६ ॥

उन्होंने वहाँ यज्ञोंमें स्थापित किये गये बहुत-से ऊँचे-ऊँचे यूपों (यज्ञ-स्तम्भों) को देखा, जो सिरेपर काठके बने हुए छल्लोंसे विभूषित थे । ब्रह्मर्षियोंने उनमें सैकड़ों प्रकारके चिह्न अङ्कित किये थे ॥ १६ ॥

आज्यधूमं समाघ्राय शृण्वन् वेदान् द्विजेरितान् ।
यज्ञैरिज्यन्तमात्मानं पश्यंस्तत्र चचार ह ॥ १७ ॥

वे घीकी आहुतियोंसे प्रकट हुए धूमकी सुगन्ध लेते, ब्राह्मणोंद्वारा उच्चारित वेदमन्त्रोंको सुनते और यज्ञोंद्वारा होती हुई अपनी ही आराधनाको देखते हुए वहाँ सब ओर विचरने लगे ॥ १७ ॥

ऊचुस्तमृषयो देवाः सदस्याः सदसि स्थिताः ।
अर्घ्योद्यतभुजाः सर्वे पवित्रान्तरपाणयः ॥ १८ ॥

जो यज्ञमण्डपमें सदस्यरूपसे विराजमान थे, वे सब देवता और ऋषि हाथोंमें पवित्री धारण करके अर्घ्य देनेके लिये दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर उन भगवान्‌के विषयमें परस्पर इस प्रकार कह रहे थे—॥ १८ ॥

देवेषु वर्तते यद् वै तद्धि सर्वं जनार्दनात् ।
यत् प्रवृत्तं च देवेभ्यस्तद् विद्धि मधुसूदनात् ॥ १९ ॥

'देवताओंमें जो भी शक्ति-सामर्थ्य आदि है, वह सब उन्हें भगवान् जनार्दनसे ही प्राप्त हुआ है । देवताओंसे भी जो कुछ प्राप्त होता है, उसे भगवान् मधुसूदनका ही प्रसाद समझो ॥ १९ ॥

अग्नीषोममयं लोकं यं विदुर्विदुषो जनाः ।
तं सोममग्निं लोकं च वेद विष्णुं सनातनम् ॥ २० ॥

'संसारके मनुष्य विद्वानोंके मुखसे जिस जगत्‌को अग्नि

और सोमका कार्य जानते हैं, उसके कारणभूत वे सोम और अग्नि तथा यह कार्यभूत जगत् भी सनातन विष्णुरूप ही है, यह बात तुम्हें भी विदित है ॥ २० ॥

क्षीराद् यथा दधि भवेद् दध्नः सर्पिर्भवेद् यथा ।
मथ्यमानेषु भूतेषु तथा लोको जनार्दनात् ॥ २१ ॥

'जैसे दूधसे दही बनता है और दहीसे मन्थन करनेपर घी प्रकट होता है, उसी प्रकार भूतों (देह और इन्द्रिय आदि) के मथे जानेपर अर्थात् चित्तको एकाग्र करके सूक्ष्म तत्त्वका चिन्तन करनेपर यह ज्ञात हो जाता है कि सारा संसार भगवान् जनार्दनसे ही प्रकट हुआ है ॥ २१ ॥

यथेन्द्रियैश्च भूतैश्च परमात्मा विधीयते ।
तथा देवैश्च वेदैश्च लोकैश्च विहितो हरिः ॥ २२ ॥

'जैसे चेतनासे व्याप्त भूतों (शरीरों) और इन्द्रियोंद्वारा उनके नियन्ता परमात्माका स्वतः ज्ञापन या प्रतिपादन हो जाता है, उसी प्रकार अनुग्रह आदि गुणोंसे युक्त देवताओं, वेदों और लोकोंद्वारा (उनके अन्तर्यामी आत्मारूपसे) श्रीहरिका बोध हो जाता है ॥ २२ ॥

यथा भूतेन्द्रियावाप्तिर्विहिता भुवि देहिनाम् ।
तथा प्राणेश्वरावाप्तिर्देवानां दिवि वैष्णवी ॥ २३ ॥

'जैसे भूतलपर देहधारी प्राणियोंको जो देह और इन्द्रियोंकी प्राप्ति हुई है, उनका सम्बन्ध पार्थिव भूतोंसे है, उसी प्रकार स्वर्गलोकमें देवताओंको जो बल और ऐश्वर्य प्राप्त हुए हैं, उनका सम्बन्ध भगवान् विष्णुसे ही है ॥ २३ ॥

सत्रिणां सत्रफलदः पवित्रं परमात्मवान् ।
लोकतन्त्रधरो ह्येष मन्त्रैर्मन्त्र इवोच्यते ॥ २४ ॥

'ये भगवान् विष्णु ही यज्ञ करनेवाले यजमानोंको उनके यज्ञोंका फल प्रदान करते हैं। ये परम पवित्र और स्वतन्त्र हैं। सम्पूर्ण लोकोंका संचालनसूत्र इन्हींके हाथमें है। जैसे वाणीके माधुर्यका वर्णन वाणीद्वारा ही सम्भव होता है, उसी प्रकार श्रीविष्णुके स्वरूपका प्रतिपादन स्वयं विष्णु ही कर सकते हैं, दूसरोंके लिये इनकी महिमा अनिर्वचनीय है' ॥

ऋषय ऊचुः

स्वागतं ते सुरश्रेष्ठ पद्मनाभ महाद्युते ।
इदं यज्ञियमातिथ्यं मन्त्रतः प्रतिगृह्यताम् ॥ २५ ॥

तदनन्तर भगवान्‌को देखकर ऋषि बोले—सुरश्रेष्ठ ! आपका स्वागत है, महातेजस्वी पद्मनाभ ! आप वेदमन्त्रोंद्वारा यह यज्ञसम्बन्धी आतिथ्य-सत्कार ग्रहण करें ॥

त्वमस्य यज्ञपूतस्य पात्रं पाद्यस्य पावनः ।
अतिथिस्त्वं हि मन्त्रोक्तः स दृष्टः संततं मतः ॥ २६ ॥

इस यज्ञपूत पाद्यके आप ही उत्तम पात्र हैं, क्योंकि आप ही वेदमन्त्रोंद्वारा पावन अतिथि बताये गये हैं। जिनके विषयमें हम सदा सुनते और जानते आये हैं, उन्हींका आज प्रत्यक्ष दर्शन हुआ (यह हमारे लिये सौभाग्यकी बात है) ॥ २६ ॥

त्वयि योद्धुं गते विष्णौ न प्रावर्तन्त नः क्रियाः ।
अवैष्णवस्य यज्ञस्य न हि कर्म विधीयते ॥ २७ ॥

आप सर्वव्यापी श्रीहरि जब युद्धके लिये चले गये थे, तब हमारे यज्ञकर्म ठीक तरहसे हो नहीं पाते थे। जिसका सम्बन्ध भगवान् विष्णुसे न हो अर्थात् जिसमें वे उपस्थित न हों, उस यज्ञका कार्य ठीकसे सम्पन्न नहीं होता है ॥ २७ ॥

सदक्षिणस्य यज्ञस्य त्वत्प्रसूतिः फलं लभेत् ।
अद्यात्मानमिहास्माभिरिज्यमानं निरीक्षसे ॥ २८ ॥

(आज आपकी उपस्थितिसे हमारा यज्ञ सफल हो गया।) आपका प्रकट होना ही दक्षिणाओंसे सम्पन्न यज्ञका प्रमुख फल है। आज आप यहाँ अपने आपको हमारेद्वारा पूजित देखेंगे ॥ २८ ॥

एवमस्त्विति तान् सर्वान् भगवान् प्रत्यपूजयत् ।
मुमुदे ब्रह्मलोकस्थो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ २९ ॥

तब 'एवमस्तु' कहकर भगवान् विष्णुने उन सबका सम्मान किया। उनके द्वारा सम्मानित हो लोकपितामह ब्रह्मा भी अपने लोकमें स्थित हो परम आनन्दका अनुभव करने लगे ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि लोकवर्णनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें ब्रह्मलोकका वर्णननामक उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४९ ॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नारायणाश्रममें भगवान् विष्णुका शयन और उत्थान तथा पास आये हुए ब्रह्मा आदि देवताओंसे उनके आगमनका प्रयोजन पूछना

वैशम्पायन उवाच

ऋषिभिः पूजितस्तैस्तु विवेश हरिरीश्वरः ।
पौराणं ब्रह्मसदनं दिव्यं नारायणाश्रमम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! उन ऋषियोंसे

पूजित होकर सर्वेश्वर भगवान् विष्णुने पुराणप्रसिद्ध दिव्य ब्रह्मधाम (वैकुण्ठ) में, जो उन श्रीनारायणदेवका आश्रम (विश्रामस्थान) है, प्रवेश किया ॥ १ ॥

स तद् विवेश हृष्टात्मा तानामन्त्र्य सदोगतान् ।
प्रणम्य चादिदेवाय ब्रह्मणे पद्मयोनये ॥ २ ॥
स्वेन नाम्ना परिज्ञातं स तं नारायणाश्रमम् ।
प्रविशन्नेव भगवानायुधानि व्यसर्जयत् ॥ ३ ॥

उन्होंने प्रसन्नचित्तसे उस यज्ञसभामें एकत्र हुए उन सब महर्षियोंसे विदा ले आदिदेव पद्मयोनि ब्रह्माजीको प्रणाम करके अपने ही नामसे प्रसिद्ध हुए उस नारायणाश्रममें प्रवेश किया। उसमें प्रवेश करते ही भगवान्ने सम्पूर्ण आयुधोंको त्याग दिया ॥ २-३ ॥

स तत्राम्बुपतिप्रख्यं ददर्शालयमात्मनः ।
स्वधिष्ठितं देवगणैः शाश्वतैश्च महर्षिभिः ॥ ४ ॥

वहाँ उन्हें अपना शयनागार दिखायी दिया, जो समुद्रके समान शोभा पा रहा था। उसमें सनातन देवगण और शाश्वत महर्षि निवास करते थे ॥ ४ ॥

संवर्तकाम्बुदोपेतं नक्षत्रस्थानसंकुलम् ।
तिमिरौघपरिक्षिप्तमप्रधृष्यं सुरासुरैः ॥ ५ ॥

संवर्तक (प्रलयकारी) मेघोंके अभिमानी देवता वहाँ विद्यमान थे। वह स्थान नक्षत्रोंके आश्रयभूत ज्योतिर्मण्डलसे व्याप्त था। जो वहाँ जानेके अधिकारी नहीं हैं, उनके लिये वह दिव्य धाम अन्धकारसे आवृत है अर्थात् उनकी वहाँपर पहुँच नहीं हो पाती है। देवताओं और असुरोंके लिये भी वहाँ पहुँचना अत्यन्त कठिन है ॥ ५ ॥

न तत्र विषयो वायोर्नेन्दोर्न च विवस्वतः ।
वपुषः पद्मनाभस्य स देशस्तेजसाऽऽवृतः ॥ ६ ॥

वहाँ न तो वायुकी, न चन्द्रमाकी और न सूर्यकी ही पहुँच हो पाती है। वह दिव्य देश भगवान् पद्मनाभके सच्चिदानन्दमय श्रीविग्रहकी तेजोराशिसे ही आवृत एवं प्रकाशित है॥

स तत्र प्रविशन्नेव जटाभारं समुद्वहन् ।
सहस्रशीर्षो भूत्वा तु शयनायोपचक्रमे ॥ ७ ॥

जो पहले सहस्रों मस्तकोंसे विभूषित विराट्रूपधारी होकर शोभा पाते थे, उन्हीं भगवान्ने उस दिव्य धाममें प्रवेश करते ही जगत्के प्राणियोंकी कर्मवासनामयी जटाका भार सिरपर धारण किये वहाँ सोनेकी तैयारी की ॥ ७ ॥

लोकानामन्तकालज्ञा काली नयनशालिनी ।
उपतस्थे महात्मानं निद्रा तं कालरूपिणी ॥ ८ ॥

तदनन्तर लोकोंके अन्तकालको जाननेवाली कृष्णवर्णा कालरूपिणी निद्रा, जो नेत्रोंका आश्रय लेकर शोभा पाती है, उन परमात्मा श्रीहरिकी सेवामें उपस्थित हुई ॥ ८ ॥

स शिश्ये शयने दिव्ये समुद्राम्भोदशीतले ।
हरिरेकार्णवोक्तेन व्रतेन व्रतिनां वरः ॥ ९ ॥

व्रतधारियोंमें श्रेष्ठ श्रीहरिने समुद्र और मेघोंके जलसे शीतल दिव्य शय्यापर शयन किया। प्रलयकालमें सारे जगत्के एकार्णवमग्न हो जानेपर जिस नियमसे भगवान्के शयनका वर्णन पुराणोंमें मिलता है, उसीके अनुसार उस समय भी भगवान्ने शयन किया था* ॥ ९ ॥

तं शयानं महात्मानं भवाय जगतः प्रभुम् ।
उपासाञ्चक्रिरे विष्णुं देवाः सर्षिगणास्तथा ॥ १० ॥

जगत्के अभ्युदयके लिये शयन करनेवाले उन सर्वसमर्थ महात्मा विष्णुकी वहाँ रहनेवाले देवता और ऋषि उपासना करने लगे ॥ १० ॥

तस्य सुप्तस्य शुशुभे नाभिमध्यात् समुत्थितम् ।
आद्यं तस्यासनं पद्मं ब्रह्मणः सूर्यवर्चसम् ।
सहस्रपत्रं वर्णाढ्यं सुकुमारं सुपुष्पितम् ॥ ११ ॥

सोये हुए भगवान्की नाभिके मध्यभागसे एक कमल प्रकट होकर शोभा पाने लगा। उसकी कान्ति सूर्यके समान थी। वही ब्रह्माका आदि आसन है। उसमें सहस्र दल हैं, वह बीजरूपी विभिन्न वर्णोंसे अङ्कित, अत्यन्त कोमल एवं अच्छी तरह खिला हुआ है ॥ ११ ॥

ब्रह्मसूत्रोद्यतकरः स्वपन्नेव महामुनिः ।
आवर्तयति लोकानां सर्वेषां कालपर्ययम् ॥ १२ ॥

ब्रह्माजीकी जो पूर्वजन्मोंकी वासना (कर्म-संस्कार) है, वही सूत्ररूपसे मानो भगवान्का उठा हुआ हाथ है, उसके द्वारा वे सृष्टि आदिके लिये संकेत करते रहते हैं। इस प्रकार वे महामुनि श्रीहरि सोते हुए ही समस्त लोकोंके कालजनित उलट-फेर (सृष्टि-संहार) की आवृत्ति किया करते हैं ॥ १२ ॥

विवृतात् तस्य वदनान्निःश्वासपवनेरिताः ।
प्रजानां पङ्क्तयो ह्युच्चैर्निष्पतन्त्युत्पतन्ति च ॥ १३ ॥

उनके खुले हुए मुखसे जो निःश्वास वायु निर्गत होती है, उससे प्रेरित होकर प्रजाओंकी विभिन्न श्रेणियाँ बड़े वेगसे निकलती और उत्पन्न होती रहती हैं ॥ १३ ॥

ते सृष्टाः प्राणिनो मेध्या विभक्ता ब्रह्मणा स्वयम् ।
चतुर्धा स्वां गतिं जग्मुः कृतान्तोक्तेन कर्मणा ॥ १४ ॥

वे उत्पन्न हुए पवित्र प्राणी साक्षात् ब्रह्माजीके द्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्ररूपसे चार भागोंमें विभक्त

---

* यहाँ आचार्य नीलकण्ठने शयनका अर्थ समाधि किया है, उनके मतमें यहाँ समुद्रसे निर्विकल्प समाधि और मेघसे सविकल्प समाधि परिलक्षित होती हैं और शीतलका अर्थ वे तापरहित करते हैं, जो समाधिका विशेषण है । इसी तरह वे एकार्णवोक्त व्रतका अर्थ निर्विकल्प समाधिके लिये बताया गया 'संयम' मानते हैं।

किये जाते हैं। फिर वे चारों वर्णोंके लोग अपने-अपने लिये बताये गये वेदोक्त कर्मका (निष्कामभावसे) अनुष्ठान करके अपनी परम गति (परमात्मा) को प्राप्त कर लेते हैं ॥१४॥

न तं वेद स्वयं ब्रह्मा नापि ब्रह्मर्षयोऽव्ययाः ।
विष्णोर्निद्रामयं योगं प्रविष्टं तमसावृतम् ॥ १५ ॥

योगनिद्राका आश्रय लेकर शयन करनेवाला जो भगवान् विष्णुका योगमायासे समावृत स्वरूप है, उसे स्वयं ब्रह्माजी तथा (ब्रह्मलोकके) अविनाशी ब्रह्मर्षि भी नहीं जान पाते हैं ॥ १५ ॥

ते तु ब्रह्मर्षयः सर्वे पितामहपुरोगमाः ।
न विदुस्तं क्वचित् सुप्तं क्वचिदासीनमासने ॥ १६ ॥

वे ब्रह्मा आदि सभी ब्रह्मर्षि किसी देश-कालमें सोये और किसी देश-कालमें आसनपर बैठकर जागते हुए भगवान्के स्वरूपको यथार्थरूपसे समझ नहीं पाते हैं ॥ १६ ॥

जागर्ति कोऽत्र कः शेते कश्च शक्तश्च नेङ्गते ।
कोभोगवान् को द्युतिमान् कृष्णात् कृष्णतरश्च कः॥१७॥

उन्हें यह ज्ञात नहीं होता कि यहाँ कौन जागता है ? कौन सोता है ? कौन सर्वशक्तिमान् होकर भी कोई चेष्टा नहीं करता है ? कौन भोगवान् है ? कौन परम कान्तिमान् है तथा कौन कृष्ण[1] (सूक्ष्म) से भी कृष्णतर (अत्यन्त सूक्ष्म) है ? ॥ १७ ॥

विमृशन्ति स्म तं देवा दिव्याभिरुपपत्तिभिः ।
न चैनं शेकुरन्वेष्टुं कर्मतो जन्मतोऽपि वा ॥ १८ ॥

देवता दिव्य युक्तियोंद्वारा इनके विषयमें विचार करते रहते हैं; परंतु वे अबतक इनके जन्म और कर्मके रहस्यका पता नहीं लगा सके हैं ॥ १८ ॥

गाथाभिस्तत्प्रदिष्टाभिर्ये तस्य चरितं विदुः ।
पुराणास्तं पुराणेषु ऋषयः सम्प्रचक्षते ॥१९॥

उन परमात्माने अपने निःश्वासभूत वेदमन्त्रोंके द्वारा जिनका उपदेश किया है, उन वैदिकी गाथाओंद्वारा जो उनके चरित्रको जानते थे, उन पुरातन ऋषियोंने ही पुराणोंमें उन परमेश्वरके स्वरूपका विशद विवेचन किया है ॥ १९ ॥

श्रूयते चास्य चरितं देवेष्वपि पुरातनम् ।
महापुराणात् प्रभृति परं तस्य न विद्यते ॥ २०॥

देवताओंके यहाँ भी महापुराण आदिसे इनके पुरातन चरित्रका श्रवण किया जाता है । उनका कहीं अन्त नहीं है ॥ २० ॥

यच्चास्य देवदेवस्य चरितं स्वप्रभावजम् ।
तेनेमाः श्रुतयो व्याप्ता वैदिक्यो लौकिकाश्च याः ॥ २१ ॥

उन देवाधिदेव परमात्माका उनके प्रभावसे (पराक्रम आदिके द्वारा) प्रकट हुआ जो लीला-चरित्र है, उसीसे ये वैदिकी और लौकिकी श्रुतियाँ भरी हुई हैं ॥ २१ ॥

भवकाले भवत्येष लोकानां लोकभावनः ।
दानवानामभावाय जागर्ति मधुसूदनः ॥ २२ ॥

लोकोंकी सृष्टिके समय ये लोकभावन मधुसूदन सगुणरूपसे प्रकट होते हैं और दानवोंके विनाशके लिये सदा जागरूक रहते हैं ॥ २२ ॥

यत्रैनं वीक्षितुं देवा न शेकुः सुप्तमव्ययम् ।
ततः स्वपिति घर्मान्ते जागर्ति जलदक्षये ॥ २३ ॥

जहाँ सो जानेपर इन अविनाशी प्रभुको देवता भी नहीं देख सके थे, वहीं ये वर्षाकालमें (आषाढ़ शुक्ला एकादशीसे कार्तिक शुक्ला एकादशीतक) सोते और वर्षा व्यतीत होनेपर जागते हैं ॥ २३ ॥

स हि वेदाश्च यज्ञाश्च यज्ञाङ्गानि च सर्वशः ।
या तु यज्ञगतिः प्रोक्ता स एष पुरुषोत्तमः ॥ २४ ॥

भगवान् विष्णु ही वेद, यज्ञ तथा समस्त यज्ञाङ्ग (यज्ञके उपकरण) हैं। यज्ञोंद्वारा प्राप्त होनेवाली जो परम गति बतायी गयी है, वह भी ये भगवान् पुरुषोत्तम ही हैं॥ २४ ॥

तस्मिन् सुप्ते न वर्तन्ते मन्त्रपूताः क्रतुक्रियाः ।
शरत्प्रवृत्तयज्ञोऽयं जागर्ति मधुसूदनः ॥ २५ ॥

भगवान्के शयनकालमें मन्त्रपूत यज्ञकर्मोंका अनुष्ठान नहीं होता है। शरद्ऋतुमें जब ये मधुसूदन जागते हैं, उस समय वाजपेय[2] आदि यज्ञोंका अनुष्ठान आरम्भ हो जाता है ॥ २५ ॥

तदिदं वार्षिकं चक्रं कारयत्यम्बुदेश्वरः ।
वैष्णवं कर्म कुर्वाणः सुप्ते विष्णौ पुरंदरः ॥ २६ ॥

भगवान् विष्णुके शयन करनेपर मेघोंके स्वामी देवराज इन्द्र स्वयं ही प्रजापालनरूप वैष्णवकर्मका सम्पादन करते हैं और वे ही लोगोंसे वर्षा ऋतुमें होनेवाले जलसम्बन्धी कर्म (उपाकर्म एवं श्राद्धतर्पण आदि)का अनुष्ठान करवाते हैं ॥ २६ ॥

या ह्येषा गह्वरा माया निद्रेति जगति स्थिता ।
साकस्माद् द्वेषिणी घोरा कालरात्रिर्महीक्षिताम्॥२७॥

यह जो गहन तमोमयी माया है, वही संसारमें निद्रारूपसे स्थित है। वह आकारण ही सबसे द्वेष रखनेवाली और

---

[1] यहाँ कृष्णका अर्थ कृश अर्थात् सूक्ष्म है ।

[2] श्रुति कहती है—'शरदि वाजपेयेन यजेत ।' अर्थात् 'शरदृतुमें वाजपेय यज्ञके द्वारा भगवान्की आराधना करे ।' (नी० क०)

भयंकर है तथा युद्धक्षेत्रमें उतरे हुए राजाओंके लिये कालरात्रिके समान है ॥ २७ ॥

तस्यास्तनुस्तमोद्वारा निशा दिवसनाशिनी ।
जीवितार्धहरा घोरा सर्वप्राणभृतां भुवि ॥ २८ ॥

उस तामसी मायाका शरीर है रात्रि, जिसका द्वार है अन्धकार। वह दिनका नाश करनेवाली तथा निद्राद्वारा भूतलके समस्त प्राणियोंके आधे जीवनको हर लेनेवाली है । उसका स्वरूप भयंकर है ॥ २८ ॥

नैतया कश्चिदाविष्टो जृम्भमाणो मुहुर्मुहुः ।
शक्तः प्रसहितुं वेगं मज्जन्निव महार्णवे ॥ २९ ॥

इस निशा एवं निद्रारूपिणी मायासे आविष्ट हुआ कोई भी प्राणी बारंबार जँभाई लेने लगता है और महासागरमें डूबते हुए मनुष्यके समान विवश होकर उसके वेगको सहन नहीं कर पाता है॥ २९ ॥

अन्नजा भुवि मर्त्यानां श्रमजा वा कथंचन ।
सैषा भवति लोकस्य निद्रा सर्वस्य लौकिकी ॥ ३० ॥

पृथ्वीपर रहनेवाले मरणधर्मा मनुष्योंको यह निद्रा भोजन अथवा किसी प्रकारके परिश्रमके कारण प्राप्त होती है। इस प्रकार यह लौकिकी निद्रा जगत्के सभी प्राणियोंको आती है ॥ ३० ॥

स्वप्नान्ते क्षीयते ह्येषा प्रायशो भुवि देहिनाम् ।
मृत्युकाले च भूतानां प्राणान् नाशयते भृशम् ॥ ३१ ॥

पृथ्वीपर देहधारियोंको जो निद्रा आती है, वह प्रायः सो लेनेके बाद स्वयं ही नष्ट हो जाती है, परंतु जब प्राणियोंका मृत्युकाल उपस्थित होता है, उस समय यह उनके प्राणोंका प्रबल वेगसे नाश कर डालती है ॥ ३१ ॥

देवेष्वपि दधारैनां नान्यो नारायणादृते ।
सखी सर्वहरस्यैषा माया विष्णुशरीरजा ॥ ३२ ॥

देवताओंमें भी भगवान् नारायणके सिवा दूसरा कोई इसे धारण नहीं कर सका (और न इसपर काबू ही पा सका है)। भगवान् विष्णुके शरीरसे प्रकट हुई यह माया सर्वसंहारकारी कालकी सखी (सहायिका) है ॥ ३२ ॥

सैषा नारायणमुखे दृष्टा कमललोचना ।
लोकानल्पेन कालेन ग्रसते लोकमोहिनी ॥ ३३ ॥

वही यह माया भगवान् नारायणके मुखमण्डलमें उनके नेत्रकमलोंके भीतर स्थित देखी गयी है। यही कमलनयनी नारीके रूपमें भी प्रकट होती है। सम्पूर्ण विश्वको मोहमें डालनेवाली निद्रामयी माया अल्पकालमें ही समस्त लोकोंको ग्रस लेती है ॥ ३३ ॥

एवमेषा हितार्थाय लोकानां कृष्णवर्त्मना ।
ध्रियते सेवनीया हि पत्येव च पतिव्रता ॥ ३४ ॥

जिनका मार्ग सूक्ष्म है, उन परमात्मा श्रीहरिने सम लोकोंके हितके लिये (अर्थात् उन्हें विश्रामसुखका अनु करानेके लिये) इस निद्राको धारण किया है। जैसे प पतिव्रता स्त्रीका सेवन करता है, उसी प्रकार विश्राम-सुख इच्छावाले प्रत्येक व्यक्तिको समय-समयपर इसका सेवन क चाहिये ॥ ३४ ॥

स तया निद्रया च्छन्नस्तस्मिन् नारायणाश्रमे ।
स्वपिति स्म तदा विष्णुर्मोहयञ्जगदव्ययः ॥ ३५।

इस तरह अविनाशी भगवान् विष्णु उस योगनिद्रा आच्छन्न हो सम्पूर्ण जगत्को मोहमें डालते हुए उस सम नारायणाश्रममें शयन करने लगे ॥ ३५ ॥

तस्य वर्षसहस्राणि शयानस्य महात्मनः ।
जग्मुः कृतयुगं चैव त्रेता चैव युगोत्तमम् ॥ ३६।

वहाँ सोते हुए महात्मा नारायणके हजारों वर्ष बी गये । सत्ययुग तथा उत्तम त्रेतायुग भी समाप्त हो गये ॥ ३६ ॥

स तु द्वापरपर्यन्ते ज्ञात्वा लोकान् सुदुःखितान् ।
प्राबुध्यत महातेजाः स्तूयमानो महर्षिभिः ॥ ३७।

द्वापरके अन्तमें समस्त लोकोंको अत्यन्त दुःखसे पीड़ि जान महर्षियोंद्वारा अपनी स्तुति सुनते हुए वे महातेजस्वी भगवान् श्रीहरि जाग उठे ॥ ३७ ॥

ऋषय ऊचुः

जहीहि निद्रां सहजां भुक्तपूर्वामिव स्रजम् ।
इमे ते ब्रह्मणा सार्धं देवा दर्शनकाङ्क्षिणः ॥ ३८॥

ऋषि बोले—भगवन् ! जैसे पहलेके उपभोगमें ला हुई फूलमालाको त्याग दिया जाता है, उसी प्रकार आप अपनी इस सहज निद्राको त्याग दीजिये। ब्रह्माजीके साथ ये समस्त देवता आपके दर्शनकी अभिलाषासे खड़े हैं ॥३८॥

इमे त्वां ब्रह्मविद्वांसो ब्रह्मसंस्तववादिनः ।
वर्धयन्ति हृषीकेश ऋषयः संशितव्रताः ॥ ३९॥

हृषीकेश ! ये उत्तम व्रतका पालन करनेवाले ब्रह्मवेत्ता महर्षि वेदोक्त स्तोत्रोंका पाठ करते हुए आपका अभिनन्दन करते (आपको बधाई देते) हैं ॥ ३९ ॥

एतेषामात्मभूतानां भूतानां भूतभावन ।
शृणु विष्णो शुभा वाचो भूव्योमाग्न्यनिलाम्भसाम्॥४०॥

भूतभावन विष्णो ! ये जो आपके ही स्वरूपभूत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाशरूप महाभूतोंके अधिष्ठाता देवता हैं, इनके शुभ वचन आप सुनें ॥ ४० ॥

इमे त्वां सप्त मुनयः सहिता मुनिमण्डलैः ।
स्तुवन्ति देव दिव्याभिर्गेयाभिर्गीर्भिरञ्जसा ॥ ४१॥

देव ! ये मुनि-मण्डलीसहित सप्तर्षि गाने योग्य दिव्य वाणीद्वारा स्वभावतः आपकी स्तुति करते हैं ॥ ४१ ॥

उत्तिष्ठ शतपत्राक्ष पद्मनाभ महाद्युते ।
कारणं किंचिदुत्पन्नं देवानां कार्यगौरवात् ॥ ४२ ॥

कमलनयन ! उठिये । महातेजस्वी पद्मनाभ ! देवताओं-के गुरुतर कार्यवश आपको जगानेके लिये कुछ कारण उत्पन्न हो गया है ॥ ४२ ॥

वैशम्पायन उवाच

स संक्षिप्य जलं सर्वं तिमिरौघं विदारयन् ।
उदतिष्ठद्धृषीकेशः श्रिया परमया ज्वलन् ॥ ४३ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तब सारे जलको समेटकर तथा अनधिकारियोंके लिये योगमायाने जो तमोमय आवरण लगा दिया था, उसको भी दूर करके भगवान् हृषीकेश अपनी उत्कृष्ट शोभासे प्रकाशित होते हुए उठे ॥ ४३ ॥

स ददर्श सुरान् सर्वान् समेतान् सपितामहान् ।
विवक्षतः प्रक्षुभिताञ्जगदर्थे समागतान् ॥ ४४ ॥

उन्होंने देखा, ब्रह्मासहित समस्त देवता उपस्थित हैं। इनके मनमें क्षोभ उत्पन्न हुआ है और उसीके सम्बन्धमें ये कुछ कहना चाहते हैं। उन्हें यह भी ज्ञात हो गया कि ये लोग जगत्के हितके लिये ही यहाँ पधारे हैं ॥४४॥

तानुवाच हरिर्देवो निद्राविश्रान्तलोचनः ।
तत्त्वदृष्टार्थया वाचा धर्महेत्वर्थयुक्तया ॥ ४५ ॥

निद्राके द्वारा जिनके नेत्रोंको विश्राम मिल चुका था, उन भगवान् श्रीहरिने धर्मसम्मत, युक्तिसंगत तथा तात्त्विक अर्थसे युक्त वाणीद्वारा उस समय उन देवताओंसे इस प्रकार कहा ॥ ४५ ॥

श्रीभगवानुवाच

कुतो वो विग्रहो देवाः कुतो वो भयमागतम् ।
कस्य वा केन वा कार्यं किं वा मयि न वर्तते ॥ ४६॥

श्रीभगवान् बोले—देवताओ ! तुम्हारा किससे युद्ध छिड़ा हुआ है ? कहाँसे तुमपर भय आया है ? अथवा किस देवताको किस वस्तुकी आवश्यकता पड़ गयी है ? बताओ, कौन ऐसी वस्तु है, जो मेरे पास नहीं है ? (अर्थात् मेरे पास सब कुछ है और मैं तुम्हें सब कुछ दूँगा) ॥ ४६ ॥

किं खल्वकुशलं लोके वर्तते दानवोत्थितम् ।
नृणामायासजननं शीघ्रमिच्छामि वेदितुम् ॥ ४७ ॥

दानवोंकी ओरसे कौन-सा ऐसा कार्य किया गया है, जो लोकके लिये अमङ्गलकारी और मनुष्योंके लिये कष्टजनक सिद्ध हुआ है ? यह मैं शीघ्र जानना चाहता हूँ ॥४७॥

एष ब्रह्मविदां मध्ये विहाय शयनोत्तमम् ।
शिवाय भवतामर्थे स्थितः किं करवाणि वः ॥ ४८ ॥

आप सभी ब्रह्मवेत्ताओंके बीचमें इस उत्तम शय्याको त्यागकर यह मैं आपके कल्याण-साधनके लिये तैयार खड़ा हूँ । बताइये, आपकी क्या सेवा करूँ ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि विष्णोर्योगशयनोत्थाने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें भगवान् विष्णुका
योगशय्यासे उत्थानविषयक पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५० ॥

◆

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्माजीका भगवान् विष्णुसे जगत्की वर्तमान अवस्थाका वर्णन करते हुए पृथ्वीका भार उतारनेके लिये मन्त्रणा करनेका अनुरोध

वैशम्पायन उवाच

तच्छ्रुत्वा विष्णुगदितं ब्रह्मा लोकपितामहः ।
उवाच परमं वाक्यं हितं सर्वदिवौकसाम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! भगवान् विष्णुका वह कथन सुनकर लोकपितामह ब्रह्माने समस्त देवताओंके लिये हितकारक उत्तम बात कही—॥ १ ॥

नास्ति किंचिद् भयं विष्णो सुराणामसुरान्तक ।
येषां भवानभयदः कर्णधारो रणे रणे ॥ २ ॥

'असुरोंका संहार करनेवाले विष्णुदेव ! युद्धके अवसरोंपर जिनके आप-जैसे अभयदायक कर्णधार हों, उन देवताओंको कोई भय नहीं ॥ २ ॥

शक्रे जयति देवेशे त्वयि चासुरसूदने ।
धर्मे प्रयतमानानां मानवानां कुतो भयम् ॥ ३ ॥

'जबतक देवराज इन्द्र विजयी हैं और असुरोंका संहार करनेवाले आप रक्षाके लिये उद्यत हैं, तबतक धर्मके लिये प्रयत्नशील रहनेवाले मनुष्योंको भी किससे भय हो सकता है ॥ ३ ॥

सत्ये धर्मे च निरतान् मानवान् विगतज्वरान् ।
नाकाले धर्मिणो मृत्युः शक्नोति प्रसमीक्षितुम्॥ ४ ॥

'जो मनुष्य सत्य और धर्ममें तत्पर रहकर चिन्तारहित हो धर्मके अनुष्ठानमें लगे हुए हैं, उनकी ओर अकालमृत्यु आँख उठाकर देख भी नहीं सकती है ॥ ४॥

मानवानां च पतयः पार्थिवाश्च परस्परम् ।
षड्भागमुपभुञ्जाना न भयं कुर्वते मिथः ॥ ५ ॥

'मनुष्योंके अधिपति जो पृथ्वीपालक नरेश हैं, वे भी प्रजाकी आयके छठे भागका करके रूपमें उपभोग करते हुए आपसमें कभी भेद या कलह नहीं करते हैं ॥ ५ ॥

ते प्रजानां शुभंकराः करदैरविगर्हिताः ।
सुकरैर्विप्रयुक्तार्थाः कोशमापूरयन्त्युत ॥ ६ ॥

'वे सदा ही प्रजाकी भलाई करते हैं, इसलिये कर देनेवाले लोग उनकी निन्दा नहीं करते । राजाओंको जब अर्थकी कमी पड़ती है, तब वे न्यायोचित करोंके द्वारा ही अपना खजाना भरते हैं ॥ ६ ॥

स्फीताञ्जनपदान् सर्वान् पालयन्तः क्षमापराः ।
अतीक्ष्णदण्डांश्चतुरो वर्णाञ्जुगुपुरञ्जसा ॥ ७ ॥

वे क्षमापरायण हो अपने समस्त समृद्धिशाली जनपदोंका पालन करते हैं । कभी किसीको कठोर दण्ड नहीं देते हैं तथा चारों वर्णोंकी यथोचित रीतिसे रक्षा करते हैं ॥ ७ ॥

नोद्वेजनीया भूतानां सचिवैः साधुपूजिताः ।
चतुरङ्गबलैर्गुप्ताः षड्गुणानुपयुञ्जते ॥ ८ ॥

'(वे स्वयं किसीको उद्विग्न नहीं करते हैं, इसलिये) कोई भी प्राणी उन्हें उद्वेगमें नहीं डालते हैं । मन्त्रियोंद्वारा वे भलीभाँति सम्मानित होते हैं तथा चतुरङ्गिणी सेनाओंसे सुरक्षित होकर (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय—इन) छः गुणोंका यथावसर उपयोग करते रहते हैं ॥ ८ ॥

धनुर्वेदपराः सर्वे सर्वे वेदेषु निष्ठिताः ।
यजन्ते च यथाकालं यज्ञैर्विपुलदक्षिणैः ॥ ९ ॥

'सभी नरेश धनुर्वेदके अभ्यासमें तत्पर हैं, सभी वेदोंके परिनिष्ठित विद्वान् हैं और यथासमय प्रचुर दक्षिणायुक्त यज्ञोंद्वारा भगवान्‌की आराधना करते रहते हैं ॥ ९ ॥

वेदानधीत्य दीक्षाभिर्महर्षीन् ब्रह्मचर्यया ।
श्राद्धैश्च मेध्यैः शतशस्तर्पयन्ति पितामहान् ॥ १० ॥

'वे दीक्षा ग्रहण एवं ब्रह्मचर्यके पालनपूर्वक वेदोंका अध्ययन करके महर्षियोंको तथा पवित्र श्राद्ध-कर्मोंद्वारा सैकड़ों बार पितरोंको तृप्त करते रहते हैं ॥ १० ॥

नैषामविदितं किंचित् त्रिविधं भुवि दृश्यते ।
वैदिकं लौकिकं चैव धर्मशास्त्रोक्तमेव च ॥ ११ ॥

'भूतलपर जो वैदिक, लौकिक तथा धर्मशास्त्रकथित—तीन प्रकारके कर्म दृष्टिगोचर होते हैं, उनमेंसे कोई कर्म इन राजाओंको अज्ञात नहीं है ॥ ११ ॥

ते परावरदृष्टार्था महर्षिसमतेजसः ।
भूयः कृतयुगं कर्तुमुत्सहन्ते नराधिपाः ॥ १

'उन्हें परावर-तत्त्वका साक्षात्कार हो चुका है । वे नरेश महर्षियोंके समान तेजस्वी हैं और पुनः इस पृथ्वी सत्ययुगको लानेका उत्साह रखते हैं ॥ १२ ॥

तेषामेव प्रभावेण शिवं वर्षति वासवः ।
यथार्थं च ववुर्वाता विरजस्का दिशो दश ॥ १

'उन्हींके प्रभावसे देवराज इन्द्र जगत्‌में कल्याण जलकी वर्षा करते हैं, वायु यथोचित गतिसे प्रवाहित हो है और दसों दिशाएँ स्वच्छ रहती हैं ॥ १३ ॥

निरुत्पाता च वसुधा सुप्रचाराश्च खे ग्रहाः ।
चन्द्रमाश्च सनक्षत्रः सौम्यं चरति योगतः ॥ १४

'पृथ्वीपर कोई उत्पात नहीं होता, आकाशमें सभी समुचित गतिसे विचरण करते हैं तथा नक्षत्रोंसहित चन्द्र भी उनके साथ संयुक्त होकर सौम्यगतिसे विचरण रहे हैं ॥ १४ ॥

अनुलोमकरः सूर्यस्त्वयने द्वे चचार ह ।
हव्यैश्च विविधैस्तृप्तः शुभगन्धो हुताशनः ॥ १५

'जगत्‌के लिये अनुकूल किरणोंसे युक्त हुए भग सूर्य दोनों अयनोंमें विचरते हैं तथा उत्तम गन्धसे सुवा अग्निदेव नाना प्रकारके हविष्योंकी आहुति पाकर होते हैं ॥ १५ ॥

एवं सम्यक् प्रवृत्तेषु विवृद्धेषु मखादिषु ।
तर्पयत्सु महीं कृत्स्नां नृणां कालभयं कुतः ॥ १६

'जब इस प्रकार राजालोग भलीभाँति सत्कर्मोंमें प्र हैं, यज्ञ आदि कर्म दिनोंदिन बढ़ रहे हैं और वे नरेश सम भूमण्डलको निरन्तर तृप्त एवं संतुष्ट कर रहे हैं, तब मनु को कालका भय कैसे हो सकता है ॥ १६ ॥

तेषां ज्वलितकीर्तीनामन्योन्यवशवर्तिनाम् ।
राज्ञां बलैर्बलवतां पीड्यते वसुधातलम् ॥ १७

'परंतु जिनकी कीर्ति सब ओर जगमग हो रही है त जो एक दूसरेके वशवर्ती होकर मेल-मिलापसे रहते हैं, उ बलवान् राजाओंके पास जो असंख्य सेनाएँ हैं, उनके भा पृथ्वीको बड़ी पीड़ा हो रही है ॥ १७ ॥

सेयं भारपरिश्रान्ता पीड्यमाना नराधिपैः ।
पृथिवी समनुप्राप्ता नौरिवासन्नविप्लवा ॥ १८

'इस प्रकार भारसे थकी हुई यह पृथ्वी उन नरेशों पीड़ित होकर आपकी शरणमें आयी है । इसकी दया

नावकी-सी हो रही है, जिसके डूबनेका समय अत्यन्त निकट हो ॥ १८ ॥

युगान्तसदृशै रूपैः शैलोच्चलितबन्धना ।
जलोत्पीडाकुला स्वेदं धारयन्ती मुहुर्मुहुः ॥ १९ ॥

'उन राजाओंके रूप प्रलयकालकी अग्निके समान तेजस्वी हैं। उनसे पीड़ित होनेके कारण इस पृथ्वीके पर्वतरूपी बन्धन ढीले पड़ने लगे हैं अर्थात् इस नौकारूपिणी पृथ्वीमें जो कीलें ठुकी हुई थीं, वे अब उखड़ने लगी हैं; अतः यह रसातलकी जलराशिमें डूबनेकी आशङ्कासे व्याकुल हो उठी है और इसके शरीरमें बारंबार पसीना आ रहा है ॥ १९ ॥

क्षत्रियाणां वपुर्भिश्च तेजसा च बलेन च ।
नृणां च राष्ट्रैर्विस्तीर्णैः श्राम्यतीव वसुन्धरा ॥ २० ॥

'क्षत्रियोंके शरीर, तेज और बलसे तथा मनुष्योंके दूर-तक फैले हुए राज्योंसे यह पृथ्वी थकती-सी जा रही है ॥ २० ॥

पुरे पुरे नरपतिः कोटिसंख्यैर्बलैर्वृतः ।
राष्ट्रे राष्ट्रे च बहवो ग्रामाः शतसहस्रशः ॥ २१ ॥

'नगर-नगरमें वहाँका नरेश एक-एक करोड़ सैनिकोंसे सम्पन्न है तथा प्रत्येक राज्यमें कई लाख ग्राम हैं ॥ २१ ॥

भूमिपानां सहस्रैश्च तेषां च बलिनां बलैः ।
ग्रामायुताढ्यै राष्ट्रैश्च भूमिर्निर्विवराकृता ॥ २२ ॥

'सहस्रों भूपालों, उन बलवान् भूपालोंकी सेनाओं तथा दस-दस हजार गाँवोंसे युक्त उनके राष्ट्रोंसे यह भूमि इतनी भर गयी है कि कहीं थोड़ी-सी भी जगह खाली नहीं है॥ २२ ॥

सेयं निरामयं कृत्वा निश्चेष्टा कालमग्रतः ।
प्राप्ता ममालयं विष्णो भवांश्चास्याः परा गतिः ॥ २३ ॥

'विष्णुदेव ! यह पृथ्वी निश्चेष्ट होकर निरामय कालको आगे करके मेरे निवासस्थानमें आयी थी । अब आप इसकी रम गति हैं ॥ २३ ॥

कर्मभूमिर्मनुष्याणां भूमिरेषा व्यथां गता ।
यथा न सीदेत् तत् कार्यं जगत्येषा हि शाश्वती ॥ २४ ॥

'जगत्की आधारभूता यह सदा रहनेवाली भूमि, जो मनुष्योंकी कर्मभूमि है, बड़ा कष्ट पा रही है । यह अधिक भारके कारण दबकर बिखर न जाय, ऐसा कोई उपाय करना चाहिये ॥ २४ ॥

अस्या हि पीडने दोषो महान् स्यान्मधुसूदन ।
क्रियालोपश्च लोकानां पीडितं च जगद् भवेत्॥ २५ ॥

'मधुसूदन ! इसके पीड़ित होनेपर महान् दोष प्राप्त हो सकता है । सब लोगोंकी सारी क्रियाएँ लुप्त हो जायँगी और सारा जगत् पीड़ित होने लगेगा ॥ २५ ॥

श्राम्यते व्यक्तमेवेयं पार्थिवौघप्रपीडिता ।
सहजां या क्षमां त्यक्त्वा चलत्वमचला गता ॥ २६ ॥

'निश्चय ही यह राजाओंके भारी सैन्यसमुदायसे पीड़ित होकर थकती चली जा रही है । यह बात इसीसे स्पष्ट है कि यह अचला भूमि अपनी स्वाभाविक क्षमाको त्यागकर विचलित हो उठी है ॥ २६ ॥

तदस्याः श्रुतवन्तः स्म तच्चापि भवता श्रुतम् ।
भारावतरणार्थं हि मन्त्रयाम सह त्वया ॥ २७ ॥

'हमने इसीसे इसकी सारी बातें सुनी हैं और आपने भी उन्हें सुन लिया, अतः हम इसका भार दूर करनेके लिये आपके साथ मन्त्रणा (विचार) करना चाहते हैं॥ २७॥

सत्पथे हि स्थिताः सर्वे राजानो राष्ट्रवर्धनाः ।
नराणां च त्रयो वर्णा ब्राह्मणाननुयायिनः ॥ २८ ॥

'भूतलके समस्त राजा सन्मार्गमें स्थित हो अपने राष्ट्रोंकी वृद्धि कर रहे हैं । मनुष्योंके क्षत्रिय आदि तीनों वर्ण ब्राह्मणोंके अनुगामी हैं ॥ २८ ॥

सर्वं सत्यपरं वाक्यं वर्णा धर्मपरास्तथा ।
सर्वे वेदपरा विप्राः सर्वे विप्रपरा नराः ॥ २९ ॥

'मनुष्योंकी सारी बातें सत्यके ही आश्रित हैं । सभी वर्ण अपने-अपने धर्ममें तत्पर हैं। समस्त ब्राह्मण वेदोंके स्वाध्यायमें लगे हुए हैं तथा सभी मनुष्य ब्राह्मणोंकी सेवामें संलग्न रहते हैं ॥ २९ ॥

एवं जगति वर्तन्ते मनुष्या धर्मकारणात् ।
यथा धर्मवधो न स्यात् तथा मन्त्रः प्रवर्त्यताम्॥ ३० ॥

'इस प्रकार संसारके सभी मानव धर्मपूर्वक बर्ताव करते हैं । अतः ऐसी कोई मन्त्रणा की जाय, जिससे पृथ्वीका भार तो कम हो जाय, परंतु धर्मकी हानि न पहुँचे ॥ ३० ॥

सतां गतिरियं नान्या धर्मश्चास्याः सुसाधनम् ।
राज्ञां चैव वधः कार्यो धरण्या भारनिर्णये ॥ ३१ ॥

'यही सत्पुरुषोंकी गति है, दूसरी नहीं और धर्म ही इसका उत्तम साधन है । इस पृथ्वीका भार दूर करनेके लिये राजाओंका वध आवश्यक कार्य है ॥ ३१ ॥

तदागच्छ महाभाग सह वै मन्त्रकारणात् ।
व्रजामो मेरुशिखरं पुरस्कृत्य वसुंधराम् ॥ ३२ ॥

'अतः महाभाग ! आइये, हम सब लोग इस विषयपर एक साथ विचार करनेके लिये पृथ्वीको आगे करके मेरु पर्वतके शिखरपर चलें' ॥ ३२ ॥

एतावदुक्त्वा राजेन्द्र ब्रह्मा लोकपितामहः ।

पृथिव्या सह विश्वात्मा विरराम महाद्युतिः ॥ ३३ ॥

महाराज जनमेजय ! सम्पूर्ण विश्वके आत्मा महातेजस्वी लोकपितामह ब्रह्मा, जो पृथ्वीके साथ आये थे, भगवान् इतनी बात कहकर चुप हो गये ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि भारावतरणे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें (पृथ्वी-) भारावतरणविषयक इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५१ ॥

* * *

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भगवान् विष्णु तथा सब देवताओंका मेरुपर्वतकी दिव्य सभामें उपस्थित होना और वहाँ पृथ्वीका भगवान्से भार उतारनेके लिये प्रार्थना करना

वैशम्पायन उवाच

बाढमित्येव सह तैर्दुर्दिनाम्भोदनिःस्वनः ।
प्रतस्थे दुर्दिनाकारः सदुर्दिन इवाचलः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तब 'बहुत अच्छा' कहकर भगवान् विष्णु उन सबके साथ वहाँसे चल दिये । उनकी वाणी वर्षाकालके मेघकी भाँति गम्भीर थी, उनका श्रीविग्रह मेघके समान श्याम था तथा वे मेघयुक्त पर्वतके समान जान पड़ते थे ॥ १ ॥

समुक्तामणिविद्योतं सचन्द्राम्भोदवर्चसम् ।
सजटामण्डलं कृत्स्नं स बिभ्रच्छ्रीधरो हरिः॥ २ ॥

उनका जटामण्डलमण्डित उदरभाग मुक्तामणियोंकी मालासे उद्दीप्त होकर चन्द्रमाकी प्रभासे युक्त मेघके समान कान्ति धारण करता था । उस उदरको धारण करनेवाले भगवान् श्रीहरि अपूर्व शोभासे सम्पन्न दिखायी देते थे ॥२॥

स चास्योरसि विस्तीर्णे रोमाञ्चोद्गतराजिमान् ।
श्रीवत्सो राजते श्रीमांस्तनद्वयमुखाञ्चितः ॥ ३ ॥

उनके विस्तृत वक्षःस्थलमें उठी हुई रोमावलियोंसे युक्त शोभाशाली श्रीवत्स दोनों स्तनोंके मुखतक फैलकर उद्भासित हो रहा था ॥ ३ ॥

पीते वसानो वसने लोकानां गुरुरव्ययः ।
हरिः सोऽभवदालक्ष्यः स संध्याभ्र इवाचलः॥ ४ ॥

दो पीत वस्त्र धारण किये सम्पूर्ण जगत्के गुरु अविनाशी भगवान् विष्णु संध्याकालिक मेघोंसे युक्त पर्वतके समान मनोहर दिखायी देते थे ॥ ४ ॥

तं व्रजन्तं सुपर्णेन पद्मयोनिगतानुगम् ।
अनुजग्मुः सुराः सर्वे तद्गतासक्तचक्षुषः ॥ ५ ॥

ब्रह्माजीके पीछे-पीछे गरुड़पर बैठकर यात्रा करते हुए उन भगवान् नारायणका सभी देवता अनुसरण कर रहे थे । उन सबके नेत्र उन्हींकी ओर लगे हुए थे ॥ ५ ॥

नातिदीर्घेण कालेन सम्प्राप्ता रत्नपर्वतम् ।
ददृशुर्देवतास्तत्र तां सभां कामरूपिणीम् ॥ ६

थोड़े ही समयमें सब देवता रत्नमय मेरु पर्वतपर पहुँचे । वहाँ उन्होंने ब्रह्माजीकी उस सभाको देखा, इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली थी ॥ ६ ॥

मेरोः शिखरविन्यस्तां संयुक्तां सूर्यवर्चसा ।
काञ्चनस्तम्भरचितां वज्रसंधानतोरणाम् ॥ ७

मेरु पर्वतके शिखरपर स्थापित हुई वह दिव्य सभा सू समान तेजसे सम्पन्न थी । उसमें सोनेके खंभे लगे थे तथा उ फाटकमें रत्न जड़े हुए थे ॥ ७ ॥

मनोनिर्माणचित्राढ्यां विमानशतमालिनीम् ।
रत्नजालान्तरवतीं कामगां रत्नभूषिताम् ॥ ८

मानसिक संकल्पके अनुसार स्वतः निर्मित हुए विचि चित्र उसकी शोभा बढ़ाते थे । सैकड़ों विमानोंकी पंक्ति वहाँ विराजमान थीं । उसमें रत्नोंके बने झरोखे लगे थे वह इच्छानुसार विचरण करनेवाली सभा नाना प्रकारके दिव्य रत्नोंसे सजी हुई थी ॥ ८ ॥

कल्पतरत्नसमाकीर्णां सर्वर्तुकुसुमोत्कटाम् ।
देवमायाधरां दिव्यां विहितां विश्वकर्मणा ॥ ९

उसमें बहुमूल्य रत्न जड़े हुए थे । सभी ऋतुओंके फू वह व्याप्त थी । उस दिव्य सभाका निर्माण साक्षात् विश्वक ने किया था । वह देवताओंकी माया धारण करनेवा थी ॥ ९ ॥

तां हृष्टमनसः सर्वे यथास्थानं यथाविधि ।
यथानिर्देशं त्रिदशा विविशुस्ते सभां शुभाम् ॥ १०

समस्त देवता ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार प्रसन्नतापूर्वक उस कल्याण-मयी सभामें प्रविष्ट हुए और यथायोग्य स्थान विधिपूर्वक बैठे ॥ १० ॥

ते निषेदुर्यथोक्तेषु विमानेष्वासनेषु च ।
भद्रासनेषु पीठेषु कुथास्तास्तरणेषु च ॥ ११

वे वहाँ योग्यतानुसार बताये हुए विमानों, आसनों, भद्रासनों, पीठों, कालीनों तथा दूसरे-दूसरे बिछौनोंपर विराजमान हुए ॥ ११ ॥

ततः प्रभञ्जनो वायुर्ब्रह्मणा साधु चोदितः ।
मा शब्दमिति सर्वत्र प्रचक्रामाथ तां सभाम् ॥ १२ ॥

तब ब्रह्माजीके भलीभाँति आज्ञा देनेपर अपने वेगसे बड़े-बड़े वृक्षोंको तोड़ देनेवाले वायुदेव उठे और 'कोई एक शब्द भी मुँहसे न निकाले । सब लोग मौन रहें ।' ऐसा कहते हुए सारी सभामें सब ओर घूम आये ॥ १२ ॥

निःशब्दस्तिमिते तस्मिन् समाजे त्रिदिवौकसाम् ।
बभाषे धरणी वाक्यं खेदात् करुणभाषिणी ॥ १३ ॥

जब देवताओंका वह समुदाय भलीभाँति नीरव तथा निस्तब्ध हो गया, तब वहाँ करुणाजनक वचन बोलनेवाली पृथ्वीने दुःखपूर्वक यह बात कही ॥ १३ ॥

धरण्युवाच

त्वया धार्या त्वहं देव त्वया वै धार्यते जगत् ।
त्वं धारयसि भूतानि भुवनानि बिभर्षि च ॥ १४ ॥

पृथ्वी बोली—देव ! (मैं रसातलमें धसी जा रही हूँ अतः) आप मुझे धारण करें; क्योंकि आपके आधारपर ही यह सम्पूर्ण जगत् टिका हुआ है । आप ही समस्त भूतोंको धारण और सभी भुवनोंका भरण-पोषण करते हैं ॥ १४ ॥

यत् त्वया धार्यते किञ्चित् तेजसा च बलेन च ।
ततस्तव प्रसादेन मया यत्नाच्च धार्यते ॥ १५ ॥

आप अपने ही तेज और बलसे जो कुछ भी धारण करते हैं, उसीको आपके प्रसादसे मैं भी यत्नपूर्वक धारण करती हूँ ॥ १५ ॥

त्वया धृतं धारयामि नाधृतं धारयाम्यहम् ।
न हि तद् विद्यते भूतं यत् त्वया नानुधार्यते ॥ १६ ॥

आपके धारण किये हुएको ही मैं धारण करती हूँ । जिसे आपने धारण न कर रखा हो, ऐसी किसी वस्तुको मैं धारण नहीं करती । ऐसा कोई भूत नहीं है, जिसे आप निरन्तर धारण न करते हों ॥ १६ ॥

त्वमेव कुरुषे देव नारायण युगे युगे ।
मम भारावतरणं जगतो हितकाम्यया ॥ १७ ॥

देव ! नारायण ! आप ही प्रत्येक युगमें जगत्के हितकी कामनासे मेरा भार उतारते हैं ॥ १७ ॥

तवैव तेजसाऽऽक्रान्तां रसातलतलं गताम् ।
त्रायस्व मां सुरश्रेष्ठ त्वामेव शरणं गताम् ॥ १८ ॥

सुरश्रेष्ठ ! आपहीके तेजसे आक्रान्त होकर मैं रसातलको जा पहुँची हूँ और अपने उद्धारके लिये आपकी ही शरणमें आयी हूँ । आप मेरी रक्षा करें ॥ १८ ॥

दानवैः पीड्यमानाहं राक्षसैश्च दुरात्मभिः ।
त्वामेव शरणं नित्यमुपयास्ये सनातनम् ॥ १९ ॥

दानवों तथा दुरात्मा राक्षसोंसे पीड़ित होकर मैं सदा आप सनातन पुरुषकी ही शरणमें आती हूँ और आती रहूँगी ॥ १९ ॥

तावन्मेऽस्ति भयं भूयो यावन्न त्वां ककुद्मिनम् ।
शरणं यामि मनसा शतशो ह्युपलक्षये ॥ २० ॥

मुझे तभीतक अधिक भय रहता है, जबतक कि मैं अपना भार धारण करनेवाले आप परमेश्वरकी मनसे शरण नहीं लेती हूँ । इस बातको मैं सैकड़ों बार देख चुकी हूँ ॥ २० ॥

अहमादौ पुराणस्य संक्षिप्ता पद्मयोनिना ।
मां च बद्ध्वा कृतौ पूर्वं मृन्मयौ द्वौ महासुरौ ॥ २१ ॥

पुरातन युगके प्रारम्भकालमें कमलयोनि ब्रह्माजीने मुझे जलके ऊपर स्थापित किया था और मेरी मृत्तिकाको मुट्ठीमें बाँधकर उसके द्वारा पहले दो बड़े-बड़े असुरोंकी मूर्तियाँ बनायीं ॥ २१ ॥

कर्णस्रोतोद्भवौ तौ हि विष्णोरस्य महात्मनः ।
महार्णवे प्रस्वपतः काष्ठकुड्यसमौ स्थितौ ॥ २२ ॥

वे दोनों पहले-पहल महासागरमें सोते हुए इन महात्मा भगवान् विष्णुके कानोंकी मैलसे उत्पन्न हुए थे और काठ एवं दीवारके समान अचेतन अवस्थामें स्थित थे (इन्हींकी आकृतियोंको भगवान्ने मिट्टीसे सँवारा था) ॥ २२ ॥

तौ विवेश स्वयं वायुर्ब्रह्मणा साधु चोदितः ।
दिवं प्रच्छादयन्तौ तु ववृधाते महासुरौ ॥ २३ ॥

फिर ब्रह्माजीकी उत्तम प्रेरणासे स्वयं वायुदेवने उनके भीतर प्रवेश किया । इसके बाद वे दोनों महान् असुर आकाशको आच्छादित करते हुए बढ़ने लगे ॥ २३ ॥

वायुप्राणौ तु तौ गृह्य ब्रह्मा पर्यमृशच्छनैः ।
एकं मृदुतरं मेने कठिनं वेद चापरम् ॥ २४ ॥

वायुरूपी प्राणसे युक्त हुए उन दोनों असुरोंको गोदमें लेकर ब्रह्माजीने उनके अङ्गोंपर धीरे-धीरे हाथ फेरा । उनमेंसे एकका शरीर तो उन्हें अत्यन्त कोमल प्रतीत हुआ और दूसरेका कठोर ॥ २४ ॥

नामनी तु तयोश्चक्रे स विभुः सलिलोद्भवः ।
मृदुस्त्वयं मधुर्नाम कठिनः कैटभोऽभवत् ॥ २५ ॥

तब जलजजन्मा भगवान् ब्रह्माने उन दोनोंका नामकरण-संस्कार किया और कहा—यह जो मृदु (कोमल) है, इसका नाम 'मधु' होगा और जो कठोर है, वह 'कैटभ' कहलायेगा ॥ २५ ॥

तौ दैत्यौ कृतनामानौ चेरतुर्बलदर्पितौ ।
सर्वमेकार्णवं लोकं योद्धुकामौ सुदुर्जयौ ॥ २६ ॥

नाम निश्चित हो जानेपर वे दोनों अत्यन्त दुर्जय दैत्य बलके घमंडसे मतवाले होकर युद्धकी इच्छासे समस्त एकार्णव जगत्‌में विचरने लगे ॥ २६ ॥

तावागतौ समालोक्य ब्रह्मा लोकपितामहः ।
एकार्णवाम्बुनिचये तत्रैवान्तरधीयत ॥ २७ ॥

उन दोनोंको युद्धके लिये आया देख लोकपितामह ब्रह्मा वहीं एकार्णवकी जलराशिमें अदृश्य हो गये ॥ २७ ॥

स पद्मे पद्मनाभस्य नाभिमध्यात् समुत्थिते ।
रोचयामास वसतिं गुह्यां ब्रह्मा चतुर्मुखः ॥ २८ ॥

उन चतुर्मुख ब्रह्माने भगवान् पद्मनाभकी नाभिके मध्य-भागसे प्रकट हुए कमलपर ही गुप्तरूपसे निवास करना पसंद किया ॥ २८ ॥

तावुभौ जलगर्भस्थौ नारायणपितामहौ ।
बहून् वर्षगणानप्सु शयानौ न चकम्पतुः ॥ २९ ॥

वे दोनों भगवान् नारायण और ब्रह्मा जलके भीतर स्थित हो बहुत वर्षोंतक सोते रहे । कभी हिलेतक नहीं ॥ २९ ॥

अथ दीर्घस्य कालस्य तावुभौ मधुकैटभौ ।
आजग्मतुस्तमुद्देशं यत्र ब्रह्मा व्यवस्थितः ॥ ३० ॥

तदनन्तर दीर्घकाल व्यतीत होनेके पश्चात् वे दोनों भाई मधु और कैटभ उस स्थानपर आये, जहाँ ब्रह्माजी विराजमान थे ॥ ३० ॥

दृष्ट्वा तावसुरौ घोरौ महाकायौ दुरासदौ ।
ब्रह्मणा ताडितो विष्णुः पद्मनालेन वै तदा ।
उत्पपाताथ शयनात् पद्मनाभो महाद्युतिः ॥ ३१ ॥

उन दुर्जय, विशालकाय एवं भयंकर असुरोंको देखकर ब्रह्माजीने कमलकी नालसे भगवान् विष्णुको ठोंका (उन्हें जग जानेके लिये संकेत किया) । तब महातेजस्वी भगवान् पद्मनाभ शय्यासे उछलकर खड़े हो गये ॥ ३१ ॥

तद् युद्धमभवद् घोरं तयोस्तस्य च वै तदा ।
एकार्णवे तदा लोके त्रैलोक्ये जलतां गते ॥ ३२ ॥

उस एकार्णव जगत्‌में, जब कि तीनों लोक जलमें मिल गये थे, उन दोनों असुरों तथा भगवान् विष्णुमें घोर युद्ध हुआ ॥ ३२ ॥

तदाभूत् तुमुलं युद्धं वर्षसंख्या सहस्रशः ।
न च तावसुरौ युद्धे तदा श्रममवापतुः ॥ ३३ ॥

उस समय सहस्रों वर्षोंतक वह तुमुल युद्ध चलता रहा, किंतु वे दोनों असुर युद्धमें थके नहीं ॥ ३३ ॥

अथातो दीर्घकालस्य तौ दैत्यौ युद्धदुर्मदौ ।
ऊचतुः प्रीतमनसौ देवं नारायणं हरिम् ॥ ३४ ॥

दीर्घकालतक युद्ध करके वे दोनों रणदुर्मद दैत्य मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए और भगवान् नारायण हरिसे इ प्रकार बोले—॥ ३४ ॥

प्रीतौ स्वस्तव युद्धेन श्लाघ्यस्त्वं मृत्युरावयोः ।
आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता ॥ ३५

‘देव ! तुम्हारे युद्धसे हम दोनों भाई बहुत प्रसन्न तुम हमारे लिये स्पृहणीय मृत्यु हो; किंतु हम दोनोंको मारो, जहाँकी पृथ्वी जलमें डूबी हुई न हो ॥ ३५ ॥

हतौ च तव पुत्रत्वं प्राप्नुयावः सुरोत्तम ।
यो ह्यावां युधि निर्जेता तस्यावां विहितौ सुतौ॥ ३६

‘सुरश्रेष्ठ ! मारे जानेपर हम दोनों आपके पुत्रभा प्राप्त होंगे; क्योंकि ब्रह्माजीने विधान बना दिया है कि जो युद्धमें जीत ले, हम उसीके पुत्र हों’ ॥ ३६ ॥

स तु गृह्य मृधे दोर्भ्यां दैत्यौ तावभ्यपीडयत् ।
जग्मतुर्निधनं चापि तावुभौ मधुकैटभौ ॥ ३७

उनकी बात सुनकर भगवान् विष्णुने उस युद्धस्थ उन दैत्योंको दोनों हाथोंसे पकड़कर दबाया । इससे मधु कैटभ दोनोंकी मृत्यु हो गयी ॥ ३७ ॥

तौ हतौ चाप्लुतौ तोये वपुर्भ्यामेकतां गतौ ।
मेदो मुमुचतुर्दैत्यौ मथ्यमानौ जलोर्मिभिः ॥ ३८
मेदसा तज्जलं व्याप्तं ताभ्यामन्तर्दधे ततः ।
नारायणश्च भगवानसृजत् स पुनः प्रजाः ॥ ३९

मरनेपर उन दोनोंकी लाशें जलमें डूबकर एक हो ग फिर जलकी लहरोंसे मथित होकर उन दोनों दैत्योंने जो छोड़ा, उससे आच्छादित होकर वहाँका जल अदृश्य हो उसीपर भगवान् नारायणने नाना प्रकारके जीवोंकी की ॥ ३८-३९ ॥

दैत्ययोर्मेदसाच्छन्ना मेदिनीति ततः स्मृता ।
प्रभावात् पद्मनाभस्य शाश्वती जगती कृता ॥ ४०

उन दैत्योंके मेदसे सारी पृथ्वी ढक गयी, इसलि ‘मेदिनी’ नामसे विख्यात हुई । भगवान् पद्मनाभके प्रभा यह जगत्‌के लिये शाश्वत आधार बन गयी ॥ ४० ॥

वराहेण पुरा भूत्वा मार्कण्डेयस्य पश्यतः ।
विषाणेनाहमेकेन तोयमध्यात् समुद्धृता ॥ ४१

पूर्वकालमें वाराहरूप धारण करके इन्हीं भगव नारायणने मार्कण्डेयजीके देखते-देखते मुझे एक दाढ़पर उठा पानीके भीतरसे बाहर निकाला था ॥ ४१ ॥

हृताहं क्रमता भूयस्तदा युष्माकमग्रतः ।
बलेः सकाशाद् दैत्यस्य विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ ४२

फिर उस दिन आपलोगोंके सामने ही प्रभाव भगवान् विष्णुने अपने पग बढ़ाकर त्रिलोकीको नापते हु मुझे दैत्यराज बलिके पाससे छीन लिया ॥ ४२ ॥

साम्प्रतं खिद्यमानाहमेनमेव गदाधरम्।
अनाथा जगतो नाथं शरण्यं शरणं गता ॥ ४३ ॥

इस समय भी अत्यन्त कष्टमें पड़कर अनाथ-सी हो रही हूँ और इन्हीं शरणागतवत्सल जगन्नाथ गदाधरकी शरणमें आयी हूँ ॥ ४३ ॥

अग्निः सुवर्णस्य गुरुर्गवां सूर्यो गुरुः स्मृतः।
नक्षत्राणां गुरुः सोमो मम नारायणो गुरुः ॥ ४४ ॥

अग्नि सुवर्णका गुरु है। सूर्य समस्त किरणोंके गुरु माने गये हैं। नक्षत्रोंके गुरु चन्द्रमा हैं, परंतु मेरे गुरु ये भगवान् नारायण ही हैं ॥ ४४ ॥

यदहं धारयाम्येका जगत् स्थावरजङ्गमम्।
मया धृतं धारयते सर्वमेतद् गदाधरः ॥ ४५ ॥

अकेली मैं जिस चराचर जगत्‌को धारण करती हूँ, मेरे द्वारा धारण किये गये इस समस्त जगत्‌को (तथा मुझे भी) भगवान् गदाधर ही धारण करते हैं ॥ ४५ ॥

जामदग्न्येन रामेण भारावतरणेप्सया।
रोषात् त्रिःसप्तकृत्वोऽहं क्षत्रियैर्विप्रयोजिता ॥ ४६ ॥

इन्होंने ही जमदग्निनन्दन परशुरामके रूपमें प्रकट होकर मेरा भार उतारनेकी इच्छासे रोषपूर्वक मुझे इक्कीस बार क्षत्रियोंसे रहित किया था ॥ ४६ ॥

सास्मि वेद्यां समारोप्य तर्पिता नृपशोणितैः।
भार्गवेण पितुः श्राद्धे कश्यपाय निवेदिता ॥ ४७ ॥

मैं वही हूँ, जिसे रणयज्ञकी वेदीमें प्रतिष्ठित करके भृगुनन्दन परशुरामने राजाओंके रक्तसे तृप्त किया था और पिताके श्राद्धमें महर्षि कश्यपको मेरा दान कर दिया था ॥४७॥

मांसमेदोऽस्थिदुर्गन्धा दिग्धा क्षत्रियशोणितैः।
रजस्वलेव युवतिः कश्यपं समुपस्थिता ॥ ४८ ॥

मैं क्षत्रियोंके रक्तसे भीगी हुई थी। मेरे शरीरसे (मरे हुए राजाओंके) मांस, मेद और अस्थियोंकी दुर्गन्ध फैल रही थी। उसी दशामें रजस्वला युवतीकी भाँति मैं महर्षि कश्यपकी सेवामें उपस्थित हुई ॥ ४८ ॥

स मां ब्रह्मर्षिरप्याह किमुर्वि त्वमवाङ्मुखी।
वीरपत्नीव्रतमिदं धारयन्ती विषीदसि ॥ ४९ ॥

उस समय ब्रह्मर्षि कश्यपने मुझसे कहा—'वसुधे ! क्या कारण है, तू नीचे मुख किये वीर-पत्नीके इस व्रतको धारण करके विषादमें डूबी हुई है ?' ॥ ४९ ॥

साहं विज्ञापितवती कश्यपं लोकभावनम्।
पतयो मे हता ब्रह्मन् भार्गवेण महात्मना ॥ ५० ॥

उस समय मैंने लोकपिता कश्यपजीको यह सूचित किया—'ब्रह्मन्! महात्मा परशुरामने मेरे पतियोंको मार डाला है ॥५०॥

साहं विहीना विक्रान्तैः क्षत्रियैः शस्त्रवृत्तिभिः।
विधवा शून्यनगरा न धारयितुमुत्सहे ॥ ५१ ॥

'शस्त्रग्रहण ही जिनकी जीविकाका साधन था, उन पराक्रमी क्षत्रियोंसे हीन होकर मैं विधवा हो गयी हूँ। मेरे सारे नगर राजाओंसे शून्य हो गये हैं, अतः अब मुझमें जीवित रहनेका उत्साह नहीं रह गया है ॥ ५१ ॥

तन्मह्यं दीयतां भर्ता भगवंस्त्वत्समो नृपः।
रक्षेद् सग्रामनगरां यो मां सागरमालिनीम् ॥ ५२ ॥

'अतः भगवन् ! मुझे ऐसा कोई नरेश पति दीजिये, जो आपके समान ही शक्तिशाली हो और समुद्रसे घिरी हुई मेरी ग्राम और नगरोंसहित रक्षा कर सके' ॥ ५२ ॥

स श्रुत्वा भगवान् वाक्यं बाढमित्यब्रवीत् प्रभुः।
ततो मां मानवेन्द्राय मनवे स प्रदत्तवान् ॥ ५३ ॥

प्रभावशाली भगवान् कश्यपने मेरी यह बात सुनकर कहा 'बहुत अच्छा'। फिर उन्होंने मुझे राजा मनुके हाथमें दे दिया ॥ ५३ ॥

सा मनुप्रभवं दिव्यं प्राप्येक्ष्वाकुकुलं नृपम्।
विपुलेनास्मि कालेन पार्थिवात् पार्थिवं गता ॥ ५४ ॥

इस प्रकार मैं वैवस्वत मनुसे प्रकट हुए दिव्य इक्ष्वाकुकुलमें आ पहुँची। उस कुलके सभी लोग नरेश थे। वहाँ दीर्घकालतक एक राजासे दूसरे राजाके अधिकारमें आती रही ॥ ५४ ॥

एवं दत्तास्मि मनवे मानवेन्द्राय धीमते।
भुक्ता राजसहस्रैश्च महर्षिकुलसम्मितैः ॥ ५५ ॥

इस प्रकार मैं बुद्धिमान् राजा मनुके हाथमें सौंपी गयी और महर्षिसमुदायके तुल्य तेजस्वी सहस्रों राजाओंके उपभोगमें आयी ॥ ५५ ॥

बहवः क्षत्रियाः शूरा मां जित्वा दिवमाश्रिताः।
ते च कालवशं प्राप्य मय्येव प्रलयं गताः ॥ ५६ ॥

बहुत-से शूरवीर क्षत्रिय मुझे जीतकर स्वर्गलोकको चले गये। वे कालके अधीन होकर मुझमें ही लीन हुए थे ॥५६॥

मत्कृते विग्रहा लोके वृत्ता वर्तन्त एव च।
क्षत्रियाणां बलवतां संग्रामेष्वनिवर्तिनाम् ॥ ५७ ॥

जगत्‌में मेरे ही लिये युद्धस्थलोंमें कभी पीठ न दिखानेवाले बलवान् क्षत्रियोंके परस्पर युद्ध हुए हैं और हो रहे हैं ॥ ५७ ॥

एतद् युष्मत्प्रवृत्तेन दैवेन परिपाल्यते।
जगद्धितार्थं कुरुत राज्ञां हेतुं रणक्षये ॥ ५८ ॥

आपलोगोंके द्वारा परिचालित दैवके द्वारा ही इस जगत्‌का परिपालन होता है, अतः आप जगत्‌के हितके लिये

ऐसा कोई उपाय कीजिये, जिससे रणभूमिमें राजाओंका संहार हो॥ ५८ ॥

यद्यस्ति मयि कारुण्यं भारशैथिल्यकारणात्।
एकश्चक्रधरः श्रीमानभयं मे प्रयच्छतु ॥ ५९ ॥

यदि मुझपर भगवान्‌की दया हो तो यह एकमात्र चक्रधारी श्रीमान् भगवान् विष्णु मेरा भार शिथिल करनेके लिये मुझे अभयदान दें ॥ ५९ ॥

यमहं भारसंतप्ता सम्प्राप्ता शरणार्थिनी।
भारो यद्यवरोप्तव्यो विष्णुरेष ब्रवीतु माम् ॥ ६०।

मैं भारसे संतप्त होकर शरण खोजती हुई जिनकी शरणमें आयी हूँ, वे ही ये भगवान् विष्णु यदि मेरा भार उतारना उचित समझें तो इसके लिये मुझे आश्वासन दें ॥ ६० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि धरणीवाक्ये द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पृथ्वीका वाक्यविषयक बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्माजीकी आज्ञासे देवताओंका अंशावतरण

वैशम्पायन उवाच

ते श्रुत्वा पृथिवीवाक्यं सर्व एव दिवौकसः।
तदर्थंकृत्यं संचिन्त्य पितामहमथाब्रुवन् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं--जनमेजय! पृथ्वीकी यह बात सुनकर वे सभी देवता उसके प्रयोजनको सिद्ध करनेवाले कर्तव्यका चिन्तन करते हुए ब्रह्माजीसे इस प्रकार बोले-॥१॥

भगवन् ह्रियतामस्या धरण्या भारसंततिः।
शरीरकर्ता लोकानां त्वं हि लोकस्य चेश्वरः ॥ २ ॥

'भगवन्! आप इस पृथ्वीके बढ़े हुए भारको उतारिये; क्योंकि आप ही सब लोगोंके शरीरकी सृष्टि करनेवाले तथा सम्पूर्ण जगत्‌के ईश्वर हैं ॥ २ ॥

यत् कर्तव्यं महेन्द्रेण यमेन वरुणेन च।
यद् वा कार्यं धनेशेन स्वयं नारायणेन वा ॥ ३ ॥

'इस विषयमें देवराज इन्द्र, वरुण और यमको क्या करना चाहिये? धनाध्यक्ष कुबेर अथवा साक्षात् भगवान् नारायणका भी क्या कर्तव्य है? ॥ ३ ॥

यद् वा चन्द्रमसा कार्यं भास्करेणानिलेन वा।
आदित्यैर्वसुभिर्वापि रुद्रैर्वा लोकभावनैः ॥ ४ ॥

'चन्द्रमा, सूर्य, वायु, बारह आदित्य, आठ वसु तथा लोकोंका कल्याण करनेवाले ग्यारह रुद्रोंको भी इस विषयमें क्या करना चाहिये? ॥ ४ ॥

अश्विभ्यां देववैद्याभ्यां साध्यैर्वा त्रिदशालयैः।
बृहस्पत्युशनोभ्यां वा कालेन कलिनापि वा ॥ ५ ॥

'दोनों देववैद्य अश्विनीकुमार, स्वर्गवासी साध्यगण, बृहस्पति, शुक्राचार्य, काल तथा कलिका भी इस समय क्या कर्तव्य है? ॥ ५ ॥

महेश्वरेण वा ब्रह्मन् विशाखेन गुहेन वा।
यक्षराक्षसगन्धर्वैश्चारणैर्वा महोरगैः ॥ ६ ॥

'ब्रह्मन्! भगवान् महेश्वर, विशाख, स्वामिकार्तिकेय, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, चारण तथा बड़े-बड़े नागोंको भी इस कार्यके सम्बन्धमें क्या करना है? ॥ ६ ॥

पतङ्गैः पर्वतैश्चापि सागरैर्वा महोर्मिभिः।
गङ्गामुखाभिर्दिव्याभिः सरिद्भिर्वा सुरेश्वर ॥ ७।

'सुरेश्वर! पक्षी, पर्वत, बड़ी-बड़ी लहरोंसे युक्त समुद्र तथा गङ्गा आदि दिव्य सरिताएँ भी इस विषयमें क्या कर सकती हैं? ॥ ७ ॥

शीघ्रमाज्ञापय विभो कथमंशः प्रयुज्यताम्।
यदि ते पार्थिवं कार्यं कार्यं पार्थिवविग्रहे ॥ ८।

'प्रभो! शीघ्र आज्ञा दें, हम अपने अंशका प्रयोग किस प्रकार करें? यदि आपको पृथ्वीके हितका कार्य अवश्य करना है तो बताइये, राजाओंमें युद्धकी ज्वाला जगानेके लिये हम सब किस उपायसे काम लें? ॥ ८ ॥

कथमंशावतरणं कुर्मः सर्वे पितामह।
अन्तरिक्षगता ये च पृथिव्यां पार्थिवाश्च ये ॥ ९।
सदस्यानां च विप्राणां पार्थिवानां कुलेषु च।
अयोनिजाश्चैव तनूः सृजामो जगतीतले ॥ १०॥

'पितामह! हम सब लोग किस प्रकार अंशावतार ग्रहण करें। हममेंसे जो देवता अन्तरिक्षमें रहते हैं तथा जो पृथ्वीपर पार्थिवरूपसे विराजमान हैं, वे सब सदस्य (ऋत्विज) ब्राह्मणों तथा राजाओंके कुलमें अवतीर्ण हों तथा हमलोग भूतलपर अपने अयोनिज शरीरोंकी भी सृष्टि करें' ॥ ९-१० ॥

सुराणामेककार्याणां श्रुत्वैतन्निश्चितं मतम्।
देवैः परिवृतः प्राह वाक्यं लोकपितामहः ॥ ११॥

एक कार्यके लिये यत्नशील हुए देवताओंका यह निश्चित मत सुनकर उन देवताओंसे घिरे हुए लोकपितामह ब्रह्माजीने यह बात कही-॥ ११ ॥

रोचते मे सुरश्रेष्ठा युष्माकमपि निश्चयः।
सृजध्वं स्वशरीरांशांस्तेजसाऽऽत्मसमान् भुवि ॥ १२ ॥

'सुरश्रेष्ठगण ! तुमलोगोंका जो निश्चय है, वह मुझे भी अच्छा लगता है। तुमलोग भूतलपर अपने ही समान तेजस्वी अपने शरीरके अंशोंको प्रकट करो ॥ १२ ॥

सर्व एव सुरश्रेष्ठास्तेजोभिरवरोहत।
भावयन्तो भुवं देवीं लब्ध्वा त्रिभुवनश्रियम् ॥ १३ ॥

'श्रेष्ठ देवताओ ! तुम सभी लोग अपने-अपने तेजसे अवतार लो और तीनों लोकोंकी लक्ष्मीको पाकर भूदेवीकी रक्षा करते हुए वहाँ रहो ॥ १३ ॥

पार्थिवे भारते वंशे पूर्वमेव विजानता।
पृथिव्यां सम्भ्रममिमं श्रूयतां यन्मया कृतम् ॥ १४ ॥

'मैं पृथ्वीपर आनेवाले इस भयको पहलेसे ही जानता था। अतः भूतलपर स्थित भरतवंशके लिये मैंने जो कुछ (विचार) किया है, उसे सुनो ॥ १४ ॥

समुद्रेऽहं पुरा पूर्वे वेलामासाद्य पश्चिमाम्।
आसं सार्धं तनूजेन कश्यपेन महात्मना ॥ १५ ॥
कथाभिः पूर्ववृत्ताभिर्लोकवेदानुगामिभिः।
इतिवृत्तैश्च बहुभिः पुराणप्रभवैर्गुणैः ॥ १६ ॥

'पहलेकी बात है, मैं पूर्व समुद्रके पश्चिम तटपर अपने पुत्र महात्मा कश्यपके साथ बैठा था। उस समय लोक और वेदका अनुसरण करनेवाली प्राचीन कथाओं तथा बहुत-से उत्तम गुणवाले पौराणिक इतिहासोंकी चर्चाद्वारा मैं समय बिता रहा था ॥ १५-१६ ॥

कुर्वतस्तु कथास्तास्ताः समुद्रः सह गङ्गया।
समीपमाजगामाशु युक्तस्तोयदमारुतैः ॥ १७ ॥

'उन-उन कथावार्ताओंको कहते-सुनते हुए मेरे समीप मूर्तिमती गङ्गाके साथ मूर्तिमान् समुद्र शीघ्रतापूर्वक आया। उसके साथ मेघोंकी घटा तथा वायुका भी आगमन हुआ था ॥ १७ ॥

स वीचिविषमां कुर्वन् गतिं वेगतरङ्गिणीम्।
यादोगणविचित्रेण संच्छन्नस्तोयवाससा ॥ १८ ॥

'वह ऊँची-नीची लहरोंके कारण वेग एवं तरङ्गोंसे युक्त अपनी गतिको विषम बनाता हुआ आया था। जलजन्तुओंके कारण विचित्र दिखायी देनेवाले जलरूपी वस्त्रसे उसका शरीर ढका हुआ था ॥ १८ ॥

शङ्खमुक्तामलतनुः प्रवालमणिभूषणः।
युक्तश्चन्द्रमसा पूर्णः साभ्रगम्भीरनिःस्वनः ॥ १९ ॥

'उसके शरीरकी कान्ति शङ्ख और मुक्ताओंसे अत्यन्त निर्मल दिखायी देती थी। वह मूँगे और मणियोंके आभूषणोंसे विभूषित तथा पूर्ण चन्द्रमासे संयुक्त होनेके कारण उद्वेलित हो मेघके समान गम्भीर गर्जना कर रहा था ॥ १९ ॥

स मां परिभवन्नेव स्वां वेलां समतिक्रमन्।
क्लेदयामास चपलैर्लावणैरम्बुविस्रवैः ॥ २० ॥

'उसने मेरा तिरस्कार-सा करते हुए अपनी मर्यादाका उल्लङ्घन करके अपने चञ्चल एवं नमकीन जलबिन्दुओंसे मुझे भिगो दिया ॥ २० ॥

तं च देशं व्यवसितः समुद्रोऽद्भिर्विमर्दितुम्।
उक्तः संरब्धया वाचा शान्तोऽसीति मया तदा ॥ २१ ॥

'जब समुद्र अपने उमड़े हुए जलसे उस स्थानको नष्ट-भ्रष्ट करनेके लिये उद्यत हुआ, तब मैंने क्रोधभरी वाणीमें उससे कहा—'तू शान्त हो जा' ॥ २१ ॥

शान्तोऽसीत्युक्तमात्रस्तु तनुत्वं सागरो गतः।
संहतोर्मितरङ्गौघः स्थितो राजश्रिया ज्वलन् ॥ २२ ॥

''शान्त हो जा' इतना कहते ही समुद्र तनुता (सूक्ष्मता) को प्राप्त हो गया। उसकी ऊर्मि और तरङ्गोंका प्रवाह दब गया और वह राजलक्ष्मीसे प्रकाशित होता हुआ मेरे समीप खड़ा हो गया ॥ २२ ॥

भूयश्चैव मया शप्तः समुद्रः सह गङ्गया।
सकारणां मतिं कृत्वा युष्माकं हितकाम्यया ॥ २३ ॥

'फिर मैंने मन-ही-मन पृथ्वीके भार उतारनेके हेतुका विचार करके तुमलोगोंके हितकी कामनासे गङ्गासहित समुद्रको पुनः शाप देते हुए कहा ॥ २३ ॥

यस्मात् त्वं राजतुल्येन वपुषा समुपस्थितः।
गच्छार्णव महीपालो राजैव त्वं भविष्यसि ॥ २४ ॥

'समुद्र ! तू राजाके समान शरीर धारण करके मेरे निकट आया है, अतः जा, तू इस पृथ्वीका पालन करनेवाला राजा ही होगा ॥ २४ ॥

तत्रापि सहजां लीलां धारयन् स्वेन तेजसा।
भविष्यसि नृणां भर्ता भारतानां कुलोद्वहः ॥ २५ ॥

'वहाँ भी अपनी सहज लीलाको धारण किये अपने तेजसे तू मनुष्योंका भरण-पोषण करनेवाला तथा भरतवंशका भार वहन करनेमें समर्थ होगा ॥ २५ ॥

शान्तोऽसीति मयोक्तस्त्वं यच्चासि तनुतां गतः।
सुतनुर्यशसा लोके शान्तनुस्त्वं भविष्यसि ॥ २६ ॥

'शान्त हो जा' मेरे इतना कहते ही जो तू शान्त होकर तनुता (सूक्ष्मता) को प्राप्त हुआ है, इसलिये तू सुन्दर शरीरसे युक्त एवं यशस्वी होकर संसारमें 'शान्तनु' नामसे विख्यात होगा ॥ २६ ॥

इयमप्यायतापाङ्गी गङ्गा सर्वाङ्गशोभना।
रूपिणी च सरिच्छ्रेष्ठा तत्र त्वामुपयास्यति ॥ २७ ॥

'यह विशाल-लोचना, सर्वाङ्गसुन्दरी, सरिताओंमें श्रेष्ठ मूर्तिमती गङ्गा भी वहाँ तुम्हारी सेवामें उपस्थित होगी ॥२७॥

एवमुक्तस्तु मां क्षुब्धः सोऽभिवीक्ष्यार्णवोऽब्रवीत् ।
मां प्रभो देवदेवानां किमर्थं शप्तवानसि ॥ २८ ॥

'मेरे ऐसा कहनेपर क्षोभमें भरा हुआ समुद्र मेरी ओर देखकर बोला—'देवदेवेश्वर ! आपने मुझे शाप क्यों दिया ? ॥ २८ ॥

अहं तव विधेयात्मा त्वत्कृतस्त्वत्परायणः ।
अशापोऽसदृशैर्वाक्यैरात्मजं मां किमात्मना ॥ २९ ॥

'मेरा यह शरीर तो आपकी आज्ञाका पालक है। आपने ही इसकी रचना की है और यह सदा आपकी सेवामें ही तत्पर रहता है। मैं आपका पुत्र हूँ। आपने स्वयं ही मुझे ऐसे वचनोंद्वारा, जो आपके और मेरे अनुरूप नहीं हैं, शाप कैसे दे दिया ? ॥ २९ ॥

भगवंस्त्वत्प्रसादेन वेगात् पर्वणि वर्धितः ।
यद्यहं चलितो ब्रह्मन् कोऽत्र दोषो ममात्मनः ॥ ३० ॥

'भगवन् ! आपकी ही कृपासे पूर्णिमाके दिन मैं बड़े वेगसे बढ़ जाता हूँ । ब्रह्मन् ! इस सहज नियमसे प्रेरित होकर यदि मैं अपनी मर्यादासे विचलित हो गया तो इसमें मेरा अपना दोष क्या है ? ॥ ३० ॥

क्षिप्ताभिः पवनैरद्भिः स्पृष्टो यद्यसि पर्वणि ।
अत्र मे किं नु भगवन् विद्यते शापकारणम् ॥ ३१ ॥

'भगवन् ! आज पूर्णिमाके दिन प्रबल वायुद्वारा फेंके गये मेरे जलसे यदि आपका स्पर्श हो गया, आप भीग गये तो इसमें मुझे शाप प्राप्त होनेका क्या कारण है ? ॥ ३१ ॥

उद्धतैश्च महावातैः प्रवृद्धैश्च बलाहकैः ।
पर्वणा चेन्दुयुक्तेन त्रिभिः क्षुब्धोऽस्मि कारणैः॥ ३२ ॥

'उठी हुई प्रचण्ड आँधी, बढ़े हुए महान् मेघ और उगे हुए चन्द्रमासे युक्त पूर्णिमाका पर्व--इन तीन कारणोंसे मैं क्षुब्ध (उद्वेलित) हो उठा था ॥ ३२ ॥

एवं यद्यपराद्धोऽहं कारणैस्त्वत्प्रकल्पितैः ।
क्षन्तुमर्हसि मे ब्रह्मञ्छापोऽयं विनिवर्त्यताम् ॥ ३३ ॥

'ब्रह्मन् ! इस तरह आपके बनाये हुए कारणों (नियमों) से ही क्षुब्ध होकर यदि मैंने अपराध किया है तो आप उसके लिये मुझे क्षमा कर दें और इस शापको लौटा लें ॥

एवं मयि निरालम्बे शापाच्छिथिलतां गते ।
कारुण्यं कुरु देवेश प्रमाणं यद्यवेक्षसे ॥ ३४ ॥

'देवेश्वर ! मुझे दूसरा कोई सहारा देनेवाला नहीं है । मैं शापसे शिथिल हो गया हूँ । यदि आप शरणागतकी रक्षाका प्रतिपादन करनेवाले प्रमाणपर दृष्टि रखते हैं तो मुझपर अवश्य दया करें ॥ ३४ ॥

अस्यास्तु देवगङ्गाया गां गतायास्त्वदाज्ञया ।
मम दोषात् सदोषायाः प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ३

'यह देवनदी गङ्गा आपकी ही आज्ञासे इस भूत अवतीर्ण हुई है । (इसका कोई दोष नहीं है) इसे मेरे से ही दोषकी भागिनी होना पड़ा है, अतः आप इसपर करें ॥ ३५ ॥

तमहं श्लक्ष्णया वाचा महार्णवमथाब्रवम् ।
अकारणज्ञं देवानां त्रस्तं शापानलेन तम् ॥ ३

'महासागर देवताओंके भूभार-हरणरूप उद्देश्यको जानता था; अतः मेरी शापाग्निसे भयभीत हो उठा था। समय मैंने मधुर वाणीद्वारा उसे सान्त्वना देते हुए कहा—

शान्ति व्रज न भेतव्यं प्रसन्नोऽस्मि महोदधे ।
शापेऽस्मिन् सरितां नाथ भविष्यं शृणु कारणम् ॥ ३

'महोदधे ! शान्त हो जाओ । तुम्हें डरना नहीं चाहि मैं तुमपर प्रसन्न हूँ । नदीश्वर ! इस शापमें जो भावी (उद्देश्य) है, उसे बताता हूँ, सुनो— ॥ ३७ ॥

त्वं गच्छ भारते वंशे स्वं देहं स्वेन तेजसा ।
आधत्स्व सरितां नाथ त्यक्त्वेमां सागरीं तनुम्॥ ३

'सरिताओंके स्वामी समुद्र ! तुम अपने तेजसे सागर-शरीरको छोड़कर अर्थात् योगबलसे अपने-आपको रूपोंमें विभक्त करके (एकसे तो यहाँ रह जाओ और दूसरे जाओ और भरतवंशमें अपने शरीरको गर्भमें स्थापित क

महोदधे महीपालस्तत्र राजश्रिया वृतः ।
पालयंश्चतुरो वर्णान् रंस्यसे सलिलेश्वर ॥ ३

'जलके स्वामी महासागर ! उस भरतवंशमें भू बनकर राजलक्ष्मीसे सम्पन्न हो तुम चारों वर्णोंका पा करते हुए बड़े सुखसे रहोगे ॥ ३९ ॥

इयं च ते सरिच्छ्रेष्ठा बिभ्रती रूपमुत्तमम् ।
तत्कालं रमणीयाङ्गी गङ्गा परिचरिष्यति ॥ ४०

'यह जो तुम्हारी प्रिया सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गा है, भी उस समय रमणीय अङ्गोंसे सुशोभित परम सुन्दर धारण करके वहाँ तुम्हारी सेवा करेगी ॥ ४० ॥

अनया सह जाह्नव्या मोदमानो ममाऽऽज्ञया ।
इमं सलिलसंक्लेदं विस्मरिष्यसि सागर ॥ ४१

'सागर ! तुम मेरी आज्ञासे वहाँ इस जाह्नवीके आनन्दपूर्वक रहते हुए मुझे जलसे भिगोनेके का मिले हुए इस शापके दुःखको भूल जाओगे ॥ ४१ ॥

त्वरता चैव कर्तव्यं त्वयेदं मम शासनम् ।
प्राजापत्येन विधिना गङ्गया सह सागर ॥ ४२

'समुद्र ! तुम्हें बहुत शीघ्र मेरी इस आज्ञाका पालन करना चाहिये। वहाँ इस गङ्गाके साथ तुम्हारा प्राजापत्य-विधिसे विवाह होगा ॥ ४२ ॥

वसवः प्रच्युताः स्वर्गात् प्रविष्टाश्च रसातलम् ।
तेषामुत्पादनार्थाय त्वं मया विनियोजितः ॥ ४३ ॥

'आठों वसु स्वर्गसे भ्रष्ट होकर रसातलमें जा पहुँचे हैं। उन्हें मनुष्यरूपमें उत्पन्न करनेके लिये मैंने तुम्हें नियुक्त किया है ॥ ४३ ॥

अष्टौ ताञ्जाह्नवी गर्भानपत्यार्थं दधात्वियम् ।
विभावसोस्तुल्यगुणान् सुराणां प्रीतिवर्धनान् ॥ ४४ ॥

'अग्निदेवके समान गुणशाली तथा देवताओंकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाले उन आठों वसुओंको संतानरूपसे उत्पन्न करनेके लिये यह गङ्गा तुमसे गर्भ धारण करे ॥४४॥

उत्पाद्य त्वं वसूञ्छीघ्रं कृत्वा कुरुकुलं महत् ।
प्रवेष्टासि तनुं त्यक्त्वा पुनः सागर सागरीम् ॥ ४५ ॥

'सागर ! तुम वसुओंको शीघ्र ही जन्म देकर कुरुकुलकी महत्ता बढ़ानेके अनन्तर उस मानवशरीरका त्याग करके पुनः अपने समुद्ररूपमें प्रवेश करोगे ॥ ४५ ॥

एवमेतन्मया पूर्वं हितार्थं वः सुरोत्तमाः ।
भविष्यं पश्यता भारं पृथिव्याः पार्थिवात्मकम्॥ ४६ ॥

'सुरश्रेष्ठगण ! इस प्रकार मैंने भविष्यमें होनेवाले पृथ्वीके राजसमूहरूपी भारको देखकर तुम्हारे हितके लिये पहले ही यह कार्य कर दिया है ॥ ४६ ॥

तदेष शान्तनोर्वंशः पृथिव्यां रोपितो मया ।
वसवो ये च गङ्गायामुत्पन्नास्त्रिदिवौकसः ॥ ४७ ॥
अद्यापि भुवि गाङ्गेयस्तत्रैव वसुरष्टमः ।
सप्तेमे वसवः प्राप्ताः स एकः परिलम्बते ॥ ४८ ॥

'इस तरह भूतलपर शान्तनुके वंशका बीजारोपण मैंने कर दिया है। स्वर्गमें रहनेवाले जो वसु थे, वे गङ्गाके गर्भसे उत्पन्न हो चुके और उनमेंसे ये सात वसु यहाँ आ गये, परंतु एकमात्र आठवाँ वसु गङ्गाका पुत्र होकर अबतक वहाँ पृथ्वीपर ही लटक रहा है ॥ ४७-४८ ॥

द्वितीयायां स सृष्टायां द्वितीया शान्तनोस्तनुः ।
विचित्रवीर्यो द्युतिमानासीद् राजा प्रतापवान् ॥ ४९ ॥

'शान्तनुकी दूसरी पत्नी सत्यवतीके साथ पतिका समागम होनेपर भीष्मकी अपेक्षा जो दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ था, उसका नाम विचित्रवीर्य था। वह कुरुकुलका तेजस्वी एवं प्रतापी राजा था ॥ ४९ ॥

वैचित्रवीर्यौ द्वावेव पार्थिवौ भुवि साम्प्रतम् ।
धृतराष्ट्रश्च पाण्डुश्च विख्यातौ पुरुषर्षभौ ॥ ५० ॥

'विचित्रवीर्यके दो ही पुत्र इस समय पृथ्वीपर वर्तमान हैं। वे दोनों ही राजा एवं पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं। धृतराष्ट्र और पाण्डु नामसे उनकी ख्याति है ॥ ५० ॥

तत्र पाण्डोः श्रिया जुष्टे द्वे भार्ये सम्बभूवतुः ।
शुभे कुन्ती च माद्री च देवयोषोपमे तु ते ॥ ५१ ॥

'उनमेंसे पाण्डुके दो शोभासम्पन्न सुन्दरी पत्नियाँ हैं, जो देवाङ्गनाओंके समान रूपवती हैं। उनके नाम हैं—कुन्ती और माद्री ॥ ५१ ॥

धृतराष्ट्रस्य राज्ञस्तु भार्यैका तुल्यचारिणी ।
गान्धारी भुवि विख्याता भर्तुर्नित्यं व्रते स्थिता॥ ५२ ॥

'राजा धृतराष्ट्रकी एक ही पत्नी है, जो इस भूतलपर गान्धारीके नामसे विख्यात है। वह पतिके समान आचारसे रहनेवाली और सदा पातिव्रत्यधर्मका पालन करनेवाली है ॥ ५२ ॥

तत्र वंशा विभज्यन्तां विपक्षाः पक्ष एव च ।
पुत्राणां हि तयो राज्ञोर्भविता विग्रहो महान् ॥ ५३ ॥

'उन दोनों राजाओंके पुत्रोंमें महान् युद्ध होनेवाला है। तुमलोग उन्हींके पक्ष और विपक्षमें पृथक्-पृथक् अपने वंश उत्पन्न करो ॥ ५३ ॥

तेषां विमर्दे दायाद्ये नृपाणां भविता क्षयः ।
युगान्तप्रतिमं चैव भविष्यति महद् भयम् ॥ ५४ ॥

'उनके पैतृक राज्यके बटवारेके सम्बन्धमें विवाद होनेपर बड़ा भारी संग्राम छिड़ जायगा और उसमें बहुत-से नरेशोंका विनाश होगा। वह महान् युद्ध प्रलयकालके समान भयंकर एवं संहारकारी होगा ॥ ५४ ॥

सबलेषु नरेन्द्रेषु शान्तयत्स्वितरेतरम् ।
विविक्तपुरराष्ट्रौघा क्षितिः शैथिल्यमेष्यति ॥ ५५ ॥

'जब सेनासहित राजालोग उस युद्धमें उपस्थित होंगे, उस समय एक दूसरेसे लड़-भिड़कर उन सबकी शान्ति (मृत्यु) हो जायगी। उस दशामें इस भूतलके सभी नगर और राष्ट्र निर्जन-से हो जायँगे और यह पृथ्वी शिथिलताको प्राप्त हो जायगी ॥ ५५ ॥

द्वापरस्य युगस्यान्ते मया दृष्टं पुरातनम् ।
क्षयं यास्यन्ति शस्त्रेण मानवैः सह पार्थिवाः ॥ ५६ ॥

'द्वापरयुगके अन्तमें घटित होनेवाले इस भावी विनाशको मैंने पहलेसे ही देख लिया है। उस समय अपने सैनिक मनुष्योंसहित समस्त भूपाल शस्त्रोंद्वारा विनष्ट हो जायँगे ॥ ५६ ॥

तत्रावशिष्टान् मनुजान् सुप्तान् निशि विचेतसः ।
घ क्ष्यते शङ्करस्यांशः पावकेनास्त्रतेजसा ॥ ५७ ॥

'उस युद्धसे जो लोग बच जायँगे, उन्हें रातमें अचेत होकर सोते समय भगवान् शङ्करका अंशभूत अश्वत्थामा अग्नितुल्य अस्त्रके तेजसे जलाकर भस्म कर डालेगा ॥ ५७ ॥

अन्तकप्रतिमे तस्मिन् निवृत्ते क्रूरकर्मणि ।
समाप्तमिदमाख्यास्ये तृतीयं द्वापरं युगम् ॥ ५८ ॥

'प्रलयकालके समान वह क्रूरतापूर्ण विनाशकाण्ड जब समाप्त हो जायगा, तब मैं यह कहूँगा कि तीसरा द्वापरयुग समाप्त हो गया ॥ ५८ ॥

महेश्वरांशेऽपसृते ततो माहेश्वरं युगम् ।
शिष्यं प्रवर्तते पश्चाद् युगं दारुणदर्शनम् ॥ ५९ ॥

'परमेश्वर विष्णुके पूर्णतम अंशस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णके परमधामको पधारनेपर अत्यन्त भयंकर अन्तिम युग कलिकी प्रवृत्ति होगी, जो देखनेमें बड़ा ही दारुण है ॥ ५९ ॥

अधर्मप्रायपुरुषं स्वल्पधर्मप्रतिग्रहम् ।
उत्सन्नसत्यसंयोगं वर्धितानृतसंचयम् ॥ ६० ॥

'उस समय मनुष्योंमें प्रायः अधर्मकी स्थिति होगी । धर्मको बहुत कम लोग ग्रहण करेंगे । उनमें सत्यका संयोग नहीं रहेगा और सबमें असत्यका संग्रह बढ़ेगा ॥ ६० ॥

महेश्वरं कुमारं च द्वौ च देवौ समाश्रिताः ।
भविष्यन्ति नराः सर्वे लोके न स्थविरायुषः ॥ ६१ ॥

'रुद्र और कुमारकार्तिकेय इन्हीं दो देवताओंका प्रायः सब लोग आश्रय लेंगे । संसारमें वृद्धावस्थातक जीनेवाले (अधिक) न होंगे ॥ ६१ ॥

तदेष निर्णयः श्रेष्ठः पृथिव्यां पार्थिवान्तकः ।
अंशावतरणं सर्वे सुराः कुरुत मा चिरम् ॥ ६२ ॥

'देवताओ ! अतः यही निर्णय सबसे श्रेष्ठ है कि पृथ्वीपर रहनेवाले राजाओंका अन्त कर दिया जाय । इसलिये तुम सब लोग अपने-अपने अंशसे अवतार लो, देर न करो ॥ ६२ ॥

धर्मस्यांशस्तु कुन्त्यां वै माद्र्यां च विनियुज्यताम् ।
विग्रहस्य कलिर्मूलं गान्धार्यां विनियुज्यताम् ॥ ६३ ॥

'धर्मके पक्षमें जो देवता हों, उन्हें कुन्ती और माद्रीके गर्भसे उत्पन्न होनेकी आज्ञा दी जाय । विवाद या युद्धका मूल है कलि, उसे सहायकोंसहित गान्धारीके गर्भसे उत्पन्न होनेके लिये प्रेरित किया जाय ॥ ६३ ॥

एतौ पक्षौ भविष्यन्ति राजानः कालचोदिताः ।
जातरागाः पृथिव्यर्थे सर्वे संग्रामलालसाः ॥ ६४ ॥

'कालसे प्रेरित हुए राजा इन दोनों पक्षोंमेंसे किसी एकका आश्रय लेंगे और पृथ्वीके राज्यकी प्राप्तिके लिये लोभासक्त होकर वे सब-के-सब संग्रामकी लालसा रखेंगे ॥ ६४ ॥

गच्छत्वियं वसुमती स्वां योनिं लोकधारिणी ।
सृष्टोऽयं नैष्ठिको राज्ञामुपायो लोकविश्रुतः ॥ ६५ ॥

'सम्पूर्ण जगत्को धारण करनेवाली यह पृथ्वी अब अपने स्थानको चली जाय । इसके भारभूत राजाओंके विनाशके लिये इस लोकप्रसिद्ध उपायका अनुष्ठान आरम्भ कर दिया गया है' ॥ ६५ ॥

श्रुत्वा पितामहवचः सा जगाम यथागतम् ।
पृथिवी सह कालेन वधाय पृथिवीक्षिताम् ॥ ६६ ॥

ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर पृथ्वी भूमिपालोंके वधके लिये कालके साथ जैसे आयी थी, वैसे ही लौट गयी ॥ ६६ ॥

देवानचोदयद् ब्रह्मा निग्रहार्थं सुरद्विषाम् ।
नरं चैव पुराणर्षिं शेषं च धरणीधरम् ॥ ६७ ॥
सनत्कुमारं साध्यांश्च सुरांश्चाग्निपुरोगमान् ।
वरुणं च यमं चैव सूर्याचन्द्रमसौ तदा ॥ ६८ ॥
गन्धर्वाप्सरसश्चैव रुद्रादित्यांस्तथाश्विनौ ।
ततोऽशानवनिं देवाः सर्व एवावतारयन् ॥ ६९ ॥

तदनन्तर ब्रह्माजीने देवद्रोही दानवोंका दमन करनेके लिये देवताओंको प्रेरित किया । उन्होंने पुरातन ऋषि नर, पृथ्वीको धारण करनेवाले शेषनाग, सनत्कुमार, साध्यगण, अग्नि आदि देवता, वरुण, यम, सूर्य, चन्द्रमा, गन्धर्व, अप्सरा, रुद्र, आदित्य तथा दोनों अश्विनीकुमार—इन सबको अवतार लेनेके लिये प्रेरणा दी । तत्पश्चात् समस्त देवताओंने पृथ्वीपर अपना-अपना अंश उत्पन्न किया ॥ ६७–६९ ॥

यथा ते कथितं पूर्वमंशावतरणं मया ।
अयोनिजा योनिजाश्च ते देवाः पृथिवीतले ॥ ७० ॥
दैत्यदानवहन्तारः सम्भूताः पुरुषेश्वराः ।

राजन् ! मैंने तुम्हें पहले (आदिपर्व) अंशावतरणके प्रसङ्गमें जैसा बताया है, उसके अनुसार दैत्यों और दानवोंका विनाश करनेवाले वे देवता योनिज और अयोनिजरूपसे पृथ्वीपर राजा होकर उत्पन्न हुए ॥ ७०½ ॥

क्षीरिकावृक्षसंकाशा वज्रसंहननास्तथा ॥ ७१ ॥
नागायुतबलाः केचित् केचिदोघबलान्विताः ।
गदापरिघशक्तीनां सहाः परिघबाहवः ॥ ७२ ॥

उनके शरीर पिण्डखजूरके समान पुष्ट और वज्रके तुल्य सुदृढ़ थे । उनमेंसे कितने ही दस हजार हाथियोंके समान बलवान् थे । कितने ही बलके अटूट प्रवाहसे सम्पन्न थे । वे गदा, परिघ और शक्तियोंके आघात सह लेनेमें समर्थ थे । उनकी भुजाएँ परिघोंके समान मोटी एवं सुदृढ़ थीं ॥ ७१-७२ ॥

गिरिशृङ्गप्रहर्तारः सर्वे परिघयोधिनः ।
वृष्णिवंशसमुत्पन्नाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ७३ ॥

कुरुवंशे च ते देवाः पञ्चालेषु च पार्थिवाः।
याज्ञिकानां समृद्धानां ब्राह्मणानां च योनिषु ॥ ७४ ॥

वे सब-के-सब पर्वत-शिखरोंद्वारा प्रहार करनेवाले तथा परिघोंसे युद्ध करनेमें कुशल थे। उनमेंसे सैकड़ों-हजारों वीर देवता वृष्णिवंश, कुरुवंश तथा पाञ्चालवंशमें राजा एवं राजकुमारोंके रूपमें उत्पन्न हुए थे। कितने ही देवता समृद्धिशाली याज्ञिक ब्राह्मणोंके कुलोंमें प्रकट हुए थे ॥ ७३-७४ ॥

सर्वास्त्रज्ञा महेष्वासा वेदव्रतपरायणाः।
सर्वर्द्धिगुणसम्पन्ना यज्वानः पुण्यकर्मिणः ॥ ७५ ॥

वे सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञाता, महाधनुर्धर, वैदिक व्रतके अनुष्ठानमें तत्पर, समस्त समृद्धिकारी गुणोंसे सम्पन्न, यज्ञकर्ता तथा पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान करनेवाले थे ॥ ७५ ॥

आचालयेयुर्ये शैलान् क्रुद्धा भिन्द्युर्महीतलम्।
उत्पतेयुरथाकाशं क्षोभयेयुर्महोदधिम् ॥ ७६ ॥

वे कुपित होनेपर पर्वतोंको भी हिला सकते थे। पृथ्वीको विदीर्ण कर सकते थे, आकाशमें उड़ सकते थे और समुद्रोंको भी विक्षुब्ध कर सकते थे ॥ ७६ ॥

एवमादिश्य तान् सर्वान् भूतभव्यभवत्प्रभुः।
नारायणे समावेश्य लोकाञ्छान्तिमुपागमत् ॥ ७७ ॥

भूत, भविष्य और वर्तमानके स्वामी ब्रह्माजी उन देवताओंको उपर्युक्त आदेश दे भगवान् नारायणको समस्त लोकोंकी रक्षाका भार सौंपकर शान्त हो गये ॥ ७७ ॥

भूयः शृणु यथा विष्णुरवतीर्णो महीतले।
प्रजानां वै हितार्थाय प्रभुः प्राणिहितेश्वरः ॥ ७८ ॥

जनमेजय ! समस्त प्राणियोंका हित-साधन करनेमें समर्थ भगवान् विष्णु प्रजावर्गके हितके लिये इस भूतलपर जिस प्रकार अवतीर्ण हुए थे, वह प्रसंग फिर सुनो ॥ ७८ ॥

ययातिवंशजस्याथ वसुदेवस्य धीमतः।
कुले पूज्ये यशस्कर्मा जज्ञे नारायणः प्रभुः ॥ ७९ ॥

राजा ययातिके वंशज बुद्धिमान् वसुदेवके आदरणीय कुलमें यशोवर्धक कर्म करनेवाले भगवान् नारायणने जन्म ग्रहण किया था ॥ ७९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि देवानामंशावतरणे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें देवताओंका अंशावतरणविषयक तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५३ ॥

चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भगवान् विष्णुके प्रति देवर्षि नारदका वचन—भूलोककी वर्तमान अवस्थाका परिचय देकर भगवान्को अवतार ग्रहण करनेके लिये प्रेरित करना

वैशम्पायन उवाच

कृतकार्ये गते काले जगत्यां च यथानयम्।
अंशावतरणे वृत्ते सुराणां भारते कुले ॥ १ ॥
भागेऽवतीर्णे धर्मस्य शक्रस्य पवनस्य च।
अश्विनोर्देवभिषजोर्भागे वै भास्करस्य च ॥ २ ॥
पूर्वमेवावनिगते भागे देवपुरोधसः।
वसूनामष्टमे भागे प्रागेव धरणीं गते ॥ ३ ॥
मृत्योर्भागे क्षितिगते कलेर्भागे तथैव च।
भागे शुक्रस्य सोमस्य वरुणस्य च गां गते ॥ ४ ॥
शङ्करस्य गते भागे मित्रस्य धनदस्य च।
गन्धर्वोरगयक्षाणां भागांशेषु गतेषु च ॥ ५ ॥
भागेष्वेतेषु गगनादवतीर्णेषु मेदिनीम्।
तिष्ठन्नारायणस्यांशे नारदः समदृश्यत ॥ ६ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! जब पृथ्वी और काल दोनों कृतकृत्य होकर चले गये और देवताओंका भरतवंशमें यथोचितरूपसे अंशावतरणका कार्य सम्पन्न हो गया, धर्म, इन्द्र, वायु, देववैद्य अश्विनीकुमार तथा सूर्यदेवका पृथक्-पृथक् भाग जब भूतलपर अवतीर्ण हो गया, देवताओंके पुरोहित बृहस्पतिजी जब उनसे भी पहले ही पृथ्वीपर आ गये, वसुओंके अष्टम भाग भीष्म भी पहले ही पृथ्वीपर अवतीर्ण हो गये, मृत्यु (यम) और कलिके भाग भी जब पृथ्वीपर आ गये, शुक्र, सोम और वरुणके अंश भी भूतलपर अवतीर्ण हो गये, भगवान् शङ्कर, मित्र, कुबेर, गन्धर्व, नाग और यक्षोंके भागांश भी जब पृथ्वीपर आ गये, उपर्युक्त सभी भाग जब आकाशसे पृथ्वीपर उतर आये, तब देवपक्षमें स्थित रहनेवाले देवर्षि नारद भगवान् नारायणके निकट आते हुए दिखायी दिये ॥ १—६ ॥

ज्वलिताग्निप्रतीकाशो बालार्कसदृशेक्षणः।
सव्यापवृत्तं विपुलं जटामण्डलमुद्वहन् ॥ ७ ॥

उस समय उनका तेजस्वी शरीर प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहा था। दोनों नेत्र प्रभातकालके सूर्यकी भाँति लाल थे। वे वामावर्त विशाल जटामण्डल धारण किये हुए थे ॥ ७ ॥

चन्द्रांशुशुक्ले वसने वसानो रुक्मभूषितः।
वीणां गृहीत्वा महतीं कक्षासक्तां सखीमिव ॥ ८ ॥

उन्होंने अपने शरीरको चन्द्रमाकी किरणोंके समान

श्वेत वर्णके दो वस्त्रोंसे आच्छादित कर रखा था । वे सोनेके आभूषणसे विभूषित थे । उन्होंने महती नामक वीणा ले रखी थी, जो उनकी सहचरीकी भाँति बगलमें सटी हुई थी ॥ ८ ॥

कृष्णाजिनोत्तरासङ्गो हेमयज्ञोपवीतवान् ।
दण्डी कमण्डलुधरः साक्षाच्छक्र इवापरः ॥ ९ ॥

उनके कंधेपर उत्तरीय वस्त्रके रूपमें काला मृगचर्म शोभा पा रहा था । वे सुवर्णमय यज्ञोपवीतसे सुशोभित थे । हाथोंमें दण्ड-कमण्डलु धारण किये हुए थे तथा देखनेमें साक्षात् दूसरे इन्द्रके समान जान पड़ते थे ॥ ९ ॥

भेत्ता जगति गुह्यानां विग्रहाणां ग्रहोपमः ।
गाता चतुर्णां वेदानामुद्गाता प्रथमर्त्विजाम् ।
महर्षिर्विग्रहरुचिर्विद्वान् गान्धर्वकोविदः ॥ १० ॥

जगत्‌में गुप्त बातोंका भंडाफोड़ करनेवाले नारदजी युद्ध या विवादकी सूचना देनेवाले ग्रहोंके समान माने जाते हैं । ये चारों वेदोंके गायक तथा मुख्य ऋत्विजोंमें उद्गाता थे, महर्षि होनेपर भी युद्ध देखनेकी रुचि रखते थे और विद्वान् होनेके साथ ही सङ्गीतविद्याके मर्मज्ञ थे ॥ १० ॥

वैरिकेलिकिलो विप्रो ब्राह्मः कलिरिवापरः ।
देवगन्धर्वलोकानामादिवक्ता महामुनिः ॥ ११ ॥

दूसरोंको लड़ा देना उनके लिये खिलवाड़ था । वे ब्राह्मण तथा ब्रह्माजीके पुत्र होकर भी दूसरे कलिके समान माने जाते थे । महामुनि नारद देवलोक तथा गन्धर्वलोकके प्रमुख वक्ता (उपदेशक) थे ॥ ११ ॥

स नारदोऽथ ब्रह्मर्षिर्ब्रह्मलोकचरोऽव्ययः ।
स्थितो देवसभामध्ये संरब्धो विष्णुमब्रवीत् ॥ १ २

ब्रह्मलोकमें विचरनेवाले वे अविनाशी ब्रह्मर्षि नारद उस समय देव-सभामें खड़े हो रोषावेशमें आकर भगवान् विष्णुसे इस प्रकार बोले—॥ १२ ॥

अंशावतरणं विष्णो यदिदं त्रिदशैः कृतम् ।
क्षयार्थं पृथिवीन्द्राणां सर्वमेतदकारणम् ॥ १३ ॥

'सर्वव्यापी नारायण ! देवताओंने भूतलके राजाओंका विनाश करनेके लिये जो यह अंशावतार ग्रहण किया है, यह सब निष्फल है ॥ १३ ॥

यदेतत् पार्थिवं क्षत्रं स्थितं त्वयि यदीश्वर ।
नृनारायणयुक्तोऽयं कार्यार्थः प्रतिभाति मे ॥ १४ ॥

'परमेश्वर ! यह जो भूतलके राजाओंका युद्ध है, वह तो आपपर ही निर्भर है । मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि देवताओंके इस प्रयोजनकी सिद्धि नर और नारायणके सहयोगसे ही सम्भव है ॥ १४ ॥

न युक्तं जानता देव त्वया तत्त्वार्थदर्शिना ।
देवदेव पृथिव्यर्थं प्रयोक्तुं कार्यमीदृशम् ॥ १५ ॥

'देव ! देवाधिदेव ! आप तत्त्वार्थदर्शी हैं, सब कु जानते हैं; अतः पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ऐसे उपायका प्रयोग करना, जिसमें आप दोनोंका सहयोग न हो, आपके लिये उचित नहीं है ॥ १५ ॥

त्वं हि चक्षुष्मतां चक्षुः श्लाघ्यः प्रभवतां प्रभुः ।
श्रेष्ठो योगवतां योगी गतिर्गतिमतामपि ॥ १६ ॥

'क्योंकि आप ही नेत्रवानोंके नेत्र हैं, प्रभावशा पुरुषोंके स्पृहणीय प्रभु हैं, योगवालोंमें श्रेष्ठ योगी हैं त गतिशील प्राणियोंकी गति हैं ॥ १६ ॥

देवभागान् गतान् दृष्ट्वा किं त्वं सर्वाश्रयो विभुः ।
वसुन्धरायाः साह्यार्थमंशं स्वं नानुयुञ्जसे ॥ १७ ॥

'आप सबके आश्रयभूत परमेश्वर हैं, फिर देवताओं अंशोंको पृथ्वीपर गया हुआ देखकर भी आप वसुधा सहायताके लिये अपने अंशको क्यों नहीं नियुक्त क हैं ॥ १७ ॥

त्वया सनाथा देवांशास्त्वन्मयास्त्वत्परायणाः ।
जगत्यां संचरिष्यन्ति कार्यात् कार्यान्तरं गताः ॥ १८ ॥

'देवताओंके अंश आपके ही स्वरूप तथा आपके आश्रित हैं । वे आपसे सनाथ होकर ही पृथ्वीपर एक का दूसरे कार्यमें संलग्न रहते हुए विचरण कर सकेंगे ॥ १८ ॥

तदहं त्वरया विष्णो प्राप्तः सुरसभामिमाम् ।
तव संचोदनार्थं वै शृणु चाप्यत्र कारणम् ॥ १९ ॥

'विष्णो ! मैं जो आपको प्रेरित करनेके लिये व उतावलीके साथ इस देव-सभामें आया हूँ, इसका भी ए कारण है; उसे सुनिये ॥ १९ ॥

ये त्वया निहता दैत्याः संग्रामे तारकामये ।
तेषां शृणु गतिं विष्णो ये गताः पृथिवीतलम् ॥ २० ॥

'विष्णो ! तारकामय-संग्राममें आपके द्वारा जो दैत्य म गये थे, वे सब-के-सब पृथ्वीतलपर जा पहुँचे हैं; उनकी क अवस्था है, सुनिये ॥ २० ॥

पुरी पृथिव्यां मुदिता मथुरानामतः श्रुता ।
निविष्टा यमुनातीरे स्फीता जनपदायुता ॥ २१ ॥

'पृथ्वीपर मथुरा नामसे प्रसिद्ध एक पुरी है, जो परम नन्दमयी है । वह समृद्धिशालिनी नगरी यमुनाके तटपर ब हुई है । उसके सब ओर बहुत-से जनपद हैं ॥ २१ ॥

मधुर्नाम महानासीद् दानवो युधि दुर्जयः ।
त्रासनः सर्वभूतानां बलेन महतान्वितः ॥ २२ ॥

'उस पुरीमें पहले मधु नामसे प्रसिद्ध एक महादान रहता था, जिसे युद्धमें जीतना बहुत ही कठिन था । सम प्राणियोंको त्रास देनेवाला वह दानव महान् बलसे सम्प था ॥ २२ ॥

तस्य तत्र महच्चासीन्महापादपसंकुलम् ।

घोरं मधुवनं नाम यत्रासौ न्यवसत् पुरा ॥ २३ ॥

'वहीं उसका विशाल एवं भयंकर मधुवननामक वन था, जो बड़े-बड़े वृक्षोंसे हरा-भरा रहता था। पूर्वकालमें वह दानव उस मधुवनमें ही निवास करता था ॥ २३ ॥

तस्य पुत्रो महानासील्लवणो नाम दानवः।
त्रासनः सर्वभूतानां महाबलपराक्रमः ॥ २४ ॥

'उसका पुत्र लवण नामसे प्रसिद्ध महान् दानव था। वह भी समस्त प्राणियोंको भयभीत करनेवाला तथा महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न था ॥ २४ ॥

स तत्र दानवः क्रीडन् वर्षपूगाननेकशः।
स दैवतगणाँल्लोकानुद्वासयति दर्पितः ॥ २५ ॥

'वह दानव वहुत वर्षोंतक वहाँ क्रीड़ा करता रहा। फिर बलके घमंडमें भरकर देवताओंसहित समस्त लोकोंको उजाड़ने या उद्विग्न करने लगा ॥ २५ ॥

अयोध्यायामयोध्यायां रामे दाशरथौ स्थिते।
राज्यं शासति धर्मज्ञे राक्षसानां भयावहे ॥ २६ ॥
स दानवो बलश्लाघी घोरं वनमुपाश्रितः।
प्रेषयामास रामाय दूतं परुषवादिनम् ॥ २७ ॥

'जिसपर आक्रमण करना किसीके लिये भी असम्भव था, उस अयोध्यापुरीमें जब राक्षसोंको भय देनेवाले धर्मज्ञ दशरथनन्दन श्रीराम राज्य-शासन करते थे, उस समय, अपने बलकी प्रशंसा करनेवाले उस लवण नामक दानवने घोर मधुवनका सहारा ले श्रीरामचन्द्रजीके पास एक कटुभाषी दूत भेजा ॥ २६-२७ ॥

विषयासन्नभूतोऽस्मि तव राम रिपुश्च ह।
न च सामन्तमिच्छन्ति राजानो बलदर्पितम् ॥ २८ ॥

'(उसके उस दूतने भगवान् श्रीरामसे इस प्रकार कहा—) राम! मैं तुम्हारे राज्यके निकट रहता हूँ और तुम्हारा शत्रु भी हूँ। प्रायः राजा लोग ऐसे सामन्तको जीवित रखना नहीं चाहते, जो बलके घमंडमें भरा रहता हो ॥ २८ ॥

राज्ञा राज्यव्रतस्थेन प्रजानां हितकाम्यया।
जेतव्या रिपवः सर्वे स्फीतं विषयमिच्छता ॥ २९ ॥

'राजोचित व्रतमें स्थित रहकर अपने राज्यको समृद्धिशाली बनानेकी इच्छा रखनेवाले राजाको उचित है कि वह प्रजाके हितकी कामनासे अपने समस्त शत्रुओंको जीतकर काबूमें कर ले ॥ २९ ॥

अभिषेकार्द्रकेशेन राज्ञा रञ्जनकाम्यया।
जेतव्यानीन्द्रियाण्यादौ तज्जये हि ध्रुवो जयः ॥ ३० ॥

'जिसके मस्तकके केश राज्याभिषेकसे आर्द्र हुए हों तथा जो प्रजाको प्रसन्न रखना चाहता हो, उस राजाका कर्तव्य है कि वह सबसे पहले अपनी इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करे; क्योंकि उनको जीत लेनेके बाद शत्रुओंपर विजय पाना निश्चित है ॥ ३० ॥

सम्यग् वर्तितुकामस्य विशेषेण महीपतेः।
नयानामुपदेशेन नास्ति लोकसमो गुरुः ॥ ३१ ॥

'जो उत्तम बर्तावकी इच्छा रखता हो, ऐसे पुरुष विशेषतः पृथ्वीपालक नरेशको नीतिका उपदेश करनेके लिये लोकके समान दूसरा कोई गुरु नहीं है ॥ ३१ ॥

व्यसनेषु जघन्यस्य धर्ममध्यस्य धीमतः।
बलज्येष्ठस्य नृपतेर्नास्ति सामन्तजं भयम् ॥ ३२ ॥

'जो द्यूत और मृगया आदि दुर्व्यसनोंमें दूसरोंकी अपेक्षा निकृष्ट है (अर्थात् जो व्यसनोंसे दूर रहता है), धर्ममें जिसकी मध्यम कोटिकी स्थिति है, परंतु जो बलमें दूसरोंकी अपेक्षा बढ़-चढ़कर है, उस बुद्धिमान् नरेशको कभी सामन्तोंसे भय नहीं प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

सहजैर्बाध्यते सर्वः प्रवृद्धैरिन्द्रियादिभिः।
अमित्राणां प्रियकरैर्मोहैरधृतिरीश्वरः ॥ ३३ ॥

'अपने शरीरके साथ ही उत्पन्न हुए ये इन्द्रियरूपी शत्रु जब बढ़ जाते हैं, तब मोह उत्पन्न करनेवाले हो जाते हैं और शत्रुओंका प्रिय साधन करने लगते हैं; उस दशामें उनके द्वारा सभी धैर्यहीन पुरुषों अथवा राजाओंको सदा ही बाधा प्राप्त होती है ॥ ३३ ॥

यत् त्वया स्त्रीकृते मोहात् सगणो रावणो हतः।
नैतदौपयिकं मन्ये महद् वै कर्म कुत्सितम् ॥ ३४ ॥

'तुमने जो मोहवश एक नारीके लिये दल-बलसहित रावणका वध कर डाला है, इसे मैं न्यायसंगत नहीं मानता। यद्यपि पराक्रमकी दृष्टिसे वह महान् कर्म है तो भी वास्तवमें वह निन्दित ही है ॥ ३४ ॥

वनवासप्रवृत्तेन यत् त्वया व्रतशालिना।
प्रहृतं राक्षसानीके नैव दृष्टः सतां विधिः ॥ ३५ ॥

'तुम वनवासमें प्रवृत्त हुए थे। वनवासी मुनियोंके नियमोंका पालन करनेमें ही तुम्हारी शोभा थी। फिर भी तुमने जो राक्षसोंकी सेनापर प्रहार किया, ऐसा बर्ताव कभी किन्हीं सत्पुरुषोंने किया हो—यह कभी नहीं देखा गया है ॥ ३५ ॥

सतामक्रोधजो धर्मः शुभां नयति सद्गतिम्।
यत् त्वया निहता मोहाद् दूषिताश्चाश्रमौकसः॥ ३६ ॥

'क्रोधका परित्याग करके साधुपुरुष जिस धर्मका पालन करते हैं, वह उन्हें शुभ सद्गतिकी प्राप्ति कराता है। तुमने जो मोहवश राक्षसोंका वध किया है, इससे सभी आश्रमवासी कलंकित हो गये (तुम्हारे द्वारा व्रत-नियमका उल्लङ्घन देखकर दूसरे भी ऐसा ही करने लगेंगे; अतः तुम दुराचारके प्रवर्तक हो गये) ॥ ३६ ॥

स एष रावणो धन्यो यस्त्वया व्रतचारिणा।
स्त्रीनिमित्ते हतो युद्धे ग्राम्यान् धर्माननवेक्षता ॥ ३७ ॥

'यह रावण धन्य था, जो युद्धमें ग्राम्य धर्मपर ही दृष्टि

रखनेवाले तुझ-जैसे व्रतधारीके हाथसे एक स्त्रीके कारण मारा गया ॥ ३७ ॥

यदि ते निहतः संख्ये दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः।
युध्यस्वाद्य मया सार्धं मृधे यद्यसि वीर्यवान् ॥ ३८ ॥

'यदि तुमने खोटी बुद्धिवाले उस अजितेन्द्रिय रावणको युद्धमें मारा है और ऐसा करके तुम पराक्रमी बन रहे हो तो आओ, आज रणक्षेत्रमें मेरे साथ युद्ध करो ॥ ३८ ॥

तस्य दूतस्य तच्छ्रुत्वा भाषितं रूक्षवादिनः।
धैर्यादसम्भ्रान्तवपुः सस्मितं राघवोऽब्रवीत् ॥ ३९ ॥

'उस कटुवादी दूतका वह भाषण सुनकर रघुनन्दन श्रीराम अपने स्वाभाविक धैर्यके कारण विचलित नहीं हुए, अपितु मुसकराते हुए बोले—॥३९॥

असदेतत् त्वया दूत भाषितं तस्य गौरवात्।
यन्मां क्षिपसि दोषेण वेदात्मानं च सुस्थिरम्॥ ४० ॥

'दूत ! तूने उस दानवके प्रति गौरव-बुद्धिके कारण जो कुछ कहा है, वह सब ओछी बात है; क्योंकि तू मुझपर तो दोषारोपण करके आक्षेप करता है और अपनेको न्यायमार्गमें भलीभाँति स्थित समझता है ॥ ४० ॥

यद्यहं सत्पथे मूढो यदि वा रावणो हतः।
यदि वा मे हृता भार्या का तत्र परिदेवना ॥ ४१ ॥

'यदि मैं सन्मार्गपर चलनेका विवेक खो बैठा था, यदि मेरे द्वारा रावण मारा गया था अथवा यदि मेरी स्त्रीका अपहरण हुआ था तो तू क्यों इन सब बातोंका रोना रो रहा है ? ॥ ४१ ॥

न वाङ्मात्रेण दुष्यन्ति साधवः सत्पथे स्थिताः।
जागर्ति च यथा देवः सदा सत्स्वितरेषु च ॥ ४२ ॥

'सन्मार्गपर स्थित रहनेवाले साधुपुरुष किसीके कहनेमात्रसे कलङ्कित नहीं होते हैं। सत् और असत् पुरुषोंके भीतर बैठे हुए भगवान् सदा जागते रहते हैं (कौन बुरा है और कौन भला—यह उनकी दृष्टिसे छिपा हुआ नहीं है) ॥४२॥

कृतं दूतेन यत् कार्यं गच्छ त्वं दूत मा चिरम्।
नात्मश्लाघिषु नीचेषु प्रहरन्तीह मद्विधाः ॥ ४३ ॥

'दूत ! तुझ-जैसे दूतको जो कुछ करना चाहिये, वह कार्य तूने कर लिया। अब यहाँसे चला जा, विलम्ब न कर। मेरे-जैसे पुरुष यहाँ अपनी झूठी प्रशंसा करनेवाले नीच जनोंपर प्रहार नहीं करते ॥ ४३ ॥

अयं ममानुजो भ्राता शत्रुघ्नः शत्रुतापनः।
तस्य दैत्यस्य दुर्बुद्धेर्मृधे प्रतिकरिष्यति ॥ ४४ ॥

'यह मेरा छोटा भाई शत्रुघ्न, जो शत्रुओंको पूर्ण संताप देनेवाला है, युद्धमें उस दुर्बुद्धि दैत्यको उसके कुकृत्योंका भरपूर बदला देगा' ॥ ४४ ॥

एवमुक्तः स दूतस्तु ययौ सौमित्रिणा सह।
अनुज्ञातो नरेन्द्रेण राघवेण महात्मना ॥ ४५ ॥

'महात्मा राजा रघुकुलनन्दन श्रीरामने ऐसा कहकर उसे जानेकी आज्ञा दी, तब वह दूत सुमित्राकुमार शत्रु साथ चला गया ॥ ४५ ॥

स शीघ्रयानः सम्प्राप्तस्तद् दानवपुरं महत्।
चक्रे निवेशं सौमित्रिर्वनान्ते युद्धलालसः ॥ ४६।

'सुमित्रानन्दन शत्रुघ्न शीघ्रतापूर्वक रथ हाँकते लवणासुरके उस विशाल नगरमें जा पहुँचे। वहाँ युद्ध लालसा लेकर उन्होंने उसके वनके समीप ही पड़ाव दिया ॥ ४६ ॥

ततो दूतस्य वचनात् स दैत्यः क्रोधमूर्च्छितः।
पृष्ठतस्तद् वनं कृत्वा युद्धायाभिमुखः स्थितः ॥ ४७।

'तदनन्तर दूतकी बातोंसे सब कुछ जानकर वह दै क्रोधसे अचेत-सा हो गया और उस वनको पीछे करके युद्ध लिये शत्रुघ्नके सामने आकर खड़ा हो गया ॥ ४७ ॥

तद् युद्धमभवद् घोरं सौमित्रेर्दानवस्य च।
उभयोरेव बलिनोः शूरयो रणमूर्धनि ॥ ४८।

'सुमित्राकुमार शत्रुघ्न तथा दानव लवणासुर दोनों बड़े बलवान् और शूरवीर थे। युद्धके मुहानेपर उन दोनों घोर संग्राम हुआ ॥ ४८ ॥

तौ शरैः साधु निशितैरन्योन्यमभिजघ्नतुः।
न च तौ युद्धवैमुख्यं श्रमं वाप्युपजग्मतुः ॥ ४९।

'वे तीखे बाणोंद्वारा एक दूसरेको भलीभाँति चो पहुँचाने लगे। दोनों ही न तो युद्धसे विमुख हुए और उन्हें थकावट ही हुई ॥ ४९ ॥

अथ सौमित्रिणा बाणैः पीडितो दानवो युधि।
ततः स शूलरहितः पर्यहीयत दानवः ॥ ५०।

'तदनन्तर उस युद्धस्थलमें सुमित्राकुमारने दानव लव को बाणोंद्वारा अधिक पीड़ित किया, इससे उसका शूल हाथ छूटकर गिर पड़ा। अब वह सर्वथा कमजोर पड़ने लगा ॥

स गृहीत्वाङ्कुशं चैव देवैर्दत्तवरं रणे।
कर्षणं सर्वभूतानां लवणो विरराम ह ॥ ५१॥

'तब उसने युद्धमें अङ्कुश उठाया, जिसके लिये उसे देवताओंसे वर प्राप्त हो चुका था। वह अङ्कुश समस्त प्राणियों को आकर्षित करनेवाला था। उसे लेकर लवणासुर जोर-जोर से गर्जना करने लगा ॥ ५१ ॥

शिरोधरायां जग्राह सोऽङ्कुशेन चकर्ष ह।
प्रवेशयितुमारब्धो लवणो राघवानुजम् ॥ ५२॥

'उसने वह अङ्कुश श्रीरामके छोटे भाई शत्रुघ्नके गले फँसा दिया और खींचकर उसे उनके कण्ठमें घुसाना आरम्भ किया ॥ ५२ ॥

स रुक्मत्सरुमुद्यम्य शत्रुघ्नः खड्गमुत्तमम्।
शिरश्चिच्छेद खड्गेन लवणस्य महामृधे ॥ ५३॥

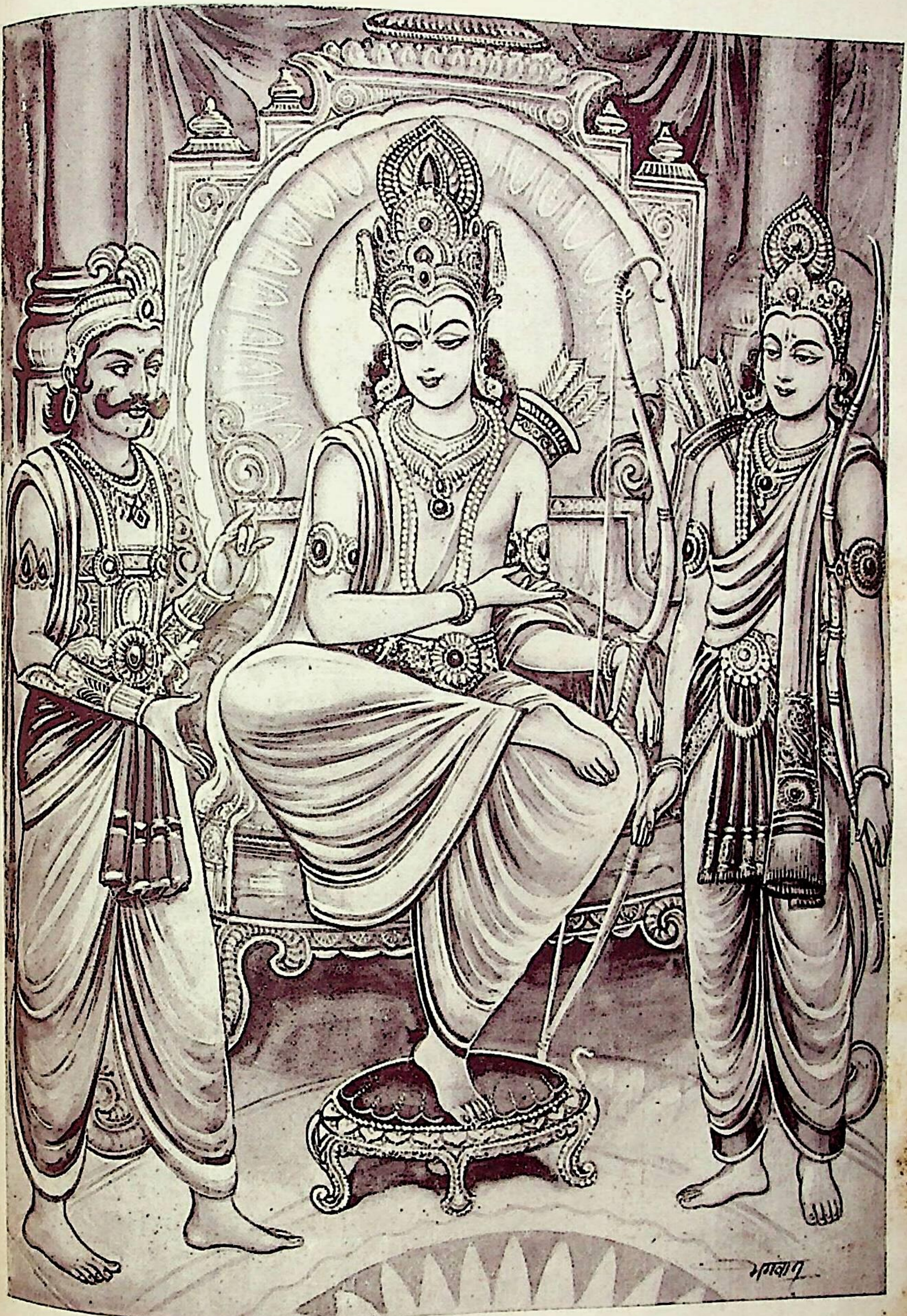

लवणासुरकी श्रीरामको चुनौती

'यह देख उस महासमरमें शत्रुघ्नने सोनेकी मूठवाली अच्छी तलवार उठा ली और उसके द्वारा उस दानवका मस्तक काट गिराया ॥ ५३ ॥

स हत्वा दानवं संख्ये सौमित्रिर्मित्रवत्सलः ।
तद् वनं तस्य दैत्यस्य चिच्छेदास्त्रेण बुद्धिमान् ॥ ५४ ॥

'मित्रोंपर स्नेह रखनेवाले बुद्धिमान् शत्रुघ्नने युद्धस्थलमें उस दानवका वध करके उसके उस वनको भी अपने अस्त्रोंद्वारा काट डाला ॥ ५४ ॥

छित्त्वा वनं तत् सौमित्रिर्निवेशं सोऽभ्यरोचयत् ।
भवाय तस्य देशस्य पुर्याः परमधर्मवित् ॥ ५५ ॥

'वनको काटकर परम धर्मज्ञ सुमित्राकुमारने उस देशके अभ्युदयके लिये वहाँ एक नगर बसानेकी इच्छा की ॥ ५५ ॥

तस्मिन् मधुवनस्थाने मथुरा नाम सा पुरी ।
शत्रुघ्नेन पुरा सृष्टा हत्वा तं दानवं रणे ॥ ५६ ॥

'रणभूमिमें उस दानवका वध करके शत्रुघ्नने पूर्वकालमें उसी मधुवनकी जगह उस पुरीका निर्माण किया; जिसका नाम मथुरा है ॥ ५६ ॥

सा पुरी परमोदारा साट्टप्राकारतोरणा ।
स्फीता राष्ट्रसमाकीर्णा समृद्धबलवाहना ॥ ५७ ॥

'वह मथुरापुरी बहुत बड़ी है। उसमें ऊँची अट्टालिकाएँ, चहारदीवारी तथा फाटक यथास्थान बने हुए हैं। वह समृद्धिशालिनीपुरी समूचे राष्ट्रके लोगोंसे भरी रहती है तथा सेना और सवारियोंसे सम्पन्न है ॥ ५७ ॥

उद्यानवनसम्पन्ना सुसीमा सुप्रतिष्ठिता ।
प्रांशुप्राकारवसना परिखाकुलमेखला ॥ ५८ ॥

'नाना प्रकारके उद्यान और वन उसकी शोभा बढ़ाते हैं। उसकी सीमा सुन्दर है। वह अच्छी तरहसे बसायी तथा दृढ़तापूर्वक स्थापित की गयी है। (वह नगरी एक नारीके समान जान पड़ती है) ऊँची-ऊँची चहारदीवारी उसके लिये साड़ीका काम देती है। चारों ओरसे खुदी हुई खाई मेखला (करधनी) के समान जान पड़ती है ॥ ५८ ॥

चयाट्टालककेयूरा प्रासादवरकुण्डला ।
सुसंवृतद्वारमुखी चत्वरोद्गारहासिनी ॥ ५९ ॥

'नगरद्वार और अट्टालिकाएँ उसके केयूर (भुजबंद)-सी प्रतीत होती हैं। श्रेष्ठ प्रासाद सुन्दर कुण्डलके समान शोभा देते हैं। किंवाड़रूपी अञ्चलोंसे अच्छी तरह ढका हुआ प्रधान द्वार मानो उसका मुख है तथा भीतरके आँगनका उद्घाटन उसकी हँसीका प्रकाश है ॥ ५९ ॥

अरोगवीरपुरुषा हस्त्यश्वरथसंकुला ।
अर्धचन्द्रप्रतीकाशा यमुनातीरशोभिता ॥ ६० ॥

'उस पुरीमें नीरोग वीर पुरुषोंका निवास है। हाथी, घोड़े तथा रथ आदि वाहनोंसे वह भरी रहती है। यमुनाजीके तटपर बसी हुई वह शोभाशालिनी पुरी अर्धचन्द्राकार प्रतीत होती है ॥ ६० ॥

पुण्यापणवती दुर्गा रत्नसंचयगर्विता ।
क्षेत्राणि सस्यवन्त्यस्याः काले देवश्च वर्षति ॥ ६१ ॥

'इसके भीतर सुन्दर एवं पवित्र हाट हैं। इसमें प्रवेश करना दूसरोंके लिये कठिन है तथा इसे अपने रत्नराशि-संग्रहपर गर्व है। इसके पार्श्ववर्ती जनपदके खेत अनाजके हरे-भरे पौदोंसे शोभा पाते हैं और वहाँ पर्जन्यदेव समयपर वर्षा करते हैं ॥ ६१ ॥

नरनारीप्रमुदिता सा पुरी स्म प्रकाशते ।
निविष्टविषयश्चैव शूरसेनस्ततोऽभवत् ॥ ६२ ॥

'नर-नारियोंके आमोद-प्रमोदसे पूर्ण मथुरापुरी सदा अपनी शोभासे प्रकाशित होती रहती है। इस पुरी और प्रदेशमें किसी समय राजा शूरसेन निवास करते थे ॥ ६२ ॥

तस्य पुर्यां महावीर्यो राजा भोजकुलोद्वहः ।
उग्रसेन इति ख्यातो महासेनपराक्रमः ॥ ६३ ॥

'उसी पुरीमें इस समय महाबली राजा उग्रसेन हैं, जो भोजवंशका भार वहन करते हैं। उनका पराक्रम कुमार कार्तिकेयके समान है ॥ ६३ ॥

तस्य पुत्रत्वमापन्नो योऽसौ विष्णो त्वया हतः ।
कालनेमिर्महादैत्यः संग्रामे तारकामये ॥ ६४ ॥

'विष्णो ! आपने तारकामय संग्राममें जिस कालनेमि नामक महादैत्यका वध किया था, वह अब उन्हीं राजा उग्रसेनका पुत्र होकर प्रकट हुआ है ॥ ६४ ॥

कंसो नाम विशालाक्षो भोजवंशविवर्धनः ।
राजा पृथिव्यां विख्यातः सिंहविस्पष्टविक्रमः ॥ ६५ ॥

'उसका नाम है कंस। उसके नेत्र बड़े-बड़े हैं। वह भोजवंशकी वृद्धि करनेवाला है। उसकी चाल-ढाल और पराक्रम सिंहके समान है। राजा कंस भूतलपर सर्वत्र विख्यात है ॥ ६५ ॥

राज्ञां भयंकरो घोरः शङ्कनीयो महीक्षिताम् ।
भयदः सर्वभूतानां सत्पथाद् बाह्यतां गतः ॥ ६६ ॥

'वह राजाओंके लिये अत्यन्त भयंकर है। भूमिपालोंके लिये शङ्कनीय हो गया है। समस्त प्राणियोंको भय देनेवाला कंस सदाचारसे गिर गया है ॥ ६६ ॥

दारुणाभिनिवेशेन दारुणेनान्तरात्मना ।
युक्तस्तेनैव दर्पेण प्रजानां रोमहर्षणः ॥ ६७ ॥

'दारुण प्रकृति और क्रूर अन्तरात्मासे युक्त हो वह कंस अपने पूर्वजन्मके दर्पसे ही उन्मत्त हो इस समय प्रजावर्गके लिये रोमाञ्चकारी बन गया है ॥ ६७ ॥

न राजधर्माभिरतो नात्मपक्षसुखावहः।
नात्मराज्ये प्रियकरश्चण्डः कररुचिः सदा ॥ ६८ ॥

'वह न तो राजधर्ममें अनुराग रखता है, न अपने पक्षके लोगोंको ही सुख देता है और न अपने राज्यमें ही किसीका प्रिय करता है। सदा ही अत्यन्त क्रोधमें भरा रहता है और केवल प्रजासे कर वसूल करनेकी ही रुचि रखता है ॥ ६८ ॥

स कंसस्तत्र सम्भूतस्त्वया युद्धे पराजितः।
क्रव्यादो बाधते लोकानासुरेणान्तरात्मना ॥ ६९ ॥

'आपने जिसे युद्धमें पराजित किया था, वह कालनेमि ही वहाँ 'कंस' बनकर प्रकट हुआ है। उसकी अन्तरात्मा आसुरभावसे युक्त है, जिसके द्वारा वह मांसभक्षी राक्षस समस्त लोकोंको पीड़ा देता है ॥ ६९ ॥

योऽप्यसौ हयविक्रान्तो हयग्रीव इति स्मृतः।
केशी नाम हयो जातः स तस्यैव जघन्यजः ॥ ७० ॥

'पहले जो घोड़ेके समान चलनेवाला अथवा पराक्रमी हयग्रीव नामसे विख्यात दैत्य था, वही 'केशी' नामक अश्वके रूपमें भूतलपर उत्पन्न हुआ है। इस समय केशी मानो कंसका छोटा भाई बना हुआ है ॥ ७० ॥

स दुष्टो ह्रेषितपटुः केसरी निरवग्रहः।
वृन्दावने वसत्येको नृणां मांसानि भक्षयन् ॥ ७१ ॥

'वह दुष्ट केशी हींसने या हिनहिनानेमें बड़ा पटु है। उसकी गर्दनपर बड़े-बड़े बाल हैं। वह सर्वथा उच्छृङ्खल है। वह मनुष्योंके मांसका ही आहार करता हुआ वृन्दावनमें अकेला ही निवास करता है ॥ ७१ ॥

अरिष्टो वलिपुत्रश्च ककुद्मी वृषरूपधृक्।
गवामरित्वमापन्नः कामरूपी महासुरः ॥ ७२ ॥

'बलिका पुत्र अरिष्ट ऊँचे पुट्ठोंसे युक्त बैलका रूप धारण करके प्रकट हुआ है। वह कामरूपी महान् असुर गौओंका शत्रु बन गया है ॥ ७२ ॥

रिष्टो नाम दितेः पुत्रो वरिष्ठो दानवेषु यः।
स कुञ्जरत्वमापन्नो दैत्यः कंसस्य वाहनः ॥ ७३ ॥

'दानवोंमें श्रेष्ठ दितिपुत्र रिष्ट नामक दैत्य हाथीके रूपमें उत्पन्न होकर इस समय कंसका वाहन बना हुआ है ॥ ७३ ॥

लम्बो नामेति विख्यातो योऽसौ दैत्येषु दर्पितः।
प्रलम्बो नाम दैत्योऽसौ वटं भाण्डीरमाश्रितः ॥ ७४ ॥

'दैत्योंमें अभिमानी जो लम्ब नामसे विख्यात दैत्य था, वह इस समय प्रलम्ब नामसे प्रसिद्ध हो भाण्डीर वटका आश्रय लेकर रहता है ॥ ७४ ॥

खर इत्युच्यते दैत्यो धेनुकः सोऽसुरोत्तमः।
घोरं तालवनं दैत्यश्चरत्युद्वासयन् प्रजाः ॥ ७५ ॥

'जो खर नामक दैत्य कहा जाता था, वही इस असुरोंमें श्रेष्ठ धेनुक बना हुआ है। वह दैत्य प्रजा उजाड़ता हुआ भयानक तालवनमें विचरता रहता है ॥

वाराहश्च किशोरश्च दानवौ यौ महाबलौ।
मल्लौ रङ्गगतौ तौ तु जातौ चाणूरमुष्टिकौ ॥

'पूर्वकालमें वाराह और किशोर नामवाले जो दो बली दानव थे,वे ही चाणूर और मुष्टिकके नामसे उत्पन्न हैं। वे दोनों इस समय कंसके अखाड़ेके प्रमुख मल्ल (वान) हैं ॥ ७६ ॥

यौ तौ मयश्च तारश्च दानवौ दानवान्तक।
प्राग्ज्योतिषे तौ भौमस्य नरकस्य पुरे रतौ ॥

'दानव-विनाशक नारायण ! मय और तार प्रसिद्ध जो दो दानव थे, वे इस समय प्राग्ज्योतिषपुरमें, भूमिपुत्र नरकासुरका नगर है, निवास करते हैं ॥ ७७ ॥

एते दैत्या विनिहतास्त्वया विष्णो निराकृताः।
मानुषं वपुरास्थाय बाधन्ते भुवि मानुषान् ॥

'विष्णो ! आपके द्वारा पराजित और निहत हु दैत्य मानव-शरीर धारण करके भूतलपर मनुष्योंको पीड़ा रहे हैं ॥ ७८ ॥

त्वत्कथाद्वेषिणः सर्वे त्वद्भक्तान् घ्नन्ति मानुषान्।
तव प्रसादात् तेषां वै दानवानां क्षयो भवेत् ॥

'ये सब-के-सब आपकी कथावार्तासे द्वेष रखते हैं आपमें भक्ति रखनेवाले मनुष्योंको मार डालते हैं। आ कृपा-प्रसादसे ही इन दानवोंका संहार हो सकता है ॥७९

त्वत्तस्ते बिभ्यति दिवि त्वत्तो बिभ्यति सागरे।
पृथिव्यां तव बिभ्यन्ति नान्यतस्तु कदाचन ॥ ८०

'वे आकाश या स्वर्गमें रहें तो भी आपसे डरते हैं समुद्रमें रहें तो भी आपसे ही भयमीत होते हैं और पृथ्वीपर कर भी केवल आपसे ही भय खाते हैं, दूसरे किसीसे कदा नहीं डरते हैं ॥ ८० ॥

दुर्वृत्तस्य हतस्यापि त्वया नान्येन श्रीधर।
दिवश्च्युतस्य दैत्यस्य गतिर्भवति मेदिनी ॥ ८१

'श्रीधर ! जो आपके ही द्वारा मारा जाता है, दूसरे द्वारा नहीं, उस दैत्यको, वह दुराचारी ही क्यों न रहा हो आप ही प्राप्त होते हैं। परंतु जो दूसरेके द्वारा मारा गया है वह दैत्य स्वर्गसे भ्रष्ट होनेपर पृथ्वीपर ही जन्म लेता है ॥

व्युत्थितस्य च मेदिन्यां हतस्य नृशरीरिणः।
दुर्लभं स्वर्गगमनं त्वयि जाग्रति केशव ॥ ८२

'केशव ! जबतक यमराजसे आप पापियोंको नरक गिरानेके लिये जागरूक हैं, तबतक पृथ्वीपर जो दूसरेके हाथ से मारा जाता है, उसे स्वर्गकी प्राप्ति भी दुर्लभ रहती है

(फिर आपकी प्राप्ति तो दूरकी बात है । अतः आप दया करके दैत्योंको मारकर उन्हें सद्गति प्रदान करनेके लिये ही भूतलपर अवतार ग्रहण करें) ॥ ८२ ॥

तदागच्छ स्वयं विष्णो गच्छामः पृथिवीतलम् ।
दानवानां विनाशाय विसृजात्मानमात्मना ॥ ८३॥

'अतः विष्णो ! आप स्वयं आइये । चलिये पृथ्वीपर चलें। वहाँ दानवोंके विनाशके लिये आप स्वयं ही अपने-आपको प्रकट करें ॥ ८३ ॥

मूर्तयो हि तवाव्यक्ता दृश्यादृश्याः सुरोत्तमैः ।
तासु सृष्टास्त्वया देवाः सम्भविष्यन्ति भूतले ॥ ८४ ॥

'आपकी बहुत-सी मूर्तियाँ हैं, जो व्यक्त नहीं होती हैं। श्रेष्ठ देवता भी आपकी कुछ मूर्तियोंको देख पाते हैं और कुछको नहीं देख पाते हैं । आपके द्वारा रचे गये देवता उन्हीं मूर्तियोंमें भूतलपर प्रकट होंगे ॥ ८४ ॥

तवावतरणे विष्णो कंसः स विनशिष्यति ।
सेत्स्यते च स कार्यार्थो यस्यार्थे भूमिरागता ॥ ८५ ॥

'विष्णो ! आपके अवतार लेनेपर ही कंसका विनाश होगा और जिसके लिये पृथ्वी यहाँ आयी थी, वह सारा प्रयोजन सिद्ध हो सकेगा ॥ ८५ ॥

त्वं भारते कार्यगुरुस्त्वं चक्षुस्त्वं परायणम् ।
तदागच्छ हृषीकेश क्षितौ ताञ्जहि दानवान् ॥ ८६ ॥

'हृषीकेश ! आपको भारतवर्षमें महान् कार्य करना है । आप ही सबके नेत्र हैं (नेत्रोंकी भाँति सन्मार्गका दर्शन कराते हैं) और आप ही सबके परम आश्रय हैं; अतः आइये, भूतलपर अवतार लेकर उन दानवोंका वध कीजिये' ॥ ८६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि नारदवाक्ये चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें नारदका वाक्यविषयक चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भगवान् विष्णुके द्वारा नारदजीके कथनका उत्तर तथा ब्रह्माजीका भगवान्से उनके अवतार लेने योग्य स्थान और पिता-माता आदिका परिचय देना

वैशम्पायन उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा सस्मितं मधुसूदनः ।
प्रत्युवाच शुभं वाक्यं वरेण्यः प्रभुरीश्वरः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! भोग और मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषोंके द्वारा जो एकमात्र वरण करने योग्य हैं, वे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर मधुसूदन श्रीहरि नारदजीकी पूर्वोक्त बात सुनकर मुस्कराये और अपनी कल्याणमयी वाणीद्वारा उन्हें उत्तर देते हुए बोले—॥ १ ॥

त्रैलोक्यस्य हितार्थाय यन्मां वदसि नारद ।
तस्य सम्यक्प्रवृत्तस्य श्रूयतामुत्तरं वचः ॥ २ ॥

'नारद ! तुम तीनों लोकोंके हितके लिये मुझसे जो कुछ कह रहे हो, तुम्हारी वह बात उत्तम प्रवृत्तिके लिये प्रेरणा देनेवाली है, अब तुम उसका उत्तर सुनो ॥ २ ॥

विदिता देहिनो जाता मयैते भुवि दानवाः ।
यां च यस्तनुमादाय दैत्यः पुष्यति विग्रहम् ॥ ३ ॥

'अब मुझे भलीभाँति विदित है कि ये दानव भूतलपर मानव-शरीर धारण करके उत्पन्न हो गये हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि कौन-कौन दैत्य किस-किस शरीरको ग्रहण करके वैरभावकी पुष्टि कर रहा है ॥ ३ ॥

जानामि कंसं सम्भूतमुग्रसेनसुतं भुवि ।
केशिनं चापि जानामि दैत्यं तुरगविग्रहम् ॥ ४ ॥

'मुझे यह भी ज्ञात है कि कालनेमि उग्रसेनपुत्र कंसके रूपमें इस पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ है । घोड़ेका शरीर धारण करनेवाले केशी नामक दैत्यसे भी मैं अपरिचित नहीं हूँ ॥ ४ ॥

नागं कुवलयापीडं मल्लौ चाणूरमुष्टिकौ ।
अरिष्टं चापि जानामि दैत्यं वृषभरूपिणम् ॥ ५ ॥

'कुवलयापीड़ हाथी, चाणूर और मुष्टिक नामक मल्ल तथा वृषभरूपधारी दैत्य अरिष्टासुरको भी मैं अच्छी तरह जानता हूँ ॥ ५ ॥

विदितो मे खरश्चैव प्रलम्बश्च महासुरः ।
सा च मे विदिता विप्र पूतना दुहिता बलेः ॥ ६ ॥

'विप्रवर ! खर और प्रलम्ब नामक महान् असुर भी मुझसे अज्ञात नहीं हैं । राजा बलिकी पुत्री पूतनाको भी मैं जानता हूँ ॥ ६ ॥

कालियं चापि जानामि यमुनाह्रदगोचरम् ।
वैनतेयभयाद् यस्तु यमुनाह्रदमाविशत् ॥ ७ ॥

'यमुनाके कुण्डमें रहनेवाले कालियनागको भी मैं जानता हूँ, जो गरुड़के भयसे उस कुण्डमें जा घुसा है॥ ७ ॥

विदितो मे जरासंधः स्थितो मूर्ध्नि महीक्षिताम् ।
प्राग्ज्योतिषपुरे वापि नरकं साधु तर्कये ॥ ८ ॥

'मैं उस जरासंधसे भी परिचित हूँ, जो इस समय समस्त भूमिपालोंके मस्तकपर खड़ा है । प्राग्ज्योतिषपुरमें रहनेवाले नरकासुरको भी मैं भलीभाँति जानता हूँ ॥ ८ ॥

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Saraswati Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मानुषे पार्थिवे लोके मानुषत्वमुपागतम् ।
बाणं च शोणितपुरे गुहप्रतिमतेजसम् ॥ ९ ॥
दृप्तं बाहुसहस्रेण देवैरपि सुदुर्जयम् ।
मय्यासक्तां च जानामि भारतीं महतीं धुरम् ॥ १० ॥

'भूतलके मानवलोकमें जो मनुष्यरूप धारण करके उत्पन्न हुआ है, जिसका तेज कुमार कार्तिकेयके समान है, जो शोणितपुरमें निवास करता है और अपनी सहस्र भुजाओंके कारण देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्जय हो रहा है, उस बलाभिमानी दैत्य बाणासुरको भी मैं जानता हूँ तथा यह भी समझता हूँ कि पृथ्वीपर जो भारती सेनाका महान् भार बढ़ा हुआ है, उसे उतारनेका कार्य मुझपर ही अवलम्बित है ॥ ९–१० ॥

सर्वं तच्च विजानामि यथा योत्स्यन्ति ते नृपाः ।
क्षयो भुवि मया दृष्टः शक्रलोके च सत्क्रिया ।
एषां पुरुषदेहानामपरावृत्तदेहिनाम् ॥ ११ ॥

'मैं उन सारी बातोंसे परिचित हूँ कि किस प्रकार वे राजालोग आपसमें युद्ध करेंगे, भूतलपर उनका किस तरह संहार होगा और पुनर्जन्मसे रहित दिव्य पुरुष-देह धारण करनेवाले इन नरेशोंको इन्द्रलोकमें किस प्रकार सत्कार प्राप्त होगा—यह सब कुछ मेरी आँखोंके सामने है ॥ ११ ॥

सम्प्रवेक्ष्याम्यहं योगमात्मनश्च परस्य च ।
सम्प्राप्य पार्थिवं लोकं मानुषत्वमुपागतः ॥ १२ ॥

'मैं भूलोकमें पहुँचकर मानवशरीर धारण करके स्वयं तो उद्योगका आश्रय लूँगा ही, दूसरोंको भी इसके लिये प्रेरित करूँगा ॥ १२ ॥

कंसादींश्चापि तान् सर्वान् वधिष्यामि महासुरान् ।
तेन तेन विधानेन येन यः शान्तिमेष्यति ॥ १३ ॥

'जिस-जिस विधिसे जो-जो असुर मर सकेगा, उस-उस उपायसे ही मैं उन सभी कंस आदि बड़े-बड़े असुरोंका वध करूँगा ॥ १३ ॥

अनुप्रविश्य योगेन तास्ता हि गतयो मया ।
अमीषां हि सुरेन्द्राणां हन्तव्या रिपवो युधि ॥ १४ ॥

'मैं योगसे इनके भीतर प्रवेश करके इनकी अन्तर्धान आदि गतियोंको नष्ट कर दूँगा और इस प्रकार युद्धमें इन देवेश्वरोंके शत्रुओंका संहार कर डालूँगा ॥ १४ ॥

जगत्यर्थे कृतो योऽयमंशोत्सर्गो दिवौकसैः ।
सुरदेवर्षिगन्धर्वैरितश्चानुमते मम ॥ १५ ॥
विनिश्चयो प्रागेव नारदायं कृतो मया ।

'नारद ! पृथ्वीके हितके लिये स्वर्गवासी देवताओं, देवर्षियों तथा गन्धर्वोंने यहाँसे जो अपने-अपने अंशका उत्सर्ग किया है, यह सब मेरी अनुमतिसे हुआ है; क्योंकि मैंने पहलेसे ही ऐसा निश्चय कर लिया था ॥ १५½ ॥

निवासं ननु मे ब्रह्मन् विदधातु पितामहः ॥ १६ ॥
यत्र देशे यथा जातो येन वेषेण वा वसन् ।
तानहं समरे हन्यां तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १७ ॥

'ब्रह्मन् ! अब यह ब्रह्माजी मेरे लिये निवासस्थानकी व्यवस्था करें । पितामह ! अब आप ही मुझे बताइये कि मैं किस प्रदेशमें कैसे प्रकट होकर अथवा किस वेशमें रहकर उन सब असुरोंका समरभूमिमें संहार करूँगा ?' ॥ १६-१७ ॥

ब्रह्मोवाच

नारायणेमं सिद्धार्थमुपायं शृणु मे विभो ।
भुवि यस्ते जनयिता जननी च भविष्यति ॥ १८ ॥
यत्र त्वं च महाबाहो जातः कुलकरो भुवि ।
यादवानां महद् वंशमखिलं धारयिष्यसि ॥ १९ ॥
तांश्चासुरान् समुत्पाट्य वंशं कृत्वाऽऽत्मनो महत् ।
स्थापयिष्यसि मर्यादां नृणां तन्मे निशामय ॥ २० ॥

ब्रह्माजीने कहा—सर्वव्यापी नारायण ! आप मुझसे इस उपायको सुनिये, जिसके द्वारा सारा प्रयोजन सिद्ध हो जायगा । महाबाहो ! भूतलपर जो आपके पिता होंगे, जो माता होंगी और जहाँ जन्म लेकर आप अपने कुलकी वृद्धि करते हुए यादवोंके सम्पूर्ण विशाल वंशको धारण करेंगे तथा उन समस्त असुरोंका संहार करके अपने वंशका महान् विस्तार करते हुए जिस प्रकार मनुष्योंके लिये धर्मकी मर्यादा स्थापित करेंगे, वह सब बताता हूँ; सुनिये ॥ १८–२० ॥

पुरा हि कश्यपो विष्णो वरुणस्य महात्मनः ।
जहार यज्ञिया गा वै पयोदास्तु महामखे ॥ २१ ॥

विष्णो ! पहलेकी बात है, महर्षि कश्यप अपने महान् यज्ञके अवसरपर महात्मा वरुणके यहाँसे कुछ दुधारू गौएँ माँग लाये थे, जो अपने दूध आदिके द्वारा यज्ञकार्यमें बहुत ही उपयोगिनी थीं ॥ २१ ॥

अदितिः सुरभिश्चैते द्वे भार्ये कश्यपस्य तु ।
प्रदीयमाना गास्तास्तु नैच्छतां वरुणस्य वै ॥ २२ ॥

यज्ञ-कार्य पूर्ण हो जानेपर भी कश्यपकी दो पत्नी अदिति और सुरभिने वरुणको उनकी गौएँ लौटा देनेकी इच्छा नहीं की ॥ २२ ॥

ततो मां वरुणोऽभ्येत्य प्रणम्य शिरसा ततः ।
उवाच भगवन् गावो गुरुणा मे हृता इति ॥ २३ ॥

तब वरुणदेव मेरे पास आये और मस्तक झुकाकर मुझे प्रणाम करनेके पश्चात् बोले—'भगवन् ! पिताजीने मेरी गौएँ लाकर रख ली हैं ॥ २३ ॥

कृतकार्यो हि गास्तास्तु नानुजानाति मे गुरुः ।
अन्ववर्तत भार्ये द्वे अदितिं सुरभिं तथा ॥ २४ ॥

'यद्यपि उन गौओंसे जो कार्य लेना था, वह पूरा हो गया

है, तो भी पिताजी मुझे उन्हें वापस ले जानेकी आज्ञा नहीं देते हैं। इस विषयमें उन्होंने अपनी दो पत्नियों अदिति और सुरभिके मतका अनुसरण किया है ॥ २४ ॥

मम ता ह्यक्षया गावो दिव्याः कामदुहः प्रभो।
चरन्ति सागरान् सर्वान् रक्षिताः स्वेन तेजसा॥ २५ ॥

'प्रभो ! मेरी वे गौएँ दिव्य, अक्षय एवं कामधेनु हैं तथा अपने ही तेजसे सुरक्षित रहकर समस्त समुद्रोंमें विचरण करती हैं ॥ २५ ॥

कस्ता धर्षयितुं शक्तो मम गाः कश्यपादृते।
अक्षयं वा क्षरन्त्यग्र्यं पयो देवामृतोपमम् ॥ २६ ॥

'देव ! जो अमृतके समान उत्तम दूधको अविच्छिन्न रूपसे देती रहती हैं, मेरी उन गौओंको पिता कश्यपजीके सिवा दूसरा कौन बलपूर्वक रोक सकता है ? ॥ २६ ॥

प्रभुर्वा व्युत्थितो ब्रह्मन् गुरुर्वा यदि वेतरः।
त्वया नियम्याः सर्वे वै त्वं हि नः परमा गतिः ॥ २७ ॥

'ब्रह्मन् ! कोई कितना ही शक्तिशाली हो, गुरुजन हो अथवा और कोई हो, यदि वह मर्यादाका त्याग करता है तो आप ही ऐसे सब लोगोंपर नियन्त्रण कर सकते हैं; क्योंकि आप हम सब लोगोंके परम आश्रय हैं ॥ २७ ॥

यदि प्रभवतां दण्डो लोके कार्यमजानताम्।
न विद्यते लोकगुरो न स्युर्वै लोकसेतवः ॥ २८ ॥

'लोकगुरो ! यदि संसारमें अपने कर्तव्यसे अनभिज्ञ रहनेवाले शक्तिशाली पुरुषोंके लिये दण्डकी व्यवस्था न हो तो जगत्‌की सारी मर्यादाएँ नष्ट हो जायँगी ॥ २८ ॥

यथा वास्तु तथा वास्तु कर्तव्ये भगवान् प्रभुः।
मम गावः प्रदीयन्तां ततो गन्तास्मि सागरम् ॥ २९ ॥

'इस कार्यका जैसा परिणाम होनेवाला हो वैसा ही कर्तव्यका पालन करने या करानेमें आप ही हमारे प्रभु हैं। मुझे मेरी गौएँ दिलवा दीजिये, तभी मैं समुद्रको जाऊँगा ॥ २९ ॥

या आत्मदेवता गावो या गावः सत्त्वमव्ययम्।
लोकानां त्वत्प्रवृत्तानामेकं गोब्राह्मणं स्मृतम्॥ ३० ॥

'इन गौओंके देवता साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं तथा ये अविनाशी सत्त्वगुणका साकाररूप हैं। आपसे प्रकट हुए जो-जो लोक हैं, उन सबकी दृष्टिमें गौ तथा ब्राह्मण एक समान माने गये हैं ॥ ३० ॥

त्रातव्याः प्रथमं गावस्त्रातास्त्रायन्ति ता द्विजान्।
गोब्राह्मणपरित्राणे परित्रातं जगद् भवेत् ॥ ३१ ॥

'पहले गौओंकी रक्षा करनी चाहिये। फिर सुरक्षित हुई गौएँ ब्राह्मणोंकी रक्षा करती हैं। गौओं और ब्राह्मणोंकी रक्षा होनेपर सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षा हो जाती है' ॥ ३१ ॥

इत्यम्बुपतिना प्रोक्तो वरुणेनाहमच्युत।
गवां कारणतत्त्वज्ञः कश्यपे शापमुत्सृजम् ॥ ३२ ॥

अच्युत ! जलके स्वामी वरुणके ऐसा कहनेपर गौओंके कारण-तत्त्वको जाननेवाले मैंने कश्यपको शाप देते हुए कहा— ॥ ३२ ॥

येनांशेन हृता गावः कश्यपेन महर्षिणा।
स तेनांशेन जगतीं गत्वा गोपत्वमेष्यति ॥ ३३ ॥

'महर्षि कश्यपने अपने जिस अंशसे गौओंका अपहरण किया है, उस अंशसे वे पृथ्वीपर जाकर गोप होंगे ॥ ३३ ॥

या च सा सुरभिर्नाम अदितिश्च सुरारणिः।
तेऽप्युभे तस्य भार्ये वै तेनैव सह यास्यतः ॥ ३४ ॥

'वे जो सुरभि नामवाली देवी हैं तथा देवतारूपी अग्निको प्रकट करनेवाली अरणीके समान जो अदिति देवी हैं, वे दोनों पत्नियाँ कश्यपके साथ ही भूलोकमें जायँगी ॥ ३४ ॥

ताभ्यां च सह गोपत्वे कश्यपो भुवि रंस्यते।
स तस्य कश्यपस्यांशस्तेजसा कश्यपोपमः ॥ ३५ ॥
वसुदेव इति ख्यातो गोषु तिष्ठति भूतले।

'गोपयोनिमें प्रकट हुए कश्यप भूतलपर अपनी उन दोनों पत्नियोंके साथ सुखपूर्वक रहेंगे। कश्यपका जो दूसरा अंश कश्यपके समान ही तेजस्वी है, वह भूतलपर वसुदेव नामसे विख्यात हो गौओं और गोपोंके अधिपति रूपसे निवास करेंगे ॥ ३५½ ॥

गिरिर्गोवर्धनो नाम मथुरायास्त्वदूरतः ॥ ३६ ॥
तत्रासौ गोषु निरतः कंसस्य करदायकः।
तस्य भार्याद्वयं जातमदितिः सुरभिश्च ते ॥ ३७ ॥
देवकी रोहिणी चेमे वसुदेवस्य धीमतः।
सुरभी रोहिणी देवी चादितिर्देवकी त्वभूत् ॥ ३८ ॥

'मथुरासे थोड़ी दूरपर गोवर्धन नामक पर्वत है, जहाँ वे गौओंकी रक्षामें तत्पर रहेंगे और कंसको कर देनेवाले होंगे। वहाँ अदिति और सुरभि नामक इनकी दोनों पत्नियाँ बुद्धिमान् वसुदेवकी देवकी और रोहिणी नामक ही दो भार्याएँ होंगी; उनमें सुरभि तो रोहिणीदेवी कहलायेंगी और अदिति देवकी ॥ ३६—३८ ॥

तत्र त्वं शिशुरेवादौ गोपालकृतलक्षणः।
वर्धयस्व महाबाहो पुरा त्रैविक्रमे यथा ॥ ३९ ॥

'महाबाहो ! वहाँ आप पहले शिशुरूपमें ही रहकर गोपबालकका चिह्न धारण करके क्रमशः बड़े होइये। ठीक वैसे ही, जैसे त्रिविक्रमावतारके समय आप वामनसे बढ़कर विराट् हो गये थे ॥ ३९ ॥

छादयित्वाऽऽत्मनाऽऽत्मानं मायया योगरूपया।
तत्रावतर लोकानां भवाय मधुसूदन ॥ ४० ॥

'मधुसूदन ! योगमायाके द्वारा स्वयं ही अपने स्वरूपको आच्छादित करके आप लोकहितके लिये वहाँ अवतार लीजिये॥

जयाशीर्वचनैस्त्वेते वर्धयन्ति दिवौकसः।
आत्मानमात्मना हि त्वमवतार्य महीतले ॥ ४१ ॥
देवकीं रोहिणीं चैव गर्भाभ्यां परितोषय।
गोपकन्यासहस्राणि रमयंश्चर मेदिनीम् ॥ ४२ ॥

'ये देवतालोग विजयसूचक आशीर्वाद देकर आपके अभ्युदयकी कामना करते हैं। आप पृथ्वीपर स्वयं अपने-आपको उतारकर दो गर्भोंके रूपमें प्रकट हो माता देवकी तथा रोहिणीको संतुष्ट कीजिये। साथ ही यथासमय सहस्रों गोपकन्याओंको आनन्द प्रदान करते हुए व्रजभूमिमें विचरण कीजिये ॥ ४१-४२ ॥

गाश्च ते रक्षतो विष्णो वनानि परिधावतः।
वनमालापरिक्षिप्तं धन्या द्रक्ष्यन्ति ते वपुः ॥ ४३ ॥

'विष्णो ! वहाँ गौओंकी रक्षा करते हुए जब आप वनवनमें दौड़ते फिरेंगे, उस समय आपके वनमालाविभूषित मनोहर रूपका जो लोग दर्शन करेंगे, वे धन्य हो जायँगे ॥ ४३ ॥

विष्णौ पद्मपलाशाक्षे गोपालवसतिं गते।
बाले त्वयि महाबाहो लोको बालत्वमेष्यति ॥ ४४ ॥

'महाबाहो ! विकसित कमलदलके समान नेत्रवाले आप सर्वव्यापी परमेश्वर जब ग्वालबालके रूपमें व्रजमें निवास करेंगे, उस समय सब लोग आपके बालरूपकी झाँकी करके स्वयं भी बालक बन जायँगे (बाललीलाके रसास्वादनमें मग्न हो जायँगे) ॥ ४४ ॥

त्वद्भक्ताः पुण्डरीकाक्ष तव चित्तवशानुगाः।
गोषु गोपा भविष्यन्ति सहायाः सततं तव ॥ ४५ ॥

'कमलनयन ! आपके चित्तके अनुकूल चलनेवाले आपके भक्तजन वहाँ गौओंकी सेवाके लिये गोप बनकर प्रकट होंगे और सदा आपके साथ-साथ रहेंगे ॥ ४५ ॥

वने चारयतो गाश्च गोष्ठेषु परिधावतः।
मज्जतो यमुनायां च रतिं प्राप्स्यन्ति ते त्वयि ॥ ४६ ॥

'जब आप वनमें गौएँ चराते होंगे, व्रजमें इधर-उधर दौड़ते होंगे तथा यमुनाजीके जलमें गोते लगाते होंगे, उन सभी अवसरोंपर आपका दर्शन करके वे भक्तजन आनं उत्तरोत्तर अनुराग प्राप्त करेंगे ॥ ४६ ॥

जीवितं वसुदेवस्य भविष्यति सुजीवितम्।
यस्त्वया तात इत्युक्तः स पुत्र इति वक्ष्यति ॥ ४७ ॥

'वसुदेवका जीवन वास्तवमें उत्तम जीवन होगा, जो आपके द्वारा 'तात' कहकर पुकारे जानेपर आपसे 'मेरा कहकर बोलेंगे ॥ ४७ ॥

अथवा कस्य पुत्रत्वं गच्छेथाः कश्यपादृते।
का च धारयितुं शक्ता त्वां विष्णो अदितिं विना ॥ ४८ ॥

'विष्णो ! अथवा आप कश्यपके सिवा दूसरे किसके पु होंगे ? देवी अदितिके बिना दूसरी कौन-सी स्त्री आपको गर्भ धारण कर सकेगी ॥ ४८ ॥

योगेनात्मसमुत्थेन गच्छ त्वं विजयाय वै।
वयमप्यालयान् स्वान् स्वान् गच्छामो मधुसूदन॥ ४९॥

'मधुसूदन ! आप अपने स्वाभाविक योगबलसे असुरों पर विजय पानेके लिये यहाँसे प्रस्थान कीजिये और अब हम लोग भी अपने-अपने निवासस्थानको जा रहे हैं' ॥ ४९ ॥

वैशम्पायन उवाच

स देवानभ्यनुज्ञाय विविक्ते त्रिदिवालये।
जगाम विष्णुः स्वं देशं क्षीरोदस्योत्तरां दिशम् ॥ ५० ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! देवलोकके उस पुण्यप्रदेशमें बैठे हुए भगवान् विष्णु देवताओंको जाने की आज्ञा देकर क्षीरसागरसे उत्तर दिशामें स्थित अपने निवासस्थानको चले गये ॥ ५० ॥

तत्र वै पार्वती नाम गुहा मेरोः सुदुर्गमा।
त्रिभिस्तस्यैव विक्रान्तैर्नित्यं पर्वसु पूजिता ॥ ५१ ॥

वहाँ मेरुपर्वतकी पार्वती नामसे प्रसिद्ध एक अत्यन्त दुर्गम गुफा है, जो भगवान् विष्णुके तीन चरणचिह्नों उपलक्षित होती है; इसीलिये पर्वके अवसरोंपर सदा उसकी पूजा की जाती है ॥ ५१ ॥

पुराणं तत्र विन्यस्य देहं हरिरुदारधीः।
आत्मानं योजयामास वसुदेवगृहे प्रभुः ॥ ५२ ॥

उदारबुद्धिवाले भगवान् श्रीहरिने अपने पुरातन विग्रहको वहीं स्थापित करके अपने-आपको वसुदेवजीके घरमें अवतीर्ण होनेके कार्यमें लगा दिया ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पितामहवाक्ये पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें ब्रह्माजीका
वचनविषयक पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५५ ॥

हरिवंशपर्व सम्पूर्ण।

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमहाभारतम्

तस्य खिलभागो हरिवंशः

(तत्र विष्णुपर्व)

प्रथमोऽध्यायः

मङ्गलाचरण, नारदजीका मथुरामें आकर कंसको आनेवाले भयकी सूचना देना और कंसका अपने सेवकोंके सामने बढ़-बढ़कर बातें बनाना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

बदरिकाश्रमनिवासी प्रसिद्ध ऋषि श्रीनारायण (अथवा अन्तर्यामी नारायण), नर (नारायणसखा अर्जुन अथवा आदि जीव हिरण्यगर्भ) तथा नरोत्तम (इन हिरण्यगर्भ एवं अन्तर्यामीसे भी श्रेष्ठ शुद्ध सच्चिदानन्दघन पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण) को और (इन नर-नारायण तथा नरोत्तमके तत्त्वको प्रकट करनेवाली) देवी सरस्वतीको एवं (देवी सरस्वतीने संसारपर अनुग्रह करनेके लिये जिनके शरीरमें प्रवेश किया है, उन) व्यासजीको प्रणाम करके अविद्यारूपी अज्ञानान्धकारको जीतनेवाले इतिहास-पुराण आदि ग्रन्थोंका पाठ आरम्भ करे ॥

वैशम्पायन उवाच

ज्ञात्वा विष्णुं क्षितिगतं भागांश्च त्रिदिवौकसाम् ।
विनाशशंसी कंसस्य नारदो मथुरां ययौ ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! भगवान् विष्णु और देवताओंके अंश भूतलपर अवतीर्ण हो चुके हैं, यह जानकर देवर्षि नारद कंसको उसके निकटवर्ती विनाशकी सूचना देनेके लिये मथुराको गये ॥ १ ॥

त्रिविष्टपादापतितो मथुरोपवने स्थितः ।
प्रेषयामास कंसस्य दूतं स मुनिपुङ्गवः ॥ २ ॥

स्वर्गसे उतरकर वे मथुराके उपवनमें खड़े हो गये और वहींसे उन मुनिश्रेष्ठने कंसके पास एक दूत भेजा ॥ २ ॥

स दूतः कथयामास मुनेरागमनं वने ।
स नारदस्यागमनं श्रुत्वा त्वरितविक्रमः ॥ ३ ॥
निर्जगामासुरः कंसः स्वपुर्याः पद्मलोचनः ।

उस दूतने कंसके पास जाकर बताया कि नगरके उपवनमें देवर्षि नारद पधारे हैं । नारदजीके आगमनका समाचार सुनकर कमललोचन असुर कंस जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाता हुआ अपनी पुरीसे बाहर निकला ॥ ३½ ॥

स ददर्शातिथिं श्लाघ्यं देवर्षिं वीतकल्मषम् ॥ ४ ॥
तेजसा ज्वलनाकारं वपुषा सूर्यवर्चसम् ।
सोऽभिवाद्यर्घये तस्मै पूजां चक्रे यथाविधि ॥ ५ ॥

उपवनमें पहुँचकर उसने वहाँ अपने स्पृहणीय अतिथि देवर्षि नारदका दर्शन किया, जो पाप-तापसे रहित थे । उनका तेज प्रज्वलित अग्निके समान जान पड़ता था, वे शरीरसे सूर्यके समान दीप्तिमान् दिखायी देते थे । कंसने देवर्षिको प्रणाम करके उनका विधिपूर्वक पूजन किया ॥ ४-५ ॥

आसनं चाग्निवर्णाभं विसृज्योपजहार सः ।
निषसादासने तस्मिन् स वै शक्रसखो मुनिः ॥ ६ ॥

उसने उनके लिये अग्निके समान कान्तिमान् सुवर्णमय आसन देकर क्रमशः अर्घ्य, पाद्य आदि उपहार प्रस्तुत किये । तत्पश्चात् इन्द्रके सखा नारद मुनि उस आसनपर बैठे ॥६॥

उवाच चोग्रसेनस्य सुतं परमकोपनम् ।
पूजितोऽहं त्वया वीर विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ७ ॥
गते त्वेवं मम वचः श्रूयतां गृह्यतां त्वया ।

बैठनेके बाद वे परम क्रोधी उग्रसेनपुत्र कंससे बोले—'वीर ! तुमने मेरा शास्त्रीय विधिसे पूजन किया है, इसलिये मैं तुम्हें एक आवश्यक बात बताता हूँ, तुम मेरे उस वचनको सुनो और ग्रहण करो ॥ ७½ ॥

अनुसृत्य दिवोलोकानहं ब्रह्मपुरोगमान् ॥ ८ ॥
गतः सूर्यसखं तात विपुलं मेरुपर्वतम् ।
सनन्दनवनं चैव दृष्ट्वा चैत्ररथं वनम् ॥ ९ ॥

आप्लुतं सर्वतीर्थेषु सरित्सु सह दैवतैः।
दिव्या त्रिधारा दृष्टा मे पुण्या त्रिपथगा नदी ॥ १० ॥
स्मरणादेव सर्वेषामंहसां या विभेदिनी।

'तात ! मैं ब्रह्मलोक आदि सभी स्वर्गीय लोकोंमें घूमता हुआ उस विशाल मेरुपर्वतपर जा पहुँचा, जो सूर्यदेवका सखा है। फिर नन्दनवन और चैत्ररथवनका दर्शन करके मैंने देवताओंके साथ सम्पूर्ण तीर्थों और सरिताओंमें स्नान किया। उसके बाद तीन धाराओंमें बँटी हुई दिव्य त्रिपथगा नदी पुण्यसलिला गङ्गाका दर्शन किया, जो स्मरणमात्रसे ही समस्त पापोंका विनाश कर देनेवाली हैं ॥ ८-१०½ ॥

उपस्पृष्टं च तीर्थेषु दिव्येषु च यथाक्रमम् ॥ ११ ॥
दृष्टं मे ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम्।
देवगन्धर्वनिर्घोषैरप्सरोभिश्च नादितम् ॥ १२ ॥

'तत्पश्चात् क्रमशः दिव्य तीर्थोंमें स्नान एवं आचमन करके मैंने ब्रह्मर्षियोंसे सेवित ब्रह्माजीके भवनका दर्शन किया, जो देवगन्धर्वोंके वाद्यघोषसे गूँजता और अप्सराओंके मधुर गीतोंसे निनादित होता रहता है ॥ ११-१२ ॥

सोऽहं कदाचिद् देवानां समाजे मेरुमूर्धनि।
संगृह्य वीणां संसक्तामगच्छं ब्रह्मणः सभाम् ॥ १३ ॥

'वहाँसे होकर मैं किसी समय हाथमें वीणा लिये मेरुके शिखरपर विराजमान ब्रह्माजीकी सभामें गया, जहाँ देवताओंका समाज जुटा हुआ था ॥ १३ ॥

सोऽहं तत्र सितोष्णीषान् नानारत्नविभूषितान्।
दिव्यासनगतान् देवानपश्यं सपितामहान् ॥ १४ ॥

'वहाँ देखा कि श्वेत पगड़ी धारण किये नाना रत्नोंसे विभूषित ब्रह्मा आदि सभी देवता दिव्य सिंहासनपर बैठे हुए हैं ॥ १४ ॥

तत्र मन्त्रयतामेवं देवतानां मया श्रुतः।
भवतः सानुगस्यैव वधोपायः सुदारुणः ॥ १५ ॥

'उस सभामें देवताओंकी जो गुप्त मन्त्रणा हो रही थी, उसमें मैंने सुना कि सेवकोंसहित तुम्हारे वधके अत्यन्त दारुण उपायका ही विचार हो रहा है ॥ १५ ॥

तत्रैषा देवकी या ते मथुरायां लघुस्वसा।
योऽस्यां गर्भोऽष्टमः कंस स ते मृत्युर्भविष्यति ॥ १६ ॥

'कंस ! वहाँ जो कुछ मैंने सुना है, उसके अनुसार मथुरामें जो तुम्हारी यह छोटी बहिन देवकी है, इसका आठवाँ गर्भ तुम्हारे लिये मृत्युरूप होगा ॥ १६ ॥

देवानां स तु सर्वस्वं त्रिदिवस्य गतिश्च सः।
परं रहस्यं देवानां स ते मृत्युर्भविष्यति ॥ १७ ॥

'वह गर्भ देवताओंका सर्वस्व तथा स्वर्गलोकका आश्रय होगा। वह देवताओंका परम गोपनीय रहस्य है। वही तु मृत्युका कारण होगा ॥ १७ ॥

परश्चैवापरस्तेषां स्वयम्भूश्च दिवौकसाम्।
ततस्ते तन्महद्भूतं दिव्यं च कथयाम्यहम् ॥ १८

'वही देवताओंका पर और अपर (मोक्ष और स्व है। वही उन स्वर्गवासियोंका स्वयम्भू ब्रह्मा है। इसीलिये तुमसे कहता हूँ कि वह महान् दिव्य भूत है ॥ १८ ॥

श्लाघ्यश्च स हि ते मृत्युर्भूतपूर्वश्च तं स्मर।
यत्नश्च क्रियतां कंस देवक्या गर्भकृन्तने ॥ १९

'कंस ! वही पहले भी तुम्हारी मृत्यु रहा है और इ समय भी तुम्हारे लिये प्रशंसनीय मृत्युरूप होगा, अतः तु देवकीके गर्भका उच्छेद करनेके लिये प्रयत्न करो ॥ १९

एषा मे त्वद्गता प्रीतिर्यदर्थं चाहमागतः।
भुज्यन्तां सर्वकामार्थाः स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम् ॥ २

'यह मेरा तुम्हारे ऊपर प्रेम है, जिसके लिये मैं यहाँत आया हूँ। अच्छा, अब तुम सम्पूर्ण मनोवाञ्छित भोगों उपभोग करो, तुम्हारा कल्याण हो, मैं जाता हूँ' ॥ २० ॥

इत्युक्त्वा नारदे याते तस्य वाक्यं विचिन्तयन्।
जहासोच्चैस्ततः कंसः प्रकाशदशनश्चिरम् ॥ २१

ऐसा कहकर जब नारदजी चले गये, तब कंस बहु देरतक उनकी बातोंपर विचार करता रहा; फिर वह दाँ दिखाकर जोर-जोरसे अट्टहास करने लगा ॥ २१ ॥

प्रोवाच सस्मितं चैव भृत्यानामग्रतः स्थितः।
हास्यः खलु स सर्वेषु नारदो न विशारदः ॥ २२

और अपने सेवकोंके सामने खड़ा हो मुसकराकर बोला- 'यह नारद मुनि सर्वसाधारणमें उपहासके ही पात्र हैं, विशे चतुर नहीं हैं ॥ २२ ॥

नाहं भीषयितुं शक्यो देवैरपि सवासवैः।
आसनस्थः शयानो वा प्रमत्तो मत्त एव च ॥ २३

'मैं बैठा अथवा सोया रहूँ, असावधान या मतवाला होऊँ, किसी भी दशामें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी मुझे डरा नहीं सकते ॥ २३ ॥

योऽहं दोर्भ्यामुदाराभ्यां क्षोभयेयं धरामिमाम्।
कोऽस्ति मां मानुषे लोके यः क्षोभयितुमुत्सहेत् ॥ २४

'मैं अपनी दोनों विशाल भुजाओंसे इस धरातलको क्षुब्ध कर सकता हूँ। मनुष्यलोकमें कौन ऐसा पुरुष है, जो मुझे क्षोभमें डालनेका साहस कर सके ॥ २४ ॥

अद्यप्रभृति देवानामेव देवानुवर्तिनाम्।
नृपक्षिपशुसंघानां करोमि कदनं महत् ॥ २५

'यह लो, आजसे मैं देवताओं तथा उनका अनुसर

करनेवाले मनुष्यों, पक्षियों और पशुसमूहोंका महान् संहार करूँगा ॥ २५ ॥

आज्ञाप्यतां हयः केशी प्रलम्बो धेनुकस्तथा।
अरिष्टो वृषभश्चैव पूतना कालियस्तथा ॥ २६ ॥
अटध्वं पृथिवीं कृत्स्नां यथेष्टं कामरूपिणः।
प्रहरध्वं च सर्वेषु येऽस्माकं पक्षदूषकाः ॥ २७ ॥

'अश्वरूपधारी केशी, प्रलम्ब, धेनुक, वृषभरूपधारी अरिष्ट, पूतना और कालियनागको आज्ञा दे दो कि तुम सब लोग इच्छानुसार रूप धारण करके सारी पृथ्वीपर अपनी मौजसे घूमो और जो हमारे पक्षकी निन्दा करनेवाले हों, उन सबपर प्रहार करो ॥ २६-२७ ॥

गर्भस्थानामपि गतिर्विज्ञेया चैव देहिनाम्।
नारदेन हि गर्भेभ्यो भयं नः समुदाहृतम् ॥ २८ ॥

'जो प्राणी गर्भमें निवास करते हों, उनका भी पता लगा लेना चाहिये; क्योंकि नारदजीने मेरे लिये गर्भोंसे ही भय बताया है ॥ २८ ॥

भवन्तो हि यथाकामं मोदन्तां विगतज्वराः।
मां च वो नाथमाश्रित्य नास्ति देवकृतं भयम् ॥ २९ ॥

'तुमलोग निश्चिन्त होकर इच्छानुसार आनन्द भोगो। मैं तुम्हारा स्वामी और संरक्षक हूँ। मेरा आश्रय लेकर तुम्हें देवताओंकी ओरसे कोई भय नहीं है ॥ २९ ॥

स तु केलिकिलो विप्रो भेदशीलश्च नारदः।
सुश्लिष्टानपि लोकेऽस्मिन् भेदयँल्लभते रतिम् ॥ ३० ॥

'नारद बाबा तो युद्ध करानेका ही खेल खेलते हैं। लोगोंमें फूट डाल देना उनका स्वभाव है। इस संसारमें जो लोग बड़े स्नेहसे भलीभाँति मिल-जुलकर रहते हैं, उनमें भी फूट डालनेमें इन्हें आनन्द आता है ॥ ३० ॥

कण्डूयमानः सततं लोकानटति चञ्चलः।
घटमानो नरेन्द्राणां तन्त्रैर्वैराणि चैव हि ॥ ३१ ॥

'ये बड़े चञ्चल हैं और लोगोंमें सदा संघर्ष पैदा करते हुए घूमते रहते हैं। विभिन्न उपायोंद्वारा राजाओंमें वैर बढ़ा देनेके लिये ये सर्वदा सचेष्ट रहते हैं' ॥ ३१ ॥

एवं स विलपन्नेव वाङ्मात्रेणैव केवलम्।
विवेश कंसो भवनं दह्यमानेन चेतसा ॥ ३२ ॥

इस प्रकार केवल वाणीमात्रसे प्रलाप करता हुआ कंस अपने भवनमें चला गया। उस समय उसका चित्त चिन्ताकी आगमें जल रहा था ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि नारदागमने कंसवाक्ये प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें नारदजीका आगमन तथा कंसका वाक्यविषयक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

कंसद्वारा देवकीके गर्भके विनाशका प्रयत्न, भगवान् विष्णुका पाताललोकमें स्थित 'षड्गर्भ' नामक दैत्योंके जीवोंका आकर्षण करके उन्हें निद्रा देवीके हाथमें देना और देवकीके गर्भमें क्रमशः स्थापित करनेका आदेश देकर अन्य कर्तव्य बताना तथा कार्यसाधनके अनन्तर बढ़नेवाली उस देवीकी महिमाका उल्लेख

वैशम्पायन उवाच

सोऽज्ञापयत संरब्धः सचिवानात्मनो हि तान्।
यत्ता भवत सर्वे वै देवक्या गर्भकृन्तने ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! क्रोधमें भरे हुए कंसने अपने हितैषी मन्त्रियोंको आज्ञा दी कि तुम सब लोग देवकीके गर्भका उच्छेद करनेके लिये उद्यत हो जाओ ॥

प्रथमादेव हन्तव्या गर्भास्ते सप्त एव हि।
मूलादेव तु हन्तव्यः सोऽनर्थो यत्र संशयः ॥ २ ॥

पहले गर्भसे ही आरम्भ करके वे सातों गर्भ नष्ट कर देने चाहिये। जहाँ संशय हो, उस अनर्थका मूलसे ही उच्छेद कर देना आवश्यक है ॥ २ ॥

देवकी च गृहे गुप्ता प्रच्छन्नैरभिरक्षिता।
स्वैरं चरतु विश्रब्धा गर्भकाले तु रक्ष्यताम् ॥ ३ ॥

देवकी अपने भवनमें गुप्त रक्षकोंद्वारा सुरक्षित रहकर अपनी इच्छाके अनुसार निर्भय विचरे; परंतु जब वह गर्भवती हो जाय, उस समय उसे विशेष नियन्त्रणमें रखना चाहिये ॥ ३ ॥

मासान् वै पुष्पमासादीन् गणयन्तु मम स्त्रियः।
परिणामे तु गर्भस्य शेषं ज्ञास्यामहे वयम् ॥ ४ ॥

मेरी स्त्रियाँ रजस्वलावस्थासे ही आरम्भ करके उसके गर्भ-धारणके मासोंकी गणना करती रहें। जब गर्भके परिपक्व होकर प्रकट होनेका समय आ जाय, तबसे जो शेष कृत्य है, उसे हमलोग स्वयं ही समझ लेंगे ॥ ४ ॥

वसुदेवस्तु संरक्ष्यः स्त्रीसनाथासु भूमिषु।
अप्रमत्तैर्मम हितै रात्रावहनि चैव हि।

स्त्रीभिर्वर्षवरैश्चैव वक्तव्यं न तु कारणम् ॥ ५ ॥

मेरे हितैषी सेवक रात-दिन सावधान रहकर स्त्रियोंसे सनाथ अन्तःपुरमें वसुदेवजीकी भलीभाँति रक्षा (देखभाल) करें। स्त्रियाँ और हिंजड़े भी उनपर कड़ी दृष्टि रखें, परंतु इसका कारण उन्हें नहीं बताना चाहिये ॥ ५ ॥

एष मानुष्यको यत्नो मानुषैरेव साध्यते।
श्रूयतां येन दैवं हि मद्विधैः प्रतिहन्यते ॥ ६ ॥

मनुष्योंद्वारा किया जानेवाला यह उपाय उन्हींसे साध्य हो सकता है, परंतु मेरे-जैसे शक्तिशाली पुरुष जिस उपायसे दैवको भी प्रतिहत (निष्फल) कर देते हैं, उसे सुनो ॥६॥

मन्त्रग्रामैः सुविहितैरौषधैश्च सुयोजितैः।
यत्नेन चानुकूलेन दैवमप्यनुलोम्यते ॥ ७ ॥

भलीभाँति किये हुए मन्त्रसमूहोंके जप, अच्छी तरह उपयोगमें लाये हुए औषधोंके सेवन तथा अनुकूल प्रयत्नसे दैवको भी अपने अनुकूल बना लिया जाता है ॥ ७ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं स यत्नवान् कंसो देवकीगर्भकृन्तने।
भयेन मन्त्रयामास श्रुतार्थो नारदात् स वै ॥ ८ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार कंस देवकीके गर्भका विनाश करनेके यत्नमें लग गया। नारदजीसे सारी बातें वह सुन चुका था, इसलिये भयसे प्रेरित होकर अपनी रक्षाके लिये मन्त्रियोंके साथ मन्त्रणा करने लगा ॥८॥

एवं श्रुत्वा प्रयत्नं वै कंसस्यारिष्टसंज्ञितम्।
अन्तर्धानं गतो विष्णुश्चिन्तयामास वीर्यवान् ॥ ९ ॥

कंसका सारा प्रयत्न जगत्के लिये उत्पातरूप ही था, उसे सुनकर अदृश्य भावसे वहाँ स्थित हुए परम पराक्रमी भगवान् विष्णुने इस प्रकार विचार किया—॥ ९ ॥

सप्तेमान् देवकीगर्भान् भोजपुत्रो वधिष्यति।
अष्टमे च मया गर्भे कार्यमाधानमात्मनः ॥ १० ॥

'भोजकुमार कंस देवकीके इन सात गर्भोंको मार डालेगा। अथवा आठवें गर्भमें मुझे अपने स्वरूपका आधान करना चाहिये' ॥ १० ॥

तस्य चिन्तयतस्त्वेवं पातालमगमन्मनः।
यत्र ते गर्भशयनाः षड्गर्भा नाम दानवाः ॥ ११ ॥

इस प्रकार सोचते हुए भगवान्का मन सहसा पातालकी ओर गया, जहाँ वे गर्भमें शयन करनेवाले षडगर्भ नामक दानव विद्यमान थे ॥ ११ ॥

विक्रान्तवपुषो दीप्तास्तेऽमृतप्राशनोपमाः।
अमरप्रतिमा युद्धे पुत्रा वै कालनेमिनः ॥ १२ ॥

उनके शरीर बल-विक्रमसे सम्पन्न थे। वे अमृतभोजी देवताओंके समान तेजस्वी थे और युद्धमें देवताओंके पराक्रम प्रकट करते थे। वे सब-के-सब कालनेमि दैत्यके पुत्र थे ॥ १२ ॥

ते ताततातं संत्यज्य हिरण्यकशिपुं पुरा।
उपासांचक्रिरे दैत्याः पुरा लोकपितामहम् ॥ १३

पहलेकी बात है, वे दैत्य अपने पिताके भी पिता हिर कशिपुको छोड़कर लोकपितामह ब्रह्माजीकी उपा करने लगे ॥ १३ ॥

तप्यमानास्तपस्तीव्रं जटामण्डलधारिणः।
तेषां प्रीतोऽभवद् ब्रह्मा षड्गर्भाणां वरं ददौ ॥ १४

सिरपर जटाका भार धारण किये वे तीव्र तपस्यामें गये। तब ब्रह्माजी उन 'षड्गर्भ' नामक दैत्योंपर प्रसन्न गये और उन्हें वर देने लगे ॥ १४ ॥

ब्रह्मोवाच

भो भो दानवशार्दूलास्तपसाहं सुतोषितः।
ब्रूत वो यस्य यः कामस्तस्य तं तं करोम्यहम् ॥ १५

ब्रह्माजीने कहा—दानवकुलमें सिंहके समान परा वीरो! मैं तुम्हारी तपस्यासे बहुत संतुष्ट हूँ। तुममेंसे जिस वस्तुकी इच्छा हो, उसे बताओ; मैं वह सब पूर्ण करूँगा

ते तु सर्वे समानार्था दैत्या ब्रह्माणमब्रुवन्।
यदि नो भगवान् प्रीतो दीयतां नो वरो वरः ॥ १६

उन सब दैत्योंका प्रयोजन या मनोरथ एक-सा ही था ने ब्रह्माजीसे बोले—'भगवन्! यदि आप हमपर प्रसन्न नो हमें यह श्रेष्ठ वर दीजिये ॥ १६ ॥

अवध्याः स्याम भगवन् दैवतैः समहोरगैः।
शापप्रहरणैश्चैव स्वस्ति नोऽस्तु महर्षिभिः ॥ १७ ॥

'भगवन्! हम देवताओं तथा बड़े-बड़े नागोंसे अवध्य हों। जो शापद्वारा प्रहार करनेवाले हैं, उन महर्षि भी हमारा सदा कल्याण ही हो ॥ १७ ॥

यक्षगन्धर्वपतिभिः सिद्धचारणमानवैः ।
मा भूद् वधो नो भगवन् ददासि यदि नो वरम् ॥ १८

'भगवन्! यदि आप हमें वर दे रहे हैं तो यक्ष, गन्ध पति, सिद्ध, चारण तथा मनुष्योंद्वारा हमारा वध न हो' ॥

तानुवाच ततो ब्रह्मा सुप्रीतेनान्तरात्मना।
भवद्भिर्यदिदं प्रोक्तं सर्वमेतद् भविष्यति ॥ १९ ॥

तब ब्रह्माजीने उनके प्रति अत्यन्त प्रसन्नचित्तसे कहा—'तुमलोगोंने यह जो कुछ कहा है, वह सब पूरा होगा' ॥१९॥

षड्गर्भाणां वरं दत्त्वा स्वयम्भूस्त्रिदिवं गतः।
ततो हिरण्यकशिपुः सरोषो वाक्यमब्रवीत् ॥ २० ॥

'उन 'षड्गर्भ' नामवाले दैत्योंको इस प्रकार वर देकर स्वयम्भू ब्रह्माजी ब्रह्मलोकको चले गये। उधर हिरण्यकशिपुने रोषमें भरकर उनसे कहा—॥ २० ॥

मामुत्सृज्य वरो यस्माद् धृतो वः पद्मसम्भवात्।
तस्माद् वस्त्याजितः स्नेहः शत्रुभूतांस्त्यजाम्यहम्॥ २१॥

'अरे! तुमने मुझे छोड़कर कमलयोनि ब्रह्माजीसे वर ग्रहण किया है; अतः अपने प्रति मेरे स्नेहका त्याग करा दिया। अब तुमलोग मेरे शत्रुभूत हो, इसलिये तुम्हें त्याग देता हूँ॥ २१ ॥

षड्गर्भा इति योऽयं वः शब्दः पित्राभिवर्धितः।
स एव वो गर्भगतान् पिता सर्वान् वधिष्यति ॥ २२ ॥

'जिस पिताने तुम्हें 'षड्गर्भ' नाम दिया और पाल-पोसकर बड़ा किया है, वही गर्भमें स्थित होनेपर तुम सब लोगोंका वध कर डालेगा ॥ २२ ॥

षडेव देवकीगर्भे षड्गर्भा वै महासुराः।
भविष्यथ ततः कंसो गर्भस्थान् वो वधिष्यति ॥ २३ ॥

'तुम छहों 'षड्गर्भ' नामक महान् असुर देवकीके गर्भमें स्थित होओगे। तब कंस (जो तुम्हारे पिता कालनेमिका ही स्वरूप होगा) तुम गर्भस्थ बालकोंका वध कर डालेगा।' ॥

वैशम्पायन उवाच

जगामाथ ततो विष्णुः पातालं यत्र तेऽसुराः।
षड्गर्भाः संयताः सन्ति जले गर्भगृहेशयाः ॥ २४ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! उनकी याद आते ही भगवान् विष्णु पाताललोकमें गये, जहाँ वे 'षड्गर्भ' नामक असुर संयमनिष्ठ होकर जलके भीतर गर्भगृहमें शयन करते थे ॥

संददर्श जले सुप्तान् षड्गर्भान् गर्भसंस्थितान्।
निद्रया कालरूपिण्या सर्वानन्तर्हितान् स वै ॥ २५ ॥

उन्होंने देखा, सब 'षड्गर्भ' नामक दैत्य कालरूपिणी निद्रासे तिरोहित होकर जलके भीतर गर्भगृहमें सो रहे हैं ॥

स्वप्नरूपेण तेषां वै विष्णुर्देहानथाविशत्।
प्राणेश्वरांश्च निष्कृष्य निद्रायै प्रददौ तदा ॥ २६ ॥

तब भगवान् विष्णु स्वप्नरूपसे उनके शरीरोंमें प्रविष्ट हुए और उनके जीवोंको खींचकर उन्होंने निद्राकी अधिष्ठात्री देवीके हाथमें दे दिया ॥ २६ ॥

तां चोवाच ततो निद्रां विष्णुः सत्यपराक्रमः।
गच्छ निद्रे मयोत्सृष्टा देवकीभवनान्तिकम् ॥ २७ ॥
इमान् प्राणेश्वरान् गृह्य षड्गर्भान् दानवोत्तमान्।
षड्गर्भान् देवकीगर्भे योजयस्व यथाक्रमम् ॥ २८ ॥

तत्पश्चात् सत्यपराक्रमी भगवान् विष्णु उस निद्रासे बोले—'निद्रे! तुम मेरी प्रेरणासे इन जीवोंको लेकर देवकीके घरके निकट जाओ। ये सब-के-सब 'षड्गर्भ' नामवाले श्रेष्ठ दानव हैं। इन सब षड्गर्भोंको क्रमशः देवकीके गर्भमें स्थापित करती रहो ॥ २७-२८ ॥

जातेष्वेतेषु गर्भेषु नीतेषु च यमक्षयम्।
कंसस्य विफले यत्ने देवक्याः सफले श्रमे ॥ २९ ॥
प्रसादं ते करिष्यामि मत्प्रभावसमं भुवि।
येन सर्वस्य लोकस्य देवि देवी भविष्यसि ॥ ३० ॥

'जब ये गर्भ जन्म लेकर कंसद्वारा यमलोक पहुँचा दिये जायँगे, जब कंसका प्रयत्न निष्फल और देवकीका परिश्रम सफल हो जायगा, तब मैं तुमपर विशेष कृपा करूँगा। देवि! उस समयसे भूतलपर तुम्हारा प्रभाव मेरे प्रभावके समान ही हो जायगा, जिससे तुम सम्पूर्ण जगत्की आराध्य देवी बन जाओगी ॥ २९-३० ॥

सप्तमो देवकीगर्भो योंऽशः सौम्यो ममाग्रजः।
स संक्रामयितव्यस्ते सप्तमे मासि रोहिणीम् ॥ ३१ ॥

'देवकीका जो सातवाँ गर्भ होगा, वह मेरा ही सौम्य अंश होगा और मुझसे पहले अवतीर्ण होनेके कारण मेरा बड़ा भाई होगा। वह गर्भ जब सात महीनेका हो जाय, तब उस सातवें मासमें ही तुम उसे खींचकर रोहिणीदेवीके गर्भमें स्थापित कर देना ॥ ३१ ॥

संकर्षणात्तु गर्भस्य स तु संकर्षणो युवा।
भविष्यत्यग्रजो भ्राता मम शीतांशुदर्शनः ॥ ३२ ॥

'गर्भका संकर्षण होनेसे वह तरुण वीर 'संकर्षण' नामसे प्रसिद्ध होगा, चन्द्रमाके समान गौर वर्णसे सुशोभित दिखायी देगा तथा वह मेरा बड़ा भाई होगा ॥ ३२ ॥

पतितो देवकीगर्भः सप्तमोऽयं भयादिति।
अष्टमे मयि गर्भस्थे कंसो यत्नं करिष्यति ॥ ३३ ॥

'उस समय लोग यही कहेंगे कि 'देवकीका सातवाँ गर्भ कंसके भयसे गिर गया।' आठवें शिशुके रूपमें जब मैं गर्भमें आऊँगा, तब कंस मुझे भी मारनेका प्रयास करेगा ॥ ३३ ॥

या तु सा नन्दगोपस्य दयिता भुवि विश्रुता।
यशोदा नाम भद्रं ते भार्या गोपकुलोद्वहा ॥ ३४ ॥

'देवि! तुम्हारा भला हो, इस समय भूतलपर 'यशोदा' नामसे विख्यात जो नन्दगोपकी प्यारी पत्नी हैं, वे गोपकुलकी स्वामिनी हैं ॥ ३४ ॥

तस्यास्त्वं नवमो गर्भः कुलेऽस्माकं भविष्यसि।
नवम्यामेव संजाता कृष्णपक्षस्य वै तिथौ ॥ ३५ ॥

'तुम उन्हींके नवम[1] गर्भके रूपमें हमारे कुलमें उत्पन्न

---

[1] यह नवम संख्या देवकीके आठ पुत्रोंकी अपेक्षासे कही गयी है। जान पड़ता है, श्रीकृष्णके बाद कुछ कालके लिये योगनिद्राका भी देवकीके उदरमें प्रवेश हुआ था।

होओगी । भाद्रपद कृष्णपक्षकी नवमी[1] तिथिको ही तुम्हारा जन्म होगा ॥ ३५ ॥

अहं त्वभिजितो योगे निशायां यौवने स्थिते ।
अर्धरात्रे करिष्यामि गर्भमोक्षं यथासुखम् ॥ ३६ ॥

'जब रात्रि युवावस्थामें स्थित होगी, उस आधी रातके समय अभिजित् मुहूर्तके योगमें मैं सुखपूर्वक गर्भवासका त्याग करूँगा (अर्थात् माताके उदरसे बाहर निकल आऊँगा) ॥

अष्टमस्य तु मासस्य जातावावां ततः समम् ।
प्राप्स्यावो गर्भव्यत्यासं प्राप्ते कंसस्य नाशने ॥ ३७ ॥

'हम दोनों भाई-बहिन गर्भके आठवें महीनेमें जन्म लेंगे । फिर कंसके भावी विनाशका कारण प्राप्त होनेपर हम दोनों साथ ही गर्भव्यत्यासको प्राप्त होंगे (बदल दिये जायँगे) ॥ ३७ ॥

अहं यशोदां यास्यामि त्वं देवि भज देवकीम् ।
आवयोर्गर्भसंयोगे कंसो गच्छतु मूढताम् ॥ ३८ ॥

'देवि ! मैं तो यशोदा माताके पास पहुँच जाऊँगा और तुम देवकीका आश्रय लेना । हम दोनोंके परिवर्तित गर्भसंयोग-के विषयमें कंस मूढभावको ही प्राप्त हो (वह इस अदला-बदली-के रहस्यसे अनभिज्ञ ही रहे) ॥ ३८ ॥

ततस्त्वां गृह्य चरणे शिलायां पातयिष्यति ।
निरस्यमाना गगने स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥ ३९ ॥

'तदनन्तर कंस तुम्हारे पैर पकड़कर तुम्हें शिलापर पटक देगा, परंतु तुम उसके हाथसे निकलकर आकाशमें शाश्वत स्थान प्राप्त कर लोगी ॥ ३९ ॥

मच्छवीसदृशी कृष्णा संकर्षणसमानना ।
बिभ्रती विपुलौ बाहू मम बाहूपमौ दिवि ॥ ४० ॥

'तुम्हारी अङ्ग-कान्ति मेरी ही छविके समान श्याम होगी, परंतु मुख भैया संकर्षणके समान गौर होगा । तुम आकाश-में मेरी ही भुजाओंके समान दोनों ओर दो-दो हृष्ट-पुष्ट विशाल बाहें धारण करोगी ॥ ४० ॥

त्रिशिखं शूलमुद्यम्य खड्गं च कनकत्सरुम् ।
पात्रीं च पूर्णां मधुना पङ्कजं च सुनिर्मलम् ॥ ४१ ॥

'चार भुजाओंमें तीन शिखाओंसे युक्त शूल (त्रिशूल), सोनेकी मूठ लगी हुई तलवार, मधुसे भरा हुआ पात्र तथा अत्यन्त निर्मल कमल धारण करके सुशोभित होओगी ॥ ४१ ॥

नीलकौशेयसंवीता पीतेनोत्तरवाससा ।
शशिरश्मिप्रकाशेन हारेणोरसि राजता ॥ ४२ ॥

'तुम्हारे श्रीअङ्गमें नीले रंगकी रेशमी साड़ी शोभा पायेगी और तुम रेशमी पीताम्बरकी चादर ओढ़े रहोगी । तुम्हे वक्षःस्थलमें चन्द्रमाकी किरणोंके समान प्रकाशमान श्वेत हा शोभा दे रहा होगा ॥ ४२ ॥

दिव्यकुण्डलपूर्णाभ्यां श्रवणाभ्यां विभूषिता ।
चन्द्रसापत्नभूतेन मुखेन त्वं विराजिता ॥ ४३ ॥

'दिव्य कुण्डलोंसे मण्डित कर्णयुगल तुम्हें विभूषित करें और चन्द्रमाकी भी शोभाको छीन लेनेवाले अपने मनो मुखसे तुम अत्यन्त शोभायमान होओगी ॥ ४३ ॥

मुकुटेन विचित्रेण केशबन्धेन शोभिना ।
भुजङ्गाभैर्भुजैर्भीमैर्भूषयन्ती दिशो दश ॥ ४४ ॥

'तुम्हारे मस्तकपर विचित्र मुकुट और शोभाशाली के बन्ध फबते होंगे । भुजङ्गोंकी-सी आभावाली अपनी भया भुजाओंसे तुम दसों दिशाओंकी शोभा बढ़ाओगी ॥ ४४ ॥

ध्वजेन शिखिबर्हेण उच्छ्रितेन विराजता ।
अङ्गजेन मयूराणामङ्गदेन च भास्वता ॥ ४५ ॥

'मोरपंखसे विभूषित ऊँचे ध्वज तथा मयूरपिच्छके बने हुए प्रकाशमान अङ्गद (भुजबंद) से तुम प्रकाशि हओगी ॥ ४५ ॥

कीर्णा भूतगणैर्घोरैर्मन्नियोगानुवर्तिनी ।
कौमारं व्रतमास्थाय त्रिदिवं त्वं गमिष्यसि ॥ ४६ ॥

'भयंकर भूतगणोंसे घिरकर मेरी आज्ञाके अधीन रह हुई तुम सदा कुमारी रहनेका व्रत लेकर स्वर्गलोकको ज जाओगी ॥ ४६ ॥

तत्र त्वां शतदृक्छक्रो मत्प्रदिष्टेन कर्मणा ।
अभिषेकेण दिव्येन दैवतैः सह योक्ष्यसे ॥ ४७ ॥

'वहाँ देवताओंसहित सहस्र नेत्रधारी इन्द्र मेरी आज्ञा अनुसार सब कार्योंका सम्पादन करनेके कारण (अथवा मेरे बतायी हुई पद्धतिके अनुसार) तुम्हारा दिव्य विधिसे अभिषे करेंगे ॥ ४७ ॥

तत्रैव त्वां भगिन्यर्थे ग्रहीष्यति स वासवः ।
कुशिकस्य तु गोत्रेण कौशिकी त्वं भविष्यसि ॥ ४८ ॥

'वहीं इन्द्र अपनी बहिन बनानेके लिये तुम्हें सादर ग्रह करेंगे । कुशिकके गोत्रसे सम्बन्ध होनेके कारण तुम 'कौशिकी नामसे प्रसिद्ध होओगी ॥ ४८ ॥

स ते विन्ध्ये नगश्रेष्ठे स्थानं दास्यति शाश्वतम् ।
ततः स्थानसहस्रैस्त्वं पृथिवीं शोभयिष्यसि ॥ ४९ ॥

'वे देवराज इन्द्र पर्वतोंमें श्रेष्ठ विन्ध्यगिरिपर तुम्हें शाश्वत स्थान प्रदान करेंगे । तत्पश्चात् तुम अपने सहस्रों स्थानोंद्वारा सारी पृथ्वीको सुशोभित करोगी ॥ ४९ ॥

त्रैलोक्यचारिणी सा त्वं भुवि सत्योपयाचना ।
चरिष्यसि महाभागे वरदा कामरूपिणी ॥ ५० ॥

---

[1] १. एक ही रातमें अष्टमीके बाद नवमी लग जानेपर देवीका यशोदाके गर्भसे प्राकट्य हुआ था—ऐसा समझना चाहिये ।

'महाभागे ! तुम इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली और वरदायिनी होकर तीनों लोकोंमें विचरोगी तथा तुमसे की हुई उपयाचना (मनौती) अवश्य सफल होगी ॥ ५० ॥

तत्र शुम्भनिशुम्भौ द्वौ दानवौ नगचारिणौ।
तौ च कृत्वा मनसि मां सानुगौ नाशयिष्यसि ॥ ५१॥

'वहाँ मुझे मनमें स्थान देकर तुम विन्ध्यपर्वतपर विचरनेवाले शुम्भ और निशुम्भ नामक दानवोंको उनके अनुयायियोंसहित नष्ट कर डालोगी ॥ ५१ ॥

कृत्वानुयात्रां भूतैस्त्वं सुरामांसबलिप्रिया।
तिथौ नवम्यां पूजां त्वं प्राप्स्यसे सपशुक्रियाम् ॥ ५२॥

'वहाँ तुम्हें मधुयुक्त एवं मांसरहित बलि (उपहार-सामग्री) प्रिय होगी और सब लोग बारंबार तुम्हारे तीर्थकी यात्रा करके नवमी तिथिको पशुपूजन कर्मके साथ तुम्हें पूजा देंगे, जिसे तुम प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करोगी ॥ ५२ ॥

ये च त्वां मत्प्रभावज्ञाः प्रणमिष्यन्ति मानवाः।
तेषां न दुर्लभं किञ्चित् पुत्रतो धनतोऽपि वा ॥ ५३ ॥

'मेरे प्रभावको जाननेवाले जो मनुष्य तुम्हें प्रणाम करेंगे, उनके लिये पुत्र अथवा धन आदि कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं होगी ॥ ५३ ॥

कान्तारेष्ववसन्नानां मग्नानां च महार्णवे।
दस्युभिर्वा निरुद्धानां त्वं गतिः परमा नृणाम् ॥ ५४ ॥

'कोई दुर्गम स्थानमें फँस जायँ, महासागरमें डूबने लगें अथवा लुटेरों या डाकुओंके द्वारा कैद कर लिये जायँ, उन सभी संकटग्रस्त मनुष्योंके लिये तुम सबसे बड़ा सहारा होओगी ॥ ५४ ॥

त्वां तु स्तोष्यन्ति ये भक्त्या स्तवेनानेन वै शुभे।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ ५५ ॥

'शुभे ! जो लोग भक्तिपूर्वक इस (आगे बताये जानेवाले) स्तोत्रसे तुम्हारी स्तुति करेंगे, उनके लिये न तो मैं अदृश्य रहूँगा और न वे ही मेरी दृष्टिसे ओझल रहेंगे'॥५५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि भारावतरणे निद्रासंविज्ञाने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें पृथ्वीके भारको उतारनेके प्रसंगमें भगवान्‌द्वारा निद्राको कर्तव्यका ज्ञापनविषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

आर्याकी स्तुति

वैशम्पायन उवाच

आर्यास्तवं प्रवक्ष्यामि यथोक्तमृषिभिः पुरा।
नारायणीं नमस्यामि देवीं त्रिभुवनेश्वरीम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! पूर्वकालमें जैसा ऋषियोंने बताया है, उसके अनुसार मैं आर्या देवीकी स्तुतिका वर्णन करता हूँ। मैं तीनों लोकोंकी अधीश्वरी नारायणी देवीको नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

त्वं हि सिद्धिर्धृतिः कीर्तिः श्रीर्विद्या संनतिर्मतिः।
संध्या रात्रिः प्रभा निद्रा कालरात्रिस्तथैव च ॥ २ ॥

देवि ! तुम्हीं सिद्धि, धृति, कीर्ति, श्री, विद्या, संनति, मति, संध्या, रात्रि, प्रभा, निद्रा और कालरात्रि हो ॥ २ ॥

आर्या कात्यायनी देवी कौशिकी ब्रह्मचारिणी।
जननी सिद्धसेनस्य उग्रचारी महाबला ॥ ३ ॥

आर्या, कात्यायनी, देवी, कौशिकी, ब्रह्मचारिणी, सिद्धसेन (कुमार कार्तिकेय) की जननी, उग्रचारिणी तथा महान् बलसे सम्पन्न हो ॥ ३ ॥

जया च विजया चैव पुष्टिस्तुष्टिः क्षमा दया।
ज्येष्ठा यमस्य भगिनी नीलकौशेयवासिनी ॥ ४ ॥

जया, विजया, पुष्टि, तुष्टि, क्षमा, दया, यमकी ज्येष्ठ बहिन तथा नीले रंगकी रेशमी साड़ी पहननेवाली हो ॥ ४ ॥

बहुरूपा विरूपा च अनेकविधिचारिणी।
विरूपाक्षी विशालाक्षी भक्तानां परिरक्षिणी ॥ ५ ॥

तुम्हारे बहुत-से रूप हैं, इसलिये तुम बहुरूपा हो। विकराल रूप धारण करनेके कारण तुम विरूपा हो। अनेक प्रकारकी विधियोंको आचरणमें लानेवाली हो। तीन होनेके कारण तुम्हारे नेत्र विरूप प्रतीत होते हैं, इसलिये तुम विरूपाक्षी हो। तुम्हारे नेत्र बड़े-बड़े हैं, इस कारण विशालाक्षी हो। तुम सदा अपने भक्तोंकी रक्षा करनेवाली हो ॥ ५ ॥

पर्वताग्रेषु घोरेषु नदीषु च गुहासु च।
वासस्ते च महादेवि वनेषूपवनेषु च ॥ ६ ॥

महादेवि ! पर्वतोंके घोर शिखरोंपर, नदियोंमें, गुफाओंमें तथा वनों और उपवनोंमें भी तुम्हारा निवास है ॥ ६ ॥

शबरैर्बर्बरैश्चैव पुलिन्दैश्च सुपूजिता।
मयूरपिच्छध्वजिनी लोकान् क्रमसि सर्वशः ॥ ७ ॥

शबरों, बर्बरों और पुलिन्दोंने भी तुम्हारा अच्छी तरहसे पूजन किया है। तुम मोरपङ्खकी ध्वजासे सुशोभित हो और क्रमशः सभी लोकोंमें विचरती रहती हो ॥ ७ ॥

कुक्कुटैश्छागलैर्मेषैः सिंहैर्व्याघ्रैः समाकुला।
घण्टानिनादबहुला विन्ध्यवासिन्यभिश्रुता ॥ ८ ॥

मुर्गे, बकरे, भेंड़, सिंह तथा व्याघ्र आदि पशु-पक्षी तुम्हें सदा घेरे रहते हैं। तुम्हारे पास घण्टाकी ध्वनि अधिक होती है। तुम 'विन्ध्यवासिनी' नामसे विख्यात हो ॥ ८ ॥

त्रिशूलपट्टिशधरा सूर्यचन्द्रपताकिनी।
नवमी कृष्णपक्षस्य शुक्लस्यैकादशी तथा ॥ ९ ॥

देवि ! तुम त्रिशूल और पट्टिश धारण करनेवाली हो। तुम्हारी पताकापर सूर्य और चन्द्रके चिह्न हैं। तुम प्रत्येक मासके कृष्णपक्षकी नवमी और शुक्लपक्षकी एकादशी हो ॥

भगिनी बलदेवस्य रजनी कलहप्रिया।
आवासः सर्वभूतानां निष्ठा च परमा गतिः ॥ १० ॥

बलदेवजीकी बहिन हो। रात्रि तुम्हारा स्वरूप है। कलह तुम्हें प्रिय लगता है। तुम सम्पूर्ण भूतोंका आवासस्थान, मृत्यु तथा परम गति हो ॥ १० ॥

नन्दगोपसुता चैव देवानां विजयावहा।
चीरवासाः सुवासाश्च रौद्री संध्याचरी निशा ॥ ११ ॥

तुम नन्दगोपकी पुत्री, देवताओंको विजय दिलानेवाली, चीर वस्त्रधारिणी, सुवासिनी, रौद्री, संध्याकालमें विचरनेवाली और रात्रि हो ॥ ११ ॥

प्रकीर्णकेशी मृत्युश्च सुरामांसबलिप्रिया।
लक्ष्मीरलक्ष्मीरूपेण दानवानां वधाय च ॥ १२ ॥

तुम्हारे केश बिखरे हुए हैं। तुम्हीं प्राणियोंकी मृत्यु हो। मधुसे युक्त तथा मांससे रहित बलि तुम्हें प्रिय है। तुम्हीं लक्ष्मी हो तथा तुम्हीं दानवोंका वध करनेके लिये अलक्ष्मी बन जाती हो ॥ १२ ॥

सावित्री चापि देवानां माता भूतगणस्य च।
कन्यानां ब्रह्मचर्यं त्वं सौभाग्यं प्रमदासु च ॥ १३ ॥

तुम्हीं सावित्री, देवमाता अदिति तथा समस्त भूतोंकी जननी हो। कन्याओंका ब्रह्मचर्य तुम्हीं हो और विवाहिता युवतियोंका सौभाग्य भी तुम्हीं हो ॥ १३ ॥

अन्तर्वेदी च यज्ञानामृत्विजां चैव दक्षिणा।
कर्षकाणां च सीतेति भूतानां धरणीति च ॥ १४ ॥

तुम्हीं यज्ञोंकी अन्तर्वेदी तथा ऋत्विजोंकी दक्षिणा हो। किसानोंकी सीता (हल जोतनेसे उभरी हुई रेखा) तथा समस्त प्राणियोंको धारण करनेवाली धरणी भी तुम्हीं हो ॥

सिद्धिः सांयात्रिकाणां तु वेला त्वं सागरस्य च।
यक्षाणां प्रथमा यक्षी नागानां सुरसेति च ॥ १५ ॥

नौका या जहाजसे यात्रा करनेवाले व्यापारियोंको प्राप्त होनेवाली सिद्धि भी तुम्हीं हो। तुम्हीं समुद्रकी तट-भूमि, यक्षोंकी प्रथम यक्षी (कुबेरकी माता) तथा नागोंकी सुरसा हो ॥ १५ ॥

ब्रह्मवादिन्यथो दीक्षा शोभा च परमा तथा।
ज्योतिषां त्वं प्रभा देवि नक्षत्राणां च रोहिणी ॥ १६

देवि ! तुम ब्रह्मवादिनी दीक्षा तथा परम शोभा हो ज्योतिर्मय ग्रहों एवं तारिकाओंकी प्रभा हो तथा नक्ष रोहिणी हो ॥ १६ ॥

राजद्वारेषु तीर्थेषु नदीनां सङ्गमेषु च।
पूर्णा च पूर्णिमा चन्द्रे कृत्तिवासा इति स्मृता ॥ १७

राजद्वारों, तीर्थों तथा नदियोंके संगमोंमें तुम पूर्णा रूपसे स्थित हो। तुम्हीं चन्द्रमामें पूर्णिमा रूपसे विराज होती हो तथा तुम्हीं कृत्तिवासा हो ॥ १७ ॥

सरस्वती च वाल्मीके स्मृतिर्द्वैपायने तथा।
ऋषीणां धर्मबुद्धिस्तु देवानां मानसी तथा ॥ १८

तुम महर्षि वाल्मीकिमें सरस्वती-रूपसे, श्रीकृष्णद्वैपा व्यासमें स्मृतिरूपसे तथा ऋषि-मुनियोंमें धर्म-बुद्धि स्थित हो। देवताओंमें सत्यसंकल्पात्मक चित्तवृत्ति तुम्हीं हो ॥ १८ ॥

सुरा देवी तु भूतेषु स्तूयसे त्वं स्वकर्मभिः।
इन्द्रस्य चारुदृष्टिस्त्वं सहस्रनयनेति च ॥ १९

तुम समस्त भूतोंमें सुरा देवी हो और अपने कर्मोंद्वा सदा प्रशंसित होती हो। इन्द्रकी मनोहर दृष्टि भी तुम्हीं हो सहस्रों नेत्रोंसे युक्त होनेके कारण 'सहस्रनयना' ना तुम्हारी ख्याति है ॥ १९ ॥

तापसानां च देवी त्वमरणी चाग्निहोत्रिणाम्।
क्षुधा च सर्वभूतानां तृप्तिस्त्वं दैवतेषु च ॥ २०

तुम तपस्वी मुनियोंकी देवी हो। अग्निहोत्र करनेवा ब्राह्मणोंकी अरणी हो। समस्त प्राणियोंकी क्षुधा तथा देवताओं सदा बनी रहनेवाली तृप्ति हो ॥ २० ॥

स्वाहा तृप्तिर्धृतिर्मेधा वसूनां त्वं वसूमती।
आशा त्वं मानुषाणां च पुष्टिश्च कृतकर्मणाम् ॥ २१

तुम्हीं स्वाहा, तृप्ति, धृति और मेधा हो। वसुओं वसुमती भी तुम्हीं हो। तुम्हीं मनुष्योंकी आशा तथा कृतकृ पुरुषोंकी पुष्टि हो ॥ २१ ॥

दिशश्च विदिशश्चैव तथा ह्यग्निशिखा प्रभा।
शकुनी पूतना त्वं च रेवती च सुदारुणा ॥ २२

तुम्हीं दिशा, विदिशा, अग्निशिखा, प्रभा, शकुनी पूतना तथा अत्यन्त दारुण रेवती हो ॥ २२ ॥

निद्रापि सर्वभूतानां मोहिनी क्षत्रिया तथा।
विद्यानां ब्रह्मविद्या त्वमोङ्कारोऽथ वषट् तथा ॥ २३

समस्त प्राणियोंको मोहमें डालनेवाली निद्रा भी तुम्हीं हो। तुम क्षत्रिया हो, विद्याओंमें ब्रह्मविद्या हो तथा तुम्हीं ॐकार एवं वषट्कार हो ॥ २३ ॥

नारीणां पार्वतीं च त्वां पौराणीमृषयो विदुः।
अरुन्धती च साध्वीनां प्रजापतिवचो यथा ॥ २४ ॥

ऋषि तुम्हें नारियोंमें पुराण-प्रसिद्ध पार्वती देवीके रूपमें जानते हैं। तुम साध्वी स्त्रियोंमें अरुन्धती हो, जैसा कि प्रजापतिका कथन है ॥ २४ ॥

पर्यायनामभिर्दिव्यैरिन्द्राणी चेति विश्रुता।
त्वया व्याप्तमिदं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥ २५ ॥

तुम अपने पर्यायवाची दिव्य नामोंद्वारा इन्द्राणीके रूपमें विख्यात हो। तुमने इस समस्त चराचर जगत्को व्याप्त कर रखा है ॥ २५ ॥

संग्रामेषु च सर्वेषु अग्निप्रज्वलितेषु च।
नदीतीरेषु चौरेषु कान्तारेषु भयेषु च ॥ २६ ॥
प्रवासे राजबन्धे च शत्रूणां च प्रमर्दने।
प्राणात्ययेषु सर्वेषु त्वं हि रक्षा न संशयः ॥ २७ ॥

समस्त संग्रामोंमें, आगसे जलते हुए घरोंमें, नदीके तटोंपर, चोरों और लुटेरोंके दलोंमें, दुर्गम स्थानोंमें, भयके सभी अवसरोंमें, परदेशमें, राजाके द्वारा बन्धन प्राप्त होनेपर, शत्रुओंका मर्दन करते समय एवं सभी प्राणसंकटकी घड़ियोंमें तुम्हीं सबकी रक्षा करनेवाली हो, इसमें संशय नहीं है ॥

त्वयि मे हृदयं देवि त्वयि चित्तं मनस्त्वयि।
रक्ष मां सर्वपापेभ्यः प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ २८ ॥

देवि! मेरा हृदय तुममें लगा हुआ है। मेरा चित्त और मन भी तुम्हारे ही चिन्तन एवं मननमें तत्पर है। तुम समस्त पापोंसे मेरी रक्षा करो। तुम्हें मुझपर कृपा करनी चाहिये ॥

इमं यः सुस्तवं दिव्यमिति व्यासप्रकल्पितम्।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय शुचिः प्रयतमानसः ॥ २९ ॥
त्रिभिर्मासैः काङ्क्षितं च फलं वै सम्प्रयच्छसि।
षड्भिर्मासैर्वरिष्ठं तु वरमेकं प्रयच्छसि ॥ ३० ॥

जो मनुष्य मेरे (विष्णु) द्वारा किये गये तथा व्यासजीके द्वारा पद्यमें आबद्ध किये हुए इस सुन्दर दिव्य स्तोत्रका प्रातःकाल उठकर शुद्धभावसे संयतचित्त होकर पाठ करता है, उसे तुम तीन ही महीनोंमें मनोवाञ्छित फल प्रदान कर देती हो तथा जो छः महीनोंतक लगातार पाठ करता रहे, उसे कोई एक विशिष्ट वर देती हो ॥ २९-३० ॥

अर्चिता तु त्रिभिर्मासैर्दिव्यं चक्षुः प्रयच्छसि।
संवत्सरेण सिद्धिं तु यथाकामं प्रयच्छसि ॥ ३१ ॥

तीन महीनोंतक पूजित होनेपर तुम उपासकको दिव्य दृष्टि प्रदान करती हो और एक वर्षतक आराधना करनेपर उसे उसकी इच्छाके अनुसार सिद्धि देती हो ॥ ३१ ॥

सत्यं ब्रह्म च दिव्यं च द्वैपायनवचो यथा।
नृणां बन्धं वधं घोरं पुत्रनाशं धनक्षयम् ॥ ३२ ॥
व्याधिमृत्युभयं चैव पूजिता शमयिष्यसि।
भविष्यसि महाभागे वरदा कामरूपिणी ॥ ३३ ॥

श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजीने जैसा बताया है, उसके अनुसार तुम्हीं सत्य एवं दिव्य ब्रह्म हो। महाभागे! तुम पूजित होनेपर मनुष्योंके बन्धन, भयानक वध, पुत्र और धनके नाश तथा रोग और मृत्युका भय दूर कर दोगी और इच्छानुसार रूप धारण करके उपासकोंके लिये वरदायिनी होओगी ॥ ३२-३३ ॥

मोहयित्वा च तं कंसमेका त्वं भोक्ष्यसे जगत्।
अहमप्यात्मनो वृत्तिं विधास्ये गोषु गोपवत् ॥ ३४ ॥

इतना ही नहीं, तुम उस कंसको मोहमें डालकर अकेली ही सम्पूर्ण जगत्का उपभोग करोगी। मैं भी व्रजमें गौओंके बीचमें रहकर गोपके समान ही अपना व्यवहार बनाऊँगा ॥

स्ववृद्ध्यर्थमहं चैव करिष्ये कंसगोपताम्।
एवं तां स समादिश्य गतोऽन्तर्धानमीश्वरः ॥ ३५ ॥

मैं अपनी पुष्टिके लिये कंसके गौओंकी चरवाही करूँगा। योगनिद्राको ऐसा आदेश देकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये ॥ ३५ ॥

सा चापि तं नमस्कृत्य तथास्त्विति च निश्चिता ॥ ३६ ॥

उस समय उस देवीने भी उन्हें नमस्कार करके 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी आज्ञाके पालन करनेका निश्चित विचार कर लिया ॥ ३६ ॥

यश्चैतत् पठते स्तोत्रं शृणुयाद् वाप्यभीक्ष्णशः।
सर्वार्थसिद्धिं लभते नरो नास्त्यत्र संशयः ॥ ३७ ॥

जो मनुष्य बारंबार इस स्तोत्रका पाठ अथवा श्रवण करता है, वह अपने सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि प्राप्त कर लेता है, इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि स्वप्नगर्भविधाने आर्यास्तुतौ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें स्वप्नगर्भ-विधान तथा आर्यादेवीकी स्तुतिविषयक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

कंसद्वारा देवकीके नवजात शिशुओंकी हत्या, योगमायाद्वारा सातवें गर्भका संकर्षण, श्रीकृष्णका प्राकट्य और नन्दभवनमें प्रवेश, कंसद्वारा नन्दकन्याको मारनेका प्रयत्न और उसका दिव्य रूपमें दर्शन देना, कंसद्वारा क्षमाप्रार्थना और देवकीद्वारा उसे क्षमा-दान

वैशम्पायन उवाच

कृते गर्भविधाने तु देवकी देवतोपमा।
जग्राह सप्त तान् गर्भान् यथावत् समुदाहृतान् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर पति-द्वारा गर्भाधान किये जानेपर देवताके समान तेजस्विनी देवकीने पहले बताये हुए सात गर्भोंको क्रमशः यथोचितरूपसे ग्रहण किया ॥ १ ॥

षड्गर्भान् निस्सृतान् कंसस्ताञ्जघान शिलातले।
आपन्नं सप्तमं गर्भं सा निनायाथ रोहिणीम् ॥ २ ॥

पहले जो छः गर्भ क्रमशः प्रकट हुए, उन सबको कंसने पत्थरपर पटककर मार डाला। जब सातवाँ गर्भ प्राप्त हुआ, तब योगमायाने उसे रोहिणीके उदरमें स्थापित कर दिया ॥

अर्धरात्रे स्थितं गर्भं पातयन्ती रजस्वला।
निद्रया सहसाऽऽविष्टा पपात धरणीतले ॥ ३ ॥

रजस्वला रोहिणी आधी रातके समय अपने भीतर स्थापित हुए उस गर्भको गिरानेकी चेष्टा करने लगी; परंतु सहसा निद्रासे आविष्ट होकर वह स्वयं पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ३ ॥

सा स्वप्नमिव तं दृष्ट्वा गर्भं निःसृतमात्मनः।
अपश्यन्ती च तं गर्भं मुहूर्तं व्यथिताभवत् ॥ ४ ॥

उसने अपने पेटसे निकले हुए उस गर्भको स्वप्नकी भाँति देखकर फिर नहीं देखा (क्योंकि योगमायाने उसे अदृश्य कर दिया था); इससे दो घड़ीतक उसके मनमें बड़ी व्यथा हुई ॥ ४ ॥

तामाह निद्रा संविग्नां नैशे तमसि रोहिणीम्।
रोहिणीमिव सोमस्य वसुदेवस्य धीमतः ॥ ५ ॥

रात्रिके अन्धकारमें बुद्धिमान् वसुदेवकी पत्नी रोहिणी चन्द्रमाकी प्यारी भार्या रोहिणीके समान दिखायी देती थी। वह उस गर्भके लिये उद्विग्न हो रही थी। उस समय निद्राने उससे कहा—॥ ५ ॥

कर्षणेनास्य गर्भस्य स्वगर्भे चाहितस्य वै।
संकर्षणो नाम सुतः शुभे तव भविष्यति ॥ ६ ॥

'शुभे ! तुम्हारे उदरमें स्थापित हुआ जो यह गर्भ है, इसका आकर्षण हुआ है, इस कारण तुम्हारा यह पुत्र संकर्षण नामसे प्रसिद्ध होगा' ॥ ६ ॥

सा तं पुत्रमवाप्यैवं हृष्टा किञ्चिदवाङ्मुखी।
विवेश रोहिणी वेश्म सुप्रभा रोहिणी यथा ॥ ७ ॥

इस प्रकार उस पुत्रको पाकर रोहिणी मन-ही-मन प्रसन्न हुई; किंतु लज्जासे उसका मुख कुछ नीचेको झुक गया। फिर तो वह उत्तम प्रभासे युक्त रोहिणीके समान अपने भवनके भीतर चली गयी ॥ ७ ॥

तस्य गर्भस्य मार्गेण गर्भमाधत्त देवकी।
यदर्थं सप्त ते गर्भाः कंसेन विनिपातिताः ॥ ८ ॥

उधर देवकीके उस सातवें गर्भकी खोज होने लगी; इतनेहीमें उसने आठवाँ गर्भ धारण किया, जिसके लिये कंसने उसके पहलेके सात गर्भ मार गिराये थे ॥ ८ ॥

तं तु गर्भं प्रयत्नेन ररक्षुस्तस्य मन्त्रिणः।
सोऽप्यत्र गर्भवसतौ वसत्यात्मेच्छया हरिः ॥ ९ ॥

कंसके मन्त्री उस आठवें गर्भकी रक्षामें यत्नपूर्वक लग गये। इधर भगवान् विष्णु भी स्वेच्छासे ही उस गर्भमें निवास करने लगे ॥ ९ ॥

यशोदापि समाधत्त गर्भं तदहरेव तु।
विष्णोः शरीरजां निद्रां विष्णुनिर्देशकारिणीम् ॥ १० ॥

उसी दिन (गोकुलमें)यशोदाने भी भगवान् विष्णुकी आज्ञाका पालन करनेवाली तथा उन्हींके शरीरसे प्रकट हुई योगनिद्राको अपने गर्भमें धारण किया ॥ १० ॥

गर्भकाले त्वसम्पूर्णे अष्टमे मासि ते स्त्रियौ।
देवकी च यशोदा च सुषुवाते समं तदा ॥ ११ ॥

गर्भका समय पूर्ण होनेसे पहले ही आठवें मासमें उन दोनों स्त्रियों—यशोदा और रोहिणीने प्रायः एक ही साथ प्रसव किया ॥ ११ ॥

यामेव रजनीं कृष्णो जज्ञे वृष्णिकुलोद्वहः।
तामेव रजनीं कन्यां यशोदापि व्यजायत ॥ १२ ॥

वृष्णिकुलका भार वहन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण जिस रातमें प्रकट हुए, उसी रातमें यशोदाने भी एक कन्याको जन्म दिया ॥ १२ ॥

नन्दगोपस्य भार्यैका वसुदेवस्य चापरा।
तुल्यकालं च गर्भिण्यौ यशोदा देवकी तथा ॥ १३ ॥

एक यशोदा नन्दगोपकी भार्या थी और दूसरी देवकी वसुदेवकी। वे दोनों प्रायः एक ही समयमें गर्भवती हुईं ॥

देवक्यजनयद् विष्णुं यशोदा तां तु दारिकाम्।
मुहूर्तेऽभिजिति प्राप्ते सार्धरात्रे विभूषिते ॥ १४ ॥

(आठवें मासमें) आधी रातके समय सुन्दर अभिजित् मुहूर्तका योग प्राप्त होनेपर देवकीने भगवान् विष्णुको पुत्ररूपसे जन्म दिया और यशोदाने उस कन्याको ॥ १४ ॥

सागराः समकम्पन्त चेलुश्च धरणीधराः।
जज्वलुश्चाग्नयः शान्ता जायमाने जनार्दने ॥ १५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके जन्म (अवतार) ग्रहण करते समय समुद्रोंमें ज्वार-सा उठने लगा। पृथ्वीको धारण करनेवाले शेष आदि विचलित हो उठे और बुझी हुई अग्नियाँ अपने-आप प्रज्वलित हो गयीं ॥ १५ ॥

शिवाश्च प्रववुर्वाताः प्रशान्तमभवद् रजः।
ज्योतींष्यतिव्यकाशन्त जायमाने जनार्दने ॥ १६ ॥

श्रीकृष्णके अवतार लेते समय शीतल मन्द सुखदायिनी हवा चलने लगी। उड़ती हुई धूल शान्त हो गयी तथा ग्रह और नक्षत्र अत्यन्त प्रकाशित होने लगे ॥ १६ ॥

अभिजिन्नाम नक्षत्रं जयन्ती नाम शर्वरी।
मुहूर्तो विजयो नाम यत्र जातो जनार्दनः ॥ १७ ॥

जब भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए, उस समय अभिजित् नामक मुहूर्त था, रोहिणी नक्षत्रका योग होनेसे अष्टमीकी वह रात जयन्ती कहलाती थी और विजय नामक विशिष्ट मुहूर्त व्यतीत हो रहा था ॥ १७ ॥

अव्यक्तः शाश्वतः सूक्ष्मो हरिर्नारायणः प्रभुः।
जायमानो हि भगवान्नयनैर्मोहयन् प्रभुः ॥ १८ ॥

अव्यक्त सनातन सूक्ष्मस्वरूप पापहारी तथा सर्वसमर्थ भगवान् नारायणने प्रकट होते ही अपने नेत्रोंसे सबका मन मोह लिया ॥ १८ ॥

अनाहता दुन्दुभयो देवानां प्राणदन् दिवि।
आकाशात् पुष्पवृष्टिं च ववर्ष त्रिदशेश्वरः ॥ १९ ॥

स्वर्गलोकमें विना बजाये ही देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं। देवेश्वर इन्द्र आकाशसे फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ १९ ॥

गीर्भिर्मङ्गलयुक्ताभिः स्तुवन्तो मधुसूदनम्।
महर्षयः सगन्धर्वा उपतस्थुः सहाप्सराः ॥ २० ॥

गन्धर्व और अप्सराओंसहित महर्षिगण अपने मङ्गलमय वचनोंद्वारा भगवान् मधुसूदनकी स्तुति करते हुए उनकी सेवामें उपस्थित हुए ॥ २० ॥

जायमाने हृषीकेशे प्रहृष्टमभवज्जगत्।
इन्द्रश्च त्रिदशैः सार्धं तुष्टाव मधुसूदनम् ॥ २१ ॥

भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य होते ही सम्पूर्ण जगत्में हर्षोल्लास छा गया। देवताओंके साथ इन्द्रने उन भगवान् मधुसूदनकी स्तुति की ॥ २१ ॥

वसुदेवश्च तं रात्रौ जातं पुत्रमधोक्षजम्।
श्रीवत्सलक्षणं दृष्ट्वा युतं दिव्यैश्च लक्षणैः।
उवाच वसुदेवस्तु रूपं संहर वै प्रभो ॥ २२ ॥

वसुदेवने भी रात्रिमें प्रकट हुए अपने पुत्ररूप भगवान् अधोक्षजका स्तवन किया। उन्हें श्रीवत्सके चिह्न और दिव्य लक्षणोंसे सम्पन्न देखकर वसुदेवने कहा—'प्रभो! आप अपने स्वरूपको समेट लीजिये ॥ २२ ॥

भीतोऽहं देव कंसस्य तस्मादेवं ब्रवीम्यहम्।
मम पुत्रा हतास्तेन तव ज्येष्ठाम्बुजेक्षण ॥ २३ ॥

'देव! मैं कंसके भयसे डरा हुआ हूँ, इसीलिये ऐसी बात कहता हूँ। कमलनयन! उसने मेरे बहुत-से पुत्र मार डाले हैं, जो तुमसे जेठे थे' ॥ २३ ॥

वैशम्पायन उवाच

वसुदेववचः श्रुत्वा रूपं चाहरदच्युतः।
अनुज्ञाप्य पितृत्वेन नन्दगोपगृहं नय ॥ २४ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! वसुदेवका यह वचन सुनकर भगवान् अच्युतने पिता होनेके कारण उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली और उनसे कहा, 'आप मुझे नन्दगोपके घर पहुँचा दीजिये (तथा उनकी नवजात कन्याको यहाँ उठा लाइये)।' ऐसा कहकर उन्होंने अपने चतुर्भुज रूपका उपसंहार कर लिया ॥ २४ ॥

वसुदेवस्तु संगृह्य दारकं क्षिप्रमेव च।
यशोदाया गृहं रात्रौ विवेश सुतवत्सलः ॥ २५ ॥

तब पुत्रवत्सल वसुदेव शीघ्र ही उस बालकको गोदमें लेकर रातके समय यशोदाके घरमें घुस गये ॥ २५ ॥

यशोदायास्त्वविज्ञातस्तत्र निक्षिप्य दारकम्।
प्रगृह्य दारिकां चैव देवकीशयने न्यसत् ॥ २६ ॥

यशोदाको उनके आनेका कुछ पता न चला। वहाँ उन्होंने अपने बालकको रख दिया और उस कन्याको लेकर अपने निवासस्थानमें आनेके बाद उसे देवकीकी शय्यापर सुला दिया ॥ २६ ॥

परिवर्ते कृते ताभ्यां गर्भाभ्यां भयविक्लवः।
वसुदेवः कृतार्थो वै निर्जगाम निवेशनात् ॥ २७ ॥

इस प्रकार उन दोनों नवजात बालकोंकी अदला-बदली करके कृतार्थ हुए वसुदेवजी भयसे व्याकुल हो उस घरसे बाहर निकल गये ॥ २७ ॥

उग्रसेनसुतायाथ कंसायानकदुन्दुभिः।
निवेदयामास तदा तां कन्यां वरवर्णिनीम् ॥ २८ ॥

आनकदुन्दुभि नामसे प्रसिद्ध वसुदेवने उग्रसेनपुत्र कंसके पास जाकर उसे अपनी सुन्दरी कन्याके जन्मका समाचार निवेदन किया ॥ २८ ॥

तच्छ्रुत्वा त्वरितः कंसो रक्षिभिः सह वेगिभिः ।
आजगाम गृहद्वारं वसुदेवस्य वीर्यवान् ॥ २९ ॥

यह सुनकर पराक्रमी कंस बड़ी उतावलीके साथ पैर बढ़ाता हुआ वेगशाली रक्षकोंको साथ लिये वसुदेवके गृहके द्वारपर आया ॥ २९ ॥

स तत्र त्वरितं द्वारि किं जातमिति चाब्रवीत् ।
दीयतां शीघ्रमित्येवं वाग्भिः समभितर्जयत् ॥ ३० ॥

वहाँ द्वारपर पहुँचते ही उसने तुरंत पूछा—'कौन-सा बच्चा पैदा हुआ है ? उसे शीघ्र मेरे हवाले कर दो' ऐसी बातें कहकर वह वहाँ जोर-जोरसे गर्जन-तर्जन करने लगा ॥ ३० ॥

ततो हाहाकृताः सर्वा देवकीभवने स्त्रियः ।
उवाच देवकी दीना बाष्पगद्गदया गिरा ॥ ३१ ॥

तब देवकीके घरमें एकत्रित हुई सारी स्त्रियाँ हाहाकार करने लगीं । देवकीने अत्यन्त दीन होकर अश्रुगद्गद वाणीमें कहा—॥ ३१ ॥

दारिका तु प्रजातेति कंसं समभियाचती ।
श्रीमन्तो मे हताः सप्त पुत्रगर्भास्त्वया विभो ॥ ३२ ॥

'प्रभो ! यह तो कन्या पैदा हुई है', ऐसा कहकर वह कंससे उसके लिये याचना करती हुई बोली—'भैया ! तुमने मेरे सात तेजस्वी पुत्र जो अभी गर्भावस्थामें ही थे, मार डाले हैं ॥ ३२ ॥

दारिकेयं हतैवैषा पश्यस्व यदि मन्यसे ।
दृष्ट्वा कंसस्तु तां कन्यामाकृष्यत मुदा युतः ॥ ३३ ॥

'यह तो कन्या है । यह बेचारी आप ही मरी हुई है, देखो ! यदि समझमें आवे तो मेरी बात मान लो (यह कन्या मुझे दे दो) ।' कंस उस कन्याको देखकर उसकी ओर आकृष्ट हुआ और मन-ही-मन प्रसन्नताका अनुभव करने लगा ॥ ३३ ॥

हतैवैषा यदा कन्या जातेत्युक्त्वा वृथामतिः ।
सा गर्भशयने क्लिष्टा गर्भाम्बुक्लिन्नमूर्धजा ॥ ३४ ॥
कंसस्य पुरतो न्यस्ता पृथिव्यां पृथिवीसमा ।
स चैनां गृह्य पुरुषः समाविध्यावधूय च ॥ ३५ ॥
उद्यच्छन्नेव सहसा शिलायां समपोथयत् ।

उसने कहा 'जब यह कन्या मरी ही हुई है, तब इसे पैदा हुई कहकर इसकी ओर मन चलाना व्यर्थ है ।' वह कन्या अभी गर्भशय्यापर क्लेशपूर्वक लेटी हुई थी । अभी उसके केश गर्भस्थ जलसे भीगे हुए थे । उसी अवस्थामें वह कंसके आगे पृथ्वीपर रख दी गयी । उस समय वह पृथ्वीके समान ही जान पड़ती थी । उस दुरात्मा पुरुष कंसने उसे पकड़कर घुमाया और तुच्छ मानकर ऊपरसे ही सहसा शिलापर दे मारा ॥ ३४-३५½ ॥

सावधूता शिलापृष्ठेऽनिष्पिष्टा दिवमुत्पतत् ॥ ३६ ॥
हित्वा गर्भतनुं सा तु सहसा मुक्तमूर्धजा ।
जगाम कंसमादिश्य दिव्यस्रगनुलेपना ॥ ३७ ॥

वह शिलापृष्ठपर फेंकी गयी, परंतु उसपर चूर-चू होनेसे पहले ही आकाशमें उड़ गयी । उस गर्भदेहको त्यागक कंसको ललकारती हुई वह सहसा आकाशमें जा पहुँची । उस समय उसके लंबे-लंबे केश खुले हुए थे । दिव्य फूलों हार और अनुलेपन उसकी शोभा बढ़ाते थे ॥ ३६-३७ ॥

हारशोभितसर्वाङ्गी मुकुटोज्ज्वलभूषिता ।
कन्यैव साभवन्नित्यं दिव्या देवैरभिष्टुता ॥ ३८ ॥

हारोंसे उसके समस्त अङ्गोंकी शोभा बढ़ गयी थी मस्तकपर उज्ज्वल मुकुटसे विभूषित हो वह देवी सदाके लि कन्या (कुमारी) ही रह गयी । उसकी आकृति दिव्य और सब देवता उसकी स्तुति करते थे ॥ ३८ ॥

नीलपीताम्बरधरा गजकुम्भोपमस्तनी ।
रथविस्तीर्णजघना चन्द्रवक्त्रा चतुर्भुजा ॥ ३९ ॥

वह अपने अङ्गोंपर नील और पीत वस्त्र धारण कि हुए थी । उसके उन्नत उरोज हाथीके कुम्भस्थलके समा जान पड़ते थे । उसका जघनप्रदेश रथके समान विस्तृत था मुख चन्द्रमाके सदृश मनोरम था । वह चार भुजाओं सुशोभित थी ॥ ३९ ॥

विद्युद्विस्पष्टवर्णाभा बालार्कसदृशेक्षणा ।
पयोधरस्तनवती संध्येव सपयोधरा ॥ ४० ॥

उसकी अङ्गकान्ति विद्युत्के समान प्रकाशित हो रही थी दोनों नेत्र प्रभातकालके सूर्यकी भाँति लाल थे । मेघोंके समा उन्नत उरोजोंवाली वह देवी बादलोंसे युक्त संध्याके समा सुशोभित हो रही थी ॥ ४० ॥

सा वै निशि तमोग्रस्ते बभौ भूतगणाकुले ।
नृत्यती हसती चैव विपरीतेन भास्वती ॥ ४१ ॥

अन्धकारसे आच्छन्न हुई रात्रिके समय जब कि भूतोंके समुदाय सब ओर भरे हुए थे, वह दीप्तिमती देवी नाचती, हँसती और चारों ओर उछलती-कूदती हुई अद्भुत शोभा पा रही थी ॥ ४१ ॥

विहायसि गता रौद्रा पपौ पानमनुत्तमम् ।
जहास च महाहासं कंसं च रुषिताब्रवीत् ॥ ४२ ॥

उसका स्वरूप बड़ा ही भयंकर था । वह आकाशमें पहुँचकर परम उत्तम मधुका पान तथा बड़े जोरसे अट्टहा करने लगी । फिर रोषमें भरकर कंससे बोली—॥ ४२ ॥

कंस कंसात्मनाशाय यदहं घातिता त्वया ।
सहसा च समुत्क्षिप्य शिलायामभिपोथिता ॥ ४३ ॥
तस्मात् तवान्तकालेऽहं कृष्यमाणस्य शत्रुणा ।
पाटयित्वा करैर्देहमुष्णं पास्यामि शोणितम् ॥ ४४ ॥

'कंस ! ओ कंस !! तूने अपने ही विनाशके लिये जो मुझे मार डालनेका प्रयत्न किया है और सहसा उठाकर शिलापर दे मारा है, उसके कारण मैं भी तेरे अन्तकालमें जिस समय तू शत्रुके द्वारा घसीटा जा रहा होगा, अपने हाथोंसे तेरी इस देहको फाड़कर तेरा गरम-गरम रक्त पीऊँगी' ॥ ४३-४४ ॥

एवमुक्त्वा वचो घोरं सा यथेष्टेन वर्त्मना ।
खं सा देवालयं देवी सगणा विचचार ह ॥ ४५ ॥

ऐसा घोर वचन कहकर वह देवी यथेष्ट मार्गसे अपने गणोंसहित आकाश और देवलोकमें विचरने लगी ॥ ४५ ॥

सा कन्या ववृधे तत्र वृष्णिसंघसुपूजिता ।
पुत्रवत् पाल्यमाना सा वसुदेवाज्ञया तदा ॥ ४६ ॥

वहाँ वृष्णिवंशियोंके समुदायसे भलीभाँति पूजित हो वह कन्या बढ़ने लगी । वसुदेवकी आज्ञासे उस समय उसका पुत्रवत् पालन होने लगा* ॥ ४६ ॥

विद्धि चैनामथोत्पन्नामंशाद् देवीं प्रजापतेः ।
एकानंशां योगकन्यां रक्षार्थं केशवस्य तु ॥ ४७ ॥

जनमेजय ! तुम इस देवीको प्रजापालक भगवान् विष्णुके अंशसे उत्पन्न हुई समझो । वह एक होती हुई अनंशा—अंशरहित अर्थात् अविभक्त थी, इसलिये एकानंशा कहलाती थी । योगबलसे कन्यारूपमें प्रकट हुई वह देवी भगवान् श्रीकृष्णकी रक्षाके लिये आविर्भूत हुई थी ॥ ४७ ॥

तां वै सर्वे सुमनसः पूजयन्ति स्म यादवाः ।
देववद् दिव्यवपुषा कृष्णः संरक्षितो यया ॥ ४८ ॥

यदुकुलमें उत्पन्न हुए समस्त देवता उस देवीका आराध्यदेवके समान पूजन करते थे; क्योंकि उसने अपने दिव्य देहसे श्रीकृष्णकी रक्षा की थी ॥ ४८ ॥

तस्यां गतायां कंसस्तु तां मेने मृत्युमात्मनः ।
विविक्ते देवकीं चैव व्रीडितः समभाषत ॥ ४९ ॥

उसके चले जानेपर कंसने उसे ही अपनी मृत्यु समझा और एकान्तमें देवकीके पास जाकर लज्जित हो वह इस प्रकार बोला ॥ ४९ ॥

कंस उवाच

मृत्योः स्वसः कृतो यत्नस्तव गर्भा मया हताः ।
अन्य एवान्यतो देवि मम मृत्युरुपस्थितः ॥ ५० ॥

कंसने कहा—बहिन ! मैंने मृत्युको टालनेका प्रयत्न किया और इसी धोखेमें मैंने तुम्हारे बच्चोंको मार डाला, परंतु देवि ! कोई दूसरा ही दूसरी जगहसे मेरी मृत्यु बनकर उपस्थित हो गया है ॥ ५० ॥

नैराश्येन कृतो यत्नः स्वजने प्रहृतं मया ।
दैवं पुरुषकारेण न चातिक्रान्तवानहम् ॥ ५१ ॥

मैंने क्रूरतापूर्वक अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिये प्रयास किया; किंतु जो मेरे अपने जन थे, उनपर ही मैं प्रहार कर बैठा । मैं दैवके विधानको अपने पुरुषार्थसे लाँघ न सका ॥ ५१ ॥

त्यज गर्भकृतां चिन्तां संतापं पुत्रजं त्यज ।
हेतुभूतस्त्वहं तेषां सति कालविपर्यये ॥ ५२ ॥

बहिन ! अपने गर्भोंके लिये चिन्ता न करो । पुत्रोंकी मृत्युके कारण होनेवाले शोक-संतापको त्याग दो । काल ही उनके विपरीत हो गया था । मैं तो उनके वधमें केवल निमित्तमात्र बन गया हूँ ॥ ५२ ॥

काल एव नृणां शत्रुः कालश्च परिणामकः ।
कालो नयति सर्वं वै हेतुभूतस्तु मद्विधः ॥ ५३ ॥

काल ही मनुष्योंका शत्रु है, काल ही एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें ला देता है और काल ही सबको संसारसे उठा ले जाता है । मेरे-जैसा व्यक्ति तो इसमें निमित्तमात्र ही होता है ॥ ५३ ॥

आगमिष्यन्ति वै देवि यथाभागमुपद्रवाः ।
इदं तु कष्टं यज्जन्तुः कर्ताहमिति मन्यते ॥ ५४ ॥

देवि ! अपने भाग्य या कर्मके अनुसार उपद्रव तो आयेंगे ही, किंतु कष्टकी बात यही है कि जीव इसमें अपनेको ही कर्ता मानने लगता है ॥ ५४ ॥

मा कार्षीः पुत्रजां चिन्तां विलापं शोकजं त्यज ।
एवं प्रायो नृणां योनिर्नास्ति कालस्य संस्थितिः ॥ ५५ ॥

पुत्रोंके वियोगसे होनेवाली चिन्ता न करो । शोकजनित विलापको त्याग दो । मनुष्य-योनिकी प्रायः ऐसी ही दशा है । कालको टालना या मिटा देना असम्भव है ॥ ५५ ॥

एष ते पादयोर्मूर्ध्ना पुत्रवत् तव देवकि ।
मद्गतस्त्यज्यतां रोषो जानाम्यपकृतं त्वयि ॥ ५६ ॥

देवकी ! यह लो, मैं पुत्रकी भाँति तुम्हारे चरणोंपर मस्तक रखकर पड़ा हूँ । जानता हूँ, मैंने तुम्हारा अपराध किया है, तो भी मेरे प्रति अपना रोष त्याग दो (यह मेरी प्रार्थना है) ॥ ५६ ॥

---

* जैसे वात्सल्यभाव रखनेवाले उपासक भगवान्के बालविग्रहकी उपासना या पूजा करते समय प्यार करते, लाड़ लड़ाते और उनके पालन-पोषण एवं संवर्धनका ध्यान रखते हैं, उसी प्रकार वसुदेवकी आज्ञासे उस चिदानन्दमयी देवीका कन्यारूपसे यादवोंके यहाँ पूजन होने लगा । यद्यपि वह आकाशमें चली गयी तो भी उनके आवाहन करनेपर उनके यहाँ पधारकर उनके वात्सल्य और लाड़-प्यारको वह ग्रहण करती रही । ऐसा समझना चाहिये ।

इत्युक्तवन्तं कंसं सा देवकी वाक्यमब्रवीत् ।
साश्रुपूर्णमुखा दीना भर्तारमुपवीक्षती ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वत्सेति कंसं मातेव जल्पती ॥ ५७ ॥

जब कंसने ऐसी बात कही, तब देवकीके मुखपर आँसुओंकी धारा बह चली । वह पतिकी ओर देखती हुई अत्यन्त दीन होकर कंससे माताके समान कहने लगी—'बेटा ! उठो ! उठो !' ॥ ५७ ॥

देवक्युवाच

ममाग्रतो हता गर्भा ये त्वया कामरूपिणा ।
कारणं त्वं न वै पुत्र कृतान्तोऽप्यत्र कारणम् ॥ ५८ ॥

देवकीने फिर कहा—वत्स ! तुम तो इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले हो । तुमने मेरे सामने ही जिन-जिन गर्भस्थ शिशुओंकी हत्या की है, उसमें केवल तुम्हीं कारण हो—ऐसी बात नहीं है, काल भी इसमें कारण है ॥ ५८ ॥

गर्भकर्तनमेतन्मे सहनीयं त्वया कृतम् ।
पादयोः पतता मूर्ध्ना स्वं च कर्म जुगुप्सता ॥ ५९ ॥

परंतु आज तुम अपने कर्मकी निन्दा करते हुए जो मेरे पैरोंपर सिर रखकर पड़ गये, इससे तुम्हारे द्वारा किये गये इस गर्भोच्छेदरूप असह्य कष्टको भी मैं किसी तरह सह लूँगी ॥ ५९ ॥

गर्भे च नियतो मृत्युर्बाल्येऽपि न निवर्तते ।
युवापि मृत्योर्वशगः स्थविरो मृत एव तु ॥ ६० ॥

गर्भमें भी मृत्यु निश्चित रूपसे होती है । बाल्यावस्थामें भी वह टलती नहीं है । जवान मनुष्य भी मृत्युके अधीन होता है और वृद्ध पुरुष तो मरा हुआ है ही ॥ ६० ॥

कालपक्कमिदं सर्वं हेतुभूतस्तु त्वद्विधः ।
अजाते दर्शनं नास्ति यथा वायुस्तथैव च ॥ ६१ ॥

इस सम्पूर्ण जगत्को काल ही पका देता है (मार डालता है) । तुम्हारे-जैसे लोग तो केवल निमित्तमात्र होते हैं। जिसका जन्म नहीं हुआ है, उसका दर्शन नहीं होता । जैसे वायुकी सत्ता होनेपर भी वह दिखायी नहीं देती, उसी प्रकार जीवकी सत्ता होनेपर भी जन्मसे पहले वह दृष्टिगो नहीं होता है ॥ ६१ ॥

जातोऽप्यजाततां याति विधात्रा यत्र नीयते ।
तद् गच्छ पुत्र मा ते भून्मद्गतं मृत्युकारणम् ॥ ६२

जो जन्म ले चुका है, वह भी मृत्युके बाद अजा- भावको ही प्राप्त हो जाता है (अर्थात् उसका भी द नहीं होता) । विधाता उसे जहाँ ले जाते हैं, वहाँ वह जाता है; अतः पुत्र ! तुम जाओ । मुझे जो पुत्रोंकी मृत्यु कारण दुःख हो रहा है, उसके लिये तुम्हारे हृदयमें न हो ॥ ६२ ॥

मृत्युना प्रहृते पूर्वं शेषो हेतुः प्रवर्तते ।
विधिना पूर्वदृष्टेन प्रजासर्गेण तत्त्वतः ॥ ६३
मातापित्रोस्तु कार्येण जन्मतस्तूपपद्यते ।

पहले मौत प्रहार करती है, उसके बाद मृत्युके हेतुओंकी प्रवृत्ति होती है । विधि (संस्कार), पूर्वदृष्ट (जन्मान्तरीय कर्म या प्रारब्ध), प्रजाकी सृष्टि करने काल, वास्तवमें घटित हुए तात्कालिक कारण, माता-पि दूषित अन्न-भक्षण आदि कार्य तथा जातिगत स्वभा भी मृत्यु सम्भव होती है (इन्हीं सब कारणोंसे मेरे मारे गये और तुम इसमें निमित्त बने, अतः इसमें तुम्ह कोई दोष नहीं है) ॥ ६३½ ॥

वैशम्पायन उवाच

निशम्य देवकीवाक्यं स कंसः स्वं निवेशनम् ॥ ६४
प्रविवेश ससंरब्धो दह्यमानेन चेतसा ।
कृत्ये प्रतिहते दीनो जगाम विमना भृशम् ॥ ६५

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! देवकी यह वचन सुनकर कंस अपनी असफलतापर क्षुब्ध हो मन-ही- जलता हुआ अपने भवनमें चला गया । अपने किये प्र प्रतिहत (विफल) हो जानेपर वह मनमें बहुत ही खि और दीन हो गया था, अतः वहाँसे चुपचाप गया ॥ ६४-६५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि श्रीकृष्णजन्मनि चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें श्रीकृष्णजन्मविषयक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

वसुदेवजीका नन्दको व्रजमें लौटनेकी सम्मति देना और नन्दजीका गोव्रजकी शोभा निहारते हुए वहाँ पधारना

वैशम्पायन उवाच

प्रागेव वसुदेवस्तु व्रजे शुश्राव रोहिणीम् ।
प्रजातां पुत्रमेवाग्रे चन्द्रात् कान्ततराननम् ॥ १ ॥
स नन्दगोपं त्वरितः प्रोवाच शुभया गिरा ।
गच्छानया सहैव त्वं व्रजमेव यशोदया ॥ २

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! वसुदे

प्रसवसे पहले ही रोहिणीको व्रजमें भेज दिया था। जब उन्होंने सुना कि रोहिणीने पहले ही एक ऐसे पुत्रको जन्म दिया है, जिसका मुख चन्द्रमासे भी अधिक कान्तिमान् है, तब वे तुरंत ही (कंसका कर चुकानेके लिये पत्नीसहित मथुरामें आये हुए) नन्दगोपके पास जाकर मङ्गलमयी वाणीमें बोले—'मित्र! तुम इन यशोदाजीके साथ ही शीघ्र व्रजको लौट जाओ॥ १-२॥

तत्र तौ दारकौ गत्वा जातकर्मादिभिर्गुणैः।
योजयित्वा व्रजे तात संवर्धय यथासुखम्॥ ३॥

'तात! वहाँ जाकर उन दोनों बालकोंको जातकर्म आदि संस्कारोंसे सम्पन्न करके व्रजमें ही सुखपूर्वक उनका पालन-पोषण और संवर्धन करो॥ ३॥

रौहिणेयं च पुत्रं मे परिरक्ष शिशुं व्रजे।
अहं वाच्यो भविष्यामि पितृपक्षेषु पुत्रिणाम्॥ ४॥
योऽहमेकस्य पुत्रस्य न पश्यामि शिशोर्मुखम्।

'व्रजमें रोहिणीके गर्भसे उत्पन्न हुआ जो मेरा शिशु पुत्र है, उसकी भी रक्षा करना। भाई! मैं तो पितृपक्षोंमें पुत्रवानोंके द्वारा निन्दनीय ही होऊँगा; क्योंकि मैं ऐसा भाग्यहीन हूँ कि अपने एकमात्र शिशुपुत्रका मुख नहीं देख पाता हूँ॥

ह्रियते हि बलात् प्रज्ञा प्राज्ञस्यापि सतो मम॥ ५॥
अस्माद्धि मे भयं कंसान्निर्घृणाद् वै शिशोर्वधे।

'यद्यपि मुझे इस बातका ज्ञान है कि सुख-दुःख और संयोग-वियोग आदि प्रारब्धके ही अधीन हैं; तथापि निरन्तर बना रहनेवाला भय मुझ बुद्धिमान्‌की भी बुद्धिको बलपूर्वक हर लेता है। इस निर्दय कंससे मुझे सदा यह डर लगा रहता है कि कहीं यह मेरे इस शिशुका भी वध न कर डाले॥ ५½॥

तद्यथा रौहिणेयं त्वं नन्दगोप ममात्मजम्॥ ६॥
गोपायसि यथा तात तत्त्वान्वेषी तथा कुरु।
विघ्ना हि बहवो लोके बालानुत्रासयन्ति हि॥ ७॥

'अतः तात! नन्दगोप! तुम मेरे पुत्र रोहिणीकुमारकी जिस उपायसे भी रक्षा कर सको, करो। बाल-द्रोहियोंके स्वरूपका यथावत्‌रूपसे विचार करके जैसे बने, उसके जीवनकी रक्षा करो; क्योंकि जगत्‌में बहुत-से ऐसे विघ्न खड़े हुए हैं, जो बालकोंको त्रास दे रहे हैं॥ ६-७॥

स च पुत्रो मम ज्यायान् कनीयांश्च तवाप्ययम्।
उभावपि समं नाम्ना निरीक्षस्व यथासुखम्॥ ८॥

'मेरा वह पुत्र बड़ा है और तुम्हारा यह बालक छोटा। तुम इन दोनोंको ही सुखपूर्वक समान दृष्टिसे देखो। जैसे इनके नाम एक-से (एक अर्थवाले) हैं*, उसी तरह इनपर तुम्हारा वात्सल्य भी एक-सा ही होना चाहिये॥ ८॥

वर्धमानावुभावेतौ समानवयसौ यथा।
शोभेतां गोव्रजे तस्मिन् नन्दगोप तथा कुरु॥ ९॥

'नन्दगोप! इन दोनोंकी अवस्था प्रायः समान है। ये दोनों जिस तरह साथ-साथ तुम्हारे उस व्रजमें बढ़ते हुए शोभा पा सकें, वैसा यत्न करो॥ ९॥

बाल्ये केलिकिलः सर्वो बाल्ये मुह्यति मानवः।
बाल्ये चण्डतमः सर्वस्तत्र यत्नपरो भव॥ १०॥

'बाल्यावस्थामें सब लोग खेल-कूदसे मन बहलाते हैं। बालकपनमें प्रायः सभी मनुष्य मोहग्रस्त रहते हैं। उन्हें कर्तव्याकर्तव्यका बोध नहीं रहता तथा बचपनमें सभी बात-बातपर बहुत चिढ़ते और रूठते हैं; अतः बच्चोंको इन सभी दशाओंमें सँभालते हुए उनके लालन-पालनके लिये प्रयत्नशील रहो॥ १०॥

न च वृन्दावने कार्यो गवां घोषः कथंचन।
भेतव्यं तत्र वसतः केशिनः पापदर्शिनः॥ ११॥

'देखो, वृन्दावनमें किसी तरह भी गौओंके ठहरनेका स्थान न बनाना। वहाँ निवास करनेवाले पापदर्शी केशीसे तुम्हें सदा डरते रहना चाहिये॥ ११॥

सरीसृपेभ्यः कीटेभ्यः शकुनिभ्यस्तथैव च।
गोष्ठेषु गोभ्यो वत्सेभ्यो रक्ष्यौ ते द्वाविमौ शिशू॥ १२॥

'वनमें साँप-बिच्छू, कीड़े-मकोड़े तथा पक्षियोंसे और गोव्रजमें गौओं तथा बछड़ोंसे इन दोनों शिशुओंकी तुम्हें सदा रक्षा करनी चाहिये॥ १२॥

नन्दगोप गता रात्रिः शीघ्रयानो व्रजाशुगः।
इमे त्वां व्याहरन्तीव पक्षिणः सव्यदक्षिणाः॥ १३॥

'नन्दगोप! रात बीत गयी। तुम तेज चलनेवाली सवारीपर बैठकर शीघ्रतापूर्वक यहाँसे पधारो। ये दायें-बायें उड़नेवाले पक्षी मानो तुम्हें जानेके लिये कह रहे हैं—विदा दे रहे हैं'॥ १३॥

रहस्यं वसुदेवेन सोऽनुज्ञातो महात्मना।
यानं यशोदया सार्धमारुरोह मुदान्वितः॥ १४॥

महात्मा वसुदेवके द्वारा किसी गुप्त रहस्यका ज्ञान करा दिये जानेपर नन्दबाबा यशोदाजीके साथ प्रसन्नतापूर्वक सवारीपर बैठे॥ १४॥

कुमारस्कन्धवाह्यायां शिबिकायां समाहितः।
संवेशयामास शिशुं शयनीयं महामतिः॥ १५॥

तदनन्तर सदा सावधान रहनेवाले परम बुद्धिमान् नन्दजीने छोटे-छोटे बालक जिसे कंधेपर ढो सकें, ऐसी शिबिका (डोली) में अपने शयन करने योग्य शिशुको सुला दिया॥ १५॥

---

* जैसे कृष्णका अर्थ है अपनी ओर खींचनेवाला, उसी तरह संकर्षणका भी है।

जगाम च विविक्तेन शीतलानिलसर्पिणा।
बहूदकेन मार्गेण यमुनातीरगामिना॥ १६॥

फिर यमुनाजीके किनारे-किनारे जानेवाले ऐसे एकान्त मार्गसे वे चले, जहाँ जलकी बहुतायत थी और ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी॥ १६॥

स ददर्श शुभे देशे गोवर्धनसमीपगे।
यमुनातीरसम्बद्धं शीतमारुतसेवितम्॥ १७॥

गोवर्धनके निकटवर्ती शुभ प्रदेशमें पहुँचकर उन्होंने गौओंका व्रज देखा, जो यमुनाजीके तटसे जुड़ा हुआ था और शीतल वायु उसकी सेवा करती थी॥ १७॥

विरुतश्वापदै रम्यं लतावल्लीमहाद्रुमम्।
गोभिस्तृणविलग्नाभिः स्यन्दन्तीभिरलंकृतम्॥ १८॥

विशेष प्रकारकी बोली बोलनेवाले शिकारी जीवोंके रहनेसे उस प्रदेशकी रमणीयता बढ़ गयी थी। वहाँ लता और वल्लरियोंसे लिपटे हुए बड़े-बड़े वृक्ष शोभा पा रहे थे। घास चरती और थनोंसे दूध झरती हुई गौओंसे वह स्थान अलंकृत था॥ १८॥

समप्रचारं च गवां समतीर्थजलाशयम्।
वृषाणां स्कन्धघातैश्च विषाणोद्घृष्टपादपम्॥ १९॥

वहाँ गौओंके चरने-फिरनेके लिये सम भूमि थी, विषम नहीं; जलाशयोंमें उतरनेके लिये जो मार्ग थे, वे भी सम ही थे। बैलों या साँड़ोंके कंधोंकी टक्करसे तथा उनके सींगोंकी रगड़से वहाँके कई वृक्ष घिसे हुए दिखायी देते थे॥ १९॥

भासामिषादानुसृतैः श्येनैश्चामिषगृध्नुभिः।
सृगालमृगसिंहैश्च वसामेदाशिभिर्वृतम्॥ २०॥

वहाँ गीध और मांसभक्षी वनबिलाव आदिके पीछे मांसकी इच्छा रखनेवाले बाज तथा वसा और मेदा खानेवाले गीदड़, चीते एवं बाघ-सिंह आदि लगे हुए थे। इन सबके द्वारा वह प्रदेश घिरा हुआ था॥ २०॥

शार्दूलशब्दाभिरुतं नानापक्षिसमाकुलम्।
स्वादुवृक्षफलं रम्यं पर्याप्ततृणवीरुधम्॥ २१॥

सिंहोंके दहाड़नेसे वहाँका वन-प्रान्त गूँजता रहता था। नाना प्रकारके पक्षी वहाँ सब ओर व्याप्त थे। उस व्रजमें जो वृक्षोंमें फल लगे थे, वे बड़े स्वादिष्ट थे। वहाँ घास-पात और लता-वेलोंकी बहुलता थी॥ २१॥

गोव्रजं गोरुतं रम्यं गोपनारीभिरावृतम्।
हम्भारवैश्च वत्सानां सर्वतः कृतनिःस्वनम्॥ २२॥

इस प्रकार वह गोव्रज गौओंके रँभानेके शब्दसे मुखरित था। गोपाङ्गनाओंसे घिरा हुआ वह भूभाग बड़ा रमणीय दिखायी देता था। बछड़ोंके बोलनेसे वहाँका स्थान सब ओरसे गूँजता रहता था॥ २२॥

शकटावर्तविपुलं कण्टकीवाटसंकुलम्।
पर्यन्तेष्वावृतं वन्यैर्बृहद्भिः पतितैर्द्रुमैः॥ २३॥

छकड़ोंकी गोलाकार श्रेणियोंसे वहाँका भूभाग बहु विशाल जान पड़ता था। वहाँ चारों ओर काँटोंके बाड़ लगे थे। सीमाओंपर जंगलके गिरे हुए बड़े-बड़े वृक्ष गये थे॥ २३॥

वत्सानां रोपितैः कीलैर्दामभिश्च विभूषितम्।
करीषाकीर्णवसुधं कटच्छन्नकुटीमठम्॥ २४॥

बछड़ोंके लिये गाड़े गये खूँटों और बाँधनेकी रस्सियों उस व्रजकी बड़ी शोभा हो रही थी। वहाँ धरतीपर सब ओर सूखे कंडे (या करसी) के ढेर पड़े थे। कुटी और म चटाइयों अथवा तृण-समूहसे छाये गये थे॥ २४॥

क्षेम्यप्रचारबहुलं हृष्टपुष्टजनावृतम्।
दामनीपाशबहुलं गर्गरोद्गारनिःस्वनम्॥ २५॥

कुशलेपूर्वक घूमने-फिरनेके लिये वहाँ बहुत-से स्थान थे (अथवा उत्तम लक्षणोंसे युक्त भटोंके प्रचारसे वह व्र समृद्धिशाली प्रतीत होता था*)। वह भूभाग हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों से भरा था। वहाँ मोटी और पतली रस्सियोंकी बहुताय थी। दूध-दही मथनेके लिये जो बड़े-बड़े माट या घड़े होते हैं, उनमेंसे मन्थनके समय जो शब्द प्रकट होता था, वह वहाँ सब ओर फैला हुआ था॥ २५॥

तक्रनिःस्रावबहुलं दधिमण्डार्द्रमृत्तिकम्।
मन्थानवलयोद्गारैर्गोपीनां जनितस्वनम्॥ २६॥

वहाँ तक्र (मट्ठा) बहानेके लिये बहुत-सी नालियाँ बनी थीं। दहीके ऊपरका जो सारभाग (मण्ड) होता है, उससे वहाँकी मिट्टी गीली हो रही थी। मथानी चलानेके समय गोपियोंके हाथोंके कंगन खन-खनाते रहते थे। उनकी मधुर झनकार वहाँ सब ओर गूँजती रहती थी॥ २६॥

काकपक्षधरैर्बालैर्गोपालक्रीडनाकुलम्।
सार्गलद्वारगोवाटं मध्ये गोस्थानसंकुलम्॥ २७॥

उस व्रजमें काकपक्ष (पीछेकी ओर सिरपर बड़े-बड़े बाल) धारण करनेवाले बालक खेल रहे थे। ग्वालोंके अखाड़ोंसे वहाँका भूभाग भरा था। गौओंके बाड़ों (रहनेके स्थानों) के दरवाजोंपर काठके कुंडे लगे हुए थे। बीचमें गौओंके ठहरने, विश्राम करने आदिके लिये पर्याप्त स्थान था। ऐसी गोशालाओंसे वह व्रज भरा हुआ था॥ २७॥

सर्पिषा पच्यमानेन सुरभीकृतमारुतम्।
नीलपीताम्बराभिश्च तरुणीभिरलंकृतम्॥ २८॥

आगपर खौलाये जाते हुए घृतकी मनोरम गंधसे वहाँकी

---

* ऐसा अर्थ नीलकण्ठजीने किया है।

वायु सुवासित हो रही थी। नीली-पीली साड़ियोंसे सुशोभित तरुणी स्त्रियाँ उस व्रजको अलंकृत किये हुए थीं ॥ २८ ॥

वन्यपुष्पावतंसाभिर्गोपकन्याभिरावृतम् ।
शिरोभिर्धृतकुम्भाभिर्बद्धैरग्रस्तनाम्बरैः ॥ २९ ॥
यमुनातीरमार्गेण जलहारीभिरावृतम् ।

वनके फूलोंका कर्णभूषण धारण किये बहुत-सी गोपकन्याएँ वहाँ सिरपर घड़े लिये आती-जाती थीं। उनके स्तनोंके अग्रभाग चोलीसे बँधे थे और उनपर आँचल पड़ा हुआ था। यमुनाजीके तटपर गये हुए मार्गसे जल लानेवाली उन गोपकुमारियोंसे वह व्रज घिरा हुआ-सा जान पड़ता था २९½

स तत्र प्रविशन् हृष्टो गोव्रजं गोपनादितम् ॥ ३० ॥
प्रत्युद्गतो गोपवृद्धैः स्त्रीभिर्वृद्धाभिरेव च ।
निवेशं रोचयामास परिवर्ते सुखाश्रये ॥ ३१ ॥

ग्वालोंके शब्दसे गूँजते हुए उस गोव्रजमें प्रवेश करते समय नन्दरायजीको बड़ा हर्ष हुआ। वृद्ध गोपों तथा बड़ी-बूढ़ी स्त्रियोंने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया। तत्पश्चात् उन्होंने चारों ओरसे घिरे हुए उस सुखदायक आवासस्थानमें रहनेके लिये रुचि प्रकट की ॥ ३०-३१ ॥

सा यत्र रोहिणी देवी वसुदेवसुखावहा ।
तत्र तं बालसूर्याभं कृष्णं गूढं न्यवेशयत् ॥ ३२ ॥

वसुदेवजीको सुख देनेवाली रोहिणी देवी जहाँ रहती थीं, वहीं उन्होंने व्रजमें गुप्तरूपसे रहनेवाले बालसूर्यके समान तेजस्वी श्रीकृष्णको सुला दिया ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि गोव्रजगमनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें नन्दजीका गोव्रजमें गमनविषयक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

शकट-भञ्जन और पूतना-वध

वैशम्पायन उवाच

तत्र तस्यासतः कालः सुमहानत्यवर्तत ।
गोव्रजे नन्दगोपस्य बल्लवत्वं प्रकुर्वतः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! उस गोव्रजमें रहकर गोपकर्म करते हुए नन्दगोपके बहुत दिन बीत गये ॥ १ ॥

दारकौ कृतनामानौ ववृधाते सुखं च तौ ।
ज्येष्ठः संकर्षणो नाम कनीयान् कृष्ण एव तु ॥ २ ॥

वहाँ उन दोनों बालकोंका उन्होंने नामकरण-संस्कार कर दिया। तदनन्तर वे दोनों भाई वहाँ बड़े सुखसे रहने और दिनोंदिन बढ़ने लगे। उनमें बड़ेका नाम 'संकर्षण' था और छोटेका 'कृष्ण' ॥ २ ॥

मेघकृष्णस्तु कृष्णोऽभूद् देहान्तरगतो हरिः ।
अवर्धत गवां मध्ये सागरस्य इवाम्बुदः ॥ ३ ॥

दूसरे शरीरमें आये हुए भगवान् श्रीहरि ही 'कृष्ण' नामसे विख्यात हुए। उनकी अङ्गकान्ति श्याम मेघकी भाँति साँवली थी। जैसे समुद्रमें मेघकी वृद्धि होती है, उसी प्रकार वे गौओंके बीचमें रहकर बढ़ने लगे ॥ ३ ॥

शकटस्य त्वधः सुप्तं कदाचित् पुत्रगृद्धिनी ।
यशोदा तं समुत्सृज्य जगाम यमुनां नदीम् ॥ ४ ॥

यशोदा अपने पुत्रको हृदयसे चाहनेवाली थी। एक दिनकी बात है, लाला कन्हैया छकड़ेके नीचे सोया था, उसे उसी अवस्थामें छोड़कर यशोदा मैया यमुनाजीमें नहानेके लिये चली गयीं ॥ ४ ॥

शिशुलीलां ततः कुर्वन् स हस्तचरणौ क्षिपन् ।
रुरोद मधुरं कृष्णः पादावूर्ध्वं प्रसारयन् ॥ ५ ॥

फिर तो लाला कन्हैया बाललीला करता हुआ अपने दोनों हाथ-पैर फेंकने लगा। पैरोंको ऊँचेतक फैलाकर मधुर स्वरमें रोने लगा ॥ ५ ॥

स तत्रैकेन पादेन शकटं पर्यवर्तयत् ।
न्युब्जं पयोधराकाङ्क्षी चकार च रुरोद च ॥ ६ ॥

(अब उसके मनमें मैयाके दूध पीनेकी इच्छा जाग उठी, फिर तो) उसने वहाँ एक ही पैरके धक्केसे छकड़ेको औंधा उलट दिया। यह सब उसने स्तन-पानकी इच्छासे ही किया था। यह अद्भुत लीला करके वह रोने लगा ॥ ६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता यशोदा भयविक्लवा ।
स्नाता प्रस्रवदिग्धाङ्गी बद्धवत्सेव सौरभी ॥ ७ ॥

इसी बीचमें भयसे व्याकुल हुई यशोदा मैया नहाकर लौट आयी। उसके स्तनोंसे दूध झर रहा था, जो उसके अन्य अङ्गोंमें भी फैलता जा रहा था। जिसका बछड़ा बँधा हुआ हो, उस गायकी भाँति वह अपने बच्चेको स्तन पिलानेके लिये उत्सुक थी ॥ ७ ॥

सा ददर्श विपर्यस्तं शकटं वायुना विना।
हाहेति कृत्वा त्वरिता दारकं जगृहे तदा॥ ८॥

उसने देखा, बिना आँधी-पानीके ही यह छकड़ा उलटा पड़ा है। फिर तो 'हाय! हाय!' करके तुरंत ही लालाको गोदमें उठा लिया॥ ८॥

न सा बुबोध तत्त्वेन शकटं परिवर्तितम्।
स्वस्ति मे दारकायेति प्रीता भीता च साभवत्॥ ९॥

वह इस बातको न जान सकी कि छकड़ेके उलट जानेका वास्तवमें क्या कारण है? 'भगवान् मेरे लालाको सकुशल रक्खें'—ऐसा कहकर मैया पुत्र-प्रेममें मग्न हो गयी और 'बच्चेको कहीं चोट तो नहीं लगी'—इस आशङ्कासे उसको भय भी हुआ॥ ९॥

किं तु वक्ष्यति ते पुत्र पिता परमकोपनः।
त्वय्यधःशकटे सुप्ते अकस्माच्च विलोडिते॥ १०॥

(वह बच्चेकी ओर देखकर बोली—) 'बेटा! तुम्हारे पिता बड़े क्रोधी हैं। तुम छकड़ेके नीचे सोये थे और वह अकस्मात् उलट गया। यह सुनकर वे न जाने मुझे क्या-क्या कहेंगे?॥ १०॥

किं मे स्नानेन दुःस्नानं किं च मे गमने नदीम्।
पर्यस्ते शकटे पुत्र या त्वां पश्याम्यपावृतम्॥ ११॥

'लाला! मुझे नहानेसे क्या मिलता? यदि तुम्हें कुछ हो जाता तो मेरा वह स्नान तो दुःस्नान ही था। मुझे नदी-तटपर जानेकी भी क्या आवश्यकता थी। वहाँसे लौटकर देखती हूँ तो छकड़ा उलटा पड़ा है और तुम खुले आकाशके नीचे सोये हो! (हाय! हाय! यह सब कैसे हुआ?)'॥ ११॥

एतस्मिन्नन्तरे गोभिराजगाम वनेचरः।
काषायवाससी बिभ्रन् नन्दगोपो व्रजान्तिकम्॥ १२॥

इसी समय गौओंके साथ वनमें विचरकर नन्दजी व्रजके निकट आये। उन्होंने गेरुए रंगके दो वस्त्र धारण कर रखे थे॥ १२॥

स ददर्श विपर्यस्तं भिन्नभाण्डघटीघटम्।
अपास्तधूर्विभिन्नाक्षं शकटं चक्रमौलिनम्॥ १३॥

उन्होंने देखा, छकड़ा औंधा पड़ा है। उसपर लदे हुए सारे बर्तन, घड़े, माँट और मटके चकनाचूर हो गये हैं। जुआ निकलकर दूर जा पड़ा है। धुरा टूट गया है और पहिया मुकुटके समान ऊपरको उठ गया है॥ १३॥

भीतस्त्वरितमागत्य सहसा साश्रुलोचनः।
अपि मे स्वस्ति पुत्रायेत्यसकृद् वचनं वदन्॥ १४॥

यह देखकर वे डर गये और जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाते हुए सहसा घर आ पहुँचे। उस समय उनके नेत्रोंमें आँसू भरे हुए थे। वे बार-बार पूछने लगे, 'महर! मेरा लाला कुशलसे तो है न?'॥ १४॥

पिबन्तं स्तनमालक्ष्य पुत्रं स्वस्थोऽब्रवीत् पुनः।
वृषयुद्धं विना केन पर्यस्तं शकटं मम॥ १५॥

फिर बेटेको स्तनपान करते देख उनके जीमें जी आया। उन्होंने पुनः पूछा, 'महर! बैलोंमें लड़ाई तो हुई नहीं, फिर यह छकड़ा कैसे उलट गया?'॥ १५॥

प्रत्युवाच यशोदा तं भीता गद्गदभाषिणी।
न विजानाम्यहं केन शकटं परिवर्तितम्॥ १६॥
अहं नदीं गता सौम्य चैलप्रक्षालनार्थिनी।
आगता च विपर्यस्तमपश्यं शकटं भुवि॥ १७॥

यशोदाने भयभीत होकर गद्गद वाणीमें कहा—'नाथ! मैं नहीं जानती कि किसने छकड़ा उलट दिया। सौम्य! मैं तो कपड़े धोनेके लिये यमुनाजीके तटपर गयी थी। लौटकर देखती हूँ तो छकड़ा धरतीपर औंधा पड़ा है'॥ १६-१७॥

तयोः कथयतोरेवमब्रुवंस्तत्र दारकाः।
अनेन शिशुना यानमेतत् पादेन लोडितम्॥ १८॥
अस्माभिः सम्पतद्भिश्च दृष्टमेतद् यदृच्छया।

वे दोनों जब इस प्रकार वार्तालाप कर रहे थे, उस समय वहाँ आये हुए व्रजके बालकोंने कहा—'बाबा! तुम्हारे इस लालाने ही अपने पैरसे मारकर यह गाड़ी लुढ़का दी है। हमलोग अकस्मात् यहाँ दौड़े हुए आये थे। हमने अपनी आँखों यह घटना देखी है'॥ १८½॥

नन्दगोपस्तु तच्छ्रुत्वा विस्मयं परमं ययौ॥ १९॥
प्रहृष्टश्चैव भीतश्च किमेतदिति चिन्तयन्।

बालकोंकी वह बात सुनकर नन्दगोपको बड़ा विस्मय हुआ। वे पहले तो प्रसन्न हुए, परंतु ऐसा सोचते हुए कि यह क्या है, वे फिर डर गये॥ १९½॥

न च ते श्रद्दधुर्गोपाः सर्वे मानुषबुद्धयः॥ २०॥
आश्चर्यमिति ते सर्वे विस्मयोत्फुल्ललोचनाः।
स्वे स्थाने शकटं स्थाप्य चक्रबन्धमकारयन्॥ २१॥

वहाँ जो बड़े-बड़े गोप थे, उन सबको इस बातका विश्वास नहीं हुआ; क्योंकि वह उस बच्चेको साधारण मनुष्यका ही बालक समझते थे। फिर भी वे सब-के-सब इस घटनासे आश्चर्य करने लगे थे। उनके नेत्र विस्मयसे खिल उठे थे। वे छकड़ेको अपनी जगहपर खड़ा करके उसमें पहिये जोड़ने लगे॥ २०-२१॥

वैशम्पायन उवाच

कस्यचित्त्वथ कालस्य शकुनी वेषधारिणी।
धात्री कंसस्य भोजस्य पूतनेति परिश्रुता॥ २२॥

पूतना नाम शकुनी घोरा प्राणिभयंकरी ।
आजगामार्द्धरात्रे वै पक्षौ क्रोधाद् विधुन्वती ॥ २३ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! कुछ कालके बाद व्रजमें आधी रातके समय क्रोधपूर्वक अपने दोनों पंख हिलाती हुई पक्षिणीका वेष धारण किये एक राक्षसी आयी। वह भोजराज कंसकी धाय थी, उसका नाम पूतना था । पूतना नामवाली वह घोर पक्षिणी समस्त प्राणियोंके लिये भयंकर थी ॥ २२-२३ ॥

ततोऽर्धरात्रसमये पूतना प्रत्यदृश्यत ।
व्याघ्रगम्भीरनिर्घोषं व्याहरन्ती पुनः पुनः ॥ २४ ॥

आधी रातके समय जब पूतना दिखायी दी, उस समय वह व्याघ्रके दहाड़नेके-से गम्भीर घोषमें बारंबार गर्जना कर रही थी ॥ २४ ॥

निलिल्ये शकटस्याक्षे प्रस्रवोत्पीडवर्षिणी ।
ददौ स्तनं च कृष्णाय तस्मिन् सुप्ते जने निशि॥ २५ ॥

वह मानवी स्त्रीका वेष धारण करके छकड़ेके धुरेके नीचे छिप गयी । उस समय उसके स्तनोंमें इतना दूध बढ़ आया था कि उनमें पीड़ा होने लगी थी, इसीलिये वह दूधकी वर्षा सी करने लगी । उस निशीथ-कालमें जब सब लोग सो गये थे, उसने कृष्णके मुखमें अपना स्तन दे दिया ॥ २५ ॥

तस्याः स्तनं पपौ कृष्णः प्राणैः सह विनद्य च ।
छिन्नस्तनी तु सहसा पपात शकुनी भुवि ॥ २६ ॥

लाला कन्हैया उस स्तनको उसके प्राणोंके साथ ही पी गया; उसका स्तन कट गया और वह पक्षिणी घोर चीत्कार करके सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ २६ ॥

तेन शब्देन वित्रस्तास्ततो बुबुधिरे भयात् ।
स नन्दगोपो गोपा वै यशोदा च सुविक्लवा ॥ २७ ॥

उसके उस शब्दसे संत्रस्त होकर नन्दगोप, दूसरे-दूसरे गोप तथा अत्यन्त व्याकुल हुई यशोदा—ये सब-के-सब भयके मारे जाग उठे ॥ २७ ॥

ते तामपश्यन् पतितां विसंज्ञां विपयोधराम् ।
पूतनां पतितां भूमौ वज्रेणेव विदारिताम् ॥ २८ ॥

उन्होंने देखा, पूतना पृथ्वीपर अचेत होकर पड़ी है । उसका स्तन कट गया है और वह ऐसी प्रतीत होती है, मानो वज्रसे विदीर्ण कर दी गयी हो ॥ २८ ॥

इदं किं त्विति संत्रस्ताः कस्येदं कर्म चेत्यपि ।
नन्दगोपं पुरस्कृत्य गोपास्ते पर्यवारयन् ॥ २९ ॥

यह क्या है ? किसका यह कर्म है ? ऐसी बातें करते हुए वे गोप भयभीत हो गये और नन्दजीको आगे करके पूतनाको घेरकर खड़े हो गये ॥ २९ ॥

नाध्यगच्छन्त च तदा हेतुं तत्र कदाचन ।
आश्चर्यमाश्चर्यमिति ब्रुवन्तोऽनुययुर्गृहान् ॥ ३० ॥

वे उस समय उस घटनाके कारणका पता कदापि न लगा सके और आश्चर्य है ! आश्चर्य है !! ऐसा कहते हुए अपने-अपने घरोंको चले गये ॥ ३० ॥

गतेषु तेषु गोपेषु विस्मितेषु यथागृहम् ।
यशोदां नन्दगोपस्तु पप्रच्छ गतसम्भ्रमः ॥ ३१ ॥

उन विस्मित हुए गोपोंके अपने-अपने घर चले जानेपर सम्भ्रमरहित हुए नन्दगोपने यशोदासे पूछा—॥ ३१ ॥

कोऽयं विधिर्न जानामि विस्मयो मे महानयम् ।
पुत्रस्य मे भयं तीव्रं भीरुत्वं समुपागतम् ॥ ३२ ॥

'विधाताका यह कैसा विधान है, यह मेरी समझमें नहीं आता । इस घटनासे मुझे महान् विस्मय हो रहा है । यहाँ मेरे पुत्रके लिये तीव्र भय उपस्थित हुआ है, जिससे हमलोगोंमें भीरुता आ गयी है' ॥ ३२ ॥

यशोदा त्वब्रवीद् भीता नार्य जानामि किं त्विदम् ।
दारकेण सहानेन सुप्ता शब्देन बोधिता ॥ ३३ ॥

यह सुनकर यशोदाने भयभीत होकर कहा—'आर्य ! मैं भी नहीं जानती कि यह क्या है ? मैं तो इस बच्चेके साथ सोयी थी । इस राक्षसीके चीत्कारसे ही जग गयी हूँ' ॥

यशोदायामजानन्त्यां नन्दगोपः सबान्धवः ।
कंसाद् भयं चकारोग्रं विस्मयं च जगाम ह ॥ ३४ ॥

जब यशोदाने भी अपनी अनभिज्ञता प्रकट की, तब बन्धु-बान्धवोंसहित नन्दगोप कंससे अत्यन्त भय मानने लगे और मन-ही-मन विस्मयको प्राप्त हुए ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां शकटभङ्गपूतनावधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें श्रीकृष्णकी बाललीलाके प्रसङ्गमें
शकट-भङ्ग और पूतनाका वधविषयक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण और बलरामका व्रजमें घुटनोंके बल चलना तथा श्रीकृष्णका उलूखलमें बँधकर यमलार्जुन-भङ्गकी लीला करना

वैशम्पायन उवाच

काले गच्छति तौ सौम्यौ दारकौ कृतनामकौ ।
कृष्णसंकर्षणौ चोभौ रिङ्गिणौ समपद्यताम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! कुछ काल

बीतनेपर वे दोनों सौम्य बालक, जिनके नामकरण-संस्कार हो चुके थे और जो कृष्ण और संकर्षण नामसे प्रसिद्ध थे, घुटनोंके बल चलने-फिरने लगे ॥ १ ॥

तावन्योन्यगतौ बालौ बाल्यादेवैकतां गतौ।
एकमूर्तिधरौ कान्तौ बालचन्द्रार्कवर्चसौ ॥ २ ॥

बचपनसे ही वे दोनों बच्चे एक दूसरेमें अन्तर्भूत-से होकर एकताको प्राप्त हो गये थे। ऐसा जान पड़ता था कि ये दोनों एक ही शरीर धारण करते हैं। वे दोनों भाई बालचन्द्र और बालसूर्यके समान कान्तिमान् थे ॥ २ ॥

एकनिर्माणनिर्मुक्तावेकशय्यासनाशनौ ।
एकवेषधरावेकं पुष्यमाणौ शिशुव्रतम् ॥ ३ ॥

वे दोनों मानो एक ही साँचेके ढले थे (अथवा अभिन्न और जन्मरहित थे)। एक-सी शय्या, आसन और भोजनका उपभोग करते थे। एक समान वेष धारण करते थे और एक ही शिशुव्रतका पालन करनेवाले थे ॥ ३ ॥

एककार्यान्तरगतावेकदेहौ द्विधाकृतौ।
एकचर्यौ महावीर्यावेकस्य शिशुतां गतौ ॥ ४ ॥

वे एक ही कार्यमें संलग्न थे और एक ही शरीरके दो भागसे प्रतीत होते थे। उनकी दिनचर्या एक-सी थी। वे महापराक्रमी बालक एक ही पिताके शिशु थे ॥ ४ ॥

एकप्रमाणौ लोकानां देववृत्तान्तमानुषौ।
कृत्स्नस्य जगतो गोपौ संवृत्तौ गोपदारकौ ॥ ५ ॥

लोगोंकी दृष्टिमें वे एक-जैसे कदके थे। उन्होंने देवताओंके 'दुष्टदमन और धर्मस्थापन' रूप सिद्धान्तके पालनके लिये मानव-शरीर ग्रहण किया था। वे सम्पूर्ण जगत्के संरक्षक होकर भी गोपबालक बन गये थे ॥ ५ ॥

अन्योन्यव्यतिषक्ताभिः क्रीडाभिरभिशोभितौ।
अन्योन्यकिरणग्रस्तौ चन्द्रसूर्याविवाम्बरे ॥ ६ ॥

वे दोनों भाई एक दूसरेसे मिली हुई क्रीड़ाओंद्वारा सुशोभित होते थे, जैसे आकाशमें चन्द्रमा और सूर्य एक दूसरेकी किरणोंसे बँधकर एक साथ हो गये हों ॥ ६ ॥

विसर्पन्तौ तु सर्वत्र सर्पभोगभुजावुभौ।
रेजतुः पांसुदिग्धाङ्गौ दृप्तौ कलभकाविव ॥ ७ ॥

उन दोनोंकी भुजाएँ सर्पोंके शरीरके समान जान पड़ती थीं। वे उनके द्वारा सब ओर चलते-फिरते और सरकते थे। उस समय धूलसे भरे हुए शरीरवाले वे दोनों भाई दर्पभरे दो हस्ति-शावकोंके समान शोभा पाते थे ॥ ७ ॥

क्वचिद् भस्मप्रदीप्ताङ्गौ करीषप्रोक्षितौ क्वचित्।
तौ तत्र पर्यधावेतां कुमाराविव पावकी ॥ ८ ॥

कहीं तो उनके दीप्तिमान् अङ्गोंमें राख लिपट जाती और कहीं वे करसो (कंडोंके चूर्ण)से नहा उठते थे। वे वहाँ अग्निके दो कुमार शाख और विशाखके समान सुशोभित होते हुए सब ओर दौड़ लगाते थे ॥ ८ ॥

क्वचिज्जानुभिरुद्घृष्टैः सर्पमाणौ विरेजतुः।
क्रीडन्तौ वत्सशालासु शकृद्दिग्धाङ्गमूर्धजौ॥ ९ ॥

कभी घिसे हुए घुटनोंके बल सरकते हुए श्रीकृष्ण-बलराम बड़ी शोभा पाते थे। कभी वे बछड़ोंके स्थानोंमें जाकर खेलने लगते और सारे अङ्गों तथा सिरके बालोंमें गोबर लपेट लेते थे ॥ ९ ॥

शुशुभाते श्रिया जुष्टावानन्दजननौ पितुः।
जनं च विप्रकुर्वाणौ विहसन्तौ क्वचित् क्वचित्॥ १०॥

कान्तिरूपिणी श्रीसे सेवित होकर वे दोनों भाई अनुपम शोभा पाते और पिताको आनन्द प्रदान करते थे। कभी-कभी बालस्वभाववश किसी-किसीके विपरीत कार्य कर बैठते और जोर-जोरसे हँसने लगते थे ॥ १० ॥

तौ तत्र कौतूहलिनौ मूर्धजव्याकुलेक्षणौ।
रेजतुश्चन्द्रवदनौ दारकौ सुकुमारकौ ॥ ११॥

वे सदा क्रीड़ा-कौतूहलमें ही लगे रहते थे। उनके सिरके घुँघराले बाल नेत्रोंपर लटककर उन्हें व्याकुल एवं चञ्चल कर देते थे। उन दोनोंके मुख चन्द्रमाके समान सुन्दर थे, अतः वे सुकुमार बालक बड़े सुहावने लगते थे ॥ ११ ॥

अतिप्रसक्तौ तौ दृष्ट्वा सर्वव्रजविचारिणौ।
नाशकत् तौ वारयितुं नन्दगोपः सुदुर्मदौ ॥ १२॥

वे क्रीड़ामें ही आसक्त हो सारे व्रजमें विचरते रहते थे। उन दोनों अत्यन्त मतवाले बालकोंको सर्वत्र जाते देखकर भी नन्दगोप रोक नहीं पाते थे ॥ १२ ॥

ततो यशोदा संक्रुद्धा कृष्णं कमललोचनम्।
आनाय्य शकटीमूले भर्त्सयन्ती पुनः पुनः ॥ १३॥
दाम्ना चैवोदरे बद्ध्वा प्रत्यबन्धदुलूखले।
यदि शक्तोऽसि गच्छेति तमुक्त्वा कर्म साकरोत्॥ १४॥

तब एक दिन यशोदा मैया अत्यन्त कुपित हो कमलनयन श्रीकृष्णको एक गाड़ीके पास ले जाकर बारंबार डाँटने-फटकारने लगी। इतना हो नहीं, उसने उनके पेट और कमरमें रस्सी बाँधकर उस रस्सीको ओखलीमें कस दिया और कहा—'अब जा सको तो जाओ।' इतना कहकर वह घरके काम-धंधोंमें लग गयी ॥ १३-१४ ॥

व्यग्रायां तु यशोदायां निर्जगाम ततोऽङ्गणात्।
शिशुलीलां ततः कुर्वन् कृष्णो विस्मापयन् व्रजम्।
सोऽङ्गणान्निःसृतः कृष्णः कर्षमाण उलूखलम्॥ १५॥
यमलाभ्यां प्रवृद्धाभ्यामर्जुनाभ्यां चरन् वने।
मध्यान्निश्चक्राम तयोः कर्षमाण उलूखलम्॥ १६॥

यशोदाके कार्यमें तत्पर होते ही लाला कन्हैया बाल-लीला करता और व्रजके लोगोंको विस्मयमें डालता हुआ आँगनसे निकला। वह ओखलीको घसीटता हुआ वनकी ओर चला। मार्गमें एक साथ उत्पन्न हुए दो अर्जुनके वृक्ष थे, जो बहुत बड़े हो गये थे। कन्हैया अपनी ओखलीको खींचता हुआ उन्हीं दोनों वृक्षोंके बीचसे होकर निकला ॥ १५-१६ ॥

तत् तस्य कर्षतो बद्धं तिर्यग्गतमुलूखलम् ।
लग्नं ताभ्यां समूलाभ्यामर्जुनाभ्यां चकर्ष च ॥ १७ ॥

खींचते हुए कन्हैयाके उदरसे बँधी हुई वह ओखली टेढ़ी होकर उन दोनों अर्जुन-वृक्षोंकी जड़में जा लगी और वहीं अटक गयी। फिर तो उसने उन वृक्षोंसहित ओखलीको जोरसे खींचा ॥ १७ ॥

तावर्जुनौ कृष्यमाणौ तेन बालेन रंहसा ।
समूलविटपौ भग्नौ स तु मध्ये जहास वै ॥ १८ ॥
निदर्शनार्थं गोपानां दिव्यं स्वबलमास्थितः ।

बालक कन्हैयाद्वारा वेगसे खींचे गये वे दोनों अर्जुनवृक्ष जड़ और शाखाओंसहित टूटकर गिर पड़े और वह अपने दिव्य बलका आश्रय ले गोपोंको दिखानेके लिये उन दोनों वृक्षोंके बीचमें खड़ा-खड़ा हँसने लगा ॥ १८½ ॥

तद्दाम तस्य बालस्य प्रभावादभवद् दृढम् ॥ १९ ॥
यमुनातीरमार्गस्था गोप्यस्तं ददृशुः शिशुम् ।
क्रन्दन्त्यो विस्मयन्त्यश्च यशोदां ययुरङ्गनाः ॥ २० ॥

उस बालकके प्रभावसे वह रस्सी और भी दृढ़ हो गयी। यमुनातीरके मार्गपर खड़ी हुई गोपियोंने जब बालकृष्णको उस अवस्थामें देखा, तब वे आश्चर्यचकित हो करुणक्रन्दन करती हुई यशोदाजीके पास गयीं ॥ १९-२० ॥

तास्तु सम्भ्रान्तवदना यशोदामूचुरङ्गनाः ।
एह्यागच्छ यशोदे त्वं सम्भ्रमात् किं विलम्बसे ॥ २१ ॥
यौ तावर्जुनवृक्षौ तु व्रजे सत्योपयाचनौ ।
पुत्रस्योपरि तावेतौ पतितौ ते महीरुहौ ॥ २२ ॥

उन सबके मुखपर घबराहट छायी हुई थी। उन गोपाङ्गनाओंने यशोदासे कहा—'यशोदाजी! वेगसे आओ! आओ!! सम्भ्रमके कारण तुम विलम्ब क्यों करती हो। व्रजमें वे जो दोनों अर्जुनवृक्ष थे, जहाँ हमारी प्रत्येक याचना और मनौती सफल होती थी, वे दोनों वृक्ष तुम्हारे पुत्रके ऊपर गिर पड़े ॥ २१-२२ ॥

दृढेन दाम्ना तत्रैव बद्धो वत्स इवोदरे ।
जहास वृक्षयोर्मध्ये तत्र पुत्रः स बालकः ॥ २३ ॥

'जैसे बँधा हुआ बछड़ा हो, उसी प्रकार उदरमें मजबूत रस्सीसे बँधा हुआ तुम्हारा वह बालक उन वृक्षोंके बीचमें खड़ा-खड़ा हँस रहा था ॥ २३ ॥

उत्तिष्ठ गच्छ दुर्मेधे मूढे पण्डितमानिनि ।
पुत्रमानय जीवन्तं मुक्तं मृत्युमुखादिव ॥ २४ ॥

'अपनेको पण्डित माननेवाली मूढ़ दुर्बुद्धि यशोदे! उठो। चलो हमारे साथ और अपने जीवित पुत्रको, जो मानो मौतके मुखसे बचकर निकला है, घर ले आओ' ॥ २४ ॥

सा भीता सहसोत्थाय हाहाकारं प्रकुर्वती ।
तं देशमगमद् यत्र पातितौ तावुभौ द्रुमौ ॥ २५ ॥

यशोदा भयभीत हो सहसा उठी और हाहाकार करती हुई उस स्थानपर गयी, जहाँ उसके लालाने उन दोनों वृक्षोंको धराशायी कर दिया था ॥ २५ ॥

सा ददर्श तयोर्मध्ये द्रुमयोरात्मजं शिशुम् ।
दाम्ना निबद्धमुदरे कर्षमाणमुलूखलम् ॥ २६ ॥

उसने अपने पुत्रको उन दोनों वृक्षोंके बीचमें खड़ा देखा, जो रस्सीसे पेटमें बँधी हुई ओखलीको अपनी ओर खींच रहा था ॥ २६ ॥

सगोपीगोपवृद्धश्च समुवाच व्रजस्तदा ।
पर्यागच्छन्त ते द्रष्टुं गोपेषु महदद्भुतम् ॥ २७ ॥

गोपियों और बड़े-बूढ़े गोपोंसहित सारे व्रजमें उस समय इसी घटनाकी चर्चा होने लगी। गोपोंके यहाँ जो यह महान् और अद्भुत घटना घटित हुई थी, इसे देखनेके लिये चारों ओरसे लोग आने लगे ॥ २७ ॥

जजल्पुस्ते यथाकामं गोपा वनविचारिणः ।
केनेमौ पातितौ वृक्षौ घोषस्यायतनोपमौ ॥ २८ ॥

वनमें विचरनेवाले वे गोप अपनी इच्छाके अनुसार वहाँ आकर कहने लगे—'अहो! व्रजके ये दोनों वृक्ष देवमन्दिरके समान थे, इनको किसने गिरा दिया ॥ २८ ॥

विना वातं विना वर्षं विद्युत्प्रपतनं विना ।
विना हस्तिकृतं दोषं केनेमौ पातितौ द्रुमौ ॥ २९ ॥

'न आँधी चली, न वर्षा हुई, न बिजली गिरी और न किसी हाथीने ही आकर टक्कर मारी, इन सब दोषोंके बिना ही ये दोनों वृक्ष किसके द्वारा गिराये गये ॥ २९ ॥

अहो बत न शोभेतां विमूलावर्जुनाविमौ ।
भूमौ निपतितौ वृक्षौ वितोयौ जलदाविव ॥ ३० ॥

'अहो! जड़से अलग हो जानेके कारण पृथ्वीपर गिरे हुए ये दोनों अर्जुन वृक्ष जलहीन बादलोंके समान शोभारहित हो गये हैं ॥ ३० ॥

यदीमौ घोषरचितौ घोषकल्याणकारिणौ ।
नन्दगोप प्रसन्नौ ते द्रुमावेवं गतावपि ।
यच्च ते दारको मुक्तो विपुलाभ्यामपि क्षितौ ॥ ३१ ॥

'नन्दगोप! यदि ये दोनों वृक्ष इस गोष्ठमें लगाये गये थे और समस्त घोषवासियोंका कल्याण करते थे तो आज

इस अवस्थामें पहुँचकर भी ये दोनों आपपर प्रसन्न ही हैं, जिससे विशाल होनेपर भी इन वृक्षोंने पृथ्वीपर गिरते समय तुम्हारे बालकको जीवित छोड़ दिया है ॥ ३१ ॥

औत्पातिकमिदं घोषे तृतीयं वर्तते त्विह ।
पूतनाया विनाशश्च द्रुमयोः शकटस्य च ॥ ३२ ॥

'इस व्रजमें यह तीसरी बार औत्पातिक घटना हुई है। पूतनाका विनाश, छकड़ेका उलटना और वृक्षोंका धराशायी होना—ये तीन उपद्रव यहाँ हो चुके ॥ ३२ ॥

अस्मिन् स्थाने च वासोऽयं घोषस्यास्य न युज्यते ।
उत्पाता ह्यत्र दृश्यन्ते कथयन्तो न शोभनम् ॥ ३३ ॥

'इस स्थानपर हमारे इस व्रजका रहना अब उचित नहीं जान पड़ता; क्योंकि यहाँ अशुभ परिणामकी सूचना देनेवाले उत्पात दिखायी देने लगे हैं' ॥ ३३ ॥

नन्दगोपस्तु सहसा मुक्त्वा कृष्णमुलूखलात् ।
निवेश्य चाङ्के सुचिरं मृतं पुनरिवागतम् ॥ ३४ ॥
नातृप्यत् प्रेक्षमाणो वै कृष्णं कमललोचनम् ।

इतनेहीमें नन्दगोपने सहसा बन्धन खोलकर श्रीकृष्णको ओखलीसे मुक्त कर दिया और मानो वह बालक मरकर पुनः जी उठा हो, ऐसा मानते हुए वे देरतक उसे अपनी गोदमें चिपकाये रहे। उस समय वे कमलनयन श्रीकृष्णकी ओर देखते-देखते तृप्त नहीं होते थे ॥ ३४½ ॥

ततो यशोदां गर्हन् वै नन्दगोपो विवेश ह ॥ ३५ ॥
स च गोपजनः सर्वो व्रजमेव जगाम ह ।

तदनन्तर नन्दगोप यशोदाकी निन्दा करते हुए घरमें गये, साथ ही अन्य सब गोप भी व्रजमें ही पधारे ॥ ३५½ ॥

स च तेनैव नाम्ना तु कृष्णो वैदामबन्धनात् ।
गोष्ठे दामोदर इति गोपीभिः परिगीयते ॥ ३६ ॥

उस दाम अर्थात् रस्सीसे उदरमें बाँधे जानेके कारण श्रीकृष्णका नाम दामोदर हो गया। व्रजमें गोपियाँ उसी नामसे उनकी लीलाओंका गान करने लगीं ॥ ३६ ॥

एतदाश्चर्यभूतं हि बालस्यासीद् विचेष्टितम् ।
कृष्णस्य भरतश्रेष्ठ घोषे निवसतस्तदा ॥ ३७ ॥

भरतश्रेष्ठ! व्रजमें निवास करते समय बालक कृष्णकी ऐसी ही आश्चर्यमयी लीलाएँ होती रहती थीं ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां यमलार्जुनभङ्गो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें बाललीलाके प्रसङ्गमें
यमलार्जुनभङ्गविषयक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण-बलरामकी बालचया, श्रीकृष्णके द्वारा व्रजको अन्यत्र ले जानेकी चेष्टा और अपने शरीरसे भेड़ियोंको उत्पन्न करके उनका समूचे व्रजको डराना

वैशम्पायन उवाच

एवं तौ बाल्यमुत्तीर्णौ कृष्णसंकर्षणावुभौ ।
तस्मिन्नेव व्रजस्थाने सप्तवर्षौ बभूवतुः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार श्रीकृष्ण और संकर्षण दोनों भाई उसी व्रजमें बाल्यावस्थाको पार करके सात वर्षके हो गये ॥ १ ॥

नीलपीताम्बरधरौ पीतश्वेतानुलेपनौ ।
बभूवतुर्वत्सपालौ काकपक्षधरावुभौ ॥ २ ॥

इनमेंसे एक (बलराम) तो नील वस्त्र धारण करते थे और दूसरे (श्रीकृष्ण) पीत वस्त्र। दोनोंके चन्दन और अङ्गराग भी क्रमशः पीले और श्वेत थे। दोनों ही काकपक्ष धारण करते थे। अब वे दोनों भाई बछड़े चराने लगे ॥ २ ॥

पर्णवाद्यं श्रुतिसुखं वादयन्तौ वराननौ ।
शुशुभाते वनगतौ त्रिशीर्षाविव पन्नगौ ॥ ३ ॥

उन दोनोंके मुख बड़े सुन्दर थे। वे वनमें जाकर कानोंको सुख देनेवाले पत्तोंके बाजे (पिपीहरी या सीटी) बजाते हुए तीन सिरवाले सर्पोंके समान शोभा पाते थे* ॥ ३ ॥

मयूराङ्गदकर्णौ तु पल्लवापीडधारिणौ ।
वनमालाकुलोरस्कौ द्रुमपोताविवोद्गतौ ॥ ४ ॥

मोरपङ्खके ही बाजूबंद और कर्णभूषण पहने तथा पत्तोंके ही मुकुट धारण किये वे दोनों भाई वृक्षके निकले

---

* ताड़ आदिके पत्तेको मोड़कर उसके सिरेपर छोटा-सा छेद रखकर उसे दोनों हाथसे पकड़े हुए बच्चे मुँहमें डालकर फूँकते हैं, उसमेंसे सीटी, बिगुल या बाँसुरी-जैसी आवाज निकलती है। उसे बजाते समय दोनों हाथ और सिर ऊँचाईपर रहते हैं। इन्हींकी सर्पके तीन सिरोंसे उपमा दी गयी है।

हुए नये पौधोंके समान दिखायी देते थे। उनका वक्षःस्थल वनमालासे व्याप्त था ॥ ४ ॥

अरविन्दकृतापीडौ रज्जुयज्ञोपवीतिनौ ।
सशिक्यतुम्बकरकौ गोपवेणुप्रवादकौ ॥ ५ ॥

कमलपुष्पोंके शिरोभूषण और रस्सीके यज्ञोपवीत धारण करके वे दोनों ग्वालबालोंके समान मुरली बजाया करते थे। उनके साथ छींका, तुम्बी और करक (करुआ या पुरवा) भी थे ॥ ५ ॥

क्वचिद्धसन्तावन्योन्यं क्रीडमानौ क्वचित् क्वचित् ।
पर्णशय्यासु संसुप्तौ क्वचिन्निद्रान्तरेक्षणौ ॥ ६ ॥

कहीं एक दूसरेकी ओर देखकर हँसते-हँसाते, कहीं भाँति-भाँतिके खेल खेलते और कहीं पत्तोंके बिछौनोंपर सोकर आँखोंमें नींद भर लेते थे ॥ ६ ॥

एवं वत्सान् पालयन्तौ शोभयन्तौ महावनम् ।
चञ्चूर्यन्तौ रमन्तौ स्म किशोराविव चञ्चलौ ॥ ७ ॥

इस प्रकार बछड़े चराते, महावनकी शोभा बढ़ाते, बारंबार सब ओर चक्कर लगाते और चञ्चल गतिवाले अश्वशावकोंके समान वनमें विहार करते थे ॥ ७ ॥

अथ दामोदरः श्रीमान् संकर्षणमुवाच ह ।
आर्य नास्मिन् वने शक्यं गोपालैः सह क्रीडितुम् ॥८॥
अवगीतमिदं सर्वमावाभ्यां भुक्तकाननम् ।
प्रक्षीणतृणकाष्ठं च गोपैर्मथितपादपम् ॥ ९ ॥

तदनन्तर एक दिन शोभासम्पन्न दामोदर श्रीकृष्णने अपने भाई संकर्षणसे कहा—'आर्य ! अब इस वनमें ग्वालबालोंके साथ खेलना सम्भव नहीं है। हमलोगोंने इस सारे वनको अपने उपभोगमें लाकर इसकी शोभा-सम्पत्ति नष्ट कर दी है। यहाँकी घास चर ली गयी और काठ भी तोड़ लिये गये हैं। गोपोंने यहाँके एक-एक वृक्षको मथ डाला है ॥ ८-९ ॥

घनीभूतानि यान्यासन् काननानि वनानि च ।
तान्याकाशनिकाशानि दृश्यन्तेऽद्य यथाऽसुखम् ॥ १० ॥

'जो वन और कानन सघन थे, वे अब आकाशके समान सूने दिखायी देती हैं। इन्हें देखकर अब सुख नहीं मिलता ॥

गोवाटेष्वपि ये वृक्षाः परिवृत्तार्गलेषु च ।
सर्वे गोष्ठाग्निषु गताः क्षयमक्षयवर्चसः ॥ ११ ॥

'जिनके फाटकोंमें गोलाकार कुंडे लगे हैं, उन गोशालाओंमें भी अमिट शोभावाले जो वृक्ष थे, वे सब गोष्ठकी आगमें जलकर नष्ट हो गये ॥ ११ ॥

संनिकृष्टानि यान्यासन् काष्ठानि च तृणानि च ।
तानि दूरावकृष्टासु मार्गितव्यानि भूमिषु ॥ १२ ॥

'जो तृण और काष्ठ बहुत निकट थे, वे दूरतककी जोती हुई भूमियोंमें अब ढूँढ़नेके योग्य रह गये हैं ॥ १२ ॥

अरण्यमिदमल्पोदमल्पकक्षं निराश्रयम् ।
अन्वेषितव्यविश्रामं दारुणं विरलद्रुमम् ॥ १३ ॥

'इस वनमें जल बहुत थोड़ा है, सूखे काठ और तृण भी बहुत कम हैं, यहाँ आश्रय लेनेयोग्य कोई स्थान नहीं है, यहाँ विश्रामके लिये भूमि खोजनी पड़ती है, विरले ही वृक्ष बच गये हैं, अतः इसकी बड़ी दारुण अवस्था हो गयी है ॥

अकर्मण्येषु वृक्षेषु स्थितविप्रस्थितद्विजम् ।
संवासस्यास्य महतो जनेनोत्सादितद्रुमम् ॥ १४ ॥

'यहाँके वृक्ष अब कामके नहीं रहे (इनमें फल-फूलका अभाव हो गया है)। इनपर जो पक्षी रहते थे, वे अब अन्यत्र प्रस्थान कर चुके हैं। इस विशाल बस्तीके लोगोंने यहाँके वृक्षोंको उजाड़ कर दिया है ॥ १४ ॥

निरानन्दं निरास्वादं निष्प्रयोजनमारुतम् ।
निर्विहङ्गमिदं शून्यं निर्व्यञ्जनमिवाशनम् ॥ १५ ॥

'यहाँ कोई आनन्द नहीं रहा, फलोंका आस्वाद दुर्लभ हो गया। यहाँ वायुका चलना भी निष्फल है (क्योंकि न तो वह सुगन्ध देती है और न फल ही गिराती है—इन दोनों वस्तुओंका यहाँ सर्वथा अभाव है)। पक्षियोंसे रहित यह सूना वन बिना व्यञ्जनके भोजनकी भाँति अच्छा नहीं लगता ॥

विक्रीयमाणैः काष्ठैश्च शाकैश्च वनसम्भवैः ।
उच्छिन्नसंचयतृणैर्घोषोऽयं नगरायते ॥ १६ ॥

'यहाँके सूखे काठ और इस वनमें होनेवाले शाक प्रतिदिन बेचे जा रहे हैं। यहाँ जो ढेर-के-ढेर तृण थे, उनका उच्छेद हो गया; इससे यह घोष (व्रज) नगरके समान जान पड़ता है ॥ १६ ॥

शैलानां भूषणं घोषो घोषाणां भूषणं वनम् ।
वनानां भूषणं गावस्ताश्चास्माकं परा गतिः ॥ १७ ॥

'पर्वतोंका भूषण है घोष (गोष्ठ), घोषोंका भूषण है वन और वनोंका आभूषण हैं गौएँ। वे गौएँ ही हमलोगोंकी परम गति (सबसे बड़ा सहारा) हैं ॥ १७ ॥

तस्मादन्यद् वनं यामः प्रत्यग्रयवसेन्धनम् ।
इच्छन्त्यनुपभुक्तानि गावो भोक्तुं तृणानि च ॥ १८ ॥

'अतः अब हम दूसरे वनमें चलें, जहाँ नयी-नयी घास और ईंधनकी अधिकता हो। हमारी गौएँ उन नयी-नयी घासोंको चरना चाहती हैं, जो अबतक चरी नहीं गयी हैं ॥ १८ ॥

तस्माद् वनं नवतृणं गच्छन्तु धनिनो व्रजाः ।
न द्वारबन्धावरणा न गृहक्षेत्रिणस्तथा ।
प्रशस्ता वै व्रजा लोके यथा वै चक्रचारिणः ॥ १९ ॥

'अतः जो व्रज धनसे सम्पन्न हों, वे उस वनमें चलें जहाँ नयी-नयी घास उपलब्ध हो। जिनमें दरवाजे बँध गये हैं

और चारों ओरसे बाड़ लग गये हैं, जहाँ स्थायी घर बन गये और खेत कर लिये गये; ऐसे व्रज लोकमें अच्छे नहीं माने जाते। उन्मुक्त विचरनेवाले हंसोंके समान बन्धनरहित होकर विभिन्न स्थानोंमें घूमते रहनेवाले व्रज ही श्रेष्ठ हैं ॥ १९ ॥

शकृन्मूत्रेषु तेष्वेव जातक्षाररसायनम्।
न तृणं भुञ्जते गावो नापि तत् पयसे हितम् ॥ २० ॥

'उन्हीं गोबर-मूत्रोंके ढेरपर जो तृण पैदा होते हैं अथवा अन्यत्र पैदा हुए तृणोंपर जब गोबर-गोमूत्र पड़ जाते हैं, तब उनमें क्षार एवं रसायनके गुण आ जाते हैं; अतः गौएँ उन घासोंको चाहसे नहीं खाती हैं तथा वे तृण दूधके लिये भी हितकारी नहीं होते हैं ॥ २० ॥

स्थलीप्रायासु रथ्यासु नवासु वनराजिषु।
चरावः सहितौ गोभिः क्षिप्रं संवाह्यतां व्रजः ॥ २१ ॥

'आजकल इस वनकी सारी गलियाँ स्थल-सी हो गयी हैं। उनमें घास-फूँसका नाम भी नहीं रह गया है; अतः चलिये, हम दोनों गौओंके साथ नूतन वन-श्रेणियोंमें विचरें। अब शीघ्र ही यहाँसे व्रजको अन्यत्र ले जाना चाहिये ॥ २१ ॥

श्रूयते हि वनं रम्यं पर्याप्ततृणसंस्तरम्।
नाम्ना वृन्दावनं नाम स्वादुवृक्षफलोदकम् ॥ २२ ॥

'सुना जाता है कि वृन्दावन नामक वन बड़ा ही रमणीय है। वहाँ पर्याप्त घास फैली हुई है। वहाँके वृक्षोंमें स्वादिष्ट फल लगे हैं और वहाँका जल भी सुस्वादु है ॥ २२ ॥

अझिल्लिकण्टकवनं सर्वैर्वनगुणैर्युतम्।
कदम्बपादपप्रायं यमुनातीरसंश्रितम् ॥ २३ ॥

'उस वनमें न झिल्लियाँ (झींगुर) हैं, न काँटे। उसमें सभी वनसम्बन्धी गुणोंका संयोग है। वहाँ अधिकतर कदम्बके वृक्ष हैं तथा वह वन यमुनाके तटपर ही स्थित है ॥

स्निग्धशीतानिलवनं सर्वर्तुनिलयं शुभम्।
गोपीनां सुखसंचारं चारुचित्रवनान्तरम् ॥ २४ ॥

'उसमें सदा स्निग्ध एवं शीतल वायु चलती रहती है। वहाँ सभी ऋतुओंका निवास है। वह वन बड़ा सुन्दर एवं सुखद है। वहाँ गोपियाँ बड़े सुखसे सब ओर विचर सकती हैं। वृन्दावनके भीतरी भागमें और भी बहुत-से विचित्र एवं मनोहर वन हैं ॥ २४ ॥

तत्र गोवर्धनो नाम नातिदूरे गिरिर्महान्।
भ्राजते दीर्घशिखरो नन्दनस्येव मन्दरः ॥ २५ ॥

'वहाँ गोवर्धन नामक महान् पर्वत है, जो उस वनसे अधिक दूर नहीं है। उसके बड़े-बड़े शिखर हैं। जैसे नन्दनवनके पास मन्दराचलकी शोभा होती है, उसी प्रकार वृन्दावनके निकट गोवर्धन सुशोभित होता है ॥ २५ ॥

मध्ये चास्य महाशाखो न्यग्रोधो योजनोच्छ्रितः।
भाण्डीरो नाम शुशुभे नीलमेघ इवाम्बरे ॥ २६ ॥

'उस वनके मध्यभागमें विशाल शाखाओंसे सुशोभित एक बरगदका वृक्ष है, जो एक योजन ऊँचा है। उसका नाम है भाण्डीर वट। वह आकाशमें श्याम मेघके समान शोभा पाता है ॥ २६ ॥

मध्येन चास्य कालिन्दी सीमन्तमिव कुर्वती।
प्रयाता नन्दनस्येव नलिनी सरितां वरा ॥ २७ ॥

'जैसे नन्दन वनके बीचमें सरिताओंमें श्रेष्ठ नलिनी प्रवाहित होती है, उसी प्रकार वृन्दावनके मध्यभागमें सीमन्त-सा बनाती हुई कालिन्दी बहती है ॥ २७ ॥

तत्र गोवर्धनं चैव भाण्डीरं च वनस्पतिम्।
कालिन्दीं च नदीं रम्यां द्रक्ष्यावश्चरतः सुखम् ॥ २८ ॥

'हमलोग वहाँ चलनेपर गोवर्धन पर्वत, भाण्डीर वट तथा रमणीय कालिन्दी नदीका सुखपूर्वक दर्शन करेंगे ॥ २८ ॥

तत्रायं कल्प्यतां घोषस्त्यज्यतां निर्गुणं वनम्।
संत्रासयावो भद्रं ते किञ्चिदुत्पाद्य कारणम् ॥ २९ ॥

'वहीं चलकर इस व्रजको बसाया जाय और इस गुणहीन वनको छोड़ दिया जाय। भैया! आपका भला हो, कोई नवीन कारण उत्पन्न करके हम इन व्रजवासियोंको डरावें' ॥

एवं कथयतस्तस्य वासुदेवस्य धीमतः।
प्रादुर्बभूवुः शतशो रक्तमांसवसाशनाः ॥ ३० ॥
घोराश्चिन्तयतस्तस्य स्वतनूरुहजास्तदा।
विनिष्पेतुर्भयकराः सर्वशः शतशो वृकाः ॥ ३१ ॥

बुद्धिमान् वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण ऐसा कह ही रहे थे कि उनके रोम-रोमसे सैकड़ों भयानक भेड़िये उत्पन्न होने लगे, जो रक्त, मांस और वसाका आहार करनेवाले थे। उनके चिन्तन करते ही सब ओर सैकड़ों भयंकर वृक निकल पड़े थे ॥ ३०-३१ ॥

निष्पतन्ति स्म बहवो व्रजस्योत्सादनाय वै।
वृकान् निष्पतितान् दृष्ट्वा गोषु वत्सेष्वथो नृषु ॥ ३२ ॥
गोपीषु च यथाकामं व्रजे त्रासोऽभवन्महान्।

व्रजको वहाँसे उजाड़नेके लिये जब श्रीकृष्णकी इच्छाके अनुसार बहुत-से भेड़िये प्रकट होने लगे, तब उन्हें देखकर गौओं, बछड़ों, मनुष्यों तथा गोपाङ्गनाओंमें अथवा यों कहिये सम्पूर्ण व्रजमें महान् त्रास छा गया ॥ ३२½ ॥

ते वृकाः पञ्चबद्धाश्च दशबद्धास्तथा परे ॥ ३३ ॥
त्रिंशद्विंशतिबद्धाश्च शतबद्धास्तथा परे।
निश्चेरुस्तस्य गात्रेभ्यः श्रीवत्सकृतलक्षणाः ॥ ३४ ॥

ये भेड़िये पाँच, दस, बीस, तीस तथा सौ-सौके झुंड बनाकर श्रीकृष्णके अङ्गोंसे निकल रहे थे। ये सभी श्रीवत्सके चिह्नसे सुशोभित थे ॥ ३३-३४ ॥

कृष्णस्य कृष्णवदना गोपानां भयवर्धनाः ।
भक्षयद्भिश्च तैर्वत्सांस्त्रासयद्भिश्च गोव्रजान् ॥ ३५ ॥
निशि बालान् हरद्भिश्च वृकैरुत्साद्यते व्रजः ।

श्रीकृष्णके अङ्गोंसे प्रकट हुए वे काले मुखवाले वृक गोपोंका भय बढ़ा रहे थे । वे बछड़ोंको खा जाते, गौओंके झुंडोंको त्रास देते तथा रातमें बालकोंका अपहरण कर लेते थे । इस प्रकार भेड़ियोंद्वारा वह व्रज उजाड़ा जाने लगा ॥

न वने शक्यते गन्तुं न गाश्च परिरक्षितुम् ॥ ३६ ॥
न वनात् किंचिदाहर्तुं न च वा तरितुं नदीम् ।

उस समय वनमें जाना, गौओंकी रक्षा करना, वनसे कोई वस्तु ले आना अथवा नदीको पार करना असम्भव हो गया ॥ ३६½ ॥

त्रस्ता ह्युद्विग्नमनसोऽगतास्तस्मिन् वनेऽवसन् ॥ ३७ ॥
एवं वृकैरुदीर्णैस्तु व्याघ्रतुल्यपराक्रमैः ।
व्रजो निष्पन्दचेष्टः स एकस्थानचरः कृतः ॥ ३८ ॥

वे सब-के-सब भयभीत थे, उनका चित्त उद्विग्न हो गया था । वे कहीं भी आ-जा न सके । डरके मारे केवल उस वनमें ही बैठे रहे । इस प्रकार बढ़े हुए व्याघ्रतुल्य पराक्रमी भेड़ियोंने सारे व्रजको निश्चेष्ट तथा एक स्थानमें ही सीमित रहनेवाला बना दिया ॥ ३७-३८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां वृकदर्शनेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें बाललीलाके प्रसङ्गमें वृकदर्शनविषयक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

भेड़ियोंके उत्पातसे व्रजवासियोंका उस स्थानको छोड़कर श्रीवृन्दावनमें जाना

वैशम्पायन उवाच

एवं वृकांश्च तान् दृष्ट्वा वर्धमानान् दुरासदान् ।
सस्त्रीपुमान् स घोषो वै समस्तोऽमन्त्रयत् तदा ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! इस प्रकार उन दुर्जय भेड़ियोंको बढ़ते देख समस्त व्रजके स्त्री-पुरुष एकत्र हो उस समय इस प्रकार मन्त्रणा करने लगे—॥ १ ॥

स्थानेनेह न नः कार्यं व्रजामोऽन्यन्महद्वनम् ।
यच्छिवं च सुखोष्यं च गवां चैव सुखावहम् ॥ २ ॥

'अब हमें इस स्थानपर रहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । हम लोग दूसरे किसी विशाल वनमें चले चलें, जो हमारे लिये कल्याणकारी, सुखपूर्वक रहने योग्य तथा गौओंके लिये भी सुखदायक हो ॥ २ ॥

अद्यैव किं चिरेण स्म व्रजामः सह गोधनैः ।
यावद् वृकैर्वधं घोरं न नः सर्वो व्रजो व्रजेत् ॥ ३ ॥

'विलम्ब करनेसे क्या लाभ ? हम आज ही अपने गोधनोंके साथ यहाँसे चल दें । भेड़ियोंसे हमारे सारे व्रजका भयंकर वध न हो जाय—इसके पहले ही हमें यहाँसे प्रस्थान कर देना चाहिये ॥ ३ ॥

एषां धूम्रारुणाङ्गानां दंष्ट्रिणां नखकर्षिणाम् ।
वृकाणां कृष्णवक्त्राणां बिभीमो निशि गर्जताम् ॥ ४ ॥

'इन भेड़ियोंके सारे अङ्ग धूमिल और लाल रंगके हैं, इनके बड़ी-बड़ी दाढ़ें हैं । ये नखोंसे बकोट लेते हैं । इनके मुख काले हैं और रातके समय ये भीषण गर्जना करते हैं । हमें इनसे बड़ा भय लगता है ॥ ४ ॥

मम पुत्रो मम भ्राता मम वत्सोऽथ गौर्मम ।
वृकैर्व्यापादिता ह्येवं क्रन्दन्ति स्म गृहे गृहे ॥ ५ ॥

'घर-घरकी स्त्रियाँ करुणक्रन्दन करती हुई यों कहती हैं कि हाय ! इन भेड़ियोंने मेरे पुत्रको, मेरे भाईको, मेरे बछड़ेको और मेरी गायको मार डाला है' ॥ ५ ॥

तासां रुदितशब्देन गवां हंभारवेण च ।
व्रजस्योत्थापनं चक्रुर्गोपवृद्धाः समागताः ॥ ६ ॥

उनके रोनेके शब्दसे और गायोंके रँभानेसे चिन्तित हो एकत्र हुए व्रजके वृद्ध पुरुषोंने व्रजको वहाँसे उठा देनेका ही निश्चय किया ॥ ६ ॥

तेषां मतमथाज्ञाय गन्तुं वृन्दावनं प्रति ।
व्रजस्य विनिवेशाय गवां चैव हिताय च ॥ ७ ॥
वृन्दावननिवासाय ताञ्ज्ञात्वा कृतनिश्चयान् ।
नन्दगोपो बृहद्वाक्यं बृहस्पतिरिवाददे ॥ ८ ॥

जब नन्दजीने वृन्दावनमें जानेके लिये उनके मतको जान लिया तथा व्रजको नयी जगह बसाने एवं गौओंके हितके लिये वृन्दावनमें निवास करनेके निमित्त उन सबके दृढ़ निश्चयको समझ लिया, तब वे बृहस्पतिके समान यह महत्त्वपूर्ण वचन बोले—॥ ७-८ ॥

अद्यैव निश्चयप्राप्तिर्यदि गन्तव्यमेव नः ।
शीघ्रमाज्ञाप्यतां घोषः सज्जीभवत मा चिरम् ॥ ९ ॥

'यदि यह बात निश्चित हो गयी और हमें जाना ही होगा तो आज ही यात्रा कर देनी चाहिये । शीघ्र ही सारे व्रजमें यह आदेश दे दिया जाय कि तुम सब लोग शीघ्र ही यहाँसे प्रस्थानके लिये तैयार हो जाओ, देर न करो' ॥ ९ ॥

ततोऽवघुष्यत तदा घोषे तत् प्राकृतैर्जनैः।
शीघ्रं गावः प्रकल्प्यन्तां भाण्डं समभिरोप्यताम॥ १० ॥
वत्सयूथानि काल्यन्तां युज्यन्तां शकटानि च।
वृन्दावनमितः स्थानान्निवेशाय च गम्यताम् ॥ ११ ॥

फिर तो प्राकृत जनोंद्वारा व्रजमें यह घोषणा करा दी गयी कि 'व्रजवासियो ! शीघ्र ही गौओंको तैयार कर लो। अपने बर्तन-भाँड़ोंको छकड़ोंपर लाद लो। बछड़ोंके समूहोंको अभी हाँक दो। गाड़ियाँ जोतो और यहाँसे वृन्दावनमें रहनेके लिये प्रस्थान करो' ॥ १०-११ ॥

तच्छ्रुत्वा नन्दगोपस्य वचनं साधु भाषितम्।
उदतिष्ठद् व्रजः सर्वः शीघ्रं गमनलालसः ॥ १२ ॥

नन्दगोपका कहा हुआ यह उत्तम वचन सुनकर सारे व्रजके लोग जानेके लिये उत्सुक हो शीघ्र ही उठ खड़े हुए ॥ १२ ॥

प्रयाह्युत्तिष्ठ गच्छामः किं शेषे याहि योजय।
उत्तिष्ठति व्रजे तस्मिन् गोपकोलाहलो ह्यभूत् ॥ १३ ॥

इस प्रकार जब वह व्रज वहाँसे उठने लगा, तब गोपोंका कोलाहल इस तरह सुनायी देने लगा—'अरे! चलो, उठो, हम सब लोग चल रहे हैं, क्या सो रहे हो, जाओ, छकड़ा जोतो'॥ १३ ॥

उत्तिष्ठमानः शुशुभे शकटीशकटस्तु सः।
व्याघ्रघोषमहाघोषो घोषः सागरघोषवान् ॥ १४ ॥

गाड़ियों और छकड़ोंसे युक्त वह व्रज जब वहाँसे उठकर चला, उस समय ऐसा भयंकर कोलाहल हुआ, मानो वहाँ व्याघ्रोंके दहाड़नेकी भारी आवाज हो रही हो अथवा समुद्रकी गर्जना सुनायी देती हो ॥ १४ ॥

गोपीनां गर्गरीभिश्च मूर्ध्नि चोत्तम्भितैर्घटैः।
निष्पपात व्रजात् पंक्तिस्तारापंक्तिरिवाम्बरात् ॥ १५ ॥

सिरपर माट और घड़े उठाये गोपियोंकी पंक्ति जब व्रजसे निकली, उस समय ऐसा जान पड़ा, मानो आकाशसे ताराओंकी पाँत उतर आयी हो ॥ १५ ॥

नीलपीतारुणैस्तासां वस्त्रैरग्रस्तनोच्छ्रितैः।
शक्रचापायते पंक्तिर्गोपीनां मार्गगामिनी ॥ १६ ॥

उनके नीले, पीले और लाल वस्त्र स्तनोंके अग्रभागपर ऊँचे दिखायी देते थे। उन वस्त्रोंसे सुशोभित हो मार्गपर चलती हुई गोपियोंकी पंक्ति इन्द्रधनुषके समान शोभा पाती थी ॥ १६ ॥

दामनीदामभारैश्च केचित् कायावलम्बिभिः।
गोपा मार्गगता भान्ति सावरोहा इव द्रुमाः ॥ १७ ॥

कुछ गोप मोटी और पतली रस्सियोंके बोझ लिये मार्गमें चल रहे थे। वे रस्सियाँ उनके अङ्गोंपर लटक रही थीं। उनसे उपलक्षित होनेवाले वे गोप, बरोहोंसे युक्त वटवृक्षके समान प्रतीत होते थे ॥ १७ ॥

स व्रजो व्रजता भाति शकटौघेन भास्वता।
पोतैः पवनविक्षिप्तैर्निष्पतद्भिरिवार्णवः ॥ १८ ॥

आगे बढ़ते हुए शोभाशाली शकटोंके समूहसे उस व्रजकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो पवनकी प्रेरणासे वेगपूर्वक चलते हुए असंख्य जलपोतों (जहाजों) से युक्त महासागर सुशोभित हो रहा हो ॥ १८ ॥

क्षणेन तद् व्रजस्थानमीरिणं समपद्यत।
द्रव्यावयवनिर्धूतं कीर्णं वायसमण्डलैः ॥ १९ ॥

एक ही क्षणमें व्रजका वह स्थान ऊसरभूमिके समान सूना हो गया। वहाँ जो अन्न आदि द्रव्योंके कण बिखरे हुए थे, उनके कारण उस स्थानपर कौओंकी मण्डली छा गयी थी ॥ १९ ॥

ततः क्रमेण घोषः स प्राप्तो वृन्दावनं वनम्।
निवेशं विपुलं चक्रे गवां चैव हिताय च ॥ २० ॥

तदनन्तर क्रमशः आगे बढ़ता हुआ वह व्रज वृन्दावनमें जा पहुँचा और गौओंके हितके लिये बहुत दूरतक फैलकर बस गया ॥ २० ॥

शकटावर्तपर्यन्तं चन्द्रार्द्धाकारसंस्थितम्।
मध्ये योजनविस्तीर्णं तावद्द्विगुणमायतम् ॥ २१ ॥

सीमापर छकड़ोंके बाड़ लगा दिये गये। सारा व्रज अर्धचन्द्रकी आकृतिमें स्थित हो गया। बीचके भूभागकी चौड़ाई एक योजन और लंबाई दो योजनकी थी ॥ २१ ॥

कण्टकीभिः प्रवृद्धाभिस्तथा कण्टकितद्रुमैः।
निखातोच्छ्रितशाखाग्रैरभिगुप्तं समन्ततः ॥ २२ ॥

बढ़ी हुई कण्टकी (नीलकाँटे आदि) तथा शाखाग्रभागको ऊँचे रखकर गाड़े गये काँटेदार वृक्षोंके द्वारा वह व्रज चारों ओरसे सुरक्षित था ॥ २२ ॥

मन्थैरारोप्यमाणैश्च मन्थबन्धानुकर्षणैः।
अद्भिः प्रक्षाल्यमानाभिर्गर्गरीभिरितस्ततः ॥ २३ ॥
कीलैरारोप्यमाणैश्च दामनीपाशपाशितैः।
स्तम्भनीभिर्धृताभिश्च शकटैः परिवर्तितैः ॥ २४ ॥
नियोगपाशैरासक्तैर्गर्गरीस्तम्भमूर्धसु ।
छादनार्थं प्रकीर्णैश्च कटकैस्तृणसंकटैः ॥ २५ ॥
शाखाविटङ्कैर्वृक्षाणां क्रियमाणैरितस्ततः।
शोध्यमानैर्गवां स्थानैः स्थाप्यमानैरुलूखलैः ॥ २६ ॥
प्राङ्मुखैः सिच्यमानैश्च संदीप्यद्भिश्च पावकैः।
सवत्सचर्मास्तरणैः पर्यङ्कैश्चावरोपितैः ॥ २७ ॥
तोयमुत्तारयन्तीभिः प्रेक्षन्तीभिश्च तद् वनम्।
शाखाश्चाकर्षमाणाभिर्गोपीभिश्च समन्ततः ॥ २८ ॥

युवभिः स्थविरैश्चैव गोपैर्व्यग्रकरैर्भृशम्।
विशसद्भिः कुठारैश्च काष्ठान्यपि तरूनपि॥ २९॥
तद् व्रजस्थानमधिकं शुशुभे काननावृतम्।
रम्यं वननिवेशं वै स्वादुमूलफलोदकम्॥ ३०॥

कहीं दही-दूधके माटोंमें मथानी डाली जा रही थी, कहीं मथानीमें बँधी हुई रस्सी खींची जाती थी, कहीं इधर-उधर गगरियों या माटोंको जलसे धोया जाता था, कहीं कील या खूँटे गाड़े जाते थे, जिनमें मोटी-पतली रस्सियाँ बँधी होती थीं; कहीं बहुत-से खम्भे खड़े किये जा रहे थे, कहीं छकड़े घुमाये जाते थे, कहीं मन्थनपात्र या माटमें डाले गये थम्भके सिरे-पर रस्सियाँ बाँधी जाती थीं, कहीं घर छानेके लिये संचित चटाइयों तथा तिनकोंके समूह बिखरे पड़े थे, कहीं यत्र-तत्र वृक्षोंकी शाखाओंपर पक्षियोंके रहने योग्य स्थान बनाये जाते थे, कहीं गौओंके रहनेयोग्य स्थानोंकी शोध हो रही थी, कहीं ओखलियाँ रखी जाती थीं, उन्हें पूर्वाभिमुख करके धोया जा रहा था, कहीं आग जलायी जाती थी, कहीं छकड़ोंपरसे (अपनी मौतसे मरे हुए) बछड़ोंके चर्मसे निर्मित बिछौनों-सहित पलंग उतारे जा रहे थे, कहीं गोपियाँ अपने सिरसे जलका घड़ा उतारती हुई उस वनकी शोभा देखती थीं, कुछ गोपाङ्गनाएँ सब ओर घूम-घूमकर वृक्षोंकी डालियाँ खींच रही थीं, क्या बूढ़े, क्या जवान, सभी गोपोंके हाथ कार्यमें अत्यन्त व्यस्त थे, वे कुठारोंसे काठ और वृक्षोंको भी काट रहे थे। इन सबके कारण वनसे घिरा हुआ वह व्रजका स्थान अधिक शोभा पा रहा था। वृन्दावनका वह रमणीय प्रदेश स्वादिष्ट फल, मूल और जलसे सम्पन्न था॥ २३—३०॥

तास्तु कामदुघा गावः सर्वपक्षिरुतं वनम्।
वृन्दावनमनुप्राप्ता नन्दनोपमकाननम्॥ ३१॥

व्रजकी वे सभी कामधेनु गौएँ समस्त पक्षियोंके कलरवोंसे मुखरित और नन्दन-सदृश काननोंसे युक्त वृन्दावनमें पहुँच गयीं॥ ३१॥

पूर्वमेव तु कृष्णेन गवां वै हितकारिणा।
शिवेन मनसा दृष्टं तद् वनं वनचारिणा॥ ३२॥

वनमें विचरनेवाले, गौओंके हितकारी श्रीकृष्णने पहले ही अपने मनसे कल्याणचिन्तनपूर्वक उस वनको देखा था॥ ३२॥

पश्चिमे तु ततो रूक्षे घर्मे मासे निरामये।
वर्षतीवामृतं देवे तृणं तत्र व्यवर्धत॥ ३३॥

अतः यद्यपि उस समय बहुत ही रूखे गर्मीके महीनेका अन्तिम भाग (आषाढ़) बीत रहा था, तो भी वहाँ घास-पात बहुत बढ़ने लगा, मानो इन्द्रदेव वहाँ अमृतकी वर्षा कर रहे हों॥ ३३॥

न तत्र वत्साः सीदन्ति न गावो नेतरे जनाः।
यत्र तिष्ठति लोकानां भवाय मधुसूदनः॥ ३४॥

जहाँ भगवान् मधुसूदन सम्पूर्ण विश्वके हितके लिये विराजमान थे, उस वृन्दावनमें न तो बछड़े कभी शिथिल होते थे, न गौएँ कष्ट पाती थीं और न दूसरे ही लोगोंको कभी दुःखका अनुभव होता था॥ ३४॥

ताश्च गावः स घोषस्तु स च संकर्षणो युवा।
कृष्णेन विहितं वासं तमध्यासत निर्वृताः॥ ३५॥

वे गौएँ, वह व्रज तथा वे तरुण वीर बलरामजी सब-के-सब श्रीकृष्णद्वारा विहित उस निवासस्थानमें बड़े आनन्दसे रहने लगे॥ ३५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि वृन्दावनप्रवेशे नवमोऽध्यायः॥ ९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें श्रीवृन्दावन-प्रवेशविषयक नवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९॥

दशमोऽध्यायः

वर्षा ऋतुका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

तौ तु वृन्दावनं प्राप्तौ वसुदेवसुतावुभौ।
चेरतुर्वत्सयूथानि चारयन्तौ सुरूपिणौ॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! वृन्दावनमें पहुँचकर वसुदेवजीके वे दोनों पुत्र, जो बहुत ही सुन्दर थे, बछड़ोंके झुंडोंको चराते हुए वहाँ सब ओर विचरने लगे॥ १॥

पूर्णस्तु घर्मसमयस्तयोस्तत्र वने सुखम्।
क्रीडतोः सह गोपालैर्यमुनां चावगाहतोः॥ २॥

वृन्दावनमें रहकर ग्वाल-बालोंके साथ क्रीडा और यमुना-स्नान करते हुए उन दोनों भाइयोंका ग्रीष्म-मास सुखपूर्वक बीत गया॥ २॥

ततः प्रावृडनुप्राप्ता मनसः कामदीपिनी।
प्रववर्षुर्महामेघाः शक्रचापाङ्कितोदराः॥ ३॥

तदनन्तर मनकी कामनाको उद्दीपित करनेवाली वर्षा ऋतु आ पहुँची। मेघोंकी भारी घटा घिर आयी और वर्षा करने लगी। उन मेघोंके मध्यभाग इन्द्रधनुषसे अङ्कित दिखायी देते थे॥ ३॥

बभूवादर्शनः सूर्यो भूमिश्चादर्शना तृणैः ।
पतता मेघवातेन नवतोयानुकर्षिणा ॥ ४ ॥
सम्मार्जिततला भूमिर्यौवनस्थेव लक्ष्यते ॥ ५ ॥

(मेघोंकी आड़में छिपे हुए) सूर्यका दर्शन नहीं हो पाता था । घास इतनी बढ़ गयी कि धरती भी अदृश्य हो गयी । नूतन जलराशिको खींच लानेवाले मेघरूपी वायुने भूतलको झाड़-बुहार और धोकर साफ कर दिया । उस समय भूमि ऐसी दिखायी देती थी, मानो उसकी युवावस्था आ गयी हो ॥ ४-५ ॥

नववर्षावसिक्तानि शक्रगोपकुलानि च ।
नष्टदावाग्निधूमानि वनानि प्रचकाशिरे ॥ ६ ॥

इन्द्रगोप नामक कीट नूतन वर्षाके जलसे भींग रहे थे । वनप्रान्तके दावानल और धूम नष्ट हो गये थे, इससे उन वनोंकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ६ ॥

नृत्यव्यापारकालश्च मयूराणां कलापिनाम् ।
मदरक्ताः प्रवृत्ताश्च केकाः पटुरवास्तथा ॥ ७ ॥

बड़े-बड़े पंखों (कलापों) से विभूषित मयूरोंके नृत्य-व्यापारका समय आ पहुँचा था; अतः उनकी मदमत्त दशाकी मधुर वाणी बड़ी पटुताके साथ श्रवणगोचर होती थी ॥ ७ ॥

नवप्रावृषि कान्तानां षट्पदाहारदायिनाम् ।
यौवनस्थकदम्बानां नवाभ्रैर्भ्राजते वपुः ॥ ८ ॥

नूतन वर्षामें जिनकी कमनीयता बढ़ गयी है, जो भ्रमरोंको आहार प्रदान करते तथा युवावस्थामें आ पहुँचे हैं, उन कदम्ब-वृक्षोंका आकार नये बादलोंके आनेसे अधिक शोभा पाने लगा ॥ ८ ॥

हासितं कुटजैर्वृक्षैः कदम्बैर्वासितं वनम् ।
नाशितं जलदैरुष्णं तोषिता वसुधा जलैः ॥ ९ ॥

कुटजके वृक्षोंने अपने फूलोंसे वहाँ सब ओर हास्यकी छटा छिटका दी । कदम्बोंने उस वनमें सुगन्ध भर दी । बादलोंने गर्मी मिटा दी और जलकी धाराओंने वसुधाको पूर्णतः तृप्त कर दिया ॥ ९ ॥

संतप्ता भास्करकरैरभितप्ता दवाग्निभिः ।
जलैर्बलाहकोत्सृष्टैरुच्छ्वसन्तीव पर्वताः ॥ १० ॥

जो सूर्यकी किरणोंसे संतप्त तथा दावानलसे दग्ध हो गये थे, वे पर्वत मेघोंके बरसाये हुए जलसे अभिषिक्त हो पुनः साँस-सी लेने लगे ॥ १० ॥

महावातसमुद्धूतं महामेघगणार्पितम् ।
महीमहाराजपुरैस्तुल्यमापद्यते नभः ॥ ११ ॥

उठी हुई प्रचण्ड वायु पताकाके समान फहरा रही थी । बड़े-बड़े मेघोंके समुदाय प्रासादों (महलों) के समान प्रतीत होते थे । इस प्रकार आकाश भूतलके महाराजोंके नगरके समान स्वरूप धारण किये था ॥ ११ ॥

क्वचित् कदम्बहासाढ्यं शिलीन्ध्राभरणं क्वचित् ।
सम्प्रदीप्तमिवाभाति फुल्लनीपद्रुमं वनम् ॥ १२ ॥

कहीं कदम्बका विकास हासकी-सी छटा बिखेर रहा था । कहीं भुँइफोड़ या गोबर-छत्ता आभूषणके समान शोभा देता था । जगह-जगह नीपके वृक्ष खिले हुए थे । इन सबके कारण वृन्दावन अत्यन्त दीप्तिमान्-सा प्रतीत होता था ॥ १२ ॥

ऐन्द्रेण पयसा सिक्तं मारुतेन च विस्तृतम् ।
पार्थिवं गन्धमाघ्राय लोकः क्षुभितमानसः ॥ १३ ॥

इन्द्रदेवके बरसाये हुए जलसे अभिषिक्त तथा वायुसे विस्तारको प्राप्त हुई पृथ्वीकी सोंधी सुगन्ध सूँघकर लोगोंका मन क्षुब्ध (कामविकारसे युक्त) हो उठता था ॥ १३ ॥

दृप्तसारङ्गनादेन दर्दुरव्याहृतेन च ।
नवैश्च शिखिविक्रुष्टैरवकीर्णा वसुन्धरा ॥ १४ ॥

मतवाले भ्रमरोंके गुंजारव, मेढकोंकी ध्वनि तथा मोरोंकी नूतन केकावाणीसे वहाँकी भूमि गूँज रही थी ॥ १४ ॥

भ्रमत्तूर्णमहावर्ता वर्षप्राप्तमहारयाः ।
हरन्त्यस्तीरजान् वृक्षान् विस्तारं यान्ति निम्नगाः ॥ १५ ॥

नदियोंमें तीव्र गतिसे बड़ी-बड़ी भँवरें उठ रही थीं । वर्षाके कारण उनका वेग महान् हो गया था । वे तटवर्ती वृक्षोंको बहा ले जाती थीं और क्रमशः विस्तारको प्राप्त हो रही थीं ॥ १५ ॥

संततासारनिर्यत्नाः क्लिन्नयत्नोत्तरच्छदाः ।
न त्यजन्ति नगाग्राणि श्रान्ता इव पतत्रिणः ॥ १६ ॥

निरन्तर जलकी धारा बरसनेके कारण जो उड़नेके प्रयत्नमें असफल हो गये थे, जिनके ऊपरी पंख शिथिल प्रयास होकर काम नहीं दे पाते थे, वे पक्षी थके-माँदेके समान वृक्षोंकी शाखाओंको छोड़ नहीं रहे थे ॥ १६ ॥

तोयगम्भीरलम्बेषु स्रवत्सु च नदत्सु च ।
उदरेषु नवाभ्राणां मज्जतीव दिवाकरः ॥ १७ ॥

सूर्यदेव नूतन जलधारोंके उदरोंमें, जो जलके कारण सघन और फैले हुए थे तथा वर्षाके साथ गर्जना भी करते थे, डूबते-से जा रहे थे ॥ १७ ॥

महीरुहैरुत्पतितैः सलिलोत्पीडसंकुला ।
अन्विष्यमार्गा वसुधा भाति शाद्वलमालिनी ॥ १८ ॥

भूमि एक तो घाससे ढकी हुई थी, दूसरे जलके प्रवाहमें डूब गयी थी, रास्तोंका पता चलना कठिन हो गया था, मार्गोंके किनारे उगे हुए वृक्षोंसे ही उन मार्गोंको ढूँढ़ा या पाया जा सकता था ॥ १८ ॥

वज्रेणेवावरुग्णानां नगानां नगशालिनाम् ।
स्रोतोभिः परिकृत्तानि पतन्ति शिखराण्यधः ॥ १९ ॥

वृक्षोंसे सुशोभित होनेवाले पर्वतोंके शिखर जलके स्रोतोंसे कटकर नीचे गिर रहे थे; ऐसा जान पड़ता था, मानो वे पर्वत वज्रके प्रहारसे विदीर्ण हो गये हों ॥ १९ ॥

पतता मेघवर्षेण यथा निम्नानुसारिणा ।
पल्वलोत्कीर्णमुक्तेन पूर्यन्ते वनराजयः ॥ २० ॥

मेघोंकी वर्षाका जल नीचे गिरकर नीची भूमिका अनुसरण करता हुआ गड्ढेमें जाता था । उसके भर जानेपर उससे निकलकर बाहर फैलता था और सारी वन-श्रेणियोंको आप्लावित कर देता था ॥ २० ॥

हस्तोच्छ्रितमुखा वन्या मेघनादानुसारिणः ।
भ्रान्तातिवृष्ट्या मातङ्गा गां गता इव तोयदाः॥ २१ ॥

अत्यन्त वर्षासे भ्रान्त हुए जंगली हाथी सूँड और मुँहको ऊपर उठाये मेघकी गर्जनाका अनुकरण करते (गर्जते) थे । उस समय वे पृथ्वीपर उतरे हुए मूर्तिमान् मेघके समान जान पड़ते थे ॥ २१ ॥

प्रावृट्प्रवृत्तिं संदृश्य दृष्ट्वा चाम्बुधरान् घनान् ।
रौहिणेयो मिथः काले कृष्णं वचनमब्रवीत् ॥ २२ ॥

वर्षा ऋतु आ गयी और आकाशमें बादल घिर आये; यह देखकर रोहिणीनन्दन बलरामजीने श्रीकृष्णसे यह सामयिक बात कही—॥ २२ ॥

पश्य कृष्ण घनान् कृष्णान् बलाकोज्ज्वलभूषणान् ।
गगने तव गात्रस्य वर्णचोरान् समुच्छ्रितान् ॥ २३ ॥

'श्रीकृष्ण ! आकाशमें उन ऊँचे उठे हुए काले बादलोंको तो देखो, जो बकपंक्तिरूपी उज्ज्वल हारोंसे विभूषित हैं । वे तुम्हारी अङ्गकान्ति चुराये लेते हैं ॥ २३ ॥

तव निद्राकरः कालस्तव गात्रोपमं नभः ।
त्वमिवाज्ञातवसतिं चन्द्रो वसति वार्षिकीम् ॥ २४ ॥

'यह तुम्हारे नींद लेनेका समय है* । काले मेघोंके कारण आकाश तुम्हारे अङ्गोंके समान श्यामवर्णका दिखायी देता है तथा वर्षा ऋतुमें चन्द्रमा भी तुम्हारी तरह अज्ञातवास कर रहे हैं ॥ २४ ॥

पतन्नीलाम्बुदश्यामं नीलोत्पलदलप्रभम् ।
सम्प्राप्ते दुर्दिने काले दुर्दिनं भाति वै नभः ॥ २५ ॥

'जो काले मेघोंके छा जानेसे श्याम दिखायी देता है तथा जिसकी आभा नील कमलदलके समान हो गयी है, वह आकाश दुर्दिन (वर्षाका समय) आनेपर स्वयं भी दुर्दिन (मेघाच्छन्न दिवस) -सा प्रतीत होता है ॥ २५ ॥

पश्य कृष्ण जलोदग्रैः कृष्णैरुद्ग्रथितैर्घनैः ।
गोवर्धनो यथा रम्यो भाति गोवर्धनो गिरिः ॥ २६ ॥

'श्रीकृष्ण ! देखो, जलसे भरकर परस्पर गुँथे हुए इन काले बादलोंसे गौओंकी वृद्धि करनेवाला गोवर्धन पर्वत कैसा रमणीय प्रतीत होता है ! ॥ २६ ॥

पतितेनाम्भसा ह्येते समन्तान्मददर्पिताः ।
भ्राजन्ते कृष्णसारङ्गाः काननेषु मुदान्विताः ॥ २७ ॥

'ये कृष्णमृग चारों ओर जल गिरनेसे मदमत्त हो उठे हैं और आनन्दमग्न होकर काननोंमें विचरते हुए शोभा पा रहे हैं ॥ २७ ॥

एतान्यम्बुप्रहृष्टानि हरितानि मृदूनि च ।
तृणानि शतपत्राक्ष पत्रैर्गूहन्ति मेदिनीम् ॥ २८ ॥

'कमलनयन ! जलसे अभिषिक्त होकर हर्षोल्लासमें भरे हुए ये कोमल हरित तृण अपने पत्तोंसे पृथ्वीको ढकते जा रहे हैं ॥ २८ ॥

क्षरज्जलानां शैलानां वनानां जलदागमे ।
ससस्यानां च सीमानां न लक्ष्मीर्व्यतिरिच्यते ॥ २९ ॥

'मेघोंके आनेपर जलके झरने बहानेवाले पर्वतोंकी, वनोंकी तथा सस्य (हरी-भरी खेती) से सम्पन्न खेतोंकी लक्ष्मी (शोभा) एक-सी हो रही है । कहीं न्यून या अधिक नहीं है (अथवा इन तीनोंकी शोभा इनसे पृथक् नहीं होती है) ॥ २९ ॥

शीघ्रवातसमुद्धूताः प्रोषितौत्सुक्यकारिणः ।
दामोदरोद्दामरवाः प्रागल्भ्यं यान्ति तोयदाः ॥ ३० ॥

'दामोदर ! शीघ्रगामी वायुसे प्रेरित हो ऊपर उठे हुए तथा परदेशमें रहनेवाले पुरुषोंको घर आनेके लिये उत्सुक बनानेवाले ये बादल प्रचण्ड गर्जना करते हुए अपनी प्रगल्भताका परिचय देते हैं ॥ ३० ॥

हरे हर्यश्वचापेन त्रिवर्णेन त्रिविक्रम ।
विबाणज्येन रचितं तवेदं मध्यमं पदम् ॥ ३१ ॥

'त्रिविक्रमरूप धारण करनेवाले हरे ! बाण और प्रत्यञ्चासे रहित तिरंगे इन्द्रधनुषसे तुम्हारे मध्यम पद (अन्तरिक्ष) का श्रृङ्गार-सा किया गया है ॥ ३१ ॥

नभस्येष नभश्चक्षुर्न भात्येव चरन्नभः ।
मेघैः शीतातपकरो विरश्मिरिव रश्मिवान् ॥ ३२ ॥

'श्रावण मासमें आकाशके नेत्रस्वरूप ये अंशुमाली सूर्य प्रभाहीन-से होकर आकाशमें विचरते हुए अधिक शोभा नहीं पा रहे हैं तथा बादलोंसे आच्छन्न होनेके कारण इनकी तापदायिनी किरणें शीतल हो गयी हैं ॥ ३२ ॥

---

* वर्षाके चार महीनोंमें भगवान् विष्णु शयन करते हैं—यह पुराणप्रसिद्ध बात है तथा इस हरिवंशमें भी इसकी चर्चा आ चुकी है ।

द्यावापृथिव्योः संसर्गः सततं विततैः कृतः ।
अव्यवच्छिन्नधारौघैः समुद्रौघसमैर्घनैः ॥ ३३ ॥

'आकाशमें फैलकर समुद्रके जलप्रवाह-से प्रतीत होनेवाले इन बादलोंने अविच्छिन्नरूपसे जलकी धाराएँ गिराकर आकाश और पृथ्वीको मानो सदाके लिये एक दूसरेके साथ जोड़ दिया है ॥ ३३ ॥

नीपार्जुनकदम्बानां पृथिव्यां चातिवृष्टिभिः ।
गन्धैः कोलाहला वान्ति वाता मदनदीपनाः ॥ ३४ ॥

'पृथ्वीपर अत्यन्त वर्षा होनेके कारण नीप, अर्जुन और कदम्बोंकी गन्धसे वासित हुई कोलाहलयुक्त वायु कामियोंका कामोद्दीपन करती हुई बह रही है ॥ ३४ ॥

सम्प्रवृत्तमहावर्षं लम्बमानमहाम्बुदम् ।
भात्यगाधमपर्यन्तं ससागरमिवाम्बरम् ॥ ३५ ॥

'बड़े जोरसे वर्षा आरम्भ हो गयी है। बड़े-बड़े मेघ बरसनेके लिये नीचेको झुक आये हैं, जिनसे यह आकाश अथाह अनन्त महासागरसे संयुक्त-सा प्रतीत होता है ॥ ३५ ॥

धारानिर्मलनाराचं विद्युत्कवचवर्मिणम् ।
शक्रचापायुधधरं युद्धसज्जमिवाम्बरम् ॥ ३६ ॥

'जलकी धाराओंका निर्मल नाराच, विद्युत्‌रूपी कवच तथा इन्द्रधनुषरूपी आयुधको धारण किये हुए यह आकाश युद्धके लिये सुसज्जित हुआ-सा जान पड़ता है ॥ ३६ ॥

शैलानां च वनानां च द्रुमाणां च वरानन ।
प्रतिच्छन्नानि भासन्ते शिखराणि घनैर्घनैः ॥ ३७ ॥

'सुमुख श्रीकृष्ण ! पर्वतोंके शिखर तथा वनों और वहाँके वृक्षोंकी शिखाएँ घने बादलोंसे आच्छादित होकर कैसी शोभा पा रही हैं ॥ ३७ ॥

गजानीकैरिवाकीर्णं सलिलोद्गारिभिर्घनैः ।
वर्णसारूप्यतां याति गगनं सागरस्य च ॥ ३८ ॥

'अपनी सूँडोंसे जल छोड़नेवाले गजसमूहोंकी भाँति इन काले घने बादलोंसे आच्छादित हुआ आकाश रंग-रूपमें समुद्रके समान हो गया है ॥ ३८ ॥

समुद्रोद्धूतजनिता लोलशाद्वलकम्पिनः ।
शीताः सपृषतोद्दामाः कर्कशा वान्ति मारुताः ॥ ३९ ॥

'समुद्रके हिलोरें लेनेसे उत्पन्न हो चञ्चल घासोंको कम्पित करती हुई जलबिन्दुओंसहित उद्दाम गतिसे चलनेवाली शीतल एवं कर्कश वायु बह रही है ॥ ३९ ॥

निशासु सुप्तचन्द्रासु मुक्ततोयासु तोयदैः ।
मग्नसूर्यस्य नभसो न विभान्ति दिशो दश ॥ ४० ॥

'जिनमें चन्द्रमा भी सोये हुएके समान अदृश्य हो गये हैं, बादलोंने पानी बरसाना आरम्भ कर दिया है और आकाशके सूर्य भी डूब चुके हैं, ऐसी बरसाती रातोंमें दसों दिशाओंका कुछ पता नहीं चलता है ॥ ४० ॥

चेतनं पुष्करं कोशैः क्षुधाध्मातैः समन्ततः ।
न घृणीनां न रम्याणां विवेकं यान्ति कृष्टयः ॥ ४१ ॥

'सब ओर वायुसे मेघोंद्वारा उपलक्षित आकाश चेतन-सा प्रतीत होता है, किसानोंको न दिनका पता चलता है न रातका ॥ ४१ ॥

घर्मदोषपरित्यक्तं मेघतोयविभूषितम् ।
पश्य वृन्दावनं कृष्ण वनं चैत्ररथं यथा ॥ ४२ ॥

'श्रीकृष्ण ! देखो, घामरूपी दोषसे रहित और मेघोंके बरसाये हुए जलसे विभूषित हुआ वृन्दावन चैत्ररथ वनके समान शोभा पा रहा है' ॥ ४२ ॥

एवं प्रावृड्गुणान् सर्वाञ्छ्रीमान् कृष्णस्य पूर्वजः ।
कथयन्नेव बलवान् व्रजमेव जगाम ह ॥ ४३ ॥

इस प्रकार श्रीकृष्णके बड़े भ्राता महाबली श्रीमान् बलराम वर्षाकालके गुणोंका वर्णन करते हुए ही उनके साथ व्रजमें चले गये ॥ ४३ ॥

अन्योन्यं रममाणौ तु कृष्णसंकर्षणावुभौ ।
तत्कालज्ञातिभिः सार्द्धं चेरतुस्तद् वनं महत् ॥ ४४ ॥

एक दूसरेके साथ खेलते और घूमते हुए दोनों भाई श्रीकृष्ण और संकर्षण उस समयके भाई-बन्धुओंके साथ उस विशाल वनमें विचरने लगे ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि प्रावृड्वर्णने दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें वर्षाका वर्णनविषयक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

श्रीकृष्णकी अङ्गच्छटा, भाण्डीर वट, यमुना और कालियदहका वर्णन तथा श्रीकृष्णद्वारा कालियनागके निग्रहका विचार

वैशम्पायन उवाच

कदाचित् तु तदा कृष्णो विना संकर्षणेन वै ।
चचार तद् वनं रम्यं कामरूपी वराननः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! एक दिन इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले सुमुख श्रीकृष्ण अपने भाई संकर्षणके बिना ही उस रमणीय वृन्दावनमें विचरने लगे ॥ १ ॥

काकपक्षधरः श्रीमाञ्छ्यामः पद्मदलेक्षणः ।
श्रीवत्सेनोरसा युक्तः शशाङ्क इव लक्ष्मणा ॥ २ ॥

उन्होंने मस्तकके पिछले भागमें काकपक्ष (बड़े-बड़े केश) धारण कर रखे थे । उनके नेत्र कमलदलके समान सुन्दर एवं विशाल थे । वे श्यामसुन्दर छबिसे युक्त एवं श्रीसम्पन्न थे तथा वक्षःस्थलमें श्रीवत्सचिह्न धारण करके शशचिह्नसे संयुक्त चन्द्रमाके समान शोभा पाते थे ॥ २ ॥

साङ्गदेनाग्रहस्तेन पङ्कजोद्भिन्नवर्चसा ।
सुकुमाराभिताम्रेण क्रान्तविक्रान्तगामिना ॥ ३ ॥

बाजूबन्दसे विभूषित हुए उनके हाथोंका अग्रभाग विकसित कमलके समान कान्तिमान् था; उनके पैर सुकुमार, लाल और क्रान्त-विक्रान्त गतिसे चलनेवाले थे, जिनसे उनकी अनुपम शोभा होती थी ॥ ३ ॥

पीते प्रीतिकरे नृणां पद्मकिञ्जल्कसप्रभे ।
सूक्ष्मे वसानो वसने ससंध्य इव तोयदः ॥ ४ ॥

वे कमल-केसरके समान पीले रंगके दो महीन वस्त्र पहने हुए थे, जो मनुष्योंके आनन्दको बढ़ानेवाले थे । उन वस्त्रोंको धारण करनेवाले श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण संध्याकालकी स्वर्णिम आभासे युक्त मेघके समान सुशोभित होते थे ॥ ४ ॥

वत्सव्यापारयुक्ताभ्यां व्यग्राभ्यां गण्डरज्जुभिः ।
भुजाभ्यां साधुवृत्ताभ्यां पूजिताभ्यां दिवौकसैः ॥ ५ ॥

उनकी दोनों भुजाएँ सुन्दर, गोल तथा देवताओंद्वारा पूजित थीं । वे बछड़ोंके व्यापारमें संलग्न थीं और उनके गलेमें घुँघुरू बाँधनेकी रस्सियोंसे उलझी हुई थीं, ऐसी भुजाओंसे श्रीकृष्णकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ५ ॥

सदृशं पुण्डरीकस्य गन्धेन कमलस्य च ।
रराज चास्य तद् बाल्ये रुचिरौष्ठपुटं मुखम् ॥ ६ ॥

बाल्य (पौगण्ड) अवस्थामें सुन्दर ओठोंसे सुशोभित उनका मुख कमलके सदृश सुन्दर और उसीके समान गन्धसे सुवासित होकर अपनी अद्भुत शोभा फैला रहा था ॥ ६ ॥

शिखाभिस्तस्य मुक्ताभी रराज मुखपङ्कजम् ।
वृतं षट्पदपंक्तीभिर्यथा स्यात् पद्ममण्डलम् ॥ ७ ॥

उनका मुखारविन्द खुले अलकोंसे आवृत होकर ऐसी शोभा पा रहा था, मानो भ्रमरावलियोंसे युक्त कमलमण्डल सुशोभित हो रहा हो ॥ ७ ॥

तस्यार्जुनकदम्बाढ्या नीपकन्दलमालिनी ।
रराज माला शिरसि नक्षत्राणां यथा दिवि ॥ ८ ॥

उनके मस्तकपर अर्जुन और कदम्बके फूलोंसे युक्त एक माला शोभा पा रही थी, जो नीपके पुष्पों तथा नूतन अंकुरोंसे सुशोभित थी । वह आकाशमें तारिकाओंकी भाँति अपनी छटा छिटका रही थी ॥ ८ ॥

स तया मालया वीरः शुशुभे कण्ठसक्तया ।
मेघमालाम्बुदश्यामो नभस्य इव मूर्तिमान् ॥ ९ ॥

वैसी ही माला उनके कण्ठमें भी पड़ी हुई थी, जिससे वीरवर घनश्याम श्रीकृष्ण मेघमालाओंकी श्यामकान्तिसे सम्पन्न मूर्तिमान् भाद्रपद मासकी भाँति शोभा पा रहे थे ॥ ९ ॥

एकेनामलपत्रेण कण्ठसूत्रावलम्बिना ।
रराज बर्हिपत्रेण मन्दमारुतकम्पिना ॥ १० ॥

उनके कण्ठगत सूत्रमें एक निर्मल मोरपङ्ख लटक रहा था, जो मन्दगतिसे बहनेवाली वायुके हलके आघातसे हिल रहा था । उस मोरपङ्खसे भी उनके श्रीअङ्गोंकी शोभावृद्धि हो रही थी ॥ १० ॥

क्वचिद् गायन् क्वचित् क्रीडंश्चञ्चूर्यंश्च क्वचित् क्वचित् ।
पर्णवाद्यं श्रुतिसुखं वादयंश्च क्वचिद् वने ॥ ११ ॥

वे वनमें कहीं गाते, कहीं खेलते, कहीं भ्रमण करते और कहीं कानोंको सुख देनेवाला पत्तोंका बाजा बजाते थे ॥

गोपवेणुं सुमधुरं कामात् तमपि वादयन् ।
प्रह्लादनार्थं च गवां क्वचिद् वनगतो युवा ॥ १२ ॥

किसी समय वनमें जाकर तरुणरूप धारण करके गौओंको आनन्दित करनेके लिये इच्छानुसार अत्यन्त मधुर स्वरमें मुरली बजाया करते थे, जो उस समयके गोपोंका प्रमुख वाद्य थी ॥ १२ ॥

गोकुलेऽम्बुधरश्यामश्चचार द्युतिमान् प्रभुः ।
रेमे च तत्र रम्यासु चित्रासु वनराजिषु ॥ १३ ॥

नूतन जलधरके समान श्याम एवं कान्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण गोकुलके आसपास विचरने तथा रमणीय एवं विचित्र वनश्रेणियोंमें विहार करने लगे ॥ १३ ॥

मयूररवघुष्टासु मदनोद्दीपनीषु च ।
मेघनादप्रतिव्यूहैर्नादितासु समन्ततः ॥ १४ ॥

वहाँ मयूरोंकी केकाध्वनि गूँजती रहती थी । वे वन-पंक्तियाँ कामी पुरुषोंके मनमें कामभावका उद्दीपन करनेवाली थीं । मेघोंकी गर्जनाकी प्रतिध्वनियोंसे वहाँ सब ओर कोलाहल मचा रहता था ॥ १४ ॥

शाद्वलच्छन्नमार्गासु शिलीन्ध्राभरणासु च ।
कन्दलामलपत्रासु स्रवन्तीषु नवं जलम् ॥ १५ ॥

उनके मार्ग घासोंसे ढक गये थे । जगह-जगह उगे हुए छत्राक उनके आभूषण-से प्रतीत होते थे । उनमें नये-नये पल्लव अंकुरित हो रहे थे तथा वे नूतन जल टपका रही थीं ॥

केसराणां नवैर्गन्धैर्मदनिःश्वसितोपमैः ।
अभीक्ष्णं निःश्वसन्तीषु कामिनीष्विव नित्यशः ॥ १६ ॥

मदजनित निःश्वासके समान केसरोंकी नूतन गन्धसे वे

वनश्रेणियाँ कामिनियोंकी भाँति प्रतिदिन बारंबार उच्छ्वास ले रही थीं ॥ १६ ॥

सेव्यमानो नवैर्वातैर्द्रुमसंघातनिःसृतैः ।
तासु कृष्णो मुदं लेभे सौम्यासु वनराजिषु ॥ १७ ॥

वृक्षोंके समूहसे निकली हुई नूतन वायुसे सेवित हुए श्रीकृष्ण उन सौम्य वनराजियोंमें बड़े आनन्दका अनुभव करने लगे ॥ १७ ॥

स कदाचिद् वने तस्मिन् गोभिः सह परिभ्रमन् ।
ददर्श विपुलोदग्रं शाखिनं शाखिनां वरम् ॥ १८ ॥

एक दिन उस वनमें गौओंके साथ भ्रमण करते हुए श्रीकृष्णने वहाँ एक वृक्षको देखा, जो बहुत ही ऊँचा तथा सभी वृक्षोंमें बड़ा था ॥ १८ ॥

स्थितं धरण्यां मेघाभं निबिडं पत्रसंचयैः ।
गगनार्धोच्छ्रिताकारं पर्वताभोगधारिणम् ॥ १९ ॥

अपने पत्तोंके संचयसे अत्यन्त घना प्रतीत होनेवाला वह वृक्ष पृथ्वीपर मूर्तिमान् मेघके समान खड़ा था। अपनी ऊँचाईसे उसने आकाशके आधे भागको रोक लिया था और वह पर्वतके समान विस्तृत आकार धारण करता था ॥१९॥

नीलचित्राङ्गवर्णैश्च सेवितं बहुभिः खगैः ।
फलैः प्रवालैश्च घनैः सेन्द्रचापघनोपमम् ॥ २० ॥

नीले एवं चितकबरे रंगवाले बहुत-से मोर उस वृक्षका सेवन करते थे। वह मूँगोंके समान लाल-लाल घने फलोंके द्वारा इन्द्रधनुषसहित मेघके समान जान पड़ता था ॥ २० ॥

भवनाकारविटपं लतापुष्पसुमण्डितम् ।
विशालमूलावनतं पवनाम्भोदधारिणम् ॥ २१ ॥

उसकी एक-एक शाखा विशाल गृहके समान प्रतीत होती थी। लताओं और फूलोंसे वह अच्छी तरह अलंकृत था। उसकी विशाल जड़ें बहुत दूरतक फैली हुई थीं। वह अपने ऊपर वायु और मेघको भी धारण करता था ॥ २१ ॥

आधिपत्यमिवान्येषां तस्य देशस्य शाखिनाम् ।
कुर्वाणं शुभकर्माणं निरावर्षमनातपम् ॥ २२ ॥

ऐसा जान पड़ता था कि वह वृक्ष उस प्रदेशके दूसरे सभी वृक्षोंका आधिपत्य-सा कर रहा है। उसके कर्म बड़े शुभ थे। वह वर्षा और धूपका निवारण करता था ॥ २२ ॥

न्यग्रोधं पर्वताग्राभं भाण्डीरं नाम नामतः ।
दृष्ट्वा तत्र मतिं चक्रे निवासाय ततः प्रभुः ॥ २३ ॥

वह बरगदका वृक्ष था और पर्वत-शिखरके समान प्रतीत होता था। उसका नाम था भाण्डीर वट। उसे देखकर भगवान्‌ने वहीं निवास करनेका विचार किया ॥ २३ ॥

स तत्र वयसा तुल्यैर्वत्सपालैः सहानघ ।
रेमे वै वासरं कृष्णः पुरा स्वर्गगतो यथा ॥ २४ ॥

निष्पाप जनमेजय! उस वटके नीचे समान अवस्थावाले वत्सपालक मित्रोंके साथ श्रीकृष्ण दिनभर बड़े सुखसे रहे। पहले अपने धाममें रहते समय उन्हें जैसे सुखका अनुभव होता था, वैसा ही वहाँ भी हुआ ॥ २४ ॥

तं क्रीडमानं गोपालाः कृष्णं भाण्डीरवासिनम् ।
रमयन्ति स्म बहवो वन्यैः क्रीडनकैस्तदा ॥ २५ ॥

वहाँ खेलते हुए भाण्डीरवासी श्रीकृष्णको उस समय बहुत-से ग्वालबाल जंगली खिलौने देकर प्रसन्न करनेकी चेष्टा करते थे ॥ २५ ॥

अन्ये स्म परिगायन्ति गोपा मुदितमानसाः ।
गोपालाः कृष्णमेवान्ये गायन्ति स्म रतिप्रियाः ॥ २६ ॥

दूसरे ग्वालबाल मन-ही-मन प्रसन्न हो अनेक प्रकारके गीत गाते थे। अन्य गोप-बालक जिन्हें श्रीकृष्णकी वह मधुर क्रीडा बहुत ही प्रिय थी अथवा जो श्रीकृष्णविषयक अनुरागको ही अपनी प्रिय वस्तु मानते थे, वे श्रीकृष्णका ही यशोगान करने लगे ॥ २६ ॥

तेषां स गायतामेव वादयामास वीर्यवान् ।
पर्णवाद्यान्तरे वेणुं तुम्बीं वीणां च तत्र ह ॥ २७ ॥

उन ग्वालबालोंके गाते समय बलवान् श्रीकृष्ण पत्तोंके बनाये हुए वाद्योंके बीच-बीचमें मुरली, तुम्बी (तँबूरा) तथा बीन बजाते थे ॥ २७ ॥

कदाचिच्चारयन्नेव गाः स गोवृषभेक्षणः ।
जगाम यमुनातीरं लतालंकृतपादपम् ॥ २८ ॥

गाय-बैलोंके समान विशाल नेत्रोंवाले श्रीकृष्ण किसी समय अपनी गौओंको चराते हुए ही यमुनाजीके तटपर जा पहुँचे। जहाँका प्रत्येक वृक्ष लताओंसे अलंकृत था ॥ २८ ॥

तरङ्गापाङ्गकुटिलां वारिस्पर्शसुखानिलाम् ।
तां च पद्मोत्पलवतीं ददर्श यमुनां नदीम् ॥ २९ ॥

जो अपनी चञ्चल तरङ्गरूपी कुटिल कटाक्षोंसे कुछ वक्र दिखायी देती थी, जिसके जलका स्पर्श करके सुखदायिनी हवा चल रही थी तथा जिसमें कमल और उत्पल खिले हुए थे, उस यमुना नदीको श्रीकृष्णने देखा ॥ २९ ॥

सुतीर्थां स्वादुसलिलां ह्रदिनीं वेगगामिनीम् ।
तोयवातोद्यतैर्वेगैरवनामितपादपाम् ॥ ३० ॥

उसमें उतरनेके लिये उत्तम मार्ग थे। उसका जल स्वादिष्ट था। उसके भीतर कई कुण्ड थे तथा वह बड़े वेगसे प्रवाहित हो रही थी। जल और वायुके द्वारा प्रकट हुए वेगसे उसने किनारेके वृक्षोंको झुका दिया था ॥ ३० ॥

हंसकारण्डवोद्घुष्टां सारसैश्च निनादिताम् ।
अन्योन्यमिथुनैश्चैव सेवितां मिथुनेचरैः ॥ ३१ ॥

हंसों और कारण्डवोंके उद्घोष तथा सारसोंके कलनादसे वहाँ सदा कोलाहल होता रहता था। अपने जोड़ेके साथ विचरनेवाले चक्रवाक आदि पक्षी परस्पर मैथुनमें प्रवृत्त हो यमुनातटका सेवन करते थे ॥ ३१ ॥

जलजैः प्राणिभिः कीर्णां जलजैर्भूषितां गुणैः ।
जलजैः कुसुमैश्चित्रां जलजैर्हरितोदकाम् ॥ ३२ ॥

जलमें उत्पन्न होनेवाले प्राणी (मत्स्य आदि) यमुनाजीमें भरे हुए थे। वे जलजनित शीतलता आदि गुणोंसे विभूषित थीं। जलमें होनेवाले कमल आदि पुष्प उनमें विचित्र शोभाका आधान करते थे तथा जलजनित सेवार आदिके कारण उनका जल हरा दिखायी देता था ॥ ३२ ॥

प्रसृतस्रोतचरणां पुलिनश्रोणिमण्डलाम् ।
आवर्तनाभिगम्भीरां पद्मरोमानुरञ्जिताम् ॥ ३३ ॥

फैले हुए स्रोत ही उनके चरण थे। दोनों तट नितम्बमण्डलकी शोभा धारण करते थे। उठती हुई भँवरें उनकी गम्भीर नाभि थी। वे कमलरूपी रोमावलिसे अनुरञ्जित थीं ॥

तटच्छेदोदरां कान्तां त्रितरङ्गवलीधराम् ।
फेनप्रहृष्टवदनां प्रसन्नां हंसहासिनीम् ॥ ३४ ॥

तटके निकट जो प्रवाहकी कृशता थी, वही उनका सूक्ष्म उदर अथवा कृश कटिभाग थी। वे अपनी मनोहर कान्तिसे कमनीय प्रतीत होती थीं। वे तरङ्गमयी त्रिवली धारण करती थीं। फेन ही उनका हर्षोत्फुल्ल मुख था। वे सदा प्रसन्न (स्वच्छ) रहती थीं और हंस ही उनके हास थे ॥ ३४ ॥

रुचिरोत्पलरक्तोष्ठीं नतभ्रूं जलजेक्षणाम् ।
ह्रददीर्घललाटान्तां कान्तां शैवलमूर्द्धजाम् ॥ ३५ ॥

सुन्दर लाल कमल उनके लाल-लाल ओष्ठोंकी झाँकी कराते थे। जलका नीचेकी ओर जाता हुआ प्रवाह ही उनकी झुकी हुई भौंहें थीं। नील कमल ही उनके नेत्र थे। जलका कुण्ड ही उनका विस्तृत ललाट-प्रान्त था तथा सेवार ही उनके सुन्दर केश थे। उनकी कान्ति बड़ी ही कमनीय थी ॥ ३५ ॥

चक्रवाकस्तनतटीं तीरपार्श्वायताननाम् ।
दीर्घस्रोतायतभुजामाभोगश्रवणायताम् ॥ ३६ ॥

चकवा-चकईके जोड़े उनके मानो युगल उरोज थे। उनका विस्तृत मुख दोनों तटोंपर फैला हुआ था। लंबे स्रोत ही उनकी विशाल भुजाओंके समान थे। दोनों तटोंकी पूर्णता ही उनके विस्तृत कान थे ॥ ३६ ॥

कारण्डवाकुण्डलिनीं श्रीमत्पङ्कजलोचनाम् ।
तटजाभरणोपेतां मीननिर्मलमेखलाम् ॥ ३७ ॥
वारिप्लवप्लवक्षौमां सारसारावनूपुराम् ।
काशचामीकरं वासो वसानां हंसलक्षणम् ॥ ३८ ॥

वे कारण्डवोंके कुण्डल पहिने हुए थीं। उनके नीलकमलरूपी लोचन अनुपम शोभासे सम्पन्न थे। तटपर उत्पन्न हुए वृक्ष आदि ही उनके आभरण थे। मछलियोंकी पंक्ति उनकी उज्ज्वल मेखला (करधनी)-सी प्रतीत होती थी। उनके जलका फैला हुआ पाट ही पाटम्बरका काम देता था। सारसोंकी मीठी बोली ही उनके नूपुरोंकी मधुर ध्वनि थी। वे काशपुष्प, हंस एवं सुवर्णके समान सुन्दर स्वच्छ जलमय वस्त्र धारण करती थीं ॥ ३७-३८ ॥

भीमनक्रानुलिप्ताङ्गीं कूर्मलक्षणभूषिताम् ।
निपानश्वापदापीडां नृभिः पीतपयोधराम् ॥ ३९ ॥

भयंकर नाके उनके अङ्गोंमें लगे हुए चन्दन-से प्रतीत होते थे। वे कच्छपरूपी लक्षणों (हाथ-पैरोंकी रेखाओं) से विभूषित थीं। पशुओंके पानी पीनेके घाटपर आये हुए श्वापद (हिंसक जन्तु) उनके शीशफूल थे। मनुष्य आदि प्राणी इनके पयोधर (जलपूर्ण स्तन) का पान करते थे ॥ ३९ ॥

श्वापदोच्छिष्टसलिलामाश्रमस्थानसंकुलाम् ।
तां समुद्रस्य महिषीमीक्षमाणः समन्ततः ॥ ४० ॥
चचार रुचिरं कृष्णो यमुनामुपशोभयन् ।

यमुनाके जलको हिंसक जन्तुओंने पीकर जूठा कर दिया था और उनके दोनों तट विभिन्न आश्रमोंसे भरे हुए थे। ऐसी समुद्रकी पटरानी यमुनाकी शोभा निहारते और बढ़ाते हुए श्रीकृष्ण अपनी मनोहर गतिसे वहाँ चारों ओर विचर रहे थे ॥ ४०½ ॥

तां चरन् स नदीं श्रेष्ठां ददर्श ह्रदमुत्तमम् ॥ ४१ ॥
दीर्घं योजनविस्तारं दुस्तरं त्रिदशैरपि ।
गम्भीरमक्षोभ्यजलं निष्कम्पमिव सागरम् ॥ ४२ ॥

नदियोंमें श्रेष्ठ यमुनाके तटपर विचरते हुए श्रीकृष्णने एक उत्तम ह्रद (जलकुण्ड) देखा, जो बहुत बड़ा था। उसका विस्तार एक योजनका था। देवताओंके लिये भी उसे पार करना कठिन था। वह बहुत ही गहरा, क्षोभरहित जलसे परिपूर्ण तथा प्रशान्त समुद्रके समान हलचलसे शून्य था ॥ ४१-४२ ॥

तोयजैः श्वापदैस्त्यक्तं शून्यं तोयचरैः खगैः ।
अगाधेनाम्भसा पूर्णं मेघपूर्णमिवाम्बरम् ॥ ४३ ॥

जलमें पैदा होनेवाले मगर आदि हिंसक जन्तुओंने भी उस ह्रदको त्याग दिया था। जलचर पक्षियोंसे भी वह सूना ही था तथा मेघोंसे आच्छादित हुए आकाशकी भाँति वह अगाध जलसे पूर्ण दिखायी देता था ॥ ४३ ॥

दुःखोपसर्प्यं तीरेषु ससर्पैर्विपुलैर्बिलैः ।
विषारणिभवस्याग्नेर्धूमेन परिवेष्टितम् ॥ ४४ ॥

उसके तटोंपर बड़े-बड़े बिल थे, जिनमें सर्प रहते थे। उनके कारण उस कुण्डतक पहुँचना बहुत ही कष्टदायक

था। सर्पोंकी विषरूपी अरणिसे उत्पन्न हुई आगके धूमसे वह सारा कुण्ड व्याप्त रहता था ॥ ४४ ॥

अभोग्यं तत् पशूनां हि अपेयं च जलार्थिनाम्।
उपभोगैः परित्यक्तं सुरैस्त्रिषवणार्थिभिः ॥ ४५ ॥

वह पशुओंके उपभोगमें आनेके योग्य नहीं रह गया था। जलार्थी प्राणियोंके लिये उसका जल अपेय हो गया था। तीनों समय स्नानकी इच्छा रखनेवाले देवताओंने भी उसे त्याग दिया था। वह ह्रद उनके उपभोगमें भी नहीं आता था ॥ ४५ ॥

आकाशादप्यसंचार्यं खगैराकाशगोचरैः।
तृणेष्वपि पतत्स्वप्सु ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ ४६ ॥

उस कुण्डके ऊपर-ऊपर आकाशचारी पक्षियोंके लिये आकाशमार्गसे भी जाना असम्भव था। उसके जलमें तिनके भी पड़ जायँ तो वह कुण्ड अपनी विषाग्निके तेजसे प्रज्वलित हो उठता था ॥ ४६ ॥

समन्ताद् योजनं साग्रं देवैरपि दुरासदम्।
विषानलेन घोरेण ज्वालाप्रज्वलितद्रुमम् ॥ ४७ ॥

उसके चारों ओर एक-एक योजनसे अधिक भूभाग ऐसा था, जिसपर चलना देवताओंके लिये भी बहुत कठिन था। वहाँ फैली हुई भयानक विषाग्निसे जो लपट उठती थी, उसने आस-पासके वृक्षोंको भी जलाकर भस्म कर दिया था॥

व्रजस्योत्तरतस्तस्य क्रोशमात्रे निरामये।
तं दृष्ट्वा चिन्तयामास कृष्णो वै विपुलं ह्रदम् ॥ ४८ ॥
अगाधं द्योतमानं च कस्यायं महतो ह्रदः।

व्रजके उत्तर भागमें केवल एक कोसकी भूमि ऐसी रह गयी थी, जो उसकी विषाग्निके प्रभावसे बची रहनेके कारण रोग-शोकसे रहित थी। उस विशाल एवं अगाध कुण्डको, जो अपने तेजसे दीप्तिमान् था, देखकर श्रीकृष्णने मन-ही-मन सोचा, किस महान् प्राणीका यह कुण्ड है ॥ ४८½ ॥

अस्मिन् स कालियो नाम कालाञ्जनचयोपमः ॥ ४९ ॥
उरगाधिपतिः साक्षाद्ध्रदे वसति दारुणः।
उत्सृज्य सागरावासं यो मया विदितः पुरा ॥ ५० ॥
भयात् पतगराजस्य सुपर्णस्योरगाशिनः।

इस ह्रदमें काली अञ्जनराशिके समान काला तथा अत्यन्त दारुण वह साक्षात् नागराज कालिय निवास करता है, जो पूर्वकालमें मेरी जानकारीमें ही सर्पभोजी पक्षिराज गरुडके भयसे समुद्रका निवास छोड़कर यहाँ आ गया था ॥

तेनेयं दूषिता सर्वा यमुना सागरङ्गमा ॥ ५१ ॥
भयात् तस्योरगपतेर्नायं देशो निषेव्यते।

उसीने इस सारी समुद्रगामिनी यमुनाको विषसे दूषित किया है। उस नागराजके भयसे ही कोई प्राणी इस देशका सेवन नहीं करता ॥ ५१½ ॥

तदिदं दारुणाकारमरण्यं रूढशाड्वलम् ॥ ५२ ॥
सावरोहद्रुमं घोरं कीर्णं नानालताद्रुमैः।
रक्षितं सर्पराजस्य सचिवैराप्तकारिभिः ॥ ५३ ॥

इसीलिये बड़ी-बड़ी घासोंसे भरा हुआ यह वन भयानक हो गया है। वरोह और वृक्षोंसहित यह घोर वन नाना प्रकारकी लताओं तथा पादपोंसे परिपूर्ण है तथा सर्पराज कालियके विश्वासी मन्त्री इस भूभागकी रक्षा करते हैं॥

वनं निर्विषयाकारं विषान्नमिव दुःस्पृशम्।
तैराप्तकारिभिर्नित्यं सर्वतः परिरक्षितम् ॥ ५४ ॥

यह वन आकाशकी भाँति अवलम्बशून्य हो गया है। विषमिश्रित अन्नके समान इसका स्पर्श भी दुःखदायक है। कालियके उन विश्वसनीय सचिवोंद्वारा यह सदा सब ओरसे सुरक्षित है ॥ ५४ ॥

शैवालनलिनैश्चापि वृक्षैः क्षुद्रलताकुलैः।
कर्तव्यमार्गौ भ्राजेते ह्रदस्यास्य तटावुभौ ॥ ५५ ॥

इस ह्रदके दोनों तट सिवार, कमल तथा छोटी-छोटी लताओंसे भरे हुए वृक्षोंसे सुशोभित होते हैं। मुझे यहाँतक पहुँचनेके लिये मार्ग बनाना होगा ॥ ५५ ॥

तदस्य सर्पराजस्य कर्तव्यो निग्रहो मया।
यथेयं सरिदम्भोदा भवेच्छिवजलाशया ॥ ५६ ॥

इसी दृष्टिसे मुझे इस नागराजका दमन करना है, जिससे जल देनेवाली यह नदी कल्याणकारी जलका आश्रय हो सके ॥ ५६ ॥

व्रजोपभोग्या च यथा नागे च दमिते मया।
सर्वत्र सुखसंचारा सर्वतीर्थसुखाश्रया ॥ ५७ ॥

इस नागका मेरे द्वारा दमन हो जानेपर यहाँकी नदी समूचे व्रजके उपभोगमें आने योग्य हो जायगी। यहाँ सब ओर सुखपूर्वक विचरण करना सम्भव हो जायगा तथा यह नदी समस्त तीर्थों और सुखोंका आश्रय हो जायगी ॥ ५७ ॥

एतदर्थं च वासोऽयं व्रजेऽस्मिन् गोपजन्म च।
अमीषामुत्पथस्थानां निग्रहार्थं दुरात्मनाम् ॥ ५८ ॥

इसीलिये व्रजमें मेरा यह निवास हुआ है और इसीलिये मैंने गोपोंमें अवतार ग्रहण किया है। इन कुमार्गपर स्थित हुए दुरात्माओंका दमन करनेके लिये ही यहाँ मेरा अवतार हुआ है ॥ ५८ ॥

एनं कदम्बमारुह्य तदेव शिशुलीलया।
विनिपत्य ह्रदे घोरे दमयिष्यामि कालियम् ॥ ५९ ॥

मैं बालकोंके खेल-खेलमें ही इस कदम्बपर चढ़कर उस घोर ह्रदमें कूद पड़ूँगा और कालियनागका दमन करूँगा॥

एवं कृते बाहुवीर्यं लोके ख्यातिं गमिष्यति ॥ ६० ॥

ऐसा करनेपर संसारमें मेरे बाहुबलकी ख्याति होगी॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि बालचरिते यमुनावर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें बाललीलाके प्रसंगमें यमुनावर्णननामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

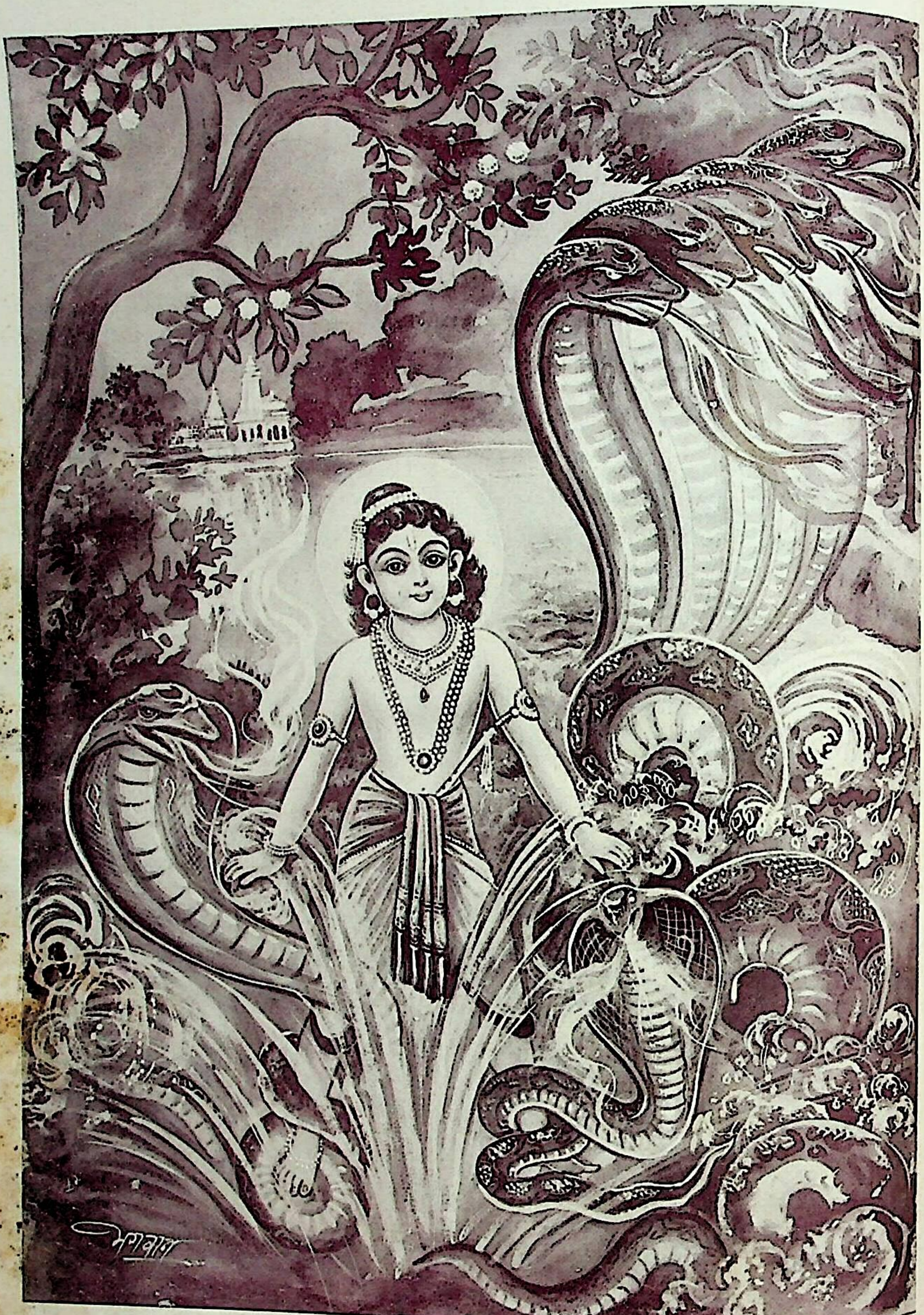

कालिय-ह्रदमें श्रीकृष्ण

द्वादशोऽध्यायः

श्रीकृष्णद्वारा कालियनागका दमन, उसका समुद्रको प्रस्थान तथा गोपोंको श्रीकृष्णकी महत्ताका अनुभव

वैशम्पायन उवाच

सोपसृत्य नदीतीरं बद्ध्वा परिकरं दृढम्।
आरोहच्चपलः कृष्णः कदम्बशिखरं मुदा ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! चञ्चल श्रीकृष्णने नदीके तटपर पहुँचकर दृढ़तापूर्वक अपनी कमर कस ली। फिर प्रसन्नतापूर्वक वे कदम्बकी शाखापर चढ़ गये ॥

कृष्णः कदम्बशिखराल्लम्बमानो घनाकृतिः।
हृदमध्येऽकरोच्छब्दं निपतन्नम्बुजेक्षणः ॥ २ ॥

मेघके समान श्याम शरीरवाले कमलनयन श्रीकृष्णने कदम्बकी शाखासे लटककर कालियदहके बीचमें कूदते समय बड़े जोरका शब्द किया ॥ २ ॥

कृष्णेन तत्र पतता क्षुभितो यमुनाह्रदः।
सम्प्रासिच्यत वेगेन भिद्यमान इवाम्बुदः ॥ ३ ॥

श्रीकृष्णके वहाँ कूदनेसे यमुनाके उस कुण्डमें हलचल पैदा हो गयी। वह बड़े वेगसे जल उछालकर तट भूमिसहित भिन्न उठा। ऐसा जान पड़ा, मानो वहाँ जलसे भरा हुआ मेघ फट पड़ा हो ॥ ३ ॥

तेन शब्देन संक्षुब्धं सर्पस्य भवनं महत्।
उदतिष्ठज्जलात् सर्पो रोषपर्याकुलेक्षणः ॥ ४ ॥

उस शब्दसे नागराजका विशाल भवन क्षुब्ध हो उठा और वह सर्प जलसे ऊपरको उठा। उस समय उसके नेत्र क्रोधसे भरे हुए थे ॥ ४ ॥

स चोरगपतिः क्रुद्धो मेघराशिसमप्रभः।
ततो रक्तान्तनयनः कालियः समदृश्यत ॥ ५ ॥

मेघोंकी घटाके समान काले रंगवाला वह नागराज कालिय जब कुपित होकर उठा, उस समय उसके नेत्रप्रान्त रक्तवर्णके दिखायी दे रहे थे ॥ ५ ॥

पञ्चास्यः पावकोच्छ्वासश्चलज्जिह्वोऽनलाननः।
पृथुभिः पञ्चभिर्घोरैः शिरोभिः परिवारितः ॥ ६ ॥

उसके पाँच मुख थे और उनके उच्छ्वासके साथ आगकी लपट उठती थी। उसकी जीभ चञ्चल गतिसे लपलपा रही थी और मुखमें आग भरी थी। वह पाँच भयंकर एवं स्थूल सिरोंसे घिरा रहता था ॥ ६ ॥

पूरयित्वा ह्रदं सर्वं भोगेनानलवर्चसा।
स्फुरन्निव च रोषेण ज्वलन्निव च तेजसा ॥ ७ ॥

अपने अग्निके समान तेजस्वी विशाल शरीरके द्वारा सारे ह्रदको पूर्ण करके वह क्रोधसे काँपता तथा तेजसे जलता हुआ-सा प्रतीत होता था ॥ ७ ॥

क्रोधेन ज्वलतस्तस्य जलं शृतमिवाभवत्।
प्रतिस्रोताश्च भीतेव जगाम यमुना नदी ॥ ८ ॥

क्रोधसे जलते हुए उस सर्पकी विषाग्निसे कालियकुण्डका जल खौलने-सा लगा तथा यमुनाका प्रवाह पीछेकी ओर लौट पड़ा। मानो वह नदी भयभीत-सी होकर पीछे भाग रही हो ॥ ८ ॥

तस्य क्रोधाग्निपूर्णेभ्यो वक्त्रेभ्योऽभूच्च मारुतः।
दृष्ट्वा कृष्णं ह्रदगतं क्रीडन्तं शिशुलीलया ॥ ९ ॥
सधूमाः पन्नगेन्द्रस्य मुखाग्निश्चेरुरर्चिषः।

श्रीकृष्णको अपने ह्रदमें आकर बालकोंके समान खेलते देख कालिय नागके क्रोधाग्निपूर्ण मुखोंसे उच्छ्वास वायु प्रकट हुई। उस नागराजके मुखसे धूमसहित आगकी लपटें निकलने लगीं ॥ ९½ ॥

सृजता तेन रोषाग्निं समीपे तीरजा द्रुमाः ॥ १० ॥
क्षणेन भस्मसान्नीता युगान्तप्रतिमेन वै।

अपनी क्रोधाग्नि प्रकट करते हुए उस प्रलयंकर-जैसे सर्पने उस कुण्डके आस-पास उगे हुए तीरवर्ती वृक्षोंको क्षणभरमें जलाकर भस्म कर दिया ॥ १०½ ॥

तस्य पुत्राश्च दाराश्च भृत्याश्चान्ये महोरगाः ॥ ११ ॥
वमन्तः पावकं घोरं वक्त्रेभ्यो विषसम्भवम्।
सधूमं पन्नगेन्द्रास्ते निपेतुरमितौजसः ॥ १२ ॥

उसके स्त्री, पुत्र, सेवक तथा अन्य बड़े-बड़े नाग एवं नागराज, जो अनन्त बलशाली थे, अपने मुखोंसे विषजनित धूममिश्रित भयंकर आग उगलते हुए उनपर टूट पड़े ॥

प्रवेशितश्च तैः सर्पैः स कृष्णो भोगबन्धनम्।
निर्यत्नचरणाकारस्तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ १३ ॥

उन सभी सर्पोंने श्रीकृष्णको अपने शरीरोंके बन्धनमें बाँध लिया। उनके हाथ-पैर एवं सारे अङ्ग निश्चेष्ट हो गये। वे पर्वतकी भाँति अविचल भावसे खड़े रह गये ॥ १३ ॥

अदशन् दशनैस्तीक्ष्णैर्विषोत्पीडजलाविलैः।
ते कृष्णं सर्पपतयो न ममार च वीर्यवान् ॥ १४ ॥

उन समस्त नागराजोंने विषके प्रवाहसे मिश्रित जलके द्वारा मलिन हुए अपने तीखे दाँतोंसे श्रीकृष्णको डँसना आरम्भ किया; परंतु शक्तिशाली श्रीकृष्ण मर न सके ॥ १४ ॥

एतस्मिन्नन्तरे भीता गोपालाः सर्व एव ते ।
क्रन्दमाना व्रजं जग्मुर्बाष्पगद्गदया गिरा ॥ १५ ॥

इसी बीचमें समस्त ग्वालबाल भयभीत हो रोते हुए व्रजमें गये और अश्रुगद्गद वाणीमें इस प्रकार बोले ॥ १५ ॥

गोपा ऊचुः

एष मोहं गतः कृष्णो मग्नो वै कालिये ह्रदे ।
भक्ष्यते सर्पराजेन तदागच्छत मा चिरम् ॥ १६ ॥

गोपोंने कहा—ये श्रीकृष्ण कालीदहमें डूबकर मूर्च्छित हो गये हैं और नागराज इन्हें खाये जाता है; अतः जल्दी आओ, देर न करो ॥ १६ ॥

नन्दगोपाय वै क्षिप्रं सबलाय निवेद्यताम् ।
एष ते कृष्यते कृष्णः सर्पेणेति महाह्रदे ॥ १७ ॥

दल-बलसहित नन्दगोपसे कोई शीघ्र जाकर कह दो कि 'तुम्हारे कृष्णको सर्प महान् कुण्डमें खींचे लिये जाता है' ॥

नन्दगोपस्तु तच्छ्रुत्वा वज्रपातोपमं वचः ।
आर्तः स्खलितविक्रान्तस्तं जगाम ह्रदोत्तमम् ॥ १८ ॥

वह वज्रपातके समान दारुण वचन सुनकर नन्दगोप शोकसे व्याकुल हो लड़खड़ाते हुए उस विशाल ह्रदके पास जा पहुँचे ॥ १८ ॥

सबालयुवतीवृद्धः स च संकर्षणो युवा ।
आक्रीडं पन्नगेन्द्रस्य जलस्थं समुपागमत् ॥ १९ ॥

उनके साथ व्रजके बहुत-से बालक, वृद्ध और युवतियाँ भी थीं । रोहिणीके युवक पुत्र संकर्षण भी आ पहुँचे थे । ये सब-के-सब नागराजकी जलस्थ क्रीडाभूमिके पास आये ॥

नन्दगोपमुखा गोपास्ते सर्वे साश्रुलोचनाः ।
हाहाकारं प्रकुर्वन्तस्तस्थुस्तीरे ह्रदस्य वै ॥ २० ॥

नन्द आदि वे सभी गोप नेत्रोंसे आँसू बहाते और हाहाकार करते हुए कालियदहके तटपर खड़े हो गये ॥२०॥

व्रीडिता विस्मिताश्चैव शोकार्ताश्च पुनः पुनः ।
केचित् तु पुत्र हा हेति हा धिगित्यपरे पुनः ॥ २१ ॥

वे अपनी विवशतापर लज्जित थे । श्रीकृष्णका साहस देख-सुनकर आश्चर्यमें पड़े थे और उनके जीवनकी आशङ्कासे बारंबार शोकार्त हो जाते थे । कोई 'हाय बेटा ! हाय !' कहकर रो देते और दूसरे 'हाय ! धिक्कार है हम सबके जीवनको' ऐसा कहते हुए चिन्तामग्न हो जाते थे ॥ २१ ॥

अपरे हा हताः स्मेति रुरुदुर्भृशदुःखिताः ।
स्त्रियश्चैव यशोदां तां हा हतासीति चुक्रुशुः ॥ २२ ॥
या पश्यसि प्रियं पुत्रं सर्पराजवशं गतम् ।
स्पन्दितं सर्पभोगेन कृष्यमाणं यथा मृतम् ॥ २३ ॥

दूसरे लोग अत्यन्त दुखी हो 'हाय ! हम मारे गये ।' ऐसा कहते हुए जोर-जोरसे रोते थे । व्रजकी स्त्रियाँ यशोदा-की ओर देख चिल्ला-चिल्लाकर कहती थीं—'हाय यशोदे ! तू बेमौत मारी गयी, क्योंकि अपने प्यारे लालाको आ इस नागराजके वशमें पड़ा हुआ देख रही हो । हाय ! क सर्पके शरीरसे आबद्ध हो मृतककी भाँति घसीटा जा रहा है ।

अश्मसारमयं नूनं हृदयं ते विलक्ष्यते ।
पुत्रं कथमिमं दृष्ट्वा यशोदे नावदीर्यसे ॥ २४ ॥

'यशोदे ! निश्चय ही तुम्हारा हृदय लोहेका बना हुआ दिखायी देता है । अरी ! पुत्रको इस दशामें देखकर तुम्हा छाती फट क्यों नहीं जाती है ? ॥ २४ ॥

दुःखितं बत पश्यामो नन्दगोपं ह्रदान्तिके ।
न्यस्य पुत्रमुखे दृष्टिं निश्चेतनमवस्थितम् ॥ २५ ॥

'हाय ! हम देखते हैं, नन्दबाबा अत्यन्त दुखी हो कालियदहके निकट लाला कन्हैयाके मुखपर अपनी दृ जमाये अचेत-से खड़े हैं ॥ २५ ॥

यशोदामनुगच्छन्त्यः सर्पावासमिमं ह्रदम् ।
प्रविशामो न यास्यामो विना दामोदरं व्रजम् ॥ २६ ॥

'हम सब-की सब यशोदाजीके पीछे-पीछे सर्पोंके निवास-स्थान इस ह्रदमें प्रवेश कर जायँगी, किंतु दामोद (श्रीकृष्ण) को साथ लिये बिना व्रजको नहीं लौटेंगी ॥२६

दिवसः को विना सूर्यं विना चन्द्रेण का निशा ।
विना वृषेण का गावो विना कृष्णेन को व्रजः ।
विना कृष्णं न यास्यामो विवत्सा इव धेनवः ॥ २७ ॥

'सूर्यके बिना दिन कैसा ? चन्द्रमाके बिना रात्रि कैसी ? साँड़के बिना गौएँ क्या ? तथा श्रीकृष्णके बिना व्रज कैसा ? बिना बछड़ेकी धेनुओंके समान हम श्रीकृष्णके बिन व्रजको नहीं लौटेंगी' ॥ २७ ॥

तासां विलपितं श्रुत्वा तेषां च व्रजवासिनाम् ।
विलापं नन्दगोपस्य यशोदारुदितं तथा ॥ २८ ॥
एकभावशरीरज्ञ एकदेहो द्विधा कृतः ।
संकर्षणस्तु संक्रुद्धो बभाषे कृष्णमव्ययम् ॥ २९ ॥

उन गोपियोंका, व्रजवासियोंका तथा नन्दबाबाका विलाप और यशोदाजीका करुणापूर्ण रोदन सुनकर श्रीकृष्णके साथ अपने एक भाव और एक शरीरके सम्बन्धको जाननेवाले संकर्षण, जो वास्तवमें एक ही देहके दो भागोंमेंसे एक थे, कुपित हो अविनाशी श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोले—॥२८-२९॥

कृष्ण कृष्ण महाबाहो गोपानां नन्दवर्द्धन ।
दम्यतामेष वै क्षिप्रं सर्पराजो विषायुधः ॥ ३० ॥

'गोपोंका आनन्द बढ़ानेवाले महाबाहु श्रीकृष्ण ! कृष्ण ! विष ही जिसका अस्त्र-शस्त्र है, उस सर्पराजका अब शीघ्र दमन करो ॥ ३० ॥

इमे नो बान्धवास्तात त्वां मत्वा मानुषं विभो ।
परिदेवन्ति करुणं सर्वे मानुषबुद्धयः ॥ ३१ ॥

'तात ! प्रभो ! ये हमारे समस्त बन्धु-बान्धव तुममें मानव-बुद्धि ही रखते हैं और तुम्हें मनुष्य मानकर ही करुणाजनक विलाप करते हैं' ॥ ३१ ॥

तच्छ्रुत्वा रौहिणेयस्य वाक्यं संज्ञासमीरितम् ।
विक्रम्यास्फोटयद् बाहू भित्त्वा तन्नागबन्धनम् ॥ ३२ ॥

रोहिणीनन्दन संकर्षणका यह सांकेतिक वचन सुनकर श्रीकृष्णने सर्पोंके उस बन्धनको तोड़ डाला और पराक्रम दिखाते हुए अपनी बाँहोंपर ताल ठोंका ॥ ३२ ॥

तस्य पद्भ्यामथाक्रम्य भोगराशिं जलोत्थितम् ।
शिरस्तु कृष्णो जग्राह स्वहस्तेनावनाम्य च ॥ ३३ ॥

तत्पश्चात् जलके ऊपर उठे हुए उस सर्पके भारी शरीरको अपने दोनों पैरोंसे दबाकर श्रीकृष्णने अपने हाथसे ही उसके मस्तकको झुकाकर पकड़ लिया ॥ ३३ ॥

तस्यारुरोह सहसा मध्यमं तन्महच्छिरः ।
सोऽस्य मूर्ध्नि स्थितः कृष्णो ननर्त रुचिराङ्गदः ॥ ३४ ॥

फिर श्रीकृष्ण सहसा उसके बिचले विशाल सिरपर चढ़ गये और उसीपर खड़े हो नृत्य करने लगे। उस समय उनकी भुजाओंमें सुन्दर बाजूबंद शोभा पा रहे थे ॥ ३४ ॥

मृद्यमानः स कृष्णेन शान्तमूर्धा भुजङ्गमः ।
आस्यैः सरुधिरोद्गारैः कातरो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३५ ॥

श्रीकृष्णके द्वारा मस्तकके कुचल दिये जानेपर उस सर्पका दिमाग ठंडा हो गया—उसके मस्तिष्ककी गर्मी शान्त हो गयी। वह अपने मुखोंसे खून उगलता हुआ कातर भावसे बोला—॥ ३५ ॥

अविज्ञानान्मया कृष्ण रोषोऽयं सम्प्रदर्शितः ।
दमितोऽहं हतविषो वशगस्ते वरानन ॥ ३६ ॥

'सुमुख श्रीकृष्ण ! मैंने अज्ञानवश आपके सामने इस क्रोधका प्रदर्शन किया है। आपने मेरा दमन कर दिया। मेरा सारा विष नष्ट हो गया। अब मैं आपके अधीन हूँ ॥

तदाज्ञापय किं कुर्यां सदा सापत्यबान्धवः ।
कस्य वा वशतां यामि जीवितं मे प्रदीयताम् ॥ ३७ ॥

'अतः आज्ञा दीजिये, मैं सदा ही अपने पुत्र और बन्धु-बान्धवोंसहित आपकी क्या सेवा करूँ ? अथवा किसके अधीन हो जाऊँ ? मुझे जीवन-दान दीजिये' ॥ ३७ ॥

पञ्चमूर्द्धानतं दृष्ट्वा सर्पं सर्पारिकेतनः ।
अक्रुद्ध एव भगवान् प्रत्युवाचोरगेश्वरम् ॥ ३८ ॥

उस सर्पको अपने पाँचों मस्तकोंसे प्रणत हुआ देख भगवान् गरुडध्वजने क्रोध न करके नागराज कालियसे इस प्रकार कहा—॥ ३८ ॥

तवास्मिन् यमुनातोये नैव स्थानं ददाम्यहम् ।
गच्छार्णवजलं सर्प सभार्यः सहबान्धवः ॥ ३९ ॥

'ओ सर्प ! मैं तुम्हें इस यमुनाजीके जलमें नहीं रहने दूँगा। तुम अपनी पत्नी तथा भाई-बन्धुओंके साथ समुद्रके जलमें चले जाओ ॥ ३९ ॥

यश्चेह भूयो दृश्येत स्थाने वा यदि वा जले ।
तव भृत्यस्तनूजो वा क्षिप्रं वध्यः स मे भवेत् ॥ ४० ॥

'अब फिर यहाँ इस स्थानपर या जलमें यदि कोई भी सर्प दिखायी देगा तो वह तुम्हारा भृत्य हो या पुत्र, मेरे हाथसे शीघ्र मार डाला जायगा ॥ ४० ॥

शिवं चास्य जलस्यास्तु त्वं च गच्छ महार्णवम् ।
स्थाने त्विह भवेद् दोषस्तवान्तकरणो महान् ॥ ४१ ॥

'इस जलकी शुद्धि हो जाय—यह लोगोंके लिये मङ्गलकारी हो, इसलिये तुम महासागरमें चले जाओ। यहाँ रहनेपर तुम्हारे जीवनका अन्त कर देनेवाला महान् दोष प्राप्त होगा ॥

मत्पदानि च ते सर्प दृष्ट्वा मूर्धसु सागरे ।
गरुडः पन्नगरिपुस्त्वयि न प्रहरिष्यति ॥ ४२ ॥

'सर्प ! समुद्रमें रहते समय भी तुम्हारे पाँचों मस्तकोंपर मेरे चरण-चिह्न देखकर सर्पोंके शत्रु गरुड़ तुमपर प्रहार नहीं करेंगे' ॥ ४२ ॥

गृह्य मूर्ध्ना तु चरणौ कृष्णस्योरगपुङ्गवः ।
पश्यतामेव गोपानां जगामादर्शनं ह्रदात् ॥ ४३ ॥

तब नागप्रवर कालिय भगवान् श्रीकृष्णके दोनों चरणोंमें मस्तक झुकाकर गोपोंके देखते-देखते उस कुण्डसे अदृश्य हो गया ॥ ४३ ॥

निर्जिते तु गते सर्पे कृष्णमुत्तीर्य धिष्ठितम् ।
विस्मितास्तुष्टुवुर्गोपाश्चक्रुश्चैव प्रदक्षिणम् ॥ ४४ ॥

जब वह सर्प हार मानकर चला गया और श्रीकृष्ण जलसे निकलकर किनारे खड़े हो गये, तब सब गोप आश्चर्यसे चकित हो उनकी स्तुति और परिक्रमा करने लगे ॥ ४४ ॥

ऊचुः सर्वे च सम्प्रीता नन्दगोपं वनेचराः ।
धन्योऽस्यनुगृहीतोऽसि यस्य ते पुत्र ईदृशः ॥ ४५ ॥

समस्त वनचारी गोपोंने अत्यन्त प्रसन्न होकर नन्दगोपसे कहा—'गोपराज ! आप धन्य हैं, आपपर भगवान्‌की बड़ी भारी कृपा है, जिससे आपको ऐसा पुत्र मिला ॥ ४५ ॥

अद्यप्रभृति गोपानां गवां गोष्ठस्य चानघ ।
आपत्सु शरणं कृष्णः प्रभुश्चायतलोचनः ॥ ४६ ॥

'निष्पाप नन्द ! आजसे सभी आपदाओंके समय गोपों, गौओं और गोष्ठ (व्रज) के लिये ये विशाललोचन भगवान् श्रीकृष्ण ही शरणदाता और स्वामी हैं ॥ ४६ ॥

जाता शिवजला सर्वा यमुना मुनिसेविता।
तीरे चास्याः सुखं गावो विचरिष्यन्ति नः सदा ॥ ४७ ॥

'मुनियोंसे सेवित समस्त यमुनाका जल अब सबके लिये सुखद एवं मङ्गलमय हो गया। अब हमारी गौएँ सदा इसके तटपर चरती-फिरती रहेंगी ॥ ४७ ॥

व्यक्तमेव वयं गोपा वने यत् कृष्णमीदृशम्।
महद्भूतं न जानीमश्छन्नमग्निमिव व्रजे ॥ ४८ ॥

'हम वनमें रहनेवाले गँवार ग्वारियाँ हैं'—यह बात स्पष्ट ही सत्य दिखायी देती है; क्योंकि ऐसे महान् आत्मा श्रीकृष्ण राखमें छिपी हुई आगकी तरह व्रजमें विद्यमान हैं, परंतु हम इनके महत्त्वको समझते ही नहीं हैं' ॥ ४८ ॥

एवं ते विस्मिताः सर्वे स्तुवन्तः कृष्णमव्ययम्।
जग्मुर्गोपगणा घोषं देवाश्चैत्ररथं यथा ॥ ४९ ॥

इस प्रकार वे विस्मित हुए समस्त गोपगण अविनाशी भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए गोष्ठमें चले गये, मानो देवता चैत्ररथ वनमें गये हों ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां कालियदमने द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें बालक्रीडाके प्रसङ्गमें कालियदमनविषयक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

* * *

त्रयोदशोऽध्यायः

बलरामद्वारा धेनुकासुरका वध और भयरहित तालवनमें गौओं तथा गोपोंका विचरण

वैशम्पायन उवाच

दमिते सर्पराजे तु कृष्णेन यमुनाह्रदे।
तमेव चेरतुर्देशं सहितौ रामकेशवौ ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब श्रीकृष्णने यमुनाजीके कुण्डमें रहनेवाले नागराज कालियका दमन कर दिया, उसके बादसे वे दोनों भाई बलराम और श्रीकृष्ण प्रायः उसी प्रदेशमें साथ-साथ विचरा करते थे ॥ १ ॥

आजग्मतुस्तौ सहितौ गोधनैः सह गामिनौ।
गिरिं गोवर्द्धनं रम्यं वसुदेवसुतावुभौ ॥ २ ॥

एक दिन वसुदेवके वे दोनों पुत्र गोधनके साथ विचरते हुए परम रमणीय गोवर्धन पर्वतके निकट आये ॥ २ ॥

गोवर्द्धनस्योत्तरतो यमुनातीरमाश्रितम्।
ददृशाते च तौ वीरौ रम्यं तालवनं महत् ॥ ३ ॥

वहाँ उन दोनों वीरोंने देखा—गोवर्धनसे उत्तर दिशामें यमुनाके तटका आश्रय लेकर एक विशाल एवं रमणीय तालवन शोभा पा रहा है ॥ ३ ॥

तौ तालपर्णप्रतते रम्ये तालवने रतौ।
चेरतुः परमप्रीतौ वृषपोताविवोद्धतौ ॥ ४ ॥

ताड़के पत्तोंसे विस्तारको प्राप्त हुए उस रमणीय तालवनमें क्रीडापरायण हो वे दोनों भाई दो उद्दण्ड बछड़ोंके समान बड़ी प्रसन्नताके साथ विचरने लगे ॥ ४ ॥

स तु देशः सदा स्निग्धो लोष्टपाषाणवर्जितः।
दर्भप्रायस्थलीभूतः सुमहान् कृष्णमृत्तिकः ॥ ५ ॥

वह विशाल प्रदेश सदा ही स्निग्ध (चिकना) रहता था। वहाँ ढेले और पत्थरोंके रोड़े नहीं थे। वहाँके स्थलोंपर प्रायः दर्भ (कुश, दूर्वा आदि) फैले हुए थे। उस स्थानकी मिट्टी काले रंगकी थी ॥ ५ ॥

तालैस्तैर्विपुलस्कन्धैरुच्छ्रितैः श्यामपर्वभिः।
फलाग्रशाखिभिर्भाति नागहस्तैरिवोच्छ्रितैः ॥ ६ ॥

वहाँ जो ताड़के वृक्ष थे, उनके तने मोटे थे। वे सभी वृक्ष बहुत ऊँचे थे। उनके पर्वस्थान (गाँठ) काले रंगके थे और उनकी शाखाएँ फलोंसे भरी-पूरी थीं। उन तालवृक्षोंसे उस स्थानकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो वहाँ अपनी सूँड ऊपरको उठाये बहुत-से हाथी खड़े हों ॥ ६ ॥

तत्र दामोदरो वाक्यमुवाच वदतां वरः।
अहो तालफलैः पक्वैर्वासितेयं वनस्थली ॥ ७ ॥
स्वादून्यार्य सुगन्धीनि श्यामानि रसवन्ति च।
पक्वतालानि सहितौ पातयावो लघुक्रमौ ॥ ८ ॥

वहाँ वक्ताओंमें श्रेष्ठ दामोदर (श्रीकृष्ण) ने संकर्षणसे कहा—'आर्य! यहाँकी वनस्थली तो इन पके हुए तालफलोंकी सुगन्धसे महक उठी है। ये काले और सुगन्धित तालफल अवश्य ही स्वादिष्ट और सरस होंगे। हम दोनों भाई साथ-साथ रहकर शीघ्रतापूर्वक कदम उठाते हुए इन फलोंको यहाँ गिरावें ॥ ७-८ ॥

यद्येषामीदृशो गन्धो माधुर्यघ्राणतर्पणः।
रसेनामृतकल्पेन भवितव्यं च मे मतिः ॥ ९ ॥

'यदि इनकी गन्ध ऐसी है, जो अपनी मधुरतासे हमारी घ्राणेन्द्रियोंको तृप्त किये देती है तो मेरा विश्वास है कि इन फलोंको अमृततुल्य रससे युक्त होना चाहिये' ॥ ९ ॥

दामोदरवचः श्रुत्वा रौहिणेयो हसन्निव।
पातयन् पक्वतालानि चालयामास तांस्तरून् ॥ १० ॥

दामोदरकी यह बात सुनकर रोहिणीनन्दन बलराम हँसते हुए-से पके हुए तालफलोंको गिरानेके उद्देश्यसे उन वृक्षोंको हिलाने लगे ॥ १० ॥

ततु तालवनं नृणामसेव्यं दुरतिक्रमम्।
निर्माणभूतमिरिणं पुरुषादालयोपमम् ॥ ११ ॥

उस तालवनका सेवन मनुष्योंके लिये असम्भव हो गया था। उस वनको इस पारसे उस पारतक सकुशल लाँघ जाना अत्यन्त कठिन था। यद्यपि वह सारभूत स्थान था, तथापि राक्षसके घरकी भाँति मनुष्योंसे शून्य दिखायी देता था ॥११॥

दारुणो धेनुको नाम दैत्यो गर्दभरूपधृक्।
खरयूथेन महता वृतः समनुसेवते ॥ १२ ॥

गर्दभरूपधारी धेनुक नामक दारुण दैत्य विशाल गदहोंकी टोलीसे घिरा हुआ उस वनमें रहता था ॥ १२ ॥

स तु तालवनं घोरं गर्दभः परिरक्षति।
नृपक्षिश्वापदगणांस्त्रासयानः सुदुर्मतिः ॥ १३ ॥

वह गदहा असुर उस तालवनकी सब ओरसे रक्षा करता था। उसकी बुद्धि बहुत ही खोटी थी। वह मनुष्यों, पक्षियों तथा हिंसक जन्तुओंको भी आतङ्कित किये रहता था ॥ १३ ॥

तालशब्दं स तं श्रुत्वा संघुष्टं फलपातनात्।
नामर्षयत् स संक्रुद्धस्तालस्वनमिव द्विपः ॥ १४ ॥

उन तालफलोंके गिरानेसे जो धमाकेकी आवाज होती थी, उसे सुनकर धेनुकासुर सहन न कर सका। जैसे ताल ठोंकनेकी आवाज सुनकर हाथी कुपित हो उठता है, उसी प्रकार वह भी अत्यन्त क्रोधमें भर गया ॥ १४ ॥

शब्दानुसारी संक्रुद्धो दर्पाविद्धसटाननः।
स्तब्धाक्षो ह्रेषितपटुः खुरैर्निर्दारयन्महीम् ॥ १५ ॥
आविद्धपुच्छो हृषितो व्यात्तानन इवान्तकः।
आपतन्नेव ददृशे रौहिणेयमुपस्थितम् ॥ १६ ॥

वह उस धमाकेके शब्दका अनुसरण करता हुआ बड़े रोषके साथ चला। घमंडमें भरकर अपने अयाल और सिरको घुमाता आ रहा था। उसकी आँखें स्तब्ध हो गयी थीं। वह बड़ी पटुताके साथ रेंक रहा था और अपनी टापोंसे पृथ्वीको विदीर्ण-सा किये देता था। उसकी पूँछ घूम रही थी, रोंगटे खड़े हो गये थे, वह मुँह बाये हुए कालके समान जान पड़ता था। उसने आते ही रोहिणीनन्दन बलरामको वहाँ उपस्थित देखा ॥ १५-१६ ॥

तालानां तमधो दृष्ट्वा स ध्वजाकारमव्ययम्।
रौहिणेयं खरो दुष्टः सोऽदशद् दशनायुधः ॥ १७ ॥

ध्वजाकी-सी आकृतिवाले अविनाशी रोहिणीकुमारको ताड़ोंके नीचे खड़ा देख दाँतोंसे ही शस्त्रका काम लेनेवाले उस दुष्ट गदहेने उन्हें दाँतसे काट लिया ॥ १७ ॥

पद्भ्यामुभाभ्यां च पुनः पश्चिमाभ्यां पराङ्मुखः।
जघानोरसि दैत्येन्द्रो रौहिणेयं निरायुधम् ॥ १८ ॥

फिर दूसरी ओर मुँह करके उस दैत्यराज धेनुकने बिना हथियार लिये खड़े हुए रोहिणीकुमारकी छातीमें अपने पिछले दो पैरोंद्वारा चोट पहुँचायी ॥ १८ ॥

ताभ्यामेव स जग्राह पद्भ्यां तं दैत्यगर्दभम्।
आवर्जितमुखस्कन्धं प्रेरयंस्तालमूर्धनि ॥ १९ ॥

तब बलरामजीने उस गर्दभरूपधारी दैत्यके उन्हीं दोनों पैरोंको पकड़ लिया तथा उसके मुँह और कंधोंको घुमाते हुए उसे ताड़वृक्षके ऊपर दे मारा ॥ १९ ॥

सम्भग्नोरुकटिग्रीवो भग्नपृष्ठो दुराकृतिः।
खरस्तालफलैः सार्धं पपात धरणीतले ॥ २० ॥

उसकी दोनों जाँघें, कमर और गर्दन टूट गयीं। पीठकी हड्डी भी चूर-चूर हो गयी। उसकी आकृति बहुत बिगड़ गयी और वह गर्दभासुर तालफलोंके साथ ही पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २० ॥

तं गतासुं गतश्रीकं पतितं वीक्ष्य गर्दभम्।
ज्ञातींस्तथापरांस्तस्य तृणराजनि सोऽक्षिपत् ॥ २१ ॥

धेनुकासुरको प्राणशून्य और श्रीहीन होकर पृथ्वीपर पड़ा देख बलरामजीने उसके दूसरे भाई-बन्धुओंको भी उसी प्रकार ताड़वृक्षपर दे मारा ॥ २१ ॥

सा भूर्गर्दभदेहैश्च तालैः पक्वैश्च पातितैः।
बभासे छन्नजलदा द्यौरिवाव्यक्तशारदी ॥ २२ ॥

वहाँकी भूमि गधोंकी लाशों तथा गिराये गये परिपक्व तालफलोंसे आच्छादित हो, जिसमें शरद् ऋतुके लक्षण प्रकट न हुए हों और बादल छा रहे हों, ऐसे आकाशके समान सुशोभित होने लगी ॥ २२ ॥

तस्मिन् गर्दभदैत्ये तु सानुगे विनिपातिते।
रम्यं तालवनं तद्धि भूयो रम्यतरं बभौ ॥ २३ ॥

सेवकोंसहित उस गर्दभरूपधारी दैत्यके मारे जानेपर वह सुरम्य तालवन और अधिक रमणीय प्रतीत होने लगा ॥२३॥

विप्रमुक्तभयं शुभ्रं विविक्ताकारदर्शनम्।
चरन्ति स्म सुखं गावस्तत् तालवनमुत्तमम् ॥ २४ ॥

उस शुभ्र तालवनका सारा भय दूर हो गया। उसके एकान्त प्रदेशका भी सबको दर्शन होने लगा तथा उस उत्तम वनमें गौएँ सुखपूर्वक चरने लगीं ॥ २४ ॥

ततः प्रविष्टास्ते सर्वे गोपा वनविचारिणः।
वीतशोकभयायासाश्चङ्क्रम्यन्ते समन्ततः ॥ २५ ॥

तदनन्तर वनमें विचरनेवाले सभी गोप उस तालवनमें जा घुसे। उनका शोक, भय और आयास दूर हो गया था, अतः वे वहाँ सब ओर बारंबार विचरण करने लगे ॥ २५ ॥

ततः सुखं प्रकीर्णासु गोषु नागेन्द्रविक्रमौ ।
द्रुमपर्णासनं कृत्वा तौ यथार्हं निषीदतुः ॥ २६ ॥

तदनन्तर जब गौएँ सुखपूर्वक सब ओर फैलकर चरने लगीं, तब गजराजके समान पराक्रमी श्रीकृष्ण और बलराम वृक्षोंके पत्तोंका आसन लगाकर यथोचित रीतिसे बैठ गये ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां धेनुकवधे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें बाललीलाके प्रसंगमें
धेनुकासुरका वधविषयक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

बलरामद्वारा प्रलम्बासुरका वध

वैशम्पायन उवाच

अथ तौ जातहर्षौ तु वसुदेवसुतावुभौ ।
तत् तालवनमुत्सृज्य भूयो भाण्डीरमागतौ ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर हर्षमें भरे हुए वे दोनों वसुदेवकुमार उस तालवनको छोड़कर पुनः भाण्डीरवटके पास आ गये ॥ १ ॥

चारयन्तौ विवृद्धानि गोधनानि शुभानि च ।
स्फीतसस्यप्ररूढानि वीक्षमाणौ वनानि च ॥ २ ॥

वहाँ वे हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर गोधनोंको चराते तथा बढ़ी हुई खेतीसे सम्पन्न वनस्थलियोंकी शोभा निहारते हुए विचरने लगे ॥ २ ॥

क्ष्वेडयन्तौ प्रगायन्तौ प्रचिन्वन्तौ च पादपान् ।
नामभिर्व्याहरन्तौ च सवत्सा गाः परंतपौ ॥ ३ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले वे दोनों भाई कभी ताल ठोंकते, कभी गीत गाते, कभी वृक्षोंके फल-फूल और पत्ते तोड़ते और कभी बछड़ेवाली गौओंको उनके नाम ले-लेकर पुकारते थे ॥ ३ ॥

नियोगपाशैरासक्तैः स्कन्धाभ्यां शुभलक्षणौ ।
वनमालाकुलोरस्कौ बालशृङ्गाविवर्षभौ ॥ ४ ॥

कंधेपर गौ बाँधनेकी रस्सी डाले, सुन्दर लक्षणोंसे सम्पन्न तथा वनमालासे विभूषित वक्षःस्थलवाले वे दोनों वीर नये सींगोंवाले बछड़ोंके समान शोभा पाते थे ॥ ४ ॥

सुवर्णाञ्जनचूर्णाभावन्योन्यसदृशाम्बरौ ।
महेन्द्रायुधसंसक्तौ शुक्लकृष्णाविवाम्बुदौ ॥ ५ ॥

उन दोनोंमेंसे एकके शरीरकी कान्ति सुवर्ण-चूर्णके समान गौर थी, तो दूसरेकी अञ्जन-चूर्णके समान श्याम। वे दोनों एक दूसरेके अङ्गोंके समान रंगवाले वस्त्र धारण करते थे (अर्थात् गोरे बलभद्रका वस्त्र श्रीकृष्णकी अङ्गकान्तिके समान नीला था और श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका वस्त्र बलभद्रकी अङ्ग-प्रभाके समान सुनहरा एवं पीला था)। वे दोनों इन्द्रधनुषसे सटे हुए श्वेत और काले रंगके दो बादलोंके समान जान पड़ते थे ॥ ५ ॥

कुशाग्रकुसुमानां च कर्णपूरौ मनोरमौ ।
वनमार्गेषु कुर्वाणौ वन्यवेषधरावुभौ ॥ ६ ॥

वे दोनों वनके मार्गोंपर कुशोंके अग्रभाग तथा फूलोंके मनोरम कर्णपूर बनाकर धारण करते और वन्य वेष ग्रहण करके शोभा पाते थे ॥ ६ ॥

गोवर्धनस्यानुचरौ वने सानुचरौ तु तौ ।
चेरतुर्लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिरपराजितौ ॥ ७ ॥

वनमें उन दोनोंके पीछे चलनेवाले बहुत-से गोप-बालक थे। उन्हें साथ लेकर वे दोनों भाई गोवर्धनके आस-पास विचरा करते थे। वे कभी किसीसे पराजित होनेवाले नहीं थे। भाण्डीरवटके पास लोक-प्रचलित बालक्रीडाओंद्वारा मन बहलाते हुए श्रीकृष्ण और बलराम विचरण करने लगे ॥

तावेवं मानुषीं दीक्षां वहन्तौ सुरपूजितौ ।
तज्जातिगुणयुक्ताभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वनम् ॥ ८ ॥

इस प्रकार देवताओंद्वारा पूजित होनेपर भी वे दोनों मानवी दीक्षा ग्रहण करके मनुष्य-जातिके गुणोंसे युक्त क्रीडाएँ करते हुए वनमें घूमने लगे ॥ ८ ॥

तौ तु भाण्डीरमाश्रित्य बालक्रीडानुवर्तिनौ ।
प्राप्तौ परमशाखाढ्यं न्यग्रोधं शाखिनां वरम् ॥ ९ ॥

भाण्डीरके निकट आकर बालोचित क्रीड़ामें लगे हुए वे दोनों भाई उस उत्तम शाखाओंसे सम्पन्न एवं वृक्षोंमें श्रेष्ठ वटके नीचे आ गये ॥ ९ ॥

तत्र त्वान्दोलिकाभिश्च युद्धमार्गविशारदौ ।
अश्मभिः क्षेपणीयैश्च तौ व्यायाममकुर्वताम् ॥ १० ॥

युद्धकी प्रणालीमें परम चतुर वे दोनों भाई वहाँ कभी झूला झूलकर और कभी फेंकनेयोग्य पत्थर फेंककर व्यायाम करने लगे ॥ १० ॥

युद्धमार्गैश्च विविधैर्गोपालैः सहितावुभौ ।
मुदितौ सिंहविक्रान्तौ यथाकामं विचेरतुः ॥ ११ ॥

नाना प्रकारके युद्धके पैंतरे दिखाते हुए वे दोनों सिंहके समान पराक्रमी वीर ग्वालबालोंके साथ रहकर अपनी इच्छाके अनुसार सानन्द विचरने लगे ॥ ११ ॥

तयो रमयतोरेव तल्लिप्सुरसुरोत्तमः ।
प्रलम्बोऽभ्यागमत् तत्र च्छिद्रान्वेषी तयोस्तदा ॥ १२ ॥
गोपालवेषमास्थाय वन्यपुष्पविभूषितः ।
लोभयानः स तौ वीरौ हास्यैः क्रीडनकैस्तथा ॥ १३ ॥

वे दोनों जब इस प्रकार खेलका आनन्द ले रहे थे, उसी समय उन्हें उठा ले जानेकी इच्छासे असुरोंमें श्रेष्ठ प्रलम्ब एक गोपबालकका वेष धारण करके वहाँ आया। उसने वन्य-पुष्पोंसे अपने-आपको विभूषित कर रखा था। वह उस समय उनका छिद्र (उन्हें उठा ले जानेका अवसर) ढूँढ़ रहा था और उन दोनों वीरोंको अपने हँसी-खेलसे लुभा रहा था॥

सोऽवगाहत निश्शङ्कस्तेषां मध्यममानुषः ।
मानुषं वपुरास्थाय प्रलम्बो दानवोत्तमः ॥ १४ ॥

दानवप्रवर प्रलम्ब मनुष्य न होनेपर भी मनुष्यका शरीर धारण करके निःशङ्कभावसे उन बालकोंके बीच घुस गया ॥

प्रक्रीडिताश्च ते सर्वे सह तेनामरारिणा ।
गोपालवपुषं गोपा मन्यमानाः स्वबान्धवम् ॥ १५ ॥

वे सब बालक उस देवद्रोहीके साथ खेलने लगे। वह ग्वाल-बालका वेष धारण करके आया था, इसलिये समस्त गोप उसे अपना भाई-बन्धु ही मानते थे ॥ १५ ॥

स तु च्छिद्रान्तरप्रेप्सुः प्रलम्बो गोपतां गतः ।
दृष्टिं प्रणिदधे कृष्णे रौहिणेये च दारुणाम् ॥ १६ ॥

परंतु गोपवेशमें आया हुआ प्रलम्ब उन दोनों वीरोंकी दुर्बलताका अवसर ढूँढ़ रहा था, इसलिये उसने श्रीकृष्ण और बलरामपर क्रूरतापूर्ण दृष्टि डाली ॥ १६ ॥

अविषह्यं ततो मत्वा कृष्णमद्भुतविक्रमम् ।
रौहिणेयवधे यत्नमकरोद् दानवोत्तमः ॥ १७ ॥

श्रीकृष्णका पराक्रम अद्भुत था, इसलिये उन्हें अजेय मानकर उस दानवराजने रोहिणीकुमार बलरामजीको मारनेका प्रयत्न किया ॥ १७ ॥

हरिणाक्रीडनं नाम बालक्रीडनकं ततः ।
प्रक्रीडितास्तु ते सर्वे द्वौ द्वौ युगपदुत्पतन् ॥ १८ ॥

तदनन्तर वे सब ग्वाल-बाल हरिणाक्रीडन[१] नामक वयोचित खेल खेलने लगे। उसमें दो-दो बालक एक साथ उछलते हुए कुछ दूर जाते थे ॥ १८ ॥

कृष्णः श्रीदामसहितः पुप्लुवे गोपसूनुना ।
संकर्षणस्तु प्लुतवान् प्रलम्बेन सहानघ ॥ १९ ॥
गोपालास्त्वपरे द्वन्द्वं गोपालैरपरैः सह ।
प्रद्रुता लङ्घयन्तो वै तेऽन्योन्यं लघुविक्रमाः ॥ २० ॥

निष्पाप जनमेजय ! श्रीदामाके साथ श्रीकृष्ण और ग्वालबालके वेषमें आये हुए प्रलम्बके साथ संकर्षण कूद-कूदकर चलने लगे। इसी तरह दूसरे ग्वालबाल अन्य ग्वालबालोंके साथ दो-दोकी जोड़ी बनाकर एक-दूसरेको लाँघ जानेका प्रयत्न करते हुए शीघ्र गतिसे उछलते हुए चलने लगे ॥

श्रीदाममजयत् कृष्णः प्रलम्बं रोहिणीसुतः ।
गोपालैः कृष्णपक्षीयैर्गोपालास्त्वपरे जिताः ॥ २१ ॥

उस खेलमें श्रीकृष्णने श्रीदामाको, रोहिणीनन्दन बलरामने प्रलम्बको तथा अन्यान्य कृष्णपक्षीय गोपोंने दूसरे-पक्षके गोपोंको पराजित कर दिया ॥ २१ ॥

ते वाहयन्तस्त्वन्योन्यं संहर्षात् सहसा द्रुताः ।
भाण्डीरस्कन्धमुद्दिश्य मर्यादां पुनरागमन् ॥ २२ ॥

जो-जो बालक हारे थे, वे अपने साथके विजयी बालकोंको पीठपर ढोते हुए हर्षके साथ सहसा दौड़े और भाण्डीर वृक्षके तनेतक पहुँचनेकी नियत सीमापर पहुँचकर फिर लौट आये ॥

संकर्षणं तु स्कन्धेन शीघ्रमुत्क्षिप्य दानवः ।
द्रुतं जगाम विमुखः सचन्द्र इव तोयदः ॥ २३ ॥

परंतु दानव प्रलम्ब बलरामजीको शीघ्र ही अपने कंधेपर चढ़ाकर वहाँसे विमुख हो तीव्र गतिसे आकाशकी ओर चल दिया। उस समय वह ऊपरी भागमें चन्द्रमाको धारण किये काले मेघके समान जान पड़ता था ॥ २३ ॥

स भारमसहंस्तस्य रौहिणेयस्य धीमतः ।
ववृधे सुमहाकायः शक्राक्रान्त इवाम्बुदः ॥ २४ ॥

बुद्धिमान् रोहिणीनन्दन बलरामके भारको सहन न कर सकनेके कारण वह दानव बढ़ने लगा। बढ़ते-बढ़ते वह विशालकाय हो इन्द्रका वाहन बने हुए मेघके समान प्रतीत होने लगा ॥ २४ ॥

स भाण्डीरवटप्रख्यं दग्धाञ्जनगिरिप्रभम् ।
स्वं वपुर्दर्शयामास प्रलम्बो दानवोत्तमः ॥ २५ ॥

दानवराज प्रलम्बने वहाँ अपने शरीरको भाण्डीरवट तथा जले हुए कज्जलगिरिके समान दिखाया ॥ २५ ॥

पञ्चस्तवकयुक्तेन मुकुटेनार्कवर्चसा ।
दीप्यमानाननो दैत्यः सूर्याक्रान्त इवाम्बुदः ॥ २६ ॥

उस दैत्यका मुख पाँच पुष्पगुच्छोंसे युक्त सूर्य-तुल्य तेजस्वी मुकुटसे देदीप्यमान था। उस मुकुटको धारण करके वह सूर्यसे आक्रान्त हुए काले मेघके समान जान पड़ता था॥

---

[१] एक निश्चित लक्ष्यके पास एक साथ दो-दो बालक हिरनकी भाँति उछलते हुए जाते हैं। जो दोनोंमें पहले पहुँच जाता है, वह विजयी होता है। हारा हुआ बालक जीते हुएको अपनी पीठपर लादकर मुख्य स्थानतक ले आता है, यही हरिणाक्रीडन है।

महाननो महाग्रीवः सुमहानन्तकोपमः ।
रौद्रः शकटचक्राक्षो नमयंश्चरणैर्महीम् ॥ २७ ॥

उसका मुख बहुत बड़ा था, गरदन भी वैसी ही थी। वह महाकाय दैत्य यमराजके समान भयंकर दिखायी देता था। उसकी आँखें गाड़ीके पहिये-सी घूम रही थीं। वह अपने पैरोंसे पृथ्वीको झुका देता था ॥ २७ ॥

स्रग्दामलम्बाभरणः प्रलम्बाम्बरभूषणः ।
वीरः प्रलम्बः प्रययौ लम्बतोय इवाम्बुदः ॥ २८ ॥

उसके गलेमें फूलोंकी लंबी माला शोभा दे रही थी। उसके वस्त्र और आभूषण भी बहुत बड़े-बड़े थे। वह वीर प्रलम्ब नीचेको गिरते हुए जलवाले मेघके समान तीव्र गतिसे चला जा रहा था ॥ २८ ॥

स जहाराथ वेगेन रौहिणेयं महासुरः ।
सागरोपप्लवगतं कृत्स्नं लोकमिवान्तकः ॥ २९ ॥

उस महान् असुरने रोहिणीनन्दन बलरामको बड़े वेगसे हर लिया, ठीक उसी तरह जैसे प्रलयंकर काल एकार्णवमें डूबे हुए समस्त लोकका अपहरण कर लेता है ॥ २९ ॥

ह्रियमाणः प्रलम्बेन स तु संकर्षणो बभौ ।
उह्यमान इवाकाशे कालमेघेन चन्द्रमाः ॥ ३० ॥

प्रलम्बासुरके द्वारा हरकर ले जाये जाते हुए संकर्षण आकाशमें ऐसे जान पड़ते थे; मानो कोई काला मेघ चन्द्रमाको अपने ऊपर बिठाकर लिये जा रहा हो ॥ ३० ॥

स संदिग्धमिवात्मानं मेने संकर्षणस्तदा ।
दैत्यस्कन्धगतः श्रीमान् कृष्णं चेदमुवाच ह ॥ ३१ ॥

उस समय बलरामने अपने आपको प्राण-संशयकी स्थितिमें पड़ा हुआ समझा। तब दैत्यके कंधेपर बैठे हुए उन श्रीमान् संकर्षणने श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा—॥ ३१ ॥

ह्रियेऽहं कृष्ण दैत्येन पर्वतोदग्रवर्ष्मणा ।
प्रदर्शयित्वा महतीं मायां मानुषरूपिणीम् ॥ ३२ ॥

'श्रीकृष्ण! यह देखो! मुझे कोई पर्वतके समान विशालकाय दैत्य हरकर लिये जाता है। इसने मनुष्यरूप-धारिणी महती मायाका प्रदर्शन करके मुझे भ्रममें डाल दिया था ॥ ३२ ॥

कथमस्य मया कार्यं शासनं दुष्टचेतसः ।
प्रलम्बस्य प्रवृद्धस्य दर्पाद् द्विगुणवर्चसः ॥ ३३ ॥

'यह दुष्टात्मा दैत्य बढ़कर बहुत लंबा हो गया है। बलके मदसे इसकी कान्ति दुगुनी हो गयी है। मुझे किस तरह इसका दमन करना चाहिये' ॥ ३३ ॥

तमाह सस्मितं कृष्णः साम्ना हर्षाकुलेन वै ।
अभिज्ञो रौहिणेयस्य वृत्तस्य च बलस्य च ॥ ३४ ॥

तब रोहिणीनन्दन बलरामके चरित्र और बलको भली-भाँति जाननेवाले श्रीकृष्णने मुसकराकर हर्षभरी सान्त्वना-युक्त वाणीमें उनसे कहा—॥ ३४ ॥

अहोऽयं मानुषो भावो व्यक्तमेवानुपाल्यते ।
यस्त्वं जगन्मयं देवं गुह्याद् गुह्यतरं गतः ॥ ३५ ॥
स्मर नारायणात्मानं लोकानां त्वं विपर्यये ।
अवगच्छात्मनाऽऽत्मानं समुद्राणां समागमे ॥ ३६ ॥

'अहो! आप तो स्पष्ट ही मानव-भावका अवलम्बन एवं पालन करते जा रहे हैं। आपका स्वरूप तो अखिल विश्वमय है। आप दिव्यस्वरूप तथा गुह्यसे भी गुह्यतर हैं। आप ही समस्त लोकोंका संहार होनेपर नारायणरूपसे स्थित होते हैं। आप अपने उस स्वरूपका स्मरण तो कीजिये। प्रलयकालमें जब सारे समुद्र मिलकर एक हो जाते हैं, उस समय आप जिस शेषशायी नारायणरूपसे विराजमान होते हैं, उसका स्वयं ही अनुभव कीजिये ॥ ३५-३६ ॥

पुरातनानां देवानां ब्रह्मणः सलिलस्य च ।
आत्मवृत्तप्रभावाणां संस्मराद्यं च वै वपुः ॥ ३७ ॥

'पुरातन देवता, ब्रह्मा, जल तथा अपने चरित्र और प्रभाव—इन सबका आदि कारण तथा जो आपका शाश्वत स्वरूप है, उसका स्मरण कीजिये ॥ ३७ ॥

शिरः खं ते जलं मूर्त्तिः पादौ भूर्दहनो मुखम् ।
वायुर्लोकायुरुच्छ्वासो मनः सोमो ह्यभूत् तव ॥ ३८ ॥

'आकाश आपका सिर है, जल मूर्ति है, पृथ्वी पैर है, अग्नि मुख है, लोकोंको जीवन देनेवाली वायु आपका उच्छ्वास है और चन्द्रमा आपका मन है ॥ ३८ ॥

सहस्रास्यः सहस्राङ्गः सहस्रचरणेक्षणः ।
सहस्रपद्मनाभस्त्वं सहस्रांशुधरोऽरिहा ॥ ३९ ॥

'आपके सहस्रों मुख, सहस्रों शरीर, सहस्रों हाथ-पैर और सहस्रों नेत्र हैं। आपकी नाभिसे सहस्रों कमल प्रकट हो चुके हैं। आप सहस्र किरणोंवाले सूर्यको चक्ररूपसे धारण करके शत्रुओंका संहार करते हैं ॥ ३९ ॥

यत्त्वया दर्शितं लोके तत् पश्यन्ति दिवौकसः ।
यत् त्वया नोक्तपूर्वं हि कस्तदन्वेष्टुमर्हति ॥ ४० ॥

'आपने पूर्वकालमें जो कुछ दिखाया है, संसारमें उसीको देवता लोग देखते हैं। आपने पहले जिसकी चर्चा नहीं की है, उसका अनुसंधान कौन कर सकता है? ॥ ४० ॥

यद् वेदितव्यं लोकेऽस्मिंस्तत्त्वया समुदाहृतम् ।
विदितं यत् तवैकस्य देवा अपि न तद् विदुः ॥ ४१ ॥

'जगत्‌में जो कुछ जानने योग्य है, उसका आपने प्रतिपादन कर दिया है। एकमात्र आपको जो तत्त्व ज्ञात है, उसे देवता भी नहीं जानते ॥ ४१ ॥

आत्मजं ते वपुर्व्योम्नि न पश्यन्त्यात्मसम्भवम्।
यत् तु ते कृत्रिमं रूपं तदर्चन्ति दिवौकसः ॥ ४२ ॥

'आपका जो सहज, आकाशमें भी व्यापक एवं स्वयम्भू रूप है, उस (विशुद्ध सनातन एवं निर्गुण-निराकार रूप) को देवता भी देख या समझ नहीं पाते हैं। भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये आप जो सगुण-साकार रूपसे अवतार ग्रहण करते हैं, उसीकी देवता लोग पूजा एवं आराधना करते हैं ॥ ४२ ॥

दैवैर्न दृष्टश्चान्तस्ते तेनानन्त इति स्मृतः।
त्वं हि सूक्ष्मो महानेकः सूक्ष्मैरपि दुरासदः ॥ ४३ ॥

'देवताओंने भी आपका अन्त नहीं देखा है, इसलिये आप अनन्त माने गये हैं। आप ही सूक्ष्म, महान् और एक हैं। सूक्ष्म बुद्धि-इन्द्रियादिके द्वारा भी आपको जानना या पाना अत्यन्त कठिन है ॥ ४३ ॥

त्वय्येव जगतः स्तम्भे शाश्वती जगती स्थिता।
अचला प्राणिनां योनिर्धारयत्यखिलं जगत् ॥ ४४ ॥

'आप ही इस जगत्के आधारस्तम्भ हैं। आपपर प्रतिष्ठित होकर ही यह सनातन पृथ्वी अविचल भावसे सम्पूर्ण जगत्को धारण करती है और समस्त प्राणियोंकी उत्पत्तिका स्थान बनती है ॥ ४४ ॥

चतुःसागरभोगस्त्वं चातुर्वर्ण्यविभागवित्।
चतुर्युगेषु लोकानां चातुर्होत्रफलाशनः ॥ ४५ ॥

'चारों समुद्र आपके स्वरूप हैं। आप चारों वर्णोंके विभागको जाननेवाले हैं। चारों युगोंमें लोकोंके चातुर्होत्र यज्ञका जो फल है, उसका उपभोग करनेवाले भी आप ही हैं ॥ ४५ ॥

यथाहमपि लोकानां तथा त्वं तच्च मे मतम्।
उभावेकशरीरौ स्वो जगदर्थे द्विधाकृतौ ॥ ४६ ॥

'जैसे मैं समस्त लोकोंका अन्तर्यामी आत्मा हूँ, वैसे ही आप भी हैं, यही मेरा मत है। हम दोनों ही एक शरीरवाले हैं, केवल जगत्के हितके लिये दो रूपोंमें प्रकट हुए हैं ॥ ४६ ॥

अहं वा शाश्वतः कृष्णस्त्वं वा शेषः पुरातनः।
लोकानां शाश्वतो देवस्त्वं हि शेषः सनातनः।
आवयोर्देहमात्रेण द्विधेदं धार्यते जगत् ॥ ४७ ॥

'मैं सनातन विष्णु हूँ और आप पुरातन शेष हैं; तीनों लोकोंके सनातन देवता तथा सनातन शेष आप ही हैं; हमारा चिन्मय शरीरमात्र ही (विष्णु या अनन्तरूपसे) इस जड चेतनमय द्विविध जगत्को धारण करता है ॥ ४७ ॥

अहं यः स भवानेव यस्त्वं सोऽहं सनातनः।
द्वावेव विहितौ ह्यावामेकदेहौ महाबलौ ॥ ४८ ॥

'जो मैं हूँ, वह आप ही हैं। जो आप हैं, वह सनातन पुरुष मैं ही हूँ। हम दोनों ही एक आत्मा हैं, किंतु इस समय दो महाबली स्वरूपोंमें प्रकट हुए हैं ॥ ४८ ॥

तदास्से मूढवत् त्वं किं प्राणेन जहि दानवम्।
मूर्ध्नि देवरिपुं देव वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥ ४९ ॥

'देव ! आप किंकर्तव्यविमूढ़की भाँति क्यों चुपचाप बैठे हैं ? बलपूर्वक इस दानवको मार डालिये। अपने वज्रतुल्य मुक्केसे इस देवद्रोहीके मस्तकपर प्रहार कीजिये' ॥ ४९ ॥

वैशम्पायन उवाच

संस्मारितस्तु कृष्णेन रौहिणेयः पुरातनम्।
बलेनापूर्यत तदा त्रैलोक्यान्तरचारिणा ॥ ५० ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! भगवान् श्रीकृष्णने जब इस प्रकार पुरातन रहस्यका स्मरण दिलाया, तब रोहिणीनन्दन बलराम त्रिलोकीके भीतर व्याप्त हुए अनन्त बलसे परिपूर्ण हो गये ॥ ५० ॥

ततः प्रलम्बं दुर्वृत्तं स बद्धेन महाभुजः।
मुष्टिना वज्रकल्पेन मूर्ध्नि चैनं समाहनत् ॥ ५१ ॥

तब उन महाबाहु वीरने दुराचारी प्रलम्बासुरके मस्तकपर अपनी बँधी हुई वज्रतुल्य मुष्टिकासे प्रहार किया ॥ ५१ ॥

तस्योत्तमाङ्गं स्वे काये विकपालं विवेश ह।
जानुभ्यां चाहतः शेते गतासुर्दानवोत्तमः ॥ ५२ ॥

इससे उसकी खोपड़ी उड़ गयी और शेष मस्तक उसके धड़में ही धँस गया। फिर वह घायल हुआ दानवराज पृथ्वीपर घुटने टेककर गिर पड़ा और प्राणहीन होकर सदाके लिये सो गया ॥ ५२ ॥

जगत्यां विप्रकीर्णस्य तस्य रूपमभूत् तदा।
प्रलम्बस्याम्बरस्थस्य मेघस्येव विदीर्यतः ॥ ५३ ॥

जैसे आकाशमें स्थित हुए मेघकी घटा जब छिन्न-भिन्न होकर बिखर जाती है, उस समय उसका जैसा रूप दिखायी देता है, पृथ्वीपर टूक-टूक होकर बिखरे हुए प्रलम्बासुरका रूप भी वैसा ही दृष्टिगोचर हुआ ॥ ५३ ॥

तस्य भग्नोत्तमाङ्गस्य देहात् सुस्राव शोणितम्।
बहुगैरिकसंयुक्तं शैलशृङ्गादिवोदकम् ॥ ५४ ॥

कटे-फटे मस्तकवाले उस असुरके शरीरसे खूनकी धारा बह चली, मानो पर्वतके शिखरसे अधिक गेरू मिला हुआ जल प्रवाहित हो रहा हो ॥ ५४ ॥

तं निहत्य प्रलम्बं तु संहृत्य बलमात्मनः।
पर्यष्वजत वै कृष्णं रौहिणेयः प्रतापवान् ॥ ५५ ॥

इस प्रकार प्रलम्बासुरको मारकर अपने बलको पुनः समेट लेनेके बाद प्रतापी रोहिणीकुमार बलरामने श्रीकृष्णको हृदयसे लगा लिया ॥ ५५ ॥

तं तु कृष्णश्च गोपाश्च दिविस्थाश्च दिवौकसः।
तुष्टुवुर्निहते दैत्ये जयाशीर्भिर्महाबलम् ॥ ५६ ॥

उस समय उस दैत्यके मारे जानेपर श्रीकृष्ण, गोपगण तथा आकाशमें खड़े हुए देवता विजयसूचक आशीर्वाद देते हुए महाबली बलरामजीकी स्तुति करने लगे ॥ ५६ ॥

बलेनायं हतो दैत्यो बालेनाक्लिष्टकर्मणा।
विवदन्त्यशरीरिण्यो वाचः सुरसमीरिताः ॥ ५७ ॥

'अनायास ही महान् कर्म करनेवाले इस बालकने ऐसे महान् दैत्यको बलपूर्वक मार गिराया' इस प्रकार देवताओंकी कही हुई आकाशवाणी बारंबार प्रकट होने लगी ॥ ५७ ॥

बलदेवेति नामास्य देवैरुक्तं दिवि स्थितैः।
बलं तु बलदेवस्य तदा भुवि जना विदुः ॥ ५८ ॥

उस समय आकाशमें खड़े हुए देवताओंने उनका नाम बलदेव रख दिया। तभीसे भूतलके मनुष्य बलदेवजीके बलको जानने लगे ॥ ५८ ॥

कर्मजं निहते दैत्ये देवैरपि दुरासदे ॥ ५९ ॥

जो देवताओंके लिये भी दुर्जय था, उस प्रलम्ब नामक दैत्यके मारे जानेपर बलरामजीको उनके पराक्रमके अनुसार वह (बलदेव) नाम प्राप्त हुआ था ॥ ५९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां प्रलम्बवधे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें बाललीलाके प्रसङ्गमें प्रलम्बासुरका वधविषयक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४ ॥

◆

पञ्चदशोऽध्यायः

इन्द्रोत्सवके विषयमें श्रीकृष्णकी जिज्ञासा तथा एक वृद्ध गोपके द्वारा उसकी आवश्यकताका प्रतिपादन

वैशम्पायन उवाच

तयोः प्रवृत्तयोरेवं कृष्णस्य च बलस्य च।
वने विचरतोर्मासौ व्यतियातौ स्म वार्षिकौ ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं--जनमेजय ! श्रीकृष्ण और बलराम दोनोंके इस प्रकार बाललीलामें प्रवृत्त होकर वनमें विचरते हुए वर्षाके दो मास व्यतीत हो गये ॥ १ ॥

व्रजमाजग्मतुस्तौ तु व्रजे शुश्रुवतुस्तदा।
प्राप्तं शक्रमहं वीरौ गोपांश्चोत्सवलालसान् ॥ २ ॥

एक दिन जब वे दोनों वीर व्रजमें आये, तब उन्होंने सुना कि इन्द्रयागके उत्सवका समय आ गया है और समस्त गोप उस उत्सवको देखनेके लिये लालायित हैं ॥ २ ॥

कौतूहलादिदं वाक्यं कृष्णः प्रोवाच तत्र तान्।
कोऽयं शक्रमहो नाम येन वो हर्ष आगतः ॥ ३ ॥

तब श्रीकृष्णने कौतूहलवश उनसे यह बात पूछी—'यह इन्द्रयागका उत्सव क्या है ? जिससे तुमलोगोंको इतना हर्ष हो रहा है, ॥ ३ ॥

तत्र वृद्धतमस्त्वेको गोपो वाक्यमुवाच ह।
श्रूयतां तात शक्रस्य यदर्थं ध्वज इज्यते ॥ ४ ॥

उनके इस प्रकार पूछनेपर उन गोपोंमें सबसे बड़े-बूढ़े एक गोपने इस प्रकार कहा—'तात ! सुनो ! हमारे यहाँ इन्द्रके ध्वजकी पूजा किसलिये की जाती है, यह बताता हूँ ॥ ४ ॥

देवानामीश्वरः शक्रो मेघानां चारिसूदन।
तस्य चायं महः कृष्ण लोकनाथस्य शाश्वतः ॥ ५ ॥

'शत्रुसूदन कृष्ण ! देवताओं और मेघोंके स्वामी देवराज इन्द्र हैं। वे ही सम्पूर्ण जगत्के सनातन रक्षक हैं। उन्हींका यह उत्सव मनाया जाता है ॥ ५ ॥

तेन संचोदिता मेघास्तस्य चायुधभूषिताः।
तस्यैवाज्ञाकराः सस्यं जनयन्ति नवाम्बुभिः ॥ ६ ॥

'उन्हींसे प्रेरित हो उन्हींके आयुध (इन्द्रधनुष) से विभूषित हुए मेघ उनकी ही आज्ञाका पालन करते हुए नूतन जलकी वर्षा करके खेतीको उपजाते हैं ॥ ६ ॥

मेघस्य पयसो दाता पुरुहूतः पुरंदरः।
सम्प्रहृष्टः स भगवान् प्रीणयत्यखिलं जगत् ॥ ७ ॥

'अनेक नामोंसे विभूषित भगवान् पुरन्दर (इन्द्र) मेघ और जलके दाता हैं। वे प्रसन्न होनेपर सम्पूर्ण जगत्को तृप्त करते हैं ॥ ७ ॥

तेन सम्पादितं सस्यं वयमन्ये च मानवाः।
वर्तयामोपयुञ्जानास्तर्पयामश्च देवताः ॥ ८ ॥

'उनके द्वारा सम्पन्न की हुई खेतीसे जो अन्न पैदा होता है, उसीको हम तथा दूसरे मनुष्य खाते हैं, उसीका धर्मके कार्यमें भी उपयोग करते हुए देवताओंको यज्ञ आदिके द्वारा तृप्त करते हैं ॥ ८ ॥

देवे वर्षति लोकेऽस्मिंस्ततः सस्यं प्रवर्धते।
पृथिव्यां तर्पितायां तु सामृतं लक्ष्यते जगत् ॥ ९ ॥

'इस संसारमें जब इन्द्रदेव वर्षा करते हैं, तब उसीसे खेतीकी उपज बढ़ती है। वर्षासे ही पृथ्वीके तृप्त होनेपर सम्पूर्ण जगत् सजल दिखायी देता है ॥ ९ ॥

क्षीरवत्यस्त्विमा गावो वत्सवत्यश्च निर्वृताः।
तेन संवर्धितैस्तात तृणैः पुष्टाः सपुङ्गवाः ॥ १०॥

'तात ! उस वर्षासे बढ़ी हुई घासोंद्वारा ही साँड़ोंसहित ये गौएँ हृष्ट-पुष्ट होकर बछड़े देतीं और दूध देनेवाली होती हैं ॥ १० ॥

नासस्या नातृणा भूमिर्न बुभुक्षार्दितो जनः।
दृश्यते यत्र दृश्यन्ते वृष्टिमन्तो बलाहकाः ॥ ११ ॥

'जहाँ वर्षा करनेवाले मेघ दिखायी देते हैं, उस भूमिपर कभी अनाज और तृणका अभाव नहीं होता तथा वहाँके लोग कभी भूखसे पीड़ित नहीं देखे जाते हैं ॥ ११ ॥

दुदोह सवितुर्गा वै शक्रो दिव्याः पयस्विनीः।
ताः क्षरन्ति नवं क्षीरं मेध्यं मेघौघधारितम् ॥ १२ ॥

'सूर्यदेवकी दिव्य किरणें पृथ्वीका जल सोखकर पयस्विनी (गौ अथवा जलवती) हो जाती हैं, तब इन्द्रदेव उनका दोहन करते हैं। उनके दोहन करनेपर वे किरणमयी गौएँ नूतन एवं पवित्र जलरूपी दूध प्रकट करती हैं, जिसे मेघोंकी घटारूप दुग्धपात्रमें संचित किया जाता है ॥ १२ ॥

वाय्वीरितं तु मेघेषु करोति निनदं महत्।
जवेनावर्तितं चैव गर्जतीति जना विदुः ॥ १३ ॥

'वही वायुसे प्रेरित होकर वेगसे आवर्तित होनेपर मेघोंके भीतर अत्यन्त गम्भीर शब्द उत्पन्न करता है, जिसे लोग समझते हैं कि मेघ गर्जना कर रहा है ॥ १३ ॥

तस्य चैवोह्यमानस्य वायुयुक्तैर्बलाहकैः।
वज्राशनिसमाः शब्दाः श्रूयन्ते नगभेदिनः ॥ १४ ॥

'वायुयुक्त मेघोंद्वारा ढोयी जाती हुई उस जलराशिका पर्वतभेदी शब्द ही वज्र एवं बिजलीकी गड़गड़ाहटके समान सुनायी देता है ॥ १४ ॥

तज्जलं वज्रनिष्पेषैर्विमुञ्चति नभोगतैः।
बहुभिः कामगैर्मेघैः शक्रो भृत्यैरिवेश्वरः ॥ १५ ॥

'जैसे राजा अपने सेवकोंसे काम लेता है, उसी प्रकार देवराज इन्द्र आकाशमें फैले हुए तथा इच्छानुसार सर्वत्र जा सकनेवाले बहुसंख्यक मेघोंद्वारा वज्रकी गड़गड़ाहटकी आवाजके साथ उस जलको इस भूतलपर बरसाते हैं ॥ १५ ॥

क्वचिद् दुर्दिनसंकाशैः क्वचिच्छिन्नाभ्रसंनिभैः।
क्वचिद् भिन्नाञ्जनाकारैः क्वचिच्छीकरवर्षिभिः ॥ १६ ॥
मण्डयतीव देवेन्द्रो विश्वमेवं नभो घनैः।
क्वचिच्छीकरमुक्ताभं कुरुते गगनं घनः ॥ १७ ॥

'कहीं वे मेघ दुर्दिन-से होकर सारे आकाशमें छा जाते हैं। कहीं फटे हुए बादलोंके रूपमें दिखायी देते हैं। कहीं खानसे काटकर निकाले गये कोयलेके समान काले होते हैं और कहीं जलकी छोटी-छोटी बूँदें बरसाते रहते हैं। इस तरह विभिन्न प्रकारके बादलोंद्वारा देवराज इन्द्र आकाश एवं विश्वको अलंकृत-सा करते रहते हैं। कहीं-कहीं तो बादल पानी बरसाकर आकाशको जलबिन्दुरूपी मोतियोंसे प्रकाशित कर देता है ॥ १६-१७ ॥

एवमेतत् पयो दुग्धं गोभिः सूर्यस्य वारिदैः।
पर्जन्यः सर्वभूतानां भवाय भुवि वर्षति ॥ १८ ॥

'इस प्रकार पर्जन्यदेव (इन्द्र) इस पृथ्वीके जलको सूर्यकी किरणोंद्वारा खींचकर सम्पूर्ण प्राणियोंकी वृद्धिके लिये उसे मेघोंद्वारा भूतलपर बरसा देते हैं ॥ १८ ॥

यस्मात् प्रावृडियं कृष्ण शक्रस्य भुवि भाविनी।
तस्मात् प्रावृषि राजानः सर्वे शक्रं मुदा युताः।
महैः सुरेशमर्चन्ति वयमन्ये च मानवाः ॥ १९ ॥

'श्रीकृष्ण! इसीलिये यह वर्षा ऋतु भूतलपर इन्द्रदेवकी पूजाका समय है; अतएव समस्त राजा वर्षा ऋतुमें बड़ी प्रसन्नताके साथ नाना प्रकारके उत्सवोंद्वारा देवराजकी पूजा करते हैं। हम तथा दूसरे मनुष्य भी ऐसा ही करते हैं' ॥१९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि शिशुचर्यायां गोपवाक्ये पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें श्रीकृष्णकी बाललीलाके प्रसंगमें गोपका वाक्यविषयक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

श्रीकृष्णके द्वारा गिरियज्ञ एवं गोपूजनका प्रस्ताव करते हुए शरद् ऋतुका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

गोपवृद्धस्य वचनं श्रुत्वा शक्रपरिग्रहे।
प्रभावज्ञोऽपि शक्रस्य वाक्यं दामोदरोऽब्रवीत् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! इन्द्र-महोत्सवको स्वीकार करनेके सम्बन्धमें उस बड़े-बूढ़े गोपका वचन सुनकर इन्द्रके प्रभावको जानते हुए भी श्रीकृष्णने यह बात कही—॥ १ ॥

वयं वनचरा गोपाः सदा गोधनजीविनः।
गावोऽस्मद्दैवतं विद्धि गिरयश्च वनानि च ॥ २ ॥

'आर्य ! हमलोग वनमें रहनेवाले गोप हैं और सदा

गोधनसे अपनी जीविका चलाते हैं; अतः आपको मालूम होना चाहिये कि गौएँ, पर्वत और वन–ये ही हमारे देवता हैं ॥२॥

कर्षुकाणां कृषिर्वृत्तिः पण्यं विपणिजीविनाम् ।
गावोऽस्माकं परा वृत्तिरेतत् त्रैविद्यमुच्यते ॥ ३ ॥

'किसानोंकी जीविका है खेती, व्यापारसे जीवननिर्वाह करनेवाले वैश्योंकी जीविका-वृत्ति है खरीद-विक्री और हमलोगोंकी सर्वोत्तम वृत्ति है गौओंका पालन । ये वार्तारूप विद्याके तीन भेद कहलाते हैं ॥ ३ ॥

विद्यया यो यया युक्तस्तस्य सा दैवतं परम् ।
सैव पूज्यार्चनीया च सैव तस्योपकारिणी ॥ ४ ॥

'जो जिस विद्यासे युक्त है, उसके लिये वही सर्वोत्तम देवता है, वही पूजा-अर्चाके योग्य है और वही उसके लिये उपकारिणी है ॥ ४ ॥

योऽन्यस्य फलमश्नानः करोत्यन्यस्य सत्क्रियाम् ।
द्वावनर्थौ स लभते प्रेत्य चेह च मानवः ॥५॥

'जो मनुष्य एक व्यक्तिसे फल पाकर उसे भोगता है और दूसरेकी पूजा (आदर-सत्कार) करता है, वह इस लोक और परलोकमें दो अनर्थोंका भागी होता है ॥ ५ ॥

कृष्यन्ता प्रथिता सीमा सीमान्तं श्रूयते वनम् ।
वनान्ता गिरयः सर्वे ते चास्माकं गतिर्ध्रुवा ॥ ६ ॥

'जहाँतक खेती होती है, वहाँतक व्रजकी सीमा विख्यात है । सीमाके अन्तमें वन सुना जाता है और वनके अन्तमें समस्त पर्वत हैं । वे पर्वत ही हमारे अविचल आश्रय हैं ॥६॥

श्रूयन्ते गिरयश्चापि वनेऽस्मिन् कामरूपिणः ।
प्रविश्य तास्तास्तनवो रमन्ते स्वेषु सानुषु ॥ ७ ॥

'सुना जाता है कि इस वनमें रहनेवाले पर्वत भी इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले हैं । वे भिन्न-भिन्न शरीरोंमें प्रवेश करके अपने शिखरोंपर मौजसे घूमते-फिरते हैं ॥ ७ ॥

भूत्वा केसरिणः सिंहा व्याघ्राश्च नखिनां वराः ।
वनानि स्वानि रक्षन्ति त्रासयन्तो वनच्छिदः ॥ ८ ॥

'वे ही अयालोंसे विभूषित सिंह और नखधारी जन्तुओंमें श्रेष्ठ व्याघ्र बनकर वनको काटने या हानि पहुँचानेवाले लोगोंको त्रास देते हुए अपने-अपने वनोंकी रक्षा करते हैं ॥ ८ ॥

यदा चैषां विकुर्वन्ति ते वनालयजीविनः ।
घ्नन्ति तानेव दुर्वृत्तान् पौरुषादेन कर्मणा ॥ ९ ॥

'जब वनके आश्रयमें रहकर जीवननिर्वाह करनेवाले लोग इन वनों या वनदेवताओंको हानि पहुँचाते हैं, तब वे कामरूपी देवता राक्षसोचित हिंसाकर्मके द्वारा उन दुराचारी मनुष्योंको निश्चय ही मार डालते हैं ॥ ९ ॥

मन्त्रयज्ञपरा विप्राः सीतायज्ञाश्च कर्षुकाः ।
गिरियज्ञास्तथा गोपा इज्योऽस्माभिर्गिरिर्वने ॥ १० ॥

'ब्राह्मणलोग मन्त्रयज्ञमें तत्पर रहते हैं, किसान सीतायज्ञ करते हैं अर्थात् खेतोंको अच्छी तरह जोतते और हल जोतनेसे जो रेखा बन जाती है, उसकी तथा हलकी पूजा करते हैं तथा गोपगण गिरियज्ञ करते हैं; अतः हमलोगोंको इस वनमें गिरियज्ञ करना चाहिये ॥ १० ॥

तन्मह्यं रोचते गोपा गिरियज्ञः प्रवर्तताम् ।
कर्म कृत्वा सुखस्थाने पादपेष्वथवा गिरौ ॥ ११ ॥
तत्र हत्वा पशून् मेध्यान् वितत्यायतने शुभे ।
सर्वघोषस्य संदोहः क्रियतां किं विचार्यते ॥ १२ ॥

'गोपगण ! मुझे तो यही अच्छा लगता है कि गिरियज्ञका आरम्भ हो । स्वस्तिवाचन आदि कर्म करके वृक्षोंके नीचे अथवा पर्वतके समीप किसी सुखद स्थानपर पवित्र पशुओंको एकत्र करके उनके पास जाकर उनका विस्तारपूर्वक पूजन किया जाय और एक शुभ मन्दिरमें सारे व्रजके दूधका संग्रह कर लिया जाय । इस विषयमें आपलोग क्या विचार कर रहे हैं ॥ ११-१२ ॥

तं शरत्कुसुमापीडाः परिवार्य प्रदक्षिणम् ।
गावो गिरिवरं सर्वास्ततो यान्तु पुनर्व्रजम् ॥ १३ ॥

'फिर शरद् ऋतुके फूलोंसे जिनके मस्तकका शृङ्गार किया गया हो, ऐसी समस्त गौएँ गिरिवर गोवर्धनकी दक्षिणावर्त परिक्रमा करके पुनः व्रजमें जायँ ॥ १३ ॥

प्राप्ता किलेयं हि गवां स्वादुतोयतृणा गुणैः ।
शरत् प्रमुदिता रम्या गतमेघजलाशया ॥ १४ ॥

'इस समय प्रमोदपूर्ण रमणीय शरद्-ऋतु आ गयी है, जब कि जल और घास गौओंके लिये स्वादुताके गुणोंसे सम्पन्न हो जाते हैं । अब जलाशयोंमें पानी बरसानेवाले बादल छँट गये ॥ १४ ॥

प्रियकैः पुष्पितैर्गौरं श्यामं बाणासनैः क्वचित् ।
कठोरतृणमाभाति निर्मयूररुतं वनम् ॥ १५ ॥

'खिले हुए कदम्ब-पुष्पोंके कारण वन गौरवर्णका प्रतीत होता है । कहीं-कहीं बाणासनों—झाड़-झंखाड़ोंके कारण वह श्याम रंगका दिखायी देता है । अब घासें कोमल नहीं रहीं—कुछ कठोर हो गयी हैं । वनमें मोरोंकी मधुर वाणी नहीं सुनायी देती है ॥ १५ ॥

विजला विमला व्योम्नि विबलाका विविद्युतः ।
विवर्धन्ते जलधरा विदन्ता इव कुञ्जराः ॥ १६ ॥

'आकाशमें जल, मल, बलाका और विद्युत्से रहित बादल दन्तहीन हाथियोंके समान बढ़ रहे हैं ॥ १६ ॥

पटुना मेघवातेन नवतोयानुकर्षिणा ।
पर्णोत्करघनाः सर्वे प्रसादं यान्ति पादपाः ॥ १७ ॥

'(वर्षा ऋतुमें) नूतन जलको खींच लानेवाले शक्ति-

शाली मेघयुक्त वायुसे अभिषिक्त होनेके कारण जो पत्तोंके बाहुल्यसे घने दिखायी देते थे, वे सभी वृक्ष अब पत्तोंके विरल हो जानेसे प्रसादको प्राप्त हो रहे हैं (पहले वहाँ अन्धकार छाया रहता था अब प्रकाश हो गया है) ॥ १७ ॥

सितवर्णाम्बुदोष्णीषं हंसचामरवीजितम् ।
पूर्णचन्द्रामलच्छत्रं साभिषेकमिवाम्बरम् ॥ १८ ॥

'इस समय आकाश मूर्धाभिषिक्त राजाके समान जान पड़ता है। सफेद बादल ही उसकी श्वेत पगड़ी या उज्ज्वल मुकुट हैं, हंसरूपी श्वेत चँवरके द्वारा मानो उसके लिये हवा की जाती है तथा पूर्ण चन्द्रमा ही उसका निर्मल छत्र बनकर शोभा पाता है ॥ १८ ॥

हंसैः प्रहसितानीव समुत्क्रुष्टानि सारसैः ।
सर्वाणि तनुतां यान्ति जलानि जलदक्षये ॥ १९ ॥

'वर्षाकाल बीत जानेपर सारे जलाशयोंके जल क्रमशः क्षीण होते जा रहे हैं, मानो हंसोंने उनकी हँसी उड़ायी हो और सारसोंने उनकी निन्दा की हो (इसी खेदसे उनमें कृशता आ गयी है) ॥ १९ ॥

चक्रवाकस्तनतटाः पुलिनश्रोणिमण्डलाः ।
हंसलक्षणहासिन्यः पतिं यान्ति समुद्रगाः ॥ २० ॥

'समुद्रगामिनी नदियाँ हंसरूपी हाससे सुशोभित हो अपने पति (समुद्र) के पास जा रही हैं। चक्रवाकके जोड़े उनके युगल उरोज-से जान पड़ते हैं और दोनों तट नितम्ब-मण्डल-की शोभा धारण करते हैं ॥ २० ॥

कुमुदोत्फुल्लमुदकं ताराभिश्चित्रमम्बरम् ।
सममभ्युत्स्मयन्तीव शर्वरीष्वितरेतरम् ॥ २१ ॥

'रातके समय (जलाशयोंमेंके) जलमें अगणित कुमुद खिल उठते हैं और आकाश असंख्य तारिकाओंसे चित्रित हो जाता है। वे दोनों मानो एक-दूसरेके प्रति गर्व-सा प्रकट करते हुए कहते हैं कि 'मेरी शोभा तुमसे कम नहीं है' ॥

मत्तक्रौञ्चावघुष्टेषु कलमापक्वपाण्डुषु ।
निर्विष्टरमणीयेषु वनेषु रमते मनः ॥ २२ ॥

'जिनमें मदमत्त पुरुषोंकी भाँति क्रौञ्च पक्षियोंकी मधुर बोली गूँज रही है, जहाँ पके हुए धानकी बालें पीली साड़ीमें सजी हुई सुन्दरी बालाओंकी भाँति अपनी श्वेत-पीत प्रभा बिखेर रही हैं और इस प्रकार जो विवाहित स्त्री-पुरुषोंके कौतुकागारोंके सदृश रमणीयता धारण करते हैं, उन वनोंमें मनको अधिक आनन्दका अनुभव होता है ॥ २२ ॥

पुष्करिण्यस्तडागानि वाप्यश्च विकचोत्पलाः ।
केदाराः सरितश्चैव सरांसि च श्रियाज्वलन् ॥ २३ ॥

'पोखरियाँ, पोखरे, खिले हुए कमलोंसे सुशोभित बावड़ियाँ, खेतोंकी क्यारियाँ, नदियाँ और सरोवर—ये सब-के-सब अनुपम शोभा-सम्पत्तिसे प्रकाशित हो उठे हैं ॥ २३ ॥

पङ्कजानि च ताम्राणि तथान्यानि सितान्यपि ।
उत्पलानि च नीलानि भेजिरे वारिजां श्रियम् ॥ २४ ॥

'लाल कमल, अन्यान्य श्वेत-पीत आदि कमल तथा नील उत्पल भी जलजनित शोभाके भागी हुए हैं ॥ २४ ॥

मदं जहुः सितापाङ्गा मन्दं ववृधिरेऽनिलाः ।
अभवद् व्यभ्रमाकाशमभूच्च निभृतोऽर्णवः ॥ २५ ॥

'मोरोंका मद उतर गया है। वायु मन्दगतिसे आगे बढ़ रही है। आकाश बादलोंसे शून्य हो गया है और समुद्र भरा-पूरा दिखायी देता है ॥ २५ ॥

ऋतुपर्यायशिथिलैर्वृत्तनृत्यसमुज्झितैः ।
मयूराङ्गरुहैर्भूमिर्बहुनेत्रेव लक्ष्यते ॥ २६ ॥

'वर्षा ऋतु बीत जानेसे जो यत्र-तत्र शिथिल होकर बिखरे पड़े हैं, नृत्यका कार्य और उत्साह समाप्त हो जानेके कारण जो त्याग दिये गये हैं, उन मोर-पंखोंके कारण यह भूमि मानो बहुत-से नेत्रोंवाली दिखायी देती है ॥ २६ ॥

स्वपङ्कमलिनैस्तीरैः काशपुष्पलताकुलैः ।
हंससारसविन्यासैर्यमुना भाति शोभना ॥ २७ ॥

'जो अपने ही पङ्कसे मलिन हो रहे हैं, जहाँ काश खिले हुए हैं और लता-बेलें फैली हुई हैं तथा जिनपर यत्र-तत्र हंसों और सारसोंके बैठनेके स्थान हैं, ऐसे तटोंसे यमुनाकी बड़ी शोभा हो रही है ॥ २७ ॥

कलमापाकरम्येषु केदारेषु जलेषु च ।
सस्यादा जलजादाश्च मत्ता विरुरुवुः खगाः ॥ २८ ॥

'धानकी बालोंके पक जानेसे रमणीय दिखायी देनेवाली खेतोंकी क्यारियोंमें अनाजके दाने बीनकर खानेवाले सारस आदि पक्षी तथा जलाशयोंके जलोंमें मत्स्य आदि जलजन्तुओं-का भक्षण करनेवाले बक आदि पक्षी कलरव कर रहे हैं ॥

सिषिचुर्यानि जलदा जलेन जलदागमे ।
तानि सस्यानि बालानि कठिनत्वं गतानि वै ॥ २९ ॥

'वर्षाकालमें बादलोंने अपने जलसे जिन्हें सींचा था, वे अनाजके कोमल पौदे बाल्यावस्थासे प्रौढावस्थामें आकर कठोर हो गये हैं ॥ २९ ॥

त्यक्त्वा मेघमयं वासः शरद्गुणविदीपितः ।
एष वै विमले व्योम्नि हृष्टो वसति चन्द्रमाः ॥ ३० ॥

'ये चन्द्रदेव बादलरूपी वस्त्र उतारकर शरद् ऋतुके गुणोंसे और भी प्रकाशित हो इस निर्मल आकाशमें हर्षोल्लासके साथ निवास करते हैं ॥ ३० ॥

क्षीरिण्यो द्विगुणं गावः प्रमत्ता द्विगुणं वृषाः ।
वनानां द्विगुणा लक्ष्मीः सस्यैर्गुणवती मही ॥ ३१ ॥

'शरद् ऋतुमें गौएँ पहलेसे दूना दूध देने लगी हैं। साँड़ दुगुने मतवाले हो उठे हैं। वनोंकी शोभा-सम्पत्ति दुगुनी बढ़ गयी है और पकी हुई खेतीके कारण यह पृथ्वी अनन्त गुणोंसे सम्पन्न हो गयी है ॥ ३१ ॥

ज्योतींषि घनमुक्तानि पद्मवन्ति जलानि च ।
मनांसि च मनुष्याणां प्रसादमुपयान्ति वै ॥ ३२ ॥

'बादलोंके आवरणसे मुक्त हुए ग्रह-नक्षत्र, कमल-मण्डित जल तथा मनुष्योंके मन प्रसाद (स्वच्छता एवं प्रसन्नता) को प्राप्त हो रहे हैं ॥ ३२ ॥

असृजत् सविता व्योम्नि निर्मुक्तो जलदैर्भृशम् ।
शरत्प्रज्वलितं तेजस्तीक्ष्णरश्मिर्विशोषयन् ॥ ३३ ॥

'आकाशमें मेघमुक्त हुआ सूर्य शरद् ऋतुके प्रभावसे अधिक प्रज्वलित तेज (धूप) की सृष्टि करता है तथा अपनी किरणोंको और भी तीखी करके वसुधाके रसका शोषण कर रहा है ॥ ३३ ॥

नीराजयित्वा सैन्यानि प्रयान्ति विजिगीषवः ।
अन्योन्यराष्ट्राभिमुखाः पार्थिवाः पृथिवीक्षितः ॥ ३४ ॥

'भूतलके नरेश अपने सैनिकोंसे उनके अस्त्रोंका मार्जन करवाकर (उन्हें साथ ले) विजयकी इच्छासे एक दूसरेके राष्ट्रकी ओर जा रहे हैं ॥ ३४ ॥

बन्धुजीवाभिताम्रासु बद्धपङ्कवतीषु च ।
मनस्तिष्ठति कान्तासु चित्रासु वनराजिषु ॥ ३५ ॥

'बन्धुजीव (बन्धूक) के लाल फूलोंसे सुशोभित हो जो सब ओरसे लाल-लाल दिखायी देती हैं तथा जिनकी कीचड़ सूख गयी है, ऐसी विचित्र एवं कमनीय वनश्रेणियोंमें (उनकी शोभा निहारनेके लिये) मन आसक्त हो रहा है ॥ ३५ ॥

वनेषु च विराजन्ते पादपा वनशोभिनः ।
असनाः सप्तपर्णाश्च कोविदाराश्च पुष्पिताः ॥ ३६ ॥
इषुसाह्वा निकुम्भाश्च प्रियकाः स्वर्णकास्तथा ।
सृमराः पेचकाश्चैव केतक्यश्च समन्ततः ॥ ३७ ॥

'वनकी शोभा बढ़ानेवाले असन, छितवन, कोविदार, वाणासन, निकुम्भ, प्रियक और स्वर्णक नामवाले वृक्ष वनोंमें फूलोंसे लदकर अधिक शोभा पा रहे हैं। केतकी (केवड़े) के वृक्ष भी सब ओर खिले हुए हैं। सृमर (एक प्रकारके मृग) और उल्लू भी सर्वत्र सानन्द विचरते हैं ॥ ३६-३७ ॥

व्रजेषु च विशेषेण गर्गरोद्गारहासिषु ।
शरत्प्रकाशयोषेव गोष्ठेष्वटति रूपिणी ॥ ३८ ॥

'दूध-दहीके माटों या घड़ोंसे जो माखन आदि ढाले जाते हैं, वे ही जिनकी हँसी हैं, उन व्रजों एवं गोष्ठोंमें तो यह शरद् ऋतु मूर्तिमती सुन्दरी युवतीकी भाँति घूम रही है ॥ ३८ ॥

नूनं त्रिदशभूयिष्ठं मेघकालसुखोषितम् ।
पतत्त्रिकेतनं देवं बोधयन्ति दिवौकसः ॥ ३९ ॥

'निश्चय ही देवतालोग इस समय देवश्रेष्ठ भगवान् गरुडध्वजको, जो वर्षाकालमें सुखपूर्वक शयन कर चुके हैं, जगा रहे हैं ॥ ३९ ॥

शरद्येवं सुसस्यायां प्राप्तायां प्रावृषः क्षये ।
नीलचन्द्रार्कवर्णैश्च रचितं बहुभिर्द्विजैः ॥ ४० ॥
फलैः प्रवालैश्च घनमिन्द्रचापघनोपमम् ।
भवनाकारविटपं लतापरममण्डितम् ॥ ४१ ॥
विशालमूलावनतं पवनाभोगमण्डितम् ।
अर्चयामो गिरिं देवं गाश्चैव च विशेषतः ॥ ४२ ॥

'वर्षा बीत जानेपर ऐसी सुन्दर खेतीसे सुशोभित शरद् ऋतुका शुभागमन हुआ है। इस समय (मेघके समान) नीले, चन्द्रमाके समान श्वेत तथा सूर्यके सदृश सुनहरे रंगवाले बहुत-से पक्षियोंने जिसे बहुरंगा बना दिया है, जो विविध प्रकारके फलों और नूतन पल्लवोंसे घना हो रहा है और इसलिये जो इन्द्रधनुषसे युक्त श्याम मेघकी-सी शोभा धारण करता है, जिसके वृक्षोंकी एक-एक शाखा घरके समान जान पड़ती है, जो लता और वल्लरियोंसे भलीभाँति अलंकृत है, जिसका विशाल मूलभाग बहुत दूरतक फैला हुआ है तथा जो वायुके विस्तारसे सुशोभित होता है, वह गोवर्धन पर्वत ही हमारा देवता है। हम उसकी तथा इन गौओंकी विशेष रूपसे पूजा करें ॥ ४०—४२ ॥

सावतंसैर्विषाणैश्च बर्हापीडैश्च दंशितैः ।
घण्टाभिश्च प्रलम्बाभिः पुष्पैः शारदिकैस्तथा ॥ ४३ ॥
शिवाय गावः पूज्यन्तां गिरियज्ञः प्रवर्त्यताम् ।
पूज्यतां त्रिदशैः शक्रो गिरिरस्माभिरिज्यताम् ॥ ४४ ॥

'गायोंके सींगोंमें मुकुट और मोरपंखके समान बने हुए आभूषण बाँधे जायँ। उनके गलेमें बड़ी घंटियाँ लटका दी जायँ और व्रजके कल्याणके लिये शरद्में सुलभ होनेवाले पुष्पोंद्वारा गौओंकी पूजा की जाय। साथ ही 'गिरियज्ञ' आरम्भ कर दिया जाय। देवतालोग इन्द्रकी पूजा करें और हमलोग गिरिराज गोवर्धनकी ॥ ४३-४४ ॥

कारयिष्यामि गोयज्ञं बलादपि न संशयः ।
यद्यस्ति मयि वः प्रीतिर्यदि वा सुहृदो वयम् ।
गावो हि पूज्याः सततं सर्वेषां नात्र संशयः ॥ ४५ ॥

'यदि आपलोगोंका मुझपर प्रेम है और यदि हमलोग एक दूसरेके हितैषी सुहृद् हैं तो मैं आपके द्वारा हठ एवं बलपूर्वक गोयज्ञ कराऊँगा। गौएँ सदा ही सबके लिये पूजनीय हैं—इसमें संशय नहीं है ॥ ४५ ॥

यदि साम्ना भवेत् प्रीतिर्भवतां वैभवाय च ।
एतन्मम वचस्तथ्यं क्रियतामविचारितम् ॥ ४६ ॥

'यदि मेरे समझानेसे आपको प्रसन्नता होती हो तो आपलोग अपने ही वैभव (अभ्युदय) के लिये मेरी इस सच्ची बातको बिना विचारे मान लें और इसके अनुसार कार्य करें' ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि शरद्वर्णने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें शरद्वर्णनविषयक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

गोपोंद्वारा श्रीकृष्णकी बातको स्वीकार करके गिरियज्ञका अनुष्ठान तथा भगवान्का दिव्य रूप धारण करके उनकी पूजा ग्रहण करनेके पश्चात् उन्हें वर देना

वैशम्पायन उवाच

दामोदरवचः श्रुत्वा हृष्टास्ते गोषु जीविनः ।
तद्वागमृतमासाद्य प्रत्यूचुरविशङ्कया ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! दामोदर (श्रीकृष्ण) की बात सुनकर गौओंपर ही अपनी जीविका निर्भर करनेवाले वे गोपगण प्रसन्नतापूर्वक उनके वचनामृतका आस्वादन करके निःशङ्क होकर बोले—॥ १ ॥

त्वयैषा बाल महती गोपानां हितवर्द्धिनी ।
प्रीणयत्येव नः सर्वान् बुद्धिर्वृद्धिकरी गवाम् ॥ २ ॥

'हमारे बाल-गोपाल ! तुम्हारी यह बुद्धि—यह विचार-धारा महत्त्वपूर्ण होनेके साथ ही गोपोंके लिये हितकर तथा गौओंकी वृद्धि करनेवाली है । यह हम सब लोगोंको तृप्ति ही प्रदान करती है ॥ २ ॥

त्वं गतिस्त्वं रतिश्चैव त्वं वेत्ता त्वं परायणम् ।
भयेष्वभयदस्त्वं नस्त्वमेव सुहृदां सुहृत् ॥ ३ ॥

'तुम्हीं हमारी गति हो, तुम्हीं रति (आनन्द) हो, तुम्हीं सर्वज्ञ और तुम्हीं हमारे सबसे बड़े आश्रय हो । भयके अवसरोंपर तुम्हीं हमें अभय देनेवाले हो तथा तुम्हीं हमारे लिये सुहृदोंके भी सुहृद् हो ॥ ३ ॥

त्वत्कृते कृष्ण घोषोऽयं क्षेमी मुदितगोकुलः ।
कृत्स्नो वसति शान्तारिर्यथा स्वर्गे गतस्तथा ॥ ४ ॥

'श्रीकृष्ण ! तुम्हारे कारण ही यह गोष्ठ सकुशल है । यहाँकी गौओंका समुदाय प्रसन्न है । सारे शत्रु शान्त हो गये हैं तथा समस्त व्रज, जैसे स्वर्गमें रह रहा हो, इस तरह यहाँ सुखपूर्वक निवास करता है ॥ ४ ॥

जन्मप्रभृति कर्मैतद् देवैरसुकरं भुवि ।
बोद्धव्याच्चाभिमानाच्च विस्मितानि मनांसि नः ॥ ५ ॥

'जन्मकालसे ही तुमने जो यह शकट-भंग और पूतना-वध आदि कार्य किया है, यह इस भूतलपर देवताओंके लिये भी सुकर नहीं है । यह सब देखकर तथा समझमें आने योग्य तुम्हारा जो अभिमानपूर्ण वचन है (कि मैं बलपूर्वक गो-यज्ञ आदि कराऊँगा), उसपर ध्यान देकर हमारे चित्त चकित हो उठे हैं ॥ ५ ॥

बलेन च परार्ध्येन यशसा विक्रमेण च ।
उत्तमस्त्वं मनुष्येषु देवेष्विव पुरंदरः ॥ ६ ॥

'तुम अपने परम उत्कृष्ट बल, सुयश और पराक्रमद्वारा मनुष्योंमें सबसे उत्तम हो । ठीक उसी तरह जैसे देवताओंमें इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ६ ॥

प्रतापेन च तीक्ष्णेन दीप्त्या पूर्णतयापि च ।
उत्तमस्त्वं च मर्त्येषु देवेष्विव दिवाकरः ॥ ७ ॥

'तुम अपने तीक्ष्ण प्रताप, अनुपम दीप्ति तथा पूर्णताकी दृष्टिसे भी मनुष्योंमें उसी प्रकार सर्वश्रेष्ठ हो, जैसे देवताओंमें दिवाकर (सूर्य) ॥ ७ ॥

कान्त्या लक्ष्म्या प्रसादेन वदनेन स्मितेन च ।
उत्तमस्त्वं च मर्त्येषु देवेष्विव निशाकरः ॥ ८ ॥

'मनोरम कान्ति, शोभा-सम्पत्ति, प्रसाद, सुन्दर मुख और मुसकराहटके कारण भी तुम देवताओंमें चन्द्रमाकी भाँति मनुष्योंमें सबसे उत्तम हो ॥ ८ ॥

बलेन वपुषा चैव बाल्येन चरितेन च ।
स्यात् ते शक्तिधरस्तुल्यो न तु कश्चन मानुषः ॥ ९ ॥
यत् त्वयाभिहितं वाक्यं गिरियज्ञं प्रति प्रभो ।
कस्तल्लङ्घयितुं शक्तो वेलामिव महोदधिः ॥ १० ॥

'बल, शरीर, बचपन और मनोहर चरित्रकी दृष्टिसे भी तुम्हारे समान शक्तिशाली मनुष्य दूसरा कोई नहीं है । प्रभो ! तुमने गिरियज्ञके विषयमें जो बात कही है, उसका उल्लङ्घन कौन कर सकता है ? क्या महासागर कभी तटभूमिको लाँघ सका है ॥ ९-१० ॥

स्थितः शक्रमहस्तात श्रीमान् गिरिमहस्त्वयम् ।
त्वत्प्रणीतोऽद्य गोपानां गवां हेतोः प्रवर्त्यताम् ॥ ११ ॥

'तात ! आजसे इन्द्र-यागका उत्सव स्थगित हो गया ।

अब यह शोभासम्पन्न गिरियज्ञ, जिसे तुमने चालू किया है, गौओं और गोपोंके हितके लिये सम्पादित हो ॥ ११ ॥

भाजनान्युपकल्प्यन्तां पयसः पेशलानि च।
कुम्भाश्च विनिवेश्यन्तामुदपानेषु शोभनाः ॥ १२ ॥
पूर्यन्तां पयसा नद्यो द्रोण्यश्च विपुलायताः।
भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च तत् सर्वमुपनीयताम् ॥ १३ ॥
भाजनानि च मांसस्य न्यस्यन्तामोदनस्य च।
त्रिरात्रं चैव संदोहः सर्वघोषस्य गृह्यताम् ॥ १४ ॥
विशस्यन्तां च पशवो भोज्या ये महिषादयः।
प्रवर्त्यतां च यज्ञोऽयं सर्वगोपसुसंकुलः ॥ १५ ॥

'दूधसे भरे हुए सुन्दर-सुन्दर पात्र एकत्र किये जायँ। कुओंपर सुन्दर-सुन्दर घड़े स्थापित किये जायँ। नयी बनायी हुई नहरों तथा बड़े-बड़े कुण्डोंको दूधसे भर दिया जाय। भक्ष्य-भोज्य और पेय सब कुछ तैयार कर लिया जाय। फल-के गूदों तथा भातसे भरे हुए पात्र रखे जायँ। सारे व्रजका तीन दिनोंका सारा दूध संगृहीत कर लिया जाय। भोजन करानेयोग्य जो भैंस-गाय आदि व्रजके पशु हैं, उन्हें बड़े आदरके साथ उत्तमोत्तम पदार्थ खिलाये जायँ और इस प्रकार समस्त गोपोंके सहयोगसे सम्पन्न होनेवाले इस यज्ञका आरम्भ हो' ॥ १२–१५ ॥

आनन्दजननो घोषो महान् मुदितगोकुलः।
तूर्यप्रणादघोषैश्च वृषभाणां च गर्जितैः ॥ १६ ॥
हम्भारवैश्च वत्सानां गोपानां हर्षवर्धनः।

फिर तो व्रजमें आनन्दजनक महान् कोलाहल होने लगा। सारा गोकुल हर्षोल्लासमें मग्न हो गया। वाद्योंके गम्भीर घोष, साँड़ोंकी गर्जना और बछड़ोंके रँभानेसे जो सम्मिलित शब्द प्रकट हुआ, वह गोपोंका हर्ष बढ़ाने लगा ॥

दध्नो ह्रदो घृतावर्तः पयःकुल्यासमाकुलः ॥ १७ ॥
मांसराशिः प्रभूताढ्यः प्रकाशौदनपर्वतः।
सम्प्रावर्तत यज्ञोऽस्य गिरेर्गोभिः समाकुलः।
तुष्टगोपजनाकीर्णो गोपनारीमनोहरः ॥ १८ ॥

दहीके कुण्डमें ऊपर-ऊपर घी छा रहा था। दूधकी अनेकों नहरें बहने लगीं। फलोंके गूदोंकी बड़ी भारी राशि जमा हो गयी। बहुत-से संस्कारक द्रव्य संचित हो गये और उज्ज्वल भातोंका पर्वताकार पुञ्ज प्रकाशित होने लगा। इस प्रकार गौओंसे भरा हुआ श्रीकृष्णका गिरियज्ञ चालू हो गया। संतुष्ट हुए समस्त गोपगण उसमें सम्मिलित होकर आवश्यक कार्य करते थे। गोपाङ्गनाओंने अपनी उपस्थितिसे उस महोत्सवको मनोहर बना दिया था ॥ १७-१८ ॥

भक्ष्याणां राशयस्तत्र शतशश्चोपकल्पिताः।
गन्धमाल्यैश्च विविधैर्धूपैरुच्चावचैस्तथा ॥ १९ ॥

वहाँ भक्ष्य पदार्थोंके सैकड़ों ढेर लगाये गये थे। नाना प्रकारके गन्ध, माल्य तथा भाँति भाँतिके धूपोंसे वह यज्ञ सुशोभित होता था ॥ १९ ॥

अथाधिश्रृतपर्यन्ते सम्प्राप्ते यज्ञसंविधौ।
यज्ञं गिरेस्तिथौ सौम्ये चक्रुर्गोपा द्विजैः सह ॥ २० ॥

अग्निके समीप जो आज्यस्थाली और चरुस्थाली आदि रखी गयी थीं, वे उस यज्ञका विधान आरम्भ होते ही आग-पर चढ़ा दी गयीं। ब्राह्मणोंसहित गोपोंने किसी शुभ तिथिको उस यज्ञका अनुष्ठान आरम्भ किया था ॥ २० ॥

यजनान्ते तदन्नं तु तत् पयो दधि चोत्तमम्।
मांसं च मायया कृष्णो गिरिर्भूत्वा समश्नुते ॥ २१ ॥

यज्ञके अन्तमें श्रीकृष्ण स्वयं ही मायासे पर्वतके अधिष्ठाता देवता बनकर उस अन्न, दूध, दही और फलोंके गूदोंका भोग लगाने लगे ॥ २१ ॥

तर्पिताश्चापि विप्राग्र्यास्तुष्टाः सम्पूर्णमानसाः।
उत्तस्थुः प्रीतमनसः स्वस्ति वाच्यं यथासुखम् ॥ २२ ॥

उस यज्ञमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको अन्न-पानसे तृप्त और दक्षिणा-से संतुष्ट किया गया था। उन सबके मनोरथ पूर्ण हो गये थे। वे सुखपूर्वक स्वस्तिवाचन करके प्रसन्नचित्त होकर उठे थे ॥ २२ ॥

भुक्त्वा चावभृथे कृष्णः पयः पीत्वा च कामतः।
संतृप्तोऽस्मीति दिव्येन रूपेण प्रजहास वै ॥ २३ ॥

यज्ञान्तस्नानके समय गिरिदेवके रूपमें प्रकट हुए श्रीकृष्ण अपनेको अर्पित किये गये भोज्य-पदार्थोंको खाकर और इच्छानुसार दूध पीकर बोले—'मैं पूर्णतः तृप्त हो गया।' ऐसा कहकर वे उस दिव्यरूपके द्वारा जोर-जोरसे हँसने लगे ॥

तं गोपाः पर्वताकारं दिव्यस्रगनुलेपनम्।
गिरिमूर्ध्नि स्थितं दृष्ट्वा कृष्णं जग्मुः प्रधानतः ॥ २४ ॥

दिव्य माला और अनुलेप धारण किये उन पर्वताकार देवताको पर्वतके शिखरपर खड़ा देख सब लोगोंने उन्हें प्रधानतः श्रीकृष्ण ही समझकर उनकी शरण ली ॥ २४ ॥

भगवानपि तेनैव रूपेणाच्छादितः प्रभुः।
सहितैः प्रणतो गोपैर्ववन्दात्मानमात्मना ॥ २५ ॥

प्रभावशाली भगवान् श्रीकृष्णने भी उसी रूपसे अपनेको छिपाये रखकर वहाँ एकत्र हुए गोपोंके साथ नतमस्तक हो स्वयं ही अपने-आपको प्रणाम किया ॥ २५ ॥

तमूचुर्विस्मिता गोपा देवं गिरिवरे स्थितम्।
भगवंस्त्वद्वशे युक्ता दासाः किं कुर्म किङ्कराः ॥ २६ ॥

गिरिराजके शिखरपर खड़े हुए उन पर्वत देवतासे समस्त गोपोंने विस्मित होकर कहा—'भगवन्! हम आपके वशमें हैं, आपके दास एवं सेवक हैं, बताइये! हम आपकी क्या सेवा करें' ॥ २६ ॥

स उवाच ततो गोपान् गिरिप्रभवया गिरा।
अद्यप्रभृति चेज्योऽहं गोषु यद्यस्तु वो दया ॥ २७ ॥

तब उन्होंने पर्वतसे प्रकट हुई वाणीद्वारा उन गोपोंसे कहा—'यदि तुमलोगोंमें दयाभाव विद्यमान हो, तो आजसे तुम्हें गौओंके भीतर मेरी पूजा करनी चाहिये ॥ २७ ॥

अहं वः प्रथमो देवः सर्वकामकरः शुभः।
मम प्रभावाच्च गवामयुतान्येव भोक्ष्यथ ॥ २८ ॥

'मैं तुमलोगोंका प्रथम देवता हूँ, तुम्हारी सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला और शुभचिन्तक हूँ। तुम मेरे प्रभावसे दस हजार गौओंके स्वामी एवं (उनके दूध-दही आदिके) उपभोक्ता बने रहोगे ॥ २८ ॥

शिवश्च वो भविष्यामि मद्भक्तानां वने वने।
रंस्ये च सह युष्माभिर्यथा दिविगतस्तथा ॥ २९ ॥

'मुझमें भक्ति रखनेवाले तुम गोपोंके लिये मैं प्रत्येक वनमें कल्याणकारी होऊँगा और तुमलोगोंके साथ मैं उसी प्रकार आनन्दपूर्वक रहूँगा, जैसे दिव्य धाममें रहा करता हूँ॥

ये चेमे प्रथिता गोपा नन्दगोपपुरोगमाः।
एषां प्रीतः प्रयच्छामि गोपानां विपुलं धनम् ॥ ३० ॥

'ये जो नन्द आदि विख्यात गोप हैं, मैं प्रसन्न होकर इन सबको प्रचुर धन-सम्पत्ति प्रदान करूँगा ॥ ३० ॥

पर्याप्नुवन्तु क्षिप्रं मां गावो वत्ससमाकुलाः।
एवं मम परा प्रीतिर्भविष्यति न संशयः ॥ ३१ ॥

'अब बछड़ोंसहित गौएँ शीघ्र मेरी परिक्रमा करें। इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी, इसमें संशय नहीं है' ॥ ३१ ॥

ततो नीराजनार्थं हि वृन्दशो गोकुलानि तम्।
परिवव्रुर्गिरिवरं सवृषाणि समन्ततः ॥ ३२ ॥

फिर तो झुंड-की-झुंड गौएँ साँड़ोंके साथ आकर परिक्रमाके लिये गिरिराजको सब ओरसे घेरकर खड़ी हो गयीं ॥

ता गावः प्रद्रुता हृष्टाः सापीडस्तबकाङ्गदाः।
सस्रजापीडशृङ्गाग्राः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३३ ॥

उनके मस्तकपर फूलोंके आभूषण बँधे हुए थे, चारों पैरोंमें पुष्पगुच्छोंके ही बने हुए बाजूबंद पहनाये गये थे, सींगोंके अग्रभागमें फूलोंके गजरे और शिरोभूषण शोभा पा रहे थे, ऐसी सैकड़ों और हजारों गौएँ हर्षमें भरकर एक साथ परिक्रमाके पथपर दौड़ीं ॥ ३३ ॥

अनुजग्मुश्च गोपालाः कालयन्तो धनानि च।
भक्तिच्छेदानुलिप्ताङ्गा रक्तपीतसिताम्बराः ॥ ३४ ॥

गोपगण अपने उन गोधनोंको हाँकते हुए उनके पीछे-पीछे चले। उन गोपोंके विभिन्न अङ्गोंमें विभागपूर्वक नाना रंगोंके अनुलेप लगे थे। वे लाल, पीले और सफेद कपड़ोंसे सुशोभित थे ॥ ३४ ॥

मयूरचित्राङ्गदिनो भुजैः प्रहरणावृतैः।
मयूरपत्रवृन्तानां केशबन्धैः सुयोजितैः ॥ ३५ ॥
बभ्राजुरधिकं गोपाः समवाये तदाद्भुते।

उनकी भुजाओंमें मोरपत्रके विचित्र बाजूबंद बँधे हुए थे और उन्हीं हाथोंमें डंडे भी शोभा पा रहे थे। उनके सुन्दर ढंगसे बँधे हुए केशोंमें मोरपंखके वृन्त खोंसे गये थे। इन सबके कारण उस अद्भुत समुदाय या मेलेमें उन गोपोंकी अधिक शोभा हो रही थी ॥ ३५½ ॥

अन्ये वृषानारुरुहुर्नृत्यन्ति स्म परे मुदा ॥ ३६ ॥
गोपालास्त्वपरे गाश्च जगृहुर्वेगगामिनः।

कुछ अन्य गोप बैलोंपर चढ़े थे। दूसरे ग्वाले हर्षमें भरकर नाच रहे थे तथा अन्य बहुत-से गोपाल वेगपूर्वक भागी जाती हुई गौओंको पकड़ते थे ॥ ३६½ ॥

तस्मिन् पर्यायनिर्वृत्ते गवां नीराजनोत्सवे ॥ ३७ ॥
अन्तर्धानं जगामाशु तेन देहेन सोऽचलः।

गौओंद्वारा नीराजना (परिक्रमा) का वह उत्सव बारी-बारीसे सम्पन्न हो जानेपर वे पर्वतदेवता अपने उस दिव्य शरीरसे शीघ्र ही अन्तर्धान हो गये ॥ ३७½ ॥

कृष्णोऽपि गोपसहितो विवेश व्रजमेव ह ॥ ३८ ॥
गिरियज्ञप्रवृत्तेन तेनाश्चर्येण विस्मिताः।
गोपाः सबालवृद्धा वै तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ॥ ३९ ॥

इधर श्रीकृष्ण भी गोपोंके साथ व्रजमें ही चले गये। गिरियज्ञके अनुष्ठानसे प्राप्त हुए उस महान् आश्चर्यसे चकित हो बालकों और वृद्धोंसहित सम्पूर्ण गोप मधुसूदन श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे ॥ ३८-३९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि गिरियज्ञप्रवर्तने सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें गिरियज्ञका अनुष्ठानविषयक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

* * *

अष्टादशोऽध्यायः

इन्द्रका संवर्तक मेघोंद्वारा वर्षा कराकर गौओं और गोपोंको कष्टमें डालना, श्रीकृष्णद्वारा गोवर्धनधारण तथा उसके नीचे गौओं और गोपोंसहित व्रजवासियोंका जाना

वैशम्पायन उवाच

मखे प्रतिहते शक्रः सक्रोधस्त्रिदशेश्वरः।
संवर्तकं नाम गणं तोयदानामथाब्रवीत् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! अपना उत्सव रोक दिये जानेके कारण देवराज इन्द्रको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने मेघोंके संवर्तक नामक गणको बुलाकर इस प्रकार कहा—॥ १॥

भो बलाहकमातङ्गाः श्रूयतां मम भाषितम् ।
यदि वो मत्प्रियं कार्यं राजभक्तिपुरस्कृतम् ॥ २ ॥

'मतवाले हाथियोंके समान श्रेष्ठ मेघगण ! यदि तुम्हें राजभक्तिको सामने रखते हुए मेरा प्रिय कार्य करना उचित जान पड़े, तो मेरी यह बात सुनो ॥ २ ॥

एते वृन्दावनगता दामोदरपरायणाः ।
नन्दगोपादयो गोपा विद्विषन्ति ममोत्सवम् ॥ ३ ॥

'ये वृन्दावनमें गये हुए जो नन्द आदि गोप हैं, वे दामोदर श्रीकृष्णको ही सबसे बड़ा सहारा मानकर मेरे उत्सवसे द्वेष रखने लगे हैं ॥ ३ ॥

आजीवो यः परस्तेषां गोपत्वं च यतः स्मृतम् ।
ता गावः सप्तरात्रेण पीड्यन्तां वर्षमारुतैः ॥ ४ ॥

'अतः मेरी आज्ञा है कि उन गोपोंकी जो सबसे बड़ी आजीविका है तथा जिनका पालन करनेके कारण उनका गोपत्व सार्थक माना गया है, नन्द आदिकी उन गौओंको तुम लगातार सात रातोंतक भारी वर्षा और वायुके द्वारा पीड़ित करो ॥ ४ ॥

ऐरावतगतश्चाहं स्वयमेवाम्बु दारुणम् ।
स्रक्ष्यामि वृष्टिं वातं च वज्राशनिसमप्रभम् ॥ ५ ॥

'मैं भी ऐरावतपर आरूढ़ हो चलता हूँ और स्वयं ही वज्र एवं बिजलीके साथ-साथ प्रकाशित होनेवाले भयानक जलकी वर्षा एवं वायुकी सृष्टि करूँगा ॥ ५ ॥

भवद्भिश्चण्डवर्षेण चरता मारुतेन च ।
हतास्ताः सव्रजा गावस्त्यक्ष्यन्ति भुवि जीवितम् ॥ ६ ॥

'तुमलोग प्रचण्ड वायुके साथ विचरते हुए जब घोर वर्षा करोगे, तब उससे आहत एवं पीड़ित हुई गौएँ भूतलपर व्रजवासियोंसहित अपने प्राण त्याग देंगी' ॥ ६ ॥

एवमाज्ञापयामास सर्वाञ्जलधरान् प्रभुः ।
प्रत्याहते वै कृष्णेन शासने पाकशासनः ॥ ७ ॥

श्रीकृष्णद्वारा अपने उत्सव एवं शासनका विघात हो जानेपर प्रभावशाली पाकशासन इन्द्रने समस्त जलधरोंको इस प्रकार अपनी आज्ञा सुना दी ॥ ७ ॥

ततस्ते जलदाः कृष्णा घोरनादा भयावहाः ।
आकाशं छादयामासुः सर्वतः पर्वतोपमाः ॥ ८ ॥

तब वे घोर गर्जना करनेवाले पर्वताकार भयंकर काले मेघ आकाशमें सब ओर छा गये ॥ ८ ॥

विद्युत्सम्पातजननाः शक्रचापविभूषिताः ।
तिमिरावृतमाकाशं चक्रुस्ते जलदास्तदा ॥ ९ ॥

उस समय इन्द्रधनुषसे विभूषित हो बिजली गिराते हुए उन मेघोंने आकाशको अन्धकारपूर्ण कर दिया ॥ ९ ॥

गजा इवान्यसंयुक्ताः केचिन्मकरवर्चसः ।
नागा इवान्ये गगने चेरुर्जलदपुङ्गवाः ॥ १० ॥

कुछ मेघ दूसरे हाथियोंसे सटकर चलते हुए हाथियोंके समान प्रतीत होते थे । दूसरे मगरोंके समान प्रकाशित होते थे तथा अन्य बड़े-बड़े बादल आकाशमें नागोंके समान विचरने लगे ॥ १० ॥

तेऽन्योन्यं वपुषा बद्धा नागयूथायुतोपमाः ।
दुर्दिनं विपुलं चक्रुश्छादयन्तो नभस्तलम् ॥ ११ ॥

जैसे हजारों हाथियोंके झुंड एक दूसरेसे अपने शरीरको आबद्ध करके चल रहे हों, वैसे ही प्रतीत होनेवाले उन जलधरोंने आकाशको आच्छादित करके वहाँ बड़ा भारी दुर्दिन उपस्थित कर दिया ॥ ११ ॥

नृहस्तनागहस्ताभ्यां वेणूनां चैव सर्वतः ।
धाराभिस्तुल्यरूपाभिर्ववृषुस्ते बलाहकाः ॥ १२ ॥

मनुष्योंके हाथ, हाथियोंके शुण्डदण्ड तथा बाँसके तुल मोटी धाराएँ प्रकट करके वे मेघ वहाँ सब ओर वर्षा करने लगे ॥ १२ ॥

समुद्रं मेनिरे तं हि खमारूढं नृचक्षुषः ।
दुर्विगाह्यमपर्यन्तमगाधं दुर्दिनं महत् ॥ १३ ॥

मनुष्योंकी आँखोंने आकाशमें छाये हुए उस दुरवगाह अनन्त अगाध एवं महान् दुर्दिनको समुद्रके समान ही माना ॥ १३ ॥

नैवापतन् वै खगमा दुद्रुवुर्मृगजातयः ।
पर्वताभेषु मेघेषु खे नन्दत्सु समन्ततः ॥ १४ ॥

आकाशमें चारों ओर पर्वताकार मेघ गर्जना कर रहे थे। उस समय पक्षियोंने उड़ना बंद कर दिया तथा विभिन्न जातिके पशु इधर-उधर भागने लगे ॥ १४ ॥

नष्टसूर्येन्दुसदृशैर्मेघैर्नभसि दारुणैः ।
अतिवृष्टेन लोकस्य विरूपमभवद् वपुः ॥ १५ ॥

चन्द्रमा और सूर्यको भी नष्ट कर देनेवाले प्रलयकालके समान आकाशमें छाये हुए उन भयंकर मेघोंने अपनी अतिवृष्टिके कारण समस्त पार्थिव जगत्के रूपको विकृत कर दिया ॥ १५ ॥

मेघौघैर्निष्प्रभाकारमदृश्यग्रहतारकम् ।
चन्द्रसूर्यांशुरहितं खं बभूवातिनिष्प्रभम् ॥ १६ ॥

मेघोंकी घटाएँ घिर आनेसे व्योम-मण्डल प्रभाशून्य हो गया। ग्रह और तारे दृष्टिपथसे ओझल हो गये। चन्द्रमा और सूर्यकी किरणोंका पता नहीं चलता था । अतः सारा आकाश अन्धकारसे आच्छन्न हो गया ॥ १६ ॥

वारिणा मेघमुक्तेन मुच्यमानेन चासकृत् ।
आबभौ सर्वतस्तत्र भूमिस्तोयमयी यथा ॥ १७ ॥

मेघोंके बरसाये हुए तथा बारंबार बरसाये जाते हुए जलसे आवृत हो वहाँ सब ओरकी भूमि जलमयी-सी प्रतीत होने लगी ॥ १७ ॥

विनेदुर्बर्हिणस्तत्र तोककल्परुताः खगाः ।
विवृद्धिं निम्नगा याताः प्लवगाः सम्प्लवं गताः ॥ १८ ॥

उस समय वहाँ मोर जोर-जोरसे बोलने लगे । पक्षियोंकी आवाज बहुत कम हो गयी । नदियोंमें बाढ़ आ गयी और किनारेके वृक्ष प्रवाहमें बह गये ॥ १८ ॥

गर्जितेन च मेघानां पर्जन्यनिनदेन च ।
तर्जितानीव कम्पन्ते तृणानि तरुभिः सह ॥ १९ ॥

मेघोंकी गर्जना तथा पर्जन्यदेवके गम्भीर नादसे डाँटे गयेकी भाँति वृक्षोंसहित तृण काँपने लगे ॥ १९ ॥

प्राप्तोऽन्तकालो लोकानां व्यक्तमेकार्णवा मही ।
इति गोपगणा वाक्यं व्याहरन्ति भयार्दिताः ॥ २० ॥

उस समय भयसे पीड़ित हुए गोप आपसमें कहने लगे कि 'निश्चय ही समस्त लोकोंका अन्तकाल आ पहुँचा है और पृथ्वी एकार्णवमें मग्न हो रही है' ॥ २० ॥

तेनोत्पाताम्बुवर्षेण गावो विप्रहता भृशम् ।
हम्भारवैः क्रन्दमाना न चेलुः स्तम्भितोपमाः ॥ २१ ॥

उस उत्पातस्वरूप जलकी भारी वर्षासे अत्यन्त ताड़ित एवं पीड़ित हुई गौएँ रँभानेकी ध्वनिमें करुणक्रन्दन करती हुई हिल-डुल भी न सकीं । ऐसा जान पड़ता था, उनके सारे अङ्ग अकड़ गये हैं ॥ २१ ॥

निष्कम्पसक्थिचरणा निष्प्रयत्नखुराननाः ।
हृष्टरोमार्द्रतनवः क्षामकुक्षिपयोधराः ॥ २२ ॥

उनकी जाँघें और पैर हिल नहीं पाते थे, खुर और मुख निश्चेष्ट थे, भीगे हुए शरीरमें रोंगटे खड़े हो गये थे और पेट तथा थन अत्यन्त दुबले होकर सिकुड़ गये थे ॥ २२ ॥

काश्चित् प्राणाञ्जहुः श्रान्ता निपेतुः काश्चिदातुराः ।
काश्चित्सवत्साः पतिता गावः शीकरवेजिताः ॥ २३ ॥

कुछ गौओंने पीड़ासे श्रान्त होकर अपने प्राण त्याग दिये । कुछ आतुर होकर गिर पड़ीं और कितनी ही गौएँ जलके छींटोंसे उद्विग्न होकर बछड़ोंसहित धराशायिनी हो गयीं ॥ २३ ॥

काश्चिदाक्रम्य क्रोडेन वत्सांस्तिष्ठन्ति मातरः ।
विमुखाः श्रान्तसक्थ्यश्च निराहाराः कृशोदराः ।
पेतुरार्ता वेपमाना गावो वर्षपराजिताः ॥ २४ ॥

कुछ गौमाताएँ बछड़ोंको अपने अङ्कमें छिपाकर खड़ी थीं, कितनी ही बछड़ोंकी ओरसे विमुख हो गयी थीं, उनकी जाँघें शिथिल हो रही थीं, कुछ दाना-घास न मिलनेके कारण उनके पेट भीतरको धँस गये थे । वर्षासे परास्त होकर पीड़ित हुई गौएँ थर-थर काँपती हुई पृथ्वीपर गिर पड़ती थीं ॥ २४ ॥

वत्साश्चोन्मुखका बाला दामोदरमुखाः स्थिताः ।
त्राहीति वदनैर्दीनैः कृष्णमूचुरिवार्दिताः ॥ २५ ॥

छोटे-छोटे बछड़े मुँह ऊपर उठाकर दामोदरकी ओर देखते हुए खड़े थे, मानो वे पीड़ित बछड़े अपने दीन मुखोंसे श्रीकृष्णको सम्बोधित करके कह रहे थे कि 'प्रभो ! हमारी रक्षा कीजिये' ॥ २५ ॥

गवां तत् कदनं दृष्ट्वा दुर्दिनागमजं महत् ।
गोपांश्चासन्ननिधनान् कृष्णः कोपं समादधे ॥ २६ ॥

इस दुर्दिनके आनेसे गौओंका वह महासंहार होता देख और गोपोंको भी मौतके निकट पहुँचा हुआ जान श्रीकृष्णने इन्द्रके प्रति महान् कोप धारण किया ॥ २६ ॥

स चिन्तयित्वा संरब्धो दृष्टो योगो मयेति च ।
आत्मानमात्मना वाक्यमिदमूचे प्रियंवदः ॥ २७ ॥

प्रिय वचन बोलनेवाले श्रीकृष्णने कुछ देर सोच-विचारकर रोषावेशसे युक्त हो स्वयं ही अपने-आपसे इस प्रकार कहा—'इस वर्षासे बचनेका उपाय मैंने देख लिया ॥ २७ ॥

अद्याहमिममुत्पाट्य सकाननवनं गिरिम् ।
कल्पयेयं गवां स्थानं वर्षत्राणाय दुर्धरम् ॥ २८ ॥

'आज मैं वन और काननोंसहित इस दुर्धर गोवर्धन पर्वतको उखाड़कर गौओंको वर्षासे बचानेके लिये सुरक्षित स्थानका निर्माण करूँगा ॥ २८ ॥

अयं धृतो मया शैलः पृथ्वीगृहनिभोपमः ।
त्रास्यते सव्रजा गा वै मद्वश्यश्च भविष्यति ॥ २९ ॥

'मेरे द्वारा धारण किया हुआ यह पर्वत पृथ्वीपर बने हुए घरके समान होकर व्रजसहित समूची गौओंका परित्राण करेगा और मेरे अधीन हो जायगा' ॥ २९ ॥

एवं स चिन्तयित्वा तु कृष्णः सत्यपराक्रमः ।
बाह्वोर्बलं दर्शयिष्यन् समीपं तं महीधरम् ।
दोर्भ्यामुत्पाटयामास कृष्णो गिरिरिवापरः ॥ ३० ॥

इस प्रकार सोच-विचारकर सत्यपराक्रमी श्रीकृष्णने अपनी दोनों भुजाओंका बल दिखाते हुए उस निकटवर्ती पर्वतको दोनों हाथोंसे पकड़कर उखाड़ लिया । उस समय श्रीकृष्ण दूसरे पर्वतके समान ही जान पड़ते थे ॥ ३० ॥

स धृतः संगतो मेघैर्गिरिः सव्येन पाणिना ।
गृहभावं गतस्तत्र गृहाकारेण वर्चसा ॥ ३१ ॥

भगवान्‌के बायें हाथसे धारण किया गया और मेघोंसे सटा हुआ वह पर्वत उनके गृहाकारक तेज या संकल्पसे वहाँ गृहभावको प्राप्त हो गया ॥ ३१ ॥

भूमेरुत्पाट्यमानस्य तस्य शैलस्य सानुषु।
शिलाः प्रशिथिलाश्चेलुर्विनिष्पेतुश्च पादपाः ॥ ३२ ॥

जिस समय वह पर्वत पृथ्वीसे उखाड़ा जाने लगा, उस समय उसके शिखरोंपर जो टूटी-फूटी शिलाएँ थीं, वे खिसककर गिरने लगीं और बहुत-से वृक्ष भी धराशायी हो गये ॥ ३२ ॥

शिखरैर्घूर्णमानैश्च सीदमानैश्च पादपैः।
विधूतैश्चोच्छ्रितैः शृङ्गैरगमः खगमोऽभवत् ॥ ३३ ॥

उस समय चक्कर काटते हुए शिखरों, खण्डित होते हुए वृक्षों तथा काँपती हुई ऊँची चोटियोंके कारण वह अविचल पर्वत आकाशचारी पक्षीके समान प्रतीत होने लगा ॥ ३३ ॥

चलत्प्रस्रवणैः पार्श्वैर्मेघौघैरेकतां गतैः।
भिद्यमानाश्मनिचयश्चचाल धरणीधरः ॥ ३४ ॥

पार्श्ववर्ती चञ्चल झरने मेघोंके समूहोंसे मिलकर एकताको प्राप्त हो गये। वह पर्वत हिलने लगा और उसकी प्रस्तरराशि विदीर्ण होकर बिखरने लगी ॥ ३४ ॥

न मेघानां प्रवृष्टानां न शैलस्याश्मवर्षिणः।
विविदुस्ते जना रूपं वायोस्तस्य च गर्जतः ॥ ३५ ॥

उस पर्वतके नीचे गर्भगृहमें बैठे हुए वे सब लोग न तो बरसते हुए मेघोंका, न पत्थर बरसानेवाले पर्वतका और न गरजती हुई वायुका ही स्वरूप जान सके ॥ ३५ ॥

मेघैः सशैलसंस्थानैर्नीलैः प्रस्रवणार्पितैः।
मिश्रीकृत इवाभाति गिरिरुद्दामबर्हवान् ॥ ३६ ॥

झरनोंसे मिले हुए पर्वताकार नील मेघोंसे मिश्रित हुआ वह पर्वत पंख उठाये हुए मोरके समान प्रतीत होता था ॥ ३६ ॥

आप्लुतोऽयं गिरिः पक्षैरिति विद्याधरोरगाः।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव वाचो मुञ्चन्ति सर्वशः ॥ ३७ ॥

विद्याधर, नाग गन्धर्व और अप्सराएँ सब ओर ऐसी चर्चा करते थे कि यह पर्वत अपने मेघरूपी पंखोंसे ऊपरको उड़नेके लिये उद्यत-सा प्रतीत होता है ॥ ३७ ॥

सहस्ततलविन्यस्तो मुक्तमूलः क्षितेस्तलात्।
रीतीर्निर्वर्तयामास काञ्चनाञ्जनराजतीः ॥ ३८ ॥

वह पर्वत श्रीकृष्णकी हथेलीपर टिका हुआ था। भूतलसे उसके मूल-भागका सम्बन्ध टूट चुका था। उस दशामें वह सोने, कोयले, चाँदी तथा गेरू आदि धातुओंको प्रकट करने लगा ॥ ३८ ॥

कानिचिच्छिथिलानीव संच्छिन्नार्द्धानि कानिचित्।
गिरेर्मेघप्रवृष्टानि तस्य शृङ्गाणि चाभवन् ॥ ३९ ॥

उस पर्वतके कुछ शिखर शिथिल-से हो गये थे, कुछ आधे भागसे टूट गये थे और कितने ही शिखर बादलोंके भीतर घुस गये थे ॥ ३९ ॥

गिरिणा कम्पमानेन कम्पितानां तु शाखिनाम्।
पुष्पमुच्चावचं भूमौ व्यशीर्यत समन्ततः ॥ ४० ॥

पर्वतके हिलनेके साथ ही उसके ऊपरके वृक्ष कम्पित हो उठे और उनके नाना प्रकारके फूल पृथ्वीपर सब ओर बिखर गये ॥ ४० ॥

निःसृताः पृथुमूर्धानः स्वस्तिकार्धविभूषिताः।
द्विजिह्वपततः क्रुद्धाः खेचराः खे समन्ततः ॥ ४१ ॥

उस समय मोटे-मोटे मस्तकवाले सर्पराज, जो आकाशमें उड़नेकी शक्ति रखते थे, क्रुपित होकर आकाशमें सब ओर निकल पड़े। उनके शरीर आधे स्वस्तिकसे विभूषित थे ॥ ४१ ॥

आर्तिं जग्मुः खगगणा वर्षेण च भयेन च।
उत्पत्त्योत्पत्त्य गगनात् पुनः पेतुरवाङ्मुखाः ॥ ४२ ॥

पक्षियोंके समुदाय वर्षा और भयसे बड़े कष्टमें पड़ गये। वे उड़-उड़कर आकाशमें जाते और वहाँसे पुनः नीचे मुख किये गिर पड़ते थे ॥ ४२ ॥

रेसुरारोषिताः सिंहाः सजला इव तोयदाः।
गर्गरा इव मथ्यन्तो नेदुः शार्दूलपुङ्गवाः ॥ ४३ ॥

बहुत-से सिंह रोषमें भरकर सजल जलधरोंके समान दहाड़ रहे थे। बड़े-बड़े बाघ मथे जानेवाले माँटोंके समान गम्भीर घोष करते थे ॥ ४३ ॥

विषमैश्च समीभूतैः समैश्चात्यन्तदुर्गमैः।
व्यावृत्तदेहः स गिरिरन्य एवोपलक्ष्यते ॥ ४४ ॥

उस पर्वतकी विषम भूमि सम हो गयी और समभूमि विषम होकर अत्यन्त दुर्गम हो गयी, इससे उसके स्वरूपमें इतना उलट-फेर हो गया कि वह किसी और ही पर्वत-सा दिखायी देता था ॥ ४४ ॥

अतिवृष्टस्य तैर्मेघैस्तस्य रूपं बभूव ह।
स्तम्भितस्येव रुद्रेण त्रिपुरस्य विहायसि ॥ ४५ ॥

उन मेघोंके द्वारा अतिवृष्टि होनेसे उस पर्वतका रूप वैसा ही हो गया, जैसा कि आकाशमें भगवान् रुद्रके द्वारा स्तम्भित किये गये त्रिपुरका रूप दिखायी देता था ॥ ४५ ॥

बाहुदण्डेन कृष्णस्य निधृतं सुमहत् तदा।
नीलाभ्रपटलच्छन्नं तद्गिरिच्छत्रमाबभौ ॥ ४६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके बाहुदण्डसे धारण किया गया तथा काले मेघ-समूहोंसे आच्छादित हुआ वह पर्वतरूपी छत्र बड़ी शोभा पा रहा था ॥ ४६ ॥

स्वप्नायमानो जलदैर्निमीलितगुहामुखः ।
बाहूपधाने कृष्णस्य प्रसुप्त इव खे गिरिः ॥ ४७ ॥

सोनेकी इच्छा-सी रखनेवाला वह पर्वत आकाशमें श्रीकृष्णकी बाँहका तकिया लगाकर सोया हुआ-सा जान पड़ता था । उस समय उसका गुफारूपी मुख बादलोंकी चादरसे ढका हुआ था ॥ ४७ ॥

निर्विहङ्गरुतैर्वृक्षैर्निर्मयूररुतैर्वनैः ।
निरालम्ब इवाभाति गिरिः स्वशिखरैर्वृतः ॥ ४८ ॥

उस पर्वतपर जो वृक्ष थे, उनपर पक्षियोंकी बोली नहीं सुनायी देती थी । वहाँके वन मयूरोंकी केका-ध्वनिसे शून्य हो गये थे । ऐसे वृक्षों और वनोंसे घिरा हुआ वह पर्वत अपने शिखरोंके साथ निरालम्ब-सा प्रतीत होता था ॥ ४८ ॥

पर्यस्तैर्घूर्णमानैश्च प्रचलद्भिश्च सानुभिः ।
सज्वराणीव शैलस्य वनानि शिखराणि च ॥ ४९ ॥

उसके शृंग अस्त-व्यस्त होकर चक्कर काटते और जोर-जोरसे हिलते थे । उनके कारण उस पर्वतके वन और शिखर ज्वरसे पीड़ित हुए-से प्रतीत होते थे ॥ ४९ ॥

उत्तमाङ्गगतास्तस्य मेघाः पवनवाहनाः ।
त्वर्यमाणा महेन्द्रेण तोयं मुमुचुरक्षयम् ॥ ५० ॥

उस पर्वतके मस्तक (शिखर) पर पहुँचे हुए वायुरूपी वाहनवाले मेघ देवराज इन्द्रके द्वारा शीघ्रता करनेके लिये प्रेरित होनेपर अक्षय जलकी वर्षा करने लगे ॥ ५० ॥

स लम्बमानः कृष्णस्य भुजाग्रे सघनो गिरिः ।
चक्रारूढ इवाभाति देशो नृपतिपीडितः ॥ ५१ ॥

भगवान् श्रीकृष्णकी भुजाके अग्रभागमें लटकता हुआ मेघोंसहित वह पर्वत किसी शत्रु राजाके द्वारा पीड़ित हुए देशकी भाँति चक्रपर चढ़ा हुआ-सा प्रतीत होता था* ॥५१॥

स मेघनिचयस्तस्थौ गिरिं तं परिवार्य ह ।
पुरं पुरस्कृत्य यथा स्फीतो जनपदो महान् ॥ ५२ ॥

वह मेघोंका समुदाय उस पर्वतको चारों ओरसे घेरकर उसी तरह खड़ा था, जैसे समृद्धिशाली महान् जनपद नगर या राजधानीको अपने सामने रखकर चारों ओर निवास करता है ॥ ५२ ॥

निवेश्य तं करे शैलं तोलयित्वा च सस्मितम् ।
प्रोवाच गोप्ता गोपानां प्रजापतिरिव स्थितः ॥ ५३ ॥

उस पर्वतको अपने हाथपर रखकर उसे संतुलित रखते हुए प्रजापतिके समान खड़े हुए गोरक्षक भगवान् श्रीकृष्णने मुसकराते हुए कहा—॥ ५३ ॥

एतद् देवैरसम्भाव्यं दिव्येन विधिना मया ।
कृतं गिरिगृहं गोपा निर्वातं शरणं गवाम् ॥ ५४ ॥

'गोपगण ! मैंने दिव्य विधिसे यह पर्वतका घर बना दिया है, जिसे बनाना देवताओंके लिये भी असम्भव था । इसमें वर्षा और वायुका प्रवेश नहीं है । यह गौओंके लिये उत्तम आश्रय है ॥ ५४ ॥

क्षिप्रं विशन्तु यूथानि गवामिह हि शान्तये ।
निर्वातेषु च देशेषु निवसन्तु यथासुखम् ॥ ५५ ॥

'यहाँ शान्ति पानेके लिये गौओंके यूथ शीघ्र प्रवेश करें और इन वायुरहित स्थानोंमें सुखपूर्वक निवास करें ॥ ५५॥

यथाश्रेष्ठं यथायूथं यथासारं यथासुखम् ।
विभज्यतामयं देशः कृतं वर्षनिवारणम् ॥ ५६ ॥

'जो जैसे बड़े-छोटे हों, जिनके जैसे यूथ हों, जिनके पास जैसी साधन-सामग्री हो, उसके अनुसार तुम सब लोग सुखपूर्वक इस स्थानका बटवारा कर लो । मैंने वर्षाका भली-भाँति निवारण कर दिया है ॥ ५६ ॥

शैलोत्पाटनभूरेषा महती निर्मिता मया ।
पञ्चक्रोशप्रमाणेन क्रोशैकविस्तरो महान् ।
त्रैलोक्यमप्युत्सहते रक्षितुं किं पुनर्व्रजम् ॥ ५७ ॥

'मैंने पर्वतको उखाड़कर यहाँ रहने योग्य विशाल भूमिका निर्माण कर दिया है । इसकी लंबाई पाँच कोस और चौड़ाई एक कोसकी है । यह महान् भूभाग तीनों लोकोंकी आँधी-पानीसे रक्षा कर सकता है, फिर व्रजकी तो बात ही क्या है ?' ॥ ५७ ॥

ततः किलकिलाशब्दो गवां हम्भारवैः सह ।
गोपानां तुमुलो जज्ञे मेघनादश्च बाह्यतः ॥ ५८ ॥

यह सुनकर भीतरकी ओर गौओंके रँभानेके साथ ही गोपोंकी किलकारियोंका तुमुल नाद गूँज उठा और बाहरकी ओर मेघोंकी गम्भीर गर्जना होने लगी ॥ ५८ ॥

प्राविशन्त ततो गावो गोपैर्यूथप्रकल्पिताः ।
तस्य शैलस्य विपुलं प्रदरं गह्वरोदरम् ॥ ५९ ॥

तदनन्तर गोपोंद्वारा एक-एक यूथके रूपमें विभक्त की हुई गौएँ उस पर्वतकी विशाल गुफामें, जिसका भीतरी भाग बहुत बड़ा था, प्रवेश करने लगीं ॥ ५९ ॥

कृष्णोऽपि मूले शैलस्य शैलस्तम्भ इवोच्छ्रितः ।
दधारैकेन हस्तेन शैलं प्रियमिवातिथिम् ॥ ६० ॥

भगवान् श्रीकृष्ण भी उस पर्वतके मूलभागमें प्रस्तरनिर्मित ऊँचे खम्भके समान खड़े हो गये । उन्होंने उस पहाड़को

---

* शत्रु राजाद्वारा आक्रान्त देशके लोग रथ, शकट आदि वाहनोंपर आरूढ़ होकर जब पलायन करने लगते हैं, उस समय उन्हें चक्रारूढ़ कहा जाता है; उसी प्रकार इन्द्रसे पीड़ित पर्वत भगवान् श्रीकृष्णके हाथरूपी चक्रपर आरूढ़ हुआ दिखायी देता था ।

अपने प्रिय अतिथिकी भाँति एक हाथसे पकड़ रखा था ॥ ६० ॥

ततो व्रजस्य भाण्डानि युक्तानि शकटानि च।
विविशुर्वर्षभीतास्ते तद् गृहं गिरिनिर्मितम् ॥ ६१ ॥

तत्पश्चात् वर्षासे डरे हुए व्रजके गोप अपने बर्तन-भाँड़े और जुते हुए छकड़े लेकर उस पर्वतनिर्मित गृहमें प्रविष्ट हो गये ॥ ६१ ॥

अतिदैवं तु कृष्णस्य दृष्ट्वा तत् कर्म वज्रभृत्।
मिथ्याप्रतिज्ञो जलदान् वारयामास वै विभुः ॥ ६२॥

श्रीकृष्णके उस कर्मको, जो देवताओंके लिये भी असम्भव है, देखकर वज्रधारी भगवान् इन्द्रने उन मेघोंको रोक दिया। व्रजको नष्ट कर देनेकी उनकी प्रतिज्ञा झूठी हो गयी ॥६२ ॥

सप्तरात्रे तु निर्वृत्ते धरण्यां विगतोत्सवः।
जगाम संवृतो मेघैर्वृत्रहा स्वर्गमुत्तमम् ॥ ६३ ॥

सात राततक पृथ्वीपर वर्षा करनेके पश्चात् मेघोंसे घिरे हुए वृत्रनाशक इन्द्र उत्सवहीन (आनन्दशून्य) हो (अथवा व्रजमें मनाये जानेवाले अपने उत्सवसे वञ्चित हो) उत्तम स्वर्गलोकको लौट गये ॥ ६३ ॥

निवृत्ते सप्तरात्रे तु निष्प्रयत्ने शतक्रतौ।
गताभ्रे विमले व्योम्नि दिवसे दीप्तभास्करे ॥ ६४॥
गावस्तेनैव मार्गेण परिजग्मुर्यथागतम्।
स्वं च स्थानं ततो घोषः प्रत्ययात् पुनरेव सः ॥ ६५॥

सात रात बीत जानेपर जब इन्द्रका सारा प्रयत्न निष्फल हो गया, बादल नष्ट हो गये, आकाश निर्मल हो गया और दिनमें सूर्यदेव देदीप्यमान हो उठे, उस समय सारी गौएँ फिर उसी मार्गसे जैसे आयी थीं, उसी तरह लौट गयीं। सारा व्रज पुनः अपने निवासस्थानको चला गया ॥ ६४-६५ ॥

कृष्णोऽपि तं गिरिश्रेष्ठं स्वस्थाने स्थावरात्मवान्।
प्रीतो निवेशयामास शिवाय वरदो विभुः ॥ ६६॥

स्थिर भावसे खड़े हुए वरदायक भगवान् श्रीकृष्णने भी प्रसन्न होकर फिर जगत्के कल्याणके लिये उस श्रेष्ठ पर्वतको अपने स्थानपर स्थापित कर दिया ॥ ६६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि गोवर्धनधारणेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें श्रीकृष्णका गोवर्धनधारणविषयक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

देवराज इन्द्रका आगमन, श्रीकृष्णका गोविन्द-पदपर अभिषेक तथा इन्द्रका श्रीकृष्णको भावी कार्य बताकर अर्जुनकी देख-भालके लिये कहना और श्रीकृष्णका उसे स्वीकार करना

वैशम्पायन उवाच

धृतं गोवर्द्धनं दृष्ट्वा परित्रातं च गोकुलम्।
कृष्णस्य दर्शनं शक्रो रोचयामास विस्मितः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब इन्द्रने देखा कि श्रीकृष्णने गोवर्धन धारण करके गोकुलकी रक्षा कर ली, तब वे बड़े विस्मयमें पड़े। अब उन्हें श्रीकृष्णका दर्शन करनेकी इच्छा हुई ॥ १ ॥

स निर्जलाम्बुदाकारं मत्तं मदजलोक्षितम्।
आरुह्यैरावतं नागमाजगाम महीतलम् ॥ २ ॥

वे जलहीन बादलके समान श्वेत वर्णवाले और मदके जलसे भीगे हुए ऐरावत नामक मदमत्त हाथीपर चढ़कर भूतलपर आये ॥ २ ॥

स ददर्शोपविष्टं वै गोवर्द्धनशिलातले।
कृष्णमक्लिष्टकर्माणं पुरुहूतः पुरंदरः ॥ ३ ॥

अनेक नामोंसे पुकारे जानेवाले पुरंदर इन्द्रने वहाँ आकर देखा, अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीकृष्ण गोवर्धन पर्वतकी एक शिलापर बैठे हुए हैं ॥ ३ ॥

तं वीक्ष्य बालं महता तेजसा दीप्तमव्ययम्।
गोपवेषधरं विष्णुं प्रीतिं लेभे पुरंदरः ॥ ४ ॥

महान् तेजसे उद्भासित होनेवाले गोपवेषधारी विष्णु-स्वरूप उन अविनाशी बालकृष्णको देखकर देवराज इन्द्रको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ४ ॥

तं सोऽम्बुजदलश्यामं कृष्णं श्रीवत्सलक्षणम्।
पर्याप्तनयनः शक्रः सर्वैर्नेत्रैरुदैक्षत ॥ ५ ॥

नीलकमलदलके समान श्यामसुन्दर एवं श्रीवत्स-चिह्न-विभूषित उन श्रीकृष्णको देखकर इन्द्रको अपने नेत्रोंका फल प्राप्त हो गया। उन्होंने अपने सम्पूर्ण नेत्रोंसे जी-भरकर उन्हें देखा ॥ ५ ॥

दृष्ट्वा चैनं श्रिया जुष्टं मर्त्यलोकेऽमरोपमम्।
सूपविष्टं शिलापृष्ठे शक्रः स व्रीडितोऽभवत्॥ ६ ॥

मर्त्यलोकमें रहकर भी देवोपम शोभासे सम्पन्न श्रीकृष्णको शिलापृष्ठपर सुखपूर्वक बैठा देख इन्द्रको बड़ी लज्जा हुई ॥ ६ ॥

तस्योपविष्टस्य मुखं पक्षाभ्यां पक्षिपुङ्गवः।
अन्तर्द्धानं गतश्छायां चकारोरगभोजनः ॥ ७ ॥

वहाँ बैठे हुए श्रीहरिके मुखपर सर्पभोजी पक्षिराज गरुड़ अदृश्य रहकर अपने दोनों पंखोंसे छाया किये हुए थे ॥ ७ ॥

तं विविक्ते वनगतं लोकवृत्तान्ततत्परम्।
उपतस्थे गजं हित्वा कृष्णं बलनिषूदनः ॥ ८ ॥

बलसूदन इन्द्र हाथी छोड़कर उतर पड़े और एकान्तमें वनके भीतर रहकर लोक-व्यवहारमें तत्पर हुए श्रीकृष्णकी सेवामें उपस्थित हुए ॥ ८ ॥

स समीपगतस्तस्य दिव्यस्रगनुलेपनः।
रराज देवराजो वै वज्रपूर्णकरः प्रभुः ॥ ९ ॥

श्रीकृष्णके समीप जाकर दिव्य पुष्पोंके हार और अनुलेपन धारण करनेवाले प्रभावशाली देवराज इन्द्र बड़ी शोभा पा रहे थे। उनका हाथ वज्रसे परिपूर्ण था ॥ ९ ॥

किरीटेनार्कतुल्येन विद्युदुद्द्योतकारिणा।
कुण्डलाभ्यां स दिव्याभ्यां सततं शोभिताननः ॥ १० ॥

विद्युत्‌के समान प्रकाश फैलानेवाले सूर्यतुल्य तेजस्वी किरीट तथा दो दिव्य कुण्डलोंसे उनके श्रीमुखकी सदा ही बड़ी शोभा होती थी ॥ १० ॥

पञ्चस्तबकलम्बेन हारेणोरसि भूषितः।
सहस्रपत्रकान्तेन देहभूषणकारिणा।
ईक्षमाणः सहस्रेण नेत्राणां कामरूपिणाम् ॥ ११ ॥

वे अपने वक्षःस्थलपर एक ऐसे हारसे विभूषित थे, जिसमें फूलोंके पाँच गुच्छे लटक रहे थे। खिले हुए कमलदलके समान कान्तिमान्, सम्पूर्ण शरीरको विभूषित करनेवाले तथा इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले एक सहस्र नेत्रोंसे वे भगवान् श्रीकृष्णकी ओर देख रहे थे ॥ ११ ॥

त्रिदशाज्ञापनार्थेन मेघनिर्घोषकारिणा।
अथ दिव्येन मधुरं व्याजहार स्वरेण तम् ॥ १२ ॥

उन्होंने देवताओंको आज्ञा देनेके लिये अभ्यस्त और मेघ-गर्जनाके समान गम्भीर घोष करनेवाले दिव्य स्वरसे मधुर वाणीमें भगवान्‌से इस प्रकार कहा ॥ १२ ॥

इन्द्र उवाच

कृष्ण कृष्ण महाबाहो ज्ञातीनां नन्दिवर्द्धन।
अतिदिव्यं कृतं कर्म त्वया प्रीतिमता गवाम् ॥ १३ ॥

इन्द्र बोले—कृष्ण ! कृष्ण !! महाबाहो !!! आप सजातीय बन्धुओंके आनन्दकी वृद्धि करनेवाले हैं। गौओंके प्रति प्रीति रखकर आपने जो कर्म किया है, वह अति दिव्य है ॥ १३ ॥

मयोत्सृष्टेषु मेघेषु युगान्तावर्तकारिषु।
यत्त्वया रक्षिता गावस्तेनास्मि परितोषितः ॥ १४ ॥

मेरेद्वारा छोड़े गये प्रलयकी पुनरावृत्ति करनेवाले मेघोंके वर्षा करनेपर भी आपने जो गौओंकी रक्षा की है, उससे मैं बहुत संतुष्ट हूँ ॥ १४ ॥

स्वायम्भुवेन योगेन यश्चायं पर्वतोत्तमः।
धृतो वेश्मवदाकाशे को ह्येतेन न विस्मयेत् ॥ १५ ॥

यह जो उत्तम पर्वत है, इसे आपने स्वायम्भुव योगसे आकाशमें घरकी भाँति धारण कर लिया था। आपके इस अलौकिक कर्मसे किसको आश्चर्य नहीं होगा ॥ १५ ॥

प्रतिषिद्धे मम महे मयेयं रुषितेन वै।
अतिवृष्टिः कृता कृष्ण गवां वै साप्तरात्रिकी ॥ १६ ॥

श्रीकृष्ण ! जब मेरा प्रचलित उत्सव रोक दिया गया, तब मैंने रोषमें भरकर गौओंपर अपना क्रोध उतारनेके लिये सात राततक अतिवृष्टि की ॥ १६ ॥

सा त्वया प्रतिषिद्धेयं मेघवृष्टिर्दुरासदा।
देवैः सदानवगणैर्दुर्निवार्या मयि स्थिते ॥ १७ ॥

उस दुर्जय मेघवृष्टिका आपने निवारण कर दिया। मेरे रहते दानवोंसहित सम्पूर्ण देवताओंके लिये भी उस वर्षाको रोकना बहुत ही कठिन था ॥ १७ ॥

अहो मे सुप्रियं कृष्ण यत् त्वं मानुषदेहवान्।
समग्रं वैष्णवं तेजो विनिगूहसि रोषितः ॥ १८ ॥

श्रीकृष्ण ! यह एक आश्चर्यमयी घटना हुई है। मेरे लिये यह बहुत ही प्रिय है कि आप मनुष्यशरीर धारण करके भी अपने भीतर सम्पूर्ण वैष्णव तेजको छिपाये रखते हैं और रोष दिलाये जानेपर उसे प्रकट कर सकते हैं ॥ १८ ॥

साधितं देवतानां हि मन्येऽहं कार्यमव्ययम्।
त्वयि मानुष्यमापन्ने युक्ते चैव स्वतेजसा ॥ १९ ॥

आप मानव-शरीरको प्राप्त होकर भी अपने वैष्णव तेजसे सम्पन्न हैं, इसलिये मैं देवताओंके कार्यको सिद्ध हुआ ही मानता हूँ। अब हमारा कोई कार्य बिगड़ नहीं सकता ॥ १९ ॥

सेत्स्यते सर्वकार्यार्थो न किंचित् परिहास्यते।
देवानां यद् भवान् नेता सर्वकार्यपुरोगमः ॥ २० ॥

जब आप देवताओंके नेता हैं और सभी कार्योंमें अग्र-

---

१. स्वायम्भुव योग कहते हैं हैरण्यगर्भी (ब्रह्म-सम्बन्धिनी) धारणाको, उसके करनेसे भारी-से-भारी वस्तु भी हल्की हो जाती है। जैसे श्रीकृष्णके उठाते समय गोवर्धन पर्वत हल्का हो गया था, इसी तरह उस योग या धारणाका आश्रय लेनेसे बड़ी-से-बड़ी वस्तु भी बहुत छोटी या अल्प हो जाती है। जैसे अगस्त्यके समुद्रपान करते समय उनके लिये सारा समुद्र तीन ही आचमनमें सीमित होकर आ गया था।

गामी रहते हैं, तब हमारा सब कार्य, समस्त प्रयोजन सिद्ध हो जायगा, कुछ भी बिगड़ने नहीं पायेगा ॥ २० ॥

एकस्त्वमसि देवानां लोकानां च सनातनः ।
द्वितीयं नात्र पश्यामि यस्तेषां च धुरं वहेत् ॥ २१ ॥

प्रभो ! एकमात्र आप ही सम्पूर्ण देवता तथा लोकोंके सनातन रक्षक हैं। मैं आपके सिवा दूसरे किसीको यहाँ ऐसा नहीं देखता, जो उन लोकों और देवताओंकी रक्षाका भार वहन कर सके ॥ २१ ॥

यथा हि पुङ्गवः श्रेष्ठो ह्यग्रे धुरि नियोज्यते ।
एवं त्वमसि देवानां मग्नानां द्विजवाहनः ॥ २२ ॥

जैसे श्रेष्ठ बैल भार ढोनेके लिये सबसे आगे जोता जाता है, उसी प्रकार आप संकटमें डूबे हुए देवताओंका उद्धार करनेके लिये सबसे आगे रहते हैं। पक्षिराज गरुड़ आपके वाहन हैं ॥ २२ ॥

त्वच्छरीरगतं कृष्ण जगत्प्रकरणं त्विदम् ।
ब्रह्मणा साधु निर्दिष्टं धातुभ्य इव काञ्चनम् ॥ २३ ॥

श्रीकृष्ण ! यह जो संसारकी सृष्टि है, वह सब आपके शरीरके भीतर ही है। ब्रह्माजीने तो उसका भलीभाँति निर्देश-मात्र किया है। जैसे सब धातुओंमें सुवर्ण श्रेष्ठ है, उसी प्रकार समस्त देवताओंमें आप हैं ॥ २३ ॥

स्वयं स्वयम्भूर्भगवान् बुद्ध्याथ वयसापि वा ।
न त्वानुगन्तुं शक्नोति पङ्गुर्द्रुतगतिं यथा ॥ २४ ॥

साक्षात् स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा भी अपनी बुद्धि अथवा अवस्थाके द्वारा आपका अनुसरण नहीं कर सकते—आपके साथ-साथ नहीं चल सकते। ठीक उसी तरह, जैसे पङ्गु मनुष्य शीघ्रगामी पुरुषका पीछा नहीं कर सकता—उसके साथ नहीं जा सकता ॥ २४ ॥

स्थाणुभ्यो हिमवाञ्छ्रेष्ठो ह्रदानां वरुणालयः ।
गरुत्मान् पक्षिणां श्रेष्ठो देवानां च भवान् वरः ॥ २५ ॥

समस्त पर्वतोंमें हिमवान् श्रेष्ठ है। सरोवरोंमें समुद्र उत्तम है। पक्षियोंमें गरुड़ तथा देवताओंमें आप श्रेष्ठ हैं ॥ २५ ॥

अपामधस्ताल्लोको वै तस्योपरि महीधराः ।
नागानामुपरिष्टाद् भूः पृथिव्युपरि मानुषाः ॥ २६ ॥

सबसे नीचे जललोक है, उसके ऊपर पर्वत हैं। यह पृथ्वी नागोंके ऊपर स्थित है और पृथ्वीपर मनुष्य निवास करते हैं ॥ २६ ॥

मनुष्यलोकादूर्ध्वं तु खगानां गतिरुच्यते ।
आकाशस्योपरि रविर्द्वारं स्वर्गस्य भानुमान् ॥ २७ ॥

मनुष्यलोकसे ऊपर आकाशमें पक्षियोंकी गति बतायी जाती है। आकाशसे ऊपर अंशुमाली सूर्य हैं, जो स्वर्गलोकके द्वार कहे गये हैं ॥ २७ ॥

देवलोकः परस्तस्माद् विमानगमनो महान् ।
यत्राहं कृष्ण देवानामैन्द्रे विनिहितः पदे ॥ २८ ॥

सूर्यलोकसे ऊपर देवताओंका महान् लोक है, जहाँ विमानसे यात्रा की जाती है। श्रीकृष्ण ! वहीं मुझे देवेन्द्र-पदपर स्थापित किया गया है ॥ २८ ॥

स्वर्गादूर्ध्वं ब्रह्मलोको ब्रह्मर्षिगणसेवितः ।
तत्र सोमगतिश्चैव ज्योतिषां च महात्मनाम् ॥ २९ ॥

स्वर्गसे ऊपर ब्रह्मलोक है, जो ब्रह्मर्षिगणोंसे सेवित है। वहाँतक चन्द्रमाकी तथा महात्मा ग्रह-नक्षत्रोंकी गति है ॥

तस्योपरि गवां लोकः साध्यास्तं पालयन्ति हि ।
स हि सर्वगतः कृष्ण महाकाशगतो महान् ॥ ३० ॥

ब्रह्मलोकसे ऊपर गोलोक है, जिसका साध्यगण पालन करते हैं। श्रीकृष्ण ! वह महान् लोक सर्वव्यापी है। महाकाश-में व्यापकरूपसे स्थित है ॥ ३० ॥

उपर्युपरि तत्रापि गतिस्तव तपोमयी ।
यां न विद्मो वयं सर्वे पृच्छन्तोऽपि पितामहम् ॥ ३१ ॥

उसमें भी आपकी तपोमयी गति सर्वोपरि है। हम पितामहसे पूछते रहनेपर भी अबतक आपकी उस गतिको नहीं जान सके हैं ॥ ३१ ॥

लोकस्त्वधो दुष्कृतिनां नागलोकस्तु दारुणः ।
पृथिवी कर्मशीलानां क्षेत्रं सर्वस्य कर्मणः ॥ ३२ ॥

भयंकर नागलोक सबसे नीचे है। वह पापाचारियोंको प्राप्त होनेवाला लोक या स्थान है। जो स्वभावसे ही कर्मठ हैं, उनके लिये यह भूलोक है। यह समस्त कर्मका क्षेत्र है ॥

खमस्थिराणां विषयो वायुना तुल्यवृत्तिनाम् ।
गतिः शमदमाढ्यानां स्वर्गः सुकृतकर्मणाम् ॥ ३३ ॥

जो अस्थिर हैं, जिनकी वृत्ति वायुके समान है, उनका आश्रय आकाश या अन्तरिक्षलोक है। जो शम-दमसे सम्पन्न हो पुण्य-कर्ममें लगे रहते हैं, उन मनुष्योंकी गति स्वर्गलोक है ॥

ब्राह्मे तपसि युक्तानां ब्रह्मलोकः परा गतिः ।
गवामेव तु गोलोको दुरारोहा हि सा गतिः ॥ ३४ ॥

जो ब्राह्म-तपमें संलग्न रहनेवाले लोग हैं, उनकी परम गति ब्रह्मलोक है। गोलोक तो गौओंको ही सुलभ होनेवाला लोक है। वह गति दूसरोंके लिये दुरारोह (दुर्लभ) है ॥

स तु लोकस्त्वया कृष्ण सीदमानः कृतात्मना ।
धृतो धृतिमता वीर निघ्नतोपद्रवान् गवाम् ॥ ३५ ॥

वीर श्रीकृष्ण ! इस समय (मेरे द्वारा वर्षाके कारण) वही गौओंका लोक संकटमें पड़ गया था, जिसे आप-जैसे धैर्यशाली पुण्यात्मा पुरुषने उन गौओंपर आये हुए उपद्रवों-का नाश करके बचाया है ॥ ३५ ॥

तदहं समनुप्राप्तो गवां वाक्येन चोदितः ।
ब्रह्मणश्च महाभाग गौरवात् तव चागतः ॥ ३६ ॥

अतः महाभाग ! मैं (दिव्य कामधेनु आदि) गौओंके तथा ब्रह्माजीके वचनोंसे प्रेरित होकर यहाँ आया हूँ । आपके प्रति मेरे मनमें जो गौरव है: उससे भी मुझे यहाँ आनेमें प्रेरणा मिली है ॥ ३६ ॥

अहं भूतपतिः कृष्ण देवराजः पुरंदरः ।,
अदितेर्गर्भपर्याये पूर्वजस्ते पुराकृतः ॥ ३७ ॥

श्रीकृष्ण ! मैं वही समस्त भूतोंका अधिपति देवराज इन्द्र हूँ, जिसे आपने पूर्वकालमें माता अदितिके गर्भमें आकर अपना बड़ा भाई बनाया था ॥ ३७ ॥

स्वतेजस्तेजसा चैव यत् ते दर्शितवानहम् ।
देवरूपेण तत् सर्वं क्षन्तुमर्हसि मे विभो ॥ ३८ ॥

प्रभो ! मैंने जो देवरूपसे उपस्थित होकर तेजसे अपना तेज प्रकट करके आपको दिखाया है, मेरे उस सारे अपराधको आप क्षमा कर दें ॥ ३८ ॥

एवं क्षान्तमनाः कृष्ण स्वेन सौम्येन तेजसा ।
ब्रह्मणः श्रृणु मे वाक्यं गवां च गजविक्रम ॥ ३९ ॥

हार्थीके समान पराक्रमी श्रीकृष्ण ! इस प्रकार आप अपने सौम्य तेजसे मनमें क्षमाभाव लाकर ब्रह्माजी तथा गौओंके कहे हुए इस वचनको मेरे मुखसे सुनिये—॥ ३९ ॥

आह त्वां भगवान् ब्रह्मा गावश्चाकाशगा दिवि ।
कर्मभिस्तोषिता दिव्यैस्तव संरक्षणादिभिः ॥ ४० ॥

भगवान् ब्रह्मा तथा द्युलोकमें स्थित हुई आकाशगामिनी गौओंने आपको यह संदेश दिया है कि 'हम आपके गोसंरक्षण' आदि दिव्य कर्मोंसे बहुत संतुष्ट हैं ॥ ४० ॥

भवता रक्षिता गावो गोलोकश्च महानयम् ।
तद् वयं पुङ्गवैः सार्द्धं वर्द्धामः प्रसवैस्तथा ॥ ४१ ॥

'आपने जो गौओंकी रक्षा की है, उससे इस महान् गोलोकका संरक्षण हुआ है; क्योंकि अब हम अपने साँड़ों और संतानोंके साथ दिनोंदिन बढ़ रही हैं ॥ ४१ ॥

कर्षकान् पुङ्गवैर्गोह्यैर्मेध्येन हविषा सुरान् ।
श्रियं शकृत्प्रवृत्तेन तर्पयिष्याम कामदाः ॥ ४२ ॥

'हम गौएँ सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाली हैं । अब हल या गाड़ीमें जोतने योग्य बलिष्ठ बैल देकर हम किसानोंको संतुष्ट करेंगी । दूध-घीके द्वारा पवित्र हविष्य प्रस्तुत करके देवताओंकी तृप्ति करेंगी और गोबर देकर साक्षात् श्रीदेवीको संतुष्ट करती रहेंगी ॥ ४२ ॥

अस्माकं गुरुस्त्वं हि प्राणदश्च महाबलः ।
अद्यप्रभृति नो राजा त्वमिन्द्रो वै भव प्रभो ॥ ४३ ॥

'प्रभो ! आप महान् बलशाली प्रभु हमारा परित्राण करनेके कारण हमारे गुरुरूप हैं; अतः आजसे आप हम गौओंके राजा इन्द्र हो जायँ' ॥ ४३ ॥

तस्मात् त्वं काञ्चनैः पूर्णैर्दिव्यस्य पयसो घटैः ।
एभिरद्याभिषिञ्चस्व मया हस्तावनामितैः ॥ ४४ ॥

अतः (गौओंके इस अनुरोधके अनुसार) मेरे द्वारा हाथपर रखकर प्रस्तुत किये गये इन दिव्य जलसे भरे हुए सोनेके कलशोंद्वारा आप अपना अभिषेक करें ॥ ४४ ॥

अहं किलेन्द्रो देवानां त्वं गवामिन्द्रतां गतः ।
गोविन्द इति लोकास्त्वां स्तोष्यन्ति भुवि शाश्वतम्॥४५॥

मैं देवताओंका इन्द्र हूँ और आप गौओंके इन्द्र हो गये ! आजसे इस भूतलपर सब लोग आप सनातन प्रभुको 'गोविन्द' कहकर आपका स्तवन करेंगे ॥ ४५ ॥

ममोपरि यथेन्द्रस्त्वं स्थापितो गोभिरीश्वरः ।
उपेन्द्र इति कृष्ण त्वां गास्यन्ति दिवि देवताः ॥ ४६ ॥

श्रीकृष्ण ! गौओंने आप परमेश्वरको जो मेरे ऊपर इन्द्र बनाकर प्रतिष्ठित किया है, उसके अनुसार देवतालोग आपको 'उपेन्द्र' नाम देकर द्युलोकमें आपकी कीर्तिका गान करेंगे ॥ ४६ ॥

ये चेमे वार्षिका मासाश्चत्वारो विहिता मम ।
एषामर्द्धं प्रयच्छामि शरत्कालं तु पश्चिमम् ॥ ४७ ॥

मेरी आराधनाके लिये जो ये वर्षाके चार महीने विहित हुए हैं, इनका पिछला आधा भाग, जिसे शरत्काल कहते हैं, मैं आपको दे रहा हूँ ॥ ४७ ॥

अद्यप्रभृति मासौ द्वौ ज्ञास्यन्ति मम मानवाः ।
वर्षार्द्धं च ध्वजो मह्यं ततः पूजामवाप्स्यसि ।
ममाम्बुप्रभवं दर्पं तदा त्यक्ष्यन्ति बर्हिणः ॥ ४८ ॥

सब मनुष्य आजसे 'श्रावण और भाद्रपद' इन दो ही महीनोंको मेरे लिये नियत मानेंगे । इनके साथ वर्षाका आधा भाग व्यतीत हो जानेपर इन्द्रव्रतकी समाप्तिके चिह्नभूत मेरे ध्वजकी स्थापना होगी । उसके बाद आपकी पूजा होने लगेगी । उस समय मोर मेरे द्वारा बरसाये गये जलसे उत्पन्न हुए मदको त्याग देंगे ॥ ४८ ॥

अल्पवाचो गतमदा ये चान्ये मेघनादिनः ।
शान्तिं सर्वे गमिष्यन्ति मम कालविचारिणः ॥ ४९ ॥

उनकी बोली कम हो जायगी और उनका सारा मद उतर जायगा । मेघोंको देखकर गर्जना करनेवाले जो दूसरे प्राणी हैं, वे सब भी मेरे समयका विचार करके शान्त (मौन) धारण कर लेंगे ॥ ४९ ॥

त्रिशङ्कुगस्त्यचरितामाशां च प्रचरिष्यति ।
सहस्ररश्मिरादित्यस्तापयन् स्वेन तेजसा ॥ ५० ॥

वर्षामें ही सहस्र किरणोंवाले सूर्यदेव अपने तेजसे जगत्को ताप देते हुए 'त्रिशङ्कु' और 'अगस्त्य मुनि' के द्वारा उपभोगमें लायी हुई दक्षिण दिशामें संचार करेंगे ॥५०॥

ततः शरदि युक्तायां मौनकामेषु बर्हिषु ।
याचमाने खगे तोयं विप्लुतेषु प्लवेषु च ॥ ५१ ॥
हंससारसपूर्णेषु नदीनां पुलिनेषु च ।
मत्तक्रौञ्चप्रणादेषु प्रमत्तवृषभेषु च ॥ ५२ ॥
गोषु चैव प्रहृष्टासु क्षरन्तीषु पयो बहु ।
निवृत्तेषु च मेघेषु निर्यात्य जगतो जलम् ॥ ५३ ॥
आकाशे शस्त्रसंकाशे हंसेषु च चरत्सु च ।
जातपद्मेषु तोयेषु वापीषु च सरस्सु च ॥ ५४ ॥
तडागेषु च कान्तेषु तोयेषु विमलेषु च ।
कलमावनताग्रासु कृष्णकेदारपङ्क्तिषु ॥ ५५ ॥
मध्यस्थं सलिलारम्भं कुर्वन्तीषु नदीषु च ।
सुसस्यायां च सीमायां मनोहर्यां मुनेरपि ॥ ५६ ॥
पृथिव्यां पृथुराष्ट्रायां रम्यायां वर्षसंक्षये ।
श्रीमत्सु पंक्तिमार्गेषु फलवत्सु तृणेषु च ।
इक्षुमत्सु च देशेषु प्रवृत्तेषु मखेषु च ॥ ५७ ॥
ततः प्रवर्त्स्यते पुण्या शरत् सुप्तोत्थिते त्वयि ।

तदनन्तर जब शरद्-ऋतुका योग प्राप्त होगा, मोर मौन रहनेकी इच्छा करेंगे, पपीहे जलकी याचना करने लगेंगे, नदियोंमें नाव चलना बंद हो जायगा (अर्थात् नदियोंमें जलकी बाढ़ नहीं रह जायगी), सरिताओंके तट हंसों और सारसोंसे भरे रहेंगे, मदमत्त क्रौञ्च पक्षी वहाँ कलरव करते होंगे, साँड़ मतवाले होकर घूमेंगे, गौएँ हर्षमें भरकर बहुत दूध देंगी, संसारके लिये जलकी वर्षा करके बादल विलीन हो जायँगे, आकाश शस्त्रोंकी भाँति चमक उठेगा—निर्मल हो जायगा, हंस सब ओर विचरने लगेंगे, बावड़ी और सरोवरोंके जलोंमें कमल उत्पन्न हो जायँगे, (उनके खिलनेसे) तड़ागोंकी शोभा बढ़ जायगी—वे कमनीय हो उठेंगे, सभी जलाशयोंके जल निर्मल हो जायँगे, खेतोंकी श्रेणीबद्ध काली-काली क्यारियोंमें धानोंकी पकी बालें अग्रभागकी ओरसे लटकती होंगी, नदियाँ अपने जलका बहाव बीचमें कर लेंगी, व्रजों अथवा गाँवोंकी सीमाएँ (खेतोंकी भूमि) सुन्दर सस्यों (अनाजों) से सम्पन्न हो मुनियोंके भी मनको मोह लेनेवाली हो जायँगी, वर्षा बीत जानेपर जब बहुत संख्यक राष्ट्रोंसे युक्त पृथ्वी रमणीय दिखायी देने लगेगी, पंक्तिबद्ध मार्ग शोभायमान हो जायँगे, तृण-बेलों तथा ओषधियोंमें फल लग जायँगे, स्थान-स्थानपर ईखकी खेती लहराती दिखायी देगी, (आग्रायण और वाजपेय आदि) यज्ञ आरम्भ होने लगेंगे तथा आप (भगवान् विष्णु) जब सोकर जाग उठेंगे, उस समय पुण्यमयी शरद् ऋतुकी प्रवृत्ति होगी ॥ ५१–५७½ ॥

लोकेऽस्मिन् कृष्ण निखिले यथैव त्रिदिवे तथा ॥ ५८ ॥
नरास्त्वां चैव मां चैव ध्वजाकारासु यष्टिषु ।
महेन्द्रं चाप्युपेन्द्रं च महयन्ति महीतले ॥ ५९ ॥

श्रीकृष्ण ! वह शरत्काल प्राप्त होनेपर स्वर्गलोककी ही भाँति इस समस्त जगत्में रहनेवाले मनुष्य भी भूतलपर ध्वजाकार डंडोंमें मुझ महेन्द्रकी तथा आप उपेन्द्रकी पूजा करेंगे ॥ ५८-५९ ॥

ये चावयोः स्थिरे वृत्ते महेन्द्रोपेन्द्रसंज्ञिते ।
मानवाः प्रणमिष्यन्ति तेषां नास्त्यनयागमः ॥ ६० ॥

जो मानव हम दोनोंसे सम्बन्ध रखनेवाले इस सनातन आचार (महेन्द्रोपेन्द्रमख नामक उत्सव) में हमें प्रणाम करेंगे, उन्हें कभी अनीतिका सामना नहीं करना पड़ेगा ॥ ६० ॥

ततः शक्रस्तु तान् गृह्य घटान् दिव्यपयोधरान् ।
अभिषेकेण गोविन्दं योजयामास योगवित् ॥ ६१ ॥

तदनन्तर योगवेत्ता इन्द्रने दिव्य (मन्दाकिनीका) जल धारण करनेवाले उन कलशोंको हाथमें लेकर भगवान् श्रीकृष्णका 'गोविन्द (गौओंके इन्द्र)'-पदपर अभिषेक किया ॥ ६१ ॥

दृष्ट्वा तमभिषिक्तं तु गावस्ताः सह यूथपैः ।
स्तनैः प्रस्रवयुक्तैश्च सिषिचुः कृष्णमव्ययम् ॥ ६२ ॥

(इन्द्रद्वारा) उनका अभिषेक हुआ देख यूथपतियों (साँड़ों) सहित उन दिव्य गौओंने भी दूधकी धारा बहाते हुए अपने थनोंद्वारा अविनाशी श्रीकृष्णका अभिषेचन किया ॥ ६२ ॥

मेघाश्च दिवि युक्ताभिः सामृताभिः समन्ततः ।
सिषिचुस्तोयधाराभिरभिषिच्य तमव्ययम् ॥ ६३ ॥

इसके बाद मेघोंने भी आकाशमें छोड़ी हुई अमृतयुक्त जलधाराओंद्वारा श्रीकृष्णको सब ओरसे नहलाकर उन अविनाशी ईश्वरका अभिषेक-कर्म सम्पन्न किया ॥ ६३ ॥

वनस्पतीनां सर्वेषां सुस्रावेन्दुनिभं पयः ।
ववर्षुः पुष्पवर्षं च नेदुस्तूर्याणि चाम्बरे ॥ ६४ ॥

तदनन्तर सभी वनस्पतियोंकी डालियोंसे चन्द्रमाके समान श्वेत दुग्ध टपकने लगा (इस तरह उन वनस्पतियोंने भी भगवान्का अभिषेक किया)। देवताओंने फूलोंकी वर्षा की तथा आकाशमें दिव्य बाजे अपने-आप बज उठे ॥ ६४ ॥

अस्तुवन् मुनयः सर्वे वाग्भिर्मन्त्रपरायणाः ।
एकार्णवे विविक्तं च दधार वसुधा वपुः ॥ ६५ ॥

तत्पश्चात् सभी मन्त्रपरायण मुनियोंने भगवान् श्रीकृष्णका स्तवन किया । पृथ्वीने अपने उस स्वरूपको धारण किया, जो एकार्णवसे पृथक् होनेपर उसे प्राप्त हुआ था ॥ ६५ ॥

प्रसादं सागरा जग्मुर्ववुर्वाता जगद्धिताः ।
मार्गस्थोऽपि बभौ भानुश्चन्द्रो नक्षत्रसंयुतः ॥ ६६ ॥

समस्त समुद्रोंके जल प्रसन्न (स्वच्छ–निर्मल) हो गये । वायु जगत्‌के लिये हितकारक होकर बहने लगी । सूर्यदेव अपने समुचित मार्गपर स्थित रहकर प्रकाशित होने लगे । चन्द्रमा नक्षत्रोंसे संयुक्त होकर सुशोभित होने लगे ॥ ६६ ॥

ईतयः प्रशमं जग्मुर्निर्वैररचना नृपाः ।
प्रवालपत्रशबलाः पुष्पवन्तश्च पादपाः ॥ ६७ ॥

अतिवृष्टि आदि ईतियाँ शान्त हो गयीं । राजाओंके सभी कार्य वैरभावसे रहित होने लगे । वृक्ष फूलोंसे भर गये और नूतन पल्लवों तथा हरे-हरे पत्तोंसे विचित्र शोभा धारण करने लगे ॥ ६७ ॥

मदं प्रसुस्रुवुर्नागा यातास्तोषं वने मृगाः ।
अलंकृता गात्ररुहैर्धातुभिर्भान्ति पर्वताः ॥ ६८ ॥

हाथी मद बहाने लगे । वनमें मृग आदि पशु संतोष प्राप्त करने लगे । पर्वत अपने ऊपर उगे हुए वृक्षों तथा विभिन्न धातुओंसे शोभा पाने लगे ॥ ६८ ॥

देवलोकोपमो लोकस्तृप्तोऽमृतरसैरिव ।
आसीत् कृष्णाभिषेको हि दिव्यस्वर्गरसोक्षितः ॥ ६९ ॥

सम्पूर्ण जगत् देवलोकके समान सुखी हो गया, मानो उसे अमृत-रससे तृप्त कर दिया गया हो । इस प्रकार दिव्य स्वर्गीय रस (जल) से सिक्त होकर श्रीकृष्णका वह अभिषेक-कर्म सम्पन्न हुआ ॥ ६९ ॥

अभिषिक्तं तु तं गोभिः शक्रो गोविन्दमव्ययम् ।
दिव्यमाल्याम्बरधरं देवदेवोऽब्रवीदिदम् ॥ ७० ॥

गौओंद्वारा अभिषिक्त होकर दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण करनेवाले अविनाशी गोविन्दसे देवदेव इन्द्रने इस प्रकार कहा—॥ ७० ॥

एष ते प्रथमः कृष्ण नियोगो गोषु यः कृतः ।
श्रूयतामपरं कृष्ण ममागमनकारणम् ॥ ७१ ॥

'श्रीकृष्ण ! यह मैंने आपको अपने आगमनका प्रथम हेतु बताया है, जिसके अनुसार गौओंकी आज्ञाका पालन किया गया है । अब मेरे आनेका जो दूसरा कारण है, उसे भी सुन लीजिये ॥ ७१ ॥

क्षिप्रं प्रसाध्यतां कंसः केशी च तुरगाधमः ।
अरिष्टश्च मदाविष्टो राजराज्यं ततः कुरु ॥ ७२ ॥

'मुझे यह कहना है कि आप शीघ्र ही कंस तथा अश्वोंमें अधम केशीका भी वध कर डालिये । मदमत्त अरिष्टासुरको यमलोक भेज दीजिये । तदनन्तर राजाओंपर शासन कीजिये ॥ ७२ ॥

पितृष्वसरि जातस्ते ममांशोऽहमिव स्थितः ।
स ते रक्ष्यश्च मान्यश्च सख्ये च विनियुज्यताम् ॥ ७३ ॥

'आपकी बुआ कुन्तीके गर्भसे मेरा अंश उत्पन्न हुआ है, जो मेरे ही समान है । आप उसकी रक्षा और आदर करें तथा उसे अपना सखा बना लें ॥ ७३ ॥

त्वया ह्यनुगृहीतः स तव वृत्तानुवर्तकः ।
त्वद्वशे वर्तमानश्च प्राप्स्यते विपुलं यशः ॥ ७४ ॥

'आपसे अनुगृहीत होकर वह आपके बताये हुए आचारका पालन करेगा और सदा आपकी आज्ञाके अधीन रहकर भूमण्डलमें महान् यश प्राप्त कर लेगा ॥ ७४ ॥

भारतस्य च वंशस्य स वरिष्ठो धनुर्धरः ।
भविष्यत्यनुरूपश्च त्वदृते न च रंस्यते ॥ ७५ ॥

'वह भरतवंशका सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर होगा । आपकी इच्छाके अनुरूप बनकर रहेगा और आपके बिना कभी कहीं भी उसका मन नहीं लगेगा ॥ ७५ ॥

भारतं त्वयि चायत्तं तस्मिंश्च पुरुषोत्तमे ।
उभाभ्यामपि संयोगे यास्यन्ति निधनं नृपाः ॥ ७६ ॥

'आप और उस पुरुषप्रवर कुन्तीकुमारपर ही महाभारत-युद्ध अवलम्बित होगा । आप दोनोंका संयोग प्राप्त होनेपर राजालोग युद्धमें मारे जायँगे ॥ ७६ ॥

प्रतिज्ञातं मया कृष्ण ऋषिमध्ये सुरेषु च ।
मया पुत्रोऽर्जुनो नाम सृष्टः कुन्त्यां कुलोद्वहः ॥ ७७ ॥

'श्रीकृष्ण ! मैंने ऋषियों तथा देवताओंके बीचमें इस बातका विज्ञापन कर दिया है कि कुन्तीके गर्भसे मेरे द्वारा जिस कुलदीपक पुत्रकी उत्पत्ति हुई है, उसका नाम अर्जुन है ॥

सोऽस्त्राणां पारतत्त्वज्ञः श्रेष्ठश्चापविकर्षणे ।
तं प्रवेक्ष्यन्ति वै सर्वे राजानः शस्त्रयोधिनः ॥ ७८ ॥

'वह अस्त्रोंकी विद्यामें पारंगत है । धनुषको खींचनेमें सबसे श्रेष्ठ है । शस्त्रोंद्वारा युद्ध करनेवाले सब नरेश उसीमें विलीन हो जायँगे ॥ ७८ ॥

अक्षौहिणीस्तु शूराणां राज्ञां संग्रामशालिनाम् ।
स एकः क्षत्रधर्मेण योजयिष्यति मृत्युना ॥ ७९ ॥

'संग्राममें शोभा पानेवाले शूरवीर राजाओंकी कई अक्षौहिणी सेनाओंको वह अकेला ही क्षत्रियधर्मके अनुसार युद्ध करके मौतके घाट उतार देगा ॥ ७९ ॥

तस्यास्त्रचरितं मार्गं धनुषो लाघवेन च ।
नानुयास्यन्ति राजानो देवा वा त्वां विना प्रभो ॥ ८० ॥

'प्रभो ! आपको छोड़कर दूसरे कोई देवता अथवा भूतलके नरेश अर्जुनके अस्त्र-मार्गका अनुसरण नहीं कर सकेंगे । उसमें जो धनुष चलानेकी फुर्ती है, उसके द्वारा भी कोई उसकी समानता नहीं कर सकता ॥ ८० ॥

स ते बन्धुः सहायश्च संग्रामेषु भविष्यति ।
तस्य योगो विधातव्यस्त्वया गोविन्द मत्कृते ॥ ८१ ॥

'गोविन्द ! युद्धके अवसरोंपर अर्जुन आपका सच्चा बन्धु एवं सहायक होगा । मेरे लिये अथवा मेरे कहनेसे आपको उसे अध्यात्मविद्याका उपदेश अवश्य करना चाहिये ॥ ८१ ॥

द्रष्टव्यश्च यथाहं वै त्वया मान्यश्च नित्यशः ।
ज्ञाता त्वमेव लोकानामर्जुनस्य च नित्यशः ॥ ८२ ॥

'आप अर्जुनको उसी तरह अपनापनकी दृष्टिसे देखें, जैसा मुझे देखा करते हैं । प्रतिदिन उसका आदर करते रहें । आप ही सम्पूर्ण लोकोंके ज्ञाता हैं, अतः अर्जुनका भी सदा ध्यान रखें ॥ ८२ ॥

त्वया च नित्यं संरक्ष्य आहवेषु महत्सु सः ।
रक्षितस्य त्वया तस्य न मृत्युः प्रभविष्यति ॥ ८३ ॥

'बड़े-बड़े युद्धके अवसरोंपर भी आपको नित्यप्रति उसकी रक्षा करनी चाहिये । आपसे सुरक्षित हुए अर्जुनपर मृत्युका वश नहीं चल सकेगा ॥ ८३ ॥

अर्जुनं विद्धि मां कृष्ण मां चैवात्मानमात्मना ।
आत्मा तेऽहं यथा शश्वत् तथैव तव सोऽर्जुनः ॥ ८४ ॥

'श्रीकृष्ण ! आप अर्जुनको मेरा ही स्वरूप समझें और मुझे भी हृदयसे अपना आत्मा स्वीकार करें । जैसे मैं सदा ही आपका आत्मा हूँ, उसी प्रकार वह अर्जुन भी आपका आत्मा ही है ॥ ८४ ॥

त्वया लोकानिमाञ्जित्वा बलेर्हस्तात् त्रिभिः क्रमैः ।
देवतानां कृतो राजा पुरा ज्येष्ठक्रमादहम् ॥ ८५ ॥

'पूर्वकालमें आपने तीन पगोंद्वारा इन तीनों लोकोंको नापकर बलिके हाथसे अपने अधिकारमें ले लिया और मुझे ही अपना बड़ा भाई मानकर देवताओंका राजा बना दिया ॥

त्वां च सत्यमयं ज्ञात्वा सत्येष्टं सत्यविक्रमम् ।
सत्येनोपेत्य देवा वै योजयन्ति रिपुक्षये ॥ ८६ ॥

'आप सत्यमय हैं, सत्यरूपी यज्ञद्वारा आपका यजन हुआ है तथा आप सत्यपराक्रमी हैं, ऐसा जानकर देवतालोग सत्यभावसे ही आपकी शरणमें आते और आपको शत्रु-संहारके कार्यमें लगाते हैं ॥ ८६ ॥

सोऽर्जुनो नाम मे पुत्रः पितुस्ते भगिनीसुतः ।
इह सौहार्दमायातु भूत्वा सहचरस्तव ॥ ८७ ॥

'अर्जुन नामसे प्रसिद्ध मेरा पुत्र आपके पिताकी बहिन (बुआ) का बेटा है । वह इस जगत्में आपका सहचर होकर आपके साथ पूर्ण सौहार्द स्थापित करे ॥ ८७ ॥

तस्य ते युध्यतः कृष्ण स्वस्थानेऽपि गृहेऽपि वा ।
वोढव्या पुङ्गवेनेव धूः सदा रणमूर्धनि ॥ ८८ ॥

'श्रीकृष्ण ! वह युद्ध कर रहा हो, अपने स्थानपर हो अथवा घरमें बैठा हो, आपको बलिष्ठ वृषभकी भाँति सदा उसका भार सँभालना चाहिये । युद्धके मुहानेपर तो सदा ही आपको उसकी रक्षाका बोझ उठाना है ॥ ८८ ॥

कंसे विनिहते कृष्ण त्वया भाव्यर्थदर्शिना ।
अभितस्तन्महद् युद्धं भविष्यति महीक्षिताम् ॥ ८९ ॥

'श्रीकृष्ण ! आप तो भविष्यमें होनेवाली घटनाओंको भी प्रत्यक्षकी भाँति देखनेवाले हैं (अतः आपसे कुछ भी अज्ञात नहीं है) । जब कंस आपके द्वारा मार डाला जायगा, तब सब ओरसे आये हुए राजाओंका वह महान् युद्ध (महाभारत) होगा ॥ ८९ ॥

तत्र तेषां नृवीराणामतिमानुषकर्मणाम् ।
विजयस्यार्जुनो भोक्ता यशसा त्वं च योक्ष्यसे ॥ ९० ॥

'उस युद्धमें अतिमानव (अलौकिक) कर्म करनेवाले उन नरवीर राजाओंको जीतकर अर्जुन विजय-सुखका उपभोग करेगा और आप महान् सुयशके भागी होंगे ॥ ९० ॥

एतन्मे कृष्ण कार्त्स्न्येन कर्तुमर्हसि भाषितम् ।
यद्यहं ते सुराश्चैव सत्यं च प्रियमच्युत ॥ ९१ ॥

'अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले श्रीकृष्ण ! यदि मैं, सम्पूर्ण देवता तथा सत्य आपको प्रिय हैं तो मैंने जो कुछ यहाँ कहा है, वह सब कार्य आपको पूर्ण करना चाहिये॥

शक्रस्य वचनं श्रुत्वा कृष्णो गोविन्दतां गतः ।
प्रीतेन मनसा युक्तः प्रतिवाक्यं जगाद ह ॥ ९२ ॥

इन्द्रका यह वचन सुनकर 'गोविन्द' भावको प्राप्त हुए श्रीकृष्णने प्रसन्न-मनसे युक्त होकर इस प्रकार उत्तर दिया—॥

प्रीतोऽस्मि दर्शनाद् देव तव शक्र शचीपते ।
यत् त्वयाभिहितं चेदं न किंचित् परिहास्यते ॥ ९३ ॥

'देव ! शचीवल्लभ शक्र ! मैं तो आपके दर्शनसे ही प्रसन्न हो गया हूँ । आपने यह जो कुछ कहा है, वह सब पूरा किया जायगा; कुछ भी छोड़ा नहीं जायगा ॥ ९३ ॥

जानामि भवतो भावं जानाम्यर्जुनसम्भवम् ।
जाने पितृष्वसारं च पाण्डोर्दत्तां महात्मनः ॥ ९४ ॥

'आपका मेरे प्रति जो भाव है, उसे मैं जानता हूँ । मुझे अर्जुनके जन्मका भी पता है । महात्मा पाण्डुके साथ जिनका विवाह हुआ, उन अपनी बुआ कुन्तीको भी मैं अच्छी तरह जानता हूँ ॥ ९४ ॥

युधिष्ठिरं च जानामि कुमारं धर्मनिर्मितम् ।
भीमसेनं च जानामि वायोः संतानजं सुतम् ॥ ९५ ॥

'धर्मके द्वारा उत्पन्न हुए कुन्तीकुमार युधिष्ठिरसे भी मैं परिचित हूँ । वायुकी संतान होकर उत्पन्न हुए अपनी बुआके बेटे भीमसेनको भी मैं जानता हूँ ॥ ९५ ॥

अश्विभ्यां साधु जानामि सृष्टं पुत्रद्वयं शुभम् ।
नकुलं सहदेवं च माद्रीकुक्षिगतावुभौ ॥ ९६ ॥

'दोनों अश्विनीकुमारोंने जिन दो शुभलक्षण पुत्रोंकी सृष्टि की है तथा जो माद्रीके गर्भमें रह चुके हैं, उन दोनों भाई नकुल और सहदेवके विषयमें भी मैं भलीभाँति जानकारी रखता हूँ ॥ ९६ ॥

कानीनं चापि जानामि सवितुः प्रथमं सुतम् ।
पितृष्वसरि कर्णं वै प्रसूतं सूततां गतम् ॥ ९७ ॥

'बुआ कुन्तीके गर्भसे सूर्यदेवका संयोग पाकर कन्यावस्थामें जो प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ था तथा जन्म लेनेके बाद जो सूत-भावको प्राप्त हो गया है, उस कर्णसे भी मैं अपरिचित नहीं हूँ ॥ ९७ ॥

धार्तराष्ट्राश्च मे सर्वे विदिता युद्धकाङ्क्षिणः ।
पाण्डोरुपरमं चैव शापाशनिनिपातजम् ॥ ९८ ॥

'युद्धकी इच्छा रखनेवाले समस्त धृतराष्ट्र-पुत्रोंको भी मैं जानता हूँ । शापरूपी वज्रपातके कारण राजा पाण्डुका जो निधन हुआ है, वह भी मुझसे छिपा नहीं है ॥ ९८ ॥

तद् गच्छ त्रिदिवं शक्र सुखाय त्रिदिवौकसाम् ।
नार्जुनस्य रिपुः कश्चिन्ममाग्रे प्रभविष्यति ॥ ९९ ॥

'अतः देवराज इन्द्र ! आप देवताओंको सुख देनेके लिये स्वर्गलोकको पधारिये । मेरे सामने अर्जुनका कोई भी शत्रु उसे परास्त नहीं कर सकेगा ॥ ९९ ॥

अर्जुनार्थे च तान् सर्वान् पाण्डवानक्षतान् युधि ।
कुन्त्या निर्यातयिष्यामि निवृत्ते भारते मृधे ॥ १०० ॥

'अर्जुनके लिये ही मैं महाभारत-युद्ध समाप्त होनेपर उन समस्त पाण्डवोंको कुन्तीकी सेवामें सकुशल लौटा दूँगा ॥

यच्च वक्ष्यति मां शक्र तनूजस्तव सोऽर्जुनः ।
भृत्यवत् तत् करिष्यामि तव स्नेहेन यन्त्रितः ॥ १०१ ॥

'देवेन्द्र ! आपका पुत्र अर्जुन मुझसे जो कुछ कहेगा, उसे मैं आपके स्नेह-पाशसे बँधकर आज्ञाकारी सेवककी भाँति पूर्ण करूँगा' ॥ १०१ ॥

सत्यसंधस्य तच्छ्रुत्वा प्रियं प्रीतस्य भाषितम् ।
कृष्णस्य साक्षात् त्रिदिवं जगाम त्रिदशेश्वरः ॥ १०२ ॥

सत्यप्रतिज्ञ श्रीकृष्णके प्रसन्नतापूर्वक कहे गये इस प्रिय-वचनको सुनकर देवेश्वर इन्द्र साक्षात् स्वर्गलोकको चले गये ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि गोविन्दाभिषेके एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें गोविन्दका अभिषेकविषयक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णका अलौकिक चरित्र देखकर आशङ्कित हुए गोपोंका उनसे प्रश्न और श्रीकृष्णद्वारा उत्तर तथा उनकी रासलीलाका संक्षेपसे वर्णन

वैशम्पायन उवाच

गते शक्रे ततः कृष्णः पूज्यमानो व्रजालयैः ।
गोवर्धनधरः श्रीमान् विवेश व्रजमेव ह ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! देवराज इन्द्रके चले जानेपर व्रजवासियोंद्वारा पूजित एवं प्रशंसित होते हुए गोवर्धनधारी श्रीमान् कृष्णने व्रजमें ही प्रवेश किया ॥ १ ॥

तस्य वृद्धाभिनन्दन्ति ज्ञातयश्च सहोषिताः ।
धन्याः स्मोऽनुगृहीताः स्मस्त्वद्वृत्तेन नयेन च ॥ २ ॥
गावो वर्षभयात् तीर्णा वयं तीर्णा महाभयात् ।
तव प्रसादाद् गोविन्द देवतुल्यपराक्रम ॥ ३ ॥

वहाँ बड़े-बूढ़े गोप और साथ रहनेवाले जाति-भाई उनका अभिनन्दन करते हुए बोले—'देवतुल्य पराक्रमी गोविन्द ! हम धन्य हैं । तुमने अपने व्यवहार और नीतिसे हमलोगोंपर महान् अनुग्रह किया है । तुम्हारे प्रसादसे गौओंका वर्षाके भयसे उद्धार हुआ और हमलोग भी महान् भयसे पार हो गये ॥ २-३ ॥

अमानुषाणि कर्माणि तव पश्याम गोपते ।
धारणेनास्य शैलस्य विद्मस्त्वां कृष्ण दैवतम् ॥ ४ ॥

'गोपते ! हम तुम्हारे सभी कर्म अलौकिक देख रहे हैं । श्रीकृष्ण ! इस गोवर्धन पर्वतको हाथपर धारण करनेसे हम यह अच्छी तरह समझ गये हैं कि तुम मनुष्य नहीं देवता हो ॥ ४ ॥

कस्त्वं भवसि रुद्राणां मरुतां च महाबलः ।
वसूनां वा किमर्थं च वसुदेवः पिता तव ॥ ५ ॥

'तुम्हारा बल महान् है । बताओ, तुम रुद्रों, मरुद्गणों अथवा वसुओंमेंसे कौन हो ? ये नन्दजी तुम्हारे पिता कैसे हो गये ? ॥ ५ ॥

बलं च बाल्ये क्रीडा च जन्म चास्मासु गर्हितम् ।
कृष्ण दिव्या च ते चेष्टा शङ्कितानि मनांसि नः ॥ ६ ॥

'श्रीकृष्ण ! बचपनमें ही तुममें ऐसा अलौकिक बल है, तुम्हारे खेल भी अलौकिक हैं तथा तुम्हारी सारी चेष्टा दिव्य है । परंतु हमलोगोंमें जो तुम्हारा जन्म हुआ, यही निन्दित है । (तुम्हें ऐसा निन्दित जन्म कैसे प्राप्त हुआ ?) इन बातोंको सोचकर हमारे हृदय शंकित हो उठे हैं ॥ ६ ॥

किमर्थं गोपवेषेण रमसेऽस्मासु गर्हितम् ।
लोकपालोपमश्चैव गास्त्वं किं परिरक्षसि ॥ ७ ॥

---

१. हरिवंशपर्वके ५५ वें अध्यायमें वसुदेव और नन्दको अभिन्न बताया गया है । एक ही कश्यपके दो रूप हैं वसुदेव और नन्द । अतः कहीं-कहीं नन्दके लिये भी वसुदेव नामका प्रयोग हुआ है; इसीलिये यहाँ 'वसुदेव, पदका नन्द अर्थ किया गया है ।

'तुम किसलिये गोपवेश धारण करके हमलोगोंमें रम रहे हो। यह कार्य तो तुम्हारे लिये गर्हित है। तुम लोकपालोंके समान शक्तिशाली होकर भी यहाँ क्यों गौओंकी चरवाही और रखवाली करते हो॥ ७॥

देवो वा दानवो वा त्वं यक्षो गन्धर्व एव वा।
अस्माकं बान्धवो जातो योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते॥८॥

'तुम देवता हो या दानव ? यक्ष हो अथवा गन्धर्व ? जो हमारे बन्धु-बान्धवके रूपमें उत्पन्न हुए हो ! कृष्ण ! तुम जो हो सो हो, तुम्हें हमारा नमस्कार है॥ ८॥

केनचिद् यदि कार्येण वससीह यदृच्छया।
वयं तवानुगाः सर्वे भवन्तं शरणं गताः॥ ९॥

'यदि किसी कार्यविशेषसे तुम स्वेच्छापूर्वक यहाँ रह रहे हो तो रहो। हम सब लोग तुम्हारे अनुगामी सेवक हैं और तुम्हारी शरणमें आये हैं'॥ ९॥

वैशम्पायन उवाच

गोपानां वचनं श्रुत्वा कृष्णः पद्मदलेक्षणः।
प्रत्युवाच स्मितं कृत्वा ज्ञातीन् सर्वान् समागतान्॥१०॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! गोपोंकी यह बात सुनकर विकसित कमलदलके समान नेत्रवाले श्रीकृष्णने मुसकराकर उन समस्त समागत बन्धुओंको इस प्रकार उत्तर दिया—॥ १०॥

मन्यन्ते मां यथा सर्वे भवन्तो भीमविक्रमम्।
तथाहं नावमन्तव्यः स्वजातीयोऽस्मि बान्धवः॥ ११॥

'आप सब लोग मुझे जैसा भयानक पराक्रमी समझ रहे हैं, वैसा मानकर मेरा अनादर न करें। मैं तो आपलोगोंका सजातीय भाई-बन्धु ही हूँ॥ ११॥

यदि त्ववश्यं श्रोतव्यं कालः सम्प्रतिपाल्यताम्।
ततो भवन्तः श्रोष्यन्ति मां च द्रक्ष्यन्ति तत्त्वतः॥ १२॥

'यदि मेरे विषयमें आपलोगोंको यथार्थ बात अवश्य ही सुननी है तो इसके लिये उपयुक्त समयकी प्रतीक्षा करें, फिर आप मेरे विषयमें सुनेंगे और मैं वास्तवमें कैसा हूँ, यह देख और समझ सकेंगे॥ १२॥

यद्ययं भवतां श्लाघ्यो बान्धवो देवसप्रभः।
परिज्ञानेन किं कार्यं यद्येषोऽनुग्रहो मम॥ १३॥

'यदि देवोपम कान्तिसे युक्त यह बालक आपलोगोंका स्पृहणीय भाई-बन्धु है तो इसके विषयमें विशेष छानबीन करनेकी क्या आवश्यकता है। यदि आप मौन ही रहें तो यह मेरे ऊपर आपका महान् अनुग्रह होगा'॥ १३॥

एवमुक्तास्तु ते गोपा वसुदेवसुतेन वै।
बद्धमौना दिशः सर्वे भेजिरे पिहिताननाः॥ १४॥

वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर उन गोपोंने अपना मुँह बंद कर लिया और मौन होकर वे सब-के-सब विभिन्न दिशाओंमें चले गये॥ १४॥

कृष्णस्तु यौवनं दृष्ट्वा निशि चन्द्रमसो वनम्।
शारदीं च निशां रम्यां मनश्चक्रे रतिं प्रति॥ १५॥

इधर श्रीकृष्णने पूर्णिमाकी रातमें चन्द्रमाका यौवन (अधिक कान्तिमान् रूप), रमणीय वन तथा शरत्-कालकी सुरम्य रजनीको देखकर मनमें रमण करनेकी इच्छा की॥१५॥

स करीषाङ्गरागासु व्रजरथ्यासु वीर्यवान्।
वृषाणां जातदर्पाणां युद्धानि समयोजयत्॥ १६॥

पराक्रमी श्रीकृष्णने सूखे गोबरके चूर्णका अङ्गराग-सा धारण करनेवाली व्रजकी गलियोंमें बलोन्मत्त साँड़ोंके युद्धका आयोजन किया॥ १६॥

गोपालांश्च बलोदग्रान् योधयामास वीर्यवान्।
वने स वीरो गाश्चैव जग्राह ग्राहवद् विभुः॥ १७॥

उन बलशाली वीर भगवान् गोविन्दने वनमें बढ़े-चढ़े गोपोंमें परस्पर मल्लयुद्ध भी करवाया और वनमें घूमती हुई गौओंको ग्राहकी भाँति पकड़नेकी भी लीला की॥ १७॥

युवतीर्गोपकन्याश्च रात्रौ संकाल्य कालवित्।
कैशोरकं मानयन् वै सह ताभिर्मुमोद ह॥ १८॥

समयको पहचाननेवाले वे श्रीहरि अपनी किशोरावस्थाका आदर करते हुए युवती गोपकन्याओंको रातके समय वनमें ले गये और उन सबके साथ आमोद-प्रमोद करने लगे॥१८॥

तास्तस्य वदनं कान्तं कान्ता गोपस्त्रियो निशि।
पिबन्ति नयनाक्षेपैर्गां गतं शशिनं यथा॥ १९॥

निशाकालमें वे कान्तिमती गोपाङ्गनाएँ प्रियतम श्रीकृष्णके कमनीय मुखका, जो भूतलपर उतरे हुए द्वितीय चन्द्रमाके समान प्रतीत होता था, अपने नेत्रोंद्वारा कटाक्षपातपूर्वक पान करने लगीं॥ १९॥

हरितालार्द्रपीतेन स कौशेयेन वाससा।
वसानो भद्रवसनं कृष्णः कान्ततरोऽभवत्॥ २०॥

उस समय हरितालके पङ्ककी भाँति पीले रेशमी पीताम्बरसे अपने अङ्गोंको आच्छादित करनेवाले माङ्गलिक वस्त्रधारी श्रीकृष्ण और भी अधिक मनोहर प्रतीत हो रहे थे॥२०॥

स बद्धाङ्गदनिर्व्यूहश्चित्रया वनमालया।
शोभमानो हि गोविन्दः शोभयामास तद् व्रजम्॥२१॥

बाहोंमें भुजबंद बाँधे और मस्तकपर मुकुट धारण किये, विचित्र वनमालासे सुशोभित गोविन्द उस व्रजकी शोभा बढ़ा रहे थे॥ २१॥

नाम दामोदरेत्येवं गोपकन्यास्तदाब्रुवन्।
विचित्रं चरितं घोषे दृष्ट्वा तत् तस्य भास्वतः॥ २२॥

गोष्ठमें उन तेजस्वी श्रीकृष्णके विचित्र चरित्रोंको देखकर गोपकिशोरियाँ उस समय उन्हें 'दामोदर' कहकर पुकारती थीं॥ २२॥

तास्तं पयोधरोत्तुङ्गैरुरोभिः समपीडयन्।
भ्रामिताक्षैश्च वदनैर्निरीक्षन्ते वराङ्गनाः॥ २३॥

वे सुन्दरी गोपियाँ उन्हें पीन पयोधरोंसे युक्त ऊँचे वक्षःस्थलसे लगाकर गाढ़ आलिङ्गन करतीं और बारंबार आँखें घुमाकर उन्हींकी ओर मुँह करके उनका रूप निहारती रहती थीं ॥ २३ ॥

ता वार्यमाणाः पतिभिर्मातृभिर्भ्रातृभिस्तथा ।
कृष्णं गोपाङ्गना रात्रौ मृगयन्ते रतिप्रियाः ॥ २४ ॥

पति, पिता-माता तथा भाइयोंके मना करनेपर भी वे गोपाङ्गनाएँ रात्रिके समय श्रीकृष्णको ढूँढ़ती फिरती थीं; क्योंकि श्रीकृष्णविषयक रति उन्हें बहुत प्रिय थी ॥ २४ ॥

तास्तु पङ्क्तीकृताः सर्वा रमयन्ति मनोरमम् ।
गायन्त्यः कृष्णचरितं द्वन्द्वशो गोपकन्यकाः ॥ २५ ॥

वे सारी गोप-किशोरियाँ मण्डलाकार पंक्ति बनाकर खड़ी हो जातीं और उनमेंसे प्रत्येक गोपीके दोनों ओर श्रीकृष्ण विराजमान होते थे। इस प्रकार गोपी-कृष्णकी युगल-जोड़ी बनाकर वे सुन्दरियाँ श्रीकृष्णके चरित्रका गान करती हुई उन्हें आनन्द प्रदान करती थीं ॥ २५ ॥

कृष्णलीलानुकारिण्यः कृष्णप्रणिहितेक्षणाः ।
कृष्णस्य गतिगामिन्यस्तरुण्यस्ता वराङ्गनाः ॥ २६ ॥

उनकी आँखें श्रीकृष्णकी ओर ही लगी रहती थीं। वे तरुण-अवस्थावाली सुन्दरियाँ श्रीकृष्णकी लीलाका अनुकरण करतीं तथा उन्हींके समान चलती थीं ॥ २६ ॥

वनेषु तालहस्ताग्रैः कूजयन्त्यस्तथापराः ।
चेरुर्वै चरितं तस्य कृष्णस्य व्रजयोषितः ॥ २७ ॥

व्रजकी दूसरी गोपियाँ हाथोंके अग्रभागसे ताल दे-देकर श्रीकृष्णकी लीलाओंका गान करती हुई वनोंमें विचरती थीं।२७।

तास्तस्य नृत्यं गीतं च विलासस्मितवीक्षितम् ।
मुदिताश्चानुकुर्वन्त्यः क्रीडन्ति व्रजयोषितः ॥ २८ ॥

वे व्रजाङ्गनाएँ बड़ी प्रसन्नताके साथ श्रीकृष्णके नृत्य, गीत, विलास, मुसकराहट तथा चञ्चल चितवनकी नकल करती हुई भाँति-भाँतिकी क्रीडाएँ करती रहती थीं ॥ २८ ॥

भावनिस्पन्दमधुरं गायन्त्यस्ता वराङ्गनाः ।
व्रजं गताः सुखं चेरुर्दामोदरपरायणाः ॥ २९ ॥

वे गोपसुन्दरियाँ व्रजमण्डल (वन आदि) में जाकर ऐसे गीत गाती थीं, जिनसे उनका श्रीकृष्णविषयक प्रगाढ अनुराग स्पष्टतः प्रकट होने लगता था और इसीसे उन गीतोंका माधुर्य बढ़ जाता था। इस प्रकार दामोदरके ही चिन्तनमें तत्पर रहकर वे वहाँ सुखपूर्वक विचरती थीं ॥२९॥

करीषपांसुदिग्धाङ्ग्यस्ताः कृष्णमनुवव्रिरे ।
रमयन्त्यो यथा नागं सम्प्रमत्तं करेणवः ॥ ३० ॥

उनके अङ्गोंमें अङ्गरागकी जगह गोबरके चूर्ण लगे होते थे। वे श्रीकृष्णको आनन्द प्रदान करती हुई उन्हें उसी तरह घेरे रहती थीं, जैसे हथिनियाँ मदमत्त गजराजको ॥ ३० ॥

तमन्या भावविकचैर्नेत्रैः प्रहसिताननाः ।
पिबन्त्यतृप्तवनिताः कृष्णं कृष्णमृगेक्षणाः ॥ ३१ ॥

कृष्णसार मृगके सदृश नेत्रोंवाली कितनी ही अन्य गोपवनिताएँ अनुरागसे उत्फुल्ल नेत्रोंद्वारा प्यारे श्यामसुन्दरकी रूपसुधाका पान किया करती थीं, किंतु उससे तृप्त नहीं होती थीं। उनके मुखपर सदा ही हँसी खेलती रहती थी॥३१॥

मुखमस्याब्जसंकाशं तृषिता गोपकन्यकाः ।
रत्यन्तरगता रात्रौ पिबन्ति रसलालसाः ॥ ३२ ॥

वे गोपकन्याएँ श्रीकृष्ण-रसके लिये प्यासी रहती थीं। उनके मनमें उस रसके आस्वादनके लिये निरन्तर लालसा बनी रहती थी; अतः वे रात्रिके समय रासलीलामें सम्मिलित हो उनके मुखारविन्दकी मकरन्द-सुधाका पान करती थीं ॥ ३२ ॥

हा हेति कुर्वतस्तस्य प्रहृष्टास्ता वराङ्गनाः ।
जगृहुर्निस्सृतां वाणीं नाम्ना दामोदरेरिताम् ॥ ३३ ॥

जब वे 'हा राधे ! हा व्रजगोपियो !' इत्यादि कहकर उन्हें पुकारते, उस समय उनका आह्वान सुनकर वे गोपसुन्दरियाँ हर्षसे खिल उठती थीं। दामोदरके मुखसे निकली हुई उस मधुर वाणीको वे सादर ग्रहण करती थीं ॥ ३३ ॥

तासां ग्रथितसीमन्ता रतिं नीत्वाऽऽकुलीकृताः ।
चारु विस्रंसिरे केशाः कुचाग्रे गोपयोषिताम् ॥ ३४ ॥

उनके गुँथे हुए सीमन्तवाले केश रासलीलामें पहुँचकर आकुलताकी अवस्थामें खुल जाते और गोपियोंके कुचाग्रभागपर बिखर जाते थे। उस समय भी वे मनोहर ही लगते थे ॥ ३४ ॥

एवं स कृष्णो गोपीनां चक्रवालैरलंकृतः ।
शारदीषु सचन्द्रासु निशासु मुमुदे सुखी ॥ ३५ ॥

इस प्रकार शरत्कालकी चाँदनी रातोंमें गोपीमण्डलसे अलंकृत हुए श्रीकृष्ण सुखपूर्वक रासक्रीडा करके आनन्दमग्न हो जाते थे ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि रासक्रीडायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें रासक्रीडाविषयक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

अरिष्टासुरका वध

वैशम्पायन उवाच

प्रदोषार्धे कदाचित् तु कृष्णे रतिपरायणे ।
त्रासयन् समदो गोष्ठमरिष्टः प्रत्यदृश्यत ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! एक दिन

आधा प्रदोष (अर्थात् डेढ़ घंटा रात) बीतनेपर जब भगवान् श्रीकृष्ण रासक्रीडामें संलग्न थे, उसी समय सारे व्रजको त्रास देता हुआ मतवाला अरिष्टासुर वहाँ दिखायी दिया ॥ १॥

निर्वाणाङ्गारमेघाभस्तीक्ष्णशृङ्गोऽर्कलोचनः ।
क्षुरतीक्ष्णाग्रचरणः कालः काल इवापरः ॥ २ ॥

वह बुझे हुए अङ्गार (कोयले) तथा मेघोंके समान काला था, उसके सींग तीखे थे और आँखें सूर्यके समान तेजस्विनी दिखायी देती थीं। उसके चरणोंके अग्रभाग अथवा खुर छुरेके समान तेज थे। वह काला दैत्य दूसरे कालके समान जान पड़ता था ॥ २ ॥

लेलिहानः सनिष्पेषं जिह्वयोष्ठौ पुनः पुनः ।
गर्विताविद्धलाङ्गूलः कठिनस्कन्धबन्धनः ॥ ३ ॥

वह दाँतसे ओठोंको चबाता और जिह्वासे उन्हें बारंबार चाटता था। उसने बलके घमंडमें आकर पूँछ उठा रखी थी तथा उसके कंधेका कुब्बड़ बहुत ही कठोर था ॥ ३ ॥

ककुदोदग्रनिर्माणः प्रमाणाद् दुरतिक्रमः ।
शकृन्मूत्रोपलिप्ताङ्गो गवामुद्वेजनो भृशम् ॥ ४ ॥

वह अपने कंधेके कुब्बड़से चोट करके बने-बनाये महल आदिको धराशायी कर देता था। उसकी ऊँचाई इतनी थी कि उसे लाँघकर जाना किसीके लिये भी बहुत कठिन था। उसके पिछले अङ्ग गोबर और मूतसे लिप्त हो रहे थे तथा वह गौओंको अत्यन्त उद्वेगमें डाल देता था ॥ ४ ॥

महाकटिः स्थूलमुखो दृढजानुर्महोदरः ।
विषाणावल्गितगतिर्लम्बता कण्ठचर्मणा ॥ ५ ॥

उसका कटिभाग विशाल था और मुख स्थूल था, दोनों घुटने सुदृढ़ थे और पेट बहुत बड़ा था। उसके गलेका कंबल लटक रहा था और वह सींग नीचे किये उछलता-कूदता आगे बढ़ रहा था ॥ ५ ॥

गवारोहेषु चपलस्तरुघाताङ्किताननः ।
युद्धसज्जविषाणाग्रो द्विषद्वृषभसूदनः ॥ ६ ॥

वह गौओंके पिछले भागपर चढ़नेके लिये चञ्चल हो रहा था। वृक्षोंसे टक्कर लेनेके कारण उसके मस्तकमें कई जगह घट्ठे पड़ गये थे। वह अपने सींगोंके अग्रभागको सदा जूझनेके लिये उद्यत रखता था तथा विपक्षी बैलोंको मार डालता था ॥ ६ ॥

अरिष्टो नाम हि गवामरिष्टो दारुणाकृतिः ।
दैत्यो वृषभरूपेण गोष्ठान् विपरिधावति ॥ ७ ॥

भयानक आकारवाला वह अरिष्टासुर गौओंके लिये अरिष्टकारक ग्रह बन गया था। वह दैत्य बैलके रूपमें आकर सभी गोठोंमें दौड़ लगाया करता था ॥ ७ ॥

पातयानो गवां गर्भान् दृप्तो गच्छत्यनार्तवम् ।
भजमानश्च चपलो गृष्टीः सम्प्रचचार ह ॥ ८ ॥

वह गौओंके गर्भ गिरा देता था। मदमत्त होकर बिना ऋतुके ही उनसे समागम करता तथा वह चञ्चल दैत्य तुरंतकी ब्यायी हुई गौओंका भी उपभोग करनेके लिये उनके पीछे पड़ा रहता था ॥ ८ ॥

शृङ्गप्रहरणो रौद्रः प्रहरन् गोषु दुर्मदः ।
गोष्ठेषु न रतिं लेभे विना युद्धेन गोवृषः ॥ ९ ॥

सींग ही उसके आयुध थे। वह बड़ा भयंकर एवं दुर्मद प्रतीत होता था। गौओंपर प्रहार करना उसका नित्यका काम था। वह बृषभरूपधारी दैत्य गोठोंमें पहुँचकर युद्ध किये बिना संतुष्ट नहीं होता था॥ ९ ॥

कस्यचित् त्वथ कालस्य स वृषः केशवाग्रतः ।
आजगाम बलोदग्रो वैवस्वतवशे स्थितः ॥ १० ॥

किसी समय यमराजके वशमें पड़ा हुआ वह उत्कट बलशाली बृषभरूपधारी असुर भगवान् श्रीकृष्णके सामने आया ॥ १० ॥

स तत्र गास्तु प्रसभं बाधमानो मदोत्कटः ।
चकार निर्वृषं गोष्ठं निर्वत्सशिशुपुङ्गवम् ॥ ११ ॥

मदमत्त अरिष्टासुर वहाँ आते ही बलपूर्वक गौओंको सताने लगा। उसने उस गोष्ठको बैल, बछड़ों तथा बालकोंसे सूना कर दिया ॥ ११ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु गावः कृष्णसमीपगाः ।
त्रासयामास दुष्टात्मा वैवस्वतवशे स्थितः ॥ १२ ॥

इसी समय कालके वशमें पड़ा हुआ वह दुष्टात्मा दैत्य श्रीकृष्णके पास खड़ी हुई गौओंको त्रास देने लगा ॥ १२ ॥

सेन्द्राशनिरिवाम्भोदो नर्दमानो महासुरः ।
तालशब्देन तं कृष्णः सिंहनादैश्च मोहयन् ॥ १३ ॥

उस समय गर्जना करता हुआ वह महान् असुर इन्द्रके वज्रकी गड़गड़ाहटके साथ आकाशमें छाये हुए मेघके समान जान पड़ता था। उसे मोहमें डालनेके लिये श्रीकृष्णने ताल ठोंका और सिंहनाद किया ॥ १३ ॥

अभ्यधावत गोविन्दो दैत्यं वृषभरूपिणम् ।
स कृष्णं गोवृषो दृष्ट्वा हृष्टलाङ्गूललोचनः ॥ १४ ॥

फिर वे भगवान् गोविन्द उस बृषभरूपधारी दैत्यकी ओर दौड़े। श्रीकृष्णको देखते ही उस बैलने हर्षमें भरकर अपनी पूँछ उठायी और उसके नेत्र भी खिल उठे ॥ १४ ॥

रोषितस्तालशब्देन युद्धाकाङ्क्षी ननर्द ह ।
तमापतन्तं दुर्वृत्तं दृष्ट्वा वृषभरूपिणम् ।
तस्मात् स्थानान्न व्यचलत् कृष्णो गिरिरिवाचलः ॥ १५ ॥

उनके ताल ठोंकनेके शब्दसे वह रोषमें भरा हुआ था, अतः युद्धकी इच्छासे गर्जना करने लगा। बैलका रूप धारण करके अपनी ओर आते हुए उस दुराचारी दैत्यको देखकर भी श्रीकृष्ण उस स्थानसे तनिक भी इधर-उधर नहीं हुए, पर्वतके समान अविचल-भावसे खड़े रह गये ॥ १५ ॥

स कुक्षौ वृषभो दृष्टिं प्रणिधाय धृताननः।
कृष्णस्य निधनाकाङ्क्षी तूर्णमभ्युत्पपात ह ॥ १६ ॥

उस वृषभने श्रीकृष्णके पेटमें दृष्टि जमाकर उधर ही मस्तक भिड़ाया और उनके वधकी इच्छा रखकर तुरंत ही उछला ॥ १६ ॥

तमापतन्तं वेगेन प्रतिजग्राह दुर्द्धरम्।
कृष्णः कृष्णाञ्जननिभो वृषं प्रति वृषोपमः ॥ १७ ॥

काले अञ्जनके समान श्याम-शरीरवाले श्रीकृष्ण उस दैत्यका सामना करनेके लिये विपक्षी साँड़के समान प्रतीत होते थे। उन्होंने वेगसे अपनी ओर आते हुए उस दुर्धर दैत्यको पकड़ लिया ॥ १७ ॥

स संसक्तस्तु कृष्णो वै वृषेणेव महावृषः।
मुमोच वक्त्रजं फेनं नस्तश्चाथ सशब्दवत् ॥ १८ ॥

फिर तो श्रीकृष्ण उसके साथ इस तरह उलझ गये, जैसे एक साँड़के साथ दूसरा महासाँड़ भिड़ गया हो। अरिष्टासुर हाँफता हुआ अपनी नाक और मुखसे फेन छोड़ने लगा ॥

तावन्योन्यावरुद्धाङ्गौ युद्धे कृष्णवृषावुभौ।
ऋतुमेंघसमये संसक्ताविव तोयदौ ॥ १९ ॥

श्रीकृष्ण और अरिष्टासुर दोनोंने उस युद्धमें एक दूसरेके शरीरको अवरुद्ध कर लिया था। उस समय वे दोनों वर्षा-कालमें परस्पर सटे हुए दो मेघोंके समान शोभा पा रहे थे ॥

तस्य दर्पबलं हत्वा कृत्वा शृङ्गान्तरे पदम्।
निपीडयदरिष्टस्य कण्ठं क्लिन्नमिवाम्बरम् ॥ २० ॥

इस प्रकार उसके बलको क्षीण करके घमंड चूर कर देनेके बाद श्रीकृष्णने उसके दोनों सींगोंके बीचमें एक पैर रखा और जैसे भीगे हुए कपड़ेको निचोड़ा जाता है, उसी प्रकार अरिष्टासुरके गलेको दबाकर मरोड़ दिया ॥ २० ॥

शृङ्गं चास्य पुनः सव्यमुत्पाट्य यमदण्डवत्।
तेनैव प्राहरद् वक्त्रे स ममार भृशं हतः ॥ २१ ॥

तत्पश्चात् उसके बायें सींगको जो यमदण्डके समान जान पड़ता था, उखाड़ लिया और उसीके द्वारा उसके मुखपर प्रहार किया। उसकी गहरी चोट खाकर अरिष्टासुर मर गया ॥

स भिन्नशृङ्गो भग्नास्यो भग्नस्कन्धश्च दानवः।
पपात रुधिरोद्गारी साम्बुधार इवाम्बुदः ॥ २२ ॥

उसका सींग उखड़ गया, मुख कुचल दिया गया और गर्दन टूट गयी, उस दशामें वह दानव जलकी धारा बरसाने-वाले मेघके समान अपने मुखसे रक्तवमन करता हुआ गिर पड़ा ॥

गोविन्देन हतं दृष्ट्वा दृप्तं वृषभदानवम्।
साधु साध्विति भूतानि तत्कर्मास्याभितुष्टुवुः ॥ २३ ॥

मदसे उन्मत्त रहनेवाले उस वृषभरूपी दानवको भगवान् गोविन्दके हाथसे मारा गया देख सब प्राणी साधु-साधु कहकर उनके उस कर्मकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ॥ २३ ॥

स चोपेन्द्रो वृषं हत्वा कान्तचन्द्रे निशामुखे।
अरविन्दाभनयनः पुनरेव ररास ह ॥ २४ ॥

उस प्रदोषकालमें जब कि चन्द्रमाकी कमनीय कान्ति बढ़ी हुई थी, कमलनयन भगवान् उपेन्द्र वृषभासुरको मारकर पुनः रासक्रीड़ामें संलग्न हो गये ॥ २४ ॥

तेऽपि गोवृत्तयः सर्वे कृष्णं कमललोचनम्।
उपासांचक्रिरे हृष्टाः सर्वे शक्रमिवामराः ॥ २५ ॥

गौएँ ही जिनकी आजीविका हैं, वे समस्त गोप भी हर्षमें भरकर कमलनयन श्रीकृष्णकी उसी तरह उपासना करने लगे, जैसे सम्पूर्ण देवता इन्द्रकी आराधना करते हैं ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि वृषभासुरवधे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें वृषभासुरका वधविषयक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

कंसकी आशङ्का, उसका रात्रिके समय यदुवंशियोंको बुलाकर भरी सभामें श्रीकृष्ण और विष्णुके प्रभावको बताना, वसुदेवपर कठोर आक्षेप करना तथा अक्रूरको श्रीकृष्ण आदिको बुला लानेके लिये व्रजमें जानेकी आज्ञा देना

वैशम्पायन उवाच

कृष्णं व्रजगतं श्रुत्वा वर्धमानमिवानलम्।
उद्वेगमगमत् कंसः शङ्कमानस्ततो भयम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! भगवान् श्रीकृष्ण व्रजमें जाकर अग्निकी भाँति बढ़ते, उत्तरोत्तर प्रज्वलित होते जा रहे हैं, यह सुनकर कंसको बड़ा उद्वेग हुआ। उसके मनमें श्रीकृष्णसे भय प्राप्त होनेकी शङ्का दृढ़ होने लगी ॥ १ ॥

पूतनायां हतायां च कालिये च पराजिते।
धेनुके प्रलयं नीते प्रलम्बे च निपातिते ॥ २ ॥
धृते गोवर्धने शैले विफले शक्रशासने।
गोषु त्रातासु च तथा स्पृहणीयेन कर्मणा ॥ ३ ॥
ककुद्मिनि हतेऽरिष्टे गोपेषु मुदितेषु च।
दृश्यमाने विनाशे च संनिकृष्टे महाभये ॥ ४ ॥
कर्षणे वृक्षयोश्चैव शकटस्य तथैव च।
अचिन्त्यं कर्म तच्छ्रुत्वा वर्धमानेषु शत्रुषु ॥ ५ ॥

प्राप्तारिष्टमिवात्मानं मेने स मथुरेश्वरः ।
विसंज्ञेन्द्रियभूतात्मा गतासुप्रतिमो बभौ ॥ ६ ॥

पूतना मारी गयी, कालिय-नाग परास्त हुआ, धेनुकासुर कालके गालमें भेज दिया गया, प्रलम्बासुरको मार गिराया गया, गोवर्धन पहाड़को श्रीकृष्णने हाथपर उठा लिया, इन्द्र-का शासन निष्फल हो गया, वैसे स्पृहणीय कर्मके द्वारा सम्पूर्ण गौओंकी रक्षा कर ली गयी, ऊँचे ककुदवाले अरिष्टासुरको मार डाला गया, गोपगण आनन्दमें मग्न रहते हैं और अपना (कंसका) महाभयंकर विनाशकाल संनिकट दिखायी देने लगा है, यमलार्जुन वृक्षोंका ओखली खींचते समय टूट जाना, शकटका भङ्ग हो जाना आदि असम्भव कार्य सम्भव हो गये, शत्रु निरन्तर बढ़ रहे हैं और उनके द्वारा अचिन्त्य कर्म सम्पादित होने लगा है, यह सब सुनकर मथुरापति कंसने यह मान लिया कि अब मेरे ऊपर अरिष्ट आया ही चाहता है। इससे उसकी इन्द्रियाँ, शरीर और मन-बुद्धि सब-के-सब अचेत हो गये तथा वह प्राणहीन-सा प्रतीत होने लगा ॥

ततो ज्ञातीन् समानाय्य पितरं चोग्रशासनः ।
निशि स्तिमितमूकायां मथुरायां जनाधिपः ॥ ७ ॥

तदनन्तर भयंकर शासनवाले राजा कंसने रात्रिके नीरव एवं निस्तब्ध-कालमें मथुरापुरीके भीतर रहनेवाले समस्त बन्धु-बान्धवों तथा अपने पिता उग्रसेनको भी बुलाया ॥ ७ ॥

वसुदेवं च देवाभं कङ्कं चाहूय यादवम् ।
सत्यकं दारुकं चैव कङ्कावरजमेव च ॥ ८ ॥
भोजं वैतरणं चैव विकद्रुं च महाबलम् ।
भयशङ्खं च धर्मज्ञं विपृथुं च पृथुश्रियम् ॥ ९ ॥
बभ्रुं दानपतिं चैव कृतवर्माणमेव च ।
भूरितेजसमक्षोभ्यं भूरिश्रवसमेव च ॥ १० ॥
एतान् स यादवान् सर्वानाभाष्य शृणुतेति च ।
उग्रसेनसुतो राजा प्रोवाच मथुरेश्वरः ॥ ११ ॥

देवताके समान तेजस्वी वसुदेव, यदुकुलनन्दन कङ्क, सत्यक, दारुक, कङ्कके छोटे भाई, भोज, वैतरण, महाबली विकद्रु, धर्मज्ञ भयशङ्ख, पृथुल राजलक्ष्मीसे सम्पन्न विपृथु, दानपति बभ्रु(अक्रूर),कृतवर्मा,अक्षोभ्य भूरितेजा और भूरिश्रवा– इन सब यादवोंको बुलाकर सबको सम्बोधित करके मथुराके स्वामी उग्रसेनकुमार राजा कंसने कहा—'बन्धुओ ! आपलोग सुनें ॥ ८–११ ॥

भवन्तः सर्वकार्यज्ञा वेदेषु परिनिष्ठिताः ।
न्यायवृत्तान्तकुशलास्त्रिवर्गस्य प्रवर्तकाः ॥ १२ ॥
कर्तव्यानां च कर्तारो लोकस्य विबुधोपमाः ।
तस्थिवांसो महावृत्ते निष्कम्पा इव पर्वताः ॥ १३ ॥

'आप समस्त कर्तव्य-कर्मोंके ज्ञाता, वेदोंके परिनिष्ठित विद्वान्, न्यायोचित बर्तावमें कुशल, धर्म, अर्थ और कामके प्रवर्तक, कर्तव्य-पालक, जगत्के लिये देवताओंके समान माननीय, महान् आचार-विचारमें दृढ़तापूर्वक स्थिर रहनेवाले और पर्वतके समान अविचल हैं ॥ १२-१३ ॥

अदम्भवृत्तयः सर्वे सर्वे गुरुकुलोषिताः ।
राजमन्त्रधराः सर्वे सर्वे धनुषि पारगाः ॥ १४ ॥

'आप सब लोग पाखण्डपूर्ण वृत्तिसे दूर रहते हैं। सबने गुरुकुलमें रहकर शिक्षा पायी है। आप सब लोग राजाकी गुप्त मन्त्रणाको सुरक्षित रखनेवाले तथा धनुर्वेदमें पारङ्गत हैं॥

यशःप्रदीपा लोकानां वेदार्थानां विचक्षणः ।
आश्रमाणां निसर्गज्ञा वर्णानां क्रमपारगाः ॥ १५ ॥

'आपके यशरूपी प्रदीप सम्पूर्ण जगत्में अपना प्रकाश फैला रहे हैं। आपलोग वेदोंके तात्पर्यका प्रतिपादन करनेमें समर्थ हैं। आश्रमोंके जो स्वाभाविक कर्म हैं, उन्हें आप जानते हैं। चारों वर्णोंके जो क्रमिक धर्म हैं, उनके आपलोग पारङ्गत विद्वान् हैं ॥ १५ ॥

प्रवक्तारः सुनियतां नेतारो नयदर्शिनाम् ।
भेत्तारः परराष्ट्राणां त्रातारः शरणार्थिनाम् ॥ १६ ॥

'आपलोग उत्तम विधियोंके वक्ता, नीतिदर्शी पुरुषोंके भी नेता, शत्रुराष्ट्रोंके गुप्त रहस्योंका भेदन करनेवाले तथा शरणार्थियोंके संरक्षक हैं ॥ १६ ॥

एवमक्षतचारित्रैः श्रीमद्भिरुदितोदितैः ।
द्यौरप्यनुगृहीता स्याद् भवद्भिः किं पुनर्मही ॥ १७ ॥

'आपके सदाचारमें कभी आँच नहीं आने पायी है! आपलोग श्रीसम्पन्न हैं तथा श्रेष्ठ पुरुषोंकी चर्चा होते समय आपलोगोंके नाम बारंबार लिये जाते हैं। आपलोग चाहें तो स्वर्गलोकपर भी अनुग्रह कर सकते हैं, फिर इस भूतलकी तो बात ही क्या है ? ॥ १७ ॥

ऋषीणामिव वो वृत्तं प्रभावो मरुतामिव ।
रुद्राणामिव वः क्रोधो दीप्तिरङ्गिरसामिव ॥ १८ ॥

'आपका आचार ऋषियोंके, प्रभाव मरुद्गणोंके, क्रोध रुद्रोंके और तेज या दीप्ति अग्नियोंके समान है ॥ १८ ॥

व्यावर्तमानं सुमहद् भवद्भिः ख्यातकीर्तिभिः ।
धृतं यदुकुलं वीरैर्भूतलं पर्वतैरिव ॥ १९ ॥

'यह महान् यदुकुल जब अपनी मर्यादासे भ्रष्ट हो रहा था, उस समय विख्यात कीर्तिवाले आप-जैसे वीरोंने ही इसे मर्यादामें स्थापित किया, ठीक उसी तरह जैसे पर्वतोंने इस भूतलको दृढ़तापूर्वक धारण कर रखा है ॥ १९ ॥

एवं भवत्सु युक्तेषु मम चित्तानुवर्तिषु ।
वर्धमानो ममानर्थो भवद्भिः किमुपेक्षितः ॥ २० ॥

'आपलोग ऐसे सुयोग्य हैं और सदा मेरे अनुकूल चलते हैं, परंतु इस समय आपलोगोंके होते हुए भी मेरे अनर्थ (संकट) की वृद्धि हो रही है, पता नहीं आपने उसकी उपेक्षा कैसे कर दी है ॥ २० ॥

एष कृष्ण इति ख्यातो नन्दगोपसुतो व्रजे ।
वर्धमान इवाम्भोधिर्मूलं नः परिकृन्तति ॥ २१ ॥

'व्रजमें कृष्ण नामसे विख्यात जो यह नन्द गोपका बेटा है, वह (मर्यादाको लाँघकर) बढ़नेवाले समुद्रकी भाँति बढ़कर हमारी जड़ काट रहा है ॥ २१ ॥

अनमात्यस्य शून्यस्य चारान्धस्य ममैव तु।
कारणान्नन्दगोपस्य स सुतो गोपितो गृहे ॥ २२ ॥

'मेरे पास कोई सुयोग्य मन्त्री नहीं है, मैं हृदय एवं विचारसे शून्य हूँ तथा गुप्तचररूपी नेत्रसे हीन होनेके कारण अंधा हो गया हूँ। मेरे इसी दोषके कारण नन्द-गोपका वह पुत्र अपने घरमें सुरक्षित रह सका है ॥ २२ ॥

उपेक्षित इव व्याधिः पूर्यमाण इवाम्बुदः।
नदन्मेघ इवोष्णान्ते स दुरात्मा विवर्धते ॥ २३ ॥

'वह दुरात्मा उपेक्षित रोग तथा वर्षा ऋतुमें निरन्तर जलसे भरनेवाले गरजते हुए मेघकी भाँति बढ़ता जा रहा है॥

तस्य नाहं गतिं जाने न योगं न पराक्रमम्।
नन्दगोपस्य भवने जातस्याद्भुतकर्मणः ॥ २४ ॥

'नन्दके घरमें उत्पन्न हुए उस अद्भुतकर्मा बालकका आश्रय क्या है? यह मैं नहीं जानता। उसे वशमें करनेका उपाय क्या है, इसका भी मुझे पता नहीं तथा उसमें कितना पराक्रम है, यह भी अच्छी तरह ज्ञात नहीं हो सका ॥ २४ ॥

किं तद्भूतं समुद्भूतं देवापत्यं न विद्महे।
अतिदैवैरमानुष्यैः कर्मभिः सोऽनुमीयते ॥ २५ ॥

'पता नहीं कौन-सा भूत उसके रूपमें उत्पन्न हुआ है। वह किसी देवताकी संतान है, यह बात भी मेरी समझमें नहीं आती। उसके जो कर्म हैं, वे देवताओं और मनुष्योंके लिये असाध्य हैं। उन कर्मोंसे ही यह अनुमान होता है कि वह देवताओंसे भी अधिक शक्तिशाली है ॥ २५ ॥

पूतना शकुनी बाल्ये शिशुनोत्तानशायिना।
स्तनपानेप्सुना पीता प्राणैः सह दुरासदा ॥ २६ ॥

'पूतना नामवाली पक्षिणी एक दुर्जय राक्षसी थी। वह जब इसे बाल्यावस्थामें दूध पिलाने गयी, उस समय यह खाटपर उत्तान सोनेवाला शिशुमात्र था, परंतु उसका स्तनपान करनेकी इच्छासे जब इसने मुँह लगाया, तब उसके प्राणोंके साथ यह उसे ही पी गया ॥ २६ ॥

यमुनाया ह्रदे नागः कालियो दमितस्तथा।
रसातलचरो नीतः क्षणेनादर्शनं ह्रदात् ॥ २७ ॥

'यमुनाके कुण्डमें जो कालिय नाग रहता था, उसका भी इसने दमन कर दिया और क्षणभरमें उस कुण्डसे उसको अदृश्य करके रसातलचारी बना दिया ॥ २७ ॥

नन्दगोपसुतो योगं कृत्वा स पुनरुत्थितः।
धेनुकस्तालशिखरात् पातितो जीवितं विना ॥ २८ ॥

'उस नागके हट जानेका उचित उपाय करके नन्द-गोपका यह पुत्र पुनः जलसे बाहर निकल आया। धेनुकासुरको ताड़के शिखरसे गिराकर प्राणशून्य कर दिया ॥ २८ ॥

प्रलम्बं यं मृधे देवा न शेकुरतिवर्तितुम्।
बालेन मुष्टिनैकेन स हतः प्राकृतो यथा ॥ २९ ॥

'युद्धमें देवता भी जिस प्रलम्बासुरका सामना करने या उसे हरा देनेकी शक्ति नहीं रखते थे, उसे इस बालकने केवल एक मुक्केसे मारकर साधारण मनुष्यकी भाँति, कालके गालमें भेज दिया ॥ २९ ॥

वासवस्योत्सवं भङ्क्त्वा वर्षं वासवरोषजम्।
निर्जित्य गोगृहार्थाय धृतो गोवर्धनो गिरिः ॥ ३० ॥

'इन्द्रके उत्सवको भङ्ग करके उनके रोषसे होनेवाली वर्षापर भी काबू पा लिया और गौओंके लिये सुरक्षित घर प्रस्तुत करनेके लिये गोवर्धन पर्वतको हाथपर उठा लिया ॥

हतस्त्वरिष्टो बलवान् निःशृङ्गश्च कृतो व्रजे।
अबालो बाल्यमास्थाय रमते शिशुलीलया ॥ ३१ ॥

'व्रजमें बलवान् अरिष्टासुरको मार डाला और उसका सींग उखाड़ लिया। यह वास्तवमें बालक नहीं है, केवल बाल्यावस्थाका आश्रय लेकर बालकों-जैसा खेल कर रहा है ॥ ३१ ॥

प्रबन्धः कर्मणामेवं तस्य गोव्रजवासिनः।
संनिकृष्टं भयं चैव केशिनो मम च ध्रुवम् ॥ ३२ ॥

'गौओंके व्रजमें निवास करनेवाले इस बालकके कर्मोंकी जो इस प्रकार परम्परा चल रही है, उसे देखते हुए मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मुझपर और केशीपर भी निश्चय ही भय आनेवाला है और वह भय दूर नहीं अत्यन्त निकट है ॥ ३२ ॥

भूतपूर्वश्च मे मृत्युः सततं पूर्वदैहिकः।
युद्धाकाङ्क्षी च स यथा तिष्ठतीह ममाग्रतः ॥ ३३ ॥

'पूर्वजन्ममें इस शरीरके लिये जो भूतपूर्व मृत्यु था, वही इस समय भी युद्धकी अभिलाषा रखकर सदा मेरे सामने खड़ा रहता है ॥ ३३ ॥

क्व च गोपत्वमशुभं मानुष्यं मृत्युदुर्बलम्।
क्व च देवप्रभावेण क्रीडितव्यं व्रजे मम ॥ ३४ ॥

'कहाँ तो अशुभ गोपत्व और मौतकी दुर्बलता धारण करनेवाला मानव-शरीर तथा कहाँ उसका मेरे व्रजमें रहकर देवतुल्य प्रभावसे अद्भुत क्रीडा करना ॥ ३४ ॥

अहो नीचेन वपुषाच्छादयित्वाऽऽत्मनो वपुः।
कोऽप्येष रमते देवः श्मशानस्थ इवानलः ॥ ३५ ॥

'अहो! कितने आश्चर्यकी बात है कि यह कोई देवता अपने स्वरूपको नीच गोपवेशमें छिपाकर श्मशानमें स्थित हुई अग्निके समान यहाँ रम रहा है ॥ ३५ ॥

श्रूयते हि पुरा विष्णुः सुराणां कारणान्तरे।
वामनेन तु रूपेण जहार पृथिवीमिमाम् ॥ ३६ ॥

'सुना जाता है कि पूर्वकालमें विष्णुने देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये वामनरूप धारण करके राजा बलिके हाथसे इस पृथ्वीको छीन लिया था ॥ ३६ ॥

कृत्वा केसरिणो रूपं विष्णुना प्रभविष्णुना ।
हतो हिरण्यकशिपुर्दानवानां पितामहः ॥ ३७ ॥

'उन्हीं प्रभावशाली विष्णुने सिंहका-सा रूप बनाकर दानवोंके पितामह हिरण्यकशिपुका वध कर डाला था ॥ ३७ ॥

अचिन्त्यरूपमास्थाय श्वेतशैलस्य मूर्धनि ।
भवेन च्याविता दैत्याः पुरा तत्त्रिपुरं घ्नता ॥ ३८ ॥

'इसी तरह पूर्वकालमें रुद्र (रूपधारी विष्णु) ने अचिन्त्य रूपका आश्रय लेकर श्वेताचलके शिखरपर स्थित हो त्रिपुरका नाश करके दैत्योंको वहाँसे नीचे गिरा दिया था ॥ ३८ ॥

चालितो गुरुपुत्रेण भार्गवोऽङ्गिरसेन वै ।
प्रविश्य दार्दुरीं मायामनावृष्टिं चकार ह ॥ ३९ ॥

'बृहस्पतिके पुत्र कचने दार्दुरी मायामें प्रविष्ट होकर शुक्राचार्यको अपनी प्रतिज्ञासे विचलित कर दिया था। उन्होंने ही दैत्योंके जगत्‌में 'अनावृष्टि' उत्पन्न कर दी थी। (जिससे दैत्योंकी बड़ी भारी हानि हुई*। ये कच भी विष्णुकी ही विभूति थे) ॥ ३९ ॥

अनन्तः शाश्वतो देवः सहस्रशिरसोऽव्ययः ।
वाराहं रूपमास्थाय प्रोज्जहारार्णवान्महीम् ॥ ४० ॥

'वे विष्णु अनन्त, सनातन देव, सहस्रों मस्तकोंसे विभूषित और अविनाशी हैं। उन्होंने वाराहरूप धारण करके समुद्रसे इस पृथ्वीका उद्धार किया ॥ ४० ॥

अमृते निर्मिते पूर्वं विष्णुः स्त्रीरूपमास्थितः ।
सुराणामसुराणां च युद्धं चक्रे सुदारुणम् ॥ ४१ ॥

'पूर्वकालमें जब अमृत प्रकट हुआ था, तब विष्णुने ही मोहिनी स्त्रीका रूप धारण करके देवताओं और असुरोंमें अत्यन्त भयंकर युद्ध करवाया था ॥ ४१ ॥

अमृतार्थे पुरा चापि देवदैत्यसमागमे ।
दधार मन्दरं विष्णुरकूपार इति श्रुतिः ॥ ४२ ॥

'अमृत निकालनेके लिये सम्मिलितरूपसे प्रयत्न करनेके उद्देश्यसे जब देवता और दैत्य परस्पर मिले थे, उस समय श्रीविष्णुने ही कच्छपरूप धारण करके समुद्रके भीतर मन्दराचलको अपनी पीठपर धारण किया था—ऐसा सुना जाता है ॥ ४२ ॥

वपुर्वामनमास्थाय नन्दनीयं पुरा बलेः ।
त्रिभिः क्रमैस्तु त्रींल्लोकाञ्जहार त्रिदिवालयम् ॥ ४३ ॥

'उन्होंने ही पहले अभिनन्दनीय वामनरूप धारण करके तीन पगोंद्वारा त्रिलोकीको नापकर बलिके हाथसे स्वर्गलोकका राज्य ले लिया था ॥ ४३ ॥

चतुर्धा तेजसो भागं कृत्वा दाशरथे गृहे ।
स एव रामसंज्ञो वै रावणं व्यनशत् तदा ॥ ४४ ॥

'वे ही राजा दशरथके घरमें अपने तेजको चार भागोंमें विभक्त करके अवतीर्ण हुए और 'राम' नामसे प्रसिद्ध हुए, जिन्होंने उस समय रावणका वध किया था ॥ ४४ ॥

एवमेष निकृत्या वै तत्तद्रूपमुपागतः ।
साधयत्यात्मनः कार्यं सुराणामर्थसिद्धये ॥ ४५ ॥

'इस प्रकार ये विष्णु छलसे भिन्न-भिन्न रूप धारण करके देवताओंका मनोरथ सिद्ध करनेके लिये अपना काम बना लेते हैं ॥ ४५ ॥

तदेष नूनं विष्णुर्वा शक्रो वा मरुतां पतिः ।
मत्साधनेच्छया प्राप्तो नारदो मां यदुक्तवान् ॥ ४६ ॥

'अतः यह श्रीकृष्ण निश्चय ही विष्णु है अथवा देवराज इन्द्र। यह मेरा वध करनेकी इच्छासे ही व्रजभूमिमें आया है; जैसा कि देवर्षि नारदने मुझे बताया था ॥ ४६ ॥

अत्र मे शङ्कते बुद्धिर्वसुदेवं प्रति ध्रुवा ।
अस्य बुद्धिविशेषेण वयं कातरतां गताः ॥ ४७ ॥

'इस विषयमें मेरी बुद्धि निश्चय ही वसुदेवके प्रति संदेह करने लगी है। इस वसुदेवकी विशिष्ट बुद्धिसे हम अवश्य कातर हो उठे हैं ॥ ४७ ॥

अहं हि खट्वाङ्गवने नारदेन समागतः ।
द्वितीयं स हि मां विप्रः पुनरेवाब्रवीद् वचः ॥ ४८ ॥

'मैं खट्वाङ्गवनमें जब दूसरी बार नारदसे मिला था, तब उस ब्राह्मणने मुझसे पुनः इस प्रकार कहा— ॥ ४८ ॥

यस्त्वया हि कृतो यत्नः कंस गर्भकृते महान् ।
वसुदेवेन ते रात्रौ तत्कर्म विफलीकृतम् ॥ ४९ ॥

'कंस ! तुमने जो देवकीका गर्भ नष्ट कर देनेके लिये महान् प्रयत्न आरम्भ किया था, तुम्हारे उस कर्मको रातके समय वसुदेवने निष्फल कर दिया ॥ ४९ ॥

दारिका या त्वया रात्रौ शिलायां कंस पातिता ।
तां यशोदासुतां विद्धि कृष्णं च वसुदेवजम् ॥ ५० ॥

'कंस ! तुमने रातके समय जिस कन्याको शिलापर दे मारा था, उसे यशोदाकी पुत्री समझो और वहाँ जो श्रीकृष्ण है, वही वसुदेव (तथा देवकी) का पुत्र है ॥ ५० ॥

रात्रौ व्यावर्तितावेतौ गर्भौ तव वधाय वै ।
वसुदेवेन संधाय मित्ररूपेण शत्रुणा ॥ ५१ ॥

'तुम्हारे मित्र-रूपधारी शत्रु वसुदेवने रातके समय छलपूर्वक तुम्हारे वधके लिये इन दोनों बच्चोंकी अदला-बदली कर ली थी ॥ ५१ ॥

---

* जैसे मेढ़क बारंबार मरकर उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार कच भी दैत्योंद्वारा बारंबार मारे जानेपर जीवित हुए। यही उनका दार्दुरी मायामें प्रवेश है। एक बार दानवोंने कचको मारकर युक्तिसे शुक्राचार्यके पेटमें पहुँचा दिया। उनकी जीवन-रक्षाके लिये विवश होकर शुक्राचार्यको 'संजीवनी विद्या किसीको भी नहीं सिखाऊँगा' अपनी यह प्रतिज्ञा छोड़नी पड़ी और उन्होंने कचको विद्या सिखा दी। उसके प्रभावसे कच गुरुजीका पेट फाड़कर निकल आये। फिर उन्होंने गुरुजीको भी जीवित कर दिया। दैत्योंने जो ब्रह्महत्या की, उसी पापसे उनके राज्यमें वर्षा बंद हो गयी।

सा तु कन्या यशोदाया विन्ध्ये पर्वतसत्तमे ।
हत्वा शुम्भनिशुम्भौ द्वौ दानवौ नगचारिणौ ॥ ५२ ॥

'यशोदाकी वह कन्या पर्वतोंमें श्रेष्ठ विन्ध्यगिरिपर जाकर रहती है। वहाँ उस पर्वतपर विचरनेवाले जो शुम्भ और निशुम्भ नामक दो दानव थे, उनका वध करके प्रतिष्ठित हुई है ॥ ५२ ॥

कृताभिषेका वरदा भूतसंघनिषेविता ।
अर्च्यते दस्युभिर्घोरैर्महाबलिपशुप्रिया ॥ ५३ ॥

'प्राणियोंके समुदायद्वारा सेवित वह देवी उपासकोंको अभीष्ट वर देनेवाली है। उसे महती पूजन-सामग्री और वहाँ विचरनेवाले पशु प्रिय हैं। वहाँ भयानक दस्यु उस देवीका अभिषेक करके पूजन करते हैं ॥ ५३ ॥

सुरापिशितपूर्णाभ्यां कुम्भाभ्यामुपशोभिता ।
मयूराङ्गदचित्रैश्च बर्हभारैर्विभूषिता ॥ ५४ ॥

'वह मधु तथा फलके गूदोंसे भरे हुए दो कलशोंसे सुशोभित होती है। मोरपंखके बने हुए विचित्र भुजदण्ड तथा मोरोंकी पाँखसे ही बनाये गये दूसरे-दूसरे आभूषण उस देवीके अलंकार हैं ॥ ५४ ॥

हृष्टकुक्कुटसंनादं वनं वायसनादितम् ।
मृगसंघैश्च सम्पूर्णमविरुद्धैश्च पक्षिभिः ॥ ५५ ॥
सिंहव्याघ्रवराहाणां नादेन प्रतिनादितम् ।
वृक्षगम्भीरनिबिडं कान्तारैः सर्वतो वृतम् ॥ ५६ ॥
दिव्यभृङ्गारुचमरैरादर्शैरुपशोभितम् ।
देवतूर्यनिनादैश्च शतशः प्रतिनादितम् ॥ ५७ ॥
स्थानं तस्या नगे विन्ध्ये निर्मितं स्वेन तेजसा ।
रिपूणां त्रासजननी नित्यं तत्र मनोरमे ॥ ५८ ॥
वसते परमप्रीता दैवतैरपि पूजिता ।

'उस विन्ध्यपर्वतपर उसके अपने ही तेजसे निर्मित हुआ स्थान एक सुन्दर वन है, जहाँ हर्षमें भरे हुए मुर्गोंका कलनाद सुनायी देता है। कौओंके काँव-काँवकी आवाज भी गूँजती रहती है। मृग आदि पशुओंके समुदाय भी वहाँ भरे रहते हैं तथा मनके अनुकूल पक्षियोंसे भी वह स्थान सुशोभित रहता है। वहाँ सिंहों, व्याघ्रों और वराहोंकी गर्जनाका गम्भीर शब्द प्रतिध्वनित होता रहता है। वृक्षोंके बाहुल्यसे वह गम्भीर एवं गहन प्रतीत होता है। सब ओरसे दुर्गम स्थानोंद्वारा वह घिरा हुआ है। दिव्य गड़ुआ, चवँर और दर्पण देवीके उस स्थानकी शोभा बढ़ाते हैं। सैकड़ों देववाद्योंकी ध्वनियोंसे वह वन गूँजता रहता है। शत्रुओंको त्रास देनेवाली वह देवी सदा उसी मनोरम वनमें प्रसन्नतापूर्वक निवास करती है। वहाँ देवता भी उसकी पूजा करते हैं ॥ ५५—५८½ ॥

यस्त्वयं नन्दगोपस्य कृष्ण इत्युच्यते सुतः ॥ ५९ ॥
अत्र मे नारदः प्राह सुमहत्कर्मकारणम् ।
द्वितीयो वसुदेवाद् वै वासुदेवो भविष्यति ॥ ६० ॥
स हि ते सहजो मृत्युर्बान्धवश्च भविष्यति ।

'यह कृष्ण नामसे प्रसिद्ध जो नन्दगोपका पुत्र बताया जाता है, उसके विषयमें नारदजीने मुझसे कहा है कि 'व्रजमें जो पूतनावध आदि बड़े-बड़े कर्म हो रहे हैं, उनका प्रधान कारण वही है। वह वसुदेवसे उत्पन्न होनेवाला दूसरा पुत्र है, इसलिये वासुदेव नामसे विख्यात होगा। वह तुम्हारी सहज मृत्यु तथा बान्धव भी होगा ॥ ५९-६०½ ॥

स एव वासुदेवो वै वसुदेवसुतो बली ।
बान्धवो धर्मतो मह्यं हृदयेनान्तको रिपुः ॥ ६१ ॥

'वसुदेवका वह बलवान् पुत्र वासुदेव ही धर्मतः मेरा बान्धव है; किंतु हृदयसे विनाशकारी शत्रु बना है ॥ ६१ ॥

यथा हि वायसो मूर्ध्नि पद्भ्यां यस्यावतिष्ठति ।
नेत्रे तुदति तस्यैव वक्त्रेणामिषगृद्धिना ॥ ६२ ॥
वसुदेवस्तथैवायं सपुत्रज्ञातिबान्धवः ।
छिनत्ति मम मूलानि भुङ्क्ते च मम पार्श्वतः ॥ ६३ ॥

'जैसे कौवा जिसके सिरपर दोनों पंजे रखकर बैठता है, अपनी मांसलोलुप चोंचसे उसीके दोनों नेत्रोंपर प्रहार करता है; उसी प्रकार ये वसुदेव भी अपने पुत्र और भाई-बन्धुओं-सहित मेरे ही पास खाते हैं और मेरी ही जड़ काटते हैं ॥ ६२-६३ ॥

भ्रूणहत्यापि संतार्या गोवधः स्त्रीवधोऽपि वा ।
न कृतघ्नस्य लोकोऽस्ति बान्धवस्य विशेषतः ॥ ६४ ॥

'भ्रूणहत्याके पापसे मनुष्य तर सकता है, गोवध अथवा स्त्रीवधके पापको भी प्रायश्चित्त आदिके द्वारा लाँघा जा सकता है; परंतु जो कृतघ्न है, विशेषतः अपने भाई-बन्धुपर कृतघ्नता करता है, उसके लिये कोई लोक नहीं है—उसका कहीं भी ठिकाना नहीं लगता ॥ ६४ ॥

पतितानुगतं मार्गं निषेवत्यचिरेण सः ।
यः कृतघ्नोऽनुबन्धेन प्रीतिं वहति दारुणाम् ॥ ६५ ॥

'जो भीतरसे कृतघ्न रहकर अपना काम बनानेके लिये ऊपरसे भयानक प्रीतिका बोझ ढोता है, वह शीघ्र ही पतितोंके पथका आश्रय लेता है ॥ ६५ ॥

नरकाध्युषितः पन्था गन्तव्यस्तेन दारुणः ।
अपापे पापहृदयो यः पापमनुतिष्ठति ॥ ६६ ॥

'जो पापहीनके प्रति अपने हृदयमें पापपूर्ण भाव लेकर पापका ही बर्ताव करता है, उसे नरकके भयंकर मार्गपर जाना पड़ता है ॥ ६६ ॥

अहं वा स्वजनः श्लाघ्यः स वा श्लाघ्यतरः सुतः ।
नियमैर्गुणवृत्तेन त्वया बान्धवकाम्यया ॥ ६७ ॥

'नियम, गुण और आचार—इनको सामने रखकर तुम्हें किसीको मित्र बनानेकी इच्छा करनी चाहिये। बतलाओ, तुम मुझ स्वजनको स्पृहणीय मानते हो अथवा अपने उस पुत्रको मुझसे भी अधिक श्लाघ्य समझते हो ? ॥ ६७ ॥

हस्तिनां कलहे घोरे वधमृच्छन्ति वीरुधः।
युद्धव्युपरमे ते तु सहाश्नन्ति महावने ॥ ६८ ॥
बान्धवानामपि तथा भेदकाले समुत्थिते।
वध्यते योऽन्तरप्रेप्सुः स्वजनो यदि वेतरः ॥ ६९ ॥

'हाथियोंमें भयंकर युद्ध छिड़ जानेपर घास-पात और लता-बेलें नष्ट होती हैं; फिर युद्धका विराम होनेपर वे हाथी उस महान् वनमें साथ-साथ खाते-पीते हैं; उसी प्रकार भाई-बन्धुओंमें भेद उपस्थित होनेपर जो छिद्र ढूँढ़नेवाला होता है, वही मारा जाता है; भले ही वह स्वजन हो या और कोई ॥ ६८-६९ ॥

कालस्त्वं हि विनाशाय मया पुष्टो विजानता।
वसुदेव कुलस्यास्य यद् विरोधयसे भृशम् ॥ ७० ॥

'वसुदेव ! तुम इस कुलके काल हो। मैंने अपने विनाशके लिये ही तुम्हें जान-बूझकर पाला-पोसा है। तभी तो तुम मुझसे अत्यन्त विरोध बढ़ा रहे हो ॥ ७० ॥

अमर्षी वैरशीलश्च सदा पापमतिः शठः।
स्थाने यदुकुलं मूढ शोचनीयं त्वया कृतम् ॥ ७१ ॥

'ओ मूढ ! तुम अमर्षशील (असहिष्णु) और स्वभावतः वैर रखनेवाले हो। तुम्हारी बुद्धि सदा पापमें ही लगी रहती है। तुम शठ हो। तुमने जो इस यदुकुलकी शोचनीय अवस्था कर दी है, वह उचित ही है ॥ ७१ ॥

वसुदेव वृथा वृद्ध यन्मया त्वं पुरस्कृतः।
श्वेतेन शिरसा वृद्धो नैव वर्षशतैर्भवेत् ॥ ७२ ॥
यस्य बुद्धिः परिणता स वै वृद्धतरो नृणाम् ॥ ७३ ॥

'बूढ़े वसुदेव ! मैंने जो तुम्हें पुरस्कृत किया—सदा अगुआ बनाकर रक्खा, वह सब व्यर्थ हो गया। सिरके बाल सफेद हो जायँ और सौ वर्षोंकी आयु हो जाय—इतनेसे ही कोई वृद्ध (श्रेष्ठ) नहीं हो सकता, जिसकी बुद्धि परिपक्व हो, वही मनुष्योंमें वृद्धतर (श्रेष्ठतम या बड़ा-बूढ़ा) माना गया है ॥ ७२-७३ ॥

त्वं च कर्कशशीलश्च बुद्ध्या च न बहुश्रुतः।
केवलं वयसा वृद्धो यथा शरदि तोयदः ॥ ७४ ॥

'तुम्हारा स्वभाव तो कर्कश (क्रूर) है। तुम बुद्धिसे भी बहुश्रुत (अधिक बातोंके जानकार) नहीं हो। शरद् ऋतुके बादलकी भाँति केवल अवस्थामें ही बूढ़े हो (अनुभवमें नहीं)।७४।

किं च त्वं साधु जानीषे वसुदेव वृथामते।
मृते कंसे मम सुतो मथुरां पालयिष्यति ॥ ७५ ॥

'इतना ही नहीं, व्यर्थ बुद्धि रखनेवाले वसुदेव ! तुम यह अच्छी तरह समझने लगे हो कि कंसके मर जानेपर मेरा बेटा मथुराका पालन करेगा—वही यहाँका राजा होगा ॥ ७५ ॥

छिन्नाशस्त्वं वृथावृद्धो मिथ्या त्वेवं विचारितम्।
जिजीविषुर्न सोऽप्यस्ति योऽवतिष्ठेन्ममाग्रतः ॥ ७६ ॥

'परंतु तुम्हारी यह आशा छिन्न-भिन्न हो जायगी। तुम व्यर्थ ही बूढ़े हुए। तुमने झूठे ही ऐसा विचार किया है। अरे ! जो मेरे सामने प्रतिद्वन्द्वी बनकर खड़ा हो, उसके विषयमें यह समझना चाहिये कि वह जीवित रहना नहीं चाहता ॥ ७६ ॥

प्रहर्तुकामो विश्वस्ते यस्त्वं दुष्टेन चेतसा।
तत् ते प्रतिकरिष्येऽहं पुत्रयोस्तव पश्यतः ॥ ७७ ॥

'मैंने सदा तुम्हारा विश्वास किया और तुमने दुष्टतापूर्ण चित्तसे मुझपर प्रहार करनेकी अभिलाषा की। इसका बदला मैं तुम्हारे दोनों पुत्रोंसे लूँगा और तुम उसे अपनी आँखों देखोगे ॥ ७७ ॥

न मे वृद्धवधः कश्चिद् द्विजस्त्रीवध एव च।
कृतपूर्वः करिष्ये वा विशेषेण तु बान्धवे ॥ ७८ ॥

'मैंने पहले कभी भी किसी बूढ़ेका, ब्राह्मणका अथवा स्त्रीका वध नहीं किया है तथा न आगे ही ऐसा करूँगा; विशेषतः अपने बन्धु-बान्धवपर तो मैं हाथ उठाऊँगा ही नहीं ॥ ७८ ॥

इह त्वं जातसंवृद्धो मम पित्रा विवर्धितः।
पितृष्वसुश्च मे भर्ता यदूनां प्रथमो गुरुः ॥ ७९ ॥

'वसुदेव ! तुम यहीं पैदा हुए, यहीं बढ़े और मेरे पिताने ही तुम्हें पाल-पोसकर बड़ा किया। तुम मेरी चचेरी बहिनके पति हो और यदुवंशियोंमें सर्वश्रेष्ठ गुरुरूप माने जाते हो ॥ ७९ ॥

कुले महति विख्यातः प्रथिते चक्रवर्तिनाम्।
गुर्वर्थे पूजितः सद्भिर्महद्भिर्धर्मबुद्धिभिः ॥ ८० ॥

'चक्रवर्तियोंके[1] सुविख्यात एवं महान् कुलमें तुम्हारा जन्म हुआ, तुम स्वयं भी प्रसिद्ध हो तथा धर्मविषयक बुद्धि रखनेवाले श्रेष्ठ महापुरुषोंने उसी गौरवके कारण तुम्हारा पूजन, आदर-सत्कार किया है ॥ ८० ॥

किं करिष्यामहे सर्वे सत्सु वक्तव्यतां गताः।
यदूनां यूथमुख्यस्य यस्य ते वृत्तमीदृशम् ॥ ८१ ॥

'तुम यदुवंशियोंके समुदायमें मुख्य हो। जब तुम्हारा आचार-व्यवहार ऐसा है (तो औरोंका क्या कहा जाय ?)। क्या करें, हम सब लोग केवल तुम्हारे कारण सत्पुरुषोंके समाजमें निन्दाके पात्र बन गये ॥ ८१ ॥

मद्वधो वा जयो वाथ वसुदेवस्य दुर्नयैः।
सत्सु यास्यन्ति पुरुषा यदूनामवगुण्ठिताः ॥ ८२ ॥

'वसुदेवकी दुर्नीतिसे मेरा वध हो अथवा विजय; आजसे यदुकुलके पुरुष सज्जनोंके समाजमें अपना मुँह ढँककर जायँगे ॥ ८२ ॥

त्वया हि मद्वधोपायं तर्कमाणेन वै मृधे।
अविश्वास्यं कृतं कर्म वाच्याश्च यदवः कृताः ॥ ८३ ॥

'वसुदेव ! तुमने युद्धमें मेरे वधका उपाय सोचते-सोचते

---

[1] यद्यपि ययातिके शापसे यदुकुलका कोई भी पुरुष चक्रवर्ती राजा नहीं हुआ तथापि यहाँ चक्रवर्तीके लक्षण-विशेषसे सम्पन्न पुरुषोंको ही चक्रवर्ती कहा गया है। वह लक्षण इस प्रकार है—यस्य मूर्धनि दृश्येत विना छत्रेण भूपतेः। पद्मानुकारिणी छाया तमाहुश्चक्रवर्तिनम्॥ अर्थात् जिस राजाके मस्तकपर बिना छत्र लगाये ही कमल-जैसी छाया दिखायी दे, उसे चक्रवर्ती कहते हैं।

ऐसा कर्म कर डाला, जिसके कारण यादवोंके ऊपरसे सबका विश्वास उठ गया। तुमने यदुवंशियोंको कलङ्कित करके निन्दाके योग्य बना दिया ॥ ८३ ॥

अशाम्यं वैरमुत्पन्नं मम कृष्णस्य चोभयोः।
शान्तिमेकतरे शान्तिं गते यास्यन्ति यादवाः ॥ ८४ ॥

'अब तो हम दोनोंमें—मुझ कंस और कृष्णमें कभी शान्त न होनेवाला वैर उत्पन्न हो गया है। हममेंसे किसी एक व्यक्तिके शान्त होने—मर जानेपर ही यादवोंको शान्ति मिलेगी ॥ ८४ ॥

गच्छ दानपते क्षिप्रं ताविहानयितुं व्रजात्।
नन्दगोपं च गोपांश्च करदान् मम शासनात् ॥ ८५ ॥

'दानपते अक्रूर! तुम मेरे आदेशसे वसुदेवके उन दोनों पुत्रोंको, नन्दगोपको तथा मुझे कर देनेवाले अन्य गोपोंको भी व्रजसे यहाँ बुला लानेके लिये शीघ्र जाओ ॥ ८५ ॥

वाच्यश्च नन्दगोपो वै करमादाय वार्षिकम्।
शीघ्रमागच्छ नगरं गोपैः सह समन्वितः ॥ ८६ ॥

'नन्दगोपसे कह देना कि तुम हमारा वार्षिक कर लेकर गोपोंके साथ शीघ्र ही मथुरापुरीको चलो ॥ ८६ ॥

कृष्णसंकर्षणौ चैव वसुदेवसुतावुभौ।
द्रष्टुमिच्छति वै कंसः सभृत्यः सपुरोहितः ॥ ८७ ॥

'वसुदेवके ये दोनों पुत्र जो श्रीकृष्ण और संकर्षण हैं, इन्हें सेवकों और पुरोहितोंसहित महाराज कंस देखना चाहते हैं ॥ ८७ ॥

एतौ युद्धविदौ रङ्गे कालनिर्माणयोधिनौ।
दृढौ च कृतिनौ चैव शृणोमि व्यायतोद्यमौ ॥ ८८ ॥

'सुनता हूँ कि ये दोनों अखाड़ेमें लड़ना जानते हैं और सामयिक युद्धकी कलामें कुशल हैं। इन्होंने दीर्घकालसे इसके लिये विशेष यत्न और परिश्रम किया है तथा ये दोनों भाई सुदृढ़ और चतुर हैं ॥ ८८ ॥

अस्माकमपि मल्लौ द्वौ सज्जौ युद्धकृतोत्सवौ।
ताभ्यां सह नियोत्स्येते तौ युद्धकुशलावुभौ ॥ ८९ ॥

'हमारे यहाँ भी दो पहलवान लड़ाईके लिये तैयार हैं। इन्हें लड़ने-भिड़नेमें बड़ा आनन्द आता है। वे दोनों ही युद्धमें कुशल हैं, जो उन दोनों श्रीकृष्ण और संकर्षणके साथ युद्ध करेंगे ॥ ८९ ॥

द्रष्टव्यौ च मयावश्यं बालौ तावमरोपमौ।
पितृष्वसुः सुतौ मुख्यौ व्रजवासौ वनेचरौ ॥ ९० ॥

'वे दोनों देवोपम बालक मेरी चचेरी बहिनके प्रधान पुत्र हैं, जो इस समय व्रजमें रहते और वनमें विचरते हैं। मुझे अवश्य उन दोनोंको देखना चाहिये ॥ ९० ॥

वक्तव्यं च व्रजे तस्मिन् समीपे व्रजवासिनाम्।
राजा धनुर्मखं नाम कारयिष्यति वै सुखी ॥ ९१ ॥

'उस व्रजमें जाकर व्रजवासियोंके समीप तुम्हें यह कहना चाहिये कि सुखी राजा कंस धनुर्यज्ञका उत्सव करायेंगे ॥ ९१ ॥

संनिकृष्टे वने ते तु निवसन्तु यथासुखम्।
जनस्यामन्त्रितस्यार्थे यथा स्यात् सर्वमव्ययम् ॥ ९२ ॥

'इस उत्सवमें आमन्त्रित हुए लोगोंको जिस प्रकार हर तरहसे आराम मिले, उसके लिये तुम सब व्रजवासी मथुराके समीपवर्ती वनमें आकर सुखपूर्वक रहो ॥ ९२ ॥

पयसः सर्पिषश्चैव दध्नो दध्युत्तरस्य च।
यथाकामप्रदानाय भोज्याधिश्रयणाय च ॥ ९३ ॥

'दूध, घी, दही और तक्र आदिको अतिथियोंकी इच्छाके अनुसार जुटाकर देना और खीर आदि बनानेके लिये जब जितने दूधको आगपर रखना आवश्यक हो, तब-तब उस आवश्यकताकी पूर्तिके लिये पर्याप्त दूध प्रस्तुत करना—इसी उद्देश्यसे तुम्हें नगरके निकट निवास करना है ॥ ९३ ॥

अक्रूर गच्छ शीघ्रं त्वं तावानय ममाज्ञया।
संकर्षणं च कृष्णं च द्रष्टुं कौतूहलं हि मे ॥ ९४ ॥

'अक्रूर! शीघ्र जाओ। मेरी आज्ञासे उन दोनों संकर्षण और कृष्णको यहाँ ले आओ। मुझे उन्हें देखनेके लिये बड़ी उत्कण्ठा है ॥ ९४ ॥

तयोरागमने प्रीतिः परमा मत्कृता भवेत्।
दृष्ट्वा तु तौ महावीर्यौ तद् विधास्यामि यद्धितम् ॥ ९५ ॥

'उनके आ जानेसे मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी, (जिसका श्रेय तुम्हें मिलेगा।) उन दोनों महापराक्रमी बालकोंको देखकर मैं वही करूँगा, जिसमें मेरा हित होगा ॥ ९५ ॥

शासनं यदि वा श्रुत्वा मम तौ परिभाषितम्।
नागच्छेतां यथाकालं निग्राह्यावपि तौ मम ॥ ९६ ॥

'मेरी यह आज्ञा तथा बातें सुनकर यदि वे दोनों यहाँ ठीक समयपर आनेको तैयार न हों तो मेरी रायमें वे बंदी बना लेनेके भी योग्य हैं (अर्थात् तुम उन्हें कैद करके भी ला सकते हो) ॥ ९६ ॥

सान्त्वमेव तु बालेषु प्रधानं प्रथमो नयः।
मधुरेणैव तौ मन्दौ स्वयमेवानयाशु वै ॥ ९७ ॥

'समझा-बुझाकर काम लेना ही बालकोंके प्रति प्रधान एवं प्रमुख नीति है; इसलिये तुम उन दोनों मूर्खोंको मीठी बातोंसे स्वयं ही राजी करके यहाँ शीघ्र ले आओ ॥ ९७ ॥

अक्रूर कुरु मे प्रीतिमेतां परमदुर्लभाम्।
यदि वा नोपजप्तोऽसि वसुदेवेन सुव्रत।
तथा कर्तव्यमेतद्धि यथा तावागमिष्यतः ॥ ९८ ॥

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले अक्रूर! यदि वसुदेवने तुम्हारे भी कान न भर दिये हों तो तुम मेरी इस परम दुर्लभ प्रीतिका सम्पादन करो। तुम्हें वैसा ही प्रयत्न करना चाहिये, जिससे वे दोनों स्वतः यहाँ आ जायँ' ॥ ९८ ॥

एवमाक्षिप्यमाणोऽपि वसुदेवो वसूपमः।
सागराकारमात्मानं निष्प्रकम्पमधारयत् ॥ ९९ ॥

कंसके इस प्रकार आक्षेप करनेपर भी वसुओंके समान शक्तिशाली वसुदेवने अपने समुद्र-जैसे हृदयको क्षुब्ध या कम्पित नहीं होने दिया। उसे धैर्यपूर्वक काबूमें रखा ॥ ९९ ॥

वाक्छल्यैस्ताड्यमानस्तु कंसेनादीर्घदर्शिना।
क्षमां मनसि संधाय नोत्तरं प्रत्यभाषत ॥ १०० ॥

अदूरदर्शी कंसने उन्हें वाग्बाणोंसे बार-बार घायल किया। फिर भी उन्होंने मनमें क्षमाभाव रखकर उसे उसकी बातोंका कोई उत्तर नहीं दिया ॥ १०० ॥

ये तु तं ददृशुस्तत्र क्षिप्यमाणमनेकधा।
धिग्धिगित्यसकृत् ते वै शनैरूचुरवाङ्मुखाः ॥१०१॥

जिन लोगोंने वहाँ वसुदेवजीपर बारंबार आक्षेप होता देखा, वे अपना मुँह नीचे किये धीरे-धीरे अनेक बार बोल उठे कि धिक्कार है, धिक्कार है ॥ १०१ ॥

अक्रूरस्तु महातेजा जानन् दिव्येन चक्षुषा।
जलं दृष्ट्वेव तृषितः प्रेषितः प्रीतिमानभूत् ॥१०२॥

महातेजस्वी अक्रूर अपनी दिव्य दृष्टिसे सब कुछ जानते थे (कि भगवान् श्रीकृष्ण कौन हैं और किसलिये अवतीर्ण हुए हैं); अतः जैसे प्यासा मनुष्य पानीको देखते ही प्रसन्न हो उठता है, उसी प्रकार उन्हें कंसके भेजनेपर बड़ी प्रसन्नताका अनुभव हुआ ॥ १०२ ॥

तस्मिन्नेव मुहूर्ते तु मथुरायाः स निर्ययौ।
प्रीतिमान् पुण्डरीकाक्षं द्रष्टुं दानपतिः स्वयम् ॥१०३॥

दानपति अक्रूर मन-ही-मन प्रसन्न हो स्वयं जाकर कमल-नयन श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये उसी मुहूर्तमें मथुरासे निकल पड़े ॥ १०३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि अक्रूरप्रस्थाने द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें अक्रूरका प्रस्थानविषयक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

अन्धकका कंसको मुँहतोड़ उत्तर

वैशम्पायन उवाच

क्षिप्तं यदुवृषं दृष्ट्वा सर्वे ते यदुपुङ्गवाः।
निपीड्य श्रवणान् हस्तैर्मेनिरे तं गतायुषम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! यदुकुलके उन सभी श्रेष्ठ पुरुषोंने यदुकुलतिलक वसुदेवपर आक्षेप होता देख शीघ्र ही हाथोंसे अपने-अपने कान बंद कर लिये। उन सबको यह निश्चय हो गया कि कंसकी आयु समाप्त हो चली है ॥ १ ॥

अन्धकोऽनुद्विग्नमना धैर्यादविकृतं वचः।
प्रोवाच वदतां श्रेष्ठः समाजे कंसमोजसा ॥ २ ॥

उसी समाजमें वक्ताओंमें श्रेष्ठ अन्धक भी थे, जिनके मनमें कंससे तनिक भी भय नहीं था। उन्होंने धैर्यसे अपनी वाणीको विकाररहित रखते हुए कंससे ओजस्वी स्वरमें कहा—॥

अश्लाघ्यो मे मतः पुत्र तवायं वाक्परिश्रमः।
अयुक्तो गर्हितः सद्भिर्बान्धवेषु विशेषतः ॥ ३ ॥

'बेटा ! तुमने जो इतनी देरतक भाषण देनेका कष्ट उठाया है, तुम्हारा यह परिश्रम मेरे मतमें आदर या प्रशंसाके योग्य नहीं है। यह सर्वथा अनुचित है। श्रेष्ठ पुरुषोंने इसकी सदा निन्दा की है। विशेषतः अपने बन्धु-बान्धवोंके प्रति ऐसा आक्षेप सर्वथा निन्दित है ॥ ३ ॥

अयादवो यदि भवाञ्छृणु तावद् यदुच्यते।
न हि त्वां यादवं वीर बलात् कुर्वन्ति यादवाः ॥ ४ ॥

'वीर ! अब इस समय मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे ध्यान देकर सुनो। यदि तुम यादव नहीं हो या अपनेको यादव नहीं मानते हो तो ये यदुवंशी तुम्हें जबरदस्ती यादव नहीं बना रहे हैं (और न बनाना चाहते हैं)॥ ४ ॥

अश्लाघ्या वृष्णयः पुत्र येषां त्वमनुशासिता।
इक्ष्वाकुवंशजो राजा विनिवृत्तः स्वयं सकृत् ॥ ५ ॥

'वत्स ! जिनके शासक तुम हो, वे वृष्णिवंशी आदर और प्रशंसाके योग्य हो ही नहीं सकते हैं। इक्ष्वाकुवंशमें एक प्रजापीड़क राजा उत्पन्न हुआ था, जो स्वयं ही किसी समय राज्य छोड़कर भाग गया अथवा मिट गया (इस यदुकुलमें तुम भी वैसे ही जान पड़ते हो, अतः तुम्हारी भी वैसी ही दशा होनेवाली है) ॥ ५ ॥

भोजो वा यादवो वासि कंसो वासि यथा तथा।
सहजं ते शिरस्तात जटी मुण्डोऽपि वा भव ॥ ६ ॥

'तात ! तुम भोज हो, यादव हो अथवा कंस हो या जैसा-तैसा कोई भी हो, तुम्हारा मस्तक तुम्हारे साथ ही उत्पन्न हुआ है (और वह अभीतक मौजूद है)। तुम उसपर बड़ी-बड़ी जटाएँ रखा लो अथवा मूँड़ मुड़ा लो (यदि तुम यादव रहना नहीं चाहते तो जो चाहो, वही बन जाओ) ॥ ६ ॥

उग्रसेनस्त्वयं शोच्यो योऽस्माकं कुलपांसनः।
दुर्जातीयेन येन त्वमीदृशो जनितः सुतः ॥ ७ ॥

'मेरी दृष्टिमें तो यह उग्रसेन शोचनीय है, जो हमलोगोंमें कुलाङ्गार पैदा हो गया और जिस दुर्जातिने तुम्हारे-जैसे बेटेको जन्म दिया ॥ ७ ॥

न चात्मनो गुणांस्तात प्रवदन्ति मनीषिणः।
परेणोक्ता गुणा गौण्यं यान्ति वेदार्थसम्मिताः ॥ ८ ॥

'तात ! मनीषी पुरुष अपने मुखसे अपने गुणोंका बखान नहीं करते हैं। दूसरेके द्वारा वर्णित या प्रशंसित हुए गुण ही सफल होते और वेदार्थके तुल्य प्रामाणिक माने जाते हैं ॥ ८ ॥

पृथिव्यां यदुवंशोऽयं निन्दनीयो महीक्षिताम्।
बालः कुलान्तकृन्मूढो येषां त्वमनुशासिता ॥ ९ ॥

'भूमण्डलमें यह यदुवंश समस्त भूपालोंके लिये निन्दनीय बन गया; क्योंकि तुम्हारे समान कुलनाशक, मूर्ख और अविवेकी बालक इन यादवोंका शासक है ॥ ९ ॥

असाधुमद्भिर्वाक्यैश्च त्वया साध्विति भाषितैः ।
न चाप्यासादितं कार्यमात्मा च विवृतः कृतः ॥ १० ॥

'तुमने निन्दायुक्त वचनोंको उत्तम मानकर जो यहाँ कहा है, उनसे कोई कार्य तो सिद्ध हुआ नहीं; केवल तुम्हारे स्वरूपका स्पष्टीकरण हो गया है (इन बातोंसे सब लोग यह जान गये कि तुम कितने ओछे हो !) ॥ १० ॥

गुरोरनवलिप्तस्य मान्यस्य महतामपि ।
क्षेपणं कः शुभं मन्ये द्विजस्येव वधे कृते ॥ ११ ॥

'जो अहंकाररहित तथा महापुरुषोंके लिये भी माननीय गुरुजन हैं, उनपर आक्षेप करना ब्रह्महत्याके समान है । उसे करके कौन अपने लिये कल्याणकी आशा कर सकता है ॥

मान्याश्चैवाभिगम्याश्च वृद्धास्तात यथाग्नयः ।
क्रोधो हि तेषां प्रदहेल्लोकानन्तर्गतानपि ॥ १२ ॥

'तात ! वृद्ध पुरुष अग्नियोंके समान आदरणीय तथा सेव्य होते हैं, उनका क्रोध आन्तरिक साधनाओंसे प्राप्त हुए लोकोंको भी जलाकर भस्म कर सकता है ॥ १२ ॥

बुधेन तात दान्तेन नित्यमभ्युच्छ्रितात्मना ।
धर्मस्य गतिरन्वेष्या मत्स्यस्य गतिरप्स्विव ॥ १३ ॥

'तात ! जिसका आत्मा उन्नतिके पथपर अग्रसर है तथा जो जितेन्द्रिय एवं विवेकशील विद्वान् है, उस पुरुषको धर्मकी गतिका सदा ही अन्वेषण करना चाहिये, जैसे जलमें मछलीकी गति अत्यन्त सूक्ष्म या अव्यक्त होती है, उसी प्रकार धर्मकी गति भी सूक्ष्म है ॥ १३ ॥

केवलं त्वं तु दर्पेण वृद्धानग्निसमानिह ।
वाचा तुदसि मर्मघ्न्या अमन्त्रोक्ता यथाऽऽहुतिः ॥ १४ ॥

'तुम तो केवल अहंकारवश यहाँ बैठे हुए अग्निके समान तेजस्वी वृद्ध पुरुषोंको अपनी मर्मभेदिनी वाणीद्वारा पीड़ा दे रहे हो । जैसे मन्त्रका उच्चारण किये बिना दी हुई आहुति व्यर्थ होती है, उसी प्रकार तुम्हारी यह आक्षेपपूर्ण बातें निष्फल हैं ॥ १४ ॥

वसुदेवं च पुत्रार्थे यदिमं परिगर्हसि ।
तत्र मिथ्या प्रलापं ते निन्दामि कृपणं वचः ॥ १५ ॥

'वसुदेवने अपने पुत्रकी रक्षाके लिये जो कुछ किया है, उसके लिये जो तुम इनपर आक्षेप करते हो, वह सब तुम्हारा मिथ्या प्रलाप है । उस विषयमें कही गयी तुम्हारी इन कायरतापूर्ण बातोंकी मैं निन्दा करता हूँ ॥ १५ ॥

दारुणे च पिता पुत्रे नैव दारुणतां व्रजेत् ।
पुत्रार्थे ह्यापदः कष्टाः पितरः प्राप्नुवन्ति हि ॥ १६ ॥

'पुत्र क्रूर स्वभावका हो जाय तो भी पिता उसके प्रति निष्ठुर नहीं हो सकता; क्योंकि पुत्रोंके लिये पिताओंको कितनी ही कष्टदायिनी विपत्तियाँ झेलनी पड़ती हैं ॥ १६ ॥

आदितो वसुदेवेन यदि पुत्रः शिशुस्तदा ।
मन्यसे यद्यकर्तव्यं तत् पृच्छ पितरं स्वकम् ॥ १७ ॥

'यदि वसुदेवने उस समय अपने शिशु पुत्रको उसकी रक्षाके लिये छिपा दिया था तो यह कोई अनुचित कर्म नहीं किया । यदि तुम इसे न करनेयोग्य बुरा कर्म मानते हो तो इस विषयमें अपने पितासे ही पूछो ॥ १७ ॥

गर्हता वसुदेवं च यदुवंशं च निन्दता ।
त्वया यादवपुत्राणां वैरजं विषमर्जितम् ॥ १८ ॥

'वसुदेवपर आक्षेप और यादवकुलकी निन्दा करके तुमने यहाँ यादवकुमारोंके वैरजनित विषका ही उपार्जन किया है ॥

अकर्तव्यं यदि कृतं वसुदेवेन पुत्रजम् ।
किमर्थमुग्रसेनेन शिशुस्त्वं न विनाशितः ॥ १९ ॥

'यदि वसुदेवने अपने पुत्रके प्राण बचाकर अनुचित कर्म किया है तो उग्रसेनने शैशवावस्थामें तुम्हें क्यों नहीं मार डाला था ॥ १९ ॥

पुन्नाम्नो नरकात् पुत्रो यस्मात् त्राता पितॄंस्तदा ।
तस्माद् ब्रुवन्ति पुत्रेति पुत्रं धर्मविदो जनाः ॥ २० ॥

'पुत्र पुत् नामक नरकसे पितरोंकी रक्षा करता है, इसलिये धर्मज्ञ पुरुष पुत्रको पुत्र कहते हैं ॥ २० ॥

जात्यां हि यादवः कृष्णः स च संकर्षणो युवा ।
त्वं चापि विधृतस्ताभ्यां जातवैरेण चेतसा ॥ २१ ॥

'श्रीकृष्ण और नवयुवक संकर्षण भी यादव ही हैं, किंतु तुमने उनके उत्पन्न होते ही उनसे वैर बाँध लिया; फिर उन दोनोंने मनमें वैरभावको स्थान देकर तुमसे शत्रुता बाँध ली है (अतः इस वैर-भावमें प्रथम अपराध तुम्हारा ही है)॥ २१॥

उद्धूतानीह सर्वेषां यदूनां हृदयानि वै ।
वसुदेवे त्वयाऽऽक्षिप्ते वासुदेवे च कोपिते ॥ २२ ॥

'तुमने वसुदेवपर आक्षेप किया और वसुदेवपुत्र श्रीकृष्णके मनमें अपने प्रति क्रोध उत्पन्न कर दिया, इससे समस्त यादवोंके हृदय यहाँ कम्पित हो उठे हैं ॥ २२ ॥

कृष्णे च भवतो द्वेष्ये वसुदेवविगर्हणात् ।
शंसन्ति चेमानि भयं निमित्तान्यशुभानि ते ॥ २३ ॥

'एक तो श्रीकृष्णके प्रति तुम्हारा द्वेष था ही, दूसरे तुमने वसुदेवकी भरपूर निन्दा भी कर डाली, इससे ये अशुभसूचक अपशकुन प्रकट होकर तुम्हारे लिये भयकी प्राप्ति बता रहे हैं ॥ २३ ॥

सर्पाणां दर्शनं तीव्रं दुःस्वप्नानां निशाक्षये ।
पुर्या वैधव्यशंसीनि कारणैरनुमीमहे ॥ २४ ॥

'जब रात समाप्त हो रही हो, उस समय सर्पों और बुरे स्वप्नोंका दर्शन अत्यन्त कष्टदायक होता है । ये जो शकुन दिखायी देते हैं, वे इस नगरीके भावी वैधव्यकी सूचना देनेवाले हैं । अबतक जो कारण प्राप्त हुए हैं, उनसे हमें ऐसा ही अनुमान होता है ॥ २४ ॥

एष घोरो ग्रहः स्वातीमुल्लिखन् खे गभस्तिभिः ।
वक्रमङ्गारकश्चक्रे चित्रायां घोरदर्शनः ॥ २५ ॥

'यह भयंकर ग्रह राहु आकाशमें अपनी किरणोंद्वारा स्वातिका वेध कर रहा है तथा भयानक दिखायी देनेवाला मंगल सर्वतोभद्रचक्रमें वक्रीभूत होकर चित्रा नक्षत्रपर स्थित है* ॥

---

* ज्योतिषके अनुसार सर्वतोभद्र नामक चक्रमें मृगशिरा कंसका जन्म-नक्षत्र है, उनसे दशम नक्षत्र चित्रा है, जो उसीका कर्मनक्षत्र

बुधेन पश्चिमा संध्या व्याप्ता घोरेण तेजसा ।
वैश्वानरपथे शुक्रो ह्यतिचारं चचार ह ॥ २६ ॥

'बुधने भयानक तेजसे पश्चिम संध्याको व्याप्त कर रखा है (अर्थात् वह पश्चिम दिशामें उदित हो रहे हैं, ऐसा होना राज्यभंगका सूचक है) तथा शुक्रने वैश्वानरपथ (सूर्यमार्ग) पर अतिचार गतिसे चलना आरम्भ किया है (सूर्यको लाँघकर जाना ही अतिचार है) ॥ २६ ॥

केतुना धूमकेतोस्तु नक्षत्राणि त्रयोदश ।
भरण्यादीनि भिन्नानि नानुयान्ति निशाकरम् ॥ २७ ॥

'धूमकेतु नामक उत्पात-ग्रहके पुच्छभागसे भरणी आदि तेरह नक्षत्र विद्ध हो गये हैं, इसलिये वे चन्द्रमाका अनुसरण नहीं करते हैं ॥ २७ ॥

प्राक्संध्या परिघग्रस्ता भाभिर्बाधति भास्करम् ।
प्रतिलोमं च यान्त्येव व्याहरन्तो मृगद्विजाः ॥ २८ ॥

'पूर्वकालकी संध्या परिघ[1]से ग्रस्त है । वह अपनी प्रभाओंद्वारा सूर्यदेवको बाधा पहुँचाती है तथा पशु और पक्षी अपनी बोली बोलते हुए प्रतिकूल दिशासे होकर जाते हैं ॥ २८ ॥

शिवा श्मशानान्निष्क्रम्य निःश्वासाङ्गारवर्षिणी ।
उभे संध्ये पुरीं घोरा पर्यैति बहु वाशती ॥ २९ ॥

'दोनों संध्याओंके समय एक भयानक गीदड़ी श्मशानभूमिसे निकलकर अपने निःश्वाससे अङ्गारकी वर्षा करती और बहुत बोलती हुई मथुरापुरीके चारों ओर चक्कर लगाती है ।२९।

उल्का निर्घातनादेन पपात धरणीतले ।
चलत्यपर्वणि मही गिरीणां शिखराणि च ॥ ३० ॥

'कुछ ही समय पहले वज्रपातकी-सी ध्वनिके साथ पृथ्वीपर उल्कापात हुआ है । यह पृथ्वी तथा पर्वतोंके शिखर अकस्मात् काँपने लगते हैं ॥ ३० ॥

ग्रस्तः स्वर्भानुना सूर्यो दिवा नक्तमजायत ।
धूमोत्पातैर्दिशो व्याप्ताः शुष्काशनिसमाहताः ॥ ३१ ॥

'अभी पिछले दिनों राहुने सूर्यपर ग्रहण लगा दिया था, जिससे दिनमें ही रात हो गयी थी । धूम और उत्पातोंसे सम्पूर्ण दिशाएँ व्याप्त हैं । सूखेमें ही बिजलियाँ गिरती हैं ॥ ३१ ॥

प्रस्रवन्ति घना रक्तं साशनिस्तनयित्नवः ।
चलिता देवताः स्थानात् त्यजन्ति विहगा नगान् ॥ ३२ ॥

'मेघ बिजली और गड़गड़ाहटके साथ रक्तकी वर्षा करते है । देवताओंकी प्रतिमाएँ अपने स्थानसे हट जाती हैं और पक्षी वृक्षोंको त्याग देते हैं ॥ ३२ ॥

यानि राजविनाशाय दैवज्ञाः कथयन्ति ह ।
तानि सर्वाणि पश्यामो निमित्तान्यशुभानि वै ॥ ३३ ॥

'ज्योतिषीलोग राजाके विनाशकी सूचना देनेवाले जो अशुभ निमित्त (अपशकुन) बताते हैं, उन सबको हम लोग देख रहे हैं ॥ ३३ ॥

त्वं चापि स्वजनद्वेषी राजधर्मपराङ्मुखः ।
अनिमित्तागतक्रोधः संनिकृष्टभयो ह्यसि ॥ ३४ ॥

'तुम भी स्वजनोंसे द्वेष रखते हो, राजधर्मसे विमुख हो चुके हो और अकारण ही तुम्हें क्रोध आ जाता है, इससे जान पड़ता है, निकट-भविष्यमें ही तुम्हारे ऊपर भय आनेवाला है ॥

यस्त्वं देवोपमं वृद्धं वसुदेवं वसूपमम् ।
मोहात् क्षिपसि दुर्बुद्धे कुतस्ते शान्तिरात्मनः ॥ ३५ ॥

'दुर्बुद्धे ! तुम जो देवताओं तथा वसुओंके समान तेजस्वी बूढ़े वसुदेवपर मोहवश आक्षेप कर रहे हो, इससे तुम्हारे आत्माको शान्ति कैसे मिल सकती है ॥ ३५ ॥

त्वद्गतो यो हि नः स्नेहस्तं त्यजामोऽद्य वै वयम् ।
अहितं स्वस्य वंशस्य न त्वां क्षणमुपास्महे ॥ ३६ ॥

'तुम्हारे प्रति जो हमारा स्नेह रहा है, उसे हमलोग आज त्याग देते हैं । तुम अपने वंशका अहित करनेवाले हो। अतः अब हम एक क्षण भी तुम्हारे पास नहीं बैठेंगे ॥

स हि दानपतिर्धन्यो यो द्रक्ष्यति वने गतम् ।
पुण्डरीकविशालाक्षं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥ ३७ ॥

'वे दानपति अक्रूर धन्य हैं, जो आज वनमें गये हुए अनायास ही महान् कर्म करनेवाले कमलनयन श्रीकृष्णको अपनी आँखोंसे देखेंगे ॥ ३७ ॥

छिन्नमूलो ह्ययं वंशो यदूनां त्वत्कृते कृतः ।
कृष्णो ज्ञातीन् समानाय्य स संधानं करिष्यति ॥ ३८ ॥

'तुम्हारे कारण इस यदुवंशकी जड़ कट गयी है । अब श्रीकृष्ण ही आकर समस्त भाई-बन्धुओंको जुटायेंगे और उनमें मेल करायेंगे ॥ ३८ ॥

क्षान्तमेव तवानेन वसुदेवेन धीमता ।
कालसम्यक्परिज्ञानो ब्रूहि त्वं यद्यदिच्छसि ॥ ३९ ॥

'इन बुद्धिमान् वसुदेवने तो तुम्हारे अपराधको क्षमा ही कर दिया है । कालने तुम्हारी विवेकशक्ति नष्ट कर दी, अतः तुम जो-जो चाहो, बकते रहो ॥ ३९ ॥

मह्यं तु रोचते कंस वसुदेवसहायवान् ।
गच्छ कृष्णस्य निलयं संधिस्तेन च रोचताम् ॥ ४० ॥

'कंस ! मुझे तो यही अच्छा लगता है, कि 'तुम वसुदेवको साथ लेकर श्रीकृष्णके स्थानपर जाओ और उनके साथ संधि करना स्वीकार करो' ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि अन्धकवचने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें अन्धकका वचनविषयक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३ ॥

है । वहीं भयंकर ग्रह राहु, जो क्रूर ग्रह माना गया है, स्थित है । मंगल भी वक्रगतिसे वहीं आ गया है । इन दोनोंने कर्मनक्षत्रको व्याप्त करके जन्मनक्षत्रको विद्ध कर दिया है । इसका फल बताते हुए अन्धक कहते हैं—'कंस तुम्हारा जीवित रहनेके लिये जो प्रयत्न है वह निष्फल होगा और तुम्हारे देहका भी नाश हो जायगा ।' (नीलकण्ठी)

[1] सूर्यमण्डलमें उगा हुआ तिरछा डंडा परिघ कहलाता है ।

महाभारत

स्कृत
मूल

हिन्दी
नुवाद

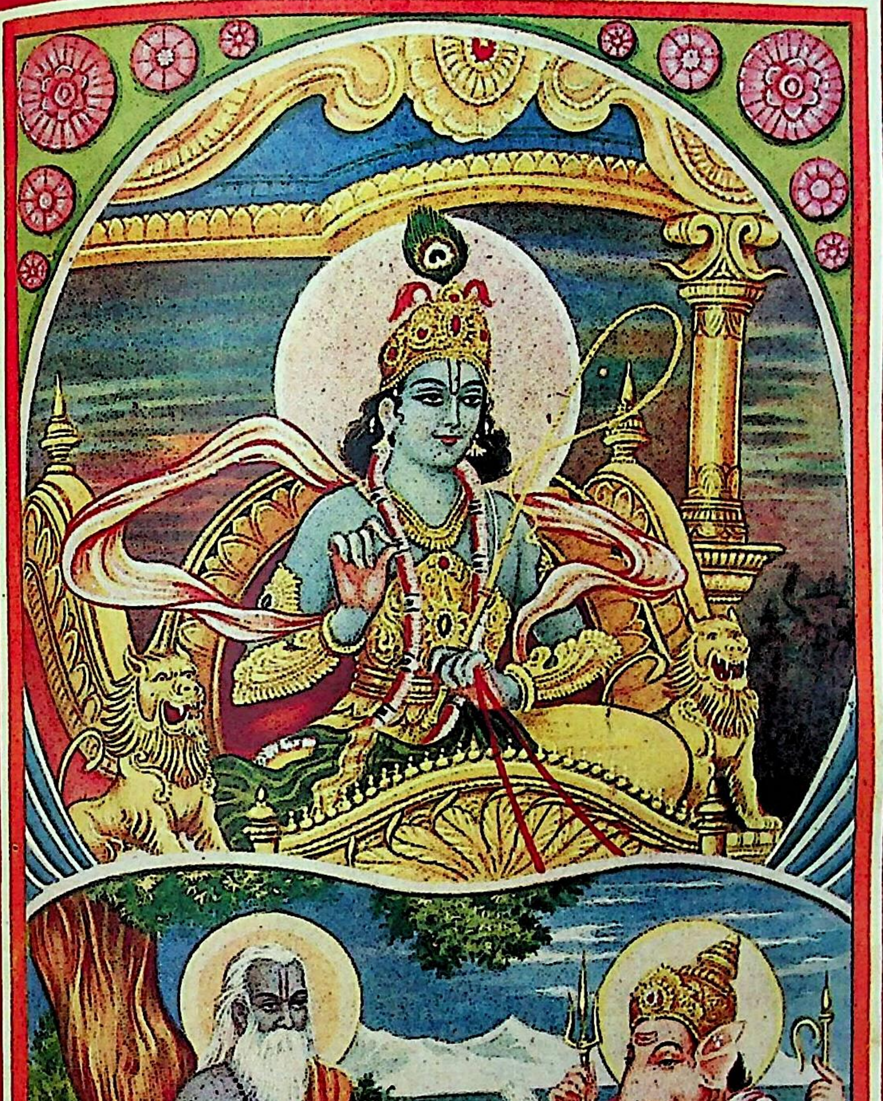

संस्कृत
मूल

हिन्दी
अनुवाद

र्ष ९

हरिवंश-टीकासहित

संख्या ३

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

महाभारत

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥
व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे । नमो वै ब्रह्महृदये वासिष्ठाय नमो नमः ॥

र्ष ४
गोरखपुर, फाल्गुन २०१५, मार्च १९५९
संख्या ३
पूर्ण संख्या ३९

श्रीगोपीगणपतिकी वन्दना

विघ्नविनाशनदक्षं लक्ष्यं भक्तेः सुमङ्गलाधारम् ।
वृन्दाविपिनविहारं श्रीगोपीगणपतिं वन्दे ॥

जो विघ्नोंका विनाश करनेमें दक्ष, भक्तिके चरम लक्ष्य और परम मङ्गलके आधार हैं तथा श्रीवृन्दावन जिनकी विहारस्थली है, उन श्रीगोपीगणपति (गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण) की मैं वन्दना करता हूँ ।

'महाभारत' नामक मासिक पत्रके सम्बन्धमें विवरण

१–**प्रकाशनका स्थान**—गीताप्रेस, गोरखपुर
२–**प्रकाशनकी अवधि**—मासिक
३–**मुद्रकका नाम**—हनुमानप्रसाद पोद्दार
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय
पता—गीताप्रेस, गोरखपुर
४–**प्रकाशकका नाम**—हनुमानप्रसाद पोद्दार
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय
पता—गीताप्रेस, गोरखपुर
५–**सम्पादकका नाम**—हनुमानप्रसाद पोद्दार
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय
पता—गीताप्रेस, गोरखपुर
६–उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस समाचार-पत्रके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं। — श्रीगोविन्दभवनकार्यालय, पता—नं० ३०, बाँसतल्ला गली, कलकत्ता (सन् १८६० के विधान २१ के अनुसार रजिस्टर्ड धार्मिक संस्था)

मैं, हनुमानप्रसाद पोद्दार, इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं।

हनुमानप्रसाद पोद्दार
प्रकाशक

ता० १ मार्च १९५९

वार्षिक मूल्य
भारतमें १५)
विदेशमें २०)
(३० शिलिंग)

सम्पादक, मुद्रक तथा प्रकाशक
हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर
टीकाकार—पण्डित रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम'

एक प्रतिका
भारतमें १॥)
विदेशमें २)
(३ शिलिंग)

श्रीहरिः

खिलभाग हरिवंशकी विषय-सूची

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

(विष्णुपर्व-चालू)

२४–केशीके अत्याचार और श्रीकृष्णद्वारा उसका वध २८९
२५–अक्रूरका व्रजमें आकर भगवान् श्रीकृष्णको देखना और उनके विषयमें अनेक प्रकारकी बातें सोचना ... २९४
२६–अक्रूरका गोपोंके लिये कंसका आदेश सुनाना और वसुदेव-देवकीकी दयनीय दशा बताकर श्रीकृष्ण-बलरामको मथुरा चलनेके लिये प्रेरित करना, मार्गमें अक्रूरको यमुनाजीके जलमें आश्चर्यमय नागलोक एवं भगवान् अनन्त तथा उनकी गोदमें श्रीकृष्णका दर्शन ... २९७
२७–श्रीकृष्ण और बलरामका मथुरामें प्रवेश, उनके द्वारा रजकका वध, मालीको वरदान, कुब्जापर कृपा और कंसके धनुषका भञ्जन ... ३०१
२८–कंसकी चिन्ता, उसका रंगशालाको देखना और उसे सुसज्जित करनेका आदेश देना, चाणूर एवं मुष्टिकको तथा कुवलयापीडके महावतको श्रीकृष्ण-बलरामके वधके लिये आज्ञा देना, महावतसे द्रुमिलके द्वारा अपनी उत्पत्तिकी कथा कहना—उसकी माताका सुयामुन पर्वतपर द्रुमिलके साथ समागम तथा उन दोनोंका परस्पर वरदान एवं शाप ३०६
२९–नागरिकोंसे भरी रङ्गशालामें मञ्चों तथा प्रेक्षागृहोंकी शोभा, कंस तथा मल्लोंका आगमन, श्रीकृष्ण और बलरामका रङ्गद्वारपर पदार्पण, कुवलयापीड, महावत तथा हाथीके पादरक्षकोंका वध और दोनों बन्धुओंका रङ्गस्थलमें प्रवेश ... ३१४
३०–रङ्गशालामें मल्लयुद्धके विषयमें श्रीकृष्णके विचार, श्रीकृष्ण और बलदेवके द्वारा चाणूर और मुष्टिक आदिका वध, कंसका संहार तथा पिता-माताके चरणोंमें प्रणाम करके दोनों भाइयोंका उनके घरमें जाना ३१७
३१–कंसकी स्त्रियों और माताका विलाप ... ३२३
३२–श्रीकृष्णका कंसवधके लिये पश्चात्तापपूर्वक उसके औचित्यका समर्थन, उग्रसेनका श्रीकृष्णको सर्वस्व-समर्पणके पश्चात् कंसका अन्त्येष्टि-संस्कार करनेके लिये अनुरोध, श्रीकृष्णका उन्हें समझा-बुझाकर राज्यपर अभिषिक्त करना और समस्त यादवोंके साथ जाकर कंस आदिका अन्त्येष्टि-संस्कार कराना ३२८
३३–बलराम और श्रीकृष्णका गुरु सान्दीपनिके यहाँ जाकर विद्या पढ़ना और गुरुदक्षिणामें उनके मरे हुए पुत्रको उन्हें देकर मथुरापुरीको लौट आना ३३२
३४–जरासंधका अपनी विशाल सेनाके द्वारा आकर मथुरापुरीपर घेरा डालना ... ३३५
३५–जरासंधकी सेनाका वर्णन, उसकी चारों दिशाओंसे मथुरापुरीपर आक्रमणकी योजना, यादवोंके साथ जरासंधकी सेनाका युद्ध, श्रीकृष्ण और बलरामके पराक्रमसे उसकी सेनाका पलायन, जरासंधद्वारा अपने सैनिकोंको प्रोत्साहन तथा उभय-पक्षके वीरोंमें घमासान युद्ध ... ३३६
३६–वृष्णिवंशियों तथा जरासंधके सैनिकोंका युद्ध, बलराम और जरासंधका गदायुद्ध तथा जरासंधका पराजित होकर पलायन करना ... ३४३
३७–जरासंधके पुनः आक्रमणसे शङ्कित यादवोंकी सभामें विकद्रुका भाषण—राजा हर्यश्वका चरित्र तथा उनसे यदु एवं यादवोंकी उत्पत्तिका वर्णन ३४६
३८–विकद्रुद्वारा यदुकी संततिका वर्णन तथा मथुरापुरीको जरासंधका आक्रमण सहनेके अयोग्य बताना ३५१
३९–बलराम और श्रीकृष्णका पुरी और पुरवासियोंकी रक्षाके लिये मथुरासे दक्षिण भारतकी ओर प्रस्थान, परशुरामजीसे उनकी भेंट तथा उन दोनोंको गोमन्तपर्वतपर चलनेके लिये उनकी सलाह ३५५
४०–श्रीकृष्ण, बलराम और परशुरामजीका गोमन्तपर्वतपर आरोहण, गोमन्तकी शोभाका वर्णन तथा परशुरामजीका श्रीकृष्णको युद्धके लिये प्रोत्साहन देकर वहाँसे प्रस्थान ... ३६१
४१–बलरामके पास वारुणी, कान्ति एवं श्री (शोभा) इन देवाङ्गनाओंका आगमन, गरुड़के द्वारा श्रीकृष्णको वैष्णव मुकुटकी प्राप्ति, श्रीकृष्णका बलरामसे वार्तालाप तथा जरासंधकी सेनाका निरीक्षण करके अपने आपसे ही मानसिक उद्गार प्रकट करना ३६४

अध्याय — विषय — पृष्ठ-संख्या

४२–जरासंधकी सेनाका वर्णन, उसका सेनाको पर्वतपर आक्रमण करनेकी आज्ञा देना, शिशुपालकी सम्मतिसे गोमन्तपर्वतमें आग लगाया जाना, पर्वतका जलना तथा बलराम और श्रीकृष्णका पर्वतसे कूदकर राजाओंकी सेनामें आ पहुँचना ३६९

४३–श्रीकृष्ण और बलरामका जरासंध और उसकी सेनाओंके साथ युद्ध, राजा दरदकी मृत्यु, जरासंधका पराजित होकर पलायन तथा चेदिराज दमघोषके साथ श्रीकृष्ण और बलरामका करवीरपुरमें जाना ३७४

४४–श्रीकृष्णद्वारा शृगालका वध तथा उसके पुत्रका करवीरपुरके राज्यपर अभिषेक ... ३८१

४५–बलराम और श्रीकृष्णका मथुरामें प्रत्यागमन और स्वागत ३८५

४६–बलरामजीकी व्रजयात्रा तथा उनके द्वारा यमुनाजीका आकर्षण ... ३८७

४७–श्रीकृष्णका यादवोंके साथ रुक्मिणी-स्वयंवरके अवसरपर कुण्डिनपुरमें जाना तथा राजा कैशिकद्वारा उनका सत्कार ३९१

४८–श्रीकृष्णके आगमनसे चिन्तित हुए राजाओंकी सभामें जरासंध और सुनीथका भाषण ... ३९४

४९–दन्तवक्त्र और शाल्वका भाषण सुनकर भीष्मकका श्रीकृष्णके प्रभावका वर्णन करते हुए उन्हें प्रसन्न करनेका ही निश्चय करना ... ३९७

अध्याय — विषय — पृष्ठ-संख्या

५०–क्रथ और कैशिकद्वारा भगवान् श्रीकृष्णको अपने राज्यका समर्पण, देवराज इन्द्रके आदेशसे सब नरेशोंद्वारा भगवान्का राजेन्द्रके पदपर अभिषेक तथा भगवान्का सबको आश्वासन देना ४०२

५१–श्रीकृष्ण और भीष्मकका संवाद, भीष्मकद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति तथा श्रीकृष्णका मथुरागमन ४०८

५२–शाल्वके कथनानुसार जरासंध आदि नरेशोंका शाल्वको ही कालयवनके पास दूत बनाकर भेजना ४१३

५३–कालयवनकी विशेषता, राजा शाल्वका उसके यहाँ दूत बनकर आना और उसे जरासंधका संदेश सुनाना ४१६

५४–कालयवनका राजाओंका अनुरोध स्वीकार करके श्रीकृष्णपर विजय पानेके लिये मथुराको प्रस्थान ४२०

५५–गरुड़का श्रीकृष्णके निवासयोग्य भूमि देखनेके लिये जाना, मथुरामें राजेन्द्र श्रीकृष्णका स्वागत, श्रीकृष्णद्वारा राजा उग्रसेन तथा मथुरावासियोंका सत्कार एवं गरुड़का लौटकर कुशस्थलीके विषयमें बताना ... ४२१

५६–श्रीकृष्णकी आज्ञासे यादवोंका द्वारकापुरीको प्रस्थान ४३०

चित्र-सूची

१–महाभारत-लेखन (तिरंगा) मुखपृष्ठ

२–भगवान् श्रीकृष्णका इन्द्रके साथ प्राग्ज्योतिषपुरके लिये अभियान (,,) २८९

३–अक्रूरको श्रीकृष्णका दर्शन (एकरंगा) २९५

४–श्रीकृष्ण-बलरामकी मथुरा-यात्रा (,,) २९९

५–श्रीकृष्ण-बलरामकी परशुरामजीसे भेंट (एकरंगा) ३५७

६–भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा शृगाल-पुत्रका राज्याभिषेक (,,) ३८५

७–महाराज उग्रसेनके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णका स्वागत (,,) ४२४

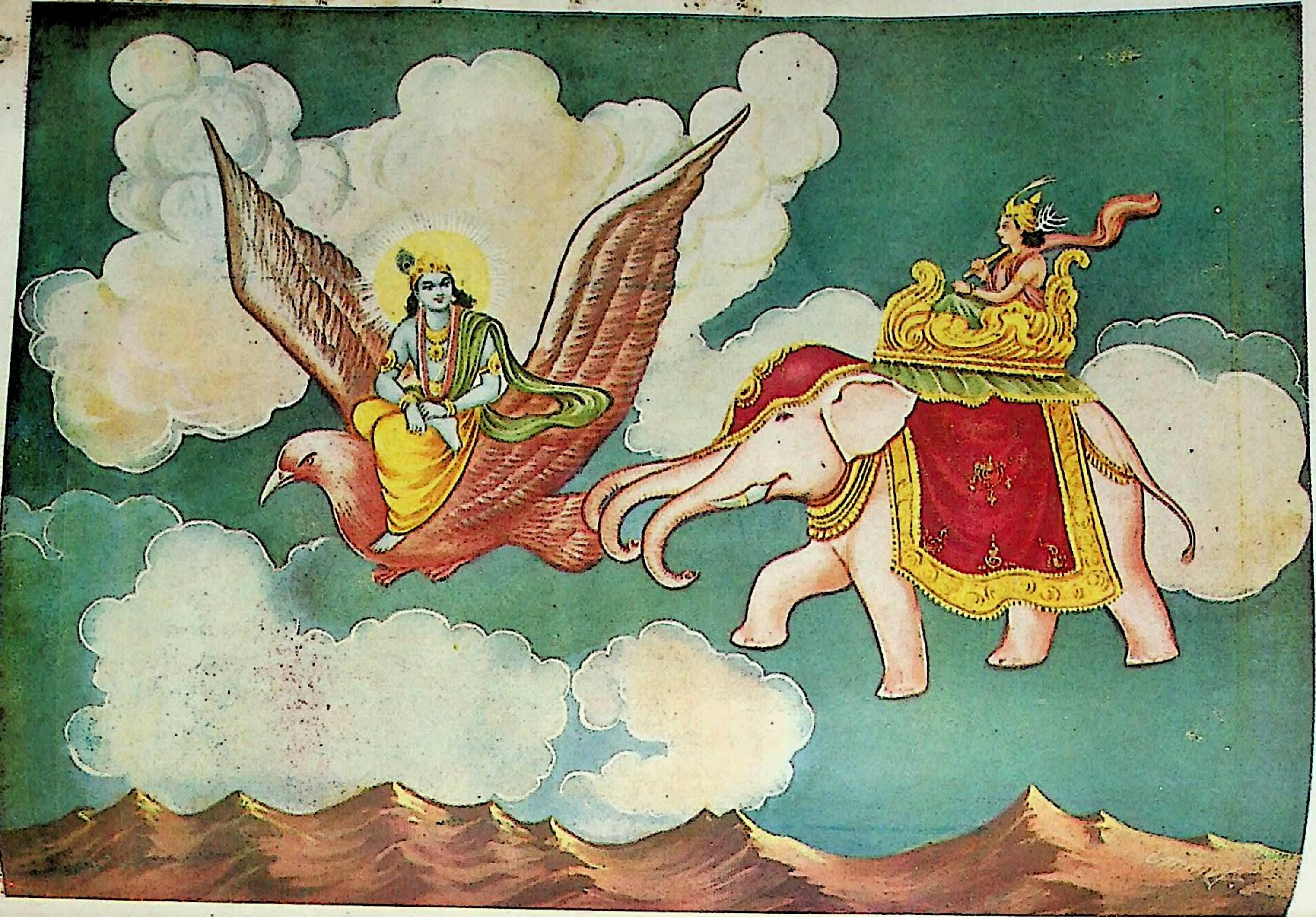

चतुर्विंशोऽध्यायः

केशीके अत्याचार और श्रीकृष्णद्वारा उसका वध

वैशम्पायन उवाच

न्धकस्य वचः श्रुत्वा कंसः संरक्तलोचनः ।
न किंचिदब्रवीत् क्रोधाद् विवेश स्वं निकेतनम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! अन्धककी तें सुनकर कंसकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं । वह उनसे छ नहीं बोला और रोषपूर्वक उठकर अपने महलमें ला गया ॥ १ ॥

ते च सर्वे यथावेश्म यादवाः श्रुतविस्तराः ।
ग्मुर्विगतसंकल्पाः कंसवैकृतशंसिनः ॥ २ ॥

फिर वे सब यादव, जो वहाँकी सारी बातें विस्तारपूर्वक चुके थे, निराश होकर अपने-अपने घरको लौट गये । वे समें यह चर्चा कर रहे थे कि कंसका मस्तिष्क खराब गया है ॥ २ ॥

क्रूरोऽपि यथाऽऽज्ञप्तः कृष्णदर्शनलालसः ।
गाम रथमुख्येन मनसा तुल्यगामिना ॥ ३ ॥

अक्रूरके मनमें भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसा ग उठी थी, अतः वे भी कंसकी आज्ञाके अनुसार उठे र मनके समान शीघ्रगामी श्रेष्ठ रथपर आरूढ़ हो जमें चल दिये ॥ ३ ॥

ष्णस्यापि निमित्तानि शुभान्यङ्गगतानि वै ।
तृतुल्येन शंसन्ति बान्धवेन समागमम् ॥ ४ ॥

उधर श्रीकृष्णको भी अपने अङ्गोंमें ही कुछ ऐसे शुभ क्षण दिखायी देते थे, जो पिता-जैसे बान्धवसे भेंट होनेकी चना दे रहे थे ॥ ४ ॥

गेव च नरेन्द्रेण माथुरेणौग्रसेनिना ।
शिनः प्रेषितो दूतो वधायोपेन्द्रकारणात् ॥ ५ ॥

(अक्रूरको भेजनेसे) पहले ही मथुराके राजा उग्रसेन-मार कंसने केशीके पास दूत भेजा और कहलाया कि म श्रीकृष्णका वध कर डालो ॥ ५ ॥

स च दूतवचः श्रुत्वा केशी क्लेशकरो नृणाम् ।
न्दावनगतो गोपान् बाधते स्म दुरासदः ॥ ६ ॥

दूतकी बात सुनकर मनुष्योंको क्लेश प्रदान करनेवाला र्जय दैत्य केशी वृन्दावनमें जाकर गोपोंको सताने लगा ॥ ६ ॥

मानुषं मांसमश्नानः क्रुद्धो दुष्टपराक्रमः ।
र्दान्तो वाजिदैत्योऽसावकरोत् कदनं महत् ॥ ७ ॥

केशी घोड़ेके रूपमें रहनेवाला दुर्दान्त दैत्य था और नुष्यका मांस खाता था । उस दुष्ट पराक्रमी असुरने कुपित कर वहाँ महान् संहार आरम्भ कर दिया ॥ ७ ॥

निघ्नन् गा वै सगोपालान् गवां पिशितभोजनः ।
दुर्मदः कामचारी च स केशी निरवग्रहः ॥ ८ ॥

वह ग्वालोंसहित गौओंको मार डालता और गौओंका मांस खाया करता था । मदमत्त केशी स्वच्छन्द विचरनेवाला और उच्छृङ्खल था ॥ ८ ॥

तदरण्यं श्मशानाभं नृणां मांसास्थिभिर्वृतम् ।
यत्रास्ते स हि दुष्टात्मा केशी तुरगदानवः ॥ ९ ॥

अश्वरूपधारी दुष्टात्मा दानव केशी जहाँ रहता था, वह वन मनुष्योंके मांस और हड्डियोंसे व्याप्त होकर श्मशान-भूमिके समान प्रतीत होता था ॥ ९ ॥

खुरैर्दारयते भूमिं वेगेनारुजते द्रुमान् ।
हेषितैः स्पर्द्धते वायुं प्लुतैर्लङ्घयते नभः ॥ १० ॥

वह टापोंसे पृथ्वीको विदीर्ण कर देता और वेगसे वृक्षोंको भी तोड़ डालता था, हींसते या हिनहिनाते समय प्रचण्ड वायुके कोलाहलसे होड़ लगाता था और उछलकर आकाशको भी लाँघ जाता था ॥ १० ॥

अतिप्रवृद्धो मत्तश्च दुष्टोऽश्वो वनगोचरः ।
आकम्पितसटो रौद्रः कंसस्य चरितानुगः ॥ ११ ॥

वह वनमें विचरनेवाला दुष्ट अश्व बहुत बड़ा और मतवाला था । उसके अयाल कुछ हिलते रहते थे । वह भयंकर दैत्य कंसके चरित्रका अनुसरण करनेवाला था ॥ ११ ॥

ईरिणं तद् वनं सर्वं तेनासीत् पापकर्मणा ।
कृतं तुरगदैत्येन सर्वान् गोपाञ्जिघांसता ॥ १२ ॥

समस्त गोपोंको मार डालनेकी इच्छावाले उस पापाचारी अश्वरूपधारी दैत्यने वह सारा वन मनुष्योंसे सूना कर दिया था ॥ १२ ॥

तेन दुष्टप्रचारेण दूषितं तद् वनं महत् ।
न नृभिर्गोधनैर्वापि सेव्यते वनवृत्तिभिः ॥ १३ ॥

उस दुराचारीने वह विशाल वन दूषित कर डाला था । वनसे ही जीवन निर्वाह करनेवाले मनुष्य और गोधन भी कभी उस वनका सेवन नहीं करते थे ॥ १३ ॥

निःसम्पातः कृतः पन्थास्तेन तद्विषयाश्रयः ।
मदाच्चलितवृत्तेन नृमांसान्यश्नता भृशम् ॥ १[illegible]

मदके कारण वह सदाचारसे भ्रष्ट हो चुका था और अधिकतर मनुष्योंके ही मांस खाता था । उसके निवास-स्थानमें होकर जो रास्ता जाता था, उसे उसने अगम्य बना दिया था ।१[illegible]

नृशब्दानुसरः क्रुद्धः स कदाचिद् वनागमे ।
जगाम घोषसंवासं चोदितः कालधर्मणा ॥ [illegible]

एक समय मनुष्योंके शब्दका अनुसरण करता हुआ केशी क्रोधमें भरकर वृन्दावनके भीतर गोपोंकी बस्तीमें गया, उस समय उसपर काल सवार था ॥ १५ ॥

तं दृष्ट्वा दुद्रुवुर्गोपाः स्त्रियश्च शिशुभिः सह ।
क्रन्दमाना जगन्नाथं कृष्णं नाथमुपाश्रिताः ॥ १६ ॥

उसे देखते ही गोप और गोपाङ्गनाएँ शिशुओंको साथ लेकर भागीं तथा करुण क्रन्दन करती हुई जगत्के रक्षक, अपने स्वामी श्रीकृष्णकी शरणमें आ पहुँचीं ॥ १६ ॥

तासां रुदितशब्देन गोपानां क्रन्दितेन च ।
दत्त्वाभयं तु कृष्णो वै केशिनं सोऽभिदुद्रुवे ॥ १७ ॥

गोपाङ्गनाओंके रोदन और गोपोंके क्रन्दनसे द्रवित होकर श्रीकृष्णने उन्हें अभय कर दिया। फिर वे केशीपर टूट पड़े ॥१७॥

केशी चाप्युन्नतग्रीवः प्रकाशदशनेक्षणः ।
हेषमाणो जवोदग्रो गोविन्दाभिमुखो ययौ ॥ १८ ॥

केशी भी अपनी गर्दन ऊपर उठाये हींसता हुआ बड़े वेगसे श्रीकृष्णकी ओर चला । उस समय वह दाँत दिखाता हुआ आँखें फाड़-फाड़कर उनकी ओर देख रहा था ॥१८॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य केशिनं हयदानवम् ।
प्रत्युज्जगाम गोविन्दस्तोयदः शशिनं यथा ॥ १९ ॥

उस अश्वरूपधारी दानव केशीको अपनी ओर आते देख भगवान् श्रीकृष्ण उसका सामना करनेके लिये आगे बढ़े, मानो श्याम मेघ चन्द्रमाकी ओर जा रहा हो ॥ १९ ॥

केशिनस्तु तमभ्याशे दृष्ट्वा कृष्णमवस्थितम् ।
मनुष्यबुद्धयो गोपाः कृष्णमूचुर्हितैषिणः ॥ २० ॥

श्रीकृष्णको केशीके निकट खड़ा हुआ देख उनके प्रति मनुष्य-बुद्धि रखनेवाले हितैषी गोप उनसे इस प्रकार बोले—॥२०॥

कृष्ण तात न खल्वेष सहसा ते हयाधमः ।
उपसर्प्यो भवान् बालः पापश्चैष दुरासदः ॥ २१ ॥

'तात श्रीकृष्ण ! तुम सहसा इस नीच अश्वके पास न चले जाना; क्योंकि तुम अभी बालक हो और यह पापात्मा एक दुर्धर्ष दैत्य है ॥ २१ ॥

एष कंसस्य सहजः प्राणस्तात बहिश्चरः ।
उत्तमश्च हयेन्द्राणां दानवोऽप्रतिमो युधि ॥ २२ ॥

'तात ! यह कंसका बाहर विचरनेवाला सहज प्राण है, बड़े-बड़े अश्वराजोंमें उत्तम है । युद्धमें इस दानवकी समानता करनेवाला कोई नहीं है ॥ २२ ॥

त्रासनः सर्वभूतानां तुरगाणां महाबलः ।
अवध्यः सर्वभूतानां प्रथमः पापकर्मणाम् ॥ २३ ॥

'समस्त प्राणियोंको त्रास देनेवाला यह दैत्य घोड़ोंमें सबसे अधिक बलवान् है। सम्पूर्ण भूतोंमेंसे किसीके लिये भी यह वध्य नहीं है । पापाचारियोंमें यह सबसे अग्रगण्य है' ॥ २३ ॥

गोपानां तद् वचः श्रुत्वा वदतां मधुसूदनः ।
केशिना सह युद्धाय मतिं चक्रेऽरिसूदनः ॥ २४ ॥

उपर्युक्त बातें कहनेवाले गोपोंका वह कथन सुनकर शत्रुसूदन भगवान् मधुसूदनने केशीके साथ युद्धके लिये विचार किया ॥ २४॥

ततः सव्यं दक्षिणं च मण्डलं स परिभ्रमन् ।
पद्भ्यामुभाभ्यां स हयः क्रोधेनारुजते द्रुमान् ॥ २५ ॥

तदनन्तर वह अश्व दायें-बायें चक्कर काटता हुआ अपने दोनों पैरोंसे क्रोधपूर्वक वृक्षोंको तोड़ने लगा ॥ २५ ॥

मुखे लम्बसटे चास्य स्कन्धे केशघनावृते ।
वलयोऽभ्रतरङ्गाभाः सुस्रुवुः क्रोधजं जलम् ॥ २६ ॥

उसके लंबे अयालवाले मुख और घने केशोंसे ढके हुए कंधेपर जो मेघोंकी लहरोंके समान वलियाँ (चमड़ोंके सिकुड़नेसे बनी हुई रेखाएँ) थीं, वे क्रोधजनित जल (पसीना) टपकाने लगीं ॥ २६ ॥

स फेनं वक्त्रजं चैव ववर्ष रजसावृतम् ।
हिमकाले यथा व्योम्नि नीहारमिव चन्द्रमाः ॥ २७ ॥

वह अपने मुखसे पैदा हुए धूलमिश्रित फेनकी वर्षा करने लगा । मानो हेमन्त ऋतुमें चन्द्रमा आकाशमें कुहासा गिरा रहा हो ॥ २७ ॥

गोविन्दमरविन्दाक्षं हेषितोद्गारशीकरैः ।
स फेनैर्वक्त्रनिर्गीर्णैः प्रोक्षयामास भारत ॥ २८ ॥

भरतनन्दन ! उसने अपने हींसनेके साथ निकले हुए जलकणों तथा मुखसे गिरते हुए फेनोंद्वारा कमलनयन श्रीकृष्णको नहला दिया ॥ २८ ॥

खुरोद्धूतावसिक्तेन मधुकक्षोदपाण्डुना ।
रजसा स हयः कृष्णं चकारारुणमूर्धजम् ॥ २९ ॥

अपनी टापोंसे उठकर फैली हुई धूलसे, जो मुलेठीके चूर्णकी भाँति कुछ-कुछ पीले रंगकी थी, उस घोड़ेने श्रीकृष्णके मस्तकके बालोंको कुछ लाल-सा कर दिया ॥ २९ ॥

प्लुतवल्गितपादस्तु तक्षमाणो धरां खुरैः ।
दन्तान् निर्दशमानस्तु केशी कृष्णमुपाद्रवत् ॥ ३० ॥

केशीके पैर वहाँ उछल-कूद मचा रहे थे । वह अपनी टापोंसे पृथ्वीको खोदता और दाँतोंको पीसता हुआ श्रीकृष्णकी ओर दौड़ा ॥ ३० ॥

स संसक्तस्तु कृष्णेन केशी तुरगसत्तमः ।
पूर्वाभ्यां चरणाभ्यां वै कृष्णं वक्षस्यताडयत् ॥ ३१ ॥

अश्वोंमें श्रेष्ठ केशी श्रीकृष्णके साथ उलझ गया । उसने

अपने दोनों आगेवाले पैरोंसे उनकी छातीमें प्रहार किया ॥ ३१ ॥

पुनः पुनः स च बली प्राहिणोत् पार्श्वतः खुरान् ।
कृष्णस्य दानवो घोरं प्रहारममितौजसः ॥३२॥

उस बलवान् दानवने अगल-बगलसे भी बारंबार अपनी टाप चलायी और अमित तेजस्वी श्रीकृष्णपर घोर प्रहार किया ॥ ३२ ॥

वक्त्रेण चास्य घोरेण तीक्ष्णदंष्ट्रायुधेन वै ।
अदशद् बाहुशिखरं कृष्णस्य रुषितो हयः ॥ ३३ ॥

तीखी दाढ़ ही जिसका आयुध थी, उस भयानक मुखके द्वारा रोषमें भरे हुए उस घोड़ेने श्रीकृष्णकी भुजाके अग्रभागको दाँत गड़ाकर घायल कर दिया ॥ ३३ ॥

स लम्बकेसरसटः कृष्णेन सह सङ्गतः ।
रराज केशी मेघेन संसक्तः ख इवांशुमान् ॥ ३४ ॥

लंबे-लंबे अयालसे सुशोभित केशी श्रीकृष्णके साथ जूझता हुआ उसी तरह शोभा पाने लगा, जैसे आकाशमें अंशुमाली सूर्य मेघके साथ उलझ गये हों ॥ ३४ ॥

उरस्तस्योरसा हन्तुमियेष बलवान् हयः ।
वेगेन वासुदेवस्य क्रोधाद् द्विगुणविक्रमः ॥ ३५ ॥

उस बलवान् घोड़ेका पराक्रम उसके क्रोधके कारण दूना बढ़ गया था। उसने श्रीकृष्णकी छातीपर अपनी छातीसे वेगपूर्वक चोट पहुँचानेका विचार किया ॥ ३५ ॥

तस्योत्सिक्तस्य बलवान् कृष्णोऽप्यमितविक्रमः ।
बाहुमाभोगिनं कृत्वा मुखे क्रुद्धः समादधत् ॥ ३६ ॥

तब अमित पराक्रमी बलवान् श्रीकृष्णने भी कुपित होकर उस घंमडी दैत्यके मुखमें अपनी एक बाँहको बहुत बड़ी करके डाल दिया ॥ ३६ ॥

स तं बाहुमशक्तो वै खादितुं भेत्तुमेव च ।
दशनैर्मूलनिर्मुक्तैः सफेनं रुधिरं वमन् ॥ ३७ ॥

वह उनकी उस बाँहको अपने दाँतोंसे चबाने या विदीर्ण करनेमें समर्थ न हो सका, उलटे उसके दाँत ही जड़से उखड़ गये; साथ ही वह मुखसे फेनसहित रक्त वमन करने लगा ॥

विपाटिताभ्यामोष्ठाभ्यां कटाभ्यां विदलीकृतः ।
अक्षिणी विवृते चक्रे विसृते मुक्तबन्धने ॥ ३८ ॥

उसके ओठ और गलफर फटकर दो दलोंमें विभक्त हो गये। स्नायुबन्धनके ढीले हो जानेसे केशीकी आँखें फटकर बाहर निकल आयीं ॥ ३८ ॥

निरस्तहनुराविष्टः शोणिताक्तविलोचनः ।
उत्कर्णो नष्टचेतास्तु स केशी बह्वचेष्टत ॥ ३९ ॥

उसके होठोंका निचला भाग फटकर निकल गया। उस बाँहसे आविष्ट होनेके कारण उसके फटे हुए दोनों नेत्रोंसे रक्त बहने लगा। उसके कान भी उखड़कर गिर पड़े तथा चेतना नष्ट हो गयी। उस अवस्थामें केशी बारंबार छटपटाने लगा ॥

उत्पतन्नसकृत्पादैः शकृन्मूत्रं समुत्सृजन् ।
खिन्नाङ्गरोमा श्रान्तस्तु निर्यत्नचरणोऽभवत् ॥ ४० ॥

वह बार-बार पैरोंको उछालने और मल-मूत्र छोड़ने लगा। उसका एक-एक अङ्ग और रोम-रोम खिन्न हो उठा था। अन्तमें वह थक गया और उसके पैर निश्चेष्ट हो गये ॥४०॥

केशिवक्त्रविलग्नस्तु कृष्णबाहुरशोभत ।
व्याभुग्न इव घर्मान्ते चन्द्रार्धकिरणैर्घनः ॥ ४१ ॥

केशीके मुखमें लगी हुई श्रीकृष्णकी वह बाँह उसके मुखमण्डलसे आधी आवेष्टित-सी होकर वर्षाकालमें आधे चन्द्रमाकी किरणोंसे घिरे हुए बादलके समान शोभा पाती थी ॥ ४१ ॥

केशी च कृष्णसंसक्तः शान्तगात्रो व्यरोचत ।
प्रभातावनतश्चन्द्रः श्रान्तो मेरुमिवाश्रितः ॥ ४२ ॥

श्रीकृष्णसे सटे हुए केशीका शरीर शान्त हो गया था। उस समय वह उसी तरह शोभा पा रहा था, जैसे प्रभात-कालमें अस्ताचलके शिखरपर पहुँचा हुआ चन्द्रमा थककर मेरुका आश्रय लेनेपर सुशोभित होता है ॥ ४२ ॥

तस्य कृष्णभुजोद्धूताः केशिनो दशना मुखात् ।
पेतुः शरदि निस्तोयाः सिताभ्रावयवा इव ॥ ४३ ॥

श्रीकृष्णकी भुजासे टकराकर केशीके सारे दाँत मुखसे बाहर गिर पड़े। वे ऐसे प्रतीत होते थे, मानो शरदृतुके जलशून्य श्वेत बादलोंके टुकड़े बिखरे हुए हों ॥ ४३ ॥

स तु केशी भृशं शान्तः कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ।
स्वभुजं स्वायतं कृत्वा पाटितो बलवत् तदा ॥ ४४ ॥

जब केशी भलीभाँति शान्त हो गया, तब अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीकृष्णने अपनी बाँहको बहुत बड़ी करके उस दैत्यके शरीरको बलपूर्वक बीचसे चीर डाला॥४४॥

स पाटितो भुजेनाजौ कृष्णेन विकृताननः ।
केशी नदन्महानादं दानवो व्यथितस्तदा ॥ ४५ ॥

उस युद्धस्थलमें श्रीकृष्णकी भुजाद्वारा फाड़े गये केशीका मुख विकराल हो उठा। वह दानव व्यथित होकर बड़े जोर-जोरसे आर्तनाद करने लगा ॥ ४५ ॥

विघूर्णमानस्त्रस्ताङ्गो मुखाद् रुधिरमुद्वमन् ।
भृशं व्यङ्गीकृतवपुर्निकृत्तार्द्ध इवाचलः ॥ ४६ ॥

उसके सारे अङ्ग शिथिल हो गये थे। वह चक्कर काटता हुआ मुँहसे खून उगल रहा था। उसका शरीर कई अङ्गोंसे हीन हो चुका था। वह ऐसा दिखायी देता था, मानो किसी पर्वतको बीचसे चीर डाला गया हो ॥ ४६ ॥

व्यादितास्यो महारौद्रः सोऽसुरः कृष्णबाहुना ।
निपपात यथा कृत्तो नागो हि द्विदलीकृतः ॥ ४७ ॥

श्रीकृष्णकी भुजासे जिसका मुँह फट गया था, वह दो भागोंमें बँटा हुआ महाभयङ्कर असुर दो टुकड़ोंमें कटे हुए हाथीके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ४७ ॥

बाहुना कृत्तदेहस्य केशिनो रूपमाबभौ ।
पशोरिव महाघोरं निहतस्य पिनाकिना ॥ ४८ ॥

श्रीकृष्णकी भुजासे कटे हुए शरीरवाले केशीका रूप पिनाकपाणि भगवान् रुद्रद्वारा मारे गये पशु (महिषासुर)के समान अत्यन्त भयंकर प्रतीत होता था ॥ ४८ ॥

द्विपादपृष्ठपुच्छार्द्धे श्रवणैकाक्षिनासिके ।
केशिनस्तद्विधाभूते द्वे चार्धे रेजतुः क्षितौ ॥ ४९ ॥

'केशीके शरीरके वे दोनों खण्ड दो पाँव, आधी पीठ, आधी पूँछ तथा एक-एक कान, आँख और नासिकारन्ध्रसे युक्त हो पृथ्वीपर पड़े-पड़े (अनुपम) शोभा पा रहे थे॥४९॥

केशिदन्तक्षतस्यापि कृष्णस्य शुशुभे भुजः ।
वृद्धः साल इवारण्ये गजेन्द्रदशनाङ्कितः ॥ ५० ॥

केशीके दाँतोंसे घायल हुई श्रीकृष्णकी वह बाँह ऐसी सुशोभित हो रही थी, मानो वनमें गजराजके दाँतोंके आघात-चिह्नसे अङ्कित कोई बहुत बड़ा शालका वृक्ष हो ॥ ५० ॥

तं हत्वा केशिनं युद्धे कल्पयित्वा च भागशः ।
कृष्णः पद्मपलाशाक्षो हसंस्तत्रैव तस्थिवान् ॥ ५१ ॥

इस प्रकार युद्धमें केशीको मारकर उसके शरीरके टुकड़े-टुकड़े करके कमलनयन श्रीकृष्ण वहीं हँसते हुए खड़े रहे॥

तं हतं केशिनं दृष्ट्वा गोपा गोपस्त्रियस्तथा ।
बभूवुर्मुदिताः सर्वे हतविघ्ना गतक्लमाः ॥ ५२ ॥

उस केशीको मारा गया देख गोप और गोपाङ्गनाएँ बहुत प्रसन्न हुईं । सबके विघ्न नष्ट हो गये, कष्ट दूर हो गये॥५२॥

दामोदरं तु श्रीमन्तं यथास्थानं यथावयः ।
अभ्यनन्दन् प्रियैर्वाक्यैः पूजयन्तः पुनः पुनः ॥ ५३ ॥

स्थान और अवस्थाके अनुसार सभी गोप बारंबार श्रीमान् दामोदरका पूजन करते हुए प्रिय वचनोंद्वारा उनका अभिनन्दन करने लगे ॥ ५३ ॥

गोपा ऊचुः

अहो तात कृतं कर्म हतोऽयं लोककण्टकः ।
दैत्यः क्षितिचरः कृष्ण हयरूपं समास्थितः ॥ ५४ ॥

गोप बोले—तात ! तुमने अद्भुत कर्म किया है । यह समस्त जगत्के लिये कंटकरूप दैत्य आज तुम्हारे हाथसे मारा गया । श्रीकृष्ण ! यह इस भूतलपर घोड़ेका रूप धारण करके चरता था ॥ ५४ ॥

कृतं वृन्दावनं क्षेमं सेव्यं नृमृगपक्षिणाम् ।
घ्नता पापमिमं तात केशिनं हयदानवम् ॥ ५५ ॥

तात ! इस अश्वरूपधारी पापी दानव केशीका वध करके तुमने वृन्दावनको मनुष्यों तथा पशु-पक्षियोंके लिये सेव्य और क्षेमकारक बना दिया ॥ ५५ ॥

हता नो बहवो गोपा गावो वत्सेषु वत्सलाः ।
नैके चान्ये जनपदा हतानेन दुरात्मना ॥ ५६ ॥

इस दुरात्माने हमारे बहुत-से गोप मार डाले थे । बछड़ों-पर वात्सल्य रखनेवाली बहुत-सी गौओंका भी वध कर डाला था; इसके सिवा और भी कितने ही जनपद इसके हाथों नष्ट हो चुके थे ॥ ५६ ॥

एष संवर्तकं कर्तुमुद्यतः खलु पापकृत् ।
नृलोकं निर्नरं कृत्वा चर्तुकामो यथासुखम् ॥ ५७ ॥

यह पापाचारी दानव निश्चय ही संसारका प्रलय करनेके लिये उद्यत हुआ था । मनुष्य-लोकको मनुष्योंसे सूना करके यहाँ सुखपूर्वक विचरनेकी इच्छा रखता था ॥ ५७ ॥

नैतस्य प्रमुखे स्थातुं कश्चिच्छक्तो जिजीविषुः ।
अपि देवसमूहेषु किं पुनः पृथिवीतले ॥ ५८ ॥

जीवित रहनेकी इच्छावाला कोई भी पुरुष इसके सामने खड़ा नहीं हो सकता था । देवताओंके समूहमेंसे भी कोई इसका सामना नहीं कर सकता था, फिर भूतल-निवासियोंकी तो बात ही क्या है ? ॥ ५८ ॥

वैशम्पायन उवाच

अथाहान्तर्हितो विप्रो नारदः खगमो मुनिः ।
प्रीतोऽस्मि विष्णो देवेश कृष्ण कृष्णेति चाब्रवीत् ५९

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर आकाशचारी मुनि विप्रवर नारदजी आकाशमें अदृश्य भावसे खड़े हो बोले—'देवेश्वर विष्णो ! कृष्ण ! कृष्ण !! मैं आप-पर बहुत प्रसन्न हूँ ॥ ५९ ॥

नारद उवाच

यदिदं दुष्करं कर्म कृतं केशिजिघांसया ।
त्वय्येव केवलं युक्तं त्रिदिवे त्र्यम्बकस्य वा ॥ ६० ॥

नारदजी फिर बोले—प्रभो ! आपने केशीको मार डालनेकी इच्छासे जो यह दुष्कर कर्म किया है, यह केवल आपके ही योग्य था अथवा देवलोकमें केवल त्रिनेत्रधारी रुद्र ही ऐसा पराक्रम कर सकते थे ॥ ६० ॥

अहं युद्धोत्सुकस्तात त्वद्गतेनान्तरात्मना ।
इदं नरहयं युद्धं द्रष्टुं स्वर्गादिहागतः ॥ ६१ ॥

तात ! मैं युद्ध देखनेको सदा ही उत्सुक रहता हूँ । अतः अपनी अन्तरात्मासे आपका ही चिन्तन करता हुआ यह

मनुष्य और अश्वका संग्राम देखनेके लिये स्वर्गलोकसे यहाँ आया था ॥ ६१ ॥

पूतनानिधनादीनि कर्माणि तव दृष्टवान् ।
अहं त्वनेन गोविन्द कर्मणा परितोषितः ॥ ६२ ॥

गोविन्द ! आपके 'पूतनावध' आदि कर्मोंको भी मैं देख चुका हूँ। किंतु इस केशीके वधरूप कर्मसे मुझे विशेष संतोष हुआ है ॥ ६२ ॥

भयादस्मान्महेन्द्रोऽपि बिभेति बलसूदनः ।
कुर्वाणाच्च वपुर्घोरं केशिनो दुष्टचेतसः ॥ ६३ ॥

भयानक रूप धारण करनेवाले इस दुरात्मा अश्व केशीसे बलसूदन देवराज इन्द्र भी डरते थे ॥ ६३ ॥

यत्त्वया पाटितो देहो भुजेनायतपर्वणा ।
एषोऽस्य मृत्युरन्ताय विहितो विश्वयोनिना ॥ ६४ ॥

आपने अपनी बाँहके एक भागको बड़ा करके उसके द्वारा जो इसके शरीरको फाड़ डाला है, विश्वयोनि ब्रह्माजीने इसकी मृत्युके लिये ऐसा ही विधान बनाया था ॥ ६४ ॥

यस्मात् त्वया हतः केशी तस्मान्मच्छासनं शृणु ।
केशवो नाम नाम्ना त्वं ख्यातो लोके भविष्यसि ॥ ६५ ॥

अब आप मेरा यह अनुशासन सुनें—आपने केशीका वध किया है, इसलिये संसारमें 'केशव' नामसे विख्यात होंगे॥

स्वस्त्यस्तु भवतो लोके साधु याम्यहमाशुगः ।
कृत्यशेषं च ते कार्यं शक्तस्त्वमसि मा चिरम् ॥ ६६ ॥

जगत्में आपका (या आपसे जगत्का) कल्याण हो। आपको साधुवाद देकर मैं शीघ्र चला जाता हूँ। अब जो (कंस-वध आदि) कृत्य शेष रह गये हैं, उन्हें आपको पूर्ण करना है। आप इसमें समर्थ हैं, अतः शीघ्र कर डालें; विलम्ब न होने दें ॥ ६६ ॥

त्वयि कार्यान्तरगते नरा इव दिवौकसः ।
विडम्बयन्तः क्रीडन्ति लीलां त्वद्बलमाश्रिताः ॥ ६७ ॥

जब आप भूभार-हरण आदि अन्य कार्योंके लिये यहाँ (अवतार लेनेके लिये) चले आते हैं, तब आपके ही बलका आश्रय लेनेवाले देवता भी मनुष्योंकी भाँति आपकी लीलाका अनुकरण (अभिनय) करते हुए (नाटक आदि) खेलते हैं ।६७।

अभ्याशे वर्तते कालो भारतस्याहवोदधेः ।
हस्तप्राप्तानि युद्धानि राज्ञां त्रिदिवगामिनाम् ॥ ६८ ॥

समुद्रतुल्य महाभारतयुद्धका समय अब बहुत निकट है। मरकर स्वर्गमें जानेवाले राजाओंके लिये युद्धके अवसर हाथमें आ गये हैं ॥ ६८ ॥

पन्थानः शोधिता व्योम्नि विमानारोहणोर्ध्वगाः ।
अवकाशा विभज्यन्ते शक्रलोके महीक्षिताम् ॥ ६९ ॥

विमानोंके आरोहणके लिये आकाशमें जो ऊर्ध्वगामी मार्ग हैं, उनका शोधन कर दिया गया है (रुकावटें दूर कर दी गयी हैं)। इन्द्रलोकमें आनेवाले राजाओंके लिये पृथक्-पृथक् अवकाश (निवास-स्थान) बनाये जाते हैं ॥ ६९ ॥

उग्रसेनसुते शान्ते पदस्थे त्वयि केशव ।
अभितस्तन्महद् युद्धं भविष्यति महीक्षिताम् ॥ ७० ॥

केशव ! उग्रसेनकुमार कंसके मारे जानेपर जब आप यादवोंके संरक्षणके रूपमें मुख्य पदपर प्रतिष्ठित होंगे; तब सब ओर राजाओंका वह महान् युद्ध आरम्भ हो जायगा।७०।

त्वां चाप्रतिमकर्माणं संश्रयिष्यन्ति पाण्डवाः ।
भेदकाले नरेन्द्राणां पक्षग्राहो भविष्यसि ॥ ७१ ॥

आपके कर्म (या पराक्रम) की कहीं तुलना नहीं है, अतः पाण्डवलोग आपकी ही शरण लेंगे। राजाओंमें भेदके अवसरपर जब युद्ध उपस्थित होगा, उस समय आप पाण्डवोंका ही पक्ष लेंगे ॥ ७१ ॥

त्वयि राजासनस्थे हि राजश्रियमनुत्तमाम् ।
शुभां त्यक्ष्यन्ति राजानस्त्वत्प्रभावान्न संशयः ॥ ७२ ॥

जब आप राजासनपर बैठेंगे, तब आपके प्रभावसे राजा लोग अपनी उत्तम एवं शुभ राज्यलक्ष्मीको त्याग देंगे, इसमें संशय नहीं है ॥ ७२ ॥

एष मे कृष्ण संदेशः श्रुतिभिः ख्यातिमेष्यति ।
देवतानां दिविस्थानां जगतश्च जगत्पते ॥ ७३ ॥

जगदीश्वर श्रीकृष्ण ! यह मेरा तथा स्वर्गवासी देवताओंका संदेश है, जो श्रुतियोंद्वारा गूढ़ रूपसे प्रतिपादित है।* अब यह जगत्में भी विख्यात हो जायगा ॥ ७३ ॥

दृष्टं मे भवतः कर्म दृष्टश्चासि मया प्रभो ।
कंसे भूयः समेष्यामि साधिते साधु याम्यहम् ॥ ७४ ॥

---

* उन संदेशप्रतिपादक श्रुतियोंमेंसे एक श्रुति, जो महाभारतयुद्धपर प्रकाश डालती है, इस प्रकार है—"अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च विवर्तेते रजसी वेद्याभिः। वैश्वानरो जायमानो न राजावातिरज्योतिषाग्निस्तमांसि" अर्थात् एक युद्धयज्ञका सम्बन्ध श्रीकृष्णसे है और दूसरे युद्धयज्ञका अर्जुनसे। उन दोनोंने एक साथ होकर जब कार्य किया, तब उनके द्वारा दो युद्ध-यज्ञ सम्पादित हुए। वे दोनों युद्धयज्ञ रजोगुणी थे; क्योंकि प्राप्य पैतृक सम्पत्तिको निमित्त बनाकर किये गये थे। वैश्वानर अर्थात् धर्म संसारमें जन्म ग्रहण करके (श्रीकृष्ण और अर्जुनकी सहायतासे) निश्चय ही राजा हुआ। उसने प्रकाशमान अग्निकी सहायतासे असुरोंका अन्धकार तिरोहित कर दिया था (अर्थात् धर्मराजने खाण्डव-दाहके समय अग्निके दिये हुए चक्र और गाण्डीवकी सहायतासे श्रीकृष्ण और अर्जुनके पराक्रमद्वारा असुरोंका विध्वंस कराया। (नीलकण्ठीसे

प्रभो ! मैंने आपका पराक्रम देखा, आपका भी दर्शन किया। साधुवाद ! अब मैं जाता हूँ, कंसके मारे जानेपर मैं फिर आपसे मिलूँगा ॥ ७४ ॥

एवमुक्त्वा तु स तदा नारदः खं जगाम ह ।
नारदस्य वचः श्रुत्वा देवसंगीतयोनिनः ॥ ७५ ॥
तथेति स समाभाष्य पुनर्गोपान् समासदत् ।
गोपाः कृष्णं समासाद्य विविशुर्व्रजमेव ह ॥ ७६ ॥

ऐसा कहकर नारदजी तत्काल आकाशमें चले गये। देवसङ्गीतके उत्पत्तिस्थान नारदजीका पूर्वोक्त वचन सुनकर श्रीकृष्णने 'तथास्तु' कहकर उनकी बात मान ली, फिर वे गोपोंसे मिले। गोपगण श्रीकृष्णसे मिलकर उनके साथ ही पुनः व्रजमें प्रविष्ट हुए ॥ ७५-७६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि केशिवधे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें केशीका वधविषयक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

अक्रूरका व्रजमें आकर भगवान् श्रीकृष्णको देखना और उनके विषयमें अनेक प्रकारकी बातें सोचना

वैशम्पायन उवाच

अथास्तं गच्छति तदा मन्दरश्मौ दिवाकरे ।
संध्यारक्ततले व्योम्नि शशाङ्के पाण्डुमण्डले ॥ १ ॥
नीडस्थेषु विहङ्गेषु सत्सु प्रादुष्कृताग्निषु ।
ईषत्तमःसंवृतासु दिक्षु सर्वासु सर्वशः ॥ २ ॥
घोषवासिषु सुप्तेषु वाशन्तीषु शिवासु च ।
नक्तंचरेषु हृष्टेषु पिशिताशनकाङ्क्षिषु ॥ ३ ॥
शक्रगोपाह्वयामोदे प्रदोषेऽभ्यासतस्करे ।
संध्यामयीमिव गुहां सम्प्रतिष्ठे दिवाकरे ॥ ४ ॥
अधिश्रयणवेलायां प्राप्तायां गृहमेधिनाम् ।
वन्यैर्वैखानसैर्मन्त्रैर्हूयमाने हुताशने ॥ ५ ॥
उपावृत्तासु वै गोषु दुह्यमानासु च व्रजे ।
असकृद्व्याहरन्तीषु बद्धवत्सासु धेनुषु ॥ ६ ॥
प्रकीर्णदामनीकेषु गास्तथैवाह्वयत्सु च ।
सनिनादेषु गोपेषु काल्यमाने च गोधने ॥ ७ ॥
करीषेषु प्रक्लृप्तेषु दीप्यमानेषु सर्वशः ।
काष्ठभारानतस्कन्धैर्गोपैरभ्यागतैस्तथा ॥ ८ ॥
किंचिदभ्युद्यते सोमे मन्दरश्मौ विराजति ।
ईषद्विगाहमानायां रजन्यां दिवसे गते ॥ ९ ॥
प्राप्ते दिनव्युपरमे प्रवृत्ते क्षणदामुखे ।
भास्करे तेजसि गते सौम्ये तेजस्युपस्थिते ॥ १० ॥
अग्निहोत्राकुले काले सौम्येन्दौ समुपस्थिते ।
अग्नीषोमात्मके संधौ वर्तमाने जगन्मये ॥ ११ ॥
पश्चिमेनाग्निदीप्तेन पूर्वेणोत्पलवर्चसा ।
दग्धाद्रिसदृशे व्योम्नि किंचित्तारागणाकुले ॥ १२ ॥
वयोभिर्वासमुशतां बन्धुभिश्च समागमम् ।
शंसद्भिः स्यन्दनेनाशु प्राप्तो दानपतिर्व्रजम् ॥ १३ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! उस दिन जब सूर्यदेव अस्ताचलको जाने लगे, उनकी किरणें मन्द हो [illegible] पश्चिमके आकाशमें संध्याकी लाली छा गयी, चन्द्रमाका श्वेत-पीत मण्डल उदित होने लगा, पक्षी अपने नीड़ों (घोसलों) में विश्राम करने लगे, श्रेष्ठ याज्ञिकोंने जब अग्नि प्रज्वलित कर दी, सम्पूर्ण दिशाएँ सब ओरसे जब कुछ-कुछ अन्धकारसे आवृत हो गयीं, व्रजवासी सोनेकी तैयारी करने लगे, गीदड़ियाँ बोलने लगीं, मांसाहारकी अभिलाषा रखनेवाले निशाचर हर्षमें भर गये, धूपसे तपे हुए इन्द्रगोप नामक कीड़ोंको आनन्द देनेवाला और वेदोंके स्वाध्यायको बंद करनेवाला प्रदोषकाल जब आ पहुँचा, जब सूर्यदेव संध्यारूपिणी गुफामें प्रविष्ट हो गये, जब गृहस्थोंके लिये हवनीय घृत या दुग्धको आगपर रखनेकी बेला आ पहुँची, वनवासी वैखानस (वानप्रस्थ) जब मन्त्रोंद्वारा अग्निमें आहुति देने लगे, जब गौएँ वनसे लौटकर व्रजमें आ गयीं और उनका दूध दुह लिया गया, जिनके बछड़े बँधे थे और जो स्वयं भी लंबी रस्सियोंमें आबद्ध थीं, वे धेनुएँ जब बार-बार रँभाने लगीं, गौओंको बुलाते हुए गोपगण जब सब ओर कोलाहल करने लगे, जब बाँधनेके लिये गौओंको हाँककर ले जाया जाने लगा; काष्ठके भारसे झुके हुए कंधोंवाले गोप जब घर आकर सब ओर फैले हुए सूखे गोबरके चूरोंको सुलगाने या प्रज्वलित करने लगे, किंचित् उदित हुए चन्द्रदेव जब अपनी मन्द किरणोंसे ही प्रकाशित हो रहे थे, दिन चले जानेपर थोड़ी-सी ही रातका आगमन हुआ था, दिनकी पूर्ण समाप्ति होकर रात्रिके प्रथम प्रहरका अभी आरम्भ ही हुआ था, सूर्यका उष्ण प्रकाश अस्त होकर चन्द्रमाका शीतल प्रकाश उपस्थित हुआ था, जिस समय अग्निहोत्रकी सुगन्धि सब ओर व्याप्त हो रही थी, स्वभावतः सौम्य चन्द्रदेव उदित हुए, जब सम्पूर्ण जगत्में अग्नीषोमात्मक संधिका समय वर्तमान था, जब पश्चिममें अग्निके समान संध्याकालका अरुण प्रकाश फैला था तथा पूर्वमें भी लाल कमलके समान कान्तिवाले चन्द्रमाकी कुङ्कुम-

इनमें तुरीय

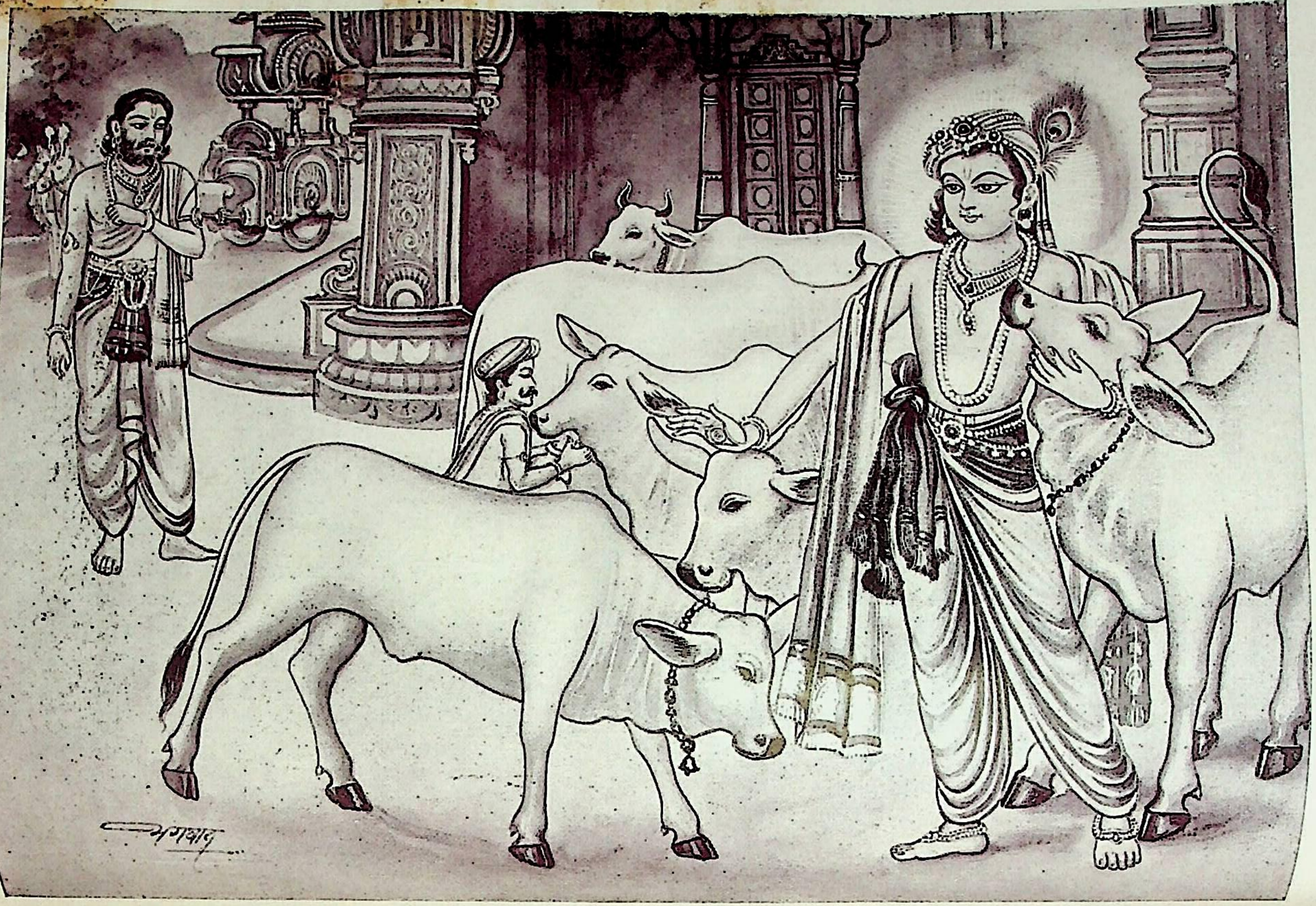

जैसी प्रभा फैली हुई थी और उन दोनों दिशाओंके अरुण प्रकाशसे जब आकाश उभयपार्श्वसे दग्ध हुए पर्वतके समान प्रतीत हो रहा था और उसमें कुछ-कुछ तारे प्रकट हो गये थे, ऐसे समयमें घर लौटनेकी इच्छावाले पथिकोंको बन्धुओंसे समागम होनेकी सूचना-सी देनेवाले पक्षियोंके साथ-साथ दानपति अक्रूर अपने रथके द्वारा शीघ्र ही व्रजमें आ पहुँचे ॥ १–१३ ॥

प्रविशन्नेव पप्रच्छ सांनिध्यं केशवस्य सः ।
रौहिणेयस्य चाक्रूरो नन्दगोपस्य चासकृत् ॥ १४ ॥

व्रजमें प्रवेश करते ही अक्रूर वहाँके लोगोंसे बारंबार श्रीकृष्ण, रोहिणीनन्दन बलराम तथा नन्दगोपका निवासस्थान पूछने लगे ॥ १४ ॥

स नन्दगोपस्य गृहं वासाय विबुधोपमः ।
अवतीर्य ततो यानात् प्रविवेश महाबलः ॥ १५ ॥

तत्पश्चात् देवोपम कान्तिसे युक्त महाबली अक्रूर उस रथसे उतरकर निवासके लिये नन्दगोपके घरमें प्रविष्ट हुए ॥ १५ ॥

हर्षपूर्णेन वक्त्रेण साश्रुनेत्रेण चैव हि ।
प्रविशन्नेव च द्वारि ददर्शादोहने गवाम् ॥ १६ ॥
वत्समध्ये स्थितं कृष्णं सवत्समिव गोवृषम् ।

उस समय उनके मुखपर पूर्ण हर्ष छा रहा था, नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बह रहे थे, नन्दके द्वारपर पदार्पण करते ही उन्होंने देखा, गौओंके दुहनेके स्थानमें श्रीकृष्ण बहुत-से बछड़ोंके बीचमें खड़े हैं । वे ऐसे जान पड़ते थे, मानो बछड़ों-सहित साँड़ खड़ा हो ॥ १६½ ॥

स तं हर्षपरीतेन वचसा गद्गदेन वै ॥ १७ ॥
एहि केशव तातेति प्रव्याहरत धर्मवित् ।

उन्हें देखते ही धर्मज्ञ अक्रूर हर्षभरी गद्गद वाणीद्वारा बोले—'तात केशव ! यहाँ आओ !' ॥ १७½ ॥

उत्तानशायिनं दृष्ट्वा पुनर्दृष्ट्वा श्रिया वृतम् ॥ १८ ॥
अव्यक्तयौवनं कृष्णमक्रूरः प्रशशंस ह ।

(कुछ ही वर्ष पहले) जिन्हें शैशवावस्थामें उत्तान सोते देखा-सुना था, उन्हीं श्रीकृष्णको पुनः अनुपम शोभासे सम्पन्न अव्यक्त यौवन-अवस्थामें देखकर अक्रूर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ॥ १८½ ॥

अयं स पुण्डरीकाक्षः सिंहशार्दूलविक्रमः ।
सम्पूर्णजलमेघाभः पर्वतप्रवराकृतिः ॥ १९ ॥

ये ही वे सिंह और व्याघ्रके समान पराक्रमी कमलनयन श्रीकृष्ण दिखायी देते हैं, जिनकी अङ्गकान्ति जलसे भरे हुए जलधरकी भाँति श्याम है और शरीरकी ऊँचाई श्रेष्ठ पर्वतके समान प्रतीत होती है ॥ १९ ॥

मृधे[illegible]गीयेन सश्रीवत्सेन वक्षसा ।
द्विषन्निधनदक्षाभ्यां भुजाभ्यां साधु भूषितः ॥ २० ॥

इनका श्रीवत्सविभूषित वक्षःस्थल युद्धमें अजेय है और भुजाएँ शत्रुओंका संहार करनेमें कुशल हैं । इन भुजाओं तथा वक्षःस्थलसे इनके श्रीविग्रहकी बड़ी शोभा हो रही है ॥

मूर्तिमान् स रहस्यात्मा जगतोऽग्र्यस्य भाजनम् ।
गोपवेषधरो विष्णुरुदग्राग्र्यतनूरुहः ॥ २१ ॥

ये ही वे मूर्तिमान् रहस्यात्मा (उपनिषदोंमें प्रतिपादित पुरुषोत्तम) हैं, जो इस संसारकी अग्रपूजा पानेके प्रथम अधिकारी हैं। वे भगवान् विष्णु ही यहाँ गोप-वेश धारण करके प्रकट हुए हैं । इनकी रोमावलि ऊपरकी ओर उठी हुई और परम पवित्र है (अर्थात् यह प्रेमी भक्तोंको देखते ही रोमाञ्चित हो उठते हैं) ॥ २१ ॥

किरीटलाञ्छनेनापि शिरसा छत्रवर्चसा ।
कुण्डलोत्तमयोग्याभ्यां श्रवणाभ्यां विभूषितः ॥ २२ ॥

जिसपर किरीट धारण करनेका चिह्न है तथा जहाँ छत्राकार कान्ति प्रकाशित हो रही है, उस मस्तकसे और उत्तम कुण्डल पहनने योग्य दोनों कानोंसे ये विभूषित हो रहे हैं ॥

हारार्हेण च पीनेन सुविस्तीर्णेन वक्षसा ।
द्वाभ्यां भुजाभ्यां वृत्ताभ्यां दीर्घाभ्यामुपशोभित[illegible]

हार पहनने योग्य ऊँची और चौड़ी छातीसे तथा गोलाकार दो विशाल भुजाओंसे इनकी बड़ी शोभा हो रही है ॥

स्त्रीसहस्रोपचर्येण वपुषा मन्मथार्चिना ।
पीते वसानो वसने सोऽयं विष्णुः सनातनः ॥ २४ ॥

इनका श्रीविग्रह उस यौवन और पौगण्ड अवस्थाकी संधिमें पहुँचा हुआ है, जहाँ कामदेवको आश्रय मिलता है । यह विग्रह सहस्रों स्त्रियोंद्वारा परिचर्या प्राप्त करने योग्य है। ऐसे दिव्य शरीरपर दो पीत-वस्त्र धारण किये ये वे ही सनातन विष्णु यहाँ विराजमान हैं ॥ २४ ॥

धरण्याश्रयभूताभ्यां चरणाभ्यामरिंदमः ।
त्रैलोक्याक्रान्तिभूताभ्यां भुवि पद्भ्यां व्यवस्थितः ॥

जो पृथ्वीके आश्रयभूत हैं तथा तीनों लोकोंको आक्रान्त करनेमें समर्थ हैं, ऐसे संचरणशील युगल चरणोंसे यह शत्रुदमन श्रीकृष्ण इस भूमिपर खड़े हैं ॥ २५ ॥

रुचिराग्रकरश्चास्य चक्राङ्कित इवेक्षते ।
द्वितीय उद्यतश्चापि गदासंयोगमिच्छति ॥ २६ ॥

इनका एक हाथ, जिसका अग्रभाग बहुत ही सुन्द[illegible] है, चक्रसे चिह्नित-सा दिखायी देता है । दूसरा उठा हुआ गदासे संयुक्त होना चाहता है ॥ २६ ॥

अवतीर्णो भवायेह प्रथमं पद्मात्मनः ही संतप्त
शोभतेऽद्य भुवि श्रेष्ठस्त्रिदशानां धुरंधरः ॥ २७ ॥

CC-0. In Public Domain. Digitization ... Funding IKS-MoE-Grant-2

ये ही परब्रह्म परमात्माके प्रथम पद[1] (तुरीय ब्रह्म) हैं, जो यहाँ जगत्‌के कल्याणके लिये अवतीर्ण हुए हैं। देवताओंकी रक्षाका भार वहन करनेवाले वे सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर आज भूतलपर अवतीर्ण होकर शोभा पाते हैं ॥ २७ ॥

अयं भविष्ये कथितो भविष्यकुशलैर्नरैः।
गोपालो यादवं वंशं क्षीणं विस्तारयिष्यति ॥ २८ ॥

इन्हींके विषयमें भविष्यकी बात बतानेमें कुशल मनुष्योंने कहा है कि गोपाल श्रीकृष्ण भविष्यमें क्षीण हुए यादववंशका विस्तार करेंगे ॥ २८ ॥

तेजसा यादवाश्चास्य शतशोऽथ सहस्रशः।
वंशमापूरयिष्यन्ति ह्योघा इव महार्णवम् ॥ २९ ॥

जैसे नदियोंके बहुत-से जलप्रवाह महासागरको पूर्ण करते रहते हैं, उसी प्रकार सैकड़ों और हजारों यदुवंशी इनके प्रभावसे अपने वंशकी वृद्धि करेंगे ॥ २९ ॥

अस्येदं शासने सर्वं जगत् स्थास्यति शाश्वतम्।
निहतामित्रसामन्तं स्फीतं कृतयुगे तथा ॥ ३० ॥

यह सारा जगत्, जो सनातनकालसे चला आ रहा है, इनके शासनमें स्थित होगा। उस समय इसको कष्ट देनेवाले शत्रु और सामन्त नष्ट हो जायँगे और यह विश्व सत्ययुगकी भाँति सुख-शान्ति एवं समृद्धिसे सम्पन्न हो जायगा ॥ ३० ॥

अयमास्थाय वसुधां स्थापयित्वा जगद् वशे।
राज्ञां भविष्यत्युपरि न च राजा भविष्यति ॥ ३१ ॥

ये इस वसुधापर रहकर जगत्‌को अपने वशमें स्थापित करके समस्त राजाओंके ऊपर प्रतिष्ठित हो जायँगे, परंतु स्वयं राजा नहीं बनेंगे ॥ ३१ ॥

नूनं त्रिभिः क्रमैर्जित्वा यथानेन प्रभुः कृतः।
पुरा पुरंदरो राजा देवतानां त्रिविष्टपे ॥ ३२ ॥
तथैव वसुधां जित्वा जितपूर्वां त्रिभिः क्रमैः।
स्थापयिष्यति राजानमुग्रसेनं न संशयः ॥ ३३ ॥

निश्चय ही पूर्वकालमें जिस प्रकार इन्होंने अपने तीन पगोंद्वारा त्रिलोकीको जीतकर स्वर्गमें पुरन्दर इन्द्रको देवताओंका राजा बनाया था, उसी प्रकार पहलेकी तीन पगोंद्वारा जीती हुई इस वसुधाको फिर जीतकर यह उग्रसेनको राजाके आसनपर बैठायेंगे, इसमें संशय नहीं है ॥ ३२-३३ ॥

प्रसृष्टवैरगाथोऽयं प्रश्नैश्च बहुभिः श्रुतः।
ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादैश्च पुराणोऽयं हि गीयते ॥ ३४ ॥

यह फैले हुए वैरका अन्त करनेवाले हैं, प्रश्नोपनिषद्‌में बहुत-से (छः) प्रश्नोंद्वारा इन्हींके तत्त्वका प्रतिपादन सुना गया है। ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंद्वारा ये पुराण-पुरुष कहे जाते हैं ॥ ३४ ॥

स्पृहणीयो हि लोकस्य भविष्यति च केशवः।
तथा ह्यस्योत्थिता बुद्धिर्मानुष्यमुपजीवितुम् ॥ ३५ ॥

यह भगवान् केशव समस्त जगत्‌के लिये स्पृहणीय होंगे, क्योंकि इनकी बुद्धिमें मानवताको नया जीवन देनेका विचार उठ खड़ा हुआ है ॥ ३५ ॥

अहं त्वस्याद्य वसतिं पूजयिष्ये यथाविधि।
विष्णुत्वं मनसा चैव पूजयिष्यामि मन्त्रवत् ॥ ३६ ॥

आज मैं इनके निवासस्थानका विधिपूर्वक पूजन करूँगा, फिर मन-ही-मन इनके विष्णुरूपकी भावना करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक उसकी अर्चना करूँगा ॥ ३६ ॥

यच्च ज्ञातिपरिज्ञानं प्रादुर्भावश्च वै नृषु।
अमानुषं वेद्मि चैनं ये चान्ये दिव्यचक्षुषः ॥ ३७ ॥

इनमें जो अपने बन्धु-बान्धवोंको पहचाननेकी शक्ति है और जो इनका मनुष्योंमें अवतार हुआ है, वह सब मेरे लिये आदरणीय है। मैं तो इन्हें अमानव (अलौकिक परमात्मा) समझता ही हूँ, दूसरे दिव्य नेत्रधारी महापुरुष भी इन्हें ऐसा ही मानते हैं ॥ ३७ ॥

सोऽहं कृष्णेन वै रात्रौ सम्मन्त्र्य विदितात्मना।
सहानेन गमिष्यामि सव्रजो यदि मंस्यते ॥ ३८ ॥

अतः मैं इन आत्मवेत्ता श्रीकृष्णके साथ रातमें भलीभाँति सलाह करके यदि व्रजवासियोंसहित ये मेरी बात मान लेंगे तो इनके साथ ही कल मथुराकी यात्रा करूँगा ॥ ३८ ॥

एवं बहुविधं कृष्णं दृष्ट्वा हेत्वर्थकारणैः।
विवेश नन्दगोपस्य कृष्णेन सह संसदम् ॥ ३९ ॥

इस प्रकार युक्तियुक्त कार्य-कारणका विचार करते हुए अक्रूरने श्रीकृष्णको बारंबार देखा और उनके साथ नन्दगोपकी बैठकमें प्रवेश किया ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि अक्रूरागमने पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें अक्रूरका आगमनविषयक पच्चीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५ ॥

◆

---

[1] माण्डूक्य उपनिषद्‌में प्रणवकी मात्राओंपर विचार करते हुए ब्रह्मके चार पाद बताये गये हैं—विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुरीय। इनमें तुरीय साक्षात् पूर्ण परब्रह्मका बोधक है। उत्पत्ति-क्रमसे गणना करनेपर यह तुरीय ही प्रथम पाद हो सकता है। इसीलिये यहाँ दका अर्थ तुरीय ब्रह्म किया गया है।

षड्विंशोऽध्यायः

अक्रूरका गोपोंके लिये कंसका आदेश सुनाना और वसुदेव-देवकीकी दयनीय दशा बताकर श्रीकृष्ण-बलरामको मथुरा चलनेके लिये प्रेरित करना, मार्गमें अक्रूरको यमुनाजीके जलमें आश्चर्यमय नागलोक एवं भगवान् अनन्त तथा उनकी गोदमें श्रीकृष्णका दर्शन

वैशम्पायन उवाच

स नन्दगोपस्य गृहं प्रविष्टः सहकेशवः।
गोपवृद्धान् समानीय प्रोवाचामितदक्षिणः॥ १ ॥
कृष्णं चैवाब्रवीत् प्रीत्या रौहिणेयेन सङ्गतम्।
श्वः पुरीं मथुरां तात गमिष्यामः सुखाय वै॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! श्रीकृष्णके साथ नन्दके गृहमें प्रवेश करके अनन्त दान-दक्षिणा देनेवाले अक्रूरने बड़े-बूढ़े गोपोंको बुलवाया और उनसे तथा बलराम-सहित श्रीकृष्णसे प्रसन्नतापूर्वक यों कहा—'तात! कल सबेरे हमलोग मथुरापुरीको चलेंगे। वहाँ चलकर तुम सुखी होओगे॥

यास्यन्ति च व्रजाः सर्वे गोपालाः सपरिग्रहाः।
कंसाज्ञया समुचितं करमादाय वार्षिकम्॥ ३ ॥

'समस्त व्रजवासी गोप कंसकी आज्ञासे समुचित वार्षिक कर लेकर सपरिवार वहाँ चलेंगे॥ ३॥

समृद्धस्तत्र कंसस्य भविष्यति धनुर्महः।
तं द्रक्ष्यथ समृद्धं च स्वजनैश्च समेष्यथ॥ ४ ॥

'वहाँ कंसका धनुर्यज्ञ बड़ी धूम-धामसे सम्पन्न होगा। उस समृद्धिशाली यज्ञको तुमलोग देखोगे और स्वजनोंसे भी मिलोगे॥ ४॥

पितरं वसुदेवं च सततं दुःखभाजनम्।
दीनं पुत्रवधश्रान्तं युवामद्य समेष्यथः॥ ५ ॥

'तुम दोनों भाई पुत्रोंके वधसे अत्यन्त दीन-दुर्बल होकर सदा दुःख ही भोगनेवाले अपने पिता वसुदेवजीसे वहाँ मिलोगे॥

सततं पीड्यमानं च कंसेनाशुभबुद्धिना।
दशान्ते शोषितं वृद्धं दुःखैः शिथिलतां गतम्॥ ६ ॥

'अशुभ बुद्धिवाले कंसने उन्हें सदा ही पीड़ा दी है। इस बुढ़ापेमें उनके शरीरका रक्त-मांस सूख गया है। बूढ़े वसुदेव अनेक प्रकारके दुःखोंसे भी बहुत शिथिल हो गये हैं॥ ६॥

कंसस्य भयसंत्रस्तं भवद्भ्यां च विना कृतम्।
दह्यमानं दिवा रात्रौ सोत्कण्ठेनान्तरात्मना॥ ७ ॥

'एक तो कंसका भय उन्हें आतङ्कित किये रहता है, दूसरे तुम दोनोंसे वे बिछुड़ गये हैं; अतः तुम्हारे लिये उत्कण्ठितचित्त होकर दिन-रात चिन्ताकी आगमें जलते रहते हैं॥ ७॥

तां च द्रक्ष्यसि गोविन्द पुत्रैरमृदितस्तनीम्।
देवकीं देवसंकाशां सीदन्तीं विहतप्रभाम्॥ ८ ॥
पुत्रशोकेन शुष्यन्तीं त्वद्दर्शनपरायणाम्।
वियोगशोकसंतप्तां विवत्सामिव सौरभीम्॥ ९ ॥

'गोविन्द! तुम वहाँ चलकर अपनी माता देवकीका भी दर्शन करोगे, जिसके स्तनोंसे उसके पुत्रोंने कभी मुँह नहीं लगाया है। वह देवियों-जैसी नारी इस समय प्रभाहीन होकर दुःख भोग रही है। तुम्हारे दर्शनकी आशा लिये पुत्रशोकसे सूखती जा रही है। बिना बछड़ेकी गायके समान वह पुत्र-वियोगके शोकसे संतप्त रहती है॥ ८-९॥

उपप्लुतेक्षणां दीनां नित्यं मलिनवाससम्।
स्वर्भानुवदनग्रस्तां शशाङ्कस्य प्रभामिव॥ १० ॥

'उस दुखियाके नेत्रोंमें निरन्तर आँसू भरे रहते हैं। उसके वस्त्र मैले हो गये हैं। वह राहुके मुखमें पड़ी हुई चन्द्रमाकी प्रभाके समान जान पड़ती है॥ १०॥

त्वद्दर्शनपरां नित्यं तवागमनकाङ्क्षिणीम्।
त्वत्प्रवृत्तेन शोकेन सीदन्तीं वै तपस्विनीम्॥ ११ ॥

'उसे सदा यही चिन्ता रहती है कि कब तुम्हारा दर्शन होगा। वह प्रतिदिन तुम्हारे शुभागमनकी अभिलाषा रखती है। वह तपस्विनी नारी तुम्हारे शोकसे शिथिल हो गयी है॥

त्वत्प्रलापेष्वकुशलां त्वया बाल्ये वियोजिताम्।
अरूपज्ञां तव विभो वक्त्रस्यास्येन्दुवर्चसः॥ १२॥

'प्रभो! बाल्यावस्थामें ही वह तुमसे बिछुड़ गयी, अतः तुम्हारी मीठी-मीठी बातोंमें क्या रस है, इसको समझनेकी चतुरता उसमें नहीं आ सकी है। वह तुम्हारे रूपको नहीं जानती, चन्द्रमाके समान कान्तिमान् इस मुखके दर्शनसे भी वञ्चित रह गयी है॥ १२॥

यदि त्वां जनयित्वा सा देवकी तात तप्यते।
अपत्यार्थो नु कस्तस्या वरं ह्येवानपत्यता॥ १३॥

'तात! यदि तुम्हें जन्म देकर देवकी इतना संताप सह रही है तो उसे संतानका क्या फल मिला? इससे तो उसका संतानहीन होना ही अच्छा था॥ १३॥

अपुत्राणां हि नारीणामेकः शोको विधीयते।
सपुत्रा त्वफले पुत्रे धिक्प्रजातेन तप्यते॥ १

'जिन नारियोंके पुत्र नहीं हुआ है, उन्हें एक ही रहता है; परंतु जो पुत्रवती होकर भी पुत्रका फल न सके, वह उस धिक्कार पानेके योग्य संतानसे सदा ही संतप्त होती रहती है॥ १४॥

त्वं तु शक्रसमः पुत्रो यस्यास्त्वत्सदृशो गुणैः ।
परेषामप्यभयदो न सा शोचितुमर्हति ॥ १५ ॥

'जिसके तुम्हारे समान गुणवान्, इन्द्रतुल्य तेजस्वी तथा दूसरोंको भी अभयदान देनेवाला पुत्र हो, उस माताको शोककी भागिनी नहीं होना चाहिये ॥ १५ ॥

वृद्धौ तवाम्बापितरौ परभृत्यत्वमागतौ ।
भर्त्सितौ त्वत्कृते नित्यं कंसेनाशुभबुद्धिना ॥ १६ ॥

'भैया ! तुम्हारे बूढ़े माता-पिता दूसरेके दासभावको प्राप्त हो गये हैं । पापपूर्ण विचार रखनेवाला कंस उन्हें प्रतिदिन तुम्हारे कारण डाँटता-फटकारता रहता है ॥ १६ ॥

यदि ते देवकी मान्या पृथिवीवात्मधारिणी ।
तां शोकसलिले मग्नामुत्तारयितुमर्हसि ॥ १७ ॥

'तुम्हारे शरीरको अपने गर्भमें धारण करनेवाली माता देवकी यदि लोकधारिणी पृथ्वीके समान माननीय है तो तुमने जैसे पृथ्वीका जलसे उद्धार किया था, उसी प्रकार शोक-सागरके जलमें डूबी हुई उस देवकीका भी तुम्हें उद्धार करना चाहिये ॥ १७ ॥

[illegible]व वृद्धं प्रियसुतं वसुदेवं सुखोचितम् ।
[illegible]त्रयोगेन संयोज्य कृष्ण धर्ममवाप्स्यसि ॥ १८ ॥

'श्रीकृष्ण ! जिन्हें अपने पुत्र बहुत ही प्रिय हैं तथा जो सुख भोगनेके योग्य हैं, उन बूढ़े वसुदेवको पुत्र-संयोगका सुख देकर तुम धर्मके भागी होओगे ॥ १८ ॥

यथा नागः सुदुर्वृत्तो दमितो यमुनाह्रदे ।
विमूलः स कृतः शैलो यथा वै भूधरस्त्वया ॥ १९ ॥
दर्पोत्सिक्तश्च बलवानरिष्टो विनिपातितः ।
परप्राणहरः केशी दुष्टात्मा च हयो हतः ॥ २० ॥
एतेनैव प्रयत्नेन वृद्धावुद्धृत्य दुःखितौ ।
यथा धर्ममवाप्नोषि तत् कृष्ण परिचिन्त्यताम् ॥ २१ ॥

'श्रीकृष्ण ! जैसे तुमने यमुनाके कुण्डमें रहनेवाले उस दुराचारी नागका दमन किया, जैसे गोवर्धन पर्वतको जड़से उखाड़ दिया, जिस प्रकार बलवान् एवं मदमत्त अरिष्टासुरको मार गिराया तथा जिस तरह दूसरोंके प्राण लेनेवाले अश्वरूपधारी दुष्टात्मा केशीका वध किया, वैसे ही प्रयत्नके द्वारा इन दुखी एवं वृद्ध माता-पिताका उद्धार करके तुम जैसे भी धर्मके भागी हो सको, उस उपायको सोचो ॥ १९–२१ ॥

[illegible]त्स्यमानो यैर्दृष्टः पिता ते कंससंसदि ।
[illegible]र्वे चक्रुरश्रूणि नेत्रैर्दुःखान्विता भृशम् ॥ २२ ॥

'जिन लोगोंने कंसकी सभामें तुम्हारे पितापर डाँट पड़ती देखी थी, वे सब-के-सब अत्यन्त दुखी होकर नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे थे ॥ २२ ॥

गर्भावकर्तनादीनि दुःखानि सुबहून्यपि ।
माता ते देवकी कृष्ण कंसस्य सहतेऽवशा ॥ २३ ॥

'कृष्ण ! तुम्हारी माता देवकी विवश होकर कंसके द्वारा दिये गये गर्भोच्छेद आदि बहुत-से दुःख सहती चली आ रही है ॥ २३ ॥

मातापितृभ्यां सर्वेण जातेन तनयेन वै ।
ऋणं वै प्रतिकर्तव्यं यथायोगमुदाहृतम् ॥ २४ ॥

'माता-पितासे उत्पन्न हुए सभी पुत्रोंको यथायोग्य सेवा करके उनके ऋणोंको उतार देना चाहिये, यह शास्त्रकी आज्ञा है ॥ २४ ॥

एवं ते कुर्वतः कृष्ण मातापित्रोरनुग्रहम् ।
परित्यजेतां तौ शोकं स्याच्च धर्मस्तवानघ ॥ २५ ॥

'निष्पाप श्रीकृष्ण ! यदि इस प्रकार तुमने माता-पितापर अनुग्रह किया तो वे दोनों अपने बीते हुए शोकको त्याग देंगे और तुम्हें धर्मकी प्राप्ति होगी' ॥ २५ ॥

वैशम्पायन उवाच

कृष्णः सुविदितार्थो वै तमाहामितविक्रमम् ।
बाढमित्येव तेजस्वी न च क्रोधवशं गतः ॥ २६ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! इन सब बातोंको अच्छी तरह जान लेनेपर तेजस्वी श्रीकृष्णने अमितपराक्रमी अक्रूरसे कहा—'बहुत अच्छा ! हमलोग आपके साथ चलेंगे ।' वे क्रोधके वशीभूत नहीं हुए ॥ २६ ॥

ते च गोपाः समागम्य नन्दगोपपुरःसराः ।
अक्रूरवचनं श्रुत्वा चेलुः कंसस्य शासनात् ॥ २७ ॥

नन्द आदि सभी गोप वहाँ एकत्र हो अक्रूरजीकी बात सुनकर कंसकी आज्ञासे मथुरा चलनेको उद्यत हो गये ॥ २७ ॥

गमनाय च ते सज्जा बभूवुर्व्रजवासिनः ।
सज्जं चोपायनं कृत्वा गोपवृद्धाः प्रतस्थिरे ॥ २८ ॥

वे व्रजवासी गोप यात्राके लिये सुसज्जित हो गये । भेटकी सामग्रीको सजाकर बड़े-बूढ़े गोप वहाँसे प्रस्थित हुए ॥ २८ ॥

करं चानडुहः सर्पिर्महिषांश्चौपनायिकान् ।
यथासारं यथायूथमुपानीय पयो दधि ॥ २९ ॥
तं सज्जयित्वा कंसस्य करं चोपायनानि च ।
ते सर्वे गोपपतयो गमनायोपतस्थिरे ॥ ३० ॥

वार्षिक कर, गाड़ीका बोझ ढोनेवाले बैल, भैंसें, घी, दूध और दही आदि उपहार-सामग्रियोंको अपनी-अपनी शक्ति और यूथके अनुसार लेकर एकत्र किया, फिर कंसकी उस उपायन-सामग्री और वार्षिक करको छकड़ेमें सजाकर वे सभी गोप-सरदार यात्रा करनेके लिये नन्दके द्वारपर उपस्थित हुए ॥

अक्रूरस्य कथाभिश्च सह कृष्णेन जाग्रतः ।
रौहिणेयतृतीयस्य सा निशा व्यत्यवर्तत ॥ ३१ ॥

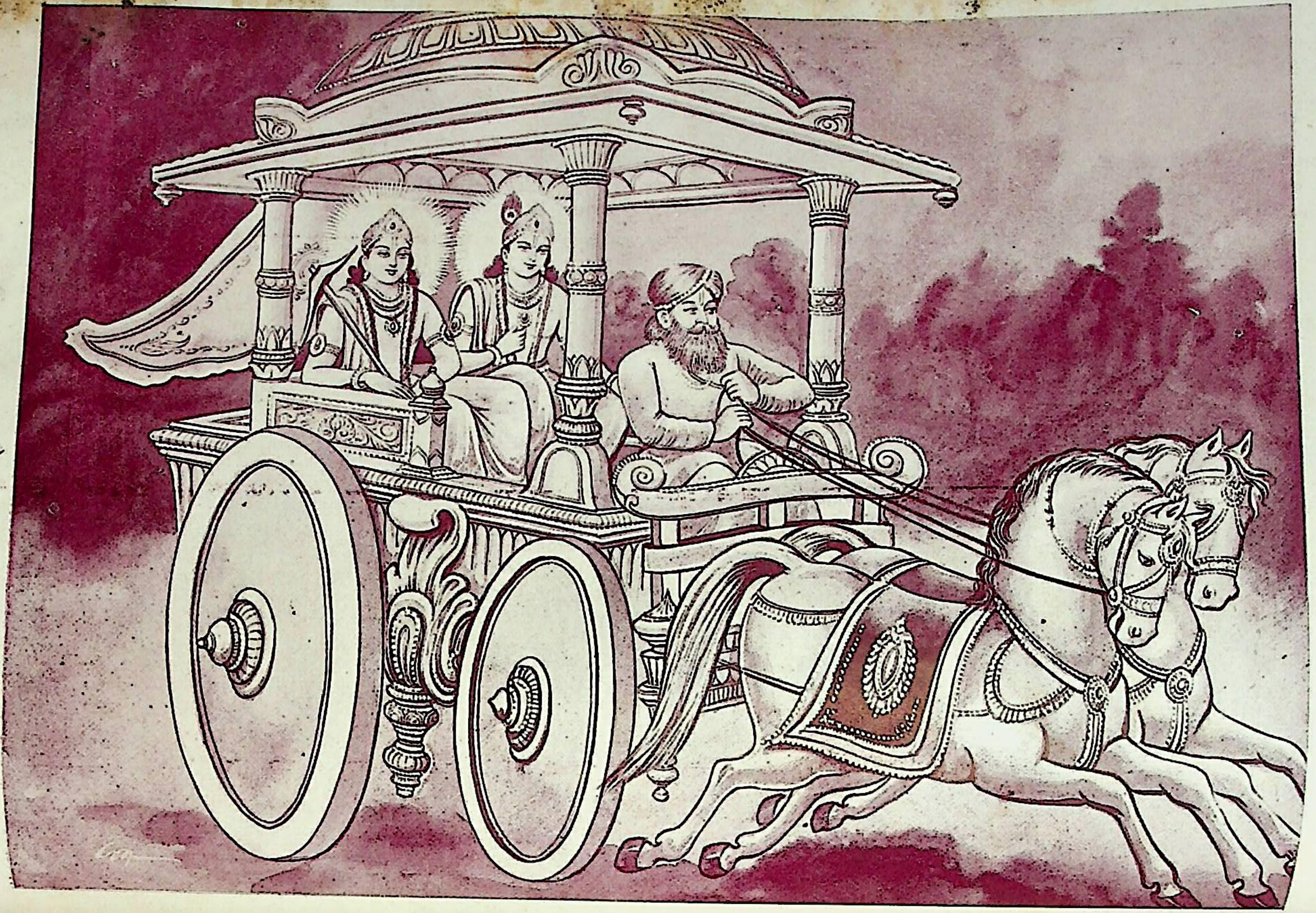

श्रीकृष्ण-बलरामकी मथुरा-यात्रा

श्रीकृष्णके साथ बातचीत करनेमें अक्रूरकी वह सारी रात जागते ही बीती। उनके साथ तीसरे व्यक्ति रोहिणीनन्दन बलरामजी थे ॥ ३१ ॥

ततः प्रभाते विमले पक्षिव्याहारसंकुले।
नैशाकरे रश्मिजाले क्षणदाक्षयसंहृते ॥ ३२ ॥
नभस्यरुणसंस्तीर्णे पर्यस्ते ज्योतिषां गणे।
प्रत्यूषपवनासारैः क्लेदिते धरणीतले ॥ ३३ ॥
क्षीणाकारासु तारासु सुप्तनिष्प्रतिभासु च।
नैशमन्तर्दधे रूपमुद्गच्छति दिवाकरे ॥ ३४ ॥

तदनन्तर पक्षियोंके कलरवोंसे व्याप्त निर्मल प्रभातकाल उपस्थित हुआ। रात्रिकी समाप्तिके साथ ही चन्द्रदेवने अपने किरण-जालको समेट लिया। आकाशमें अरुणोदयकी लाली छा गयी। नक्षत्रोंका समुदाय अस्त हो गया। प्रातःकालकी वायुके साथ मिले हुए ओस-कणोंसे पृथ्वी गीली-सी हो गयी। तारिकाएँ क्षीण हो गयीं। वे सोयी हुईकी भाँति अपनी प्रभा खो बैठीं। सूर्योदय होनेके साथ ही निशाका रूप अदृश्य हो गया ॥ ३२—३४ ॥

शीतांशुः शान्तकिरणो निष्प्रभः समपद्यत।
एको नाशयते रूपमेको वर्धयते वपुः ॥ ३५ ॥

शीतरश्मि चन्द्रमाकी किरणें शान्त हो जानेके कारण वे प्रभाहीन हो गये। एक (चन्द्रमा) अपने रूपको अदृश्य करने लगा और दूसरा (सूर्य) अपने तेजको बढ़ाने लगा ॥

गोभिश्च समकीर्णासु व्रजनिर्याणभूमिषु।
मन्थनांवर्तपूर्णेषु गर्गरेषु नदत्सु च ॥ ३६ ॥
दामभिर्दम्यमानेषु वत्सेषु तरुणेषु च।
गोपैरापूर्यमाणासु घोषरथ्यासु सर्वशः ॥ ३७ ॥
तथैव गुरुकं भाण्डं शकटारोपितं बहु।
त्वरिताः पृष्ठतः कृत्वा जग्मुः स्यन्दनवाहनाः ॥ ३८ ॥

व्रजसे बाहर जानेके मार्गोंकी भूमिपर गौएँ सब ओर फैल गयीं। मथानी घुमानेसे दहीके भरे मटकोंमें घर-घर ध्वनि होने लगी। नौजवान बछड़े रस्सियोंसे बाँधकर सधाये जाने लगे। व्रजकी गलियाँ सब ओरसे गोपोंद्वारा भर गयी थीं। ऐसे समयमें छकड़ेपर रखे गये दही-दूधके भारी-भारी भाण्डोंको पीछे करके गाड़ी हाँकनेवाले गोप तीव्र गतिसे चल दिये ॥ ३६—३८ ॥

कृष्णोऽथ रौहिणेयश्च स चैवामितदक्षिणः।
त्रयो रथगता जग्मुस्त्रिलोकपतयो यथा ॥ ३९ ॥

श्रीकृष्ण, बलराम और अमित दक्षिणा देनेवाले दानपति अक्रूर—ये तीनों त्रिलोकपतियोंके समान रथपर बैठकर चल रहे थे ॥ ३९ ॥

अथाह कृष्णमक्रूरो यमुनातीरमाश्रितः।
स्यन्दनं चात्र रक्षस्व यत्नं च कुरु वाजिषु ॥ ४० ॥

यमुनाजीके तटपर पहुँचकर अक्रूरने श्रीकृष्णसे कहा—'भैया! रथको यहीं खड़ा रखो और घोड़ोंको काबूमें रखनेका प्रयत्न करो ॥ ४० ॥

हयेभ्यो यवसं दत्त्वा हयभाण्डे रथे तथा।
प्रगाढं यत्नमास्थाय क्षणं तात प्रतीक्ष्यताम् ॥ ४१ ॥

'तात! घोड़ोंको दाना-घास देकर, इनके आभूषण और रथकी विशेष यत्नपूर्वक देख-भाल करते हुए एक क्षणतक मेरी प्रतीक्षा करो ॥ ४१ ॥

यमुनाया ह्रदे ह्यस्मिन् स्तोष्यामि भुजगेश्वरम्।
दिव्यैर्भागवतैर्मन्त्रैः सर्वलोकप्रभुं यतः ॥ ४२ ॥

'तबतक मैं यमुनाजीके इस कुण्डमें प्रवेश करके दिव्य भागवत मन्त्रोंद्वारा सम्पूर्ण जगत्के स्वामी नागराज अनन्तकी स्तुति कर लूँ ॥ ४२ ॥

गुह्यं भागवतं देवं सर्वलोकस्य भावनम्।
श्रीमत्स्वस्तिकमूर्द्धानं प्रणमिष्यामि भोगिनम्।
सहस्रशिरसं देवमनन्तं नीलवाससम् ॥ ४३ ॥

'वे गुह्यस्वरूप भागवत देवता हैं, सम्पूर्ण लोकोंके उत्पादक एवं उन्नायक हैं। उनका मस्तक कान्तिमान् स्वस्तिक चिह्नसे अलंकृत है। वे सर्प-विग्रहधारी भगवान् अनन्त देव सहस्र सिरोंसे सुशोभित तथा नील वस्त्र धारण करनेवाले हैं। मैं उन्हें प्रणाम करूँगा ॥ ४३ ॥

धर्मदेवस्य तस्याथ यद् विषं प्रभविष्यति।
सर्वं तदमृतप्रख्यमशिष्याम्यमरो यथा ॥ ४४ ॥
स्वस्तिकायतनं दृष्ट्वा द्विजिह्वं श्रीविभूषितम्।
समाजस्तत्र सर्पाणां शान्त्यर्थं वै भविष्यति ॥ ४५ ॥

'स्वस्तिकके आश्रयभूत श्रीविभूषित नागराज शेषका दर्शन करके मैं उन धर्मदेवका जो विष होगा, उसे अमृतके समान मानकर पी जाऊँगा। ठीक उसी तरह, जैसे देवतालोग अमृत पीते हैं। वहाँ भगवान् शेषके समीप सर्पोंका समुदाय शान्तिके लिये उपस्थित होगा ॥ ४४-४५ ॥

आस्तां मां समुदीक्षन्तौ भवन्तौ सङ्गतावुभौ।
निवृत्तो भुजगेन्द्रस्य यावदस्मि ह्रदोत्तमात् ॥ ४६ ॥

'मैं नागराजके इस उत्तम ह्रदसे लौटकर जबतक आ न जाऊँ, तबतक तुम दोनों भाई एक साथ मेरी राह देखते रहो'॥ ४६ ॥

तमाह कृष्णः संहृष्टो गच्छ धर्मिष्ठ मा चिरम्।
आवां खलु न शक्तौ स्वस्त्वया हीनावुपासितम् ॥ ४७ ॥

तब श्रीकृष्णने हर्षमें भरकर उनसे कहा—'धर्मिष्ठ महापुरुष! जल्दी जाओ और लौटो। हम दोनों तुम्हारे बिना यहाँ (देरतक) नहीं बैठे रह सकेंगे' ॥ ४७ ॥

स ह्रदे यमुनायास्तु ममज्जामितदक्षिणः।
रसातले स ददृशे नागलोकमिमं यथा ॥ ४८ ॥

तत्र अमित दक्षिणा देनेवाले अक्रूरने यमुनाजीके जलमें जाकर गोता लगाया। वहाँ उन्हें इसी लोककी भाँति रसातलवर्ती नाग-लोकका स्पष्ट दर्शन होने लगा ॥ ४८ ॥

तस्य मध्ये सहस्रास्यं हेमतालोच्छ्रितध्वजम्।
लाङ्गलासक्तहस्ताग्रं मुसलोपाश्रितोदरम् ॥ ४९ ॥

उस लोकके मध्यभागमें सहस्र सिरोंसे सुशोभित शेषका दर्शन हुआ। उनके पास सुवर्णमय ताल-चिह्नसे युक्त ऊँची ध्वजा फहराती थी। उनके एक हाथका अग्रभाग हलसे सटा हुथा था और उदर मुसलसे टिका हुआ था ॥ ४९ ॥

असिताम्बरसंवीतं पाण्डुरं पाण्डुरासनम्।
कुण्डलैकधरं मत्तं सुप्तमम्बुरुहेक्षणम् ॥ ५० ॥

उनका शरीर गौर और आसन श्वेत वर्णका था। उनके श्रीअङ्ग नील वस्त्रसे आवृत थे। उन्होंने एक ही कानमें एक कुण्डल धारण कर रखा था। वे मतवाले-से होकर सोये थे। उनके नेत्र विकसित कमल दलके समान मनोहर थे ॥ ५० ॥

भोगोत्करासने शुभ्रे स्वेन देहेन कल्पिते।
स्वासीनं स्वस्तिकाभ्यां च वराहाभ्यां महीधरम् ॥५१॥

वे अपनी ही देहसे कल्पित सर्प-शरीरमय विस्तृत एवं शुभ्र आसनपर सुन्दर ढंगसे विराजमान थे। पृथ्वीको धारण करनेवाले भगवान् अनन्त दो स्वस्तिक एवं वराह-चिह्नसे विभूषित थे ॥ ५१ ॥

किंचित् सव्यापवृत्तेन मौलिना हेमचूलिना।
जातरूपमयैः पद्मैर्मालयाच्छन्नवक्षसम् ॥ ५२ ॥

उनके मस्तकपर सोनेकी कलँगीसे विभूषित मुकुट बायीं ओर कुछ झुका हुआ शोभा दे रहा था। वक्षःस्थल सुवर्णमय कमलों-की मालासे आच्छादित था ॥ ५२ ॥

रक्तचन्दनदिग्धाङ्गं दीर्घबाहुमरिंदमम्।
पद्मनाभसिताभ्राभं भाभिर्ज्वलिततेजसम् ॥ ५३ ॥

सारे अङ्गोंमें रक्त चन्दनका लेप लगा हुआ था। उनकी भुजाएँ बड़ी-बड़ी थीं। वे शत्रुओंका दमन करनेमें समर्थ थे। उनकी अङ्गकान्ति श्वेत वर्णवाले विष्णुकी शुक्ल प्रभा तथा श्वेत बादलोंकी आभाके समान थी। अपने ही प्रकाशसे उनका तेज प्रज्वलित हो रहा था ॥ ५३ ॥

ददर्श भोगिनां नाथं स्थितमेकार्णवेश्वरम्।
पूज्यमानं द्विजिह्वेन्द्रैर्वासुकिप्रमुखैः प्रभुम् ॥ ५४ ॥

अक्रूरने देखा, एकार्णवके स्वामी तथा सर्पोंके रक्षक भगवान् शेष विराज रहे हैं और वासुकि आदि नागराज उन प्रभुकी पूजा कर रहे हैं ॥ ५४ ॥

कम्बलाश्वतरौ नागौ तौ चामरकरावुभौ।
अवीजयेतां तं देवं धर्मासनगतं प्रभुम् ॥ ५५ ॥

कम्बल और अश्वतर नाग हाथोंमें चँवर लेकर धर्मासनपर विराजमान भगवान् अनन्तदेवको हवा कर रहे थे ॥५५॥

तस्याभ्याशगतो भाति वासुकिः पन्नगेश्वरः।
वृतोऽन्यैः सचिवैः सर्पैः कर्कोटकपुरःसरैः ॥ ५६ ॥

उनके निकट कर्कोटक आदि अन्य सर्पजातीय मन्त्रियोंसे घिरे हुए नागराज वासुकि सुशोभित हो रहे हैं ॥ ५६ ॥

तं घटैः काञ्चनैर्दिव्यैः पङ्कजच्छन्नमस्तकैः।
राजानं स्नापयामासुः स्नातमेकार्णवाम्बुभिः ॥ ५७ ॥

उन्हें क्रमशः यह दिखायी दिया कि सेवकोंने कमलसे ढके हुए मुखवाले दिव्य सुवर्णमय घटोंद्वारा एकार्णवके जलसे नहाये हुए नागराज शेषको पुनः नहलाया है ॥ ५७ ॥

तस्योत्सङ्गे घनश्यामं श्रीवत्साच्छादितोरसम्।
पीताम्बरधरं विष्णुं सूपविष्टं ददर्श ह ॥ ५८ ॥

उन शेषजीकी गोदमें उन्होंने पीताम्बरधारी भगवान् विष्णु (श्रीकृष्ण) को सुखपूर्वक विराजमान देखा। उनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति मेघके समान श्याम थी तथा उनका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नसे आच्छादित था ॥ ५८ ॥

अपरं चैव सोमेन तुल्यसंहननं प्रभुम्।
संकर्षणमिवासीनं तं दिव्यं विष्टरं विना ॥ ५९ ॥

वहीं चन्द्रमाके समान गौर विग्रहवाले दूसरे प्रभावशाली देवता दिखायी दिये, जो संकर्षणसे मिलते-जुलते थे। वे उस दिव्य विस्तरके बिना ही वहाँ बैठे थे ॥ ५९ ॥

स कृष्णं तत्र सहसा व्याहर्तुमुपचक्रमे।
तस्य संस्तम्भयामास वाक्यं कृष्णः स्वतेजसा ॥ ६० ॥

अक्रूरने सहसा वहाँ श्रीकृष्णसे बातचीत करनेकी चेष्टा की, परंतु श्रीकृष्णने अपने तेजसे उनकी वाणीको स्तम्भित कर दिया ॥ ६० ॥

सोऽनुभूय भुजङ्गानां तं भागवतमव्ययम्।
उदतिष्ठत् पुनस्तोयाद् विस्मितोऽमितदक्षिणः ॥ ६१ ॥

सर्पोंके स्वामी उन अविनाशी भागवत देवकी महिमाका अनुभव करके अमित दक्षिणा देनेवाले दानपति अक्रूर आश्चर्यचकित होकर पुनः जलसे ऊपर उठे ॥ ६१ ॥

स तौ रथस्थावासीनौ तत्रैव बलकेशवौ।
निरीक्ष्यमाणावन्योन्यं ददर्शाद्भुतरूपिणौ ॥ ६२ ॥

उठकर उन्होंने देखा कि बलराम और श्रीकृष्ण दोनों वहीं रथपर बैठे हैं और एक दूसरेकी ओर देख रहे हैं; उन दोनोंके रूप अद्भुत हैं ॥ ६२ ॥

अथामज्जत् पुनस्तत्र तदाक्रूरः कुतूहलात्।
इज्यते यत्र देवोऽसौ नीलवासाः सिताननः ॥ ६३ ॥

तब अक्रूरने पुनः कौतूहलवश वहाँ जलमें गोता लगाया और पुनः वे वहीं जा पहुँचे, जहाँ उज्ज्वल (गौर) मुखवाले नीलाम्बरधारी भगवान् अनन्तदेव पूजित हो रहे थे ॥

तथैवासीनमुत्सङ्गे सहस्रास्यधरस्य वै।
ददर्श कृष्णमक्रूरः पूज्यमानं तदा प्रभुम् ॥ ६४ ॥

फिर उसी प्रकार उन सहस्र मुखधारी शेषनागकी गोदमें बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णको भी अक्रूरने देखा, जो उस समय पूजित हो रहे थे ॥ ६४ ॥

भूयश्च सहसोत्थाय तं मन्त्रं मनसा जपन्।
रथं तेनैव मार्गेण जगामामितदक्षिणः ॥ ६५ ॥

तब मन-ही-मन उसी मन्त्रका जप करते हुए पुनः सहसा उठकर अमित दक्षिणा देनेवाले अक्रूर उसी मार्गसे रथके समीप चले गये ॥ ६५ ॥

तमाह केशवो हृष्टः स्थितमक्रूरमागमत्।
दशं नागलोकस्य वृत्तं भागवते ह्रदे ॥ ६६ ॥

तब हर्षमें भरे हुए श्रीकृष्ण वहाँ खड़े हुए अक्रूरके पास आये और पूछने लगे—'कहिये, उस भागवत ह्रदमें नागलोकका वृत्तान्त कैसा रहा ? ॥ ६६ ॥

चिरं च भवता कालो व्याक्षेपेण विलम्बितः।
मन्ये दृष्टं त्वयाश्चर्यं हृदयं ते यथाचलम् ॥ ६७ ॥

'आपने तो ध्यानके ही व्यासंगसे बहुत देर लगा दी। मैं समझता हूँ, आपको वहाँ कोई आश्चर्यकी बात दिखायी दी है, तभी आपका हृदय स्थिरभावसे ध्यानमें लगा रहा है' ॥

प्रत्युवाच स तं कृष्णमाश्चर्यं भवता विना।
किं भविष्यति लोकेषु स्थावरेषु चरेषु च ॥ ६८ ॥

तब अक्रूरने श्रीकृष्णसे उनकी बातका उत्तर देते हुए कहा—'इस चराचर जगत्में तुम्हारे सिवा दूसरा कौन सा आश्चर्यका विषय होगा ? ॥ ६८ ॥

तत्राश्चर्यं मया दृष्टं कृष्ण यद् भुवि दुर्लभम्।
तदिहापि यथा तत्र पश्यामि च रमामि च ॥ ६९ ॥

'श्रीकृष्ण ! मैंने वहाँ वह आश्चर्य देखा है, जो भूतलपर दुर्लभ है। जैसा वहाँ देखा था, वैसा ही आश्चर्य यहाँ भी देखता हूँ और उसीमें रम रहा हूँ ॥ ६९ ॥

संगतश्चापि लोकानामाश्चर्येणेह रूपिणा।
अतः परतरं कृष्ण नाश्चर्यं द्रष्टुमुत्सहे ॥ ७० ॥

'श्रीकृष्ण ! यहाँ तीनों लोकोंके मूर्तिमान् आश्चर्यसे मेरी भेंट हो गयी है। अब इससे बढ़कर कोई आश्चर्य मैं नहीं देख सकता ॥ ७० ॥

तदागच्छ गमिष्यामः कंसराजपुरीं प्रभो।
यावन्नास्तं व्रजत्येष दिवसान्ते दिवाकरः ॥ ७१ ॥

'अतः प्रभो ! अब आओ, कंसराजकी मथुरा नगरीमें चलें। ये सूर्यदेव दिनके अन्तमें जबतक अस्त न हों, तभीतक हमें वहाँ पहुँच जाना चाहिये' ॥ ७१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि अक्रूरकृतनागलोककथने षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें अक्रूरद्वारा नागलोकके वृत्तान्तका कथनविषयक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण और बलरामका मथुरामें प्रवेश, उनके द्वारा रजकका वध, मालीको वरदान, कुब्जापर कृपा और कंसके धनुषका भञ्जन

वैशम्पायन उवाच

ते तु युङ्क्त्वा रथवरं सर्वं एवामितौजसः।
कृष्णेन सहिताः प्रायंस्तथा संकर्षणेन च ॥ १ ॥
आसेदुस्ते पुरीं रम्यां मथुरां कंसपालिताम्।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! वे सभी अमित तेजस्वी यात्री अपने श्रेष्ठ रथको जोतकर श्रीकृष्ण और संकर्षणके साथ राजा कंसके द्वारा सुरक्षित रमणीय मथुरापुरीमें जा पहुँचे ॥ १½ ॥

विविशुस्ते पुरीं रम्यां काले रक्तदिवाकरे ॥ २ ॥
तौ तु स्वभवनं वीरौ कृष्णसंकर्षणावुभौ।
प्रवेशितौ बुद्धिमता ह्यक्रूरेणार्कवर्चसौ ॥ ३ ॥

संध्या-कालमें जब कि सूर्यदेव लाल हो गये थे, उन सबने उस रमणीय मथुरा नगरीमें प्रवेश किया। बुद्धिमान् अक्रूर सूर्यतुल्य तेजस्वी श्रीकृष्ण और संकर्षण दोनों वीरोंको पहले अपने घरमें ले गये ॥ २-३ ॥

तावाह वरवर्णाभौ भीतो दानपतिस्तदा।
त्यक्तव्या तात गमने वसुदेवगृहे स्पृहा ॥ ४ ॥

वे दोनों भाई उत्तम कान्तिसे प्रकाशित हो रहे थे। उस समय दानपति अक्रूरने कंससे भयभीत होकर उनसे कहा—'तात ! तुम दोनोंको अभी वसुदेवके घरमें जानेकी इच्छा त्याग देनी चाहिये ॥ ४ ॥

युवयोर्हि कृते वृद्धः कंसेन स निरस्यते।

भर्त्स्यते च दिवा रात्रौ नेह स्थातव्यमित्यपि ॥ ५ ॥

'क्योंकि तुम्हारे कारण ही कंस बूढ़े वसुदेवको घरसे निकालता है और 'तुम्हें यहाँ नहीं रहना चाहिये' ऐसा कहकर उन्हें दिन-रात डाँटना रहता है ॥ ५ ॥

तद् युवाभ्यां हि कर्तव्यं पित्रर्थं सुखमुत्तमम् ।
यथा सुखमवाप्नोति तद् वै कार्यं हितान्वितम् ॥ ६ ॥

'अतः तुम दोनोंको पिताके लिये उत्तम सुखकी व्यवस्था करनी चाहिये । जिस तरह उन्हें सुख मिले, जैसे उनका हित हो, वही कार्य करना चाहिये' ॥ ६ ॥

तमुवाच ततः कृष्णो यास्यावावामतर्कितौ ।
प्रेक्षन्तौ मथुरां वीर राजमार्गं च धार्मिक ।
तस्यैव तु गृहं साधो गच्छावो यदि मन्यसे ॥ ७ ॥

तब श्रीकृष्णने उनसे कहा—'धर्मनिष्ठ वीर ! साधुपुरुष ! यदि आप स्वीकार करें तो हम दोनों भाई मथुरा नगर और इसके राजमार्गको देखते हुए यहाँसे जायँ और अतर्कित रूपसे कंसके ही घर पहुँच जायँ' ॥ ७ ॥

वैशम्पायन उवाच

अक्रूरोऽपि नमस्कृत्य मनसा कृष्णमव्ययम् ।
जगाम कंसपार्श्वं तु प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ८ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! अक्रूर भी मनसे ही अविनाशी भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार करके प्रसन्न चित्तसे कंसके पास गये ॥ ८ ॥

अनुशिष्टौ च तौ वीरौ प्रस्थितौ प्रेक्षकावुभौ ।
आलानाभ्यामिवोन्मुक्तौ कुञ्जरौ युद्धकाङ्क्षिणौ ॥ ९ ॥

अक्रूरकी आज्ञा लेकर वे दोनों वीर श्रीकृष्ण और बलराम नगर देखनेके लिये वहाँसे इस तरह प्रस्थित हुए, मानो युद्धकी इच्छा रखनेवाले दो गजराज आलानसे[1] छूट निकले हों ॥

तौ तु मार्गगतं दृष्ट्वा रजकं रङ्गकारकम् ।
अयाचेतां ततस्तौ तु वासांसि रुचिराणि वै ॥ १० ॥

उन दोनोंने रास्तेमें एक रजक (धोबी) को देखा, जो कपड़ोंमें रंग कर रहा था । उसे देखकर वे दोनों भाई उससे सुन्दर वस्त्र माँगने लगे ॥ १० ॥

रजकः स तु तौ प्राह युवां कस्य वनेचरौ ।
राजवासांसि यौ मौढ्याद् याचेथां निर्भयावुभौ ॥ ११ ॥

रजकने उन दोनोंसे कहा—'अरे ! तुम दोनों किसके (और कहाँके) वनेचर हो ? जो मूर्खतावश निर्भय होकर राजाके कपड़े माँग रहे हो ! ॥ ११ ॥

अहं कंसस्य वासांसि नानादेशोद्भवानि वै ।
कामरागाणि शतशो रञ्जयामि विशेषतः ॥ १२ ॥

'मैं तो विभिन्न देशोंके बने हुए राजा कंसके सैकड़ों वस्त्रोंको रँगता हूँ और उन वस्त्रोंपर विशेषतः उनकी इच्छाके अनुसार रंग देता हूँ ॥ १२ ॥

युवां कस्य वने जातौ मृगैः सह विवर्द्धितौ ।
जातरागाविदं दृष्ट्वा रक्तमाच्छादनं बहु ॥ १३ ॥

'तुम दोनों किसके बेटे हो ? तुम तो वनमें पैदा हुए और वन्य-पशुओंके साथ ही बढ़े हो । आज इन बहुत-से रंगीन कपड़ोंको देखकर तुम्हारे मनमें इनके प्रति लोभ उत्पन्न हो गया है ? ॥ १३ ॥

अहो वां जीवितं त्यक्तं यौ भवन्ताविहागतौ ।
मूर्खौ प्राकृतविज्ञानौ वासो याचितुमिच्छतः ॥ १४ ॥

'अहो ! यह बड़े आश्चर्यकी बात है । जान पड़ता है, तुमने अपने जीवनका मोह त्याग दिया है, तभी तो यहाँ आ गये । तुम दोनों मूर्ख हो । तुम्हारी बुद्धि गवाँरों-जैसी है, इसीलिये तो राजाके कपड़े माँगनेकी इच्छा करते हो' ॥ १४ ॥

तस्मै चुकोप वै कृष्णो रजकायाल्पमेधसे ।
प्राप्तारिष्टाय मूर्खाय सृजते वाङ्मयं विषम् ॥ १५ ॥

यह सुनकर श्रीकृष्ण उस मन्दबुद्धि, अरिष्टग्रस्त, मूर्ख तथा जहरीली बात बोलनेवाले रजकपर कुपित हो उठे ॥

तलेनाशनिकल्पेन स तं मूर्द्धन्यताडयत् ।
स गतासुः पपातोर्व्यां रजको व्यस्तमस्तकः ॥ १६ ॥

उन्होंने उसके माथेपर एक तमाचा जड़ दिया । वह तमाचा क्या था, वज्र था । उसके लगते ही रजकका मस्तक फट गया और वह प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥

तं हतं परिदेवन्त्यो भार्यास्तस्य विचुक्रुशुः ।
त्वरितं मुक्तकेश्यश्च जग्मुः कंसनिवेशनम् ॥ १७ ॥

उसे मारा गया देख उसकी स्त्रियाँ चीखने-चिल्लाने लगीं । वे बाल खोले विलाप करती हुई तुरंत राजा कंसके दरबारमें गयीं ॥ १७ ॥

तावप्युभौ सुवसनौ जग्मतुर्माल्यकारणात् ।
वीथीमाल्यापणानां वै गन्धाघ्रातौ द्विपाविव ॥ १८ ॥

इधर वे दोनों भाई सुन्दर वस्त्र धारण करके फूलोंकी माला लेनेके लिये उस गलीमें गये, जहाँ मालाएँ बिकती थीं । वे ऐसे लगते थे, मानो दो गजराज उन फूलोंकी सुगन्ध पाकर वहाँ जा पहुँचे हों ॥ १८ ॥

गुणको नाम तत्रासीन्माल्यवृत्तिः प्रियंवदः ।
प्रभूतमाल्यापणवाँल्लक्ष्मीवान् प्रियदर्शनः ॥ १९ ॥

उस गलीमें गुणक नामसे प्रसिद्ध एक माली था, जो माला बेचकर ही जीविका चलाता था । उसकी बातें बड़ी प्रिय लगती थीं । उसकी दूकानमें बहुत-सी मालाएँ सजाकर

---

[1] १. जिसमें हाथी बाँधा जाता है, उस खम्भेको आलान कहते हैं ।

ली गयी थीं। वह धनवान् होनेके साथ ही देखनेमें सुन्दर था ॥ १९ ॥

कृष्णः श्लक्ष्णया वाचा माल्यार्थमभिसृष्टया ।
हीत्युवाच तत्काले मालाकारमकातरम् ॥ २० ॥

उस समय श्रीकृष्णने मालाके लिये ही मुखसे निकली ई अपनी मधुर वाणीद्वारा उस निर्भय मालाकारसे कहा— म दोनोंके लिये मालाएँ दे दो' ॥ २० ॥

म्यां प्रीतो ददौ माल्यं प्रभूतं माल्यजीवनः ।
वतोः स्वमिदं चेति प्रोवाच प्रियदर्शनौ ॥ २१ ॥

मालासे ही जीवन-निर्वाह करनेवाले उस मालीने प्रसन्न कर उन दोनों भाइयोंको बहुत-सी मालाएँ अर्पित कीं। वे नों देखनेमें बड़े प्रिय लगते थे। मालीने उनसे कहा— ह सब आपकी ही सम्पत्ति है' ॥ २१ ॥

तः सुमनसा कृष्णो गुणकाय वरं ददौ ।
ीस्त्वां मत्सम्भवा सौम्य धनौघैरभिपत्स्यते ॥ २२ ॥

उसकी बात सुनकर श्रीकृष्ण बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने ुष्ट-चित्तसे गुणकको यह वर दिया—'सौम्य! मेरी प्रसन्नता- प्रकट होनेवाली लक्ष्मी तुम्हें धन-राशिसे सम्पन्न कर देगी'॥

लब्ध्वा वरमव्यग्रो माल्यवृत्तिरधोमुखः ।
ृष्णस्य पतितो मूर्ध्ना प्रतिजग्राह तं वरम् ॥ २३ ॥

माली उस वरको पाकर शान्त-भावसे नतमस्तक हो या। उसने श्रीकृष्णके चरणोंमें मस्तक रख दिया और उस रको सादर शिरोधार्य किया ॥ २३ ॥

क्षाविमाविति तदा स मेने माल्यजीवकः ।
स भृशं भयसंविग्नो नोत्तरं प्रत्यपद्यत ॥ २४ ॥

उस समय मालीने यही समझा कि ये दोनों यक्ष हैं; सने कंससे अत्यन्त भयभीत होकर उन्हें कुछ उत्तर नहीं दिया ॥ २४ ॥

सुदेवसुतौ तौ च राजमार्गगतावुभौ ।
कुब्जां ददृशतुर्भूयः सानुलेपनभाजनाम् ॥ २५ ॥

तदनन्तर सड़कपर जाते हुए उन दोनों वसुदेव-पुत्रोंने कुब्जाको देखा, जो हाथोंमें अनुलेपन (अङ्गराग) का पात्र लिये हुए थी ॥ २५ ॥

तामाह कृष्णः कुब्जेति कस्येदमनुलेपनम् ।
नयस्यम्बुजपत्राक्षि क्षिप्रमाख्यातुमर्हसि ॥ २६ ॥
सस्मिता सम्मुखी भूत्वा प्रत्युवाचाम्बुजेक्षणम् ।
कृष्णं जलदगम्भीरं विद्युत्कुटिलगामिनी ॥ २७ ॥

उसे देखकर श्रीकृष्णने कहा—'कमलनयने कुब्जे! तुम यह किसके लिये अनुलेपन लिये जा रही हो, शीघ्र बताओ!' यह सुनकर कुब्जा मुसकराती हुई उनके सामने हो गयी। वह बिजलीके समान कुटिल गतिसे चलनेवाली थी। उसने कमलनयन श्रीकृष्णसे मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहा—॥ २६-२७ ॥

राज्ञः स्नानगृहं यामि तद् गृहाणानुलेपनम् ।
दृष्ट्वैव त्वारविन्दाक्ष विस्मितास्मि वरानन ॥ २८ ॥
यत्त्वमिच्छसि मे वीर त्वं गृहाणानुलेपनम् ।
स्थितास्म्यागच्छ भद्रं ते हृदयस्यासि मे प्रियः ॥ २९ ॥

'कमलनयन! मनोहर मुखवाले वीर! मैं तो राजाके स्नान-गृहको जा रही हूँ। तुम्हें अङ्गराग चाहिये तो ले लो। तुम्हें देखते ही मैं विस्मयसे विमुग्ध हो उठी हूँ। तुम्हें जैसा अङ्गराग चाहिये, वही ग्रहण करो। मैं तुम्हारे लिये ठहर गयी हूँ। तुम्हारा कल्याण हो, आओ मेरे घर। तुम मेरे हृदय-वल्लभ हो ॥ २८-२९ ॥

कुतश्चागम्यते सौम्य यन्मां त्वं नावबुध्यसे ।
महाराजस्य दयितां नियुक्तामनुलेपने ॥ ३० ॥

'सौम्य! तुम कहाँसे आते हो कि मुझे नहीं जानते। मैं तो महाराज कंसकी प्यारी दासी हूँ। उन्होंने मुझे अङ्गरागके ही कार्यमें लगा रखा है' ॥ ३० ॥

तामुवाच हसन्तीं तु कृष्णः कुब्जामवस्थिताम् ।
आवयोर्गात्रसदृशं दीयतामनुलेपनम् ॥ ३१ ॥
वयं हि देशातिथयो मल्लाः प्राप्ता वरानने ।
द्रष्टुं धनुर्महद् दिव्यं राष्ट्रे चैव महर्द्धिमत् ॥ ३२ ॥

वहाँ खड़ी होकर हँसती हुई कुब्जासे श्रीकृष्णने कहा—'सुमुखि! तुम हम दोनों भाइयोंके शरीरके अनुरूप अङ्गराग दे दो। हम पहलवान हैं और इस देशमें अतिथिके रूपमें आये हैं। इस राज्यमें जो अत्यन्त समृद्धिशाली, विशाल दिव्य धनुष है, उसे ही देखनेके लिये हमलोगोंका यहाँ आना हुआ है' ॥ ३१-३२ ॥

प्रत्युवाचाथ सा कृष्णं प्रियोऽसि मम दर्शने ।
राजार्हमिदमव्यग्रं तद् गृहाणानुलेपनम् ॥ ३३ ॥

तब कुब्जाने श्रीकृष्णसे कहा—'मेरी दृष्टिमें तुम परम प्रिय हो, अतः शान्तभावसे यह राजोचित अङ्गराग ग्रहण करो ॥

तावुभावनुलिप्ताङ्गौ चारुगात्रौ विरेजतुः ।
तीर्थगौ पङ्कदिग्धाङ्गौ यमुनायां यथा वृषौ ॥ ३४ ॥

अङ्गोंमें अङ्गराग लग जानेपर मनोहर शरीरवाले वे दोनों भाई बड़ी शोभा पाने लगे। उस समय वे ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे दो साँड़ यमुनाजीके जलमें गोता लगाकर सारे अङ्गोंमें कीचड़ लपेटे आ रहे हों ॥ ३४ ॥

तां च कुब्जां स्थगोर्मध्ये द्व्यङ्गुलेनाग्रपाणिना ।
शनैः सम्पीडयामास कृष्णो लीलाविधानवित् ॥ ३५ ॥

तदनन्तर लीलाविधिको जाननेवाले श्रीकृष्णने अपने

हाथकी दो अँगुलियोंसे कुब्जाके कूबड़के मध्यभागमें धीरेसे दबाया (इससे कूबड़ सीधा हो गया) ॥ ३५ ॥

सा च मग्नं स्थगुं मत्वा स्वायताङ्गी शुचिस्मिता ।
जहासोच्चैः स्तनतटी ऋजुयष्टिर्लता यथा ॥३६॥

मेरा कूबड़ बैठ गया, ऐसा जानकर सुन्दर एवं उन्नत अङ्गवाली कुब्जा पवित्र मुस्कानसे सुशोभित हो हँसने लगी। उसके स्तन-प्रान्त उभरकर ऊँचे हो गये और वह सीधी लकड़ीपर चढ़ी हुई लताके समान शोभा पाने लगी ॥ ३६ ॥

प्रणयाच्चापि कृष्णं सा बभाषे मत्तकाशिनी ।
क यास्यसि मया रुद्धः कान्त तिष्ठ गृहाण माम् ॥३७॥

फिर तो मतवाली-सी होकर वह श्रीकृष्णसे प्रेमपूर्वक बोली—'प्रियतम ! अब तुम कहाँ जाओगे ? मैंने तुम्हें रोक लिया, यहीं रहो और मुझे अंगीकार करो' ॥ ३७ ॥

तौ जातहासावन्योन्यं सतलाक्षेपमव्ययौ ।
वीक्षमाणौ प्रहसितौ कुब्जायाः श्रुतविस्तरौ ॥ ३८ ॥

यह सुनकर उन्हें हँसी आ गयी। फिर तो वे अविनाशी बन्धु एक दूसरेकी ओर देखते हुए ताली पीट-पीटकर जोर-जोरसे हँसने लगे। कुब्जाके कानोंने उन दोनों भाइयोंके गुण विस्तारपूर्वक सुने थे ॥ ३८ ॥

कृष्णस्तु कुब्जां कामार्तां सस्मितं विससर्ज ह ।
ततस्तौ कुब्जया मुक्तौ प्रविष्टौ राजसंसदम् ॥३९॥

श्रीकृष्णने मुस्कराते हुए कामपीड़ित कुब्जाको वहीं छोड़ दिया और उससे छूटकर वे दोनों बन्धु राज-भवनमें प्रविष्ट हुए ॥ ३९ ॥

तावुभौ व्रजसंवृद्धौ गोपवेषविभूषितौ ।
गूढचेष्टाननौ भूत्वा प्रविष्टौ नृपवेश्म तत् ॥ ४० ॥

व्रजमें बड़े होकर गोपवेशसे विभूषित हुए उन दोनों वीरोंने जब उस राजभवनमें प्रवेश किया, उस समय उनकी प्रत्येक चेष्टा गुप्तरूपसे होती थी। उनके मुखका भाव ही ऐसा गूढ़ था कि उससे आन्तरिक चेष्टाका पता नहीं लगता था॥

धनुःशालां गतौ तत्र बालावपरितर्कितौ ।
हिमवद्वनसम्भूतौ सिंहाविव मदोत्कटौ ॥ ४१ ॥

हिमालयके वनमें उत्पन्न हुए दो मदमत्त सिंहोंके समान वे दोनों बालक वहाँ धनुषशालामें जा पहुँचे। उस समय वहाँ उनके पहुँचनेकी सम्भावना किसीको नहीं थी ॥ ४१ ॥

दिदृक्षन्तौ महत्तत्र धनुरायोगभूषितम् ।
पप्रच्छतुश्च तौ वीरावायुधागारिकं तदा ॥ ४२ ॥

वे वहाँ रखे हुए विशाल धनुषको, जो पुष्पमालासे विभूषित था, देखना चाहते थे; अतः उन दोनों वीरोंने उस समय शस्त्रागारके संरक्षकसे पूछा—॥ ४२ ॥

भोः कंसधनुषां पाल श्रूयतामावयोर्वचः ।
कतरत् तद् धनुः सौम्य महोऽयं यस्य वर्तते ॥ ४३ ॥
आयोगभूतं कंसस्य दर्शयस्व यदीच्छसि ।

'राजा कंसके धनुषोंकी रक्षा करनेवाले अस्त्र-संरक्षक ! तुम हम दोनोंकी बातें सुनो। सौम्य ! जिसका यह उत्सव होने जा रहा है, वह धनुष कौन-सा है ? यदि तुम्हारी इच्छा हो तो कंसके इस उत्सवका जो प्रधान निमित्त है, उस धनुषका हमें दर्शन कराओ' ॥ ४३½ ॥

स तयोर्दर्शयामास तद् धनुः स्तम्भसंनिभम् ॥ ४४ ॥
अनारोप्यमसम्भेद्यं देवैरपि सवासवैः ।

उसने उन दोनों भाइयोंको वह खम्भ-जैसा मोटा धनुष दिखा दिया। उस धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाना या उसे तोड़ना इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंके लिये भी असम्भव था॥४४½॥

तद् गृहीत्वा तदा कृष्णस्तोलयामास वीर्यवान् ॥४५॥
दोर्भ्यां कमलपत्राक्षः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।

पराक्रमी कमलनयन श्रीकृष्णने प्रसन्नचित्तसे दोनों हाथों-द्वारा उस धनुषको उठाकर तौला ॥ ४५½ ॥

तोलयित्वा यथाकामं तद् धनुर्दैत्यपूजितम् ॥ ४६ ॥
आरोपयामास बली नामयामास चासकृत् ।
आनाम्यमानं कृष्णेन प्रकर्षादुरगोपमम् ॥ ४७ ॥
द्विधाभूतमभून्मध्ये धनुरायोगभूषितम् ।

दैत्योंद्वारा पूजित हुए उस धनुषको इच्छानुसार तौलकर बलवान् श्रीकृष्णने कई बार उसको झुकाया और उसके ऊपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी। श्रीकृष्णके द्वारा बहुत अधिक झुका दिये जानेके कारण वह पुष्पहारोंसे विभूषित सर्पाकार धनुष बीचसे टूटकर दो भागोंमें विभक्त हो गया ॥ ४६-४७½ ॥

भङ्क्त्वा तु तद् धनुः श्रेष्ठं कृष्णस्त्वरितविक्रमः ।
निश्चक्राम महावेगः स च संकर्षणो युवा ॥४८॥

उस श्रेष्ठ धनुषको तोड़कर श्रीकृष्ण तथा वे नवयुवक संकर्षण शीघ्रतापूर्वक कदम बढ़ाते हुए बड़े वेगसे उस भवनसे बाहर निकल गये ॥ ४८ ॥

धनुषो भङ्गनादेन वायुनिर्घोषकारिणा ।
चचालान्तःपुरं सर्वं दिशश्चैव पुपूरिरे ॥ ४९ ॥

उस धनुषके टूटनेसे जो धड़ाका हुआ, वह सहसा उठी हुई प्रचण्ड आँधीके समान गम्भीर घोष करनेवाला था। उससे सारा अन्तःपुर काँप उठा और सम्पूर्ण दिशाओंमें वह आवाज गूँज उठी ॥ ४९ ॥

निर्गम्य त्वायुधागाराज्जग्मतुर्गोपसंनिधौ ।
वेगेनायुधपालस्तु गच्छन् सम्भ्रान्तमानसः ॥ ५० ॥
समीपं नृपतेर्गत्वा काकोच्छ्वासोऽभ्यभाषत ।

शस्त्रागारसे निकलकर दोनों भाई व्रजसे आये हुए गोपों-के निकट चले गये। इधर आयुधोंकी रक्षा करनेवाला वह सिपाही मन-ही-मन घबरा उठा और बड़े वेगसे राजदरबारकी ओर चल दिया। राजाके निकट जाकर कौएकी तरह चकित हो लंबी साँस खींचता हुआ वह इस प्रकार बोला—॥ ५०½ ॥

श्रूयतां मम विज्ञाप्यमाश्चर्यं धनुषो गृहे ॥ ५१ ॥
निर्वृत्तमस्मिन् काले यज्जगतः सम्भ्रमोपमम् ।

'महाराज! मैं जो बात बताना चाहता हूँ, उसे ध्यान देकर सुनिये। इस समय धनुष-शालामें एक आश्चर्यजनक घटना घटित हुई है, जो सम्पूर्ण जगत्के प्रलयकी भाँति प्रतीत होती है ॥ ५१½ ॥

नरौ कस्याप्यसदृशौ शिखावितमूर्द्धजौ ॥ ५२ ॥
नीलपीताम्बरधरौ पीतश्वेतानुलेपनौ ।
तावन्तःपुरमज्ञातौ प्रविष्टौ कामवेषिणौ ॥ ५३ ॥

'वहाँ दो मनुष्य आये थे, जिनकी तुलना किसीसे भी नहीं हो सकती। उनके मस्तकके सभी बाल शिखा (चोटी)के समान बड़े-बड़े थे। एकने नील वस्त्र पहन रखा था और दूसरेने पीला। एकके अङ्गोंमें पीला अङ्गराग था, तो दूसरेके अङ्गोंमें श्वेत। वे दोनों इच्छानुसार वेष धारण करनेमें कुशल थे, सहसा अन्तःपुरमें घुस आये और किसीको पता न चला ५२-५३

देवपुत्रोपमौ वीरौ बालाविव हुताशनौ ।
स्थितौ धनुर्गृहे सौम्यौ सहसा खादिवागतौ ।
मया दृष्टौ परिव्यक्तं रुचिराच्छादनस्रजौ ॥ ५४ ॥

'वे दोनों वीर देवकुमारोंके समान प्रतीत होते थे। उनकी आकृति बड़ी सौम्य थी। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो बालरूपधारी अग्नि सहसा आकाशसे आकर धनुषशालामें खड़े हो गये हों। उन दोनोंके वस्त्र और पुष्पहार बड़े सुन्दर थे। मैंने उनको स्पष्टरूपसे देखा है ॥५४॥

तयोरेकस्तु पद्माक्षः श्यामः पीताम्बरस्रजः ।
जग्राह तद् धनूरत्नं दुर्ग्राह्यं दैवतैरपि ॥ ५५ ॥

'उनमेंसे एककी आँखें कमलके समान सुन्दर थीं, शरीरका वर्ण श्याम था। उसके वस्त्र और हार पीले रंगके थे। जिसे हाथमें लेना देवताओंके लिये भी कठिन है, उसी धनुषरत्नको उस श्यामसुन्दर वीरने अनायास ही उठा लिया ॥ ५५ ॥

तत् स बालो महच्चापं बलाद् यन्त्रमिवायसम् ।
आरोपयित्वा वेगेन नामयामास लीलया ॥ ५६ ॥

'उस बालकने उस विशाल धनुषको लोहयन्त्रकी भाँति बलात् हाथमें लेकर वेगपूर्वक उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और खेल-खेलमें ही उसे झुकाना आरम्भ किया ॥ ५६ ॥

आकृष्यमाणं तत् तेन विबाणं बाहुशालिना ।
मुष्टिदेशे विकूजित्वा द्विधाभूतमभज्यत ॥ ५७ ॥

'उस बाहुशाली वीरके खींचनेपर वह बाणरहित धनुष मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे धड़ाकेके साथ टूटकर दो टूक हो गया ॥ ५७ ॥

ततः प्रचलिता भूमिर्नैव भाति च भास्करः ।
धनुषो भङ्गनादेन भ्रमतीव नभस्तलम् ॥ ५८ ॥

'धनुष टूटनेकी आवाजसे धरती हिलने लगी, सूर्यकी प्रभा फीकी पड़ गयी और आकाश घूमता-सा प्रतीत होने लगा ॥ ५८ ॥

तदद्भुतं महद् दृष्ट्वा विस्मयं परमं गतः ।
भयाद् भयदशत्रुभ्यस्तदिहाख्यातुमागतः ॥ ५९ ॥

'वह महान् अद्भुत दृश्य देखकर मैं अत्यन्त विस्मयमें पड़ गया और भयदायक शत्रुओंकी ओरसे भय प्राप्त होनेकी आशङ्कासे आपको यह समाचार बतानेके लिये यहाँ आ गया ॥ ५९ ॥

न जानामि महाराज कौ तावमितविक्रमौ ।
एकः कैलाससंकाश एकोऽञ्जनगिरिप्रभः ॥ ६० ॥

'महाराज! मैं नहीं जानता, वे दोनों अमित पराक्रमी वीर कौन थे? उनमेंसे एक तो कैलासपर्वतके समान श्वेतवर्णका था और दूसरा अञ्जनगिरिके समान श्याम ॥ ६० ॥

स तु तच्चापरत्नं वै भङ्क्त्वा स्तम्भमिव द्विपः ।
निष्पपातानिलगतिः सानुगोऽमितविक्रमः ।
अगमत्तं द्विधा कृत्वा न जाने कोऽप्यसौ नृप ॥ ६१ ॥

'हाथी बाँधनेके खम्भेकी भाँति अत्यन्त सुदृढ़ उस धनुष्यरत्नको तोड़कर वह अमित पराक्रमी वीर अपने सहायकके साथ ही वायुके समान तीव्रगतिका आश्रय ले वहाँसे निकल गया। नरेश्वर! न जाने वह कौन था; जो धनुषके दो टुकड़े करके चला गया' ॥ ६१ ॥

श्रुत्वैव धनुषो भङ्गं कंसो विदितविस्तरः ।
विसृज्यायुधपालं वै प्रविवेश गृहोत्तमम् ॥ ६२ ॥

कंसको सब बातें विस्तारपूर्वक विदित थीं। उसने धनुष-भङ्गका समाचार सुनते ही शस्त्ररक्षकको विदा कर दिया और स्वयं अपने उत्तम भवनमें प्रवेश किया ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि कंसधनुर्भङ्गे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें कंसके धनुषका भङ्गविषयक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

कंसकी चिन्ता, उसका रंगशालाको देखना और उसे सुसज्जित करनेका आदेश देना, चाणूर एवं मुष्टिकको तथा कुवलयापीडके महावतको श्रीकृष्ण-बलरामके वधके लिये आज्ञा देना, महावत-से द्रुमिलके द्वारा अपनी उत्पत्तिकी कथा कहना—उसकी माताका सुयामुन पर्वतपर द्रुमिलके साथ समागम तथा उन दोनोंका परस्पर वरदान एवं शाप

वैशम्पायन उवाच

स चिन्तयित्वा धनुषो भङ्गं भोजविवर्धनः।
बभूव विमना राजा चिन्तयन् भृशदुःखितः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भोजवंशकी वृद्धि करनेवाला राजा कंस धनुषके टूटनेकी घटनापर विचार करके मन-ही-मन खिन्न हो उठा। वह ज्यों-ही-ज्यों उसका चिन्तन करता, त्यों-ही-त्यों अत्यन्त दुःखमें निमग्न होता जाता था ॥ १ ॥

कथं बालो विगतभीरवमत्य महाबलम्।
प्रेक्ष्यमाणस्तु पुरुषैर्धनुर्भङ्क्त्वा विनिर्गतः ॥ २ ॥

वह सोचने लगा, 'अहो! वह बालक कैसे निर्भय हो महाबली रक्षककी अवहेलना करके दूसरे लोगोंके देखते-देखते धनुष तोड़कर निकल गया ॥ २ ॥

यस्यार्थे दारुणं कर्म कृतं लोकविगर्हितम्।
पितृष्वस्रात्मजान् वीरान् षडेवाहं न्यपोथयम् ॥ ३ ॥

'यह वही बालक है, जिसे मारनेके लिये मैंने लोक-निन्दित क्रूरतापूर्ण कर्म किया। अपनी चचेरी बहिनके छः वीर पुत्रोंको शिलापर दे मारा ॥ ३ ॥

दैवं पुरुषकारेण न शक्यमतिवर्तितुम्।
नारदोक्तं च वचनं नूनं मह्यमुपस्थितम् ॥ ४ ॥

'सचमुच ही पुरुषार्थसे दैवके विधानका उल्लङ्घन नहीं किया जा सकता। नारदजीने मेरे लिये जो बात कही थी, वह अवश्य आकर उपस्थित हो गयी' ॥ ४ ॥

एवं राजा विचिन्त्याथ निष्क्रम्य स्वगृहोत्तमात्।
प्रेक्षागारं जगामाशु मञ्चानामवलोककः ॥ ५ ॥

इस प्रकार चिन्ता करके राजा कंस अपने उत्तम भवनसे निकला और शीघ्र ही प्रेक्षागृह[1] (रङ्गशाला) में वहाँ लगे हुए मञ्चोंका निरीक्षण करनेके लिये गया ॥ ५ ॥

स दृष्ट्वा सर्वनिर्युक्तं प्रेक्षागारं नृपोत्तमः।
श्रेणीनां दृढनिर्युक्तैर्मञ्चवाटैर्निरन्तरम् ॥ ६ ॥
सोत्तमागारयुक्ताभिर्वलभीभिर्विभूषितम्।
छदीभिः सम्प्रवृद्धाभिरेकस्तम्भैर्विभूषितम् ॥ ७ ॥

उस श्रेष्ठ नरेशने प्रेक्षागृहको सब प्रकारसे सम्पन्न हुआ देखा। वहाँ एकमात्र शिल्पसे जीवननिर्वाह करनेवाले शिल्पियोंने लगातार बहुत-से मञ्चोंके बाड़ बना रखे थे। वे सब-के-सब दृढ़तापूर्वक बाँधे गये थे। उत्तमोत्तम ग्रहोंसे लगे हुए छज्जे भी बनाये गये थे। उन छज्जोंमें कहीं तो छः-छः खम्भे एक साथ लगे थे, जिनसे उनकी विशालता बढ़ गयी थी और कहीं-कहीं एक-एक संख्यावाले ही खम्भे लगाये गये थे। इन खम्भों, छज्जों और मञ्चवाटोंने उस प्रेक्षागृहको विभूषित कर रखा था ॥ ६-७ ॥

सर्वतः सारनिर्व्यूहं स्वायतं सुप्रतिष्ठितम्।
उदग्राश्लिष्टसुश्लिष्टमञ्चारोहणमुत्तमम् ॥ ८ ॥

वहाँ सब ओर दीवारोंमें मजबूत खूटियाँ लगी थीं। वह भवन बहुत विशाल बना था। उसकी अच्छी प्रकार प्रतिष्ठा की गयी थी। उसके भीतर मञ्चोंपर चढ़नेके लिये ऊँची असंकीर्ण (चौड़ी) तथा परस्पर सटी हुई सीढ़ियाँ बनी थीं। इससे वह रंगभवन बहुत ही उत्तम दिखायी देता था ॥

नृपासनपरिक्षिप्तं संचारपथसंकुलम्।
छन्नं तद् वेदिकाभिश्च मानुषौघभरक्षमम् ॥ ९ ॥

वहाँ राजाओंके बैठनेके लिये चारों ओर सिंहासन रखे गये थे। उस रङ्गशालामें सब ओर आने-जानेके लिये बहुत-से मार्ग थे। सारा भवन बहुसंख्यक वेदियोंसे व्याप्त था। उसमें मनुष्योंकी बहुत बड़ी भीड़को अपने भीतर सुगमतापूर्वक भर लेनेकी क्षमता थी ॥ ९ ॥

स दृष्ट्वा भूषितं रङ्गमाज्ञापयत बुद्धिमान्।
श्वः सचित्राः समाल्याश्च सपताकास्तथैव च ॥ १० ॥
सुवासिता वपुष्मन्त उपनीतोत्तरच्छदाः।
क्रियन्तां मञ्चवाटाश्च वलभ्यो वीथयस्तथा ॥ ११ ॥

बुद्धिमान् कंसने उस रङ्गभवनको सब प्रकारसे सजा हुआ देख कार्यकर्ताओंको इस प्रकार आज्ञा दी—'कल सवेरे यहाँके मञ्चवाटों, छज्जों तथा गलियोंको चित्रों, मालाओं और पताकाओंसे सजा दिया जाय, सुगन्धित जल छिड़ककर इन सबको सुवासित किया जाय, मनोहर रूप दिया जाय, मञ्चों-पर सुन्दर चाँदनी बिछा दी जाय ॥ १०-११ ॥

रङ्गवाटे करीषस्य कल्प्यन्तां राशयोऽव्ययाः।
पटास्तरणशोभाश्च वलयश्चानुरूपतः ॥ १२ ॥

---

[1] धनुर्यज्ञका उत्सव देखनेके लिये बना हुआ विशाल स्थान।

स्थाप्यन्तां सुनिखाताश्च पानकुम्भा यथाक्रमम् ।
उदभारसहाः सर्वे सकाञ्चनघटोत्तमाः ॥ १३ ॥

'अखाड़ेमें गोमयचूर्णके अधिकसे-अधिक ढेर बिछा दिये जायँ । जिससे उनकी कमी न पड़े । जगह-जगह शोभाके लिये सुन्दर परदे लगा दिये जायँ। उनके अनुरूप खम्भे खड़े किये जायँ, जो भूमिमें खूब गहराई तक गड़े हों । क्रमशः पानकुम्भ[1] स्थापित किये जायँ, वे सब-के-सब जलका भार सह लेनेमें समर्थ हों । उनपर जलपूर्ण सोनेके उत्तम घड़े रख दिये जायँ ॥ १२-१३ ॥

वलयश्चोपकल्प्यन्तां कषायाश्चैव कुम्भशः ।
प्राश्निकाश्च निमन्त्र्यन्तां श्रेण्यश्च सपुरोगमाः ॥ १४ ॥

'उपहारकी वस्तुएँ भी एकत्र की जायँ, घड़ोंमें रस भरकर रखे जायँ, मल्लयुद्धके नियमोंको जाननेवाले लोग आमन्त्रित किये जायँ, व्यवसायियों तथा कारीगरोंको उनके अगुओंसहित बुलाया जाय ॥ १४ ॥

आज्ञा च देया मल्लानां प्रेक्षकाणां तथैव च ।
समाजे मञ्चशोभाश्च कल्प्यन्तां सूपकल्पिताः ॥ १५ ॥

'मल्लों तथा प्रेक्षकों (युद्धमें हार-जीतके निर्णायकों) को ठीक समयसे आनेकी आज्ञा दे दी जाय । रङ्गशालामें स्थापित किये गये मञ्चोंकी शोभा बढ़ानेके लिये उन्हें अच्छी तरह सजाया जाय' ॥ १५ ॥

एवमाज्ञाप्य राजा स समाजविधिमुत्तमम् ।
समाजवाटान्निष्क्रम्य विवेश स्वं निवेशनम् ॥ १६ ॥

इस प्रकार रंगशालाको अच्छी तरहसे सजानेकी उत्तम व्यवस्थाके लिये आज्ञा देकर राजा कंस वहाँसे निकला और अपने महलमें चला गया ॥ १६ ॥

आह्वानं तत्र संचक्रे तस्य मल्लद्वयस्य वै ।
चाणूरस्याप्रमेयस्य मुष्टिकस्य तथैव च ॥ १७ ॥

वहाँ उसने अपने दो मल्लोंको बुलाया—एक तो अप्रतिम बलशाली चाणूर था और दूसरा मुष्टिक ॥ १७ ॥

तौ तु मल्लौ महावीर्यौ बलिनौ बाहुशालिनौ ।
कंसस्याज्ञां पुरस्कृत्य हृष्टौ विविशतुस्तदा ॥ १८ ॥

अपनी भुजाओंसे सुशोभित होनेवाले वे दोनों महापराक्रमी बलशाली मल्ल कंसकी आज्ञा शिरोधार्य करके बड़े हर्षके साथ उसके भवनमें प्रविष्ट हुए ॥ १८ ॥

तौ समीपगतौ दृष्ट्वा मल्लौ जगति विश्रुतौ ।
उवाच कंसो नृपतिः सोपन्यासमिदं वचः ॥ १९ ॥

उन दोनों विश्वविख्यात पहलवानोंको अपने समीप आया देख राजा कंसने यह युक्तियुक्त वचन कहा—॥ १९ ॥

भवन्तौ मम विख्यातौ मल्लौ वीरध्वजोच्छ्रितौ ।
पूजितौ च यथान्यायं सत्कारार्हौ विशेषतः ॥ २० ॥

'तुम दोनों मेरे दरबारके विख्यात मल्ल हो और वीरध्वज (शौर्यसूचक सम्मान-चिह्न) प्राप्त करके मल्लोंमें उच्चतम स्थानपर प्रतिष्ठित हुए हो । तुम दोनों मेरे द्वारा विशेष सत्कार पानेके योग्य रहे हो, इसलिये मैंने सदा ही तुम्हारा यथोचित सम्मान किया है ॥ २० ॥

तन्मत्तो यदि सत्कारः स्मर्यते सुकृतानि च ।
कर्तव्यं मे महत् कर्म भवद्भ्यां स्वेन तेजसा ॥ २१ ॥

'अतः यदि तुम्हें मुझसे प्राप्त हुए सत्कारोंका स्मरण है, मेरे द्वारा किये गये उपकार और सद्व्यवहार भूले नहीं हैं तो आज तुम दोनोंको अपने तेज (बल-पराक्रम) से मेरा एक महान् कार्य सिद्ध करना होगा ॥ २१ ॥

यावेतौ मम संवृद्धौ व्रजे गोपालकावुभौ ।
संकर्षणश्च कृष्णश्च बालावपि जितश्रमौ ॥ २२ ॥

'ये जो मेरे व्रजमें पले हुए संकर्षण और कृष्ण नामक दो ग्वाले हैं, बालक होनेपर भी परिश्रमको जीत चुके हैं (कभी थकते नहीं हैं) ॥ २२ ॥

एतौ रङ्गगतौ युद्धे युद्ध्यमानौ वनेचरौ ।
निपातानन्तरं शीघ्रं हन्तव्यौ नात्र संशयः ॥ २३ ॥

'ये दोनों वनेचर जब अखाड़ेमें उतरकर युद्धके समय तुमसे लड़ने लगें, तब तुम दोनों उन्हें नीचे गिराते ही शीघ्र मार डालना । इसमें कोई संशय नहीं मानना चाहिये ॥ २३ ॥

बालाविमौ सुचपलावक्रियाविति सर्वथा ।
नावज्ञा तत्र कर्तव्या कर्तव्यो यत्न एव हि ॥ २४ ॥

'ये चञ्चल बालक हैं, इन्हें युद्धकी शिक्षा नहीं मिली है—सर्वथा ऐसा समझकर तुम उन दोनोंकी अवहेलना न करना । तुम्हें उन्हें मार डालनेके लिये पूरा-पूरा यत्न करना ही चाहिये ॥

ताभ्यां युधि निरस्ताभ्यां गोपाभ्यां रङ्गसंनिधौ ।
आयत्यां च तदात्वे च श्रेयो मम भविष्यति ॥ २५ ॥

'यदि रंगस्थलके समीप युद्धमें वे दोनों गोप-बालक मार डाले जायँ तो वर्तमान और भविष्यमें भी मेरा कल्याण होगा' ॥

नृपतेः स्नेहसंयुक्तैर्वचोभिर्हृष्टमानसौ ।
ऊचतुर्युद्धसम्मत्तौ मल्लौ चाणूरमुष्टिकौ ॥ २६ ॥

राजा कंसके इन स्नेहयुक्त वचनोंसे उन दोनों मल्लोंके हृदयमें बड़ी प्रसन्नता हुई । युद्धके लिये सदा मतवाले रहनेवाले वे दोनों पहलवान चाणूर और मुष्टिक राजासे इस प्रकार बोले—॥ २६ ॥

---

[1] पानीसे भरे घड़ों या माँटोंको रखनेके लिये काठकी बनी हुई चार या छः पायोंकी टेबुल-जैसी एक चीज, जिसे कुछ स्थानोंपर पल्हैंडी कहते हैं । इसीका नाम पानकुम्भ है । नीलकण्ठने इसका पर्यायवाची शब्द घटोच्छ्रायिका बताया है ।

यद्यावयोस्तौ प्रमुखे स्थास्येते गोपकिल्बिषौ।
हतावित्येव मन्तव्यौ प्रेतरूपौ तपस्विनौ ॥ २७ ॥

'यदि वे दोनों गोपकुल-कलंक युद्धमें हमारे सामने खड़े हो जायँगे तो आप उन्हें मरा हुआ ही समझिये। वे कष्ट उठानेवाले प्रेतरूप ही हैं—ऐसा मानिये ॥ २७ ॥

यद्यावां प्रतियोत्स्येते तावरिष्टपरिप्लुतौ।
आवाभ्यां रोषयुक्ताभ्यां प्रमुखे तौ वनेचरौ ॥ २८ ॥

'यदि किसी अरिष्ट-ग्रहसे ग्रस्त होकर वे दोनों हमलोगोंसे लड़ेंगे तो हम रोषमें भरकर सबके सामने उन दोनों वनेचरोंको अवश्य मार डालेंगे ॥ २८ ॥

एवं वाग्विषमुत्सृज्य तावुभौ मल्लपुङ्गवौ।
अनुज्ञातौ नरेन्द्रेण स्वे गृहे तौ प्रजग्मतुः ॥ २९ ॥

इस तरह वाणीरूप विषका वमन करके वे दोनों मल्लपुङ्गव राजा कंसकी आज्ञा ले अपने घर चले गये ॥ २९ ॥

महामात्रं ततः कंसो बभाषे हस्तिजीविनम्।
हस्ती कुवलयापीडः समाजद्वारि तिष्ठतु ॥ ३० ॥
बलवान् मदलोलाक्षश्चपलः क्रोधनो नृषु।
दानोत्कटकटश्चण्डः प्रतिवारणरोषणः ॥ ३१ ॥
स संनोदयितव्यस्ते तावुद्दिश्य वनौकसौ।
वसुदेवसुतौ वीरौ यथा स्यातां गतायुषौ ॥ ३२ ॥
त्वया चैव गजेन्द्रेण यदि तौ गोष्ठजीविनौ।
भवेतां पतितौ रङ्गे पश्येयमहमुत्कटौ ॥ ३३ ॥

तत्पश्चात् कंसने हाथीकी परिचर्यासे ही जीविका चलानेवाले अपने महावतको बुलाकर कहा—'कुवलयापीड नामक हाथी रंगशालाके द्वारपर खड़ा रहे। वह बलवान्, मदसे चञ्चल नेत्रवाला, चपल तथा मनुष्योंके प्रति कुपित रहनेवाला है। उसके गण्डस्थल मदकी धारासे उत्कट दिखायी देते हैं। वह किसी विपक्षी हाथीको देखते ही रोषसे भर जाता है तथा स्वभावसे ही अत्यन्त क्रोधी है। वसुदेवके जो वनमें रहनेवाले वीर पुत्र हैं, वे यदि द्वारपर आ जायँ तो तुम उनके ऊपर उस हाथीको हाँक देना, जिससे वहीं उनकी जीवन-लीला समाप्त हो जाय। मैं चाहता हूँ कि गोष्ठमें जीनेवाले उन दोनों मदमत्त बालकोंको तुम्हारे और गजराज कुवलयापीडके द्वारा रंगशालाके द्वारपर धराशायी किया हुआ देखूँ ॥

ततस्तौ पतितौ दृष्ट्वा वसुदेवः सबान्धवः।
छिन्नमूलो निरालम्बः सभार्यो विनशिष्यति ॥ ३४ ॥

'उन दोनोंको पृथ्वीपर पड़ा देख वसुदेवकी तो जड़ ही कट जायगी। वे पत्नी और बन्धु-बान्धवोंसहित निरवलम्ब होकर स्वयं नष्ट हो जायँगे ॥ ३४ ॥

ये चेमे यादवा मूर्खाः सर्वे कृष्णपरायणाः।
विनशिष्यन्ति चिछन्नाशा दृष्ट्वा कृष्णं निपातितम् ॥ ३५॥

'साथ ही ये जो-जो मूर्ख यादव श्रीकृष्णका भरोसा रखते हैं, वे सब श्रीकृष्णको मारा गया देख हताश होकर विनाशके गर्तमें गिर जायँगे ॥ ३५ ॥

एतौ हत्वा गजेन्द्रेण मल्लैर्वा स्वयमेव वा।
पुरीं निर्यादवीं कृत्वा विचरिष्याम्यहं सुखी ॥ ३६॥

'इन दोनोंको गजराज कुवलयापीड अथवा मल्लोंके द्वारा मरवाकर या स्वयं ही मारकर मथुरापुरीको यादवोंसे सूनी करके मैं सुखपूर्वक विचरूँगा ॥ ३६ ॥

पिता हि मे परित्यक्तो यादवानां कुलोद्वहः।
शेषाश्च मे परित्यक्ता यादवाः कृष्णपक्षिणः ॥ ३७॥

'मैंने यादवकुलका भार वहन करनेवाले अपने पिताको ही त्याग दिया। कृष्णका पक्ष लेनेवाले जो शेष यादव हैं, वे भी मेरे द्वारा परित्यक्त हो चुके हैं ॥ ३७ ॥

न चाहमुग्रसेनेन जातः किल सुतार्थिना।
मानुषेणाल्पवीर्येण यथा मामाह नारदः ॥ ३८॥

'यथार्थ बात यह है कि पुत्रकी इच्छा रखनेवाले इस अल्पपराक्रमी मानव उग्रसेनके द्वारा मेरा जन्म नहीं हुआ है, जैसा कि नारदजीने मुझे बताया है' ॥ ३८ ॥

महामात्र उवाच

कथमुक्तं नारदेन राजन् देवर्षिणा पुरा।
आश्चर्यमेतत् कथितं त्वत्तः श्रुतमरिंदम ॥ ३९॥

महावतने पूछा—राजन्! पूर्वकालमें देवर्षि नारदने कैसी बात बतायी थी? शत्रुदमन! यह तो मैंने आपके मुखसे बड़े आश्चर्यकी बात सुनी है ॥ ३९ ॥

कथमन्येन जातस्त्वमुग्रसेनात् पितुर्विना।
तत्र मात्रा कथं राजन् कृतं कर्मेदमीदृशम् ॥ ४०॥

यदि आपके पिता उग्रसेन नहीं हैं तो उनके बिना दूसरेसे आपका जन्म कैसे हुआ है? महाराज! आपकी माताने यह ऐसा कुत्सित कर्म कैसे किया? ॥ ४० ॥

अन्यापि प्राकृता नारी न कुर्याच्च जुगुप्सितम्।
विस्तरं श्रोतुमिच्छामि ह्येतत् कौतूहलं हि मे ॥ ४१ ॥

दूसरी साधारण स्त्री भी ऐसा घृणित कार्य नहीं कर सकती है; फिर उन्होंने कैसे किया? मैं विस्तारपूर्वक इस प्रसंगको सुनना चाहता हूँ। इसे जाननेके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल है ॥ ४१ ॥

कंस उवाच

यथा कथितवान् विप्रो महर्षिर्नारदः प्रभुः।
तथाहं सम्प्रवक्ष्यामि यदि ते श्रवणे मतिः ॥ ४२ ॥

कंसने कहा—महावत! यदि तुम्हारा विचार इस रहस्यको सुननेका ही है तो प्रभावशाली महर्षि नारद बाबाने

मुझसे जैसा कहा था, उसी तरह मैं इस प्रसंगका वर्णन करूँगा ॥ ४२ ॥

आगतः शक्रसदनात् स वै शक्रसखो मुनिः ।
चन्द्रांशुशुक्लवसनो जटामण्डलमुद्वहन् ॥ ४३ ॥

वे मुनि नारद देवराज इन्द्रके सखा हैं। एक दिन चन्द्रमाकी किरणोंके समान श्वेत वस्त्र पहने और सिरपर जटा-मण्डलका भार धारण किये वे इन्द्रभवनसे मेरे यहाँ आये ॥

कृष्णाजिनोत्तरीयेण रुक्मयज्ञोपवीतवान् ।
दण्डी कमण्डलुधरः प्रजापतिरिवापरः ॥ ४४ ॥

उनके कंधेपर काले मृगचर्मकी चादर पड़ी थी। वे सुवर्णमय यज्ञोपवीतसे विभूषित थे और दण्ड-कमण्डलु धारण किये दूसरे प्रजापतिके समान जान पड़ते थे ॥ ४४ ॥

गाता चतुर्णां वेदानां विद्वान् गान्धर्ववेदवित् ।
स नारदोऽथ देवर्षिर्ब्रह्मलोकचरोऽव्ययः ॥ ४५ ॥

नारदजी वेदोंके विद्वान् तो हैं ही, गान्धर्ववेद (संगीत-विद्या) के भी पूर्ण पण्डित हैं, अतः चारों वेदोंका गान किया करते हैं। ब्रह्मलोकमें विचरनेवाले वे अविनाशी देवर्षि नारद ही मेरे यहाँ पधारे थे ॥ ४५ ॥

तमागतमृषिं दृष्ट्वा पूजयित्वा यथाविधि ।
पाद्यार्घ्यमासनं दत्त्वा सम्प्रवेश्योपविश्य ह ॥ ४६ ॥

अपने यहाँ आये हुए उन महर्षिको देखकर मैंने पाद्य-अर्घ्य और आसन समर्पित करके उनकी विधिपूर्वक पूजा की और महलके भीतर ले जाकर उन्हें बिठाया ॥ ४६ ॥

सुखोपविष्टोऽथ मुनिः पृष्ट्वा च कुशलं मम ।
उवाच च प्रीतमना देवर्षिर्भावितात्मवान् ॥ ४७ ॥

जब सुखपूर्वक बैठ गये, तब मुझसे कुशल-प्रश्न करनेके अनन्तर प्रसन्नचित्त हुए उन शुद्ध अन्तःकरणवाले देवर्षिने इस प्रकार कहा ॥ ४७ ॥

नारद उवाच

पूजितोऽहं त्वया वीर विधिदृष्टेन कर्मणा ।
इदमेकं मम वचः श्रूयतां प्रतिगृह्यताम् ॥ ४८ ॥

नारदजी बोले—वीर ! तुमने शास्त्रीय विधिके अनुसार मेरा पूजन किया है; अतः मेरी यह एक बात सुनो और इसे ग्रहण करो ॥ ४८ ॥

गतोऽहं देवसदनं सौवर्णं मेरुपर्वतम् ।
सोऽहं कदाचिद् देवानां समाजे मेरुमूर्धनि ॥ ४९ ॥

सुवर्णमय मेरुपर्वत देवताओंका निवास-स्थान है। उस पर्वतके शिखरपर एक दिन देवताओंका समाज जुटा हुआ था। उसीमें मैं भी गया था ॥ ४९ ॥

तत्र मन्त्रयतामेवं देवतानां मया श्रुतः ।
भवतः सानुगस्यैव वधोपायः सुदारुणः ॥ ५० ॥

वहाँ देवतालोग अनुचरोंसहित तुम्हारे वधके अत्यन्त दारुण उपायपर विचार कर रहे थे। वहीं उनके मुखसे यह बात मैंने सुनी थी ॥ ५० ॥

तत्र यो देवकीगर्भो विष्णुर्लोकनमस्कृतः ।
योऽस्या गर्भोऽष्टमः कंस स ते मृत्युर्भविष्यति ॥ ५१ ॥

कंस ! इस देवकीका जो आठवाँ गर्भ है, उसमें विश्ववन्दित भगवान् विष्णु निवास करेंगे; अतः वह गर्भ तुम्हारी मृत्युका कारण होगा ॥ ५१ ॥

देवानां स तु सर्वस्वं त्रिदिवस्य गतिश्च सः ।
परं रहस्यं देवानां स ते मृत्युर्भविष्यति ॥ ५२ ॥

वे विष्णु ही देवताओंके सर्वस्व हैं। स्वर्गलोकके आश्रय हैं तथा देवगणोंके परम रहस्य हैं। वे ही तुम्हारी मृत्युमें कारण होंगे ॥ ५२ ॥

यत्नश्च क्रियतां कंस गर्भाणां पातनं प्रति ।
नावज्ञा रिपवे कार्या दुर्बले स्वजनेऽपि वा ॥ ५३ ॥

कंस ! तुम देवकीके गर्भोंको मार गिरानेके लिये यत्न करो। शत्रु दुर्बल अथवा स्वजन हो तो भी उसके प्रति उपेक्षा नहीं करनी चाहिये ॥ ५३ ॥

न चायमुग्रसेनः स पिता तव महाबलः ।
द्रुमिलो नाम तेजस्वी सौभस्य पतिरूर्जितः ॥ ५४ ॥

ये उग्रसेन तुम्हारे पिता नहीं हैं। सौभ विमानका स्वामी ओज और तेजसे सम्पन्न महाबली द्रुमिल तुम्हारा पिता है ॥

श्रुत्वाहं तद् वचस्तस्य किंचिद् रोषसमन्वितः ।
भूयोऽपृच्छं कथं ब्रह्मन् द्रुमिलो नाम दानवः ॥ ५५ ॥
मम मात्रा कथं तस्य ब्रूहि विप्र समागमः ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण तपोधन ॥ ५६ ॥

नारदजीकी यह बात सुनकर मुझे कुछ रोष आ गया। मैंने पुनः पूछा—'ब्रह्मन् ! द्रुमिल नामक दानव किस तरह मेरा पिता हुआ ? तपोधन विप्र ! बताइये, मेरी माताके साथ उसका समागम कैसे हुआ ? मैं यह सब विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ' ॥ ५५-५६ ॥

नारद उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि शृणु राजन् यथार्थतः ।
द्रुमिलस्य च मात्रा ते संवादं च समागमम् ॥ ५७ ॥

नारदजीने कहा—राजन् ! बहुत अच्छा, द्रुमिलका तुम्हारी माताके साथ जो संवाद और समागम हुआ था, वह सब मैं तुम्हें यथार्थ रूपसे बता रहा हूँ, सुनो ॥ ५७ ॥

सुयामुनं नाम नगं तव माता रजस्वला ।
प्रेक्षितुं सहिता स्त्रीभिर्गता वै सा कुतूहलात् ॥ ५८ ॥

एक समयकी बात है, तुम्हारी माता जब रजस्वला

(होनेके पश्चात् स्नान कर चुकी) थी, कौतूहलवश दूसरी स्त्रियोंके साथ सुयामुन नामक पर्वतका दर्शन करनेके लिये गयी ॥ ५८ ॥

सा तत्र रमणीयेषु रुचिरद्रुमसानुषु ।
चचार नगशृङ्गेषु कन्दरेषु नदीषु च ॥ ५९ ॥

वह वहाँ पर्वतके रमणीय शिखरोंपर, जो मनोहर वृक्षोंसे सुशोभित थे, विचरने लगी । उसने वहाँकी कन्दराओंमें तथा नदियोंके तटोंपर भी भ्रमण किया ॥ ५९ ॥

किन्नरोद्गीतमधुराः प्रतिश्रुत्यभिनादिताः ।
शृण्वन्ती कामजननीर्वाचः श्रोत्रसुखावहाः ॥ ६० ॥

वहाँ उसे कानोंको सुख देनेवाली कुछ ऐसी बातें सुननेको मिलीं, जो कामोद्दीपन करनेवाली थीं । वे बातें किन्नरोंके गाये हुए गीतोंके रूपमें उपलब्ध होनेके कारण बड़ी मधुर प्रतीत होती थीं और प्रतिध्वनिसे सब ओर गूँजती रहती थीं ॥ ६० ॥

बर्हिणां चैव विरुतं खगानां च विकूजितम् ।
अभीक्ष्णमभिशृण्वन्ती स्त्रीधर्ममभिरोचयत् ॥ ६१ ॥

मयूरोंकी मधुर केकाध्वनि तथा विहंगमोंके कलरवोंको निरन्तर सुनती हुई तुम्हारी माताके मनमें स्त्रीधर्म (पुरुष-सहवास) की रुचि जाग्रत् हो उठी ॥ ६१ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वायुर्वनराजिविनिःसृतः ।
हृद्यः कुसुमगन्धाढ्यो ववौ मन्मथबोधनः ॥ ६२ ॥

इसी बीचमें वनश्रेणियोंसे निकलकर फूलोंकी सुगन्धसे भरी हुई मनोरम वायु चलने लगा, जो कामभावको जगानेवाली थी ॥ ६२ ॥

द्विरेफाभरणाश्चैव कदम्बा वायुघट्टिताः ।
मुमुचुर्गन्धमधिकं संततासारमूर्छिताः ॥ ६३ ॥

खिले हुए कदम्बोंपर भ्रमर छाये हुए थे, जो उनके आभूषणसे जान पड़ते थे । वायुके झोंके खाकर और निरन्तर गिरती हुई जलधाराओंसे मूर्च्छित-से होकर वे कदम्ब अधिकाधिक गन्ध छोड़ने लगे ॥ ६३ ॥

केसराः पुष्पवर्षैश्च ववृषुर्मदबोधनाः ।
नीपा दीपा इवाभान्ति पुष्पकण्टकधारिणः ॥ ६४ ॥

मदनोन्मादको जगानेवाले नागकेसर अपने फूलोंकी वर्षा कर रहे थे । पुष्पमय कण्टक धारण करनेवाले नीप दीपके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ ६४ ॥

मही नवतृणच्छन्ना शक्रगोपविभूषिता ।
यौवनस्थेव वनिता स्वं दधारार्तवं वपुः ॥ ६५ ॥

नयी-नयी घासोंसे ढकी और बीरबहूटीसे विभूषित हुई वसुधा नवयुवती नारीके समान मानो रजस्वला-रूप धारण किये हुए थी ॥ ६५ ॥

अथ सौभपतिः श्रीमान् द्रुमिलो नाम दानवः ।
भविष्यद्दैवयोगेन विधात्रा तत्र नीयते ॥ ६६ ॥

ऐसे समयमें सौभविमानका अधिपति द्रुमिल नामक दीप्तिमान् दानव भावी दैवयोगसे विधाताद्वारा प्रेरित होकर वहाँ आ पहुँचा ॥ ६६ ॥

कामगेन रथेनाशु तरुणादित्यवर्चसा ।
यदृच्छया गतस्तत्र सुयामुनदिदृक्षया ॥ ६७ ॥

इच्छानुसार चलनेवाला उसका विमान प्रभातकालके सूर्यकी भाँति तेजःपुञ्जसे प्रकाशित हो रहा था । उसके द्वारा वह वहाँ सुयामुन पर्वतकी शोभा देखनेकी इच्छासे शीघ्रतापूर्वक सहसा आ गया ॥ ६७ ॥

विहायसा कामगमो मनसोऽप्याशुगामिना ।
स तं प्राप्य पर्वतेन्द्रमवतीर्य रथोत्तमात् ॥ ६८ ॥

मनसे भी तीव्र गतिवाले उस विमानद्वारा आकाशमार्गसे इच्छानुसार चलनेवाला वह दानव पर्वतराज सुयामुनपर आकर उस श्रेष्ठ रथसे नीचे उतरा ॥ ६८ ॥

पर्वतोपवने न्यस्य रथं पररथारुजम् ।
अथासौ सूतसहितश्चचार नगमूर्धनि ॥ ६९ ॥

शत्रुओंके रथको तोड़ डालनेवाले उस रथ (विमान)को उस पर्वतके उपवनमें खड़ा करके वह विमानचालकके साथ पर्वत-शिखरपर विचरण करने लगा ॥ ६९ ॥

ततो बहून्यपश्येतां काननानि वनानि च ।
सर्वर्तुगुणसम्पन्नं नन्दनस्येव काननम् ॥ ७० ॥

उन दोनोंने वहाँ बहुत-से वन और कानन देखे । वहाँकी वनस्थली नन्दनवनके समान सभी ऋतुओंके गुणोंसे सम्पन्न थी ॥ ७० ॥

चेरतुर्नगशृङ्गेषु कन्दरेषु नदीषु च ।
नानाधातुपिनद्धैश्च शृङ्गैर्बहुभिरुच्छ्रितैः ॥ ७१ ॥
नानारत्नविचित्रैश्च काञ्चनाञ्जनराजतान् ।
नानाकुसुमगन्धाढ्यान् नानासत्त्वगणैर्युतान् ॥ ७२ ॥
नानाद्विजगणैर्घुष्टान् नानापुष्पफलद्रुमान् ।
नानौषधिसमायुक्तानृषिसिद्धानुसेवितान् ॥ ७३ ॥

वे दोनों उस पर्वतके शिखरोंपर, कन्दराओंमें और नदियोंके किनारे-किनारे घूमने लगे । उस पर्वतके बहुत-से ऊँचे-ऊँचे शिखर नाना प्रकारकी धातुओंसे आवृत थे। भाँति-भाँतिके रत्नोंसे उनकी विचित्र शोभा हो रही थी। उन दोनोंने देखा, पर्वतके विभिन्न शिखर सुवर्णमय, रजतमय तथा अञ्जनमय दिखायी दे रहे हैं । नाना प्रकारके फूलोंकी सुगन्ध वहाँ व्याप्त हो रही है । भाँति-भाँतिके जीव-जन्तुओंके समुदाय वहाँ निवास करते हैं । अनेक प्रकारके पक्षी अपने कलरवोंसे उन शिखरोंको कोलाहलपूर्ण कर रहे हैं । भाँति-भाँतिके पुष्प

और फलोंसे सम्पन्न वृक्ष वहाँ लहलहा रहे हैं। नाना प्रकारकी ओषधियोंसे संयुक्त उन शिखरोंपर ऋषि और सिद्ध पुरुष निवास करते हैं ॥ ७१–७३ ॥

विद्याधरान् किम्पुरुषानृक्षवानरराक्षसान् ।
सिंहान् व्याघ्रान् वराहांश्च महिषाञ्छरभाञ्छशान् ॥
सृमरांश्चमरान् न्यङ्कून् मातङ्गान् यक्षराक्षसान् ।
एवं बहुविधान् पश्यंश्चरमाणो नगोत्तमम् ॥ ७६ ॥

विद्याधर, किन्नर, रीछ, वानर, राक्षस, सिंह, व्याघ्र, वराह, भैंसे, शरभ, खरगोश, सृमर (मृगविशेष), चमर (चवँरी गाय), न्यङ्कु (बारहसिंगा), हाथी, यक्ष, निशाचर तथा ऐसे ही नाना प्रकारकी जातिके प्राणियोंको देखता हुआ वह दानव उस उत्तम पर्वतपर भ्रमण कर रहा था ॥७४-७५॥

दूराद् ददर्श नृपतिर्देवीं देवसुतोपमाम् ।
क्रीडमानां सखीभिश्च पुष्पं चैव विचिन्वतीम् ॥ ७६ ॥

इसी समय उस दानवराजने दूरसे ही उग्रसेनकी रानीको देखा, जो सखियोंके साथ क्रीडा करती तथा फूल चुनती हुई देवकन्याके समान सुशोभित हो रही थी ॥ ७६ ॥

ततश्चरन्तीं सुश्रोणीं सखीभिः सह संवृताम् ।
दृष्ट्वा सौभपतिर्दूराद् विस्मयन् सूतमब्रवीत् ॥ ७७ ॥

सखियोंसे घिरी हुई उस सुन्दर कटिप्रदेशवाली रमणीको दूरसे ही वहाँ विचरती देख सौभ विमानका स्वामी द्रुमिल चकित हो उठा और अपने विमानचालकसे इस प्रकार बोला—॥ ७७ ॥

कस्येयं मृगशावाक्षी वनान्तरविचारिणी ।
रूपौदार्यगुणोपेता मन्मथस्य रतिर्यथा ॥ ७८ ॥

'सूत ! इस वनके भीतर विचरनेवाली यह मृगनयनी बाला किसकी स्त्री है, जो रूप और उदारता आदि गुणोंसे सम्पन्न होकर कामपत्नी रतिके समान शोभा पा रही है ॥७८॥

शचीव पुरुहूतस्य उताहो वा तिलोत्तमा ।
नारायणोरुं निर्भिद्य सम्भूता वरवर्णिनी ।
ऐलस्य दयिता देवी योषिद्रत्नं किमुर्वशी ॥ ७९ ॥

'अहो ! क्या यह देवराज इन्द्रकी पत्नी शची है या तिलोत्तमा है अथवा जो भगवान् नारायणके ऊरुका भेदन करके प्रकट हुई और पुरूरवाकी प्यारी महारानी बनी थी, वह सुन्दर कान्तिवाली रमणीरत्न उर्वशी है ? ॥ ७९ ॥

क्षीरार्णवे मथ्यमाने सुरासुरगणैः सह ।
मन्थानं मन्दरं कृत्वामृतार्थमिति नः श्रुतम् ॥ ८० ॥
ततोऽमृतात् समुत्तस्थौ देवी श्रीर्लोकभाविनी ।
नारायणाङ्कलुलिता किं श्रीरेषा वराङ्गना ॥ ८१ ॥

'हमने सुना है—देवताओंने असुरोंके साथ मिलकर अमृतकी प्राप्तिके लिये मन्दराचलको मथानी बनाकर जब क्षीरसागरका मन्थन किया था, उस समय उसके अमृतमय दुग्धसे लोकभाविनी लक्ष्मी देवीका प्रादुर्भाव हुआ था, जो भगवान् नारायणके अङ्कमें सुशोभित होती हैं, यह सुन्दरी अङ्गना वही लक्ष्मी देवी तो नहीं है ॥ ८०-८१ ॥

नीलमेघान्तरगता द्योतयन्त्यचिरप्रभा ।
तथा योषिद्गणान् मध्ये रूपं प्रद्योतयद् वनम् ॥ ८२ ॥

'जैसे थोड़ी-थोड़ी देरमें चमकनेवाली बिजली नील मेघके भीतर रहकर अपना प्रकाश फैलाती है, उसी प्रकार यह स्त्रियोंके बीचमें रहकर अपने रूप और वनको प्रकाशित करती हुई यहाँ विचर रही है ॥ ८२ ॥

अतीव सुकुमाराङ्गी सुप्रभेन्दुनिभानना ।
दृष्ट्वा रूपमनिन्द्याङ्ग्या विभ्रान्तो व्याकुलेन्द्रियः ॥ ८३ ॥

'इसके अङ्ग बड़े ही सुकुमार हैं, मुख चन्द्रमाके समान सुन्दर कान्तिसे उद्भासित हो रहा है। इस निर्दोष अङ्गोंवाली रमणीका रूप देखकर मैं पागल हो गया हूँ। मेरी सारी इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठी हैं ॥ ८३ ॥

कामस्य वशमापन्नो मनो विह्वलतीव मे ।
भृशं कृन्तति मेऽङ्गानि सायकैः कुसुमायुधः ।
भित्त्वा हृदि शरान् पञ्च निर्दयं हन्ति मे मनः ॥ ८४ ॥

'मैं कामके अधीन हो गया हूँ। मेरा मन विह्वल-सा हो रहा है। पुष्पधन्वा कामदेव अपने सायकोंसे मेरे अङ्गोंको बड़े वेगसे छिन्न-भिन्न कर रहा है। मेरे हृदयमें अपने पाँचों बाणोंका प्रहार करके वह बड़ी निर्दयताके साथ उसे विदीर्ण कर रहा है ॥ ८४ ॥

हृदयाग्निर्विवर्धयति आज्यसिक्त इवानलः ।
कथमद्य भवेत् कार्यं शमार्थं मन्मथाग्निना ॥ ८५ ॥
केनोपायेन किं कुर्मो भजेन्मां मत्तगामिनी ।

'मेरे हृदयके भीतर कामाग्नि बढ़ रही है। वह घीकी आहुति पाकर बढ़ी हुई आगके समान प्रज्वलित हो उठी है। इस कामाग्निसे शान्ति पानेके लिये इस समय कैसे कौन-सा यत्न किया जाय ? अहो ! किस उपायसे हम क्या करें, जिससे यह मतवाली चालसे चलनेवाली रमणी मुझे अङ्गीकार कर ले' ॥ ८५½ ॥

एवं बहु चिन्तयानो नोपलभ्य च दानवः ॥ ८६ ॥
सूतमाह मुहूर्तं तु तिष्ठस्व त्वमिहानघ ।
अहं यास्यामि तां द्रष्टुं कस्येयमिति योषितम् ॥ ८७ ॥

इस प्रकार बहुत सोचनेपर भी जब कोई उपाय नहीं सूझा, तब उस दानवने अपने सारथिसे कहा—'अनघ ! तुम दो घड़ी यहीं ठहरो, मैं स्वयं ही उसे देखने तथा यह किसकी स्त्री है, इस बातका पता लगानेके लिये जाता हूँ ॥८६-८७॥

प्रतीक्षमाणस्तिष्ठस्व यावदागमनं मम ।
श्रुत्वा तु वचनं तस्य तथास्त्विति वचोऽब्रवीत् ॥ ८८ ॥

'जबतक मैं लौटकर न आऊँ, तबतक तुम यहीं मेरी प्रतीक्षा करते हुए खड़े रहो।' द्रुमिलकी यह बात सुनकर उसके सारथिने कहा, 'बहुत अच्छा ! ऐसा ही होगा'॥ ८८॥

एवमुक्त्वा दानवेन्द्रो गमनाय मनो दधे।
वार्युपस्पृश्य बलवान् ध्यानमेवान्वचिन्तयत् ॥ ८९ ॥

सारथिसे उपर्युक्त बात कहकर बलवान् दानवराज द्रुमिलने उसके पास जानेका विचार किया। फिर उसने जलसे आचमन किया और ध्यान लगाकर उसके विषयमें चिन्तन करने लगा॥

मुहूर्तं ध्यानमात्रेण दृष्टं ज्ञानबलात् ततः।
उग्रसेनस्य पत्नीति ज्ञात्वा हर्षमुपागतः ॥ ९० ॥

दो घड़ीतक ध्यान करनेमात्रसे उसने ज्ञानबलसे देख लिया कि यह राजा उग्रसेनकी पत्नी है। यह जानकर उसे बड़ा हर्ष हुआ ॥ ९० ॥

उग्रसेनस्य रूपं वै कृत्वा स्वं परिवर्त्य सः।
उपासर्पन्महाबाहुः प्रहसन् दानवेश्वरः ॥ ९१ ॥
स्मयमानश्च शनकैर्जग्राहामितवीर्यवान्।
उग्रसेनस्य रूपेण मातरं ते व्यधर्षयत् ॥ ९२ ॥

फिर तो उसने अपना रूप बदलकर उग्रसेनका रूप धारण कर लिया। तत्पश्चात् वह अमितपराक्रमी महाबाहु दानवराज हँसता हुआ उसके पास गया, फिर धीरे-धीरे मुसकराते हुए ही उसने उसे अपनी भुजाओंमें कस लिया। इस प्रकार उग्रसेनके ही रूपसे उसने तुम्हारी माताका सतीत्व भङ्ग किया ॥ ९१-९२ ॥

सा पतिस्निग्धहृदया तं भावेनोपसर्पती।
शङ्किता चाभवत् पश्चात् तस्य गौरवदर्शनात् ॥ ९३ ॥

पतिके प्रति हृदयमें अत्यन्त स्नेह रखनेके कारण वह देवी बड़े प्रेमसे उसकी सेवामें उपस्थित हुई। पीछे उसके शरीरके भारीपनका अनुभव करके वह शङ्कित हो उठी ॥

सा तमाहोत्थिता भीता न त्वं मम पतिर्ध्रुवम्।
कस्य त्वं विकृताचारो येनास्मि मलिनीकृता ॥ ९४ ॥

उठकर भयभीत हो उसने उससे कहा—'निश्चय ही तू मेरा पति नहीं है; अतः बता, तू किसका दुराचारी पुत्र है, जिसने मुझे कलङ्कित कर दिया ? ॥ ९४ ॥

एकभर्तृव्रतमिदं मम संदूषितं त्वया।
पत्युर्मे रूपमास्थाय नीच नीचेन कर्मणा ॥ ९५ ॥

'नीच ! तूने मेरे पतिका रूप धारण करके अपने नीच कर्मसे मेरे पातिव्रत्यको दूषित कर दिया ॥ ९५ ॥

किं मां वक्ष्यन्ति रुषिता बान्धवाः कुलपांसनीम्।
जुगुप्सिता च वत्स्यामि पतिपक्षैर्निराकृता ॥ ९६ ॥

'अब रोषमें भरे हुए मेरे बन्धु-बान्धव मुझ कुलकलङ्किनीको क्या कहेंगे ? मुझे पतिपक्षके लोगोंसे निन्दित और तिरस्कृत होकर रहना पड़ेगा ॥ ९६ ॥

धिक्त्वामीदृशमक्षान्तं दुष्कुलं व्युत्थितेन्द्रियम्।
अविश्वास्यमनार्यं च परदाराभिमर्शनम् ॥ ९७ ॥

'तू ऐसा असहनशील, दूषित कुलमें उत्पन्न, अजितेन्द्रिय, अविश्वसनीय, अनार्य तथा परस्त्रीको कलङ्कित करनेवाला है, तुझे धिक्कार है' ॥ ९७ ॥

स तामाह प्रसज्जन्तीं क्षिप्तः क्रोधेन दानवः।
अहं वै द्रुमिलो नाम सौभस्य पतिरूर्जितः ॥ ९८ ॥
किं मां क्षिपसि रोषेण मूढे पण्डितमानिनि।
मानुषं पतिमाश्रित्य नीचं मृत्युवशे स्थितम् ॥ ९९ ॥

जब इस प्रकार धिक्कार देती हुई वह उससे उलझ पड़ी, तब उसके आक्षेप सुनकर उस दानवने क्रोधपूर्वक कहा—'मूढ़ नारी ! तू अपनेको बड़ी विदुषी मानती है ? अरी ! मैं सौभ विमानका अधिपति ओजस्वी दानव द्रुमिल हूँ, तू मृत्युके वशमें रहनेवाले तुच्छ मानव पतिका आश्रय लेकर रोषपूर्वक मेरे ऊपर आक्षेप क्यों करती है ? ॥ ९८-९९ ॥

व्यभिचाराच्च दुष्यन्ति स्त्रियः स्त्रीमानगर्विते।
न ह्यासां नियता बुद्धिर्मानुषीणां विशेषतः ॥ १०० ॥

'स्त्रीके सम्मानपर गर्व करनेवाली नारी ! (देवताओं और दानवोंके साथ) विवशतापूर्वक व्यभिचार घटित होनेसे स्त्रियाँ दूषित नहीं होती हैं। इन स्त्रियोंकी विशेषतः मानवी स्त्रियोंकी बुद्धि निश्चल नहीं होती ॥ १०० ॥

श्रूयन्ते हि स्त्रियो बह्व्यो व्यभिचारव्यतिक्रमैः।
प्रसूता देवसंकाशान् पुत्रान् निश्चलविक्रमान् ॥ १०१ ॥

'सुननेमें आता है कि बहुतेरी स्त्रियाँ व्यभिचाररूप दोष बन जानेपर भी अविचल पराक्रमी देवोपम पुत्रोंकी जननी हुई हैं ॥ १०१ ॥

अतीव हि त्वं स्त्रीलोके पतिधर्मवती सती।
शुद्धा केशान् विधुन्वन्ती भाषसे यद्यदिच्छसि ॥ १०२ ॥

'स्त्री-जगत्में एक तू ही तो बड़ी पतिधर्म-परायणा और दूधकी धोयी हुई शुद्ध सती है, जो अपने केश-कलापोंको कम्पित करती हुई जो-जो चाहती है, बकती चली जा रही है ॥ १०२ ॥

कस्य त्वमिति यच्चाहं त्वयोक्तो मत्तकाशिनि।
कंसस्तस्माद् रिपुध्वंसी तव पुत्रो भविष्यति ॥ १०३ ॥

'मतवाली स्त्री ! तुमने जो मुझसे यह पूछा है कि—'कस्य त्वम्—तू किसका पुत्र है' इससे तुम्हें कंस नामक शत्रुनाशक पुत्र प्राप्त होगा' ॥ १०३ ॥

सा सरोषा पुनर्भूत्वा निन्दन्ती तस्य तं वरम्।
उवाच व्यथिता देवी दानवं धृष्टवादिनम् ॥ १०४ ॥

यह सुनकर वह देवी पुनः रोषमें भरकर उसके उस वरकी निन्दा करने लगी और ढिठाईके साथ बात करनेवाले उस दानवसे व्यथित होकर बोली—॥ १०४ ॥

धिक् ते वृत्तं सुदुर्वृत्त यः सर्वा निन्दसि स्त्रियः।
सन्ति स्त्रियो नीचवृत्ताः सन्ति चैव पतिव्रताः ॥१०५॥

'दुराचारी दानव! तेरे इस घृणित आचारको धिक्कार है, जो तू संसारकी सारी स्त्रियोंकी निन्दा कर रहा है। माना कि जगत्‌में नीच आचार-विचारवाली स्त्रियाँ भी हैं, परंतु पतिव्रताएँ भी कम नहीं हैं ॥ १०५ ॥

यास्त्वेकपत्न्यः श्रूयन्तेऽरुन्धतीप्रमुखाः स्त्रियः।
धृता याभिः प्रजाः सर्वा लोकाश्चैव कुलाधम ॥१०६॥

'कुलाधम! अरुन्धती आदि जो पतिव्रता स्त्रियाँ सुनी जाती हैं, उनका स्मरण कर! जिन्होंने समस्त प्रजाओं तथा सम्पूर्ण लोकोंको अपने सतीत्वके बलसे ही धारण किया है ॥ १०६ ॥

यस्त्वया मम पुत्रो वै दत्तो वृत्तविनाशनः।
न मे बहुमतस्त्वेष शृणु चापि यदुच्यते ॥१०७॥

'तूंने जो मुझे सदाचारनाशक पुत्र प्रदान किया है, इसके प्रति मेरे मनमें अधिक आदर नहीं है। इस विषयमें मैं जो कुछ कहती हूँ, उसे सुन ले ॥ १०७ ॥

उत्पत्स्यति पुमान् नीच पतिवंशे ममाद्य यः।
भविष्यति स ते मृत्युर्यश्च दत्तस्त्वया सुतः ॥१०८॥

'नीच! अब मेरे पतिके कुलमें परमपुरुष परमेश्वर अवतार लेंगे, जो तेरी तथा तूने जो पुत्र दिया है, उसकी भी मृत्युके कारण होंगे' ॥ १०८ ॥

द्रुमिलस्त्वेवमुक्तस्तु जगामाकाशमेव तु।
तेनैव रथमुख्येन दिव्येनाप्रतिगामिना ॥१०९॥

उसके ऐसा कहनेपर द्रुमिल उसी अनुपम गतिवाले दिव्य विमानद्वारा पुनः आकाशको ही चला गया ॥ १०९ ॥

जगाम च पुरीं दीना माता तदहरेव ते।
मामेवमुक्त्वा भगवान् नारदो मुनिसत्तमः ॥११०॥
दीप्यमानस्तपोवीर्यात् साक्षादग्निरिव ज्वलन्।
वल्लकीं वाद्यमानो हि सप्तस्वरविमूर्च्छिताम् ॥१११॥
गायनो लक्ष्यवीथीं स जगाम ब्रह्मणोऽन्तिकम्।

तुम्हारी माता अत्यन्त दीन होकर उसी दिन मथुरापुरीको चली गयी। महावत! मुझसे इस प्रकार कहकर मुनिश्रेष्ठ भगवान् नारद अपने तपोबलसे प्रकाशित तथा साक्षात् अग्निके समान देदीप्यमान हो, सात स्वरोंकी मूर्च्छनाका विस्तार करनेवाली वीणा बजाते और गाते हुए लक्ष्यवीथी (अथवा अलक्ष्यवीथी) देवयान मार्गसे ब्रह्माजीके पास चले गये ॥ ११०-१११½ ॥

शृणुष्वेदं महामात्र निबोध वचनं मम ॥११२॥
तथ्यं चोक्तं नारदेन त्रैलोक्यज्ञेन धीमता।

महावत! मेरी वह बात सुनो और समझो। तीनों लोकोंकी बातें जाननेवाले बुद्धिमान् नारदने सब कुछ ठीक ही कहा था ॥ ११२½ ॥

अलं बलेन वीर्येण नयेन विनयेन च ॥११३॥
प्रमाणैर्वापि वीर्येण तेजसा विक्रमेण च।
सत्येन चैव दानेन नान्योऽस्ति सदृशः पुमान् ॥११४॥

अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता—बल, वीर्य, नय, विनय, प्रमाण, शक्ति, तेज, पराक्रम, सत्य और दानके द्वारा मेरी समानता करनेवाला दूसरा कोई पुरुष नहीं है।११३-११४।

विदित्वा सर्वमात्मानं वचनं श्रद्दधाम्यहम्।
क्षेत्रजोऽहं सुतस्तस्य उग्रसेनस्य हस्तिप ॥११५॥

महावत! अपनेको सर्वथा इन गुणोंसे युक्त समझकर मैं नारदजीकी बातपर श्रद्धा करता हूँ, इसमें संदेह नहीं कि मैं उग्रसेनका क्षेत्रज पुत्र ही हूँ ॥ ११५ ॥

मातापितृभ्यां संत्यक्तः स्थापितः स्वेन तेजसा।
उभाभ्यामपि विद्विष्टो बान्धवैश्च विशेषतः ॥११६॥

माता-पिताने तो मुझे त्याग ही दिया है। मैं अपने तेजसे ही इस सिंहासनपर बैठा हूँ। मेरे माता-पिता तथा विशेषतः सभी बन्धु-बान्धव मुझसे द्वेष रखते हैं ॥ ११६ ॥

एतानपि हनिष्यामि यादवान् कृष्णपक्षिणः।
तदिमौ घातयित्वा तु हस्तिना गोपकिल्बिषौ ॥११७॥

ये सभी यादव श्रीकृष्णके पक्षमें मिल गये हैं, अतः मैं इन दोनों गोपकुलकलंकोंको हाथीके द्वारा मरवाकर इन यादवोंका भी वध कर डालूँगा ॥ ११७ ॥

तद् गच्छ गजमारुह्य सांकुशप्रासतोमरः।
स्थिरो भव महामात्र समाजद्वारि मा चिरम् ॥११८॥

अतः महावत! तुम जाओ! कुवलयापीड़ हाथीपर आरूढ़ हो अंकुश, भाला और तोमर लिये रङ्गशालाके द्वारपर दृढ़तापूर्वक डट जाओ, विलम्ब न करो ॥ ११८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि कंसवाक्येऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें कंसका वाक्यविषयक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २८ ॥

◆

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

नागरिकोंसे भरी रङ्गशालामें मञ्चों तथा प्रेक्षागृहोंकी शोभा, कंस तथा मल्लोंका आगमन, श्रीकृष्ण और बलरामका रङ्गद्वारपर पदार्पण, कुवलयापीड, महावत तथा हाथीके पादरक्षकोंका वध और दोनों बन्धुओंका रङ्गस्थलमें प्रवेश

वैशम्पायन उवाच

तस्मिन्नहनि निर्वृत्ते द्वितीये समुपस्थिते ।
आपूर्यत महारङ्गः पौरैर्युद्धदिदृक्षुभिः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! वह दिन समाप्त होकर जब दूसरा उपस्थित हुआ, तब युद्ध देखनेकी इच्छावाले पुरवासियोंसे वह महान् रङ्गस्थल भर गया ॥ १ ॥

सचित्राष्टास्त्रिचरणाः सार्गलद्वारवेदिकाः ।
सगवाक्षार्धचन्द्राश्च सुतल्पोत्तमभूषिताः ॥ २ ॥

वहाँ जो मञ्च रखे गये थे, वे चित्रोंसे सुशोभित तथा आठ कोणवाले पायोंसे अलंकृत थे । जिन घरोंमें वे मञ्च थे, उनके द्वारोंपर वेदियाँ बनी थीं और कुण्डीके साथ किवाड़ें भी थीं । उनमें झरोखोंके रूपमें अर्द्धचन्द्राकार छिद्र रखे गये थे । वे मञ्च और मञ्चागार उत्तमोत्तम बिछौनोंसे विभूषित थे ॥ २ ॥

प्राङ्मुखैश्चारुनिर्मुक्तैर्माल्यदामावतंसितैः ।
अलंकृतैर्विराजद्भिः शारदैरिव तोयदैः ॥ ३ ॥
मञ्चागारैः सुनिर्युक्तैर्युद्धाय सुविभूषितैः ।
समाजवाटः शुशुभे समेघौघ इवार्णवः ॥ ४ ॥

उन मञ्चागारोंके द्वार पूर्वाभिमुख थे । वे सब-के-सब सुन्दर और खुले हुए थे (अथवा उनमें झीने सूतके मनोहर परदे लगे थे) । फूलोंकी मालाओं तथा मोती आदिकी लड़ियोंसे उन सबको सजाया गया था । वे शोभासम्पन्न एवं अलंकृत मञ्चागार शरद्-ऋतुके बादलोंके समान शोभा पाते थे । उनमें सुन्दर मल्ल आदि यथास्थान बैठे थे, जिन्हें युद्धके लिये भलीभाँति विभूषित किया गया था । उन सबके द्वारा वह समाजवाट या रङ्गस्थल मेघोंकी घटासे युक्त महासागरके समान शोभा पा रहा था ॥ ३-४ ॥

स्वकर्मद्रव्ययुक्ताभिः पताकाभिर्निरन्तरम् ।
श्रेणीनां च गणानां च मञ्चा भान्त्यचलोपमाः॥ ५ ॥

वहाँ एक ही शिल्पसे जीवननिर्वाह करनेवाले श्रेणी नामक कारीगरों तथा एक जातिके समुदायोंके लिये पृथक्-पृथक् मञ्च थे । उन मञ्चोंपर जो पताकाएँ निरन्तर फहराती रहती थीं, उनमें उन कारीगरोंके उपकरण-द्रव्यके चिह्न अङ्कित थे । उन पताकाओंसे वे मञ्च पर्वतोंके समान शोभा पाते थे ॥ ५ ॥

अन्तःपुरचराणां च प्रेक्षागाराण्यनेकशः ।
रेजुः काञ्चनचित्राणि रत्नज्वालाकुलानि च ॥ ६ ॥

अन्तःपुरकी स्त्रियोंके लिये अनेक प्रेक्षागार सुशोभित हो रहे थे, जो सुवर्णसे चित्रित तथा रत्नोंकी प्रभासे व्याप्त थे ॥ ६ ॥

तानि रत्नौघक्लृप्तानि ससानुप्रग्रहाणि च ।
रेजुर्जवनिकाक्षेपैः सपक्षा इव खे नगाः ॥ ७ ॥

रत्नराशिसे निर्मित उन प्रेक्षागारोंके ऊपरी भागमें पताकाएँ फहरा रही थीं और उनके निचले भागमें परदे पड़े हुए थे । इससे वे आकाशमें पंखयुक्त पर्वतके समान शोभा पाते थे ॥ ७ ॥

तत्र चामरहारैश्च भूषणानां च सिञ्जितैः ।
मणीनां च विचित्राणां विचित्राश्चेरुरर्चिषः ॥ ८ ॥

उन प्रेक्षागारोंमें चामरों, हारों, झनकारते हुए भूषणों तथा विचित्र मणियोंकी चित्र-विचित्र प्रभाएँ सब ओर फैल रही थीं ॥ ८ ॥

गणिकानां पृथङ्मञ्चाः शुभैरास्तरणाम्बरैः ।
शोभिता वारमुख्याभिर्विमानप्रतिमौजसः ॥ ९ ॥

गणिकाओंके लिये पृथक् मञ्च बने थे, जो सुन्दर बिछौनों और वस्त्रोंसे ढँके हुए थे । वे सब-के-सब विमानके समान कान्तिमान् दिखायी देते थे और मुख्य-मुख्य वाराङ्गनाएँ उनकी शोभा बढ़ाती थीं ॥ ९ ॥

तत्रासनानि ख्यातानि पर्यङ्काश्च हिरण्मयाः ।
प्रकीर्णाश्च कुथाश्चित्राः सपुष्पस्तबकैर्वृताः ॥ १० ॥

वहाँ विख्यात आसन, सोनेके पलंग तथा बिछे हुए विचित्र एवं पुष्पगुच्छोंसे युक्त कालीन सुशोभित थे ॥ १० ॥

सौवर्णाः पानकुम्भाश्च पानभूम्यश्च शोभिताः ।
फलावदंशपूर्णाश्च चाङ्गेर्यः पानयोजिताः ॥ ११ ॥

वहाँ सोनेके घड़ोंमें पीनेके लिये जल रखे गये थे । जलपानके जो स्थान थे, उन्हें भी शोभासे सम्पन्न किया गया था। वहाँ फलके टुकड़ोंसे भरी हुई चँगेरियाँ (टोकरियाँ) रखी गयी थीं, जिन्हें जलपान या कलेवेके उपयोगके लिये वहाँ स्थापित किया गया था ॥ ११ ॥

अन्ये च मञ्चा बहवः काष्ठसंचयबन्धनाः ।
रेजुः प्रस्तरणास्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १२ ॥

और भी बहुत से मञ्च थे, जो लकड़ियोंके ढेरसे आवद्ध थे। उनपर भी अच्छे बिछावन डाले गये थे। इस तरहके सैकड़ों-हजारों मञ्च वहाँ शोभा पा रहे थे ॥ १२ ॥

उत्तमागारिकाश्चैव सूक्ष्मजालावलोकिनः।
स्त्रीणां प्रेक्षागृहा भान्ति राजहंसा इवाम्बरे ॥ १३ ॥

घरोंके ऊपर जो घर थे, उनमें स्त्रियोंके लिये प्रेक्षागृह बने थे। उनके दरवाजोंपर महीन जालीदार परदा पड़ा था, जिससे वहाँ बैठे हुए लोग बाहरकी सारी वस्तुएँ देख सकते थे। वे प्रेक्षाभवन आकाशमें राजहंसोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ १३ ॥

प्राङ्मुखश्चारुनिर्मुक्तो मेरुशृङ्गसमप्रभः।
क्मपत्रनिभस्तम्भश्चित्रनिर्योगशोभितः ॥ १४ ॥
प्रेक्षागारः स कंसस्य प्रचकाशेऽधिकं श्रिया।
शोभितो माल्यदामैश्च निवासकृतलक्षणः ॥ १५ ॥

कंसके लिये जो प्रेक्षागार (दृश्य देखनेका स्थान) बना था, वह अधिक शोभासे प्रकाशित हो रहा था। उसका दरवाजा पूर्वकी ओर था। उसपर मनोहर जालीदार पर्दा पड़ा था। वह भवन मेरुपर्वतके शिखरके समान सुनहरी प्रभासे उद्भासित होता था। उसके खम्भे स्वर्णपत्रसे जटित होनेके कारण विशेष शोभासे सम्पन्न थे तथा वह भवन चारु चित्रोंके संनिवेशसे सुशोभित था। मालाओंकी लड़ियोंसे भी उसे सजाया गया था। राजाकी बैठक या निवास-स्थानके लिये जो आवश्यक लक्षण होने चाहिये, उन सबसे वह सम्पन्न था ॥ १४-१५ ॥

तस्मिन् नानाजनाकीर्णे जनौघप्रतिनादिते।
समाजवाटे संस्तब्धे कम्पमानार्णवप्रभे ॥ १६ ॥
राजा कुवलयापीडः समाजद्वारि कुञ्जरः।
तिष्ठत्विति समाज्ञाप्य प्रेक्षागारमुपाययौ ॥ १७ ॥

नाना प्रकारके मनुष्योंसे भरा-पूरा और जनसमुदायके शब्दोंसे प्रतिध्वनित होता हुआ वह समाजवाट या रङ्गस्थल चञ्चल लहरोंवाले विक्षुब्ध महासागरके समान प्रतीत होता था। थोड़ी ही देरमें वहाँ सन्नाटा छा गया और 'कुवलयापीड नामक हाथी रङ्गशालाके द्वारपर खड़ा रहे'—यह आज्ञा देता हुआ राजा कंस अपने प्रेक्षागारमें आ पहुँचा ॥ १६-१७ ॥

स शुक्ले वाससी बिभ्रच्छ्वेतव्यजनचामरः।
शुशुभे श्वेतमुकुटः श्वेताभ्र इव चन्द्रमाः ॥ १८ ॥

उसने दो श्वेत वस्त्र धारण कर रखे थे। उसपर श्वेत चँवर और व्यजन डुलाये जा रहे थे तथा उसके मस्तकपर श्वेत मुकुट प्रकाशित होता था, अतः वह श्वेत बादलोंसे युक्त चन्द्रमाके समान शोभा पा रहा था ॥ १८ ॥

तस्य सिंहासनस्थस्य सुखासीनस्य धीमतः।
रूपमप्रतिमं दृष्ट्वा पौराः प्रोचुर्जयाशिषः ॥ १९ ॥

जब वह सिंहासनपर सुखपूर्वक विराजमान हुआ, उस समय उस बुद्धिमान् नरेशके अनुपम रूपको देखकर समस्त पुरवासी उसकी 'जय' बोलते हुए उसे आशीर्वाद देने लगे ॥

ततः प्रविविशुर्मल्ला रङ्गमावलिताम्बराः।
तिस्रश्च भागशः कक्षाः प्राविशन् बलशालिनः ॥ २० ॥

तदनन्तर मल्लोंने रङ्गभूमिमें प्रवेश किया। उनके कपड़े फहरा रहे थे। वे बलशाली मल्ल अलग-अलग तीन कक्षाओंमें प्रविष्ट हुए ॥ २० ॥

ततस्तूर्यनिनादेन क्ष्वेडितास्फोटितेन च।
वसुदेवसुतौ हृष्टौ रङ्गद्वारमुपस्थितौ ॥ २१ ॥

तत्पश्चात् वाद्योंकी तुमुल ध्वनिके साथ मल्लोंके गर्जने और ताल ठोंकनेके शब्द सुनायी देने लगे। इसी समय हर्षमें भरे हुए दोनों वसुदेव-पुत्र रङ्गशालाके द्वारपर उपस्थित हुए ॥ २१ ॥

बल्लवौ वस्त्रसंवीतौ सुरचन्दनभूषितौ।
ऊर्ध्वपीडौ स्रगापीडौ बाहुशस्त्रकृतौ यमौ ॥ २२ ॥
आस्फोटयन्तावन्योन्यं बाहू चैवार्गलोपमौ।

वे दोनों बन्धु ग्वालबालोंके ही वेषमें थे। उनके अङ्ग सुन्दर वस्त्रोंसे आच्छादित एवं सुशोभित थे। वे दिव्य चन्दन (अङ्गराग) से विभूषित थे। सिरके ऊपर पुष्पमाला और गलेमें गजरे शोभा दे रहे थे। उन्होंने अपनी भुजाओंको ही आयुध बना रखा था। वे दोनों जुड़वें-से जान पड़ते थे और एक दूसरेकी अर्गलाके समान मोटी बाँहोंपर ताल ठोंक रहे थे ॥ २२½ ॥

तावापतन्तौ त्वरितौ प्रतिषिद्धौ वराननौ।
तेन मत्तेन नागेन चोद्यमानेन वै भृशम् ॥ २३ ॥

वे दोनों सुन्दर मुखवाले वीर बड़ी उतावलीके साथ रङ्गशालाकी ओर आ रहे थे, किंतु महावतके द्वारा अत्यन्त प्रेरित किये गये उस मतवाले गजराजने उन्हें सहसा रोक दिया ॥ २३ ॥

स मत्तहस्ती दुष्टात्मा कृत्वा कुण्डलिनं करम्।
चकार चोदितो यत्नं निहन्तुं बलकेशवौ ॥ २४ ॥

वह मदमत्त हाथी बड़ा ही दुष्ट था। महावतके हाँकनेपर उसने अपनी सूँड़को सिकोड़कर श्रीकृष्ण और बलरामको मार डालनेका प्रयत्न किया ॥ २४ ॥

ततः प्रहसितः कृष्णस्त्रास्यमानो गजेन वै।
कंसस्य तन्मतं चैव जगर्हे स दुरात्मनः ॥ २५ ॥

उस हाथीके त्रास देनेपर श्रीकृष्ण हँस पड़े और दुरात्मा कंसके उस मनसूबेकी निन्दा करने लगे ॥ २५ ॥

त्वरते खलु कंसोऽयं गन्तुं वैवस्वतक्षयम् ।
यो मामनेन नागेन प्रधर्षयितुमिच्छति ॥ २६ ॥

वे बोले—'निश्चय ही जान पड़ता है कि यह कंस यमलोकमें जानेके लिये उतावला हो उठा है, इसीलिये इस हाथीके द्वारा वह मुझे कुचल देना चाहता है' ॥ २६ ॥

संनिकृष्टे ततो नागे गर्जमाने यथा घने ।
सहसोत्पत्य गोविन्दश्चक्रे तालस्वनं प्रभुः ॥ २७ ॥

तदनन्तर मेघके समान गम्भीर गर्जना करता हुआ वह हाथी जब बहुत निकट आ गया, तब भगवान् गोविन्द सहसा उछलकर ताली पीटने लगे ॥ २७ ॥

क्ष्वेडितास्फोटितरवं कृत्वा नागस्य चाग्रतः ।
करं ससीकरं तस्य प्रतिजग्राह वक्षसा ॥ २८ ॥

हाथीके सामने ही गर्जने और ताल ठोंकनेकी आवाज करके उन्होंने जलके फुहारे छोड़नेवाली उसकी सूँड़को अपनी छातीपर दबा लिया ॥ २८ ॥

विषाणान्तरगो भूत्वा पुनश्चरणमध्यगः ।
बबाधे तं गजं कृष्णः पवनस्तोयदं यथा ॥ २९ ॥

फिर श्रीकृष्ण उसके दोनों दाँतोंके बीचसे होकर पैरोंके मध्यभागमें आ गये और जैसे हवा बादलको इधर-उधर उड़ाती रहती है, उसी प्रकार वे उस हाथीको सताने और व्याकुल करने लगे ॥ २९ ॥

स हस्ताग्राद् विनिष्क्रान्तो विषाणाग्राच्च दन्तिनः ।
विमुक्तः पदमध्याच्च कृष्णो द्विपमपोथयत् ॥३०॥

वे उस हाथीकी सूँड़के अग्रभागसे निकलकर, दाँतोंके भी अग्रभागसे बचकर तथा पैरोंके भी बीचसे छूटकर बाहर आ गये । फिर श्रीकृष्णने उस हाथीको पीछेसे ऊँचाईकी ओर खींचकर घसीटना आरम्भ किया ॥ ३० ॥

सोऽतिकायस्तु सम्मूढो हन्तुं कृष्णमशक्नुवन् ।
गजः स्वेष्वेव गात्रेषु मथ्यमानो ररास ह ॥३१॥

वह विशालकाय हाथी व्याकुल हो उठा और श्रीकृष्णको मारनेमें असफल हो अपने ही अङ्गोंमें मथित होता हुआ जोर-जोरसे चिग्घाड़ने लगा ॥ ३१ ॥

पपात भूमौ जानुभ्यां दशनाभ्यां तुतोद च ।
मदं सुस्राव रोषाच्च घर्मापाये यथा घनः ॥ ३२ ॥

फिर तो वह दोनों घुटनोंके बल गिर पड़ा, दोनों दाँत भूमिसे टकरा जड़से हिल गये, जिससे उसको बड़ी व्यथा हुई । वह रोषसे मदकी धारा बहाने लगा, मानो पावसमें मेघ पानी बरसा रहा हो ॥ ३२ ॥

कृष्णस्तु तेन नागेन क्रीडित्वा शिशुलीलया ।
निधनाय मतिं चक्रे कंसद्विष्टेन चेतसा ॥ ३३ ॥

श्रीकृष्णने उस हाथीके साथ बालकोंके समान खिलवाड़ करके कंसके प्रति मनमें द्वेष लेकर कुवलयापीडको मार डालनेका विचार किया ॥ ३३ ॥

स तस्य प्रमुखे पादं कृत्वा कुम्भादनन्तरम् ।
दोर्भ्यां विषाणमुत्पाट्य तेनैव प्राहरत् तदा ॥ ३४ ॥

उन्होंने उसके ललाटमें कुम्भस्थलसे नीचे पैर लगाकर दोनों हाथोंसे एक दाँत उखाड़ लिया और उस समय उसीसे उसको पीटना आरम्भ किया ॥ ३४ ॥

स तेन वज्रकल्पेन स्वेन दन्तेन कुञ्जरः ।
हन्यमानः शकृन्मूत्रं मुमोचार्तो ररास ह ॥ ३५ ॥

उस वज्रतुल्य दाँतसे पीटा जाता हुआ वह हाथी मल-मूत्र त्यागने और आर्तभावसे चीत्कार करने लगा ॥ ३५ ॥

कृष्णजर्जरिताङ्गस्य कुञ्जरस्यार्तचेतसः ।
कटाभ्यामति सुस्राव वेगवद् भूरि शोणितम् ॥ ३६ ॥

श्रीकृष्णने जिसके अङ्गोंको पीट-पीटकर जर्जर बना दिया था, उस आर्तचित्त हाथीके दोनों गालोंसे वेगपूर्वक भूरि-भूरि रक्तकी धारा बहने लगी ॥ ३६ ॥

लाङ्गूलं चास्य वेगेन निश्चकर्ष हलायुधः ।
शैलपृष्ठार्धसंलीनं वैनतेय इवोरगम् ॥ ३७ ॥

इधर बलरामजी उसकी पूँछ पकड़कर बड़े वेगसे खींचने लगे, मानो शिलापृष्ठमें आधे शरीरसे छिपे हुए किसी सर्पको गरुड़ खींच रहे हों ॥ ३७ ॥

तेनैव गजदन्तेन कृष्णो हत्वा तु दन्तिनम् ।
जघानैकप्रहारेण गजारोहणमुल्बणम् ॥ ३८ ॥

हाथीको मारकर श्रीकृष्णने उसके उसी दाँतसे एक प्रहार करके मतवाले महावतको भी मौतके मुखमें डाल दिया ॥ ३८ ॥

सोऽऽर्तनादं महत् कृत्वा विदन्तो दन्तिनां वरः ।
पपात समहामात्रो वज्रभिन्न इवाचलः ॥ ३९ ॥

तदनन्तर दाँतवाले हाथियोंमें श्रेष्ठ वह कुवलयापीड दन्तहीन हो महान् आर्तनाद करके वज्रसे विदीर्ण हुए पर्वतके समान महावतसहित गिर पड़ा ॥ ३९॥

ततस्तौ तोरणाङ्गानि प्रगृह्य रणकर्कशौ ।
गजस्य पादरक्षांश्च जघ्नतुः पुरुषर्षभौ ॥ ४० ॥

फिर उन दोनों पुरुषप्रवर रणकर्कश वीरोंने फाटकके खम्भे आदि लेकर हाथीके पादरक्षकोंको भी मार डाला ॥४०॥

तांश्च हत्वा विविशतुर्मध्यं रङ्गस्य तावुभौ ।
नासत्यावश्विनौ स्वर्गादवतीर्णाविवेच्छया ॥ ४१ ॥

उन सबका संहार करके वे दोनों भाई रङ्गस्थलमें प्रविष्ट हुए, मानो दोनों अश्विनीकुमार इच्छानुसार स्वर्गसे भूतलपर उतर आये हों ॥ ४१ ॥

वृष्ण्यन्धकाश्च भोजाश्च ददृशुर्वनमालिनौ ।
क्ष्वेडितोत्कुष्टनादेन बाह्वोरास्फोटितेन च ।
सिंहनादैश्च तालैश्च हर्षयामासतुर्जनम् ॥ ४२ ॥

उस समय वृष्णि; अन्धक तथा भोजकुलके यादवोंने वनमालाधारी श्रीकृष्ण-बलरामको देखा। उन दोनों वीरोंने गर्जने, किलकारने, भुजाओंपर ताल ठोकने, सिंहोंके समान दहाड़ने और ताली पीटने आदिके द्वारा वहाँके जनसमुदायको हर्षसे उत्फुल्ल कर दिया ॥ ४२ ॥

तौ दृष्ट्वा भोजराजस्तु विषसाद वृथामतिः ।
पौराणामनुरागं च हर्षं चालक्ष्य भारत ॥ ४३ ॥

भारत! व्यर्थ बुद्धिवाला भोजराज कंस उन दोनों भाइयोंको उपस्थित देख, उनके प्रति पुरवासियोंके अनुराग और हर्षको लक्ष्य करके विषादमें डूब गया ॥ ४३ ॥

तं हत्वा पुण्डरीकाक्षो नदन्तं दन्तिनां वरम् ।
अवतीर्णोऽर्णवाकारं समाजं सहपूर्वजः ॥ ४४ ॥

इस प्रकार कमलनयन श्रीकृष्णने गरजते हुए गजश्रेष्ठ कुवलयापीडको मारकर अपने पूर्वज बलरामजीके साथ उस समुद्रके समान विशाल जनसमुदायमें प्रवेश किया ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि कुवलयापीडवधे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें कुवलयापीड़ हाथीका वधविषयक उन्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २९ ॥

* * *

त्रिंशोऽध्यायः

रङ्गशालामें मल्लयुद्धके विषयमें श्रीकृष्णके विचार, श्रीकृष्ण और बलदेवके द्वारा चाणूर और मुष्टिक आदिका वध, कंसका संहार तथा पिता-माताके चरणोंमें प्रणाम करके दोनों भाइयोंका उनके घरमें जाना

वैशम्पायन उवाच

प्रविशन्तं तु वेगेन मारुतावल्गिताम्बरम् ।
पूर्वजं पुरतः कृत्वा कृष्णं कमललोचनम् ॥ १ ॥
गजदन्तकृतोल्लेखं सुभुजं देवकीसुतम् ।
लीलाकृताङ्गदं वीरं मदेन रुधिरेण च ॥ २ ॥
वल्गमानं यथा सिंहं व्यूहमानं यथा घनम् ।
बाहुशब्दप्रहारेण चालयन्तं वसुंधराम् ॥ ३ ॥
औग्रसेनिः समालोक्य दन्तिदन्तोद्यतायुधम् ।
कृष्णं भृशायस्तमुखः सरोषं समुदैक्षत ॥ ४ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! कमलनयन श्रीकृष्ण अपने बड़े भाई बलरामको आगे करके बड़े वेगसे रंगशालामें घुसे थे। उस समय उनके वस्त्र हवाके झोंकेसे फहरा उठे थे। हाथीका दाँत उनकी पहचान करानेवाला चिह्न या उपलक्षण बन गया था। उनकी भुजाएँ बड़ी सुन्दर थीं। देवकीनन्दन वीर श्रीकृष्णकी बाहोंमें हाथीके मद और रुधिर इस तरह लिपटे थे कि उनमें लीलापूर्वक अङ्गद (बाजूबंद) की रचना हो गयी थी। वे सिंहकी तरह उछलते तथा कंसवधकी युक्ति सोचते हुए आकाशमें बादलकी भाँति रंगशालामें विचर रहे थे। भुजाओंपर ताल ठोंककर जब वे उसकी ध्वनि फैलाते थे, तब पृथ्वीको भी हिला देते थे। उन्हें हाथीके दाँतको ही आयुध रूपसे हाथमें लिये देख उग्रसेनकुमार कंस अत्यन्त मलिन हो गया और वह बड़े रोषमें भरकर उनकी ओर देखने लगा ॥ १–४ ॥

भुजासक्तेन शुशुभे गजदन्तेन केशवः ।
चन्द्रार्धबिम्बसंसक्तो यथैकशिखरो गिरिः ॥ ५ ॥

अपने हाथमें सटे हुए उस गजदन्तसे सुशोभित होनेवाले श्रीकृष्ण अर्धचन्द्रके बिम्बसे संयुक्त हुए एक शिखरवाले पर्वतके समान जान पड़ते थे ॥ ५ ॥

वल्गमाने तु गोविन्दे स कृत्स्नो रङ्गसागरः ।
जनौघप्रतिनादेन पूर्यमाण इवाबभौ ॥ ६ ॥

श्रीकृष्णके उछलते-कूदते आते ही वह समुद्र-जैसा सम्पूर्ण रंगस्थल जनसमुदायके हर्षनादसे परिपूर्ण हुआ-सा प्रतीत होने लगा ॥ ६ ॥

ततः क्रोधाभिताम्राक्षः कंसः परमकोपनः ।
चाणूरमादिशद् युद्धे कृष्णस्य सुमहाबलम् ॥ ७ ॥
अन्ध्रं मल्लं च निकृतिं मुष्टिकं च महाबलम् ।
बलदेवाय सक्रोधो दिदेशाद्रिचयोपमम् ॥ ८ ॥

तदनन्तर क्रोधसे लाल आँखें किये परम क्रोधी कंसने महाबली अन्ध्र मल्ल चाणूरको जो कपटयुद्ध करनेवाला था, श्रीकृष्णके साथ लड़नेका आदेश दिया और जिसका शरीर प्रस्तरसमूहके समान सुदृढ़ था, उस कपटी महाबली मुष्टिकको रोषमें भरे हुए कंसने बलदेवके साथ जूझनेकी आज्ञा दी ॥ ७-८ ॥

कंसेनापि समाज्ञप्तश्चाणूरः पूर्वमेव तु ।
योद्धव्यं सह कृष्णेन त्वया यत्नवतेति वै ॥ ९ ॥

कंसने चाणूरको तो पहलेसे ही यह आज्ञा दे रखी थी, कि तुम्हें श्रीकृष्णके साथ यत्नपूर्वक युद्ध करना चाहिये ॥९॥

स रोषेण तु चाणूरः कषायीकृतलोचनः ।
अभ्यावर्तत युद्धार्थमपां पूर्णो यथा घनः ॥ १० ॥

अतः रोषसे लाल आँखें किये चाणूर युद्ध करनेके लिये श्रीकृष्णके निकट आया। उस समय वह जलसे भरे-पूरे मेघके समान जान पड़ता था ॥ १० ॥

अवघुष्टे समाजे तु निश्शब्दस्तिमिते जने ।
यादवाः सहितास्तत्र इदं वचनमब्रुवन् ॥ ११ ॥

राजाकी ओरसे शान्त रहनेकी घोषणा होते ही वहाँका सारा जनसमुदाय नीरव तथा निश्चल हो गया, तब वहाँ एक साथ बैठे हुए यादव इस प्रकार कहने लगे—॥११॥

बाहुयुद्धमिदं रंगे सप्राश्निकमकातरम् ।
क्रियाबलसमाज्ञातमशस्त्रं निर्मितं पुरा ॥ १२ ॥

'पूर्वकालमें विधाताने मल्लयुद्धके विषयमें यह नियम बनाया था कि यह युद्ध रङ्गस्थलके अखाड़ेमें केवल भुजाओंद्वारा हो । इसमें किसी प्रकारके अस्त्र-शस्त्रका प्रयोग न किया जाय। इसमें (दो व्यक्तियोंका जोड़ निश्चित करनेके लिये) कोई-न-कोई परीक्षक रहना चाहिये। इसमें कायर या डरपोकको सम्मिलित नहीं करना चाहिये। इसमें क्रिया (दाँव-पेंच आदि) और बल (शारीरिक शक्ति) के द्वारा ही विपक्षीको परास्त करनेकी आज्ञा दी गयी है ॥

अद्भिश्चातिश्रमो नित्यं विनेयः कालदर्शिभिः ।
करीषेण च मल्लस्य सततं सत्क्रिया स्मृता ॥ १३ ॥

'समयोचित कर्तव्यको देखने और समझनेवाले पुरुषोंको उचित है कि वे सदा योद्धाओंके लिये जल प्रस्तुत करके उनकी भारी थकावट दूर करें और गोबरका चूर्ण सुलभ करके पहलवानका सदा सत्कार करना चाहिये ॥ १३ ॥

स्थितो भूमिगतेनैव यो यथा मार्गतः स्थितः ।
संयुज्यतश्च पर्यायः प्राश्निकैः समुदाहृतः ॥ १४ ॥

'युद्धपरीक्षकोंने यह बताया है कि जो जिस मार्ग (दाँव-पेंच) से लड़े, उसके साथ उसीके अनुरूप दाँव लगाकर भूमिपर खड़े हुएके साथ खड़ा होकर ही लड़ना चाहिये और एक-एक योद्धाको क्रमशः एक-एकके साथ ही लड़ाना चाहिये॥ १४ ॥

बालो वा यदि वा वृद्धो मध्यो वापि कृशोऽपि वा ।
बलस्थो वा स्थितो रंगे ज्ञेयः कक्षान्तरेण वै ॥१५॥

'कोई बालक हो, वृद्ध हो, मध्य अवस्थाका हो, दुर्बल हो, अथवा बलवान् हो, वह यदि अखाड़ेमें उतरे तो उसके जोड़का विचार उसीकी कक्षाके लोगोंमेंसे ही करना चाहिये ॥ १५ ॥

बलतश्च क्रियातश्च वाहुयुद्धविधिर्युधि ।
निपातानन्तरं किंचिन्न कर्तव्यं विजानता ॥ १६॥

'शारीरिक बल और क्रिया (दाँव-पेंच) से ही बाहुयुद्ध करनेका विधान है । विज्ञ पुरुषको चाहिये कि प्रतिद्वन्द्वीको गिरा देनेके बाद उसके साथ और कुछ न करे ॥ १६ ॥

तदिदं प्रस्तुतं रंगे युद्धं कृष्णान्ध्रमल्लयोः ।
बालः कृष्णो महानन्ध्रः कथं न स्याद् विचारणा॥ १७॥

'इस समय रंगस्थलमें श्रीकृष्ण और अन्ध्र मल्ल चाणूरका युद्ध प्रस्तुत है, परंतु इनमें श्रीकृष्ण तो अभी बालक हैं और यह चाणूर विशालकाय पहलवान है, इस विषमतापर विचार क्यों नहीं किया जाता ?' ॥ १७ ॥

ततः किलकिलाशब्दः समाजे समवर्तत ।
प्रावल्गत च गोविन्दो वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ १८॥

यह सुनकर उस जनसमाजमें कोलाहल मच गया। तब भगवान् श्रीकृष्ण उछल पड़े और इस प्रकार बोले—॥१८॥

अहं बालो महानन्ध्रो वपुषा पर्वतोपमः ।
युद्धं ममानेन सह रोचते बाहुशालिना ॥ १९॥

'मैं बालक हूँ और यह महामल्ल अन्ध्र शरीरसे पर्वत-जैसा दिखायी देता है, तथापि इस बाहुशाली वीरके साथ मेरा युद्ध हो, यह मुझे पसंद है ॥ १९ ॥

युद्धव्यतिक्रमः कश्चिन्न भविष्यति मत्कृतः ।
न ह्यहं बाहुयोधानां दूषयिष्यामि यन्मतम् ॥ २०॥

'मेरी ओरसे युद्धसम्बन्धी नियमका कोई उल्लङ्घन नहीं होगा । बाहुयुद्ध करनेवाले योद्धाओंका जो मत है, उसे मैं कलंकित नहीं करूँगा ॥ २० ॥

योऽयं करीषधर्मश्च तोयधर्मश्च रंगजः ।
कषायस्य च संसर्गः समयो ह्येष कल्पितः ॥ २१॥

'गोबरके चूर्णको उबटनके समान शरीरमें मलना, जलसे धोना और गेरूके रंगका लेपन करना रंगस्थल (अखाड़ेमें उतरनेवालों) का धर्म है, यह मल्लोंका बनाया हुआ आचार है ॥ २१ ॥

संयमः स्थिरता शौर्यं व्यायामः सत्क्रिया बलम् ।
रंगे च नियता सिद्धिरेतद् युद्धविदां मतम् ॥२२॥

'संयम (एक दूसरेको पीछे हटाना), स्थिरता (अपने स्थानसे न हटना), शौर्य, व्यायाम (स्थिर रहते हुए भी हाथ-पैर चलाना), सत्क्रिया (सद् बर्ताव—मर्मस्थानोंमें चोट न पहुँचाना),असद् व्यवहारसे बचते हुए भी अधिक-से-अधिक बल प्रकट करना, इन छः साधनोंके द्वारा रङ्गभूमिमें विजयरूप सिद्धिका प्राप्त होना निश्चित है; यह मल्लयुद्धके विद्वानोंका मत है ॥ २२ ॥

अवैरमेवं यदयं सवैरं कर्तुमुद्यतः।
अत्र वै निग्रहः कार्यस्तोषयिष्याम्यहं जगत् ॥ २३ ॥

'यह (चाणूर अथवा कंस) इस वैररहित युद्धको भी वैरयुक्त कर देनेपर तुला हुआ है, अतः यहाँ इसका निग्रह करना आवश्यक है, ऐसा करके मैं सम्पूर्ण जगत्‌को संतुष्ट करूँगा ॥ २३॥

करूषेषु प्रसूतोऽयं चाणूरो नाम नामतः।
बाहुयोधी शरीरेण कर्मभिश्चात्र चिन्त्यताम् ॥ २४ ॥

'यह चाणूर नामक बाहुयोधी मल्ल करूष देशमें उत्पन्न हुआ है। इसके शरीर और कर्मसे जो घटनाएँ घटित हुई हैं, उनपर भी आपलोग विचार कर लें ॥ २४ ॥

एतेन बहवो मल्ला निपातानन्तरं हताः।
रङ्गप्रतापकामेन मल्लमार्गश्च दूषितः ॥ २५ ॥

'इसने रंगभूमिमें अपना प्रताप प्रकट करने या दबदबा जमानेकी इच्छासे बहुतेरे पहलवानोंको भूमिपर गिरानेके बाद मार डाला और इस प्रकार मल्ल-मार्गको कलंकित किया है ॥ २५ ॥

शस्त्रसिद्धिस्तु योधानां संग्रामे शस्त्रयोधिनाम्।
रङ्गसिद्धिस्तु मल्लानां प्रतिमल्लनिपातजा ॥ २६ ॥

'शस्त्रद्वारा युद्ध करनेवाले योद्धाओंके लिये संग्राममें शत्रुको विदीर्ण कर देना ही सिद्धि है, परंतु मल्लोंको प्रतिद्वन्द्वी मल्लको गिरा देनेमात्रसे ही रंगस्थलमें विजयरूप सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ २६ ॥

रणे विजयमानस्य कीर्तिर्भवति शाश्वती।
हतस्यापि रणे शस्त्रैर्नाकपृष्ठं विधीयते ॥ २७ ॥

'शस्त्रयुद्धमें विजय पानेवालेको अक्षय कीर्ति प्राप्त होती है। यदि वह रणक्षेत्रमें शस्त्रोंद्वारा मारा गया तो भी उसे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है ॥ २७ ॥

रणे ह्युभयतः सिद्धिर्हतस्येह घ्नतोऽपि वा।
सा हि प्राणान्तिकी यात्रा महद्भिः साधुपूजिता ॥ २८ ॥

'शस्त्रयुद्धमें मारे जानेवालेको तथा मारनेवाले दोनोंको ही सिद्धि प्राप्त होती है, क्योंकि वह प्राणान्तक यात्रा है, जिसकी महान् पुरुषोंने भलीभाँति पूजा (प्रशंसा) की है ॥ २८ ॥

अयं तु मार्गो बलतः क्रियातश्च विनिःसृतः।
मृतस्य रङ्गे क स्वर्गो जयतो वा कुतो रतिः ॥ २९ ॥

'परंतु यह मल्ल-युद्धका मार्ग शारीरिक बल और दाँव-पेंचके कौशलसे प्रकट हुआ है। अखाड़ेमें मरनेवालेको कहाँ स्वर्ग मिलता है ? अथवा जीतनेवालेको कहाँका सुख प्राप्त होता है ? ॥ २९ ॥

ये तु केचित् स्वदोषेण राज्ञः पण्डितमानिनः।
प्रतापार्थं हता मल्ला मल्लहन्तुर्वधो हि सः ॥ ३० ॥

'किसी पण्डितमानी राजाका प्रताप बढ़ानेके लिये जो कोई भी मल्ल किसी पहलवानके द्वारा अपने अपराधसे मारे गये हैं, वहाँ उस मल्ल-हत्यारेको हत्याजनित पाप ही लगता है'॥३०॥

एवं संजल्पतस्तस्य ताभ्यां युद्धं सुदारुणम्।
उभाभ्यामभवद् घोरं वारणाभ्यां यथा वने ॥ ३१ ॥

जब श्रीकृष्ण ऐसा कह रहे थे, उसी समय उनमें और चाणूरमें—दोनोंमें ही अत्यन्त दारुण एवं भयानक युद्ध होने लगा, जैसे वनमें दो हाथी लड़ पड़ें ॥ ३१ ॥

कृतप्रतिकृतैश्चित्रैर्बाहुभिश्च सकण्टकैः।
सन्निपातावधूतैश्च प्रमाथोन्[1]मथनैस्तथा ॥ ३२ ॥

उनमेंसे जब एक-दूसरेका कोई अङ्ग जोरसे दबाता, तब दूसरा तुरंत उसका प्रतीकार करता—उस अङ्गको उसकी पकड़से छुड़ा लेता था। दोनों एक-दूसरेके हाथोंको मुट्ठीसे पकड़कर विवश कर देते और विचित्र ढंगसे परस्पर प्रहार करते थे। दोनों ही एक-दूसरेको अपनी भुजाओंमें बाँधकर रोक लेते, कभी दोनों आपसमें गुँथ जाते और फिर धक्के देकर दूर हटा देते थे। कभी एक दूसरेको जमीनपर पटककर रगड़ता तो दूसरा नीचेसे ही कुलाँचकर ऊपरवालेको दूर फेंक देता, या लिये-दिये खड़ा हो अपने शरीरसे दबाकर उसके अङ्गोंको भी मथ डालता था ॥ ३२ ॥

तावुभावपि संश्लिष्टौ यथा शैलमयौ तथा।
क्षेपणै[2]र्मुष्टि[3]भिश्चैव वराहोद्धूत[4]निःस्वनैः ॥ ३३ ॥

वे दोनों ही एक-दूसरेसे सटकर ऐसे जान पड़ते थे, मानो दो पर्वत परस्पर भिड़ गये हों। कभी दोनों दोनोंको बलपूर्वक पीछे हटाते और मुक्कोंसे एक-दूसरेकी छातीपर चोट करते थे, कभी एकको दूसरा अपने कंधेपर उठा लेता और उसका मुँह नीचे कर घुमाकर पटक देता था, जिससे ऐसा शब्द होता, मानो किसी शूकरने चोट की हो ॥ ३३ ॥

कीलैर्वज्रनिपातैश्च प्रसृ[5]ष्टाभिस्तथैव च।
शलाकानखपातैश्च पादोद्धूतैश्च दारुणैः ॥ ३४ ॥

---

१. प्रमाथ तथा उन्मथन आदि मल्ल-युद्धके दाँव-पेंचोंके नाम हैं। मल्ल-शास्त्रके अनुसार इनके लक्षण नीचे दिये जाते हैं। इनका भाव मूलश्लोकके अनुवादमें आ गया है—

निपात्य पेषणं भूमौ प्रमाथ इति कथ्यते।
यत् तूत्थायाङ्गमथनं तदुन्मथनमुच्यते ॥

२. क्षेपणं कथ्यते यत् तु स्थानात् प्रच्यावनं हठाद् ॥

३. उभयोर्भुजयोर्मुष्टिरूरोमध्ये निपात्यते।
मुष्टिरित्युच्यते तज्ज्ञैर्मल्लविद्याविशारदैः ॥

४. अवाङ्मुखं स्कन्धगतं भ्रामयित्वा तदैव यः।
क्षिप्तस्य शब्दः स भवेद् वराहोद्धूतनिःस्वनः ॥

५. अङ्गुल्यः प्रसृतायास्तु ताः प्रसृष्टा उदीरिताः ॥

कभी वे दोनों योधा एक-दूसरेके शरीरपर कोहनियों और घुटनोंसे चोट करते थे, कभी हाथकी अँगुलियोंको फैलाकर एक दूसरेको पीटते थे, कभी आपसमें पंजे लड़ाते थे, कभी रोषपूर्वक अँगुलियोंके नखोंसे बकोट लेते थे, कभी पैरोंमें उलझाकर दोनों दोनोंको गिरा देते। इस प्रकार भयंकर दाँव-पेंचका प्रयोग करते थे ॥ ३४ ॥

जानुभिश्चाश्मनिर्घोषैः शिरोभ्यां चावघट्टितैः।
तद् युद्धमभवद् घोरमशस्त्रं बाहुतेजसा ॥ ३५ ॥
बलप्राणेन शूराणां समाजोत्सवसंनिधौ।
अरज्यत जनः सर्वः सोत्कृष्टनिनदोत्थितः ॥ ३६ ॥

कभी घुटनों और सिरसे टक्कर मारते थे, जिससे पत्थरोंके टकरानेके समान शब्द होता था। जनसमुदायके समक्ष किये जानेवाले उस उत्सवमें शूरवीरोंके निकट उन दोनोंमें केवल बाहुबल, शारीरिक बल तथा प्राणबलसे किसी अस्त्र-शस्त्रके विना ही बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। उस युद्धके रंगमें सब लोग रँग गये। सभी दर्शक विजेताका उत्साह बढ़ानेके लिये जोर-जोरसे हर्षनाद कर उठते थे ॥ ३५-३६ ॥

साधुवादांश्च मञ्चेषु घोषयन्त्यपरे जनाः।
ततः प्रस्विन्नवदनः कृष्णप्रणिहितेक्षणः।
न्यवारयत तूर्याणि कंसः सव्येन पाणिना ॥ ३७ ॥

दूसरे लोग मञ्चोंपर बैठे-बैठे ही 'साधु-साधु' (बहुत अच्छा, बहुत अच्छा) की घोषणा करते थे। यह सब देख-सुनकर कंसके वदनसे पसीना छूटने लगा। उसकी आँखें श्रीकृष्णकी ओर ही लगी थीं। उसने बायें हाथसे संकेत करके बाजे बंद करा दिये ॥ ३७ ॥

प्रतिषिद्धेषु तूर्येषु मृदङ्गादिषु तेषु वै।
खे संगतान्यवाद्यन्त देवतूर्याण्यनेकशः ॥ ३८ ॥

कंसने जब मृदङ्ग आदि वाद्योंका बजाना रोक दिया, तब आकाशमें देवताओंके अनेक प्रकारके वाद्य स्वतः एक साथ बज उठे ॥ ३८ ॥

युद्ध्यमाने हृषीकेशे पुण्डरीकनिभेक्षणे।
स्वयमेव प्रवाद्यन्त तूर्यघोषास्तु सर्वशः ॥ ३९ ॥

कमलनयन श्रीकृष्णके युद्ध करते समय सब प्रकारके वाद्य स्वयं ही बजने लगे और उनकी ध्वनि सब ओर छा गयी॥

अन्तर्धानगता देवा विमानैः कामरूपिभिः।
चेरुर्विद्याधरैः सार्द्धं कृष्णस्य जयकाङ्क्षिणः ॥ ४० ॥

देवता अदृश्य होकर श्रीकृष्णकी विजय चाहते हुए अपने कामरूपी विमानोंद्वारा विद्याधरगणोंके साथ वहाँ आकाशमें विचर रहे थे ॥ ४० ॥

जयस्व कृष्ण चाणूरं दानवं मल्लरूपिणम्।
इति सप्तर्षयः सर्वे ऊचुश्चैव नभोगताः ॥ ४१ ॥

समस्त सप्तर्षि वहाँके आकाशमें स्थित हो कहने लगे—'श्रीकृष्ण! तुम्हें इस मल्लरूपधारी दानव चाणूरपर विजय प्राप्त हो' ॥ ४१ ॥

चाणूरेण चिरं कालं क्रीडित्वा देवकीसुतः।
बलमाहारयामास कंसस्याभावदर्शिवान् ॥ ४२ ॥

कंसकी मृत्युको समीप देखनेवाले देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने चाणूरके साथ चिरकालतक युद्धकी लीला करके अपनेमें अनन्त बलका समावेश किया ॥ ४२ ॥

ततश्चचाल वसुधा मञ्चाश्चैव जुघूर्णिरे।
मुकुटाच्चापि कंसस्य पपात मणिरुत्तमः ॥ ४३ ॥

फिर तो धरती डोलने लगी। वहाँ बिछे हुए मञ्च झूमने लगे और कंसके मुकुटसे भी उत्तम मणि गिर पड़ी ॥ ४३ ॥

दोर्भ्यामानम्य कृष्णस्तु चाणूरं शीर्णजीवितम्।
प्राहरन्मुष्टिना मूर्ध्नि वक्षस्याहत्य जानुना ॥ ४४ ॥

चाणूरकी जीवनीशक्ति अथवा आयु क्षीण हो चुकी थी। श्रीकृष्णने अपनी दोनों भुजाओंसे चाणूरको झुकाकर उसकी छातीमें घुटनेसे चोट करके उसके मस्तकपर मुक्केसे प्रहार किया ॥ ४४ ॥

निःसृते साश्रुरुधिरे तस्य नेत्रे सबन्धने।
तापनीये यथा घण्टे कक्षोपरि विलम्बिते ॥ ४५ ॥

इससे स्नायु-बन्धन तथा आँसू और रक्तके साथ उसकी दोनों आँखें बाहर निकल आयीं और ऐसी दिखायी देने लगीं मानो हाथीको कसनेवाली रस्सी या जंजीरमें दो सोनेकी घंटियाँ लटक रही हों ॥ ४५ ॥

पपात स तु रङ्गस्य मध्ये निःसृतलोचनः।
चाणूरो विगतप्राणो जीवितान्ते महीतले ॥ ४६ ॥

आँखें निकल जानेपर जीवनके अन्तमें प्राणशून्य हुआ चाणूर अखाड़ेके बीचमें गिर पड़ा ॥ ४६ ॥

देहेन तस्य मल्लस्य चाणूरस्य गतायुषः।
संनिरुद्धो महारङ्गः स शैलेनेव लक्ष्यते ॥ ४७ ॥

जिसकी आयु समाप्त हो गयी थी, उस चाणूर मल्लके शरीरसे वह विशाल रंगस्थल इस प्रकार अवरुद्ध दिखायी देता था, मानो किसी पर्वतसे रुँध गया हो ॥ ४७ ॥

रौहिणेयो हते तस्मिंश्चाणूरे बलदर्पिते।
जग्राह मुष्टिकं रंगे कृष्णस्तोशलकं पुनः ॥ ४८ ॥

बलाभिमानी चाणूरके मारे जानेपर रोहिणीनन्दन बलरामने उस रंगभूमिमें मुष्टिकको पकड़ लिया तथा श्रीकृष्णने पुनः तोशलको धर दबाया ॥ ४८ ॥

सन्निपाते तु तौ मल्लौ प्रथमे क्रोधमूर्च्छितौ।
समेयातां रामकृष्णौ कालस्य वशवर्तिनौ।
निर्घातावनतौ भूत्वा रङ्गमध्ये ववल्गतुः ॥ ४९ ॥

युद्ध आरम्भ होनेपर पहले तो कालके अधीन हुए वे दोनों असुर मल्ल क्रोधसे मूर्च्छित हो बलराम और श्रीकृष्णसे भिड़ गये, परंतु जब उन दोनों वीरोंकी मार पड़ी, तब वे र झुककर अखाड़ेमें इधर-उधर उछल-कूद मचाने लगे ॥

कृष्णस्तोशलमुद्यम्य गिरिशृङ्गोपमं बली ।
भ्रामयित्वा शतगुणं निष्पिपेष महीतले ॥ ५० ॥

बलवान् श्रीकृष्णने पर्वतशिखरके समान विशालकाय तोशलको दोनों हाथोंसे उठा लिया और सौ बार घुमानेके द पृथ्वीपर पटककर उसे पीस डाला ॥ ५० ॥

तस्य कृष्णाभिपन्नस्य पीडितस्य बलीयसः ।
मुखाद् रुधिरमत्यर्थमुज्जगाम मुमूर्षतः ॥ ५१ ॥

श्रीकृष्णके द्वारा आक्रान्त एवं पीड़ित होकर मरणासन्न हुए उस महाबली मल्लके मुखसे बहुत अधिक रक्त निकलने लगा ॥ ५१ ॥

संकर्षणस्तु सुचिरं योधयित्वा महाबलः ।
अन्ध्रमल्लं महामल्लो मण्डलानि व्यदर्शयत् ॥ ५२ ॥

इधर महाबली महामल्ल संकर्षण आन्ध्रदेशीय मल्ल मुष्टिकके साथ देरतक युद्ध करके उसे कुश्तीके अनेक पैंतरे दिखाने लगे ॥ ५२ ॥

मुष्टिनैकेन तेजस्वी साशनिस्तनयित्नुना ।
शिरस्यभ्यहनद् वीरो वज्रेणेव महागिरिम् ॥ ५३ ॥

फिर उन तेजस्वी वीरने उसके मस्तकपर एक मुक्का मारा। उससे वज्रपातके समान शब्द हुआ। मानो किसी महान् पर्वतपर वज्रसे आघात किया गया हो ॥ ५३ ॥

स निष्पतितमस्तिष्को विस्रस्तनयनो भुवि ।
पपात निहतस्तेन ततो नादो महानभूत् ॥ ५४ ॥

इससे उसका मस्तक फटकर गिर पड़ा, आँखें निकल आयीं और बलरामजीके द्वारा मारा गया वह मल्ल पृथ्वीपर गिर पड़ा। उस समय बड़े जोरसे धमाकेका शब्द हुआ ॥

अन्ध्रतोशलकौ हत्वा कृष्णसंकर्षणावुभौ ।
क्रोधसंरक्तनयनौ रंगमध्ये ववल्गतुः ॥ ५५ ॥

आन्ध्र-देशीय मुष्टिक और तोशल इन दोनोंको मारकर श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई क्रोधसे लाल आँखें किये अखाड़ेमें उछलने-कूदने लगे ॥ ५५ ॥

समाजवाटो निर्मल्लः सोऽभवद् भीमदर्शनः ।
अन्ध्रे तदा महामल्ले मुष्टिके च निपातिते ॥ ५६ ॥

उस समय महामल्ल चाणूर और मुष्टिकके मारे जानेपर वह समाजवाट (रंगभवन) मल्लोंसे सूना हो गया और अत्यन्त भयंकर दिखायी देने लगा ॥ ५६ ॥

ये च सम्प्रेक्षका गोपा नन्दगोपपुरोगमाः ।
भयक्षोभितसर्वाङ्गाः सर्वे तत्रावतस्थिरे ॥ ५७ ॥

नन्द आदि जो-जो गोप यह सब देख रहे थे, उनके सारे अङ्ग भयसे क्षुब्ध हो उठे थे। वे सब लोग वहाँ चुपचाप बैठे रहे ॥ ५७ ॥

हर्षजं वारि नेत्राभ्यां वर्षमाणा प्रवेपती ।
प्रस्नवोत्पीडिता कृष्णं देवकी समुदैक्षत ॥ ५८ ॥

उधर देवकी थर-थर काँपती और दोनों नेत्रोंसे हर्ष-जनित आँसुओंकी वर्षा करती हुई स्तनोंमें दूधकी बाढ़ आ जानेसे पीड़ित हो श्रीकृष्णकी ओर देख रही थी ॥ ५८ ॥

कृष्णदर्शनजातेन बाष्पेणाकुलितेक्षणः ।
वसुदेवो जरां त्यक्त्वा स्नेहेन तरुणायते ॥ ५९ ॥

श्रीकृष्ण-दर्शनजनित आँसुओंसे भरे हुए नेत्रोंवाले वसुदेवजी मानो अपनी वृद्धावस्था त्यागकर वात्सल्य-स्नेहसे परिपुष्ट हो तरुण हो रहे थे ॥ ५९ ॥

वारमुख्याश्च ताः सर्वाः कृष्णस्य मुखपङ्कजम् ।
पपुर्हि नेत्रभ्रमरैर्निमेषान्तरगामिभिः ॥ ६० ॥

वहाँ जो मुख्य-मुख्य वाराङ्गनाएँ उपस्थित थीं, वे सब-की-सब निमेषके भीतर चलनेवाले नेत्ररूपी भ्रमरोंद्वारा श्रीकृष्णके मुखारविन्दका रस पान करने लगीं ॥ ६० ॥

कंसस्याथ मुखे स्वेदो भ्रूभेदान्तरगोचरः ।
अभवद् रोषनिर्यासः कृष्णसंदर्शनेरितः ॥ ६१ ॥

तदनन्तर श्रीकृष्णको देखनेसे कंसके मुखमें दोनों भौंहोंके बीच रोषवश पसीना निकल आया ॥ ६१ ॥

केशवाय सधूमेन रोषनिश्वासवायुना ।
दीप्तमन्तर्गतं तस्य हृदयं मानसाग्निना ॥ ६२ ॥

श्रीकृष्णके प्रति कंस जो कठोरता प्रकट करता था, वही जिसका धुआँ था तथा रोषरूपी उच्छ्वास-वायु जिसे प्रज्वलित कर रही थी, उस मानसिक चिन्तारूपी आगने कंसके आन्तरिक हृदयको जलाना आरम्भ किया ॥ ६२ ॥

तस्य प्रस्फुरितौष्ठस्य स्विन्नालिकतलस्य वै ।
कंसवक्त्रस्य रोषेण रक्तसूर्यायते वपुः ॥ ६३ ॥

जिसके ओठ फड़क रहे थे और ललाटमें पसीना निकल आया था, कंसके उस मुखमण्डलका स्वरूप रोषके कारण लाल सूर्यके समान प्रतीत होता था ॥ ६३ ॥

क्रोधरक्तान्मुखात्तस्य निःसृताः स्वेदबिन्दवः ।
यथा रविकरस्पृष्टा वृक्षावश्यायबिन्दवः ॥ ६४ ॥

क्रोधसे लाल हुए कंसके मुखसे जो पसीनेकी बूँदें निकली थीं, वे वृक्षोंके पत्तोंपर पड़े हुए उन ओसकणोंके समान सुशोभित होती थीं, जिन्हें सूर्यकी किरणोंका स्पर्श प्राप्त हुआ हो॥

सोऽज्ञापयत संक्रुद्धः पुरुषान् व्यायतान् बहून् ।
गोपावेतौ समाजौघान्निष्क्राम्येतां वनेचरौ ॥ ६५ ॥

उसने अत्यन्त कुपित होकर बहुत-से व्यायामशाली पुरुषोंको आज्ञा दी कि 'इन दोनों वनेचर गोपोंको इस जनसमुदायसे बाहर निकाल दो ॥ ६५ ॥

न चैतौ द्रष्टुमिच्छामि विकृतौ पापदर्शनौ।
गोपानामपि मे राज्ये न कश्चित्स्थातुमर्हति ॥ ६६ ॥

'ये दोनों विकृत हो गये हैं। इन्हें देखना भी पाप है। मैं इनकी ओर दृष्टिपात करना नहीं चाहता। गोपोंमेंसे भी कोई मेरे इस राज्यमें नहीं रह सकता ॥ ६६ ॥

नन्दगोपश्च दुर्मेधाः पापेष्वभिरतो मम।
आयसैर्निगडाकारैर्लोहपाशैर्निगृह्यताम् ॥ ६७ ॥

'खोटी बुद्धिवाला नन्दगोप सदा मेरे प्रति कपटपूर्ण बर्तावोंमें ही तत्पर रहा है, अतः इसे लोहेकी बेड़ियों और हथकड़ियोंमें बाँधकर कैद कर लो ॥ ६७ ॥

वसुदेवश्च दुर्वृत्तो नित्यं द्वेषकरो मम।
अवृद्धार्हेण दण्डेन क्षिप्रमद्यैव शास्यताम् ॥ ६८ ॥

'दुराचारी वसुदेव सदा मुझसे द्वेष रखता है। इसे आज ही शीघ्र-से-शीघ्र ऐसा कठोर दण्ड दो, जो अवृद्ध (नौजवान) पुरुषोंके योग्य हो ॥ ६८ ॥

ये चेमे प्राकृता गोपा दामोदरपरायणाः।
ह्रियन्तां गाव एतेषां यच्चास्ति वसु किंचन ॥ ६९ ॥

'ये जो दामोदरका आश्रय लेकर रहनेवाले गँवार गोप हैं, इन सबकी गौओंको तथा इनके पास जो कुछ धन हो, उसको भी छीन लो' ॥ ६९ ॥

एवमाज्ञापयानं तं कंसं परुषभाषिणम्।
ददर्शायस्तनयनः कृष्णः सत्यपराक्रमः ॥ ७० ॥

इस तरह आज्ञा देते और कठोर बातें कहते हुए उस कंसकी ओर सत्यपराक्रमी श्रीकृष्णने आँखें फाड़कर देखा ॥

क्षिप्ते पितरि चुक्रोध नन्दगोपे च केशवः।
ज्ञातीनां च व्यथां दृष्ट्वा विसंज्ञां चैव देवकीम् ॥ ७१ ॥
स सिंह इव वेगेन केशवो जातविक्रमः।
आरुरुक्षुर्महाबाहुः कंसनाशार्थमच्युतः ॥ ७२ ॥
रङ्गमध्यादुत्पपात कृष्णः कंसासनान्तिकम्।
असज्जद् वायुनाऽऽक्षिप्तो यथा खस्थो घनाघनः॥ ७३ ॥

पिता वसुदेव तथा नन्दगोपपर आक्षेप होते ही केशव कुपित हो उठे। उन्होंने बन्धु-बान्धवोंकी व्यथा और माता देवकीकी अचेत अवस्था देखकर कंसका विनाश करनेके लिये उसके मञ्चपर चढ़नेका विचार किया। उस समय केशवका पराक्रम जाग उठा और अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले महाबाहु श्रीकृष्ण उस रंगस्थलसे सिंहके समान वेगपूर्वक उछले और कंसके सिंहासनके पास जा पहुँचे, ठीक उसी तरह जैसे आकाशवर्ती महामेघ वायुसे फेंका जाकर दूर पहुँच जाता है ॥ ७१–७३ ॥

ददृशुर्न हि तं सर्वे रङ्गमध्यादवप्लुतम्।
केवलं कंसपार्श्वस्थं ददृशुः पुरवासिनः ॥ ७४ ॥

वे कब अखाड़ेसे कूदे हैं, इसको सब लोगोंने नहीं देखा। पुरवासियोंको वे केवल कंसके पास खड़े दिखायी दिये ॥ ७४ ॥

सोऽपि कंसस्तथाऽऽयस्तः परीतः कालधर्मणा।
आकाशादिव गोविन्दं मेने तत्रागतं प्रभुम् ॥ ७५ ॥

कालधर्म (मौत) से घिरा हुआ कंस भी व्याकुल हो उठा और उसने यही समझा कि भगवान् गोविन्द आकाशसे ही मेरे पास उतर आये हैं ॥ ७५ ॥

स कृष्णेनायतं कृत्वा बाहुं परिघसंनिभम्।
मूर्धजेषु परामृष्टः कंसो वै रङ्गसंसदि ॥ ७६ ॥

श्रीकृष्णने अपनी परिघ-जैसी मोटी एक बाँह बढ़ाकर रंगशालामें कंसकी चोटी पकड़ ली ॥ ७६ ॥

मुकुटश्चापतत् तस्य काञ्चनो वज्रभूषितः।
शिरसस्तस्य कृष्णेन परामृष्टस्य पाणिना ॥ ७७ ॥

उस समय श्रीकृष्णके हाथसे पकड़े गये कंसके सिरसे उसका वज्रमणिसे विभूषित सुवर्णमय मुकुट खिसककर गिर पड़ा ॥ ७७ ॥

स ग्रहग्रस्तकेशश्च कंसो निर्यत्नतां गतः।
तथैव च विसम्मूढो वैकल्यं समपद्यत ॥ ७८ ॥

जैसे किसी ग्रहने केश पकड़ लिये हों, उस अवस्थामें पड़ा हुआ कंस निश्चेष्ट हो गया तथा किंकर्तव्यविमूढ़ हो व्याकुलतामें पड़ गया ॥ ७८ ॥

निगृहीतश्च केशेषु गतासुरिव निःश्वसन्।
न शशाक मुखं द्रष्टुं कंसः कृष्णस्य वै तदा ॥ ७९ ॥

केश पकड़ लिये जानेपर कंस मुर्दा-सा हो गया। वह लंबी साँस लेता हुआ उस समय कृष्णके मुखकी ओर दृष्टि न डाल सका ॥ ७९ ॥

विकुण्डलाभ्यां कर्णाभ्यां छिन्नहारेण वक्षसा।
प्रलम्बाभ्यां च बाहुभ्यां गात्रैर्विस्रुतभूषणैः ॥ ८० ॥
भ्रंशितेनोत्तरीयेण सहसावलिताननः।
चेष्टमानः समाक्षिप्तः कंसः कार्ष्णेन तेजसा ॥ ८१ ॥

उसके कानोंसे कुण्डल खिसक गये। वक्षःस्थलका हार छिन्न-भिन्न हो गया। दोनों भुजाएँ लटक गयीं। सारे अङ्गोंके आभूषण गिर गये। चादर खिसक गयी और उसने सहसा उसके कण्ठको आवेष्टित कर लिया। श्रीकृष्णके अनुपम तेजसे झटकेके साथ नीचे डाला गया कंस पृथ्वीपर गिरकर छटपटाने लगा ॥ ८०-८१ ॥

चकर्ष च महारङ्गे मञ्चान्निष्क्रम्य केशवः।
केशेषु तं बलाद् गृह्य कंसं क्लेशार्हतां गतम् ॥ ८२ ॥

उस समय श्रीकृष्ण मञ्चसे निकलकर बाहर आ गये। कंस क्लेशयुक्त शोचनीय अवस्थामें पड़ गया था। श्रीकृष्ण पुनः बलपूर्वक उसके सिरके बाल पकड़कर उस महान् रंगस्थलमें उसे घसीटने लगे ॥ ८२ ॥

कृष्यमाणः स कृष्णेन भोजराजो महाद्युतिः।
समाजवाटे परिखां देहकृष्टां चकार ह ॥ ८३ ॥

श्रीकृष्णके द्वारा घसीटे जाते हुए महातेजस्वी भोजराज कंसने उस रंगशालामें अपनी देहकी रगड़से खाईं-सी बना दी ॥

समाजवाटे क्रीडित्वा विकृष्य च गतायुषम्।
कृष्णो विसर्जयामास कंसदेहमदूरतः ॥ ८४ ॥

रंगशालामें खिलवाड़ करते हुए घसीटकर निर्जीव हुए कंसके शरीरको श्रीकृष्णने पास ही छोड़ दिया ॥ ८४ ॥

धरण्यां मृदितः शिश्ये तस्य देहः सुखोचितः।
क्रमेण विपरीतेन पांसुभिः परुषीकृतः ॥ ८५ ॥

उसका जो शरीर सुख भोगनेके योग्य था, वह मर्दित होकर पृथ्वीपर सो गया। शूरवीरोंके लिये अयोग्य विपरीत विधिसे धूलमें सनकर वह कोमल अङ्ग कठोर हो गया ॥ ८५ ॥

तस्य तद् वदनं श्यामं सुप्ताक्षं मुकुटं विना।
न विभाति विपर्यस्तं विपलाशं यथाम्बुजम् ॥ ८६ ॥

गर्दन टूट जानेसे उसका शरीर अस्त-व्यस्त हो गया था। उसके नेत्र बंद हो गये थे तथा उसका श्याम मुख मुकुटके बिना दलरहित कमलके समान सुशोभित नहीं हो रहा था ॥ ८६ ॥

असंग्रामहतः कंसः स बाणैरपरिक्षतः।
केशग्राहान्निरस्तासुर्वीरमार्गान्निराकृतः ॥ ८७ ॥

कंस बिना युद्धके मारा गया था। उसके शरीरपर बाणोंसे घाव नहीं होने पाया था। उसको केश पकड़कर घसीटा गया था, इस अवस्थामें उसके प्राण निकले और वह वीरोचित मार्गसे भ्रष्ट हो गया ॥ ८७ ॥

तस्य देहे प्रकाशन्ते सहसा केशवार्पिताः।
मांसच्छेदघनाः सर्वे नखाग्रा जीवितच्छिदः ॥ ८८ ॥

उसके शरीरमें श्रीकृष्णद्वारा सहसा गड़ाये गये उनके सभी नखाग्र कंसके जीवनका उच्छेद करके प्रकाशित हो रहे थे। वे उसके मांसको छेद-छेदकर सघन रूपसे वहाँ अङ्कित हो गये थे ॥ ८८ ॥

तं हत्वा पुण्डरीकाक्षः प्रहर्षाद् द्विगुणप्रभः।
ववन्दे वसुदेवस्य पादौ निहतकण्टकः ॥ ८९ ॥

उसका वध करके कमलनयन श्रीकृष्णको इतना अपार हर्ष हुआ कि उनके अङ्गोंकी प्रभा द्विगुण दीप्तिसे प्रकाशित हो उठी। उन्होंने जगत्के लिये कण्टकरूप कंसका विनाश करके पिता वसुदेवके दोनों चरणोंमें प्रणाम किया ॥ ८९ ॥

मातुश्च शिरसा पादौ निपीड्य यदुनन्दनः।
सासिञ्चत् प्रस्नवोत्पीडैः कृष्णमानन्दनिःसृतैः ॥ ९० ॥

तत्पश्चात् यदुनन्दन श्रीकृष्णने माताके दोनों चरणोंमें अपना मस्तक रखकर उनकी वन्दना की। उस समय देवकी आनन्दातिरेकसे निकले हुए अपने स्तनोंके दूधसे उन्हें सींचने लगी ॥ ९० ॥

यादवांश्चैव तान् सर्वान् यथास्थानं यथावयः।
पप्रच्छ कुशलं कृष्णो दीप्यमानः स्वतेजसा ॥ ९१ ॥

तदनन्तर अपने तेजसे उद्दीप्त हुए श्रीकृष्णने वय और स्थितिके अनुसार उन समस्त यादवोंकी कुशल पूछी ॥ ९१ ॥

बलदेवोऽपि धर्मात्मा कंसभ्रातरमूर्जितम्।
बाहुभ्यामेव तरसा सुनामानमपोथयत् ॥ ९२ ॥

इधर धर्मात्मा बलदेवने भी कंसके ओजस्वी भ्राता सुनामाको अपनी दोनों भुजाओंद्वारा ही वेगपूर्वक मार गिराया ॥ ९२ ॥

तौ जितारी जितक्रोधौ चिरविप्रोषितौ व्रजे।
स्वपितुर्भवनं वीरौ जग्मतुर्हृष्टमानसौ ॥ ९३ ॥

शत्रु और क्रोध दोनोंको जीतकर व्रजमें चिरकालतक रहे हुए वे दोनों वीर मन-ही-मन हर्ष और उल्लाससे भरकर अपने पिताके भवनमें गये ॥ ९३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि कंसवधे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें कंसवधविषयक तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

कंसकी स्त्रियों और माताका विलाप

वैशम्पायन उवाच

भर्तारं पतितं दृष्ट्वा क्षीणपुण्यमिव ग्रहम्।
कंसपत्न्यो हतं कंसं समन्तात् पर्यवारयन् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जिसका पुण्य क्षीण हो गया हो, उस ग्रहके समान भूमिपर गिरे हुए पतिको देखकर राजा कंसकी पत्नियाँ उसके मृतक शरीरको सब ओरसे घेरकर बैठ गयीं ॥ १ ॥

तं महीशयने सुप्तं क्षितिनाथं गतायुषम्।
भार्याः स्म दृष्ट्वा शोचन्ति मृग्यो मृगपतिं यथा ॥ २ ॥

जो कभी पृथ्वीके स्वामी और संरक्षक थे, वे ही पतिदेव आयु समाप्त होनेपर भूमिमयी शय्यापर सो रहे हैं, यह देख राजा कंसकी रानियाँ उसके लिये उसी तरह शोक करने लगीं, जैसे हरिणियाँ यूथपति हरिणके लिये शोकमग्न हो जाती हैं ॥

हा हताः स्म महाबाहो हताशा हतबान्धवाः ।
वीरपत्न्यो हते वीरे त्वयि वीरव्रतप्रिये ॥ ३ ॥

(वे विलाप करती हुई कहने लगीं—) 'हाय ! महाबाहु वीर ! आपको वीरव्रत प्रिय था । आपके मारे जानेपर हम सब वीर-पत्नियाँ मारी गयीं । हमारी आशाओंकी हत्या हो गयी । हमारे बन्धु-बान्धव भी (अनाथ होनेके कारण) मारे ही गये ! ॥ ३ ॥

इमामवस्थां पश्यन्त्यः पश्चिमां तव नैष्ठिकीम् ।
कृपणं राजशार्दूल विलपामः सबान्धवाः ॥ ४ ॥

'राजशिरोमणे ! आपकी मृत्युसम्बन्धिनी इस अन्तिम अवस्थाको देखती हुई हम सब (आपकी पत्नियाँ) अपने बान्धवोंसहित दीनतापूर्ण विलाप कर रही हैं ॥ ४ ॥

छिन्नमूलाः स्म संवृत्ताः परित्यक्तास्त्वया विभो ।
त्वयि पञ्चत्वमापन्ने नाथेऽस्माकं महाबले ॥ ५ ॥

'प्रभो ! आप हमारे महाबली प्राणनाथ थे, आपके मारे जानेसे हमारी तो जड़ कट गयी । हाय ! आपने हमें त्याग दिया ! ॥ ५ ॥

को नः कोपपरीताङ्गी रतिसंसर्गलालसाः ।
लता इव विचेष्टन्तीः शयनीयानि नेष्यति ॥ ६ ॥

'हा प्राणाधार ! हम मनमें रतिसंसर्गकी लालसा रखकर भी (मानावस्थामें) प्रणयकोपसे युक्त हो जब पृथ्वीपर लताओंकी भाँति लोटकर विपरीत चेष्टा करने लगतीं, उस समय आप हमें प्रेमपूर्वक मनाकर शय्याओंपर सुलाते थे । अब हमें कौन इस तरह उठाकर सेजोंतक ले जायगा ? ॥ ६ ॥

इदं तेऽसदृशं सौम्य हृद्यनिःश्वासमारुतम् ।
दहत्यर्को मुखं कान्तं निस्तोयमिव पङ्कजम् ॥ ७ ॥

'सौम्य ! जिससे मनोरम निःश्वास वायु निकला करती थी, आपके उस कान्तिमान् मुखको सूर्य जलरहित (तालाबमें उगे हुए) कमलकी भाँति अपनी दुःसह किरणोंसे दग्ध कर रहे हैं । यह दुरवस्था आपके योग्य नहीं है ॥ ७ ॥

इमे ते श्रवणे शून्ये न शोभेते विकुण्डले ।
शिरोधरायां संलीने सततं कुण्डलप्रिये ॥ ८ ॥

'ये आपके कुण्डलरहित सूने कान, जिन्हें सदा ही कुण्डल धारण करना प्रिय रहा है, इस समय कण्ठमें विलीन होकर शोभा नहीं पा रहे हैं ॥ ८ ॥

क्व ते स मुकुटो वीर सर्वरत्नविभूषितः ।
अत्यर्थं शिरसो लक्ष्मीं यो दधारार्कसप्रभाम् ॥ ९ ॥

'वीर ! सम्पूर्ण रत्नोंसे विभूषित आपका वह मुकुट कहाँ है, जो आपके मस्तकपर सूर्यकी प्रभाके समान अतिशय शोभाका आधान करता था ! ॥ ९ ॥

अनेन हि कलत्रेण तवान्तःपुरशोभिना ।
कथं दीनेन कर्तव्यं त्वयि लोकान्तरं गते ॥ १० ॥

'प्राणनाथ ! आपकी ये रानियाँ जो अन्तःपुरकी शोभा बढ़ाती थीं, आपके लोकान्तरमें चले जानेसे अब दीन और अनाथ होकर कैसे निर्वाह करेंगी ॥ १० ॥

ननु नाम स्त्रियः साध्व्यः प्रियभोगेष्ववञ्चिताः ।
पतीनामपरित्याज्याः स त्वं नस्त्यज्य गच्छसि ॥ ११ ॥

'नाथ ! सुना था, साध्वी स्त्रियाँ न तो प्रिय भोगोंसे कभी वञ्चित होती हैं और न उनके पति उनका परित्याग ही करते हैं; परंतु आप तो हमें छोड़कर चले जा रहे हैं (हाय ! अब हम कैसे रहेंगी) ॥ ११ ॥

अहो कालो महावीर्यो येन पर्ययकर्मणा ।
कालतुल्यः सपत्नानां त्वं क्षिप्रमपनीयसे ॥ १२ ॥

'अहो ! काल महान् बलसे सम्पन्न है, जो अपनी उलट-फेरकी क्रियाद्वारा शत्रुओंके लिये कालके समान आपको भी शीघ्रतापूर्वक यहाँसे लिये जा रहा है ॥ १२ ॥

वयं दुःखेष्वनुचिताः सुखेष्वेव त्वयैधिताः ।
कथं वत्स्याम विधवा नाथ कार्पण्यमाश्रिताः ॥ १३ ॥

'नाथ ! आपने हमें सदा सुखोंमें ही रखकर पाला-पोसा और बड़ी किया है । हम दुःख भोगनेके योग्य नहीं हैं; किंतु आज आपसे बिछुड़कर विधवा होकर दयनीय दशाको पहुँच गयी हैं । अब हम कैसे यहाँ रह सकेंगी ? ॥ १३ ॥

स्त्रीणां चारित्रलुब्धानां पतिरेकः परा गतिः ।
त्वं हि नः सा गतिश्छिन्ना कृतान्तेन बलीयसा ॥ १४ ॥

'जिनके मनमें सदाचारके पालनका लोभ हो, उन साध्वी स्त्रियोंके लिये एकमात्र पति ही परम गति है—सबसे बड़ा सहारा है, किंतु महाबली कालने हमारे उस सहारेको काट डाला ॥ १४ ॥

वैधव्येनाभिभूताः स्मः शोकसंतप्तमानसाः ।
रोदितव्यह्रदे मग्नाः क्व गच्छामस्त्वया विना ॥ १५ ॥

'हम वैधव्यसे अभिभूत हो गयी हैं । हमारा मन शोकसे संतप्त हो उठा है । हम विपत्तिके उस गहरे कुण्डमें डूब गयी हैं, जहाँ केवल रोना-ही-रोना रह जाता है । अब हम आपके बिना कहाँ जायँगी ? ॥ १५ ॥

सह त्वया गतः कालस्त्वदङ्के क्रीडितं कृतम् ।
क्षणेन तद्विहीनाः स्म अनित्या हि नृणां गतिः ॥ १६ ॥

'हमारा समय आपके साथ ही बीता है । हमने जबतक

आपके अङ्कमें ही क्रीड़ाएँ की हैं; किंतु एक ही क्षणमें हम उस सौभाग्यसे वञ्चित हो गयीं। सचमुच ही मनुष्योंकी गति अनित्य है—क्षणभङ्गुर है ॥ १६ ॥

अहो बलविहीनाः स्म विपन्ने त्वयि मानद।
एकदुष्कृतकारिण्यः सर्वा वैधव्यलक्षणाः ॥ १७ ॥

'दूसरोंको मान देनेवाले महाराज! आपके निधनसे हम सब-की-सब निर्बल हो गयीं। जान पड़ता है, हम सबने एक समान ही पाप किया था, जिससे सबको वैधव्यका चिह्न धारण करना पड़ा ॥ १७ ॥

त्वया स्वर्गप्रतिच्छन्दैर्लालिताः स्म रतिप्रियाः।
त्वयि कामवशाः सर्वाः स नस्त्यज्य क्व गच्छसि ॥ १८ ॥

'आपने हम रतिप्रिया रमणियोंको स्वर्गके समान सुख-भोग देकर सदा हमारा लालन-पालन किया था। हम सभी आपके प्रति कामासक्त रही हैं, फिर आप हमें छोड़कर कहाँ चले जा रहे हैं ॥ १८ ॥

अस्माकं त्वमनाथानां नाथो ह्यसि सुरोपम।
आसां विलपमानानां कुररीणामिव प्रभो।
प्रतिवाक्यं जगन्नाथ दातुमर्हसि मानद ॥ १९ ॥

'देवोपम प्रभो! आप ही हम अनाथाओंके नाथ हैं। जगन्नाथ! मानद! कुररीके समान विलाप करनेवाली अपनी इन पत्नियोंको कुछ उत्तर देनेकी कृपा करें ॥ १९ ॥

एवमार्तकलत्रस्य शाम्यमानेषु बन्धुषु।
गमनं ते महाभाग दारुणं प्रतिभाति नः ॥ २० ॥

'महाभाग! जब कि आपके सभी बन्धु मारे जा रहे हैं और स्त्रियाँ शोकसे पीड़ित हैं, ऐसे अवसरपर आपका परलोक-गमन हमें बड़ा दारुण प्रतीत होता है ॥ २० ॥

नूनं कान्ततराः कान्त परलोके वरस्त्रियः।
यतस्त्वं प्रस्थितो वीर विहायेमं गृहे जनम् ॥ २१ ॥

'प्रियतम! वीर! निश्चय ही परलोककी सुन्दरियाँ बड़ी ही कमनीय हैं, जिससे आप अपने घरकी इन रानियोंको छोड़कर उनके पास जानेके लिये प्रस्थित हो गये ॥ २१ ॥

किं नु ते कारणं वीर भार्यास्वेतासु भूरिद।
आर्तनादं रुदन्तीषु यन्मोहान्नावबुध्यसे ॥ २२ ॥

'अधिक-से-अधिक (सुख-सुविधा) प्रदान करनेवाले महाराज! क्या कारण है, जो अपनी इन पत्नियोंके रोने और आर्तनाद करनेपर भी आप मोहवश इनके दुःखको समझ नहीं पाते अथवा इस मोहनिद्रासे जाग नहीं उठते हैं ॥ २२ ॥

अहो निष्करुणा यात्रा नराणामौर्ध्वदेहिकी।
यत् परित्यज्य दारान् स्वान् निरपेक्षा व्रजन्ति हि ॥ २३ ॥

'अहो! पुरुषोंकी यह पारलौकिक यात्रा बड़ी ही निर्दय होती है; क्योंकि वे अपनी पत्नियोंको छोड़कर उनकी कोई अपेक्षा न रखते हुए चल देते हैं ॥ २३ ॥

अपतित्वं स्त्रियाः श्रेयो न तु शूरः पतिः स्त्रियाः।
स्वर्गस्त्रीणां प्रियाः शूरास्तेषामपि च ताः प्रियाः ॥ २४ ॥

'स्त्रियोंका बिना पतिके ही रह जाना अच्छा, किंतु उनके लिये शूरवीर पतिका होना अच्छा नहीं है; क्योंकि वे शूरवीर स्वर्गलोककी सुन्दरियोंको प्रिय होते हैं और वे सुन्दरियाँ भी उन शूरवीरोंको प्रिय होती हैं ॥ २४ ॥

अहो क्षिप्रमदृश्येन नयता त्वां रणप्रियम्।
प्रहृतं नः कृतान्तेन सर्वासामन्तरात्मसु ॥ २५ ॥

'अहो! जिन्हें युद्ध ही प्रिय था, उन आपको अदृश्य-भावसे शीघ्रतापूर्वक ले जानेवाले कालने हम सबकी अन्तरात्माओंपर एक साथ ही प्रहार किया है ॥ २५ ॥

हत्वा जरासंधबलं जित्वा यक्षांश्च संयुगे।
कथं मानुषमात्रेण हतस्त्वं जगतीतले ॥ २६ ॥

'वीरवर! आप युद्धमें जरासंधकी सेनाका विनाश करके यक्षोंको भी हराकर इस भूतलपर एक मनुष्यमात्रके हाथसे किस तरह मार डाले गये? ॥ २६ ॥

इन्द्रेण सह संग्रामं कृत्वा सायकविग्रहम्।
अमर्त्यैरजितो युद्धे मर्त्येनासि कथं हतः ॥ २७ ॥

'इन्द्रके साथ बाणोंद्वारा युद्ध करके जो समराङ्गणमें अमरोंसे भी पराजित न हो सके, वे ही आप एक मरणधर्मा मनुष्यके हाथसे कैसे मारे गये? ॥ २७ ॥

त्वया सागरमक्षोभ्यं विक्षोभ्य शरवृष्टिभिः।
रत्नसर्वस्वहरणं जित्वा पाशधरं कृतम् ॥ २८ ॥

'आपने अपने बाणोंकी वर्षासे पाशधारी वरुणको परास्त करके अक्षोभ्य महासागरको भी विक्षुब्ध करते हुए उसके रत्नरूपी सर्वस्वका अपहरण कर लिया था ॥ २८ ॥

त्वया पौरजनस्यार्थे मन्दं वर्षति वासवे।
सायकैर्जलदाञ्जित्वा बलाद् वर्षं प्रवर्तितम् ॥ २९ ॥

'एक बार इन्द्रने जब वर्षामें कमी कर दी थी, तब आपने अपने सायकोंसे बादलोंको जीतकर पुरवासियोंके हितके लिये बलपूर्वक वर्षा करवायी थी ॥ २९ ॥

प्रतापावनताः सर्वे तव तिष्ठन्ति पार्थिवाः।
प्रेषयन्तो वरार्हाणि रत्नान्याच्छादनानि च ॥ ३० ॥

'भूमण्डलके समस्त भूपाल आपके प्रतापसे नतमस्तक रहा करते थे और उपहारके रूपमें आपके पास बहुमूल्य रत्न एवं वस्त्र भेजते रहते थे ॥ ३० ॥

तवैवं देवकल्पस्य दृष्टवीर्यस्य शत्रुभिः।
कथं प्राणान्तकं घोरमीदृशं भयमागतम् ॥ ३१ ॥

'इस प्रकार आप देवताओंके समान तेजस्वी थे। शत्रुओंने आपके बल-पराक्रमको प्रत्यक्ष देखा था तो भी आपके ऊपर ऐसा प्राणान्तकारी घोर भय कैसे आया ॥ ३१ ॥

प्राप्ताः स्मो विधवाशब्दं त्वयि नाथे निपातिते।
अप्रमत्ताः प्रमत्तेन कृतान्तेन निराकृताः ॥ ३२ ॥

'हा नाथ! आपके मारे जानेसे आज हमें विधवाकी पदवी प्राप्त हुई है। हम सदा प्रमादसे दूर रहती थीं; परंतु मतवाले कृतान्तने हमको भी मिट्टीमें मिला दिया ॥ ३२ ॥

यद्येवं नाथ गन्तव्यं यदि वा विस्मृता वयम्।
वाङ्मात्रेणापि यामीति वक्तव्ये कः परिश्रमः ॥ ३३ ॥

'नाथ! यदि इस प्रकार आपको जाना ही था अथवा यदि हमें भुला ही देना था तो वाणीमात्रसे भी 'मैं जा रहा हूँ'—ऐसा कहकर विदा ले लेनेमें आपके लिये क्या परिश्रम था ॥ ३३ ॥

प्रसीद नाथ भीताः स्म पादौ ते याम मूर्द्धभिः।
अलं दूरप्रवासेन निवर्तस्व नराधिप ॥ ३४ ॥

'प्राणनाथ! प्रसन्न होइये। हम भयभीत हैं। आपके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रार्थना करती हैं। नरेश्वर! दूर देशमें जाने और रहनेसे कोई लाभ नहीं। आप घरको ही लौट चलिये ॥ ३४ ॥

अहो वीर कथं शेषे निषण्णस्तृणपांसुषु।
शयानस्य हि ते भूमौ कस्मान्नोद्विजते वपुः ॥ ३५ ॥

'वीर! हमें आश्चर्य है, आप तिनकों और धूलोंमें लोटकर कैसे सो रहे हैं? इस तरह पृथ्वीपर सोये हुए आपके शरीरको उद्वेग क्यों नहीं प्राप्त होता है? ॥ ३५ ॥

केन सुप्तप्रहारोऽयं दत्तोऽस्माकमतर्कितः।
प्रहृतं केन सर्वासु नारीष्वेवं सुदारुणम् ॥ ३६ ॥

'जैसे किसीपर सोते समय आघात किया जाय, उस प्रकार किसने हमलोगोंको यह अप्रत्याशित (जिसकी हमें कोई आशा नहीं थी, ऐसा) घोर दण्ड दिया है? किस निष्ठुरने हम सब नारियोंपर इस तरह अत्यन्त दारुण प्रहार किया है? ॥ ३६ ॥

रुदितानुशयो नार्या जीवन्त्याः परिदेवनम्।
किं वयं सति गन्तव्ये सह भर्त्रा रुदामहे ॥ ३७ ॥

'अहो! विधवा नारी जबतक जीवित रहती है, उसे विलाप ही करना पड़ता है। उसका अन्तःकरण रोता रहता है। हमें तो पतिके साथ ही चलना है, ऐसे अवसरपर हम रो क्यों रही हैं?' ॥ ३७ ॥

एतस्मिन्नन्तरे दीना कंसमाता प्रवेपती।
क मे वत्सः क मे पुत्र इति रोरूयती भृशम् ॥ ३८ ॥

इसी बीचमें कंसकी दुखिया माता काँपती हुई वहाँ आयी और 'कहाँ है मेरा बच्चा? कहाँ है मेरा बेटा?' ऐसा कहकर जोर-जोरसे रोने लगी ॥ ३८ ॥

सापश्यन्निहतं पुत्रं निष्प्रभं शशिनं यथा।
हृदयेन विदीर्णेन भ्राम्यमाणा पुनः पुनः ॥ ३९ ॥

उसने अपने मरे हुए पुत्रको देखा। वह कान्तिहीन चन्द्रमाके समान प्रतीत होता था। उसकी ऐसी दशा देखकर माताका हृदय विदीर्ण हो गया। उसे बार-बार चक्कर आने लगा ॥ ३९ ॥

पुत्रं समभिवीक्षन्ती हा हतास्मीति वाशती।
स्नुषाणामार्तनादेन विललाप रुरोद च ॥ ४० ॥

वह पुत्रके मुखकी ओर देखती हुई चीखने लगी—'हाय! मैं मारी गयी!' पुत्रवधुओंके आर्तनादके साथ रोने-बिलखने लगी ॥ ४० ॥

सा तस्य वदनं दीनमुत्संगे पुत्रगृद्धिनी।
कृत्वा पुत्रेति कारुण्यं विललापार्तया गिरा ॥ ४१ ॥

पुत्रके जीवनकी इच्छा रखनेवाली राजमाता उसके दीन मुखको अपनी गोदमें रखकर आर्त वाणीमें 'हा पुत्र' कहकर करुणाजनक विलाप करने लगी— ॥ ४१ ॥

पुत्र शूरव्रते युक्त ज्ञातीनां नन्दिवर्द्धन।
किमिदं त्वरितं वत्स प्रस्थानं कृतवानसि ॥ ४२ ॥

'बेटा! तुम तो वीर-व्रतमें तत्पर रहते थे और अपने बन्धु-बान्धवोंका आनन्द बढ़ाते थे। वत्स! तुमने क्यों इतनी जल्दी यहाँसे प्रस्थान किया है? ॥ ४२ ॥

प्रसुप्तश्चातिविवृते किं पुत्र नियमं विना।
वत्स नैवंविधा भूमौ शेरते कृतलक्षणाः ॥ ४३ ॥

'पुत्र! तुम विना किसी नियम (नियन्त्रण)के इस अत्यन्त खुले हुए स्थानमें क्यों सो रहे हो? वत्स! तुम्हारे-जैसे शुभ-लक्षण-सम्पन्न नरेश इस तरह भूमिपर नहीं सोते हैं ॥ ४३ ॥

रावणेन पुरा गीतः श्लोकोऽयं साधुसम्मतः।
बलज्येष्ठेन लोकेषु राक्षसानां समागमे ॥ ४४ ॥

'तीनों लोकोंमें जो बलमें सबसे बढ़ा-चढ़ा था, उस रावणने प्राचीनकालमें राक्षसोंके समुदायमें इस सत्पुरुषोंद्वारा सम्मानित श्लोकका गान किया था ॥ ४४ ॥

एवमूर्जितवीर्यस्य मम देवनिघातिनः।
बान्धवेभ्यो भयं घोरं दुर्निवार्यं भविष्यति ॥ ४५ ॥

'मैं इस प्रकार बल और पराक्रममें बढ़ा हुआ हूँ तथा देवताओंका वध करनेमें समर्थ हूँ तो भी मुझे अपने ही भाई-बन्धुओंसे घोर एवं अनिवार्य भय प्राप्त होगा ॥ ४५ ॥

तथैव ज्ञातिलुब्धस्य मम पुत्रस्य धीमतः।
ज्ञातिभ्यो भयमुत्पन्नं शरीरान्तकरं महत् ॥ ४६ ॥

'उसी प्रकार मेरा बुद्धिमान् पुत्र अपने सजातीय बन्धुओं-पर लुभाया रहता था तो भी इसे भाई-बन्धुओंसे ही यह देह-विनाशक महान् भय प्राप्त हुआ है' ॥ ४६ ॥

सा पतिं भूपतिं वृद्धमुग्रसेनं विचेतसम्।
उवाच रुदती वाक्यं विवत्सा हरिणी यथा ॥ ४७ ॥
एह्येहि राजञ्छुद्धात्मन् पश्य पुत्रं जनेश्वरम्।
शयानं वीरशयने वज्राहतमिवाचलम् ॥ ४८ ॥

वह अपने पति बूढ़े राजा उग्रसेनसे, जो उस समय अचेत-से हो रहे थे, बछड़ेसे बिछुड़ी हुई हरिणीके समान रोती हुई बोली—'शुद्ध अन्तःकरणवाले महाराज! आइये, आइये! अपने पुत्र राजा कंसको देखिये, जो वज्रके मारे हुए पर्वतकी भाँति वीरशय्यापर सो रहा है ॥ ४७-४८ ॥

अस्य कुर्मो महाराज निर्याणसदृशीं क्रियाम्।
प्रेतत्वमुपपन्नस्य गतस्य यमसादनम् ॥ ४९ ॥

'महाराज! अब हमलोग इसके लिये मृत्युकालोचित कर्म करें; क्योंकि यह यमलोकमें जाकर प्रेतत्वको प्राप्त हुआ है ॥ ४९ ॥

वीरभोग्यानि राज्यानि वयं चापि पराजिताः।
गच्छ विज्ञाप्यतां कृष्णः कंससत्कारकारणात् ॥ ५० ॥

'राज्यका उपभोग तो वीर पुरुष ही करते हैं। हमलोग तो अब पराजित हो गये; अतः जाइये, कृष्णको यह सूचित कीजिये कि कंसके अन्त्येष्टि-संस्कारकी व्यवस्था होनी चाहिये ॥ ५० ॥

मरणान्तानि वैराणि शान्ते शान्तिर्भविष्यति।
प्रेतकार्याणि कार्याणि मृतः किमपराध्यते ॥ ५१ ॥

'शत्रुके मरनेतक ही वैर रहता है। उसके शान्त हो जानेपर अब वैरकी भी शान्ति हो ही जायगी। इसके प्रेत-कार्य तो करने ही चाहिये। मरा हुआ क्या अपराध करता है'॥

एवमुक्त्वा पतिं भोजं केशानारुज्य दुःखिता।
पुत्रस्य मुखमीक्षन्ती विललापैव सा भृशम् ॥ ५२ ॥

अपने पति भोजराजसे ऐसा कहकर दुःखिनी राजमाता पुत्रका मुख निहारती हुई अपने केश खींच-खींचकर अत्यन्त विलाप करने लगी ॥ ५२ ॥

इमास्ते किं करिष्यन्ति भार्या राजन् सुखोषिताः।
त्वां पतिं सुपतिं प्राप्य या विपन्नमनोरथाः ॥५३॥

'राजन्! ये सुखमें पली हुई तुम्हारी रानियाँ अब क्या करेंगी। तुम्हारे-जैसे श्रेष्ठ पतिको पाकर भी इन बेचारी बहुओं-का सारा मनोरथ नष्ट हो गया ॥ ५३ ॥

इमं ते पितरं वृद्धं कृष्णस्य वशवर्तिनम्।
कथं द्रक्ष्यामि शुष्यन्तं कासारसलिलं यथा ॥ ५४ ॥

'ये तुम्हारे बूढ़े पिता अब श्रीकृष्णके अधीन हो गये। सूखते हुए पोखरेके जलकी भाँति अब मैं इन्हें परतन्त्र दशामें कैसे देख सकूँगी ॥ ५४ ॥

अहं ते जननी पुत्र किमर्थं नाभिभाषसे।
प्रस्थितो दीर्घमध्वानं परित्यज्य प्रियं जनम् ॥ ५५ ॥

'बेटा! मैं तुम्हारी जननी हूँ। मुझसे क्यों नहीं बोलते हो? क्यों आज अपने प्रियजनोंका परित्याग करके तुमने परलोकके विशाल पथको प्रस्थान किया है? ॥ ५५ ॥

अहो वीराल्पभाग्यायाः कृतान्तेनाभिवर्तिना।
आच्छिद्य मम संदायो नीयसे नयकोविदः ॥ ५६ ॥

'अहो वीर! तुम नीतिकुशल नरेश थे, मेरी सम्पत्ति थे; किंतु सदा समीप रहनेवाला काल आज तुम्हें मुझ अभागिनी-की गोदसे छीनकर लिये जा रहा है ॥ ५६ ॥

दानमानगृहीतानि तृप्तान्येतानि तैर्गुणैः।
रुदन्ति तव भृत्यानां कुलानि कुलयूथप ॥ ५७ ॥

'कितने ही कुलों (परिवारों) के समुदायका पालन करनेवाले मेरे वीर पुत्र! तुमने जिन्हें दान और मानसे अनुगृहीत कर रखा था, जो तुम्हारे उन गुणोंसे अत्यन्त संतुष्ट थे, वे ही ये तुम्हारे भृत्योंके कुलोंके लोग आज तुम्हारे लिये रो रहे हैं ॥ ५७ ॥

उत्तिष्ठ नरशार्दूल दीर्घबाहो महाबल।
त्राहि दीनं जनं सर्वं पुरमन्तःपुरं यथा ॥ ५८ ॥

'नरश्रेष्ठ! उठो। महाबाहो! महाबली वीर! इन दीन-दुखी लोगोंकी और समस्त नगरकी अन्तःपुरके समान ही रक्षा करो' ॥ ५८ ॥

रुदतीनां भृशार्तानां कंसस्त्रीणां सुविस्तरम्।
जगामास्तं दिनकरः संध्यारागेण रञ्जितः ॥ ५९ ॥

अत्यन्त आर्त होकर उसके विस्तृत गुणोंको याद करके कंसकी स्त्रियों और माताके रोते-रोते संध्या हो गयी और संध्याकालीन अरुण-रागसे रंजित हुए दिवाकर (सूर्य) अस्ताचलको चले गये ॥ ५९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि कंसस्त्रीविलापे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें कंसकी स्त्रियोंका विलापविषयक इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णका कंसवधके लिये पश्चात्तापपूर्वक उसके औचित्यका समर्थन, उग्रसेनका श्रीकृष्णको सर्वस्व-समर्पणके पश्चात् कंसका अन्त्येष्टि-संस्कार करनेके लिये अनुरोध, श्रीकृष्णका उन्हें समझा-बुझाकर राज्यपर अभिषिक्त करना और समस्त यादवोंके साथ जाकर कंस आदिका अन्त्येष्टि-संस्कार कराना

वैशम्पायन उवाच

उग्रसेनस्तु कृष्णस्य समीपं दुःखितो ययौ ।
पुत्रशोकाभिसंतप्तो विषपीत इव श्वसन् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! राजा उग्रसेन पुत्रशोकसे संतप्त एवं दुखी होकर श्रीकृष्णके समीप गये। उस समय वे इस प्रकार लंबी साँस खींच रहे थे, मानो उन्होंने विष पी लिया हो ॥ १ ॥

स ददर्श गृहे कृष्णं यादवैः परिवारितम् ।
पश्चानुतापाद् ध्यायन्तं कंसस्य निधनाविलम् ॥ २ ॥

उन्होंने देखा, पिताके घरमें श्रीकृष्ण यादवोंसे घिरे हुए बैठे है और कंसके निधनसे मलिन-मुख हो पश्चात्ताप करते हुए चिन्तामग्न हो रहे हैं ॥ २ ॥

कंसनारीविलापांश्च श्रुत्वा स करुणान् बहून् ।
गर्हमाणस्तथाऽऽत्मानं तस्मिन् यादवसंसदि ॥ ३ ॥

वे कंसकी पत्नियोंके बहुतेरे करुण विलाप सुनकर उस यादव-समाजमें अपनी निन्दा करते हुए बोले—॥ ३ ॥

अहो मयातिबाल्येन रोषाद् दोषानुवर्तिना ।
वैधव्यं स्त्रीसहस्राणां कंसस्यास्य वधे कृतम् ॥ ४ ॥

'अहो ! मैंने अत्यन्त अविवेकके कारण रोषवश दोषका ही अनुसरण किया और इस कंसका वध करके हजारों स्त्रियोंको विधवा बना दिया है ॥ ४ ॥

कारुण्यं खलु नारीषु प्राकृतस्यापि जायते ।
एवमार्तं रुदन्तीषु मया भर्तरि पातिते ॥ ५ ॥
परिदेवितमात्रेण शोकः खलु विधीयते ।

'साधारण मनुष्योंको भी स्त्रियोंपर दया हो आती है, परंतु मेरे द्वारा अपने पतिके मारे जानेपर जो इस प्रकार आर्त होकर रो रही हैं, उन रानियोंके प्रति केवल पश्चात्ताप प्रकट करके मैं अपना शोक प्रकाशित कर रहा हूँ ॥ ५½ ॥

कृतान्तस्यानभिज्ञानां स्त्रीणां कारुण्यसम्भवः ॥ ६ ॥

'इन भोली-भाली स्त्रियोंके विलापको सुनकर तो यमराजके हृदयमें भी करुणाका संचार हो सकता है ॥ ६ ॥

कंसस्य हि वधः श्रेयान् प्रागेवाभिमतो मम ।
सतामुद्वेजनीयस्य पापेष्वभिरतस्य च ॥ ७ ॥
लोके पतितवृत्तस्य पुरुषस्याल्पमेधसः ।
अक्लिष्टं मरणं श्रेयो न विद्विष्टस्य जीवितम् ॥ ८ ॥

'मैंने तो पहलेसे ही यह निश्चय कर लिया था कि कंसका वध ही श्रेष्ठ है। जो सदा पापोंमें तत्पर रहनेके कारण साधु पुरुषोंकी दृष्टिमें भी उद्वेजनीय (उद्वेगमें डालने योग्य) हो गया हो, संसारमें सदाचारसे गिर गया हो तथा सब लोग जिससे विद्वेष रखने लगे हों, ऐसे मन्दबुद्धि पुरुषका मर जाना ही श्रेयस्कर है। वही उसे क्लेशसे छुटकारा दिलानेवाला है, जीवित रहना नहीं ॥ ७-८ ॥

कंसः पापपरश्चैव साधूनामप्यसम्मतः ।
धिक्छब्दपतितश्चैव जीविते चास्य का दया ॥ ९ ॥

'कंस सदा पापोंमें ही लगा रहता था, साधु पुरुष भी (उसे दुष्ट समझकर) उसका आदर नहीं करते थे तथा वह सबका धिक्कार पाकर पतित हो गया था, अतः उसके जीवनपर क्या दया हो सकती है ? ॥ ९ ॥

स्वर्गे तपोभृतां वासः फलं पुण्यस्य कर्मणः ।
इहापि यशसा युक्तः स्वर्गस्थैरवधार्यते ॥ १० ॥

'तपस्वी पुरुषोंको जो स्वर्गलोकमें निवास प्राप्त होता है, वह उनके पुण्यकर्मका ही फल है। पुण्यात्मा पुरुष इस जगत्में भी यशस्वी होता है और स्वर्गवासी देवता भी उसे सादर ग्रहण करते हैं ॥ १० ॥

यदि स्युर्निर्वृता लोकाः स्युश्च धर्मपराः प्रजाः ।
नरा धर्मप्रवृत्ताश्च न राज्ञामनयः स्पृशेत् ॥ ११ ॥

'यदि सब लोग संतुष्ट हों, सारी प्रजा धर्ममें तत्पर रहे और मनुष्योंकी केवल धर्ममें ही प्रवृत्ति हो तो राजाओंको अन्याय छू भी नहीं सकता ॥ ११ ॥

निग्रहे दुष्टवृत्तीनां कृतान्तः कुरुते फलम् ।
इष्टधर्मेषु लोकेषु कर्तव्यं पारलौकिकम् ॥ १२ ॥

'यदि राजा इस लोकमें दुष्ट वृत्तिवाले पुरुषोंका दमन करे तो परलोकमें धर्मराज उसे उसका फल देते हैं। सम्पूर्ण लोकोंको धर्म (उसके फलस्वरूप सुखकी प्राप्ति) ही अभीष्ट है, इसलिये उनमें रहनेवाले पुरुषोंको परलोकमें सुख देनेवाले पुण्यकर्मोंका ही अनुष्ठान करना चाहिये ॥ १२ ॥

अतीव देवा रक्षन्ति नरं धर्मपरायणम् ।
कर्तारः सुलभा लोके दुष्कृतस्य हि कर्मणः ॥ १३ ॥

'देवता धर्मपरायण मनुष्यकी विशेषरूपसे रक्षा करते हैं, क्योंकि लोकमें अधिकतर पाप कर्म करनेवाले ही सुलभ होते हैं ॥ १३ ॥

हतः सोऽयं मया कंसः साध्वेतदवगम्यताम् ।
मूलच्छेदः कृतस्तस्य विपरीतस्य कर्मणः ॥ १४ ॥

‘अतः मैंने जो इस कंसका वध किया है, इसे आपलोग ठीक समझें, क्योंकि ऐसा करके मैंने उसके पाप-कर्मका मूलोच्छेद कर डाला है ॥ १४ ॥

देष सान्त्व्यतां सर्वः शोकार्तः प्रमदाजनः ।
पौराश्च पुर्यां श्रेण्यश्च सान्त्व्यन्तां सर्व एव हि ॥ १५ ॥

‘इसलिये इन समस्त शोकाकुल नारियोंको आपलोग न्त्वना प्रदान करें और मथुरापुरीके नागरिकों एवं शिल्पियों-था व्यवसायियोंको भी समझा-बुझाकर धीरज बँधावें’ ॥१५॥

वं ब्रुवति गोविन्दे विवेशावनताननः ।
ग्रसेनो यदून् गृह्य पुत्रकिल्बिषशङ्कितः ॥ १६ ॥

जब श्रीकृष्ण इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय राजा ग्रसेन अपना मुँह नीचे किये कुछ यादवोंको साथ ले उस में प्रविष्ट हुए । वे मन-ही-मन अपने पुत्र कंसके अपराधसे रे हुए थे ॥ १६ ॥

कृष्णं पुण्डरीकाक्षमुवाच यदुसंसदि ।
ष्पसंदिग्धया वाचा दीनया सज्जमानया ॥ १७ ॥

उन्होंने उस यादव-सभामें कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णसे सूभरी दीन, गद्गद तथा लड़खड़ाती हुई वाणीमें इस कार कहा—॥ १७ ॥

त्रो निर्यातितः क्रोधान्नीतो याम्यां दिशं रिपुः ।
धर्माधिगता कीर्तिर्नाम विश्रावितं भुवि ॥१८॥

‘श्रीकृष्ण ! तुमने मेरे पुत्रसे उसके अपराधका बदला ले या, अपने उस शत्रुको क्रोधपूर्वक यमलोक पहुँचा दिया, के अनुसार कीर्ति प्राप्त कर ली और भूमण्डलमें अपने का डंका पीट दिया ॥ १८ ॥

ापितं सत्सु माहात्म्यं शङ्किता रिपवः कृताः ।
ापितो यादवो वंशो गर्विताः सुहृदः कृताः ॥१९॥

‘सत्पुरुषोंके हृदयमें अपनी महत्ता स्थापित कर दी और त्रुओंको भयभीत कर दिया, यदुवंशकी जड़ जमा दी और द्रोंको अपने ऊपर गर्व करनेका अवसर दिया ॥ १९ ॥

मन्तेषु नरेन्द्रेषु प्रतापस्ते प्रकाशितः ।
ाणि त्वां भजिष्यन्ति संश्रयिष्यन्ति पार्थिवाः ॥२०॥

‘सामन्त राजाओंमें तुम्हारा प्रताप प्रकाशित हो गया, गण तुम्हें अपनायेंगे और भूमण्डलके राजा तुम्हारा श्रय लेंगे ॥ २० ॥

कृतयोऽनुयास्यन्ति स्तोष्यन्ति त्वां द्विजातयः ।
धिविग्रहमुख्यास्त्वां प्रणमिष्यन्ति मन्त्रिणः ॥२१॥

‘प्रकृतियाँ (प्रजा, मन्त्री आदि) तुम्हारा अनुसरण करेंगी, ब्राह्मणलोग तुम्हारी स्तुति करेंगे—तुम्हारे गुण गायेंगे और संधि-विग्रहके कार्योंमें प्रमुखरूपसे भाग लेनेवाले मन्त्री तुम्हें प्रणाम करेंगे ॥ २१ ॥

हस्त्यश्वरथसम्पूर्णं पदातिगणसंकुलम् ।
प्रतिगृहाण कृष्णेदं कंसस्य बलमव्ययम् ॥ २२ ॥

‘श्रीकृष्ण ! हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकोंसे भरी हुई कंसकी यह अक्षय सेना ग्रहण करो ॥ २२ ॥

धनं धान्यं च यत् किंचिद् रत्नान्याच्छादनानि च ।
प्रतीच्छन्तु नियुक्ता वै त्वदीयाः कृष्ण पूरुषाः ॥२३॥
स्त्रियो हिरण्यं यानानि यदन्यद् वसु किंचन ।

‘श्रीकृष्ण ! जो कुछ भी धन, धान्य, रत्न और वस्त्र आदि कंसके अधिकारमें थे, उन सबको तुम्हारे आदमी सँभाल लें । स्त्रियाँ, सुवर्ण, वाहन तथा अन्य जो कुछ भी धन, रत्न आदि हैं, उनपर भी वे अधिकार कर लें ॥ २३½ ॥

एवं हि विहिते योगे पर्याप्ते कृष्ण विग्रहे ॥ २४ ॥
प्रतिष्ठितायां मेदिन्यां यदूनां शत्रुसूदन ।
त्वं गतिश्चागतिश्चैव यदूनां यदुनन्दन ॥ २५ ॥

‘यदुवंशियोंके शत्रुओंका संहार करनेवाले यदुनन्दन श्रीकृष्ण ! जब इस प्रकार अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिरूप योग सम्पन्न हो गया, विग्रहकी समाप्ति हो गयी और इस पृथ्वीपर तुम्हारा पूर्णरूपसे अधिकार हो गया, तब हम सभी यादवोंकी गति और अगति एकमात्र तुम्हीं हो ॥ २४-२५ ॥

शृणुष्व वदतां वीर कृपणानामिदं वचः ।
अस्य त्वत्कोपदग्धस्य कंसस्याशुभकर्मणः ॥ २६ ॥
तव प्रसादाद् गोविन्द प्रेतकार्यं क्रियेत ह ।

‘वीर ! हम दीनजन तुम्हारे सामने जो कुछ कह रहे हैं—हमारी यह प्रार्थना स्वीकार करो । गोविन्द ! यह पापकर्मा कंस तुम्हारे कोपसे दग्ध हो गया । हम चाहते हैं कि तुम्हारी ही कृपासे अब इसका प्रेतकार्य सम्पन्न कर दिया जाय॥२६½॥

तस्य कृत्वा नरेन्द्रस्य विपन्नस्यौर्ध्वदेहिकम् ॥ २७ ॥
सस्नुषोऽहं सभार्यश्च चरिष्यामि मृगैः सह ।

‘उस मरे हुए नरेशका और्ध्वदैहिक संस्कार पूर्ण करके मैं अपनी पत्नी और पुत्रवधुओंको साथ ले वनमें मृगोंके साथ विचरूँगा ॥ २७½ ॥

प्रेतसत्कारमात्रेण कृते बान्धवकर्मणि ।
आनृण्यं लौकिकं कृष्ण गताः किल भवन्ति हि ॥ २८ ॥

‘श्रीकृष्ण ! कहते हैं कि मरे हुए मनुष्यका प्रेत-संस्कार मात्र कर देनेसे उसके बान्धवोंका कर्तव्य पूरा हो जाता है और फिर वे उसके लौकिक ऋणसे उऋण हो जाते हैं ॥

तस्याग्निं पश्चिमं कृत्वा चितिस्थाने विधानतः ।
तोयप्रदानमात्रेण कंसस्यानृण्यमाप्नुयाम् ॥ २९ ॥

'अतः मैं चिता-स्थानपर विधिपूर्वक कंसका अन्तिम अग्नि-संस्कार करके उसको जलाञ्जलिमात्र देकर उसके ऋणसे उऋण हो जाऊँ, यही मेरी इच्छा है ॥ २९ ॥

एतत्ते कृष्ण विज्ञाप्यं स्नेहोऽत्र मयि युज्यताम् ।
प्राप्नोति सुगतिं तत्र कृपणः पश्चिमां क्रियाम् ॥ ३० ॥

'श्रीकृष्ण ! यही तुमसे मेरा निवेदन है, इस विषयमें मुझपर अपना स्नेहभाव प्रकट करो। सुना है, चितापर अन्तिम संस्कार कर देनेसे बेचारा मृतक प्राणी उत्तम गति प्राप्त कर लेता है' ॥ ३० ॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य कृष्णः परमविस्मितः ।
प्रत्युवाचोग्रसेनं वै सान्त्वपूर्वमिदं वचः ॥ ३१ ॥

उग्रसेनका यह वचन सुनकर श्रीकृष्णको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने सान्त्वनापूर्वक उग्रसेनको समझाते हुए उनकी बातका इस प्रकार उत्तर दिया—॥ ३१ ॥

कालयुक्तमिदं तात तवैतद् यत् प्रभाषितम् ।
सदृशं राजशार्दूल वृत्तस्य च कुलस्य च ॥ ३२ ॥

'तात ! आपने यह जो कुछ कहा है, वह सब इस समयके अनुरूप है। राजसिंह ! आपकी बात आपके उत्तम आचार-विचार और श्रेष्ठ कुलके अनुरूप है ॥ ३२ ॥

यत् त्वमेवंविधं ब्रूषे गतेऽर्थे दुरतिक्रमे ।
प्राप्स्यते नृपसत्कारं कंसः प्रेतगतोऽपि सन् ॥ ३३ ॥

'जो बात बीत गयी, वह वैसी ही होनेवाली थी। दैवके उस विधानको लाँघना किसीके लिये भी दुष्कर था; फिर भी उससे प्रभावित होकर जो आप ऐसी बातें कह रहे हैं (इससे मुझे दुःख हुआ); कंस मर जानेपर भी मेरे द्वारा राजोचित सत्कार प्राप्त करेगा (इस बातके लिये मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ) ॥ ३३ ॥

कुले महति ते जन्म वेदान् विदितवानसि ।
कथं न ज्ञायते तात नियतिर्दुरतिक्रमा ॥ ३४ ॥

'तात ! आपका महान् कुलमें जन्म हुआ है। आपने वेदोंका ज्ञान प्राप्त किया है, फिर आप कैसे नहीं समझ पा रहे हैं कि नियति (दैवके विधान) का उल्लङ्घन करना बहुत ही कठिन है ॥ ३४ ॥

स्थावराणां च भूतानां जङ्गमानां च पार्थिव ।
पूर्वजन्मकृतं कर्म कालेन परिपच्यते ॥ ३५ ॥

'पृथ्वीनाथ ! स्थावर और जङ्गम सभी प्राणियोंके पूर्वजन्मोंमें किये हुए कर्म समयसे परिपक्व होते (और उन्हें शुभाशुभ फलकी प्राप्ति कराते) हैं ॥ ३५ ॥

श्रुतवन्तोऽर्थवन्तश्च दातारः प्रियदर्शनाः ।
ब्रह्मण्या नयसम्पन्ना दीनानुग्रहकारिणः ॥ ३६ ॥
लोकपालसमास्तात महेन्द्रसमविक्रमाः ।
क्षितिपालाः कृतान्तेन नीयन्ते नृपसत्तम ॥ ३७ ॥

'तात ! नृपश्रेष्ठ ! जो वेद-शास्त्रोंके विद्वान्, धनवान्, दाता, प्रियदर्शन (सुन्दर), ब्राह्मणभक्त, नीतिसम्पन्न, दीनोंपर अनुग्रह करनेवाले, लोकपालोंके समान यशस्वी और महेन्द्रतुल्य पराक्रमी राजा हैं, उन्हें भी काल उठा ले जाता है ॥ ३६-३७ ॥

धार्मिकाः सर्वभावज्ञाः प्रजापालनतत्पराः ।
क्षत्रधर्मपरा दान्ताः कालेन निधनं गताः ॥ ३८ ॥

'जो धर्मात्मा, सम्पूर्ण भावोंके ज्ञाता, प्रजापालनमें तत्पर, क्षत्रियधर्मपरायण तथा जितेन्द्रिय थे, वे भी कालके गालमें चले गये ॥ ३८ ॥

स्वयमात्मकृतं कर्म शुभं वा यदि वाशुभम् ।
प्राप्ते काले तु तत्कर्म दृश्यते सर्वदेहिनाम् ॥ ३९ ॥

'स्वयं अपना किया हुआ जो शुभ या अशुभ कर्म है, वही समय आनेपर समस्त देहधारियोंके समक्ष सुख-दुःखके रूपमें दिखायी देता है ॥ ३९ ॥

एषा ह्यन्तर्हिता माया दुर्विज्ञेया सुरैरपि ।
यथायं मुह्यते लोको ह्यत्र कर्मैव कारणम् ॥ ४० ॥

'यह भगवान्‌की अदृश्यरूपसे रहनेवाली माया ही है, जिससे यह जगत् मोहित हो जाता है, उसके स्वरूपको जानना देवताओंके लिये भी अत्यन्त कठिन है। वास्तवमें सुख और दुःखकी प्राप्तिमें कर्म ही कारण है (मनुष्य जो चिन्तित एवं व्यथित होता है, यह मायाजनित मोह ही है) ॥ ४० ॥

कालेनाभिहतः कंसः पूर्वकर्मप्रचोदितः ।
न ह्यहं कारणं तत्र कालः कर्म च कारणम् ॥ ४१ ॥

'कंस अपने पूर्व कर्मोंसे प्रेरित होकर ही कालके द्वारा मारा गया है। मैं उसमें कारण नहीं हूँ, काल और कर्म ही कारण हैं ॥ ४१ ॥

सूर्यसोममयं तात कृत्स्नं स्थावरजङ्गमम् ।
कालेन निधनं गत्वा कालेनैव च जायते ॥ ४२ ॥

'तात ! सारा चराचर जगत् सूर्य और सोममय (अग्नीषोमात्मक) है। वह कालसे मृत्युको प्राप्त होकर फिर कालसे ही जन्म ग्रहण करता है ॥ ४२ ॥

स कालः सर्वभूतानां निग्रहानुग्रहे रतः ।
तस्मात् सर्वाणि भूतानि कालस्य वशगानि वै ॥ ४३ ॥

'काल ही समस्त प्राणियोंके निग्रह और अनुग्रहमें तत्पर है, इसलिये सम्पूर्ण भूत कालके ही अधीन हैं ॥ ४३ ॥

स्वदोषेणैव दग्धस्य सूनोस्तव नराधिप ।
नाहं वै कारणं तत्र कालस्तत्र च कारणम् ॥ ४४ ॥

'नरेश्वर ! आपका पुत्र अपने ही दोषोंसे दग्ध हुआ है। उसकी मृत्युका कारण मैं नहीं, काल है ॥ ४४ ॥

अथवाहं भविष्यामि कारणं नात्र संशयः।
परायणपरः कालः किं करिष्यत्यकारणः ॥ ४५ ॥

'अथवा मैं इसमें निमित्तकारण हो सकता हूँ, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि दूसरे निमित्तोंका सहारा लेनेवाला काल अकेला ही क्या करेगा ॥ ४५ ॥

कालस्तु बलवान् राजन् दुर्विज्ञेया हि सा गतिः।
परावरविशेषज्ञा यां यान्ति समदर्शिनः ॥ ४६ ॥
गतिः कालस्य सा येन सर्वं कालस्य गोचरम्।

'राजन् ! काल सबसे अधिक बलवान् है। कालसे परे जो मोक्षरूपा गति है, वह दुर्विज्ञेय है । उसे पर और अपर (पुरुष और प्रकृति) के अन्तरको जाननेवाले समदर्शी पुरुष ही प्राप्त होते हैं। वही कालकी परम गति है, जिससे सब कुछ कालके अधीन प्रतीत होता है ॥ ४६½॥

ब्रवीमि यदहं तात तदनुष्ठीयतां वचः ॥ ४७ ॥
न हि राज्येन मे कार्यं नाप्यहं नृप काङ्क्षितः।
न चापि राज्यलुब्धेन मया कंसो निपातितः ॥ ४८ ॥

'तात ! अब मैं जो कुछ कहता हूँ, मेरे बताये हुए उस कार्यको आप करें । नरेश्वर ! मुझे राज्यसे कोई प्रयोजन नहीं है। न तो मैं राज्यका अभिलाषी हूँ और न राज्यके लोभसे मैंने कंसको मारा ही है ॥ ४७-४८ ॥

किं तु लोकहितार्थाय कीर्त्यर्थं च सुतस्तव।
व्यङ्गभूतः कुलस्यास्य सानुजो विनिपातितः ॥ ४९ ॥

'मैंने तो केवल लोकहितके लिये और कीर्तिके लिये भाई-सहित तुम्हारे पुत्रको मार गिराया है, जो इस कुलका विकृत (सड़ा हुआ) अङ्ग था ॥ ४९ ॥

अहं स एव गोमध्ये गोपैः सह वनेचरः।
प्रीतिमान् विचरिष्यामि कामचारी यथा गजः ॥ ५० ॥

'मैं वही वनेचर होकर गोपोंके साथ गौओंके बीच प्रसन्नतापूर्वक विचरूँगा, जैसे इच्छानुसार विचरनेवाला हाथी वनमें स्वच्छन्द घूमता है ॥ ५० ॥

एतावच्छतशोऽप्येवं सत्येनैतद् ब्रवीमि ते।
न मे कार्यं नृपत्वेन विज्ञाप्यं क्रियतामिदम् ॥ ५१ ॥

'मैं सत्यकी शपथ खाकर इन बातोंको सौ-सौ बार दुहराकर आपसे कहता हूँ, मुझे राज्यसे कोई काम नहीं है, आप इसका विज्ञापन कर दीजिये ॥ ५१ ॥

भवान् राजास्तु मान्यो मे यदूनामग्रणीः प्रभुः।
विजयायाभिषिच्यस्व स्वराज्ये नृपसत्तम ॥ ५२ ॥

'आप यदुवंशियोंके अग्रगण्य स्वामी तथा मेरे लिये भी माननीय हैं, अतः आप ही राजा हों। नृपश्रेष्ठ ! आप अपने राज्यपर अपना अभिषेक कराइये, आपकी विजय हो ॥ ५२ ॥

यदि ते मत्प्रियं कार्यं यदि वा नास्ति ते व्यथा।
मया निसृष्टं राज्यं स्वं चिराय प्रतिगृह्यताम् ॥ ५३ ॥

'यदि आपको मेरा प्रिय कार्य करना हो अथवा यदि आपके मनमें मेरी ओरसे कोई व्यथा न हो तो मेरे द्वारा लौटाये गये इस राज्यको दीर्घकालके लिये ग्रहण करें' ॥ ५३ ॥

वैशम्पायन उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं नोत्तरं प्रत्यभाषत।
व्रीडिताधोमुखं तं तु राजानं यदुसंसदि।
अभिषेकेन गोविन्दो योजयामास धर्मवित् ॥ ५४ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर उग्रसेनने कोई उत्तर नहीं दिया। वे लज्जित होकर सिर झुकाये चुपचाप खड़े रह गये। उस समय धर्मके ज्ञाता गोविन्दने राजा उग्रसेनको यादवोंके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया ॥ ५४ ॥

स बद्धमुकुटः श्रीमानुग्रसेनो महाद्युतिः।
चकार सह कृष्णेन कंसस्य निधनक्रियाम् ॥ ५५ ॥

सिरपर मुकुट बाँधे महातेजस्वी श्रीमान् राजा उग्रसेनने श्रीकृष्णके साथ रहकर कंसका अन्त्येष्टि-संस्कार किया था ॥

तं सर्वे यादवा मुख्या राजानं कृष्णशासनात्।
अनुजग्मुः पुरीमार्गे देवा इव शतक्रतुम् ॥ ५६ ॥

श्रीकृष्णके आदेशसे समस्त मुख्य-मुख्य यादवोंने मथुरा-पुरीके राजमार्गपर राजा उग्रसेनका उसी प्रकार अनुसरण किया था, जैसे देवता देवराज इन्द्रका अनुगमन करते हैं ५६

रजन्यां तु निवृत्तायां ततः सूर्ये विराजिते।
पश्चिमं कंससंस्कारं चक्रुस्ते यदुपुङ्गवाः ॥ ५७ ॥

जब रात बीती और सूर्योदय हुआ, उस समय श्रेष्ठ यादवोंने मिलकर कंसके अन्त्येष्टि-संस्कारकी तैयारी की ॥ ५७ ॥

शिबिकायामथारोप्य कंसदेहं यथाक्रमम्।
नैष्ठिकेन विधानेन चक्रुस्ते कंससत्क्रियाम् ॥ ५८ ॥

उन सबने कंसके शरीरको शिबिकामें रखकर क्रमशः अन्त्येष्टि-कर्मके विधानसे उसका दाह-संस्कार किया था ॥ ५८ ॥

स नीतो यमुनातीरमुत्तमं नृपतेः सुतः।
सत्कृतश्च यथान्यायं नैधनेन चिताग्निना ॥ ५९ ॥

राजकुमार कंसका शव पहले यमुनाजीके उत्तम तटपर लाया गया, फिर यथोचित रीतिसे मृत्युकालिक चिताग्निके द्वारा उसका सादर अन्त्येष्टि-संस्कार किया गया ॥ ५९ ॥

तथैव भ्रातरं चास्य सुनामानं महाभुजम्।
संस्कारं लम्भयामासुः सह कृष्णेन यादवाः ॥ ६० ॥

उसी प्रकार श्रीकृष्णसहित यादवोंने उसके भाई महाबाहु सुनामाका भी दाह-संस्कार किया ॥ ६० ॥

ताभ्यां ते सलिलं चक्रुर्वृष्ण्यन्धकपुरोगमाः ।
अक्षयं चास्तु प्रेतेभ्यो भाषमाणाः पुनः पुनः ॥ ६१ ॥

वृष्णि और अन्धक आदि कुलोंके लोगोंने उन दोनोंके लिये जलदान किया और बारंबार यह कहा कि 'यह जल प्रेतोंके लिये अक्षय हो' ॥ ६१ ॥

हिरण्यस्य सुवर्णस्य दश कोटीस्तथा हरिः ।
गावो रत्नानि वासांसि ग्रामान् नगरसम्मतान् ॥ ६२ ॥
ददौ कंसं समुद्दिश्य ब्राह्मणेभ्यो नृपोत्तमः ।
अक्षयं चापि विप्रेभ्यो भाषमाणाः पुनः पुनः ॥ ६३ ॥

श्रीहरि तथा नृपश्रेष्ठ उग्रसेनने श्राद्धमें कंसके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको दस करोड़ स्वर्णमुद्राएँ, बहुत-सी गौएँ, रत्न, वस्त्र तथा नगरों-जैसे सम्मानित ग्राम दिये और बारंबार विप्रोंसे यह कहा—हमारा दिया हुआ यह दान उस दिवंगत आत्माके लिये अक्षय हो ॥ ६२-६३ ॥

तयोस्ते सलिलं दत्त्वा यादवा दीनमानसाः ।
पुरस्कृत्योग्रसेनं वै विविशुर्मथुरां पुरीम् ॥ ६४ ॥

इस प्रकार कंस और सुनामाके लिये जलदान करके दीनचित्त यादव राजा उग्रसेनको आगे किये मथुरापुरीमें प्रविष्ट हुए ॥ ६४ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि उग्रसेनाभिषेककंससंस्कारकथने द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें उग्रसेनका अभिषेक तथा कंसके अन्त्येष्टि-संस्कारकथनविषयक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

बलराम और श्रीकृष्णका गुरु सान्दीपनिके यहाँ जाकर विद्या पढ़ना और गुरुदक्षिणामें उनके मरे हुए पुत्रको उन्हें देकर मथुरापुरीको लौट आना

वैशम्पायन उवाच

स कृष्णस्तत्र बलवान् रौहिणेयेन संगतः ।
मथुरां यादवाकीर्णां पुरीं तां सुखमावसत् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! बलवान् श्रीकृष्ण वहाँ रोहिणीकुमार बलरामजीके साथ यादवोंसे भरी हुई उस मथुरापुरीमें सुखपूर्वक रहने लगे ॥ १ ॥

प्राप्तयौवनदेहस्तु युक्तो राजश्रिया ज्वलन् ।
चचार मथुरां वीरः स रत्नाकरभूषणाम् ॥ २ ॥

उनके शरीरको युवावस्था प्राप्त हुई । वे वीर श्रीकृष्ण राजश्रीसे प्रकाशित होते हुए रत्नराशिमय आभूषणोंसे विभूषित मथुरापुरीमें विचरण करने लगे ॥ २ ॥

कस्यचित् त्वथ कालस्य सहितौ रामकेशवौ ।
गुरुं सान्दीपनिं काश्यमवन्तिपुरवासिनम् ॥ ३ ॥

कुछ कालके अनन्तर बलराम और श्रीकृष्ण एक साथ अवन्तिपुर (उज्जयिनी) के निवासी गुरु सान्दीपनिके यहाँ गये, जो काशिदेशमें उत्पन्न हुए थे ॥ ३ ॥

धनुर्वेदचिकीर्षार्थमुभौ तावभिजग्मतुः ।
निवेद्य गोत्रं स्वाध्यायमाचारेणाभ्यलंकृतौ ॥ ४ ॥

वे दोनों भाई वहाँ धनुर्वेदकी शिक्षा ग्रहण करनेके लिये गये थे । अपना गोत्र बताकर गुरुकुलके आचारसे अपनेको अलंकृत करके दोनों ही स्वाध्याय करने लगे ॥ ४ ॥

शुश्रूषू निरहंकारावुभौ रामजनार्दनौ ।
प्रतिजग्राह तौ काश्यो विद्याः प्रादाच्च केवलाः ॥ ५ ॥

बलराम और श्रीकृष्ण दोनों गुरुकी सेवामें तत्पर रहते थे । अहंकार तो उन्हें छू भी नहीं सका था । काशिदेशीय गुरुने उन दोनोंको शिष्यरूपसे ग्रहण किया और उन्हें विशुद्ध विद्याएँ प्रदान कीं ॥ ५ ॥

तौ च श्रुतिधरौ वीरौ यथावत् प्रतिपद्यताम् ।
अहोरात्रैश्चतुष्षष्ट्या साङ्गवेदमधीयताम् ॥ ६ ॥

वे दोनों वीर श्रुतिधर थे—किसी भी बातको एक बार सुन लेनेमात्रसे ही ग्रहण कर लेते थे, अतः उन्होंने यथावत् रूपसे विद्याओंको प्राप्त किया । चौंसठ दिन-रातमें ही छहों अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदका अध्ययन कर लिया ॥ ६ ॥

चतुष्पादं धनुर्वेदं शस्त्रग्रामं ससंग्रहम् ।
अचिरेणैव कालेन गुरुस्तावभ्यशिक्षयत् ॥ ७ ॥

गुरुजीने उन्हें थोड़े ही समयमें दीक्षा, संग्रह, सिद्धि और प्रयोग—इन चार पादोंसे युक्त धनुर्वेदकी तथा रहस्यसहित शस्त्रसमूहोंकी शिक्षा दे दी ॥ ७ ॥

अतीवामानुषीं मेधां चिन्तयित्वा तयोर्गुरुः ।
मेने तावागतौ वीरौ देवौ चन्द्रदिवाकरौ ॥ ८ ॥

उनकी अत्यन्त अलौकिक बुद्धिका विचार करके गुरुने यही माना कि इन दोनों वीरोंके रूपमें मेरे यहाँ साक्षात् चन्द्रदेव और सूर्यदेव पधारे हैं ॥ ८ ॥

ददर्श च महात्मानावुभौ तावपि पर्वसु।
पूजयन्तौ महादेवं साक्षाद् विष्णुं व्यवस्थितम् ॥ ९ ॥

उन्होंने पर्वके अवसरोंपर उन दोनों महात्माओंको अर्चाविग्रहमें प्रतिष्ठित महान् देवता साक्षात् भगवान् विष्णुकी आराधना करते हुए भी देखा था ॥ ९ ॥

गुरुं सान्दीपनिं कृष्णः कृतकृत्योऽभ्यभाषत।
गुर्वर्थं किं ददानीति रामेण सह भारत ॥ १० ॥

भारत! विद्या पढ़कर कृतकृत्य हो बलरामसहित श्रीकृष्णने अपने गुरु सान्दीपनिसे पूछा—'भगवन्! आपको गुरुदक्षिणाके रूपमें मैं क्या दूँ?' ॥ १० ॥

तयोः प्रभावं स ज्ञात्वा गुरुः प्रोवाच हृष्टवान्।
पुत्रमिच्छाम्यहं दत्तं यो मृतो लवणाम्भसि ॥ ११ ॥

उन दोनोंका प्रभाव जानकर हर्षमें भरे हुए गुरुने कहा—'मेरा जो पुत्र खारे पानीके समुद्रमें डूबकर मर गया था, उसे ही तुम ले आकर दे दो, यही मेरी इच्छा है ॥ ११ ॥

पुत्र एकोऽपि मे जातः स चापि तिमिना हतः।
प्रभासे तीर्थयात्रायां तं मे त्वं पुनरानय ॥ १२ ॥

'मेरे एक ही पुत्र हुआ था। वह भी तीर्थयात्राके अवसरपर प्रभासक्षेत्रमें तिमि नामक मत्स्यद्वारा मार डाला गया, उसीको तुम फिर ले आओ' ॥ १२ ॥

तथेत्येवाब्रवीत् कृष्णो रामस्यानुमते स्थितः।
गत्वा समुद्रं तेजस्वी विवेशान्तर्जलं हरिः ॥ १३ ॥

तब बलरामजीकी अनुमति लेकर श्रीकृष्णने उनसे कहा, 'बहुत अच्छा'; फिर वे तेजस्वी श्रीहरि समुद्रतटपर जाकर उसके जलके भीतर घुस गये ॥ १३ ॥

समुद्रः प्राञ्जलिर्भूत्वा दर्शयामास स्वं तदा।
तमाह कृष्णः क्वासौ भोः पुत्रः सान्दीपनेरिति ॥ १४ ॥

उस समय समुद्रने हाथ जोड़कर उन्हें दर्शन दिया। श्रीकृष्णने उससे पूछा—'अजी, सान्दीपनि मुनिका पुत्र कहाँ है?' ॥ १४ ॥

समुद्रः प्रत्युवाचेदं दैत्यः पञ्चजनो महान्।
तिमिरूपेण तं बालं ग्रस्तवानिति माधव ॥ १५ ॥

समुद्रने उत्तर दिया—'माधव! पञ्चजन नामक महान् दैत्यने तिमिरूपसे उस बालकको अपना ग्रास बना लिया था' ॥ १५ ॥

स पञ्चजनमासाद्य जघान पुरुषोत्तमः।
न चाससाद तं बालं गुरुपुत्रं तदाच्युतः ॥ १६ ॥

तब अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले भगवान् पुरुषोत्तमने पञ्चजनके पास जाकर उसे मार डाला, परंतु उन्हें वहाँ उनके गुरुका पुत्र नहीं प्राप्त हुआ ॥ १६ ॥

स तु पञ्चजनं हत्वा शङ्खं लेभे जनार्दनः।
यस्तु देवमनुष्येषु पाञ्चजन्य इति श्रुतः ॥ १७ ॥

पञ्चजनको मारकर भगवान् जनार्दनने एक शङ्ख हस्तगत किया, जो देवताओं और मनुष्योंमें पाञ्चजन्य नामसे विख्यात है ॥ १७ ॥

ततो वैवस्वतपुरं जगाम पुरुषोत्तमः।
ततो यमोऽभ्युपागम्य ववन्दे तं गदाधरम् ॥ १८ ॥

तदनन्तर भगवान् पुरुषोत्तम वैवस्वत यमकी पुरीमें गये। यमने आकर उन भगवान् गदाधरको प्रणाम किया ॥

तमुवाचाथ वै कृष्णो गुरुपुत्रः प्रदीयताम्।
तयोस्तत्र तदा युद्धमासीद् घोरतरं महत् ॥ १९ ॥

तब श्रीकृष्णने उनसे कहा—'मुझे मेरे गुरुका पुत्र दे दो (परंतु यमने उसे देनेसे इनकार किया)। तब उन दोनोंमें वहाँ महान् घोरतर युद्ध हुआ ॥ १९ ॥

ततो वैवस्वतं घोरं निर्जित्य पुरुषोत्तमः।
आससाद च तं बालं गुरुपुत्रं तदाच्युतः ॥ २० ॥

भयानक यमराजको जीतकर पुरुषोत्तम अच्युतने अपने बालक गुरुपुत्रको प्राप्त कर लिया ॥ २० ॥

आनिनाय गुरोः पुत्रं चिरं नष्टं यमक्षयात्।
ततः सान्दीपनेः पुत्रः प्रभावादमितौजसः ॥ २१ ॥
दीर्घकालगतः प्रेतः पुनरासीच्छरीरवान्।

जो दीर्घकालसे नष्ट हो चुका था, उस गुरुपुत्रको भगवान् यमलोकसे यहाँ उठा ले आये। उन अमिततेजस्वी भगवान् श्रीकृष्णके प्रभावसे दीर्घकालका मरा हुआ सान्दीपनिका पुत्र पुनः पूर्ववत् शरीर धारण करके जी उठा २१½

तदशक्यमचिन्त्यं च दृष्ट्वा सुमहदद्भुतम् ॥ २२ ॥
सर्वेषामेव भूतानां विस्मयः समजायत।

वह अशक्य, अचिन्त्य और अत्यन्त अद्भुत कार्य देखकर सभी प्राणियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ २२½ ॥

स गुरोः पुत्रमादाय पाञ्चजन्यं च माधवः।
रत्नानि च महार्हाणि पुनरायाज्जगत्प्रभुः ॥ २३ ॥

जगत्के स्वामी लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्ण गुरुपुत्रको साथ ले पाञ्चजन्य शङ्ख तथा बहुत-से बहुमूल्य रत्न लेकर पुनः लौट आये ॥ २३ ॥

राक्षसैस्तस्य रत्नानि महार्हाणि बहूनि च।
आनाय्यावेदयामास गुरवे वासवानुजः ॥ २४ ॥

इन्द्रके छोटे भाई श्रीकृष्णने उन बहुसंख्यक एवं बहुमूल्य रत्नोंको राक्षसोंद्वारा (जो यमके किंकर थे) मँगवाकर गुरुको निवेदन किया ॥ २४ ॥

गदापरिघयुद्धेषु सर्वास्त्रेषु च तावुभौ।
अचिरान्मुख्यतां प्राप्तौ सर्वलोके धनुर्भृताम् ॥ २५ ॥

दोनों भाई बलराम और श्रीकृष्णने गदा और परिघके युद्धोंमें तथा सम्पूर्ण अस्त्रोंमें शीघ्र ही प्रमुखता प्राप्त कर ली। वे समस्त संसारके धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ माने जाने लगे ॥ २५ ॥

ततः सान्दीपनेः पुत्रं तद्रूपवयसं तदा।
प्रादात् कृष्णः प्रतीतात्मा सह रत्नैरुदारधीः ॥ २६ ॥

उदार बुद्धिवाले श्रीकृष्णने प्रसन्नचित्त होकर सान्दीपनिके पुत्रको उसी रूप और अवस्थामें रत्नोंके साथ उन्हें लौटा दिया॥

चिरनष्टेन पुत्रेण काश्यः सान्दीपनिस्तदा।
समेत्य मुमुदे राजन् पूजयन् रामकेशवौ ॥ २७ ॥

राजन्! काशिदेशमें उत्पन्न हुए सान्दीपनिने चिरकालसे नष्ट हुए अपने पुत्रसे मिलकर बलराम और श्रीकृष्णकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए बड़े प्रसन्न हुए ॥ २७ ॥

कृतास्त्रौ तावुभौ वीरौ गुरुमामन्त्र्य सुव्रतौ।
आयातौ मथुरां भूयो वसुदेवसुतावुभौ ॥ २८ ॥

उत्तम व्रतका पालन करनेवाले वे दोनों वीर वसुदेवपुत्र अस्त्र-विद्याकी शिक्षा पाकर गुरुकी आज्ञा ले पुनः मथुरापुरीको लौट आये ॥ २८ ॥

ततः प्रत्युद्ययुः सर्वे यादवा यदुनन्दनौ।
सबला हृष्टमनस उग्रसेनपुरोगमाः ॥ २९ ॥

उस समय उग्रसेन आदि समस्त यादवोंने प्रसन्नचित्त होकर सेनासहित आगे जा उन दोनों यदुनन्दन वीरोंकी अगवानी की ॥ २९ ॥

श्रेण्यः प्रकृतयश्चैव मन्त्रिणः सपुरोहिताः।
सबालवृद्धा सा चैव पुरी समभिवर्तत ॥ ३० ॥

व्यवसायीवर्ग, प्रजावर्ग अथवा प्रकृतिमण्डल, मन्त्री, पुरोहित तथा बालकों और बूढ़ोंसहित वह सारी पुरी (श्रीकृष्ण-बलरामके दर्शनके लिये) उमड़ पड़ी ॥ ३० ॥

नन्दितूर्याण्यवाद्यन्त तुष्टुवुश्च जनार्दनम्।
रथ्याः पताकामालिन्यो भ्राजन्ते स्म समन्ततः ॥ ३१ ॥

आनन्दसूचक बाजे बजने लगे। सब लोग श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे। मथुरापुरीकी गलियाँ और सड़कें ध्वजा-पताकाओंसे अलंकृत हो सब ओरसे सुशोभित होने लगीं ॥

प्रहृष्टमुदितं सर्वमन्तःपुरमशोभत।
गोविन्दागमनेऽत्यर्थं यथैवेन्द्रमहे तथा ॥ ३२ ॥

गोविन्दके आगमनसे इन्द्रोत्सवके समान सारे नगर और अन्तःपुरमें अत्यन्त हर्ष एवं आनन्द छा गया। उसकी शोभा बढ़ गयी ॥ ३२ ॥

मुदिताश्चाथ गायन्ति राजमार्गेषु गायकाः।
तत्रासीत् प्रथिता गाथा यादवानां प्रियङ्करा ॥ ३३ ॥
गोविन्दरामौ सम्प्राप्तौ भ्रातरौ लोकविश्रुतौ।
स्वे पुरे निर्भयाः सर्वे क्रीडध्वं सह बान्धवैः ॥ ३४ ॥

राजमार्गोंपर बहुतेरे गायक आनन्दित होकर गीत गाने लगे। उस समय यादवोंको प्रिय लगनेवाली यह गाथा वहाँ सब ओर कही-सुनी जाने लगी—'नागरिको! विश्वविख्यात वीर श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई मथुरामें आ पहुँचे हैं। अब तुम सब लोग निर्भय हो अपने नगरमें बन्धु-बान्धवोंके साथ क्रीडा करो' ॥ ३३-३४ ॥

न तत्र कश्चिद् दीनो वा मलिनो वा विचेतनः।
मथुरायामभूद् राजन् गोविन्दे समुपस्थिते ॥ ३५ ॥

राजन्! गोविन्दके मथुरामें उपस्थित होनेपर वहाँ न तो कोई दीन था, न मलिन था और न चेतनासे शून्य ही था॥

वयांसि साधुवाक्यानि प्रहृष्टा गोहयद्विपाः।
नरनारीगणाः सर्वे भेजिरे मनसः सुखम् ॥ ३६ ॥

पक्षी मीठी-मीठी बोली बोलते थे। गाय, बैल, घोड़े, हाथी हृष्ट-पुष्ट रहते थे और पुरुषों तथा स्त्रियोंके सभी समुदाय मनमें सुखका अनुभव करते थे ॥ ३६ ॥

शिवाश्च वाताः प्रववुर्विरजस्का दिशो दश।
दैवतानि च हृष्टानि सर्वेष्वायतनेषु च ॥ ३७ ॥

शीतल सुखद हवा चलती थी। दसों दिशाओंमें धू नहीं उड़ती थी और सभी मन्दिरोंमें हर्षपूर्वक देवता निवा करते थे ॥ ३७ ॥

यानि लिङ्गानि लोकस्य चासन् कृतयुगे पुरा।
तानि सर्वाण्यदृश्यन्त पुरीं प्राप्ते जनार्दने ॥ ३८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके मथुरापुरीको लौट आनेपर वहाँ सारे चिह्न वैसे ही दिखायी देने लगे, जो सत्ययुगके समय पहले जगत्में प्रकट होते थे ॥ ३८ ॥

ततः काले शिवे पुण्ये स्यन्दनेनारिमर्दनः।
हरियुक्तेन गोविन्दो विवेश मथुरां पुरीम् ॥ ३९ ॥

तदनन्तर मङ्गलमयी पुण्यवेलामें शत्रुमर्दन भगवान् गोविन्दने घोड़े जुते हुए रथपर बैठकर मथुरापुरीमें प्रवेश किया ॥ ३९ ॥

विशन्तं मथुरां रम्यां तमुपेन्द्रमरिंदमम्।
अनुजग्मुर्यदुगणाः शक्रं देवगणा इव ॥ ४० ॥

रमणीय मथुरापुरीमें प्रवेश करते समय समस्त यादव उन शत्रुदमन उपेन्द्र श्रीकृष्णके पीछे-पीछे उसी प्रकार चले, जैसे देवता देवेन्द्रका अनुसरण करते हैं ॥ ४० ॥

वसुदेवस्य भवनं ततस्तौ यदुनन्दनौ।
प्रविष्टौ हृष्टवदनौ चन्द्रादित्याविवाचलम् ॥ ४१ ॥
परेण तेजसोपेतौ सुरेन्द्राविव रूपिणौ।
तावायुधानि विन्यस्य गृहे स्वे स्वैरचारिणौ ॥ ४२ ॥

तदनन्तर यदुकुलको आनन्दित करनेवाले वे दोनों बन्धु वसुदेवके भवनमें प्रविष्ट हुए। उस समय उनके मुखपर हर्षो-

ल्लास छा रहा था और वे मेरु पर्वतपर जानेवाले चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रतीत होते थे। वे महान् तेजसे सम्पन्न तथा देवेश्वरोंके समान मनोहर रूपधारी श्रीकृष्ण बलराम आयुधोंको अपने घरमें रखकर उस पुरीमें स्वेच्छानुसार विचरने लगे ॥४१-४२॥

मुमुदाते यदुवरौ वसुदेवसुतावुभौ।
उद्यानेषु विचित्रेषु फलपुष्पावनामिषु ॥ ४३ ॥

वसुदेवके वे दोनों पुत्र यदुकुलतिलक श्रीकृष्ण-बलराम फल और फूलोंके भारसे झुके हुए वृक्षोंवाले विचित्र उद्यानोंमें आनन्द विचरते थे ॥ ४३ ॥

चेरतुः सुमहात्मानौ यादवैः परिवारितौ।
रैवतस्य समीपेषु सरित्सु विमलासु च ॥ ४४ ॥
पद्मपत्रविवृद्धासु कारण्डवयुतासु च।

यादवोंसे घिरे हुए वे दोनों महात्मा रैवतक पर्वतके समीपवर्ती प्रदेशोंमें तथा बढ़े हुए पद्म-पत्रोंसे युक्त एवं कारण्डव पक्षियोंके कलरवोंसे मुखरित निर्मल सरिताओंके तटोंपर भ्रमण करते थे ॥ ४४½॥

एवं तावेकनिर्माणौ मथुरायां शुभाननौ।
उग्रसेनानुगौ भूत्वा कंचित् कालं मुमोदतुः ॥ ४५ ॥

वे दोनों भाई एक तत्त्वके बने हुए थे (एक ही सच्चिदानन्दघन परमात्मा इन दोनोंके रूपोंमें प्रकट हुए थे)। उन दोनोंके मुख बड़े ही सुन्दर एवं मङ्गलकारी थे। वे कुछ कालतक उग्रसेनका अनुसरण करते हुए मथुरामें बड़े सुखसे रहे ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि रामकृष्णप्रत्यागमने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें श्रीबलराम और कृष्णका मथुरामें प्रत्यागमनविषयक तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

जरासंधका अपनी विशाल सेनाके द्वारा आकर मथुरापुरीपर घेरा डालना

वैशम्पायन उवाच

स कृष्णस्तत्र सहितो रौहिणेयेन संगतः।
मथुरां यादवाकीर्णां पुरीं तां सुखमावसत् ॥ १ ॥
प्राप्तयौवनदेहस्तु युक्तो राजश्रिया विभुः।
चचार मथुरां प्रीतः स वनाकरभूषणाम् ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! बलरामसहित श्रीकृष्ण यादवोंसे भरी हुई मथुरापुरीमें सुखपूर्वक रहने लगे। उनके श्रीअङ्गोंको युवावस्था प्राप्त हुई थी। वे भगवान् राजोचित शोभासे सुशोभित हो वन-प्रान्तोंसे विभूषित मथुरापुरीमें प्रसन्नतापूर्वक विचरते थे ॥ १-२ ॥

कस्यचित्त्वथ कालस्य राजा राजगृहेश्वरः।
शुश्राव निहतं कंसं दुहितृभ्यां महीपतिः ॥ ३ ॥

कुछ कालके अनन्तर राजगृहके स्वामी पृथ्वीपति राजा जरासंधने अपनी दोनों पुत्रियोंसे सुना कि 'कंस मारा गया' ॥

ततो नातिचिरात् कालाज्जरासंधः प्रतापवान्।
आजगाम षडङ्गेन बलेन महता वृतः ॥ ४ ॥
जिघांसुर्हि यदून् क्रुद्धः कंसस्यापचितिं स्मरन्।

यह दुःखद समाचार सुनकर प्रतापी जरासंध थोड़े ही दिनोंमें छः[1] अङ्गोंसे युक्त अपनी विशाल सेनासे घिरा हुआ मथुरापुरीपर चढ़ आया। वह कंससे उऋण होनेकी बातका ध्यान रखकर कुपित हो समस्त यादवोंका विनाश कर डालना चाहता था ॥ ४½ ॥

अस्तिः प्राप्तिश्च नाम्ना ते मागधस्य सुते नृप ॥ ५ ॥
जरासंधस्य कल्याण्यौ पीनश्रोणिपयोधरे।
उभे कंसस्य ते भार्ये प्रादाद् बार्हद्रथो नृपः ॥ ६ ॥

नरेश्वर! मगधराज जरासंधके दो कल्याणमयी कन्याएँ थीं, जिनके नाम थे अस्ति और प्राप्ति। इन दोनोंके कटि-प्रदेशके पिछले भाग स्थूल तथा उरोज पीन थे। बृहद्रथपुत्र जरासंधने अपनी वे दोनों कन्याएँ कंसको दे दी थीं। वे दोनों कंसकी पत्नियाँ थीं ॥ ५-६ ॥

स ताभ्यां मुमुदे राजा बद्ध्वा पितरमाहुकम्।
समाश्रित्य जरासंधमनादृत्य च यादवान्।
शूरसेनेश्वरो राजा यथा ते बहुशः श्रुतः ॥ ७ ॥

शूरसेनदेशका स्वामी कंस जरासंधका आश्रय ले यादवोंका अनादर करके अपने पिता उग्रसेनको कैद कर स्वयं ही राजा बन बैठा था और अपनी उन दोनों पत्नियोंके साथ आनन्द भोगने लगा था; जैसा कि तुमने बहुत बार सुना होगा ॥ ७ ॥

ज्ञातिकार्यार्थसिद्ध्यर्थमुग्रसेनहिते रतः।
वसुदेवोऽभवन्नित्यं कंसो न मम्लृषे च तम् ॥ ८ ॥

भाई-बन्धुओंके कार्य और प्रयोजनकी सिद्धिके लिये

---

[1] रथ, हाथी, घोड़े, पैदल, पण्य धान्य (बिकाऊ अन्न) तथा आपणिक (विक्रेता व्यापारी)—ये सेनाके छः अङ्ग हैं।

वसुदेवजी सदा उग्रसेनके हितमें तत्पर रहते थे; किंतु कंस उनके इस बर्तावको सहन नहीं कर पाता था ॥ ८ ॥

रामकृष्णौ समाश्रित्य हते कंसे दुरात्मनि ।
उग्रसेनोऽभवद् राजा भोजवृष्ण्यन्धकैर्वृतः ॥ ९ ॥

बलराम और श्रीकृष्णसे भिड़कर जब दुरात्मा कंस मारा गया, तब भोज, वृष्णि और अन्धकवंशी यादवोंसे घिरे हुए उग्रसेन स्वयं राजा हुए ॥ ९ ॥

दुहितृभ्यां जरासंधः प्रियाभ्यां बलवान् नृपः ।
नोदितो वीरपत्नीभ्यामुपायान्मथुरां ततः ॥ १० ॥

तदनन्तर अपनी दोनों प्रिय पुत्रियोंसे, जो वीर कंसकी पत्नियाँ थीं, प्रेरित होकर बलवान् राजा जरासंधने मथुरापर आक्रमण किया ॥ १० ॥

कृत्वा सर्वं समुद्योगं क्रोधादग्निसमो ज्वलन् ।
प्रतापावनता ये च जरासंधस्य पार्थिवाः ॥ ११ ॥
मित्राणि ज्ञातयश्चैव संयुक्ताः सुहृदस्तथा ।
तमेवानुययुः सर्वे सैन्यैः समुदितैर्वृताः ॥ १२ ॥

वह क्रोधसे अग्निके समान जल रहा था । उसने सब प्रकारसे पूरा उद्योग करके चढ़ाई की थी । जरासंधके प्रतापसे नतमस्तक हुए जो-जो राजा थे तथा जो उसके मित्र, भाई-बन्धु, मिलने-जुलनेवाले और सुहृद् थे, उन सबने अपनी सारी सेनाओंके साथ जरासंधका ही अनुसरण किया ॥ ११-१२ ॥

महेष्वासा महावीर्या जरासंधप्रियैषिणः ।
कारूषो दन्तवक्त्रश्च चेदिराजश्च वीर्यवान् ॥ १३ ॥
कलिङ्गाधिपतिश्चैव पौण्ड्रश्च बलिनां वरः ।
सांकृतिः केशिकश्चैव भीष्मकश्च नराधिपः ॥ १४ ॥
पुत्रश्च भीमकस्यापि रुक्मी मुख्यो धनुर्भृताम् ।
वासुदेवार्जुनाभ्यां यः स्पर्धते स महाहवे ॥ १५ ॥

वे महाधनुर्धर तथा महापराक्रमी नरेशगण जरासंधका ही प्रिय चाहनेवाले थे । उनके नाम इस प्रकार हैं—करूष देशका राजा दन्तवक्त्र, पराक्रमी चेदिराज शिशुपाल, कलिङ्ग-देशका राजा श्रुतायु, बलवानोंमें श्रेष्ठ पौण्ड्रक (वासुदेव), सांकृति, केशिक, राजा भीष्मक तथा धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ भीष्मकपुत्र रुक्मी, जो महासमरमें श्रीकृष्ण और अर्जुनके साथ लड़नेका हौसला रखता था ॥ १३—१५ ॥

वेणुदारिः श्रुतर्वा च क्रथश्चैवांशुमानपि ।
अङ्गराजश्च बलवान् वङ्गानामधिपस्तथा ॥ १६ ॥
कौसल्यः काशिराजश्च दशार्णाधिपतिस्तथा ।
सुखेश्वरश्च विक्रान्तो विदेहाधिपतिस्तथा ॥ १७ ॥
मद्रराजश्च बलवांस्त्रिगर्तानामथेश्वरः ।
शाल्वराजश्च विक्रान्तो दरदश्च महाबलः ॥ १८ ॥
यवनाधिपतिश्चैव भगदत्तश्च वीर्यवान् ।
सौवीरराजः शैब्यश्च पाण्ड्यश्च बलिनां वरः ॥ १९ ॥
गान्धारराजः सुबलो नग्नजिच्च महाबलः ।
काश्मीरराजो गोनर्दो दरदाधिपतिर्नृपः ।
दुर्योधनादयश्चैव धार्तराष्ट्रा महाबलाः ॥ २० ॥
एते चान्ये च राजानो बलवन्तो महारथाः ।
तमन्वयुर्जरासंधं विद्विषन्तो जनार्दनम् ॥ २१ ॥

वेणुदारि, श्रुतर्वा, क्रथ, अंशुमान्, बलवान् अङ्गराज, वङ्गनरेश, कोसलनरेश, काशिराज, दशार्णदेशके अधिपति, पराक्रमी सुखेश्वर, विदेहराज, बलवान् मद्रराज (शल्य), त्रिगर्तदेशका शासक सुशर्मा, पराक्रमी शाल्वराज, महाबली दरद, यवनोंका राजा पराक्रमी भगदत्त, सौवीरदेशका राजा, शैब्य, बलवानोंमें श्रेष्ठ पाण्ड्य, गान्धारराज सुबल, महाबली नग्नजित्, काश्मीरराज गोनर्द, दरददेशके अधिपति, धृतराष्ट्रके महाबली पुत्र दुर्योधन आदि—ये तथा और भी बलवान् महारथी राजा श्रीकृष्णसे द्वेष रखते हुए जरासंधके साथ आये थे ॥ १६—२१ ॥

ते शूरसेनानाविश्य प्रभूतयवसेन्धनान् ।
ऊषुः संरुध्य मथुरां पुरस्कृत्य बलं तदा ॥ २२ ॥

वे शूरसेनदेशमें, जहाँ दाना-घास और लकड़ीकी बहुतायत थी, आकर अपनी-अपनी सेनाओंको आगे करके मथुरापर घेरा डालकर रहने लगे ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि मथुरोपरोधे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें जरासंधकी सेनाद्वारा
मथुरापर घेराविषयक चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

जरासंधकी सेनाका वर्णन, उसकी चारों दिशाओंसे मथुरापुरीपर आक्रमणकी योजना, यादवोंके साथ जरासंधकी सेनाका युद्ध, श्रीकृष्ण और बलरामके पराक्रमसे उसकी सेनाका पलायन, जरासंधद्वारा अपने सैनिकोंको प्रोत्साहन तथा उभय-पक्षके वीरोंमें घमासान युद्ध

वैशम्पायन उवाच

मथुरोपवने गत्वा निविष्टांस्तान् नराधिपान् ।
अपश्यन् वृष्णयः सर्वे पुरस्कृत्य जनार्दनम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! वे सब नरेश मथुराके उपवनमें पहुँचकर छावनी डाले हुए थे। वहाँ समस्त वृष्णिवंशियोंने श्रीकृष्णको आगे करके उन्हें देखा ॥ १ ॥

ततो हृष्टमनाः कृष्णो रामं वचनमब्रवीत्।
त्वरते खलु कार्यार्थो देवतानां न संशयः ॥ २ ॥

तब श्रीकृष्णने मन-ही-मन प्रसन्न होकर बलरामजीसे कहा—'आर्य ! देवताओंका कार्य एवं प्रयोजन शीघ्र ही सिद्ध होना चाहता है—इसमें संशय नहीं है ॥ २ ॥

यथायं संनिकृष्टो हि जरासंधो नराधिपः।
लक्ष्यन्ते हि ध्वजाग्राणि रथानां वातरंहसाम् ॥ ३ ॥

'तभी तो यह राजा जरासंध स्वयं ही हमारे निकट आ पहुँचा। यह वायुके समान वेगशाली रथोंकी ध्वजाओंके अग्रभाग दिखायी दे रहे हैं ॥ ३ ॥

एतानि शशिकल्पानि नृपाणां विजिगीषताम्।
छत्राण्यार्य विराजन्ते प्रोच्छ्रितानि सितानि च ॥ ४ ॥

'भैया ! विजयकी इच्छासे आये हुए राजाओंके ये चन्द्रमा-जैसे श्वेत एवं ऊँचे-ऊँचे छत्र शोभा पा रहे हैं ॥४॥

अहो नृपरथोदग्रा विमलाश्छत्रपङ्क्तयः।
अभिवर्तन्ति नः शुभ्रा यथा खे हंसपङ्क्तयः ॥ ५ ॥

'अहो ! राजाओंके रथोंपर ऊँची-ऊँची निर्मल एवं शुभ्र छत्र-पंक्तियाँ आकाशमें हंसकी पाँतोंके समान शोभा पाती हुई हमारे निकट आ रही हैं ॥ ५ ॥

काले खलु नृपः प्राप्तो जरासंधो महीपतिः।
आवयोर्युद्धनिकषः प्रथमः समरातिथिः ॥ ६ ॥

'पृथ्वीपति जरासंध ठीक समयपर आ पहुँचा है। यह हम दोनोंके युद्धकी कसौटी तथा समराङ्गणका पहला अतिथि है ॥ ६ ॥

आर्य तिष्ठाव सहितावनुप्राप्ते महीपतौ।
युद्धारम्भः प्रयोक्तव्यो बलं तावद्विमृश्यताम् ॥ ७ ॥

'आर्य ! उस राजाके आ जानेपर हम दोनों साथ ही रहें। युद्धका आरम्भ पीछे होगा। पहले उसकी सेना कितनी है, इसका विचार कर लें' ॥ ७ ॥

एवमुक्त्वा ततः कृष्णः स्वस्थः संग्रामलालसः।
जरासंधबलं प्रेप्सुश्चकार बलदर्शनम् ॥ ८ ॥

ऐसा कहकर श्रीकृष्ण स्वस्थ-चित्तसे संग्रामकी लालसा रखकर जरासंधकी शक्तिका पता लगानेके लिये उसकी सेनाका निरीक्षण करने लगे ॥ ८ ॥

वीक्षमाणश्च तान् सर्वान् नृपान् यदुवरोऽव्ययः।
आत्मनैवात्मनो वाक्यमुवाच हृदि मन्त्रवित् ॥ ९ ॥

अविनाशी यदुकुलतिलक मन्त्रवेत्ता श्रीकृष्ण उन सब राजाओंको देखकर अपने-आप ही मनमें इस प्रकार कहने लगे— ॥ ९ ॥

इमे ते पृथिवीपालाः पार्थिवे वर्त्मनि स्थिताः।
ये विनाशं गमिष्यन्ति शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ १० ॥

'ये हैं वे भूपाल, जो राजोचित मार्गपर स्थित हैं और शास्त्रोक्त विधिसे विनाशको प्राप्त होनेवाले हैं ॥ १० ॥

प्रोक्षितान् खल्विमान् मन्ये मृत्युना नृपपुङ्गवान्।
स्वर्गगामीनि चाप्येषां वपूंषि प्रचकाशिरे ॥ ११ ॥

'मैं समझता हूँ कि मृत्युने रण-यज्ञकी आहुति बनानेके लिये इन श्रेष्ठ नरेशोंका प्रोक्षण किया है। इनके स्वर्गगामी शरीर भी प्रकाशित हो उठे हैं ॥ ११ ॥

स्थाने भारपरिश्रान्ता वसुधेयं दिवं गता।
एषां नृपाणां मुख्यानां बलौघैरभिपीडिता ॥ १२ ॥

'यह पृथ्वी इन मुख्य-मुख्य नरेशोंके सैन्य-समुदायसे पीड़ित हो महान् भारसे थककर जो देवलोकमें गयी थी, वह इसका जाना उचित ही था ॥ १२ ॥

मही निरन्तरा चेयं बलराष्ट्राभिसंवृता।
स्वल्पेन खलु कालेन विविक्तं पृथिवीतलम् ॥ १३ ॥
भविष्यति नरेन्द्रौघैः शतशो विनिपातितैः।

'इन राजाओंके सैन्य-समुदायसे आवृत होकर यहाँकी भूमि ठसाठस भर गयी है। कहीं थोड़ा-सा भी अवकाश नहीं रह गया है; परंतु थोड़े ही समयमें जब ये सैकड़ों नरेश सैन्यसहित मार गिराये जायँगे, तब यह भूतल निर्जन-सा हो जायगा' ॥

वैशम्पायन उवाच

जरासंधस्ततः क्रुद्धः प्रभुः सर्वमहीक्षिताम् ॥ १४ ॥
नराधिपसहस्रौघैरनुयातो महाद्युतिः।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर समस्त राजाओंका स्वामी महातेजस्वी जरासंध कुपित हो सहस्रों नरेश-समुदायोंके साथ आगे बढ़ा ॥ १४½ ॥

व्यायतोदग्रतुरगैः सुयानैः सुसमाहितैः ॥ १५ ॥
रथैः सांग्रामिकैर्युक्तैरसङ्गगतिभिः क्वचित्।

कहीं सुन्दर ढंगसे सुसज्जित सुन्दर वाहन, रथ युद्धोपयोगी सामग्रियोंसे सम्पन्न थे। उनमें विशाल एवं प्रचण्ड वेगवाले अश्व जुते हुए थे। उन रथोंकी गति कहीं भी अवरुद्ध नहीं होती थी (ऐसे रथोंद्वारा रथी योद्धा युद्धके लिये आगे बढ़ रहे थे) ॥ १५½ ॥

हेमकक्षैर्महाघण्टैर्वारणैर्वारिदोपमैः ॥ १६ ॥
महामात्रोत्तमारूढैः कल्पितै रणकोविदैः।

कहीं बहुसंख्यक हाथी चल रहे थे, जिन्हें सोनेकी जंजीरोंसे कसा गया था। उनके दोनों ओर बड़े-बड़े घण्टे लटक रहे थे। वे हाथी काले मेघोंके समान प्रतीत होते थे। उनके ऊपर अच्छे महावत बैठे थे तथा रणकुशल योद्धाओंद्वारा उन्हें सुसजित किया गया था (उन हाथियोंद्वारा गजारोही योद्धा आगे बढ़ रहे थे) ॥ १६½ ॥

स्वारूढैः सादिभिर्युक्तैः प्रेङ्खमाणैः प्रवल्गितैः ॥ १७ ॥

वाजिभिर्वायुसंकाशैः प्लवद्भिरिव पत्त्रिभिः।

कुछ घुड़सवार योद्धा घोड़ोंपर अच्छी तरहसे सवार थे। उनके वे घोड़े वायुके समान वेगशाली थे और उछलते-कूदते हुए आगे बढ़ते समय आकाशमें उड़ते हुए पक्षियोंके समान प्रतीत होते थे ॥ १७½ ॥

खड्गचर्मधरोदग्रैः पत्तिभिर्बलिनां वरैः ॥ १८ ॥
सहस्रसंख्यासंयुक्तैरुत्पतद्भिरिवोरगैः ।

बलवानोंमें श्रेष्ठ पैदल सैनिक भी ढाल और तलवार लिये प्रचण्ड रूप धारण करके आगे बढ़ते थे । वे हजार-हजारकी टोलियोंमें एक साथ चलते थे और उछलते हुए सर्पोंके समान दिखायी देते थे ॥ १८½ ॥

एवं चतुर्विधैः सैन्यैः कम्पमानैरिवाम्बुदैः ॥ १९ ॥
नृपः प्रयातो बलवाञ्जरासंधो धृतव्रतः।

इस प्रकार मँडराते हुए बादलोंके समान चतुरङ्गिणी सेनाएँ साथ लेकर वीरव्रतको धारण करनेवाला बलवान् राजा जरासंध युद्धके लिये आगे बढ़ रहा था ॥ १९½ ॥

स रथैर्मेघनिर्घोषैर्गजैश्च मदसंयुतैः ॥ २० ॥
हेषमाणैश्च तुरगैः क्ष्वेडमानैश्च पत्तिभिः।
नादयानो दिशः सर्वास्तस्याः पुर्या वनानि च ॥ २१ ॥

वह मेघके समान गम्भीर घर्घर घोष करनेवाले रथों, चिग्घाड़ते हुए मतवाले हाथियों, हिनहिनाते हुए घोड़ों तथा गर्जते हुए पैदल सैनिकोंद्वारा उस पुरीकी सम्पूर्ण दिशाओं तथा वनोंको कोलाहलपूर्ण बनाता हुआ आ रहा था ॥२०-२१॥

स राजा सागराकारः ससैन्यः प्रत्यदृश्यत ।
तद्बलं पृथिवीशानां हृष्टयोधजनाकुलम् ॥ २२ ॥

सेनाके साथ आता हुआ राजा जरासंध विशाल समुद्रके समान दिखायी देता था। भूमिपालोंकी वह सेना हृष्ट-पुष्ट योद्धाओंसे परिपूर्ण थी ॥ २२ ॥

क्ष्वेडितास्फोटितरवं मेघसैन्यमिवाबभौ ।
रथैः पवनसम्पातैर्गजैश्च जलदोपमैः।
तुरगैश्च जवोपेतैः पत्तिभिः खगमोपमैः ॥ २३ ॥
विमिश्रं सर्वतो भाति मत्तद्विपसमाकुलम्।
घर्मान्ते सागरगतं यथाभ्रपटलं तथा ॥ २४ ॥

गर्जने और ताल ठोंकनेकी गम्भीर ध्वनिसे वह मेघोंकी गर्जती हुई घटाके समान प्रतीत होती थी। वायुके समान शीघ्रगामी रथों, मेघोंके सदृश दिखायी देनेवाले हाथियों, वेगशाली घोड़ों तथा आकाशचारी पक्षियोंके समान जान पड़नेवाले पैदल सैनिकोंसे मिश्रित हुई उस सेनाकी सब ओरसे बड़ी शोभा हो रही थी। मतवाले हाथियोंसे व्याप्त हुई वह विशाल वाहिनी वर्षा-ऋतुमें समुद्रके भीतर लक्षित होनेवाले मेघोंके समूहकी शोभा धारण करती थी ॥ २३-२४ ॥

सबलास्ते महीपाला जरासंधपुरोगमाः।
परिवार्य पुरीं सर्वे निवेशायोपचक्रिरे ॥ २५ ॥

वे जरासंध आदि समस्त भूपाल अपनी सेनाके साथ मथुरापुरीको चारों ओरसे घेरकर छावनी डालनेकी तैयारी करने लगे ॥ २५ ॥

बभौ तस्य निविष्टस्य बलश्रीः शिबिरस्य वै।
शुक्लपर्यन्तपूर्णस्य यथा रूपं महोदधेः ॥ २६ ॥

वहाँ डेरा डाले हुए जरासंधके सैनिक-शिविरोंकी शोभा वैसी ही प्रतीत होती थी, जैसा कि शुक्लपक्षकी पूर्णिमाको अपनी उत्ताल तरङ्गोंसे परिपूर्ण हुए महासागरका रूप देखनेमें आता है ॥ २६ ॥

वीतरात्रे ततः काले समुत्तस्थुर्महीक्षितः।
आरोहणार्थं पुर्यास्ते समीयुर्युद्धलालसाः ॥ २७ ॥

तदनन्तर रात बीतनेपर प्रातःकाल सब राजा उठे और युद्धकी लालसासे मथुरापुरीपर चढ़ाई करनेके लिये एकत्र होने लगे ॥ २७ ॥

समवायीकृताः सर्वे यमुनामनु ते नृपाः।
निविष्टा मन्त्रयामासुर्युद्धकालकुतूहलाः ॥ २८ ॥

यमुनाके किनारे एकत्र होकर वे सभी नरेश बैठे और युद्धके शुभ अवसरके लिये उत्सुक हो आपसमें मन्त्रणा करने लगे ॥ २८ ॥

तेषां सुतुमुलः शब्दः शुश्रुवे पृथिवीक्षिताम्।
युगान्ते भिद्यमानानां सागराणामिव स्वनः ॥ २९ ॥

सेनासहित उन नरेशोंकी तुमुल ध्वनि प्रलयकालमें मर्यादाको तोड़कर बहनेवाले समुद्रोंकी भयंकर गर्जनाके समान सुनायी देती थी ॥ २९ ॥

तेषां सकञ्चुकोष्णीषाः स्थविरा वेत्रपाणयः।
चेरुर्मा शब्द इत्येवं वदन्तो राजशासनात् ॥ ३० ॥

उन राजाओंके छड़ीदार बूढ़े सिपाही चोगा और पगड़ी धारण किये तथा हाथमें बेंत लिये राजाज्ञासे यह कहते हुए विचरने लगे कि 'सब लोग मौन रहें। कोई एक शब्द भी न बोले' ॥ ३० ॥

तस्य रूपं बलस्यासीन्निःशब्दस्तिमितस्य वै।
लीनमीनग्रहस्येव निःशब्दस्य यथोदधेः ॥ ३१ ॥

उस समय नीरव और निश्चल हुए उस सैन्यसमूहका रूप जिसके मत्स्य और ग्राह विलीन हो गये हों उस शब्दहीन शान्त महासागरके समान प्रतीत होता था ॥ ३१ ॥

निःशब्दस्तिमिते तस्मिन् योगादिव महार्णवे।
जरासंधो बृहद् वाक्यं बृहस्पतिरिवाददे ॥ ३२ ॥

उस सैन्य-समुद्रके मानो योगबलसे सहसा नीरव तथा

निश्चल हो जानेपर बृहस्पतिके समान नीतिमान् जरासंधने यह महत्त्वपूर्ण बात कही—॥ ३२ ॥

शीघ्रं समभिवर्तन्तां बलानि पृथिवीक्षिताम्।
सर्वतो नगरी चेयं जनौघैः परिवार्यताम् ॥ ३३ ॥

'राजाओंकी सेनाएँ शीघ्र आक्रमण करें और इस मथुरानगरीको सब ओरसे सैनिक-समूहोंद्वारा घेर लें ॥ ३३ ॥

अश्मयन्त्राणि युज्यन्तां क्षेपणीयाश्च मुद्गराः।
कार्या भूमिः समा सर्वा जलौघैश्च परिप्लुता।
ऊर्ध्वं चापा निवाह्यन्तां प्रासा वै तोमरास्तथा ॥ ३४ ॥

'पत्थरोंके गोले बरसानेवाले यन्त्र लगा दिये जायँ। क्षेपणीय (गोफना या ढेलवाँस) तथा मुद्गर सँभाल लिये जायँ। सारी भूमि समतल कर दी जाय और उसे जल-राशियोंसे आप्लावित किया जाय। धनुषोंको ऊपर उठा लेना चाहिये, प्रासों और तोमरोंको भी हाथमें ले लिया जाय ॥ ३४ ॥

दार्यतां चैव टङ्काद्यैः खनित्रैश्च पुरी द्रुतम्।
नृपाश्च युद्धमार्गज्ञा विन्यस्यन्तामदूरतः ॥ ३५ ॥

'टंक आदिके द्वारा तथा खनित्रोंसे इस पुरीको तुरंत ही विदीर्ण कर दिया जाय। युद्धकी प्रणालीको जाननेवाले नरेशोंको उसके समीप ही यथास्थान खड़ा किया जाय ॥ ३५ ॥

अद्यप्रभृति सैन्यैर्मे पुरीरोधः प्रवर्त्यताम्।
यावदेतौ रणे गोपौ वसुदेवसुतावुभौ ॥ ३६ ॥
संकर्षणं च कृष्णं च घातयामि शितैः शरैः।
आकाशमपि बाणौघैर्निःसम्पातं यथा भवेत् ॥ ३७ ॥

'आजसे मेरे सैनिकोंद्वारा मथुरापुरीपर घेरा डाल दिया जाय और उसे तबतक चालू रखा जाय, जबतक कि मैं युद्धमें इन दोनों ग्वालों वसुदेवपुत्र संकर्षण और कृष्णको अपने तीखे बाणोंद्वारा मार न डालूँ। उस समयतक आकाशको भी बाणसमूहोंसे इस तरह रूँध दिया जाय, जिससे पक्षी भी उड़कर बाहर न जा सके ॥ ३६-३७ ॥

मयानुशिष्टास्तिष्ठन्तु पुरीभूमिषु भूमिपाः।
येषु तेष्ववकाशेषु शीघ्रमारुह्यतां पुरी ॥ ३८ ॥

'मेरा अनुशासन मानकर समस्त भूपाल मथुरापुरीके निकटवर्ती भूभागोंमें खड़े रहें और जब जहाँ अवकाश मिल जाय, तब तहाँ शीघ्र ही पुरीपर चढ़ाई कर दें ॥ ३८ ॥

मद्रः कलिङ्गाधिपतिश्चेकितानः सबाह्लिकः।
काश्मीरराजो गोनर्दः करूषाधिपतिस्तथा ॥ ३९ ॥
द्रुमः किम्पुरुषश्चैव पर्वतीयो ह्यनामयः।
नगर्याः पश्चिमं द्वारं शीघ्रमारोधयन्त्विति ॥ ४० ॥

'मद्रराज (शल्य), कलिङ्गराज श्रुतायु, चेकितान, बाह्लिक, काश्मीरराज गोनर्द, करूषराज दन्तवक्त्र तथा पर्वतीय प्रदेशके रोगरहित किन्नरराज द्रुम—ये शीघ्र ही मथुरापुरीके पश्चिम द्वारको रोक लें ॥ ३९-४० ॥

पौरवो वेणुदारिश्च वैदर्भः सोमकस्तथा।
रुक्मी च भोजाधिपतिः सूर्याक्षश्चैव मालवः ॥ ४१ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ दन्तवक्त्रश्च वीर्यवान्।
छागलिः पुरमित्रश्च विराटश्च महीपतिः ॥ ४२ ॥
कौरव्यो मालवश्चैव शतधन्वा विदूरथः।
भूरिश्रवास्त्रिगर्तश्च बाणः पञ्चनदस्तथा ॥ ४३ ॥
उत्तरं नगरद्वारमेते दुर्गसहा नृपाः।
आरुह्य चाभिमर्दन्तां वज्रप्रतिमगौरवाः ॥ ४४ ॥

'पूरुवंशी वेणुदारि, विदर्भदेशीय सोमक, भोजोंके अधिपति रुक्मी, मालवाके राजा सूर्याक्ष, अवन्तीके राजकुमार विन्द और अनुविन्द, पराक्रमी दन्तवक्त्र, छागलि, पुरमित्र, राजा विराट, कुरुवंशी मालव, शतधन्वा, विदूरथ, भूरिश्रवा, त्रिगर्त, बाण और पञ्चनद—ये दुर्गका आक्रमण सह सकनेवाले नरेश मथुरा नगरके उत्तर द्वारपर चढ़ाई करके शत्रुओंको कुचल डालें। इनका गौरव वज्रके तुल्य है ॥ ४१–४४ ॥

उलूकः कैतवश्चैव वीरश्चांशुमतः सुतः।
एकलव्यो बृहत्क्षत्रः क्षत्रधर्मा जयद्रथः ॥ ४५ ॥
उत्तमौजाश्च शल्यश्च कौरवाः कैकयास्तथा।
वैदिशो वामदेवश्च सांकृतिश्च सिनीपतिः ॥ ४६ ॥
पूर्वं नगरनिर्व्यूहमेतेष्वायत्तमस्तु नः।
दारयन्तो विधावन्तु वाता इव बलाहकान् ॥ ४७ ॥

'शकुनिपुत्र उलूक, अंशुमान्‌के पुत्र वीर एकलव्य, बृहत्क्षत्र, क्षत्रधर्मा, जयद्रथ, उत्तमौजा, शल्य, कुरुवंशी, केकयराजकुमार, विदिशाके राजा वामदेव तथा सिनीपति सांकृति—इन सबके अधीन मथुरापुरीका पूर्व द्वार कर दिया जाय। ये लोग जैसे वायु बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार शत्रुओंको विदीर्ण करनेके लिये उनपर धावा बोल दें ॥ ४५–४७ ॥

अहं च दरदश्चैव चेदिराजश्च वीर्यवान्।
दक्षिणं नगरद्वारं पालयामः सुदंशिताः ॥ ४८ ॥

'मैं, दरद तथा पराक्रमी चेदिराज शिशुपाल कवच धारण करके नगरके दक्षिण द्वारका मोरचा सँभालेंगे ॥ ४८ ॥

एवमेषा पुरी क्षिप्रं समन्ताद् वेष्टिता बलैः।
वज्रावपातविषमं प्राप्नोतु तुमुलं भयम् ॥ ४९ ॥

'इस प्रकार हमारी सेनाओंद्वारा चारों ओरसे घिरी हुई यह नगरी मानो इसपर वज्रपात हो गया हो' इस प्रकार विषम एवं घोर भय प्राप्त करे ॥ ४९ ॥

गदिनो ये गदाभिस्ते परिघैः परिघायुधाः।
अपरे विविधैः शस्त्रैर्दारयन्तु पुरीमिमाम् ॥ ५० ॥

'गदाधारी वीर गदाओंसे, परिघ चलानेवाले परिघोंसे

तथा अन्य वीर नाना प्रकारके दूसरे शस्त्रोंसे इस पुरीको विदीर्ण कर डालें ॥ ५० ॥

अद्यैव नगरी ह्येषा विषमोच्चयसंकटा ।
कार्या भूमिसमा सर्वा भवद्भिर्वसुधाधिपैः ॥ ५१ ॥

'आज ही आप सब भूपाल मिलकर ऊँचे-नीचे महलोंके समूहोंसे भरी हुई इस सारी नगरीको गर्दमें मिलाकर समतल भूमिके समान कर दें' ॥ ५१ ॥

चतुरङ्गबलैर्व्यूह्य जरासंधो व्यवस्थितः ।
अथाभ्ययाद् यदून् क्रुद्धैः सह सर्वैर्नराधिपैः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार आदेश दे चतुरङ्गिणी सेनाओंका व्यूह बनाकर जरासंध युद्धके लिये डट गया और क्रोधमें भरे हुए समस्त नरेशोंके साथ यादवोंपर चढ़ आया ॥ ५२ ॥

प्रतिजग्मुर्दशार्हास्तं व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
तद् युद्धमभवद् घोरं तेषां देवासुरोपमम् ।
अल्पानां बहुभिः सार्धं व्यतिषक्तरथद्विपम् ॥ ५३ ॥

उस समय अपनी सेनाका व्यूह बनाकर प्रहारकुशल यादवोंने जरासंधका सामना किया । उनका वह युद्ध देवासुर-संग्रामके समान भयंकर प्रतीत होता था । यह थोड़ेसे योद्धाओंका बहुसंख्यक शत्रुओंके साथ युद्ध हुआ, जिसमें उभय-पक्षके रथ और हाथी एक दूसरेसे सटकर जूझ रहे थे ॥ ५३ ॥

नगरान्निस्सृतौ दृष्ट्वा वसुदेवसुतावुभौ ।
क्षुभितं नृवरानीकं त्रस्तसम्मूढवाहनम् ॥ ५४ ॥

इसी समय वसुदेवके दोनों पुत्र श्रीकृष्ण और बलराम नगरसे बाहर निकले । उन्हें देखते ही उन श्रेष्ठ राजाओंकी विशाल वाहिनी क्षुब्ध हो उठी । उसके वाहन भयभीत और मोहाच्छन्नसे हो गये ॥ ५४ ॥

रथस्थौ दंशितौ चैव चेरतुस्तत्र यादवौ ।
मकराविव संरब्धौ समुद्रक्षोभणावुभौ ॥ ५५ ॥

कवच धारण करके रथपर बैठे हुए वे दोनों यादव-वीर वहाँ विचरने लगे, मानो क्रोधमें भरे हुए दो मगर समुद्रमें हलचल मचा रहे हों ॥ ५५ ॥

तयोः प्रयुध्यतोः संख्ये मतिरासीन्महात्मनोः ।
आयुधानां पुराणानामादानकृतलक्षणा ॥ ५६ ॥

उस संग्राममें जूझते हुए उन दोनों महात्मा वीरोंके मनमें यह संकल्प उठा, यदि हमारे पुरातन अस्त्र आ जाते तो हम उन्हें ही लेकर युद्ध करते ॥ ५६ ॥

ततः खान्निपतन्ति स्म दिव्यान्याहवसम्प्लवे ।
लेलिहानानि दीप्तानि महान्ति सुदृढानि च ॥ ५७ ॥

उनके इतना सोचते ही उस युद्धमें आकाशसे वे दिव्य आयुध नीचे आने लगे । वे सब-के-सब सुदृढ़, महान् और देदीप्यमान थे तथा शत्रुओंको चाट जानेके लिये उद्यत दिखायी देते थे ॥ ५७ ॥

क्रव्यादैरनुयातानि मूर्तिमन्ति बृहन्ति च ।
तृषितान्याहवे भोक्तुं नृपमांसानि वै भृशम् ॥ ५८ ॥

उनके पीछे मांसभक्षी भूत-प्रेत आदि भी आ रहे थे । वे दिव्य अस्त्र मूर्तिमान् एवं विशाल थे तथा युद्धमें आये हुए राजाओंके रक्त-मांसका उपभोग करनेके लिये मानो अत्यन्त भूखे-प्यासे थे ॥ ५८ ॥

दिव्यस्रग्दामधारीणि त्रासयन्ति च खेचरान् ।
प्रभया भासमानानि पतमानानि चाम्बरात् ॥ ५९ ॥

उन्होंने दिव्य फूलोंके हार धारण किये थे । अपनी प्रभासे प्रकाशित हो आकाशसे गिरते हुए वे दिव्यास्त्र आकाशचारी प्राणियोंके मनमें भय उत्पन्न करते थे ॥ ५९ ॥

हलं संवर्तकं नाम सौनन्दं मुसलं तथा ।
धनुर्वरं प्रवरं शार्ङ्गं गदा कौमोदकी तथा ॥ ६० ॥
चत्वार्येतानि तेजांसि विष्णुप्रहरणानि च ।
ताभ्यां समवतीर्णानि यादवाभ्यां महामृधे ॥ ६१ ॥

संवर्तक नामक हल, सौनन्द नामक मूसल, धनुषोंमें श्रेष्ठ शार्ङ्ग तथा कौमोदकी गदा—भगवान् विष्णुके ये चार तेजस्वी आयुध उन दोनों भाइयोंके लिये यादवोंके उस महासमरमें उतर आये ॥ ६०-६१ ॥

जग्राह प्रथमं रामो ललामप्रतिमं हलम् ।
सर्पन्तमिव सर्पेन्द्रं दिव्यमालाकुलं मृधे ॥ ६२ ॥

बलरामजीने उस युद्धस्थलमें पहले सर्पराजके समान सर्पणशील (गतिमान्) तथा दिव्य मालाओंसे अलंकृत सुन्दर आकृतिवाले हलको (दाहिने हाथमें) ग्रहण किया ॥

सौनन्दं च ततः श्रीमान् निरानन्दकरं द्विषाम् ।
सव्येन सात्वतां श्रेष्ठो जग्राह मुसलोत्तमम् ॥ ६३ ॥

तदनन्तर यादवोंमें श्रेष्ठ श्रीमान् संकर्षणने शत्रुओंके आनन्दको हर लेनेवाले सौनन्द नामक श्रेष्ठ मूसलको बायें हाथसे ग्रहण किया ॥ ६३ ॥

दर्शनीयं च लोकेषु धनुर्जलदनिःस्वनम् ।
नाम्ना शार्ङ्गमिति ख्यातं कृष्णो जग्राह वीर्यवान् ॥ ६४ ॥

इसके बाद पराक्रमी श्रीकृष्णने मेघोंके समान गम्भीर घोष करनेवाले शार्ङ्ग नामक धनुषको ग्रहण किया, जो समस्त लोकोंमें दर्शनीय है ॥ ६४ ॥

देवैर्निगदितार्थस्य गदा तस्यापरे करे ।
निक्षिप्ता कुमुदाक्षस्य नाम्ना कौमोदकीति सा ॥ ६५ ॥

देवताओंने जिन्हें अपना प्रयोजन बताया था और जिनके नेत्र खिले हुए कुमुदके समान शोभा पाते हैं, उन भगवान्

श्रीकृष्णके दूसरे हाथमें वह सुप्रसिद्ध कौमोदकी गदा स्वतः आ गयी ॥ ६५ ॥

तौ सप्रहरणौ वीरौ साक्षाद् विष्णुतनूपमौ।
समरे रामगोविन्दौ रिपूंस्तान् प्रत्ययुद्ध्यताम् ॥ ६६ ॥

उन आयुधोंसे युक्त हो साक्षात् विष्णु-विग्रहके समान शरीरवाले दोनों वीर बलराम और श्रीकृष्ण समराङ्गणमें उन शत्रुओंके साथ युद्ध करने लगे ॥ ६६ ॥

सायुधप्रग्रहौ वीरौ तावन्योन्याश्रयावुभौ।
पूर्वजानुजसंज्ञौ तौ रामगोविन्दलक्षणौ ॥ ६७ ॥
द्विषत्सु प्रतिकुर्वाणौ पराक्रान्तौ यथेश्वरौ।
विचेरतुर्यथा देवौ वसुदेवसुतावुभौ ॥ ६८ ॥

उन दिव्य आयुधोंको ग्रहण करके एक दूसरेको सहारा देनेवाले वे अग्रज और अनुजरूप दोनों वीर बन्धु श्रीबलराम और श्रीकृष्ण शत्रुओंका सामना करते हुए ईश्वरकोटिके महापुरुषोंके समान पराक्रम दिखाने लगे। वसुदेवके वे दोनों पुत्र रणभूमिमें देवताओंके समान विचरते थे ॥ ६७-६८ ॥

हलमुद्यम्य रामस्तु सर्पेन्द्रमिव कोपितः।
चचार समरे वीरो द्विषामन्तको यथा ॥ ६९ ॥

वीर बलराम क्रोधमें भरकर सर्पराजके समान हल उठाये शत्रुओंके लिये कालरूप होकर समरभूमिमें विचर रहे थे ॥

विकर्षन् रथवृन्दानि क्षत्रियाणां महात्मनाम्।
चकार रोषं सफलं नागेषु च हयेषु च ॥ ७० ॥

वे महामनस्वी क्षत्रियोंके रथसमूहोंको पीछे ढकेलते हुए हाथियों और घोड़ोंपर अपना रोष सफल करने लगे ॥ ७० ॥

कुञ्जराल्लाँङ्गलक्षिप्तान् मुसलाक्षेपताडितान्।
रामो विराजन् समरे निर्ममन्थ यथाचलान् ॥ ७१ ॥

बलरामजी गजराजोंको हलसे खींचकर उन्हें मूसलकी मारसे घायल करते हुए समराङ्गणमें अद्भुत शोभा पा रहे थे। उन्होंने पर्वतोंके समान हाथियोंको मथ डाला ॥ ७१ ॥

ते वध्यमाना रामेण रणे क्षत्रियपुङ्गवाः।
जरासंधान्तिकं भीताः समरात् प्रतिजग्मिरे ॥ ७२ ॥

रणभूमिमें बलरामजीके द्वारा मारे जाते हुए वे क्षत्रियशिरोमणि भयभीत हो समरसे पीछे हटकर जरासंधके पास भाग गये ॥ ७२ ॥

तानुवाच जरासंधः क्षत्रधर्मे व्यवस्थितः।
धिगेतां क्षत्रवृत्तिं वः समरे कातरात्मनाम् ॥ ७३ ॥

उस समय क्षत्रिय-धर्ममें स्थिर रहनेवाले जरासंधने उन क्षत्रियोंसे कहा—'अरे समराङ्गणमें कातर-हृदय होकर पीछे भागनेवाले तुम सब लोगोंकी इस क्षत्रिय-वृत्तिको धिक्कार है!।

परावृत्तस्य समरे विरथस्य पलायतः।
भ्रूणहत्यामिवासह्यां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ७४ ॥

'जो क्षत्रिय संग्रामभूमिमें रथहीन होनेपर पीठ दिखाकर भागने लगता है, उसकी इस भीरुताको मनीषी पुरुष भ्रूणहत्याके समान असह्य बताते हैं ॥ ७४ ॥

भीताः कस्मान्निवर्तध्वं धिगेतां क्षत्रवृत्तिताम्।
क्षिप्रं सर्वे निवर्तध्वं मम वाक्येन चोदिताः ॥ ७५ ॥

'योद्धाओ! तुम भयभीत होकर युद्धसे पीछे क्यों हटते हो? तुम्हारी ऐसी क्षत्रियवृत्तिको धिक्कार है! मेरी वाणीसे प्रेरित हो तुम सब लोग शीघ्र ही युद्धभूमिको लौट जाओ ॥

अथवा तिष्ठत रथैः प्रेक्षकाः समवस्थिताः।
यावदेतौ रणे गोपौ प्रेषयामि यमक्षयम् ॥ ७६ ॥

'अथवा रथोंके द्वारा दर्शक बनकर तबतक खड़े रहो, जबतक कि मैं रणभूमिमें इन ग्वालोंको मारकर यमलोक नहीं भेज देता हूँ' ॥ ७६ ॥

ततस्ते क्षत्रियाः सर्वे जरासंधेन नोदिताः।
सृजन्तः शरजालानि हृष्टा योद्धुं व्यवस्थिताः ॥ ७७ ॥

तब जरासंधसे प्रेरित हो वे समस्त क्षत्रिय बाण-समूहोंकी वृष्टि करते हुए बड़े हर्षके साथ युद्धके लिये डट गये ॥७७॥

ते हयैः काञ्चनापीडै रथैश्चाम्बुदनादिभिः।
नागैश्चाम्बुदसंकाशैर्महामात्रप्रचोदितैः ॥ ७८ ॥

वे सोनेके आभूषणोंसे विभूषित हुए घोड़ों, मेघकी गर्जनाके समान घरघर ध्वनि फैलानेवाले रथों और महावतोंद्वारा हाँके गये मेघोंके समान काले गजराजोंद्वारा आगे बढ़कर युद्ध करने लगे ॥ ७८ ॥

सतनुत्राः सनिस्त्रिंशाः सपताकायुधध्वजाः।
स्वारोपितधनुष्मन्तः सतूणीराः सतोमराः ॥ ७९ ॥

उन सबके शरीरमें कवच बँधे थे, सबने तलवारें ले रखी थीं, सभी ध्वाजा-पताका और आयुधोंसे सम्पन्न थे, सभीके धनुष चढ़े हुए थे तथा सबने तरकस और तोमर ले रखे थे ॥ ७९ ॥

सच्छत्राः सादिनश्चैव चारुचामरवीजिताः।
रणे तेऽधिगता रेजुः स्यन्दनस्था महीक्षितः ॥ ८० ॥

रथपर बैठे हुए उन राजाओंके ऊपर छत्र तने हुए थे, मनोहर चँवर डुलाये जाते थे। उनके साथ घुड़सवार भी थे। युद्धभूमिमें स्थित हुए वे सभी नरेश बड़ी शोभा पा रहे थे ॥

ते युद्धरागा रथिनो व्यगाहन्त युधां वराः।
गदाभिश्चैव गुर्वीभिः क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः ॥ ८१ ॥

योद्धाओंमें श्रेष्ठ उन रथी वीरोंका युद्धमें अनुराग था, इसलिये वे भारी गदाओं, क्षेपणीयों (गोफनों) तथा मुद्गरोंसे विपक्षियोंको घायल करते हुए उनकी सेनाओंमें घुस गये।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र देवानां नन्दिवर्धनः।
सुपर्णध्वजमास्थाय कृष्णस्तु रथमुत्तमम् ॥ ८२ ॥
समभ्ययाज्जरासंधं शरैर्विव्याध चाष्टभिः।
सारथिं चास्य विव्याध पञ्चभिर्निशितैः शरैः ॥ ८३ ॥

इसी बीचमें देवताओंका आनन्द बढ़ानेवाले भगवान् श्रीकृष्ण उत्तम गरुड़ध्वज रथपर आरूढ़ हो जरासंधपर चढ़ आये। उन्होंने आठ बाणोंसे उसको घायल कर दिया और पाँच पैने बाणोंद्वारा उसके सारथिको भी बींध डाला ॥

जघान तुरगांश्चाजौ यतमानस्य वीर्यवान्।
तं कृच्छ्रगतमाज्ञाय चित्रसेनो महारथः ॥ ८४ ॥
सेनानीः कैशिकश्चैव कृष्णं विविधतुः शरैः।

जरासंध बचनेका प्रयत्न करता ही रह गया, किंतु पराक्रमी श्रीकृष्णने रणभूमिमें उसके घोड़ोंको भी मार डाला। उसे संकटमें पड़ा जान महारथी चित्रसेन तथा सेनापति कैशिक दोनों आ पहुँचे और श्रीकृष्णको अपने बाणोंद्वारा घायल करने लगे ॥ ८४½ ॥

त्रिभिर्विव्याध संसक्तं बलदेवं च कैशिकः ॥ ८५ ॥
बलदेवो धनुश्चास्य भल्लेनाजौ द्विधाकरोत्।
जवेनाभ्यर्दयच्चापि तानरीञ्छरवृष्टिभिः ॥ ८६ ॥

कैशिकने लगातार तीन बाणोंसे बलरामजीको बींध दिया। तब बलरामने भी एक भल्ल मारकर युद्धमें उसके धनुषके दो टुकड़े कर डाले। साथ ही वेगपूर्वक बाणोंकी वर्षा करके उन तीनों शत्रुओंको पीड़ित कर दिया ॥ ८५-८६ ॥

बहुभिर्बहुधा वीरान् समन्तात् स्वर्णभूषणैः।
तं चित्रसेनः संरब्धो विव्याध नवभिः शरैः ॥ ८७ ॥
कैशिकः पञ्चभिश्चापि जरासंधश्च सप्तभिः।

उन्होंने बहुतसे स्वर्णभूषित बाणोंद्वारा उन वीरोंको सब ओरसे बारंबार घायल किया। तब क्रोधमें भरे हुए चित्रसेनने नौ, कैशिकने पाँच तथा जरासंधने सात बाणोंसे उनको क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ८७½ ॥

त्रिभिस्त्रिभिश्च नाराचैस्तान् बिभेद जनार्दनः ॥ ८८ ॥
पञ्चभिः पञ्चभिश्चैव बलदेवः शितैः शरैः।

यह देख श्रीकृष्णने तीन-तीन नाराचोंसे उन तीनोंको वेध डाला। फिर बलदेवने भी पाँच-पाँच पैने बाणोंसे उन सबको घायल कर दिया ॥ ८८½ ॥

रथं चैवास्य चिच्छेद चित्रसेनस्य वीर्यवान् ॥ ८९ ॥
बलदेवो धनुश्चास्य भल्लेनाजौ द्विधाकरोत्।

इसके बाद पराक्रमी बलरामने चित्रसेनके रथके टुकड़े-टुकड़े कर दिये तथा एक भल्ल मारकर युद्धस्थलमें उसके धनुषके भी दो खण्ड कर डाले ॥ ८९½ ॥

स च्छिन्नधन्वा विरथो गदामादाय वीर्यवान् ॥ ९० ॥
अभ्यधावत् सुसंरब्धो जिघांसुर्मुसलायुधम्।

धनुष और रथके नष्ट हो जानेपर रोषमें भरा हुआ पराक्रमी चित्रसेन मूसलधारी बलरामको मार डालनेकी इच्छासे हाथमें गदा लेकर उनकी ओर दौड़ा ॥ ९०½ ॥

सिसृक्षतस्तु नाराचांश्चित्रसेनवधैषिणः।
धनुश्चिच्छेद रामस्य जरासंधो महाबलः ॥ ९१ ॥

यह देख बलराम चित्रसेनके वधकी इच्छासे उसपर नाराचोंकी वृष्टि करने लगे। इतनेहीमें महाबली जरासंधने बलरामजीके धनुषको काट दिया ॥ ९१ ॥

गदया च जघानाश्वान् क्रोधात् स मगधेश्वरः।
रामं चाभ्यद्रवद् वीरो जरासंधो महाबलः ॥ ९२ ॥

साथ ही क्रोधपूर्वक गदाका प्रहार करके महाबली वीर मगधराज जरासंधने उनके घोड़ोंको कालके गालमें भेज दिया, फिर बलरामपर भी धावा किया ॥ ९२ ॥

आदाय मुसलं रामो जरासंधमुपाद्रवत्।
तयोस्तद् युद्धमभवत् परस्परवधैषिणोः ॥ ९३ ॥

बलरामजी भी मूसल लेकर जरासंधपर टूट पड़े। एक दूसरेके वधकी इच्छावाले उन दोनों वीरोंमें घोर युद्ध होने लगा ॥ ९३ ॥

चित्रसेनस्तु संसक्तं दृष्ट्वा रामेण मागधम्।
रथमन्यं समारुह्य जरासंधमवारयत् ॥ ९४ ॥

उधर चित्रसेन मगधराजको बलरामजीके साथ उलझा हुआ देख दूसरे रथपर चढ़कर आ गया और जरासंधको लड़नेसे रोकने लगा ॥ ९४ ॥

ततो बलेन महता गजानीकेन चाप्यथ।
उभयोरन्तरे ताभ्यां संकुलं समपद्यत ॥ ९५ ॥

तदनन्तर वह विशाल गजसेनाके साथ जरासंध और बलरामके बीचमें आ गया और उन दोनों भाइयोंके साथ घोर युद्ध करने लगा ॥ ९५ ॥

ततः सैन्येन महता जरासंधोऽभिसंवृतः।
रामकृष्णाग्रगान् भोजानाससाद महाबलः ॥ ९६ ॥

तब विशाल सेनासे घिरा हुआ महाबली जरासंध बलराम और श्रीकृष्णके अग्रगामी भोजोंपर जा चढ़ा ॥ ९६ ॥

तत्र प्रक्षुभितस्येव सागरस्य महास्वनः।
प्रादुर्बभूव तुमुलः सेनयोरुभयोरपि ॥ ९७ ॥

फिर तो वहाँ उभय पक्षकी सेनाओंमें विक्षुब्ध महासागरके समान बड़ी भयंकर एवं भारी गर्जना सुनायी देने लगी ॥ ९७ ॥

वेणुभेरीमृदङ्गानां शङ्खानां च सहस्रशः।
उभयोः सेनयो राजन् प्रादुरासीन्महास्वनः ॥ ९८ ॥

राजन् ! दोनों सेनाओंमें वेणु, भेरी, मृदङ्ग और शङ्ख आदि सहस्रों वाद्योंका महान् घोष होने लगा ॥ ९८ ॥

क्ष्वेडितास्फोटितोत्कृष्टैस्तुमुलः सर्वतोऽभवत्।
उत्पपात रजश्चापि खुरनेमिसमुद्धतम् ॥ ९९ ॥

योद्धाओंके गर्जने, ताल ठोंकने और उच्च स्वरसे पुकारने आदिके कारण वहाँ सब ओर तुमुल ध्वनि छा गयी। घोड़ोंकी टापों और रथके पहियोंके प्रान्तभागसे उठी हुई धूल सब ओर उड़ने लगी ॥ ९९ ॥

समुद्यतमहाशस्त्राः प्रगृहीतशरासनाः ।
अन्योन्यमभिगर्जन्तः शूरास्तत्रावतस्थिरे ॥१००॥

उभयपक्षके शूर-वीर सैनिक बड़े-बड़े शस्त्र उठाये, धनुष लिये एक दूसरेके सम्मुख गर्जना करते हुए युद्धस्थलमें डटे हुए थे ॥ १०० ॥

रथिनः सादिनश्चैव पत्तयश्च सहस्रशः ।
गजाश्चातिबलास्तत्र समुत्पेतुः समन्ततः ॥१०१॥

उस युद्धमें सब ओर रथी, घुड़सवार, सहस्रों पैदल तथा अत्यन्त बलशाली गजराज एक दूसरेपर टूटे पड़ते थे ।१०१।

स संनिपातस्तुमुलस्त्यक्त्वा प्राणानवर्तत ।
वृष्णिभिः सह योधानां जरासंधस्य दारुणः ॥१०२॥

वृष्णियोंके साथ जरासंधके योद्धाओंका वह घमासान युद्ध प्राणोंका मोह छोड़कर हो रहा था और भयानक रूप धारण करता जा रहा था ॥ १०२ ॥

ततः शिनिरनाधृष्टिर्बभ्रुर्विपृथुराहुकः ।
बलदेवं पुरस्कृत्य सैन्यस्यार्द्धेन दंशिताः ॥१०३॥
दक्षिणं पक्षमासेदुः शत्रुसैन्यस्य भारत ।

भरतनन्दन ! तदनन्तर शिनि, अनाधृष्टि, बभ्रु (अक्रूर), विपृथु और आहुक (उग्रसेन)—इन सबने बलदेवजीको आगे रखकर अपनी आधी सेनासे घिरे रहकर शत्रुओंकी सेनाके दक्षिण भागपर आक्रमण किया ॥ १०३½ ॥

पालितं चेदिराजेन जरासंधेन वा विभो ॥१०४॥
उदीच्यैश्च महावीर्यैः शल्यशाल्वादिभिर्नृपैः ।
सृजन्तः शरवर्षाणि समभित्यक्तजीविताः ॥१०५॥

प्रभो ! उस भागकी रक्षा चेदिराज शिशुपाल, जरासंध तथा उत्तर दिशाके महापराक्रमी योद्धा शल्य और शाल्व आदि नरेश कर रहे थे। यादवोंने जीवनका मोह छोड़कर शत्रुओंपर बाणवर्षा आरम्भ कर दी ॥ १०४-१०५ ॥

अवगाहः पृथुः कङ्कः शतद्युम्नो विदूरथः ।
हृषीकेशं पुरस्कृत्य सैन्यस्यार्द्धेन दंशिताः ॥१०६॥

शेष सेनाके आधे भागसे घिरे हुए अवगाह, पृथु, कङ्क, शतद्युम्न और विदूरथ आदि वीरोंने भगवान् श्रीकृष्णको आगे रखकर शत्रुसेनाके वामभागपर आक्रमण किया ॥ १०६ ॥

भीष्मकेणाभिगुप्तश्च रुक्मिणा च महात्मना ।
देवकेनापि राजेन्द्र तथा मद्रेश्वरेण च ॥१०७॥
प्राच्यैश्च दाक्षिणात्यैश्च गुप्तवीर्यबलान्वितैः ।
तेषां च युद्धमभवत् समभित्यक्तजीवितम् ॥१०८॥
शक्त्यृष्टिप्रासबाणौघान् सृजतामशनिस्वनान् ।

राजेन्द्र ! वह भाग भीष्मक, महामना रुक्मी, देवक, मद्रराज शल्य तथा गुप्त बल-पराक्रमसे सम्पन्न पूर्व और दक्षिण दिशाके वीरोंसे सुरक्षित था । इन्हीं सब लोगोंमें जीवनका मोह छोड़कर युद्ध होने लगा । ये लोग बिजलीके समान गड़गड़ाहट पैदा करनेवाले शक्ति, ऋष्टि, प्रास तथा बाणसमूहोंकी वर्षा करते थे ॥ १०७–१०८½ ॥

सात्यकिश्चित्रकः श्यामो युयुधानश्च वीर्यवान् ।
राजाधिदेवो मृदुरः श्वफल्कश्च महारथः ॥१०९॥
सत्राजिच्च प्रसेनश्च बलेन महता वृताः ।
व्यूहस्य पुच्छं ते सर्वे प्रतीयुर्द्विषतां मृधे ॥११०॥
व्यूहस्यार्द्धं समासेदुर्मृदुरेणाभिरक्षिताः ।
राजभिश्चापि बहुभिर्वेणुदारिमुखैः सह ॥१११॥

सात्यकि, चित्रक, श्याम, पराक्रमी युयुधान, राजाधिदेव, मृदुर, महारथी श्वफल्क, सत्राजित् और प्रसेन—इन सबने विशाल सेनासे घिरकर युद्धस्थलमें शत्रुओंके व्यूहके पुच्छभागपर आक्रमण किया । मृदुरसे सुरक्षित रहकर इन्होंने व्यूहके आधे भागपर धावा बोल दिया था, उस समय इनका वेणुधारि आदि बहुत-से राजाओंके साथ युद्ध हुआ ॥ १०९–१११ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि मथुरोपरोधे युद्धवर्णने पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें जरासंधका मथुरापर घेरा और दोनों पक्षके योद्धाओंके युद्धका वर्णनविषयक पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३५ ॥

* * *

षट्त्रिंशोऽध्यायः

वृष्णिवंशियों तथा जरासंधके सैनिकोंका युद्ध, बलराम और जरासंधका गदायुद्ध तथा जरासंधका पराजित होकर पलायन करना

वैशम्पायन उवाच

ततो युद्धानि वृष्णीनां बभूवुः सुमहान्त्यथ ।
मागधस्य महामात्रैर्नृपैश्चैवानुयायिभिः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर जरासंधके महावतों और अनुगामी नरेशोंके साथ वृष्णिवंशियोंके कई बड़े-बड़े युद्ध हुए ॥ १ ॥

रुक्मिणा वासुदेवस्य भीष्मकेणाहुकस्य च ।
क्रथेन वसुदेवस्य कैशिकस्य तु बभ्रुणा ॥ २ ॥
गदेन चेदिराजस्य दन्तवक्त्रस्य शङ्कुना ।
तथान्यैर्वृष्णिवीराणां नृपाणां च महात्मनाम् ॥ ३ ॥
युद्धमासीद्धि सैन्यानां सैनिकैर्भरतर्षभ ।
अहानि पञ्च चैकं च षट् सप्ताष्टौ च दारुणम् ॥ ४ ॥

भरतश्रेष्ठ ! रुक्मीके साथ वासुदेव श्रीकृष्णका, भीष्मकके साथ आहुक (उग्रसेन) का, क्रथके साथ वसुदेवका, बभ्रु (अक्रूर) के साथ कैशिकका, गदके साथ चेदिराज शिशुपालका, शंकुके साथ दन्तवक्त्रका तथा अन्य सैनिकोंके साथ वृष्णिकुलके महामना वीर नरेशोंका, सारांश यह कि उभय पक्षके सैनिकोंका प्रतिद्वन्द्वी सैनिकोंके साथ दारुण द्वन्द्व युद्ध होने लगा, जो सत्ताईस दिनोंतक चलता रहा ॥ २–४ ॥

गजैर्गजा हयैरश्वाः पदाताश्च पदातिभिः ।
रथै रथा विमिश्राश्च योधा युयुधिरे नृप ॥ ५ ॥

नरेश्वर ! हाथियोंसे हाथी, घोड़ोंसे घोड़े, पैदलोंसे पैदल और रथोंसे रथ मिश्रित हो गये और इस प्रकार घोल-मेल कर सभी योद्धा विपक्षियोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ ५ ॥

जरासंधस्य नृपते रामेणासीत् समागमः ।
महेन्द्रस्येव वृत्रेण दारुणो रोमहर्षणः ॥ ६ ॥

राजा जरासंधका बलरामजीके साथ उसी प्रकार दारुण एवं रोमाञ्चकारी संघर्ष हुआ, जैसा वृत्रासुरके साथ देवराज इन्द्रका हुआ था ॥ ६ ॥

अवेक्ष्य रुक्मिणीं कृष्णो रुक्मिणं न व्यपोथयत् ।
ज्वलनार्कांशुसंकाशानाशीविषविषोपमान् ॥ ७ ॥
वारयामास कृष्णो वै शरांस्तस्य तु शिक्षया ।

रुक्मिणीके साथ भविष्यमें होनेवाले सम्बन्धको दृष्टिमें रखकर श्रीकृष्णने रुक्मीको नहीं मारा, उसकी ओरसे आनेवाले अग्नि और सूर्यकी किरणोंके समान तेजस्वी तथा विषधर सर्पोंके समान विषैले बाणोंका उन्होंने अपनी शिक्षाके बलसे निवारण कर दिया ॥ ७½ ॥

इत्येषां सुमहानासीद् बलौघानां परिक्षयः ॥ ८ ॥
उभयोः सेनयो राजन् मांसशोणितकर्दमः ।

राजन् ! इस प्रकार दोनों सेनाओंके सैनिकसमूहोंका महान् विनाश हुआ । वहाँ रक्त और मांसकी कीच जम गयी ॥ ८½ ॥

कबन्धानि समुत्तस्थुः सुबहूनि समन्ततः ॥ ९ ॥
तस्मिन् विमर्दे योधानां संख्यावृत्तिकराणि च ।

योद्धाओंके उस महान् संहारमें चारों ओरसे बहुत-से कबन्ध उठने लगे, जिनकी गणना नहीं की जा सकती थी ॥ ९½ ॥

रथी रामो जरासंधं शरैराशीविषोपमैः ॥ १० ॥
आवृण्वन्नभ्ययाद् वीरस्तं च राजा स मागधः ।
अभ्यवर्तत वेगेन स्यन्दनेनाशुगामिना ॥ ११ ॥

रथारूढ़ वीर बलरामने विषधर सर्पोंके समान भयंकर बाणोंद्वारा जरासंधको आच्छादित करते हुए उसपर आक्रमण किया तथा मगधराज भी अपने शीघ्रगामी रथद्वारा बड़े वेगसे उनका सामना करनेके लिये आ पहुँचा ॥ १०–११ ॥

अन्योन्यं विविधैरस्त्रैर्विद्ध्वा विद्ध्वा विनेदतुः ।
तौ क्षीणशस्त्रौ विरथौ हताश्वौ हतसारथी ॥ १२ ॥
गदे गृहीत्वा विक्रान्तावन्योन्यमभिधावताम् ।

वे दोनों नाना प्रकारके अस्त्रोंद्वारा एक दूसरेको घायल करके जोर-जोरसे गरजते थे । दोनोंके अस्त्र-शस्त्र क्षीण हो गये, दोनों ही रथहीन हो गये तथा दोनोंके ही घोड़े और सारथि मारे गये । उस दशामें वे दोनों पराक्रमी योद्धा गदा हाथमें लेकर एक-दूसरेपर टूट पड़े ॥ १२½ ॥

कम्पयन्तौ भुवं वीरौ तावुद्यतगदावुभौ ॥ १३ ॥
ददृशाते महात्मानौ गिरी सशिखराविव ।

हाथमें गदा उठाये वे दोनों महामनस्वी वीर पृथ्वीको कम्पित करते हुए वहाँ एक-एक शिखरवाले दो पर्वतोंके समान दिखायी देते थे ॥ १३½ ॥

व्युपारमन्त युद्धानि पश्यतां तौ महाभुजौ ।
संरब्धावभिधावन्तौ गदायुद्धेषु विश्रुतौ ॥ १४ ॥

उन दोनों महाबाहु वीरोंको युद्धके लिये उद्यत देख दूसरे योद्धाओंके युद्ध बंद हो गये । उन दोनोंकी गदायुद्धमें ख्याति थी । वे दोनों बड़े रोषमें भरकर एक-दूसरेपर धावा करते थे ॥ १४ ॥

उभौ तौ परमाचार्यौ लोके ख्यातौ महाबलौ ।
मत्ताविव गजौ युद्धे तावन्योन्यमयुध्यताम् ॥ १५ ॥

वे दोनों महाबली वीर संसारमें गदायुद्धके उत्तम आचार्यके रूपमें विख्यात थे तथा जैसे दो मतवाले हाथी लड़ते हैं, उसी प्रकार रणभूमिमें वे एक-दूसरेके साथ जूझ रहे थे ॥ १५ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च समहर्षयः ।
समन्ततश्चाप्सरसः समाजग्मुः सहस्रशः ॥ १६ ॥

उस समय गन्धर्वोंसहित देवता, सिद्ध, महर्षि तथा सहस्रों अप्सराएँ सब ओरसे उस युद्धको देखनेके लिये आ पहुँचीं ॥ १६ ॥

तद् देवयक्षगन्धर्वमहर्षिभिरलंकृतम् ।
शुशुभेऽभ्यधिकं राजन् दिवं ज्योतिर्गणैरिव ॥ १७ ॥
अभिदुद्राव रामं तु जरासंधो महाबलः ।
सव्यं मण्डलमाश्रित्य बलदेवस्तु दक्षिणम् ॥ १८ ॥

राजन् ! देवताओं, यक्षों, गन्धर्वों और महर्षियोंसे अलंकृत हुआ आकाशका वह भाग नक्षत्रसमूहोंसे विभूषित हुआ-सा अधिक शोभा पाने लगा। महाबली जरासंध बायेंसे पैंतरा देकर बलरामजीकी ओर दौड़ा और बलरामजीने दाहिनेसे उसपर आक्रमण किया ॥ १७–१८ ॥

प्रहरन्तौ ततोऽन्योन्यं गदायुद्धविशारदौ ।
दन्ताभ्यामिव मातङ्गौ नादयन्तौ दिशो दश ॥ १९ ॥
गदानिपातो रामस्य शुश्रुवेऽशनिनिःस्वनः ।
जरासंधस्य च रणे पर्वतस्येव दीर्यतः ॥ २० ॥

गदायुद्धमें कुशल वे दोनों वीर दसों दिशाओंको निनादित करते हुए एक दूसरेपर उसी प्रकार प्रहार करने लगे, जैसे दो मतवाले हाथी परस्पर दाँतोंसे आघात करते हों। बलरामजी जब गदाका आघात करते, तब वज्रपातके समान भयानक शब्द सुनायी पड़ता था तथा रणभूमिमें जरासंधके गदाघातसे ऐसी आवाज होती थी, मानो कोई पर्वत फट पड़ा हो ॥१९-२०॥

न स कम्पयते रामं जरासंधकरच्युता ।
गदा गदाभृतां श्रेष्ठं विन्ध्यं गिरिमिवानिलः ॥ २१ ॥
रामस्य तु गदावेगं वीर्यात् स मगधेश्वरः ।
सेहे धैर्येण महता शिक्षया च व्यपोहयत् ॥ २२ ॥

जैसे प्रचण्ड वायु विन्ध्यपर्वतको नहीं हिला सकती, उसी प्रकार जरासंधके हाथसे छूटी हुई गदा गदाधारियोंमें श्रेष्ठ बलरामजीको कम्पित नहीं कर पाती थी। बलरामजीकी गदाके वेगको मगधराज जरासंध अपने बलकी अधिकताके कारण महान् धैर्यके साथ सह लेता था तथा अपनी शिक्षाके द्वारा उनके प्रहारको व्यर्थ कर देता था ॥ २१-२२ ॥

एवं तौ तत्र संग्रामे विचरन्तौ महाबलौ ।
मण्डलानि विचित्राणि विचेरतुररिंदमौ ॥ २३ ॥

इस प्रकार शत्रुओंका दमन करनेवाले वे दोनों महाबली योद्धा उस संग्राममें विचित्र पैंतरे दिखाते हुए विचर रहे थे॥

व्यायच्छन्तौ चिरं कालं परिश्रान्तौ च तस्थतुः ।
समाश्वस्य मुहूर्तं तु पुनरन्योन्यमाहताम् ॥ २४ ॥

देरतक परिश्रम करके थक जानेपर दोनों खड़े हो जाते थे; फिर दो घड़ीतक सुस्ताकर एक-दूसरेपर प्रहार करने लगाते थे ॥ २४ ॥

एवं तौ योधमुख्यौ तु समं युयुधतुश्चिरम् ।
न च तौ युद्धवैमुख्यमुभावेव प्रजग्मतुः ॥ २५ ॥

इस प्रकार वे दोनों प्रमुख योद्धा समानभावसे देरतक लड़ते रहे। वे दोनों ही युद्धसे विमुख नहीं हुए ॥ २५ ॥

अथापश्यद् गदायुद्धे विशेषं तस्य वीर्यवान् ।
रामः क्रुद्धो गदां त्यक्त्वा जग्राह मुसलोत्तमम् ॥२६॥

तदनन्तर पराक्रमी बलरामजीने जब गदायुद्धमें जरासंधकी विशेषता देखी, तब उन्होंने कुपित हो गदा त्यागकर उत्तम मूसल हाथमें लिया ॥ २६ ॥

तमुद्यन्तं तदा दृष्ट्वा मुसलं घोरदर्शनम् ।
अमोघं बलदेवेन क्रुद्धेन तु महारणे ॥ २७ ॥
ततोऽन्तरिक्षे वागासीत् सुस्वरा लोकसाक्षिणी ।
उवाच बलदेवं तं समुद्यतहलायुधम् ॥ २८ ॥

उस महासमरमें कुपित हुए बलदेवजीके द्वारा उस भयानक तथा अमोघ मूसलको उठाया जाता देख आकाशमें सब लोगोंके सामने स्पष्ट शब्दोंमें देववाणी सुनायी दी। उसने हल-मूसल उठाये हुए बलदेवजीसे कहा—॥ २७-२८ ॥

न त्वया राम वध्योऽयमलं खेदेन मानद ।
विदितोऽस्य मया मृत्युस्तस्मात् साधु व्युपारम ।
अचिरेणैव कालेन प्राणांस्त्यक्ष्यति मागधः ॥ २९ ॥

'दूसरोंको मान देनेवाले बलरामजी ! जरासंधका वध आपके हाथसे होनेवाला नहीं है; अतः खेद करनेकी आवश्यकता नहीं है। इसकी मृत्युका हेतु मुझे विदित हो गया है; अतः आप इसे मारनेकी चेष्टासे निवृत्त हो जाइये। मगधराज जरासंध थोड़े ही समयमें अपने प्राणोंका परित्याग करेगा' ॥ २९ ॥

जरासंधस्तु तच्छ्रुत्वा विमनाः समपद्यत ।
न प्रजह्रे ततस्तस्मै पुनरेव हलायुधः ॥ ३० ॥

यह सुनकर जरासंधका मन उदास हो गया और बलरामजीने फिर उसपर प्रहार नहीं किया ॥ ३० ॥

तौ व्युपारमतां युद्धे वृष्णयस्ते च पार्थिवाः ।
असक्तमभवद् युद्धं तेषामेवं सुदारुणम् ॥ ३१ ॥
दीर्घकालं महाराज निघ्नतामितरेतरम् ।

अब वे दोनों युद्धसे विरत हो गये; फिर तो वृष्णिवंशी योद्धा तथा दूसरे राजाओंने भी युद्ध बंद कर दिया। महाराज! इस प्रकार दीर्घकालतक एक-दूसरेपर प्रहार करते हुए उन योद्धाओंका जो अत्यन्त भयंकर युद्ध अविराम गतिसे चलता आ रहा था, वह शान्त हो गया ॥ ३१½ ॥

पराजिते त्वपक्रान्ते जरासंधे महीपतौ ॥ ३२ ॥
अस्तं याते दिनकरे नानुसस्रुस्तदा निशि ।

राजा जरासंध जब परास्त होकर युद्धसे हट गया और सूर्यदेव अस्त हो गये, तब रातके समय यादवोंने फिर उसका पीछा नहीं किया ॥ ३२½ ॥

समानीय स्वकं सैन्यं लब्धलक्ष्या महाबलाः ॥ ३३ ॥
पुरीं प्रविविशुर्हृष्टाः केशवेनाभिपालिताः ।

भगवान् श्रीकृष्णद्वारा सुरक्षित महाबली यादव अपने लक्ष्यमें सफल हो चुके थे, अतः वे अपनी सेना साथ लेकर बड़ी प्रसन्नताके साथ मथुरापुरीमें लौट आये ॥ ३३½ ॥

खाच्च्युतान्यायुधान्येवं तान्येवान्तर्दधुस्तदा ॥ ३४ ॥
जरासंधोऽपि नृपतिर्विमनाः स्वपुरीं ययौ ।
राजानश्चानुगा येऽस्य स्वराष्ट्राण्येव ते ययुः ॥ ३५ ॥

इसी तरह आकाश या दिव्य लोकसे जो आयुध आये थे, वे भी तत्काल अन्तर्धान हो गये । इधर राजा जरासंध भी उदास होकर अपनी पुरीको लौट गया । उसके साथ जो राजा लोग आये थे, वे भी अपने-अपने राष्ट्रोंको ही लौट गये ॥

जरासंधं तु ते जित्वा मेनिरे नैव निर्जितम् ।
वृष्णयः कुरुशार्दूल राजा ह्यतिबलः स वै ॥ ३६ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! वृष्णिवंशी वीर जरासंधको जीतकर भी उसे हारा हुआ नहीं मानते थे; क्योंकि उस राजाके पास बहुत बड़ी सेना थी तथा वह स्वयं भी अत्यन्त बलशाली था ॥

दश चाष्टौ च संग्रामाञ्जरासन्धस्य यादवाः ।
ददुर्न चैनं समरे हन्तुं शेकुर्महाबलाः ॥ ३७ ॥

महाबली यादवोंने जरासंधको अठारह बार युद्धका अवसर प्रदान किया; किंतु वे किसी भी समरमें उसे मार न सके ॥

अक्षौहिण्यश्च तस्यासन् विंशतिश्च महामते ।
जरासन्धस्य नृपतेस्तदर्थं याः समागताः ॥ ३८ ॥

महामते ! राजा! जरासंधके पास बीस अक्षौहिणी सेनाएँ थीं, जो उसके लिये लड़नेको आयी थीं ॥ ३८ ॥

अल्पत्वादभिभूतास्तु वृष्णयो भरतर्षभ ।
बार्हद्रथेन राजेन्द्र राजभिः सहितेन वै ॥ ३९ ॥

भरतश्रेष्ठ ! राजेन्द्र ! वृष्णिवंशी वीर संख्यामें बहुत कम थे, इसलिये वे राजाओंसहित जरासंधसे अभिभूत हो जाते थे ॥ ३९ ॥

जित्वा तु मागधं संख्ये जरासन्धं महीपतिम् ।
विहरन्ति स्म सुखिनो वृष्णिसिंहा महारथाः ॥ ४० ॥

मगधके राजा पृथ्वीपति जरासंधको इस प्रकार युद्धमें जीतकर वृष्णिवंशके सिंह-जैसे पराक्रमी महारथी सुखपूर्वक वहाँ विहार करने लगे ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि जरासंधापयानं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें जरासंधका
पलायनविषयक छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३६ ॥

◆

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

जरासंधके पुनः आक्रमणसे शङ्कित यादवोंकी सभामें विकद्रुका भाषण—राजा हर्यश्वका चरित्र तथा उनसे यदु एवं यादवोंकी उत्पत्तिका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

स कृष्णस्तत्र बलवान् रौहिणेयेन संगतः ।
मथुरां यादवाकीर्णां पुरीं तां सुखमावसत् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! महाबली भगवान् श्रीकृष्ण रोहिणीकुमार बलदेवजीके साथ मिलकर यादवोंसे भरी हुई उस मथुरापुरीमें सुखपूर्वक रहने लगे ॥ १ ॥

प्राप्तयौवनदेहस्तु युक्तो राजश्रिया विभुः ।
चचार मथुरां प्रीतः सवनाकरभूषणाम् ॥ २ ॥

उनके श्रीअङ्गोंमें यौवनावस्थाका प्रवेश हुआ था । वे भगवान् राजोचित शोभासे सम्पन्न हो वन-प्रान्तसे विभूषित मथुरामें प्रसन्नतापूर्वक विचरते थे ॥ २ ॥

कस्यचित् त्वथ कालस्य राजा राजगृहेश्वरः ।
सस्मार निहतं कंसं जरासंधः प्रतापवान् ॥ ३ ॥

कुछ कालके अनन्तर राजगृहके स्वामी प्रतापी राजा जरासंधने कंसके मारे जानेकी घटनाको फिरसे स्मरण किया ॥

युद्धाय योजितो भूयो दुहितृभ्यां महीपतिः ।
दश सप्त च संग्रामाञ्जरासंधस्य यादवाः ।
ददुर्न चैनं समरे हन्तुं शेकुर्महारथाः ॥ ४ ॥

उसकी दोनों कन्याओंने पुनः उसे युद्धके लिये उत्साहित किया । यादवोंने जरासंधको क्रमशः सत्रह बार युद्धका अवसर दिया; परंतु वे महारथी यादव समरभूमिमें उसे मार न सके ॥

ततो मागधराट् श्रीमांश्चतुरङ्गबलान्वितः ।
भूयोऽप्यष्टादशं कर्तुं संग्रामं स समारभत् ॥ ५ ॥

तदनन्तर श्रीमान् मगधराजने चतुरङ्गिणी सेनाको साथ लेकर फिर अठारहवीं बार यादवोंके साथ युद्ध करनेका आयोजन किया ॥ ५ ॥

वैलक्ष्यात् पुनरेवासौ राजा राजगृहेश्वरः ।
जरासंधो बली श्रीमान् पाकशासनविक्रमः ॥ ६ ॥

राजगृहका स्वामी बलवान् राजा श्रीमान् जरासंध इन्द्रके समान पराक्रमी था । उसने पहलेकी पराजयसे लज्जाका अनुभव करनेके कारण पुनः युद्धकी तैयारी की ॥ ६ ॥

स साधनेन महता बृहद्रथसुतो बली ।
कृष्णस्य वधमन्विच्छन् भूयो वै संन्यवर्तत ॥ ७ ॥

बृहद्रथका वह बलवान् पुत्र महान् साधनसे सम्पन्न हो श्रीकृष्णका वध चाहता हुआ फिर मथुरापुरीकी ओर लौटा ॥

तं श्रुत्वा सहिताः सर्वे निवृत्तं मगधेश्वरम्।
यादवा मन्त्रयामासुर्जरासंधभयार्दिताः ॥ ८ ॥

मगधराजको पुनः लौटा हुआ सुनकर जरासंधके भयसे पीड़ित हुए सब यादव एक साथ बैठकर मन्त्रणा करने लगे ॥

ततः प्राह महातेजा विकद्रुर्नयकोविदः।
कृष्णं कमलपत्राक्षमुग्रसेनस्य शृण्वतः ॥ ९ ॥

उस समय नीतिकुशल महातेजस्वी विकद्रुने उग्रसेनके सुनते हुए कमलनयन श्रीकृष्णसे कहा—॥ ९ ॥

श्रूयतां तात गोविन्द कुलस्यास्य समुद्भवः।
श्रूयतामभिधास्यामि प्राप्तकालमहं ततः।
युक्तं चेन्मन्यसे साधो करिष्यसि वचो मम ॥ १० ॥

'तात! गोविन्द! इस कुलकी उत्पत्तिका प्रसंग सुनो। इसके लिये उपयुक्त अवसर आया है, इसलिये बता रहा हूँ; ध्यान देकर श्रवण करो। साधो! इसे सुनकर यदि उचित समझो तो मेरे कथनानुसार कार्य करना ॥ १० ॥

यादवस्यास्य वंशस्य समुद्भवमशेषतः।
यथा मे कथितः पूर्वं व्यासेन विदितात्मना ॥ ११ ॥

'यादववंशकी इस उत्पत्तिका सारा प्रसंग आत्मज्ञानी व्यासजीने पूर्वकालमें मुझे जैसा बताया था, वैसा ही सुना रहा हूँ ॥ ११ ॥

आसीद् राजा मनोर्वंशे श्रीमानिक्ष्वाकुसम्भवः।
हर्यश्व इति विख्यातो महेन्द्रसमविक्रमः ॥ १२ ॥

'वैवस्वत मनुके वंशमें इक्ष्वाकुके पुत्र हर्यश्व नामसे विख्यात एक श्रीसम्पन्न राजा हो गये हैं, जो महेन्द्रके तुल्य पराक्रमी थे ॥ १२ ॥

तस्यासीद् दयिता भार्या मधोर्दैत्यस्य वै सुता।
देवी मधुमती नाम यथेन्द्रस्य शची तथा ॥ १३ ॥

'मधु नामक दैत्यकी पुत्री मधुमती देवी उनकी प्राणप्यारी भार्या थी। जैसे इन्द्रको शची प्रिय हैं, उसी प्रकार हर्यश्वको मधुमती प्रिय थी ॥ १३ ॥

सा यौवनगुणोपेता रूपेणाप्रतिमा भुवि।
मनोरथकरी राज्ञः प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥ १४ ॥

'वह यौवनके गुणोंसे सम्पन्न थी। इस पृथ्वीपर उसके रूपसौन्दर्यकी कहीं तुलना नहीं थी। वह राजा हर्यश्वके मनोरथको सिद्ध करनेवाली होनेके कारण उन्हें प्राणोंसे भी अधिक माननीया थी ॥ १४ ॥

दानवेन्द्रकुले जाता सुश्रोणी कामरूपिणी।
एकपत्नीव्रतधरा खेचरा रोहिणी यथा ॥ १५ ॥

'दानवराज मधुके कुलमें उत्पन्न हुई वह सुन्दर कटिप्रदेशवाली कामरूपिणी देवी रोहिणीके समान एकपत्नीव्रतका पालन करनेवाली तथा आकाशमें विचरनेवाली थी ॥ १५ ॥

सा तमिक्ष्वाकुशार्दूलं कामयामास कामिनी।
स कदाचिन्नरश्रेष्ठो भ्रात्रा ज्येष्ठेन माधव ॥ १६ ॥
राज्यान्निरस्तो विश्वस्तः सोऽयोध्यां सम्परित्यजत्।
स तदाल्पपरीवारः प्रियया सहितो वने ॥ १७ ॥

'वह कामिनी होकर इक्ष्वाकुवंशके श्रेष्ठ वीर हर्यश्वको सम्पूर्ण हृदयसे चाहती थी। माधव! एक दिन बड़े भाईने उनके विश्वासपर रहनेवाले नरश्रेष्ठ हर्यश्वको राज्यसे निकाल दिया, तब उन्होंने अयोध्या छोड़ दी और थोड़े-से परिवारके साथ अपनी प्रिया मधुमतीसहित वे वनमें रहने लगे ॥

रेमे समेत्य कालज्ञः प्रियया कमलेक्षणः।
भ्रात्रा विनिष्कृतं राज्यात् प्रोवाच कमलेक्षणा ॥ १८ ॥

'कालकी महिमाको जाननेवाले कमलनयन हर्यश्व अपनी प्यारी पत्नीके साथ मिलकर वहाँ बड़े आनन्दसे समय बिताने लगे। एक दिन कमलनयनी मधुमतीने भाईद्वारा राज्यसे निकाले गये पतिसे कहा—॥ १८ ॥

एह्यागच्छ नरश्रेष्ठ त्यज राज्यकृतां स्पृहाम्।
गच्छावः सहितौ वीर मधोर्मम पितुर्गृहम् ॥ १९ ॥

'नरश्रेष्ठ वीर! अयोध्याके राज्यकी अभिलाषा छोड़ दो और आओ मेरे साथ चलो। हम दोनों मेरे पिता मधुके घरपर चलें ॥ १९ ॥

रम्यं मधुवनं नाम कामपुष्पफलद्रुमम्।
सहितौ तत्र रंस्यावो यथा दिवि गतौ तथा ॥ २० ॥

'सुरम्य मधुवन नामक वन ही मेरे पिताका निवासस्थान है। वहाँके वृक्ष इच्छानुसार फूल और फल देनेवाले हैं। वहाँ हम दोनों साथ रहकर स्वर्गवासियोंके समान मौज करेंगे॥

पितुर्मे दयितस्त्वं हि मातुर्मम च पार्थिव।
मत्प्रियार्थं प्रियतरो भ्रातुश्च लवणस्य वै ॥ २१ ॥

'पृथ्वीनाथ! मेरे पिता और माता दोनोंको ही तुम बहुत प्रिय हो तथा मेरा प्रिय करनेके लिये मेरा भाई लवणासुर भी तुम्हें अत्यन्त प्रिय मानेगा ॥ २१ ॥

रंस्यावस्तत्र सहितौ राज्यस्थाविव कामगौ।
तत्र गत्वा नरश्रेष्ठ ह्यमराविव नन्दने।
भद्रं ते विहरिष्यावो यथा देवपुरे तथा ॥ २२ ॥

'नरश्रेष्ठ! वहाँ जाकर हम दोनों साथ-साथ रहकर राज्यपर बैठे हुए दम्पतियोंकी भाँति इच्छानुरूप वस्तुओंका उपभोग करते हुए रमण करेंगे। जैसे देवपुरीके नन्दनवनमें देवाङ्गना और देवता विहार करते हैं, उसी प्रकार वहाँ हम दोनों विहार करेंगे। आपका भला हो ॥ २२ ॥

तं त्यजाव महाराज भ्रातरं तेऽभिमानिनम् ।
आवयोर्द्वेषिणं नित्यं मत्तं राज्यमदेन वै ॥ २३ ॥

'महाराज ! आपका भाई राज्यके मदसे सदा उन्मत्त रहकर अभिमानमें भरा रहता है और हम दोनोंसे द्वेष रखता है; अतः हम दोनों उसे त्याग दें ॥ २३ ॥

धिगिमं गर्हितं वासं भृत्यवच्च पराश्रयम् ।
गच्छावः सहितौ वीर पितुर्मे भवनान्तिकम् ॥ २४ ॥

'दासकी भाँति दूसरेके आश्रित होकर रहना अच्छा नहीं है; अतः इस निन्दित निवासको धिक्कार है । वीर ! चलो, हम दोनों मेरे पिताके घरके पास चलें' ॥ २४ ॥

तस्य सम्यक्प्रवृत्तस्य पूर्वजं भ्रातरं प्रति ।
कामार्तस्य नरेन्द्रस्य पत्न्यास्तद् रुरुचे वचः ॥ २५ ॥

'श्रीकृष्ण ! यद्यपि हर्यश्वका अपने बड़े भाईके प्रति अच्छा बर्ताव था (वह उनसे कोई प्रतिशोध नहीं लेना चाहता था);तो भी कामसे पीड़ित होनेके कारण उस नरेशको पत्नीकी बात पसंद आ गयी ॥ २५ ॥

ततो मधुपुरं राजा हर्यश्वः स जगाम च ।
भार्यया सह कामिन्या कामी पुरुषपुङ्गवः ॥ २६ ॥

'तब कामी पुरुषप्रवर राजा हर्यश्व अपनी कामवती पत्नीके साथ मधुपुरको चला गया ॥ २६ ॥

मधुना दानवेन्द्रेण स साम्ना समुदाहृतः ।
स्वागतं वत्स हर्यश्व प्रीतोऽस्मि तव दर्शनात् ॥ २७ ॥

'वहाँ दानवराज मधुने उससे सान्त्वनापूर्वक कहा—'बेटा हर्यश्व ! तुम्हारा स्वागत है । मैं तुम्हारे दर्शनसे (अथवा तुमसे मिलकर) बहुत प्रसन्न हूँ ॥ २७ ॥

यदेतन्मम राज्यं वै सर्वं मधुवनं विना ।
ददामि तव राजेन्द्र वासश्च प्रतिगृह्यताम् ॥ २८ ॥

'राजेन्द्र ! यह जो मेरा सारा राज्य है, उसे मैं केवल मधुवनको छोड़कर तुम्हें सौंप रहा हूँ । तुम यहाँ निवास करो ॥ २८ ॥

वनेऽस्मिँल्लवणश्चायं सहायस्ते भविष्यति ।
अमित्रनिग्रहे चैव कर्णधारत्वमेष्यति ॥ २९ ॥

'इस वनमें यह मेरा पुत्र लवण भी तुम्हारा सहायक होगा तथा शत्रुओंका निग्रह करनेमें यह तुम्हारे लिये कर्णधारका काम देगा ॥ २९ ॥

पालयैनं शुभं राष्ट्रं समुद्रानूपभूषितम् ।
गोसमृद्धं श्रिया जुष्टमाभीरप्रायमानुषम् ॥ ३० ॥

'तुम समुद्रके जलप्राय प्रदेशसे विभूषित इस शुभ राष्ट्रका पालन करो । यह गौओंसे समृद्ध और लक्ष्मीसे सेवित है तथा इसमें अधिकतर आमीर जातिके लोगोंका निवास है ॥

अत्र ते वसतस्तात दुर्गं गिरिपुरं महत् ।
भविता पार्थिवावासः सुराष्ट्रविषयो महान् ॥ ३१ ॥
अनूपविषयश्चैव समुद्रान्ते निरामयः ।

'तात ! यहाँ रहनेपर महान् एवं दुर्गम गिरिपुर (गिरिनार या रैवतक पर्वतसे मिला हुआ नगर) तुम्हारी राजधानीके रूपमें प्रतिष्ठित होगा । यह महान् सुराष्ट्र राज्य समुद्रके निकट और जलप्राय प्रदेशसे युक्त है । यहाँ किसी प्रकारका रोग नहीं होता ॥ ३१½ ॥

आनर्तं नाम ते राष्ट्रं भविष्यत्यायतं महत् ॥ ३२ ॥
तद् भविष्यमहं मन्ये कालयोगेन पार्थिव ।
अध्यास्यतां यथाकालं पार्थिवं वृत्तमुत्तमम् ॥ ३३ ॥

'तुम्हारा विशाल एवं विस्तृत राज्य आनर्त नामसे विख्यात होगा । पृथ्वीनाथ ! मेरा विश्वास है कि कालयोगसे वह अवश्यम्भावी है । तुम समयानुसार उत्तम राजोचित बर्तावका आश्रय लेकर यहाँ रहो ॥ ३२-३३ ॥

ययातमपि वंशस्ते समेष्यति च यादवम् ।
अनु वंशं च वंशस्ते सोमस्य भविता किल ॥ ३४ ॥

'तुम्हारा यह वंश ययाति एवं यदुके वंशमें मिल जायगा। चन्द्रवंशके भीतर तुम्हारा वंश चलेगा (सूर्यवंशसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं रह जायगा) ॥ ३४ ॥

एष मे विभवस्तात तवेमं विषयोत्तमम् ।
दत्त्वा यास्यामि तपसे सागरं लवणालयम् ॥ ३५ ॥

'तात ! यही मेरा विभव है । मैं तुम्हें यह उत्तम राज्य देकर तपस्याके लिये लवणसमुद्रको चला जाऊँगा ॥ ३५ ॥

लवणेन समायुक्तस्त्वमिमं विषयोत्तमम् ।
पालयस्वाखिलं तात स्वस्य वंशस्य वृद्धये ॥ ३६ ॥

'तात ! तुम लवणके साथ रहकर अपने वंशकी वृद्धिके लिये इस समस्त उत्तम राज्यका पालन करो; ॥ ३६ ॥

बाढमित्येव हर्यश्वः प्रतिजग्राह तत् पुरम् ।
स च दैत्यस्तपोवासं जगाम वरुणालयम् ॥ ३७ ॥

'तब 'बहुत अच्छा' कहकर हर्यश्वने उस पुरको ग्रहण किया; फिर वह दैत्य तपस्याके लिये समुद्रको चला गया ॥

हर्यश्वश्च महातेजा दिव्ये गिरिवरोत्तमे ।
निवेशयामास पुरं वासार्थममरोपमः ॥ ३८ ॥

'अमरोंके समान महातेजस्वी हर्यश्वने दिव्य एवं श्रेष्ठ गिरिवर (रैवतक) के समीप अपने रहनेके लिये एक नगर बसाया ॥ ३८ ॥

आनर्तं नाम तद् राष्ट्रं सुराष्ट्रं गोधनायुतम् ।
अचिरेणैव कालेन समृद्धं प्रत्यपद्यत ॥ ३९ ॥

'आनर्त नामसे प्रसिद्ध वह गोधनसम्पन्न राष्ट्र सुराष्ट्र

कहलाया और थोड़े ही समयमें समृद्धिशाली हो गया ॥३९॥

अनूपविषये चैव वेलावनविभूषितम् ।
विचित्रं क्षेत्रसस्याढ्यं प्राकारग्रामसंकुलम् ॥ ४० ॥
शशास नृपतिः स्फीतं तद् राष्ट्रं राष्ट्रवर्द्धनः ।
राजधर्मेण यशसा प्रजानां नन्दिवर्द्धनः ॥ ४१ ॥

'जलप्राय देशमें समुद्रतटवर्ती वनोंसे विभूषित, विचित्र, खेतों और हरी-भरी खेतीसे सुशोभित, परकोटों और गाँवोंसे युक्त तथा धनधान्यसे सम्पन्न उस राष्ट्रपर राष्ट्रकी वृद्धि करनेवाले राजा हर्यश्व शासन करने लगे और राजधर्म एवं यशसे प्रजाका आनन्द बढ़ाने लगे ॥ ४०-४१ ॥

तस्य सम्यक् प्रचारेण हर्यश्वस्य महात्मनः ।
व्यवर्धत तदक्षोभ्यं राष्ट्रं राष्ट्रगुणैर्युतम् ॥ ४२ ॥

'महामना हर्यश्वके उत्तम आचार-व्यवहारके कारण वह अक्षोभ्य राष्ट्र उत्तम राष्ट्रके गुणोंसे सम्पन्न हो निरन्तर उन्नति करने लगा ॥ ४२ ॥

स हि राजा स्थितो राज्ये राजवृत्तेन शोभितः ।
प्राप्तः कुलोचितां लक्ष्मीं वृत्तेन च नयेन च ॥ ४३ ॥

'राज्यपर स्थित होकर राजोचित बर्तावसे सुशोभित होनेवाले उन राजा हर्यश्वने सदाचार और उत्तम नीतिसे अपने कुलके लिये उचित लक्ष्मी प्राप्त कर ली ॥ ४३ ॥

तस्यैव च सुवृत्तस्य पुत्रकामस्य धीमतः ।
मधुमत्यां सुतो जज्ञे यदुर्नाम महायशाः ॥ ४४ ॥

'पुत्रकी इच्छा रखनेवाले उन्हीं सदाचारी एवं बुद्धिमान् हर्यश्वके मधुमतीके गर्भसे महायशस्वी यदुका जन्म हुआ* ॥ ४४ ॥

सोऽवर्धत महातेजा यदुर्दुन्दुभिनिःस्वनः ।
राजलक्षणसम्पन्नः सपत्नैर्दुरतिक्रमः ॥ ४५ ॥

'महातेजस्वी यदुका स्वर दुन्दुभिनिनादके समान गम्भीर था। वे राजोचित लक्षणोंसे सम्पन्न होकर दिनोंदिन बढ़ने लगे। शत्रुओंके लिये वे सर्वथा दुर्जय थे ॥ ४५ ॥

यदुर्नामाभवत् पुत्रो राजलक्षणपूजितः ।
यथास्य पूर्वजो राजा पूरुः स सुमहायशाः ॥ ४६ ॥

'हर्यश्वका वह पुत्र यदु नामसे ही विख्यात हुआ। यदु राजोचित लक्षणोंसे सम्मानित थे, ठीक उसी तरह जैसे उनके पूर्वज राजा महायशस्वी पूरु सम्मानित होते थे ॥ ४६ ॥

स एक एव तस्यासीत् पुत्रः परमशोभनः ।
ऊर्जितः पृथिवीभर्ता हर्यश्वस्य महात्मनः ॥ ४७ ॥

'महामना हर्यश्वके एक ही पुत्र यदु हुए। वे परम सुन्दर, बलवान् और पृथ्वीका भरण-पोषण करनेमें समर्थ थे ॥ ४७ ॥

दस वर्षसहस्राणि स कृत्वा राज्यमव्ययम् ।
जगाम त्रिदिवं राजा धर्मेणाप्रतिमो भुवि ॥ ४८ ॥

'राजा हर्यश्व दस हजार वर्षोंतक अक्षय राज्यका उपभोग करके स्वर्गलोकमें चले गये। वे भूमण्डलके अनुपम धर्मात्मा थे ॥ ४८ ॥

ततो यदुरदीनात्मा प्रजाभिस्त्वभ्यषिच्यत ।
पितर्युपरते श्रीमान् क्रमेणार्क इवोदितः ॥ ४९ ॥

'पिताके मर जानेपर प्रजाओंने उदारचेता श्रीमान् यदुको उनके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया। वे क्रमशः एक सूर्यके बाद दूसरे सूर्यके समान उदित हो प्रकाशित होने लगे ॥ ४९ ॥

शशास चेमां वसुधां प्रशान्तभयतस्कराम् ।
यदुरिन्द्रप्रतीकाशो नृपो येनास्म यादवाः ॥ ५० ॥

'वे इन्द्रतुल्य तेजस्वी यदु, जिनके कारण हमलोग यादव कहलाते हैं, जब इस पृथ्वीका शासन करने लगे, तब यहाँका सारा भय शान्त हो गया। चोर-लुटेरे आदि लुप्त हो गये ॥ ५० ॥

स कदाचिन्नृपश्चक्रे जलक्रीडां महोदधौ ।
दारैः सह गुणोदारैः सतार इव चन्द्रमाः ॥ ५१ ॥

'एक समयकी बात है, राजा यदु अपनी उदार गुणवाली पत्नियोंके साथ ताराओंसहित चन्द्रमाके समान महासागरमें जलक्रीडा कर रहे थे ॥ ५१ ॥

स तत्र सहसा क्षिप्तस्तितीर्षुः सागराम्भसि ।
धूम्रवर्णेन नृपतिः सर्पराजेन वीर्यवान् ॥ ५२ ॥
सोऽपाकृष्यत वेगेन जले सर्पपुरं महत् ।

'वे पराक्रमी राजा यदु जलको पार करके निकलना ही चाहते थे कि सहसा किसीने उन्हें समुद्रके गहरे जलमें डाल दिया। बात यह हुई कि सर्पोंके राजा धूम्रवर्णने बड़े वेगसे उनको खींचा और जलके भीतर बसे हुए सर्पोंके एक महान् नगरमें पहुँचा दिया ॥ ५२½ ॥

मणिस्तम्भगृहद्वारं मुक्तादामविभूषितम् ॥ ५३ ॥
कीर्णं शङ्खकुलैः शुभ्रै रत्नराशिविभूषितम् ।
प्रवालाङ्कुरपत्राढ्यैः पादपैरुपशोभितम् ॥ ५४ ॥

'वहाँके खम्भे, घर और द्वार सभी मणियोंके बने हुए थे। उन सबको मोतीकी लड़ियों एवं झालरोंसे सजाया गया था। वहाँ ढेर-के-ढेर श्वेत शङ्खोंके समूह पड़े हुए थे। रत्न

---

* कहते हैं, जैसे ब्रह्माजीके मानसपुत्र वसिष्ठ किसी कारणवश मित्रावरुणके अंशसे नूतन शरीर धारण करके प्रकट हुए; फिर भी वसिष्ठ ही बने रहे, उसी प्रकार ययातिपुत्र महाराज यदु ही योगबलसे हर्यश्वके पुत्ररूपमें प्रकट हुए थे और उसी पूर्व नामसे प्रख्यात हुए।

राशियोंसे उस नगरके घर-द्वारको विभूषित किया गया था। नूतन पल्लव, अंकुर और पत्तोंसे युक्त वृक्ष उस नगरकी शोभा बढ़ाते थे ॥ ५३-५४ ॥

कीर्णं पन्नगनार्योघैः समुद्रोदरवासिभिः ।
स्वर्णवर्णेन भास्वन्तं स्वस्तिकेनेन्दुवर्चसा ॥ ५५ ॥

'वहाँ समुद्रके उदरमें निवास करनेवाली नागललनाएँ भरी हुई थीं। वह ग्राम कहीं सुवर्णमय और कहीं चन्द्रमाके समान श्वेत कान्तिमान् स्वस्तिकसे प्रकाशित होता था ॥५५॥

स तं ददर्श राजेन्द्रो विमले सागराम्भसि ।
पन्नगेन्द्रपुरं तोये जगत्यामिव निर्मितम् ॥ ५६ ॥

'राजाधिराज यदुने देखा—समुद्रके निर्मल जलमें बना हुआ यह नागराजका नगर भूतलपर ही निर्मित हुआ-सा जान पड़ता है ॥ ५६ ॥

स्वच्छं चैव पुरं तत्र प्रविवेश नृपो यदुः ।
अगाधं तोयदाकारं पूर्णं सर्पवधूगणैः ॥ ५७ ॥

'राजा यदुने सर्पवधुओंसे भरे हुए उस अगाध जलदाकार स्वच्छ नगरमें प्रवेश किया ॥ ५७ ॥

तस्य दत्तं मणिमयं जलजं परमासनम् ।
स्वास्तीर्णं पद्मपत्रैश्च पद्मसूत्रोत्तरच्छदम् ॥ ५८ ॥

'वहाँ उन्हें मणिमय कमलका आसन दिया गया, जिसपर पद्मोंके दल बिछे हुए थे और पद्मसूत्रोंकी ही बनी हुई चादर डाली गयी थी ॥ ५८ ॥

तमासीनं नृपं तत्र परमे पन्नगासने ।
द्विजिह्वपतिरव्यग्रो धूम्रवर्णोऽभ्यभाषत ॥ ५९ ॥

'सर्पोंके दिये हुए उस उत्तम आसनपर जब राजा यदु वहाँ विराजमान हुए, तब सर्पराज धूम्रवर्णने उनसे शान्तभावसे कहा— ॥ ५९ ॥

पिता ते स्वर्गतिं प्राप्तः कृत्वा वंशमिमं महत् ।
भवन्तं तेजसा युक्तमुत्पाद्य वसुधाधिपम् ॥ ६० ॥

'राजन्! तुम्हारे पिता इस विशाल वंशकी नींव डालकर और तुम-जैसे तेजस्वी भूपालको जन्म देकर स्वर्गलोकको चले गये ॥ ६० ॥

यादवानामयं वंशस्त्वन्नाम्ना यदुपुङ्गव ।
पित्रा ते मङ्गलार्थाय स्थापितः पार्थिवाकरः ॥ ६१ ॥

'यदुपुङ्गव! तुम्हारे नामसे ही यह वंश यादववंश कहलायेगा। तुम्हारे पिताने तुम्हारे मङ्गलके लिये ही इस कुलकी स्थापना की है, जो राजाओंकी खान है ॥ ६१ ॥

वंशे चास्मिंस्तव विभो देवानां तनयाव्ययाः ।
ऋषीणामुरगाणां च उत्पत्स्यन्ते नृयोनिजाः ॥ ६२ ॥

'प्रभो! तुम्हारे इस वंशमें देवताओं और ऋषियों तथा नागोंकी अक्षय संतानें मनुष्य-योनिमें उत्पन्न होंगी ॥ ६२ ॥

तन्ममेमाः सुताः पञ्च कुमार्यो वृत्तसम्मताः ।
उत्पन्ना यौवनाश्वस्य भगिन्यां नृपसत्तम ॥ ६३ ॥

'नृपश्रेष्ठ! मेरी जो ये पाँच कुमारी कन्याएँ हैं, ये उत्तम आचार-व्यवहारसे सम्मानित हैं। इनका जन्म यौवनाश्वकी बहिनके गर्भसे हुआ है ॥ ६३ ॥

प्रतीच्छेमाः स्वधर्मेण प्राजापत्येन कर्मणा ।
वरं च ते प्रदास्यामि वरार्हस्त्वं मतो मम ॥ ६४ ॥

'तुम अपने धर्मके अनुसार वैवाहिक विधिसे इन कन्याओंको ग्रहण करो। मेरी धारणाके अनुसार तुम वर पानेके योग्य हो, अतः मैं तुम्हें मनोवाञ्छित वर भी दूँगा ॥ ६४ ॥

भैमाश्च कुकुराश्चैव भोजाश्चान्धकयादवाः ।
दाशार्हा वृष्णयश्चेति ख्यातिं यास्यन्ति सप्त ते ॥ ६५ ॥

'तुमसे सात कुल विख्यात होंगे, जो भैम, कुक्कुर, भोज, अन्धक, यादव, दाशार्ह तथा वृष्णिके नामसे प्रसिद्ध होंगे' ॥

स तस्मै धूम्रवर्णो वै कन्याः कन्याव्रते स्थिताः ।
जलपूर्णेन योगेन ददाविन्द्रसमाय वै ॥ ६६ ॥

'ऐसा कहकर धूम्रवर्णने इन्द्रतुल्य तेजस्वी यदुको कन्याव्रतमें स्थित हुई वे कन्याएँ हाथमें जल लेकर संकल्पपूर्वक दे दीं ॥ ६६ ॥

वरं चास्मै ददौ प्रीतः स वै पन्नगपुङ्गवः ।
श्रावयन् कन्यकाः सर्वा यथाक्रममदीनवत् ॥ ६७ ॥

'फिर उन नागशिरोमणि धूम्रवर्णने प्रसन्न होकर समस्त कन्याओंको सुनाते हुए एक उदार पुरुषकी भाँति राजाको क्रमशः वर प्रदान किये ॥ ६७ ॥

एतासु ते सुताः पञ्च सुतासु मम मानद ।
उत्पत्स्यन्ते पितुस्तेजो मातुश्चैव समाश्रिताः ॥ ६८ ॥

'मानद! मेरी इन पाँच कन्याओंसे तुम्हारे पाँच पुत्र उत्पन्न होंगे, जो पिता और माता दोनोंके तेजसे सम्पन्न होंगे ॥ ६८ ॥

अस्मत्समयबद्धाश्च सलिलाभ्यन्तरेचराः ।
तव वंशे भविष्यन्ति पार्थिवाः कामरूपिणः ॥ ६९ ॥

'हमारे वरदानसे अनुगृहीत होकर तुम्हारे वंशके वे सभी राजा जलके भीतर विचरनेवाले तथा इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ होंगे ॥ ६९ ॥

स वरं कन्यकाश्चैव लब्ध्वा यदुवरस्तदा ।
उदतिष्ठत वेगेन सलिलाच्चन्द्रमा इव ॥ ७० ॥

'वे श्रेष्ठ यदु उस समय वर और उन कन्याओंको पाकर चन्द्रमाके समान वेगपूर्वक जलसे ऊपर उठे ॥ ७० ॥

स पञ्चकन्यामध्यस्थो ददृशे तत्र पार्थिवः ।
पञ्चतारेण संयुक्तो नक्षत्रेणेव चन्द्रमाः ॥ ७१ ॥

'पाँच कन्याओंके बीचमें स्थित हुए राजा यदु वहाँ पाँच

ताराओंवाले नक्षत्रसे संयुक्त चन्द्रमाके समान दिखायी देते थे ॥ ७१ ॥

स तदन्तःपुरं सर्वं ददर्श नृपसत्तमः ।
वैवाहिकेन वेषेण दिव्यस्रगनुलेपनः ॥ ७२ ॥

'वैवाहिक वेशसे युक्त तथा दिव्य हार एवं चन्दन धारण करनेवाले नृपश्रेष्ठ यदुने जलसे बाहर आकर अपने समस्त अन्तःपुरको वहाँ उपस्थित देखा ॥ ७२ ॥

समाश्वास्य च ताः सर्वाः स पत्नीः पावकोपमाः ।
जगाम स्वपुरं राजा प्रीत्या परमया युतः ॥ ७३ ॥

'तदनन्तर अग्निके समान तेजस्विनी उन सारी पत्नियोंको आश्वासन देकर राजा यदु अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उन सबके साथ अपने नगरको चले गये' ॥ ७३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि विकद्रुवाक्यं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें विकद्रुका वाक्यविषयक सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३७ ॥

अष्टात्रिंशोऽध्यायः

विकद्रुद्वारा यदुकी संततिका वर्णन तथा मथुरापुरीको जरासंधका आक्रमण सहनेके अयोग्य बताना

वैशम्पायन उवाच

स तासु नागकन्यासु कालेन महता नृपः ।
जनयामास विक्रान्तान् पञ्च पुत्रान् कुलोद्वहान्॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! यदुने दीर्घकालके पश्चात् उन पाँचों नागकन्याओंके गर्भसे पाँच पराक्रमी एवं कुलका भार वहन करनेमें समर्थ पुत्र उत्पन्न किये ॥ १ ॥

मुचुकुन्दं महाबाहुं पद्मवर्णं तथैव च ।
माधवं सारसं चैव हरितं चैव पार्थिवम् ॥ २ ॥

उनके नाम इस प्रकार हैं—महाबाहु मुचुकुन्द, पद्मवर्ण, माधव, सारस तथा राजा हरित ॥ २ ॥

एतान् पञ्च सुतान् राजा पञ्चभूतोपमान् भुवि ।
ईक्षमाणो नृपः प्रीतिं जगामातुलविक्रमः ॥ ३ ॥

ये पाँचों पुत्र भूतलपर पाँच भूतोंके समान थे । अतुल पराक्रमी राजा यदु इन्हें देखकर बहुत प्रसन्न होते थे ॥ ३ ॥

ते प्राप्तवयसः सर्वे स्थिताः पञ्च यथाद्रयः ।
तेजिता बलदर्पाभ्यामूचुः पितरमग्रतः ॥ ४ ॥

जब वे सब वयस्क हुए, तब पाँच पर्वतोंके समान प्रतीत होने लगे । एक दिन अपने बल और दर्पसे प्रोत्साहित होकर वे अपने पिताके सामने खड़े हो इस प्रकार बोले—॥ ४ ॥

तात युक्ताः स्म वयसा बले महति संस्थिताः ।
क्षिप्रमाज्ञप्तुमिच्छामः किं कुर्मस्तव शासनात् ॥ ५ ॥

'तात ! अब हम बड़ी अवस्थाके हो गये, महान् बलमें हमारी स्थिति है (हम महान् बलवान् हैं); अतः शीघ्र आपकी आज्ञा चाहते हैं, बताइये, आपके आदेशसे हम कौन-सा कार्य करें ?' ॥ ५ ॥

स तान् नृपतिशार्दूलः शार्दूलानिव वेगितान् ।
प्रीत्या परमया प्राह सुतान् वीर्यकुतूहलात् ॥ ६ ॥

नरेशोंमें सिंहके समान पराक्रमी यदुने सिंहोंके ही सदृश वेगशाली अपने इन पुत्रोंसे उनके बल-पराक्रमको जाननेकी उत्सुकतासे अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक कहा—॥ ६ ॥

विन्ध्यर्क्षवन्तावभितो द्वे पुर्यौ पर्वताश्रये ।
निवेशयतु यत्नेन मुचुकुन्दः सुतो मम ॥ ७ ॥

'मेरा पुत्र मुचुकुन्द विन्ध्य और ऋक्षवान् पर्वतोंके निकट पर्वतीय भूमिका ही आश्रय ले यत्नपूर्वक दो पुरियाँ बसाये ॥ ७ ॥

सह्यस्य चोपरिष्टात्तु दक्षिणां दिशमाश्रितः ।
पद्मवर्णोऽपि मे पुत्रो निवेशयतु मा चिरम् ॥ ८ ॥

'मेरा बेटा पद्मवर्ण भी दक्षिण दिशाका आश्रय ले सह्यपर्वतके शिखरपर शीघ्र एक नगर बसाये ॥ ८ ॥

तत्रैव परतः कान्ते देशे चम्पकभूषिते ।
सारसो मे पुरं रम्यं निवेशयतु पुत्रकः ॥ ९ ॥

'वहीं पश्चिम दिशाकी ओर चम्पाके वृक्षोंसे सुशोभित मनोरम प्रदेशमें बेटा सारस एक रमणीय राजधानीकी स्थापना करे ॥ ९ ॥

हरितोऽयं महाबाहुः सागरे हरितोदके ।
द्वीपं पन्नगराजस्य सुतो मे पालयिष्यति ॥ १० ॥

'मेरा पुत्र यह महाबाहु हरित हरे जलसे भरे हुए समुद्रमें नागराज धूम्रवर्णके द्वीपका पालन करेगा ॥ १० ॥

माधवो मे महाबाहुर्ज्येष्ठपुत्रश्च धर्मवित् ।
यौवराज्येन संयुक्तः स्वपुरं पालयिष्यति ॥ ११ ॥

'मेरा पाँचवाँ पुत्र महाबाहु माधव ज्येष्ठ तथा धर्मज्ञ है, यह युवराज होकर अपने इसी नगरका (जो रैवतकके समीप है) पालन करेगा' ॥ ११ ॥

सर्वे नृपश्रियं प्राप्ता अभिषिक्ताः सचामराः ।
पित्रानुशिष्टाश्चत्वारो लोकपालोपमा नृपाः ॥ १२ ॥

स्वं स्वं निवेशनं सर्वे भेजिरे नृपसत्तमाः।
पुरस्थानानि रम्याणि मृगयन्तो यथाक्रमम् ॥ १३ ॥

उन सबको राज्यलक्ष्मी प्राप्त हुई। सबका विभिन्न राज्यों-पर अभिषेक हुआ तथा सभी छत्र-चमर आदि राजोचित चिह्नोंसे अलंकृत हुए। तत्पश्चात् पिताकी आज्ञा पाकर लोकपालोंके समान वे चारों नृपश्रेष्ठ राजकुमार अपने-अपने घरमें गये। फिर उन्होंने क्रमशः सुरम्य राजधानी बनानेके लिये स्थानकी खोज प्रारम्भ की ॥ १२-१३ ॥

मुचुकुन्दश्च राजर्षिर्विन्ध्यमध्यमरोचयत्।
स्वस्थानं नर्मदातीरे दारुणोपलसंकटे ॥ १४ ॥

राजर्षि मुचुकुन्दने विन्ध्यपर्वतके मध्यवर्ती स्थानको पसंद किया। उन्होंने विषम प्रस्तरखण्डोंसे भरे हुए दुर्गम नर्मदा-तटपर अपना स्थान बनाया ॥ १४ ॥

स च तं शोधयामास विविक्तं च चकार ह।
सेतुं चैव समं चक्रे परिखाश्चामितोदकाः ॥ १५ ॥

उन्होंने उस स्थानका शोधन किया और उसे एकान्त एवं पवित्र बनाया। सम सेतुका निर्माण किया और अथाह जलसे भरी हुई खाइयाँ खुदवायीं ॥ १५ ॥

स्थापयामास भागेषु देवतायतनान्यपि।
रथ्या वीथीर्नृणां मार्गांश्चत्वराणि वनानि च ॥ १६ ॥

नगरके विभिन्न भागोंमें बहुत-से देवमन्दिर भी स्थापित किये। सड़कें, गलियाँ, जनसाधारणके मार्ग तथा चौराहे बनवाये और वन भी लगवाये ॥ १६ ॥

स तां पुरीं धनवतीं पुरुहूतपुरीप्रभाम्।
नातिदीर्घेण कालेन चकार नृपसत्तमः ॥ १७ ॥

उन नृपश्रेष्ठ मुचुकुन्दने उस पुरीको थोड़े ही दिनोंमें धन-धान्यसे सम्पन्न करके इन्द्रपुरीके समान प्रकाशित एवं सुशोभित कर दिया ॥ १७ ॥

नाम चास्याः शुभं चक्रे निर्मितं स्वेन तेजसा।
तस्याः पुर्या नृपश्रेष्ठो देवश्रेष्ठपराक्रमः ॥ १८ ॥

देवताओंके समान श्रेष्ठ पराक्रमी नृपवर मुचुकुन्दने उस पुरीका अपने ही तेजसे निर्मित शुभ सुन्दर नाम रक्खा—॥ १८ ॥

महाश्मसंघातवती यथेयं विन्ध्यसानुगा।
माहिष्मती नाम पुरी प्रकाशमुपयास्यति ॥ १९ ॥

'विन्ध्य-गिरिके शिखरपर बसी हुई यह नगरी महान् अश्मसंघात (प्रस्तर-समूह) से युक्त है, इसलिये संसारमें 'माहिष्मतीपुरी' के नामसे विख्यात होगी' ॥ १९ ॥

उभयोर्विन्ध्ययोः पादे नगयोस्तां महापुरीम्।
मध्ये निवेशयामास श्रिया परमया वृताम् ॥ २० ॥

राजा मुचुकुन्दने उत्तम शोभा-सम्पत्तिसे सम्पन्न उस महापुरीको दोनों विन्ध्यपर्वतोंके बीचमें बसाया था ॥ २० ॥

पुरिकां नाम धर्मात्मा पुरीं देवपुरीप्रभाम्।
उद्यानशतसम्बाधां समृद्धापणचत्वराम् ॥ २१ ॥

तत्पश्चात् उन धर्मात्मा नरेशने एक 'पुरिका' नामवाली पुरी बसायी, जो देवपुरीके समान प्रकाशित होती थी। उसके भीतर सैकड़ों उद्यान बने थे तथा वैभवपूर्ण हाट-बाजार और चौराहे भी उसकी शोभा बढ़ाते थे ॥ २१ ॥

ऋक्षवन्तं समभितस्तीरे तत्र निरामये।
निर्मिता सा पुरी राज्ञा पुरिका नाम नामतः ॥ २२ ॥

ऋक्षवान् पर्वतके समीप, रोग-शोकसे रहित नर्मदा-तट-पर राजाने पुरिका नामक पुरीका निर्माण कराया था ॥२२॥

स ते द्वे विपुले पुर्यौ देवभोग्योपमे शुभे।
पालयामास धर्मात्मा राजा धर्मे व्यवस्थितः ॥ २३ ॥

धर्ममें स्थित हुए वे धर्मात्मा नरेश देवताओंके उपभोगमें आनेवाली स्वर्गीय पुरियोंके समान उन दो सुन्दर नगरोंका निर्माण करके उनका पालन करने लगे ॥ २३ ॥

पद्मवर्णोऽपि राजर्षिः सह्यपृष्ठे पुरोत्तमम्।
चकार नद्या वेणायास्तीरे तरुलताकुले ॥ २४ ॥

राजर्षि पद्मवर्णने भी सह्यपर्वतके पृष्ठभागमें वृक्षों और लताओंसे व्याप्त वेणा नदीके तटपर एक उत्तम नगरका निर्माण कराया ॥ २४ ॥

विषयस्याल्पतां ज्ञात्वा सम्पूर्णं राष्ट्रमेव च।
निवेशयामास नृपः स वप्रप्रायमुत्तमम् ॥ २५ ॥

अपनी राज्यभूमिका विस्तार दूसरोंकी अपेक्षा छोटा जानकर उन्होंने अपने सम्पूर्ण राष्ट्रको ही एक नगरके रूपमें बसाया और उसे सब ओरसे एक विशाल चहारदिवारीके द्वारा घेर दिया। उस उत्तम राष्ट्रमें परकोटेकी ही प्रधानता थी ॥ २५ ॥

पद्मावतं जनपदं करवीरं च तत्पुरम्।
निर्मितं पद्मवर्णेन प्राजापत्येन कर्मणा ॥ २६ ॥

उनका राज्य पद्मावत जनपदके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उनकी राजधानीका नाम करवीरपुर हुआ। पद्मवर्णने शिल्प-शास्त्रके नियमोंके अनुसार उस नगरका निर्माण कराया था ॥

सारसेनापि विहितं रम्यं क्रौञ्चपुरं महत्।
चम्पकाशोकबहुलं विपुलं ताम्रमृत्तिकम् ॥ २७ ॥

राजा सारसने भी क्रौञ्चपुर[1] नामक महान् एवं रमणीय नगरका निर्माण कराया, जिसमें चम्पा और अशोक वृक्षोंकी

---

[1] १. आचार्य नीलकण्ठने 'क्रौञ्चपुर' नगरकी स्थिति वेणाके दक्षिण तटपर बतायी है।

बहुलता थी। उसका विस्तार बड़ा था और वहाँ ताँबेका कारोबार होता था, जिससे लोगोंकी जीविका चलती थी ॥ २७ ॥

वनवासीति विख्यातः स्फीतो जनपदो महान्।
पुरस्य तस्य तु श्रीमान् द्रुमैः सार्वर्तुकैर्वृतः ॥ २८ ॥

उस नगरका महान् समृद्धिशाली एवं शोभायमान जनपद 'वनवासी' नामसे विख्यात हुआ। वहाँ सभी ऋतुओंमें फूलने-फलनेवाले वृक्ष सब ओर हरे-भरे दिखायी देते थे ॥२८॥

हरितोऽपि समुद्रस्य द्वीपं समभिपालयत्।
रत्नसंचयसम्पूर्णं नारीजनमनोहरम् ॥ २९ ॥

हरित भी रत्नराशिसे पूर्ण उस समुद्र-सम्बन्धी द्वीपका पालन करने लगे, जो नारीजनोंके लिये मनोहर था (अथवा नारियोंके कारण मनोहर प्रतीत होता था) ॥ २९ ॥

तस्य दाशा जले मग्ना मद्गुरा नाम विश्रुताः।
ते हरन्ति सदा शङ्खान् समुद्रोदरचारिणः ॥ ३० ॥

राजा हरितके द्वारा नियुक्त हुए धीवर, जो वहाँ 'मद्गुर' नामसे प्रसिद्ध थे, जलमें डूबकर समुद्रके भीतर विचरनेवाले शङ्खोंको पकड़ लाते थे ॥ ३० ॥

तथापरे दाशजनाः प्रवालाञ्जलसम्भवान्।
संचिन्वन्ति सदा युक्ता जातरूपं च मौक्तिकम्॥ ३१ ॥

उनके दूसरे-दूसरे मल्लाह सदा सावधान रहकर जलके भीतर होनेवाले मूँगों तथा चमकीले मोतियोंका संग्रह करते थे ॥ ३१ ॥

जलजानि च रत्नानि निषादास्तस्य मानवाः।
प्रचिन्वन्तोऽर्णवे युक्ता नौभिः संयानगामिनः ॥ ३२ ॥

हरितके ही कार्यकर्ता निषाद बड़ी-बड़ी नौकाओंको साथ लिये छोटी नौकाओंद्वारा समुद्रमें जाते और जलमें उत्पन्न होनेवाले रत्नोंकी खोज करते थे (छोटी नावोंसे दूर-दूरतक जाकर वे रत्नोंका संचय करते और एक जगह खड़ी हुई बड़ी नौकामें लाकर रखते थे) ॥ ३२ ॥

मत्स्यमांसेन ते सर्वे वर्तन्ते स्म सदा नराः।
गृह्णन्तः सर्वरत्नानि रत्नद्वीपनिवासिनः ॥ ३३ ॥

उस रत्नद्वीपमें निवास करनेवाले वे मल्लाह जातिके लोग सब प्रकारके रत्नोंका संग्रह करते और मछलीके मांससे जीवन-निर्वाह करते थे ॥ ३३ ॥

तैः संयानगतैर्द्रव्यैर्वणिजो दूरगामिनः।
हरितं तर्पयन्त्येकं यथैव धनदं तथा ॥ ३४ ॥

नौकाओंमें समुद्रसे निकाले गये जो द्रव्य संचित होते, उनके द्वारा दूर देशोंकी यात्रा करनेवाले व्यवसायी वैश्य व्यापार करते और प्राप्त हुए धनसे एकमात्र राजा हरितको ही तृप्त करते थे, जैसे यक्ष केवल कुबेरको ही अपने उपार्जित धनसे संतुष्ट किया करते हैं ॥ ३४ ॥

एवमिक्ष्वाकुवंशात् तु यदुवंशो विनिःसृतः।
चतुर्धा यदुपुत्रैस्तु चतुर्भिर्भिद्यते पुनः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार यह यदुवंश इक्ष्वाकुवंशसे निकला है। फिर यदुके चार छोटे पुत्रोंद्वारा यह चार अन्य शाखाओंमें विभक्त हुआ है ॥ ३५ ॥

स यदुर्माधवे राज्यं विसृज्य यदुपुङ्गवे।
त्रिविष्टपं गतो राजा देहं त्यक्त्वा महीतले ॥ ३६ ॥

वे राजा यदु अपने बड़े पुत्र यदुकुल-पुङ्गव माधवको अपना राज्य दे इस भूतलपर शरीरका परित्याग करके स्वर्गको चले गये ॥ ३६ ॥

बभूव माधवसुतः सत्त्वतो नाम वीर्यवान्।
सत्त्ववृत्तिर्गुणोपेतो राजा राजगुणे स्थितः ॥ ३७ ॥

माधवका पराक्रमी पुत्र सत्त्वत नामसे विख्यात हुआ। वे गुणवान् राजा सत्त्वत राजोचित गुणोंमें प्रतिष्ठित थे और सदा सात्त्विक वृत्तिसे रहते थे ॥ ३७ ॥

सत्त्वतस्य सुतो राजा भीमो नाम महानभूत्।
येन भैमाः सुसंवृत्ताः सत्त्वतात् सात्त्वताःस्मृताः॥ ३८॥

सत्त्वतके पुत्र महान् राजा भीम हुए, जिनसे भावी पीढ़ीके लोग 'भैम' कहलाये। सत्त्वतसे उत्पन्न होनेके कारण उन सबको 'सात्त्वत' भी माना गया है॥ ३८ ॥

राज्ये स्थिते नृपे तस्मिन् रामे राज्यं प्रशासति।
शत्रुघ्नो लवणं हत्वा चिच्छेद स मधोर्वनम् ॥ ३९ ॥

जब राजा भीम आनर्त देशके राज्यपर प्रतिष्ठित थे, उन्हीं दिनों अयोध्यामें भगवान् श्रीराम भूमण्डलके राज्यका शासन करते थे। उनके राज्यकालमें शत्रुघ्नने मधुपुत्र लवणको मारकर मधुवनका उच्छेद कर डाला॥ ३९ ॥

तस्मिन् मधुवने स्थाने पुरीं च मथुरामिमाम्।
निवेशयामास विभुः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥ ४० ॥

उसी मधुवनके स्थानमें सुमित्राका आनन्द बढ़ानेवाले प्रभावशाली शत्रुघ्नने इस मथुरापुरीको बसाया था ॥ ४० ॥

पर्यये चैव रामस्य भरतस्य तथैव च।
सुमित्रासुतयोश्चैव स्थानं प्राप्तं च वैष्णवम् ॥ ४१ ॥
भीमेनेयं पुरी तेन राज्यसम्बन्धकारणात्।
स्ववशे स्थापिता पूर्वं स्वयमध्यासिता तथा ॥ ४२ ॥

जब श्रीरामके अवतारका उपसंहार हुआ और श्रीराम, भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न सभी परमधामको पधारे, तब भीमने इस वैष्णव स्थान (मथुरा) को प्राप्त किया; क्योंकि (लवणके) मारे जानेपर अब उस राज्यसे उन्हींका लगाव रह गया था। (वे ही उत्तराधिकारी होनेयोग्य थे।)*

---

* हर्यश्वके पुत्र यदु मधुकी पुत्री मधुमतीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे; अतः वे मधुके दौहित्र थे। नानाके कोई पुत्र न हो तो उसकी

भीमने इस पुरीको अपने वशमें किया और वे स्वयं भी यहीं आकर रहने लगे ॥ ४१-४२ ॥

ततः कुशे स्थिते राज्ये लवे तु युवराजनि ।
अन्धको नाम भीमस्य सुतो राज्यमकारयत् ॥ ४३ ॥

तदनन्तर जब अयोध्याके राज्यपर कुश प्रतिष्ठित हुए और लव युवराज बन गये, तब मथुरामें भीमके पुत्र अन्धक राज्य करने लगे ॥ ४३ ॥

अन्धकस्य सुतो जज्ञे रेवतो नाम पार्थिवः ।
ऋक्षोऽपि रेवताज्जज्ञे रम्ये पर्वतमूर्धनि ॥ ४४ ॥
ततो रैवत उत्पन्नः पर्वतः सागरान्तिके ।
नाम्ना रैवतको नाम भूमौ भूमिधरः स्मृतः ॥ ४५ ॥

अन्धकके पुत्र राजा रेवत हुए । रेवतसे पर्वतके रमणीय शिखरपर ऋक्षका जन्म हुआ । इस प्रकार उनसे रैवत (ऋक्ष) की उत्पत्ति हुई । उस समय समुद्रके तटकी भूमिपर जो विशाल भूधर था, वह उसी रैवतके नामपर रैवतक पर्वतके नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ४४-४५ ॥

रैवतस्यात्मजो राजा विश्वगर्भो महायशाः ।
बभूव पृथिवीपालः पृथिव्यां प्रथितः प्रभुः ॥ ४६ ॥

रैवत (ऋक्ष) के पुत्र महायशस्वी राजा विश्वगर्भ हुए, जो इस पृथ्वीपर प्रसिद्ध एवं प्रभावशाली भूमिपाल थे ॥४६॥

तस्य तिसृषु भार्यासु दिव्यरूपासु केशव ।
चत्वारो जज्ञिरे पुत्रा लोकपालोपमाः शुभाः ॥ ४७ ॥

केशव ! उनके तीन भार्याएँ थीं । तीनों ही दिव्य रूप-सौन्दर्यसे सुशोभित होती थीं । उनके गर्भसे राजाके चार सुन्दर पुत्र हुए, जो लोकपालोंके समान पराक्रमी थे ॥४७॥

वसुर्बभ्रुः सुषेणश्च सभाक्षश्चैव वीर्यवान् ।
यदुप्रवीराः प्रख्याता लोकपाला इवापरे ॥ ४८ ॥

उनके नाम इस प्रकार हैं—वसु, बभ्रु, सुषेण और बलवान् सभाक्ष । ये यदुकुलके प्रख्यात श्रेष्ठ वीर दूसरे लोकपालोंके समान शक्तिशाली थे ॥ ४८ ॥

तैरयं यादवो वंशः पार्थिवैर्बहुलीकृतः ।
यैः साकं कृष्ण लोकेऽस्मिन् प्रजावन्तः प्रजेश्वराः॥४९॥
वसोस्तु कुन्तिविषये वसुदेवः सुतो विभुः ।
ततः स जनयामास सुप्रभे द्वे च दारिके ॥ ५० ॥
कुन्तीं च पाण्डोर्महिषीं देवतामिव भूचरीम् ।
भार्यां च दमघोषस्य चेदिराजस्य सुप्रभाम् ॥ ५१ ॥

श्रीकृष्ण ! उन राजाओंने इस यादव-वंशको बढ़ाकर बड़ी भारी संख्यासे सम्पन्न कर दिया । जिनके साथ इस संसारमें बहुत-से संतानवान् नरेश हैं । वसुसे (जिनका दूसरा नाम शूर था) वसुदेव उत्पन्न हुए । ये वसुपुत्र वसुदेव बड़े प्रभावशाली हैं । वसुदेवकी उत्पत्तिके अनन्तर वसुने दो कान्तिमती कन्याओंको जन्म दिया (जो पृथा (कुन्ती) और श्रुतश्रवा नामसे विख्यात हुईं) । इनमेंसे पृथा कुन्तिदेशमें (राजा कुन्तिभोजकी दत्तक पुत्रीके रूपमें) रहती थी । कुन्ती जो पृथ्वीपर विचरनेवाली देवाङ्गनाके समान थी, महाराज पाण्डुकी महारानी हुई तथा सुन्दर कान्तिसे प्रकाशित होनेवाली श्रुतश्रवा चेदिराज दमघोषकी पत्नी हुई ॥

एष ते स्वस्य वंशस्य प्रभवः सम्प्रकीर्तितः ।
श्रुतो मया पुरा कृष्ण कृष्णद्वैपायनान्तिकात् ॥ ५२ ॥

श्रीकृष्ण ! यह मैंने तुमसे अपने यादववंशकी उत्पत्ति बतायी है । इसे मैंने पहले श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजीसे सुना था ॥ ५२ ॥

त्वं त्विदानीं प्रणष्टेऽस्मिन् वंशे वंशभृतां वर ।
स्वयम्भूरिव सम्प्राप्तो भवायास्मज्जयाय च ॥ ५३ ॥

वंशधारियोंमें श्रेष्ठ गोविन्द ! इस समय यह वंश नष्ट-सा हो चला था । परंतु तुम स्वयम्भू ब्रह्माजीके समान इस वंशके उद्भव तथा हमारी विजयके लिये इसमें अवतीर्ण हुए हो ॥

न तु त्वां पौरमात्रेण शक्ता गूहयितुं वयम् ।
देवगुह्येष्वपि भवान् सर्वज्ञः सर्वभावनः ॥ ५४ ॥

हमलोग तुम्हें साधारण पुरवासी बताकर छिपानेमें असमर्थ हैं; क्योंकि तुम देवताओंके गुप्त रहस्योंसे भी परिचित, सर्वज्ञ तथा सबको उत्पन्न करनेवाले हो ॥ ५४ ॥

शक्तश्चापि जरासंधं नृपं योधयितुं विभो ।
त्वद्बुद्धिवशगाः सर्वे वयं योधव्रते स्थिताः ॥ ५५ ॥

प्रभो ! तुम राजा जरासंधसे युद्ध करनेमें समर्थ हो । हम सब लोग योधाओंके व्रतमें स्थिर रहकर सदा तुम्हारी बुद्धिके वशीभूत रहेंगे ॥ ५५ ॥

जरासंधस्तु बलवान् नृपाणां मूर्ध्नि तिष्ठति ।
अप्रमेयबलश्चैव वयं च कृशसाधनाः ॥ ५६ ॥

परंतु राजा जरासंध बड़ा बलवान् है । वह राजाओंके सिरपर खड़ा है । उसके पास असंख्य सेना है और इधर हम लोगोंके पास युद्धकी साधन-सामग्री बहुत थोड़ी है ॥ ५६ ॥

न चेयमेकाहमपि पुरी रोधं सहिष्यति ।
कृशभक्तेन्धनक्षामा दुर्गैरपरिवेष्टिता ॥ ५७ ॥

यह मथुरापुरी शत्रुओंद्वारा किये गये एक दिनके उपरोध (घेरे) को भी नहीं सह सकेगी; क्योंकि यहाँ खाने-पीनेकी सामग्री बहुत कम है । लकड़ियोंका संचय भी स्वल्प ही है तथा यह पुरी विभिन्न प्रकारके दुर्गोंसे घिरी हुई नहीं है ॥ ५७ ॥

सम्पत्ति दौहित्रको ही प्राप्त होनी चाहिये—यह शास्त्रका नियम है, अतः लवणासुरके मारे जानेपर यदु-पौत्र भीम ही उस समय उस राज्यके अधिकारी हुए ।

असंस्कृताम्बुपरिखा द्वारयन्त्रविवर्जिता।
वप्रप्राकारनिचया कर्तव्या बहुविस्तरा ॥ ५८ ॥

इसके चारों ओर जो जल भरनेके लिये खाइयाँ बनी हुई हैं, उनकी बहुत दिनोंसे मरम्मत और सफाई नहीं हुई है तथा नगरके द्वारपर रक्षाके लिये यन्त्र (तोप आदि) भी नहीं लगे हुए हैं। पुरीकी रक्षाके लिये चारों ओरसे मिट्टीकी मोटी दीवारें तथा कई पक्के परकोटे बनवानेकी आवश्यकता है, जिनका विस्तार बहुत बड़ा हो ॥ ५८ ॥

संस्कर्तव्यायुधागारा योक्तव्या चेष्टिकाचयैः।
कंसस्य बलभोग्यत्वान्नातिगुप्ता पुरा जनैः ॥ ५९ ॥

नगरके जितने आयुधागार हैं, उन सबका संस्कार (मरम्मत और सफाई) होना चाहिये। जगह-जगह ईंटोंके र जुटा लेनेकी आवश्यकता है। कंसकी सेनाके उपयोगमें नेके कारण इस नगरकी रक्षाके लिये लोगोंने पहलेसे कोई वस्था नहीं कर रखी है ॥ ५९ ॥

सद्यो निपतिते कंसे राज्येऽस्माकं नवोदये।
ुरी प्रत्यग्ररोधेव न रोधं विसहिष्यति ॥ ६० ॥

अभी हालमें ही कंस मारा गया है, अतः हमारे राज्यका भी नवोदय (प्रभात) काल है। जैसे राजाके सिपाही र वसूल करनेके लिये गाँवको घेर लेते हैं, उसी तरह यदि स पुरीका भी अवरोध हुआ तो यह उसे सहन न कर सकेगी ॥

लं सम्मर्दभग्नं च कृष्यमाणं परेण ह।
संशयमिदं राष्ट्रं जनैः सह विनङ्क्ष्यति ॥ ६१ ॥

हमारी सेना अनेकों युद्धोंका सामना करनेके कारण हो गयी है। शत्रु इसे बार-बार पीड़ा देकर क्षीण कर हा है, अतः यह राष्ट्र यहाँके निवासियोंके साथ ही नष्ट हो गा। इसमें संदेह नहीं है ॥ ६१ ॥

दवानां विरोधेन ये जिता राज्यकामुकैः।
सर्वे द्वैधमिच्छन्ति यत् क्षमं तद् विधीयताम् ॥ ६२ ॥

हमलोगोंने राज्यप्राप्तिकी इच्छा रखकर यादवोंका विरोध करनेके कारण जिन-जिन लोगोंको पराजित किया है, वे सब लोग हममें फूट डालना चाहते हैं। ऐसी परिस्थितिमें जो उचित हो, सो करो ॥ ६२ ॥

वञ्चनीया भविष्यामो नृपाणां नृपकारणात्।
जरासंधभयार्तानां द्रवतां राज्यसम्भ्रमे ॥ ६३ ॥

राजा जरासंधके कारण दूसरे-दूसरे राजा भी हमें धोखा देंगे; क्योंकि वे जरासंधके भयसे पीड़ित हैं और अपने राज्यमें कोई विप्लव न मच जाय, इसके डरसे सब-के-सब उसके पीछे दौड़ते हैं ॥ ६३ ॥

आर्ता वक्ष्यन्ति नः सर्वे रुध्यमानाः पुरे जनाः।
यादवानां विरोधेन विनष्टाः स्मेति केशव ॥ ६४ ॥

केशव ! यदि इस नगरके सब लोग शत्रुओंके घेरा डालनेसे अवरुद्ध हो जायँगे तो ये पीड़ित होकर हमारे लिये यही कहेंगे कि हम यादवोंके विरोधसे नष्ट हो गये ॥६४॥

एतन्मम मतं कृष्ण विस्रम्भात् समुदाहृतम्।
त्वं तु विज्ञापितः पूर्वं न पुनः सम्प्रबोधितः ॥ ६५ ॥

श्रीकृष्ण ! यह मेरा मत है, जिसे तुमपर विश्वास होनेके कारण मैंने प्रकट किया है। तुम्हें इस बातकी पहले-पहल सूचना दी गयी है। तुम्हें समझानेका प्रयत्न नहीं किया गया है ॥ ६५ ॥

यदत्र वः क्षमं कृष्ण तच्च वै संविधीयताम्।
त्वमस्य नेता सैन्यस्य वयं त्वच्छासने स्थिताः।
त्वन्मूलश्च विरोधोऽयं रक्षास्मानात्मना सह ॥ ६६ ॥

श्रीकृष्ण ! इस परिस्थितिमें जो उचित हो, वह करो। तुम इस यादव-सेनाके नेता हो और हम तुम्हारे शासनमें स्थित हैं। इस विरोधके मूल कारण तुम्हीं हो, इसलिये तुम अपने साथ ही हमलोगोंकी रक्षा करो ॥ ६६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि विकद्रुवाक्यं नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें विकद्रुका वाक्यविषयक अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

लराम और श्रीकृष्णका पुरी और पुरवासियोंकी रक्षाके लिये मथुरासे दक्षिण भारतकी ओर प्रस्थान, परशुरामजीसे उनकी भेंट तथा उन दोनोंको गोमन्तपर्वतपर चलनेके लिये उनकी सलाह

वैशम्पायन उवाच

कद्रोस्तु वचः श्रुत्वा वसुदेवो महायशाः।
तुष्टेन मनसा वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! विकद्रुकी बात कर महायशस्वी वसुदेव संतुष्टचित्तसे इस प्रकार हे—॥ १ ॥

राजा षाड्गुण्यवक्ता वै राजा मन्त्रार्थतत्त्ववित्।
सतत्त्वं च हितं चैव कृष्णोक्तं किल धीमता ॥ २ ॥

'श्रीकृष्ण ! जो राजनीतिके छः गुणोंसे युक्त बात बोले अथवा उन छहों गुणोंके उपयोगका अवसर बताये, वह राजा है। जो मन्त्रार्थ-तत्त्व (गुप्त मन्त्रणाका प्रयोजन एवं महत्त्व)

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Gyaan Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समझता हो, वह राजा है। बुद्धिमान् विकद्रुने तत्त्व और हितकी बात बतायी है ॥ २ ॥

भाषिता राजधर्माश्च सत्याश्च जगतो हिताः ।
विकद्रुणा यदुश्रेष्ठ यद्धितं तद् विधीयताम् ॥ ३ ॥

'यदुश्रेष्ठ! विकद्रुने उन राजधर्मोंका प्रतिपादन किया है, जो सत्य होनेके साथ ही जगत्‌के लिये हितकर हैं। अब तुम्हें जो हितकर जान पड़े, वह करो' ॥ ३ ॥

एतच्छ्रुत्वा पितुर्वाक्यं विकद्रोश्च महात्मनः ।
वाक्यमुत्तममेकाग्रो बभाषे पुरुषोत्तमः ॥ ४ ॥

अपने पिता वसुदेव तथा महात्मा विकद्रुका यह कथन सुनकर पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने एकाग्रचित्त होकर यह उत्तम बात कही—॥ ४ ॥

ब्रुवतां वः श्रुतं वाक्यं हेतुतः क्रमतस्तथा ।
न्यायतः शास्त्रतश्चैव दैवं चैवानुपश्यताम् ॥ ५ ॥

'आपलोगोंने वैरके मूल-कारण, शत्रुके पराक्रम, न्यायोचित बर्ताव, शास्त्रकी आज्ञा तथा दैववश भविष्यमें होनेवाले कार्यपर दृष्टि रखते हुए जो कुछ कहा है, वह सब मैंने सुन लिया ॥ ५ ॥

श्रूयतामुत्तरं वाक्यं श्रुत्वा च परिगृह्यताम् ।
नृपेण व्यवहर्तव्यं पार्थिवेन यथाक्रमम् ॥ ६ ॥
संधिं च विग्रहं चैव यानमासनमेव च ।
द्वैधीभावं संश्रयं च षाड्गुण्यं चिन्तयेत् सदा ॥ ७ ॥

'अब उसका उत्तर सुनिये और सुनकर यदि ठीक जँचे तो उसे ग्रहण कीजिये। इसमें संदेह नहीं कि राजाको राजनीतिके अनुसार व्यवहार करना चाहिये। उसके लिये यह उचित है कि संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय-इन छः गुणोंका क्रमशः सदा चिन्तन करता रहे* ॥ ६-७ ॥

बलिनः संनिकृष्टे तु न स्थेयं पण्डितेन वै ।
अपक्रमेद्धि कालज्ञः समर्थो युद्धमुद्वहेत् ॥ ८ ॥

'विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह बलवान् शत्रुके समीप न ठहरे। समयका ज्ञान रखनेवाला पुरुष बलवान् शत्रुसे अपनी रक्षा करनेके लिये स्थान छोड़कर हट जाय। यदि वह शत्रु-सेनाका सामना करनेके लिये समर्थ हो तो युद्धका बोझ उठावे ॥ ८ ॥

अहं तावत् सहार्येण मुहूर्तेऽस्मिन् प्रकाशिते ।
जीवितार्थं गमिष्यामि शक्तिमानप्यशक्तवत् ॥ ९ ॥

'मैं शक्तिशाली होकर भी असमर्थकी भाँति इस वर्तमान मुहूर्तमें भैया बलरामजीके साथ जीवनकी रक्षाके लिये यहाँसे पलायन करूँगा ॥ ९ ॥

ततः सह्याचलयुतं सहार्येणाहमक्षयम् ।
आत्मद्वितीयः श्रीमन्तं प्रवेक्ष्ये दक्षिणापथम् ॥ १० ॥

'यहाँसे प्रस्थान करनेके बाद मैं आर्य बलरामके साथ अपने आपको ही उनका दूसरा साथी बनाकर उस अक्षय शोभासम्पन्न दक्षिणापथमें प्रवेश करूँगा, जो सह्य-पर्वतसे मिला-जुला है ॥ १० ॥

करवीरपुरं चैव रम्यं क्रौञ्चपुरं तथा ।
द्रक्ष्यावस्तत्र सहितौ गोमन्तं च नगोत्तमम् ॥ ११ ॥

'वहाँ हम दोनों भाई एक साथ रहकर करवीरपुर, रमणीय क्रौञ्चपुर तथा पर्वतश्रेष्ठ गोमन्तका दर्शन करेंगे ॥ ११ ॥

आवयोर्गमनं श्रुत्वा जितकाशी स पार्थिवः ।
अप्रविश्य पुरीं दर्पादनुसारं करिष्यति ॥ १२ ॥

'हमलोगोंका दक्षिण-गमन सुनकर विजयसे सुशोभित होनेवाला राजा जरासंध बलके घमण्डमें आकर मथुरापुरीमें प्रवेश न करके हमारा पीछा ही करेगा ॥ १२ ॥

ततः सह्यवनेष्वेव राजा याति स सानुगः ।
आवयोर्ग्रहणे चैव नृपतिः प्रयतिष्यति ॥ १३ ॥

'तत्पश्चात् हमारा अनुसरण करता हुआ वह राजा सेवकोंसहित सह्याचलके वनोंमें ही जा पहुँचेगा और हम दोनोंको पकड़ लेनेके लिये पूरा प्रयत्न करेगा ॥ १३ ॥

एषा नः श्रेयसी यात्रा भविष्यति कुलस्य वै ।
पौराणामथ पुर्याश्च देशस्य च सुखावहा ॥ १४ ॥

'हमारी यह यात्रा इस यादवकुलके लिये कल्याणकारिणी होगी तथा पुरवासियोंके, मथुरापुरीके एवं इस शूरसेन देशके लिये भी सुखदायिनी होगी ॥ १४ ॥

न च शत्रोः परिभ्रष्टा राजानो विजिगीषवः ।
परराष्ट्रेषु मृष्यन्ति मृधे शत्रोः क्षयं विना ॥ १५ ॥

'विजयकी इच्छा रखनेवाले राजालोग जब शत्रु हाथमें आकर निकल जाता है, तब वे उस शत्रुके राज्योंमें पहुँचकर युद्धमें उसका वध किये बिना शान्त नहीं होते हैं' ॥ १५ ॥

एवमुक्त्वा तु तौ वीरौ कृष्णसंकर्षणावुभौ ।
प्रपेदतुरसम्भ्रान्तौ दक्षिणौ दक्षिणापथम् ॥ १६ ॥

ऐसा कहकर वे दोनों नीतिनिपुण वीर श्रीकृष्ण और संकर्षण बिना किसी घबराहटके दक्षिणापथकी ओर चल दिये ॥ १६ ॥

---

* संधि, विग्रह आदि छः गुणोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—शत्रुसे मेल रखना संधि, उससे लड़ाई छेड़ना विग्रह, आक्रमण करना यान, अवसरकी प्रतीक्षामें बैठे रहना आसन, दुरंगी नीति बर्तना द्वैधीभाव और अपनेसे बलवान् राजाकी शरण लेना समाश्रय कहलाता है।

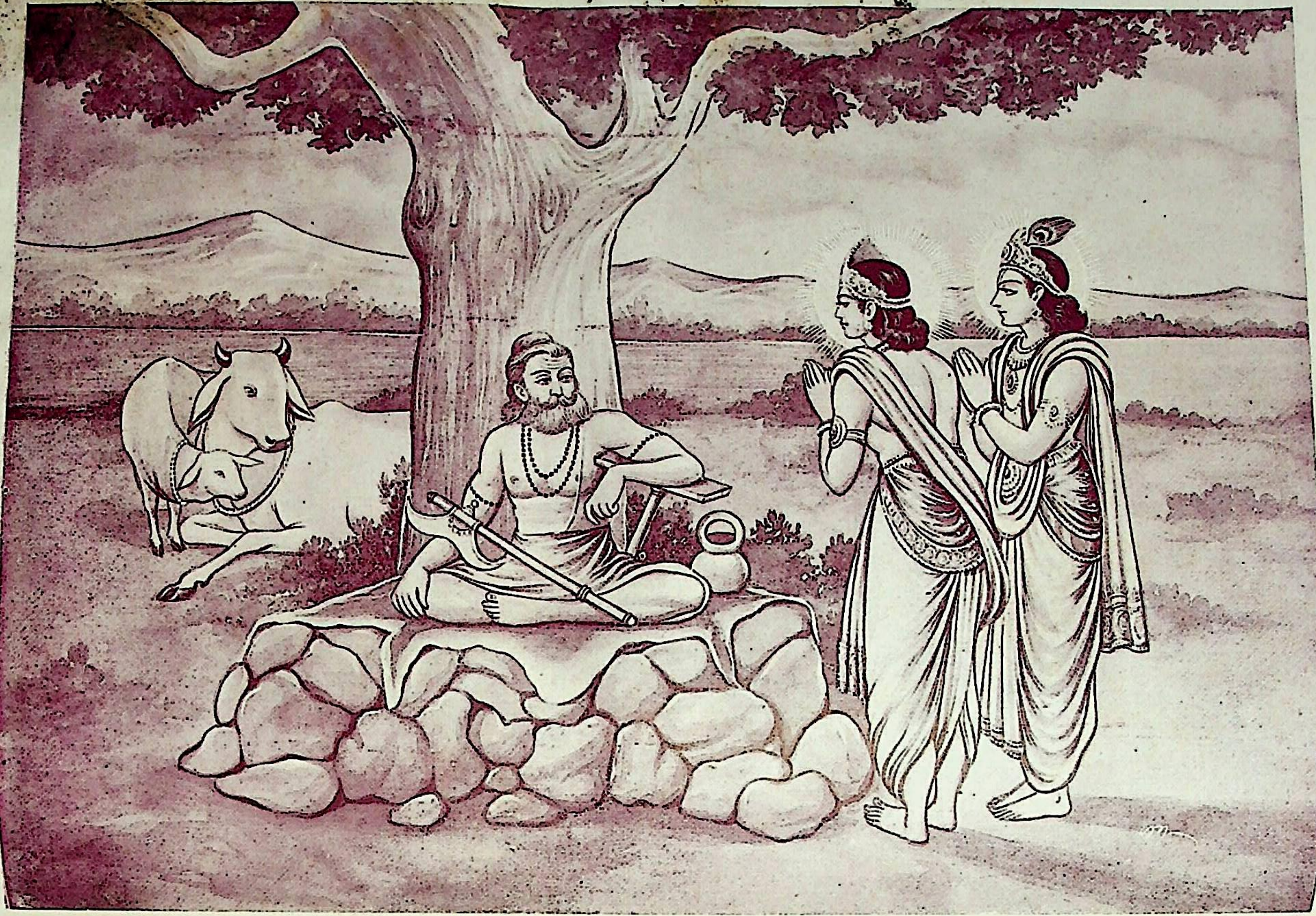

श्रीकृष्ण-बलरामकी परशुरामजीसे भेंट

तौ तु राष्ट्राणि शतशश्चरन्तौ कामरूपिणौ ।
दक्षिणां दिशमास्थाय चेरतुर्मार्गगौ सुखम् ॥ १७ ॥

इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वे दोनों वीर सैकड़ों रास्तोंपर विचरते हुए दक्षिण दिशामें पहुँचकर उत्तम मार्गका आश्रय ले सुखपूर्वक आगे बढ़ने लगे ॥ १७ ॥

सह्यपृष्ठेषु रम्येषु मोदमानावुभौ तथा ।
दक्षिणापथगौ वीरावध्वानं सम्प्रपेदतुः ॥ १८ ॥

सह्यपर्वतके रमणीय शिखरोंपर सानन्द विचरते हुए वे दोनों दक्षिणापथके वीर यात्री अपने मार्गपर बढ़ते ही चले गये ॥ १८ ॥

तौ च स्वल्पेन कालेन सह्याचलविभूषितम् ।
करवीरपुरं प्राप्तौ स्ववंशेन विभूषितम् ॥ १९ ॥

थोड़े ही समयमें वे दोनों भाई सह्यकी पर्वत-मालाओंसे अलंकृत करवीरपुरमें जा पहुँचे, जो उन्हींके वंशके लोगोंसे विभूषित था ॥ १९ ॥

तौ तत्र गत्वा वेणाया नद्यास्तीरान्तमाश्रितम् ।
आसेदतुः प्ररोहाढ्यं न्यग्रोधं तरुपुङ्गवम् ॥ २० ॥

वहाँ पहुँचकर वे दोनों वीर वेणा नदीके तटपर ही बढ़े हुए, बरोहोंसे युक्त एक श्रेष्ठ वृक्ष बरगदके समीप गये ॥

अधस्तात् तस्य वृक्षस्य मुनिं दीप्ततपोधनम् ।
अंसावसक्तपरशुं जटावल्कलधारिणम् ॥ २१ ॥
गौरमग्निशिखाकारं तेजसा भास्करोपमम् ।
क्षत्रान्तकरमक्षोभ्यं वपुष्मन्तमिवार्णवम् ॥ २२ ॥
न्यस्तसंकुचिताधानं काले हुतहुताशनम् ।
क्लिन्नं त्रिषवणाम्भोभिराद्यं देवगुरुं यथा ॥ २३ ॥
सवत्सां धेनुकां श्वेतां होमधुक् कामदोह्यनाम् ।
क्षीरारणिं कर्षमाणं महेन्द्रगिरिगोचरम् ॥ २४ ॥
ददृशतुस्तौ सहितावपरिश्रान्तमव्ययम् ।
भार्गवं राममासीनं मन्दरस्थं यथा रविम् ॥ २५ ॥

उस वृक्षके नीचे उद्दीप्त तपस्वी भृगुनन्दन परशुरामजी विराजमान थे, जिनके एक कंधेपर फ़रसा सटा हुआ था और जो जटा और वल्कल धारण किये हुए थे। उनके शरीरका वर्ण गौर तथा अग्निशिखाके समान प्रकाशमान था। वे सूर्यके समान तेजस्वी दिखायी देते थे। क्षत्रियोंका अन्त करनेवाले परशुराम किसीसे क्षुब्ध होनेवाले नहीं थे। वे मूर्तिमान् समुद्रके समान गम्भीर प्रतीत होते थे। उनका अग्न्याधान-सम्बन्धी कार्य समाप्त एवं संकुचित हो चुका था, फिर भी वे समय-समयपर प्रज्वलित अग्निमें आहुति दिया करते थे। तीनों समय स्नान करनेके कारण उनका शरीर एवं वस्त्र जलसे भीगे हुए थे। वे देवताओंके आदि-गुरु बृहस्पतिके समान जान पड़ते थे। उनके पास जो श्वेत रंगकी सवत्सा (बछड़ेवाली) धेनु थी, वह केवल होमके लिये दुही जाती थी, इसलिये होमधेनु कहलाती थी। इसके सिवा वह मुनिकी इच्छाके अनुसार समस्त वस्तुओंको देनेमें समर्थ थी, इसलिये कामदोहना या कामधेनु कहलाती थी। दूधरूपी अग्निको प्रकट करनेके लिये अरणीके समान शोभित होनेवाली उस होमधेनुको परशुरामजी कहीं खींचकर ले जा रहे थे। वे कभी परिश्रमसे थकते नहीं हैं और अविनाशी हैं। श्रीकृष्ण और बलरामने महेन्द्र गिरिपर विचरनेवाले परशुरामजीको वहाँ मन्दराचलके शिखरपर प्रकाशित होनेवाले सूर्यके समान देखा ॥ २१—२५ ॥

न्यायतस्तौ तु तं दृष्ट्वा पादमूले कृताञ्जली ।
वसुदेवसुतौ वीरौ सधिष्ण्याविव पावकौ ॥ २६ ॥

उनका दर्शन करके वसुदेवके उन दोनों वीर पुत्रोंने न्यायानुसार उनके चरणोंमें हाथ जोड़कर प्रणाम किया। वे उस समय वेदीपर प्रज्वलित अग्नियोंके समान जान पड़ते थे ॥ २६ ॥

कृष्णस्तमृषिशार्दूलमुवाच वदतां वरः ।
श्लक्ष्णं मधुरया वाचा लोकवृत्तान्तकोविदः ॥ २७ ॥

इसके बाद वक्ताओंमें श्रेष्ठ एवं लोकवृत्तान्तके ज्ञानमें कुशल श्रीकृष्णने मुनिश्रेष्ठ परशुरामजीसे स्नेहयुक्त मृदुर-वाणीमें कहा—॥ २७ ॥

भगवन् जामदग्न्यं त्वामवगच्छामि भार्गवम् ।
रामं मुनीनामृषभं क्षत्रियाणां कुलान्तकम् ॥ २८ ॥

'भगवन्! मैं समझता हूँ कि आप भृगुकुलभूषण क्षत्रिय-कुलविनाशक मुनिश्रेष्ठ जमदग्निनन्दन परशुरामजी हैं ॥ २८ ॥

त्वया सायकवेगेन क्षिप्तो भार्गव सागरः ।
इषुपातेन नगरं कृतं शूर्पारकं त्वया ॥ २९ ॥

'भृगुनन्दन! आपने अपने बाणके वेगसे समुद्रको पीछे ढकेल दिया और जितनी दूरीमें बाण गिरा समुद्रसे उतनी ही भूमि लेकर वहाँ शूर्पारक नगरका निर्माण किया ॥ २९ ॥

धनुःपञ्चशतायाममिषुपञ्चशतोच्छ्रयम् ।
सह्यस्य च निकुञ्जेषु स्फीतो जनपदो महान् ॥ ३० ॥

'उस नगरकी लंबाई पाँच सौ धनुष और चौड़ाई पाँच सौ बाण है*। सह्यपर्वतके निकुञ्जोंमें वह समृद्धिशाली महान् जनपद बसा हुआ है ॥ ३० ॥

अतिक्रम्योदधेर्वेलामपरान्ते निवेशितः ।
त्वया तत् कार्तवीर्यस्य सहस्रभुजकाननम् ॥ ३१ ॥
छिन्नं परशुनैकेन स्मरता निधनं पितुः ।

---

* धनुष चार हाथ लंबा और बाण दो हाथ लंबा माना गया है।

'आपने समुद्रवेलाका उल्लङ्घन करके अपरान्तदेशमें (जो पश्चिम समुद्रके तटपर है) उस महान् जनपदको बसाया है। आपने ही अपने पिताकी मृत्युको याद करके एक ही फरसेसे कार्तवीर्यकी सहस्र भुजाओंका वह जंगल काट डाला था ॥ ३१½ ॥

इयमद्यापि रुधिरैः क्षत्रियाणां हतद्विषाम् ॥ ३२ ॥
स्निग्धैस्त्वत्परशूत्सृष्टै रक्तपङ्का वसुंधरा।
रैणुकेयं विजाने त्वां क्षितौ क्षितिपरोषणम् ॥ ३३ ॥

'आपके द्वारा मारे गये जो शत्रुभूत क्षत्रिय थे, आपके फरसेसे प्रवाहित हुए उनके स्निग्ध रुधिरसे आज भी यह वसुन्धरा भीगकर रक्तकी कीचसे युक्त दिखायी देती है। मैं जानता हूँ कि आप भूमण्डलके क्षत्रियोंपर रोष प्रकट करनेवाले रेणुकानन्दन परशुराम हैं ॥ ३२-३३ ॥

परशुप्रग्रहे युक्तं यथैवेह रणे तथा।
तदिच्छावस्त्वया विप्र कंचिदर्थमुपश्रुतम् ॥ ३४ ॥
उत्तरं च श्रुतार्थेन प्रत्युक्तमविशङ्कया।

'क्योंकि आप रणभूमिकी ही भाँति यहाँ भी फरसा लिये हुए हैं, अतः विप्रवर ! हम दोनों आपसे एक बात पूछना चाहते हैं तथा आप हमारी बात सुनकर निर्भीक हो हमें जो उत्तर देंगे, उसे सुननेकी भी हमारी इच्छा है ॥ ३४½ ॥

आवयोर्मथुरा राम यमुनातीरशोभिनी ॥ ३५ ॥
यादवौ स्वो मुनिश्रेष्ठ यदि ते श्रुतिमागतौ।
वसुदेवो यदुश्रेष्ठः पिता नौ हि धृतव्रतः ॥ ३६ ॥

'मुनिश्रेष्ठ परशुराम ! हमारी निवासभूमि मथुरापुरी है, जो यमुनातटपर शोभा पाती है। हम दोनों यादव हैं। यदि हमारे नाम भी कभी आपके कानोंमें पड़े हों तो आप हमें जानते भी होंगे। यदुकुलके श्रेष्ठ पुरुष तथा उत्तम व्रत धारण करनेवाले वसुदेवजी हम दोनोंके पिता हैं ॥ ३५-३६ ॥

जन्मप्रभृति चैवावां व्रजेष्वेव नियोजितौ।
तौ स्वः कंसभयात् तत्र शङ्कितौ परिवर्द्धितौ ॥ ३७ ॥

'हम दोनों भाई जन्मसे ही कंसके भयसे व्रजमें ही रक्खे गये और वहीं उससे शङ्कित रहकर बड़े हुए हैं ॥ ३७ ॥

वयश्च प्रथमं प्राप्तौ मथुरायां प्रवेशितौ।
तावावां व्युत्थितं हत्वा समाजे कंसमोजसा ॥ ३८ ॥
पितरं तस्य तत्रैव स्थापयित्वा जनेश्वरम्।
स्वमेव कर्म चारब्धौ गवां व्यापारकारकौ ॥ ३९ ॥

'प्रथम किशोरावस्थाको प्राप्त होनेपर हम दोनों भाइयोंका मथुरामें प्रवेश हुआ। वहाँ हमने धर्म-मर्यादासे विचलित हुए कंसको रंगशालामें बलपूर्वक मार डाला और उसके राज्यपर उसीके पिताको राजा बनाकर बिठा दिया। तत्पश्चात् सदासे गोपालन-सम्बन्धी कार्य करनेवाले हम दोनों भाइयोंने फिर वही अपना काम-धंधा आरम्भ कर दिया ॥ ३८-३९ ॥

अथावयोः पुरं रोद्धुं जरासंधो व्यवस्थितः।
संग्रामान् सुबहून् कृत्वा लब्धलक्षावपि स्वयम् ॥ ४० ॥
ततः स्वपुररक्षार्थं प्रजानां च धृतव्रत।
अकृतार्थावनुद्योगौ कर्तव्यबलसाधनौ ॥ ४१ ॥

'तदनन्तर राजा जरासंधने हम दोनोंके नगरपर घेरा डालनेके लिये निश्चित विचार कर लिया। यद्यपि हम दोनों उसके साथ बहुत युद्ध कर चुके हैं और उनमें अपना लक्ष्य सिद्ध करनेमें सफल भी हुए हैं तथापि अपने नगर और प्रजाजनोंकी रक्षाके लिये हमने जरासंधसे लड़नेके लिये कोई उद्योग नहीं किया। व्रतधारी मुने ! अभी हमलोगोंको शक्ति और साधनका संचय करना है, अतः अकृतार्थ होकर ही हमलोग वहाँसे चल पड़े ॥ ४०–४१ ॥

अरथौ पत्तिनौ युद्धे निस्तनुत्रौ निरायुधौ।
जरासंधोद्यमभयात् पुराद् द्वावेव निःसृतौ ॥ ४२ ॥

'हमारे पास युद्धके लिये रथ नहीं है। हम पैदल ही हैं। हमारे शरीरपर कवच और हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र भी नहीं हैं। हम जरासंधके आक्रमणके भयसे नगरको छोड़कर केवल दो ही जने वहाँसे निकल आये हैं ॥ ४२ ॥

एवमावामनुप्राप्तौ मुनिश्रेष्ठ तवान्तिकम्।
आवयोर्मन्त्रमात्रेण कर्तुमर्हसि सत्क्रियाम् ॥ ४३ ॥

'मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार हम दोनों आपके निकट आये हैं। आप हमें सलाहमात्र देकर हमारा सत्कार करें' ॥ ४३ ॥

श्रुत्वैतद् भार्गवो रामस्तयोर्वाक्यमनिन्दितम्।
रैणुकेयः प्रतिवचो धर्मसंहितमब्रवीत् ॥ ४४ ॥

उन दोनोंका यह निर्दोष वचन सुनकर रेणुकानन्दन भृगुवंशी परशुरामने उन्हें यह धर्मयुक्त उत्तर दिया—॥ ४४ ॥

अपरान्तादहं कृष्ण सम्प्रतीहागतः प्रभो।
एक एव विना शिष्यैर्युवयोर्मन्त्रकारणात् ॥ ४५ ॥

'प्रभावशाली श्रीकृष्ण ! मैं तुम दोनोंको सलाह देनेके लिये ही इस समय यहाँ अपरान्तसे अकेला ही चला आया हूँ। शिष्योंको भी मैंने साथ नहीं लिया है ॥ ४५ ॥

विदितो मे व्रजे वासस्तव पद्मनिभेक्षण।
दानवानां वधश्चापि कंसस्यापि दुरात्मनः ॥ ४६ ॥

'कमलनयन ! तुम्हारा जो व्रजमें निवास हुआ है तथा तुम्हारे हाथसे जो दानवों और दुरात्मा कंसका वध हुआ है, वह सब मुझे विदित है ॥ ४६ ॥

विग्रहं च जरासंधे विदित्वा पुरुषोत्तम।
तव सभ्रातृकस्येह सम्प्राप्तोऽस्मि वरानन ॥ ४७ ॥

'सुन्दर मुखवाले पुरुषोत्तम ! जरासंधके साथ होनेवाले

विग्रहको जानकर ही मैं भाईसहित तुमसे मिलनेके लिये यहाँ आ गया हूँ ॥ ४७ ॥

जाने त्वां कृष्ण गोप्तारं जगतः प्रभुमव्ययम् ।
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थमबालं बालतां गतम् ॥ ४८ ॥

'श्रीकृष्ण ! मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ । तुम जगत्के रक्षक अविनाशी भगवान् हो और देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये बालक न होनेपर भी बालक बनकर प्रकट हुए हो ॥ ४८ ॥

न त्वयाविदितं किंचित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
तथापि भक्तिमात्रेण शृणु वक्ष्यामि ते वचः ॥ ४९ ॥

'तीनों लोकोंमें जो कुछ भी है, वह तुमसे अविदित नहीं है (अतः तुम्हें सलाह देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है), तथापि मैं अपनी भक्तिमात्रसे प्रेरित हो तुमसे जो बात कहता हूँ, उसे सुनो ॥ ४९ ॥

पूर्वजैस्तव गोविन्द पूर्वं पुरमिदं कृतम् ।
करवीरपुरं नाम राष्ट्रं चैव निवेशितम् ॥ ५० ॥

'गोविन्द ! पहले तुम्हारे पूर्वजोंने यहाँ इस करवीरपुर नामक नगरका निर्माण किया और इस राष्ट्रको बसाया है ॥

पुरेऽस्मिन् नृपतिः कृष्ण वासुदेवो महायशाः ।
शृगाल इति विख्यातो नित्यं परमकोपनः ॥ ५१ ॥

'श्रीकृष्ण ! इस करवीरपुरमें इस समय महायशस्वी वासुदेव रहता है, जो शृगाल नामसे विख्यात है । वह सदा ही अत्यन्त क्रोधमें भरा रहता है ॥ ५१ ॥

नृपेण तेन गोविन्द तव वंशभवा नृपाः ।
यादा निहताः सर्वे वीर द्वेषानुशायिना ॥ ५२ ॥

'वीर गोविन्द ! सदा द्वेषका ही अनुसरण करनेवाले उस राजा शृगालने तुम्हारे कुलमें उत्पन्न हुए समस्त राज्याधिकारी क्षत्रिय नरेशोंको मार डाला है ॥ ५२ ॥

अहंकारपरो नित्यमजितात्मातिमत्सरी ।
राज्यैश्वर्यमदाविष्टः पुत्रेष्वपि च दारुणः ॥ ५३ ॥

'वह नित्य घमंडमें भरा रहता है । उसका मन वशमें नहीं है । वह दूसरोंसे अत्यन्त डाह रखता है । राज्य और ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त होकर अपने पुत्रोंके प्रति भी निर्दयता-का बर्ताव करता है ॥ ५३ ॥

नेह भवतः स्थानं रोचते मे नरोत्तम ।
करवीरपुरे घोरे नित्यं पार्थिवदूषिते ॥ ५४ ॥

'नरश्रेष्ठ ! इसीलिये यहाँ सर्वदा इस राजाद्वारा कलङ्कित घोर करवीरपुरमें तुम्हारा ठहरना मुझे ठीक नहीं जँचता है ॥

श्रूयतां कथयिष्यामि यत्रोभौ शत्रुबाधनौ ।
जरासंधं बलोदग्रं भवन्तौ योधयिष्यतः ॥ ५५ ॥

'जहाँ रहकर तुम दोनों बन्धु शत्रुको बाधा पहुँचाते हुए बलमें बढ़े-चढ़े जरासंधके साथ युद्ध करेंगे, उस स्थानका परिचय देता हूँ; सुनो ॥ ५५ ॥

तीर्त्वा वेणामिमां पुण्यां नदीमद्यैव बाहुभिः ।
विषयान्ते निवासाय गिरिं गच्छाम दुर्गमम् ॥ ५६ ॥

'हमलोग आज ही इस पुण्य नदी वेणाको भुजाओंसे ही पार करके इस देशकी सीमापर स्थित एक दुर्गम पर्वतपर चले चलें, वहीं निवास करेंगे ॥ ५६ ॥

रम्यं यज्ञगिरिं नाम सह्यस्य प्ररुहं गिरिम् ।
निवासं मांसभक्षाणां चौराणां घोरकर्मणाम् ॥ ५७ ॥

'उस पर्वतका नाम है यज्ञगिरि, जो सह्यपर्वतकी ही उपशाखा है । वह बड़ा ही रमणीय स्थान है । वहाँ इन दिनों भयानक कर्म करनेवाले मांसाहारी चोर-डाकुओंने अड्डा जमा रखा है ॥ ५७ ॥

नानाद्रुमलतायुक्तं चित्रं पुष्पितपादपम् ।
प्रोष्ये तत्र निशामेकां खट्वाङ्गां नाम निम्नगाम्॥ ५८ ॥
भद्रं ते संतरिष्यामो निकषोपलभूषणाम् ।
गङ्गाप्रपातप्रतिमां भ्रष्टां च महतो गिरेः ॥ ५९ ॥

'उस पर्वतपर भाँति-भाँतिके वृक्ष और लताएँ लहलहा रही हैं । वृक्षोंमें फूल लगे हुए हैं । इससे उस पर्वतकी विचित्र शोभा होती है । वहाँ हमलोग एक रात निवास करेंगे । तदनन्तर खट्वाङ्गा नामवाली नदीको पार करेंगे, जो कसौटीके पत्थरोंसे विभूषित है । तुम्हारा भला हो । वह नदी उस महान् पर्वतसे गिरी हुई है, जो गङ्गाके प्रपात-सी दिखायी देती है ॥ ५८-५९ ॥

तस्याः प्रपातं द्रक्ष्यामस्तापसारण्यभूषणम् ।
उपभुज्य त्विमान् कामान् गत्वा तान् धरणीधरान्॥ ६०॥
द्रक्ष्यामस्तत्र तान् विप्राञ्छाम्यतो वै तपोधनान्।
रम्यं क्रौञ्चपुरं नाम गमिष्यामः पुरोत्तमम् ॥ ६१ ॥

'खट्वाङ्गाका प्रपात (झरना) तापसारण्यसे विभूषित है, हमलोग उसे देखेंगे और वहीं कुछ खा-पीकर इन कमनीय एवं प्रसिद्ध पर्वतोंपर विचरते हुए वहाँ उन तपस्वी ब्राह्मणोंका दर्शन करेंगे, जो तपमें संलग्न होकर कष्ट उठा रहे हैं । तत्पश्चात् हम रमणीय एवं श्रेष्ठ नगर क्रौञ्चपुरमें चलेंगे ॥ ६०-६१ ॥

वंशजस्तत्र ते राजा कृष्ण धर्मरतः सदा ।
महाकपिरिति ख्यातो वनवास्यजनाधिपः ॥ ६२ ॥

'श्रीकृष्ण ! वहाँ तुम्हारे ही कुलमें उत्पन्न एक राजा राज्य करते हैं, जो सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाले हैं, उनका नाम है महाकपि । वे वनवासी जनपद तथा वहाँकी निवासी प्रजाओंके अधिपति हैं ॥ ६२ ॥

तमदृष्ट्वैव राजानं निवासाय गतेऽहनि ।
तीर्थमानडुहं नाम तत्रस्थाः स्याम संगताः ॥ ६३ ॥

'उस राजासे मिले बिना ही हमलोग निवासके लिये संध्या होते-होते आनडुह नामक तीर्थमें जा पहुँचेंगे और वहाँ एक साथ मिलकर रहेंगे ॥ ६३ ॥

ततश्च्युता गमिष्यामः सह्यस्य विवरे गिरिम् ।
गोमन्तमिति विख्यातं नैकशृङ्गविभूषितम् ॥ ६४ ॥

'वहाँसे उतरकर हमलोग सह्यपर्वतकी गुफामें होते हुए उस गोमन्त नामसे विख्यात शैलपर जा पहुँचेंगे, जो अनेकानेक शिखरोंसे विभूषित है ॥ ६४ ॥

स्वर्गतैकमहाशृङ्गं दुरारोहं खगैरपि ।
विश्रामभूतं देवानां ज्योतिर्भिरभिसंवृतम् ॥ ६५ ॥

'इसका एक विशाल शिखर इतना ऊँचा है कि वह स्वर्गलोकतक पहुँचा हुआ जान पड़ता है। आकाशचारी पक्षियोंके लिये भी उसपर चढ़ना कठिन है। वह देवताओंका विश्राम-स्थल है और ज्योतियोंसे घिरा हुआ है ॥ ६५ ॥

सोपानभूतं स्वर्गस्य गगनाद्रिमिवोच्छ्रितम् ।
तं विमानावतरणं गिरिं मेरुमिवापरम् ॥ ६६ ॥

'उसे स्वर्गका सोपान समझा जाता है। वह उच्चतम पर्वत (भूतलका नहीं) आकाशका-सा पर्वत जान पड़ता है। उसपर देवताओंके विमान उतरते हैं तथा वह दूसरे मेरुगिरिके समान प्रतीत होता है ॥ ६६ ॥

तस्योत्तमे महाशृङ्गे भास्वन्तौ देवरूपिणौ ।
उदयास्तमये सूर्यं सोमं च ज्योतिषां पतिम् ॥ ६७ ॥
ऊर्मिमन्तं समुद्रं च अपारद्वीपभूषणम् ।
प्रेक्षमाणौ सुखं तत्र नगाग्रे विचरिष्यथः ॥ ६८ ॥

'तुम दोनों भाई देवताओंके समान दिव्य रूपधारी तथा तेजस्वी हो। उस गोमन्त गिरिके महान् शिखरपर आरूढ़ होकर उदय और अस्तके समय सूर्य एवं नक्षत्रोंके स्वामी चन्द्रमाका तथा अपार द्वीपोंसे विभूषित और तरङ्गमालाओंसे अलंकृत समुद्रका दर्शन करते हुए तुम दोनों बन्धु वहाँ पर्वतीय शिखरके अग्रभागमें सुखपूर्वक विचरोगे ॥६७-६८॥

शृङ्गस्थौ तस्य शैलस्य गोमन्तस्य वनेचरौ ।
दुर्गयुद्धेन धावन्तौ जरासंधं विजेष्यथः ॥ ६९ ॥

'उस गोमन्त नामक शैलके शिखरपर रहकर वहाँके वनमें विचरते हुए तुम दोनों वीर दुर्ग-युद्धद्वारा धावा करके जरासंधको जीत लोगे ॥ ६९ ॥

तत्र शैलगतौ दृष्ट्वा भवन्तौ युद्धदुर्मदौ ।
आसक्तः शैलयुद्धे वै जरासंधो भविष्यति ॥ ७० ॥

'तुम दोनों रण-दुर्मद वीरोंको उस पर्वतपर आरूढ़ हुआ देख जरासंध पर्वत-युद्धमें ही आसक्त हो जायगा ॥ ७० ॥

भवतोरपि युद्धे तु प्रवृत्ते तत्र दारुणे ।
आयुधैः सह संयोगं पश्यामि नचिरादिव ॥ ७१ ॥

'वहाँ भयंकर युद्ध आरम्भ हो जानेपर तुम दोनोंके हाथमें भी शीघ्र ही दिव्य आयुधोंका संयोग हुआ देखूँगा ॥

संग्रामश्च महान् कृष्ण निर्दिष्टस्तत्र दैवतैः ।
यदूनां पार्थिवानां च मांसशोणितकर्दमः ॥ ७२ ॥

'श्रीकृष्ण! वहाँ देवताओंने यादवों तथा अन्य राजाओंके महान् युद्धका निर्देश किया है, जिसमें रक्त और मांसकी कीच जम जानेवाली है ॥ ७२ ॥

तत्र चक्रं हलं चैव गदां कौमोदकीं तथा ।
सौनन्दं मुसलं चैव वैष्णवान्यायुधानि च ॥ ७३ ॥
दर्शयिष्यन्ति संग्रामे पास्यन्ति च महीक्षिताम् ।
रुधिरं कालयुक्तानां वपुर्भिः कालसंनिभैः ॥ ७४ ॥

'वहाँ सुदर्शन चक्र, संवर्तक हल, कौमोदकी गदा तथा सौनन्द नामक मुसल—ये विष्णुसम्बन्धी आयुध संग्राममें तुम्हें दर्शन देंगे और अपने कालके समान स्वरूपोंसे कालके अधीन हुए राजाओंका रक्त पीयेंगे ॥ ७३-७४ ॥

स चक्रमुसलो नाम संग्रामः कृष्ण विश्रुतः ।
दैवतैरिह निर्दिष्टः कालस्यादेशसंज्ञितः ॥ ७५ ॥

'श्रीकृष्ण! वह संग्राम चक्र-मुसलके नामसे विख्यात होगा। देवताओंने इसी स्थानपर उसके होनेका संकेत किया है। वह युद्ध साक्षात् कालका आज्ञापत्र है ॥ ७५ ॥

तत्र ते कृष्ण संग्रामे सुव्यक्तं वैष्णवं वपुः ।
द्रक्ष्यन्ति रिपवः सर्वे सुराश्च सुरभावन ॥ ७६ ॥

'देवताओंकी उत्पत्ति और वृद्धि करनेवाले श्रीकृष्ण! उस संग्राममें समस्त शत्रु और देवता भी तुम्हारे भलीभाँति व्यक्त हुए वैष्णव रूपका दर्शन करेंगे ॥ ७६ ॥

तां भजस्व गदां कृष्ण चक्रं च चिरविस्मृतम् ।
भजस्व स्वेन रूपेण सुराणां विजयाय वै ॥ ७७ ॥

'श्रीकृष्ण! तुम अपने उसी वैष्णव रूपसे स्थित हो देवताओंकी विजयके लिये चिरकालसे भूले हुए अपने उस चक्र और गदाको ग्रहण करना ॥ ७७ ॥

बलश्चायं हलं घोरं मुसलं चारिभेदनम् ।
वधाय सुरशत्रूणां भजताल्लोकभावनः ॥ ७८ ॥

'तथा ये लोकभावन बलराम भी देवद्रोहियोंका वध करनेके लिये अपने शत्रुविदारण घोर हल और मुसलको हाथमें ले लें ॥ ७८ ॥

एष ते प्रथमः कृष्ण संग्रामो भुवि पार्थिवैः ।
पृथिव्यर्थे समाख्यातो भारावतरणे सुरैः ॥ ७९ ॥

'श्रीकृष्ण ! पृथ्वीका भार उतारनेके लिये भूमण्डलके ताओंके साथ तुम्हारा यह पहला संग्राम देवताओंद्वारा बताया ता है ॥ ७९ ॥

आयुधावाप्तिरत्रैव वपुषो वैष्णवस्य च ।
क्ष्म्याश्च तेजसश्चैव व्यूहानां च विदारणम् ॥ ८० ॥

'यहीं तुम्हें अपने दिव्य आयुधोंकी, वैष्णव स्वरूपकी, क्ष्मीकी तथा शत्रुव्यूहोंका विदारण करनेवाले तेजकी प्राप्ति गी ॥ ८० ॥

तःप्रभृति संग्रामो धरण्यां शस्त्रमूर्च्छितः ।
विष्यति महान् कृष्ण भारतं नाम वैशसम् ॥ ८१ ॥

'श्रीकृष्ण ! इसके बाद पृथ्वीपर अस्त्र-शस्त्रोंसे व्याप्त एक महान् संग्राम होगा, जो लोगोंमें महाभारतके नामसे प्रसिद्ध होगा ॥ ८१ ॥

तद् गच्छ कृष्ण शैलेन्द्रं गोमन्तं च नगोत्तमम् ।
जरासंधमृधे चापि विजयस्त्वामुपस्थितः ॥ ८२ ॥

'अतः श्रीकृष्ण ! तुम पर्वतोंमें श्रेष्ठ गिरिराज गोमन्त-पर चलो । जरासंधके युद्धमें भी विजयश्री तुम्हारा ही वरण करनेके लिये प्रस्तुत है ॥ ८२ ॥

इदं चैवामृतप्रख्यं होमधेनोः पयोऽमृतम् ।
पीत्वा गच्छत भद्रं वो मयाऽऽदिष्टेन वर्त्मना ॥ ८३ ॥

'तुम्हारा कल्याण हो । मेरी इस होमधेनुका यह अमृतो-पम सुमधुर दुग्ध पीकर मेरे बताये हुए मार्गसे चलो' ॥ ८३ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि रामवाक्ये एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत परशुरामवाक्यविषयक उन्तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण, बलराम और परशुरामजीका गोमन्तपर्वतपर आरोहण, गोमन्तकी शोभाका वर्णन तथा परशुरामजीका श्रीकृष्णको युद्धके लिये प्रोत्साहन देकर वहाँसे प्रस्थान

वैशम्पायन उवाच

तु धेन्वाः पयः पीत्वा बलदर्पसमन्वितौ ।
तस्तौ रामसहितौ प्रस्थितौ यदुपुङ्गवौ ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! उस होमधेनुका दूध पीकर बल और दर्पसे भरे हुए वे दोनों यदुपुङ्गव र परशुरामजीके साथ वहाँसे प्रस्थित हुए ॥ १ ॥

गोमन्तं पर्वतं द्रष्टुं मत्तनागेन्द्रगामिनौ ।
ामदग्न्यप्रदिष्टेन मार्गेण वदतां वरौ ॥ २ ॥

मतवाले गजराजकी भाँति मस्तीके साथ चलनेवाले वे क्ताओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण और बलराम परशुरामजीके बताये हुए र्गसे गोमन्तपर्वतका दर्शन करनेके लिये चले ॥ २ ॥

ामदग्न्यतृतीयास्ते त्रयस्त्रय इवाग्नयः ।
ोभयन्ति स्म पन्थानं त्रिदिवं त्रिदशा इव ॥ ३ ॥

उन दोनोंके साथ तीसरे परशुरामजी थे । वे तीनों तीन ग्नियोंके समान उसी तरह उस मार्गकी शोभा बढ़ाते थे, जैसे ता स्वर्गकी ॥ ३ ॥

चाध्वविधिना सर्वे ततो वै दिवसक्रमात् ।
ोमन्तमचलं प्राप्ता मन्दरं त्रिदशा इव ॥ ४ ॥

मनुष्य जिस तरह किसी मार्गपर चलते हैं, उसी विधिसे सब लोग यात्रा करते हुए क्रमशः कई दिनोंके बाद मन्त गिरिपर जा पहुँचे, मानो देवता मन्दराचलके खरपर गये हों ॥ ४ ॥

लताचारुविचित्रं च नानाद्रुमविभूषितम् ।
नानागुरुपिनद्धाङ्गं चित्रं चित्रैर्मनोहरैः ॥ ५ ॥

नाना प्रकारकी लताओंके विस्तारसे उस पर्वतकी सुन्दर एवं विचित्र शोभा हो रही थी । भाँति-भाँतिके वृक्ष उसके लिये भूषणका काम दे रहे थे । उस पर्वतका सारा अङ्ग अनेक प्रकारके अगुरु आदि सुगन्धित धूपोंसे व्याप्त था । मनोहर मयूर उसे और भी विचित्र शोभासे सम्पन्न किये देते थे ॥ ५ ॥

द्विरेफगणसंकीर्णं शिलासंकटपादपम् ।
मत्तबर्हिणनिर्घोषैर्नादितं मेघनादिभिः ॥ ६ ॥

भ्रमरोंसे व्याप्त और शिला तथा वृक्षोंसे भरा हुआ वह पर्वत मेघोंके समान गम्भीर स्वरोंमें बोलनेवाले मतवाले मयूरोंकी मधुर ध्वनिसे निनादित हो रहा था ॥ ६ ॥

गगनालग्नशिखरं जलदासक्तपादपम् ।
मत्तद्विपविषाणाग्रैः परिघृष्टोपलाङ्कितम् ॥ ७ ॥

उसके शिखर आकाशके ऊर्ध्वभागसे लगे हुए थे । बादल उसके वृक्षोंका आलिङ्गन करते थे तथा उसके प्रस्तर-खण्ड मतवाले हाथियोंके दाँतोंके अग्रभागकी रगड़से घिसे हुए दिखायी देते थे । उन प्रस्तरोंसे अङ्कित हुआ वह पर्वत बड़ी शोभा पाता था ॥ ७ ॥

कूजद्भिश्चाण्डजगणैः समन्तात् प्रतिनादितम् ।
दरीप्रपाताम्बुरवैश्छन्नं शार्दूलतल्लजैः ॥ ८ ॥

वहाँ चारों ओर पक्षी कलरव करते थे, जिनकी प्रतिध्वनि

सब ओर छायी रहती थी। गुफाओंमें झरनेका जल गिरनेसे जो शब्द होता था तथा बड़े-बड़े व्याघ्रोंके दहाड़नेसे जो ध्वनि होती थी, उससे भी वह पर्वत व्याप्त हो रहा था ॥ ८ ॥

नीलाश्मचयसंघातैर्बहुवर्णं यथा घनम् ।
धातुविस्रावदिग्धाङ्गं सानुप्रस्रवभूषितम् ॥ ९ ॥

वहाँ नीले पत्थरोंके ढेर-के-ढेर पड़े थे, जिनसे वह अनेक वर्णके मेघकी भाँति सुशोभित होता था। पानीके साथ गेरू आदि धातुओंके बहानेसे उसका अङ्ग चन्दनसे चर्चित-सा जान पड़ता था। शिखरोंसे जो झरने गिर रहे थे, वे आभूषण-के समान उसकी शोभा बढ़ाते थे ॥ ९ ॥

कीर्णं सुरगणैः कान्तैर्मैनाकमिव कामगम् ।
उच्छ्रितं सुविशालाग्रं समूलाम्बुपरिस्रवम् ॥ १० ॥

कान्तिमान् देवता वहाँ सब ओर फैले हुए थे। वह इच्छानुसार विचरनेवाले मैनाक-सा प्रतीत होता था। अत्यन्त विशाल शिखरसे सुशोभित वह उच्चतम पर्वत अपने मूलभागसे निर्झरोंके जलकी धारा बहा रहा था ॥ १० ॥

सकाननदरीप्रस्थं श्वेताभ्रगणभूषितम् ।
पनसाम्रातकाम्रौघैर्वेत्रस्यन्दनचन्दनैः ॥ ११ ॥
तमालैलावनयुतं मरीचक्षुपसंकुलम् ।

वन, गुफा और शिखरोंसे सम्पन्न वह शैलराज श्वेत बादलोंसे विभूषित था। वहाँ कटहल, आम्रातक (अमड़ा), आमोंके समूह, बेंत, स्यन्दन (तिनिश), चन्दन, तमाल, इलायचीके वन तथा मिर्चकी झाड़ियाँ शोभा पाती थीं।११½।

पिप्पलीवल्लिकलिलं चित्रमिङ्गुदिपादपैः ॥ १२ ॥
द्रुमैः सर्जरसानां च सर्वतः परिशोभितम् ।
प्रांशुशालवनैर्युक्तं बहुचित्रवनैर्युतम् ॥ १३ ॥

वहाँ सब ओर पिप्पलीकी बेलें फैली थीं। इङ्गुदीके वृक्ष विचित्र शोभा दे रहे थे तथा सर्जरस (राल) के वृक्ष सब ओरसे उस पर्वतको सुशोभित किये हुए थे। ऊँचे-ऊँचे शाल वृक्षोंके वन तथा अन्य बहुत-से विचित्र वन उस पर्वतकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥ १२-१३ ॥

सर्जनिम्बार्जुनवनं पाटलीकुलसंकुलम् ।
हिन्तालैश्च तमालैश्च पुन्नागैश्चोपशोभितम् ॥ १४ ॥

राल, नीम और अर्जुन वृक्षोंका वन शोभा दे रहा था। पाड़र वृक्षोंके समूह वहाँ सब ओर छा रहे थे। हिंताल, तमाल और पुन्नाग (जायफल) उस शैलशिखरकी शोभा बढ़ाते थे ॥ १४ ॥

जलेषु जलजैश्छन्नं स्थलेषु स्थलजैरपि ।
पङ्कजैर्द्रुमखण्डैश्च सर्वतः प्रतिभूषितम् ॥ १५ ॥

वहाँ जलोंमें जलज कमल, स्थलोंमें स्थलज कमल तथा अन्यान्य वृक्षसमूह सब ओरसे उस पर्वतके आभूषण बने हुए थे ॥ १५ ॥

जम्बूजम्बूलवृक्षाढ्यं कद्रुकन्दलभूषितम् ।
चम्पकाशोकबकुलं बिल्वतिन्दुकशोभितम् ॥ १६ ॥

जामुन, केवड़े, कद्रु, केले, चम्पा, अशोक, बकुल, बिल्व और तिन्दुक आदि वृक्षोंसे वह शैल सुशोभित था ॥

कुब्जैश्च नागपुष्पैश्च समन्तादुपशोभितम् ।
नागयूथसमाकीर्णं मृगसंघातशोभितम् ॥ १७ ॥

बहुत-से कुब्ज और नागकेसरके फूल सब ओरसे उसकी शोभा बढ़ाते थे। झुंड-के-झुंड हाथी वहाँ सब ओर फैले हुए थे। मृगोंके समुदायसे वह शोभायमान था ॥ १७ ॥

सिद्धचारणरक्षोभिः सेवितप्रस्तरान्तरम् ।
गन्धर्वैश्च समायुक्तं गुह्यकैः पक्षिभिस्तथा ॥ १८ ॥

उसके प्रस्तरखण्डोंके मध्यभागोंमें सिद्ध, चारण तथा राक्षस बैठे हुए थे। गन्धर्व, गुह्यक तथा पक्षी भी उस पर्वतका सेवन करते थे ॥ १८ ॥

विद्याधरगणैर्नित्यमनुकीर्णशिलातलम् ।
सिंहशार्दूलसंनादैः सततं प्रतिनादितम् ।
सेवितं वारिधाराभिश्चन्द्रपादैश्च शोभितम् ॥ १९ ॥

उसकी शिलाएँ सदा ही विद्याधरगणोंसे सेवित होती थीं। सिंहों और व्याघ्रोंके दहाड़नेकी ध्वनिसे वह पर्वत निरन्तर गूँजता रहता था। जलकी धाराएँ और चन्द्रमाकी किरणें उसका सेवन एवं शोभा-संवर्धन करती थीं ॥ १९ ॥

स्तुतं त्रिदशगन्धर्वैरप्सरोभिरलंकृतम् ।
वनस्पतीनां दिव्यानां पुष्पैरुच्चावचैः श्रितम् ॥ २० ॥

देवता और गन्धर्व उसकी प्रशंसा करते थे। वह पर्वत अप्सराओंसे अलंकृत था। दिव्य वनस्पतियोंके नाना प्रकारके फूल वहाँ सब ओर बिखरे पड़े थे ॥ २० ॥

शक्रवज्रप्रहाराणामनभिज्ञं कदाचन ।
दावाग्निभयनिर्मुक्तं महावातभयोज्झितम् ॥ २१ ॥

उस पर्वतको कभी भी इन्द्रके वज्रप्रहारकी व्यथाका अनुभव नहीं हुआ था। वहाँ न तो दावानलका भय था और न प्रचण्ड आँधीका ॥ २१ ॥

प्रपातप्रभवाभिश्च सरिद्भिरुपशोभितम् ।
काननैराननाकारैर्विशेषद्भिरिव श्रियम् ॥ २२ ॥

निर्झरोंसे प्रकट हुई सरिताएँ उस पर्वतको सुशोभित करती थीं। वह अपनी शोभा बढ़ाते हुए-से मुखाकार काननोंसे उपलक्षित होता था ॥ २२ ॥

जलशैवलशृङ्गाग्रैरुन्मिषन्तमिव श्रिया ।
स्थलीभिर्मृगजुष्टाभिः कान्ताभिरुपशोभितम् ॥ २३ ॥

जल और सिवारसे युक्त शिखरोंके अग्रभागद्वारा मानो वह लक्ष्मीसे आँख मिला रहा था। पशुओंसे सेवित कमनीय वनस्थलियाँ उसकी शोभा बढ़ाती थीं ॥ २३ ॥

पार्श्वैरुपलकल्माषैर्मेघैरिव विभूषितम् ।
पादपच्छन्नभूमीभिः सपुष्पाभिः समन्ततः ॥ २४ ॥
ण्डितं वनराजीभिः प्रमदाभिः पतिर्यथा ।

पार्श्वभागमें स्थित चितकबरे प्रस्तरखण्डोंसे वह ऐसी ोभा पा रहा था, मानो बहुरंगे बादलोंसे विभूषित हो रहा । अपने वृक्षसमूहोंसे भूमिको ढक देनेवाली पुष्पशोभित श्रेणियाँ उस पर्वतको सब ओरसे घेरकर उसी प्रकार भा-सम्पन्न किए हुए थीं, जैसे पुष्पवती (रजस्वला होनेके ात् स्नान एवं पुष्पहारसे अलंकृत) युवती स्त्रियाँ पतिको रकर खड़ी हों ॥ २४½ ॥

सुन्दरीभिर्दरीभिश्च कन्दराभिस्तथैव च ॥ २५ ॥
षु तेष्ववकाशेषु सदारमिव शोभितम् ।

जगह-जगह सुन्दर गुफाओं और मनोहर कन्दराओंसे लंकृत हुआ गोमन्तगिरि विभिन्न स्थानोंमें सपत्नीक पुरुष-की भाँति शोभा पाता था ॥ २५½ ॥

औषधीदीप्तशिखरं वानप्रस्थनिषेवितम् ।
तरूपैर्वनोद्देशैः कृत्रिमैरिव भूषितम् ॥ २६ ॥

विभिन्न प्रकारकी ओषधियाँ उसके शिखरको उद्भासित ये हुए थीं। वानप्रस्थ मुनि उसका सेवन करते थे तथा सके सहज सुन्दर वनोद्देश कृत्रिम उद्यानोंकी भाँति उसे भूषित किये हुए थे ॥ २६ ॥

मूलेन सुविशालेन शिरसाप्युच्छ्रितेन च ।
पृथिवीमन्तरिक्षं च ग्राहयन्तमिव स्थितम् ॥ २७ ॥

वह पर्वत अपने अत्यन्त विशाल मूलभाग और उच्चतम शिखरसे पृथ्वी और आकाशमें प्रविष्ट होकर उनकी थाह गाता हुआ-सा खड़ा था ॥ २७ ॥

े समासाद्य गोमन्तं रम्यं भूमिधरोत्तमम् ।
चिरं रुरुचुः सर्वे वासायामरसंनिभाः ॥ २८ ॥

पर्वतोंमें श्रेष्ठ सुन्दर एवं मनोहर गोमन्तपर्वतपर पहुँच-र उन सभी देवोपम पुरुषोंने वहाँ निवास करनेकी च्छा की ॥ २८ ॥

रुहुस्ते गिरिवरं खमूर्ध्वमिव पक्षिणः ।
सज्जमाना वेगेन वैनतेयपराक्रमाः ॥ २९ ॥

गरुडके समान पराक्रमी वे तीनों महापुरुष उस श्रेष्ठ र्वतपर उसी तरह वेगसे चढ़ने लगे, जैसे पक्षी ऊपर आकाश-में उड़ते हैं। उस समय उनमेंसे किसीकी भी गति अवरुद्ध हीं होती थी ॥ २९ ॥

े तु तस्योत्तरं शृङ्गमारूढास्त्रिदशा इव ।
गारं सहसा चक्रुर्मनसा निर्मितोपमम् ॥ ३० ॥

वे देवताओंकी भाँति उसके सर्वोच्च शिखरपर आरूढ़ हो गये। वहाँ उन्होंने सहसा अपने रहनेके लिये घर बना लिया, मानो मानसिक संकल्पसे ही उसका निर्माण कर लिया हो ॥ ३० ॥

निविष्टौ यादवौ दृष्ट्वा जामदग्न्यो महामतिः ।
रामोऽभिमतमक्लिष्टमाप्रष्टुमुपचक्रमे ॥ ३१ ॥

उन दोनों यदुकुमारोंको वहाँ विराजमान हुआ देख परम बुद्धिमान् परशुरामजीने प्रसन्नतापूर्वक अपने अभीष्ट स्थानपर जानेके लिये उनसे पूछना आरम्भ किया—॥३१॥

कृष्ण यास्याम्यहं तात पुरं शूर्पारकं विभो ।
युवयोर्नास्ति वैमुख्यं संग्रामे दैवतैरपि ॥ ३२ ॥

'तात ! प्रभावशाली श्रीकृष्ण ! अब मैं शूर्पारक नगरको जाऊँगा। आप दोनोंको तो युद्धमें देवता भी नहीं हरा सकते (फिर मनुष्यकी तो बात ही क्या है ?) ॥ ३२ ॥

प्राप्तवानस्मि यां प्रीतिं मार्गानुगमनादपि ।
सा मे कृष्णानुगृह्णाति शरीरमिदमव्ययम् ॥ ३३ ॥

'श्रीकृष्ण ! तुम दोनोंके साथ मार्गका अनुसरण करनेसे मुझे जो प्रसन्नता प्राप्त हुई है, वह मेरे इस अविनाशी शरीर-को अनुगृहीत कर रही है ॥ ३३ ॥

इदं तत् स्थानमुद्दिष्टं यत्रायुधसमागमः ।
युवयोर्विहितो देवैः समयः साम्परायिकः ॥ ३४ ॥

'मैंने जिसे बताया था और जहाँ तुम्हें अपने दिव्य आयुध प्राप्त होनेवाले हैं, वह स्थान यही है। देवताओंने तुम्हारे लिये उनकी प्राप्तिका यही समय निर्धारित किया है, जो परलोकके लिये हितकर है ॥ ३४ ॥

देवानां मुख्य वैकुण्ठ विष्णो देवैरभिष्टुत ।
कृष्ण सर्वस्य लोकस्य शृणु मे नैष्ठिकं वचः ॥ ३५ ॥

'देवताओंमें श्रेष्ठ वैकुण्ठ ! तुम सर्वव्यापी विष्णु हो। देवताओंने सदा तुम्हारी स्तुति की है। श्रीकृष्ण ! तुम मेरी यह तात्त्विक बात सुनो, जो सम्पूर्ण जगत्के लिये हितकर है ॥ ३५ ॥

यदिदं प्रस्तुतं कर्म त्वया गोविन्द लौकिकम् ।
मानुषाणां हितार्थाय लोके मानुषदेहिना ॥ ३६ ॥
तस्यायं प्रथमः कल्पः कालेन तु नियोजितः ।

'गोविन्द ! तुमने मनुष्योंके हितके लिये संसारमें मानव-शरीर धारण करके जो यह लौकिक कर्म प्रारम्भ किया है, उसका यह पहला प्रयोग यहीं होने जा रहा है। कालने उसका आयोजन यहीं किया है ॥ ३६½ ॥

जरासंधेन वै सार्धं संग्रामे समुपस्थिते ॥ ३७ ॥
तत्रायुधबलं चैव रूपं च रणकर्कशम् ।
स्वयमेवात्मना कृष्ण त्वमात्मानं विधत्स्व ह ॥ ३८ ॥

'श्रीकृष्ण ! जरासंधके साथ संग्राम उपस्थित होनेपर तुम स्वयं ही अपने-आपके द्वारा अपनेको आयुध-बलसे सम्पन्न कर लेना और अपना रण-कर्कश रूप बना लेना ॥३७-३८॥

चक्रोद्यतकरं दृष्ट्वा त्वां गदापाणिमाहवे ।
चतुर्द्विगुणपीनांसं विभ्येदपि शतक्रतुः ॥ ३९ ॥

'जिस समय तुम आठ मांसल कंधोंसे युक्त हो हाथोंमें चक्र और गदा उठाये युद्धके लिये उपस्थित होओगे, उस समय तुम्हें देखकर देवराज इन्द्र भी भयभीत हो उठेंगे ॥

अद्यप्रभृति ते यात्रा स्वर्गौका समुपस्थिता ।
पृथिव्यां पार्थिवेन्द्राणां कृतास्त्रे त्वयि मानद ॥ ४० ॥

'मानद ! जब तुम हाथमें हथियार लेकर युद्धके लिये उद्यत हो गये हो, तब आजसे ही भूमण्डलके राजाओंकी स्वर्गीय यात्रा आरम्भ हो जायगी ॥ ४० ॥

वैनतेयस्य चाह्वानं वाहनं ध्वजकर्मणि ।
कुरु शीघ्रं महाबाहो गोविन्द वदतां वर ॥ ४१ ॥

'वक्ताओंमें श्रेष्ठ महाबाहु गोविन्द ! तुम अपने ध्वजारोपणरूप कार्यकी सिद्धिके लिये शीघ्र ही वाहनरूप विनतानन्दन गरुड़का आवाहन करो ॥ ४१ ॥

युद्धकामा नृपतयस्त्रिदिवाभिमुखोद्यताः ।
धार्तराष्ट्रस्य वशगास्तिष्ठन्ति रणवृत्तयः ॥ ४२ ॥

'युद्धकी इच्छा करनेवाले नरेशगण स्वर्गके लिये अभिमुख एवं उद्यत होकर युद्धवृत्तिका आश्रय ले धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनके अधीन होकर खड़े हैं ॥ ४२ ॥

राज्ञां निधनदृष्टार्था वैधव्येनाधिवासिता ।
एकवेणीधरा चेयं वसुधा त्वां प्रतीक्षते ॥ ४३ ॥

'राजाओंका निधन होनेवाला है, यह बात प्रत्यक्ष देखकर वैधव्यसूचक वेष-भूषा धारण किये एक वेणीधारिणी (केश-संस्कारसे रहित) यह वसुन्धरा तुम्हारी राह देखती है ॥४३॥

सग्रहं कृष्ण नक्षत्रं संक्षिप्यारिविमर्दन ।
त्वयि मानुष्यमापन्ने युद्धे च समुपस्थिते ॥ ४४ ॥

'शत्रुमर्दन श्रीकृष्ण ! आप मानवरूप धारण करके इस धरातलपर आ गये हैं और युद्धका अवसर भी उपस्थित है, इसलिये क्षत्रियसमाज मृत्युसे संकुचित न होकर रणभूमिमें आनेके लिये उतावला हो उठा है । किसी समयविशेषकी प्रतीक्षा नहीं कर रहा है, क्योंकि उसका जन्मनक्षत्र क्रूरग्रहसे आक्रान्त हो गया है ॥ ४४ ॥

त्वरस्व कृष्ण युद्धाय दानवानां वधाय च ।
स्वर्गाय च नरेन्द्राणां देवतानां सुखाय च ॥ ४५ ॥

'श्रीकृष्ण ! तुम दानवोंका वध करने, नरेशोंको स्वर्गलोकमें भेजने और देवताओंको सुख पहुँचानेके उद्देश्यसे युद्धके लिये जल्दी करो ॥ ४५ ॥

सत्कृतोऽहं त्वया कृष्ण लोकैश्च सचराचरैः ।
त्वया सत्कृतरूपेण येन सत्कृतवानहम् ॥ ४६ ॥

'सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्ण ! तुम स्वरूपतः सबके द्वारा सत्कृत हो । तुम सर्वात्माने जो मेरा सत्कार किया है, उससे मैं चराचर प्राणियोंसहित सम्पूर्ण लोकोंद्वारा सत्कृत हो गया और सदाके लिये सत्कारवान् बन गया ॥ ४६ ॥

साधयामि महाबाहो भवतः कार्यसिद्धये ।
स्मर्तव्यश्चास्मि युद्धेषु कान्तारेषु महीक्षिताम् ॥ ४७ ॥

'महाबाहो ! मैं तुम्हारे कार्यकी सिद्धिके लिये स्वयं भी साधना करूँगा । सभी भूमिपालोंको चाहिये कि वे दुर्गम संकट और युद्धके अवसरोंपर मेरा स्मरण करें' ॥ ४७ ॥

इत्युक्त्वा जामदग्न्यस्तु कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ।
जयाशिषा वर्द्धयित्वा जगामाभीप्सितां दिशम्॥ ४८ ॥

ऐसा कहकर परशुरामजी अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीकृष्णको विजयसूचक आशीर्वादसे बढ़ावा देकर स्वयं अभीष्ट दिशाको चले गये ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि गोमन्तारोहणं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें श्रीकृष्णका गोमन्तपर्वतपर आरोहणविषयक चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

बलरामके पास वारुणी, कान्ति एवं श्री (शोभा)—इन देवाङ्गनाओंका आगमन, गरुड़के द्वारा श्रीकृष्णको वैष्णव मुकुटकी प्राप्ति, श्रीकृष्णका बलरामसे वार्तालाप तथा जरासंधकी सेनाका निरीक्षण करके अपने आपसे ही मानसिक उद्गार प्रकट करना

वैशम्पायन उवाच

जामदग्न्ये गते रामे तौ यादवकुलोद्वहौ ।
गोमन्तशिखरे रम्ये चेरतुः कामरूपिणौ ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! परशुरामजीके चले जानेपर यादवकुलका भार वहन करनेवाले वे श्रीकृष्ण और बलराम इच्छानुसार रूप धारण करके गोमन्त-

पर्वतके रमणीय शिखरपर विचरने लगे ॥ १ ॥

वनमालाकुलोरस्कौ नीलपीताम्बरावुभौ ।
नीलश्वेतवपुष्मन्तौ गगनस्थाविवाम्बुदौ ॥ २ ॥

उन दोनोंके वक्षःस्थलोंमें वनमाला शोभा पा रही थी। दोनों क्रमशः नीले-पीले वस्त्र धारण करके अपने गौर-श्याम शरीरसे आकाशमें स्थित हुए दो मेघोंके समान शोभा पा रहे थे ॥ २ ॥

तौ शैलधातुदिग्धाङ्गौ युवानौ शिखरे स्थितौ ।
चेरतुस्तत्र कान्तेषु वनेषु रतिलालसौ ॥ ३ ॥

पर्वतीय धातुओंसे अपने अङ्गोंका शृङ्गार करके उस पर्वतके शिखरपर खड़े हुए दोनों नवयुवक वीर क्रीड़ाकी लालसा लिये कमनीय वनोंमें विचरण करने लगे ॥ ३ ॥

उद्यन्तं निरीक्षन्तौ शशिनं ज्योतिषां वरम् ।
उदयास्तमने चैव ग्रहाणां धरणीधरे ॥ ४ ॥

वे उस पर्वतपर ज्योतिर्मय नक्षत्रोंमें श्रेष्ठ चन्द्रमाके उदयकी शोभा देखते और ग्रहोंके उदय-अस्त देखा करते थे ॥ ४ ॥

अथ संकर्षणः श्रीमान् विना कृष्णेन वीर्यवान् ।
चचार तस्य शिखरे नगस्य नगसंनिभः ॥ ५ ॥

एक दिन परम पराक्रमी श्रीमान् संकर्षण श्रीकृष्णके विना ही उस पर्वतके शिखरपर विचर रहे थे । वे स्वयं भी पर्वतके समान ही प्रतीत होते थे ॥ ५ ॥

प्रफुल्लस्य कदम्बस्य सुच्छाये निषसाद ह ।
वायुना मन्दगन्धेन वीज्यमानः सुखेन वै ॥ ६ ॥

घूमते-घूमते एक खिले हुए कदम्बकी मनोहर छायामें बैठ गये । उस समय कदम्बकी मधुर मन्द गन्धसे वासित वायु उन्हें सुखपूर्वक व्यजन डुलाने लगी ॥ ६ ॥

तस्य तेनानिलौघेन सेव्यमानस्य तत्र वै ।
मद्यसंस्पर्शजो गन्धः संस्पृशन् घ्राणमागतः ॥ ७ ॥

वह मन्द-मन्द वायु बहकर जब बलरामजीकी सेवा कर रही थी, उस समय उनकी घ्राणेन्द्रियमें मधुका स्पर्श करके आये हुए सुगन्धित समीरने प्रवेश किया ॥ ७ ॥

तृष्णा चैनं विवेशाशु वारुणीप्रभवा तदा ।
शुशोष च मुखं तस्य मत्तस्येवापरेऽहनि ॥ ८ ॥

उस समय उनके भीतर वारुणी (मधु या अमृत) की तृष्णाका आवेश हुआ । फिर तो दूसरे दिन मतवाले पुरुषकी भाँति उनका मुँह सूखने लगा ॥ ८ ॥

स्मारितः स पुरावृत्तममृतप्राशनं विभुः ।
तृषितो मदिरान्वेषी ततस्तं तरुमैक्षत ॥ ९ ॥

उन्हें पूर्वकालमें किये गये अमृतपानका स्मरण हो आया। वे तृषित होकर उस अमृतकी खोज करने लगे । तब उन्होंने उस वृक्षकी ओर देखा ॥ ९ ॥

तस्य प्रावृषि फुल्लस्य यदम्भो जलजोज्झितम् ।
तत्कोटरस्थं मदिरा संजायत मनोहरा ॥ १० ॥

वर्षाकालमें उस खिले हुए कदम्बपर जो मेघोंका बरसाया हुआ जल गिरा था, वह उसके कोटरमें मनोहर सुधाके रूपमें प्रकट हो गया ॥ १० ॥

तां तु तृष्णाभिभूतात्मा पिबन्नार्त इवासकृत् ।
मोहाच्च चलिताकारः समजायत स प्रभुः ॥ ११ ॥

बलरामजीका हृदय प्याससे घबरा उठा था । वे पिपासा-पीड़ित पुरुषकी भाँति उस अमृतको बार-बार पीने लगे । उसको अधिक पी लेनेके कारण उनपर मोह (नशा-) सा छा गया, जिससे उन प्रभावशालीका शरीर कुछ लड़खड़ाने-सा लगा ॥ ११ ॥

तस्य मत्तस्य वदनं किंचिच्चलितलोचनम् ।
घूर्णिताकारमभवच्छरत्कालेन्दुसप्रभम् ॥ १२ ॥

मधुसे मत्त हुए बलरामका मुख कुछ झूमता-सा प्रतीत हुआ, नेत्र किंचित् चञ्चल हो उठे । उस मुखकी प्रभा शरत्कालके चन्द्रमाकी भाँति सुशोभित होने लगी ॥ १२ ॥

कदम्बकोटरे जाता नाम्ना कादम्बरीति सा ।
रूपिणी वारुणी तत्र देवानाममृतारणी ॥ १३ ॥

वह मधुमयी सुधा कदम्बके कोटरमें उत्पन्न हुई थी, इसलिये कादम्बरी नामसे विख्यात हुई । वहाँ मूर्तिमती वारुणी प्रकट हुई थी, जो देवताओंके लिये अमृत पैदा करनेवाली है ॥ १३ ॥

कादम्बरीमदकलं विदित्वा कृष्णपूर्वजम् ।
तिस्रस्त्रिदशनार्यस्तमुपतस्थुः प्रियंवदाः ॥ १४ ॥

श्रीकृष्णके बड़े भाईको कादम्बरी (मधु या अमृत) के नशेसे स्पष्ट बात बोलनेमें असमर्थ जान तीन प्रियवादिनी देवाङ्गनाएँ उनकी सेवामें उपस्थित हुईं ॥ १४ ॥

मदिरा रूपिणी भूत्वा कान्तिश्च शशिनः प्रिया ।
श्रीश्च देवी वरिष्ठा स्त्री स्वयमेवाम्बुजध्वजा ॥ १५ ॥
साञ्जलिप्रग्रहा देवी रौहिणेयमुपस्थिता ।
वारुण्या सहितं वाक्यमुवाच मदविक्लवम् ॥ १६ ॥

एक तो मादक मधु या अमृतकी अधिष्ठात्री देवी (जिन्हें वारुणी कहते हैं) मूर्तिमती होकर प्रकट हुई। दूसरी चन्द्रमाकी प्रिय कान्ति (की अधिष्ठात्री देवी) थी और तीसरी श्री देवी थीं, जो सर्वश्रेष्ठ स्त्री मानी जाती हैं, उनके ध्वजमें कमलका चिह्न है, वे देवी स्वयं ही हाथ जोड़े हुए रोहिणीनन्दन बलरामकी सेवामें उपस्थित हुई थीं । वारुणीके साथ उन्होंने मदविह्वल बलरामजीसे इस प्रकार कहा—॥ १५–१६ ॥

बलं जयस्व दैत्यानां बलदेव दिवीश्वर ।
अहं ते दयिता कान्ता वारुणी समुपस्थिता ॥ १७ ॥

'पहले वारुणी बोली 'देवलोकेश्वर बलदेव ! आप दैत्योंकी सेनापर विजय प्राप्त करें। मैं आपकी प्राणवल्लभा वारुणी सेवामें उपस्थित हुई हूँ ॥ १७ ॥

त्वामेवान्तर्हितं श्रुत्वा शाश्वतं वडवामुखे।
क्षीणपुण्येव वसुधां पर्येमि विमलानन ॥ १८ ॥

'निर्मल मुखवाले देव ! मैं आपको वड़वानलके समीप पातालमें शेषरूपसे नित्य विराजमान जानती थी, किंतु इस समय भूतलमें अवतार लेनेके कारण वहाँसे अदृश्य हो गये हैं, ऐसा सुनकर मैं पुण्यहीना नारी-सी आपकी खोजमें सारी पृथ्वीपर भटक रही थी ॥ १८ ॥

पुष्पचक्रानुलिप्तेषु केसरेषूषितं मया।
अतिमुक्तेषु चाक्षोभ्य पुष्पस्तबकवत्सु च ॥ १९ ॥

'अजेय वीर ! मैंने पुष्पसमूहोंसे अनुलिप्त हुए केसरोंमें निवास किया है, फूलोंके गुच्छोंसे सुशोभित वासन्ती लताओंमें वास किया है ॥ १९ ॥

अहं कदम्बमालीना मेघकाले मुखप्रिया।
तृषितं मार्गमाणा त्वां स्वेन रूपेण छादिता ॥ २० ॥

'मेरे लिये प्यासे हुए आपकी खोज करती हुई मैं अपने रूपको छिपाकर वर्षाकालमें कदम्ब वृक्षके भीतर लुक-छिपकर रहती आयी हूँ। मुझे आपके मुखका निवास ही विशेष प्रिय है ॥ २० ॥

सास्मि पूर्णेन योगेन यथैवामृतमन्थने।
समीपं प्रेषिता पित्रा वरुणेन तवानघ ॥ २१ ॥
सा यथैवार्णवगता तथैव वडवामुखे।
त्वयोपभोक्तुमिच्छामि सम्मतस्त्वं हि मे गुरुः ॥ २२ ॥

'निष्पाप बलराम ! जैसे पूर्वकालमें अमृतमन्थनके समय पूर्णयोगसे युक्त होनेपर मेरे पिता वरुणने मुझे आपके समीप भेजा था, जैसे समुद्रमें और पातालमें मैं आपके पास रही हूँ, उसी प्रकार इस समय भी आपकी सेवामें उपस्थित हुई हूँ और चाहती हूँ, कि आपके द्वारा मेरा उपभोग हो; क्योंकि मेरे हृदयने आपहीको अपना स्वामी माना है ॥ २१-२२ ॥

न त्वानन्तं परित्यक्ष्ये भर्त्सितापि त्वयानघ।
नाहं त्वया विना लोकानुत्सहे देव सेवितुम् ॥ २३ ॥
आदिपद्मं च पद्माङ्कं दिव्यं श्रवणभूषणम्।
कौशेयानि च नीलानि समुद्रार्हाणि बिभ्रती ॥ २४ ॥

'अनघ ! आप मुझे डाँट बतायें, तो भी मैं आप अनन्तका परित्याग नहीं करूँगी। देव ! मैं समुद्रमें रहनेवालीके योग्य नीले रंगकी रेशमी साड़ी पहनकर आदिपद्म तथा पद्मचिह्नित दिव्य कर्णभूषण धारण कर आपकी सेवामें आयी हूँ। आपके बिना मैं दूसरे किन्हीं लोकोंका सेवन करना नहीं चाहती' २३-२४

मदिरानन्तरं कान्तिः संकर्षणमुपस्थिता।
देनागलितश्रोणी किंचिदाघूर्णितेक्षणा ॥ २५ ॥
प्रोवाच प्रणयात् कान्तिर्बद्धाञ्जलिपुटा सती।
जयपूर्वेण योगेन सस्मितं वाक्यमर्थवत् ॥ २६ ॥

वारुणीके बाद कान्तिदेवी संकर्षणकी सेवामें उपस्थित हुई। उसका कटिप्रदेश मदसे कुछ कम्पित हो रहा था। आँखें भी कुछ घूम रही थीं। उसने दोनों हाथ जोड़कर कहा—'जय हो बलरामजीकी।' फिर प्रेमसे मुसकराती हुई वह प्रयोजनयुक्त वचन बोली—॥ २५-२६ ॥

अहं चन्द्रादपि गुरुं सहस्रशिरसं प्रभुम्।
स्वैर्गुणैरनुरक्ता त्वां यथैव मदिरा तथा ॥ २७ ॥

'प्रभो ! आपके सहस्रों मस्तक हैं। आप जगत्के स्वामी हैं। मेरी दृष्टिमें आपका गौरव चन्द्रमासे भी अधिक है। मैं भी वारुणीकी भाँति आपके निजी गुणोंसे आकृष्ट हो आपमें अनुरक्त हो गयी हूँ (इसीलिये आपकी सेवामें उपस्थित हूँ। आप मुझे अङ्गीकार करें।)' ॥ २७ ॥

श्रीश्च पद्मालया देवी निधेया वैष्णवोरसि।
रौहिणेयोरसि शुभा मालेवामलतां गता ॥ २८ ॥
सा मालाममलां गृह्य बलस्योरसि दंशिता।
पद्मास्या पद्महस्ता वै संकर्षणमथाब्रवीत् ॥ २९ ॥

जो भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें नित्य निवास करने योग्य हैं, वे कमलवनमें वास करनेवाली देवी श्री* (शोभा) रोहिणीनन्दन बलरामके वक्षःस्थलमें सुन्दर मालाकी भाँति प्रतिष्ठित हो निर्मल भावको प्राप्त हुई। उनका मुख कमलके समान सुशोभित था, उनके हाथमें भी कमल-पुष्प शोभा दे रहा था; वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित हुई वे मूर्तिमती शोभा देवी बलरामके वक्षमें स्थित हो एक निर्मल माला हाथमें लेकर संकर्षणसे बोलीं—॥ २८-२९ ॥

राम रामाभिरामस्त्वं वारुण्या समलंकृतः।
कान्त्या मया च देवेश संगतश्चन्द्रमा यथा ॥ ३० ॥

'देवेश्वर राम ! बलराम ! आप बड़े ही अभिराम (सुन्दर) हैं। वारुणी (सुधा) से, चन्द्रमाकी-सी कान्तिसे तथा मुझसे (कमलालयाकी-सी शोभासे) सम्पन्न होकर चन्द्रमाके समान प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ३० ॥

इयं च सा मया मौलिः प्रोद्धृता वरुणालयात्।
मूर्ध्नि शीर्षसहस्रस्य या ते भानुरिवाबभौ ॥ ३१ ॥

'आप सहस्र सिरवाले अनन्तदेवके मस्तकपर जो सूर्यके समान उद्भासित होता था, वह मुकुट समुद्रसे निकालकर मैं यहाँ ले आयी हूँ। यही है वह मुकुट ॥ ३१ ॥

---

* यहाँ श्रीका अर्थ शोभाकी अधिष्ठात्री देवी है। साक्षात् भगवती लक्ष्मी तो भगवान् विष्णुकी अनन्यानुरागिणी पतिव्रता पत्नी हैं। यहाँ मधु, कान्ति और शोभा —इन तीन लोकसामान्य वस्तुओंकी अधिष्ठात्री देवियोंका ही उल्लेख किया गया है—ऐसा समझना चाहिये।

जातरूपमयं चैकं कुण्डलं वज्रभूषितम् ।
आदिपद्मं च पद्माक्षं दिव्यश्रवणभूषणम् ॥ ३२ ॥

'इसके सिवा वज्रमणि (हीरे) से विभूषित एक सुवर्णमय कुण्डल भी लेती आयी हूँ, जो आपके एक कानका दिव्य भूषण है। यह आदिपद्म और पद्माक्ष कहलाता है ॥ ३२ ॥

कौशेयानि च नीलानि समुद्रार्हाणि भावतः ।
हारं च पीनतरलं समुद्राभ्यन्तरोषितम् ॥ ३३ ॥

'जो समुद्रमें ही मिल सकते हैं, ऐसे कितने ही नीले रंगके रेशमी वस्त्र (अथवा आपकी इच्छाके अनुरूप नील कौशेय वस्त्र) तथा यह पीन तरल हार, जो समुद्रमें ही विद्यमान था, मैं आपके लिये लायी हूँ । आप इसे सादर ग्रहण करें ॥ ३३ ॥

देवेमां प्रतिगृह्णीष्व पौराणीं भूषणक्रियाम् ।
समयस्ते महाबाहो भूषणानामलंक्रिया ॥ ३४ ॥

'देव ! यह सब आपकी पुरातन भूषण-सामग्री है । इसे ग्रहण कीजिये । महाबाहो ! यह आपके भूषण ग्रहण करनेका समय है । आपसे ही इन भूषणोंकी शोभा है, इनसे आपकी नहीं' ॥

संगृह्य तमलंकारं ताश्च तिस्रः सुरस्त्रियः ।
शुशुभे बलदेवो हि शारदेन्दुसमप्रभः ॥ ३५ ॥

वह अलङ्कार तथा उन तीनों देवाङ्गनाओंको ग्रहण करके बलदेवजी शरत्कालके चन्द्रमाकी भाँति शोभा पाने लगे ॥

स समागम्य कृष्णेन जलजाम्भोदवर्चसा ।
मुदं परमिकां लेभे ग्रहयुक्तः शशी यथा ॥ ३६ ॥

तदनन्तर वे नीलकमल और मेघके समान श्याम कान्तिवाले श्रीकृष्णके साथ मिलकर ग्रहयुक्त चन्द्रमाके समान सुशोभित होने लगे । उस समय उनको बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई ॥ ३६ ॥

ताभ्यामुभाभ्यां संलापे वर्तमाने गृहे यथा ।
वैनतेयस्ततोऽध्वानमतिचक्राम वेगतः ॥ ३७ ॥

वे दोनों भाई जैसे घरमें बैठे हों, उस प्रकार बातचीत करने लगे । इसी समय विनतानन्दन गरुड़ बड़े वेगसे विशाल मार्ग तै करके वहाँ आये ॥ ३७ ॥

संग्राममुक्तस्तेजस्वी दैत्यप्रहरणाङ्कितः ।
देवतानां जयश्लाघी दिव्यस्रगनुलेपनः ॥ ३८ ॥

तेजस्वी गरुड़ उस समय एक संग्रामसे छूटकर आये थे । दैत्योंके प्रहारोंके चिह्न उस समय भी उनके अङ्गोंमें अङ्कित थे । वे देवताओंकी विजय चाहनेवाले तथा दिव्य पुष्पोंकी माला और दिव्य चन्दन धारण करनेवाले थे ॥३८॥

सुप्तस्य शयने दिव्ये क्षीरोदे वरुणालये ।
विष्णोः किरीटं दैत्येन हृतं वैरोचनेन वै ॥ ३९ ॥

वरुणके निवासभूत क्षीरसमुद्रमें जब भगवान् विष्णु दिव्य शय्यापर सो रहे थे, उस समय विरोचनके पुत्र एक दैत्यने उनका किरीट चुरा लिया ॥ ३९ ॥

तदर्थस्तेन संग्रामः कृतो गुर्वर्थमोजसा ।
किरीटार्थे समुद्रस्य मध्ये दैत्यगणैः सह ॥ ४० ॥

अपने गुरुरूप भगवान्‌के लिये उस किरीटको वापस लानेके उद्देश्यसे गरुड़ने बीच समुद्रमें दैत्योंके साथ बलपूर्वक संग्राम किया ॥ ४० ॥

मोक्षयित्वा किरीटं तु वैष्णवं पततां वरः ।
व्यत्यक्रमत वेगेन गगनं देवतालयम् ॥ ४१ ॥

भगवान् विष्णुके उस किरीटको दैत्योंके हाथसे छुड़ाकर पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड़ बड़े वेगसे देवताओंके निवासभूत आकाशमें उड़ चले ॥ ४१ ॥

स ददर्श गुरुं शैले विष्णुं कार्यान्तरागतम् ।
तेन क्रीडावलम्बेन किरीटेन विराजता ॥ ४२ ॥

उन्होंने देखा, मेरे स्वामी विष्णु दूसरे कार्यसे इस पर्वतपर पधारे हैं । वे उस समय उस प्रकाशमान किरीटको क्रीडापूर्वक अपनी चोंचमें लटकाये चल रहे थे ॥ ४२ ॥

स दृष्ट्वा मानुषं विष्णुं शैलराजशिरोगतम् ।
प्रकाशचेष्टानिर्मुक्तं विमौलिमिव मानुषम् ॥ ४३ ॥
अभिज्ञस्तस्य भावानां गरुत्मान् पततां वरः ।
चिक्षेप खं गतो मौलिं विष्णोः शिरसि हृष्टवत् ॥ ४४ ॥

गिरिराज गोमन्तके शिखरपर विराजमान मानवरूपधारी विष्णुको प्रकाश और चेष्टाओंसे रहित तथा मुकुटहीन देख उनके मानसिक भावोंको समझनेवाले पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड़ने आकाशमें स्थित होकर बड़े हर्षके साथ उन श्रीविष्णुके सिरपर वह मुकुट डाल दिया ॥ ४३-४४ ॥

उपेन्द्रमूर्ध्नि सा मौलिरपिनद्धा इवापतत् ।
शिरसः स्थाननिर्युक्ता कृष्णं चैवान्वशोभयत् ।
यथैव मेरुशिखरे भानुर्मध्यंदिने यथा ॥ ४५ ॥

वह मुकुट श्रीकृष्णके मस्तकपर गिरा और इस प्रकार बैठ गया मानो किसीने पहना दिया हो । मस्तकके स्थानपर निश्चित रूपसे आबद्ध होकर उस मुकुटने भगवान् श्रीकृष्णकी शोभा बढ़ा दी । जैसे दोपहरके समय मेरुके शिखरपर सूर्यदेव प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार वह मुकुट भी देदीप्यमान हो रहा था ॥ ४५ ॥

वैनतेयप्रयोगेण विदित्वा मौलिमागताम् ।
कृष्णः प्रहृष्टवदनो रामं वचनमब्रवीत् ॥ ४६ ॥

गरुड़के प्रयोगसे मुकुटको मस्तकपर आया हुआ जान श्रीकृष्णका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा और वे बलरामजीसे इस प्रकार बोले—॥ ४६ ॥

त्वरते खलु कार्यार्थी देवतानां न संशयः ।
यथेयमावयोः शैले संग्रामरचना कृता ॥ ४७ ॥

'भैया ! इस पर्वतपर हम दोनोंके लिये जिस प्रकार युद्धोपयोगी वेष-भूषाकी रचना कर दी गयी है, इससे यही अनुमान होता है कि देवताओंका कार्य एवं प्रयोजन शीघ्र ही सिद्ध होना चाहता है, इसमें संशय नहीं है ॥ ४७ ॥

वैरोचनेन सुप्तस्य मम मौलिर्महोदधौ ।
शक्रस्य सदृशं रूपं दिव्यमास्थाय सागरात् ॥ ४८ ॥
ग्राहरूपेण यो नीत आनीतोऽसौ गरुत्मता ।
ममाहिशयनान्मौलिर्हृत्वा क्षिप्तो गरुत्मता ॥ ४९ ॥

'जब मैं महासागरमें सो रहा था, उस समय विरोचनका पुत्र इन्द्रका-सा रूप धारण करके वहाँ चला गया और जब मैं शेष-शय्यासे उठकर यहाँ आ गया, तब वह ग्राहरूप धारण करके वहाँसे मेरा मुकुट उठा लाया। वही मुकुट गरुड़ उससे छीन लाये हैं और उन्होंने इसे मेरे मस्तकपर रख दिया है ॥

सुव्यक्तं संनिकृष्टः स जरासंधो नराधिपः ।
लक्ष्यन्ते हि ध्वजाग्राणि रथानां वातरंहसाम् ॥ ५० ॥

'निश्चय ही राजा जरासंध अब बहुत निकट आ गया है; क्योंकि वायुके समान वेगवाले रथोंकी ध्वजाओंके अग्रभाग दिखायी दे रहे हैं ॥ ५० ॥

एतानि विजिगीषूणां शशिकल्पानि भूभृताम् ।
छत्राण्यार्य विराजन्ते दंशितानि मितानि च ॥ ५१ ॥

'आर्य ! विजयकी अभिलाषा रखनेवाले राजाओंके ये चन्द्रमा-जैसे श्वेत कान्तिवाले सुसज्जित छत्र प्रकाशित हो रहे हैं; इनकी संख्या परिमित ही है ॥ ५१ ॥

अहो नृपरथोदग्रा विमलाश्छत्रपङ्क्तयः ।
अभिवर्तन्ति नः शुभ्रा यथा खे हंसपङ्क्तयः ॥ ५२ ॥

'अहो ! राजाओंके रथोंपर विराजमान जो ये श्वेत वर्णवाली ऊँची छत्र-पङ्क्तियाँ हमलोगोंकी ओर बढ़ी आ रही हैं, ये आकाशमें उज्ज्वल हंसपङ्क्तियोंके समान सुशोभित होती हैं ॥ ५२ ॥

अहो द्यौर्विमलाभानां शस्त्राणां विमलानना ।
प्रभा भास्करभामिश्रा चरन्तीव दिशो दश ॥ ५३ ॥

'अहो ! इन निर्मल प्रभाववाले शस्त्रोंकी चमकसे आकाशका मुख भी उज्ज्वल एवं प्रकाशित हो उठा है । शस्त्रोंकी ये दीप्तियाँ सूर्यदेवकी किरणोंसे मिलकर दसों दिशाओंमें विचरती-सी प्रतीत होती हैं ॥ ५३ ॥

एतानि नूनं समरे पार्थिवैरायुधानि च ।
क्षिप्तानि विनशिष्यन्ति मयि सर्वाणि संयुगे ॥ ५४ ॥

'निश्चय ही, समराङ्गणमें भूमिपालोंद्वारा मुझपर चलाये गये ये समस्त अस्त्र-शस्त्र नष्ट हो जायँगे ॥ ५४ ॥

काले खलु नृपः प्राप्तो जरासंधो महीपतिः ।
आवयोर्युद्धनिकषः प्रथमः समरातिथिः ॥ ५५ ॥

'राजा जरासंध ठीक समयपर आया है। यह हमलोगोंके युद्ध-कौशलकी कसौटी है तथा समराङ्गणका पहला अतिथि है ॥

आर्य तिष्ठाव सहितौ न खल्वानागते नृपे ।
युद्धारम्भः प्रयोक्तव्यो बलं तावद् विमृश्यताम् ॥ ५६ ॥

'आर्य ! हम दोनों साथ रहें । राजा जरासंधके आनेसे पहले अभी हमें युद्ध आरम्भ नहीं करना चाहिये । जबतक वह नहीं आता है, तबतक हम उसके बलका विचार कर लें' ॥

एवमुक्त्वा ततः कृष्णः स्वस्थः संग्रामलालसः ।
जरासंधवधं प्रेप्सुश्चकार बलदर्शनम् ॥ ५७ ॥

ऐसा कहकर श्रीकृष्ण स्वस्थभावसे संग्रामकी इच्छा रखकर जरासंधका वध चाहते हुए उसके सैनिक-बलका निरीक्षण करने लगे ॥ ५७ ॥

वीक्षमाणश्च तान् सर्वान् नृपान् यदुवरोऽव्ययः ।
आत्मानमात्मनोवाच यत्पूर्वं दिवि मन्त्रितम् ॥ ५८ ॥
इमे ते पृथिवीपालाः पार्थिवे वर्त्मनि स्थिताः ।
ये विनाशं गमिष्यन्ति शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ ५९ ॥

उन सब राजाओंका निरीक्षण करते हुए अविनाशी यदुकुलतिलक भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ही अपने-आपसे कहने लगे—'अहो ! दिव्यलोकमें देवताओंके साथ बैठकर जो गुप्त मन्त्रणा की गयी थी, उसके अनुसार ये भूमिपाल राजोचित मार्गपर स्थित हैं । ये शास्त्रोक्त विधिसे संग्राममें विनाशको प्राप्त होंगे ॥ ५८-५९ ॥

प्रोक्षितान् खल्विमान् मन्ये मृत्युना नृपसत्तमान् ।
स्वर्गगामीनि चाप्येषां वपूंषि प्रचकाशिरे ॥ ६० ॥

'मैं तो समझता हूँ कि मृत्युने रणयज्ञमें आहुति देनेके लिये इन श्रेष्ठ राजाओंका प्रोक्षण कर लिया है । इनके स्वर्गगामी शरीर अभीसे प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ६० ॥

स्थाने भारपरिश्रान्ता वसुधेयं दिवं गता ।
एषां नृपतिसिंहानां बलौघैरभिपीडिता ॥ ६१ ॥

'यह पृथ्वी इन राजसिंहोंके सैन्यसमूहोंसे पीड़ित हो इनके भारसे थककर जो देवलोकमें गयी थी, वह इसका जाना उचित ही था ॥ ६१ ॥

अल्पेन खलु कालेन विविक्तं पृथिवीतलम् ।
भविष्यति नरेन्द्रौघैराकीर्णं च नभस्तलम् ॥ ६२ ॥

'अब थोड़े ही समयमें यह भूमण्डल इन राजसमूहोंसे खाली हो जायगा और आकाश भर जायगा' ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि जरासंधाभिगमनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें जरासंधका अभियानविषयक इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

जरासंधकी सेनाका वर्णन, उसका सेनाको पर्वतपर आक्रमण करनेकी आज्ञा देना, शिशुपालकी सम्मतिसे गोमन्तपर्वतमें आग लगाया जाना, पर्वतका जलना तथा बलराम और श्रीकृष्णका पर्वतसे कूदकर राजाओंकी सेनामें आ पहुँचना—

वैशम्पायन उवाच

जरासंधस्ततः प्राप्तो नृपः सर्वमहीक्षिताम् ।
नराधिपैर्बलयुतैरनुयातो महाद्युतिः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर समस्त राजाओंका राजा महातेजस्वी जरासंध वहाँ आ पहुँचा। उसके पीछे अपनी-अपनी सेनाओंके साथ दूसरे भी बहुत-से नरेश थे ॥ १ ॥

आयतोदग्रतुरगैर्विस्पष्टार्थसमाहितैः ।
रथैः साङ्ग्रामिकैर्युक्तैरसङ्गगतिभिः क्वचित् ॥ २ ॥

कहीं अस्त्र-शास्त्रके ज्ञाता पुरुषोंद्वारा भलीभाँति सिखाये गये विशाल एवं प्रचण्ड बलशाली अश्वोंसे युक्त रथ युद्धोपयोगी सामग्रियोंसे सम्पन्न होकर आगे बढ़ रहे थे। उन रथोंकी गति कहीं भी अवरुद्ध नहीं होती थी ॥ २ ॥

हेमकक्षैर्महाघण्टैर्वारणैर्वारिदोपमैः ।
महामात्रोत्तमारूढैः कल्पितै रणगर्वितैः ॥ ३ ॥

कहीं बहुसंख्यक हाथी चल रहे थे, जिन्हें सोनेकी जंजीरोंसे कसा गया था। उनके दोनों पार्श्वमें बड़े-बड़े घंटे लटक रहे थे। वे सभी हाथी मेघोंकी घटाके समान जान पड़ते थे। उनके ऊपर अच्छे महावत बैठे थे तथा रणगर्वित कुशल योद्धाओंद्वारा उन्हें सुसज्जित किया गया था ॥ ३ ॥

सारूढैः सादिभिर्युक्तैः प्रेङ्खमाणैः प्रवल्गितैः ।
वाजिभिर्वायुसंकाशैः प्लवद्भिरिव पत्त्रिभिः ॥ ४ ॥

कहीं घुड़सवार योद्धा घोड़ोंपर अच्छी तरहसे सवार थे। उनके वे घोड़े वायुके समान वेगशाली थे और उछलते-कूदते हुए आगे बढ़ते समय आकाशमें उड़ते हुए पक्षियोंके समान प्रतीत होते थे ॥ ४ ॥

ड्गचर्मबलोदग्रैः पत्तिभिर्बलिनां वरैः ।
सहस्रसंख्यैर्निर्मुक्तैरुत्पतद्भिरिवोरगैः ॥ ५ ॥

बलवानोंमें श्रेष्ठ पैदल सैनिक भी ढाल और तलवार लिये प्रचण्डरूप धारण करके आगे बढ़ते थे। वे हजार-हजारकी टोलियोंमें एक साथ चलते और केंचुलसे छुटे हुए सर्पोंके समान उछलते थे ॥ ५ ॥

एवं चतुर्विधैः सैन्यैः प्रचलद्भिरिवाम्बुदैः ।
नृपोऽभियातो बलवाञ्जरासंधो धृतव्रतः ॥ ६ ॥

इस प्रकार मँडराते हुए बादलोंके समान चतुरङ्गिणी सेनाएँ साथ लेकर वीर-व्रतको धारण करनेवाला बलवान् राजा जरासंध युद्धके लिये आगे बढ़ रहा था ॥ ६ ॥

स रथैर्नेमिघोषैश्च गजैश्च मदसंयुतैः ।
हेषद्भिश्चापि तुरगैः क्ष्वेडितोग्रैश्च पत्तिभिः ॥ ७ ॥
संनादयन् दिशः सर्वाः सर्वांश्चापि गुहाशयान् ।
स राजा सागराकारः ससैन्यः प्रत्यदृश्यत ॥ ८ ॥

वह राजा पहियोंके घर्घर घोषसे युक्त रथों, (चिग्घाड़ते हुए) मतवाले हाथियों, हिनहिनाते हुए घोड़ों तथा गर्जते हुए पैदल सैनिकोंद्वारा सम्पूर्ण दिशाओं एवं समस्त पर्वतीय कन्दराओंको प्रतिध्वनित करता हुआ सेनाके साथ समुद्रके समान दिखायी देता था ॥ ७-८ ॥

तद्बलं पृथिवीशानां हृष्टयोधजनाकुलम् ।
क्ष्वेडितास्फोटितरवं मेघसैन्यमिवाबभौ ॥ ९ ॥

भूमिपालोंकी वह सेना हृष्टपुष्ट योद्धाओंसे परिपूर्ण थी। गर्जने और ताल ठोंकनेकी गम्भीर ध्वनिसे वह गर्जती हुई मेघोंकी घटाके समान प्रतीत होती थी ॥ ९ ॥

रथैः पवनसंपातैर्गजैश्च जलदोपमैः ।
तुरगैश्च सिताभ्राभैः पत्तिभिश्चापि दंशितैः ॥ १० ॥
व्यामिश्रं तद्बलं भाति मत्तद्विपसमाकुलम् ।
घर्मान्ते सागरगतं यथाभ्रपटलं तथा ॥ ११ ॥

वायुके समान तीव्र गतिसे चलनेवाले रथों, काले मेघोंके समान प्रतीत होनेवाले हाथियों, श्वेत बादलोंके समान घोड़ों तथा कवच आदिसे सुसज्जित पैदल योद्धाओंसे मिश्रित हुई वह सेना सब ओरसे सुशोभित हो रही थी। मतवाले हाथियोंसे व्याप्त हुई वह विशाल वाहिनी वर्षाऋतुमें समुद्रके भीतर लक्षित होनेवाले मेघोंके समूहकी शोभा धारण करती थी ॥१०–११॥

सबलास्ते महीपाला जरासंधपुरोगमाः ।
परिवार्य गिरिं सर्वे निवेशायोपचक्रमुः ॥ १२ ॥

जरासंध आदि समस्त भूपाल अपनी सेनाके साथ उस पर्वतको चारों ओरसे घेरकर छावनी डालनेकी तैयारी करने लगे ॥ १२ ॥

बभौ तस्य निविष्टस्य बलश्रीः शिबिरस्य वै ।
शुक्ले पर्वणि पूर्णस्य यथा रूपं महोदधेः ॥ १३ ॥

वहाँ डेरा डाले हुए जरासंधके सैनिकशिबिरकी शोभा वैसी ही प्रतीत होती थी, जैसा कि शुक्लपक्षकी पूर्णिमाको

अपनी उत्ताल तरंगोंसे परिपूर्ण हुए महासागरका रूप देखनेमें आता है ॥ १३ ॥

वीतरात्रे ततः काले नृपास्ते कृतकौतुकाः ।
आरोहणार्थं शैलस्य समेता युद्धलालसाः ॥ १४ ॥

तदनन्तर रात बीतनेपर सब राजा उठे और मंगलाचार-से सम्पन्न हो युद्धकी लालसासे गोमन्तपर्वतपर चढ़नेके लिये एकत्र होने लगे ॥ १४ ॥

समवायीकृताः सर्वे गिरिप्रस्थेषु ते नृपाः ।
निविष्टा मन्त्रयामासुर्युद्धकालकुतूहलाः ॥ १५ ॥

पर्वतके शिखरोंपर एकत्र हो वे सभी राजा बैठे और युद्धके शुभ अवसरके लिये उत्सुक हो आपसमें मन्त्रणा करने लगे ॥ १५ ॥

एषां तु तुमुलः शब्दः शुश्रुवे पृथिवीक्षिताम् ।
युगान्ते भिद्यमानानां सागराणां यथा स्वनः ॥ १६ ॥

सेनासहित इन नरेशोंकी तुमुल ध्वनि प्रलयकालमें मर्यादा-को तोड़कर बहनेवाले समुद्रोंकी भयंकर गर्जनाके समान सुनायी देती थी ॥ १६ ॥

तेषां सकञ्चुकोष्णीषाः स्थविरा वेत्रपाणयः ।
चेरुर्मा शब्द इत्येवं ब्रुवन्तो राजशासनात् ॥ १७ ॥

'उन राजाओंके छड़ीदार बूढ़े सिपाही चोगा और पगड़ी धारण किये तथा हाथमें बेंत लिये राजाज्ञासे यह कहते हुए विचरने लगे कि सब लोग मौन रहें। कोई एक शब्द भी न बोले ॥ १७ ॥

तस्य रूपं बलस्यासीन्निःशब्दस्तिमितस्य वै ।
लीनमीनभुजङ्गस्य निःशब्दस्य पयोदधेः ॥ १८ ॥

उस समय नीरव और निश्चल हुए उस सैन्यसमूहका रूप उस शब्दहीन प्रशान्त महासागरके समान प्रतीत होता था, जिसके मत्स्य और भुजङ्ग जलके भीतर विलीन हो गये हों ॥ १८ ॥

तस्मिन् स्तिमितनिश्शब्दे योगादिव महार्णवे ।
जरासन्धो बृहद्वाक्यं बृहस्पतिरिवाददे ॥ १९ ॥

वह सैन्यसागर मानो योगबलसे जब सहसा नीरव तथा निश्चल हो गया, तब बृहस्पतिके समान नीतिज्ञ जरासंधने यह महत्त्वपूर्ण बात कही—॥ १९ ॥

शीघ्रं समभिवर्तन्तां बलानीह महीक्षिताम् ।
सर्वतः पर्वतश्चायं बलौघैः परिवार्यताम् ॥ २० ॥

'राजाओंकी सेनाएँ शीघ्र ही आक्रमण करें और सब ओरसे सैनिकसमूह इस पर्वतको घेर लें ॥ २० ॥

अश्मयन्त्राणि युज्यन्तां क्षेपणीयाश्च मुद्गराः ।
ऊर्ध्वं चापि प्रवाह्यन्तां प्रासा वै तोमराणि च ॥ २१ ॥

'पत्थरोंके गोले बरसानेवाले यन्त्र लगा दिये जायँ। क्षेपणीय (गोफना या ढेलवाँस) तथा मुद्गर सँभाल लिये जायँ। प्राश और तोमर भी ऊपर कर लिये जायँ ॥ २१ ॥

ऊर्ध्वं प्रक्षेपणार्थाय दृढानि च लघूनि च ।
शस्त्रपातविघातानि क्रियन्तामाशु शिल्पिभिः ॥ २२ ॥

'शत्रुओंके शस्त्रप्रहारको नष्ट करनेमें समर्थ सुदृढ़ और हल्के गोलोंको ऊपर फेंकनेके लिये हमारे शिल्पी शीघ्र तैयार करें ॥ २२ ॥

शूराणां युद्ध्यमानानां प्रमत्तानां परस्परम् ।
यथा नरपतिः प्राह तथा शीघ्रं विधीयताम् ॥ २३ ॥

'परस्पर प्रमत्त होकर युद्ध करनेवाले शूरवीरोंके लिये जैसा राजा शिशुपाल कहें, शीघ्र वैसा ही प्रबन्ध किया जाय ॥

दार्यतामेष टङ्कौघैः खनित्रैश्च नगोत्तमः ।
नृपाश्च युद्धमार्गज्ञा विन्यस्यन्तामदूरतः ॥ २४ ॥

'उस उत्तम पर्वतको टंकसमूहों और खनित्रोंसे खोदकर विदीर्ण कर डाला जाय। युद्धकी प्रणालीके जानकार नरेशोंको इसके समीप ही यथास्थान खड़ा किया जाय ॥२४॥

अद्यप्रभृति सैन्यैर्मे गिरिरोधः प्रवर्त्यताम् ।
यावदेतौ पातयामो वसुदेवसुतावुभौ ॥ २५ ॥

'आजसे मेरे सैनिक इस पर्वतपर घेरा डाल दें और इसे तबतक चालू रखें, जबतक कि हम इन दोनों वसुदेवपुत्रोंको मार न डालें ॥ २५ ॥

अचलोऽयं शिलायोनिः क्रियतां निश्चलाण्डजः ।
आकाशमपि बाणौघैर्निःसम्पातं विधीयताम् ॥ २६ ॥

'शिलाओंसे ही उत्पन्न हुआ (अथवा शिलाओंका उत्पादक) यह पर्वत स्वयं तो अचल है ही, इसपर रहनेवाले पक्षियोंको भी सायकोंद्वारा अचल (हिलने-डुलने या उड़नेमें असमर्थ) कर दिया जाय। आकाशको भी बाणसमूहोंसे इस तरह रूँध दिया जाय कि उसमें पक्षी भी उड़ न सकें ॥२६॥

मयानुशिष्टास्तिष्ठन्तु गिरिभूमिषु भूमिपाः ।
तेषु तेष्ववकाशेषु शीघ्रमारुह्यतां गिरिः ॥ २७ ॥

'मेरी आज्ञा मानकर समस्त भूपाल पर्वतीय स्थानोंमें खड़े रहें और जहाँ-जहाँ अवकाश मिल जाय, वहाँ-वहाँसे शीघ्र ही पर्वतपर चढ़ जायँ ॥ २७ ॥

मद्रः कलिङ्गाधिपतिश्चेकितानश्च बाह्लिकः ।
काश्मीरराजो गोनर्दः करूषाधिपतिस्तथा ॥ २८ ॥
द्रुमः किंपुरुषश्चैव पर्वतीयाश्च मानवाः ।
पर्वतस्यापरं पार्श्वं क्षिप्रमारोहयन्त्वमी ॥ २९ ॥

'मद्रराज शल्य, कलिङ्गराज श्रुतायु, चेकितान, बाह्लिक, काश्मीरराज गोनर्द, करूषराज दन्तवक्त्र, किन्नरराज द्रुम तथा

पर्वतीय प्रदेशके योद्धा——ये सब लोग इस पर्वतके पश्चिम भागपर शीघ्र ही चढ़ाई कर दें ॥ २८-२९ ॥

पौरवो वेणुदारिश्च वैदर्भः सोमकस्तथा ।
रुक्मी च भोजाधिपतिः सूर्याक्षश्चैव मालवः ॥ ३० ॥
पाञ्चालाधिपतिश्चैव द्रुपदश्च नराधिपः ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ दन्तवक्त्रश्च वीर्यवान् ॥ ३१ ॥
छागलिः पुरमित्रश्च विराटश्च महीपतिः ।
कौशाम्ब्यो मालवश्चैव शतधन्वा विदूरथः ॥ ३२॥
भूरिश्रवास्त्रिगर्तश्च बाणः पञ्चनदस्तथा ।
उत्तरं पर्वतोद्देशमेते दुर्गसहा नृपाः ।
आरोहन्तु विमर्द्दन्तो वज्रप्रतिमगौरवाः ॥ ३३ ॥

पूरुवंशीय वेणुदारि, विदर्भदेशीय सोमक, भोजोंके अधिपति रुक्मी, मालवाके राजा सूर्याक्ष, पाञ्चालदेशके अधिपति राजा द्रुपद, अवन्तिके दोनों राजकुमार विन्द और अनुविन्द, पराक्रमी दन्तवक्त्र, छागलि, पुरुमित्र, राजा विराट, कौशाम्बीनरेश मालव, शतधन्वा, विदूरथ, भूरिश्रवा, त्रिगर्त, बाण और पञ्चनद—ये दुर्गयुद्धका वेग सह सकनेवाले नरेश शत्रुओंको कुचलते हुए इस पर्वतके उत्तरभागपर चढ़ाई करें, इनका गौरव वज्रके तुल्य है ॥ ३०-३३ ॥

उलूकः कैतवेयश्च वीरश्चांशुमतः सुतः ।
एकलव्यो दृढाश्वश्च क्षत्रधर्मा जयद्रथः ॥ ३४ ॥
उत्तमौजास्तथा शाल्वः कैरलेयश्च कैशिकः ।
वैदिशो वामदेवश्च सुकेतुश्चापि वीर्यवान् ॥ ३५ ॥
पूर्वपर्वतनिर्व्यूहमेतेष्वायतमस्तु नः ।
विदारयन्तो धावन्तो वाता इव बलाहकान् ॥ ३६ ॥

'शकुनिपुत्र उलूक, अंशुमान्‌के पुत्र वीर, एकलव्य, दृढाश्व, क्षत्रधर्मा, जयद्रथ, उत्तमौजा, शाल्व, केरलराज कैशिक, विदिशाके राजा वामदेव और पराक्रमी सुकेतु——इन सबके अधीन इस पर्वतका पूर्वभाग सौंप दिया जाय । ये लोग जैसे वायु बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार शत्रुओंको विदीर्ण करते हुए उनपर धावा बोल दें ॥३४-३६॥

अहं च दरदश्चैव चेदिराजश्च वीर्यवान् ।
दक्षिणं शैलनिचयं दारयिष्याम दंशिताः ॥ ३७ ॥

'मैं दरद तथा पराक्रमी चेदिराज शिशुपाल कवच आदिसे सुसज्जित होकर इस पर्वतके दक्षिणभागको विदीर्ण कर डालेंगे ॥ ३७ ॥

एवमेष गिरिः क्षिप्रं समन्ताद् वेष्टितो बलैः ।
वज्रप्रपातप्रतिमं प्राप्नोतु तुमुलं भयम् ॥ ३८ ॥

'इस प्रकार हमारी सेनाओंद्वारा चारों ओरसे घिरा हुआ यह पर्वत शीघ्र ही, मानो इसपर वज्रका आघात हो रहा हो, इस तरह घोर भय प्राप्त करे ॥ ३८ ॥

गदिनो वै गदाभिश्च परिघैः परिघायुधाः ।
अपरे विविधैः शस्त्रैर्दारयन्तु नगोत्तमम् ॥ ३९ ॥

'गदाधारी वीर गदाओंसे, परिघ चलानेवाले परिघोंसे तथा अन्य वीर नाना प्रकारके दूसरे अस्त्र-शस्त्रोंसे इस श्रेष्ठ पर्वतके टुकड़े-टुकड़े कर डालें ॥ ३९ ॥

एष भूमिधरोऽद्यैव विषमोच्चशिलान्वितः ।
कार्यो भूमिसमः सर्वो भवद्भिर्वसुधाधिपैः ॥ ४० ॥

'विषम एवं ऊँची शिलाओंसे युक्त इस भूधरको आप सभी भूपाल मिलकर आज ही भूमिके समान समतल कर डालें' ॥ ४० ॥

जरासंधवचः श्रुत्वा पार्थिवा राजशासनात् ।
गोमन्तं वेष्टयामासुः सागराः पृथिवीमिव ॥ ४१ ॥

जरासंधकी बात सुनकर समस्त राजाओंने मगधराजकी आज्ञासे गोमन्तपर्वतको चारों ओरसे घेर लिया, ठीक उसी तरह जैसे समुद्र पृथ्वीको घेरे हुए है ॥ ४१॥

उवाच राजा चेदीनां देवानां मघवानिव ।
किं ते युद्धेन दुर्गेऽस्मिन् गोमन्ते च नगोत्तमे ॥ ४२ ॥

उस समय देवताओंके राजा इन्द्रके समान चेदिवासियोंके अधिपति राजा दमघोषने जरासंधसे कहा——राजन्! यह पर्वतोंमें श्रेष्ठ गोमन्त दुर्गम पर्वत है । इसपर युद्ध करनेसे आपको क्या लाभ होगा ॥ ४२ ॥

दुरारोहश्च शिखरे प्रांशुपादपकण्टके ।
काष्ठैस्तृणैश्च बहुभिः परिवार्य समन्ततः ॥ ४३ ॥
अद्यैव दीप्यतां क्षिप्रमलमन्येन कर्मणा ।

'इसके शिखरपर ऊँचे-ऊँचे वृक्ष और काँटे रे हैं; अतः इसपर चढ़ना बहुत कठिन काम है । मेरी तो राय है, बहुत-से काठ और घासफूस जुटाकर इस पर्वतको चारों ओरसे घेर दिया जाय और अभी इसमें आग लगा दी जाय । इसी कार्यमें शीघ्रता करनी चाहिये । दूसरे किसी प्रयत्नसे कुछ होने-जानेवाला नहीं है ॥ ४३½ ॥

क्षत्रियाः सुकुमारा हि रणे सायकयोधिनः ॥ ४४ ॥
नियुक्ताः पर्वते दुर्गे नियोक्तुं पादयोधिनः ।
ननाम प्रतिबन्धेन न चावस्कन्दकर्मणा ॥ ४५ ॥
शक्य एष गिरिस्तात देवैरप्यवमर्दितुम् ।

'क्योंकि क्षत्रिय लोग सुकुमार होते हैं । ये रणभूमिमें बाणोंद्वारा ही युद्ध कर सकते हैं ।(पर्वतपर चढ़ना इनके लिये अत्यन्त कठिन है ।) इस समय इन्हें दुर्गम पर्वतपर चढ़कर वहाँके पैदल योद्धाओंके साथ युद्ध करनेके कामपर नियुक्त किया गया है (जो इनके लिये दुष्कर है)। तात ! केवल घेरा डालनेसे या ऊपर चढ़ जानेसे देवता भी इस पर्वतका मर्दन नहीं कर सकते ॥ ४४-४५½ ॥

CC-0. In Public Domain. Digitized by ... Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दुर्गयुद्धे क्रमः श्रेयान् रोधयुद्धेन पार्थिवाः ॥ ४६ ॥
भक्तोदकेन्धनैः क्षीणाः पात्यन्ते गिरिसंश्रिताः ।
वयं बहव इत्येवं नाप्येष निपुणो नयः ॥ ४७ ॥

राजाओ ! दुर्गयुद्धमें रोधयुद्ध (घेरा डालने) के द्वारा जो लड़ाईका क्रम चालू किया जाता है, वह श्रेयस्कर होता है (क्योंकि दुर्गकी खाद्यसामग्री समाप्त होनेपर वहाँके निवासियोंका पतन अवश्यम्भावी है; परंतु यहाँ पर्वतनिवासियोंके लिये खाने-पीनेकी सामग्री सदा सुलभ है) । अन्न, जल और लकड़ीकी कमी हो जाय तभी पर्वतवासी योद्धाओंको धराशायी किया जा सकता है । हमारी संख्या बहुत है और विपक्षियोंकी कम—ऐसा सोचना भी निपुण नीतिका परिचायक नहीं है ॥ ४६-४७ ॥

यादवौ नावमन्तव्यौ द्वावप्येतौ रणे स्थितौ ।
अविज्ञातबलावेतौ श्रूयेते देवसम्मितौ ॥ ४८ ॥

'ये दोनों यदुवंशी भी युद्धके लिये तैयार खड़े हैं; अतः इनकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। इनके पूरे-पूरे बलका ज्ञान किसीको नहीं है । ये दोनों देवताओंके समान तेजस्वी सुने जाते हैं ॥ ४८ ॥

कर्मभिस्त्वमरौ विज्ञौ बालावतिबलान्वितौ ।
दुष्कराणीह कर्माणि कृतवन्तौ यदूत्तमौ ॥ ४९ ॥

'अपने कर्मोंसे तो ये अमर जान पड़ते हैं; क्योंकि बाल्यावस्थामें ही ये अत्यन्त बलशाली हैं। यदुकुलके इन श्रेष्ठ पुरुषोंने इस जगत्‌में बड़े-बड़े दुष्कर कर्म किये हैं ॥ ४९ ॥

शुष्ककाष्ठैस्तृणैर्वेष्ट्य सर्वतः पर्वतोत्तमम् ।
अग्निना दीपयिष्यामो दह्येतां गतचेतनौ ॥ ५० ॥

'अतः सूखे काठों और तिनकोंसे आवेष्टित करके इस उत्तम पर्वतमें हम सब ओरसे आग लगा देंगे । इससे अचेत होकर वे दोनों भस्म हो जायँगे ॥ ५० ॥

यदि चेन्निष्क्रमिष्येते दह्यमानावितोऽन्तिके ।
समेत्य पातयिष्यामस्त्यक्ष्यतो जीवितं ततः ॥ ५१ ॥

'यदि आगसे जलते हुए वे दोनों हमारे पाससे निकलेंगे तो हम सब लोग मिलकर उन्हें मार गिरायँगे । इस तरह उन दोनोंको अपने जीवनसे हाथ धोना पड़ेगा' ॥ ५१॥

वाक्यमेतत्तु रुरुचे सबलानां महीक्षिताम् ।
यदुक्तं चेदिराजेन नृपाणां हितशंसिना ॥ ५२ ॥

राजाओंके हितकी बात बतानेवाले चेदिराजने जो बात वहाँ कही, वह सेनासहित समस्त राजाओंको अच्छी लगी ॥ ५२ ॥

ततः काष्ठैस्तृणैर्वंशैः शुष्कशाखैश्च पादपैः ।
उपादीप्यत शैलेन्द्रः सूर्यपादैरिवाम्बुदः ॥ ५३ ॥

तदनन्तर उन्होंने काठ-कबाड़, घास-फूस और सूखी डालवाले वृक्ष लाकर उनके द्वारा उस गिरिराज गोमन्तमें आग लगा दी । उस समय आगकी ज्वालाओंसे घिरा हुआ वह पर्वत सूर्यकी किरणोंसे आवृत मेघके समान प्रतीत होता था ॥ ५३ ॥

ददुस्ते सर्वतस्तूर्णं पावकं तत्र पार्थिवाः ।
यथोद्देशं यथावातं शैलस्य लघुविक्रमाः ॥ ५४ ॥

इसके बाद शीघ्रतापूर्वक पैर बढ़ाते हुए राजाओंने जहाँ जैसा हवाका रुख था, उसके अनुसार तुरंत ही पर्वतके चारों ओर वह आग फैला दी ॥ ५४ ॥

स वायुदीपितो वह्निरुत्पपात समन्ततः ।
सधूमज्वालमालाभिर्भाभिः खमिव शोभयन् ॥ ५५ ॥

वायुसे प्रज्वलित हुई आग वहाँ सब ओरसे ऊपरको उठने लगी और धूमयुक्त ज्वालामालाओंकी प्रभासे आकाशकी शोभा-सी बढ़ाने लगी ॥ ५५ ॥

सोऽनलः पवनायस्तः काष्ठसंचयमूलवान् ।
ददाह शैलं श्रीमन्तं गोमन्तं कान्तपादपम् ॥ ५६ ॥

सूखे काठोंके ढेर ही जिसकी जड़ थे, वह आग वायुके सहारेसे बढ़कर कमनीय वृक्षोंवाले शोभा-सम्पन्न गोमन्तपर्वतको चारों ओरसे दग्ध करने लगी ॥ ५६ ॥

स दह्यमानः शैलेन्द्रो मुमोच विपुलाः शिलाः ।
शतशः शतधा भूत्वा महोल्काकारदर्शनाः ॥ ५७ ॥

उस आगसे दग्ध होता हुआ गिरिराज गोमन्त बड़ी-बड़ी शिलाएँ छोड़ने लगा (अग्निके तापसे चटककर प्रस्तर-खण्ड टूट-टूटकर गिरने लगे), वे सैकड़ों शिलाएँ सौ-सौ टूक होकर गिरते समय बड़ी-बड़ी उल्काओंके समान दिखायी देती थीं ॥ ५७ ॥

स चित्रभानुः शैलेन्द्रं भाभिर्भानुरिवाम्बुदम् ।
आलिम्पतीव विधिवत् समन्तादर्चिरुद्धतः ॥ ५८ ॥

लपटोंसे ऊपरको उठती हुई वह आग उस पर्वतराजको सब ओरसे प्रभाओंद्वारा विधिपूर्वक लीपती-सी प्रतीत होती थी, ठीक उसी तरह जैसे सूर्यदेव अपनी किरणोंद्वारा मेघोंको अनुलिप्त कर देते हैं ॥ ५८ ॥

धातुभिः पच्यमानैश्च ज्वलद्भिश्चैव पादपैः ।
उद्भ्रान्तश्वापदो रौति तुद्यमान इवाद्रिराट् ॥ ५९ ॥

पकती हुई धातुओं, जलते हुए वृक्षों तथा घबड़ाये हुए हिंसक जन्तुओंसे युक्त वह पर्वतराज ऐसा जान पड़ता था, मानो व्यथासे पीड़ित होकर रो रहा हो ॥ ५९ ॥

प्रतप्तो दह्यमानस्तु स शैलः कृष्णवर्त्मना ।
रीतीर्निर्वर्तयामास काञ्चनाञ्जनराजतीः ॥ ६० ॥

आगसे दग्ध होकर तपा हुआ वह पर्वत सोने, चाँदी

तथा काले रंगकी धातुओंके पिघले हुए रसोंकी धारा बहाने लगा ॥ ६० ॥

वह्निना चापि दीप्ताङ्गो गिरिर्नातिविराजते ।
धूमान्धकारोर्ध्वतनुर्मज्जमान इवाम्बुदः ॥ ६१ ॥

यद्यपि अग्निसे उसका सारा अङ्ग उद्भासित हो उठा था, तो भी उसके ऊपरी भागमें धुएँका अन्धकार छा रहा था, इसलिये उस पर्वतकी अधिक शोभा नहीं हो रही थी। वह समुद्रमें डूबते हुए मेघके समान जान पड़ता था ॥ ६१ ॥

विश्लिष्टोपलसंघातः कर्कशाङ्गारवर्षणः ।
गिरिर्भात्यनलोद्गारैरुल्कावृष्टिरिवाम्बुदः ॥ ६२ ॥

उसके प्रस्तरसमूह अलग हो-होकर गिर रहे थे। उससे कड़े अङ्गारोंकी वर्षा हो रही थी। उस समय आग उगलनेके कारण वह पर्वत उल्काओंकी वर्षा करनेवाले मेघके समान प्रतीत होता था ॥ ६२ ॥

प्रपातप्रस्रवणोत्क्षिप्तो धूमसंवर्द्धितोदरः ।
स गिरिर्भस्मतां यातो युगान्ताग्निहतोपमः ॥ ६३ ॥

उसके झरनोंके स्रोत सूख गये, मध्यभागमें धुआँ फैल गया। उस अवस्थामें वह पर्वत प्रलयाग्निसे दग्ध होकर भस्म हुआ-सा जान पड़ता था ॥ ६३ ॥

विह्वलास्तस्य पार्श्वेभ्यः सर्पा दग्धार्धदेहिनः ।
श्वसन्तः पृथुमूर्धानो निश्चेरुरशिवेक्षणाः ॥ ६४ ॥

उसके पार्श्वभागोंसे घबराये हुए सर्प निकलने लगे। उनके आधे शरीर जल गये थे। उनकी आँखोंसे क्रूरता टपक रही थी तथा वे अपने फैले हुए मस्तकों (फनों) से फुङ्कार मार रहे थे ॥ ६४ ॥

उत्पत्योत्पत्य गगनात् पुनः पुनरवाङ्मुखाः ।
पेतुश्चोद्वेजिताः सिंहाः शार्दूलाश्चानलाविलाः ॥ ६५ ॥

आगसे झुलसे हुए सिंह और व्याघ्र भयसे उद्विग्न हो बार-बार उछलकर आकाशसे नीचे मुँह किये गिरते और आर्तनाद करते थे ॥ ६५ ॥

मुमुचुः पादपाश्चैव दाहनिर्यासजं जलम् ॥ ६६ ॥

वहाँके वृक्ष दग्ध होनेके कारण अपने भीतरके रसको पानीके रूपमें बहाने लगे ॥ ६६ ॥

वहत्यूर्ध्वगतिर्वातो भस्माङ्गारातिपिङ्गलः ।
धूमच्छाया च गगने दर्पिताम्भोददर्शना ॥ ६७ ॥

ऊपरको उठनेवाली वायु भस्म और अङ्गारोंसे अत्यन्त पिंगलवर्णकी होकर बहने लगी और आकाशमें धूमकी छाया घुमड़कर घिरी हुई मेघोंकी घटाके समान दिखायी देने लगी

त्यज्यमानो महासानुर्विहगैः श्वापदैरपि ।
गिरिर्वैकल्यमायाति प्रागल्भ्यात्कृष्णवर्त्मनः ॥ ६८ ॥

पक्षी और हिंसक जन्तु भी उसे छोड़कर भाग रहे थे। वह महान् शिखरवाला पर्वत अधिक आग बढ़ जानेके कारण व्याकुल-सा हो उठा था ॥ ६८ ॥

स मुमोच शिलाः शैलश्चलोदग्रशिलोच्चयः ।
वज्रेण पुरुहूतस्य यथा स्याद् दारितस्तथा ॥ ६९ ॥

बड़ी-बड़ी चञ्चल शिलाओंके ढेरसे युक्त वह पर्वत आगसे तपकर अपनी शिलाओंको इस प्रकार छोड़ रहा था, मानो इन्द्रके वज्रसे विदीर्ण होकर बिखरा जा रहा हो ॥ ६९ ॥

आदीप्य तं तु शैलेन्द्रं क्षत्रिया व्यूहदंशिताः ।
अर्धक्रोशमपक्रान्ताः पावकेनाभितापिताः ॥ ७० ॥

उस पर्वतराजमें आग लगाकर व्यूहके आकारमें सुसज्जित होकर खड़े हुए क्षत्रिय उस प्रचण्ड पावकसे सन्तप्त हो आधा कोस पीछे हट गये ॥ ७० ॥

दह्यमाने नगश्रेष्ठे सीदमानैर्महाद्रुमैः ।
धूमभारैरनालक्ष्ये मूले शिथिलतां गते ॥ ७१ ॥
सरोषं हि तदा रामो वचनं केशिसूदनम् ।
बभाषे पद्मपत्राक्षं स साक्षान्मधुसूदनम् ॥ ७२ ॥

वह पर्वतोंमें श्रेष्ठ गोमन्त नष्ट होते हुए महान् वृक्षोंके साथ जब इस प्रकार दग्ध होने लगा, धूमभारसे उसकी ओर देखना असम्भव हो गया और उसका मूलभाग शिथिल होने लगा, तब बलरामजीने केशी और मधुनामक दैत्योंका संहार करनेवाले साक्षात् विष्णुस्वरूप कमलनयन श्रीकृष्णसे रोषपूर्वक कहा—॥ ७१-७२ ॥

दह्यतेऽयं गिरिस्तात ससानुशिखरद्रुमः ।
आवयोः कृष्ण वैरेण बलिभिर्वसुधाधिपैः ॥ ७३ ॥

'तात ! श्रीकृष्ण ! हमलोगोंसे वैर हो जानेके कारण इन बलवान् भूपतियोंद्वारा छोटे-बड़े शिखरों और वृक्षोंसहित यह पर्वत जलाया जा रहा है ॥ ७३ ॥

पश्य कृष्णानलौष्णानां सधूमानां समन्ततः ।
वनानां विरसन्तीव नगाभ्याशे द्विपोत्तमाः ॥ ७४ ॥

'श्रीकृष्ण ! देखो, चारों ओर आगसे तपे और धुएँसे भरे इन जंगलोंके वृक्षोंके निकट ये उत्तम हाथी करुण-क्रन्दन-सा कर रहे हैं ॥ ७४ ॥

अयं यद्यावयोरर्थे गोमन्तस्तात दह्यते ।
अयशस्यमिदं लोके कौलीनं च भविष्यति ॥ ७५ ॥

'तात ! यदि हम दोनोंके लिये गोमन्त जला दिया जायगा, तो यह संसारमें हमारे लिये महान् अपयश और कलङ्ककी बात होगी ॥ ७५ ॥

तदस्यानृण्यहेतोर्हि नगस्य नगसंनिभ ।
क्षत्रियाग्निहनिष्यामो दोर्भ्यामेव युधां वर ॥ ७६ ॥

'अतः योद्धाओंमें श्रेष्ठ तथा युद्धमें पर्वतके सम

अविचल रहनेवाले श्रीकृष्ण ! इस गोमन्त पर्वतसे उऋण होनेके लिये हमलोग अपनी भुजाओंसे ही इन क्षत्रियोंको मार डालेंगे ॥ ७६ ॥

एते ते क्षत्रियाः सर्वे गिरिमादीप्य दंशिताः ।
रथिनस्तात दृश्यन्ते यथादेशं युयुत्सवः ॥ ७७ ॥

'तात ! ये सारे क्षत्रिय इस पर्वतको जलाकर कवच आदिसे सुसज्जित हो रथपर बैठकर यथास्थान युद्ध करनेके लिये उत्सुक दिखायी देते हैं ॥ ७७ ॥

एवमुक्त्वा गिरेः शृङ्गान्मेरुशृङ्गादिवोडुराट् ।
निपपात बलः श्रीमान् वनमालाधरो युवा ॥ ७८ ॥

ऐसा कहकर मेरुपर्वतके शिखरसे नीचे उतरनेवाले चन्द्रमाके समान कान्तिमान् वनमालाधारी नवयुवक बलराम गोमन्त पर्वतकी चोटीसे कूद पड़े ॥ ७८ ॥

कादम्बरीमदक्षीबो नीलवासाः सिताननः ।
स शारदेन्दुसंकाशो वनमालाञ्चितोदरः ॥ ७९ ॥

उस समय वे कादम्बरी (सुधा या मधु) के मदसे कुछ मत्त-से हो रहे थे। उनके शरीरपर नील वस्त्र शोभा पाता था। उनका मुख गौरवर्णका था। वे शरत्-कालके चन्द्रमाकी भाँति उज्ज्वल प्रभासे उद्भासित हो रहे थे। उनका उदरभाग वनमालासे अलंकृत था ॥ ७९ ॥

कान्तैककुण्डलधरश्चारुमौलिरवाङ्मुखः ।
निपपात नरेन्द्राणां मध्ये केशवपूर्वजः ॥ ८० ॥

उन्होंने एक कानमें कमनीय कुण्डल धारण कर रखा था तथा उनके मस्तकपर मनोहर मुकुट शोभा दे रहा था। श्रीकृष्णके बड़े भाई बलराम नीचे मुँह किये राजाओंके बीचमें ही कूद पड़े ॥ ८० ॥

अवप्लुते ततो रामे कृष्णः कृष्णाम्बुदोपमः ।
गोमन्तशिखराच्छ्रीमानाप्लुतोऽमितविक्रमः ॥ ८१ ॥

बलरामजीके कूदनेके पश्चात् काले मेघके समान श्याम कान्तिमान् और अमित पराक्रमी श्रीमान् कृष्ण भी गोमन्त-शिखरसे कूद पड़े ॥ ८१ ॥

ततस्तं पीडयामास पद्भ्यां गिरिवरं हरिः ।
स पीडितो गिरिस्तेन निर्ममज्ज समन्ततः ॥ ८२ ॥
जलाकुलोपलस्तत्र प्रस्रुतो द्विरदो यथा ।
स तेन वारिणा वह्निस्तत्क्षणात् प्रशमं ययौ ॥ ८३ ॥
कल्पान्ते वारिधाराभिर्मेघजालैरिवांशुमान् ।

कूदते समय श्रीहरिने उस श्रेष्ठ पर्वतको अपने दोनों पैरोंसे दबाया। उनके द्वारा दबाव पड़नेपर वह पर्वत चारों ओरसे जलमग्न-सा हो गया। उसका एक-एक पत्थर जलसे नहा उठा और मदकी बूँदे टपकानेवाले हाथीके समान जलका स्रोत बहाने लगा। उस जलसे वहाँकी सारी आग तत्काल बुझ गयी। मानो प्रलयकालमें मेघसमूहोंद्वारा बरसायी हुई वारिधाराओंसे अंशुमाली सूर्य शान्त हो गये हों ॥८२-८३½॥

सिंहारसितनिर्घोषः पीतवासा घनाकृतिः ॥ ८४ ॥
किरीटमूर्द्धा सौम्यास्यः पुण्डरीकनिभेक्षणः ।
श्रीवत्सवक्षाः सुमुखः सहस्राक्षसमद्युतिः ॥ ८५ ॥
रामादनन्तरं कृष्णः प्लुतो वै वीर्यवांस्ततः ।

उस समय पीताम्बरधारी घनश्याम-विग्रह कमलनयन श्रीकृष्ण सिंहके समान दहाड़ रहे थे। उनके मस्तकपर दिव्य किरीट शोभा पा रहा था और मुख बड़ा ही सौम्य दिखायी देता था। उनके वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित था। मुख बहुत ही सुन्दर था और अंगोंकी कान्ति देवराज इन्द्रके समान प्रकाशित हो रही थी। बलरामजीके बाद पराक्रमी श्रीकृष्ण भी वहीं (राजाओंके बीचमें ही) कूद पड़े थे ॥

ताभ्यामेव प्लुताभ्यां च चरणैः पीडितो गिरिः ॥ ८६ ॥
मुमोच सलिलोत्पीडांस्तीव्रपावकशान्तये ।
सलिलोत्पीडनं दृष्ट्वा पार्थिवा भयमाविशन् ॥ ८७ ॥

उन दोनों भाइयोंके कूदनेसे उनके चरणोंका दबाव पाकर वह पर्वत जलके स्रोत बहाने लगा था, जो उस भयानक अग्निको बुझानेमें सहायक हुआ। पर्वतसे जलके स्रोत निकलते देखकर राजाओंके मनमें भय समा गया ॥८६-८७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि गोमन्तदाहे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें गोमन्त-पर्वतका दाहविषयक बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४२ ॥

त्रयश्चत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण और बलरामका जरासंध और उसकी सेनाओंके साथ युद्ध, राजा दरदकी मृत्यु, जरासंधका पराजित होकर पलायन तथा चेदिराज दमघोषके साथ श्रीकृष्ण और बलरामका करवीरपुरमें जाना

वैशम्पायन उवाच

तौ नगादाप्लुतौ दृष्ट्वा वसुदेवसुतावुभौ ।
क्षुब्धं नरवरानीकं सर्वं सम्मूढवाहनम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! वसुदेवके

उन दोनों पुत्रोंको पर्वतसे कूदकर आया देख उन नरेशोंकी सारी सेनामें हलचल मच गयी। उसके वाहनोंपर मोह छा गया ॥ १ ॥

बाहुप्रहरणौ तौ तु चेरतुस्तत्र यादवौ।
मकराविव संरब्धौ समुद्रक्षोभणावुभौ ॥ २ ॥

रोषमें भरे हुए वे दोनों यदुवंशी वीर अपनी भुजाओंसे ही आयुधका काम लेते हुए उस विशाल सेनामें विचरने लगे, जैसे दो महान् मगर समुद्रको विक्षुब्ध करते हुए उसके भीतर घूम रहे हों ॥ २ ॥

ताभ्यां मृधे प्रविष्टाभ्यां यादवाभ्यां मतिस्त्वभूत्।
आयुधानां पुराणानामादानकृतलक्षणा ॥ ३ ॥

समराङ्गणमें प्रविष्ट होनेपर उन दोनों यादवोंके मनमें अपने पुराने आयुधोंको ग्रहण करनेका विचार हुआ ॥ ३ ॥

ततोऽम्बरतलाद् भूयः पतन्ति स्म महात्मनोः।
मध्ये राजसहस्रस्य समरं प्रतिकाङ्क्षिणोः ॥ ४ ॥
यानि वै माथुरे युद्धे प्राप्तान्याहवशोभिनोः।

फिर तो सहस्रों राजाओंके बीचमें युद्धकी आकांक्षा रखने तथा समरमें शोभा पानेवाले उन दोनों महात्माओंके हाथमें आकाशसे वे ही अस्त्र-शस्त्र आ गये, जो मथुराके युद्धमें उन दोनोंको प्राप्त हुए थे ॥ ४½ ॥

तान्यम्बरात् पतन्ति स्म दिव्यान्याहवसम्प्लवे ॥ ५ ॥
लेलिहानानि दीप्तानि दीप्ताग्निसदृशानि वै।
निक्षिप्य यानि तत्रैव तानि प्राप्तौ स्म यादवौ ॥ ६ ॥

उस युद्धसम्बन्धी विप्लवके समय वे ही प्रज्वलित अग्निके तुल्य तेजस्वी, दीप्तिमान् तथा शत्रुओंको चाट जानेवाले दिव्यास्त्र आकाशसे आ पड़े। जिन्हें वे यादव-वीर मथुरामें वहीं (आकाशमें) फेंककर चले गये थे, उन यदुवंशी वीरोंको पुनः उन दिव्यास्त्रोंकी प्राप्ति हो गयी ॥ ५-६ ॥

क्रव्यादैरनुयातानि मूर्तिमन्ति बृहन्ति च।
तृषितान्याहवे भोक्तुं नृपमांसानि सर्वशः ॥ ७ ॥

उन अस्त्रोंके पीछे मांसभक्षी भूत-प्रेत आदि भी आ रहे थे। वे विशाल अस्त्र मूर्तिमान् होकर उस युद्धमें समस्त राजाओंके रक्त-मांसका उपभोग करनेके लिये मानो भूखे-प्यासे थे ॥ ७ ॥

दिव्यस्रग्दामधारीणि त्रासयन्ति च खेचरान्।
प्रभया भासमानानि दंशितानि दिशो दश ॥ ८ ॥

उन सबने दिव्य पुष्पोंकी मालाएँ धारण की थीं। वे अपनी प्रभासे प्रकाशित होकर दसों दिशाओंको सुशोभित करते थे और आकाशचारी प्राणियोंको भी भयभीत कर देते थे ॥ ८ ॥

हलं सांवर्तकं नाम सौनन्दं मुसलं तथा।
चक्रं सुदर्शनं नाम गदां कौमोदकीं तथा ॥ ९ ॥
चत्वार्येतानि तेजांसि विष्णुप्रहरणानि वै।
ताभ्यां समवतीर्णानि यादवाभ्यां महामृधे ॥ १० ॥

सांवर्तक हल, सौनन्द मूसल, सुदर्शन चक्र और कौमोदकी गदा—भगवान् विष्णुके ये चार तेजस्वी अस्त्र-शस्त्र उस महासमरमें उन दोनों यादव-वीरोंके लिये उतरे थे ॥ ९-१० ॥

जग्राह प्रथमं रामो ललामप्रतिमं रणे।
सर्पन्तमिव सर्पेन्द्रं दिव्यमालाकुलं हलम् ॥ ११ ॥

पहले बलरामजीने रणभूमिमें सुन्दर आकृतिवाले सर्पराजके समान सर्पणशील तथा दिव्यमालाओंसे अलंकृत हलको अपने दायें हाथमें ग्रहण किया ॥ ११ ॥

सव्येन सात्वतां श्रेष्ठो जग्राह मुसलोत्तमम्।
सौनन्दं नाम बलवान् निरानन्दकरं द्विषाम् ॥ १२ ॥

फिर उन यदुकुलतिलक बलवान् वीरने बायें हाथसे सौनन्द नामक उत्तम मूसलको ग्रहण किया, जो शत्रुओंको आनन्दशून्य कर देनेवाला था ॥ १२ ॥

दर्शनीयं च लोकेषु चक्रमादित्यवर्चसम्।
नाम्ना सुदर्शनं नाम प्रीतो जग्राह केशवः ॥ १३ ॥

तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णने सम्पूर्ण लोकोंमें दर्शनीय तथा सूर्यके समान तेजस्वी सुदर्शन नामक चक्रको बड़ी प्रसन्नताके साथ ग्रहण किया ॥ १३ ॥

दर्शनीयं च लोकेषु धनुर्जलदनिःस्वनम्।
नाम्ना शार्ङ्गमिति ख्यातं प्रीतो जग्राह वीर्यवान् ॥ १४ ॥

फिर समस्त लोकोंमें दर्शनीय तथा मेघोंकी गर्जनाके समान टंकारध्वनि करनेवाले शार्ङ्ग नामसे विख्यात धनुषको भी उन बलवान् श्रीकृष्णने प्रसन्नतापूर्वक अपने हाथमें ले लिया ॥

देवैर्निगदितार्थस्य गदा तस्यापरे करे।
निषक्ता कुमुदाक्षस्य नाम्ना कौमोदकीति सा ॥ १५ ॥

तदनन्तर देवताओंने जिनसे अपना प्रयोजन निवेदन किया था तथा जिनके नेत्र विकसित कुमुद-कुसुमके समान शोभायमान हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णके दूसरे हाथमें कौमोदकी नामक गदा आ गयी ॥ १५ ॥

तौ सप्रहरणौ वीरौ साक्षाद्विष्णुतनूपमौ।
समरे रामगोविन्दौ रिपूंस्तान् प्रत्ययुद्ध्यताम् ॥ १६ ॥

साक्षात् विष्णुके-से विग्रहवाले वे दोनों वीर बलराम और श्रीकृष्ण जब अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न हो गये, तब समरभूमिमें उन शत्रुओंके साथ युद्ध करने लगे ॥ १६ ॥

आयुधप्रग्रहौ वीरौ तावन्योन्यमयावुभौ।
पूर्वजानुजसंज्ञौ तु रामगोविन्दलक्षणौ ॥ १७ ॥

अस्त्र ग्रहण करके समराङ्गणमें खड़े हुए वे दोनों अग्रज और अनुज वीर बलराम तथा श्रीकृष्ण अन्योन्यमय (एक-दूसरेपर आश्रित अथवा एक दूसरेके स्वरूप) थे ॥ १७ ॥

समरेऽप्रतिरूपौ तौ विष्णुरेको द्विधा कृतः ।
द्विषत्सु प्रतिकुर्वाणौ पराक्रान्तौ यथेश्वरौ ॥ १८ ॥

रणभूमिमें उनकी तुलना करनेवाला दूसरा कोई नहीं था । वे दोनों एक ही विष्णुके दो स्वरूप थे तथा शत्रुओंका प्रतीकार करते हुए सर्वसमर्थ ईश्वरकी भाँति पराक्रम प्रकट कर रहे थे ॥ १८ ॥

हलमुद्यम्य रामस्तु सर्पेन्द्रमिव कोपनम् ।
चचार समरे वीरो द्विषतामन्तकोपमः ॥ १९ ॥

वीर बलराम क्रोधमें भरे हुए सर्पराजके तुल्य सांवर्तक हलको हाथमें उठाकर समरमें शत्रुओंके लिये कालरूप होकर विचरने लगे ॥ १९ ॥

विकर्षन् रथवृन्दानि क्षत्रियाणां महात्मनाम् ।
चकार रोषं सफलं नागेषु च हयेषु च ॥ २० ॥
कुञ्जराँल्लाङ्गलोत्क्षिप्तान् मुसलाक्षेपताडितान् ।
रामोऽभिरामः समरे निर्ममन्थ यथाचलान् ॥ २१ ॥

वे महामनस्वी क्षत्रियोंके रथसमूहोंको पीछे ढकेलते हुए हाथियों और घोड़ोंपर अपना रोष सफल करने लगे । समरमें परम सुन्दर प्रतीत होनेवाले बलराम हलसे हाथियोंको ऊपर उछाल देते और मूसल फेंककर उन्हें मार डालते थे । इस प्रकार उन पर्वतोपम हाथियोंको उन्होंने मार डाला ॥२०-२१॥

ते वध्यमाना रामेण समरे क्षत्रियर्षभाः ।
जरासंधान्तिकं भीता विरथाः प्रतिजग्मिरे ॥ २२ ॥

समराङ्गणमें बलरामजीके द्वारा मारे जाते हुए वे क्षत्रिय-शिरोमणि योद्धा रथहीन हो भयके मारे जरासंधके पास भाग गये ॥ २२ ॥

तानुवाच जरासंधः क्षत्रधर्मे व्यवस्थितः ।
धिगेतां क्षत्रवृत्तिं वः समरे कातरात्मनाम् ॥ २३ ॥

तब क्षत्रियधर्ममें स्थित रहनेवाले जरासंधने उनसे कहा—'समरभूमिमें आकर मनमें कायरता लानेवाले तुमलोगोंकी इस क्षत्रियवृत्तिको धिक्कार है ॥ २३ ॥

पराक्रान्तस्य समरे विरथस्य पलायतः ।
भ्रूणहत्यामिवासह्यां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ २४ ॥

'मनीषी पुरुष समरमें पराक्रम प्रकट करके रथहीन होकर भागनेवाले योद्धाकी इस कायरताको भ्रूणहत्याके समान असह्य बताते हैं ॥ २४ ॥

पत्तिनो भुवि चैकस्य गोपस्याल्पबलीयसः ।
भीताः किं विनिवर्तध्वं धिगेतां क्षत्रवृत्तिताम् ॥ २५ ॥

'यह ग्वाला अत्यन्त बलहीन है, पैदल है और पृथ्वीपर अकेला खड़ा है । भला, इससे भयभीन होकर तुमलोग क्यों भाग रहे हो ? तुम्हारी इस क्षत्रियवृत्तिको धिक्कार है ॥२५॥

क्षिप्रं समभिवर्तन्तां मम वाक्येन नोदिताः ।
यावदेतौ रणे गोपौ प्रेषयामि यमक्षयम् ॥ २६ ॥

'मेरी आज्ञासे प्रेरित होकर तुम सब लोग शीघ्र ही शत्रुओंपर आक्रमण करो । तबतक मैं रणभूमिमें इन दोनों ग्वालोंको मारकर यमलोक भेज देता हूँ' ॥ २६ ॥

ततस्ते क्षत्रियाः सर्वे जरासंधेन नोदिताः ।
क्षिपन्तः शरजालानि हृष्टा योद्धुमुपस्थिताः ॥ २७ ॥
ते हयैः काञ्चनापीडै रथैश्चेन्दुसमप्रभैः ।
नागैश्चाम्भोदसंकाशैर्महामात्रप्रणोदितैः ॥ २८ ॥

तब जरासंधसे प्रेरित होकर वे समस्त क्षत्रिय बाणसमूहों-की वर्षा करते हुए बड़े हर्षके साथ युद्धके लिये डट गये । वे सोनेके आभूषणोंसे विभूषित अश्वों, चन्द्रमाके समान कान्तिमान् रथों और महावतोंद्वारा हाँके गये एवं मेघोंके समान काले रंगवाले हाथियोंद्वारा रणभूमिमें आगे बढ़ने लगे ॥

सतनुत्राणनिस्त्रिंशाः सायुधाभरणाम्बराः ।
स्वारोपितधनुष्मन्तः सतूणीराः ससायकाः ॥ २९ ॥

उनके शरीरोंमें कवच और हाथोंमें खड्ग थे । वे आयुध, आभूषण तथा वस्त्रोंसे सुसज्जित थे । उन्होंने धनुषोंको भली-भाँति चढ़ा रखा था । वे बाणों और तरकसोंसे सम्पन्न थे॥२९॥

सच्छत्रोत्सेधिनः सर्वे चारुचामरवीजिताः ।
रणावनिगता रेजुः स्यन्दनस्था महीक्षितः ॥ ३० ॥

जो राजा रणभूमिमें रथोंपर बैठे हुए थे, उनके सिरपर ऊँचे छत्र तने थे तथा मनोहर चामरोंद्वारा उनके लिये हवा की जा रही थी। इस तरह वे सभी बड़ी शोभा पाते थे ॥ ३० ॥

तौ युद्धरङ्गापतितौ विधावन्तौ महाभुजौ ।
वसुदेवसुतौ वीरौ युयुत्सू प्रत्यदृश्यताम् ॥ ३१ ॥

युद्धकी रंगभूमिमें उतर कर सब ओर धावा करनेवाले वे महाबाहु वीर वसुदेवपुत्र युद्धके लिये उत्सुक दिखायी देते थे ॥ ३१ ॥

तद् युद्धमभवत् तत्र तयोस्तेषां तु संयुगे ।
सायकोत्सर्गबहुलं गदानिर्घातदारुणम् ॥ ३२ ॥

वहाँ रणभूमिमें उन दोनों भाइयों तथा उन राजाओंमें भारी युद्ध होने लगा । उसमें बहुत-से बाणोंकी वर्षा की जा रही थी । गदाओंके आघातसे उस युद्धकी भयङ्करता और बढ़ गयी थी ॥ ३२ ॥

ततः शरसहस्राणि प्रतीच्छन्तौ रणेषिणौ ।
तस्थतुर्योधमुख्यौ तावभिवृष्टौ यथाचलौ ॥ ३३ ॥

तदनन्तर सहस्रों बाणोंकी बौछार ग्रहण करते हुए वे दोनों युद्धाभिलाषी महायोद्धा वर्षाका आघात सहन करनेवाले दो पर्वतोंके समान वहाँ अविचलभावसे खड़े रहे ॥ ३३ ॥

गदाभिश्चैव गुर्वीभिः क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः ।
अर्द्यमानौ महेष्वासौ यादवौ न चकम्पतुः ॥ ३४ ॥

शत्रुओंकी भारी गदाओं, गोफनों या ढेलवासों तथा मुद्गरोंकी मारसे पीड़ित होते हुए भी वे दोनों महाधनुर्धर यादव वीर कम्पित नहीं हुए ॥ ३४ ॥

ततः कृष्णोऽम्बुदाकारः शङ्खचक्रगदाधरः ।
व्यवर्धत महातेजा वातयुक्त इवानलः ॥ ३५ ॥

तत्पश्चात् शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले घन-श्यामविग्रह महातेजस्वी श्रीकृष्ण वायुसे प्रेरित होकर प्रज्वलित हुई अग्निके समान बढ़ने लगे ॥ ३५ ॥

स चक्रेणार्कतुल्येन दीप्यमानेन तेजसा ।
विच्छेद समरे वीरो नृगजाश्वमहारथान् ॥ ३६ ॥

समराङ्गणमें उन वीर मधुसूदनने तेजसे उद्दीप्त होनेवाले सूर्यतुल्य तेजस्वी चक्रके द्वारा मनुष्यों, हाथियों, घोड़ों तथा बड़े-बड़े रथोंके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ३६ ॥

गदानिपातविहता लाङ्गलेन च कर्षिताः ।
न शेकुस्ते रणे स्थातुं पार्थिवा नष्टचेतसः ॥ ३७ ॥

गदाके आघातसे मारे गये तथा हलसे खींचकर नष्ट किये गये राजा लोग अपनी चेतना खोकर रणभूमिमें खड़े न रह सके ॥ ३७ ॥

चक्रक्षुरनिकृत्तानि विचित्राणि महीक्षिताम् ।
रथयूथानि भग्नानि न शेकुश्चलितुं रणे ॥ ३८ ॥

चक्रके छुरोंसे टुकड़े-टुकड़े किये गये राजाओंके विचित्र रथसमूह भग्न होकर युद्धभूमिमें आगे न बढ़ सके ॥ ३८ ॥

मुसलाक्षेपभग्नाश्च कुञ्जराः षष्टिहायनाः ।
घना इव घनापाये भग्नदन्ता विचुक्रुशुः ॥ ३९ ॥

मुसलोंकी मारसे घायल हुए साठ वर्षोंकी अवस्थावाले हाथी दाँत टूट जानेके कारण शरद्-ऋतुके जलहीन बादलोंके समान असमर्थ हो आर्तभावसे चीत्कार कर रहे थे ॥ ३९ ॥

चक्रानलज्वालहताः सादिनः सपदातयः ।
पेतुः परासवस्तत्र यथा वज्रहतास्तथा ॥ ४० ॥

सुदर्शन चक्रसे प्रकट हुई आगकी ज्वालासे झुलसकर कितने ही घुड़सवार और पैदल योद्धा धरतीपर पड़े थे। उनके प्राण-पखेरू उड़ गये थे तथा वे वज्रके आघातसे मरे हुएके तुल्य प्रतीत होते थे ॥ ४० ॥

चक्रलाङ्गलनिर्दग्धं तत्सैन्यं विदलीकृतम् ।
युगान्तोपहतप्रख्यं सर्वं पतितमाबभौ ॥ ४१ ॥

चक्र और हलसे दग्ध होकर विदीर्ण की गयी वह सारी सेना इस तरह धरतीपर पड़ी थी मानो प्रलयकालमें सबका एक साथ संहार हो गया हो ॥ ४१ ॥

आक्रीडभूमिं दिव्यानामायुधानां वपुष्मताम् ।
वैष्णवानां नृपास्ते तु द्रष्टुमप्यबलीयसः ॥ ४२ ॥

वहाँ मूर्तिमान् होकर प्रकट हुए उन वैष्णव दिव्यास्त्रोंकी क्रीडा-भूमिरूप युद्धस्थलकी ओर देखनेमें भी वे राजालोग असमर्थ हो गये थे ॥ ४२ ॥

केचिद् रथाः सम्मृदिताः केचिन्निहतपार्थिवाः ।
भग्नैकचक्रास्त्वपरे विकीर्णा धरणीतले ॥ ४३ ॥

कितने ही रथ रौंद डाले गये। कितनोंके राजा मार डाले गये और कितने ही एक-एक पहिया नष्ट हो जानेके कारण भूतलपर बिखरे पड़े थे ॥ ४३ ॥

तस्मिन् विशसने घोरे चक्रलाङ्गलसम्प्लवे ।
दारुणानि प्रवृत्तानि रक्षांस्यौत्पातिकानि च ॥ ४४ ॥

चक्र और हलद्वारा जहाँ विप्लव मच गया था, उस घोर संग्राममें राक्षसोंद्वारा उपस्थित की गयी भयंकर उत्पात-सूचक घटनाएँ घटित होने लगीं ॥ ४४ ॥

आर्तानां कूजमानानां पाटितानां च वेणुवत् ।
अन्तो न शक्यतेऽन्वेष्टुं नृनागरथवाजिनाम् ॥ ४५ ॥

जो आर्तभावसे चीख रहे थे तथा जो बाँसकी तरह चीर डाले गये थे, ऐसे मनुष्यों, हाथियों, रथारोहियों और घोड़ों-की अन्तिम संख्या कितनी है, इसका पता लगाना असम्भव हो गया था ॥ ४५ ॥

सा पातितनरेन्द्राणां रुधिराऽऽर्द्रा रणक्षितिः ।
योषेव चन्दनार्द्राङ्गी भैरवा प्रतिभाति वै ॥ ४६ ॥

धरतीपर पड़े हुए राजाओंके रुधिरसे भीगी हुई वह रणभूमि लाल चन्दनसे आर्द्र अङ्गवाली नारीके समान भयंकर प्रतीत होती थी ॥ ४६ ॥

नरकेशास्थिमज्जान्त्रैः शातितानां च दन्तिनाम् ।
रुधिरौघप्लवस्तत्र च्छादयामास मेदिनीम् ॥ ४७ ॥

मनुष्योंके केशों, हड्डियों, मज्जाओं तथा आँतोंसे मिला हुआ कटे हाथियोंके रक्तका प्रवाह वहाँकी भूमिको आच्छादित करता जा रहा था ॥ ४७ ॥

तस्मिन् महाभीषणके नरवाहनसंक्षये ।
शिवानामशिवैः शब्दैर्नादिते घोरदर्शने ॥ ४८ ॥

वह रणभूमि बड़ी भयानक प्रतीत होती थी। वहाँ मनुष्यों और उनके वाहनोंका संहार हो रहा था। गीदड़ियों-के अमङ्गलसूचक शब्द वहाँ सदा गूँजते रहते थे। वह देखने-में भी बड़ी भयंकर थी ॥ ४८ ॥

आर्तस्तनितसंनादे रुधिराम्बुह्रदाकुले।
अन्तकाक्रीडसदृशे नागदेहैः समावृते ॥ ४९ ॥

आर्त प्राणियोंकी चीख—पुकारका शब्द सब ओर फैला हुआ था। रक्तके कितने ही कुण्ड बन गये थे। हाथियोंकी लाशोंसे ढकी हुई वह युद्धस्थली कालकी क्रीडाभूमिके समान प्रतीत होती थी ॥ ४९ ॥

अपास्तैर्बाहुभिर्योधैस्तुरगैश्च विदारितैः।
कङ्कैश्च बलगृध्रैश्च नादितैः प्रतिनादिते ॥ ५० ॥

कहीं योद्धाओंकी बाँहें कटकर गिरी थीं। कहीं बहुत-से योद्धा ही मरे पड़े थे और कहीं विदीर्ण हुए घोड़ोंकी लाशें बिछी हुई थीं। बड़े-बड़े बगुलों, कौओं और गीधोंकी बोलियोंसे वह समराङ्गण गूँज रहा था ॥ ५० ॥

निपाते पृथिवीशानां मृत्युसाधारणे रणे।
कृष्णः शत्रुवधं कर्तुं चचारान्तकदर्शनः ॥ ५१ ॥

जहाँ बड़े-बड़े भूमिपाल धराशायी हो रहे थे और मृत्यु एक साधारण-सी बात हो गयी थी, उस रणभूमिमें कालके समान दिखायी देनेवाले श्रीकृष्ण शत्रुओंका वध करनेके लिये विचर रहे थे ॥ ५१ ॥

युगान्तार्कप्रभं चक्रं कालीं चैवायसीं गदाम्।
गृह्य सैन्यावनिगतो बभाषे केशवो नृपान् ॥ ५२ ॥

प्रलयकालके सूर्यकी भाँति प्रकाशित होनेवाले चक्र और लोहेकी बनी हुई काली गदाको हाथमें लेकर भगवान् श्रीकृष्ण सेनाके मध्यकी भूमिमें खड़े हो राजाओंसे इस प्रकार बोले—॥

किन्न युद्ध्यत वै शूरा हस्त्यश्वरथसंयुताः।
किमिदं गम्यते शूराः कृतास्त्रा दृढनिश्चयाः।
अहं सपूर्वजः संख्ये पदातिः प्रमुखे स्थितः ॥ ५३ ॥

'हाथी, घोड़े और रथोंसे युक्त शूरवीरो! अब युद्ध क्यों नहीं करते हो? अस्त्रोंके विद्वान् तथा युद्धका दृढ़ निश्चय रखनेवाले वीरो! क्यों इस प्रकार पलायन करते हो? मैं तो युद्धमें अपने बड़े भाईके साथ तुम्हारे सामने पैदल ही खड़ा हूँ ॥ ५३ ॥

अदृष्टदोषेण रणे भवन्तो येन पालिताः।
स इदानीं जरासंधः किमर्थं नाभिवर्तते ॥ ५४ ॥

'युद्धमें जिसने दोष नहीं देखा है तथा जिसके द्वारा तुम लोग पालित हुए हो, वह जरासंध अब हमारे सामने क्यों नहीं आ रहा है?' ॥ ५४ ॥

एवमुक्ते तु नृपतिर्दरदो नाम वीर्यवान्।
रामं हलाग्रोग्रभुजं प्रत्ययात् सैन्यमध्यगम् ॥ ५५ ॥

श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर पराक्रमी राजा दरद सेनाके मध्यमें खड़े हुए तथा हलके अग्रभागसे उग्र भुजावाले बलरामके सामने आया ॥ ५५ ॥

बभाषे स तु ताम्राक्षमुक्षाणमिव सेवनी।
एह्येहि राम युध्यस्व मया सार्द्धमरिंदम ॥ ५६ ॥

जैसे किसान बैलसे बात करता है, उसी प्रकार उसने लाल नेत्रोंवाले बलरामजीसे इस प्रकार कहा—'शत्रुदमन राम! आओ, आओ। मेरे साथ युद्ध करो' ॥ ५६ ॥

तद् युद्धमभवत् ताभ्यां रामस्य दरदस्य च।
मृधे लोकवरिष्ठाभ्यां कुञ्जराभ्यामिवौजसा ॥ ५७ ॥

बलराम और दरद—दोनों जगत्के श्रेष्ठ वीर थे। युद्धस्थलमें उन दोनोंका बलपूर्वक संग्राम होने लगा, मानो दो हाथी आपसमें लड़ रहे हों ॥ ५७ ॥

योजयित्वा ततः स्कन्धे रामो दरदमाहवे।
हलेन बलिनां श्रेष्ठो मुसलेनावपोथयत् ॥ ५८ ॥

तब बलवानोंमें श्रेष्ठ बलरामने युद्धस्थलमें दरदके कंधेसे हल फँसाकर उसे मुसलसे मार डाला ॥ ५८ ॥

स्वकायगतमूर्धा वै मुसलेनावपोथितः।
पपात दरदो भूमौ दारितार्द्ध इवाचलः ॥ ५९ ॥

मुसलसे मारे गये दरदका मस्तक उसके शरीरमें ही घुस गया और वह विदीर्ण हुए पर्वतकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ५९ ॥

रामेण निहते तस्मिन् दरदे राजसत्तमे।
जरासंधस्य राज्ञस्तु रामेणासीत् समागमः ॥ ६० ॥
महेन्द्रस्येव वृत्रेण दारुणो लोमहर्षणः।

राजाओंमें श्रेष्ठ दरदके बलरामद्वारा मारे जानेपर राजा जरासंधका उनके साथ अत्यन्त भयंकर एवं रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। मानो देवराज इन्द्रका वृत्रासुरके साथ संग्राम हो रहा हो ॥ ६०½ ॥

गदे गृहीत्वा विक्रान्तावन्योन्यमभिधावतः ॥ ६१ ॥
कम्पयन्तौ भुवं वीरौ तावुद्यतमहागदौ।
ददृशाते महात्मानौ गिरी सशिखराविव ॥ ६२ ॥

वे दोनों पराक्रमी वीर गदाएँ हाथमें लेकर पृथ्वीको कम्पित करते हुए एक दूसरेकी ओर दौड़े। दो विशाल गदाएँ उठाये हुए वे दोनों महामनस्वी योद्धा शिखरोंसे युक्त दो पर्वतोंके समान दिखायी देते थे ॥ ६१-६२ ॥

व्युपारमन्त युद्धानि प्रेक्ष्य तौ पुरुषर्षभौ।
संरब्धाविव धावन्तौ गदायुद्धेषु विश्रुतौ ॥ ६३ ॥

उन दोनों पुरुषप्रवर वीरोंको युद्ध करते देख दूसरोंके युद्ध बंद हो गये। गदायुद्धोंमें विख्यात जरासंध और बलराम रोषावेशमें भरे हुए-से एक दूसरेपर धावा करते थे ॥ ६३ ॥

तावुभौ परमाचार्यौ लोके ख्यातौ महाबलौ।
मत्ताविव महानागावन्योन्यं समधावताम् ॥ ६४ ॥

वे दोनों महाबली वीर संसारमें गदायुद्धके उत्तम आचार्य कहे जाते थे। वे दो मदमत्त विशालकाय हाथियोंके समान परस्पर आक्रमण करते थे ॥ ६४ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
यक्षाश्चाप्सरसश्चैव समाजग्मुः सहस्रशः ॥ ६५ ॥

उस समय देवता, गन्धर्व, सिद्ध, महर्षि, यक्ष तथा सहस्रों अप्सराएँ वह युद्ध देखनेके लिये आ गयीं ॥ ६५ ॥

तद्देवयक्षगन्धर्वमहर्षिभिरलंकृतम् ।
शुशुभेऽभ्यधिकं राजन् नभो ज्योतिर्गणैरिव ॥ ६६ ॥

राजन्! देवताओं, यक्षों, गन्धर्वों और महर्षियोंसे अलंकृत हुआ वहाँका आकाश नक्षत्रोंसे आवृत हुआ-सा अधिक शोभा पाने लगा ॥ ६६ ॥

अभिदुद्राव रामं तु जरासंधो नराधिपः ।
सव्यं मण्डलमाश्रित्य बलदेवस्तु दक्षिणम् ॥ ६७ ॥

राजा जरासंध बायीं ओरसे पैंतरा देकर बलरामजीपर टूट पड़ा और बलदेवजीने दाहिनी ओरसे उसपर धावा किया ॥ ६७ ॥

तावन्योन्यं प्रजह्राते गदायुद्धविशारदौ ।
दन्ताभ्यामिव मातङ्गौ नादयन्तौ दिशो दश ॥ ६८ ॥

गदायुद्धमें निपुण वे दोनों वीर एक दूसरेपर प्रहार करने लगे। जैसे दो मतवाले हाथी अपने दाँतोंसे परस्पर चोट करते हों, उसी प्रकार गदाओंसे आघात करते हुए वे दसों दिशाओंको निनादित करने लगे ॥ ६८ ॥

गदानिपातो रामस्य शुश्रुवेऽशनिनिःस्वनः ।
जरासंधस्य च रणे पर्वतस्येव दीर्यतः ॥ ६९ ॥

रणभूमिमें बलरामजीकी गदाके आघातका शब्द वज्रपातके समान सुनायी पड़ता था तथा जरासंधके गदाघातकी ध्वनि फटते हुए पहाड़के समान प्रतीत होती थी ॥ ६९ ॥

न स कम्पयते रामं जरासंधकरच्युता ।
गदा गदाभृतां श्रेष्ठं विन्ध्यं गिरिमिवानिलः ॥ ७० ॥

जरासंधके हाथसे छूटी हुई गदा गदाधारियोंमें श्रेष्ठ बलरामजीको उसी प्रकार कम्पित नहीं कर पाती थी, जैसे वायु विन्ध्यगिरिको नहीं हिला सकती है ॥ ७० ॥

रामस्य तु गदावेगं राजा स मगधेश्वरः ।
सेहे धैर्येण महता शिक्षया च व्यपोथयत् ॥ ७१ ॥

बलरामजीकी गदाका वेग मगधराज जरासंध बड़े धैर्यसे सहन करता और शिक्षा-कौशलसे उसको विफल भी कर देता था ॥ ७१ ॥

ततोऽन्तरिक्षे वागासीत् सुस्वरा लोकसाक्षिणी ।
"न त्वया राम वध्योऽयमलं खेदेन मानद ॥७२॥
विहितोऽस्य मया मृत्युस्तस्मात् साधु व्युपारम ।
अचिरेणैव कालेन प्राणांस्त्यक्ष्यति मागधः ॥७३॥"

उस समय आकाशमें सब लोगोंके समक्ष सुस्पष्ट स्वरमें दैवी वाणी सुनायी दी—'दूसरोंको मान देनेवाले बलराम! जरासंधका वध तुम्हारे हाथोंसे होनेवाला नहीं है, अतः खेद न करो। इसकी मृत्युका विधान मेरे द्वारा बना दिया गया है, अतः तुम इस युद्धसे विरत हो जाओ। थोड़े ही समयमें मगधराजको अपने प्राणोंसे हाथ धोना पड़ेगा' ॥७२-७३ ॥

जरासंधस्तु तच्छ्रुत्वा विमनाः समपद्यत ।
न प्राहरत् ततस्तस्मै पुनरेव हलायुधः ।
तौ व्युपारमतां युद्धाद् वृष्णयस्ते च पार्थिवाः ॥ ७४ ॥
दीर्घकालं महाराज निजघ्नुरितरेतरम् ।
पराजिते त्वपक्रान्ते जरासंधे महीपतौ ।
विविक्तमभवत् सैन्यं परावृत्तमहारथम् ॥ ७५ ॥

वह आकाशवाणी सुनकर जरासंधका मन उदास हो गया। तदनन्तर बलरामने उसपर पुनः प्रहार नहीं किया। वे दोनों वीर युद्धसे विरत हो गये। महाराज! इसके पहले ये वृष्णिवंशी योद्धा और वे राजा लोग दीर्घकालतक एक दूसरेपर प्रहार करते रहे। जब राजा जरासंध पराजित होकर पलायन करने लगा, तब उसकी सारी सेना खाली हो गयी। उसके विशाल रथ पीछेकी ओर लौट गये ॥७४-७५ ॥

ते नृपाश्चोदितैर्नागैः स्यन्दनैस्तुरगैस्तथा ।
दुद्रुवुर्भीतमनसो व्याघ्राघ्राता मृगा इव ॥ ७६ ॥

वे राजा व्याघ्रके सूँघे हुए मृगोंके समान मन-ही-मन बहुत डरे हुए थे, अतः अपने हाथी, घोड़े और रथोंको हाँकते हुए रणभूमिसे भाग चले ॥ ७६ ॥

तन्नरेन्द्रैः परित्यक्तं भग्नदर्पैर्महारथैः ।
घोरं क्रव्यादबहुलं रौद्रमायोधनं बभौ ॥ ७७ ॥

जिनका घमंड चूर-चूर हो गया था, उन महारथी नरेशोंद्वारा परित्यक्त हुए उस घोर युद्धस्थलमें अधिकतर मांसभक्षी जीव-जन्तु ही रह गये थे। इससे वह बड़ा भयंकर प्रतीत होता था ॥ ७७ ॥

द्रवत्सु रथमुख्येषु चेदिराजो महाद्युतिः ।
स्मृत्वा यादवसम्बन्धं कृष्णमेवान्ववर्तत ॥ ७८ ॥

जब मुख्य-मुख्य रथी भाग चले, तब महातेजस्वी चेदिराज दमघोषने यादवोंके साथ अपने सम्बन्धको स्मरण करके श्रीकृष्णका ही अनुसरण किया ॥ ७८ ॥

वृतः कारूषसैन्येन चेदिसैन्येन चानघ ।
सम्बन्धकामो गोविन्दमिदमाह स चेदिराट् ॥ ७९ ॥

निष्पाप जनमेजय! करूष और चेदिदेशकी सेनासे घिरे हुए चेदिराज श्रीकृष्णके साथ सम्बन्ध बढ़ानेकी इच्छासे उनसे इस प्रकार बोले— ॥ ७९ ॥

अहं पितृष्वसुर्भर्ता तव यादवनन्दन।
सबलस्त्वामुपावृत्तस्त्वं हि मे दयितः प्रभो ॥ ८० ॥

'यादवनन्दन ! मैं तुम्हारी बूआका पति हूँ और सेनासहित तुम्हारे पास आया हूँ। प्रभो ! तुम मेरे परम प्रिय हो ॥ ८० ॥

उक्तश्चैष मया राजा जरासंधोऽल्पचेतनः।
कृष्णाद् विरम दुर्बुद्धे विग्रहाद् रणकर्मणि ॥ ८१ ॥

'मैंने इस मन्दबुद्धि राजा जरासंधसे कहा था कि अरे दुर्बुद्धे ! तू इस विग्रहमें श्रीकृष्णके साथ युद्ध करनेसे विरत हो जा, किंतु इसने नहीं माना ॥ ८१ ॥

तदेषोऽद्य मया त्यक्तो मम वाक्यस्य दूषकः।
भग्नो युद्धे जरासंधस्त्वया द्रवति सानुगः ॥ ८२ ॥

'इसने मेरे इस कथनकी निन्दा की थी, अतः अब मैंने इसे त्याग दिया है। युद्धमें तुम्हारे द्वारा पराजित होकर यह जरासंध अपने साथियोंसहित भागा जा रहा है ॥ ८२ ॥

निर्वैरो नैष संयाति स्वपुरं पृथिवीपतिः।
त्वय्येव भूयोऽप्यपरं दर्शयिष्यति किल्बिषम् ॥ ८३ ॥

'परंतु यह राजा वैर-भाव छोड़कर अपने नगरको नहीं लौट रहा है; अतः यह फिर तुम्हारे प्रति ही दूसरे पापपूर्ण कृत्यका प्रदर्शन करेगा ॥ ८३ ॥

तदिमां संत्यजाश्तु त्वं महीं हतनराकुलाम्।
क्रव्यादगणसंकीर्णां सेवितव्याममानुषैः ॥ ८४ ॥

'इसलिये अब तुम शीघ्र ही इस भूमिको त्याग दो। यह मुर्दे मनुष्योंसे भरी हुई है और यहाँ सब ओर हिंसक प्राणी छा गये हैं। अब यह स्थान मानवेतर (राक्षस आदि) प्राणियोंके ही सेवन करने योग्य है ॥ ८४ ॥

करवीरपुरं कृष्ण गच्छामः सबलानुगाः।
शृगालं वासुदेवं वै द्रक्ष्यामस्तत्र पार्थिवम् ॥ ८५ ॥

'श्रीकृष्ण ! अब हमलोग सैनिकों और सेवकोंसहित करवीरपुरमें चलें। वहाँ शृगालनामसे विख्यात राजा वासुदेव रहते हैं। उनसे हम मिलेंगे ॥ ८५ ॥

इमौ रथवरोदग्रौ युवयोः कारितौ मया।
योजितौ शीघ्रतुरगैः स्वङ्गचक्राक्षकूबरौ ॥ ८६ ॥

'ये दो श्रेष्ठ रथ मैंने तुम दोनों भाइयोंके लिये तैयार कराये हैं। इनमें शीघ्रगामी घोड़े जुते हुए हैं। इनके सभी अङ्ग, पहिये, धुरे और कूबर आदि सुदृढ़ हैं ॥ ८६ ॥

शीघ्रमारुह भद्रं ते बलदेवसहायवान्।
त्वरामः करवीरस्थं द्रष्टुं तं वसुधाधिपम् ॥ ८७ ॥

'तुम्हारा भला हो। तुम बलदेवके साथ शीघ्र रथपर आरूढ़ हो जाओ। हमें करवीरपुरमें निवास करनेवाले राजा [illegible]लसे मिलनेके लिये जल्दी लगी हुई है' ॥ ८७ ॥

वैशम्पायन उवाच

पितृष्वसृपतेर्वाक्यं श्रुत्वा चेदिपतेस्तदा।
वाक्यं हृष्टमनाः कृष्णो जगाद जगतो गुरुः ॥ ८८ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! उस समय अपने फूफा चेदिराज दमघोषका यह वचन सुनकर जगद्गुरु श्रीकृष्णके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे बोले—॥ ८८ ॥

अहो युद्धाभिसंतप्तौ देशकालोचितं त्वया।
बान्धवप्रतिरूपेण संसिक्तौ वचनाम्बुना ॥ ८९ ॥

'अहो ! हमलोग युद्धसे संतप्त हो गये थे। आपने एक आत्मीय बन्धुकी भाँति आकर अपने देशकालोचित वचनरूपी जलसे हमें नहला दिया है ॥ ८९ ॥

देशकालविशिष्टस्य हितस्य मधुरस्य च।
वाक्यस्य दुर्लभा लोके वक्तारश्चेदिसत्तम ॥ ९० ॥

'चेदिराज ! इस जगत्में देशकालके अनुरूप हितकर और मधुर वचन बोलनेवाले लोग दुर्लभ हैं ॥ ९० ॥

चेदिनाथ सनाथौ स्वः संवृत्तौ तव दर्शनात्।
नावयोः किंचिदप्राप्यं ययोस्त्वं बन्धुरीदृशः ॥ ९१ ॥

'चेदिनाथ ! आपके दर्शनसे हम दोनों सनाथ हो गये। जब हमारे आप-जैसे बन्धु यहाँ मौजूद हैं, तब यहाँ हमारे लिये कुछ भी अप्राप्य नहीं है ॥ ९१ ॥

जरासंधस्य निधनं ये चान्ये तत्समा नृपाः।
पर्याप्तौ त्वत्सनाथौ स्वः कर्तुं चेदिकुलोद्वह ॥ ९२ ॥

'चेदिकुलभूषण ! हम दोनों आपसे सनाथ होकर जरासंध तथा उसके समान जो दूसरे राजा हैं, उन सबको मौतके घाट उतार देनेमें समर्थ हैं ॥ ९२ ॥

यदूनां प्रथमो बन्धुस्त्वं हि सर्वमहीक्षिताम्।
अतःप्रभृति संग्रामान् द्रक्ष्यसे चेदिसत्तम ॥ ९३ ॥

'चेदिप्रवर ! समस्त राजाओंमें आप ही यदुवंशियोंके प्रथम बन्धु हैं। अबसे आपको बहुत-से संग्राम देखनेको मिलेंगे ॥ ९३ ॥

चाक्रं मौसलमित्येवं संग्रामं रणवृत्तयः।
कथयिष्यन्ति लोकेऽस्मिन् ये धरिष्यन्ति पार्थिवाः॥९४॥

'युद्धसे जीवन-निर्वाह करनेवाले जो राजा इस लोकमें जीवित रहेंगे, वे आजके इस चाक्र, मौसल युद्धकी सदा चर्चा करेंगे ॥ ९४ ॥

राज्ञां पराजयं युद्धे गोमन्तेऽचलसत्तमे।
श्रवणाद् धारणाद् वापि स्वर्गलोकं व्रजन्ति हि ॥९५॥

'पर्वतोंमें श्रेष्ठ गोमन्तके समीप युद्धमें हमारे द्वारा जो यह राजाओंकी पराजय हुई है, इसके सुनने अथवा स्मरण करनेसे भी मनुष्य स्वर्गलोकमें जायँगे ॥ ९५ ॥

तद्गच्छाम महाराज करवीरं पुरोत्तमम्।

त्वयोद्दिष्टेन मार्गेण चेदिराज शिवाय वै ॥ ९६ ॥

'अतः महाराज चेदिराज ! अब हमलोग आपके बताये हुए मार्गसे अपने कल्याणके लिये उत्तम नगर करवीरपुरको चलें' ॥ ९६ ॥

ते स्यन्दनगताः सर्वे पवनोत्पातिभिर्हयैः ।
भेजिरे दीर्घमध्वानं मूर्तिमन्त इवाग्नयः ॥ ९७ ॥

तदनन्तर वे सब-के-सब तीन मूर्तिमान् अग्नियोंके समान रथपर आरूढ़ हो हवाकी भाँति उड़नेवाले घोड़ोंद्वारा विशाल मार्गपर चल दिये ॥ ९७ ॥

ते त्रिरात्रोषिताः प्राप्ताः करवीरं पुरोत्तमम् ।
शिवाय च शिवे देशे निविष्टास्त्रिदशोपमाः ॥ ९८ ॥

वे देवोपम वीर मार्गमें तीन रात निवास करके उत्तम करवीरपुरमें जा पहुँचे । वहाँ उन्होंने अपने भलेके लिये एक सुखद स्थानमें डेरा डाला ॥ ९८ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि करवीरपुराभिगमने त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें श्रीकृष्ण आदिकी करवीरपुरमें गमनविषयक तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णद्वारा शृगालका वध तथा उसके पुत्रका करवीरपुरके राज्यपर अभिषेक

वैशम्पायन उवाच

तानागतान् विदित्वाथ शृगालो युद्धदुर्मदः ।
पुरस्य धर्षणं मत्वा निर्जगामेन्द्रविक्रमः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! उन सबके आनेका समाचार पाकर इन्द्रके समान पराक्रमी रणदुर्मद राजा शृगाल अपनी पुरीपर आक्रमण हुआ समझकर नगरसे बाहर निकला ॥ १ ॥

रथेनादित्यवर्णेन भास्वता रणगामिना ।
आयुधप्रतिपूर्णेन नेमिनिर्घोषहासिना ॥ २ ॥
मन्दराचलकल्पेन चित्राभरणभूषिणा ।
अक्षय्यसायकैस्तूणैः पूर्णेनार्णवघोषिणा ॥ ३ ॥
हर्यश्वेनाशुगतिनासक्तेन शिखरेष्वपि ।
हेमकूबरगर्भेण दृढाक्षेणातिशोभिना ॥ ४ ॥
सुबन्धुरेण दीप्तेन पतत्त्रिवरगामिना ।
गतेनेव शक्रस्य हर्यश्वेन रथाद्रिणा ॥ ५ ॥
सावित्रे नियमे पूर्णे यं ददौ सविता स्वयम् ।
आदित्यरश्मिभिरिव रश्मिभिर्यो निगृह्यते ॥ ६ ॥
न स्यन्दनमुख्येन द्विषत्स्यन्दनघातिना ।
शृगालोऽभ्ययात्कृष्णं शलभः पावकं यथा ॥ ७ ॥

वह एक श्रेष्ठ रथपर चढ़कर चला । उसका वह रथ र्यके समान तेजःपुञ्जसे प्रकाशित हो रहा था। वह रणभूमिमें (अप्रतिहतगति) से जानेवाला था । उसमें सभी तरहके अस्त्र-स्त्र भरे हुए थे। उसके पहियोंकी जो घरघराहट होती थी, ही मानो उसका अट्टहास था (अथवा वह पहियोंकी भीर ध्वनिसे मेघकी गम्भीर गर्जनाका उपहास कर रहा था)। उसका आकार मन्दराचलके समान था । उस रथको विचित्र आभरणोंसे विभूषित किया गया था । वह अक्षय सायकोंसे भरे हुए तूणीरोंसे परिपूर्ण था तथा समुद्रकी गम्भीर गर्जनाके समान घरघराहट पैदा करता था। उसमें हरे रङ्गके शीघ्रगामी घोड़े जुते हुए थे । वह पर्वतके शिखरोंपर भी कहीं अटकता नहीं था । उसके कूबरके * भीतरी भागमें सोना जड़ा हुआ था, उसका धुरा भी सुदृढ़ था, उस रथकी बड़ी शोभा हो रही थी । वह सुन्दर रस्सियोंसे भलीभाँति बँधा हुआ था, उसकी दीप्ति सब ओर छिटक रही थी; वह पक्षिराज गरुड़के समान तीव्र गतिसे चलनेवाला था और इन्द्रके हरित अश्वसे जुते हुए आकाशगामी पर्वताकार रथकी समानता करता था। शृगालने नियमपूर्वक गायत्री जप करके सूर्यदेवकी आराधना की थी। उसका वह नियम पूर्ण होनेपर साक्षात् भगवान् सूर्यने उसे वह रथ दिया था, जो सूर्यकी किरणोंके समान सुनहरी बागडोरोंसे उस रथके घोड़ोंको काबूमें लाया जाता था। शत्रुओंके रथोंको नष्ट कर देनेवाले उस श्रेष्ठ रथके द्वारा राजा शृगाल उसी तरह श्रीकृष्णपर चढ़ आया जैसे पतिंगा आगपर टूट पड़ता है॥२-७॥

चापपाणिः सुतीक्ष्णेषुः कवची हेममालिकः ।
सितप्रावरणोष्णीषः पावकाकारलोचनः ॥ ८ ॥

उसके हाथमें धनुष और तीखे बाण शोभा पाते थे । वह कवच धारण करके सोनेकी मालासे विभूषित था। उसकी चादर और पगड़ी श्वेतवर्णकी थी और नेत्र अग्निके समान जलते-से प्रतीत होते थे ॥ ८ ॥

मुहुर्मुहुर्ज्याचपलं विक्षिपन् दुःसहं धनुः ।
निर्वमन् रोषजं वायुं सानलज्वालमण्डलम् ॥ ९ ॥

---

* कूबर रथका वह भाग है, जिसपर जूआ बाँधा जाता है ।

वह बारंबार अपने दुःसह धनुषको हिलाता हुआ उसकी प्रत्यञ्चा खींचता था और आगकी ज्वालाओंसे युक्त रोषजनित उच्छ्वास छोड़ रहा था ॥ ९ ॥

भाभिर्भूषणपंक्तीनां दीप्तो मेरुरिवाचलः ।
रथस्थ इव शैलेन्द्रः शृगालः प्रत्यदृश्यत ॥ १० ॥

अपने आभूषण-समूहोंकी प्रभाओंसे प्रकाशित होकर वह राजा शृगाल मेरुपर्वतके समान शोभा पाता था और रथपर बैठे हुए गिरिराज-सा दृष्टिगोचर होता था ॥ १० ॥

तस्यारसितशब्देन रथनेमिस्वनेन च ।
गुरुत्वेन च नाम्यन्ती चचालोर्वी भयातुरा ॥ ११ ॥

उसके गर्जनेकी ध्वनि, रथके पहियोंकी घर्घराहट और भारीपनसे दबी जाती हुई पृथ्वी भयसे आतुर हो डगमगाने लगी ॥ ११ ॥

तमापतन्तं श्रीमन्तं मूर्तिमन्तमिवाचलम् ।
शृगालं लोकपालाभं दृष्ट्वा कृष्णो न विव्यथे ॥ १२ ॥

लोकपालोंके समान तेजस्वी और मूर्तिमान् पर्वतके समान विशालकाय श्रीमान् राजा शृगालको आक्रमण करते देख श्रीकृष्णके मनमें तनिक भी व्यथा नहीं हुई ॥ १२ ॥

शृगालश्चापि संरब्धः स्यन्दनेनाशुगामिना ।
समीपे वासुदेवस्य युयुत्सुः प्रत्यदृश्यत ॥ १३ ॥

इधर शृगाल भी रोषमें भरकर उस शीघ्रगामी रथके द्वारा श्रीकृष्णके पास आकर युद्धके लिये उत्सुक दिखायी देने लगा ॥ १३ ॥

वासुदेवं स्थितं दृष्ट्वा शृगालो युद्धलालसः ।
अभिदुद्राव वेगेन मेघराशिरिवाचलम् ॥ १४ ॥

श्रीकृष्णको अपने सामने खड़ा देख शृगालकी युद्ध-लालसा जाग उठी और जिस प्रकार मेघोंका समूह वर्षाद्वारा पर्वतपर आक्रमण करता है, उसी प्रकार उसने वेगपूर्वक उनपर धावा किया ॥ १४ ॥

वासुदेवः स्मितं कृत्वा प्रतियुद्धाय तस्थिवान् ।
तद् युद्धमभवत् ताभ्यां समरे घोरदर्शनम् ।
उभाभ्यामिव मत्ताभ्यां कुञ्जराभ्यां यथा वने ॥ १५ ॥

तब भगवान् श्रीकृष्ण मुसकराकर उसका सामना करनेके लिये खड़े हो गये; फिर तो समरभूमिमें उन दोनोंका बड़ा भयंकर युद्ध होने लगा, जैसे वनमें दो मदमत्त हाथी आपसमें लड़ रहे हों ॥ १५ ॥

शृगालस्त्वब्रवीत् कृष्णं समरे समुपस्थितम् ।
युद्धरागेण तेजस्वी मोहाच्चलितगौरवः ॥ १६ ॥

उस समय मोहवश जो अपने गौरवसे गिर गया था, उस तेजस्वी शृगालने समराङ्गणमें उपस्थित हुए श्रीकृष्णसे विषयक आसक्तिसे प्रेरित होकर कहा ॥ १६ ॥

गोमन्ते युद्धमार्गेण यत् त्वया कृष्ण चेष्टितम् ।
अनायकानां मूर्खाणां नृपाणां दुर्बले बले ॥ १७ ॥
स मे सुविदितः कृष्ण क्षत्रियाणां पराजयः ।
कृपणानामसत्त्वानामयुद्धानां रणोत्सवे ॥ १८ ॥

'कृष्ण ! तुमने गोमन्तके समीप नायकरहित मूर्ख नरेशोंकी दुर्बल सेनाके भीतर युद्धके मार्गसे जो-जो चेष्टाएँ की हैं, उनके विषयमें मुझे सब कुछ भलीभाँति विदित हो गया है। क्षत्रियोंके उस पराजयसे मैं अच्छी तरह परिचित हूँ; परंतु वे क्षत्रिय कायर, धैर्य और शक्तिसे रहित तथा समरोत्सवमें कभी युद्ध न कर सकनेवाले थे ॥ १७-१८ ॥

तिष्ठेदानीं यथाकामं स्थितोऽहं पार्थिवे पदे ।
क्व यास्यसि मया रुद्धो रणेष्वपरिनिष्ठितः ॥ १९ ॥

'परंतु इस समय तुम इच्छानुसार युद्ध करनेके लिये खड़े हो जाओ, मैं यहाँ राजाके पदपर प्रतिष्ठित हूँ। यदि मैं तुम्हें सब ओरसे घेरा डालकर रोक लूँ, तो तुम कहाँ जाओगे; क्योंकि तुम तो रणकर्ममें परिनिष्ठित (निपुण) हो नहीं ॥ १९ ॥

न चाहमेकं सबलो युक्तस्त्वां योद्धुमाहवे ।
अहमेकस्त्वमप्येको द्वौ युध्याव रणे स्थितौ ॥ २० ॥

'तुम अकेले हो और मैं सेनाके साथ हूँ। अतः रणभूमिमें तुम्हारे साथ युद्ध करना मेरे लिये उचित न होगा। इधरसे मैं अकेला रहूँ और उधरसे तुम, फिर हम दोनों समरभूमिमें डटकर युद्ध करें ॥ २० ॥

किं जनेन निरस्तेन त्वं वाहं च रणे स्थितः ।
धर्मयुद्धेन निधनं व्रजत्वेकतरो रणे ॥ २१ ॥

'साधारण लोगोंको मारनेसे क्या लाभ ? रणभूमिमें खड़े हुए तुम या मैं—दोनोंमेंसे एक योद्धा धर्मयुद्धके द्वारा मृत्युको प्राप्त हो ॥ २१ ॥

लोकेऽस्मिन् वासुदेवोऽहं भविष्यामि हते त्वयि ।
हते मयि त्वमप्येको वासुदेवो भविष्यसि ॥ २२ ॥

'तुम्हारे मारे जानेपर इस संसारमें मैं अकेला ही वासुदेव रहूँगा और मेरे मारे जानेपर तुम भी अकेले वासुदेव बने रहोगे' ॥ २२ ॥

शृगालस्य वचः श्रुत्वा वासुदेवः क्षमापरः ।
ईर्ष्यन्तं प्रहरस्वेति तमुक्त्वा चक्रमाददे ॥ २३ ॥

शृगालकी यह बात सुनकर क्षमाशील भगवान् वासुदेवने उस ईर्ष्यालु नरेशसे कहा, 'पहले तुम प्रहार करो' ऐसा कहकर उन्होंने हाथमें चक्र ले लिया ॥ २३ ॥

ततः सायकजालानि शृगालः क्रोधमूर्छितः ।
चिक्षेप कृष्णे घोराणि युद्धाय लघुविक्रमः ॥ २४ ॥

तब युद्धके लिये शीघ्रतापूर्वक पराक्रम प्रकट करनेवाले

शृगालने क्रोधसे उन्मत्त होकर श्रीकृष्णपर घोर बाण-समूहोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ २४ ॥

शस्त्राणि यानि चान्यानि मुसलाद्यानि संयुगे ।
पातयामास गोविन्दे स शृगालः प्रतापवान् ॥ २५ ॥

प्रतापी शृगालने उस युद्धमें गोविन्दपर मूसल आदि अन्य शस्त्रोंका भी प्रहार किया ॥ २५ ॥

शृगालप्रहितैरस्त्रैः पावकज्वालमालिभिः ।
निर्दयाभिहतः कृष्णः स्थितो गिरिरिवाचलः ॥ २६ ॥
तोऽस्त्रप्रहाराभिहतः किंचिद् रोषसमन्वितः ।
चक्रमुद्यम्य गोविन्दः शृगालस्य परिक्षिपत् ॥ २७ ॥

शृगालके चलाये हुए अस्त्रोंद्वारा, जिनसे आगकी लपटें उठ रहीं थीं, निर्दयतापूर्वक आहत होनेपर भी श्रीकृष्ण पर्वतके समान अविचल-भावसे खड़े रहे। उसके अस्त्रोंके प्रहारसे घायल होकर किञ्चित् रोषसे युक्त हुए भगवान् गोविन्दने चक्र उठाकर शृगालपर प्रहार किया ॥२६-२७॥

तं रथस्थं प्रमाणस्थं शृगालं युद्धदुर्मदम् ।
जघान समरे चक्रं जातदर्पं महाबलम् ॥ २८ ॥

रणदुर्मद महाबली शृगाल घमण्डमें भरकर रथपर ही बैठा रहा, अपनी जगहसे हटा नहीं। इसी समय (भगवान्के चलाये हुए) चक्रने समरभूमिमें उसपर गहरी चोट दी ॥ २८ ॥

ततः सुदर्शनं चक्रं पुनरायाद् गुरोः करे ।
चक्रेणोरसि निर्भिन्नः स गतासुर्गतोत्सवः ।
पपात क्षतजस्रावी शृगालोऽद्रिरिवाहतः ॥ २९ ॥

इसके बाद सुदर्शन चक्र पुनः जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णके हाथमें आ गया। उस चक्रसे आहत होकर शृगालकी छाती फट गयी और वह वज्रके मारे हुए पर्वतकी भाँति खूनकी धारा बहाता हुआ प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसके जीवनका सारा आनन्दोत्सव समाप्त हो गया ॥ २९ ॥

निशम्य तं निपतितं वज्रपातादिवाचलम् ।
तस्य सैन्यान्यपययुर्विमनांसि हते नृपे ॥ ३० ॥

वज्रपातसे धराशायी हुए पर्वतकी भाँति राजा शृगालको पृथ्वीपर पड़ा देख, उसके मारे जानेपर उसके सारे सैनिक खिन्नचित्त होकर भाग गये ॥ ३० ॥

केचित् प्रविश्य नगरं कश्मलाभिहता भृशम् ।
रुदुर्दुःखसंतप्ता भर्तृशोकाभिपीडिताः ॥ ३१ ॥

कुछ सैनिक नगरमें प्रवेश करके अत्यन्त मोहग्रस्त, दुःखसे सन्तप्त तथा स्वामीके शोकसे पीड़ित हो फूट-फूटकर रोने लगे ॥ ३१ ॥

केचित् तत्रैव शोचन्तः स्मरन्तः सुकृतानि च ।
पतितं भूपतिं भूमौ न त्यजन्ति स्म दुःखिताः ॥ ३२ ॥

कुछ सैनिक वहीं शोक करने लगे। वे स्वामीके उपकारोंका स्मरण करके दुखी हो भूमिपर पड़े हुए भूपालको छोड़ नहीं रहे थे ॥ ३२ ॥

ततो मेघनिनादेन स्वरेणारिविमर्दनः ।
कृष्णः कमलपत्राक्षो जनानामभयं ददौ ॥ ३३ ॥

तदनन्तर शत्रुमर्दन कमलनयन श्रीकृष्णने मेघ-गर्जनाके समान गम्भीर स्वरसे उन सब लोगोंको अभयदान दिया ॥३३॥

चक्रोचितेन हस्तेन राजताङ्गुलिपर्वणा ।
न भेतव्यं न भेतव्यमिति तानभ्यभाषत ॥ ३४ ॥
नास्य पापस्य दोषेण निराबाधकरं जनम् ।
घातयिष्यामि समरे नेदं शूरव्रतं मतम् ॥ ३५ ॥

उन्होंने अङ्गुलिपर्वसे सुशोभित तथा चक्र धारण करनेके योग्य उठे हुए दाहिने हाथके द्वारा संकेत करके उन सबसे कहा, 'सैनिको ! तुम डरो मत ! डरो मत !! इस पापीके अपराधसे मैं समरभूमिमें निरपराध मनुष्योंका वध नहीं करूँगा; क्योंकि—यह वीरोंका व्रत नहीं है' ॥ ३४-३५ ॥

अश्रुपूर्णमुखा दीनाः क्रन्दमाना भृशं तदा ।
ते स्म पश्यन्ति पतितं धरण्यां धरणीपतिम् ॥ ३६ ॥
चक्रनिर्दारितोरस्कं भिन्नशृङ्गमिवाचलम् ॥ ३७ ॥

वे सैनिक अत्यन्त दीनभावसे क्रन्दन करते हुए उस समय पृथ्वीपर पड़े हुए पृथ्वीपति शृगालकी ओर देख रहे थे। उनका सारा मुखमण्डल आँसुओंसे भींगा हुआ था। राजाका वक्षःस्थल चक्रसे विदीर्ण हो गया था। वह टूटे हुए शिखरवाले पर्वतके समान भूमिपर पड़ा था ॥ ३६-३७ ॥

विलपन्ति स्म ते सर्वे सचिवाः सप्रजा भृशम् ।
साश्रुपातेक्षणा दीनाः शोकस्य वशमागताः ॥ ३८ ॥

वे समस्त सचिव तथा प्रजावर्गके लोग शोकके वशीभूत हो नेत्रोंसे अश्रुपात करते हुए अत्यन्त दीनभावसे विलाप करते थे ॥ ३८ ॥

तेषां रुदितशब्देन पौराणां विस्वरैः स्वरैः ।
महिष्यस्तस्य निष्पेतुः सपुत्रा रुदिताननाः ॥ ३९ ॥

उन पुरवासियोंके रोनेके शब्द तथा फटे हुए स्वरोंसे अनिष्टकी आशङ्का करके राजा शृगालकी रानियाँ भी पुत्रोंको साथ लिये रोती हुई वहाँ निकल आयीं ॥ ३९ ॥

तास्तं निपतितं दृष्ट्वा श्लाघ्यं भूमिपतिं पतिम् ।
स्तनानारुज्य करजैर्भृशार्ताः पर्यदेवयन् ॥ ४० ॥

अपने स्पृहणीय पति भूमिपाल शृगालको वहाँ धरतीपर पड़ा देख वे रानियाँ अत्यन्त आर्त हो अपनी अङ्गुलियोंसे स्तनोंको नोचती हुई करुण विलाप करने लगीं ॥ ४० ॥

उरांस्युरसिजांश्चैव शिरोजान्याकुलान्यपि ।
निर्दयं ताडयन्त्यस्ता विस्वरं रुरुदुः स्त्रियः ॥ ४१ ॥

वे स्त्रियाँ अपनो छाती, स्तन और वहाँ फैले हुए सिरके बालोंको भी निर्दयतापूर्वक पीटती हुई पुक्का फाड़-फाड़कर रोने लगीं ॥ ४१ ॥

तस्योरसि सुदुःखार्ता मृदिताः क्लिन्नलोचनाः ।
पेतुरूर्ध्वभुजाः सर्वाश्छिन्नमूला लता इव ॥ ४२ ॥

वे सब रानियाँ अत्यन्त दुःखसे आतुर और मर्दित हो नेत्रोंसे आँसू बहाती हुई दोनों बाँहें ऊपर उठाकर जड़से कटी हुई लताओंकी भाँति राजाकी छातीपर गिर पड़ीं ॥४२॥

तासां बाष्पाम्बुपूर्णानि नेत्राणि नृपयोषिताम् ।
वारिविप्रहतानीव पङ्कजानि चकाशिरे ॥ ४३ ॥

उन राजरानियोंके आँसूभरे नेत्र जल (या ओले) से आहत हुए कमलोंके समान प्रकाशित होते थे ॥ ४३ ॥

ताः पतिं पतितं भूमौ रुदन्त्यो हृदि ताडिताः ।
लालप्यमानाः करुणं योषितः पर्यदेवयन् ॥ ४४ ॥

धरतीपर पड़े हुए पतिकी ओर देखकर रोती और छाती पीटती हुई ये राजपत्नियाँ करुण विलाप करती हुई शोकोद्गार प्रकट करने लगीं ॥ ४४ ॥

पुत्रं चास्य पुरस्कृत्य बालं प्रस्नुतलोचनम् ।
शक्रदेवं पितुः पार्श्वे द्विगुणं रुरुदुः स्त्रियः ॥ ४५ ॥

उस राजाके बालक पुत्र शक्रदेवको अपने आगे पिताके पास खड़ा करके वे रानियाँ और दूने वेगसे रोने तथा विलाप करने लगीं । उस बालकके नेत्रोंसे भी आँसू बह रहा था ॥

अयं ते वीर विक्रान्तो बालः पुत्रो न पण्डितः ।
त्वद्विहीनः कथमयं पदे स्थास्यति पैतृके ॥ ४६ ॥

वे बोलीं—'वीर महाराज ! यह आपका पराक्रमी पुत्र अभी बालक है, विद्वान् नहीं हो सका है । अब आपके बिना यह अपने पैतृक राज्यपर कैसे प्रतिष्ठित हो सकेगा ? ॥४६॥

कथमेकपदे त्यक्त्वा गतोऽस्यन्तःपुरं परम् ।
अतृप्तास्तव सौख्यानां किं कुर्मो विधवा वयम् ॥ ४७ ॥

'(प्राणनाथ !) आप अपने अन्तःपुरकी रानियोंको सहसा त्यागकर क्यों परलोकको चले गये ? हम आपके दिये हुए सुखोंसे अभी तृप्त नहीं हुई थीं । हाय ! हम विधवा हो गयीं, अब क्या करें ?' ॥ ४७ ॥

तस्य पद्मावती नाम महिषी प्रमदोत्तमा ।
रुदती पुत्रमादाय वासुदेवमुपस्थिता ॥ ४८ ॥

राजा शृगालकी पटरानीका नाम पद्मावती था । वह स्त्रियोंमें श्रेष्ठ थी । पद्मावती रोती हुई अपने पुत्रको साथ ले भगवान् वासुदेवके पास गयी ॥ ४८ ॥

यस्त्वया पातितो वीर रणप्रोक्तेन कर्मणा ।
तस्य प्रेतगतस्यायं पुत्रस्त्वां शरणं गतः ॥ ४९ ॥

और बोली—'वीर ! आपने युद्ध कर्मके द्वारा जिन्हें मार गिराया है, उन्हीं परलोकवासी नरेशका यह पुत्र आपकी शरणमें आया है ॥ ४९ ॥

यदि त्वां प्रणमेतासौ कुर्याद् वा शासनं तव ।
नायमेकप्रहारेण जनस्तप्येत दारुणम् ॥ ५० ॥

'यदि ये महाराज आपको प्रणाम करते—आपके सम्मुख विनीत भावका परिचय देते अथवा आपकी आज्ञाका पालन करते तो आपके एक ही प्रहारसे इन्हें संतापका भागी नहीं होना पड़ता ॥ ५० ॥

यदि कुर्यादयं मूढस्त्वयि बान्धवकं विधिम् ।
नैवं परीतः कृपणः सेवेत धरणीतलम् ॥ ५१ ॥

'यदि ये मूढ (विवेकशून्य) नरेश आपके प्रति बन्धु-जनोचित बर्ताव करते तो इन्हें मांसभक्षी जन्तुओंसे घिरकर पृथ्वीका सेवन नहीं करना पड़ता ॥ ५१ ॥

अयमस्य विपन्नस्य बान्धवस्य तवानघ ।
सन्तती रक्ष्यतां वीर पुत्रः पुत्र इवात्मजः ॥ ५२ ॥

'अनघ ! वीर ! यह आपके इस मरे हुए बान्धवकी ही सन्तति है; आप अपने पुत्रकी ही भाँति इसकी रक्षा करें' ॥

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा महिष्या यदुनन्दनः ।
मृदुपूर्वमिदं वाक्यमुवाच वदतां वरः ॥ ५३ ॥

रानीका यह वचन सुनकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ यदुनन्दन श्रीकृष्णने मधुर वाणीमें कहा—॥ ५३ ॥

राजपत्नि गतो रोषः सहानेन दुरात्मना ।
प्रकृतिस्था वयं जाता देवि सैषोऽस्मि बान्धवः ॥ ५४ ॥

'राजरानी ! मेरा रोष तो इस दुरात्माके मारे जानेके साथ ही दूर हो गया । देखें ! अब हम स्वाभाविक स्थितिमें हैं । मैं आपका वही भाई-बन्धु हूँ ॥ ५४ ॥

रोषो मे विगतः साध्वि तव वाक्यैरकल्मषैः ।
योऽयं पुत्रः शृगालस्य ममाप्येष न संशयः ॥ ५५ ॥

'साध्वी रानी ! तुम्हारे इन निर्दोष वचनोंसे मेरा सारा क्रोध दूर हो गया । राजा शृगालका जो यह पुत्र है, यह मेरे लिये भी पुत्रके ही समान है, इसमें संशय नहीं है ॥५५॥

अभयं चाभिषेकं च ददाम्यस्मै सुखाय वै ।
आहूयन्तां प्रकृतयः पुरोधा मन्त्रिणस्तथा ॥ ५६ ॥
पितृपैतामहे राज्ये तव पुत्रोऽभिषिच्यताम् ।

'मैं इसके सुखके लिये इसे अभय देनेके साथ ही इसका राज्याभिषेक भी कर दूँगा । आप समस्त प्रकृतियों तथा मन्त्री और पुरोहितोंको भी बुलवाइये, जिससे आपके इस पुत्र-

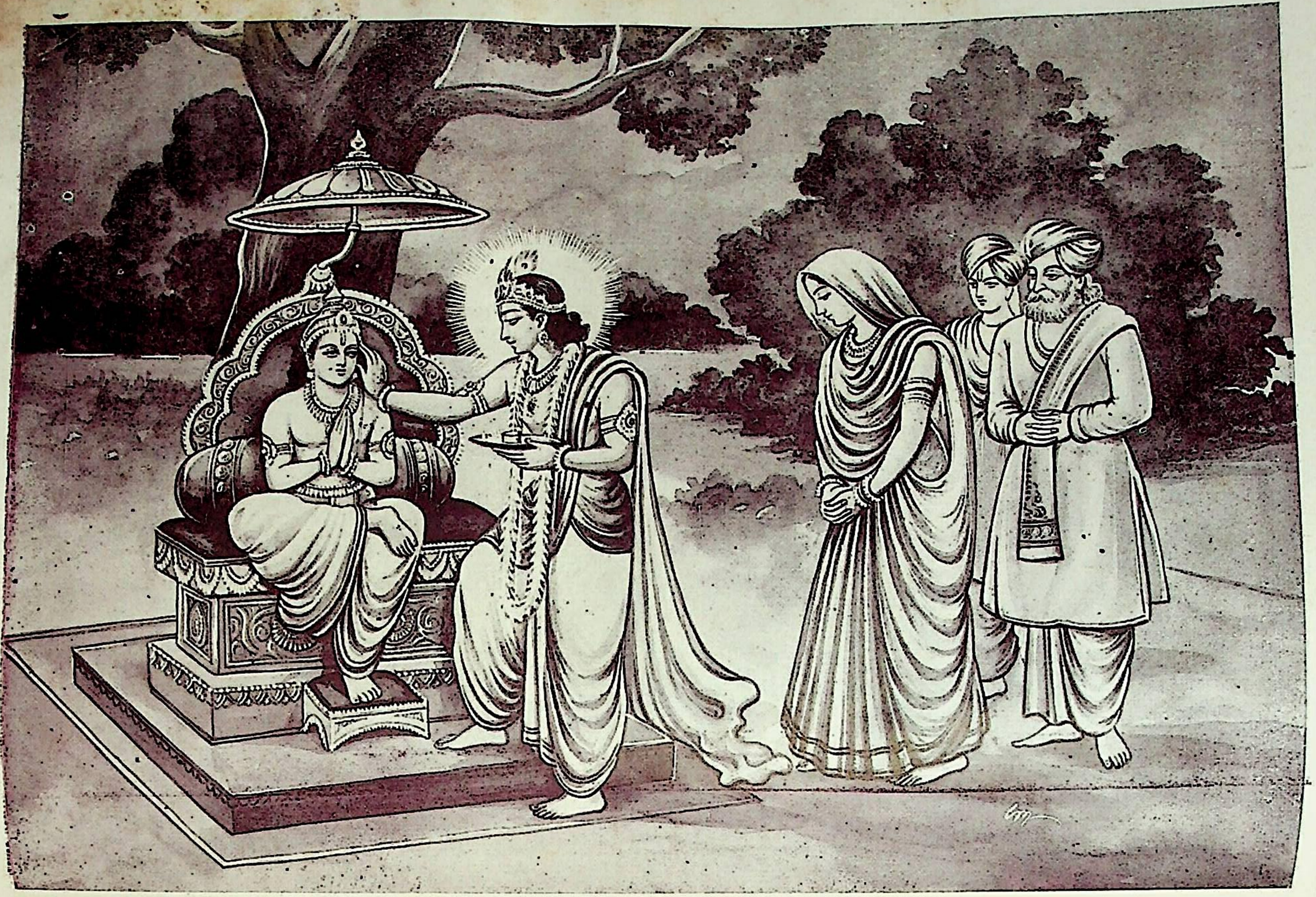

भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा शृगाल-पुत्रका राज्याभिषेक

ो, इसके बाप-दादोंके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया जाय' ॥

तः प्रकृतयः सर्वाः पुरोधा मन्त्रिणस्तथा ॥ ५७ ॥
भिषेकार्थमाजग्मुर्यतो वै रामकेशवौ ।

तदनन्तर, सारी प्रकृतियाँ (प्रजा आदि), पुरोहित और न्त्री भी राजकुमारका अभिषेक करनेके लिये उस स्थानपर ाये, जहाँ श्रीबलराम और श्रीकृष्ण विराजमान थे ॥ ५७½ ॥

तः सिंहासनस्थं तु राजपुत्रं जनार्दनः ॥ ५८ ॥
भिषेकेण दिव्येन योजयामास वीर्यवान् ।

इसके बाद पराक्रमी भगवान् जनार्दनने राजकुमारको ्य-सिंहासनपर बिठाकर दिव्य अभिषेककी विधिसे उसका ाभिषेक कर्म सम्पन्न किया ॥ ५८½ ॥

भिषिच्य शृगालस्य करवीरपुरे सुतम् ।
ृष्णस्तद्हरेवाशु प्रस्थानमभ्यरोचयत् ॥ ५९ ॥

शृगालके पुत्रको करवीरपुरके राज्यपर अभिषिक्त करके ृष्णने उसी दिन वहाँसे शीघ्रतापूर्वक प्रस्थान कर देना चित समझा ॥ ५९ ॥

थेन हरियुक्तेन तेन युद्धार्जितेन वै ।
ेशवः प्रस्थितोऽध्वानं वृत्रहा त्रिदिवं यथा ॥ ६० ॥

जैसे इन्द्र स्वर्गलोकको जाते हैं, उसी प्रकार भगवान् ीकृष्ण भी युद्धमें प्राप्त हुए उस अश्वयुक्त रथके द्वारा ुराके पथपर चल दिये ॥ ६० ॥

क्रदेवोऽपि धर्मात्मा सह मात्रा परंतपः ।
सबालवृद्धयुवतीमुख्याः प्रकृतयस्तथा ॥ ६१ ॥
शिबिकायामथारोप्य शृगालं युद्धदुर्मदम् ।
संहता दूरमार्गेण पश्चिमाभिमुखा ययुः ॥ ६२ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाला धर्मात्मा राजा शक्रदेव भी माताके साथ बालक, वृद्ध और युवती आदि सारी प्रकृतियों-को साथ ले रणदुर्मद शृगालके शवको पालकीमें सुलाकर सब लोग संगठित हो नगरसे दूरके रास्तेपर पश्चिमकी ओर चले ॥ ६१-६२ ॥

नैधनस्य विधानेन चक्रुस्ते तस्य सत्क्रियाम् ।
सत्कारं कारयामासुः पितॄणां पारलौकिकम् ॥ ६३ ॥

श्मशान-भूमिमें ले जाकर अन्त्येष्टिकी विधिसे उन सबने शक्रदेवद्वारा राजाका दाह-संस्कार करवाया और पितरोंके लिये पारलौकिक कृत्यका सम्पादन कराया ॥ ६३ ॥

उद्दिश्योद्दिश्य राजानं श्राद्धं कृत्वा सहस्रशः ।
ततस्ते सलिलं दत्त्वा नामगोत्रादिकीर्तनैः ॥ ६४ ॥
पितर्युपरते घोरे शोकसंविग्नमानसः ।
कृत्वोदकं तदा राजा प्रविवेश पुरोत्तमम् ॥ ६५ ॥

राजाके उद्देश्यसे सहस्रों प्रकारकी वस्तुएँ श्राद्धमें देकर उन सबने शृगालके लिये नाम-गोत्र आदिके उच्चारणपूर्वक जलदान किया । इस प्रकार पिताकी घोर मृत्यु हो जानेपर शोकसे व्याकुलचित्त हुए राजा शक्रदेवने उन्हें जलाञ्जलि देकर अपने उत्तम नगरमें प्रवेश किया ॥ ६४-६५ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि शृगालवधो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें शृगालका वधनामक चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४४ ॥

* * *

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

बलराम और श्रीकृष्णका मथुरामें प्रत्यागमन और स्वागत

वैशम्पायन उवाच

ौ तु स्वल्पेन कालेन दमघोषेण संगतौ ।
ाध्वविधिना तौ तु पञ्चरात्रोषितौ पथि ॥ १ ॥
मघोषेण संगम्य एकरात्रोषिताविव ।
म्मतुः सहितौ वीरौ मुदा परमया युतौ ।
गरीं मथुरां प्राप्तौ वसुदेवसुतावुभौ ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर, वे ोनों भाई चेदिराज दमघोषके साथ मिलकर यात्रा करने लगे। ार्गके नियमानुसार चलते हुए उन्होंने बीच-बीचमें पाँच ात निवास किया; किंतु दमघोषके साथ रहनेसे उन्हें ऐसा ्रतीत हुआ कि हम एक ही रात मार्गमें रहे हैं। इस प्रकार परमानन्दसे सम्पन्न हो वे दोनों वीर वसुदेवकुमार साथ-साथ थोड़े ही समयमें मथुरा नगरीमें जा पहुँचे ॥ १-२ ॥

ततः प्रत्युद्गताः सर्वे यादवा यदुनन्दनौ ।
सबला हृष्टमनस उग्रसेनपुरोगमाः ॥ ३ ॥

उस समय उग्रसेन आदि सभी यादवोंने सेनासहित आगे आकर प्रसन्नचित्तसे उन दोनों यदुनन्दन वीरोंका स्वागत किया ॥ ३ ॥

श्रेण्यः प्रकृतयश्चैव मन्त्रिणश्च यथोचिताः ।
सबालवृद्धा सा चैव पुरी समभिवर्तत ॥ ४ ॥

अनेक प्रकारके शिल्पोंद्वारा जीवन-निर्वाह करनेवाले नाना जातिके शिल्पी, प्रजावर्ग, मन्त्री तथा बालकों

वृद्धोंसहित सारी मथुरापुरी यथोचित रीतिसे उनके स्वागतमें जुटी थी ॥ ४ ॥

नन्दितूर्याण्यवाद्यन्त स्तूयेतां पुरुषर्षभौ ।
रथ्यां पताकामालिन्यो भासन्ति स्म समन्ततः ॥ ५ ॥

आनन्दवर्धक मङ्गल-वाद्य बजने लगे । उन दोनों पुरुषप्रवर वीरोंकी स्तुति होने लगी । सब ओरकी गलियाँ और सड़कें पताकाओंसे अलङ्कृत हो उत्तम शोभा पाने लगीं ॥ ५ ॥

हृष्टा प्रमुदिता सर्वा पुरी परमशोभिता ।
भ्रात्रोस्तयोरागमने यथैवेन्द्रमहे तथा ॥ ६ ॥

उन दोनों भाइयोंके आनेसे इन्द्रोत्सवके समान सारी पुरी परम शोभासे सम्पन्न हो हर्षसे खिल उठी । सर्वत्र आनन्द छा गया ॥ ६ ॥

मुदितास्तत्र गायन्ति राजमार्गेषु गायकाः ।
स्तवाशीर्बहुला गाथा यादवानां प्रियंकराः ॥ ७ ॥

सड़कोंपर आनन्दमग्न हुए गायक यादवोंको प्रिय लगनेवाली आशीर्वादयुक्त गाथाएँ गा रहे थे ॥ ७ ॥

गोविन्दरामौ सम्प्राप्तौ भ्रातरौ लोकविश्रुतौ ।
स्वे पुरे निर्भयाः सर्वे क्रीडध्वं यादवाः सुखम् ॥ ८ ॥

और सर्वत्र यह घोषणा करते थे कि 'यादवो ! विश्वविख्यात वीर दोनों भाई श्रीकृष्ण और बलराम अब अपने नगरमें आ गये हैं, अतः सबलोग निर्भय होकर सुखपूर्वक क्रीड़ा करो' ॥ ८ ॥

न तत्र कश्चिद् दीनो वा मलिनो वा विचेतनः ।
मथुरायामभूत् कश्चिद् रामकृष्णसमागमे ॥ ९ ॥

बलराम और श्रीकृष्णके आ जानेपर उस मथुरापुरीमें कोई भी दीन, मलिन अथवा उदासचित्त नहीं दिखायी देता था ॥ ९ ॥

वयांसि साधुवाक्यानि प्रहृष्टा गोहयद्विपाः ।
नरनारीगणाश्चैव भेजिरे मानसं सुखम् ॥ १० ॥

पक्षी सुमधुर बोली बोलते थे; गौ, घोड़े और हाथी भी बहुत प्रसन्न थे तथा स्त्रियों और पुरुषोंके मनको भी बड़ा ही सुख मिला ॥ १० ॥

शिवाश्च प्रववुर्वाता विरजस्का दिशो दश ।
दैवतान्यपि सर्वाणि हृष्यन्त्यायतनेष्वथ ॥ ११ ॥

शीतल एवं सुखदायिनी हवाएँ चलने लगीं, दसों दिशाओंकी धूल उड़ गयी और मन्दिरोंमें स्थित सम्पूर्ण देवता भी बड़े प्रसन्न हुए ॥ ११ ॥

यानि लिङ्गानि लोकस्य वृत्तानीह कृते युगे ।
तानि सर्वाण्यदृश्यन्त तयोरागमने तदा ॥ १२ ॥

सत्ययुग आनेपर इस जगत्में जो-जो लक्षण एवं वृत्तान्त घटित होते हैं, वे सब-के-सब श्रीकृष्ण एवं बलरामके आगमनपर प्रत्यक्ष दिखायी देने लगे ॥ १२ ॥

ततः काले शिवे पुण्ये स्यन्दनेनारिमर्दनौ ।
हरियुक्तेन तौ वीरौ प्रविष्टौ मथुरां पुरीम् ॥ १३ ॥

तदनन्तर, मङ्गलमय पुण्यमुहूर्तमें वे दोनों शत्रुमर्दन वीर उस अश्वयुक्त रथके द्वारा मथुरापुरीमें प्रविष्ट हुए ॥ १३ ॥

प्रविशन्तं पुरीं रम्यां गोविन्दं राममेव च ।
अनुजग्मुर्यदुगणाः शक्रं देवगणा इव ॥ १४ ॥

उस रमणीय पुरीमें प्रवेश करते समय श्रीकृष्ण और बलरामके पीछे समस्त यादव उसी प्रकार चले, जैसे देवता इन्द्रके पीछे चलते हैं ॥ १४ ॥

वसुदेवस्य भवनं पितुस्तौ यदुनन्दनौ ।
प्रविष्टौ हृष्टवदनौ चन्द्रादित्याविवाचलम् ॥ १५ ॥

जैसे चन्द्रमा और सूर्य सुमेरुपर्वतकी गुफामें प्रवेश करते हों, उसी प्रकार वे दोनों यदुनन्दन वीर पिता वसुदेवके घरमें प्रविष्ट हुए । उस समय उन दोनोंके मुखपर प्रसन्नता छा रही थी ॥ १५ ॥

तत्रायुधानि संन्यस्य गृहे स्वे स्वैरचारिणौ ।
मुमुदाते यदुवरौ वसुदेवसुतावुभौ ॥ १६ ॥

वहाँ अपने घरमें आयुधोंको रखकर वे दोनों यदुकुलतिलक वसुदेवपुत्र स्वेच्छानुसार विचरते हुए आनन्दमग्न रहने लगे ॥ १६ ॥

ततस्तु वसुदेवस्य पादौ समभिपीड्य च ।
तत्रोग्रसेनं राजानमन्यांश्च यदुपुङ्गवान् ॥ १७ ॥
यथान्यायं पूजयित्वा तौ सर्वैश्चाभिनन्दितौ ।
जग्मतुर्हृष्टमनसौ मातुरेव निवेशनम् ॥ १८ ॥

तदनन्तर, वसुदेवजीके दोनों चरणोंको दबाकर राजा उग्रसेन तथा अन्य प्रधान यदुवंशियोंका यथोचित सत्कार करनेके पश्चात् उन सबके द्वारा स्वयं भी अभिनन्दित हो, वे दोनों भाई प्रसन्न मनसे माताके ही महलमें चले गये १७-१८

एवं तावेकनिर्माणौ मथुरायां शुभाननौ ।
उग्रसेनानुगौ भूत्वा कंचित्कालं मुमोदतुः ॥ १९ ॥

इस प्रकार एक ही तत्त्वके बने और एक ही उद्देश्यकी सिद्धिके लिये प्रकट हुए वे दोनों श्रीकृष्ण और बलराम राजा उग्रसेनके अनुगामी होकर कुछ कालतक वहाँ सुखसे रहे ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि रामकृष्णयोर्मथुरां प्रत्यागमने पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें बलराम और श्रीकृष्णका मथुरामें प्रत्यागमनविषयक पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

बलरामजीकी व्रजयात्रा तथा उनके द्वारा यमुनाजीका आकर्षण

वैशम्पायन उवाच

कस्यचित् त्वथ कालस्य स्मृत्वा गोपेषु सौहृदम्।
जगामैको व्रजं रामः कृष्णस्यानुमते स्थितः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! कुछ कालके अनन्तर गोपोंके सौहार्दका स्मरण करके श्रीकृष्णकी अनुमति ले बलरामजी अकेले ही व्रजमें गये ॥ १ ॥

स गतस्तत्र रम्याणि ददर्श विपुलानि वै।
भुक्तपूर्वाण्यरण्यानि सरांसि सुरभीणि च ॥ २ ॥

वहाँ जाकर उन्होंने बहुत-से बड़े-बड़े सुगन्धित वन तथा सरोवर देखे, जो पहले उनके उपभोगमें आ चुके थे ॥ २ ॥

स प्रविष्टस्तु वेगेन तं व्रजं कृष्णपूर्वजः।
वन्येन रमणीयेन वेषेणालंकृतः प्रभुः ॥ ३ ॥

श्रीकृष्णके पूर्वज बलरामजी बड़े वेगसे उस व्रजमें प्रविष्ट हुए। उस समय वे प्रभावशाली संकर्षण वनवासियोंके योग्य रमणीय वेष-भूषासे अलंकृत थे ॥ ३ ॥

स तानभाषत प्रीत्या यथापूर्वमरिंदमः।
गोपांस्तेनैव विधिना यथान्यायं यथावयः ॥ ४ ॥

शत्रुदमन बलराम पहलेकी ही भाँति उसी तौर-तरीकेसे अवस्थाकी छोटाई-बड़ाईके अनुसार यथायोग्य सब गोपोंके साथ मिले और प्रेमपूर्वक उनसे बातचीत करने लगे ॥ ४ ॥

तथैव प्राह तान् सर्वांस्तथैव परिहर्षयन्।
तथैव सह गोपीभिर्योजयन् मधुराः कथाः ॥ ५ ॥

उन्होंने पूर्ववत् सबका हर्ष बढ़ाते हुए सबसे उसी तरह बातें कीं तथा गोपियोंके साथ भी पहले-जैसी ही मधुर चर्चाएँ छेड़ दीं ॥ ५ ॥

तमूचुः स्थविरा गोपाः प्रियं मधुरभाषिणः।
रामं रमयतां श्रेष्ठं प्रवासात् पुनरागतम् ॥ ६ ॥

रमानेवाले (मनको आनन्दित करनेवाले) पुरुषोंमें श्रेष्ठ बलरामजी परदेशमें रहकर फिर लौटे थे और गोपोंके बहुत ही प्रिय थे। अतः मधुरभाषी बड़े-बूढ़े गोपोंने उनसे कहा—॥ ६ ॥

स्वागतं ते महाबाहो यदूनां कुलनन्दन।
अद्य स्म निर्वृतास्तात यत् त्वां पश्यामहे वयम्॥ ७ ॥

'यदुकुलको आनन्दित करनेवाले महाबाहो ! तुम्हारा स्वागत है। तात ! आज हम बहुत खुश हैं, क्योंकि हमें दीर्घकालके बाद तुम्हें देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है ॥ ७ ॥

प्रीताश्चैव वयं वीर यत् त्वं पुनरिहागतः।
विख्यातस्त्रिषु लोकेषु रामः शत्रुभयंकरः ॥ ८ ॥

'वीर ! तुम जो पुनः लौटकर यहाँ आये हो, इससे हम बहुत संतुष्ट हैं। शत्रुओंको भय देनेवाले वीर बलरामकी तीनों लोकोंमें प्रसिद्धि है ॥ ८ ॥

वर्धनीया वयं वीर त्वया यादवनन्दन।
अथवा प्राणिनस्तात रमन्ते जन्मभूमिषु ॥ ९ ॥

'वीर ! यादवनन्दन ! यहाँ आकर तुमने हमारा गौरव बढ़ाया है, यह तुम्हारे लिये उचित ही है। अथवा तात ! अपनी जन्मभूमिमें सभी प्राणियोंको सुख मिलता है ॥ ९ ॥

त्रिदशानां वयं मान्या ध्रुवमद्यामलानन।
ये स्म दृष्टास्त्वया तात काङ्क्षमाणास्तवागमम् ॥ १० ॥

'अमलानन ! तुमने जो हम लोगोंपर कृपादृष्टि की है, इससे निश्चय ही अब हम देवताओंके लिये भी माननीय हो गये। तात ! हमलोग प्रतिदिन तुम्हारा शुभागमन चाहते थे ॥ १० ॥

दिष्ट्या ते निहता मल्लाः कंसश्च विनिपातितः।
उग्रसेनोऽभिषिक्तश्च माहात्म्येन जनेन वै ॥ ११ ॥

'बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम दोनों भाइयोंके द्वारा वे मल्ल मारे गये, कंस भी मार गिराया गया तथा उग्रसेनका राज्यपर अभिषेक हो गया। उनके महात्मापन(साधुस्वभाव) के कारण ही सब लोगोंने उनको राज्यपर अभिषिक्त किया है ॥ ११ ॥

समुद्रे च श्रुतोऽस्माभिस्तिमिना सह विग्रहः।
वधः पञ्चजनस्यैव जरासंधेन विग्रहः।
गोमन्ते च श्रुतोऽस्माभिः क्षत्रियैः सह विग्रहः ॥ १२ ॥

'हमने यह भी सुना है कि समुद्रमें तिमि (पञ्चजन नामक मगरमच्छ) के साथ तुमलोगोंका युद्ध हुआ था। उसमें पञ्चजन मारा गया। तत्पश्चात् मथुरामें जरासंधके साथ बड़ा भारी युद्ध हुआ। इतना ही नहीं, हमारे सुननेमें यह भी आया है कि गोमन्तपर्वतके निकट क्षत्रियोंके साथ तुम लोगोंका घोर युद्ध हुआ था ॥ १२ ॥

दरदस्य वधश्चैव जरासंधपराजयः।
तत्रायुधावतरणं श्रुतं नः परमाहवे ॥ १३ ॥

'उस संग्राममें राजा दरदका वध हुआ और जरासंधकी पराजय हुई। सुना था कि उस महायुद्धमें तुम लोगोंके लिये आकाशसे दिव्य आयुध उतर आये थे ॥ १३ ॥

वधश्चैव शृगालस्य करवीरपुरोत्तमे।
तत्सुतस्याभिषेकश्च नागराणां च सान्त्वनम् ॥

'इसके सिवा, उत्तम करवीरपुरमें राजा शृगालका वध करके उसके पुत्रका वहाँ अभिषेक किया गया और वहाँके नागरिकोंको तुम्हारी ओरसे सान्त्वना दी गयी ॥ १४ ॥

मथुरायां प्रवेशश्च कीर्तनीयः सुरोत्तमैः ।
प्रतिष्ठिता च वसुधा पार्थिवाश्च वशीकृताः ॥ १५ ॥

'फिर तुमलोगोंका मथुरामें प्रवेश हुआ, जो देवताओंके लिये कीर्तन करने योग्य है। पृथ्वीका भार उतारकर तुमने इसे भलीभाँति प्रतिष्ठित कर दिया और भूमण्डलके सभी नरेशोंको वशमें कर लिया ॥ १५ ॥

तव चागमनं दृष्ट्वा सभाग्याः स यथा पुरा ।
तेन स्म परितुष्टा वै हृषिताश्च सबान्धवाः ॥ १६ ॥

'तुम्हारा शुभागमन देखकर हम पूर्ववत् सौभाग्यशाली हो गये हैं। हमें सब तरहसे संतोष प्राप्त हुआ है और हम अपने बन्धु-बान्धवोंसहित हर्षसे उत्फुल्ल हो उठे हैं' ॥ १६ ॥

प्रत्युवाच ततो रामः सर्वास्तानभितः स्थितान् ।
यादवेष्वपि सर्वेषु भवन्तो मम बान्धवाः ॥ १७ ॥
इहावयोर्गतं बाल्यमिह चैवावयो रतम् ।
भवद्भिर्वर्द्धिताश्चैव यास्यामो विक्रियां कथम् ॥ १८ ॥

तब बलरामजीने अपने सब ओर खड़े हुए उन समस्त गोपोंसे कहा—'समस्त यादवोंके होते हुए भी आपलोग ही हमारे सगे बान्धव हैं। यहीं हम लोगोंका बचपन बीता, यहीं हम खेले-कूदे और आप लोगोंने ही हमें पाल-पोषकर बड़ा किया; फिर हम आप लोगोंको भुला कैसे सकते हैं ॥१७-१८॥

गृहेषु भवतां भुक्तं गावश्च परिरक्षिताः ।
अस्माकं बान्धवाः सर्वे भवन्तो बद्धसौहृदाः ॥ १९ ॥

'हमने आपके घरोंमें खाया-पीया और गौएँ चरायीं। आप सब लोग हममें अनुराग रखनेवाले हमारे बन्धु-बान्धव हैं' ॥ १९ ॥

ब्रुवत्येवं यथातत्त्वं गोपमध्ये हलायुधे ।
संहृष्टवदना भूयो बभूवुर्व्रजयोषितः ॥ २० ॥

हल धारण करनेवाले बलरामजी जब इस प्रकार यथार्थ बात कह रहे थे, उस समय उनकी बातें सुनकर व्रजसुन्दरियोंके मुखपर पुनः प्रसन्नता छा गयी ॥ २० ॥

ततो वनान्तरगतो रेमे रामो महाबलः ।
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ते रामाय विदितात्मने ॥ २१ ॥
गोपालैर्देशकालज्ञैरुपानीयत वारुणी ।
सोऽपिबत् पाण्डुराभ्राभस्तत्कालं ज्ञातिभिर्वृतः॥ २२॥

तदनन्तर, महाबली बलराम वनके भीतर जाकर सुखपूर्वक विचरने लगे। इसी समय उनके मनोभावको जानकर [illegible]लके ज्ञाता गोपालगण उनके लिये वारुणी (सुधा या शहद) ले आये। फिर उन बन्धुजनोंसे घिरे हुए गौर-कान्ति बलरामने उस समय उसका पान किया ॥ २१-२२ ॥

वनान्तरगतो रामः पानं मदसमीरणम् ।
उपनिन्युस्ततस्तस्मै वन्यानि विविधानि च ॥ २३ ॥
प्रत्यग्ररमणीयानि पुष्पाणि च फलानि च ।
मेध्यांश्च विविधान् गन्धान् भक्ष्यांश्च हृदयंगमान् ।
सद्यो हृतानि पद्मानि विकचान्युत्पलानि च ॥ २४ ॥

वनमें गये हुए बलरामजीने जो मधु पीया था, वह कुछ नशा लानेवाला था; उसके पीनेके बाद ग्वाल-बाल उनके लिये वनके नाना प्रकारके पुष्प और फल ले आये, जो अभी नये (ताजे) होनेके कारण बड़े रमणीय लगते थे। इसके सिवा गोपोंने उनके लिये भाँति-भाँतिकी पवित्र गन्ध तथा मनोरम भक्ष्य पदार्थ प्रस्तुत किये। तुरंतके लाये हुए विकसित कमल और उत्पल भी भेंट किये ॥२३-२४॥

शिरसा चारुकेशेन किंचिदावृतमौलिना ।
श्रवणैकावलम्बेन कुण्डलेन विराजता ॥ २५ ॥
चन्दनार्द्रेण पीतेन वनमालावलम्बिना ।
विबभावुरसा रामः कैलासेनेव मन्दरः ॥ २६ ॥

बलरामजीके सिरके बाल बड़े मनोहर थे। उसपर रखा हुआ मुकुट कुछ टेढ़ा था। उनके एक कानमें सुन्दर कुण्डल लटक रहा था। वक्षःस्थल चन्दनके अनुलेपसे आर्द्र एवं पीत था, उसपर वनमाला लटक रही थी। ऐसे वक्षसे बलरामजीकी वैसी ही शोभा होती थी, जैसे कैलास पर्वतसे मन्दराचल सुशोभित होता है ॥ २५-२६ ॥

नीले वसानो वसने प्रत्यग्रजलदप्रभे ।
रराज वपुषा शुभ्रस्तिमिरौघे यथा शशी ॥ २७ ॥

उन्होंने नूतन जलधरके समान कान्तिवाले दो नीले वस्त्र धारण कर रखे थे और शरीरसे वे गोरे थे; अतः अन्धकारराशिमें चन्द्रमाके समान सुशोभित होते थे ॥ २७ ॥

लाङ्गलेनावसिक्तेन भुजगाभोगवर्तिना ।
तथा भुजाग्रश्लिष्टेन मुसलेन च भास्वता ॥ २८ ॥

उनके एक हाथमें सर्प-शरीरके समान हल शोभा पाता था और दूसरेमें प्रकाशमान मुसल ॥ २८ ॥

स मत्तो बलिनां श्रेष्ठो रराजाघूर्णिताननः ।
शैशिरीषु त्रियामासु यथा स्वेदालसः शशी ॥ २९ ॥

बलवानोंमें श्रेष्ठ बलरामजी मधुसे मत्त-से हो रहे थे। उनका मुख झूम रहा था। वे ऐसे लगते थे, मानो शरद्की रातोंमें स्वेद-विन्दुओंसे युक्त अलसाये हुए चन्द्रमा शोभा पाते हों ॥ २९ ॥

रामस्तु यमुनामाह स्नातुमिच्छे महानदि ।
एहि मामभिगच्छ त्वं रूपिणी सागरंगमे ॥ ३० ॥

उस समय बलरामजीने यमुनासे कहा—'महानदि ! मैं स्नान करना चाहता हूँ । सागरगामिनि ! मूर्तिमती होकर आओ, चलो मेरे साथ' ॥ ३० ॥

संकर्षणस्य मत्तोक्तां भारतीं परिभूय सा ।
नाभ्यवर्तत तं देशं स्त्रीस्वभावेन मोहिता ॥ ३१ ॥

संकर्षणकी बातको मतवालेकी बहक समझकर नारी-स्वभावसे मोहित हुई उस नदीने उसकी अवहेलना कर दी । वह उनके अभीष्ट स्थानको नहीं गयी ॥ ३१ ॥

ततश्चुक्रोध बलवान् रामो मदसमीरितः ।
चकार स हलं हस्ते कर्षणाधोमुखं बली ॥ ३२ ॥

तब बलवान् बलराम मदसे प्रेरित हो कुपित हो उठे । उन्होंने यमुनाका कर्षण करनेके लिये हलका मुख नीचेको कर लिया ॥ ३२ ॥

तस्यामुपरि मेदिन्यां पेतुस्तामरसस्रजः ।
मुमुचुः पुष्पकोशैश्च वासरेण्वरुणं जलम् ॥ ३३ ॥

यमुनाको खींचते समय उनके गलेसे जो कमल-पुष्पकी मालाएँ टूटकर पृथ्वीपर गिरीं, वे पुष्प-कोशोंद्वारा सुगन्धित परागसे अरुण रंगका जल छोड़ने लगीं ॥ ३३ ॥

स हलेनानताग्रेण कूले गृह्य महानदीम् ।
चकर्ष यमुनां रामो व्युत्थितां वनितामिव ॥ ३४ ॥

जिसका अग्रभाग कुछ झुका हुआ था, उस हलको यमुनाके तटसे लगाकर स्वेच्छाचारिणी वनिताके समान उस महानदीको अभीष्ट दिशाकी ओर खींचा ॥ ३४ ॥

सा विह्वलजलस्रोता ह्रदप्रस्थितसंचया ।
व्यावर्तत नदी भीता हलमार्गानुसारिणी ॥ ३५ ॥

उसका जल-स्रोत क्षुब्ध हो उठा । कुण्डोंमें जो अगाध जलराशिका संचय था, वह वहाँसे निकलने लगा और वह नदी भयभीत-सी होकर हलके बनाये हुए मार्गसे चलने लगी॥

लाङ्गलादिष्टवर्त्मा सा वेगगा वक्रगामिनी ।
संकर्षणभयत्रस्ता योषेवाकुलतां गता ॥ ३६ ॥

हलकी रेखा ही उसे गन्तव्य मार्गका आदेश दे रही थी । सीधे मार्गपर वेगसे बहनेवाली वह नदी टेढ़े रास्तेपर मन्थर गतिसे चलने लगी । वह संकर्षणके भयसे त्रस्त हुई किसी युवतीकी भाँति व्याकुल हो उठी थी ॥ ३६ ॥

पुलिनश्रोणिबिम्बौष्ठी मृदितैस्तोयताडितैः ।
फेनमेखलसूत्रैश्च च्छिन्नैरम्बुदगामिनी ॥ ३७ ॥

दोनों किनारे ही उसके नितम्ब थे, रक्तकमलोंका समूह ही उसके अरुण अधरोंका प्रतीक था । फेन ही उसके मेखला-सूत्र थे, जो जलसे ताडित और मर्दित होकर छिन्न-भिन्न हो गये थे; वह नदीरूपिणी युवती समुद्ररूपी प्रियतमके साथ समागम करनेवाली थी ॥ ३७ ॥

तरङ्गविषमापीडा चक्रवाकोन्मुखस्तनी ।
वेगगम्भीरवक्राङ्गी त्रस्तमीनविभूषणा ॥ ३८ ॥

उसके तरङ्गरूपी शिरोभूषण ऊँचे-नीचे हो रहे थे, चक्रवाकरूपी स्तन ऊँचे उठे हुए थे, उसके गम्भीर अंग वेगके कारण वक्र हो रहे थे, वह त्रस्त मीनरूपी आभूषणोंसे विभूषित थी ॥ ३८ ॥

सितहंसेक्षणापाङ्गी काशक्षौमोच्छ्रिताम्बरा ।
तीरजोद्धूतकेशान्ता जलस्खलितगामिनी ॥ ३९ ॥

श्वेत हंस उसके नेत्र और अपाङ्ग[1] थे, काश-पुष्प उसके फहराते हुए रेशमी वस्त्र थे, तटवर्ती पौदे या वृक्ष उसके केश थे तथा जलका प्रवाह ही उसकी स्खलित गतिका प्रतीक था॥

लाङ्गलोल्लिखितापाङ्गी क्षुभिता सागरंगमा ।
मत्तेव कुटिला नारी राजमार्गेण गच्छती ॥ ४० ॥

उसके नेत्र-प्रान्त मानो हलकी नोकसे छिल गये थे, वह सागरगामिनी क्षुब्ध हो उठी थी, वह कुटिला एवं मतवाली स्त्रीके समान खुली सड़कपर चल रही थी ॥ ४० ॥

कृष्यते सातिवेगेन स्रोतःस्खलितगामिनी ।
उन्मार्गानीतमार्गा सा येन वृन्दावनं वनम् ॥ ४१ ॥

ऊँचे-नीचे प्रवाह ही उसकी स्खलित गतिके सूचक थे । वह उस विपरीत मार्गपर लायी गयी थी, जिस ओर वृन्दावन सुशोभित होता था ॥ ४१ ॥

वृन्दावनस्य मध्येन सा नीता यमुना नदी ।
रोरूयमाणेव खगैरन्विता तोयवासिभिः ॥ ४२ ॥

यमुना नदी वृन्दावनके बीचसे लायी गयी थी । जलमें निवास करनेवाले पक्षी उसके साथ-साथ बोलते हुए आ रहे थे । उन पक्षियोंके शब्दोंमें मानो वह नदी ही जोर-जोरसे रो रही थी ॥ ४२ ॥

सा यदा समतिक्रान्ता नदी वृन्दावनं वनम् ।
तदा स्त्रीरूपिणी भूत्वा यमुना राममब्रवीत् ॥ ४३ ॥

वह नदी जब वृन्दावनको लाँघ गयी, तब स्त्रीरूपमें प्रकट हो बलरामजीसे बोली—॥ ४३ ॥

प्रसीद नाथ भीतास्मि प्रतिलोमेन कर्मणा ।
विपरीतमिदं रूपं तोयं च मम जायते ॥ ४४ ॥

'नाथ ! प्रसन्न होइये । मैं आपके इस विपरीत कर्मसे बहुत डर गयी हूँ । मेरा यह रूप और जल विपरीत हो गया है ॥ ४४ ॥

असत्यहं नदीमध्ये रौहिणेय त्वया कृता ।
कर्षणेन महाबाहो स्वमार्गव्यभिचारिणी ॥ ४५ ॥

---

[1] नेत्रके अन्तभाग ।

'रोहिणीनन्दन ! महाबाहो ! आपने इस तरह मुझे खींचकर नदियोंके बीचमें 'असती' बना दिया। मुझे मेरे मार्गसे भ्रष्ट कर दिया ॥ ४५ ॥

प्राप्तां मां सागरे पूर्वं सपत्न्यो वेगगर्विताः ।
फेनहासैर्हसिष्यन्ति तोयव्यावृत्तगामिनीम् ॥ ४६ ॥

'जब मैं समुद्रके निकट जाऊँगी, उस समय मेरी सौतें वेगसे गर्वित होकर अपने फेनरूपी हासोंद्वारा मेरी हँसी उड़ायेंगी, मुझे जलके द्वारा विपरीतगामिनी बतायेंगी ॥४६॥

प्रसादं कुरु मे वीर याचे त्वां कृष्णपूर्वज ।
सुप्रसन्नमना नित्यं भव त्वं सुरसत्तम ॥ ४७ ॥

'श्रीकृष्णके बड़े भैया वीर सुरश्रेष्ठ ! आप मुझपर कृपा करें। मैं आपसे याचना करती हूँ, आप मुझपर सदा प्रसन्नचित्त रहें ॥ ४७ ॥

कर्षणायुधकृष्टास्मि रोषोऽयं विनिवर्त्यताम् ।
मूर्ध्ना गच्छामि चरणौ तवैषा लाङ्गलायुध ।
मार्गमादिष्टमिच्छामि क्व गच्छामि महाभुज ॥ ४८ ॥

'हलायुध ! मैं आपके कर्षणायुध (हल) से यहाँतक खींच लायी गयी हूँ। आप अपने इस रोषको लौटा लें। मैं आपके चरणोंमें मस्तक रखती हूँ। महाबाहो ! मुझे राह बताइये, मैं कहाँ जाऊँ ?' ॥ ४८ ॥

वैशम्पायन उवाच

प्रणयावनतां दृष्ट्वा यमुनां लाङ्गलायुधः ।
प्रत्युवाचार्णववधूं मदक्लान्त इदं वचः ॥ ४९ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! समुद्र-पत्नी यमुनाको प्रेमसे नतमस्तक हुई देख मधुके मदसे क्लान्त हुए बलरामजीने यह बात कही ॥ ४९ ॥

लाङ्गलादिष्टमार्गा त्वमिमं मे प्रियदर्शने ।
देशमम्बुप्रदानेन प्लावयस्वाखिलं शुभे ॥ ५० ॥

'शुभे ! प्रियदर्शने ! मैंने हलके द्वारा तुम्हारे जानेके लिये मार्ग बना दिया है, तुम इस सारे प्रदेशको अपना जल देकर आप्लावित कर दो ॥ ५० ॥

एष ते सुभ्रु संदेशः कथितः सागरंगमे ।
शान्तिं व्रज महाभागे गम्यतां च यथासुखम् ॥ ५१ ॥
यावत् स्थास्यति लोकोऽयं तावत् तिष्ठतु मे यशः।

'सुभ्रु ! सागरगामिनी महाभागे ! यह तुम्हारे लिये सन्देश कहा गया है। शान्ति धारण करो और जहाँ तुम्हारी मौज हो चला जाओ। जबतक यह संसार रहेगा, तबतक मेरा यह सुयश भी बना रहेगा' ॥ ५१½ ॥

यमुनाकर्षणं दृष्ट्वा सर्वे ते व्रजवासिनः ॥ ५२ ॥
साधु साध्विति रामाय प्रणामं चक्रिरे तदा ।

यमुनाजीका आकर्षण हुआ देख समस्त व्रजवासियोंने उस समय साधु ! साधु !! (वाह-वाह) कहकर बलरामजीको प्रणाम किया ॥ ५२½ ॥

तां विसृज्य महाभागां तांश्च सर्वान् व्रजौकसः॥ ५३ ॥
ततः संचिन्त्य मनसा रामः प्रहरतां वरः ।
पुनः प्रतिजगामाशु मथुरां रोहिणीसुतः ॥ ५४ ॥

महाभागा यमुना तथा उन समस्त व्रजवासियोंको विदा करके प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ रोहिणीपुत्र बलरामजीने मन-ही-मन कुछ सोचकर पुनः शीघ्र ही मथुराको प्रस्थान किया॥

स गत्वा मथुरां रामो भवने मधुसूदनम् ।
परिवर्तमानं ददृशे पृथिव्याः सारमव्ययम् ॥ ५५ ॥

मथुरा पहुँचकर बलरामने पृथ्वीके सारभूत अविनाशी मधुसूदनको भवनके भीतर शय्यापर करवट बदलते देखा ॥

तथैवाध्वन्यवेषेण सोपश्लिष्टो जनार्दनम् ।
प्रत्यग्रवनमालेन वक्षसाभिविराजता ॥ ५६ ॥

तब उसी राहगीरके वेषमें बलरामने नूतन वनमालासे विभूषित सुन्दर वक्षःस्थलद्वारा भगवान् जनार्दनका आलिङ्गन किया ॥ ५६ ॥

स दृष्ट्वा तूर्णमायान्तं रामं लाङ्गलधारिणम् ।
सहसोत्थाय गोविन्दो ददावासनमुत्तमम् ॥ ५७ ॥

लाङ्गलधारी बलरामको शीघ्रतापूर्वक आते देख गोविन्दने सहसा उठकर उनके लिये उत्तम आसन दिया ॥ ५७ ॥

उपविष्टं तदा रामं पप्रच्छ कुशलं व्रजे ।
बान्धवेषु च सर्वेषु गोषु चैव जनार्दनः ॥ ५८ ॥

जब बलरामजी बैठ गये, तब श्रीकृष्णने उनसे व्रजकी कुशल पूछी। समस्त बान्धवों तथा गौओंके विषयमें भी जिज्ञासा की ॥ ५८ ॥

प्रत्युवाच ततो रामो भ्रातरं साधुभाषिणम् ।
सर्वत्र कुशलं कृष्ण येषां कुशलमिच्छसि ॥ ५९ ॥

तब बलरामने उत्तम भाषण करनेवाले भाई श्रीकृष्णको इस प्रकार उत्तर दिया, 'श्रीकृष्ण ! तुम जिनकी कुशल चाहते हो, उनकी सर्वत्र कुशल है' ॥ ५९ ॥

ततस्तयोर्विचित्रार्थाः पौराण्यश्चाभवन् कथाः ।
वसुदेवाग्रतः पुण्या रामकेशवयोस्तदा ॥ ६० ॥

तदनन्तर वसुदेवजीके आगे बलराम और श्रीकृष्णकी विचित्र अर्थसे युक्त पवित्र एवं पुरातन कथाएँ होने लगीं ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि यमुनाकर्षणे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें बलरामजीके द्वारा यमुनाजीका आकर्षणविषयक छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णका यादवोंके साथ रुक्मिणी-स्वयंवरके अवसरपर कुण्डिनपुरमें जाना तथा राजा कैशिकद्वारा उनका सत्कार

वैशम्पायन उवाच

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता लोकप्रावृत्तिका नराः ।
चक्रायुधगृहं सर्वे लोकपालगृहोपमम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! इसी बीचमें जगत्‌में होनेवाली प्रवृत्तियों अथवा घटनाओंकी सूचना देनेवाले सब लोग मथुरामें आये और लोकपालोंके भवनकी भाँति शोभा पानेवाले चक्रधारी श्रीकृष्णके गृहमें एकत्र हुए ॥ १ ॥

तेष्वात्ययिकशंसीषु लोकप्रावृत्तिकेष्विह ।
कृतसंज्ञा यदुश्रेष्ठाः समेताः कृष्णसंसदि ॥ २ ॥

वे लोग विनाशकारी युद्धका समाचार बताना चाहते थे। उनके आ जानेपर आपसका संकेत पाकर समस्त श्रेष्ठ यादव श्रीकृष्णकी सभामें जुट गये ॥ २ ॥

समागतेषु सर्वेषु यदुमुख्येषु संसदि ।
प्रावृत्तिका नराः प्राहुः पार्थिवात्ययिकं वचः ॥ ३ ॥

समस्त प्रधान यादवोंके उस सभामें आ जानेपर वे समाचार या सन्देश लानेवाले मनुष्य राजाओंके विनाशका कारणभूत वचन इस प्रकार बोले—॥ ३ ॥

जनार्दन नरेन्द्राणां पार्थिवानां समागमः ।
भविष्यति क्षितीशानां समूढानामनेकशः ॥ ४ ॥

'जनार्दन ! अनेक देशोंके विवाहार्थी पृथ्वीपतियों, शासकों एवं नरेशोंका समागम होनेवाला है ॥ ४ ॥

त्वरितास्तत्र गच्छन्ति नानाजनपदेश्वराः ।
कुण्डिने पुण्डरीकाक्ष भोजपुत्रस्य शासनात्॥ ५ ॥

'कमलनयन ! भोजपुत्र रुक्मीका निमन्त्रण पाकर अनेक जनपदोंके राजा बड़ी उतावलीके साथ वहाँ कुण्डिनपुरमें जा रहे हैं ॥ ५ ॥

प्रकाशं स कथास्तत्र श्रूयन्ते मनुजेरिताः ।
रुक्मिणी किल नामास्ति रुक्मिणः प्रथमा स्वसा॥ ६ ॥
भावी स्वयंवरस्तत्र तस्याः किल जनार्दन ।
तदर्थमेते सबला गच्छन्ति मनुजाधिपाः ॥ ७ ॥

'जनार्दन ! वहाँ लोगोंके मुँहसे यह बात स्पष्टरूपसे सुनी जाती है कि रुक्मीकी जो पहली बहन है, जिसका नाम रुक्मिणी है, उसका वहाँ स्वयंवर होनेवाला है। इसीलिये ये नरेशगण सेनाओंसहित वहाँ पधार रहे हैं ॥ ६-७ ॥

तस्यास्त्रैलोक्यसुन्दर्यास्तृतीयेऽहनि यादव ।
रुक्मभूषणभूषिण्या भविष्यति स्वयंवरः ॥ ८ ॥

'यदुनन्दन ! आजसे तीसरे दिन सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित रहनेवाली उस त्रिलोकसुन्दरी रुक्मिणीका स्वयंवर होगा ॥ ८ ॥

राज्ञां तत्र समेतानां हस्त्यश्वरथगामिनाम् ।
द्रक्ष्यामः शतशस्तत्र शिबिराणि महात्मनाम् ॥ ९ ॥

'हाथी, घोड़े और रथसे यात्रा करके वहाँ एकत्र हुए महामनस्वी नरेशोंके सैकड़ों शिविर हमें वहाँ देखनेको मिलेंगे॥

सिंहशार्दूलदृप्तानां मत्तद्विरदगामिनाम् ।
सदा युद्धप्रियाणां हि परस्परममर्षिणाम् ॥ १० ॥
जयाय शीघ्रं संहता बलौघेन समन्विताः ।
निरुद्धाः पृथिवीपालाः किमेकान्तचरा वयम् ।
निरुत्साहा भविष्यामो गच्छामो यदुनन्दन ॥ ११ ॥

'जो सिंह और बाघके समान अपने बलके घमण्डमें भरे रहते हैं, मतवाले हाथियोंके समान चलते हैं, सदा युद्धसे ही प्रेम रखते हैं और आपसमें एक दूसरेके प्रति अमर्षसे भरे रहते हैं, ऐसे नरेशोंपर शीघ्र विजय पानेके लिये बहुत-से भूपाल अपने सैन्यसमूहके साथ संगठित होकर वहाँ रुक्मिणीको पानेकी इच्छासे रुके हुए हैं। यदुनन्दन ! क्या हमलोग एकान्तमें रहनेवाले कोल-भील हैं, जो ऐसे अवसरपर उत्साहहीन हो बैठे रहेंगे, हम भी अवश्य उत्साहपूर्वक वहाँ चलेंगे' ॥

श्रुत्वैतत् केशवो वाक्यं हृदि शल्यमिवार्पितम् ।
निर्जगाम यदुश्रेष्ठो यदूनां सहितो बलैः ॥ १२ ॥

यह समाचार सुनकर श्रीकृष्णको ऐसा लगा, जैसे उनके हृदयमें किसीने काँटा-सा चुभो दिया हो। वे यदुश्रेष्ठ गोविन्द यदुवंशियोंकी सेनाके साथ नगरसे बाहर निकले ॥ १२ ॥

यादवास्ते बलोदग्राः सर्वे संग्रामलालसाः ।
निर्ययुः स्यन्दनवरैर्गर्वितास्त्रिदशा इव ॥ १३ ॥

वे समस्त यादव, जो बलमें बढ़े-चढ़े थे और संग्रामकी लालसा रखते थे, श्रेष्ठ रथोंद्वारा यात्राके लिये निकले। उस समय वे गर्वीले देवताओंके समान जान पड़ते थे ॥ १३ ॥

बलाग्रेण नियुक्तेन हरिरीशानसम्मतः ।
चक्रोद्यतकरः कृष्णो गदापाणिर्व्यरोचत ॥ १४ ॥

अपनी आज्ञाके अनुसार चलनेवाली श्रेष्ठ सेनाके साथ यात्राके लिये उद्यत हुए भगवान् श्रीकृष्ण, जो शिवजीके परम प्रिय हैं, एक हाथमें चक्र और दूसरेमें गदा लिये बड़ी शोभा पा रहे थे ॥ १४ ॥

यादवाश्चापरे तत्र वासुदेवानुयायिनः ।
रथैरादित्यसंकाशैः किङ्किणीप्रतिनादितैः ॥ १५ ॥

दूसरे यादव भी सूर्यके समान तेजस्वी तथा छोटी-छोटी घण्टियोंके नादसे निनादित रथोंद्वारा भगवान् वासुदेवके पीछे-पीछे वहाँ जानेको उद्यत हुए ॥ १५ ॥

उग्रसेनं तु गोविन्दः प्राह निश्चितदर्शनः ।
तिष्ठ त्वं नृपशार्दूल भ्रात्रा मे सहितोऽनघ ॥ १६ ॥

उस समय निश्चित दृष्टि रखनेवाले भगवान् गोविन्दने राजा उग्रसेनसे कहा— 'अनघ ! नृपश्रेष्ठ ! आप मेरे बड़े भाई बलरामजीके साथ यहीं रहिये ॥ १६ ॥

क्षत्रिया विकृतिप्रज्ञाः शास्त्रनिश्चितदर्शनाः ।
पुरीं शून्यामिमां वीर जघन्येऽभिपतन्ति ह ॥ १७ ॥

'वीर ! प्रायः क्षत्रिय छल-कपटमें चतुर होते हैं, उनकी दृष्टि राजनीतितक ही सीमित रहती है। कहीं ऐसा न हो कि वे मेरे जानेके पश्चात् इस पुरीको सूनी समझकर इसपर आक्रमण कर दें ॥ १७ ॥

अस्माकं शङ्किताः सर्वे जरासंधवशानुगाः ।
मोदन्ते सुखिनस्तत्र देवलोके यथामराः ॥ १८ ॥

'हमसे शङ्कित हो वे सब-के-सब जरासंधके वशवर्ती हो गये हैं और देवलोकमें निवास करनेवाले देवताओंकी भाँति वे जरासंधके यहाँ बड़े सुख और आनन्दसे रहते हैं' ॥ १८ ॥

वैशम्पायन उवाच

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा भोजराजो महायशाः ।
कृष्णस्नेहेन विकृतं बभाषे वचनामृतम् ॥ १९ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! श्रीकृष्णकी वह बात सुनकर महायशस्वी भोजराज उग्रसेन उनके स्नेहसे गद्गद हुई अमृतमयी वाणीमें बोले ॥ १९ ॥

कृष्ण कृष्ण महाबाहो यदूनां नन्दिवर्द्धन ।
श्रूयतां यदहं त्वद्य वक्ष्यामि रिपुसूदन ॥ २० ॥

'कृष्ण ! कृष्ण !! महाबाहो !!! तुम यादवोंका आनन्द बढ़ानेवाले हो। शत्रुसूदन ! इस समय मैं तुमसे जो कुछ कहता हूँ, उसको सुनो ॥ २० ॥

त्वया विहीनाः सर्वे स्म न शक्ताः सुखमासितुम् ।
पुरेऽस्मिन् विषयान्ते वा पतिहीना इव स्त्रियः ॥ २१ ॥

'तुम्हारे बिना हम सब लोग इस नगर या राज्यमें सुखसे नहीं रह सकते, ठीक उसी तरह जैसे पतिहीन स्त्रियाँ कहीं भी सुखसे नहीं रह पाती हैं ॥ २१ ॥

त्वत्सनाथा वयं तात त्वद्बाहुबलमाश्रिताः ।
बिभीमो न नरेन्द्राणां सेन्द्राणामपि मानद ॥ २२ ॥

'दूसरोंको मान देनेवाले तात ! तुमसे ही हमलोग सनाथ हैं। तुम्हारे बाहुबलका आश्रय लेकर हम नरेन्द्रोंकी तो बात ही क्या है ? देवेन्द्रसहित देवताओंसे भी नहीं डरते हैं ॥२२॥

विजयाय यदुश्रेष्ठ यत्र यत्र गमिष्यसि ।
तत्र त्वं सहितोऽस्माभिर्गच्छेथा यादवर्षभ ॥ २३ ॥

'यदुश्रेष्ठ ! यादवप्रवर ! तुम विजयके लिये जहाँ-जहाँ भी जाओ, वहाँ हम लोगोंके साथ ही चलो' ॥ २३ ॥

तस्य राज्ञो वचः श्रुत्वा सस्मितं देवकीसुतः ।
यथेष्टं भवतामद्य तथा कर्तास्म्यसंशयम् ॥ २४ ॥

राजा उग्रसेनका यह वचन सुनकर देवकीनन्दन श्रीकृष्ण मुस्कराते हुए बोले, 'महाराज ! आप लोगोंकी जैसी इच्छा होगी, वैसा ही मैं करूँगा, इसमें संशय नहीं है' ॥ २४ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा तु वै कृष्णो जगामाशु रथेन वै ।
भीष्मकस्य गृहं प्राप्तो लोहितायति भास्करे ॥ २५ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! ऐसा कहकर श्रीकृष्ण शीघ्र ही रथसे चल दिये और सूर्यका रंग लाल होते राजा भीष्मकके घरपर जा पहुँचे ॥ २५ ॥

प्राप्ते राजसमाजे तु शिबिराकीर्णभूतले ।
रङ्गं सुविपुलं दृष्ट्वा राजसीं तनुमाविशत् ॥ २६ ॥

राजाओंका समाज आ चुका था। उनके शिबिरोंसे कुण्डिनपुरके आस-पासका भूभाग आच्छादित हो गया था। स्वयंवरका रङ्गस्थल भी बहुत विस्तृत था। उसे देखकर भगवान् श्रीकृष्णने राजस प्रकृतिका आश्रय लिया ॥ २६ ॥

वित्रासनार्थं भूपानां प्रकाशार्थं पुरातनम् ।
मनसा चिन्तयामास वैनतेयं महाबलम् ॥ २७ ॥

उन्होंने राजाओंको डराने और अपने प्रभावको प्रकाशित करनेके लिये पुरातन वाहन महाबली विनतानन्दन गरुड़का मन-ही-मन चिन्तन किया ॥ २७ ॥

ततश्चिन्तितमात्रस्तु विदित्वा विनतात्मजः ।
सुखलक्ष्यं वपुः कृत्वा निलिल्ये केशवान्तिके ॥ २८ ॥

उनके चिन्तन करनेमात्रसे ही उनके मनोभावको जानकर विनताकुमार गरुड़ सुखपूर्वक देखने योग्य सौम्य शरीर धारण करके श्रीकृष्णके पास छिपे हुए आये ॥ २८ ॥

तस्य पक्षनिपातेन पवनोद्भ्रान्तकारिणा ।
कम्पिता मनुजाः सर्वे न्युब्जाश्च पतिता भुवि ॥ २९ ॥

उनका पंखसंचालन वायुको भी उद्भ्रान्त कर देनेवाला था। इसकी हवा लगनेसे वहाँके सारे मनुष्य काँप उठे और औंधे होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २९ ॥

गरुडाभिहताः सर्वे प्रचेष्टन्तो यथोरगाः ।
तान् संनिपतितान् दृष्ट्वा कृष्णो गिरिरिवाचलः॥ ३० ॥

स तदा पक्षवातेन मेने पतगसत्तमम् ।

गरुडके वेगसे आहत होकर पृथ्वीपर गिरे हुए वे सारे मनुष्य सर्पोंके समान छटपटाने लगे । उन सबको गिरा हुआ देख पर्वतके समान अविचल भावसे खड़े हुए श्रीकृष्णने उस समय पङ्खकी हवासे ही यह अनुमान कर लिया कि पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड़ आ गये ।(फिर उन्होंने मन-ही-मन उनका आदर किया) ॥ ३०½ ॥

ददर्श गरुडं प्राप्तं दिव्यस्रगनुलेपनम् ॥ ३१ ॥
पक्षवातेन पृथिवीं चालयन्तं मुहुर्मुहुः ।

थोड़ी देरमें ही उन्होंने देखा, गरुड़ आ पहुँचे । वे दिव्य पुष्पोंके हार और दिव्य चन्दनसे अलंकृत थे । वे अपने पंखोंके संचालनसे उठी हुई वायुके द्वारा पृथ्वीको भी बारंबार हिला देते थे ॥ ३१½ ॥

पृष्ठासक्तैः प्रहरणैर्लेलिह्यन्तमिवोरगैः ॥ ३२ ॥
वैष्णवं हस्तसंश्लेषं मन्यमानमवाङ्मुखम् ।

उनके पृष्ठभागमें कुछ दिव्य आयुध सटे हुए थे, जिनसे ऐसा जान पड़ता था कि कुछ सर्प उन्हें चाट रहे हैं। वे मुँह नीचे किये मन-ही-मन अनुभव कर रहे थे कि मुझे भगवान् विष्णुके वरद हस्तका स्पर्श प्राप्त हो रहा है॥३२½॥

चरणाभ्यां प्रकर्षन्तं पाण्डुरं भोगिनां वरम् ॥ ३३ ॥
हेमपत्रैरुपचितं धातुमन्तमिवाचलम् ।

गरुड़ अपने दोनों पंजोंसे एक विशाल सर्पको खींचे चले आ रहे थे, जिसका रंग श्वेत था । वे सुवर्णमय पंखोंसे सम्पन्न होनेके कारण विविध धातुओंसे युक्त पर्वतके समान प्रतीत होते थे ॥ ३३½ ॥

अमृतारम्भहर्तारं द्विजिह्वेन्द्रविनाशनम् ॥ ३४ ॥
शासनं दैत्यसंघानां वाहनं ध्वजलक्षणम् ।

ये वे ही गरुड़ थे, जिन्होंने एक बार अमृतका अपहरण कर लिया था । वे बड़े-बड़े सर्पराजोंका विनाश करनेमें समर्थ, दैत्यसमूहोंको भयभीत करनेवाले तथा भगवान् विष्णुके ध्वजचिह्न एवं वाहन थे ॥ ३४½ ॥

तं दृष्ट्वा स ध्वजं प्राप्तं सचिवं साम्परायिकम् ॥ ३५ ॥
धृतिमन्तं गरुत्मन्तं जगाद मधुसूदनः ।
दृष्ट्वा परमसंहृष्टः स्थितं देवमिवापरम् ।
तुल्यसामर्थ्यया वाचा गरुत्मन्तमवस्थितम् ॥ ३६ ॥

अपने ध्वज, सचिव तथा संकटकालके साथी धैर्यवान् गरुड़को आया देख भगवान् मधुसूदनको बड़ा हर्ष हुआ । वे दूसरे देवताकी भाँति सामने खड़े थे । इस प्रकार सम्मुख उपस्थित हुए गरुड़से अपने समान शक्तिशालिनी वाणीद्वारा मधुसूदनने इस प्रकार कहा ॥ ३५-३६ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

स्वागतं खेचरश्रेष्ठ सुरसेनारिमर्दन ।
विनताहृदयानन्द स्वागतं केशवप्रिय ॥ ३७ ॥

श्रीकृष्ण बोले—आकाशचारियोंमें श्रेष्ठ गरुड़ ! तुम्हारा स्वागत है । देवसेनाके शत्रुओंका मर्दन करनेवाले केशवप्रिय विनतानन्दन ! तुम्हारा स्वागत है ॥ ३७ ॥

व्रज पत्ररथश्रेष्ठ कैशिकस्य निवेशनम् ।
वयं तत्रैव गत्वाद्य प्रतीक्षाम स्वयंवरम् ॥ ३८ ॥

पंख ही जिनका रथ है, उन पक्षियोंमें सबसे श्रेष्ठ गरुड़ ! तुम राजा कैशिकके भवनमें चलो । हम आज वहीं चलकर स्वयंवरकी प्रतीक्षा करें ॥ ३८ ॥

राज्ञां तत्र समेतानां हस्त्यश्वरथगामिनाम् ।
द्रक्ष्यामः शतशस्तत्र समेतानां महात्मनाम् ॥ ३९ ॥

वहाँ हाथी, घोड़े और रथोंद्वारा यात्रा करनेवाले सैकड़ों महामनस्वी नरेश एकत्र हुए हैं, जिनका हमें दर्शन प्राप्त होगा ॥ ३९ ॥

एवमुक्त्वा महाबाहुर्वैनतेयं महाबलम् ।
जगामाथ पुरीं कृष्णः कैशिकस्य महात्मनः ॥ ४० ॥
वैनतेयसखः श्रीमान् यादवैश्च महारथैः ।

महाबली विनतानन्दन गरुड़से ऐसा कहकर महाबाहु श्रीमान् कृष्ण गरुड़ तथा महारथी यादवोंके साथ महामना कैशिककी राजधानी कुण्डिनपुरमें गये ॥ ४०½ ॥

विदर्भनगरीं प्राप्ते कृष्णे देवकिनन्दने ॥ ४१ ॥
हृष्टाः प्रमुदिताः सर्वे निवासायोपचक्रमुः ।
सर्वे शस्त्रायुधधरा राजानो बलशालिनः ॥ ४२ ॥

देवकीनन्दन श्रीकृष्णके विदर्भनगरमें पहुँच जानेपर उनके साथके सब लोग बड़े प्रसन्न हुए । सबके मनमें बड़ा हर्ष हुआ । वे समस्त बलशाली तथा अस्त्र-शस्त्रधारी राजपूत वहाँ ठहरनेकी तैयारी करने लगे ॥ ४१-४२ ॥

वैशम्पायन उवाच

एतस्मिन्नेव काले तु राजा नयविशारदः ।
कैशिकस्तत उत्थाय प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ४३ ॥
अर्घ्यमाचमनं दत्त्वा स राजा कैशिकः स्वयम् ।
सत्कृत्य विधिवत् कृष्णं स्वपुरं सम्प्रवेशयत् ॥ ४४ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! इसी समय नीतिविशारद राजा कैशिक प्रसन्नचित्तसे उठकर स्वयं ही श्रीकृष्णके पास गये और उन्हें अर्घ्य, आचमन आदि देकर विधिपूर्वक सत्कार करके अपने नगरमें ले आये ॥ ४३-४४ ॥

पूर्वमेव तु कृष्णाय कारितं दिव्यमन्दिरम् ।

---

१. ये राजा कैशिक विदर्भराज भीष्मकके पिता तथा रुक्मीके पितामह थे ।

विवेश सबलः श्रीमान् कैलासं शंकरो यथा ॥ ४५ ॥

उन्होंने श्रीकृष्णके लिये पहलेसे ही एक दिव्य भवनका निर्माण करा रखा था। जैसे भगवान् शंकर कैलासधाममें जाते हैं, उसी प्रकार श्रीमान् कृष्णने अपनी सेनाके साथ कैशिकके उस भवनमें प्रवेश किया ॥ ४५ ॥

खाद्यपानादिरत्नौघैरर्चितो वासवानुजः।
सुखेन उषितः कृष्णस्तस्य राज्ञो निवेशने।
पूजितो बहुमानेन स्नेहपूर्णेन चेतसा ॥ ४६ ॥

इन्द्रके छोटे भाई श्रीकृष्ण उस राजमहलमें खान-पान आदि-से एवं रत्न-राशियोंद्वारा भलीभाँति पूजित हो सुखपूर्वक रहने लगे। राजा कैशिकने बड़े ही सम्मानके साथ स्नेहपूर्ण हृदयसे उनका पूजन किया था ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीस्वयंवरे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें रुक्मिणीस्वयंवरविषयक सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णके आगमनसे चिन्तित हुए राजाओंकी सभामें जरासंध और सुनीथका भाषण

वैशम्पायन उवाच

ते कृष्णमागतं दृष्ट्वा वैनतेयसहाच्युतम्।
बभूवुश्चिन्तयाविष्टाः सर्वे नृपतिसत्तमाः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अपनी महिमा-से कभी च्युत न होनेवाले श्रीकृष्णको गरुड़के साथ आया देख सभी श्रेष्ठ नरपति चिन्तामग्न हो गये ॥ १ ॥

ते समेत्य सभां राजन् राजानो भीमविक्रमाः।
मन्त्राय मन्त्रकुशला नीतिशास्त्रार्थवित्तमाः ॥ २ ॥

राजन्! वे भयानक पराक्रमी राजा नीति-शास्त्रके भी अच्छे ज्ञाता तथा मन्त्रणा करनेमें कुशल थे। उन्होंने परस्पर मन्त्रणा करनेके लिये एक सभामें एकत्र होनेका विचार किया ॥ २ ॥

भीष्मकस्य सभां गत्वा रम्यां हेमपरिष्कृताम्।
सिंहासनेषु चित्रेषु विचित्रास्तरणेषु च।
निषेदुस्ते नृपवरा देवा देवसभामिव ॥ ३ ॥

फिर जैसे देवता देवसभामें विराजमान होते हैं, उसी प्रकार वे श्रेष्ठ नरेशगण राजा भीष्मककी सुवर्णभूषित रमणीय सभामें जाकर विचित्र बिछौनोंसे युक्त भाँति-भाँतिके सिंहासनों-पर बैठे ॥ ३ ॥

तेषां मध्ये महाबाहुर्जरासंधो महाबलः।
बभाषे स महातेजा देवान् देवेश्वरो यथा ॥ ४ ॥

उनके बीचमें महाबली, महातेजस्वी और महाबाहु जरासंधने उसी तरह भाषण देना आरम्भ किया, जैसे देवराज इन्द्र देवताओंके समक्ष प्रवचन करते हैं ॥ ४ ॥

जरासंध उवाच

यतां भो नृपश्रेष्ठा भीष्मकश्च महामतिः।
मानं मया बुद्ध्या वचनं वदतां वराः ॥ ५ ॥

रासंध बोला—इस सभामें उपस्थित हुए वक्ताओंमें श्रेष्ठ नरेशो! मैं यहाँ अपनी बुद्धिके अनुसार जो कुछ कह रहा हूँ, उसे आपलोग तथा परम बुद्धिमान् राजा भीष्मक भी सुनें ॥ ५ ॥

योऽसौ कृष्ण इति ख्यातो वसुदेवसुतो बली।
वैनतेयसहायेन सम्प्राप्तः कुण्डिनं त्विह ॥ ६ ॥
कन्याहेतोर्महातेजा यादवैरभिसंवृतः।
अवश्यं कुरुते यत्नं कन्यावाप्तिर्यथा भवेत् ॥ ७ ॥

वे जो श्रीकृष्ण नामसे विख्यात बलवान् वसुदेवपुत्र इस कुण्डिनपुरमें गरुडके साथ पधारे हैं, बड़े तेजस्वी हैं। यहाँकी राजकन्याको प्राप्त करनेके लिये ही वे यादवोंसे घिरे हुए यहाँ-तक आये हैं। जिस तरह भी कन्याकी प्राप्ति हो सके वैसा प्रयत्न वे अवश्य करेंगे ॥ ६-७ ॥

यदत्र कारणं कार्यं सुनयोपेतमृद्धितम्।
कुरुध्वं नृपशार्दूला विनिश्चित्य बलाबलम् ॥ ८ ॥

श्रेष्ठ नरपतियो! यहाँ जो सुनीतिसे युक्त तथा समृद्धिका हेतुभूत कारण (उपाय) काममें लाने योग्य है, उसे अपने बलाबलका विचार करके आपलोग करें ॥ ८ ॥

पदातिनौ महावीर्यौ वसुदेवसुतावुभौ।
वैनतेयं विना तस्मिन् गोमन्ते पर्वतोत्तमे।
कृतवन्तौ महाघोरं भवद्भिर्विदितं हि तत् ॥ ९ ॥

वसुदेवके ये दोनों पुत्र महान् पराक्रमी हैं। ये लोग पर्वतोंमें श्रेष्ठ गोमन्तपर गरुड़को साथ लिये बिना पैदल ही आये थे, तो भी इन्होंने जो घोर महायुद्ध किया था, वह आपलोगोंको विदित ही है ॥ ९ ॥

वृष्णिभिर्यादवैश्चैव भोजान्धकमहारथैः।
समेत्य युद्ध्यमानस्य कीदृशो विग्रहो भवेत् ॥ १० ॥

इस समय जब ये यदुवंशी, वृष्णिवंशी, भोजवंशी तथा अन्धकवंशी महारथियोंके साथ मिलकर युद्ध करेंगे, तब इनका

संग्राम कैसा होगा—(यह आपलोग स्वयं अनुमान कर सकते हैं)॥ १० ॥

कन्यार्थे यततानेन गरुडस्थेन विष्णुना ।
कः स्थास्यति रणे तस्मिन्नपि शक्रः सुरैः सह ॥ ११ ॥

राजकन्याके लिये यत्न करते हुए इन गरुडवाहन भगवान् विष्णुके साथ युद्धमें देवताओंसहित इन्द्र ही क्यों न हों, कौन ठहर सकेगा ॥ ११ ॥

यदा चास्मै नापि सुता कदाचित् सम्प्रदीयते ।
ततो ह्ययं बलादेनां नेतुं शक्तः सुरैः सह ॥ १२ ॥

यदि कदाचित् इन्हें कन्या न भी दी जाय तो ये देवताओंके साथ उपस्थित हो बलपूर्वक इसे ले जानेमें समर्थ हैं॥

पुरा एकार्णवे घोरे श्रूयते मेदिनी त्वियम् ।
पातालतलसम्मग्ना विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ १३ ॥
वाराहं रूपमास्थाय उद्धृता जगदादिना ।
हिरण्याक्षश्च दैत्येन्द्रो वराहेण निपातितः ॥ १४ ॥

सुना जाता है कि प्राचीन कालमें यह पृथ्वी भयंकर एकार्णवमें निमग्न हो रसातलमें जा पहुँची थी। उस समय जगत्के आदि कारण इन्हीं प्रभावशाली विष्णुने वाराहरूप धारण करके इसका उद्धार किया था। उस समय दैत्यराज हिरण्याक्षको भी वाराहरूपसे ही मार गिराया था ॥ १३-१४ ॥

हिरण्यकशिपुश्चैव महाबलपराक्रमः ।
अवध्योऽमरदैत्यानामृषिगन्धर्वकिन्नरैः ॥ १५ ॥
यक्षराक्षसनागानां नाकाशे नावनिस्थले ।
न चाभ्यन्तररात्र्यह्नोर्न शुष्केणार्द्रकेण च ॥ १६ ॥

महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न दैत्यराज हिरण्यकशिपु देवताओं और दैत्योंके लिये भी अवध्य था। ऋषि, गन्धर्व और किन्नर भी उसे मार नहीं सकते थे। यक्ष, राक्षस और नागोंके लिये भी वह अजेय था। वह न तो आकाशमें मर सकता था, न पृथ्वीपर। न रातमें न दिनमें और न सूखे अस्त्रसे न गीले अस्त्रसे ही ॥ १५-१६ ॥

अवध्यस्त्रिषु लोकेषु दैत्येन्द्रस्त्वपराजितः ।
नरसिंहेन रूपेण निहतो विष्णुना पुरा ॥ १७ ॥

तीनों लोकोंमें अवध्य वह दैत्यराज किसीसे पराजित होनेवाला नहीं था, तो भी पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने नरसिंहरूप धारण करके उसे मार डाला ॥ १७ ॥

वामनेन तु रूपेण कश्यपस्यात्मजो बली ।
अदित्या गर्भसम्भूतो बलिर्बद्धोऽसुरोत्तमः ॥ १८ ॥
सत्यरज्जुमयैः पाशैः कृतः पातालसंश्रयः ।

फिर किसी समय बलवान् विष्णु महर्षि कश्यपके पुत्ररूपमें देवी अदितिके गर्भसे प्रकट हुए। उस समय उन्होंने वामनरूप धारण करके असुरराज बलिको सत्यकी रस्सीसे बनाये गये पाशोंद्वारा बाँध लिया और उसे पाताललोकका निवासी बना दिया ॥ १८½ ॥

कार्तवीर्यो महावीर्यः सहस्रभुजविग्रहः ॥ १९ ॥
दत्तात्रेयप्रसादेन मत्तो राज्यमदेन च ।

कृतवीर्यका पुत्र महापराक्रमी अर्जुनका शरीर दत्तात्रेयजीकी कृपासे सहस्र भुजाओंसे सुशोभित होता था। वह राज्यमदसे उन्मत्त हो गया था ॥ १९½ ॥

जामदग्न्यो महातेजा रेणुकागर्भसंभवः ॥ २० ॥
त्रेताद्वापरयोः संधौ रामः शस्त्रभृतां वरः ।

(उसके दमनके लिये भगवान् विष्णु) त्रेता और द्वापरकी सन्धिके समय रेणुकाके गर्भसे प्रकट हुए। वे शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी जमदग्निकुमार परशुरामके नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ २०½ ॥

परशुना वज्रकल्पेन सप्तद्वीपेश्वरो नृपः ।
विष्णुना निहतो भूयः छद्मरूपेण हैहयः ॥ २१ ॥

इस तरह पुनः छद्मरूपधारी भगवान् विष्णुने हैहयवंशमें उत्पन्न राजा कार्तवीर्यको, जो सातों द्वीपोंका स्वामी था, अपने वज्रतुल्य फरसेसे मार डाला ॥ २१ ॥

इक्ष्वाकुकुलसम्भूतो रामो दाशरथिः पुरा ।
त्रिलोकविजयं वीरं रावणं संन्यपातयत् ॥ २२ ॥

तत्पश्चात् वे इक्ष्वाकु-कुलमें दशरथनन्दन श्रीरामके रूपमें प्रकट हुए। उन्होंने पूर्वकालमें त्रिलोकविजयी वीर रावणको मार गिराया था ॥ २२ ॥

पुरा कृतयुगे विष्णुः संग्रामे तारकामये ।
षोडशार्द्धभुजो भूत्वा गरुडस्थो हि वीर्यवान् ॥ २३ ॥
निजघानासुरान् युद्धे वरदानेन गर्वितान् ।
कालनेमिश्च दैतेयो देवानां च भयप्रदः ॥ २४ ॥

प्राचीन कालकी बात है—सत्ययुगमें जब तारकामय संग्राम हुआ था, उस समय पराक्रमी विष्णु आठ भुजाओंसे युक्त हो गरुडपर बैठकर वहाँ पधारे। वहाँ उन्होंने वरदानसे गर्वित हुए असुरोंको युद्धमें मार डाला तथा देवताओंको भय देनेवाले कालनेमि नामक दैत्यका भी वध कर दिया॥२३-२४॥

सहस्रकिरणाभेन चक्रेण निहतो युधि ।
महायोगबलेनाजौ विश्वरूपेण विष्णुना ॥ २५ ॥

यह सम्पूर्ण विश्व जिनका रूप है, उन भगवान् विष्णुने युद्धमें महान् योगबलसे सूर्य-तुल्य तेजस्वी चक्रद्वारा उस दैत्यका संहार किया था ॥ २५ ॥

अनेन प्राप्तकालास्ते निहता बहवोऽसुराः ।
वने वनचरा दैत्या महाबलपराक्रमाः ॥ २
निहता बालभावेन प्रलम्बारिष्टधेनुकाः ।

इन श्रीकृष्णने ऐसे बहुत-से असुरोंको मार डाला है, जिनका काल आ पहुँचा था। वनमें विचरनेवाले महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न प्रलम्ब और धेनुक नामक दैत्योंको इन्होंने बाल्यावस्थामें ही वनके भीतर मार गिराया ॥ २६½॥

शकुनीं केशिनं चैव यमलार्जुनकावपि ॥ २७ ॥
नागं कुवलयापीडं चाणूरं मुष्टिकं तथा।
कंसं च बलिनां श्रेष्ठं सगणं देवकीसुतः ॥ २८ ॥
न्यहनद् गोपवेषेण क्रीडमानो हि केशवः।

पूतना, केशी, यमलार्जुन, कुवलयापीड़ हाथी, चाणूर, मुष्टिक तथा बलवानोंमें श्रेष्ठ कंसको भी उसके गणोंसहित इन देवकीपुत्र केशवने नष्ट कर दिया है। उस समय ये गोपवेशमें क्रीडा करते थे ॥ २७-२८½ ॥

एवमादीनि दिव्यानि छद्मरूपाणि चक्रिणा ॥ २९ ॥
कृतानि दिव्यरूपाणि विष्णुना प्रभविष्णुना।

इन प्रभावशाली चक्रधारी विष्णुने ये तथा और भी इसी तरहके बहुत-से दिव्य छद्मरूप समय-समयपर धारण किये हैं॥

तेनाहं वः प्रवक्ष्यामि भवतां हितकाम्यया ॥ ३० ॥
तं मन्ये केशवं विष्णुं सुराद्यमसुरान्तकम्।

इसलिये मैं आपलोगोंके हितकी इच्छासे यह कह रहा हूँ कि श्रीकृष्ण देवताओंके आदि कारण एवं असुर-विनाशक विष्णु हैं। मैं उन्हें ऐसा ही समझता हूँ ॥ ३०½ ॥

नारायणं जगद्योनिं पुराणं पुरुषं ध्रुवम् ॥ ३१ ॥
स्रष्टारं सर्वभूतानां व्यक्ताव्यक्तं सनातनम्।
अधृष्यं सर्वलोकानां सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ ३२ ॥
अनादिमध्यनिधनं क्षरमक्षरमव्ययम्।
स्वयम्भुवमजं स्थाणुमजेयं सचराचरैः ॥ ३३॥
त्रिविक्रमं त्रिलोकेशं त्रिदशेन्द्रारिनाशनम्।

वे जगत्‌की उत्पत्तिके स्थानभूत पुराणपुरुष अविनाशी भगवान् नारायण हैं। वे ही समस्त भूतोंकी सृष्टि करनेवाले तथा व्यक्ताव्यक्तस्वरूप सनातन परमात्मा हैं। सम्पूर्ण लोक मिलकर भी उन्हें पराजित नहीं कर सकते। सारा संसार उनके चरणोंमें मस्तक झुकाता है। वे आदि, मध्य और अन्तसे रहित, क्षर (सर्वभूतमय), अक्षर (कूटस्थ) और अविकारी हैं। वे ही स्वयंभू, अजन्मा, सदा स्थिर रहनेवाले तथा चराचर प्राणियोंके लिये अजेय हैं। उन्हींको मैं देवेन्द्रके शत्रुओंका विनाशक, त्रिलोकीनाथ, त्रिविक्रमरूपधारी विष्णु मानता हूँ ॥ ३१–३३½ ॥

इति मे निश्चिता बुद्धिर्जातोऽयं मथुरामधि ॥ ३४ ॥
कुले महति वै राज्ञां विपुले चक्रवर्तिनाम्।
यमन्यस्य मर्त्यस्य गरुडो वाहनं भवेत् ॥ ३५ ॥

यही मेरी बुद्धिका निश्चय है। ये विष्णु ही मथुरामें चक्रवर्ती राजाओंके महान् एवं विशाल कुलमें प्रकट हुए हैं। अन्यथा दूसरे किसी मनुष्यका वाहन गरुड़ कैसे हो सकते हैं॥

विशेषेण तु कन्यार्थे विक्रमस्थे जनार्दने।
कः स्थास्यति पुमानद्य गरुडस्याग्रतो बली ॥ ३६ ॥

विशेषतः जब भगवान् जनार्दन राजकन्याकी प्राप्तिके लिये पराक्रम प्रकट करनेपर तुल जायँगे, तब कौन ऐसा बलवान् पुरुष है, जो आज गरुड़के सामने खड़ा हो सकेगा॥

स्वयंवरकृतेनासौ विष्णुः स्वयमिहागतः।
विष्णोरागमने चैव महान् दोषः प्रकीर्तितः ॥ ३७ ॥
भवद्भिरनुचिन्त्येदं क्रियतां यदनन्तरम्।

इस स्वयंवरके लिये साक्षात् विष्णु यहाँ पधारे हैं। विष्णुका आगमन होनेपर हमारे लिये जो महान् दोष (बाधा) उपस्थित है, उसे मैंने बताया। अब आप लोग भी इसपर विचार करके आगे जो कुछ करना हो, वह करें ॥ ३७½ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं विब्रुवमाणे तु मगधानां जनेश्वरे ॥ ३८ ॥
सुनीथोऽथ महाप्राज्ञो वचनं चेदमब्रवीत्।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! मगधदेशका राजा जब इस प्रकार भाषण दे चुका, तब महाबुद्धिमान् सुनीथने इस प्रकार कहा ॥ ३८½ ॥

सुनीथ उवाच

सम्यगाह महाबाहुर्मगधाधिपतिर्नृपः ॥ ३९ ॥
समक्षं नरदेवानां यथावृत्तं महाहवे।
गोमन्ते रामकृष्णाभ्यां कृतं कर्म सुदुष्करम् ॥ ४० ॥

सुनीथ बोले—महाबाहु मगधराज ठीक कहते हैं। गोमन्त पर्वतके समीप महासमरमें जैसी घटना घटित हुई थी तथा बलराम और श्रीकृष्णने जो अत्यन्त दुष्कर कर्म कर दिखाया था, वह इन समस्त नरेशोंने अपनी आँखों देखा था ॥ ३९-४० ॥

गजाश्वरथसम्बाधा पत्तिध्वजसमाकुला।
निर्दग्धा महती सेना चक्रलाङ्गलवह्निना ॥ ४१ ॥

हाथी, घोड़े और रथोंसे भरी तथा पैदलों और ध्वजोंसे व्याप्त हुई राजाओंकी वह विशाल सेना चक्र और हलरूपी अग्निसे जलकर भस्म हो गयी ॥ ४१ ॥

तेनायं मागधः श्रीमाननागतमचिन्तयत्।
ब्रुवते राजसेनायामनुस्मृत्य सुदारुणम् ॥ ४२ ॥
पदात्योर्युध्यतोस्तत्र बलकेशवयोर्युधि।
दुर्निवार्यतरो घोरो ह्यभवद् वाहिनीक्षयः ॥ ४३ ॥

इसीलिये इन श्रीमान् मगधनरेशने आज भावी परिणामका विचार किया है। राजाओंकी सेनामें जो अत्यन्त दारुण घटना घटित हुई थी, उसका स्मरण करके ये इस समय

उपर्युक्त बात कह गये हैं। वहाँ युद्धमें बलराम और श्रीकृष्ण पैदल ही लड़ रहे थे, तो भी हमारी विशाल वाहिनीका ऐसा घोर संहार हुआ, जिसे रोकना अत्यन्त कठिन हो गया था ॥ ४२-४३ ॥

विदितं वः सुपर्णस्य स्वागतस्य नृपोत्तमाः ।
पक्षवेगानिलोद्धूता बभ्रमुर्गगनेचराः ॥ ४४ ॥

श्रेष्ठ नरपतियो ! गरुड़के आते समय यहाँ जो प्रभाव पड़ा था, उसे आपलोग अच्छी तरह जानते हैं। उनके पंखोंके वेगसे जो वायु उठी थी, उसका झोंका खाकर आकाशचारी प्राणी चक्कर काटने लगे थे ॥ ४४ ॥

समुद्राः क्षुभिताः सर्वे चचालाद्रिर्मही मुहुः ।
वयं सर्वे सुसंत्रस्ताः किमुत्पातेति विक्लवाः ॥ ४५ ॥

सारे समुद्र क्षुब्ध हो उठे थे। पर्वत काँपने लगे और धरती भी बार-बार डोलने लगी थी। हम सब लोग यह सोचकर भयभीत एवं व्याकुल हो गये थे कि यह कैसा उत्पात खड़ा हो गया ॥ ४५ ॥

यदा संनह्य युध्येत आरूढः केशवः खगम् ।
कथमस्मद्विधः शक्तः प्रतिस्थातुं रणाजिरे ॥ ४६ ॥

जब केशव कवच बाँधकर गरुड़की पीठपर आरूढ़ हो युद्ध करेंगे, उस समय हमारे-जैसा पुरुष समराङ्गणमें कैसे ठहर सकता है ॥ ४६ ॥

राज्ञां स्वयंवरो नाम सुमहान् हर्षवर्धनः ।
कृतो नरवरैराद्यैर्यशोधर्मस्य वै विधिः ॥ ४७ ॥

स्वयंवर राजाओंके लिये महान् आनन्दवर्धक उत्सव है। पूर्वकालके श्रेष्ठ नरेशोंने इसे सुयश और धर्मकी सिद्धिके लिये प्रचलित किया था ॥ ४७ ॥

इदं तु कुण्डिनगरमासाद्य मनुजेश्वराः ।
पुनरेवैष्यते क्षिप्रं महापुरुषविग्रहम् ॥ ४८ ॥

परंतु मनुजेश्वरो ! इस कुण्डिनपुरमें आकर हमारे सामने पुनः शीघ्र ही महापुरुषके साथ महान् युद्धका अवसर आना चाहता है ॥ ४८ ॥

यदि सा वरयेदन्यं राज्ञां मध्ये नृपात्मजा ।
कृष्णस्य भुजयोर्वीर्यं कः पुमान् प्रसहिष्यति ॥ ४९ ॥

यदि राजकुमारी रुक्मिणी राजाओंके बीचमें किसी दूसरे नरेशका वरण कर ले, तब कौन ऐसा पुरुष है—जो श्रीकृष्णकी भुजाओंका पराक्रम सह सकेगा ॥ ४९ ॥

विज्ञापितमिदं दोषं स्वयंवरमहोत्सवे ।
तदर्थमागतः कृष्णो वयं चैव नराधिपाः ॥ ५० ॥

इस स्वयंवर-महोत्सवमें यह युद्धकी सम्भावना ही महान् दोष है, जिसे सूचित कर दिया गया। श्रीकृष्ण तथा हम सब नरेश भी स्वयंवरके लिये ही यहाँ पधारे हैं ॥ ५० ॥

कृष्णस्यागमनं चैव नृपाणामतिगर्हितम् ।
कन्याहेतोर्नरेन्द्राणां यथा वदति मागधः ॥ ५१ ॥

राजकन्याके उद्देश्यसे श्रीकृष्णका आगमन हम सब नरेशोंके लिये अत्यन्त गर्हित सिद्ध हो रहा है—जैसा कि मगधराजका कथन है ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीस्वयंवरे मागधसुनीथवाक्ये अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें रुक्मिणीस्वयंवरके प्रसंगमें जरासंध और सुनीथका भाषणविषयक अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दन्तवक्त्र और शाल्वका भाषण सुनकर भीष्मकका श्रीकृष्णके प्रभावका वर्णन करते हुए उन्हें प्रसन्न करनेका ही निश्चय करना

वैशम्पायन उवाच

इत्येवमुक्ते वचने सुनीथेन महात्मना ।
करूषाधिपतिर्वीरो दन्तवक्त्रोऽभ्यभाषत ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! महामना सुनीथके ऐसा कहनेपर करूषदेशके वीर राजा दन्तवक्त्रने भाषण देना आरम्भ किया ॥ १ ॥

दन्तवक्त्र उवाच

यदुक्तं मागधेनात्र सुनीथेन नराधिपाः ।
युक्तपूर्वमहं मन्ये यदस्माकं वचो हितम् ॥ २ ॥

दन्तवक्त्र बोला—राजाओ ! यहाँ मगधराजने और राजा सुनीथने जो कुछ कहा है, उसे मैं युक्तिसंगत मानता हूँ; क्योंकि इनका प्रवचन हमलोगोंके लिये हितकर है ॥ २ ॥

न च विद्वेषणेनाहं न चाहंकारवादिना ।
न चात्मविजिगीषुत्वाद् दूषयामि वचोऽमृतम् ॥ ३ ॥

मैं न तो विद्वेषके कारण, न अहंकारवादी होनेके कारण और न अपनी विजयकी अभिलाषा रखनेके ही कारण आ दोनोंके अमृतमय वचनोंको सदोष बता रहा हूँ ॥ ३

वाक्यार्णवं महागाधं नीतिशास्त्रार्थबृंहितम् ।
क एष निखिलं वक्तुं शक्तो वै राजसंसदि ॥ ४ ॥

इस राजसभामें कौन ऐसा पुरुष है जो इस प्रकार समुद्रके समान अत्यन्त अगाध एवं नीतिशास्त्रके अनुकूल सर्वगुणसम्पन्न बात कह सके ॥ ४ ॥

किं त्वनुसरणार्थेऽहं यद् ब्रवीमि शृणुष्व मे ।
आगतो वासुदेवेति किमाश्चर्यं नराधिपाः ॥ ५ ॥

परंतु आपलोगोंको एक कर्तव्यकी याद दिलानेके लिये मैं जो कुछ कहता हूँ, मेरी यह बात सुन लीजिये । नरेश्वरो ! यदि वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ पधारे हैं, तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है ॥ ५ ॥

यथाऽऽगता वयं सर्वे कृष्णोऽपीह तथाऽऽगतः ।
किमत्र दोषो गौण्यो वा कन्याहेतोः समागताः ॥ ६ ॥

जैसे हम सब लोग यहाँ आये हैं, उसी तरह श्रीकृष्ण भी चले आये हैं । इसमें क्या दोष है और क्या गुण । हम सब लोगोंके आगमनका एक ही उद्देश्य है—राजकन्याकी प्राप्ति॥

यदस्माभिः समेत्यैक्यात् कृतं गोमन्तरोधनम् ।
तत्र युद्धकृतं दोषं कथं वै वक्तुमर्हथ ॥ ७ ॥

हमलोगोंने एक साथ मिलकर आपसमें एकता स्थापित करके जो गोमन्त पर्वतपर घेरा डाल रखा था, उस दशामें यदि वहाँ युद्ध हुआ तो उसे आपलोग दोष कैसे बता रहे हैं॥

वनवासे स्थितौ वीरौ कंसव्यामोहहेतुना ।
देवर्षिवचनाद् राजन् वृन्दावनतटे स्थितौ ॥ ८ ॥
तावाहूय वधार्थेन उभौ रामजनार्दनौ ।
नागेनोद्दीपितौ वीरौ हत्वा नागं विवेशतुः ॥ ९ ॥
ततः स्ववीर्यमाश्रित्य निहतो रङ्गसागरे ।
गतासुरिव चासीनो मथुरेशः सहानुगः ॥ १० ॥
किमत्र विहितो दोषो येनास्माभिर्वयोऽधिकैः ।
उपरोधपरा राजन् वयं सर्वे समागताः ॥ ११ ॥

राजन् ! वीर बलराम और श्रीकृष्ण कंसको मोहमें डालनेके लिये ही वनवास कर रहे थे । वृन्दावनके किनारे रहते थे; परंतु देवर्षि नारदके कहनेसे उन दोनों भाई बलराम और श्रीकृष्णको कंसने उनका वध करनेके लिये बुलवाया और कुवलयापीड हाथीके द्वारा आक्रमण कराकर उन दोनों वीरोंके क्रोधको उद्दीपित किया । उस दशामें वे दोनों उस हाथीको मारकर समुद्रके समान विशाल रंगशालामें प्रविष्ट हुए; फिर उन्होंने अपने बाहुबलका आश्रय लेकर मुर्देके समान बैठे हुए मथुरानरेशको यदि उसके साथियोंसहित मार डाला तो इसमें उनके द्वारा क्या दोष बन गया । राजन् ! इसी तरह [illegible] कंसका वध करके यदि श्रीकृष्ण और बलरामने हम वयोवृद्ध नरेशोंके साथ विरोध किया और उस दशामें यदि हम सब लोगोंने वहाँ पहुँचकर मथुरापुरीपर घेरा डाल दिया तो उसमें भी क्या दोष था ॥ ८–११ ॥

सेनातिबलमालोक्य वित्रस्तौ रामकेशवौ ।
पुरं बलं समुत्सृज्य गोमन्ते च गतावुभौ ॥ १२ ॥

हमारी सेनाका महान् बल देखकर बलराम और कृष्ण डर गये और अपने नगर तथा सेनाको छोड़कर दोनों भाई गोमन्तपर्वतपर चले गये ॥ १२ ॥

तत्रापि गतमस्माभिर्हन्तुं समरयोधिभिः ।
अप्राप्तयौवनाभ्यां च पदातिभ्यां रणाजिरे ॥ १३ ॥
रथाश्वनरनागेन नास्माभिर्विग्रहः कृतः ।
कृत्वोपरोधं शैलस्य क्षत्रधर्मेण दीपितः ॥ १४ ॥

तत्पश्चात् हम समराङ्गणमें युद्ध करनेवाले योद्धाओंने उन्हें मार डालनेके लिये वहाँ भी धावा किया । वे दोनों अभी जवान नहीं हुए थे और रणभूमिमें पैदल ही लड़ते थे; इसलिये हमने हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकोंकी चतुरङ्गिणी सेनाद्वारा उनके साथ युद्ध नहीं किया; अपितु क्षत्रिय-धर्मके अनुसार गोमन्तपर्वतपर घेरा डालकर उसमें आग लगा दी थी॥

दावाग्निमुखमाविश्य दुर्विनीततपस्विनौ ।
विनीत इति मन्यामः सर्वे क्षत्रियपुङ्गवाः ।
प्रतियुद्धे कृते त्वेवं दूषयाम जनार्दनम् ॥ १५ ॥

हम सभी क्षत्रिय-पुङ्गव यह समझते थे कि ये दोनों उद्दण्ड तपस्वी बालक दावानलके मुखमें पड़कर सीख जायँगे (अपने कियेका फल पा जायँगे) । ऐसी दशामें उन दोनों भाइयोंने यदि प्रतिशोधात्मक युद्ध किया तो हम जनार्दनको इस तरह दोष क्यों दें (उन्होंने जो कुछ किया, ठीक ही किया) ॥ १५ ॥

यत्र यत्र प्रयास्यामो वयं तत्र भवेत् कलिः ।
प्रीत्यर्थं प्रयतिष्यामः कृष्णेन सह भूमिपाः ॥ १६ ॥

(श्रीकृष्णसे वैर रखनेपर) हमलोग जहाँ-जहाँ जायँगे, वहीं-वहीं कलह हो सकता है । अतः राजाओ ! आजसे हम श्रीकृष्णके साथ प्रेम बढ़ानेका प्रयत्न करेंगे ॥ १६ ॥

इदं कुण्डिनपुरं कृष्णो नागतः कलिहेतुना ।
कन्यानिमित्तागमने कस्य युद्धं प्रयच्छति ॥ १७ ॥

इस कुण्डिनपुरमें श्रीकृष्ण युद्धके लिये नहीं आये हैं । यदि राजकन्याके निमित्त ही उनका आगमन हुआ है, तब वे किसके साथ युद्ध करेंगे ॥ १७ ॥

मर्त्येऽस्मिन् पुरुषेन्द्रोऽसौ न कश्चित् प्राकृतो नरः ।
देवलोकेषु देवेषु प्रवरः पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥

वे कोई प्राकृत मनुष्य नहीं हैं । इस मर्त्यलोकमें श्रेष्ठ पुरुष हैं । देवलोकवासी देवताओंमें भी सर्वश्रेष्ठ पुरुषोत्तम हैं॥

देवानामपि कर्तासौ लोकानां च विशेषतः ।
न चैव बालिशा बुद्धिर्न चेर्ष्या नापि मत्सरः ॥ १९ ॥

वे देवताओंके भी कर्ता हैं और विशेषतः सम्पूर्ण लोकोंके ष्टा भी वे ही हैं। उनकी बुद्धि गँवारों-जैसी नहीं है। उनके नमें न ईर्ष्या है, न मात्सर्य ॥ १९ ॥

स्तब्धो न कृशो नार्तः प्रणतार्तिहरः सदा ।
विष्णुः प्रभुर्देवो देवानामपि दैवतम् ॥ २० ॥

ये न तो कठोर हैं, न दुर्बल हैं और न रोग-शोकसे डित ही हैं। ये तो सदा शरणागतोंका दुःख दूर करते रहते । ये श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् विष्णु तथा देवताओंके भी ता हैं ॥ २० ॥

गतो गरुडेनेहच्छद्मप्राकाश्यहेतुना ।
नास्त्रसहितो याति कृष्णः शत्रुविनाशने ॥ २१ ॥
ां यात्रां विजानीध्वं प्रीत्यर्थं ह्यागतो हरिः ।
हितो यादवेन्द्रैश्च भोजवृष्ण्यन्धकैरिह ॥ २२ ॥

इस समय ये अपने छद्मरूपको प्रकाशित करनेके लिये ड़के द्वारा यहाँ पधारे हैं। श्रीकृष्ण शत्रुओंका विनाश नेके लिये नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंके साथ यात्रा करते हैं। तु उनकी इस यात्राको वैसा न समझो। इस समय तो श्रीहरि भोज, वृष्णि, अन्धक आदि यादवेन्द्रोंके साथ यहाँ ति बढ़ानेके लिये ही आये हैं ॥ २१-२२ ॥

र्घ्यमाचमनं दत्त्वा आतिथ्यं च नराधिपाः ।
रिष्यामो वयं सर्वे केशवाय महात्मने ॥ २३ ॥

अतः नरेश्वरो ! हम सब लोग यहाँ महात्मा केशवको र्घ और आचमन आदि देकर उनका आतिथ्य-सत्कार रेंगे ॥ २३ ॥

वं संधानतः कृत्वा कृष्णेन सहिता वयम् ।
सामो विगतोद्वेगा निर्भया विगतज्वराः ॥ २४ ॥

इस प्रकार सन्धि करके हमलोग श्रीकृष्णके साथ उद्वेग, और चिन्तासे रहित होकर निवास करेंगे ॥ २४ ॥

स्य तद् वचनं श्रुत्वा दन्तवक्त्रस्य धीमतः ।
ल्वः प्रवदतां श्रेष्ठस्तानुवाच नराधिपान् ॥ २५ ॥

बुद्धिमान् दन्तवक्त्रका यह वचन सुनकर वक्ताओंमें शाल्वने उन नरेशोंसे कहा—॥ २५ ॥

शाल्व उवाच

भयेनास्य नः सर्वे न्यस्तशस्त्रा भवामहे ।
धानकरणाद्धेतोः कृष्णस्य भयकम्पिताः ॥ २६ ॥

शाल्व बोला—राजाओ ! यदि ऐसी बात है तो हम सब लोग श्रीकृष्णके भयसे अब अपने अस्त्र-शस्त्र नीचे कर निहत्थे हो जायँ। सन्धि करनेके हेतुसे तो यही पता ता है कि सब नरेश श्रीकृष्णके भयसे काँप रहे हैं ॥२६॥

परस्तवेन किं कार्यं विनिन्द्य बलमात्मनः ।
नैष धर्मो नरेन्द्राणां क्षात्रे धर्मे च तिष्ठताम् ॥ २७ ॥

अपने बलकी निन्दा करके दूसरेकी स्तुति करनेसे क्या प्रयोजन। क्षत्रिय-धर्ममें स्थित रहनेवाले नरेशोंका यह धर्म नहीं है ॥ २७ ॥

महत्सु राजवंशेषु सम्भूताः कुलवर्द्धनाः ।
तेषां कापुरुषा बुद्धिः कथं भवितुमर्हति ॥ २८ ॥

जो महान् राजवंशोंमें उत्पन्न होकर अपने कुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले हैं, उन राजाओंकी बुद्धिमें ऐसे कायरतापूर्ण विचारका उदय कैसे हो सकता है ॥ २८ ॥

अहं जानामि वै कृष्णमादिदेवं सनातनम् ।
प्रभुं सर्वामरेन्द्राणां नारायणपरायणम् ॥ २९ ॥

मैं जानता हूँ, श्रीकृष्ण समस्त अमरेश्वरोंके स्वामी आदिदेव सनातन पुरुष हैं। नारायण ही इनके महान् आश्रय (स्वरूप) हैं ॥ २९ ॥

वैकुण्ठमजयं लोके चराचरगुरुं हरिम् ।
सम्भूतं देवकीगर्भे विष्णुं लोकनमस्कृतम् ॥ ३० ॥
कंसराजवधार्थाय भारावतरणाय च ।
अस्माकं च विनाशाय लोकसंरक्षणाय च ॥ ३१ ॥
अंशावतरणे कृत्स्नं जाने विष्णोर्विचेष्टितम् ।

लोकमें अजेय, वैकुण्ठ-धामके अधिपति, चराचरगुरु, पापहारी विश्ववन्दित भगवान् विष्णु ही पृथ्वीका भार उतारने, कंसराजको मारने तथा हमारा विनाश और सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा करनेके लिये देवकीके गर्भसे प्रकट हुए हैं। अपने अंशसहित भगवान् विष्णुके इस पूर्ण अवतारमें जो-जो कार्य होनेवाला है, वह सब मैं अच्छी तरह जानता हूँ ॥ ३०-३१½ ॥

संग्राममतुलं कृत्वा विष्णुना सह भूमिपाः ॥ ३२ ॥
चक्रानलविनिर्दग्धा यास्यामो यमसादनम् ।

अतः भूमिपालो ! हमलोग इन भगवान् विष्णुके साथ अनुपम संग्राम करके इनकी चक्राग्निसे दग्ध हो यमलोकमें जा पहुँचेंगे ॥ ३२½ ॥

तत्त्वं जानामि राजेन्द्राः कालेनायुःक्षयो भवेत् ॥ ३३ ॥
नाकाले म्रियते कश्चित् प्राप्ते काले न जीवति ।

राजेन्द्रगण ! मैं इस तत्त्वको जानता हूँ कि कालसे ही आयु क्षीण होती है। जबतक काल न आया हो कोई नहीं मरता है और काल आ जानेपर कोई जीवित नहीं रहता ॥

एवं विनिश्चयं कृत्वा न कुर्यात् कस्यचिद् भयम् ॥ ३४ ॥
स एव भगवान् विष्णुरालोक्य तपसः क्षयम् ।
निहन्ता दितिजेन्द्राणां यथाकालेन योगवित् ॥ ३५ ॥

अपने मनमें ऐसा दृढ़ निश्चय रखकर कभी किसीसे भ नहीं रखना चाहिये। वे ही योगवेत्ता भगवान् विष्णु

राजोंकी तपस्या क्षीण हुई देख यथासमय उनका संहार करते हैं ॥ ३४-३५ ॥

बलिं वैरोचनिं चैवं बद्ध्वावध्यं महाबलम् ।
कृतवान् देवदेवेशः पातालतलवासिनम् ॥ ३६ ॥

उन्हीं देवदेवेश्वरने महाबली विरोचनकुमार बलिको, जो किसीके हाथसे मारे जानेवाले नहीं हैं, बाँधकर उन्हें पाताललोकका निवासी बना दिया है ॥ ३६ ॥

एवमादीनि वै विष्णोश्चेष्टानि च नराधिपाः ।
तस्मादयुक्तं भवतां विग्रहार्थं विचारणम् ॥ ३७ ॥

नरेश्वरो ! भगवान् विष्णुकी ऐसी ही चेष्टाएँ हुआ करती हैं। अतः आप लोगोंका युद्धके लिये विचार करना अनुचित है ॥ ३७ ॥

न च संग्रामहेतोर्हि कृष्णस्यागमनं त्विह ।
यस्य वा कस्य वा कन्या वरयिष्यति तस्य सा ।
किमत्र विग्रहो राज्ञां प्रीतिर्भवतु वै ध्रुवम् ॥ ३८ ॥

श्रीकृष्णका यहाँ आना युद्धके लिये नहीं हुआ है। राजकन्या जिस किसीका भी वरण करेगी, उसीकी पत्नी होगी। इसमें झगड़ेकी कौन-सी बात है। राजाओंमें सदा अटल प्रीति बनी रहनी चाहिये ॥ ३८ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं कथयमानानां नृपाणां बुद्धिशालिनाम् ।
न किंचिदब्रवीद् राजा भीष्मकः पुत्रकारणात् ॥ ३९ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! उन बुद्धिशाली नरेशोंके इस प्रकार कहनेपर भी राजा भीष्मक अपने पुत्रके कारण कुछ बोल न सके ॥ ३९ ॥

महावीर्यमदोत्सिक्तं भार्गवास्त्राभिरक्षितम् ।
रणप्रचण्डातिरथं विचिन्त्य मनसा सुतम् ॥ ४० ॥

वह अपने महान् बलके घमंडमें भरा रहता था। भार्गवास्त्रसे सुरक्षित था और रणभूमिमें प्रचण्ड पराक्रम प्रकट करनेवाला अतिरथी वीर था। भीष्मकने मन-ही-मन अपने उस पुत्रका चिन्तन करके इस प्रकार कहा— ॥ ४० ॥

भीष्मक उवाच

कृष्णं न सहते नित्यं पुत्रो मे बलदर्पितः ।
नित्याभिमानी च रणे न बिभेति च कस्यचित् ॥ ४१ ॥

भीष्मक बोले—मेरा पुत्र सदा बलके घमंडमें भरा रहनेवाला और अभिमानी है। वह श्रीकृष्ण और उनके प्रभावको सहन नहीं कर पाता है तथा युद्धमें किसीसे डरता नहीं है ॥ ४१ ॥

त्व कृष्णस्य भुजवीर्येण ह्रियते नात्र संशयः ।
भविष्यति ततो युद्धं महापुरुषविग्रहम् ॥ ४२ ॥

इसमें सन्देह नहीं कि श्रीकृष्णकी भुजाओंके बलसे कन्याका अपहरण होगा। उस अवसरपर महापुरुषके साथ महान् विग्रह एवं युद्ध होकर ही रहेगा ॥ ४२ ॥

द्वेषी चैवाभिमानी च कुतो जीवति मे सुतः ।
जीवितं नात्र पश्यामि मम पुत्रस्य केशवात् ॥ ४३ ॥

उस अवस्थामें श्रीकृष्णसे द्वेष रखनेवाला मेरा अभिमानी पुत्र कैसे जीवित रह सकता है। अतः मुझे श्रीकृष्णके हाथसे यहाँ अपने पुत्रके जीवनकी रक्षा होती नहीं दिखायी देती ॥

कन्याहेतोः सुतं ज्येष्ठं पितॄणां नन्दिवर्द्धनम् ।
कारयिष्ये कथं युद्धं पुत्रेण सह केशवम् ॥ ४४ ॥

कन्याके लिये पितरोंका आनन्द बढ़ानेवाले अपने ज्येष्ठ पुत्रको केशवके साथ और केशवको अपने पुत्रके साथ युद्ध करनेका अवसर कैसे दूँगा ॥ ४४ ॥

न च नारायणं देवं वरमिच्छति रुक्मवान् ।
मूढभावो मदोन्मत्तः संग्रामेष्वनिवर्तकः ।
नियतं भस्मसाद् याति तूलराशिर्यथानलात् ॥ ४५ ॥

रुक्मीका मनोभाव मूढ़तासे भरा हुआ है। अतः वह भगवान् नारायणको रुक्मिणीका वर बनाना नहीं चाहता। वह बलके मदसे उन्मत्त रहता और युद्धसे कभी मुँह नहीं मोड़ता है। अतः जैसे आग लगनेसे रूईका ढेर जल जाता है, उसी प्रकार वह श्रीकृष्णसे भिड़कर निश्चय ही भस्म हो जायगा ॥ ४५ ॥

करवीरेश्वरः शूरः शृगालश्चित्रयोधिना ।
क्षणेन भस्मसान्नीतः केशवेन बलीयसा ॥ ४६ ॥

विचित्र प्रकारसे युद्ध करनेवाले अत्यन्त बलवान् केशवने करवीरपुरके शूरवीर राजा शृगालको क्षणभरमें धूलमें मिला दिया ॥ ४६ ॥

वृन्दावनेऽवसच्छ्रीमान् केशवो बलिनां वरः ।
उद्धृत्यैकेन हस्तेन सप्ताहं धृतवान् गिरिम् ॥ ४७ ॥
दुष्करं कर्म संस्मृत्य मनः सीदति मे भृशम् ॥ ४८ ॥

जब बलवानोंमें श्रेष्ठ श्रीमान् केशव वृन्दावनमें रहते थे, उस समय उन्होंने गोवर्धन पर्वतको उठाकर सात दिनोंतक उसे एक ही हाथसे धारण कर रखा था। उनके उस दुष्कर कर्मको याद करके मेरा हृदय अत्यन्त शिथिल हो जाता है ॥ ४७-४८ ॥

नगेन्द्रे सहसाऽऽगम्य दैवतैः सह वृत्रहा ।
अभिषिच्याब्रवीत् कृष्णमुपेन्द्रेति शचीपतिः ॥ ४९ ॥

उस समय देवताओंके साथ वृत्रासुरविनाशक शचीपति इन्द्रने सहसा गिरिराज गोवर्धनपर आकर श्रीकृष्णका गौओंके इन्द्रके पदपर अभिषेक किया और उन्हें उपेन्द्र कहकर पुकारा॥

यथा वै दमितो नागः कालियो यमुनाह्रदे ।
विषाग्निज्वलितो घोरः कालान्तकसमप्रभः ॥ ५० ॥

यमुनाके कुण्डमें निवास करनेवाले घोर कालिय नाग अपनी विषाग्निसे प्रज्वलित हो काल और अन्तकके समान प्रतीत होता था, किंतु इन श्रीकृष्णने उसका भी जिस प्रकार दमन किया (वह सबको विदित है) ॥ ५० ॥

केशी चापि महावीर्यो दानवो हयविग्रहः ।
निहतो वासुदेवेन देवैरपि दुरासदः ॥ ५१ ॥

महापराक्रमी केशी नामक दानव घोड़ेका शरीर धारण करके रहता था । उसको जीतना देवताओंके लिये भी अत्यन्त कठिन था; परंतु इन भगवान् वासुदेवने उसको भी मार डाला ॥ ५१ ॥

सान्दीपनिसुतश्चैव चिरनष्टो हि सागरे ।
दैत्यं पञ्चजनं हत्वा आनीतो यममन्दिरात् ॥ ५२ ॥

इन्होंने समुद्रमें चिरकालसे नष्ट हुए सान्दीपनिके पुत्रको पञ्चजन दैत्यका वध करके यमलोकसे ला दिया था ॥

गोमन्ते सुमहद् युद्धं बहुभिर्वेष्टितावुभौ ।
कृत्वा वित्रासजननं नागाश्वरथसंक्षयम् ॥ ५३ ॥
गजेन गजवृन्दानि रथेन रथयोधिनः ।
सादिनश्चाश्वयोधेन नरेण च पदातिनः ।
जघ्नतुस्तौ महावीर्यौ वसुदेवसुतावुभौ ॥ ५४ ॥

गोमन्त पर्वतपर जो महान् युद्ध हुआ था, उसमें बहुत-से राजाओंद्वारा यह दोनों भाई घिर गये थे । परंतु वसुदेवके उन दोनों महापराक्रमी पुत्रोंने हाथी, घोड़े तथा रथोंका संहाररूप अत्यन्त भयदायक पराक्रम कर दिखाया । हाथीसे हाथियोंके समूहोंको, रथसे रथारूढ़ योद्धाओंको, घुड़सवारसे ही घुड़सवारोंको और पैदल योद्धासे ही पैदलोंको मारकर यमलोक पहुँचा दिया ॥ ५३-५४ ॥

न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ।
न नागा न च दैत्येन्द्रा न पिशाचा न गुह्यकाः ॥ ५५ ॥
कृतवन्तस्तथा घोरं गजाश्वरथसंक्षयम् ।
तमनुस्मृत्य संग्रामं भृशं सीदति मे मनः ॥ ५६ ॥

देवताओं, असुरों, गन्धर्वों, यक्षों, सर्पों, राक्षसों, नागों, दैत्यराजों, पिशाचों और गुह्यकोंने भी कभी हाथी, घोड़े और रथोंका ऐसा घोर संहार नहीं मचाया था । उस संग्रामको बारंबार याद करके मेरा मन शिथिल होता जा रहा है ॥ ५५-५६ ॥

न मया श्रुतपूर्वो वा दृष्टपूर्वः कुतोऽपि वा ।
तादृशो भुवि मर्त्योऽन्यो वासुदेवात् सुरोत्तमात् ॥ ५७ ॥

मैंने पहले कभी भूतलपर सुरश्रेष्ठ भगवान् वासुदेवको छोड़कर दूसरे किसी वैसे मनुष्यका होना न तो देखा है और न सुना ही है ॥ ५७ ॥

सम्यगाह महाबाहुर्दन्तवक्त्रो महीपतिः ।
सान्त्वयित्वा महावीर्यं संविधास्याम यत्क्षमम् ॥ ५८ ॥

महाबाहु राजा दन्तवक्त्र ठीक कहते हैं । हम पहले महापराक्रमी श्रीकृष्णको सान्त्वनाद्वारा शान्त करके फिर जैसा उचित हो वैसा करें ॥ ५८ ॥

वैशम्पायन उवाच

इति संचिन्त्य मनसा बलाबलविनिश्चयम् ।
गमनाय मतिं चक्रे प्रसादयितुमच्युतम् ॥ ५९ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! इस प्रकार मन-ही-मन अपने बलाबलका निश्चय करके राजा भीष्मकने भगवान् श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेके लिये उनके पास जानेका विचार किया ॥ ५९ ॥

चिन्तयानो नरेन्द्रस्तु बहुभिर्नयशालिभिः ।
सूतमागधवन्दिभ्यो बोधितः स्तुतिमङ्गलैः ॥ ६० ॥

बहुत-से नीतिशाली विद्वान् मन्त्रियोंके साथ विचार करते हुए राजा भीष्मक जब रातमें सो गये, तब सबेरा होनेके समय सूतों, मागधों और वन्दियोंके मुखसे स्तुति एवं मङ्गल-पाठ सुनकर जगे ॥ ६० ॥

प्रभातायां रजन्यां तु कृतपूर्वाह्णिकक्रियाः ।
उपविष्टा नृपाः सर्वे स्वेषु विश्रामवेश्मसु ॥ ६१ ॥

जब रात बीतनेपर प्रभातकाल आया, तब सब नरेश पूर्वाह्णकालके नित्यकर्म पूर्ण करके अपने-अपने विश्राम-भवनोंमें बैठे ॥ ६१ ॥

ये विसृष्टास्तु राजानो विदर्भायां नराधिपैः ।
तैरागम्य स्वभूपेषु रहो गत्वा निवेदितम् ॥ ६२ ॥

राजाओंने अपनी ओरसे जिन-जिन राजकुमारोंको विदर्भपुरीमें भेजा था, उन्होंने लौटकर अपने-अपने राजाओंके पास एकान्तमें जाकर वहाँका समाचार निवेदन किया ॥ ६२ ॥

श्रुत्वा कृष्णाभिषेकं तु केचिद् धृष्टा नराधिपाः ।
केचिद् दीनतरा भीता उदासीनास्तथा परे ॥ ६३ ॥

श्रीकृष्णके अभिषेकका समाचार सुनकर कुछ नरेश तो बहुत ही प्रसन्न हुए, कुछ लोग अत्यन्त दीन, भयभीत हो गये और दूसरे राजा उदासीन (तटस्थ) बने रहे ॥ ६३ ॥

त्रिधा प्रभिन्ना सा सेना नरनागाश्वमालिनी ।
महार्णव इव क्षुब्धा अभिषेकेण चालिता ॥ ६४ ॥

इस प्रकार श्रीकृष्णके अभिषेकसे चालित हुई मनुष्यों, हाथियों और घोड़ोंसे भरी हुई वह सेना तीन भागोंमें बँट गयी और महासागरके समान विक्षुब्ध हो उठी ॥ ६४ ॥

नृपाणां भेदमालोक्य भीष्मको राजसत्तमः ।
व्यतिक्रममचिन्त्यं च कृतं नृपतिना स्वयम् ॥

विचिन्त्य मनसा राजा दह्यमानेन चेतसा।
जगाम नरदेवानां समाजे प्रतिबोधितुम् ॥ ६६ ॥

राजाओंमें श्रेष्ठ भीष्मक उन नरेशोंमें भेद हुआ देखकर और स्वयं अपने ही किये हुए अचिन्त्य अपराधका विचार करके मन-ही-मन चिन्तासे दग्ध होते हुए उन नरदेवोंके समाजमें उन्हें समझानेके लिये गये ॥ ६५-६६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे दूताः सम्प्राप्ताः क्रथकैशिकौ।
लेखमुद्धृत्य शिरसा विविशुस्ते नृपार्णवम् ॥ ६७ ॥

इसी बीचमें इन्द्रके दूत राजा क्रथ और कैशिकके पास जा पहुँचे और शिर झुका एक पत्र निकालकर उन्हें दिया; फिर वे राजाओंके समुद्र-जैसे समाजमें घुस गये ॥ ६७ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीस्वयंवरे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें रुक्मिणीस्वयंवरविषयक
उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४९ ॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

क्रथ और कैशिकद्वारा भगवान् श्रीकृष्णको अपने राज्यका समर्पण, देवराज इन्द्रके आदेशसे सब नरेशोंद्वारा भगवान्का राजेन्द्रके पदपर अभिषेक तथा भगवान्का सबको आश्वासन देना

जनमेजय उवाच

हत्वा कंसं महावीर्यं देवैरपि दुरासदम्।
नाभिषिक्तः स्वयं राज्ये नोपविष्टो नृपासने ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—मुने! जो देवताओंके लिये भी दुर्जय था, उस महापराक्रमी कंसका वध करके भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं न तो राज्यपर अभिषिक्त हुए और न राजाके आसनपर ही बैठे, इसका क्या कारण है? ॥ १ ॥

कन्यार्थे चागतः कृष्णस्तत्रापि न कृतोऽतिथिः।
अमानमतुलं प्राप्य क्षान्तवान् केन हेतुना ॥ २ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण कुण्डिनपुरमें कन्याके लिये आये थे परंतु वहाँ भी वे निमन्त्रित अतिथि नहीं बनाये गये थे (अपने आप बिना बुलाये आये थे और अपने प्रभावके कारण पूजित हुए थे)। ऐसे अनुपम अपमानको पाकर भी श्रीकृष्णने किसलिये क्षमा कर दी ॥ २ ॥

विनतायाः सुतश्चैव महाबलपराक्रमः।
स चापि क्षमया युक्तः कारणं किमपेक्षितः।
एतदाख्याहि भगवन् परं कौतूहलं हि मे ॥ ३ ॥

विनताके पुत्र गरुड़ भी तो महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न हैं। उन्होंने भी किस कारणकी अपेक्षासे क्षमाभाव धारण कर लिया? भगवन्! यह मुझे बताइये, इसको सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल हो रहा है ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच

विदर्भनगरीं प्राप्ते वैनतेये सहाच्युते।
मनसा चिन्तयामास वासुदेवाय कैशिकः ॥ ४ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! (क्रथ और [illegible]क भगवान्के भक्त थे। उनपर कृपा करनेके लिये ही [illegible] वहाँ स्वयं पधारे थे।) जब भगवान् श्रीकृष्णके साथ विनतानन्दन गरुड़ भी विदर्भपुरीमें गये, उस समय कैशिकने उन वासुदेवके लिये मन-ही-मन इस प्रकार चिन्तन किया ॥ ४ ॥

दृष्ट्वाऽऽश्चर्यं हि नः सर्वान् राजन्यान् प्रवदाम्यहम्।
वसुदेवसुते दृष्टे ध्रुवं पापक्षयो भवेत् ॥ ५ ॥
विशुद्धभावः कृष्णस्य आवयोर्दृष्टतत्त्वतः।
अतः पात्रतरः कोऽन्यस्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ६ ॥
कृष्णात् कमलपत्राक्षाद् देवदेवाज्जनार्दनात्।

(यदि हम दोनों भाई श्रीकृष्णका अभिषेक करें तो) भगवान् श्रीकृष्णके आश्चर्यमय अभिषेकको देखकर हमारे पापोंका नाश हो जायगा तथा सबके मनमें विशुद्ध भावका उदय होगा, अतः मैं राजाओंसे कहूँगा—'वसुदेवपुत्र भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन कर लेनेपर निश्चय ही सबके पापोंका क्षय हो जाता है। हम दोनोंने श्रीकृष्णके तत्त्वका साक्षात्कार किया है। तीनों लोकोंमें उन कमलनयन देवाधिदेव जनार्दन श्रीकृष्णसे बढ़कर सुपात्र दूसरा कौन है ५-६½

तस्यावां किं प्रदास्याव आतिथ्यकरणे नृप ॥ ७ ॥
पात्रमासाद्य वै राजन् यथा धर्मो न लुप्यते।

'नरेश्वर! हम दोनों उनके आतिथ्य-सत्कारके समय उन्हें कौन-सी ऐसी वस्तु भेंट करें, जिससे उत्तम पात्रको पाकर उसका समुचित आदर न करनेके कारण हमारे धर्मका लोप न होने पावे' ॥७½ ॥

एवमन्योन्यं संचिन्त्य भ्रातरौ क्रथकैशिकौ ॥ ८ ॥
स्वं राज्यं दातुकामौ तु जग्मतुः केशवान्तिकम्।

इस प्रकार दोनों भाई क्रथ और कैशिक आपसमें विचार करके अपना राज्य समर्पित करनेकी इच्छासे भगवान् केशवके निकट गये ॥ ८½ ॥

देवमासाद्य तौ वीरौ विदर्भनगराधिपौ ॥ ९ ॥
ऊचतुस्तौ महाभागौ प्रणम्य शिरसा हरिम् ।

भगवान्‌के पास पहुँचकर विदर्भनगरके स्वामी वे दोनों महाभाग वीर उन श्रीहरिको शिर झुकाकर प्रणाम करनेके पश्चात् उनसे इस प्रकार बोले—॥ ९½ ॥

अद्यावां सफलं जन्म अद्यावां सफलं यशः ।
अद्यावां पितरस्तृप्ता देवे चावां गृहागते ॥ १० ॥

'भगवन् ! आज आप हमारे घर पधारे, इससे हम दोनोंका जीवन सफल हो गया, हमारा यश भी सफल हो गया और हमारे सम्पूर्ण पितर भी तृप्त हो गये ॥ १० ॥

चामरं व्यजनं छत्रं ध्वजं सिंहासनं बलम् ।
स्फीतकोशा पुरी चेयमावाभ्यां सहिता तव ॥ ११ ॥

'यह चामर, व्यजन, छत्र, ध्वज, सिंहासन, सेना तथा समृद्धिशाली कोषसे परिपूर्ण यह पुरी हम दोनों भाइयोंके साथ आपकी सेवामें समर्पित है—हम सब आपके हैं ॥११॥

उपेन्द्रस्त्वं महाबाहो देवेन्द्रेणाभिषिक्तवान् ।
आवामिह हि राज्ये त्वामभिषिक्तं ददामि ते ॥ १२ ॥

'महाबाहो ! आप उपेन्द्र हैं। साक्षात् देवेन्द्रने आपका अभिषेक किया है । हम भी इस राज्यपर आपका अभिषेक करते हैं—सारा राज्य आपको दे रहे हैं ॥ १२ ॥

आवयोर्यत्कृतं कार्यं बहुभिः पार्थिवैरपि ।
न शक्यतेऽन्यथा कर्तुं जरासंधेन वा स्वयम् ॥ १३ ॥

'हम दोनोंने जो आपका अभिषेकरूप कार्य कर दिया है उसे बहुत-से भूपाल अथवा स्वयं राजा जरासंध भी अन्यथा नहीं कर सकता ॥ १३ ॥

शत्रुस्ते मागधो राजा जरासंधो महाद्युतिः ।
कथां ते ब्रुवते नित्यं नृपाणामभयप्रदः ॥ १४ ॥

'मगधदेशका अधिपति महातेजस्वी राजा जरासंध आपका शत्रु है। उसने आपके विरुद्ध होकर राजाओंको अभय प्रदान किया है । वह प्रतिदिन आपके सम्बन्धमें इस तरहकी बातें किया करता है ॥ १४ ॥

सिंहासनमनध्यास्यं पुरं चास्य न विद्यते ।
कथं राजसमाजेऽस्मिन्नास्यते देवकीसुतः ॥ १५ ॥

"कोई भी सिंहासन श्रीकृष्णके बैठने योग्य नहीं है (क्योंकि इसपर मूर्धाभिषिक्त नरेश ही बैठ सकते हैं), इनका कोई नगर या राजधानी भी नहीं है, अतः देवकीनन्दन श्रीकृष्ण राजाओंके इस समाजमें सिंहासनपर कैसे बैठेंगे ॥ १५ ॥

कृष्णोऽपि सुमहावीर्यो ह्यभिमानी महाद्युतिः ।
न चागमिष्यते वास्मिन् कन्यार्थे च स्वयंवरे ॥ १६ ॥

'श्रीकृष्ण भी महापराक्रमी, अभिमानी और महातेजस्वी हैं। वे कन्याके लिये इस स्वयंवरमें कदापि नहीं पधारेंगे ॥१६॥

पार्थिवेषूपविष्टेषु स्वेषु सिंहासनेषु वै ।
कथमास्यति नीचेषु आसनेषु महाद्युतिः ॥ १७ ॥

'जब राजालोग अपने सिंहासनोंपर बैठे होंगे, उस समय वहाँ महातेजस्वी श्रीकृष्ण नीच आसनोंपर कैसे बैठेंगे'' ॥ १७ ॥

इति संचोद्यमानस्तु श्रुत्वासौ भीष्मको नृपः ।
आवयोः सह सम्मन्त्र्य विग्रहोपशमाय च ॥ १८ ॥
तव विश्रामहेतोर्हि कारितेदं गृहोत्तमम् ।

'इस प्रकार पूछे जानेपर राजा भीष्मकने उसकी बात सुनकर हम दोनोंके साथ सलाह की और कलहकी शान्तिके लिये उन्होंने आपके विश्रामके लिये इस उत्तम भवनका निर्माण कराया है ॥ १८½ ॥

देवानामादिदेवोऽसि सर्वलोकनमस्कृतः ॥ १९ ॥
मानुष्ये मर्त्यलोकेऽस्मिन् राजेन्द्रत्वं समाचर ।
समाजे मनुजेन्द्राणां मा भूदासनसंकटम् ॥ २० ॥

'प्रभो ! आप देवताओंके भी आदिदेव हैं। समस्त संसार आपके चरणोंमें मस्तक झुकाता है । आप मर्त्यलोकमें इस मानव-जगत्‌में राजा ही नहीं, राजेन्द्र बनकर रहिये, जिससे नरेन्द्रोंके समुदायमें आसनका संकट (सिंहासनपर बैठनेके प्रश्नको लेकर विवाद) उपस्थित न हो ॥ १९-२०॥

विदर्भनगरे वैषां राजेन्द्रत्वं विचेष्टय ।
आस्यतामासने शुभ्रे श्वः प्रभाते महाद्युते ॥ २१ ॥

'महातेजस्वी गोविन्द ! विदर्भनगरमें इन राजाओंकी राजेन्द्रताको आप विचलित कर दीजिये और कल प्रातःकाल रंग-भूमिमें एक उज्ज्वल सिंहासनपर विराजमान होइये ॥ २१ ॥

अधिवास्याद्य चात्मानं विधिदृष्टेन कर्मणा ।
यथा गमिष्यन्ति नृपाः करिष्ये देवशासनात् ॥ २२ ॥

'आज आप शास्त्रीय विधिके अनुसार अपने आपको अधिवासित (राज्याभिषेकके पूर्वाङ्ग संस्कारसे सम्पन्न) कीजिये । फिर कल मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे देवराज इन्द्रके आदेशसे सब राजा आपके अभिषेकके लिये यहाँ पधारेंगे' ॥ २२ ॥

एवमुक्त्वा सुरश्रेष्ठं प्रणिपत्य कृताञ्जली ।
प्रेषयामासतुर्वीरौ रङ्गमध्ये नृपैर्वृते ॥ २३ ॥

ऐसा कहकर वीर क्रथ और कैशिकने दोनों हाथ जो कर सुरश्रेष्ठ श्रीकृष्णको प्रणाम किया और राजाओंसे हुए रङ्गस्थलमें (देवराज इन्द्रका वह आदेशपत्र)

देवदूतस्य वचनं यथोक्तं वज्रपाणिना।
लिखित्वा सुमहातेजाः कैशिकः प्राह शासनम् ॥ २४ ॥

महातेजस्वी कैशिकने देवदूतके वचनको, जैसा कि वज्रधारी इन्द्रने उसके द्वारा कहलाया था, स्वयं लिखकर राजाओंको सुनाया तथा इन्द्रके आदेशपत्रको भी पढ़ा ॥२४॥

कैशिक उवाच

विदितं वो नृपाः सर्वे वैनतेयसहाच्युतः।
आगतोऽतिथिरूपेण विदर्भनगरीं हरिः ॥ २५ ॥

कैशिक बोले—राजाओ ! आप सब लोगोंको यह विदित है कि अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले भगवान् श्रीहरि गरुड़के साथ अतिथिरूपसे विदर्भपुरीमें पधारे हैं ॥ २५ ॥

प्राप्तमालोक्य पात्रोऽयमिति संचिन्त्य भूपतिः।
प्रददौ वासुदेवाय स्वं राज्यं धर्महेतुना ॥ २६ ॥
इदमासनमास्वेति भ्रात्रा मे चोदिते ततः।
वागुक्ता चाशरीरेण केनापि व्योमचारिणा ॥ २७ ॥

उन्हें आया देख 'यह उत्तम पात्र हैं' ऐसा सोचकर राजा क्रथने भगवान् वसुदेवको धर्मके लिये अपना सारा राज्य समर्पित कर दिया। फिर मेरे भाई क्रथने भगवान्से कहा, 'प्रभो ! यह सिंहासन आपकी सेवामें समर्पित है, इसपर बैठिये।' उनके इतना कहते ही किसी आकाशचारी दिव्य प्राणीने, जिसका शरीर दिखायी नहीं देता था, यह बात कही ॥ २६-२७ ॥

देवदूत उवाच

न युक्तमासनं दातुं त्वयासीनं नराधिप।
इदमस्यासनं दिव्यं सर्वरत्नविभूषितम् ॥ २८ ॥
जाम्बूनदमयं शुभ्रं रचितं विश्वकर्मणा।
प्रेषितं देवराजेन सिंहलक्षणलक्षितम् ॥ २९ ॥
अत्रोपविष्टं देवेशं चराचरनमस्कृतम्।
अभिषिञ्चन्तु राजेन्द्रं बहुभिः पार्थिवैः सह ॥ ३० ॥

देवदूत बोला—नरेश्वर ! जिसपर दूसरे लोग बैठ चुके हैं, ऐसा सिंहासन तुम्हें श्रीकृष्णके लिये देना उचित नहीं है। इनके लिये तो यह सम्पूर्ण रत्नोंसे विभूषित दिव्य सिंहासन प्रस्तुत है, ज़ो जाम्बूनद नामक सुवर्णका बना हुआ और परम उज्ज्वल है। साक्षात् विश्वकर्माने इसका निर्माण किया है। यह सिंहके चिह्नसे चिह्नित है, देवराज इन्द्रने यह आसन भगवान्के लिये भेजा है। समस्त चराचर प्राणी जिनके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं, वे देवेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण जब इसपर बैठ जायँ, तब तुम लोग बहुत-से राजाओंके साथ रहकर इनका राजेन्द्रके पदपर अभिषेक [illegible] ॥ २८-३० ॥

आगताः कुण्डिनगरे कन्याहेतोर्नराधिपाः।
नागमिष्यति यः कश्चित् सोऽस्य वध्यो भविष्यति॥३१॥

इस कुण्डिनपुरमें राजकन्याकी प्राप्तिके लिये जो-जो नरेश पधारे हैं, उनमेंसे जो कोई भी इनके अभिषेकमें न आवेगा, वह इनका वध्य होगा ॥ ३१ ॥

इमे चैवाष्टकलशा निधीनामंशसम्भवाः।
अक्षया राजराजस्य धनेशस्य महात्मनः ॥ ३२ ॥
दिव्या काञ्चनरत्नाढ्या दिव्याभरणयोनयः।
राजेन्द्रस्याभिषेकार्थमागच्छन्ति नृपैर्वृताः ॥ ३३ ॥

ये आठ अक्षय कलश हैं, जो निधियोंके अंशसे उत्पन्न हुए हैं। ये राजाधिराज महात्मा धनेश (कुबेर) के कलश दिव्य कलश हैं, जो सुवर्ण और रत्नोंसे सम्पन्न हैं। इनके आभूषण और आसन भी दिव्य हैं। ये कलश श्रीकृष्णका राजेन्द्रपदपर अभिषेक करनेके लिये राजाओंके साथ आ रहे हैं ॥ ३२-३३ ॥

एष शक्रस्य संदेशः कथितो वो नराधिपाः।
लेखेनाहूय तान् सर्वानभिषिञ्चन्तु केशवम् ॥ ३४ ॥

नरेश्वरो ! यह मैंने आपलोगोंसे इन्द्रका संदेश सुनाया है। अतः आपलोग इस लिखित आज्ञापत्रके द्वारा सब राजाओंको बुलाकर भगवान् श्रीकृष्णका अभिषेक करें ॥३४॥

कैशिक उवाच

इति संचोद्य खस्थोऽसौ देवदूतो गतो दिवम्।
दत्त्वाऽऽसनं च कृष्णाय बालार्कसदृशप्रभम् ॥ ३५ ॥

कैशिकने कहा—ऐसी प्रेरणा देकर तथा श्रीकृष्णके लिये प्रातःकालीन सूर्यके समान कान्तिमान् सिंहासन समर्पित करके वह आकाशमें स्थित हुआ देवदूत स्वर्गलोकको चला गया ॥ ३५ ॥

तेनाहं नोदयिष्यामि भवद्भिर्ये समागताः।
दुर्निवार्यतरं घोरं शक्रस्य स्वयमीरितम् ॥ ३६ ॥

इसलिये मैं आपलोगोंको श्रीकृष्णका अभिषेक करनेके लिये प्रेरित कर रहा हूँ। आपमेंसे जो लोग यहाँ पधारे हैं, उन सबके लिये साक्षात् इन्द्रके द्वारा दी गयी इस आज्ञाका उल्लङ्घन करना अत्यन्त कठिन एवं भयंकर है ॥ ३६ ॥

युष्माभिर्दर्शने युक्तमद्भुतं भुवि दुर्लभम्।
कलशैरभिषिच्यन्तं स्वयमेव नभस्तलात् ॥ ३७ ॥
दृष्ट्वाऽऽश्चर्यं हि नः सर्वान् ध्रुवं पापक्षयो भवेत्।

आकाशसे आठ कलशोंद्वारा श्रीकृष्णका स्वयं ही अभिषेक होगा—यह अद्भुत दृश्य पृथ्वीपर सर्वथा दुर्लभ है। आपलोगोंको भी यह दर्शनीय उत्सव अवश्य देखना चाहिये। इस आश्चर्यजनक दृश्यको देखकर हम सब लोगोंका पाप निश्चय ही दूर हो जायगा ॥ ३७½ ॥

स्नापनार्थं च कृष्णाय देवदेवाय विष्णवे ॥ ३८ ॥
आगच्छध्वं नृपश्रेष्ठा न भयं कर्तुमर्हथ ।

श्रेष्ठ नरपतियो ! आपलोग देवाधिदेव विष्णुस्वरूप श्रीकृष्णको नहलानेके लिये आइये। उनसे भय न कीजिये॥ ३८½॥

आवयोः कृतसन्धानो युष्मदर्थे जनार्दनः ॥ ३९ ॥
सर्वेषां मनुजेन्द्राणामभयं कुरुते हरिः ।
विशुद्धभावः कृष्णस्तु आवयोर्दृष्टतत्त्वतः ॥ ४० ॥

हमने आपलोगोंके लिये जनार्दनसे संधि कर ली है। भगवान् श्रीहरि समस्त नरेशोंको अभयदान कर रहे हैं। हमने श्रीकृष्णके स्वरूपको अच्छी तरह देख और समझ लिया है। आपलोगोंके प्रति इनका भाव सर्वथा शुद्ध है॥ ३९-४० ॥

मागधस्य विशेषेण न वैरं हृदि दृश्यते ।
यदत्र कारणं कार्यं तद् भवद्भिर्विचिन्त्यताम् ॥ ४१ ॥

विशेषतः मगधराज जरासंधके लिये उनके हृदयमें तनिक भी वैर नहीं दिखायी देता है। इसलिये यहाँ जो कार्य-कारण उपस्थित है, उसपर आपलोग अच्छी तरह विचार कर लें॥ ४१ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं संचिन्तयामासुर्नृपाः शापभयार्दिताः ।
भूयः शुश्रुवु राजेन्द्राः केशवाय महात्मने ॥ ४२ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! ऐसी बात सुनकर वे राजा शापके भयसे पीड़ित हो नाना प्रकारकी चिन्ताएँ करने लगे। इतनेमें ही उन राजेन्द्रोंने महात्मा केशवके निमित्त पुनः आकाशवाणी सुनी ॥ ४२ ॥

मेघगम्भीरनादेन स्वरेणापूरयन् नभः ।
वागुवाचाशरीरेण देवराजस्य शासनात् ॥ ४३ ॥

देवराजके शासनसे किसी अदृश्य व्यक्तिने मेघके समान गम्भीर ध्वनिसे आकाशको पूर्ण करते हुए इस प्रकार कहा—॥ ४३ ॥

चित्राङ्गद उवाच

त्रैलोक्याधिपतिः शक्रः प्रजापालनहेतुना ।
आज्ञापयति युष्माकं नृपाणां हितकाम्यया ॥ ४४ ॥

चित्राङ्गद बोला—त्रिलोकीनाथ इन्द्र प्रजा-पालनके लिये तुम सब राजाओंका हित चाहते हुए तुम्हें इस प्रकार आज्ञा दे रहे हैं ॥ ४४ ॥

न युक्तं वसतान्योन्यं कृष्णेन सह वैरिणा ।
वसध्वं प्रीतिमुत्पाद्य स्वराष्ट्रेषु नृपोत्तमाः ॥ ४५ ॥

श्रेष्ठ नरेशगण! तुमलोग श्रीकृष्णके साथ वैरभाव रखकर अथवा श्रीकृष्णको वैरी बनाकर जो उनके साथ रहते हो, ऐसा तुम्हारे लिये उचित नहीं है। तुम्हें एक दूसरेके साथ वैरभाव नहीं रखना चाहिये। तुमलोग परस्पर प्रेम-भाव उत्पन्न करके अपने-अपने राष्ट्रोंमें निवास करो ॥ ४५ ॥

प्रणतार्तिहरः कृष्णः प्रतिसेनान्तकोऽनलः ।
अनेन सह सम्प्रीत्या मोदध्वं विगतज्वराः ॥ ४६ ॥

श्रीकृष्ण शरणागतोंका दुःख दूर करनेवाले हैं; परंतु शत्रुओंकी सेनाके लिये काल और अग्निके समान भयंकर हैं। तुमलोग इनके साथ प्रेमभाव रखकर निश्चिन्त एवं प्रसन्न रहो ॥ ४६ ॥

मानुषाणां नृपा देवा नृपाणां देवताः सुराः ।
सुराणां देवता शक्रः शक्रस्यापि जनार्दनः ॥ ४७ ॥

साधारण मनुष्योंके लिये राजा ही देवता हैं। राजाओंके लिये देवता ही आराध्यदेव हैं। देवताओंके देवता इन्द्र हैं और इन्द्रके भी देवता भगवान् श्रीकृष्ण हैं ॥ ४७ ॥

एष विष्णुः प्रभुर्देवो देवानामपि दैवतम् ।
जातोऽयं मानुषे लोके नररूपेण केशवः ॥ ४८ ॥

ये भगवान् विष्णुदेव देवताओंके भी देवता हैं। ये केशव ही मनुष्यलोकमें मानवरूपमें अवतीर्ण हुए हैं ॥ ४८ ॥

अजेयः सर्वलोकेषु देवदानवमानवैः ।
कार्तिकेयसहायस्य अपि शूलभृतः स्वयम् ॥ ४९ ॥

समस्त लोकोंमें देवता, दानव और मनुष्य इन्हें कभी जीत नहीं सकते। कार्तिकेयके साथ साक्षात् भगवान् त्रिशूलधारी शंकरके लिये भी ये अजेय हैं ॥ ४९ ॥

तस्मै देवाधिदेवाय केशवाय महात्मने ।
अभिषेक्तुं सुरैः सार्द्धं किमिच्छेयमतः परम् ॥ ५० ॥

उन्हीं देवाधिदेव महात्मा केशवके लिये देवताओंसहित मेरी यह इच्छा है कि इनका राजेन्द्रपदपर अभिषेक हो। इससे बढ़कर मुझे और कौन-सी इच्छा हो सकती है ॥ ५०॥

न चाधिकारो देवानां राजेन्द्रस्याभिषेचने ।
तेनाहं नाभिषिञ्चामि सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ ५१ ॥

परंतु राजेन्द्रपदपर किसीका अभिषेक करनेके लिये देवताओंका अधिकार नहीं है; इसीलिये मैं सर्वलोकवन्दित श्रीकृष्णका स्वयं भी अभिषेक नहीं कर रहा हूँ ॥ ५१ ॥

नृपाणामधिकारोऽयं राजेन्द्रस्य निवेशने ।
गत्वा यूयं विदर्भायां क्रथकैशिकयोः सह ॥ ५२ ॥
संचिन्त्य विधिदृष्टेन कुरुध्वं नृपसत्तमाः ।

श्रेष्ठ नरेशगण ! राजेन्द्रपदपर किसीको प्रतिष्ठित करनेका अधिकार केवल राजाओंको ही प्राप्त है। अतः तुम लोग क्रथ और कैशिकके साथ विदर्भपुरीमें जाकर भलीभाँति सोच-विचार करके शास्त्रीय विधिके अनुसार श्रीकृष्णका अभिषेक करो ॥ ५२½ ॥

प्रीतिसन्धानकालोऽयमिति संचिन्त्य वासवः ॥ ५३ ॥
बोधनार्थं विसृष्टोऽहं युष्माकं मनुजेश्वराः ।

नरेश्वरो ! यह तुम लोगोंके लिये परस्पर प्रेमपूर्वक संधि कर लेनेका समय है । इसलिये तुम्हें समझानेके लिये मैं देवताओंकी ओरसे दूत बनाकर भेजा गया हूँ ॥ ५३½ ॥

विदर्भनगरे कृष्णः श्रावितोऽस्याधिवासनम् ॥ ५४ ॥
राजेन्द्रत्वाभिषेकार्थं राजानौ क्रथकैशिकौ ।
ताभ्यां सह नृपश्रेष्ठाः कृत्वा सुमहदुत्सवम् ॥ ५५ ॥
अभिषेकेण सत्कृत्य प्रतिगृह्यास्य दक्षिणम् ।
आगमिष्यथ संहृष्टाः पुनरेव स्वयंवरम् ॥ ५६ ॥

श्रेष्ठ राजाओ ! भगवान् श्रीकृष्ण विदर्भ नगरमें विराजमान हैं और उन्हें उनका अधिवास (अभिषेकका पूर्वाङ्ग संस्कार) सुना दिया गया है अर्थात् वे पूर्वाङ्ग संस्कारसे सम्पन्न हो गये हैं । राजा क्रथ और कैशिक उनका राजेन्द्र-पदपर अभिषेक करनेके लिये सारी तैयारी कर चुके हैं । तुम सब लोग उन दोनोंके साथ महान् उत्सव करके राज्याभिषेकके द्वारा भगवान्का सत्कार और उनकी परिक्रमा करनेके पश्चात् पुनः प्रसन्नतापूर्वक स्वयंवरमें लौट आओ ॥५४-५६॥

जरासंधः सुनीथश्च रुक्मी चैव महारथः ।
शाल्वः सौभपतिश्चैव चत्वारो राजसत्तमाः ॥ ५७ ॥
रङ्गस्याशून्यहेतोर्हि तिष्ठन्तु इह पार्थिवाः ।

यह रङ्गभूमि सूनी न हो जाय—इसके लिये यहाँ चार श्रेष्ठ राजा बैठे रहें—जरासंध, सुनीथ, महारथी रुक्मी और सौभविमानके अधिपति राजा शाल्व ॥ ५७½ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमाज्ञां सुरेशस्य श्रुत्वा चित्राङ्गदेरिताम् ॥ ५८ ॥
गमनाय मतिं चक्रुः सर्व एव नृपोत्तमाः ।
अनुज्ञाता नरेन्द्रेण जरासंधेन धीमता ॥ ५९ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—इस प्रकार चित्राङ्गदके द्वारा कही गयी देवेश्वर इन्द्रकी आज्ञा सुनकर उन सभी श्रेष्ठ नरेशोंने श्रीकृष्णके अभिषेकमें जानेका विचार कर लिया । बुद्धिमान् नरेश जरासंधने भी उन्हें जानेकी अनुमति दे दी ॥ ५८-५९ ॥

भीष्मकं पुरतः कृत्वा प्रयाताः स्वबलैर्वृताः ।
भीष्मकश्च महाबाहुः स्वबलेन समन्वितः ॥ ६० ॥
जगाम पार्थिवैः सार्द्धं दह्यमानेन चेतसा ।
यत्र कृष्णो महाबाहुः कैशिकस्य निवेशने ॥ ६१ ॥

फिर तो वे राजा भीष्मकको आगे करके अपनी सेनाओंके साथ वहाँ गये । महाबाहु भीष्मक भी अपनी सेनाके साथ दूसरे राजाओंको साथ लिये कैशिकके भवनमें, जहाँ महाबाहु श्रीकृष्ण विराजमान थे, गये । उस समय अपने पुत्रके दोषसे वे शोक—चिन्ताकी आगमें जल रहा था ॥ ६०-६१ ॥

दूरादेव प्रकाशन्ती पताकाध्वजमालिनी ।
शुभा देवसभा रम्या स्नानहेतोरिहागता ॥ ६२ ॥

भगवान्के स्नानके लिये सुन्दर सुरम्य देवसभा इस भूतलपर उतर आयी थी, जो दूरसे ही प्रकाशित हो रही थी । वह ध्वजा, पताकाओंसे अलंकृत थी ॥ ६२ ॥

दिव्यरत्नप्रभाकीर्णा दिव्यध्वजसमाकुला ।
दिव्याम्बरपताकाढ्या दिव्याभरणभूषिता ॥ ६३ ॥

उसमें दिव्य रत्नोंकी प्रभा सब ओर व्याप्त हो रही थी । दिव्य ध्वजाएँ फहराती थीं । दिव्य वस्त्रोंकी पताकाएँ उसकी शोभा बढ़ाती थीं और दिव्य आभूषणों (सजावटकी सामग्रियों) से वह सभा विभूषित थी ॥ ६३ ॥

दिव्यस्रग्दामकलिला दिव्यगन्धाधिवासिता ।
विमानयानैः श्रीमद्भिः समन्तात् परिवारिता ॥ ६४ ॥

उसमें जगह-जगह दिव्य पुष्पोंकी मालाएँ लटक रही थीं । दिव्य गन्धोंसे वह सभा सुवासित थी । विमानपर चलनेवाले कान्तिमान् देवताओंने उसे सब ओरसे घेर रखा था ॥ ६४ ॥

दिव्याप्सरोगणाश्चैव विद्याधरगणास्तथा ।
गन्धर्वा मुनयश्चैव किन्नराश्च समन्ततः ॥ ६५ ॥
उपगायन्ति देवेशमम्बरान्तरमाश्रिताः ।
स्तुवन्ति मुनयश्चैव सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ ६६ ॥

दिव्य अप्सराओंके समुदाय, विद्याधरोंके समूह, गन्धर्व, मुनि और किन्नर सब ओर आकाशमें स्थित हो देवेश्वर श्रीकृष्णका यश गाते थे तथा मुनि, सिद्ध एवं महर्षि उनकी स्तुति करते थे ॥ ६५-६६ ॥

देवदुन्दुभयश्चैव स्वयमेवानदन् दिवि ।
पञ्चयोनिसमुत्थानि गन्धचूर्णान्यनेकशः ॥ ६७ ॥
समन्तात् पात्यमानानि चाकाशस्थैर्दिवौकसैः ।

देवताओंकी दुन्दुभियाँ आकाशमें स्वयं ही बज उठीं । आकाशमें खड़े हुए देवता सब ओरसे बारंबार [1]पञ्चयोनि-जनित सुगन्धचूर्ण गिरा रहे थे ॥ ६७½ ॥

स्वयमागत्य देवेन्द्रो देवैः सह शचीपतिः ॥ ६८ ॥
विमानवरमारुह्य सप्रकाशः स्थितोऽम्बरे ।

देवताओंके साथ शचीवल्लभ देवेन्द्र स्वयं आकर एक श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ हो आकाशमें स्थित थे और सब लोग उन्हें प्रत्यक्ष देख रहे थे ॥ ६८½॥

---

[1] विभिन्न वृक्षोंके मूल, त्वचा, पत्र, पुष्प और फल—ये पाँच योनि अर्थात् कारण हैं । इनसे जो गन्धचूर्ण तैयार किये गये हैं, उन्हें पञ्चयोनिजनित कहते हैं । अथवा मन्दार, पारिजात, संतान, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन नामक जो पाँच देववृक्ष हैं, उनसे प्रकट हुए दिव्य गन्धचूर्णको भी यहाँ पञ्चयोनिजनित कहा गया है ।

अष्टौ ये लोकपालास्ते स्वासु दिक्षु समास्थिताः ॥ ६९ ॥
उपगायन्ति नृत्यन्ति स्तुवन्ति च समन्ततः ।

जो आठ लोकपाल थे, वे अपनी दिशाओंमें स्थित हो सब ओर भगवान्‌के यशका गान, नृत्य एवं स्तुति करते थे ॥ ६९½ ॥

श्रुत्वा सुतुमुलं नादं सर्वं एव नराधिपाः ॥ ७० ॥
विस्मयोत्फुल्लनयना विविशुस्ते सभां शुभाम् ।

उनके नृत्य-गान आदिके सम्मिलित शब्दको सुनकर सभी नरेशोंके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे और उन्होंने उस मङ्गलमयी दिव्य सभामें प्रवेश किया ॥ ७०½ ॥

कैशिकश्च महाबाहुरुपगम्य नराधिपान् ॥ ७१ ॥
प्रवेशयामास बली प्रतिपूज्य यथाविधि ।

उस समय बलवान् महाबाहु कैशिक समस्त नरेशोंके पास जाकर उनका विधिपूर्वक पूजन करके उन सबको भीतर ले आये ॥ ७१½ ॥

निवेदिते सुरश्रेष्ठे पार्थिवानां समागमे ॥ ७२ ॥
निर्जगाम हरिः श्रीमान् सर्वमङ्गलपूजितः ।

जब सुरश्रेष्ठ भगवान्‌को समस्त राजाओंके शुभागमनकी सूचना दी गयी, तब सम्पूर्ण मङ्गलमयी सामग्रियोंसे पूजित हुए वे श्रीमान् हरि भवनसे बाहर निकले ॥ ७२½ ॥

ततोऽम्बरस्थास्ते दिव्याः कलशाश्चैलकण्ठिनः ॥ ७३ ॥
सहकारसमायुक्ता ववर्षुर्जलदा इव ।

तदनन्तर, आकाशमें स्थित हुए वे दिव्य कलश, जिनके कण्ठमें वस्त्र लपेटे गये थे तथा जो आम्रपल्लवोंसे सुशोभित थे, भगवान्‌के ऊपर बादलोंके समान जलकी वर्षा करने लगे ॥ ७३½ ॥

दिव्यकाञ्चनरत्नौघैर्दिव्यपुष्पसमन्वितैः ॥ ७४ ॥
गन्धचूर्णविमिश्रैश्च राजेन्द्रस्याभिषेचने ।
यथोक्तविधिपूर्वेण अभिषिच्य जनार्दनम् ॥ ७५ ॥
दर्शयित्वा नरेन्द्राणां दिव्यैरावरणैः शुभैः ।

उन दिव्य कलशोंने भगवान्‌का राजेन्द्रपदपर अभिषेक करते समय दिव्य सुवर्ण एवं रत्नोंके समुदायसे युक्त, दिव्य पुष्पोंसे सुवासित तथा सुगन्धचूर्णसे मिश्रित जलके द्वारा शास्त्रोक्त विधिके अनुसार श्रीकृष्णके अभिषेकका कार्य सम्पन्न करके उन्हें सुन्दर दिव्य वस्त्राभूषणोंद्वारा अलंकृत एवं नरेशोंके लिये दर्शनीय कर दिया ॥ ७४-७५½ ॥

दिव्याम्बरविचित्रैश्च दिव्यमाल्यानुलेपनैः ॥ ७६ ॥
सत्कृत्य विधिवद्राज्ञ उपविष्टो जनार्दनः ।
शुभे देवसभे रम्ये स्नानहेतोरिहागते ॥ ७७ ॥

तत्पश्चात् दिव्य वस्त्र, विचित्र दिव्य माला और दिव्य अनुलेपनसे वहाँ आये हुए राजाओंका विधिपूर्वक सत्कार करके उनकी अनुमति ले, भगवान् श्रीकृष्ण अपने स्नानके लिये इस भूतलपर उतरी हुई सुन्दर एवं रमणीय देवसभाके भीतर (एक उज्ज्वल दिव्य सिंहासनपर) विराजमान हुए ॥

उपास्यमानो यदुभिर्विदर्भैश्च नराधिपैः ।
वैनतेयश्च बलवान् कामरूपी नराकृतिः ॥ ७८ ॥
दक्षिणं पार्श्वमाश्रित्य आसनस्थो महाबलः ।
क्रथश्च कैशिको वीरो वामपार्श्वे तथासने ॥ ७९ ॥
उपविष्टौ महात्मानौ देवस्यानुमते नृपौ ।
तथैव वामपार्श्वे तु वृष्ण्यन्धकमहारथाः ॥ ८० ॥
सात्यकिप्रमुखा वीरा उपविष्टा महाबलाः ।

उस समय यादव तथा विदर्भदेशीय नरेश उनकी सेवामें पास ही खड़े थे । इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले बलवान् एवं महापराक्रमी गरुड़ मनुष्यका रूप धारण करके भगवान्‌के दाहिने बगलमें जाकर एक आसनपर बैठे । वीर क्रथ और कैशिक—ये दोनों महात्मा नरेश भगवान्‌की आज्ञा पाकर उनके वाम पार्श्वमें एक आसनपर बैठे । उसी प्रकार वाम भागमें ही वृष्णि और अन्धक वंशके महारथी सात्यकि आदि महाबली वीर भी विराजमान हुए ॥ ७८-८०½ ॥

भास्करप्रतिमे दिव्ये दिव्यास्तरणविस्तृते ॥ ८१ ॥
सुखोपविष्टं श्रीमन्तं देवैरिव शचीपतिम् ।

सूर्यके समान तेजस्वी तथा दिव्य बिछौनोंसे सुसज्जित दिव्य सिंहासनपर सुखपूर्वक बैठे हुए श्रीमान् भगवान् श्रीकृष्ण देवताओंके साथ विराजमान शचीपति इन्द्रके समान शोभा पा रहे थे ॥ ८१½ ॥

सचिवैः श्राविताः सर्वे प्रविष्टास्ते नराधिपाः ॥ ८२ ॥
यथार्हेण च सम्पूज्य राजानः सर्व एव ते ।
सुखोपविष्टास्ते स्वेषु आसनेषु नराधिपाः ॥ ८३ ॥

तदनन्तर मन्त्रियोंसे राजाज्ञा पाकर सभी नरेश उस भवनमें प्रविष्ट हुए । उन समस्त नरेशोंने यथायोग्य भगवान्‌का पूजन किया; फिर वे अपने आसनोंपर सुखपूर्वक बैठ गये ॥ ८२-८३ ॥

कैशिकस्तु महाप्राज्ञः सर्वशास्त्रार्थवित्तमः ।
पूजयित्वा यथान्यायमुवाच वदतां वरः ॥ ८४ ॥

इसके बाद वक्ताओंमें श्रेष्ठ महाज्ञानी कैशिक, जो समस्त शास्त्रोंके मर्मज्ञ थे, यथोचितरूपसे भगवान्‌का पूजन करके इस प्रकार बोले—॥ ८४ ॥

कैशिक उवाच

अविज्ञाता नृपाः सर्वे मानुषोऽयमिति प्रभो ।
भवन्तमुपरुद्धानां देव त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥ ८५ ॥

कैशिकने कहा—प्रभो ! देव ! अबतक सब र
अज्ञानवश आपके विषयमें यही जानते थे कि ये भी मनु

इसीलिये ये लोग आपके प्रति अपराध कर बैठे हैं। आप इन अपराधियोंको क्षमा कर दें ॥ ८५ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

न मे वैरं प्रवसति एकाहमपि कैशिक।
विशेषेण नरेन्द्राणां क्षत्रधर्मेऽवतिष्ठताम् ॥ ८६ ॥
योद्धव्यमिति धर्मेण अधर्मे तु पराङ्मुखे।
तेषां किंहेतुना कोपः कर्तव्यस्त्ववनीश्वराः ॥ ८७ ॥
यद्गतं तदतिक्रान्तं ये मृतास्ते दिवं गताः।
एष धर्मो नृलोकेऽस्मिञ्जायन्ते च म्रियन्ति च ॥ ८८ ॥

श्रीकृष्ण बोले—कैशिक ! मेरे मनमें एक दिन भी वैर नहीं टिकता है। विशेषतः क्षत्रिय-धर्ममें स्थिर रहनेवाले नरेशोंपर, जो युद्धको धर्म समझकर उसमें प्रवृत्त होते और अधर्मसे मुँह मोड़े रहते हैं, किसलिये क्रोध किया जाय। भूमिपालो ! जो बीत गया, वह गया; जो लोग मर गये, वे स्वर्गमें चले गये। इस मनुष्य-लोकका यह स्वाभाविक धर्म (नियम) है कि यहाँ प्राणी जन्म लेते और मरते रहते हैं॥

तस्मादशोच्यं भवतां मृतार्थे च नराधिपाः।
क्षन्तव्यं रोचतेऽस्माकं वीतवैरा भवन्तु ते ॥ ८९ ॥

अतः नरेश्वरो ! जो लोग मर गये या मारे गये, उनके लिये आपलोगोंको शोक नहीं करना चाहिये। हमें तो क्षमा ही अच्छी लगती है। अतः वे सब राजा आजसे वैरभावका त्याग करके निर्वैर हो जायँ ॥ ८९ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा नरेन्द्रांस्तानाश्वास्य मधुसूदनः।
कैशिकस्य मुखं वीक्ष्य विरराम महाद्युतिः ॥ ९० ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! उन नरेशोंसे ऐसा कहकर उन्हें आश्वासन दे महातेजस्वी भगवान् मधुसूदन कैशिकके मुँहकी ओर देखकर चुप हो गये ॥ ९० ॥

एतस्मिन्नेव काले तु भीष्मको नयकोविदः।
पूजयित्वा यथान्यायमुवाच वदतां वरः ॥ ९१ ॥

इसी समय वक्ताओंमें श्रेष्ठ नीतिकुशल राजा भीष्मक भगवान्‌का यथोचित पूजन करके बोले—॥ ९१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीस्वयंवरे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें रुक्मिणीका
स्वयंवरविषयक पचासवाँ अध्याय परा हुआ ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण और भीष्मकका संवाद, भीष्मकद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति तथा श्रीकृष्णका मथुरागमन

भीष्मक उवाच

पुत्रो मे बालभावेन भगिनीं दातुमिच्छति।
स्वयंवरे नरेन्द्राणां न चाहं दातुमुत्सहे ॥ १ ॥

भीष्मकने कहा—भगवन् ! मेरा पुत्र रुक्मी अपने बालचापल्य या अविवेकके कारण अपनी बहिनको नरेन्द्रोंके समक्ष स्वयंवरमें देना चाहता है; परंतु मेरी इच्छा उसे स्वयवरमें देनेकी नहीं है ॥ १ ॥

अतीव बालभावत्वाद् दातुमिच्छेन्मतिर्मम।
एका ह्येकं समालोक्य वरयिष्यति मे मतिः ॥ २ ॥

अत्यन्त बचपन या मूर्खताके कारण ही वह अपनी बहिनको स्वयंवरमें देना चाहता है, ऐसा मेरा विश्वास है। मेरी राय तो यही है कि वह अकेली एकमात्र मनोनीत पतिका वरण करे ॥ २ ॥

अतः प्रसादयिष्ये त्वां पुत्रदुर्नयहेतुना।
प्रसादं कुरु देवेश क्षन्तुमर्हसि मे प्रभो ॥ ३ ॥

अतः प्रभो ! मैं अपने पुत्रकी दुर्नीतिके कारण (अपनेको अपराधी मानकर) आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ। देवेश्वर ! आप मुझपर कृपा बनाये रखें और मेरे अपराधको [illegible] कर दें ॥ ३ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

बालभावेन पुत्रेण चालितं नृपमण्डलम्।
यदा भवति वै प्रौढः कीदृशोऽविनयो भवेत् ॥ ४ ॥

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! आपके पुत्रने बाल्यावस्थामें ही समस्त नरेश-मण्डलमें हलचल मचा दी है; फिर जब वह प्रौढ़ होगा, तब न जाने उसकी उद्दण्डता कैसी हो जायेगी ? ॥ ४ ॥

सूर्येन्दुसदृशाँल्लोकांस्तपसोपार्जितश्रियः।
लोकेऽस्मिन् नरदेवानां महाकुलसमुद्भवान् ॥ ५ ॥
एकस्यापि नृपस्याग्रे मोहाद् यो वितथं वदेत्।
न स तिष्ठति लोकेऽस्मिन् निर्दहेद् दण्डवह्निना,॥ ६ ॥

जो एक राजाके सामने भी मोहवश झूठ बोलता है, वह राजाओंको मिलनेवाले सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रकाशमान तथा तपस्यासे श्रीसम्पन्न हुए लोकोंको, जो उसे महान् कुलमें उत्पन्न होनेके कारण सुगमतापूर्वक किये गये बड़े-बड़े यज्ञोंद्वारा प्राप्त हुए हैं, यम-यातनाकी आगसे दग्ध कर देता है और उन लोकोंमेंसे ही एक जो यह लोक है, इसमें भी वह रह नहीं पाता है ॥ ५-६ ॥

एष धर्मो नरेन्द्राणामिति ते विदितं प्रभो।
लोकधर्मं पुरस्कृत्य पुरा गीतं स्वयम्भुवा॥ ७॥

प्रभो! यह (सत्यभाषण) नरेशोंका धर्म है। इस बातको आप भी जानते ही होंगे। स्वयम्भू ब्रह्माजीने पूर्वकालमें लोकधर्मको सामने रखते हुए सत्यके ही महत्त्वका मान किया है॥ ७॥

कथं तव सुतस्तेषामग्रतो मनुजेश्वर।
वक्तुमर्हति राजेन्द्र वितथं राजसंसदि॥ ८॥

मनुजेश्वर! राजेन्द्र! ऐसी दशामें आपका पुत्र राजसभामें उन राजाओंके आगे झूठ कैसे बोल सकता है? (जिसमें आपकी सम्मति नहीं होगी, उसकी घोषणा वह कैसे कर सकता है) ॥ ८॥

तादृशं रङ्गमतुलं कारयंस्तनयस्तव।
कथं त्वया ह्यविज्ञात इति मे संशयो महान्॥ ९॥

आपका पुत्र जब वैसा अनुपम रंगस्थल बनवा रहा था, तब आप उसकी उस चेष्टासे किस तरह अनजान रह गये? यह मेरे मनमें महान् संशय है॥ ९॥

आगतानां नरेन्द्राणामनलार्केन्दुवर्चसाम्।
यथार्हेण तु सम्पूज्य आतिथ्यं कृतवानसि॥ १०॥

अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाके समान कान्तिमान् नरेश यहाँ पधारे हैं और आपने उन सबका यथायोग्य पूजन करके आतिथ्यसत्कार किया है। (फिर आप इन सब बातोंसे अपनेको अपरिचित कैसे बता रहे हैं) ॥ १०॥

रथाश्वनरनागानां विमर्दमतुलं तथा।
कथं न ज्ञातवान् राजंस्तव पुत्रस्य चेष्टितम्॥ ११॥

राजन्! रथ, घोड़े, हाथी और पैदल सैनिकोंसे भरी हुई चतुरङ्गिणी सेनाका जो अनुपम संहार हुआ है, वह सब आपके पुत्रकी कुचेष्टाका ही फल है, इस बातकी जानकारी आपको कैसे नहीं हुई? ॥ ११॥

षादो न भवेदत्र चतुरङ्गबलागमे।
थं न ज्ञायते राजन्निति मे बुद्धिसंशयः॥ १२॥

राजन्! जब यहाँ चतुरङ्गिणी सेनाका जमाव होगा, तब ा कोई खेदजनक घटना नहीं घटित होगी—यह बात आपकी समझमें कैसे नहीं आ रही है। यह मेरी बुद्धिमें संशय त्पन्न हो गया है॥ १२॥

मागमनमेवेह प्रायेण न हितं तव।
तो न कृतमातिथ्यमपात्राय नरेश्वर॥ १३॥

नरेश्वर! मेरा यहाँ आगमन ही प्रायः आपके लिये हित- र नहीं है—ऐसा समझकर ही आपने मुझ अपात्रका ातिथ्य-सत्कार नहीं किया॥ १३॥

पात्रेभ्यो दीयतां कन्या मामपास्य नरेश्वर।
ममागमनदोषेण कथं कन्यां न दास्यसे॥ १४॥

राजन्! मुझे छोड़कर आप इन सुपात्र राजाओंको अपनी कन्या दीजिये। मेरे आ जानेके ही दोषसे आप अपनी कन्याका दान कैसे नहीं करेंगे॥ १४॥

कन्याविघ्नं च कुर्वाणो नरके परिपच्यते।
इति धर्मविदैर्गीतं मन्वादिभिर्नरोत्तमैः॥ १५॥

कन्याके विवाहमें विघ्न डालनेवाला मनुष्य नरककी आगमें पकाया जाता है—ऐसा मनु आदि धर्मज्ञ नरेशोंने कहा है॥ १५॥

अतोऽर्थं न प्रविष्टोऽहं रङ्गमध्ये विशाम्पते।
विदित्वा नकृतातिथ्यं नरदेव तवालयम्॥ १६॥

प्रजानाथ! इसीलिये मैं रङ्गभूमिमें नहीं आया हूँ, नरदेव! मुझे पहले ही ज्ञात हो गया था कि आपका घर आतिथ्यहीन है॥ १६॥

ह्रियाभिभूतो राजेन्द्रपार्थिवोऽहं नराधिप।
विदर्भनगरे राजन् बलविश्रामहेतुना॥ १७॥

राजन्! नरेश्वर! मैंने विदर्भ नगरमें विश्रामके लिये जो अपनी सेनाको ठहरा दिया—इसके कारण राजेन्द्रोंका राजा होकर भी मैं लज्जासे गड़ गया हूँ (क्योंकि यदि मैंने यहाँ विश्राम न किया होता, तो मुझे आपके द्वारा सत्कृत न होनेका अपमान नहीं सहना पड़ता)॥ १७॥

आवाभ्यां कृतमातिथ्यं कैशिकस्तु प्रियातिथिः।
उषितौ च यथा स्वर्गे पुरा गरुडकेशवौ॥ १८॥

इतनेपर भी मैंने और गरुड़ने पूरा-पूरा आतिथ्य-सत्कार प्राप्त किया है; क्योंकि राजा कैशिकको अतिथि प्रिय है। हम दोनों यहाँ उसी तरह सुखसे रहे हैं, जैसे पहले वैकुण्ठधाममें रहा करते थे॥ १८॥

वैशम्पायन उवाच

एवमेव ब्रुवाणं तु कृष्णं वाग्वज्रचोदितम्।
श्लक्ष्णवाचाम्बुनाऽऽसिच्य शमितोऽग्निरिव ज्वलन् १९

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! ऐसी ही बातें कहकर जिन्होंने वाग्वज्रका प्रहार किया था, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णको, जो अग्निके समान प्रज्वलित हो रहे थे, राजा भीष्मकने अपनी मधुर-वाणीरूप जलसे सींचकर शान्त किया॥ १९॥

भीष्मक उवाच

प्रसीद देवलोकेश पाहि मां लोकशासन।
अज्ञानतमसाविष्टं ज्ञानचक्षुःप्रदो भव॥ २०॥

भीष्मक बोले—'देवलोकेश्वर! आप मुझपर प्रसन्न हों, लोकशासक परमेश्वर! मेरी रक्षा कीजिये। मैं अ

अन्धकारसे घिरा हुआ हूँ, आप मुझे ज्ञानरूपी नेत्र प्रदान करें ॥ २० ॥

मानुष्ये मांसचक्षुष्ट्वादसम्यग्विदिता वयम् ।
न प्रसिद्ध्यन्ति कर्माणि क्रियतामविचारणात् ॥ २१ ॥

मनुष्ययोनिमें जन्म लेकर मांसपिण्डपर ही दृष्टि रखनेके कारण अथवा केवल स्थूलदर्शी होनेके कारण हम सम्यग् ज्ञानसे वञ्चित हैं (हमारी बुद्धि उलटी हो गयी है) । अतः अविचारपूर्वक कर्म करनेके कारण हमारे कार्य सिद्ध नहीं हो पाते ॥ २१ ॥

भवन्तं शरणं प्राप्य देवानामपि दैवतम् ।
सम्यग् भवतु मे दृष्टिः सम्पश्यन्तु च मे क्रियाः ॥ २२ ॥

आप देवताओंके भी देवता हैं । आपकी शरणमें आकर मेरी दृष्टि उत्तम हो जाय और मेरे सारे कर्म ठीक ढंगसे सम्पन्न हों ॥ २२ ॥

अनिष्पन्नामपि क्रियां नयोपेतां विचक्षणाः ।
फलदां हि प्रकुर्वन्ति महासेनापतिर्यथा ॥ २३ ॥

जैसे प्रधान-सेनापति अयोग्य सेनाका भी नीतिपूर्वक सञ्चालनकर उसे सफल बना देता है, उसी तरह विद्वान् पुरुष असम्पन्न कर्मको भी यदि वह न्याययुक्त है, तो फलदायक बना देते हैं ॥ २३ ॥

भवन्तं शरणं प्राप्य नाति बाधति मे भयम् ।
यन्मया चिन्तितं कार्यं तद् भवाञ्छ्रोतुमर्हति ॥ २४ ॥

आपकी शरणमें आ जानेके कारण अब मुझे किसी प्रकारका भय नहीं सता रहा है । मैंने जो कार्य सोचा है, उसे आप सुननेकी कृपा करें ॥ २४ ॥

न दातुमिच्छे कन्यां वै पार्थिवेभ्यः स्वयंवरे ।
प्रसादं कुरु देवेश न कोपं कर्तुमर्हसि ॥ २५ ॥

देवेश्वर ! मैं स्वयंवरमें आये हुए राजाओंको अपनी कन्या देना नहीं चाहता । आप मुझपर कृपा करें, क्रोध न करें ॥

श्रीकृष्ण उवाच

वचनेन किमुक्तेन त्वया राजन् महामते ।
स्वकन्यां दास्यसे नेति कोऽत्र नेता तवानघ ॥ २६ ॥

श्रीकृष्ण बोले—महामते नरेश्वर ! आप केवल बातें बनाते हैं । इससे क्या होगा ? अनघ ! आप अपनी कन्या किसीको देंगे या नहीं—इस विषयमें आपको रोकनेवाला कौन है ? ॥ २६ ॥

मा देहीति न चाख्येयं ददस्वेति न मे वचः ।
रुक्मिण्या दिव्यमूर्तित्वं सम्बन्धे कारणं मम ॥ २७ ॥

'आप दूसरेको कन्या न दीजिये, मुझे ही दीजिये' यह [illegible] प्रकारकी बातें मुझे नहीं कहनी चाहिये। रुक्मिणी दिव्यरूपधारिणी देवी है, उसकी यह दिव्यता ही उसके साथ मेरे भावी सम्बन्धमें कारण है ॥ २७ ॥

मेरुकूटे पुरा देवैः कृतमंशावतारणम् ।
तदा निसृष्टा श्रीः पूर्वं गच्छ त्वं पतिना सह ॥ २८ ॥
मानुष्ये कुण्डिनगरे भीष्मकस्याङ्गनोदरे ।
जायस्व विपुलश्रोणि प्रत्यवेक्ष्य च वासवम् ॥ २९ ॥

पूर्वकालमें मेरुपर्वतके शिखरपर एकत्र हुए देवताओंने अपने-अपने अंशको भूतलपर उतारा था । उस समय ब्रह्माजीने लक्ष्मीसे कहा—'देवि ! तुम भी अपने पतिके साथ जाओ! और मनुष्यलोकमें कुण्डिनपुरके भीतर राजा भीष्मककी रानीके गर्भसे जन्म लो । विपुलश्रोणि ! इन्द्रपर कृपा करके तुम्हें ऐसा करना चाहिये ॥ २८-२९ ॥

तेनाहं वः प्रवक्ष्यामि राजन्नकृतकं वचः ।
श्रुत्वा स्वयं विनिश्चित्य यद् युक्तं तत् करिष्यति ॥ ३० ॥
रुक्मिणी नाम ते कन्या न सा प्राकृतमानुषी ।
श्रीरेषा ब्रह्मवाक्येन जाता केनापि हेतुना ॥ ३१ ॥

राजन् ! इसीलिये मैं आपसे स्वाभाविक बात कह रहा हूँ, इसमें कहीं कृत्रिमता या बनावट नहीं है । इस बातको सुनकर आपकी कन्या रुक्मिणी स्वयं ही अपने कर्तव्यका निश्चय करके जो उचित समझेगी, वह करेगी; क्योंकि वह साधारण स्त्री नहीं है, यह साक्षात् लक्ष्मी है और किसी कारणवश ब्रह्माजीके कहनेसे यहाँ प्रकट हुई है ॥ ३०-३१ ॥

न च सा मनुजेन्द्राणां स्वयंवरविधिक्षमा ।
एका त्वेकाय दातव्या इति धर्मो व्यवस्थितः ॥ ३२ ॥

वह नरेन्द्रोंके सामने स्वयंवरविधिका पालन करने योग्य नहीं है । एक कन्याको एक ही वरके हाथमें देना चाहिये—यही सिद्धान्तभूत सुस्थिर धर्म है ॥ ३२ ॥

न च तां शक्यसे राजल्लँक्ष्मीं दातुं स्वयंवरे ।
सदृशं वरमालोक्य दातुमर्हसि धर्मतः ॥ ३३ ॥

राजन् ! आप उस लक्ष्मीको स्वयंवरमें नहीं दे सकते। किसी योग्य वरको देखकर धर्मपूर्वक उसके हाथमें उसका दान कर देना ही आपके लिये उचित है ॥ ३३ ॥

अतोऽर्थं वैनतेयोऽयं विघ्नकारणहेतुना ।
आगतः कुण्डिनगरे देवराजेन चोदितः ॥ ३४ ॥

इसीलिये देवराज इन्द्रसे प्रेरित होकर यह विनतानन्दन गरुड़ इस स्वयंवरमें विघ्न डालनेके हेतु कुण्डिनपुरमें पधारे हैं ॥ ३४ ॥

अहं चैवागतो राज्ञां द्रष्टुकामो महोत्सवम् ।
तां च कन्यां वरारोहां पद्मेन रहितां श्रियम् ॥ ३५ ॥

मैं राजाओंके इस महान् उत्सवको तथा बिना कमलकी लक्ष्मीरूपा इस परम सुन्दरी राजकन्याको देखनेकी इच्छासे यहाँ आया था ॥ ३५ ॥

क्षन्तव्यमिति यत् प्रोक्तं त्वया राजन् ममाग्रतः।
युक्तिपूर्वमहं मन्ये कलुषाय न पार्थिव ॥ ३६ ॥

राजन्! पृथ्वीनाथ! आपने जो मेरे सामने यह बात कही कि मेरा अपराध क्षमा करना चाहिये, सो ठीक है। मैं इसे युक्तिसंगत मानता हूँ। इसमें दुर्भावका कोई कारण नहीं है॥ ३६ ॥

पूर्वमेव मयाऽऽख्यातं येनास्मि विषये तव।
आगतः सौम्यरूपेण तेनैव क्षान्तवान् विभो ॥ ३७ ॥

विभो! इस विषयमें तो मैं पहले ही कह चुका हूँ कि आपके राज्यमें सौम्यरूपसे आया हूँ (विरोधीरूपसे नहीं)। इसीसे आपको समझ लेना चाहिये कि मैंने क्षमा कर दी है॥ ३७ ॥

क्षान्तेषु गुणबाहुल्यं दोषापहरणं क्षमा।
कथमस्मद्विधे राजन् कलुषो वसते हृदि ॥ ३८ ॥

राजन्! क्षमाशील पुरुषोंमें बहुत-से गुण प्रकट होते हैं। क्षमा सब दोषोंको हर लेनेवाली है। मुझ-जैसे पुरुषके हृदयमें दुर्भाव कैसे रह सकता है ॥ ३८ ॥

कुलजे सत्त्वसम्पन्ने धर्मज्ञे सत्यवादिनि।
भवादृशे कथं राजन् कलुषो भुवि वर्तते ॥ ३९ ॥

नरेश्वर! आप भी कुलीन, सत्त्वगुण-सम्पन्न, धर्मज्ञ और सत्यवादी हैं। इस भूतलपर आप-जैसे पुरुषके हृदयमें कलुष-भाव कैसे टिक सकता है ॥ ३९ ॥

क्षान्तोऽयमिति मन्तव्यं मम सेनासहागतम्।
न चाहं सेनया सार्द्धं यास्यामि रिपुवाहिनीम् ॥ ४० ॥

मैं सेनाके साथ यहाँ आया हूँ, इसलिये आपको यही मानना चाहिये कि ये क्षमाशील हैं; क्योंकि मैं शत्रुओंकी सेनामें अपनी सेना साथ लेकर नहीं जाता हूँ ॥ ४० ॥

अक्षान्तश्चारिसेनायां यास्यामि द्विजवाहने।
स्थितः सोमार्कसंकाशान्यायुधानि करैर्वहन् ॥ ४१ ॥

जब मैं असहिष्णु होकर शत्रु-सेनापर आक्रमण करता हूँ, तब गरुड़पर बैठता हूँ और अपने हाथोंमें चन्द्रमा तथा सूर्य-के समान चमकीले अस्त्र-शस्त्र धारण करता हूँ ॥ ४१ ॥

मान्योऽस्माकं त्वया राजन् वयसा च पिता समः।
पालयस्व पुरीं सम्यक्क्षत्रेषु पितृवद् वस ॥ ४२ ॥

राजन्! मेरे लिये पिता सबसे अधिक आदरणीय हैं, जो अवस्थामें आपके ही तुल्य हैं (अतः आप भी मेरे लिये पिताके ही तुल्य हैं)। आप अपनी पुरीका भलीभाँति पालन कीजिये और क्षत्रियोंमें पिताके समान आदरणीय बनकर रहिये॥

कलुषो नाम राजेन्द्र वसेत् कापुरुषेषु वै।
शूरेषु शुद्धभावेषु कलुषो वसते कथम् ॥ ४३ ॥

राजेन्द्र! दुर्भाव तो कायरोंमें रहा करता है, विशुद्ध भाववाले शूरवीरोंमें कलुषित भाव कैसे रह सकता है ॥४३॥

जानीध्वमेषा मे वृत्तिः पुत्रेषु पितृवद् वयम्।
इमावपि च राजानौ विदर्भनगराधिपौ ॥ ४४ ॥

मेरी यह वृत्ति सर्वथा कलुष भावसे रहित है, इस बात-को आपलोग अच्छी तरह जान लें। हम पुत्रोंपर पिताके तुल्य ही स्नेह रखते हैं। ये दोनों विदर्भनगरके अधिपति राजा क्रथ और कैशिक भी ऐसे ही स्वभावके हैं ॥ ४४ ॥

आतिथ्यकरणेऽस्माकं स्वराज्यं ददतावुभौ।
तेन दानफलेनास्य दशपूर्वा दिवं गताः ॥ ४५ ॥

इन दोनोंने हमलोगोंका आतिथ्य-सत्कार करते समय मुझे अपना सारा राज्य ही समर्पित कर दिया। उस दानके फलसे इनके दस पीढ़ी पहलेके पूर्वज स्वर्गलोकमें चले गये॥

भविष्याश्चैव राजानः पुत्रपौत्रा दशावराः।
तेऽपि तत्रैव यास्यन्ति देवलोकं नराधिपाः ॥ ४६ ॥

भविष्यमें भी दस पीढ़ीतक जो पुत्र-पौत्र आदि राजा होंगे, वे सभी नरेश उक्त दानके फलसे उसी देवलोकमें जायँगे॥

अनयोः सुचिरं कालं भुक्त्वा राज्यमकण्टकम्।
यदाभिलाषो मोक्षस्य यास्येते निर्वृतिं सुखम् ॥ ४७ ॥

इन दोनोंको चिरकालतक अकण्टक राज्य भोग लेनेके पश्चात् जब मोक्षकी अभिलाषा होगी, तब ये सुखस्वरूप परमानन्द-पदको प्राप्त कर लेंगे ॥ ४७ ॥

नरेन्द्राश्च महाभागा येऽभिषेचितुमागताः।
कालेन तेऽपि यास्यन्ति देवलोकं त्रिविष्टपम् ॥ ४८ ॥

जो महाभाग नरेश मेरा अभिषेक करनेके लिये आये थे, वे भी समयानुसार देवताओंके निवासभूत स्वर्गलोकमें चले जायँगे ॥ ४८ ॥

स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि वैनतेयसहायवान्।
नगरीं मथुरां रम्यां भोजराजेन पालिताम् ॥ ४९ ॥

आपलोगोंका कल्याण हो, अब मैं गरुड़के साथ भोज-राज उग्रसेनद्वारा पालित रमणीय मथुरापुरीको जाऊँगा ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा तु राजानं भीष्मकं यदुनन्दनः।
राज्ञश्चैवमुपामन्त्र्य वैदर्भाभ्यां विशेषतः ॥ ५० ॥
सभान्निष्क्रम्य देवेशो जगाम रथमन्तिकम्।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! राजा भीष्मक-से ऐसा कहकर विशेषतः वहाँ बैठे हुए राजाओंसे विदा ले यदुकुलनन्दन देवेश्वर श्रीकृष्ण विदर्भराज क्रथ और कैशिक-के साथ सभाभवनसे निकलकर रथके निकट गये ॥ ५०½ ॥

ततः प्रहृष्टो राजर्षिर्भीष्मकः किल केशवम् ॥ ५१ ॥
ते सर्वे च महीपाला विषण्णवदनाभवन्।

तदनन्तर, भगवान् श्रीकृष्णको जाते देख राजर्षि भीष्मक बड़े प्रसन्न हुए और उन समस्त भूपालोंके मुखपर विष छा गया ॥ ५१½ ॥

आद्यं स्वायम्भुवं रूपं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ५२ ॥
सहस्रपात् सहस्राक्षं सहस्रभुजविग्रहम् ।
सहस्रशिरसं देवं सहस्रमुकुटोज्ज्वलम् ॥ ५३ ॥
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
दिव्याभरणसंयुक्तं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ ५४ ॥
कृष्णं रक्तारविन्दाक्षं चन्द्रसूर्याग्निलोचनम् ।
दृष्ट्वा स राजा राजेन्द्रं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ॥ ५५ ॥
वाङ्मनःकायसंयुक्तं स्तोतुमारब्धवांस्तदा ।

जो सबके आदिकारण, स्वयम्भूस्वरूप, देवताओं और असुरोंद्वारा वन्दित, सहस्रों चरणोंसे युक्त, सहस्रों नेत्रोंसे विभूषित, सहस्र भुजाओंसे सुशोभित शरीरवाले, सहस्रों मस्तकोंसे सम्पन्न तथा सहस्रों मुकुटोंसे प्रकाशमान हैं, जो दिव्य माला तथा दिव्य वस्त्र धारण करनेवाले, दिव्य गन्ध और दिव्य अनुलेपनसे अलंकृत हैं, जिनके श्रीअंगोंपर दिव्य आभूषण शोभा देते हैं, जो अनेक दिव्य आयुधोंसे सम्पन्न हैं तथा चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि जिनके नेत्र हैं, उन अरुण कमलनयन राजेन्द्र श्रीकृष्णको देखकर राजा भीष्मक हाथ जोड़ उनके चरणोंमें गिर पड़े। इस प्रकार मन, वाणी और शरीरद्वारा प्रणाम करके उन्होंने उस समय उनकी स्तुति आरम्भ की ॥ ५२–५५½ ॥

भीष्मक उवाच

देवदेव नमस्तुभ्यमनादिनिधनाय वै ॥ ५६ ॥
शाश्वतायादिदेवाय नारायण परायण ।

भीष्मक बोले—देवदेव ! आपको नमस्कार है। आप आदि और अन्तसे रहित हैं, आपको नमस्कार है। नारायण ! आप सबके परम आश्रय हैं। आप सनातन आदिदेवको नमस्कार है ॥ ५६½ ॥

स्वयम्भुवे च विश्वाय स्थाणवे वेधसाय च ॥ ५७ ॥
पद्मनाभाय जटिने दण्डिने पिङ्गलाय च ।
हंसप्रभाय हंसाय चक्ररूपाय वै नमः ॥ ५८ ॥

आप ही स्वयम्भू (ब्रह्मा), विश्वरूप, स्थाणु (महादेव अथवा स्थावर प्राणी), वेधस् (विधाता), पद्मनाभ, जटाधारी, दण्डधारी, पिङ्गलवर्ण, हंसकान्ति, हंसरूप तथा चक्रस्वरूप हैं। आपको नमस्कार है॥ ५७-५८ ॥

वैकुण्ठाय नमस्तस्मै अजाय परमात्मने ।
सदसद्भावयुक्ताय पुराणपुरुषाय च ॥ ५९ ॥

आप वैकुण्ठ-धामके अधिपति, अजन्मा एवं परमात्मा हैं। आपको नमस्कार है। आप ही सद्भाव और असद्भावसे युक्त हैं, आप ही पुराणपुरुष हैं। आपको नमस्कार है ॥५९॥

पुरुषोत्तमाय युक्ताय निर्गुणाय नमोऽस्तु ते ।
[illegible] भव मे नित्यं त्वद्भक्ताय सुरोत्तम ॥ ६० ॥
लोकनाथोऽसि नाथ त्वं विष्णुस्त्वं विदितात्मनाम् ।

आप योगयुक्त पुरुषोत्तम एवं निर्गुण परमात्मा हैं। आपको नमस्कार है। सुरश्रेष्ठ ! मैं आपका भक्त हूँ। आप मेरे लिये सदा वरदायक हों। नाथ ! आप ही सम्पूर्ण लोकोंके नाथ—संरक्षक हैं। आत्मज्ञानियोंके 'विष्णु' (सर्वव्यापी परमात्मा) भी आप ही हैं ॥ ६०½ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं स्तुत्वा महादेवं नृपाणामग्रतो नृपः ॥ ६१ ॥
महार्हमणिमुक्ताभिर्वज्रवैदूर्यहासिनम् ।
शातकुम्भस्य निचयं कृष्णाय प्रददौ नृपः ॥ ६२ ॥
पुनश्चक्रे नमस्कारं वैनतेये महाबले ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! राजा भीष्मकने समस्त नरेशोंके सामने बहुमूल्य मणियों तथा मुक्ताओंद्वारा वज्र और वैदूर्यमणिका भी उपहास करनेवाले महान् देवता श्रीकृष्णकी इस प्रकार स्तुति करके उन्हें सुवर्णकी राशि भेंट की। फिर महाबली विनतानन्दन गरुडको भी नमस्कार किया॥

भीष्मक उवाच

नमस्तस्मै खगेन्द्राय नमो मारुतरंहसे ॥ ६३ ॥
कामरूपाय दिव्याय काश्यपाय च वै नमः ।

भीष्मक बोले—जिनका वेग वायुके समान है, जो इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, दिव्यस्वरूप एवं कश्यपमुनिके पुत्र हैं, उन पक्षिराज गरुडको नमस्कार है, नमस्कार है॥

वैशम्पायन उवाच

इति संक्षेपतः स्तुत्वा सत्कृत्य वरभूषणैः ॥ ६४ ॥
ततो विसर्जयामास कृष्णं कमललोचनम् ।
अनुजग्मुर्नृपाश्चैव प्रस्थितं वासवानुजम् ॥ ६५ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! इस प्रकार संक्षेपसे ही गरुडकी स्तुति करके उत्तम आभूषणोंद्वारा सत्कार करनेके पश्चात् राजाने कमललोचन श्रीकृष्णको विदा किया। इन्द्रके छोटे भाई उपेन्द्रके प्रस्थान करनेपर बहुत-से राजा उनके पीछे-पीछे गये ॥ ६४-६५ ॥

प्रतिगृह्य च सत्कारं नृपानामन्त्र्य वीर्यवान् ।
जगाम मथुरां कृष्णो द्योतयानो दिशो दश ॥ ६६ ॥
वैनतेयं पुरस्कृत्य सौम्यरूपं खगोत्तमम् ।

पराक्रमी श्रीकृष्ण उन राजाओंका सत्कार ग्रहण करके उनसे विदा ले दसों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए सौम्यरूपधारी पक्षिप्रवर विनतानन्दन गरुडको आगे करके मथुरापुरीको गये ॥ ६६½ ॥

महता रथवृन्देन परिवार्य समन्ततः ॥ ६७ ॥
भेरीपटहनादेन शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः ।
बृंहितेन च नागानां हयानां हेषितेन च ॥ ६८ ॥
सिंहनादेन शूराणां रथनेमिस्वनेन च ।
तुमुलः सुमहानासीन्महामेघरवोपमः ॥ ६९ ॥

वे अपनेको चारों ओरसे विशाल रथसमूहद्वारा घेरकर भेरी, पटह, शङ्ख और दुन्दुभियोंकी ध्वनिके साथ प्रस्थित हुए। हाथियोंके चिग्घाड़ने, घोड़ोंके हिनहिनाने, शूरवीरोंके सिंहनाद करने तथा रथके पहियोंकी घर्घराहटसे मिलकर उन वाद्योंका ऐसा महान् तुमुल नाद हुआ, जो महामेघोंकी गम्भीर गर्जनाके समान प्रतीत होता था ॥ ६७–६९ ॥

गते कृष्णे महावीर्ये आदाय वरमासनम् ।
सभामादाय देवाश्च प्रययुस्त्रिदशालयम् ॥ ७० ॥

महापराक्रमी श्रीकृष्णके चले जानेपर देवतालोग उस श्रेष्ठ सिंहासन तथा सभाभवनको साथ ले स्वर्गलोकको चले गये॥

महता चतुरङ्गेण बलेन परिवारिताः ।
क्रोशमात्रमुपव्रज्य अनुज्ञाते जनार्दने ॥ ७१ ॥
प्रययुस्ते नृपाः सर्वे पुनरेव स्वयंवरम् ॥ ७२ ॥

विशाल चतुरङ्गिणी सेनासे घिरे हुए राजा लोग एक कोसतक पीछे-पीछे जाकर भगवान् जनार्दनकी आज्ञा मिलनेपर लौटे और सब-के-सब पुनः स्वयंवरमें चले गये ॥ ७१-७२ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि श्रीकृष्णाभिषेको नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें श्रीकृष्णका अभिषेकनामक इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

शाल्वके कथनानुसार जरासंध आदि नरेशोंका शाल्वको ही कालयवनके पास दूत बनाकर भेजना

वैशम्पायन उवाच

ततः प्रयाते वसुदेवपुत्रे
नराधिपा भूषणभूषिताङ्गाः ।
सभां समाजग्मुः सुरेन्द्रकल्पाः
प्रबोधनार्थं गमनोत्सवास्ते ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! वसुदेवपुत्र श्रीकृष्णके वहाँसे चले जानेपर सब राजा अपने अङ्गोंको आभूषणोंसे विभूषित करके देवेन्द्रके समान सज-धजकर राजा भीष्मककी सभामें उन्हें समझानेके लिये गये। श्रीकृष्णके चले जानेसे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई थी ॥ १ ॥

सभागतान् सोमरविप्रकाशान्
सुखोपविष्टान् रुचिरासनेषु ।
समीक्ष्य राजा सुनयार्थवादी
जगाद वाक्यं नरराजसिंहः ॥ २ ॥

सभामें आकर सुन्दर सिंहासनोंपर सुखपूर्वक बैठे हुए सोम और सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाले राजाओंको देखकर उत्तम नीतिके अनुकूल युक्तियुक्त बात कहनेवाले नरेशोंमें सिंहके समान पराक्रमी राजा भीष्मक इस प्रकार बोले ॥ २ ॥

स्वयंवरकृतं दोषं विदित्वा वो नराधिपाः ।
क्षन्तव्यो मम वृद्धस्य दुर्दग्धस्य फलोदयम् ॥ ३ ॥

'नरेश्वरो ! स्वयंवरके द्वारा जो श्रीकृष्णविरोधरूपी दोष सम्पादित हो रहा था, उसे जानकर (मैंने इसे स्थगित कर दिया।) आपलोग मुझ वृद्धके अपराधको क्षमा करें। जिसे दैवरूपी दावानलने अच्छी तरह जला दिया हो, उस वृक्षसे फलकी प्राप्ति कैसे हो सकती है (जिस स्वयंवरमें भगवद्विरोधकी सम्भावना हो, वह सफल नहीं हो सकता) ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमाभाष्य तान् सर्वान् सत्कृत्य च यथाविधि ।
ततो विसर्जयामास नृपांस्तान् मध्यदेशजान् ॥ ४ ॥
पूर्वपश्चिमजांश्चैव उत्तरापथिकानपि ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! ऐसा कहकर भीष्मकने उन सब राजाओंका विधिपूर्वक सत्कार करके उन्हें विदा कर दिया। उनमेंसे कोई मध्य देशके थे, कोई पूर्व, पश्चिम और उत्तर भारतके। उन सबको उन्होंने सादर विदा किया ॥ ४½ ॥

येऽपि सर्वे महेष्वासाः प्रहृष्टमनसो नराः ॥ ५ ॥
यथार्हेण च सम्पूज्य जग्मुस्ते नरपुङ्गवाः ।

वे सब महाधनुर्धर नरेश भी प्रसन्नचित्त होकर राजाका यथायोग्य सम्मान करके अपने-अपने स्थानको चले गये ॥५½॥

जरासंधः सुनीथश्च दन्तवक्त्रश्च वीर्यवान् ॥ ६ ॥
शाल्वः सौभपतिश्चैव महाकूर्मश्च पार्थिवः ।
क्रथकैशिकमुख्याश्च नृपाः प्रवरवंशजाः ॥ ७ ॥
वेणुदारिश्च राजर्षिः काश्मीराधिपतिस्तथा ।
एते चान्ये च बहवो दक्षिणापथिका नृपाः ॥ ८ ॥
श्रोतुकामा रहो वाक्यं स्थिता वै भीष्मकान्तिके ।

जरासंध, सुनीथ, पराक्रमी दन्तवक्त्र, सौभपति शाल्व, राजा महाकूर्म, क्रथ और कैशिक आदि श्रेष्ठ कुलके नरेश, राजर्षि वेणुदारि तथा काश्मीरनरेश—ये एवं दूसरे बहुत-से दाक्षिणात्य नरपाल राजा भीष्मककी एकान्त वार्ता सुननेकी इच्छासे उनके पास ही ठहर गये ॥ ६—८½ ॥

तान् वै समीक्ष्य राजेन्द्रः स राजा भीष्मको बली ॥९॥
स्नेहपूर्णेन मनसा स्थितांस्तानवनीश्वरान् ।
त्रिवर्गसहितं श्लक्ष्णं षड्गुणालंकृतं शुभम् ॥ १० ॥
उवाच नयसम्पन्नं स्निग्धगम्भीरया गिरा ।

उन सबको देखकर बलवान् राजाधिराज राजा भीष्मकने स्नेहपूर्ण हृदयसे वहाँ खड़े हुए उन भूपालोंके प्रति स्निग्ध एवं गम्भीर वाणीमें धर्म, अर्थ और कामसे युक्त,

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Samarth Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सन्धि-विग्रह आदि छः गुणोंसे अलंकृत, शुभ एवं नीतिसम्पन्न बात कही ॥ ९—१०½ ॥

भीष्मक उवाच

भवतामवनीशानां समालोक्य नयान्वितम् ॥ ११ ॥
वचनं व्याहृतं श्रुत्वा कृतवान् कार्यमीदृशम् ।
सद्भिर्भवद्भिः क्षन्तव्यं वयं नित्यापराधिनः ॥ १२ ॥

भीष्मक बोले—राजाओ ! आप सब पृथ्वीपतियोंकी ओर देखकर और आपके द्वारा कहे गये नीतियुक्त वचनको सुनकर मैंने ऐसा कार्य किया है । आप सब लोग सत्पुरुष है; अतः मेरे इस बर्तावको क्षमापूर्वक सह लेंगे । हम अपनेको सदा अपराधी मानते हैं ॥ ११-१२ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा तु राजा स भीष्मको नयकोविदः ।
उवाच सुतमुद्दिश्य वचनं राजसंसदि ॥ १३ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! ऐसा कहकर नीति-निपुण विद्वान् राजा भीष्मक उस राजसभामें अपने पुत्रको लक्ष्य करके बोले ॥१३ ॥

भीष्मक उवाच

पुत्रस्य चेष्टामालोक्य त्रासाकुलितलोचनः ।
मन्ये बालानिमाँल्लोकान् स एष पुरुषः परः ॥ १४ ॥

भीष्मकने कहा—राजाओ ! अपने पुत्रकी चेष्टाको देखकर मेरे नेत्र भयसे व्याकुल हो उठे हैं । मैं इन लोगोंको (रुक्मी आदिको) बालक (विवेकशून्य) मानता हूँ । मेरी दृष्टिमें ये भगवान् श्रीकृष्ण परम पुरुष हैं ॥ १४ ॥

कीर्तिः कीर्तिमतां श्रेष्ठो यशश्च विपुलं तथा ।
स्थापितं भुवि मर्त्येऽस्मिन् स्वबाहुबलमूर्जितम् ॥१५॥

ये कीर्तिमानोंमें श्रेष्ठ हैं । इन्होंने इस मर्त्यलोकमें भूतलपर अपनी उत्तम कीर्ति और सुयशकी स्थापना की है तथा अपने ओजस्वी बाहुबलका भी परिचय दिया है ॥ १५॥

धन्या खलु महाभागा देवकी योषितां वरा ।
पुत्रं त्रिभुवनश्रेष्ठं कृत्वा गर्भेण केशवम् ॥ १६ ॥
कृष्णं कमलपत्राक्षं श्रीपुञ्जममरार्चितम् ।
नेत्राभ्यां स्नेहपूर्णाभ्यां वीक्षते मुखपङ्कजम् ॥ १७ ॥

धन्य हैं नारियोंमें श्रेष्ठ महाभागा देवकी, जो तीनों लोकोंमें सबसे श्रेष्ठ, शोभाके पुञ्ज, देवपूजित, कमलदललोचन केशव कृष्णको पुत्ररूपसे गर्भमें रखकर जन्म देनेके पश्चात् सदा स्नेहपूर्ण नेत्रोंसे उनके मुखारविन्दको निहारा करती हैं ॥ १६-१७ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं लालप्यमानं तु राजानं राजसंसदि ।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा शाल्वराजो महाद्युतिः ॥ १८ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! राजसभामें राजा भीष्मकको इस प्रकार बारंबार बोलते देख महातेजस्वी शाल्वराजने सान्त्वनापूर्ण मधुर वाणीमें कहा ॥ १८ ॥

शाल्व उवाच

अलं खेदेन राजेन्द्र सुताय रिपुमर्दिने ।
क्षत्रियस्य रणे राजन् ध्रुवं जयपराजयौ ॥ १९ ॥

शाल्व बोला—राजेन्द्र ! (आप खेद क्यों प्रकट करते हैं ।) आपका पुत्र शत्रुओंका मान मर्दन करनेवाला है। इसके लिये खेद करना व्यर्थ है (इसपर तो आपको गर्व होना चाहिये)। राजन् ! रणभूमिमें क्षत्रियको जय अथवा पराजय अवश्य प्राप्त होती है ॥ १९ ॥

नियता गति[1] मर्त्यानामेष धर्मः सनातनः ।
बलकेशवयोरन्यस्तृतीयः कः पुमानिह ॥ २० ॥
रणे योधयितुं शक्तस्तव पुत्रं महाबलम् ।

यह मनुष्योंकी नियत गति है । यह सनातन धर्म है। बलराम और श्रीकृष्णके सिवा इस भूतलपर तीसरा कौन ऐसा पुरुष है, जो समराङ्गणमें आपके महाबली पुत्रका सामना कर सके ॥ २०½ ॥

रथातिरथवृन्दानामेक एव रणाजिरे ॥ २१ ॥
रिपून् बाधयितुं शक्तो धनुर्गृह्य महाभुजः ।

यह महाबाहु वीर हाथमें धनुष लेकर अकेला ही युद्ध-क्षेत्रमें रथियों और अतिरथियोंके समूहका सामना करने और शत्रुओंको बाधा पहुँचानेमें समर्थ है ॥ २१½ ॥

भार्गवास्त्रं महारौद्रं देवैरपि दुरासदम् ॥ २२ ॥
सृजतो बाहुवीर्येण कः पुमान् प्रसहिष्यति ।

जिस समय यह अपने बाहुबलसे देवताओंके लिये भी दुर्जय महाभयंकर भार्गवास्त्रका प्रयोग करेगा, उस समय इस वीरका आक्रमण कौन पुरुष सह सकेगा ॥ २२½ ॥

अयं तु पुरुषः कृष्णो ह्यनादिनिधनोऽव्ययः ॥ २३ ॥
तं विजेता नृलोकेऽस्मिन् नापि शूलधरः स्वयम् ।

ये श्रीकृष्ण तो अनादि, अनन्त और अविनाशी पुरुष हैं । इस नरलोकमें साक्षात् त्रिशूलधारी भगवान् शङ्कर भी उन्हें जीत नहीं सकते ॥ २३½ ॥

तव पुत्रो महाराज सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥ २४ ॥
विदित्वा देवमीशानं न योधयति केशवम् ।

महाराज ! आपका पुत्र सम्पूर्ण शास्त्रोंका तत्त्ववेत्ता है । यह श्रीकृष्णको देवता और ईश्वर समझकर ही उनसे युद्ध नहीं करता है ॥ २४½ ॥

अद्य तस्य रणे जेता यवनाधिपतिर्नृप ॥ २५ ॥
स कालयवनो नाम अवध्यः केशवस्य ह ।

नरेश्वर ! आजकल युद्धमें श्रीकृष्णपर विजय पानेवाला

---

[1] 'गति' के स्थानमें 'गतिः' समझना चाहिये । नीलकण्ठने यहाँ विभक्तिका लोप आर्ष माना है ।

केवल कालयवन है, जो यवनोंका अधिपति है। वह श्रीकृष्णके लिये अवध्य है ॥ २५½ ॥

तप्त्वा सुदारुणं घोरं तपः परमदुश्चरम् ॥ २६ ॥
रुद्रमाराधयामास द्वादशाब्दानयोऽशनः ।
पुत्रकामेन मुनिना तोष्य रुद्रात्सुतो वृतः ॥ २७ ॥
माथुराणामवध्योऽयं भवेदिति च शङ्करात् ।
एवमस्त्विति रुद्रोऽपि प्रददौ मुनये सुतम् ॥ २८ ॥

गार्ग्यमुनिने अत्यन्त दुष्कर, भयंकर एवं दारुण तपस्या करके बारह वर्षोंतक पुत्रकी कामनासे रुद्रदेवकी आराधना की थी। वे उन दिनों केवल लोहका चूर्ण खाकर रहते थे। इस प्रकार रुद्रदेवको संतुष्ट करके उन्होंने उनसे एक पुत्र माँगा तथा भगवान् शङ्करसे यह भी प्रार्थना की कि मेरा वह पुत्र माथुरों (मथुरामें उत्पन्न हुए लोगों) के लिये अवध्य हो। तब रुद्रदेवने 'एवमस्तु' कहकर मुनिको वैसा पुत्र प्रदान कर दिया ॥ २६—२८ ॥

एवं गार्ग्यस्य तनयः श्रीमान् रुद्रवरोद्भवः ।
माथुराणामवध्योऽयं मथुरायां विशेषतः ॥ २९ ॥

इस तरह गार्ग्यका वह तेजस्वी पुत्र रुद्रदेवके वरसे उत्पन्न हुआ है और विशेषतः माथुरों (मथुरामें पैदा हुए वीरों) के लिये अवध्य है ॥ २९ ॥

कृष्णोऽपि बलवानेष माथुरो जातवानयम् ।
स जेष्यति रणे कृष्णं मथुरायां समागतः ॥ ३० ॥

ये श्रीकृष्ण बलवान् होनेपर भी मथुरामें जन्म लेनेके कारण माथुर ही हैं। अतः मथुरामें आया हुआ कालयवन रणभूमिमें श्रीकृष्णको अवश्य जीत लेगा ॥ ३० ॥

मन्यध्वं यदि वा युक्तां नृपा वाचं मयेरिताम् ।
तत्र दूतं विसृजध्वं यवनेन्द्रपुरं प्रति ॥ ३१ ॥

नरपतियो ! यदि आपलोग मेरी कही हुई इस बातको उचित समझें तो यवनराजके नगरको दूत भेज दें ॥ ३१ ॥

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वा सौभपतेर्वाक्यं सर्वे ते नृपसत्तमाः ।
कुर्म इत्यब्रुवन् हृष्टा जरासंधं महाबलम् ॥ ३२ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! सौभ विमानके अधिपति राजा शाल्वकी बात सुनकर वे सभी श्रेष्ठ नरेश हर्षमें भरकर महाबली जरासंधसे बोले—'हमलोग अवश्य ऐसा ही करें ॥ ३२ ॥

स तेषां वचनं श्रुत्वा जरासंधो महीपतिः ।
बभूव विमना राजन् ब्रह्मणो वचनं स्मरन् ॥ ३३ ॥

राजन् ! उन राजाओंकी बात सुनकर आकाशवाणीकी बात याद करके पृथ्वीपति जरासंधका मन उदास हो गया ॥ ३३ ॥

जरासंध उवाच

मां समाश्रित्य पूर्वस्मिन् नृपा नृपभयार्दिताः ।
प्राप्नुवन्ति हृतं राज्यं सभृत्यबलवाहनम् ॥ ३४ ॥

जरासंध बोला—आजसे पहले सब राजा दूसरे राजाओंके भयसे पीड़ित होनेपर मेरी शरणमें आते थे और भृत्य, सेना तथा वाहनोंसहित अपने खोये हुए राज्यको मेरे सहयोगसे पुनः प्राप्त कर लेते थे ॥ ३४ ॥

इह संचोद्यते भूपैः परसंश्रयहेतुना ।
कन्येव स्वपतिद्वेषादन्यं रतिपरायणा ॥ ३५ ॥

इस समय यहाँ सब राजा मुझे दूसरेका आश्रय लेनेके लिये प्रेरित कर रहे हैं। जैसे रतिलोलुप नारी अपने पतिके प्रति द्वेष होनेसे उसे छोड़कर दूसरे पुरुषका आश्रय लेती है, (उसी प्रकार मैं अपने बलका आश्रय न लेकर दूसरेका सहारा लेनेको उद्यत हुआ हूँ) ॥ ३५ ॥

अहो सुबलवद् दैवमशक्यं विनिवर्तितुम् ।
यदहं कृष्णभीतोऽन्यं संश्रयामि बलाधिकम् ॥ ३६ ॥

अहो ! दैव बड़ा प्रबल है। उसे लौटाया नहीं जा सकता; क्योंकि आज मैं श्रीकृष्णसे डरकर दूसरे अधिक बलशाली राजाका आश्रय ग्रहण कर रहा हूँ ॥ ३६ ॥

नूनं योगविहीनोऽहं कारयिष्ये पराश्रयम् ।
श्रेयो हि मरणं मह्यं न चान्यं संश्रये नृपाः ॥ ३७ ॥

निश्चय ही मैं निरुपाय हो गया हूँ, अतः मुझे दूसरेका आश्रय लेना पड़ेगा; परंतु ऐसे जीवनसे तो मेरा मर जाना ही अच्छा है। नरपतियो ! मैं दूसरेकी शरण नहीं लूँगा ॥ ३७ ॥

कृष्णो वा बलदेवो वा यो वासौ वा नराधिपः ।
हन्तारं प्रतियोत्स्यामि यथा ब्राह्मप्रचोदितः ॥ ३८ ॥

श्रीकृष्ण हों, बलदेव हों अथवा जो कोई भी राजा क्यों न हो, जो मुझे मारेगा, उसका मैं डटकर सामना करूँगा। जैसा कि आकाशवाणीने कहा है कि मुझे कोई दूसरा मारनेवाला है ॥ ३८ ॥

एषा मे निश्चिता बुद्धिरेतत्सत् पुरुषव्रतम् ।
अतोऽन्यथा न शक्तोऽहं कर्तुं परसमाश्रयम् ॥ ३९ ॥

यही मेरी बुद्धिका निश्चय है, यही सत्पुरुषका व्रत है। इसके विपरीत मैं दूसरेका आश्रय लेनेमें असमर्थ हूँ ॥ ३९ ॥

भवतां साधुवृत्तानामाबाधं न करोति सः ।
तेन दूतं प्रदास्यामि नृपाणां रक्षणाय वै ॥ ४० ॥

आप सदाचारी नरेशोंको श्रीकृष्ण बाधा न पहुँचावें, इस उद्देश्यसे राजाओंकी रक्षाके लिये मैं दूत दूँगा अर्थात् दूत भेजना स्वीकार करूँगा ॥ ४० ॥

व्योममार्गेण यातव्यं यथा कृष्णो न बाधते ।
गच्छन्तमनुचिन्त्यैवं प्रेषयध्वं नृपोत्तमाः ॥ ४१ ॥

श्रेष्ठ राजाओ ! इस दूतको आकाशमार्गसे जाना चाहिये, जिससे यहाँसे जाते समय उसे श्रीकृष्ण बाधा न दे सकें। इसपर भलीभाँति विचार करके ही तुमलोग दूत भेजें

अयं सौभपतिः श्रीमाननलार्केन्दुविक्रमः ।
रथेनादित्यवर्णेन प्रयाति स्वपुरं बली ॥ ४२ ॥

ये श्रीमान् सौभपति बलवान् राजा शाल्व अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाके समान पराक्रमी हैं। ये सूर्यतुल्य तेजस्वी रथ (विमान) द्वारा अपने नगरको जाते हैं ॥ ४२ ॥

यवनेन्द्रो यथाभ्येति नरेन्द्राणां समागमम् ।
वचनं च तथास्माभिर्दूत्ये नः कृष्णविग्रहे ॥ ४३ ॥

ये दूतकर्म करते समय हमलोगोंकी ओरसे जैसी बात कहनी चाहिये, वैसी ही कहें, जिससे श्रीकृष्णके साथ हम लोगोंका युद्ध उपस्थित होनेपर वह यवनराज कालयवन हम नरेशोंकी मण्डलीसे आकर मिल जाय ॥ ४३ ॥

वैशम्पायन उवाच

पुनरेवाब्रवीद् राजा सौभस्य पतिमूर्जितम् ।
गच्छ सर्वनरेन्द्राणां साहाय्यं कुरु मानद ॥ ४४ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! फिर राजा जरासंधने सौभविमानके स्वामी बलवान् राजा शाल्वसे कहा—'मानद ! जाओ, सम्पूर्ण नरेशोंकी सहायता करो ॥ ४४ ॥

यवनेन्द्रो यथा याति यथा कृष्णं विजेष्यति ।
यथा वयं च तुष्यामस्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ ४५ ॥

तुम ऐसी नीतिका प्रयोग करो, जिससे यवनराज चढ़ाई करे, श्रीकृष्णको जीते और हमलोगोंको संतोष हो' ॥ ४५ ॥

एवं संदिश्य सर्वांस्तान् भीष्मकं पूज्य धर्मतः ।
प्रययौ स्वपुरं राजा स्वेन सैन्येन संवृतः ॥ ४६ ॥

इस प्रकार सबको संदेश देकर और धर्मानुसार भीष्मकका भी सम्मान करके राजा जरासंध अपनी सेनाके साथ अपने नगरको चला गया ॥ ४६ ॥

शाल्वोऽपि नृपतिश्रेष्ठस्तांश्च सम्पूज्य धर्मतः ।
जगामाकाशमार्गेण रथेनानिलरंहसा ॥ ४७ ॥

राजाओंमें श्रेष्ठ शाल्व भी उन सबका धर्मपूर्वक आदर करके वायुके समान वेगशाली विमानद्वारा आकाशमार्गसे चला गया ॥ ४७ ॥

तेऽपि सर्वे महीपाला दक्षिणापथवासिनः ।
अनुव्रज्य जरासंधं गताः स्वनगरं प्रति ॥ ४८ ॥

दक्षिण भारतके रहनेवाले जो समस्त भूमिपाल वहाँ उपस्थित थे, वे भी कुछ दूरतक जरासंधके पीछे जाकर फिर अपने नगरको चले गये ॥ ४८ ॥

भीष्मकः सह पुत्रेण तावुभौ चिन्त्य दुर्नयम् ।
स्वे गृहे न्यवसद् दीनः कृष्णमेवानुचिन्तयन् ॥ ४९ ॥

राजा भीष्मक अपने पुत्र रुक्मीके साथ ही उन दोनों शाल्व और जरासंधका तथा उन सबकी दुर्नीतिका विचार करके श्रीकृष्णका ही चिन्तन करते हुए दीनभावसे अपने घरमें रहने लगे ॥ ४९ ॥

विदिता रुक्मिणी साध्वी स्वयंवरनिवर्तनम् ।
कृष्णस्यागमनाद्धेतोर्नृपाणां दोषदर्शनम् ॥ ५० ॥
गत्वा तु सा सखीमध्ये उवाच व्रीडितानना ।
न चान्येषां नरेन्द्राणां पत्नी भवितुमुत्सहे ।
कृष्णात् कमलपत्राक्षात् सत्यमेतद् वचो मम ॥ ५१ ॥

सती साध्वी रुक्मिणीको जब यह पता लग गया कि श्रीकृष्णका आगमन होनेसे स्वयंवर स्थगित हो गया तथा राजाओंकी जो दोषदृष्टि थी उसका भी ज्ञान हो गया, तब वे अपनी सखियोंके बीचमें जाकर लज्जासे सिर झुकाये हुए बोली—'सखियो ! मैं कमलनयन श्रीकृष्णको छोड़कर दूसरे नरेशोंकी पत्नी नहीं हो सकती—यह मेरी सच्ची बात है ।५०-५१।

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि रुक्मिणीस्वयंवरे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें रुक्मिणीका स्वयंवरविषयक बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कालयवनकी विशेषता, राजा शाल्वका उसके यहाँ दूत बनकर आना और उसे जरासंधका संदेश सुनाना

वैशम्पायन उवाच

यवनानां बलोदग्रः स कालयवनो नृपः ।
बभूव राजा धर्मेण रक्षिता पुरवासिनाम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! सबसे अधिक बलशाली कालयवन यवनोंका राजा था, जो धर्मके अनुसार पुरवासियोंकी रक्षा करता था ॥ १ ॥

वर्गविदितः प्राज्ञः षड्गुणानुपजीवकः ।
[illegible]सम्मूढो गुणेष्वभिरतः सदा ॥ २ ॥

वह त्रिवर्ग (पद, स्थान एवं वृद्धि अथवा धर्म, अर्थ और काम) का ज्ञाता, बुद्धिमान्, राजनीतिके छः गुणों(संधि-विग्रह आदि) का आश्रय लेनेवाला, सातों[1] प्रकारके व्यसनोंसे अनभिज्ञ और सदा गुणोंमें तत्पर रहनेवाला था ॥ २ ॥

श्रुतिमान् धर्मशीलश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः ।
सांग्रामिकविधिज्ञश्च दुर्गलाभानुसारणः ॥ ३ ॥

---

[1] सात व्यसन इस प्रकार हैं—मृगया, जुआ, दिनमें सोना, परायी निन्दा, स्त्रीविषयक आसक्ति, मद्यपान और व्यर्थ भाषण ।

विद्यावान्, धर्मशील, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, युद्धविधिका ज्ञाता तथा दुर्लभ लाभका अनुसरण करनेवाला था ॥३॥

शूरोऽप्रतिबलश्चैव मन्त्रिप्रवरसेवकः ।
सुखासीनः सभां रम्यां सचिवैः परिवारितः ॥ ४ ॥
उपास्यमानो यवनैरात्मविद्भिर्विपश्चितैः ।
विविधाश्च कथा दिव्याः कथ्यमानाः परस्परम् ॥ ५ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु दिव्यगन्धवहोऽनिलः ।
प्रववौ मदनाबोधं चकार सुखशीतलः ॥ ६ ॥

उसके समान बलवान् दूसरा कोई नहीं था । वह शूरवीर और श्रेष्ठ मन्त्रियोंका सेवन करनेवाला था । एक दिन जब वह मन्त्रियोंसे घिरा हुआ अपनी रमणीय सभामें सुखपूर्वक बैठा था, आत्मज्ञ एवं विद्वान् यवन उसकी सेवामें उपस्थित थे और उनमें परस्पर नाना प्रकारकी दिव्य कथाएँ हो रही थीं । इसी समय दिव्य सुगन्ध लेकर मन्द-मन्द वायु बहने लगी । वह सुखद एवं शीतल वायु उन सबके कामभावको जाग्रत् करने लगी ॥ ४—६ ॥

किंस्विदित्येकमनसः सभायां ये समागताः ।
उत्फुल्लनयनाः सर्वे राजा चैवावलोक्य सः ॥ ७ ॥

उस समय सभामें जो लोग आये थे, वे सभी एकचित्त होकर यह जिज्ञासा करने लगे कि 'यह क्या है ?' सबके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे थे । राजा कालयवन भी यह अद्भुत बात देखकर प्रभावित हुए बिना न रह सका ॥ ७ ॥

अपश्यन्त रथं दिव्यमायान्तं भास्करोपमम् ।
शातकुम्भमयैः शुभ्रं रथाङ्गैरुपशोभितम् ॥ ८ ॥
दिव्यरत्नप्रभाकीर्णं दिव्यध्वजपताकिनम् ।
वाहितं दिव्यतुरगैर्मनोमारुतरंहसैः ॥ ९ ॥

उन सबने आकाशसे एक सूर्यके समान तेजस्वी दिव्य विमानको उतरते देखा, जो सुवर्णमय चमकीले पहियोंसे शोभा पाता था, वह रथ या विमान दिव्य रत्नोंकी प्रभासे व्याप्त था । उसमें दिव्य ध्वजा-पताकाएँ फहरा रहीं थीं तथा मन एवं वायुके समान वेगशाली दिव्य अश्व उस रथको खींच रहे थे ॥ ८-९ ॥

चन्द्रभास्करबिम्बानि कृत्वा जाम्बूनदेन तम् ।
रचितं वै विश्वकृता वैयाघ्रवरभूषितम् ॥ १० ॥

विश्वकर्माने चन्द्रमा और सूर्यके बिम्ब बनाकर जाम्बूनद नामक सुवर्णसे उस रथका निर्माण किया था । वह चारों ओरसे उत्तम व्याघ्रचर्मद्वारा मढ़ा हुआ था ॥ १० ॥

रिपूणां त्रासजननं मित्राणां हर्षवर्द्धनम् ।
दक्षिणादिगुपायान्तं रथं पररथारुजम् ॥ ११ ॥

वह रथ शत्रुओंके मनमें त्रास उत्पन्न करनेवाला और मित्रोंका हर्ष बढ़ानेवाला था । वह दक्षिण दिशाकी ओरसे आ रहा था और शत्रुओंके रथको तोड़ डालनेमें समर्थ था ११

तत्रोपविष्टं श्रीमन्तं सौभस्य पतिमूर्जितम् ।
दृष्ट्वा परमसंहृष्टश्चार्घ्यं पाद्येति चासकृत् ॥ १२ ॥
उवाच यवनेन्द्रस्य मन्त्री मन्त्रविदां वरः ।

उसमें बैठे हुए सौभपति तेजस्वी राजा श्रीमान् शाल्वको देखकर मन्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ यवनराजका मन्त्री बहुत प्रसन्न हुआ और बारंबार कहने लगा—'अरे ! अर्घ्य लाओ, पाद्य लाओ' ॥ १२½ ॥

तत्रोत्थाय महाबाहुः स्वयमेव नृपासनात् ॥ १३ ॥
प्रत्युद्गम्यार्घ्यमादाय रथावतरणे स्थितः ।

उस समय महाबाहु राजा कालयवन स्वयं ही राजसिंहासनसे उठा और अर्घ्य लिये आगे बढ़कर विमानसे उतरनेकी सीढ़ीके पास खड़ा हो गया ॥ १३½ ॥

शाल्वोऽपि च महातेजा दृष्ट्वा राजानमागतम् ॥ १४ ॥
मुदा परमया युक्तं शक्रप्रतिमतेजसम् ।
अवतीर्य सुविश्रब्ध एक एव रथोत्तमात् ॥ १५ ॥
विवेश परमं प्रीतो मित्रदर्शनलालसः ।

महातेजस्वी राजा शाल्व भी इन्द्रके समान तेजस्वी राजा कालयवनको बड़ी प्रसन्नताके साथ आया देख निर्भय हो अकेला ही उस उत्तम रथसे उतर पड़ा और मित्रके दर्शनकी लालसा मनमें रखकर अत्यन्त संतुष्ट हो उसके भवनमें प्रविष्ट हुआ ॥ १४-१५½ ॥

दृष्ट्वार्घमुद्यतं राजा शाल्वो राजर्षिसत्तमः ॥ १६ ॥
उवाच श्लक्ष्णया वाचा नार्घार्होऽस्मि महाद्युते ।

अपने लिये अर्घ्य उपस्थित देख राजर्षियोंमें श्रेष्ठ राजा शाल्व मधुर वाणीमें बोला—'महाद्युते ! मैं अर्घ्य ग्रहण करनेके योग्य नहीं हूँ ॥ १६½ ॥

दूतोऽहं मनुजेन्द्राणां सकाशाद् भवतोऽन्तिकम् ॥ १७ ॥
प्रेषितो बहुभिः सार्द्धं जरासंधेन धीमता ।
तेन मन्ये महाराज नार्घार्होऽस्मीति राजसु ॥ १८ ॥

'मैं नरेशोंका दूत बनकर उनकी ओरसे आपके पास आया हूँ । बुद्धिमान् जरासंध तथा बहुत-से नरेशोंने एक साथ मिलकर मुझे आपके पास भेजा है । महाराज ! इसीलिये मैं समझता हूँ कि इस समय मैं राजाओंका अर्घ्य लेने योग्य नहीं हूँ' ॥ १७-१८ ॥

कालयवन उवाच

जानाम्यहं महाबाहो दौत्येन त्वामिहागतम् ।
साहित्ये नरदेवानां प्रेषितो मागधेन वै ॥ १९ ॥

कालयवन बोला—महाबाहो ! मैं जानता हूँ कि तुम दूत बनकर यहाँ आये हो और नरपतियोंके साथ मगधराज जरासंधने तुम्हें यहाँ भेजा है ॥ १९ ॥

तेन त्वामर्चये राजन् विशेषेण महामते।
अर्घ्यपाद्यादिसत्कारैरासनेन यथाविधि ॥ २० ॥
भवत्यभ्यर्चिते राज्ञां सर्वेषामर्चितं भवेत्।
आस्यतामासने शुभ्रे मया सार्द्धं जनेश्वर ॥ २१ ॥

राजन्! महामते! इसीलिये मैं तुम्हारी विशेषरूपसे पूजा करना चाहता हूँ। अर्घ्य, पाद्य आदि सत्कारोंसे तथा विधिपूर्वक आसन देनेसे यदि आपकी पूजा हो जायगी तो इसके द्वारा समस्त राजाओंका पूजन सम्पन्न हो जायगा। अतः जनेश्वर! अब मेरे साथ उज्ज्वल सिंहासनपर विराजमान होइये ॥ २०-२१ ॥

वैशम्पायन उवाच

स हस्तालिङ्गनं कृत्वा पृष्ट्वा च कुशलामयम्।
सुखोपविष्टौ सहितौ शुभे सिंहासने स्थितौ ॥ २२ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! कालयवनने शाल्वसे हाथ मिलाकर उसका कुशलमंगल पूछा। फिर दोनों एक सुन्दर सिंहासनपर साथ-साथ सुखपूर्वक बैठे ॥ २२ ॥

कालयवन उवाच

यद्बाहुबलमाश्रित्य वयं सर्वे नराधिपाः।
वसामो विगतोद्विग्ना देवा इव शचीपतिम् ॥ २३ ॥
किमसाध्यं भवेदस्य येनासि प्रेषितो मयि।

उस समय कालयवनने कहा—राजन्! जिनके बाहुबलका सहारा लेकर हम सब नरेश उसी प्रकार निर्भय रहते हैं, जैसे देवता शचीपति इन्द्रका सहारा लेकर भयसे मुक्त हो जाते हैं; उन्हीं महाराज जरासंधके लिये कौन-सा कार्य असाध्य हो गया है, जिससे उन्होंने मेरे पास आपको भेजा है? ॥ २३½ ॥

वद सत्यं वचस्तस्य किमाज्ञापयति प्रभुः।
करिष्ये वचनं तस्य अपि कर्म सुदुष्करम् ॥ २४ ॥

उन्होंने क्या कहा है, यह सच-सच बताइये। वे प्रभु मेरे लिये क्या आज्ञा देते हैं? मैं उनकी आज्ञाका पालन करूँगा। उनके कहनेसे अत्यन्त दुष्कर कर्म भी कर सकता हूँ ॥ २४ ॥

शाल्व उवाच

यथा वदति राजेन्द्र मगधाधिपतिस्तव।
तथाहं सम्प्रवक्ष्यामि श्रूयतां यवनाधिप ॥ २५ ॥

शाल्व बोला— राजेन्द्र! यवनेश्वर! मगधराज जरासंधने आपसे जैसी बात कहनेको कहा है, वैसी ही बता रहा हूँ, सुनिये ॥ २५ ॥

जरासंध उवाच

तोऽयं जगतां बाधी कृष्णः परमदुर्जयः।
तस्य दुर्वृत्तमहं हन्तुं समुद्यतः ॥ २६ ॥

जरासंधका कथन है कि—ये जो परम दुर्जय श्रीकृष्ण प्रकट हुए हैं, सम्पूर्ण जगत्को बड़ा कष्ट दे रहे हैं। उनके दुराचारको जानकर मैं उन्हें मार डालनेके लिये उद्यत हुआ था ॥ २६ ॥

पार्थिवैर्बहुभिः सार्द्धं समग्रबलवाहनैः।
उपरुध्य महासैन्यैर्गोमन्तमचलोत्तमम् ॥ २७ ॥
चेदिराजस्य वचनं महार्थं श्रुतवानहम्।
तदा तयोर्विनाशाय हुताशनमयोजयम् ॥ २८ ॥

बहुत-से राजा अपनी समूची सेना और सवारियाँ लेकर मेरे साथ हो गये थे। उन सबकी विशाल सेनाओंद्वारा मैंने गोमन्त नामक उत्तम पर्वतपर घेरा डाला (क्योंकि उस समय श्रीकृष्ण और बलराम गोमन्तपर ही विद्यमान थे)। घेरा डालनेके बाद मैंने चेदिराज दमघोषका वचन सुना, जो महान् अर्थसे भरा था। तब मैंने उन दोनोंके विनाशके लिये उस पर्वतपर आग लगा दी ॥ २७-२८ ॥

ज्वालाशतसहस्राढ्यं युगान्ताग्निसमप्रभम्।
दृष्ट्वा रामो गिरेः कूटादाप्लुतो हेमतालधृक् ॥ २९ ॥
विनिष्पत्य महासेनां मध्ये सागरसंनिभाम्।
आजघान दुराधर्षो नराश्वरथदन्तिनाम् ॥ ३० ॥

वह आग सैकड़ों और हजारों लपटोंसे प्रज्वलित हो उठी, जो प्रलयकालकी संवर्तक अग्निके समान प्रकाशित हो रही थी। उस आगको देखकर सुवर्णमय तालध्वज धारण करनेवाले बलराम पर्वतके शिखरसे कूद पड़े और समुद्र-जैसी प्रतीत होनेवाली उस विशाल सेनाके मध्यभागमें पहुँचकर हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंका संहार करने लगे। उस समय उन्हें पराजित करना अत्यन्त कठिन हो गया था २९-३०

सर्पन्तमिव सर्पेन्द्रं विकृष्याकृष्य लाङ्गलम्।
नरनागाश्ववृन्दानि मुसलेन व्यपोथयत् ॥ ३१ ॥

उन्होंने सर्पराजके समान सरकते हुए हलका आकर्षण और विकर्षण करके अर्थात् उस हलद्वारा शत्रुसैनिकोंको ढकेलते और खींचते हुए बहुत-से मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंको मुसलसे मार डाला ॥ ३१ ॥

गजेन गजमास्फाल्य रथेन रथयोधिनम्।
हयेन च हयारोहं पदातेन पदातिनम् ॥ ३२ ॥

वे हाथीसे हाथीको, रथसे रथी योद्धाको, घोड़ेसे घुड़सवारको तथा पैदलसे पैदल सिपाहीको मौतके घाट उतार देते थे ॥ ३२ ॥

समरे स महातेजा नृपार्कशतसंकुले।
विचरन् विविधान् मार्गान् निदाघे भास्करो यथा॥३३॥

जैसे ग्रीष्म ऋतुमें सूर्यदेव प्रचण्ड तेजसे सम्पन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार सैकड़ों राजारूपी सूर्यसे व्याप्त समराङ्गणमें वे

महातेजस्वी बलराम भाँति-भाँतिके पैंतरे दिखाते हुए विचरने लगे ॥ ३३ ॥

रामादनन्तरं कृष्णः प्रगृह्यार्कसमप्रभम् ।
चक्रं चक्रभृतां श्रेष्ठः सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ॥ ३४ ॥

बलरामसे छोटे हैं श्रीकृष्ण, जो चक्रधारियोंमें श्रेष्ठ हैं। वे सूर्यके समान तेजस्वी चक्र हाथमें लेकर उसी तरह शत्रु-सैनिकोंपर टूट पड़े, जैसे सिंह क्षुद्र मृगोंपर आक्रमण करता है ॥ ३४ ॥

प्रविचाल्य महावीर्यः पादवेगेन तं गिरिम् ।
शत्रुसैन्ये पपातोच्चैर्यदुवीरः प्रतापवान् ॥ ३५ ॥
प्रनृत्यन्निव शैलेन्द्रस्तोयधाराभिषेचितः ।
घूर्णमानो विवेशोर्वीं विनिर्वाप्य हुताशनम् ॥ ३६ ॥

महापराक्रमी प्रतापी यदुवीर श्रीकृष्ण अपने पैरोंके वेगसे उस पर्वतको हिलाकर जब ऊँचे शिखरसे शत्रुओंकी सेनामें कूदे थे, उस समय वह शैलराज नाचता-सा प्रतीत होता था। वह अपने ही अवयवोंसे निकली हुई जलधारासे नहा उठा और सारी आगको बुझाकर चक्कर काटता-सा कुछ दूरतक पृथ्वीमें घुस गया ॥ ३५-३६ ॥

आदीप्यमानशिखरादवप्लुत्य जनार्दनः ।
जघान वाहिनीं राजंश्चक्रव्यग्रेण पाणिना ॥ ३७ ॥

राजन्! पर्वतके जलते हुए शिखरसे नीचे कूदकर श्रीकृष्णने चक्रयुक्त हाथसे राजाओंकी सेनाका संहार आरम्भ किया ॥ ३७ ॥

विक्षिप्य विपुलं चक्रं गदापातादनन्तरम् ।
नरनागाश्ववृन्दानि मुसलेन व्यचूर्णयत् ॥ ३८ ॥

विशाल चक्र फेंककर फिर गदाद्वारा आघात करते थे। तदनन्तर बलराम मुसलसे हाथी, घोड़े और मनुष्योंके समूहोंका कचूमर निकाल देते थे ॥ ३८ ॥

क्रोधानिलसमुद्धूतचक्रलाङ्गलवह्निना ।
निर्दग्धा महती सेना नरेन्द्रार्काभिपालिता ॥ ३९ ॥

क्रोधरूपी वायुसे प्रज्वलित चक्र और हलरूपी आगसे नरेशरूपी सूर्यद्वारा पालित वह विशाल सेना जलकर भस्म हो गयी ॥ ३९ ॥

नरनागाश्वकलिलं पत्तिध्वजसमाकुलम् ।
रथानीकं पदाताभ्यां क्षणेन विदलीकृतम् ॥ ४० ॥

इन दो ही पैदल वीरोंने हाथी, घोड़ों और मनुष्योंसे परिपूर्ण एवं पैदलों और ध्वजोंसे व्याप्त रथसमूहका क्षणभरमें ही संहार कर डाला ॥ ४० ॥

सेनां प्रभग्नामालोक्य चक्रानलभयार्दिताम् ।
महता रथवृन्देन परिवार्य समन्ततः ॥ ४१ ॥
तत्राहं युद्ध्यमानस्तु भ्रातास्य बलवान् बली ।
स्थितो ममाग्रतः शूरो गदापाणिर्हलायुधः ॥ ४२ ॥

चक्राग्निके भयसे पीड़ित हुई अपनी सेनाको पलायन करती देख मैं विशाल रथसमूहके द्वारा उन दोनोंको सब ओरसे घेरकर युद्ध करने लगा। उस समय श्रीकृष्णके बलवान् भ्राता शूरवीर बलराम हाथमें गदा और हल लिये मेरे सामने खड़े हो गये ॥ ४१-४२ ॥

द्वादशाक्षौहिणीर्हत्वा प्रभिन्न इव केसरी ।
हलं सौनन्दमुत्सृज्य गदया मामताडयत् ॥ ४३ ॥

उन्होंने चोट खाये हुए सिंहके समान कुपित हो मेरी बारह अक्षौहिणी सेनाओंका संहार करके हल और मुसलको तो छोड़ दिया और गदासे ही मुझपर आघात किया ॥ ४३॥

वज्रपातनिभं वेगं पातयित्वा ममोपरि ।
भूयः प्रहर्तुकामो मां वैशाखेनास्थितो महीम् ॥ ४४ ॥

उसका वेग वज्रपातके समान था। मेरे ऊपर उस गदाका प्रहार करके वे पुनः मुझपर चोट करनेकी इच्छासे वैशाखी (शक्ति) लेकर पृथ्वीपर खड़े हो गये ॥ ४४ ॥

वैशाखं स्थानमास्थाय गुहः क्रौञ्चं यथा पुरा ।
तथा मां दीर्घनेत्राभ्यामीक्षते निर्दहन्निव ॥ ४५ ॥

जैसे पूर्वकालमें कार्तिकेयने क्रौञ्च पर्वतको विदीर्ण किया था, उसी प्रकार वे मेरे मर्मस्थानको लक्ष्य करके शक्ति छोड़नेकी इच्छासे अपने बड़े-बड़े नेत्रोंद्वारा मेरी ओर इस तरह देखने लगे, मानो मुझे जलाकर भस्म कर डालेंगे ॥ ४५ ॥

तादृग्रूपं समालोक्य बलदेवं रणाजिरे ।
जीवितार्थी नृलोकेऽस्मिन् कः पुमान् स्थातुमर्हति ॥४६॥

रणभूमिमें बलदेवके वैसे स्वरूपको देखकर अपने जीवनकी इच्छा रखनेवाला इस मनुष्यलोकका कौन पुरुष उनके सामने ठहर सकता है ॥ ४६ ॥

गृहीत्वा स गदां भीमां कालदण्डमिवोद्यताम् ।
कालाङ्कुशेन निर्धूतां स्थित एवाग्रतो मम ॥ ४७ ॥

फिर कालदण्डके समान उठी हुई भयानक गदाको हाथमें लेकर वे मेरे सामने खड़े हो गये। वह गदा कालकी प्रेरणासे घुमायी जा रही थी ॥ ४७ ॥

ततो जलदगम्भीरस्वरेणापूरयन् नभः ।
वागुवाचाशरीरेण स्वयं लोकपितामहः ॥ ४८ ॥
प्रहर्तव्यो न राजायमवध्योऽयं तवानघ ।
कल्पितोऽस्य वधोऽन्यस्माद् विरमस्व हलायुध॥ ४९ ॥

इसी बीचमें साक्षात् लोकपितामह ब्रह्माजी मेघके समान गम्भीर स्वरसे आकाशको पूर्ण करते हुए अदृश्यरूपसे बोले 'अनघ ! इस राजापर प्रहार न करना। यह

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अवध्य है। इसका वध दूसरेके हाथसे निश्चित किया गया है, अतः हलधारी बलराम! तुम प्रहारसे विरत हो जाओ' ४८-४९

श्रुत्वाहं तेन वाक्येन चिन्ताविष्टो निवर्तितः।
सर्वप्राणहरं घोरं ब्रह्मणा स्वयमीरितम्॥ ५०॥

यह सुनकर उस आकाशवाणीके कारण मैं चिन्तामें निमग्न हो गया और युद्धसे लौट पड़ा; क्योंकि साक्षात् ब्रह्माजीने वह ऐसा घोर वचन सुनाया था, जो मेरी सम्पूर्ण प्राणशक्तिको हर लेनेवाला था॥ ५०॥

तेनाहं वः प्रवक्ष्यामि नृपाणां हितकाम्यया।
श्रुत्वा त्वमेव राजेन्द्र कर्तुमर्हसि तद् वचः॥ ५१॥

राजेन्द्र! इसलिये मैं तुमसे समस्त नरेशोंके हितकी कामनासे कुछ कहना चाहता हूँ; उसे सुनकर तुम्हीं उसे पूर्ण कर सकते हो॥ ५१॥

तपसोग्रेण महता पुत्रार्थी तोष्य शङ्करम्।
प्राप्तवान् देवदेवं त्वामवध्यं माथुरैर्जनैः॥ ५२॥

महामुनिश्चायसचूर्णमश्न-
न्नुपस्थितो द्वादशवार्षिकं व्रतम्।
सुरासुरैः संस्तुतपादपङ्कजः
स लब्धवानीप्सितकामसम्पदम्॥ ५३॥

महामुनि गार्ग्य, जिनके चरणारविन्दोंकी स्तुति देवता और असुर भी करते हैं; बारह वर्षोंतक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेके पश्चात् लोहचूर्ण खाकर तपस्या करने लगे। मनमें पुत्रकी कामना रखकर उस उग्र एवं महान् तपके द्वारा भगवान् शङ्करको संतुष्ट करके उनसे उन्होंने अपनी अभीष्ट कामसम्पत्तिके रूपमें देवराज-तुल्य तुमको प्राप्त किया। तुम मथुरामण्डलमें उत्पन्न होनेवाले लोगोंके लिये अवध्य हो॥ ५२-५३॥

तपोबलाद् गार्ग्यमुनेर्महात्मनो
वरप्रभावाच्छकलेन्दुमौलिनः।
भवन्तमासाद्य जनार्दनो हिमं
विलीयते भास्कररश्मिना यथा॥ ५४॥

महामुनि गार्ग्यके तपोबल और चन्द्रार्धशेखर भगवान् शिवके वरदानसे तुम्हारा प्राकट्य हुआ है। तुमसे टक्कर लेनेपर श्रीकृष्ण उसी प्रकार नष्ट हो जायँगे, जैसे बर्फ सूर्यकी किरणोंसे गल जाता है॥ ५४॥

यतस्व राज्ञां वचनप्रचोदितो
व्रजस्व यात्रां विजयाय केशवम्।
प्रविश्य राष्ट्रं मथुरां च सेनया
निहत्य कृष्णं प्रथयन् स्वकं यशः॥ ५५॥

राजन्! तुम राजाओंके वचनोंसे प्रेरित हो श्रीकृष्णको जीतनेका प्रयत्न करो। उनपर विजय पानेके लिये मथुरापर चढ़ाई कर दो। अपनी सेनाद्वारा मथुराके राज्य और नगरमें प्रवेश करके श्रीकृष्णको मारकर अपने यशका विस्तार करो॥ ५५॥

माथुरो वासुदेवोऽयं बलदेवः सबान्धवः।
तौ विजेष्यसि संग्रामे गत्वा तां मथुरां पुरीम्॥ ५६॥

वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण और बलदेव अपने बन्धु-बान्धवोंसहित माथुर ही हैं; तुम मथुरापुरीपर चढ़ाई करके उन दोनों भाइयोंको युद्धमें जीत लोगे॥ ५६॥

शाल्व उवाच

इत्येवं नरपतिभास्करप्रगीतं
वाक्यं ते कथितमिदं हितं नृपाणाम्।
तत्सर्वं सह सचिवैर्विमृश्य बुद्ध्या
यद्युक्तं कुरु मनुजेन्द्र चात्मनिष्ठम्॥ ५७॥

शाल्व कहता है— नरेन्द्र! राजाओंमें सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाले जरासंधने इस प्रकार जो सम्पूर्ण नरेशोंके लिये हितकारक बात कही है, वह मैंने तुम्हें कह सुनायी। तुम अपने मन्त्रियोंके साथ बैठकर उन सारी बातोंपर बुद्धिपूर्वक विचार करके जो अपने लिये लाभदायक और उचित जान पड़े, वह करो॥ ५७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि शाल्ववाक्ये त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें शाल्वका वाक्यविषयक तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५३॥

◆

चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कालयवनका राजाओंका अनुरोध स्वीकार करके श्रीकृष्णपर विजय पानेके लिये मथुराको प्रस्थान

वैशम्पायन उवाच

कथयमानं तं शाल्वराजं नृपाज्ञया।
[illegible] परमप्रीतो यवनाधिपतिर्नृपः॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! नरेशोंकी आज्ञाके अनुसार शाल्वराजने जब उपर्युक्त बात कही, तब यवनोंके अधिपति राजा कालयवनने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा॥

कालयवन उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि सफलं जीवितं मम।
कृष्णनिग्रहहेतोर्यन्नियुक्तो बहुभिर्नृपैः ॥ २ ॥

कालयवन बोला—बहुत-से राजाओंने मिलकर जो मुझे श्रीकृष्णके निग्रहके लिये नियुक्त किया है, इससे मैं धन्य हो गया। यह उन सबका मुझपर महान् अनुग्रह है। आज मेरा जीवन सफल हो गया ॥ २ ॥

दुर्जयस्त्रिषु लोकेषु सुरासुरगणैरपि।
तस्य निग्रहहेतोर्मामवधार्य जयाशिषम् ॥ ३ ॥
प्रहृष्टै राजसिंहैस्तैरवधार्यो जयो मम।
तेषां वाचाम्बुवर्षेण विजयो मे भविष्यति ॥ ४ ॥

जो तीनों लोकोंमें देवताओं और असुरोंके लिये भी दुर्जय हैं, उन्हींके निग्रहके लिये मुझे भेजनेका निश्चय किया गया और मुझे विजयसूचक आशीर्वाद भी प्राप्त हुआ। हर्षमें भरे हुए उन राजसिंहोंने यदि मेरी विजयका निश्चय किया है तो उनके वचनामृतकी वर्षासे मेरी जीत अवश्य होगी ॥ ३-४ ॥

करिष्ये वचनं तेषां नृपसत्तमचोदितम्।
पराजयोऽपि राजेन्द्र जयेन सदृशो मम ॥ ५ ॥

राजेन्द्र ! मैं नृपश्रेष्ठ जरासंधके कथनानुसार उन राजाओंके वचनका पालन अवश्य करूँगा। इस युद्धमें यदि मेरी पराजय भी हुई तो वह मेरे लिये विजयके ही समान होगी ॥ ५ ॥

अद्यैव तिथिनक्षत्रं मुहूर्तं करणं शुभम्।
यास्यामि मथुरां राजन् विजेतुं केशवं रणे ॥ ६ ॥

राजन् ! मैं आजकी तिथि, नक्षत्र, मुहूर्त और करणको शुभ मानकर श्रीकृष्णको युद्धमें जीतनेके लिये आज ही मथुराको प्रस्थान करूँगा ॥ ६ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमाभाष्य राजानं सौभस्य पतिमूर्जितम्।
सत्कृत्य च यथान्यायं महार्हमणिभूषणैः ॥ ७ ॥
ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तं सिद्धादेशाय वै नृपः।
पुरोहिताय राजेन्द्र प्रददौ बहुशो धनम् ॥ ८ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! सौभविमानके अधिपति बलवान् राजा शाल्वसे ऐसा कहकर कालयवनने बहुमूल्य मणिमय आभूषणोंद्वारा उसका यथोचित सत्कार किया। राजेन्द्र ! तत्पश्चात् उस राजाने सिद्धिसूचक आशीर्वाद प्राप्त करनेके लिये ब्राह्मणोंको धन दान दिया और पुरोहितको बहुत-सा धन अर्पित किया ॥ ७-८ ॥

हुत्वाग्निं विधिवद् राजा कृतकौतुकमङ्गलः।
प्रस्थानं कृतवान् सम्यग् जेतुकामो जनार्दनम् ॥ ९ ॥

तदनन्तर, विधिपूर्वक अग्निमें आहुति करके यात्राकालिक मङ्गलाचार सम्पन्न करनेके पश्चात् राजा कालयवनने जनार्दन श्रीकृष्णपर भलीभाँति विजय पानेके लिये वहाँसे प्रस्थान किया ॥ ९ ॥

शाल्वोऽपि भरतश्रेष्ठ कृतार्थो हृष्टमानसः।
यवनेन्द्रं परिष्वज्य जगाम स्वपुरं नृपः ॥ १० ॥

भरतश्रेष्ठ ! इधर राजा शाल्व भी कृतार्थ एवं प्रसन्नचित्त हो यवनराजको हृदयसे लगाकर अपने नगरको चला गया ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि कालयवनवाक्ये चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें कालयवनका
वाक्यविषयक चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

गरुड़का श्रीकृष्णके निवासयोग्य भूमि देखनेके लिये जाना, मथुरामें राजेन्द्र श्रीकृष्णका स्वागत, श्रीकृष्णद्वारा राजा उग्रसेन तथा मथुरावासियोंका सत्कार एवं गरुड़का लौटकर कुशस्थलीके विषयमें बताना।

जनमेजय उवाच

विदर्भनगराद् याते शक्रतुल्यपराक्रमे।
किमर्थं गरुडो नीतः किं च कर्म चकार सः ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—इन्द्रके तुल्य पराक्रमी भगवान् श्रीकृष्ण जब विदर्भ नगरसे मथुराको गये, उस समय अपने साथ गरुड़को क्यों ले गये और गरुड़ने वहाँ जाकर कौन-सा कार्य सम्पन्न किया ? ॥ १ ॥

न चारुरोह भगवान् वैनतेयं महाबलम्।
एतन्मे संशयं ब्रह्मन् ब्रूहि तत्त्वं महामुने ॥ २ ॥

महामुने ! ब्रह्मन् ! भगवान् श्रीकृष्ण महाबली गरुड़पर आरूढ़ क्यों नहीं हुए ? यह मेरा संशय है। आप इसका ठीक-ठीक समाधान करें ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच

शृणु राजन् सुपर्णेन कृतं कर्मातिमानुषम्।
विदर्भनगरीं गत्वा वैनतेयो महाद्युतिः ॥ ३ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! महातेजस्वी विनतानन्दन गरुड़ने विदर्भनगरमें जाकर ऐसा कार्य किया था, जो मानवीय शक्तिसे परेकी वस्तु है ॥ ३ ॥

असम्प्राप्ते च नगरीं मथुरां मधुसूदने।
मनसा चिन्तयामास वैनतेयो महाद्युतिः॥ ४॥
यदुक्तं देवदेवेन नृपाणामग्रतः प्रभो।
यास्यामि मथुरां रम्यां भोजराजेन पालिताम्॥ ५॥
इति तद्वचनस्यान्ते गमिष्येति विचिन्तयन्।
कृताञ्जलिपुटः श्रीमान् प्रणिपत्याब्रवीदिदम्॥ ६॥

प्रभो! मधुसूदन श्रीकृष्ण विदर्भनगरसे चलकर अभी मार्गमें ही थे, मथुरापुरी नहीं पहुँचे थे। तभी महातेजस्वी गरुड़ने मन-ही-मन विचार किया कि देवाधिदेव श्रीहरिने सब राजाओंके सामने जो कहा था कि 'मैं भोजराज उग्रसेनके द्वारा पालित रमणीय नगरी मथुराको जाऊँगा' उनके उस कथनके अन्तमें 'चलूँगा' यह कहकर मैंने भी चलना स्वीकार कर लिया था। यही सोचते हुए गरुड़को एक कार्य सूझ गया और उन तेजस्वी पक्षिराजने दोनों हाथ जोड़ भगवान्‌को प्रणाम करके इस प्रकार कहा—॥ ४—६॥

गरुड उवाच

देव यास्यामि नगरीं रैवतस्य कुशस्थलीम्।
रैवतं च गिरिं रम्यं नन्दनप्रतिमं वनम्॥ ७॥

गरुड़ बोले—देव! मैं राजा रैवतकी कुशस्थली नगरीको जाऊँगा। वहाँ रमणीय रैवत गिरि है, जहाँ नन्दनके समान मनोहर वन है॥ ७॥

रुक्मिणोद्वासितां रम्यां शैलोदधितटाश्रयाम्।
वृक्षगुल्मलताकीर्णां पुष्परेणुविभूषिताम्॥ ८॥

रुक्मीने पर्वत और समुद्रतटका आश्रय लेकर बसी हुई उस रमणीय नगरीको उजाड़ दिया है। वहाँ हरे-भरे वृक्ष, गुल्म और लताएँ फैली हुई हैं। फूलोंके पराग उसकी शोभा बढ़ाते हैं॥ ८॥

गजेन्द्रभुजगाकीर्णामृक्षवानरसेविताम्।
वराहमहिषाक्रान्तां मृगयूथैरनेकशः॥ ९॥

वहाँ हाथी और सर्प भरे हुए हैं। रीछ तथा वानर उसका सेवन करते हैं। वाराह, भैंसे तथा मृगोंके अनेकानेक झुंड वहाँ वास करते हैं॥ ९॥

तां समन्तात् समालोक्य वासार्थं ते क्षमां क्षमा।
यदि स्याद् भवतो रम्या प्रशस्ता नगरीति च॥ १०॥
कण्टकोद्धरणं कृत्वा आगमिष्ये तवान्तिकम्।

उस भूमिका सब ओरसे निरीक्षण करके मैं यह देखूँगा कि वह आपके निवासके लिये उपयुक्त है या नहीं। यदि वह आपके योग्य रमणीय या उत्तम नगरी हो सकेगी तो वहाँके कण्टकोंको (आपके मार्गका अवरोध करनेवाले शत्रुओंको) [illegible] फेंकूँगा और आपके पास लौट आऊँगा॥ १०½॥

वैशम्पायन उवाच

एवं विज्ञाप्य देवेशं प्रणिपत्य जनार्दनम्॥ ११॥
जगाम पतगेन्द्रोऽपि पश्चिमाभिमुखो बली।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार अपना अभिप्राय निवेदन करके देवेश्वर जनार्दनको प्रणाम करनेके अनन्तर बलवान् पक्षिराज गरुड़ पश्चिम दिशाकी ओर चल दिये॥ ११½॥

कृष्णोऽपि यदुभिः सार्द्धं विवेश मथुरां पुरीम्॥ १२॥
स्वैरिण्य उग्रसेनश्च नागराश्चैव सर्वशः।
प्रत्युद्गम्यार्चयन् कृष्णं प्रहृष्टजनसंकुलम्॥ १३॥

इधर श्रीकृष्ण भी यदुवंशियोंके साथ मथुरापुरीमें जा पहुँचे। उस समय राजा उग्रसेन, नर्तकियाँ तथा मथुराके नागरिक सबने आगे बढ़कर हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंके साथ आये हुए श्रीकृष्णका स्वागत-सत्कार किया॥ १२-१३॥

जनमेजय उवाच

श्रुत्वाभिषिक्तं राजेन्द्रं बहुभिर्वसुधाधिपैः।
किं चकार महाबाहुरुग्रसेनो महीपतिः॥ १४॥

जनमेजयने पूछा—बहुत-से राजाओंने मिलकर श्रीकृष्णका राजेन्द्रपदपर अभिषेक किया है—यह समाचार सुनकर महाबाहु राजा उग्रसेनने क्या किया?॥ १४॥

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वाभिषिक्तं राजेन्द्रं बहुभिः पार्थिवोत्तमैः।
इन्द्रेण कृतसंधानं दूतं चित्राङ्गदं कृतम्॥ १५॥
एकैकं नृपतेर्भागं शतसाहस्रसम्मितम्।
राजेन्द्रे त्वर्बुदं दत्तं मानवेषु च वै दश॥ १६॥
ये तत्र समनुप्राप्ता न रिक्तास्ते गृहं गताः।
शङ्खो यादवरूपेण प्रददौ हरिचिन्तितम्॥ १७॥
एवं निधिपतिः श्रीमान् दैवतैरनुमोदितः।

वैशम्पायनजीने कहा—बहुत-से श्रेष्ठ नरेशोंने मिलकर श्रीकृष्णका राजेन्द्रके पदपर अभिषेक किया है। इन्द्रका अभिप्राय निवेदन करनेके लिये चित्राङ्गद दूत बनकर आये थे। एक-एक राजाको एक-एक लाख मुद्राएँ पुरस्कारमें दी गयीं। जो राजेन्द्र था, उसे एक अर्बुद (दस करोड़) दिया गया तथा साधारण मनुष्योंको भी दस-दस हजार रुपये दिये गये। जो वहाँ पहुँच गये थे, वे खाली हाथ घर नहीं लौटे। श्रीमान् निधिपति शङ्ख ही यादवरूपसे उपस्थित हो भगवान् श्रीकृष्णकी इच्छाके अनुसार धन देता था और सम्पूर्ण देवता इसका अनुमोदन करते थे॥ १५—१७½॥

इति श्रुत्वात्मिकजनाल्लोकप्रवृत्तिकान्नरात्॥ १८॥

चकार महतीं पूजां देवतायतनेष्वपि ।

यह समाचार आत्मीय जनोंसे सुनकर तथा लोकवृत्तान्तकी जानकारी करानेवाले गुप्तचरके मुखसे जानकर उग्रसेनने देवमन्दिरोंमें विशेष रूपसे पूजाकी व्यवस्था करायी ॥ १८½ ॥

वसुदेवस्य भवने तोरणोभयपार्श्वतः ॥ १९ ॥
नटानां नृत्यगेयानि वाद्यानि च समन्ततः ।

वसुदेवके भवनके दोनों बगलमें तोरण लगे और सब ओर नटोंके नाच-गान होने और बाजे बजने लगे ॥ १९½ ॥

ताकध्वजमालाढ्यां कारयामास वै नृपः ॥ २० ॥
कंसराजस्य च सभां विचित्राम्बरसुप्रभाम् ।

राजा उग्रसेनने कंसराजकी सभाको विचित्र वस्त्रोंसे सुसज्जित तथा ध्वजा-पताका एवं मालाओंसे अलंकृत कराया ॥ २०½ ॥

ताका विविधाकारा दापयामास भोजराट् ॥ २१ ॥
ोरणं गोपुरं चैव सुधापङ्कानुलेपनम् ।
ारयामास राजेन्द्रो राजेन्द्रस्यासनालयम् ॥ २२ ॥

भोजराजने सब ओर भाँति-भाँतिकी पताकाएँ लगवायीं और प्रत्येक फाटक एवं गोपुरको चूनेसे लिपवाया । इस प्रकार राजेन्द्र उग्रसेनने राजेन्द्र श्रीकृष्णके लिये सिंहासन और भवन तैयार करवाया ॥ २१-२२ ॥

टानां नृत्यगेयानि वाद्यानि च समन्ततः ।
ताका वनमालाढ्याः पूर्णकुम्भाः समन्ततः ॥ २३ ॥
राजमार्गेषु राजेन्द्र चन्दनोदकसेचितम् ।

राजेन्द्र ! नगरमें चारों ओर नाच-गान होने और बाजे बजने लगे । राजमार्गोंपर चन्दनयुक्त जलका छिड़काव किया गया था और वहाँ चारों ओर जलसे भरे हुए कलश ले गये थे । उन कलशोंको पताका और वनमालाओंसे अलंकृत किया गया था ॥ २३½ ॥

त्राभरणकं राजा दापयामास भूतले ॥ २४ ॥
ं पार्श्वोभये चैव चन्दनागुरुगुग्गुलैः ।
ं सर्जरसं चैव दह्यमानं ततस्ततः ॥ २५ ॥

राजा उग्रसेनने भूतलपर पाँवड़ेके रूपमें वस्त्र बिछवा े थे और वहाँ फूलोंकी मालाएँ रखवा दी थीं तथा ोंके दोनों बगल चन्दन, अगुरु और गुग्गुलकी धूप ायी । जहाँ-तहाँ राल और गुड़ जलाये जा रहे २४-२५ ॥

स्त्रीजनसंघैश्च गायद्भिः स्तुतिमङ्गलम् ।
ं कृत्वा प्रतीक्षन्ते स्वेषु स्थानेषु योषितः ॥ २६ ॥

बूढ़ी स्त्रियोंके समुदाय स्थान-स्थानपर स्तुति और मङ्गल गाते थे । उनके साथ ही युवतियाँ अपने-अपने घरोंपर अर्घ्य सजाकर श्रीकृष्णके शुभागमनकी बाट जोह रही थीं ॥ २६ ॥

एवं कृत्वा पुरानन्दमुग्रसेनो नराधिपः ।
वसुदेवगृहं गत्वा प्रियाख्यानं निवेद्य च ॥ २७ ॥
रामेण सह सम्मन्त्र्य निर्गतो रथमन्तिकम् ।

इस प्रकार राजा उग्रसेन नगरमें आनन्दोत्सवकी व्यवस्था करके वसुदेवके घरपर गये और श्रीकृष्णके अभिषेक तथा आगमनका प्रिय समाचार निवेदन करके बलरामके साथ सलाहकर श्रीकृष्णके रथके निकट चले ॥ २७½ ॥

तस्मिन्नेवान्तरे राजञ्शङ्खध्वनिरभून्महान् ॥ २८ ॥
पाञ्चजन्यस्य निनदं श्रुत्वा मधुरवासिनः ।
स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च सूता मागधवन्दिनः ॥ २९ ॥
विनिर्ययुर्महासेना रामं कृत्वाग्रतो नृप ।
अर्घ्यं पाद्यं पुरस्कृत्य उग्रसेनेन धीमता ॥ ३० ॥

राजन् ! नरेश्वर ! इसी बीचमें बड़े जोरसे शङ्ख-ध्वनि सुनायी दी । पाञ्चजन्यका गम्भीर नाद सुनकर मधुपुरवासी स्त्री, बालक, वृद्ध, सूत, मागध और वन्दी बलरामजीको आगे करके विशाल सेनाके साथ अर्घ्य-पाद्य आदि लिये नगरसे बाहर निकले । इन सबके साथ बुद्धिमान् राजा उग्रसेन भी थे ॥ २८—३० ॥

दृष्टिपन्थानमासाद्य उग्रसेनो महीपतिः ।
अवतीर्य रथाच्छुभ्रात् पादमार्गेण चाग्रतः ॥ ३१ ॥

श्रीकृष्णके दृष्टिपथमें आकर राजा उग्रसेन अपने उज्ज्वल रथसे उतर पड़े और पैदल ही आगे बढ़े ॥ ३१ ॥

दृष्ट्वाऽऽसीनं रथे रम्ये दिव्यरत्नविभूषितम् ।
अङ्गेष्वाभरणं चैव दिव्यरत्नप्रभायुतम् ॥ ३२ ॥
वनमालोरसं दिव्यं तपन्तमिव भास्करम् ।
चामरं व्यजनं छत्रं खगेन्द्रध्वजमुच्छ्रितम् ॥ ३३ ॥
राजलक्षणसम्पूर्णमासन्नार्कमिवोज्ज्वलम् ।
श्रियाभिभूतं देवेशं दुर्निरीक्ष्यतरं हरिम् ॥ ३४ ॥

उन्होंने देखा, भगवान् श्रीकृष्ण एक रमणीय रथपर विराजमान हैं । दिव्य रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हैं । उनके अङ्गोंके आभूषण दिव्य रत्नोंकी प्रभासे प्रकाशित हो रहे हैं । उनके वक्षःस्थलपर वनमाला विराज रही है । वे दिव्य रूपधारी श्रीहरि तपते हुए सूर्यके समान जान पड़ते हैं । उनके दोनों पार्श्वमें चवँर और व्यजन डुलाये जाते हैं । सिरपर छत्र तना हुआ है । रथपर ऊँचा गरुड़ध्वज फहरा रहा है । वे समस्त राजोचित लक्षणोंसे सम्पन्न हैं और निकट आये हुए सूर्यके समान दिव्य ज्योतिसे जाज्व

हो रहे हैं। अद्भुत शोभासे व्याप्त दिखायी देते हैं। उन देवेश्वर श्रीहरिकी ओर देखना भी अत्यन्त कठिन हो रहा है ॥ ३२—३४ ॥

दृष्ट्वा स राजा राजेन्द्र हर्षगद्गदया गिरा।
बभाषे पुण्डरीकाक्षं रामं बलनिषूदनम् ॥ ३५ ॥

राजेन्द्र ! भगवान् श्रीकृष्णको इस रूपमें देखकर राजा उग्रसेन शत्रुसैन्यहन्ता कमलनयन बलरामजीसे हर्षगद्गद वाणीमें बोले—॥ ३५ ॥

रथेन न मया गन्तुं युक्तपूर्वेति चिन्त्य वै।
अवतीर्णो महाभाग गच्छ त्वं स्यन्दनेन च ॥ ३६ ॥

'महाभाग ! मैंने पहलेसे ही यह सोच लिया है कि मुझे रथपर बैठकर भगवान्‌के सामने नहीं जाना चाहिये। अतः तुम्हीं रथसे यात्रा करो।' ऐसा कहकर वे रथसे उतर गये ॥ ३६ ॥

विष्णुना छद्मरूपेण गत्वेमां मथुरां पुरीम्।
अनुप्रकाशितात्मानं देवेन्द्रत्वं नृपार्णवे ॥ ३७ ॥
तमहं स्तोतुमिच्छामि सर्वभावेन केशवम्।

उतरकर वे फिर बोले—भगवान् विष्णु छद्मरूप धारण करके इस मथुरापुरीमें आये थे। इन्होंने राजाओंके समुद्रमें जाकर अपने देवेन्द्र-रूपको प्रकाशित किया है; अतः मैं केशवकी सर्वतोभावसे स्तुति करना चाहता हूँ ॥ ३७½ ॥

प्रत्युवाच महातेजा राजानं कृष्णपूर्वजः ॥ ३८ ॥
न युक्तं नृपते स्तोतुं व्रजन्तं देवसत्तमम्।
विना स्तोत्रेण संतुष्टस्तव राजञ्जनार्दनः ॥ ३९ ॥
तुष्टस्य स्तुतिना किं ते दर्शनेन तव स्तुतिः।

तब श्रीकृष्णके बड़े भाई महातेजस्वी बलरामने राजा उग्रसेनको इस प्रकार उत्तर दिया—'नरेश्वर ! यहाँ आते हुए देवप्रवर श्रीकृष्णकी स्तुति करना आपके लिये उचित नहीं है। राजन् ! आपपर तो श्रीकृष्ण बिना स्तुतिके ही संतुष्ट हैं। जब वे संतुष्ट ही हैं तो उनकी स्तुतिसे आपको क्या लेना है। आपके दर्शनमात्रसे ही उनकी स्तुति हो गयी ॥ ३८-३९½ ॥

राजेन्द्रत्वमनुप्राप्य आगतस्तव वेश्मनि ॥ ४० ॥
न त्वया स्तुतवान् राजन् दिव्यैः स्तोत्रैरमानुषैः।

राजन् ! श्रीकृष्ण राजेन्द्रका पद पाकर आपके घर आ रहे हैं; इसलिये आप अमानुषिक दिव्य स्तुतियोंद्वारा उनकी स्तुति करें—यह आपके लिये उचित नहीं है ॥ ४०½ ॥

[illegible] ब्रुवमाणौ तौ सम्प्राप्तौ केशवान्तिकम् ॥ ४१ ॥
अर्घोद्यतभुजं दृष्ट्वा स्थापयित्वा रथोत्तमम्।
उवाच वदतां श्रेष्ठ उग्रसेनं नराधिपम् ॥ ४२ ॥

इस तरह बातचीत करते हुए वे दोनों श्रीकृष्णके निकट जा पहुँचे। राजा उग्रसेनको हाथमें अर्घ्य लिये खड़ा देख वक्ताओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण अपने उत्तम रथको ठहराकर उनसे इस प्रकार बोले—॥ ४१-४२ ॥

यन्मया चाभिषिक्तस्त्वं मथुरेशो भवत्विति।
न युक्तमन्यथा कर्तुं मथुराधिपते स्वयम् ॥ ४३ ॥

'मथुरापते ! मैंने जो आपका इसलिये अभिषेक किया था कि आप मथुराराज्यके स्वामी हों, उसे आप स्वयं ही मटियामेट कर दें—यह आपके लिये उचित नहीं है ॥४३॥

अर्घ्यमाचमनीयं च पाद्यं चास्मै निवेदितम्।
न दातुमर्हसे राजन्नेष मे मनसः प्रियः ॥ ४४ ॥

'राजन् ! मैंने आपको अर्घ्य, पाद्य और आचमनीय निवेदन किया है। अतः आप मुझे ये सब वस्तुएँ न दें—यही मेरे मनको प्रिय है ॥ ४४ ॥

तवाभिप्रायं विज्ञाय ब्रवीमि नृपते वचः।
त्वमेव माथुरो राजा नान्यथा कर्तुमर्हसि ॥ ४५ ॥

'नरेश्वर ! मैं आपके मनोभावको जानकर कहता हूँ। आप ही मथुराके राजा हैं और रहेंगे। इसे अन्यथा करना आपके लिये उचित नहीं है ॥ ४५ ॥

स्थानभागं च नृपते दास्यामि तव दक्षिणम्।
यथा नृपाणां सर्वेषां तथा ते स्थापितोऽग्रतः ॥ ४६ ॥

'महाराज ! मैं आपको पुरस्कारके रूपमें नियत धनका भाग अर्पित करूँगा। जैसे अन्य सब राजाओंको दिया गया है, वैसे आपके लिये भी सामने रखा हुआ है ॥ ४६ ॥

शतसाहस्रिको भागो वस्त्राभरणवर्जितः।
आरुहस्व रथं शुभ्रं चामीकरविभूषितम् ॥ ४७ ॥

'वस्त्र और आभूषण छोड़कर केवल एक लाख स्वर्ण (दीनार) आपके हिस्सेमें अर्पित हैं। अब आप इस स्वर्ण-भूषित शुभ्र रथपर आरूढ़ होइये ॥ ४७ ॥

चामरं व्यजनं छत्रं ध्वजं च मनुजेश्वर।
दिव्याभरणसंयुक्तं मुकुटं भास्करप्रभम् ॥ ४८ ॥
धारयस्व महाभाग पालयस्व पुरीमिमाम्।

'महाभाग ! मनुजेश्वर ! चँवर, व्यजन, छत्र, ध्वज और दिव्य आभूषणोंसहित सूर्यके समान प्रकाशमान मुकुट धारण कीजिये। साथ ही इस पुरीका पालन करते रहिये ॥४८½॥

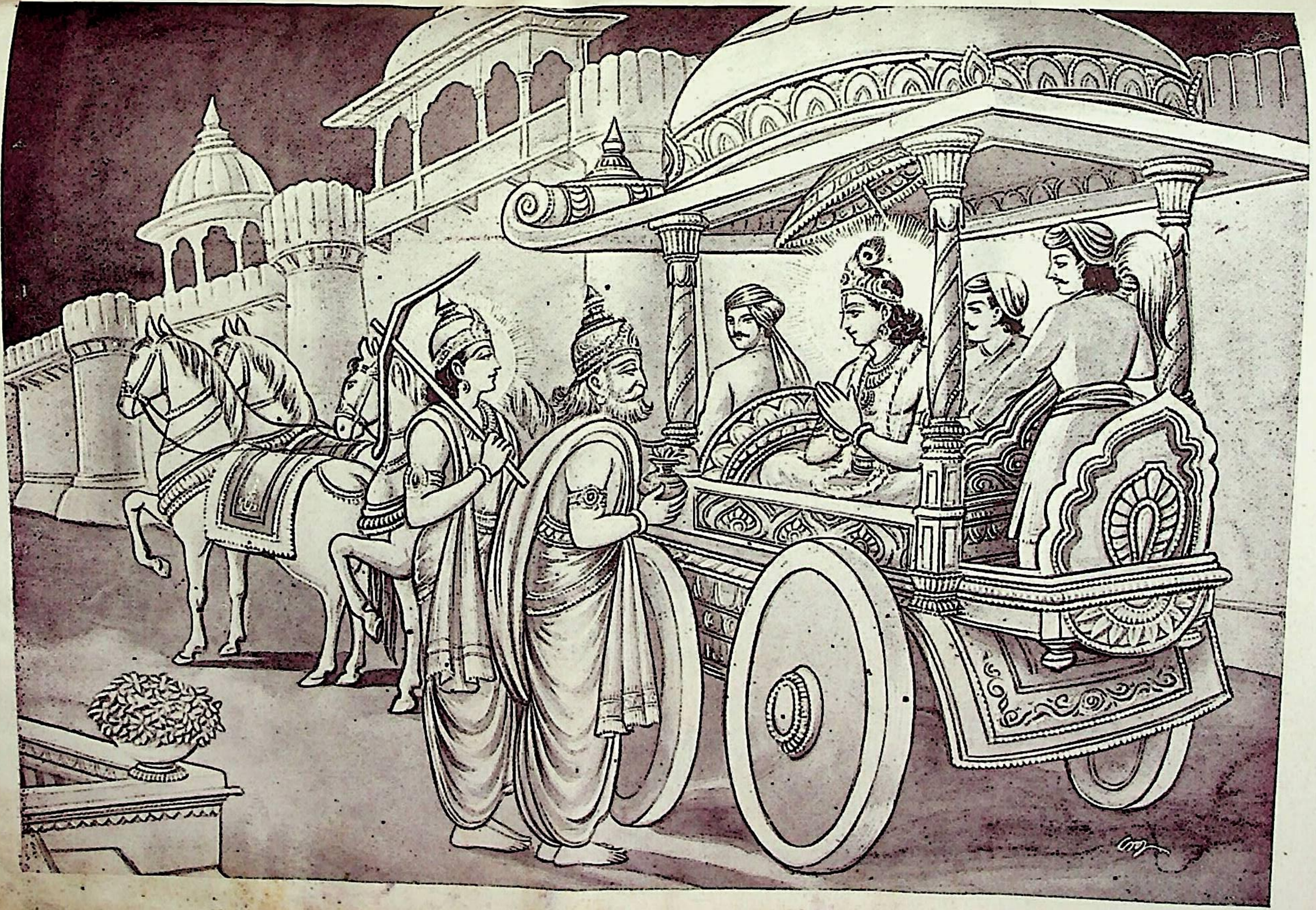

महाराज उग्रसेनके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णका स्वागत

पौत्रैः प्रमुदितो मथुरां परिपालय ॥ ४९ ॥
त्वारिगणसंघांश्च भोजवंशं विवर्द्धय ।

आप पुत्रों और पौत्रोंके साथ आनन्दित रहकर मथुरा-
का पालन कीजिये। शत्रुगणोंको पराजित करके भोजवंश-
बढ़ाइये ॥ ४९½ ॥

देवाद्यनन्ताय शौरिणे वज्रपाणिना ॥ ५० ॥
तं देवराजेन दिव्याभरणमम्बरम् ।

'वज्रधारी इन्द्रने शूरसेनके कुलमें उत्पन्न हुए देवताओं-
े देवता, सबके आदि कारण शेषस्वरूप बलरामजीके
दिव्य वस्त्र और आभूषण भेजा है ॥ ५०½ ॥

ुराणां च सर्वेषां भागा दीनारका दश ॥ ५१ ॥
मागधबन्दीनामेकैकस्य सहस्रकम् ।
स्त्रीजनसंघानां गणिकानां शतं शतम् ॥ ५२ ॥
सह तिष्ठन्ति विकद्रुप्रमुखाश्च ये ।
साहस्रिको भागस्तेषां धात्रा प्रकल्पितः ॥ ५३ ॥

मथुराके सभी नागरिकोंके लिये पृथक्-पृथक् दस-दस
र सुवर्णके भाग नियत किये गये हैं। सूत, मागध और
जनोंमेंसे एक-एकको एक-एक हजार दीनार प्राप्त होंगे।
गानेवाली बूढ़ी स्त्रियों तथा नर्तकियोंको सौ-सौ दीनार
जायँगे। विकद्रु आदि जो प्रमुख यादव राजा उग्रसेनके
रहते हैं, उनमेंसे प्रत्येकका भाग इन्द्रने दस-दस हजार
नियत किया है' ॥ ५१—५३ ॥

वैशम्पायन उवाच

सम्पूज्य राजानं माथुराणां चमूमुखे ।
सुमहदानन्दां मथुरां मधुसूदनः ॥ ५४ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार
वासियोंकी सेनाके मुहानेपर राजा उग्रसेनका सम्मान
भगवान् मधुसूदनने सारी मथुराको महान् आनन्दसे
करते हुए उसमें प्रवेश किया ॥ ५४ ॥

भरणमाल्यैश्च दिव्याम्बरविलेपनैः ।
माना: समन्ताच्च देवा इव त्रिविष्टपे ॥ ५५ ॥

से स्वर्गमें देवता शोभा पाते हैं, उसी प्रकार मथुरामें
न् श्रीकृष्ण और वहाँके नागरिक दिव्य आभूषणों,
पुष्पोंकी मालाओं तथा दिव्य वस्त्र और चन्दनोंसे
हो सब ओर प्रकाशित हो रहे थे ॥ ५५ ॥

भेरीपटहनादेन शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः ।
बृंहितेन च नागानां हयानां हेषितेन च ॥ ५६ ॥
सिंहनादेन शूराणां रथनेमिस्वनेन च ।
तुमुलः सुमहानासीन्मेघनाद इवाम्बरे ॥ ५७ ॥

'भेरी, पटह, शङ्ख और दुन्दुभि आदि वाद्योंकी ध्वनिके साथ हाथियोंके चिग्घाड़ने, घोड़ोंके हींसने, शूरवीरोंके सिंहनाद करने तथा रथके पहियोंकी घरघराहट होनेसे जो सम्मिलित महान् शब्द होता था, वह आकाशमें मेघोंकी गर्जनाके समान प्रतीत होता था ॥ ५६-५७ ॥

बन्दिभिः स्तूयमानं च नमश्चक्रुरपि प्रजाः ।
दत्त्वा दानमनन्तं च न ययौ विस्मयं हरिः ॥ ५८ ॥

बन्दीजन भगवान्‌की स्तुति करते थे और प्रजावर्गके लोग उनके चरणोंमें मस्तक झुकाते थे। उस समय धनका अनन्त दान करके भी श्रीहरिको कोई विस्मय या गर्व नहीं हुआ ॥ ५८ ॥

स्वभावोन्नतभावत्वाद् दृष्टपूर्वात् ततोऽधिकम् ।
अनहंकारभावाच्च विस्मयं न जगाम ह ॥ ५९ ॥

एक तो स्वभावसे ही उनका ऊँचा भाव था। वे उससे पहले उसकी अपेक्षा भी अधिक धनका दान देख चुके थे और स्वाभाविक ही उन्हें अहंकार छू नहीं गया था; इसलिये उनको विस्मय या गर्व नहीं हुआ ॥ ५९ ॥

दीप्यमानं स्ववपुषा आयान्तं भास्करप्रभम् ।
दृष्ट्वा मथुरवासिन्यो नमश्चक्रुः पदे पदे ॥ ६० ॥

अपने इस शरीरसे प्रकाशित होते हुए सूर्यतुल्य तेजस्वी भगवान् श्रीकृष्णको आते देख मथुरावासी स्त्रियाँ पग-पगपर उन्हें नमस्कार करती थीं ॥ ६० ॥

एष नारायणः श्रीमान् क्षीरार्णवनिकेतनः ।
नागपर्यङ्कमुत्सृज्य प्राप्तोऽयं मथुरां पुरीम् ॥ ६१ ॥

(उस समय मथुरावासी आपसमें इस प्रकार कहते थे)
'ये ही क्षीरसमुद्रमें निवास करनेवाले श्रीमान् भगवान् नारायण हैं, जो इस समय शेषशय्याका परित्याग करके मथुरा पुरीमें आ गये हैं ॥ ६१ ॥

बद्ध्वा बलिं महावीर्यं दुर्जयं त्रिदशैरपि ।
शक्राय प्रददौ राज्यं त्रैलोक्यं वज्रपाणये ॥ ६२ ॥

'इन्होंने देवताओंके लिये भी दुर्जय महापराक्रमी राजा बलिको बाँधकर वज्रधारी इन्द्रको त्रिलोकीका राज्य दे दिया था ॥ ६२ ॥

हत्वा दैत्यगणान् सर्वान् कंसं च बलिनां वरम् ।

---

१. एक हजार स्वर्णमुद्राओंका एक दीनार होता है। इसके
र मथुराके प्रत्येक नागरिकको दस-दस हजार स्वर्णमुद्राएँ
ी गयीं।

भोजराजाय मथुरां दत्त्वा केशिनिषूदनः ॥ ६३ ॥
नाभिषिक्तः स्वयं राज्ये न चासीनो नृपासने ।
राजेन्द्रत्वं च सम्प्राप्य मथुरामाविशत् ततः ॥ ६४ ॥

'इन केशिनिषूदन केशवने समस्त दैत्यसमूहोंका वध करके बलवानोंमें श्रेष्ठ कंसको मारकर मथुराका राज्य भोजराज उग्रसेनको दे दिया; किंतु न तो स्वयं ये राज्यपर अभिषिक्त हुए और न राजाके सिंहासनपर ही बैठे । इस समय राजेन्द्र-पद प्राप्त करके ये मथुरामें प्रविष्ट हुए हैं' ॥ ६३-६४ ॥

एवमन्योन्यसंजल्पं श्रुत्वा पुरनिवासिनाम् ।
बन्दिमागधसूतानामिदमूचुर्गणाधिपाः ॥ ६५ ॥

इस प्रकार आपसमें कही गयी पुरवासियोंकी बातें सुनकर सूत, मागध और बन्दीजनोंके प्रधान लोग इस प्रकार कहने लगे—॥ ६५ ॥

किं वा शक्यामहे वक्तुं गुणानां ते गुणोदधे ।
मानुषेणैकजिह्वेन प्रभावोत्साहसम्भवान् ॥ ६६ ॥

'गुणसागर ! हम मनुष्यको मिली हुई एक जिह्वाके द्वारा आपके गुणोंका प्रभाव, उत्साह और प्राकट्य कैसे बता सकते हैं ! ॥ ६६ ॥

स तत्र भोगी नागेन्द्रः कदाचिद् देव बुद्धिमान् ।
द्विसाहस्रेण जिह्वेन वासुकिः कथयिष्यति ॥ ६७ ॥

'देव ! कदाचित् पाताललोकमें रहनेवाले सर्पशरीरधारी नागराज बुद्धिमान् वासुकि (शेष) अपनी दो हजार जिह्वाओं-द्वारा आपके गुण-प्रभावका वर्णन कर सकेंगे ॥ ६७ ॥

किं त्वद्भुतमिदं लोके मानवेन्द्रेषु भूतले ।
न भूतं न भविष्यं च शक्रादासनमागतम् ॥ ६८ ॥

'इस भूतलपर या जगत्‌में नरेशोंके लिये कभी इन्द्रलोकसे सिंहासन आया हो, यह अद्‌भुत बात न कभी हुई थी और न भविष्यमें कभी होनेवाली है । (किंतु आपने इस असम्भवको भी सम्भव कर दिखाया) ॥ ६८ ॥

सभावतरणं चैव कलशैरागतं स्वयम् ।
न श्रुतं न च दृष्टं वा तेन मन्यामहेऽद्भुतम् ॥ ६९ ॥

'स्वर्गसे सभाभवनका उतरना और आकाशमें दिव्य कलशोंका प्रकट होकर स्वयं ही अभिषेक करना न तो किसीने देखा था और न कभी सुननेमें ही आया था । इसलिये हम इस घटनाको अद्‌भुत मानते हैं ॥ ६९ ॥

धन्या देवी महाभागा देवकी योषितां वरा ।
ावन्तं त्रिदशश्रेष्ठं धृत्वा गर्भेण केशवम् ॥ ७० ॥
[illegible] गं पद्मपलाशाक्षं श्रीपुञ्जममरार्चितम् ।
[illegible] स्नेहपूर्णाभ्यां वीक्षते मुखपङ्कजम् ॥ ७१ ॥

'युवतियोंमें श्रेष्ठ महाभागा देवकीदेवी धन्य हैं, जिन्हों आप देवप्रवर केशवको गर्भमें धारण करनेका महान् सौभा प्राप्त किया और अब वे अपने स्नेहपूर्ण नेत्रोंसे आपके श्या सुन्दर कमलनयन शोभाधाम देवपूजित मुखारविन्दको निहा करती हैं' ॥ ७०-७१ ॥

इति संजल्पमानानां शृण्वन्तौ पृथगीरितम् ।
उग्रसेनं पुरस्कृत्य भ्रातरौ रामकेशवौ ॥ ७२
प्राकारद्वारि सम्प्राप्तावर्चयामास वै तदा ।
अर्घ्यमाचमनं दत्त्वा पाद्यं पाद्येति चाब्रवीत् ॥ ७३
उग्रसेनस्ततो धीमान् केशवस्य रथाग्रतः ।

ऐसी बातें कहनेवाले सूत, मागध और बन्दियोंके पृथ पृथक् वचनोंको सुनते हुए दोनों भाई बलराम और श्रीकृ उग्रसेनको आगे करके नगरकी चहारदिवारीके दरवाजेपर पहुँचे । उस समय बुद्धिमान् राजा उग्रसेनने भगवान् श्री कृष्णके रथके आगे खड़ा होकर कहा—पाद्य लाओ, पा लाओ ।' फिर स्वयं ही पाद्य, अर्घ्य और आचमन दे उनका पूजन किया ॥ ७२–७३½ ॥

प्रणम्य शिरसा कृष्णं गजमारुह्य वीर्यवान् ॥ ७४
घनवत् तोयधारेण ववर्ष कनकाम्बुभिः ।

तत्पश्चात् श्रीकृष्णको सिरसे प्रणाम करके वे परा राजा उग्रसेन हाथीपर चढ़ गये और जैसे मेघ पानीकी ध गिराता है, उसी प्रकार वे सुवर्णमय जलकी वर्षा कर लगे ॥ ७४½ ॥

धनौघैर्वर्षमाणस्तु सम्प्राप्तः पितृवेश्मनि ॥ ७५
मथुराधिपतिः श्रीमानुवाच मधुसूदनम् ।

उस वर्षाके साथ ही श्रीकृष्ण अपने पिताके घर पहुँचे । वहाँ श्रीमान् मथुरानरेश उग्रसेनने मधुसूदन श्रीकृ से कहा—॥ ७५½ ॥

राजेन्द्रत्वमनुप्राप्य युक्तं मे नृपवेश्मनि ॥ ७६
स्थापितुं देवराजेन दत्तं सिंहासनं प्रभो ।

'प्रभो ! आपने राजेन्द्रका पद प्राप्त किया है; अ आपके लिये यही उचित है कि आप देवराज इन्द्रके वि हुए सिंहासनको इस राजमहलमें स्थापित करें ॥ ७६½ ॥

नेष्यामि मथुरेशस्य सभां भुजबलार्जिताम् ॥ ७७
प्रसादयिष्ये भगवन् न कोपं कर्तुमर्हसि ।

भगवन् ! 'आप ही मथुराके स्वामी हैं । आपने यहाँ राजसभाको अपनी भुजाओंके बलसे प्राप्त किया है । मैं आप उस सभामें ले चलूँगा । एवं अपने व्यवहारोंसे आपको प्रस रखनेकी चेष्टा करूँगा । आप मुझपर क्रोध न करें ॥७७½

की वसुदेवश्च रोहिणी च विशाम्पते ॥ ७८ ॥
किंचित्करणे शक्ता हर्षक्लमविमोहिता ।

प्रजानाथ ! देवकी, वसुदेव और रोहिणी—ये हर्षके से मोहित हो गये थे; अतः उस समय कुछ भी न कर ॥ ७८½ ॥

माता ततो राजन्नर्चयामास केशवम् ॥ ७९ ॥
दिग्देशजानीतं कंसेनोपार्जितं धनम् ।
ालं समालोक्य पादयुग्मे न्यवेदयत् ॥ ८० ॥
नं समाहूय उवाच श्लक्ष्णया गिरा ।

राजन् ! तब कंसकी माता पद्मावतीने भगवान् केशवका किया और कंस अनेक देशोंसे जिस धनको जीतकर था, उसे देशकालका विचार करके श्रीकृष्णके युगल निछावर कर दिया । इस समय श्रीकृष्णने राजा को बुलाकर मधुर वाणीमें इस प्रकार कहा ॥७९-८०½॥

श्रीकृष्ण उवाच

हं मथुराकाङ्क्षी न मया वित्तकाङ्क्षया ॥ ८१ ॥
तस्तव पुत्रोऽयं कालेन निधनं गतः ।

श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! मैं मथुराका राज्य नहीं । मैंने धनकी अभिलाषासे आपके पुत्रका वध नहीं है। यह कालसे ही मृत्युको प्राप्त हुआ है ॥ ८१½ ॥

विविधान् यज्ञान् ददस्व विपुलं धनम् ॥ ८२ ॥
रिपुसैन्यानि मम बाहुबलाश्रयात् ।

राजन् ! आप नाना प्रकारके यज्ञ कीजिये, प्रचुर धनका दीजिये और मेरे बाहुबलका आश्रय लेकर शत्रुओंकी पर विजय पाइये ॥ ८२½ ॥

मनसस्तापं कंसनाशोद्भवं भयम् ॥ ८३ ॥
वित्तनिचयं मया दत्तं पुनस्तव ।

ाप मानसिक संतापको त्याग दीजिये । कंस-वधजनित मनसे निकाल दीजिये तथा मेरी दी हुई इस धन- पुनः अपने ही भवनमें ले जाइये ॥ ८३½ ॥

श्वास्य राजानं कृष्णस्तु हलिना सह ॥ ८४ ॥
ततः श्रीमान् मातापित्रोरथान्तिकम् ।

स तरह राजा उग्रसेनको आश्वासन दे श्रीमान् श्रीकृष्ण साथ माता-पिताके पास गये ॥ ८४½ ॥

परिपूर्णाभ्यां हृदयाभ्यां महाबलौ ॥ ८५ ॥
ास्तु पादान् वै नमश्चक्रतुरानतौ ।

ाँ उन दोनों महाबली वीरोंने आनन्दपूर्ण हृदयसे होकर माता-पिताके चरणोंमें नमस्कार किया ॥८५½॥

तस्मिन् मुहूर्ते नगरी मथुरा तु बभूव सा ॥ ८६ ॥
स्वर्गलोकं परित्यज्यावतीर्णेवामरावती ।

उस मुहूर्तमें मथुरा नगरी ऐसी जान पड़ती थी, मानो अमरावतीपुरी स्वर्गलोकका परित्याग करके भूतलपर उतर आयी हो ॥ ८६½ ॥

वसुदेवस्य भवनं समीक्ष्य पुरवासिनः ॥ ८७ ॥
मनसा चिन्तयामासुर्देवलोकं न भूतलम् ।

वसुदेवके घरकी ओर देखकर पुरवासी अपने मनमें सोचने लगे कि यह भूलोक नहीं देवलोक है ॥ ८७½ ॥

विसृज्य मथुरेशं तु महिषीसहितं तदा ॥ ८८ ॥
भवनं वसुदेवस्य प्रविश्य बलकेशवौ ।
न्यस्तशस्त्रावुभौ वीरौ स्वगृहे स्वैरचारिणौ ॥ ८९ ॥

उस समय रानीसहित मथुरानरेशको विदा करके दोनों वीर बलराम और श्रीकृष्ण वसुदेवके घरमें प्रविष्ट हुए और अस्त्र-शस्त्र रखकर अपने घरमें इच्छानुसार विचरने लगे ॥ ८८-८९ ॥

ततः कृताह्निकौ भूत्वा सुखासीनौ कथान्तरे ।
एतस्मिन्नेव काले तु महोत्पातो बभूव ह ॥ ९० ॥

तदनन्तर, नित्य कर्म करके सुखपूर्वक बैठकर जब वे दोनों बातचीत करने लगे, इसी समय वहाँ महान् उत्पात प्रकट हुआ ॥ ९० ॥

बभ्रमुश्च घनाकाशे चेलुश्च भुवि पर्वताः ।
समुद्राः क्षुभिताः सर्वे विभ्रान्तो भोगिनां वरः ॥९१॥
कम्पिता यादवाः सर्वे न्युब्जाश्च पतिता भुवि ।

आकाशमें बादल चक्कर काटने लगे । पृथ्वीपर पर्वत हिलने लगे । सारे समुद्र क्षुब्ध हो उठे और सर्पोंमें श्रेष्ठ शेषनाग भी चकरा गये । समस्त यादव कम्पित हो औंधे मुँह पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ९१½ ॥

तौ तान् निपतितान् दृष्ट्वा रामकृष्णौ तु निश्चलौ॥ ९२ ॥
महता पक्षवातेन विज्ञातौ पतगोत्तमम् ।

उन सबको गिरा हुआ देखकर भी बलराम और श्रीकृष्ण विचलित नहीं हुए । पाँखोंसे उठी हुई प्रचण्ड वायुके द्वारा उन्हें यह पता लग गया कि पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड़ आ रहे हैं ॥ ९२½ ॥

ददर्श समनुप्राप्तं दिव्यस्रगनुलेपनम् ॥ ९३ ॥
प्रणम्य शिरसा ताभ्यां सौम्यरूपी कृतासनः ।

इतनेमें ही श्रीकृष्णने देखा, गरुड़जी आ गये । वे पुष्पोंके हार और दिव्य चन्दनसे अलंकृत थे

झुकाकर उन दोनों भाइयोंको प्रणाम किया । फिर वे सौम्यरूप धारण करके एक आसनपर बैठ गये ॥ ९३½ ॥

तं दृष्ट्वा समनुप्राप्तं सचिवं साम्परायिकम् ॥ ९४ ॥
धृतिमन्तं गरुत्मन्तमुवाच बलिसूदनः ।

अपने समरसचिव धैर्यवान् गरुड़को आया देख बलिको बाँधनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार बोले—॥ ९४½ ॥

स्वागतं खेचरश्रेष्ठ सुरसेनारिमर्दन ॥ ९५ ॥
विनताहृदयानन्द स्वागतं केशवप्रिय ।

'पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड़ ! तुम्हारा स्वागत है । देवसेनाके शत्रुओंको कुचल देनेवाले पक्षिराज ! तुम्हारा स्वागत है । विनताके हृदयको आनन्द देनेवाले केशवप्रिय गरुड़ ! तुम्हारा स्वागत है' ॥ ९५½ ॥

तमुवाच ततः कृष्णः स्थितं देहमिवापरम् ॥ ९६ ॥
तुल्यसामर्थ्यया वाचा आसीनं विनतात्मजम् ।

तदनन्तर, श्रीकृष्ण अपने दूसरे शरीरके समान बैठे हुए विनतानन्दन गरुड़से अपनी शक्तिके अनुरूप वाणीद्वारा इस प्रकार बोले—॥ ९६½ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

यास्यामः पतगश्रेष्ठ भोजस्यान्तःपुरं महत् ॥ ९७ ॥
तत्र गत्वा सुखासीना मन्त्रयामो मनोगतम् ।

श्रीकृष्णने कहा—पक्षिप्रवर ! हमलोग भोजराजके विशाल अन्तःपुरमें चलेंगे और वहीं सुखपूर्वक बैठकर मनोगत विषयपर गुप्तरूपसे विचार करेंगे ॥ ९७½ ॥

वैशम्पायन उवाच

प्रविष्टौ तौ महावीर्यौ बलदेवजनार्दनौ ॥ ९८ ॥
वैनतेयतृतीयौ च गुह्यं मन्त्रमथाब्रुवन् ।
अवध्योऽसौ कृतोऽस्माकं सुमहच्च रिपोर्बलम् ॥ ९९ ॥
वृतः सैन्येन महता महद्भिश्च नराधिपैः ।
बहुलानि च सैन्यानि हन्तुं वर्षशतैरपि ॥१००॥
न शक्ष्यामः क्षयं कर्तुं जरासंधस्य वाहिनीम् ।
अतोऽर्थे वैनतेय त्वां ब्रवीमि मथुरां पुरीम् ॥१०१॥
वसतोरावयोः श्रेयो न भवेदिति मे मतिः ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! इसके बाद महापराक्रमी बलराम और श्रीकृष्ण तीसरे गरुड़को साथ लेकर उक्त भवनमें प्रविष्ट हुए और गुप्त विषयपर मन्त्रणा करने ने । उस समय श्रीकृष्ण बोले—'विनतानन्दन ! जरासंधको ओंके लिये अवध्य बना दिया गया है (यही दशा री है) । परंतु हमारे उस शत्रुका सैनिक एवं शारीरिक बल बहुत बड़ा है । वह बहुत बड़ी सेना तथ महान् नरेशोंसे घिरा रहता है । उसकी सेनाएँ इतनी अधि हैं कि हमलोग जरासंधकी उस विशालवाहिनीका सौ वर्षों भी संहार नहीं कर सकेंगे । अतः मैं तुमसे कहता हूँ कि अब मथुरापुरीमें रहनेसे हम दोनोंका भला नहीं होगा मेरा तो ऐसा ही विश्वास है' ॥ ९८—१०१½ ॥

गरुड उवाच

देवदेवं नमस्कृत्य गतोऽहं भवतोऽन्तिकात् ॥१०२
वासार्थमीक्षितुं भूमिं तव देव कुशस्थलीम् ।

गरुड़ बोले—देव ! आप देवताओंके भी देव हैं । आपको नमस्कार करके मैं आपके निकटसे आपही रहनेयोग्य निवासभूमिका निरीक्षण करनेके लिये कुशस्थली ओर चला गया था ॥ १०२½ ॥

गत्वाहं खे समास्थाय समन्तादवलोक्य ताम् ॥१०
दृष्ट्वाहं विबुधश्रेष्ठ पुरीं लक्षणपूजिताम् ।

सुरश्रेष्ठ ! वहाँ जाकर आकाशका आश्रय ले सब ओर निरीक्षण करके मैं इस निश्चयपर पहुँचा हूँ कि वहाँ सभी शु लक्षणोंसे सम्पन्न एवं सम्मानित पुरीका निर्माण हो सक है ॥ १०३½ ॥

सागरानूपविपुलां प्रागुदक्प्लवशीतलाम् ॥१०४
सर्वतोदधिमध्यस्थामभेद्यां त्रिदशैरपि ।

कुशस्थलीके बहुत-से प्रदेश सागरके समीप होनेसे जलप्रा हैं । वहाँकी भूमि पूर्व और उत्तरकी ओरसे कुछ ढालू औ शीतल है । वह सब ओरसे समुद्रके बीचमें है, इस कारण व बसी हुई पुरीका भेदन करना देवताओंके लिये भी असम्भ होगा ॥ १०४½ ॥

सर्वरत्नाकरवतीं सर्वकामफलद्रुमाम् ॥१०५
सर्वर्तुकुसुमाकीर्णां सर्वतः सुमनोहराम् ।

वहाँ जो पुरी बनेगी, वह सब प्रकारके रत्नोंकी खा होगी । वहाँके वृक्ष सम्पूर्ण मनोवाञ्छित कामनाओंको फल रूपमें प्रदान करनेवाले होंगे । सभी ऋतुओंमें खिलनेवा फूल उस पुरीकी शोभा बढ़ायेंगे । वह सब ओरसे अत्य मनोहर होगी ॥ १०५½ ॥

सर्वाश्रमाधिवासां च सर्वकामगुणैर्युताम् ॥१०६
नरनारीसमाकीर्णां नित्यामोदविवर्द्धिनीम् ।

वहाँ सभी आश्रमोंके लोग निवास करेंगे । वह पु समस्त कमनीय गुणोंसे अलंकृत होगी । असंख्य नर-नारियों भरी रहकर सदा ही आमोद-प्रमोदको बढ़ानेवा होगी ॥ १०६½ ॥

ारपरिखोपेतां गोपुराट्टालमालिनीम् ॥१०७॥
वित्रचत्वरपथां विपुलद्वारतोरणाम् ।
ार्गलविचित्राढ्यां हेमप्राकारशोभिताम् ॥१०८॥

वह नगरी परकोटों, खाइयों, गोपुरों और अट्टालिकाओं-ंक्तियोंसे सुशोभित होगी। इसकी सड़कें और चौराहे त शोभासे सम्पन्न होंगे। उस पुरीके द्वार एवं फाटक बड़े-बड़े होंगे। विचित्र-विचित्र यन्त्रों और अर्गलाओंसे म्पन्न होगी। सोनेकी चहारदीवारी उसकी शोभा बढ़ायेगी॥

ागाश्वकलिलां रथसैन्यसमाकुलाम् ।
दिग्देशजाकीर्णां दिव्यपुष्पफलद्रुमाम् ॥१०९॥

हाथी, घोड़े, मनुष्य और रथोंकी सेनासे वह पुरी व्याप्त) विभिन्न दिशाओं और देशोंके लोगों तथा वहाँ हुए पदार्थोंसे वह भरी होगी। दिव्य पुष्प और फल ले देववृक्ष उसकी शोभा बढ़ायेंगे ॥ १०९ ॥

ाध्वजमालाढ्यां महाभवनशालिनीम् ।
र्णीं रिपुसंघानां मित्राणां हर्षवर्द्धनीम् ॥११०॥

वह नगरी ध्वजा-पताकाओंकी पङ्क्तियोंसे अलंकृत तथा ड़े भवनोंसे सुशोभित होगी। शत्रु-समूहोंका भय और का हर्ष बढ़ाती रहेगी ॥ ११० ॥

ेन्द्राधिवासेभ्यो विशिष्टां नगरोत्तमाम् ।
ं च गिरिश्रेष्ठं कुरु देव सुरालयम् ॥१११॥
नप्रतिमं दिव्यं पुरद्वारस्य भूषणम् ।
यस्वाधिवासं च तत्र गत्वा सुरोत्तम ॥११२॥

देव! अबतक नरेन्द्रके जितने अधिवास हैं, उन सबसे वह विशिष्ट होगी। देवताओंका निवासस्थान जो गिरिश्रेष्ठ है, उसको और वहाँके नन्दनवन-सदृश दिव्य वनको अपने ारका भूषण बनाइये। सुरश्रेष्ठ! वहीं चलकर आप कीजिये ॥ १११-११२ ॥

ीणां प्रचारश्च सुरमण्यो भविष्यति ।
द्वारवती ज्ञेया त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥११३॥
्यति पुरी रम्या शक्रस्येवामरावती ।

वहाँ कुमारियोंका अत्यन्त महोहर ढंगसे घूमना-फिरना केगा। उस पुरीका नाम होगा द्वारवती या द्वारका, जो लोकोंमें प्रसिद्ध होगी। वह पुरी इन्द्रकी अमरावतीके न परम रमणीय होगी ॥ ११३½ ॥

स्यात् संवृतां भूमिं प्रदास्यति महोदधिः॥११४॥
ं विविधं कर्म विश्वकर्मा करिष्यति ।

दि महासागर जलसे ढकी हुई भूमि (का कुछ भाग) दे देगा, तो वहाँ उपर्युक्त गुणोंसे सम्पन्न पुरीका निर्माण हो सकेगा। साक्षात् विश्वकर्मा पधारकर वहाँ आपकी इच्छाके अनुसार नाना प्रकारके शिल्प-कर्म करेंगे ॥ ११४½ ॥

मणिमुक्ताप्रवालाभिर्वज्रवैदूर्यसप्रभैः ॥११५॥
दिव्यैरभिप्राययुतैर्दिव्यरत्नैस्त्रिलोकजैः ।
दिव्यस्तम्भशताकीर्णान् स्वर्गे देवसभोपमान् ॥११६॥
जाम्बुनदमयाच्छुभ्रान् सर्वरत्नविभूषितान् ।
दिव्यध्वजपताकाढ्यान् देवगन्धर्वपालितान् ॥११७॥
चन्द्रसूर्यप्रतीकाशान् प्रासादान् कारय प्रभो ।

प्रभो! आप मणि, मोती, मूँगा, हीरा, वैदूर्य तथा दिव्य भावोंसे युक्त त्रिलोकीके अन्यान्य दिव्य रत्नोंद्वारा ऐसे महल बनवाइये, जो स्वर्गलोककी देव-सभाओंके समान शोभा पा रहे हों। उनमें सैकड़ों दिव्य खम्भे लगे हों। वे महल सोनेकी ईंटोंसे बने हों और उन्हें सब प्रकारके रत्नोंसे विभूषित किया गया हो। वे शुभ्र प्रासाद दिव्य ध्वजा और पताकाओं-से अलंकृत हों। चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रतीत होते हों और देव-गन्धर्व उनकी रक्षामें तत्पर रहें ॥ ११५–११७½ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं कृत्वा तु संकल्पं वैनतेयोऽथ केशवम् ॥११८॥
प्रणम्य शिरसा ताभ्यां निषसाद कृतासनः ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! इस प्रकार श्रीकृष्णके प्रति अपना मनोभाव प्रकट करके विनतानन्दन गरुड़ने सिर झुकाकर उन दोनों भाइयोंको प्रणाम किया। फिर वे अपने आसनपर बैठ गये ॥ ११८½ ॥

कृष्णोऽपि रामसहितो विचिन्त्य हितमीरितम्॥११९॥
प्रकाशकर्तुकामौ तौ विसृज्य विनतात्मजम् ।
सत्कृत्य विधिवद् राजन् महार्हवरभूषणैः ॥१२०॥
मोदेते सुखिनौ तत्र सुरलोके यथामरौ ।

राजन्! फिर बलरामसहित श्रीकृष्णने भी गरुड़की कही हुई हितकर बातपर विचार करके उसे प्रकाशित करनेकी इच्छा की और बहुमूल्य सुन्दर आभूषणोंद्वारा विनतानन्दन गरुड़का विधिवत् सत्कार करके उन्हें विदा कर दिया। तत्पश्चात् देवलोकमें विहार करनेवाले दो अमरोंकी भाँति वे दोनों भाई मथुरामें सुख और आनन्दके साथ रहने लगे ॥११९-१२०½॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा भोजराजो महायशाः ॥१२१॥
कृष्णं स्नेहेन विस्रब्धं बभाषे वचनामृतम् ।

गरुड़का वह वचन सुनकर महायशस्वी भोजराज उग्र श्रीकृष्णसे स्नेह और विश्वासपूर्वक यह अमृतके सम वचन बोले—॥ १२१½ ॥

कृष्ण कृष्ण महाबाहो यदूनां नन्दिवर्द्धन ॥१२२॥
श्रूयतां वचनं त्वाद्य वक्ष्यामि रिपुसूदन ।

'श्रीकृष्ण ! यदुकुलका आनन्द बढ़ानेवाले महाबाहु श्रीकृष्ण ! शत्रुसूदन ! आज मैं तुमसे जो बात कहता हूँ, उसे सुनो ॥ १२२½ ॥

त्वया विहीनाः सर्वे स्म न शक्ताः सुखमासितुम् ॥१२३॥
पुरेऽस्मिन् विषयान्ते वा पतिहीना इव स्त्रियः ।

'जैसे पतिहीन स्त्रियाँ कहीं सुखसे नहीं रह सकतीं, उसी प्रकार तुमसे बिछुड़कर हम समस्त यादव इस नगर या राज्यमें सुखसे नहीं रह सकते हैं ॥ १२३½ ॥

त्वत्सनाथा वयं तात त्वद्बाहुबलमाश्रिताः ॥१२४॥
बिभीमो न नरेन्द्राणां सेन्द्राणामपि मानद ।

'दूसरोंको मान देनेवाले तात ! हम तुमसे सनाथ होक तुम्हारे बाहुबलका आश्रय ले नरेन्द्रोंकी तो बात ही क्या इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंसे भी नहीं डरते हैं ॥ १२४½

विजयाय यदुश्रेष्ठ यत्र यत्र गमिष्यसि ॥१२५
तत्र त्वं सहितोऽस्माभिर्गच्छेथा यादवर्षभ ।

'यदुश्रेष्ठ ! यादवप्रवर ! तुम विजयके लिये जहाँ-जा जाओ, वहाँ हम सबको साथ लिये चलो' ॥ १२५½ ॥

तस्य राज्ञो वचः श्रुत्वा सस्मितं देवकीसुतः ॥१२६
यथेष्टं भवतामद्य तथा कर्तास्म्यसंशयम् ॥१२

राजा उग्रसेनकी यह बात सुनकर देवकीनन्दन भगवा श्रीकृष्ण मुसकराकर बोले—'राजन् ! अब आपकी जैसी इच होगी, वैसा ही करूँगा, इसमें संशय नहीं है ॥१२६-१२

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि श्रीकृष्णस्य मथुरागमनमहोत्सवो
द्वारवतीप्रयाणसंकेतो नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें श्रीकृष्णका मथुरा-गमनमहोत्सव
तथा उनके द्वारका जानेका संकेतनामक पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५५ ॥

◆

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्णकी आज्ञासे यादवोंका द्वारकापुरीको प्रस्थान

वैशम्पायन उवाच

कस्यचित् त्वथ कालस्य सभ्यांस्तान् यदुसंसदि ।
बभाषे पुण्डरीकाक्षो हेतुमद्वाक्यमुत्तमम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर, किसी समय कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने यादवोंकी सभामें बैठे हुए समस्त सभासदोंसे यह हेतुयुक्त उत्तम वचन कहा—॥ १ ॥

यादवानामियं भूमिर्मथुरा राष्ट्रमालिनी ।
वयं चैवेह सम्भूता व्रजे च परिवर्द्धिताः ॥ २ ॥

'यह राष्ट्रकी मालासे अलंकृत (समूचे राष्ट्रको मालाकी भाँति धारण करनेवाली राजधानी) मथुरापुरी यादवोंकी भूमि है । हम भी यहीं पैदा हुए हैं और इसीके व्रजमें पलकर बड़े हुए हैं ॥ २ ॥

[illegible]दिदानीं गतं दुःखं शत्रवश्च पराजिताः ।
[illegible] जनितं वैरं जरासंधेन विग्रहः ॥ ३ ॥

[illegible] हमारा सारा दुःख दूर हो गया है । हमारे शत्रु भी हमसे हार मान चुके हैं । हमने राजाओंसे वैर मो ले लिया और जरासंधसे लड़ाई छेड़ दी है ॥ ३ ॥

वाहनानि च नः सन्ति पादातं चाप्यनन्तकम् ।
रत्नानि च विचित्राणि मित्राणि च बहूनि च ॥ ४

'हमारे पास पर्याप्त वाहन हैं । पैदलोंकी संख्या भी अ है । हमारे खजानेमें विचित्र रत्न हैं तथा हमारे मित्रोंकी संख भी बहुत है ॥ ४ ॥

इयं च माथुरी भूमिरल्पा गम्या परस्य तु ।
वृद्धिश्चैव परास्माकं बलतो मित्रतस्तथा ॥ ५

'परंतु यह मथुराकी भूमि बहुत छोटी है और शत्रु सुगमतापूर्वक इसमें प्रवेश हो जाता है । इधर हम सैनिकों और मित्रोंकी बहुत अधिक वृद्धि हुई है ॥ ५ ॥

कुमारकोट्यो याश्चेमाः पदातीनां गणाश्च ये ।
एषामपीह वसतां सम्मर्दमुपलक्षये ॥ ६

'हमारे पास जो ये एक करोड़ कुमार (अविवाहित

तथा ये जो पैदलोंके बहुत-से दल हैं, इनके भी
से यहाँ बड़ी भीड़-भाड़ दिखायी देती है ॥ ६ ॥

रोचते मह्यं निवासो यदुपुङ्गवाः ।
निवेशयिष्यामि मम तत् क्षन्तुमर्हथ ॥ ७ ॥

तः यदुपुङ्गवो ! अब यहाँ निवास करना मुझे
नहीं लगता है; इसलिये मैं दूसरी पुरी
। मेरी इस धृष्टताको आपलोग क्षमा
७ ॥

यदनुरूपं वो ममाभिप्रायजं वचः ।
भवतां काले यदुक्तं यदुसंसदि ॥ ८ ॥

स यादवसभामें मेरे हार्दिक अभिप्रायके अनुसार जो
ी गयी है, वह समयानुसार आपलोगोंके उद्भवके
है। यदि आपलोगोंको अनुकूल जँचती हो तो
॥ ८ ॥

यादवाः सर्वे हृष्टेन मनसा तदा ।
यदभिप्रेतं जनस्यास्य भवाय वै ॥ ९ ॥

समस्त यादव प्रसन्न मनसे बोल उठे—'प्रभो !
व-समाजके उद्भवके लिये आपको जो अभीष्ट हो,
कीजिये' ॥ ९ ॥

सम्मन्त्रयामासुर्वृष्णयो मन्त्रमुत्तमम् ।
ऽसौ कृतोऽस्माकं सुमहच्च रिपोर्बलम् ॥ १० ॥

समस्त वृष्णिवंशी मिलकर उत्तम मन्त्रणा करने
'यह जरासंध (या कालयवन) हमलोगोंके लिये
कर दिया गया है । हमारे उस शत्रुका सैनिक बल
ड़ा है ॥ १० ॥

सैन्यक्षयश्चापि महानिह नराधिपैः ।
नि च सैन्यानि हन्तुं वर्षशतैरपि ।
क्ष्यामो ह्यतस्तेषामपयानेऽभवन्मतिः ॥ ११ ॥

मारे पक्षके नरेशोंने शत्रुकी उस सेनाका बड़ा भारी
किया है तो भी उसके पास अभी बहुत-सी सेनाएँ हैं,
मलोग सौ वर्षोंमें भी नहीं मार सकते । अतः हमारा
उनसे हट जानेके लिये हो गया है' ॥ ११ ॥

वान्तरे राजा सकालयवनस्तदा ।
तद्विधेनैव मथुरामभ्युपागमत् ॥ १२ ॥

ी बीचमें कालयवनसहित राजा जरासंध फिर वैसी ही
थ लेकर मथुरापर चढ़ आया ॥ १२ ॥

जरासंधबलं दुर्निवार्यमभूत् तदा ।
कालयवनं चैव श्रुत्वेदं प्रतिपेदिरे ॥ १३ ॥

समय मथुराके सैनिकोंके लिये जरासंधकी सेनाको
अत्यन्त कठिन कार्य था । फिर जब यादवोंने कालयवनका भी आगमन सुना, तब तो उन्होंने मथुरासे हट जाना ही अपने लिये श्रेयस्कर समझा ॥ १३ ॥

केशवः पुनरेवाह यादवान् सत्यसंगरः ।
अद्यैव दिवसः पुण्यो निर्यामः स्वबलानुगाः ॥ १४ ॥

सत्यप्रतिज्ञ श्रीकृष्णने वहाँ यादवोंसे फिर कहा—'आज ही वह पुण्य दिवस है, जब कि अपनी सेनाके साथ हमें यहाँसे निकल चलना है' ॥ १४ ॥

ततो निश्चक्रमुः सर्वे यादवाः कृष्णशासनात् ।
ओघा इव समुद्रस्य बलौघप्रतिनादिताः ॥ १५ ॥

यह सुनकर समस्त यादव श्रीकृष्णकी आज्ञासे उस पुरीको छोड़कर निकल गये । उस समय सैन्यसमूहोंके कोलाहलसे भरे हुए यादवोंके दल समुद्रके जलप्रवाहकी भाँति जान पड़ते थे ॥ १५ ॥

संगृह्य ते कलत्राणि वसुदेवपुरोगमाः ।
सुसन्नद्धैर्गजैर्मत्तै रथैरश्वैश्च दंशितैः ॥ १६ ॥
आहत्य दुन्दुभीन् सर्वे स्वजनज्ञातिबान्धवाः ।
निर्ययुर्यादवाः सर्वे मथुरामपहाय वै ॥ १७ ॥

वसुदेव आदि सभी यादव अपनी स्त्रियोंको साथ ले कसे-कसाये मतवाले हाथियों, रथों और सुसज्जित अश्वोंके द्वारा मथुरा छोड़कर चल दिये । उन सबने डंके पीटकर स्वजनों तथा जाति-भाइयोंके साथ वहाँसे प्रस्थान किया था ॥ १६-१७ ॥

स्यन्दनैः काञ्चनापीडैर्मत्तैश्च वरवारणैः ।
सूतैः प्लुतैश्च तुरगैः कशापार्ष्णिप्रणोदितैः ॥ १८ ॥
स्वानि स्वानि बलाग्राणि शोभयन्तः प्रकर्षिणः ।
प्रत्यङ्मुखा ययुर्हृष्टा वृष्णयो भरतर्षभ ॥ १९ ॥

भरतश्रेष्ठ ! सुवर्णभूषित रथों, मतवाले गजराजों और सारथीकी आज्ञामात्रसे उछलकर चलनेवाले तथा हाथमें चाबुक लिये सवारोंद्वारा हाँके जानेवाले घोड़ोंसे अपनी-अपनी श्रेष्ठ सेनाओंकी शोभा बढ़ाते तथा उन्हें खींचकर अपने साथ लिये जाते हुए वृष्णिवंशी बड़े हर्षके साथ पश्चिम दिशाकी ओर प्रस्थित हुए ॥ १८-१९ ॥

ततो मुख्यतमाः सर्वे यादवा रणकोविदाः ।
अनीकाग्राणि कर्षन्तो वासुदेवपुरोगमाः ॥ २० ॥

तदनन्तर, युद्धकुशल श्रीकृष्ण आदि सभी मुख्य-मुख्य यादव अपनी सेनाओंको साथ लेकर चले ॥ २० ॥

ते स्म नानालताचित्रं नारिकेलवनायुतम् ।
कीर्णं नागबलैः कान्तं केतकीखण्डमण्डितम् ॥ २१
तालपुन्नागबकुलद्राक्षावनघनं क्वचित् ।
अनूपं सिन्धुराजस्य प्रपेतुर्यदुपुङ्ग

वे यदुपुङ्गव वीर सिंधुराजके जलप्राय देशमें जा पहुँचे, जो नाना प्रकारकी लताओंसे विचित्र शोभा पा रहा था। नारियलके बहुत-से वन वहाँ सुशोभित होते थे। नागकेसरोंके झुंड इधर-उधर सब ओर फैले थे, जिनसे वहाँकी कमनीयता और भी बढ़ गयी थी। केवड़ोंकी झाड़ियोंसे वह प्रदेश अलंकृत हो रहा था। कहीं-कहीं ताड़, पुन्नाग, वकुल और अंगूरके वन उस भूभागको और घना बना रहे थे ॥२१-२२॥

ते तत्र रमणीयेषु विषयेषु सुखप्रियाः।
मुमुदुर्यादवाः सर्वे देवाः स्वर्गगता इव ॥ २३ ॥

जिन्हें सुख ही प्रिय है, वे सब यादव वहाँके रमणीय स्थानोंमें स्वर्गमें रहनेवाले देवताओंके समान आनन्दका अनुभव करने लगे ॥ २३ ॥

पुरवास्तु विचिन्वन् स कृष्णस्तु परवीरहा।
ददर्श विपुलं देशं सागरेणोपशोभितम् ॥ २४ ॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले श्रीकृष्णने नगरके वास्तु-स्थानकी खोज करते हुए समुद्रसे सुशोभित होनेवाले एक विशाल प्रदेशको देखा ॥ २४ ॥

वाहनानां हितं चैव सिकताताम्रमृत्तिकम्।
पुरलक्षणसम्पन्नं कृतास्पदमिव श्रिया ॥ २५ ॥

वह स्थान बालूके साथ ही ताँबेके रङ्गवाली मिट्टीसे सुशोभित था। वाहनोंके लिये हितकर तथा नगरोपयोगी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न था। वह ऐसा मनोहर प्रतीत होता था, मानो लक्ष्मीने उसे अपना वासस्थान बना लिया हो ॥२५॥

सागरानिलसंवीतं सागराम्बुनिषेवितम्।
विषयं सिन्धुराजस्य शोभितं पुरलक्षणैः ॥ २६ ॥

सिंधुराजका वह प्रदेश समुद्रकी वायुसे विजित, सागरके जलसे सेवित तथा नगरोपयोगी लक्षणोंसे सुशोभित था ॥२६॥

तत्र रैवतको नाम पर्वतो नातिदूरतः।
मन्दरोदारशिखरः सर्वतोऽभिविराजते ॥ २७ ॥

वहाँ पास ही रैवतक नामसे प्रसिद्ध पर्वत था, जिसके शिखर मन्दराचलके समान ऊँचे और रमणीय थे। वह पर्वत सब ओरसे बड़ी शोभा पा रहा था ॥ २७ ॥

तत्रैकलव्यसंवासो द्रोणेनाध्युषितश्चिरम्।
प्रभूतपुरुषोपेतः सर्वरत्नसमाकुलः ॥ २८ ॥

वहाँ एकलव्य रहता था। आचार्य द्रोण भी वहाँ दीर्घकालतक निवास कर चुके थे। बहुत-से मनु
थे तथा वह पर्वत सब प्रकारके रत्नोंसे

विहारभूमिस्तत्रैव तस्य राज्ञः सु
नाम्ना द्वारवती नाम स्वायताष्टाप

उसके पास ही उस राजा रेवतकी विह
बड़े सुन्दर ढंगसे निर्माण किया गया था। उ
द्वारवती, जो विशाल होनेके साथ ही शत
बिछौंतके समान चौकोर थी ॥ २९ ॥

केशवेन मतिस्तत्र पुर्यर्थे विनि
निवेशं तत्र सैन्यानां रोचयन्ति स्म

भगवान् श्रीकृष्णने वहाँ नगर बसानेक
यादवोंको भी वहाँ सेनाका पड़ाव डालना

ते रक्तसूर्यदिवसे तत्र यादव
सेनापालांश्च संचक्रुः स्कन्धावारनिवे

दिनमें जब कि सूर्यपर लाली छा
यादवोंने सेनाके रक्षक नियुक्त किये और सै
लिये छावनियाँ तैयार करायीं ॥ ३१ ॥

ध्रुवाय तत्र न्यवसत् केशवः सह
देशे पुरनिवेशाय स यदुप्रवरो

यदुप्रवर भगवान् श्रीकृष्णने यादवोंके
में एक सुस्थिर नगर बसानेके लिये निवास

तस्यास्तु विधिवन्नाम वास्तूनि च ग
निर्ममे पुरुषश्रेष्ठो मनसा याद

गदके बड़े भाई यादवश्रेष्ठ पुरुषोत्तमने
के द्वारा उस पुरीका नाम निश्चित किय
विधिपूर्वक उसमें गृहोंका विभाग किया ॥

एवं द्वारवतीं चैव पुरीं प्राप्य सबा
सुखिनो न्यवसन् राजन् स्वर्गे देवगण

राजन्! इस प्रकार बन्धु-बान्धवोंसहित
पुरीमें पहुँचकर वहाँ उसी तरह सुखसे रहने
स्वर्गमें रहते हैं ॥ ३४ ॥

कृष्णोऽपि कालयवनं ज्ञात्वा केशिनि
जरासंधभयाच्चैव पुरीं द्वारवतीं

केशिहन्ता श्रीकृष्ण भी कालयवनका
उसके और जरासंधके भयसे द्वारकापुरीको च

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे विष्णुपर्वणि द्वारवतीप्रयाणे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत विष्णुपर्वमें श्रीकृष्णसहित यादवोंका द्वारकापुरीको प्रयाणविषयक छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५६ ॥